पूर्व मध्यकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

श्री बी. एन. लुणिया
प्राचार्य—शासकीय महाविद्यालय
रतलाम (म. प्र.)

प्रकाशक
मानकचंद बुकडिपो
उज्जैन : इन्दौर

प्राक्कथन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर हिन्दी में उच्चतर श्रेष्ठ ग्रंथों का अभाव सा रहा है, विशेषकर इतिहास प्रेमी विद्वानों तथा विश्व विद्यालयीन विद्यार्थियों के लिये। प्रस्तुत पुस्तक "पूर्वमध्यकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास" की रचना इस अभाव की कुछ पूर्ति करने हेतु की गयी है। मेरे इस दुस्साहस की सफलता और असफलता का मूल्यांकन तो इतिहास क्षेत्र के विद्वान और विद्यार्थी कर सकेंगे। इस पुस्तक में पूर्वमध्ययुग के राजनैतिक इतिहास के साथ-साथ भारतीय सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का, उस युग के प्रशासन का भी विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इतिहासकारों के विभिन्न मतों, आधुनिक अनुसंधानों के तथ्यों और निष्कर्षों को भी समुचित रूप से समावेश किया गया है। हर संभव प्रयास किया है कि विषय का सरल, सुबोध एवं प्रवाहयुक्त भाषा में विवेचन हो। इस पुस्तक संरचना में विभिन्न विद्वानों और इतिहासकारों के हिंदी तथा अंग्रेजी के प्रचुर ग्रंथों से मुझे असीम सहायता प्राप्त हुई है। इन विद्वानों, इतिहासकारों तथा उनके प्रकाशकों का मैं इसके लिये हृदय से ऋणी हूँ। इस पुस्तक में अनेकानेक अभाव हो सकते हैं जिनके निवारणार्थ तथा पुस्तक को अधिकाधिक उपयोगी बनाने हेतु मैं सुझावों का हृदय से स्वागत करूंगा।

बी. एन लुणिया

अनुक्रमणिका

अध्याय १

मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व भारत की दशा

ईस्वी सन् की आठवीं सदी के प्रारम्भ में इस्लामधर्म के अनुयायी अरबों के और उसके बाद दशवीं सदी में तुर्कों के निरन्तर आक्रमण भारत पर होते रहे। इन आक्रमणों के समय भारत में साम्राज्यवादी युग का अन्त हो गया था। सार्वभौम राजाओं की सत्ता विलीन हो गई थी और छोटे-छोटे प्रान्तीय राज्यों का उदय हुआ तथा देश की राजनैतिक एकता नष्ट हो गई। विकेन्द्रीकरण का युग प्रारम्भ हुआ। इन प्रान्तीय स्वतन्त्र राज्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

उत्तरी भारत के राज्य

१. कान्यकुब्ज या कन्नौज के मौखरी, आयुध और प्रतिहार राज्य— आठवीं सदी के प्रारम्भ में कन्नौज में मौखरी राजवंश स्थापित हुआ। यशोवर्मन प्रमुख मौखरी नरेश था। वह काश्मीर नरेश ललितादित्य का समकालीन था। उसने बंग, मगध, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, मरु, पंजाब, और हिमालय के प्रदेश पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी। वह साहित्य और कला का उदार आश्रयदाता था। उसकी राजसभा में उत्तररामचरित ग्रन्थ के रचयिता भवभूति और वाक्पति रहते थे। मौखरी वंश के नरेशों ने कन्नौज में सन् ७७० तक शासन किया। इसके पश्चात् वहाँ सन् ७७० से सन् ८१६ तक आयुध राजवंश के नरेश राज्य करते रहे। इनमें वज्रायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध प्रमुख नरेश थे। सन् ८१६ में प्रतिहार राजा नागभट्ट ने कन्नौज को जीतकर प्रतिहार राज्य स्थापित किया। प्रारम्भ में प्रतिहारों का उद्भव गुजरात में हुआ था। वहाँ से उन्होंने मालवा और राजस्थान में प्रतिहार साम्राज्य स्थापित किया। नागभट्ट प्रथम, वत्सराज और नागभट्ट द्वितीय प्रतिहार वंश के प्रारम्भिक नरेश थे। नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज एवं अन्य राज्यों को जीतकर अपनी राजधानी उज्जैन से कन्नौज बना ली। मिहिरभोज, महेन्द्रपाल और महीपाल कन्नौज के प्रतिहार राजाओं में प्रमुख थे। सन् १०१८ में गजनी के सुलतान महमूद ने अपनी भारत विजय और लूट की योजना के अन्तर्गत कन्नौज पर आक्रमण किया। कन्नौज का तत्कालीन नरेश राज्यपाल अशक्त था। वह मुसलमानों द्वारा परास्त हुआ और उसने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु इस मुस्लिम विजय से पूर्व प्रतिहार नरेशों ने उत्तरी भारत में राजनैतिक एकता स्थापित की और पश्चिमोत्तर भारत से होने वाले अरबों और तुर्कों के निरन्तर आक्रमणों को विशाल दृढ़ लौह प्राचीर बन कर रोके रखा। प्रतिहार नरेश साहित्यानुरागी और कवियों तथा विद्वानों के संरक्षक भी थे।

२. कन्नौज का गहड़वाल राज्य—उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर क्षेत्र में गहड़वाल राजवंश का उदय हुआ। सन् १०८५ में चन्द्रदेव गहड़वाल ने कन्नौज के प्रतिहार नरेश गोपाल को परास्त कर कन्नौज में गहड़वाल राजवंश की सत्ता स्थापित की। गोविन्दचन्द्र, विजयचन्द्र और जयचन्द्र प्रमुख गहड़वाल वंशीय राजा थे। गोविन्द-चन्द्र ने मालवा और मगध के कुछ भाग जीत लिये और काश्मीर, गुजरात तथा चोल राजाओं से मैत्री सम्बन्ध बना लिये। गहड़वाल नरेश विजयचन्द्र ने भी गहड़वाल राज्य को सुरक्षित रखा और तुर्कों को रोक कर उन्हें परास्त किया। जयचन्द्र ने अपना राज्य गया और वाराणसी तक विस्तृत कर लिया। परन्तु सन् ११९४ में जब मुहम्मद गौरी ने कन्नौज पर आक्रमण किया, तब जयचन्द्र परास्त हुआ और युद्ध में मारा गया। जयचन्द्र का पुत्र कन्नौज में तुर्कों की आधीनता में राज्य करता रहा। सन् १२२५ में दिल्ली के गुलामवंश के सुलतान इल्तुतमिश ने अंत में कन्नौज के राजा को परास्त कर कन्नौज राज्य को दिल्ली साम्राज्य में विलीन कर लिया।

३. शांकभरी का और बाद में दिल्ली तथा अजमेर का चौहान राज्य—राजस्थान के शांकभरी या सांभर क्षेत्र में प्रतिहारों के चहमान नामक सामन्त ने चौहान राजवंश की स्थापना की। इस वंश के प्रमुख नरेशों में वासुदेव, गूवक, विग्रहराज, दुर्लभराज, विग्रहराज द्वितीय, अजयराज, अर्णोराज, विग्रहराज बिसलदेव और पृथ्वीराज तृतीय थे। विग्रहराज द्वितीय चौहान वंश का प्रथम स्वतन्त्र दृढ़ शासक था। अजय-राज ने अपनी विजयों से राज्य की सीमाएँ बढ़ाईं और अजयमेरु (अजमेर) नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। विग्रहराज बिसलदेव (सन् ११५२–६५) ने मुसलमानों से संघर्ष किया, यमुना और सतलज के बीच का प्रदेश उनसे छीन लिया और दिल्ली तथा उसके आसपास के क्षेत्र पर भी अपना अधिकार कर लिया। उसने अजमेर में एक सरस्वती मन्दिर और संस्कृत महाविद्यालय भी स्थापित किया। वह स्वयं विद्वान, यशस्वी लेखक, व कवि था और साहित्यकारों का आश्रयदाता था। इस समय इन चौहान नरेशों और कन्नौज के गहड़वाल नरेशों के बीच दीर्घ संघर्ष सत्ता व राज्य-विस्तार के हेतु चल रहा था। इससे उत्तरी भारत को बहुत हानि हुई।

चौहान वंश का सबसे प्रसिद्ध और प्रतापी नरेश पृथ्वीराज तृतीय (सन् ११७९–११९३) था। उसने चन्देल राजा परमर्दिदेव को, गुजरात के चालुक्य नरेश भीम द्वितीय को और कन्नौज के गहड़वाल राजा जयचन्द्र को परास्त किया। जब सन् ११९१ में मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया, तब पृथ्वीराज ने तराइन के युद्ध में उसे बुरी तरह परास्त किया। पर जब ११९३ में पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी में दूसरी बार युद्ध हुआ तब, पृथ्वीराज पराजित हुआ और रणक्षेत्र में मारा गया। पृथ्वीराज साहसी और वीर योद्धा था। कतिपय विद्वानों का मत है कि दिल्ली की कुतुबमीनार का प्रारम्भिक रूप एक विजय स्तंभ था जिसे पृथ्वीराज चौहान ने अपनी विजयों के उपलक्ष में बनाया था। पृथ्वीराज की पराजय से और बाद में उसके भाई हरिराज की पराजय से दिल्ली और अजमेर में मुस्लिम राज सत्ता स्थापित हो गई।

४. बुन्देलखंड का चन्देल राज्य—नवीं सदी में बुन्देलखंड में चन्देल राजवंश की शक्ति का उदय हुआ। चन्देल चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। इस राज्य वंश का संस्थापक

राजा मन्नुक था। चन्देलों की राजधानी पहिले खजुराहो और बाद में महोबा थी। यशोवर्मन, धंग, गंड और कीर्तिवर्मा प्रमुख चन्देल नरेश थे। यशोवर्मन ने मालवा, चेदि और महाकौशल को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया था। धंग ने चेदि राजा और मालवा के परमार नरेश को परास्त कर राज्य विस्तृत किया था और प्रतिहारों से ग्वालियर छीन लिया था। गंड ने भी विस्तार नीति अपनाई और प्रतिहार नरेश राज्यपाल को युद्ध में परास्त कर मार डाला था। कीर्तिवर्मा भी शक्तिशाली नरेश था। उसने कलचूरि नरेश को परास्त किया था। वह विद्वानों का आश्रयदाता भी था। सन् १२०३ में दिल्ली के सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक ने चन्देलों के दृढ़ दुर्ग कालिंजर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया था और चन्देल राजा परमल को भी परास्त कर दिया था। चन्देल नरेशों ने खजुराहो, कालिंजर, महोबा आदि स्थानों में अनेक भव्य राजप्रासादों, मंदिरों और सरोवरों का निर्माण किया था।

५. **त्रिपुरी का कलचुरि राज्य**—महिष्मति में हैहय क्षत्रियों से उत्पन्न कलचुरि राजवंश छठी सदी में प्रतिष्ठित हुआ था। इस वंश के कोकल्यदेव ने त्रिपुरी में सन् ८७९ के लगभग कलचुरि राजवंश स्थापित किया। प्रारम्भ में कलचुरि नरेश प्रतिहारों के सामन्त थे, पर बाद में वे स्वतंत्र शासक हो गये। लक्ष्मणराज, गांगेयदेव, लक्ष्मीकर्ण, यशःकर्ण, गयांकर्ण, नरसिंह, आदि प्रसिद्ध कलचुरि नरेश थे। गांगेयदेव इस वंश का सबसे शक्तिशाली नरेश था। उसने उड़ीसा, दक्षिण कोसल, दोआब, प्रयाग, वाराणसी आदि को जीता और चन्देल राजा विजयपाल को परास्त कर अपने राज्य का खूब विस्तार किया। मालवा के परमार और कालिंजर के चन्देल नरेशों से निरन्तर संघर्ष और युद्ध होने के कारण कलचुरि राज्य की शक्ति क्षीण हो गई। तेरहवीं सदी में दिल्ली के सुलतानों ने इस वंश का अन्त कर दिया।

६. **मालवा का परमार राज्य**—नवीं सदी के प्रारम्भ में आबू पर्वत के समीप परमार राजवंश की शक्ति का उदय हुआ। परन्तु परमारों की दृढ़ शक्ति का संस्थापक उपेन्द्र था। सीयक या श्रीहर्ष, मुन्ज, सिंधुराज, भोजदेव, जयसिंह और उदयादित्य परमार वंश के प्रख्यात नरेश थे। सीयक ने राष्ट्रकूट नरेश और हूणों को युद्ध में परास्त किया था। मुंज प्रतापी और साम्राज्यवादी नरेश था। उसने त्रिपुरी के युवराज द्वितीय को, गुजरात, कर्णाटक, चोल राजाओं को परास्त कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसने कल्याणी के तैलप द्वितीय को युद्ध में छः बार परास्त किया, पर सातवीं बार के युद्ध में तैलप ने उसे हरा कर बन्दी बना लिया और बाद में उसका वध करवा दिया। मुंज विजेता होने के साथ-साथ कला का प्रेमी और सरस्वती का उपासक भी था। वह स्वयं विद्वान तथा कवियों और विद्वानों का आश्रयदाता भी था। परन्तु परमार वंश का सबसे अधिक प्रतापी और प्रसिद्ध नरेश भोजदेव था। उसने कल्याणी के चालुक्य राजा विक्रमादित्य चतुर्थ को, कलचुरि नरेश गांगेयदेव को और गुजरात के सोलंकी नरेश को युद्धों में परास्त किया और अपने राज्य का विस्तार किया। कलचुरि नरेश और सोलंकी नरेश की सम्मिलित सेनाओं के आक्रमण के समय राजाभोज परास्त हुआ और मारा गया। भोज महान विजेता ही नहीं, अपितु वह उच्च-कोटि का लेखक, कवि और विद्वान भी था। उसकी राज सभा में अनेक विद्वान और

कवि रहते थे। राजाभोज ने अनेक ग्रंथ भी लिखे हैं तथा अनेक राजप्रासाद, मन्दिर और तालाब भी निर्मित किये। ऐसा माना जाता है कि भोज की मृत्यु से कला और विद्या निराश्रिता हो गयी थी। सन् १३०५ में अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा जीतकर परमार राज्य का अन्त कर दिया था।

७. गुजरात का सोलंकी अथवा चालुक्य राज्य—दक्षिण भारत के चालुक्य राजवंश की एक शाखा ने गुजरात में दसवीं सदी में सोलंकी या चालुक्य राज्य स्थापित किया। इस राज्य के प्रख्यात नरेशों में मूलराज, भीम प्रथम, कर्ण, जयसिंह, सिद्धराज, कुमारपाल, भीम द्वितीय आदि थे। मूलराज ने कच्छ के नरेश को परास्त कर अपनी राज्य सीमा विस्तृत की। भीम प्रथम (सन् १०२१-१०६३) के समय गजनी के सुलतान महमूद ने सोमनाथ और गुजरात पर आक्रमण किया था। भीम के बाद कर्ण और उसके बाद जयसिंह सिद्धराज(सन् १०९३-११४३)राजा हुए। सिद्धराज ने मालवा के परमार नरेश को परास्त कर 'अवन्तिनाथ' का विरुद्ध ग्रहण किया था। यह इस वंश का सबसे अधिक प्रतापी, धार्मिक, प्रजापालक और शक्ति-शाली नरेश था। वह विद्वानों का बड़ा आश्रयदाता था तथा उसने कई मन्दिर और भवन बनवाये। कुमारपाल ने भी सोलंकी राज्य की सीमाओं का विस्तार अपनी विजयों से किया और उसकी प्रतिष्ठा तथा शक्ति में वृद्धि की। कुमारपाल भी एक विजेता, तथा कला और साहित्य का आश्रयदाता था। चालुक्य वंश की शक्ति क्षीण होने पर गुजरात में बघेल राजवंश का प्रभुत्व बढ़ा। सन् १२९७ में दिल्ली सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण किया और राजधानी को खूब लूटकर वहाँ के अवशिष्ट चालुक्य राज्य का अन्त कर दिया। इसके बाद वहाँ मुसलमानी राज्य स्थापित हो गया और अहमदाबाद उसकी राजधानी हो गया।

८. सीमान्त क्षेत्र और पंजाब का शाही क्षत्रिय राज्य—भारत के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र और पंजाब में शाही राजवंश का राज्य था। यह शाही राज्य क्षत्रियों का था। जब अफगानिस्तान और काबुल पर अरबों ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था, तब शाही नरेशों ने पंजाब में अपनी सत्ता स्थापित कर भटिन्डा को राजधानी बनाया। शाही नरेशों ने अरबों और तुर्कों के निरन्तर आक्रमणों का सामना किया। शाही नरेश जयपाल और आनन्दपाल गजनी के सुलतान महमूद द्वारा भारत पर आक्रमण करते समय पराजित हुए। इनके बाद त्रिलोचनपाल और भीमपाल शाही नरेश भी तुर्कों के साथ युद्ध करते हुए मारे गये। इसके बाद सीमान्त क्षेत्र और पंजाब में तुर्कों का राज्य स्थापित हो गया।

९. सिंध का ब्राह्मण राज्य—सम्राट हर्षवर्धन के समय सिंध में एक शूद्र वंशी राज्य था। इस वंश के राजाओं की उपाधि "राय" थी। इस वंश के साहसी नामक राजा को उसके ब्राह्मण मंत्री चच ने वध करके एक नवीन राज्य की स्थापना की। इस वंश में दाहिर प्रसिद्ध राजा हुआ। उसके समय में अरबों ने सिंध पर आक्रमण कर वहाँ थोड़े वर्षों के लिये अपनी सत्ता स्थापित करली थी। इसके बाद वहाँ पुनः हिंदू राज्य स्थापित हो गया। ग्यारहवीं सदी में सुलतान महमूद ने सिंध पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। इससे उत्तरी सिंध में तुर्क राज्य और दक्षिण सिंध में सुमर नामक हिन्दू

राज्य स्थापित हो गये। चौदहवीं सदी में तुर्कों ने सुमर राज्य का अन्त कर दिया।

१०. काश्मीर में कार्कोटक, उत्पल, पर्वगुप्त और लोहर राज्य—सातवीं सदी में काश्मीर में दुर्लभवर्धन ने कार्कोटक राज्य की स्थापना की। ललितादित्य, मुक्तापीड़ और विनयादित्य, जयापीड़ इस राज्य के मुख्य नरेश थे। ये नरेश नागवंशी भी कहे जाते हैं। ललितादित्य ने पंजाब, कन्नौज, गौड़, तुसार देश, दरद देश, भूटान, तिब्बत आदि पर आक्रमण किये और राज्य का विस्तार किया। उसने अनेक मन्दिर और बौद्ध विहार बनवाये।

नवीं सदी में कार्कोटक राज्य के शक्तिहीन होने पर काश्मीर में उत्पलवंश का राज्य स्थापित किया गया। इस वंश में अवन्तिवर्मन और शंकरवर्मन प्रसिद्ध राजा हुए। इन्होंने अपने राज्य विस्तार के लिये युद्ध किये।

उत्पल वंश के पश्चात् काश्मीर में पर्वगुप्त राजवंश की सत्ता स्थापित हो गयी। इस वंश का सबसे अधिक प्रसिद्ध नरेश, राज्य की रानी जिद्दा थी। यह अपने भ्रष्टाचार और अनैतिकता के लिये प्रख्यात थी।

पर्वगुप्त राजवंश के पश्चात् लोहर वंश का राज्य स्थापित हुआ। लोहर वंश में संग्राम, कलश और हर्ष नामक प्रसिद्ध राजा हुए। सन् १३३९ में लोहर वंश के शाहगीर नामक एक मुस्लिम सेनापति ने लोहर वंश का अन्त कर वहाँ एक मुस्लिम राज्य स्थापित किया।

११. बंगाल का पालवंशीय और सेनवंशी राज्य—बंगाल में आठवीं सदी में गोपाल नामक महापुरुष ने पालवंश के राज्य की स्थापना की। उसके बाद धर्मपाल, देवपाल, महिपाल, नयपाल, विग्रहपाल, रामपाल, कुमारपाल, गोविन्दपाल आदि राजा हुए। धर्मपाल ने प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों से निरन्तर संघर्ष किया और वह तत्कालीन राजनीति पर कुछ समय के लिये छा गया। वह बड़ा धार्मिक और विद्या तथा कला का आश्रयदाता था। देवपाल (सन् ८१५से८५६) इस वंश का सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रतापी नरेश था। उसने अपनी विजयों से कलिंग और आसाम को जीता, मिहिरभोज को पूर्व में बढ़ती हुई शक्ति को रोका और विस्तृत प्रदेश पर राज्य किया। उसका राजनैतिक संबंध ब्रह्मा, सुमात्रा, जावा आदि देशों से भी था। थोड़े समय के लिये पाल शक्ति क्षीण हो गयी थी, पर महिपाल नामक नरेश ने बंगाल और बिहार के खोये हुए प्रदेश पुनः अपने अधिकार में कर लिये और पाल सत्ता का पुनरुत्थान किया। पाल वंश की शक्ति क्षीण होने पर रामपाल (सन् १०७७-११२०) नरेश ने भी अपनी विजयों से पाल राज्य का गौरव पुनः स्थापित किया। गृहकलह, सामन्तों के विद्रोह और नवीन राजवंशों के उदय से पाल वंश का अन्त हो गया। पाल वंश के शासन काल में भवन निर्माण कला, और शिक्षा तथा साहित्य की खूब प्रगति हुई। अनेक बौद्ध विहार, चैत्य, मंदिर और मूर्तियाँ बनाई गयीं और बौद्ध धर्म की खूब प्रगति हुई।

ग्याहरवीं सदी के मध्य में सामन्त सेन ने पाल वंश की शक्ति क्षीण होने पर उड़ीसा में सेन राजवंश स्थापित किया। सेन वंश ब्राह्मण था। इस वंश का सर्वश्रेष्ठ, योग्य और वीर शासक विजय सेन (सन् १०९५-११९८) था। उसने बंगाल, गौड़, आसाम, तिरहूत एवं कलिंग को जीत कर अपना राज्य विस्तृत किया। लक्ष्मण सेन

इस वंश का अन्तिम नरेश था। वह विद्वानों और कवियों का आश्रयदाता था। बंगाल और बिहार पर मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी के आक्रमण होने पर सेन राज्य का अन्त हो गया।

१२. **कलिंग का गंग राज्य**—आठवीं सदी के प्रारम्भ में कलिंग में गांगेय नामक साहसी वीर पुरुष ने गंग राज्य स्थापित किया। इस वंश के प्रसिद्ध नरेश व्रजहस्त द्वितीय और अनन्तवर्मन थे। अनन्तवर्मन ने जगन्नाथपुरी का विष्णु मन्दिर निर्मित किया। चौदहवीं सदी में दिल्ली के तुगलक सुलतान ने कलिंग पर आक्रमण कर गंग राज्य का अन्त कर दिया।

१३. **कामरूप या आसाम का राज्य**—सम्राट हर्षवर्धन के समय कामरूप के प्रसिद्ध राजा भास्कर वर्मन के पश्चात वहाँ एक नवीन राज्य स्थापित हुआ। जिसका प्रसिद्ध और प्रतापी नरेश श्रीहर्ष था। नवीं सदी के प्रारम्भ में यहाँ एक तृतीय शक्तिशाली राज्य स्थापित हुआ, जिसका प्रसिद्ध नरेश रत्नपाल था। सन् १२२८ से १८२५ तक यहाँ अहोम जाति के शान वंश का राज्य रहा। आसाम की अपनी भौगोलिक दशा से यहाँ मुस्लिम प्रभुत्व और सत्ता अल्पकालीन रही।

दक्षिण भारत के राज्य

ऊपर उत्तरी भारत के प्रमुख राज्यों का विवरण है। सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद दक्षिण भारत में भी विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के कारण निम्नलिखित प्रमुख राज्य स्थापित हो गये थे।

(१) चालुक्य राज्य

विद्वानों का मत है कि चालुक्य राजवंश के लोग पांचवीं सदी में उत्तरी भारत से दक्षिण में कर्नाटक प्रदेश में जा कर बस गये और वहाँ उन्होंने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इस चालुक्य राज्य के निम्नलिखित तीन भाग थे।

(अ) वातापी का चालुक्य राज्य या पूर्वकालीन पश्चिमी चालुक्य राज्य—इस राज्य का प्रथम स्वतंत्र नरेश जयसिंह था। इस वंश के एक अन्य नरेश पुलकेशिन प्रथम ने वातापी को राजधानी बनाया। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध नरेश पुलकेशीन द्वितीय (सन् ६०८ से ६४२) था। उसने विद्रोहों का दमन करके शांति स्थापित की और राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय, कदंब नरेश, गग नरेश, मलावार के अनूप नरेश और कोंकण नरेश को परास्त किया। संपूर्ण दक्षिण विजय करने के बाद उसने उत्तरी भारत के कुछ राजाओं को परास्त किया। पुलकेशिन दक्षिण भारत का महान सम्राट था। वह एक महान विजेता, श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, तथा विद्या और कला का उदार आश्रयदाता था। पुलकेशिन के बाद इस राजवंश में विक्रमादित्य, विनयादित्य, विजयादित्य, कीर्तिवर्मन द्वितीय आदि नरेश हुए। कीर्तिवर्मन के राष्ट्रकूट नरेशों द्वारा पराजित होने पर वातापी के चालुक्य राज्य की शक्ति नष्ट हो गयी।

(ब) कल्याणी का चालुक्य राज्य या उत्तरकालीन पश्चिमी चालुक्य राज्य—चालुक्य नरेश तैलप द्वितीय (सन् ९७३ से ९९७) ने इस राज्य को स्थापित किया था। उसने राष्ट्रकूट, परमार, चेदि और चोल राजाओं को परास्त करके राज्य की सीमा

की वृद्धि की। कल्याणी के प्रमुख चालुक्य नरेशों में सत्याश्रय, विक्रमादित्य पंचम, जयसिंह प्रथम, सोमेश्वर प्रथम (सन् १०४२-६१) तथा विक्रमादित्य षष्टम (सन् १०७६-११२६) प्रख्यात थे। विक्रमादित्य षष्टम इस चालुक्य राज्य का सर्वश्रेष्ठ नरेश था। उसने चोल राजा राजेन्द्र द्वितीय, होयसल राजा विष्णुवर्धन और गंगनरेश को परास्त किया और परमारों से मित्रता की। वह एक महान विजेता, योग्य प्रशासक और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और दुर्बल थे। कल्याणी के चालुक्य राजाओं का मालवा के परमार नरेशों और दक्षिण भारत के चोल तथा यादव राजाओं से प्रायः युद्ध होता रहता था। अंत में सन् ११९० में होयसल राजा और देवगिरी के यादव नरेश ने चालुक्य राजा को परास्त कर कल्याणी के चालुक्य राज्य का अंत कर दिया।

(स) पूर्वी चालुक्य राज्य या वेंगी का चालुक्य राज्य—आंध्र राज्य में इस चालुक्य राज्य की स्थापना करने वाला पुलकेशिन चालुक्य का लघुभ्राता विष्णुवर्धन था। इस राज्य के प्रमुख नरेशों में जयसिंह प्रथम, इन्द्रवर्मा, विष्णुवर्धन द्वितीय, जयसिंह द्वितीय, आदि थे, पर विजयादित्य तृतीय (सन् ८४४-८८८) और भीम तृतीय (सन् ९३४-४५) विशेष उल्लेखनीय हैं। इन विजयादित्य और भीम ने राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय और गोविंद पंचम को क्रमशः परास्त किया और राज्य की सीमाओं की वृद्धि की। इसके बाद इस चालुक्य राज्य का अस्तित्व दो सौ वर्षों तक और रहा। इस राज्य का अन्तिम नरेश कुलोतंग चोलदेव (सन् १०६३-१११८) था। चालुक्य नरेश कला और साहित्य के बड़े उदार संरक्षक थे। चालुक्य नरेशों ने गुफाओं को काटकर बौद्ध चैत्य, मन्दिर और मूर्तियाँ बनवाईं। अजंता के कुछ गुफा चित्र चालुक्य काल के हैं।

(२) **राष्ट्रकूट राज्य**—आधुनिक विद्वानों के मतानुसार राष्ट्रकूट यादव क्षत्रिय वंश के थे और वे उत्तरी भारत से दक्षिण भारत में आकर बस गये थे। उन्होंने छठी और सातवीं शताब्दि में कर्नाटक और महाराष्ट्र में अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। प्रारम्भ में ये चालुक्य नरेशों के सामन्त थे और बाद में स्वतन्त्र नरेश हो गये। राष्ट्रकूटों ने पहिले बम्बई राज्य नासिक जिले में मयूरखंड और बाद में आंध्र प्रदेश में मान्य खेत को अपनी राजधानी बनाया। राष्ट्रकूटों के प्रारंम्भिक प्रमुख नरेशों में दन्तिवर्मा, इन्द्र प्रथम, गोविन्द प्रथम, कर्क प्रथम, दन्तिदुर्ग आदि थे। दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूटों की महानता का संस्थापक था। बाद के नरेशों में ध्रुव, गोविन्द तृतीय, अमोघवर्ष प्रथम और कृष्ण तृतीय अधिक प्रसिद्ध हुए। राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव ने गंगराजा, पल्लव राजा, प्रतिहार नरेश, पाल राजा आदि को परास्त किया और अपने राज्य का विस्तार किया। उसके शासन काल में राष्ट्रकूटों की शक्ति ऊँचे शिखर पर थी। ध्रुव का उत्तराधिकारी गोविन्द तृतीय (सन् ७९३ से ८१४) ने भी पल्लव, चालुक्य, प्रतिहार, गुर्जर, पाल राजाओं को परास्त किया। अपनी दिग्विजयों से वह समस्त दक्षिण भारत का सर्वोच्च शासक ही नहीं था, अपितु उत्तरी भारत में भी उसने अपनी धाक जमा दी थी। उसने विशाल राष्ट्रकूट साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इस समय (आठवीं सदी के अन्त और नवीं सदी के प्रारम्भ में) भारत में तीन शक्तियाँ महान और प्रबल थीं। बंगाल

के पाल वंश की राजसत्ता, उत्तरीभारत में कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राज्य की शक्ति और दक्षिण भारत में राष्ट्रकूट राज्य की शक्ति। इन तीनों शक्तियों में सार्वभौम प्रभुता के लिये निरन्तर संघर्ष और युद्ध होते रहे। इनमें गोविन्द तृतीय ने राष्ट्रकूट वंश और उसके राज्य को सर्वाधिक शक्तिशाली प्रमाणित कर दिया। गोविन्द तृतीय के उत्तराधिकारी अमोघवर्ष ने भी विजय प्राप्त की। वह राष्ट्रकूट राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था का पुनर्संस्थापक, कला और साहित्य का प्रेरक और प्रजाहितैषी नरेश था। इसके बाद के राष्ट्रकूट राजा निर्बल, विलासी और अयोग्य थे। वे पराक्रमी और विजेता नहीं थे। इससे राष्ट्रकूटों का पतन हो गया। कर्क द्वितीय (सन् ९७२-९७३) अन्तिम राष्ट्रकूट नरेश था जिसे चालुक्य राजा तैलप द्वितीय ने परास्त करके राष्ट्रकूट राज्य को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

राष्ट्रकूट नरेश अपनी धार्मिक उदारता, कला प्रेम, और साहित्य-संरक्षण के लिये प्रसिद्ध हैं। इलौरा का कैलाश मन्दिर राष्ट्रकूट नरेशों की कला अभिरुचि का ज्वलंत उदाहरण है। उन्होंने विदेशी व्यापार को भी प्रोत्साहन दिया। उन्होंने अरब तथा फारसी व्यापारियों को अपने राज्य में बसाया। स्थायित्व, शक्ति, व्यवस्था, एवं विदेशी व्यापार, कला और कन्नड़ भाषा की प्रगति की दृष्टि से राष्ट्रकूट राज्य विशेष महत्वशाली है।

(३) **देवगिरी का यादव राज्य**— देवगिरी (दौलताबाद) में यादव राज्य का उत्थान हुआ। प्रारम्भ में इस वंश के राजा राष्ट्रकूट और चालुक्य नरेशों के अधीन थे। सन् ११९० में यादव राजा तमिल्लम चतुर्थ ने स्वतन्त्र यादव राज्य की स्थापना कर देवगिरी को राजधानी बनाया। यादव वंश का सर्वश्रेष्ठ नरेश सिंहण (सन् १२१०-४७) अधिक प्रसिद्ध था। उसने परमार, चेदि, बघेल, कदम्ब और पांडय नरेशों को परास्त कर दिया और कृष्णानदी के दक्षिण तक यादव राज्य विस्तृत कर दिया। वह साहित्य, और कला का संरक्षक था। इसकी राजसभा में संगीत के आचार्य सारंगधर और ज्योतिषी चंगदेव थे। यादव नरेशों के राज्याश्रय में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर भी थे। सिंहण के बाद कृष्ण और महादेव नामक यादव नरेशों ने भी शत्रु राजाओं को परास्त कर राज्य की सीमाओं में वृद्धि की। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने वहाँ के राजा रामचन्द्र और उसके पुत्र शंकरदेव को अपने अधीन कर लिया। सन् १३१२ में अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफ़ूर ने शंकरदेव को परास्त करके और उसका वध करके, यादव राज्य का अन्त कर दिया।

(४) **वनवासी का कदम्ब राज्य**—ब्राह्मण जाति के कदम्ब वंश की स्थापना पश्चिमी घाट पर कनारा में हुई थी और चतुर्थ सदी में मयूर शर्मन कदम्ब राज्य का प्रथम स्वतन्त्र नरेश था। इसके बाद का काकुत्स्थ वर्मन और रविवर्मन प्रसिद्ध कदम्ब नरेश थे। चालुक्य और राष्ट्रकूट राज्यों के उदय और विकास के कारण कदम्ब नरेश केवल सामन्त नरेश रहे। चौदहवीं सदी के प्रारम्भ में मलिक काफ़ूर ने दक्षिण सैनिक अभियान के समय कदम्ब राज्य का अन्त कर दिया।

(५) **तलकाड का गंगराज्य**—चतुर्थ सदी में मैसूर राज्य के दक्षिण में कोंगनिवर्मन ने गंगराज्य स्थापित किया। इस वंश के प्रसिद्ध नरेशों में नरेश हरिवर्मन,

दुर्विनीत, और श्रीपुरुष प्रमुख थे। इन्होंने अपनी विजयों से गंग राज्य की सीमाओं में वृद्धि की और उसकी शक्ति तथा गौरव को बढ़ाया। सन् १००४ में चोल नरेश ने गंगनरेश को पराजित करके गंगराज्य का अन्त कर दिया।

(६) **वारंगल का काकतीय राज्य**—चालुक्य राज्य के नष्ट हो जाने पर वारंगल में काकतीय नरेशों ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। काकतीय राजाओं में गणपति (सन् ११६६-१२६१) सबसे अधिक प्रख्यात था। उसकी पुत्री रुद्राम्बाभी योग्य और लोकप्रिय शासिका थी। मलिक काफ़ूर के दक्षिण भारत में सैनिक अभियानों के समय काकतीय नरेश ने दिल्ली सुलतान की अधीनता स्वीकार करली थी। सन् १४२४ में दक्षिण के बहमनी सुलतान अहमदशाह ने काकतीय राज्य का अन्त कर दिया।

(७) **द्वारसमुद्र का होयसल राज्य**—बारहवीं सदी में मैसूर क्षेत्र में यादव वंश की एक शाखा होयसल वंश के राज्य का उदय हुआ। इस वर्ष का प्रथम स्वतन्त्र नरेश विट्टिग विष्णुवर्द्धन (सन् १११० से ११४०) था। उसने पार्श्ववर्ती अनेक राजाओं को परास्त करके द्वारसमुद्र को अपनी राजधानी बनाया। इस राज्य का सबसे शक्तिशाली नरेश वीरबल्लाल प्रथम (सन् ११७२–१२१५) था। इस वंश के अन्तिम शासक और बल्लाल तृतीय को मलिक काफ़ूर ने परास्त कर इस राज्य का अन्त कर दिया।

(८) **चोलराज्य**—सुदूर दक्षिण भारत में तन्जौर, त्रिचनापल्ली और पुदुकोट्टा प्रदेश में अत्यन्त प्राचीन चोलराज्य था। विद्वानों का मत है कि चोल उत्तरी भारत के प्राचीन सूर्यवंशी क्षत्रियों के वंशज थे और बाद में वे दक्षिण भारत में आ गये और अपनी सत्ता स्थापित कर ली। दूसरी सदी में करिकाल चोल नरेश था। नवीं सदी में चोल वंश का प्रथम स्वतन्त्र नरेश आदित्य था, पर स्वतन्त्र चोल राज्य का वास्तविक संस्थापक परान्तक (सन् ९०७ से ६५५) था। प्रमुख चोल नरेश राजराज प्रथम (सन् ६८५ से १०१४) चोल वंश का सबसे प्रतापी और प्रसिद्ध नरेश था। उसने दक्षिण भारत के चालुक्य नरेशों को परास्त कर चालुक्य राज्य का अन्त कर दिया, पांड्य, गंग, और कलिंग नरेशों को हराया तथा लंका के एक भाग को भी जीत लिया। उसने अपनी जल सेना से समुद्री द्वीपों पर भी अधिकार कर लिया। वह महान् विजेता, सफल शासक और ललित कलाओं का आश्रयदाता था। उसने कई मन्दिर भी बनवाये जिनमें तन्जोर का राजराजेश्वर का मन्दिर अधिक प्रसिद्ध है। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम (सन् १०१४ से ४४) ने केरल, पांड्य, कल्याणी के चालुक्य, कदम्ब, और गोंडवाना के नरेशों को परास्त किया, बंगाल और कलिंग को जीता और अपनी विशाल जल सेना से समुद्र पार भी चोल साम्राज्य की शक्ति और सीमाएँ बढ़ाई। उसने नये नगर, झील, बांध, मन्दिर आदि निर्मित कराये। चोल वंश का अन्य प्रसिद्ध नरेश कुलोत्तंग प्रथम (सन् १०७० से ११३०) था। उसने पड़ौसी राज्यों को परास्त किया और चोलराज्य की शक्ति, प्रतिष्ठा और गौरव को बनाये रखा। कुलोत्तंग के बाद के चोल नरेश शक्तिशाली पड़ौसी राज्यों के युद्धों से दुर्बल हो गये। सन् १३१०-११ में मलिक काफ़ूर ने अपने दक्षिण सैनिक अभियान के समय चोल राज्य का अन्त कर दिया।

(९) **पांड्य राज्य**—चोल राज्य से आगे सुदूर दक्षिण भारत में अति प्राचीन पांड्य राज्य था। यह राज्य मदुरा, तिनेवेल्ली और केरल के क्षेत्र में था। अशोक के शिलालेख में इस पांड्य राज्य का उल्लेख है। ईस्वी सन् की दूसरी सदी में नेडुम पांड्य राजा राज्य कर रहा था। ग्यारहवीं सदी में पांड्य राजा चोल सम्राटों के अधीन थे। चोल राज्य के पतन के बाद पांड्य नरेश स्वतंत्र हो गये। इसके प्रमुख और प्रसिद्ध शासकों में सुन्दर पांड्य प्रथम (सन् १२१६–३८) और द्वितीय थे। सुन्दर पांड्य प्रथम ने चोल नरेश को परास्त कर उसकी राजधानी तंजौर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। सुन्दर पांड्य द्वितीय ने भी होयसल नरेश को परास्त कर उसके राज्य के कतिपय भाग को अपने अधिकार में कर लिया था। मलिक काफूर के आक्रमणों के कारण पांड्य राज्य का अन्त हो गया।

(१०) **चेर राज्य**—सुदूर दक्षिण में अति प्राचीन काल से पश्चिमी तट पर केरल तथा मलाबार के तटों पर चेर राज्य विद्यमान था। पहिली शताब्दी में इसका प्रसिद्ध नरेश पेरुनर था। पर इस राज्य का सबसे अधिक शक्तिशाली नरेश सेनगुत्तवम था। उसने चोल राज्य पर आक्रमण कर चोल नरेश को परास्त कर दिया। दक्षिण भारत में मुस्लिम आक्रमणों के कारण चेर राज्य का अन्त हो गया।

भारत पर मुस्लिम आक्रमणों के समय जो प्रशासन-व्यवस्था, सामाजिक और धार्मिक जीवन था, उसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

प्रशासन व्यवस्था

१. **प्रान्तीय और वंशानुगत राज्य**—इस युग में समस्त विशाल भारतवर्ष स्थानीय प्रादेशिक राज्यों में विभक्त था। इन प्रान्तीय राज्यों में अधिकांश में राजपूत या क्षत्रिय राजवंश राज्य करते थे। राजा वंशानुगत होता था तथा वह पूर्व परम्परा को ही मानता रहता था। राजवंशों की स्थानीयता और जातीयता इस युग की विशिष्टता है।

२. **निरंकुश राजतंत्र**—राज्य की सर्वोच्च सत्ता राजा के हाथों में निहित थी और सारे देश में निरंकुश राजतंत्र प्रचलित था। राजा निरंकुश स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित होते थे। उनके अधिकारों और सत्ता पर कोई बंधन या अंकुश नहीं होता था। क्योंकि प्राचीनकाल की राजा को परामर्श देने वाली या उसे नियंत्रित करने वाली सभा या समितियां विलीन हो गयी थीं। प्राचीन परम्पराओं और धर्म-शास्त्रों का जो भी नियंत्रण अवशेष था, समय-समय पर उसकी भी अवहेलना की जाती थी। साधारणतया आमात्य या मंत्रि-मंडल राजा पर थोड़ा अंकुश रखता था, पर मंत्रिगण राजा की इच्छानुसार ही नियुक्त किये जाते थे। इससे स्वेच्छाचारी और निरंकुश राजा को नियंत्रित करना मंत्रियों और जनता के सामर्थ के बाहर की बात थी। इसके अतिरिक्त राजपुरोहित या मंत्रि के परामर्श या मंत्रणा को मानने के लिये राजा बाध्य नहीं था। मंत्री और पुरोहित राजा के दास या सेवक माने जाते थे। राजा को जनमत की भी चिन्ता नहीं होती थी।

३. राजा का देवत्व—इस काल में राजा को देवता के तुल्य माना जाता था। लोगों की धारणा थी कि राजा ईश्वर का अवतार है। अनेक राजा भी अपने में ईश्वरीय अंश मानते थे। जनता में भी राजभक्ति विद्यमान थी और प्रजा भी राजा को देवता के समान मानती थी। इस प्रकार राजा की शक्ति का "देवी सिद्धान्त" प्रचलित था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस युग में निरंकुश राजतंत्र की प्रधानता हो गई।

४. प्रजावत्सलता का उद्देश्य—यद्यपि राजा निरंकुश और स्वेच्छाचारी होते थे, परन्तु प्रजा की रक्षा करना और जन-कल्याण करना वे अपना धर्म समझते थे। राजा का उद्देश्य प्रजावत्सलता होता था। राजा प्रजाहितैषी और परोपकारी होते थे। दान देने की ओर राजाओं की विशेष अभिरुचि थी। मध्यकालीन असंख्य दान-पत्र इसके प्रमाण हैं। राजा पर समस्त प्रजा की सुरक्षा का भार माना जाता था। कतिपय स्थानों में राजा को "वर्णाश्रम-धर्म पालक" भी कहा गया है। पालवंशी राजाओं के अभिलेखों में राजा को वर्णाश्रम धर्म-पालक तथा धर्म में प्रजा का नियोजक बतलाया गया है। राजा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों में प्रजा के कल्याण का निरीक्षक था। प्रायः राजागण प्रजा को सुखी, समृद्ध और संतुष्ट करना चाहते थे। अधिकतर राजा धार्मिक सहिष्णु, साहित्यानुरागी, दानशील और कला के उदार आश्रयदाता होते थे।

५. जनता में राजनैतिक उदासीनता--इस काल में निरंकुश राजतंत्र था और राजाओं की स्वेच्छाचारिता और निरंकुशवादिता के विकसित होने पर जनता राज्य कार्यों और प्रशासन के प्रति उदासीन हो गयी थी। लोगों में राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति, स्वतंत्रता, राजनैतिक जागरुकता आदि गुण लुप्त हो गये थे और इनके स्थान पर उनमें भीरुता, अवहेलना, परावलम्बन, उदासीनता, दब्बूपन, चापलूसी आदि दुर्गुण आ गये थे। इससे राजनैतिक जीवन खोखला हो गया था।

६. राजनैतिक एकता और समष्टि का अभाव--इस युग की यह एक विशेषता है कि विभिन्न राज्यों में परस्पर वैमनस्य, ईर्षा और द्वेष थे और वे प्रायः गृह-युद्ध में संलग्न रहते थे। इस परिस्थिति ने देश को टुकड़ों में विभक्त कर दिया था। सभी राजा अपने छोटे सीमित राज्य की सुरक्षा में लगे रहते थे। वे किसी संकट-काल में एक संघ में संगठित नहीं हो सकते थे। उनमें राजनैतिक एकता और समष्टि का अभाव रहना था, उनमें राष्ट्रीय भावना नहीं थी। ऐसी दशा में एकछत्र संगठित दृढ़ राज्य स्थापित नहीं हो सकता था।

७. दृढ़ विदेशी नीति और सुरक्षात्मक सीमान्त नीति का अभाव--इस युग के नरेशों ने दृढ़ विदेशी नीति नहीं अपनाई। उन्होंने भारत के बाहर और सीमान्त देशों के नरेशों से परस्पर मैत्री संबंध स्थापित नहीं किये और न उनसे सुरक्षात्मक संधियाँ ही की। भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिये भी वे सदा उदासीन रहे। उन्होंने विदेशियों के आक्रमणों को रोकने के लिये कोई किले-बंदी या सुरक्षा पंक्ति स्थापित नहीं की। कभी कभी धर्म भीरुता और अंध विश्वास के कारण विदेशियों को हटाया नही गया। सिंध में मुलतान में हिन्दुओं का विशाल

सूर्य मंदिर था जिसे वहां मुसलमानों ने अपनी विजय के बाद सुरक्षित रखा था, क्योंकि उससे उन्हें अत्यधिक आर्थिक लाभ होता था। परन्तु जब कभी उत्तरी भारत के कन्नौज के शक्तिशाली प्रतिहार नरेश सिंध के मुस्लिम राज्य पर आक्रमण करने का प्रयत्न करते, तब मुसलमान मुलतान के सूर्य मंदिर को तोड़ने का नारा लगाते थे। मुलतान के इस सूर्य मन्दिर के प्रति प्रतिहारों की अपार श्रद्धा और भक्ति थी। धार्मिकभय और अंधविश्वास के कारण प्रतिहार नरेश आक्रमण की भावना त्याग देते और इस प्रकार मुसलमान उनके आक्रमण से बच जाते थे। इस प्रकार दीर्घकाल तक मुलतान के सूर्य मंदिर, धर्म भीरुता और अंधविश्वास के कारण सीमान्त क्षेत्र मे मुसलमान अपनी शक्ति दृढ़ कर सके और हिन्दुओं के आक्रमणों से बच सके।

८. **प्रशासन में शिथिलता**—इस युग में प्रत्येक बड़े राज्य में केन्द्रीय प्रशासन मौर्य और गुप्त प्रशासन के समान दृढ़ और संगठित नहीं था। प्रांतीय प्रशासन में सामन्तों का अधिकार था। वे अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से शासन करते थे। उन पर केन्द्रीय शासन की दृढ पकड़ का प्रभाव नहीं था। राज्य की सुरक्षा और सैन्य शक्ति इन सामन्तों पर निर्भर होने से सैनिक संगठन भी दुर्बल हो गया था। राज्य में बड़े-बड़े सामन्तों के अतिरिक्त छोटे-छोटे जागीरदार भी थे। ये सब राज्य की समस्त राजनैतिक शक्तियों के संगठित होने में बाधक थे। इसके अतिरिक्त प्रशासन का भार राजा पर होता था। अयोग्य और दुर्बल राजा से राजनैतिक अव्यवस्था फैलती थी और विघटन तथा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन प्राप्त होता था। इन सब से प्रशासन में शिथिलता उत्पन्न हो गयी थी, उसमें कसावट और दृढ़ता का अभाव था।

९. **सामन्त शाही**—इस युग में प्रशासन प्राय: सामन्तवादी था। सारा राज्य विभिन्न प्रकार की जागीरों में विभक्त था। इन जागीरों के स्वामी सामन्त कहलाते थे। वे प्राय: राजा के कुल, गौत्र या जाति के होते थे। सामन्तों के विभिन्न वर्ग थे और प्रत्येक वर्ग के शिष्टाचार तथा व्यवहार के निर्धारित नियम थे। ये सामन्त युद्ध के समय अपने राजा को सेना देकर सहायता करते थे और वार्षिक कर तथा उपहार भी देते थे। राज्य के केन्द्र में राजा स्वयं शासन करते थे और चारों ओर प्रांतों में अधीनस्थ छोटे सामन्त शासन करते थे। राज्य के केन्द्रीय और प्रान्तीय प्रशासन के श्रेष्ठ और ऊँचे पदों पर सामन्त ही नियुक्त होते थे। इस प्रकार प्रान्तीय प्रशासन पर सामन्तों का अधिकार था। जब तक राजा योग्य, दृढ़ और शक्तिशाली रहता, प्रशासन व्यवस्थित और मजबूत रहता था। पर राजा के दुर्बल, विलासी और अयोग्य होने पर, सामन्त अपनी सत्ता दृढ़ करके, धीरे-धीरे पूर्ण स्वतंत्र होकर अपना प्रथक राज्य स्थापित कर लेते थे।

१०. **सैन्य संगठन**—पूर्व मध्यकालीन युग में युद्ध और संघर्ष में फंसने के भय से तथा राज्य-विस्तारवादी नीति से प्रत्येक राज्य में विशाल सेना होती थी। पर राजा की व्यक्तिगत सेना कम होती थी। प्राय: सामंतों की सम्मिलित सेना ही राज्य की सेना होती थी। नियमित सैनिक प्रशिक्षण प्रथा नहीं होती थी। सैनिकों में रण कुशलता, दक्षता,

अभ्यास, प्रशिक्षण और अनुशासन का अभाव रहता था। सेना में पैदल, घुड़सवार और हाथी होते थे। अश्वारोही सेना और हाथी अच्छे होते थे। नवीन रण-पद्धति और अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग नहीं किया जाता था। सेना में हाथियों की संख्या अधिक होती थी और वे आक्रमण और युद्ध के समय आगे रखे जाते थे। घावों से व्याकुल होने या उन्मत्त होने पर हाथी अनेक बार अपने स्वयं के पक्ष की सेना को ही रौंद डालते थे। इस युग की यह घातक प्रणाली थी। युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने के हेतु पुरस्कार दिये जाते थे। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र के समय कमलपाल नामक वीर योद्धा को रण-क्षेत्र में उसकी वीरता के हेतु "राजपट्ट" का पदक दिया गया था। मुसलमानों से युद्ध करने में वीरगति को प्राप्त होने वाले सैनिकों के परिवार को राजा की ओर से, उसकी वीरता और बलिदान के स्मरणार्थ मासिक धन या वृत्ति दी जाती थी। एक चन्देल अभिलेख में इस प्रकार की मासिक वृत्ति या पेंशन का उल्लेख है। राजा के मंत्रि-मण्डल में सेनापति का भी मुख्य स्थान रहता था। वह युद्ध-मंत्री के समान होता था। उसकी सहायता के लिये अन्य अधिकारी होते थे। बंगाल के पाल नरेशों और दक्षिण के चोल राजाओं के पास इस युग में एक जल सेना भी थी। जल सेना का जिम्मेदार पदाधिकारी नौबल होता था। राज्य की आय का प्रायः आधा भाग सेना पर व्यय होता था। इस युग में राष्ट्रीय सुरक्षा में दुर्ग का बड़ा महत्व था। राज्य में और राज्य की सीमाओं पर दुर्ग बनाये जाते थे। इनकी सुरक्षा का भार "कोटपाल" या "दुर्गपाल" नामक विशेष अधिकारियों पर होता था।

११. **युद्ध-प्रियता**—इस युग में राजा लोग विशेषकर राजपूत युद्धप्रिय होते थे और युद्ध करना वे अपना कर्तव्य मानते थे। इससे युद्ध और संघर्ष परम्परागत हो गये थे। युद्ध और उनके परिणाम भयंकर होते थे। कई बार युद्ध के समय ग्राम और नगर विजेता सेनाओं द्वारा जला दिये जाते थे तथा पराजित नरेश व उसके सैनिकों को बन्दी बना लिया जाता था। राजपूत वीर योद्धा होते थे और युद्धकला में वे बड़े निपुण होते थे। रण-क्षेत्र में सैनिकों को प्रेरणा और प्रोत्साहन देने के लिये कवि, चारण और भाट होते थे।

१२. **न्याय-दान की व्यवस्था**—इस काल में राजा न्याय करना अपना धर्म समझते थे। वे राजसभा में अभियोगों को सुनते थे और धर्मशास्त्रों तथा परम्पराओं के अनुसार न्याय करते थे। राजा ही न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता था और न्याय करता था। निरकुश राजाओं की राजसभा में उनकी आज्ञा या आदेश ही अंतिम निर्णय माने जाते थे। सेन राजाओं के अभिलेखों के अनुसार न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी महा-धर्माध्यक्ष होता था। ग्रामों में ग्राम-पंचायत या ग्राम परिषद् न्याय करती थी। दंड-विधान कठोर था। साधारण अभियोग के लिये जुर्माना किया जाता था।

१३. **राज्य की आय-व्यय के स्रोत**—भूमि कर से, सामन्तों और जागीरदारों से प्राप्त वार्षिक कर, उपहार आदि से, अभियुक्तों पर आर्थिक दंड से, व्यापार और उद्योग धंधों पर, आयात और निर्यात की वस्तुओं पर लगाये गये विभिन्न करों से, जंगल तथा खदानों की वस्तुओं पर लगाये करों से, राज्य की आय होती थी। राज्य

में कभी-कभी असामयिक कर भी लगाया जाता था। भूमिकर को राजभोग कर, उपरि कर, आदि कहा जाता था और यह कृषक की उपज का छठा भाग होता था। अनेक स्थानों पर भूमि-कर अनाज के रूप में लिया जाता था। पर नवीं और दसवीं सदी से भूमि कर नगद लिया जाने लगा था। उपज के छठे भाग के अतिरिक्त कृषकों से नगद कर भी लिया जाता था। भूमि-कर समयानुसार परिवर्तित होता रहता था। सिंचाई तथा ऊसर खेत पर भी कर लगाये जाते थे। भूमि कृषकों के पास थी और वे सीधे राजा को कर देते थे और राज कोष में जमा कर देते थे।

व्यापारिक वस्तुओं और आयात-निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता था। इसे शुल्क कहते थे और इसके वसूल करने वाले अधिकारी को "शौल्किक" कहते थे। लोहे तथा नमक की खानों तथा अन्य प्रकार की खदानों से निकलने वाली वस्तुओं पर चुंगी लगाई जाती थी। घोड़ों की बिक्री पर, पान व तेल उत्पन्न करने वालों पर लगाये करों का उल्लेख अभिलेखों में हुआ है। एक पीपा तेल बेचने पर एक छोटा माप भर तेल देना पड़ता था। तमोली को कर द्रम (पैसा) के रूप में देना पड़ता था। शराब बेचने वाला प्रत्येक पीपे शराब पर प्रति मास कुछ द्रम कर देता था। तेली प्रत्येक कोल्हू पर एक पलिका या करछी तेल कर के रूप में देता था। किराणा माल से लदी बैलगाड़ी पर दो रुपया कर लिया जाता था। राज्य में दौरा करने वाले अधिकारियों को विष्टी या बेगार लेने का अधिकार था। स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं भी सार्वजनिक कार्यों के लिये कर लगाती थीं। राज्य में सभी व्यक्तियों को कर देना आवश्यक था। पर श्रोत्रिय, दानग्राही ब्राह्मण, अपंग, अनाथ और निस्सहाय व्यक्ति कर से मुक्त होते थे। दुर्भिक्ष के समय प्रजा की सहायता की जाती थी और कभी-कभी कर माफ कर दिये जाते थे।

राज्य की आय का अधिकांश भाग युद्धों और राजवंश के भोग विलास पर व्यय होता था। परन्तु व्यय के प्रमुख चार भाग थे—प्रथम शासकीय कर्मचारियों और अधिकारियों का वेतन, द्वितीय राष्ट्रीय और सार्वजनिक कार्य, तृतीय शिक्षा, दान आदि कार्य और चतुर्थ सेना, युद्ध, दुर्ग और राजवंश पर व्यय। राजाओं और शासकों का ध्यान सार्वजनिक हितों और लोक-कल्याण के कार्यों की ओर अधिक था और इस पर वे धन व्यय करते थे। धर्मशाला, सदावर्त पर धन व्यय होता था, मंदिरों, देवालयों, बिहारों, और मठों का निर्माण होता था, विशाल संख्या में किले भी बनाये जाते थे। बिहारों को धन और भूमि दान में दी जाती थी। नालन्दा और विक्रमशीला के बिहारों को दिये गये दान इसके प्रमाण हैं। व्यक्ति के स्थान पर शिक्षा संस्थाओं को, मठ, मंदिर, बिहार आदि को दान दिया जाता था। कभी-कभी विशिष्ट चुंगी या कर को शासक मंदिर में पूजा निमित्त दिलवा देते थे। शिक्षण संस्थाओं और मंदिरों की समस्त व्यवस्था दान के धन से होती थी। राजकोष में स्थायी रूप से धन जमा रहता था। राजकीय ऋण की कल्पना उस समय नहीं थी। मुसलमान आक्रान्ता और आक्रमणकारियों द्वारा हिन्दू राजाओं के राजकोष की बार-बार की लूट इसके प्रमाण हैं कि उस समय स्थायी धन सम्पन्न कोष होते थे।

१४. प्रांतीय शासन—सुव्यवस्थित प्रशासन के लिये समस्त राज्य भुक्तियों

(प्रान्तों), विषयों (जिलों) और ग्रामों में विभक्त था। इन सब में एक के ऊपर एक अधिकारी होते थे। भुक्ति के सर्वोच्च अधिकारी को राज स्थानीय, कुमारामात्य, भोगपति, उपरिक तथा गोप्ता कहा जाता था। यह आधुनिक राज्यपाल या प्रान्तपति के समान होता था और राजवंश का व्यक्ति या प्रतिष्ठित सामन्त होता था। प्रान्तपति को राजा अपने हस्ताक्षर के साथ आज्ञापत्र दिया करता था जिसका पालन करना प्रान्तपति के लिये नितान्त आवश्यक था। "विषय" या जिले का सर्वोच्च अधिकारी "विषय पति" था जो आधुनिक कलेक्टर या जिलाधीश के समान होता था। उसके अधीन प्रशासन के हेतु अनेक अधिकारी व कर्मचारीगण होते थे, इनमें संघपति और मुख्य लेखक विशेष थे। जिले में लेखों या रिकार्ड के लिये पुस्तपाल नामक अधिकारी होता था। विषयपति "विषय" या जिले में शाँति, व्यवस्था रखता था, भूमिकर और अन्य करों की वसूली करता था, पर उसके पास न्याय का अधिकार नहीं था। प्रत्येक "विषय" ग्रामों में विभक्त थे और ग्राम प्रशासन की स्वतंत्र और नीचे की इकाई थी। दक्षिण भारत में जिले ग्राम संघों में विभाजित होते थे। ग्राम के सर्वोच्च अधिकारी को ग्रामपति, ग्रामिक या महत्तर कहा जाता था। इस युग में नियमित स्थायी नौकरशाही थी। अधिकारियों और कर्मचारियों के लिये "कायस्थ" शब्द का प्रयोग किया जाता था। नगद वेतन की अपेक्षा भूमि दी जाती थी।

केन्द्र में प्रशासन राजा स्वयं देखता था। उसकी सहायता और सहयोग के लिये मंत्री होते थे। वे अपने परामर्श से राजा को उचित और अनुचित का ज्ञान कराते थे। मंत्रियों की संख्या के लिये कोई निर्दिष्ट विधान नहीं था। उनकी संख्या, नियुक्ति और पद की अवधि राजा की स्वेच्छा पर निर्भर रहती थी। कुछ अभिलेखों में "राजामात्य" का उल्लेख प्राप्त होता है। यह शब्द संभवत: प्रधान मंत्री के लिये उपयुक्त किया गया हो। मंत्रियों का कार्य-क्षेत्र शासन में ही सीमित न था, किन्तु उनका कार्य नवीन नीति का निर्धारण करना, तथा उसे कार्यान्वित करना होता था। राजनैतिक और सांस्कृतिक विषयों का चिन्तन और रक्षण भी उनका परम धर्म था। पर राष्ट्रनीति का समुचित संचालन भी उनके शासन क्षेत्र में था। धर्म की रक्षा और धार्मिक कार्यों के हेतु राजपुरोहित होते थे जो मंत्रियों के समान होते थे। युद्ध तथा संधि और शांति के कार्यों के लिये तथा परराष्ट्र नीति संचालन के लिये "महासंधि विग्रहक" नामक मंत्री होता था। इसकी सहायता के लिये "दूतक" नामक पदाधिकारी होता था। केन्द्र में युद्ध विभाग, परराष्ट्र विभाग, राजस्व विभाग, लेख्य विभाग, वाणिज्य विभाग, न्याय विभाग, राजप्रासादों की देखरेख का विभाग, पुलिस और गुप्तचर विभाग, धर्म विभाग आदि होते थे। इनके अलग-अलग पदाधिकारी और कर्मचारीगण होते थे।

१५. **स्थानीय स्वशासन**—इस युग में स्थानीय स्वशासन प्रणाली भी थी। विभिन्न राजवंशों के उत्कर्ष और पतन तथा राज्य के केन्द्रों में सत्ता का हस्तान्तरण ग्रामों में स्थानीय प्रशासन और जीवन को प्रभावित न कर सका। बड़े नगर या पुर में स्थानीय प्रशासन व्यवस्था थी। वहाँ अधिकांश गैर शासकीय व्यक्ति और कर्मचारी कार्य करते थे। नगर का प्रशासन संभवत: एक कार्यकारिणी द्वारा संचालित होता था। इस कार्यकारिणी के सदस्य प्रतिनिधि के समान निर्वाचित होते थे और संभवत: इनकी एक

वर्ष की कार्य-अवधि होती थी। ग्रामों में स्थानीय प्रशासन का कार्य ग्राम पंचायतें करती थीं। ग्राम का एक मुखिया होता था जो ग्राम पंचायत के कार्यों की देखभाल करता था। प्रजातंत्र प्रणाली के आधार पर वह ग्रामसभा या पंचायत संगठित करता था। शिक्षा, तालाब, बाँध, सिंचाई, मंदिर, देवालय, सुरक्षा आदि के लिये उपसमितियाँ होती थीं। सार्वजनिक कार्यों के लिये राजा से सहायता तथा दान प्राप्त होता था। ग्राम पंचायत भूमि कर वसूल करती थी, दीवानी और फौजदारी मुकदमों में न्याय करती थीं तथा लोगों की सुख-सुविधा के अन्य कार्य करती थीं। शिक्षा के प्रसार में भी ग्राम पंचायत या ग्रामसभा योग देती थी और मंदिरों में पाठशालाएँ लगाई जाती थीं। पाल नरेश के एक अभिलेख में दस ग्रामिक शब्द प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि संभवत: कई ग्रामों या दस ग्रामों को मिलाकर ग्राम पंचायत से भी कोई बड़ी संस्था निर्मित की जाती हो और उसका अधिकारी दश ग्रामिक हो।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि निरन्तर युद्धों और संघर्षों में संलग्न रहने के कारण तत्कालीन नरेश ऐसी दृढ़, स्थायी और सुनिश्चित प्रशासन व्यवस्था का विकास न कर सके जिससे दीर्घकालीन शांति और सुरक्षा स्थापित हो सके।

सामाजिक जीवन

इस युग के सामाजिक जीवन में विभाजन और विघटन की प्रवृत्ति थी। लोगों में आचार-विचार की सकीर्णता, रूढ़िवादिता, परम्परावाद, अनुदारता, असहिष्णुता, संग्रह और संरक्षण की प्रवृत्ति थी। हिन्दू समाज की प्राचीन कालीन आत्मीयकरण की प्रवृत्ति लुप्त हो गयी थी, प्राचीन व्यापकता और प्रगतिशीलता मद हो गयी थी, जीवन के प्रवाह और प्रसार की अपेक्षा उसमें स्थिरता, अवरोध, असावधानता और प्रमाद का बाहुल्य था। समाज का संगठन दृढ़ और संकुचित हो गया था तथा लोग सीमित क्षेत्र में रहने लगे थे।

१. **वर्णाश्रम व्यवस्था**—वर्णाश्रम धर्म अभी भी समाज का आधार माना जाता था। पूर्व मध्ययुग के लेखों में राजाओं को वर्णाश्रम व्यवस्था का पुष्टपोषक अथवा वर्णाश्रम धर्मपालक कहा गया है। नरेशों ने वर्णाश्रम व्यवस्था को बनाये रखा। पाल लेखों में धर्मपाल तथा विग्रहपाल राजाओं को जाति-व्यवस्था के रक्षक कहा गया है। उड़ीसा के राजा क्षेमांकरदेव को "वर्णाश्रम परमोपासक" पदवी से विभूषित किया गया था। दसवीं सदी तक प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था पर लोगों की विशेष श्रद्धा थी और वह समाज का मूल आधार मानी जाती थी, परन्तु धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन होते गये और नये वर्ग और जातियों का प्रादुर्भाव हुआ।

२. **नवीन वर्गीकरण और जातियों की विविधता**—अनेक कारणों से समाज में नये वर्ग बनने लगे और कई जातियों तथा उपजातियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये जातियाँ जन्म, निवास-स्थान, उद्योग-धंधे, विवाह, खान-पान के भेद-भाव, रीति रस्मों धार्मिक संस्कारों तथा अन्य ऐसे ही तत्वों के कारण बन गयीं। जन्म स्थान और निवास स्थान के परिवर्तन होने से उपजातियाँ बनीं, जैसे सरयू नदी के तट पर निवास करने वाले ब्राह्मण सरयूपारी, सरस्वती नदी के तट पर निवास करने वाले ब्राह्मण सारस्वत,

कन्नौज के ब्राह्मण गौड़ देश में निवास करने के कारण गौड़ ब्राह्मण तथा सिंध में शकद्वीप के निवासी शाकद्वीपी ब्राह्मण कहलाये। बारहवीं सदी तक सिंध के शाकद्वीपी ब्राह्मण वर्तमान बिहार प्रान्त तक चले गये थे। प्रादेशिक सीमाओं के अनुसार भी अनेक उपजातियां बन गयीं, जैसे कन्नौजी, कान्यकुब्ज, तेलुगु, कोंकणस्थ, मालवी ब्राह्मण आदि। गौत्र, प्रवर और शाखा से भी ब्राह्मणों में उपजातियाँ हो गयीं। कुटीर उद्योग और पैतृक व्यवसाय से भी स्थायी जातियाँ बन गयीं, जैसे लोहे के कार्य करने वाले लोहार, स्वर्ण का काम करने वाले सोनार, चर्म का कार्य करने वाले चमार आदि। कालान्तर में उद्योग-धंधों के आधार पर भी अनेकानेक जातियाँ और उपजातियाँ निर्मित हो गयीं। व्यवसाय के आधार पर इस युग में समाज में कायस्थ नामक एक नवीन जाति का उत्कर्ष हुआ। कायस्थ जाति का कार्य प्रशासकीय सेवा और लेखन था। आठवीं सदी तक कायस्थ शब्द लेखक का कार्य करने वाले कर्मचारी के लिये प्रयुक्त होता रहा, पर बारहवीं सदी में कायस्थ एक समूह और जाति के रूप में आ गये।

क्षत्रियों और वैश्यों में भी इसी प्रकार से उपजातियाँ बन गयीं। अब क्षत्रिय राजपूत कहे जाने लगे थे। क्षत्रियों में इस समय तक लगभग ३६ उपजातियाँ बन गयी थीं।

३. **जातियों के व्यवसाय**—यद्यपि विभिन्न जातियों के व्यवसाय प्रायः निश्चित थे, परन्तु फिर भी एक ही वर्ण के और जाति के लोग अलग-अलग व्यवसाय भी करते थे। धर्म में भक्ति की प्रधानता होने से मंदिरों का अधिकाधिक निर्माण हुआ; इससे अधिकांश ब्राह्मणों ने पुरोहित से पुजारी का काम अपना लिया। धार्मिक कार्य, अध्ययन, अध्यापन, पूजा-उपासना, यज्ञ-अनुष्ठान, धार्मिक संस्कार आदि कार्य करने के अतिरिक्त ब्राह्मण सेनापति का काम भी करते थे और प्रशासन में क्षत्रियों के समान भाग लेते थे। वे कर्मचारी बनकर कर भी वसूल करते थे। समाज में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। क्षत्रिय या राजपूत भी समाज में सम्मानित होते थे। यद्यपि अधिकांश राजपूत कृषि कार्य करते, सैनिक बनते थे, पर कई ऊंचे प्रतिष्ठित पद पर रहकर प्रशासन संचालन भी करते थे।

क्षत्रियों का क्षात्र धर्म था युद्ध करना और प्रजा तथा अनाथों की रक्षा करना। अनेक क्षत्रिय शासक और राजा बड़े विद्वान और विद्यानुरागी होते थे। मालवा के राजा भोज परमार और कन्नौज के गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्रदेव बड़े प्रख्यात पंडित और साहित्य के संरक्षक थे। वैश्य व्यापार और वाणिज्य के अतिरिक्त कृषि कार्य भी करते और प्रशासन में भाग भी लेते थे। वैश्य अधिकारी, राजमंत्री, सेनापति, व्यापारी आदि होते थे। पूर्व मध्यकालीन लेखों में संस्था और श्रेणियों का उल्लेख होता है। श्रेणियों का महत्व था। एक ही व्यवसाय करने वाले अपने हितों की रक्षा के लिये श्रेणी में संगठित होते थे। दैनिक आवश्यकताओं की अभिवृद्धि के कारण ही व्यवसाय करने वाले वैश्यों का स्थान समाज में अधिक सम्मानित हो सका था, क्योंकि वाणिज्य-व्यवसाय पर इनका एकाधिकार था। शूद्र वर्ग के लोग भी समाज में बहुसंख्यक थे। अनुलोम और प्रीतिलोम विवाह के कारण तथा कर्मानुसार समाज में शूद्रों की अनेक जातियां बन गई थीं। जीविका उपार्जन

के लिये परिस्थिति के अनुसार शूद्रों ने विविध कार्य अपना लिये थे। वे कृषि, मजदूरी, विभिन्न धंधे और शिल्पकला के काम करते थे। समाज में डोम, चमार, नट, चांडाल, अभोटी आदि अछूत जातियां भी थीं। घृणित और हीन कार्य करने वाली जाति के लोग अस्पृश्य या अछूत कहे जाते थे। और ये पंचम वर्ग माने जाते थे तथा गांव के बाहर रहते थे।

४. जाति-व्यवस्था की जटिलता और संकीर्णता—अनेक जातियों और उपजातियों के कारण उनकी जटिलता और अपरिवर्तनशीलता में वृद्धि हुई। धर्म, संस्कार और रक्षा के हेतु उनके बंधन और नियंत्रण अधिकाधिक कठोर हो गये। उनमें रूढ़िवादिता, अनुदारता और वर्जनशीलता आ गई थी। इससे जातियों में नवीन तत्वों का प्रवेश निषिद्ध हो गया। भारतीय समाज विदेशियों को अपने में आत्मसात नहीं कर सका। फलतः समाज संगठित नहीं किया जा सका। उसकी व्यापकता और प्रगतिशीलता मन्द हो गई, जड़ता और संकीर्णता बढ़ गई और इससे राष्ट्रीय भावना के विकास में गहरी बाधा पहुँची।

५. आहार और वेशभूषा—भोजन में सात्विकता और सादगी थी। चांवल, दाल, साग, सब्जी, फल, दूध-दही तथा विविध मिष्ठान्न प्रमुख भोजन था। साधारण और निम्न वर्ग के लोग ज्वार, मक्का, बाजरा, जो और कोदो का उपयोग करते थे। मांस, मछली और मदिरा का उपयोग भी होता था। बंगाल में शाक्य मत के बाहुल्य के कारण और तंत्र-मंत्र के प्रचार से मांस और मदिरा-पान पर अधिक बल दिया जाता था। राजपूतों में सुरापान और अफीम का अधिक उपयोग होता था। सर्व साधारण के लिये मदिरा बाजार में बेची जाती थी। कभी-कभी स्त्रियां भी मदिरा बेचती थीं। धूमपान प्रचलित नहीं था। आचार की शिथिलता और बाह्य प्रभाव के कारण जनसाधारण में अपेय तथा अखाद्य वस्तुओं का उपयोग होने लगा था।

लोगों की वेश-भूषा सादी थी। धोती, चादर और सिले हुए वस्त्रों का उपयोग होता था। रेशमी, ऊनी तथा सूती वस्त्र काम में लिये जाते थे। वेश-भूषा में रंगों की विविधता होती थी। पगड़ी प्रचलित थी। पुरुष धोती का उपयोग करते थे और स्त्रियां साड़ी का। नारियाँ सौन्दर्य वृद्धि के लिये शृंगारप्रिय थीं। कुकुंम और काजल लगाने की प्रथा थी। स्त्रियों को आभूषण प्रिय थे और वे कर्णफूल, हार, भुजबन्द, करधनी, कंगन, नूपुर आदि विविध प्रकार के रत्न-जटित और सादे कलापूर्ण आभूषण धारण करती थीं।

६. सामाजिक संस्कार—जन्म से मृत्यु पर्यन्त विभिन्न संस्कार करने की प्रथा समाज में प्रचलित थी। दान पत्रों और प्रशस्तियों में जात कर्म, नामकरण, उपनयन, विवाह, श्राद्ध आदि संस्कारों का उल्लेख है। नामकरण और श्राद्ध के समय भूमि दान में दी जाती थी। श्राद्ध पक्ष की सर्वपित्री अमावश्या को पर्वण श्राद्ध करके दान दिया जाता था।

७. विवाह प्रणाली—विवाह एक पवित्र धार्मिक बंधन और जीवन का एक प्रधान संस्कार माना जाता था। सवर्ण सजातीय विवाह होते थे। कभी-कभी अन्त-

धार्मिक और अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे । ब्राह्मण अन्य वर्ण की कन्या से अनुलोम विवाह कर लेते थे । पाल तथा सेन राजाओं के लेखों में ऐसे उल्लेख हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और ब्राह्मण कन्या से विवाह कर लेते थे । पर शूद्र कन्या से अनुलोम विवाह वर्जित माना गया था । यद्यपि विवाह वयस्क अवस्था में होते थे, परन्तु बाल विवाह की प्रथा प्रचलित हो चली थी । विधवा-विवाह निषिद्ध था, पर नीची और छोटी जातियों में विधवा विवाह प्रचलित था । क्षत्रियों में कन्या हरण की प्रथा और राज-परिवारों में स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी । विवाह के समय धार्मिक और सामाजिक संस्कार और कार्य विशिष्ट गौरव और शान से होते थे । बहु-विवाह प्रथा विद्यमान थी । दो कन्याओं या स्त्रियों से विवाह साधारण बात थी । गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र की चार पत्नियां थीं तथा गांगेयदेव चेदि की सौ । राजपूतों मे कन्या का जन्म शुभ नहीं माना जाता था, क्योंकि कन्या की सुरक्षा, विवाह और दहेज की अनेक कठिनाइयाँ होती थीं । फलतः कन्याओं को उत्पन्न होते ही मार डाला जाता था । यह बालहत्या राजपूतों में ही प्रचलित थी, संभवतः शेष समाज में इसका पालन पूर्ण रूप से नहीं होता था ।

८. **स्त्रियों की दशा**—समाज में स्त्रियों का सम्मान होता था । उनकी शिक्षा की व्यवस्था होती थी । ललित कलाओं में स्त्रियों की अभिरुचि होती थी । कुलीन सम्पन्न परिवारों की स्त्रियाँ साहित्य और दर्शन का ज्ञान रखती थीं । उज्जैन के कवि राजशेखर की पत्नि अवन्ति सुन्दरी, महेश्वर (मालवा) के मंडनमिश्र की पत्नि सरस्वती, भास्कराचार्य की कन्या लीलावती आदि अपनी विद्वता के लिये प्रसिद्ध थीं । इस युग में इन्द्रलेखा, विज्जका, शीला, शुभद्रा, पद्मश्री, मदालसा, लक्ष्मी, आदि प्रसिद्ध कवियत्री थीं । राज कन्याओं को अस्त्र-शस्त्र और घोड़े की सवारी की शिक्षा भी दी जाती थी । इस काल में कतिपय रानियां प्रशासन और युद्ध में दक्ष थीं । दक्षिण भारत में सोलंकी नरेश विक्रमादित्य की बहिन अक्कादेवी चार प्रदेशों की शासिका थीं । उसने सेना का नेतृत्व करके एक दुर्ग पर आक्रमण कर उसे घेर लिया था । कर्नाटक में महिलाएं प्रान्तीय शासक और ग्राम-प्रमुख होती थीं । स्त्री वर्ग में वीरता और साहस का अभाव नहीं था । स्त्रियों ने युद्ध में लड़ने के लिये या सामग्रियां एकत्र करने के लिये अपने आभूषण तक दे दिये थे। उच्चवर्गों की स्त्रियों में संगीत और नृत्य सर्वप्रिय आमोद-प्रमोद थे । समाज में पर्दा प्रथा नहीं थी, पर सती प्रथा और जौहर प्रथा का अधिक प्रचार था । पति के देहावसान के पश्चात् विधवाओं का जीवित रहना पाप समझा जाता था । इसलिये अनेक स्त्रियां अपने पति की चिता पर जलकर सती हो जाती थीं । राजपरिवारों में तो स्त्रियां बड़ी संख्या में सती होती थीं । कभी-कभी स्त्रियां स्वेच्छा से सती होती थीं, तो कभी-कभी समाज उन्हें सती होने के लिये बाध्य करता था । दक्षिण भारत में देवदासी प्रथा प्रारम्भ हो गई थी । मंदिरों में देवताओं को समर्पित कन्याएं देवदासी बनकर मन्दिरों में पूजा के समय नृत्यकरती और गाती थीं तथा गुप्त रूप से कभी कभी वैश्यावृत्ति भी करती थीं । समाज में विशेषकर नगरों में वैश्यावृत्ति प्रचलित थी । धीरे-धीरे इस काल में स्त्रियों की पराधीनता और पर-

वशता बढ़ रही थी। यह मत प्रबल हो रहा था कि पतिभक्ति स्त्री के जीवन का धर्म है और उसके अधिकार सीमित हैं। राजपूत स्त्रियों में नारित्व के उच्च आदर्श थे, उनमें आचार-विचार की शुद्धता और पवित्रता थी, वे अपनी प्रतिष्ठा, पवित्रता और सतीत्व को बनाये रखती थीं। वे विदेशी म्लेच्छ या यवन विजेताओं के हाथों से दूषित होने की अपेक्षा, "जौहर" कर (अग्नि में जीवित जलकर) अपने पतिव्रत धर्म और सतीत्व की रक्षा करती थीं।

९. **मनोरंजन**—समाज में विभिन्न प्रकार के आमोद-प्रमोद प्रचलित थे। उत्सव मनाना, मेला लगाना, धार्मिक अवसरों पर रथ-यात्रा और जुलूस, विशिष्ट अवसरों पर संगीत, नृत्य और अभिनय, दीपावली पर अभिनय-आयोजन, शतरंज, जुआ, नटकार्य, पानी के खेल आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। स्थान-स्थान पर पशु-मेला भी होता था। शतरंज में उस समय हाथी और रथ का उपयोग होता था। जुए के खेल पर कर लगता था। व्यायाम तथा नट कार्य भी लोकप्रिय थे और शासन की ओर से एक अधिकारी होता था जो व्यायाम सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करता था।

१०. **चरित्र और आचरण**—इस युग में भारतीय अपने उज्वल चरित्र, पवित्र श्रेष्ठ व्यक्तित्व, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और न्याय के लिये प्रसिद्ध थे। पूर्व मध्यकाल में मुस्लिम यात्रियों ने भारतीयों के इन गुणों का वर्णन किया है। इस विषय में अलइदरिसी का मत तो स्पष्ट है। परन्तु बहुपत्नि प्रथा, तांत्रिक-आचार-विचार, शाक्त सम्प्रदाय और अंध विश्वास, मांस-मदिरा के प्रचुर प्रयोग ने लोगों का नैतिक स्तर, चरित्र और आचरण निम्न कर दिया था। उच्च, श्रेष्ठ आदर्श और सदाचार का स्तर पूर्व युग की अपेक्षा नीचा हो गया था। शिल्पियों द्वारा रतिशास्त्र के तथ्यों को पाषाण पर उत्तीर्ण कर प्रदर्शित करना, मन्दिरों पर पाषाण की नग्न प्रतिमाएं तथा नर-नारी की मिथुन-रत मूर्तियाँ आचरण और व्यक्तित्व के निम्नस्तर का परिचायक हैं। बारहवीं सदी में देवपारा अभिलेख में विजयसेन नामक सेन नरेश ने ग्राम की ललनाओं के अबोधपन तथा नगर के जीवन से अनभिज्ञता का परिचय कराया है।

१०. **धर्म परिवर्तन और शुद्धि**—पूर्व मध्यकालीन युग में इस्लामके अनुयायियों ने भारत पर निरन्तर आक्रमण किये। इन इस्लाम के अनुयायी आक्रान्ताओं को तुरुष्क, म्लेच्छ और मुल्ला भारत के तत्कालीन लेखों में कहा गया है। यद्यपि इस समय भारतीयों में राष्ट्रीयता का अभाव था, फिर भी हिन्दू राज्य की मुसलमान आक्रमणकारी से रक्षा करने के लिये "तुरुष्क दंड" नामक कर लगाया जाता था। इससे उपलब्ध धन द्वारा सुरक्षा और युद्ध के साधन जुटाये जाते थे। अनेक बार हिन्दू राजाओं के परास्त होने पर कई लोग आक्रमणकारियों की बर्बरता और क्रूरता से बचने के लिये इस्लाम धर्म ग्रहण कर मुसलमान हो जाते थे। इस विकट और विषम परिस्थिति का सामना करने के लिये इस युग के प्रसिद्ध विद्वान और स्मृतिकार देवल ने इस्लाम धर्म में दीक्षित हो जाने वाले हिन्दुओं को शुद्ध करके पुनः हिन्दू धर्म और समाज में ले लेने का विधान प्रस्तुत किया। देवल ने महिलाओं

की शुद्धि और सुरक्षा का भी विधान प्रस्तावित किया । उसके मतानुसार किसी हिन्दू स्त्री के साथ विधर्मी द्वारा बलात्कार किये जाने पर भी चन्द्रायणव्रत से शुद्धि हो जाती है । अन्य विधि-विद्वान ब्रह्मत्यान का भी कथन है कि म्लेच्छों द्वारा दास-बना लेने पर यदि हिन्दू गौ-हत्या भी करे तो भी उसे प्रायश्चित कराकर ब्राह्मण धर्म में पुनः लिया जा सकता है । स्मृतिकारों के इस प्रकार के मत की पुष्टि नवीं शताब्दि के मुस्लिम विद्वान और लेखक अल-बिदौरी के विवरण से भी होती है । इसके कथनानुसार नवीं सदी में विभिन्न प्रांतों से हिंदुओं के प्रत्याक्रमण के परिणाम स्वरूप अनेक मुसलमानों को विवश हो पीछे हटना पड़ा और उनमें से अनेक मूर्ति-पूजक (हिंदू) हो गये । नवासशाह ने भी हिन्दू पुरोहित के परामर्श और प्रभाव से इस्लाम मत को त्याग दिया । परन्तु कालान्तर में हिन्दू समाज व धर्म की रक्षार्थ अन्तर्जातीय विवाह और भोजन निषिद्ध हो रहे थे, वर्ण और जाति-व्यवस्था के नियम भी अधिकाधिक जटिल हो रहे थे । ऐसी दशा में ग्यारहवीं सदी में और उसके बाद ब्राह्मण वर्ग और उनके समर्थकों ने उन हिन्दुओं का जो मुसलमान होने पर पुनः हिन्दू हो गये थे, विरोध किया । समाज में शुद्ध होकर फिर हिन्दू हुए व्यक्तियों के स्तर और वर्ग की भी विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी । इन कारणों से शुद्धि और धर्म-परिवर्तन के विधान को हिन्दू धर्म व समाज में प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ ।

आर्थिक जीवन

मुस्लिम आक्रमणकारियों और विजेताओं द्वारा भारत से लूटकर सहस्त्रों क्विटल स्वर्ण, चांदी, मोती, हीरे, रत्न, नगद धन आदि के विदेशों में ले जाने से, अरबों के यात्रा-विवरण और तत्कालीन अभिलेखों और दान पत्रों से विदित होता है कि भारतवर्ष पूर्व मध्यकाल में अत्यन्त ही समृद्धशाली और सम्पन्न देश था ।

ग्राम और नगर—देश में ग्रामों की संख्या अत्यधिक थी । अधिकांश लोग ग्रामों में ही निवास करते थे । गांवों में कृषकों की प्रधानता थी । वे विभिन्न प्रकार की फसलें उत्पन्न करते थे । ग्राम प्रायः स्वावलंबी और आत्म निर्भर होते थे । प्रत्येक ग्राम में तीन प्रकार की भूमि होती थी—गोचर, बंजर तथा उपजाऊ । गोचर भूमि में विभिन्न प्रकार की घांस होती थी जो विविध प्रकार के पशुओं के उपयोग में आती थी । प्रत्येक ग्राम में वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिये बाजार या हाट लगते थे । इनकी व्यवस्था के हेतु राजा की ओर से 'हट्टपति'' नामक पदाधिकारी होता था । गांव के लोगों का जीवन सीधा-साधा और पवित्र होता था । गांव की समस्त व्यवस्था ग्रामीण अधिकारी और ग्राम पंचायत या ग्राम सभा द्वारा की जाती थी । गांवों में अनेक ऐसे व्यक्ति रहते थे जिन्हें राज्य की ओर से भूमिदान में मिली होती थी । दानग्राही की यह भूमि विभिन्न करों से मुक्त होती थी ।

यद्यपि देश में ग्रामों की प्रधानता थी, पर अनेक नगर भी थे । ये राज्यों की राजधानी, व्यापारिक केन्द्र और तीर्थ स्थान थे । इस युग में कन्नौज, पुण्ड्रवर्धन, काशी, अयोध्या, उज्जैन, थानेश्वर, प्रयाग, मुलतान, पद्मावती, धारा, पहाड़पुर (बंगाल),

ताम्रलिप्ति आदि प्रसिद्ध नगर थे। प्राचीन युग में पाटलिपुत्र को जो महत्व था, पूर्व मध्ययुग में कन्नौज को वही महत्व प्राप्त हो गया था। अरब विद्वान मसउदी ने कन्नौज के वैभव, समृद्धि, वाणिज्य-व्यापार, बाजार, भवन आदि का वर्णन किया है। नगरों में धन सम्पन्न और समृद्धिशाली लोगों की प्रधानता थी। इन नगरों में ऊंचे भवन, राज प्रासाद, हाट, बाजार, उद्यान-वाटिका, आदि होते थे। बाजारों में शंख, मोती, हीरे, रत्न, मूंगे तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता था। काशी और प्रयाग में तीर्थ-स्थान होने से अतुल धन सम्पत्ति संग्रहीत हो गयी थी, जिसे मुस्लिम विजेता और आक्रमणकारी लूट कर ले गये। उत्तर-पश्चिम में सिंध में मुलतान प्रसिद्ध नगर था। यहां आठवीं सदी से ही अरबों ने प्रवेश कर लिया था। इसलिये इस युग में यह अरब तथा भारतीय संस्कृति के समन्वय का केन्द्र रहा। नगर बड़ा सुन्दर था। यहां मुहम्मद बिनकासिम द्वारा निर्मित एक मसजिद थी और हिन्दुओं का अत्यन्त ही प्राचीन सूर्य मन्दिर था। इसमें दर्शनार्थ और पूजा के हेतु दूरस्थ प्रदेशों के अनेकानेक हिन्दू प्रति वर्ष आते-जाते रहते थे और सहस्त्रों रुपये चढ़ावे और पूजा में अर्पित किये जाते थे। इस मन्दिर से मुस्लिम प्रशासकों को अत्यधिक आय होती थी। अरब विद्वान बुशारी ने मुलतान का वर्णन किया है। उसने यहाँ के निवासी हिन्दुओं के सच्चरित्र, व्यापारिक सच्चाई और ईमानदारी, आतिथ्य सत्कार, कृषि, वाणिज्य—व्यापार आदि की प्रशंसा की है। ग्रामों की अपेक्षा नगरों में लोगों का जीवन अधिक सुखी और सन्तोषप्रद था। दैनिक जीवन की सामग्री और आवश्यक वस्तुएं सस्ती होती थीं और उनका बाहुल्य होता था।

कृषि—लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। कृषक गेहूं, मक्का, जौ, ज्वार, बाजरा, चना, तिलहन, गन्ना आदि फसलें उत्पन्न कर लेते थे। संकटकाल या दुर्भिक्ष के समय राज्य की ओर से कृषकों को आर्थिक सहायता दी जाती थी। सिंचाई और जल की बाहुल्यता के लिये अनेक विशाल तालाब, झीलें, बाँध, बावड़ियाँ, कुए, नहरें आदि निर्मित किये जाते थे। शासन की ओर से सिंचाई के विभिन्न साधनों की समुचित व्यवस्था थी। इस युग में निर्मित अनेक कृत्रिम झीलों, तालाबों और बांधों को मुस्लिम आक्रमणकारियों और प्रशासकों ने नष्ट कर दिये। किसानों से उपज का $\frac{1}{6}$ भाग भूमि कर लिया जाता था। भूमि की उर्वरा या अनुर्वरा शक्ति के आधार पर भूमि कर घटता-बढ़ता रहता था। इस युग में भूमि नापने की प्रथा प्रचलित थी। भूमि नाप के लिए विभिन्न प्रान्तों और राज्यों में प्रथक-प्रथक नाप थे। कल्पावाप, द्रोणवाप, हल, हस्त, पदावर्त (एक वर्ग फुट) आदि भूमि के नाप थे और कुल्य तथा द्रोण अनाज के नाप थे। संक्षेप में कह सकते हैं कि राज्य कृषि सम्बन्धी साधनों और कार्यों के लिए सजग था और कृषकों की आर्थिक दशा सन्तोषप्रद थी।

वाणिज्य-व्यापार और संघ—अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्देशीय व्यापार होता था। देश में विभिन्न प्रकार के व्यवसाय थे। मथुरा, बनारस, मदुरा और बंगाल सूती कपड़ों के बुनने के लिए प्रसिद्ध थे। दसवीं सदी के अरब यात्री इब्न खुर्दाजबा ने बंगाल में बनने वाले "मलमल" वस्त्र का वर्णन किया है। नवीं सदी में अरब यात्री सुलेमान ने भी बंगाल के इसी सुन्दर और महीन कपड़े की प्रशंसा की है। स्वर्णकार का व्यवसाय भी

उन्नत था और विभिन्न प्रकार के रत्नजड़ित आभूषण व सोने चाँदी के बर्तन बनाये जाते थे। मिट्टी के विविध प्रकार के बर्तन तथा दैनिक जीवन की वस्तुएं एवं मिट्टी की विविध मूर्तियाँ ग्रामों में विशेष रूप से बनायी जाती थीं। काशी में प्रचुर मात्रा में मिट्टी की विभिन्न प्रकार की मुहरें (Seals) बनाई जाती थीं। वन और खदानों की उपज भी बहुसंख्या में होती थी। खानों से या खारे पानी से नमक बनाया जाता था। गन्ने की खेती होती थी और उससे शक्कर बनाई जाती थी। सभी प्रकार की वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिये ग्रामों और नगरों में निश्चित बाजार थे और हाट लगते थे। इनमें विविध व्यापारिक वस्तुएँ, अनाज, फल, किराना आदि का क्रय-विक्रय होता था। घोड़े तथा अन्य पशुओं का भी व्यापार था। पशु मेले लगाये जाते थे। व्यापार, बाजार और हाट के निरीक्षण के लिए "हाटक" या "हट्टपति" नामक पदाधिकारी होते थे। विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं और उनके व्यवसाय तथा निर्माण करने वालों से राज्य कर लेता था। व्यवसायियों को निश्चित कर राज्य को देना पड़ता था। तत्कालीन अभिलेखों में ऐसे करों का वर्णन है। कर वसूल करने वाला पदाधिकारी "शौल्किक" होता था। नदियों में नावों द्वारा तथा सड़कों पर बैलगाड़ियों और पशुओं द्वारा सामान लाया, ले जाया जाता था। नदी घाट पर "तारिक" नामक शासकीय कर्मचारी रहता था जो व्यापारिक वस्तुओं को नावों द्वारा लाने ले जाने में सहायता करता, उनका निरीक्षण करता तथा इसके हेतु कर वसूल करता था। देश के प्रसिद्ध नगर और व्यापारिक केन्द्र विभिन्न सड़कों और राजमार्गों से जुड़े हुए थे। नदियों में नावों द्वारा व्यापारिक सामान लाया ले जाया करते थे। इसके लिये गंगा नदी विशेष महत्व की थी। व्यापार की सुविधा के हेतु व्यावसायिक संगठन और श्रेणियाँ होती थीं। प्रत्येक श्रेणी या संगठन अपने व्यापार की उन्नति के लिये प्रयास करती थी। मध्यकालीन अभिलेखों में इनका उल्लेख है। प्रत्येक श्रेणी का प्रमुख या अध्यक्ष सार्थवाह, सेट्टी या श्रेष्ठी कहलाता था। वह उस संगठन का, उसके कार्यों का समुचित संचालन और निरीक्षण करता था। विभिन्न व्यावसायिक संगठनों के श्रेष्ठी, राज्य, जिले और नगर के प्रशासन में सहायता करते थे। इन संग-ठनों पर राजा की ओर से कर लिया जाता था। ये संगठन वस्तुओं के निर्माण व व्यापार के अतिरिक्त संगठन और उसके सदस्यों के हेतु आधुनिक बैंक का कार्य करते थे, ये उन्हें ऋण भी देते थे और ब्याज की दर ६ से १२ प्रतिशत थी। परन्तु राज-नैतिक अस्थिरता से, आक्रमणों व युद्धों से व्यावसायिक संगठनों का महत्व और अस्तित्व कम होता जा रहा था।

भारत के बाहर विदेशों से व्यापार होता था। थलमार्ग से भारत के बाहर मध्य एशिया के देश, काशगर, यारकंद, खोतान आदि को व्यापारिक वस्तुएं पहुंचती थीं। खोतान से कूचा और पूर्व में तुपेन हुआंग होते हुए व्यापारी चीन तक पहुँचते थे। खोतान भारतीय व्यापारियों का केन्द्र था। पूर्व में आसाम से दक्षिण चीन जाने तक का भी थलमार्ग था और यह नवीं सदी तक चलता रहा। सिक्किम और चुम्बी घाटी के थलमार्ग से भारतीय व्यापारी तिब्बत पहुँचते थे। इसी मार्ग से घोड़ों का व्यापार होता था तथा नालन्दा विश्वविद्यालय के अनेक बौद्ध विद्वान, आचार्य और भिक्षुगण तिब्बत पहुंचते थे। थलमार्ग से ही भारतीय व्यापारी अरब की खाड़ी को पार कर पूर्वी

यूरोप के देशों को पहुँच जाया करते थे। अनेक अरब व्यापारी भारत से विदेशों को व्यापारिक सामग्री ले जाते और लाते थे। भारतीय वस्तुएं फारस, ईराक, सीरिया, मिश्र आदि देशों तक पहुँचती थीं। भारत के इस विदेशी व्यापार में अरब व्यापारियों का अधिक भाग हो गया था। सुलेमान (दसवीं सदी), मसऊदी, अलबरुनी, (ग्यारहवीं सदी), इब्नखुर्दाजबा (नवीं सदी) आदि अरब यात्रियों और विद्वानों ने भारत के इस विदेशी व्यापार का रोचक वर्णन किया है। इब्नखुर्दाजबा ने भारत से बाहर जाने वाली वस्तुओं की सूची भी अपने विवरण में प्रस्तुत की है। पश्चिमी देशों से होने वाले व्यापार में भारत से बाहर भेजी जाने वाली वस्तुओं में मुख्यतया चन्दन, लोंग, कपूर, जायफल, गरम मसाले, नारियल, आम, हाथी दांत की विविध सुन्दर कलापूर्ण वस्तुएं, मोती, बहुमूल्य रत्न, वस्त्र, मलमल, पान, सुपारी आदि होते थे। दसवीं सदी के अरब यात्री अबूजेंद ने भारत के नारियल के व्यवसाय का बड़ा रोचक और सुन्दर वर्णन किया है। भारत में आने वाली वस्तुओं में मूंगा, पन्ना, विदेशी सुरा, रेशमी वस्त्र, समूर, पोस्तीन, गुलाबजल, खजूर, अरबी घोड़े आदि का बाहुल्य होता था। इन व्यापारिक वस्तुओं के आने-जाने के लिये पश्चिमी तट पर अनेक बन्दरगाह थे, जैसे थाना, खंभात, सोपारा, मलाबार आदि। पूर्वी तट पर ताम्रलिप्ति का बन्दरगाह भी था। इन बन्दरगाहों और नदियों के मुहानों पर जहाजों के ठहरने की समुचित व्यवस्था थी। बंदरगाहों पर आयात-निर्यात के हेतु "मंडपिका" नामक चुंगीघर बने हुये थे और इनके लिये विशेष कर्मचारी और अधिकारी थे। अब भारतीय चतुर नाविक नहीं थे, इसलिये इस युग में जहाजों का अधिकांश कार्य अरबों के हाथों में था। जहाज इतने विशाल होते थे कि उनमें व्यापारिक सामग्री के भरने के अतिरिक्त अनेक यात्री भी सुख-सुविधापूर्वक यात्रा कर सकते थे। जहाज दो से अधिक मंजिल वाले भी होते थे। यात्रियों के प्रथक-प्रथक कक्ष होते थे, मल्लाहों, रक्षकों और अधिकारियों के लिये विशेष स्थान थे। नवीं सदी के अरब यात्री अबूजेंद ने उन भारतीय व्यापारियों और वैश्यों के जीवन, खान-पान, रहन-सहन, वाणिज्य आदि का वर्णन किया है जो ईराक, उमान, सूडान, मईद बन्दर तथा मिश्र के बन्दरगाहों से व्यापार करते थे।

पूर्व मध्यकालीन युग में विनिमय के हेतु सिक्के प्रचलित थे। ये सिक्के सोने, चांदी तथा ताँबे के प्रचुर मात्रा में होते थे। चाँदी और मिश्रित धातु के भी अनेक सिक्के बनते थे। खराब सोने या चांदी के सिक्के भी बनते थे और इनको द्रम कहते थे। कहीं-कहीं "काकिणी" नामक सिक्का भी प्रचलित था जो ताँबे के बड़े पैसे के समान होता था। द्रम के बीसवें भाग को "विशोपक" कहते थे। विनिमय के हेतु धातुओं के सिक्कों के अतिरिक्त कौड़ियों का भी उपयोग होता था। "गंडक" नामक छोटा ताँबे का सिक्का भी होता था जो चार कौड़ी के बराबर माना जाता था। चन्देल राजाओं तथा गहढ़वाल नरेशों ने द्रम, अर्धद्रम और पाददम नामक सिक्के प्रचलित किये। कभी-कभी सिक्कों पर हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ या उनके वाहन अंकित होते थे और अक्षरों में भी कुछ लिखा रहता था।

दसवीं सदी के बाद विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों के निरन्तर आक्रमणों और युद्धों के कारण विदेशों से भारत का सम्बन्ध अधिकाधिक कम हो गया था और

विदेशी व्यापार भी अवरुद्ध हो रहा था। निर्यात बन्द सा हो गया था। इसने औद्योगीकरण रुक गया और भारत की आर्थिक प्रगति कुंठित हो गयी। फिर भी भारत विदेशों में अत्यधिक धनाढ्य देश माना जाता था और इस धन-सम्पन्नता से प्रभावित होकर महमूद गजनवी जैसे विदेशी आक्रान्ताओं ने देश पर आक्रमण किये।

धार्मिक जीवन

पूर्व मध्यकालीन युग में धर्म अनेक मतों, सम्प्रदायों और उप सम्प्रदायों में विभक्त हो गये थे। लोग अपने-अपने धर्म और मत में अधिक निष्ठा और विश्वास रखते थे। जैन धर्म की शिथिलता, बौद्ध धर्म का ह्रास और पतन तथा हिन्दू धर्म का पुनर्गठन और प्रचार इस युग के धार्मिक जीवन की विशेषताएं हैं।

बौद्ध धर्म—इस युग में हीनयान, महायान और वज्रयान सम्प्रदाय के अतिरिक्त बौद्ध धर्म में अनेक विभिन्न मत और सम्प्रदाय थे। बौद्ध धर्म अपनी प्राचीन महत्ता और पवित्रता खोता जा रहा था। प्राचीन बौद्ध धर्म और ११ वीं तथा १२ वीं सदी के बौद्ध धर्म में कठिनाई से समता दृष्टिगोचर होती थी। पांचवीं सदी से आचार्य असंग के धार्मिक ग्रंथों और विचारधाराओं से बौद्ध धर्म में तन्त्रवाद का प्रारम्भ हुआ और नवीं से बारहवीं सदी के युग में इसका खूब विकास हुआ। बौद्ध धर्म में तन्त्रवाद वाले सम्प्रदाय को वज्रयान मत कहा गया है। इस वज्रयान सम्प्रदाय में बौद्ध को तंत्र गुरू मान लिया गया था। वे समस्त मानवी सिद्धियों के घर माने गये थे। इन सिद्धियों को प्राप्त करने के लिये वज्रयान मतावलंबी अनेक गोपनीय साधना करते थे। वज्रयान में बुद्धत्व और निर्वाण की प्राप्ति के लिये मंत्र-तंत्र का उपयोग किया जाने लगा और ऐसी धारणा बन गयी कि इनसे सत्य, प्रज्ञा तथा आत्मबल की प्राप्ति होती है। तंत्र-मंत्र के साथ हठयोग भी वज्रयान में सम्मिलित हो गया। यौगिक क्रियाओं में मंत्र के साथ-साथ "मुद्रा" को भी अपनाया गया। "मुद्रा" में तांत्रिक साधक किसी युवती को अपनी सहचरी बनाता है। फलत: तंत्र-मंत्र, हठयोग और मैथुन क्रियाओं का बाहुल्य हो गया और इनमें अधिकाधिक विश्वास हो गया। शक्ति का सिद्धान्त विकसित हो गया। प्रज्ञा तथा उपाय का प्राचीन सिद्धान्त शक्ति तथा देव (प्रकृति और पुरुष) के नये रूप में वज्रयान में समाविष्ट हो गया। ऐसा माना जाने लगा था कि सहज सुख या सिद्धि की प्राप्ति परम्परागत कठोर नियमों और दस व्रतों के पालन से नहीं, अपितु योग के द्वारा हो सकती है जिसमें प्रज्ञा या शक्ति का प्राधान्य है। वज्रयान के प्रचारक सिद्धों ने चर्यागान में शक्ति का अनेक बार उल्लेख किया है। उनके अनुसार वहाँ शक्ति की प्रतीक योगिनी या सहज सुन्दरी सांसारिक स्त्री नहीं है, अपितु वह शाश्वत शक्ति है। इस विश्वास के कारण वज्रयान में तारादेवी को प्रधान स्थान दिया गया। इसके अतिरिक्त विविध धार्मिक कृत्यों, विविध देवी-देवताओं की पूजा को वज्रयान में अपनाया गया। ९ वीं और १० वीं सदी में वज्रयान के प्रचारकों में सरहप्पा, तिलोपा, नरोपाद तथा कान्हपाद विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस वज्रयान मत के विकास और प्रचार से दसवीं सदी से बारहवीं सदी के युग में

बौद्ध संघ और बिहार तंत्रवाद और गुह्य साधनाओं के केन्द्र बन गये, उनमें भ्रष्टाचार, अंधविश्वास और तीव्र मतभेद घर कर गये। बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों का जीवन भोग-विलासमय और कलुषित तथा दूषित हो गया। वज्रयानी आचार्यों और सिद्धों ने हठयोग में जिन साधनाओं का संकेत किया था, कालान्तर में, उन सब का दुरुपयोग किया गया और वे अनाधिकारी साधकों के लिये व्यभिचार और अभिसार परक आदेश बन गये और उन बातों का वास्तविक आन्तरिक रहस्य धीरे-धीरे विस्मृत हो गया। इन्हीं कारणों से बौद्ध धर्म के प्रति लोग धीरे-धीरे उदासीन हो गये।

ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में नालन्दा और विक्रमशीला विश्वविद्यालय वज्रयान मत के प्रमुख केन्द्र हो गये और वहाँ के बौद्ध विद्वानों और आचार्यों ने नेपाल और तिब्बत में वज्रयान का प्रचार किया। वज्रयान के बाहुल्य से भारतीय कला भी प्रभावित हुई। अब बुद्ध की प्रतिमा का रूप परिवर्तित हो गया और अनेक देवी-देवताओं की पाषाण तथा धातु की विविध प्रकार की प्रतिमाएं निर्मित होने लगीं।

इस युग के राजपूत शासकों ने बौद्धधर्म के प्रति विशेष करके अहिंसा के प्रति अनुराग और अभिरुचि नहीं रखी। उन्होंने बौद्ध धर्म को राज्य संरक्षण नहीं दिया। ब्राह्मण धर्म या हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान, तथा कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के धार्मिक उत्साह और प्रचार ने भी बौद्ध धर्म को ह्रास की ओर बढ़ाया। वज्रयान के तांत्रिक साधनों और उसके परिवर्तित दूषित रूप से भी बौद्ध धर्म के प्रति लोगों की श्रद्धा कम हो गयी। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म और दर्शन के कई सिद्धान्त हिन्दू धर्म में आत्मसात कर लिये गये। धीरे-धीरे बौद्ध धर्म पाल नरेशों के संरक्षण में विद्यमान रहा। परन्तु बारहवीं सदी में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बौद्ध धर्म के संघारामों, बिहारों, और स्मारकों को विध्वस कर दिया।

जैन धर्म—इस युग में बौद्धधर्म के समान जैन धर्म की प्राचीन महत्ता भी लुप्त हो रही थी, परन्तु फिर भी वह अपने अस्तित्व को दृढ़ता से बनाये हुए था। उत्तरी भारत में जैन धर्म की लोकप्रियता अपेक्षाकृत कम हो गयी थी, पर दक्षिण भारत में इसे अनेक राजाओं ने राज्य संरक्षण दिया था। ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान और प्रगति से, शैव धर्म के लिंगायत सम्प्रदाय के प्रसार से, युद्ध-प्रिय राजपूतों की उदासीनता से और जैनियों के कठोर आचार-विचार से जैन धर्म की प्रगति अवरुद्ध हो गयी थी और उत्तरी भारत में जैन मतावलम्बियों की संख्या कम हो गयी थी। परन्तु दक्षिण भारत में पश्चिमी चालुक्य नरेशों, और राष्ट्रकूट राजाओं ने जैनधर्म को राज्याश्रय दिया। डाक्टर अल्तेकर के मतानुसार इस युग में राष्ट्रकूट राजाओं का काल दक्षिण में जैन-धर्म का सर्वोच्च विकासोन्मुख काल था। उत्तरीभारत में भी अनेक राजाओं ने अनेकानेक जैन मन्दिरों और संस्थाओं को दान दिये, जैन तीर्थंकरों की पूजा और जैन साधुओं के आहार-विहार की व्यवस्था के लिये अनेकों ने दान दिये थे। इस युग में जैन धर्म में मन्दिरों का निर्माण, मूर्ति पूजा, कर्मकांड, अंधविश्वास, और रुढ़िवादिता बढ़ रही थी। इस काल में जैनधर्म विशेष रूप से राजस्थान, मध्यभारत क्षेत्र, गुजरात और दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशों में प्रचलित था।

हिन्दू धर्म या ब्राह्मणधर्म—इस युग में हिन्दूधर्म या ब्राह्मणधर्म को अधिक

लोकप्रिय आधार पर संगठित कर व्यापक बना दिया गया था। इस युग में ब्राह्मणधर्म का ऐसा साहित्य तैयार किया गया कि उसमें धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की क्रिया, विधियाँ, सिद्धान्त, और पूजा उपासना की प्रथाएं सम्मिलित थीं। यह काल हिन्दूधर्म के बहुमुखी विकास और विस्तार का युग है। इस युग के हिन्दूधर्म की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

१. **हिन्दूधर्म का नवीन संगठित स्वरूप**—इस युग में हिन्दूधर्म के उच्चतम-दर्शन, लोकप्रिय सिद्धान्तों, धार्मिक प्रणालियों और भावनाओं को, जैसे परमात्मा, आत्मा, माया, वैराग्य, मोक्ष, पाप-पुण्य, नरक-स्वर्ग की कल्पना, भक्तिवाद, अवतार-वाद, मूर्तियों का पूजन, मंदिरों का निर्माण, साधु और मठों का संगठन—आदि को नवीन ढंग से पुनर्संगठित किया गया और धर्म को नवीन रूप दिया गया।

२. **अवतारवाद**—यद्यपि अवतारवाद की कल्पना प्राचीन थी, और गुप्तकाल में इसका प्रचार रहा, पुराणों में ईश्वर के विभिन्न अवतारों का वर्णन रहा, परन्तु इस युग में अवतारवाद का सिद्धान्त दृढ़ और सर्वमान्य हो गया। विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह आदि दश अवतार माने गये। निर्गुण निराकार ईश्वर मानव-शरीर-धारी मान लिया गया। इस अवतारवाद ने बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मान लिया और हिन्दू उनको देवता मानकर उनकी पूजा और उपासना करने लगे। इसके लिये विभिन्न अवतारों की मूर्तियां बनने लगीं।

३. **भक्तिवाद**—भक्त अपने इष्टदेव को परमात्मा से अभिन्न मानकर उसकी पूजा और उपासना करने लगे और मोक्ष-प्राप्ति की आकांक्षा रखने लगे। इस भक्ति-वाद से मन्दिरों का अधिक निर्माण हुआ और मूर्तिपूजा का खूब प्रचार बढ़ गया। तथा वैष्णव, शैव, शाक्त, ब्राह्म आदि सम्प्रदाय विभिन्नधाराओं के रूप में प्रचलित हो गये एवं इन सम्प्रदायों में मंदिरों, मूर्ति-पूजा, भेंट-उपहार आदि की बाहुल्यता आ गयी।

४. **वैष्णव धर्म**—विष्णु इष्टदेव माने जाने लगे और यह मत दृढ़ हो गया था कि विष्णु पृथ्वी को संकट मुक्त करने और धर्म की रक्षा करने के हेतु बार-बार अवतार लेते हैं। कालान्तर में श्री रामचन्द्र और श्री कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाने लगा। विष्णु के भक्तों का वैष्णव सम्प्रदाय खूब प्रचलित हो गया। वैष्णव मत को राज्याश्रय भी प्राप्त हुआ। उत्तरी भारत में विभिन्न स्थानों में उपलब्ध दान पत्रों में विष्णु की स्तुति का उल्लेख है जो वासुदेव या विष्णु की उपासना के प्रचार का द्योतक है। पाल नरेश नारायण के गरुड़स्तम्भ के अभिलेख से विष्णु पूजा स्पष्ट झलकती है। सेन वंशी राजाओं के अभिलेखों में भी विष्णु-पूजा का स्पष्ट संकेत है। इस युग में उत्तरी भारत में विष्णु की चतुर्भुज प्रतिमाएं या विष्णु और लक्ष्मी की प्रतिमाएँ प्रचुर मात्रा में निर्मित हुईं। प्रतिहार नरेश भोज की मुद्राओं पर विष्णु के वाराह अवतार की मूर्ति अंकित है। दशवीं सदी के परमार लेख में विष्णु के नरसिंह अवतार का उल्लेख है। ये सब प्रमाण वैष्णव मत के प्रबल प्रसार के द्योतक हैं। कालान्तर में विष्णुभक्त रामानुज ने श्री सम्प्रदाय और माधवाचार्य ने सद् वैष्णव सम्प्रदाय स्थापित किये।

५. **शैव धर्म**—विष्णु के समान शिव भी इष्टदेव माने जाने लगे और शिव के भक्तों ने शैव धर्म प्रचलित किया। इसमें शिव की पूजा और आराधना की प्रचुरता थी। शैवधर्म वाले शिव की भक्ति और आराधना पवित्र मंत्रों के जप, अनुष्ठान, प्राणायाम, ध्यान, योग, समाधि आदि से करते थे। पाल, चेदि, चन्देल, परमार, आदि नरेशों ने शैवधर्म को अपनाया। बंगाल के अभिलेखों में शिवोपासना का उल्लेख है। विजयसेन तथा वल्लालसेन के अभिलेखों में शम्भु तथा अर्द्धनारीश्वर का वर्णन है। अन्य राजाओं के अभिलेखों में "ओम् नमः शिवाय:" अथवा "ओम् नमो ब्राह्मणे निर्गुणं व्यापकं नित्य शिवम्" अंकित है जो शैवधर्म के प्रसार का द्योतक है। शिव की उपासना लिंग रूप में होती थी। शैव सम्प्रदाय को राजपूत नरेशों ने, काश्मीर और महाराष्ट्र के राजाओं ने तथा दक्षिण भारत के चोल और पांड्य नरेशों ने राज्याश्रय दिया था। इस युग में अनेक राजाओं ने शिव मन्दिर निर्मित किये। उनमें शिव और पार्वती की प्रतिमा या शिव लिंग पूजा और उपासना के लिये प्रतिष्ठित किये गये। शैव मत के विशाल मठ भी निर्मित किये जाने लगे और इनके अपने विद्वान मठाधीश भी होते थे। कालान्तर में शैवधर्म में विभिन्न सम्प्रदायों का उदय हुआ, जैसे पाशुपात, कापालिक, कालमुख, वीरशैव या लिंगायत शैव आदि।

६. **शक्ति उपासना**—उत्तर गुप्तकाल और पाल युग में और इसके बाद पूर्व मध्यकाल में शक्ति पूजा का अधिक विकास हुआ। "देवी पुराण" में विभिन्न रूपों में देवी पूजा या शक्ति पूजा का वर्णन है। नारी को शक्ति का प्रतीक मानकर देवियों की सृष्टि की गयी और दुर्गा, काली, भवानी, भगवती, अम्बा, अन्नपूर्णा, कंचनदेवी, सर्वमंगला, लक्ष्मी, पार्वती आदि रूपों में शक्ति की देवी की पूजा की जाने लगी। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाने लगा कि शक्ति के साथ देवता बलवान होते हैं। इसके अभाव में सभी शक्तिहीन हो जाते हैं। भगवान् भी शक्ति या माया के बिना सृष्टि का सृजन नहीं कर सकते। इसी से प्रकृति और पुरुष का समन्वय किया गया। कतिपय देवियों को विशिष्ट देवताओं के साथ जोड़ा गया, जैसे पार्वती शिव के साथ, लक्ष्मी विष्णु के साथ, तथा ब्रह्माणी ब्रह्मा के साथ। विशेष रूप से देवी शिव की अर्द्धांगिणी और शक्ति की उत्पत्ति का आदि कारण माने जाने लगी। नारियों ने दुर्गा, पार्वती, भगवती, लक्ष्मी, सर्वमंगला, शीतला, सप्तमातृका आदि देवियों की पूजा और उपासना में अधिक अभिरुचि प्रगट की और नारियों की मनोकामना सिद्धि का साधन इन देवियों की उपासना और पूजन था। इस शक्ति उपासना से शाक्त सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। बंगाल और आसाम में शाक्त सम्प्रदाय की प्रधानता रही। वहाँ कान्निका और कामाख्या देवी की पूजा और आराधना विशेष उल्लेखनीय है। इसी प्रकार मध्यभारत क्षेत्र में चौंसठ जोगनियाँ और शीतला की पूजा भी उल्लेनीय है। शाक्तमत के अनुयायी मंत्रों और योगबल से प्राप्त अलौकिक सिद्धान्तों में विश्वास करने लगे और देवी को प्रसन्न करने के लिये पूजा और उपासना करने लगे तथा भक्ति के साथ-साथ मनुष्य और पशु की बलि भी देने लगे।

७. **तंत्रवाद**—इस युग में शक्ति पूजा और शाक्त सम्प्रदाय के प्रसार और प्रभाव से तंत्रवाद का भी विकास हुआ। तन्त्र-मंत्र और जादू-टोने के प्रति लोगों की

अत्यधिक निष्ठा हो गयी और इन्हें धर्म का अंग मान लिया गया। इससे तन्त्रवाद का प्रचार हुआ। समाज में जादू-टोने, तंत्र-मंत्र, तावीज, गंडे, टोटके, झाड़-फूंक आदि में दृढ़ विश्वास हो गया और विभिन्न कार्यों तथा आयोजनों की पूर्ति के लिये इनका उपयोग किया जाने लगा। धर्म का स्वरूप तान्त्रिक हो गया और मदिरा, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का प्रयोग धर्म के नाम पर होने लगा।

८. **सूर्य उपासना और गणेश पूजा**—यद्यपि सूर्य उपासना और पूजा गुप्तकाल तथा उसके पूर्व से ही प्रचलित थी, परन्तु पूर्व मध्ययुग में भी विकसित सूर्य-पूजा का आभास मिलता है। बंगाल के सेन वंश के शासक विश्वसेन तथा केशवसेन सूर्य के परम उपासक थे और इसीलिये वे "परमा सौर" की उपाधि ग्रहण किये हुए थे। गहड़वाल, प्रतिहार तथा चहमान लेखों में सूर्य मंदिर के दान का उल्लेख है। अन्य अभिलेखों में सूर्यग्रहण के अवसर पर विपुलदान दिये जाने का वर्णन है। कई स्थानों पर सूर्य मंदिर थे। इनमें मुल्तान (सिंध) का सूर्य मंदिर बड़ा प्रख्यात था। सूर्य की प्रस्तर प्रतिमाएँ निर्मित होती थीं और उनकी पूजा तथा उपासना होती थी। इस युग में बनी सूर्य की खड़ी प्रतिमा मध्यभारत के क्षेत्र में मांडु, धार, इन्दौर आदि स्थानों में प्राप्त होती है। दोनों हाथों में कमल का पुष्प लिये सूर्य की खड़ी प्रस्तर मूर्ति प्राप्त हुई है, नीचे के भाग में सूर्य के सात अश्व वाला रथ है जिसके दोनों ओर ऊषा तथा संध्या देवियाँ उत्कीर्ण हैं। ये प्रमाण इस बात को स्पष्ट करते हैं कि लोग सूर्य पूजा, सूर्य उपासना तथा सूर्यग्रहण को विशेष महत्व देते थे।

इस युग में सूर्य के अतिरिक्त गणेश की भी पूजा प्रचलित थी। कुछ लेखों में पांच देवों—विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश का उल्लेख है। मंगल कामना के लिये गणेश की पूजा प्रचलित रही। कतिपय लेखों में गणेश को विनायक भी कहा गया है।

नाथमत—पूर्व मध्यकाल में नाथ सम्प्रदाय भी प्रचलित था। योगाभ्यास और यौगिक क्रियाओं के विकास के साथ-साथ नाथ सम्प्रदाय का भी विकास हुआ। नाथ सम्प्रदाय में गुरू गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ का विशेष महत्व रहा। इन्होंने विविध यौगिक क्रियाओं का प्रचार किया। गुरू गोरखनाथ के हठयोग का उल्लेख आठवीं सदी के कुछ स्त्रोतों में है। नाथ सम्प्रदाय में हठयोग और प्राणायाम की प्रधानता मानी गयी है और नृत्य तथा गान भी उसमें सम्मिलित है। नाथ मत के अनुयायी हठयोग में सिद्धि तथा मोक्ष प्राप्ति की कामना करते हैं। इनका अन्तिम ध्येय जीवन-मुक्ति या मोक्ष है, महेश्वर या शिव की स्थिति प्राप्त करना है। शिव तथा शक्ति के सिद्धान्त का प्रभाव नाथ मत पर खूब पड़ा तथा शैव सम्प्रदाय की अनेक बातें इस मत में हैं। नाथ लोगों में कापालिक-मार्गी साधु भी सम्मिलित हैं और इसमें कनफटे यौगियों और साधुओं का भी महत्व है।

अन्ध विश्वास की प्रधानता—पूर्व मध्ययुग में विविध धार्मिक मतों और सम्प्रदायों के कारण, हठयोग तथा अन्य यौगिक क्रियाओं से, शाक्त सम्प्रदाय के प्रसार से लोगों का अन्ध विश्वास बढ़ने लगा। तंत्र–मंत्र, शकुन-अपशकुन, जादू-टोने, गंडा–तावीज, भूत–प्रेत, डाकिनी–यौगिनी, दिग्पाल–भैरव आदि में लोगों का विश्वास

बढ़ता गया। पूजा और उपासना में बलिदान की प्रथा घर कर गयी। सिद्धों और मठों के साधुओं ने तंत्र-मंत्र से अनेक चमत्कार प्रकट किये जिससे अनेकानेक लोग, विशेषकर स्त्रियाँ, अधिक आकर्षित हुईं।

तीर्थ-यात्रा और दान-पुण्य की प्रवृत्ति—इस काल में देश के पवित्र तीर्थ स्थानों की यात्रा कर, वहां मुक्त हस्त से दान-पुण्य करके, मोक्ष प्राप्त करने की धारणा अत्यधिक दृढ़ हो गयी थी। लोग देश के विभिन्न तीर्थ स्थानों में आते-जाते थे और धर्म में रुचि ले दान देते थे। ऐसे अनेक दानों का उल्लेख तत्कालीन लेखों और ग्रंथों में है। धन सम्पन्न और श्रेष्ठ वर्ग के लोग, अनेक राजा और रानी तथा राजवंश के व्यक्ति तीर्थ स्थानों में दान-पुण्य करते, देवताओं के मन्दिर बनवाते और मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करते थे।

धर्म सुधारक—हिन्दू धर्म को अधिक लोक-प्रिय और व्यापक बनाने हेतु कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य जैसे विद्वान सुधारकों ने सफल यत्न किये। कुमारिल ने वैदिक कर्मकाण्ड और मीमांसा पर अधिक बल दिया। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया और उच्च तत्वज्ञान तथा वेदान्त का खूब विकास किया। शंकराचार्य ने साधु-सन्यासियों के वर्ग को भी संगठित किया और भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये जो आज भी विद्यमान हैं।

शिक्षा

पूर्व मध्ययुग में आचार्यों और गुरुओं के घर में या आश्रमों में जाकर विद्यार्थीगण शिक्षा ग्रहण करते थे। हिन्दू मन्दिर और बौद्ध विहार शिक्षा प्रसार का काम करते थे। बौद्ध विहार शिक्षा संस्था के रूप में विकसित हुए और मन्दिरों में शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की गयीं। मन्दिरों के विद्वान पुरोहित व पुजारी, और बौद्ध विहारों के विद्वान आचार्य और भिक्षुगण लोगों को विभिन्न विषयों की शिक्षा देते थे। वेद, वेदांग का अध्यापन तो पहले से होता रहा। बौद्ध त्रिपिटक तथा जैन आगमों का पठन-पाठन भी विस्तृत रूप से प्रारंभ हो गया। शिक्षा में तर्क को विशेष स्थान दिया गया। इसी से बौद्ध तथा जैन तर्क शास्त्रों की रचना इसी युग में की गयी। इन शास्त्रों के अतिरिक्त ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि सांसारिक विषयों का भी अध्ययन किया जाने लगा। सभी व्यक्तियों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती थी और प्राथमिक शिक्षा भी सबके लिये एक सी न थी। क्षत्रियों द्वारा प्रशासन में और वैश्यों द्वारा विविध उद्योग-व्यवसायों में सक्रिय भाग लेने से उनकी शिक्षा व्यवस्था और स्तर में परिवर्तन हो गया। प्राथमिक शिक्षा में संस्कृत का स्थान प्राकृत और अपभ्रंश ने ले लिया था। व्यवहारिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा था। राजकुमारों के लिये सैनिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। व्यायाम, खेल-कूद तथा शिक्षा के लिये विस्तृत मैदान का प्रबन्ध था। प्रत्येक गांव में किसी न किसी रूप में शिक्षालय या विद्यापीठ विद्यमान थे। आयुर्वेद शास्त्र और चिकित्सा पद्धति तथा शल्य चिकित्सा में लोगों की विशेष अभिरुचि थी। इनके लिये व्यवहारिक शिक्षा भी दी जाती थी। मनुष्य चिकित्सा की शिक्षा ही नहीं, अपितु पशु-चिकित्सा की शिक्षा

भी दी जाती थी। आयुर्वेद चिकित्सा इतनी अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय हो गयी थी कि अरब के खलीफा हारुन ने भारत के बीस चिकित्सकों को बगदाद में बुलाकर भारतीय आयुर्वेद के ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। कन्याओं का विवाह कम आयु में होने लगा था, इससे उनकी शिक्षा सीमित हो गयी। कालान्तर में कन्याओं के लिये वेदाध्यन निषिद्ध हो गया। धन-संपन्न परिवार या कुलीन वर्ग की कन्याओं के अतिरिक्त साधारण कन्याओं का पढ़ना लिखना कठिन-सा था। फिर भी कन्याओं को गृहस्थी जीवन की व्यावहारिक शिक्षा और हस्त-कला की शिक्षा दी जाती थी।

पूर्व मध्यकालीन युग की यह विशेषता है कि उच्च शिक्षा के लिये अनेक महाविद्यालय और विश्व विद्यालय प्रतिष्ठित किये गये। अनेक बौद्ध विहार महाविद्यालय बन गये और कतिपय प्रसिद्ध बौद्ध विहार विश्व विद्यालय के रूप में कार्य करने लगे, जैसे:— नालन्दा महा विहार, पूर्वी बिहार राज्य में विक्रमशीला, पूर्वी बंगाल में विक्रमपुर, उत्तरी बंगाल में जगधल और पटना जिले में ओदन्तपुरी के महाविहार शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे। नालन्दा का महाविहार विश्व विद्यालय में परिणित होकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका था। नालन्दा और विक्रमशीला विश्व विद्यालय में भारत के विभिन्न क्षेत्रों के विद्यार्थी ही नहीं अपितु भारत के बाहर अन्य देशों के विद्यार्थी भी अध्ययन के लिये आते-जाते थे। ऊपर वर्णित विश्व विद्यालयों में धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। विक्रमशीला महाविहार बौद्धों के वज्रयान सम्प्रदाय के अध्ययन का सबसे बड़ा प्रामाणिक केन्द्र और तंत्रवाद का महत्वपूर्ण स्थान था। इन महाविहारों के अतिरिक्त वाराणसी, नवद्वीप (नदिया), वलभी, धारा (मालवा), कन्नौज, उज्जैन आदि नगर भी शिक्षा के केन्द्र थे। सुदूर दक्षिण भारत में संघम नामक शिक्षा संस्था थी जिसमें तामिल साहित्य के अनेक प्रसिद्ध आचार्य, विद्वान और कवि सदस्य थे। ये लेखन और अध्ययन के कार्य करते थे। अनेक राजा और सम्राट शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के प्रोत्साहन और प्रसार में अधिक अनुदान, छात्रवृत्तियाँ और दान देते थे।

साहित्य

पूर्व मध्ययुग में सामन्तों, राजाओं और सम्राटों ने साहित्य के विकास में अपने राज्याश्रय से बड़ा योग दिया। इन्होंने विद्वानों, कवियों और लेखकों को राज्याश्रय देकर साहित्य-सृजन में बड़ी सहायता पहुँचाई। कुछ राजा और सम्राट स्वयं विद्यानुरागी, कवि, विद्वान और लेखक थे। उन्होंने लेखनी उठाकर, अनेक ग्रथों की रचनाकर, साहित्य की अभिवृद्धि की। धार का राजा मुंज बड़ा विद्वान और उच्चश्रेणी का कवि था। धार का अन्य राजा भोजदेव इतना अधिक विद्वान और लेखक था कि उसने चिकित्सा, ज्योतिष, व्याकरण, धर्म, वास्तुकला, ललित कलाएँ, काव्य आदि विभिन्न विषयों पर ग्रंथ लिखे। उसकी राजसभा में पद्मगुप्त, हलायुध, धनञ्जय, अभितगति आदि प्रख्यात विद्वान और कवि रहते थे। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष भी विद्वान था और उसने रीति-शास्त्र और नीति पर ग्रन्थ लिखे। इस युग में संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे गये। यद्यपि कई ग्रन्थों की रचना हुई

परन्तु साहित्य में सरसता, सुन्दरता, मौलिकता और रुचि का सदा अभाव रहा। अधिकांश रचनाएँ और ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से निम्न कोटि के हैं। इस युग में काव्य में सहज सौंदर्य का स्थान अनावश्यक अलंकार, श्लेष और सजावट ने ले लिया। सरल वर्णन और अभिव्यक्ति के स्थान पर क्लिष्ट कल्पना आ गयी। ग्रन्थों में रचनात्मक प्रवृत्ति का अभाव था। संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत, अपभ्रंश और प्रान्तीय भाषाओं का अच्छा विकास हुआ और उनमें ग्रंथ लिखे गये।

इस युग के काव्य ग्रन्थों में भारवि कवि का "किरातार्जुनीय," माघ कवि का "शिशुपालवध" और जयदेव का "गीत गोविन्द" विशेष उल्लेखनीय है। चम्पू काव्य में "नल चम्पू," मदालसा चम्पू" आदि श्रेष्ठ हैं। नाटकों में भवभूति के "मालती माधव," "उत्तर राम चरित," "महावीर चरित," नाटक, भट्टनारायण का "वेणी-संहार" वीर राज शेखर का "कर्पूरमंजरी" नाटक विशेष प्रसिद्ध हैं। गद्यकाव्य में "वासवदत्ता," "कादम्बरी," "हर्ष चरित्र," "दशकुमार चरित" और "धनपाल चरित्र," अद्वितीय हैं। वीर और महापुरुषों के ऐतिहासिक चरित्र और कथा साहित्य में कल्हण की "राजतरंगिणी", विल्हण का "विक्रमांक चरित्र", परिमल का, "नवसाहसांक चरित्र", वल्लाल का "भोज प्रबंध", "जयानक का "पृथ्वीराज विजय", हेमचन्द्र का "कुमार पाल चरित", क्षेमेन्द्र की "कथा-मंजरी" और सोमदेव का "कथासरित्सागर" विशेष प्रख्यात हैं। भामह, उद्भट, रुद्रट, और राजशेखर ने अलंकारशास्त्र पर और जयादित्य, भर्तृहरि, शर्ववर्मा, और हेमचन्द्र सूरी ने व्याकरण पर ग्रंथ लिखे। प्राचीन स्मृति ग्रन्थों पर अनेक टीकाएं और भाष्य लिखे गये। बौद्ध दर्शन पर शान्त रक्षित, कमल शील, ज्ञान श्री आदि विद्वानों ने दार्शनिक ग्रंथ लिखे। सामन्तभद्र, हरिभद्र, विद्यानन्द, हेमचन्द्रसूरि और मल्लिसेन सूरि ने जैन दर्शन पर ग्रन्थ लिखे। कुमारिल भट्ट और मंडनमिश्र ने हिंदुओं के मीमांसा दर्शन पर, शंकराचार्य ने वेदान्त दर्शन पर, न्याय और योग दर्शन पर, वाचस्पति मिश्र और उदयनाचार्य ने तथा वैशेषिक दर्शन पर, व्योमशिखाचार्य और श्रीधराचार्य ने ग्रन्थ लिखे। ज्योतिष और गणित पर ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने, आयुर्वेद और चिकित्साशास्त्र पर वैद्य नागभट्ट, माधवकण, चक्रपाणिदत्त और पाल काप्य ने मौलिक ग्रन्थों की रचना की। राजनीति, संगीत, वास्तुकला, और भवन निर्माण-कला पर भी कई ग्रन्थ रचे गये। इन संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में भी धार्मिक और श्रृंगारिक तथा काव्य ग्रन्थों की रचना की गयी। परन्तु इस युग की साहित्यिक विशेषता यह है कि प्रादेशिक भाषाओं का उत्कर्ष हुआ और उनमें वीर रस के काव्यों और गीतों का सृजन हुआ।

सारांश

जब पूर्व मध्ययुग के प्रारम्भ में भारत पर इस्लाम के अनुयायियों ने निरन्तर आक्रमण किये, उस समय भारत में राजनैतिक एकता नष्ट हो गयी थी और विभिन्न प्रान्तीय राज्यों का उत्कर्ष हुआ। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं।

कन्नौज में मौखरी, आयुध प्रतिहार और गहड़वाल राज्य—आठवीं

सदी में कन्नौज में मौखरी राजवंश स्थापित हुआ और इस वंश का सबसे प्रतापी नरेश यशोवर्मन था। इसके बाद सन् ७७० से ८१६ तक कन्नौज में आयुध वंश के राजा राज्य करते रहे। सन् ८१६ में वहाँ प्रतिहार राज्य की स्थापना हुई। मिहिरभोज, महेन्द्रपाल और महिपाल प्रमुख प्रतिहार नरेश थे। प्रतिहार नरेशों ने अरबों और तुर्कों के आक्रमणों को अनेक बार रोका। प्रतिहार राज्य के बाद वहाँ सन् १०८५ में गहड़वाल राज्य स्थापित हुआ। इस वंश में गोविन्दचन्द्र, विजयचन्द और जयचन्द्र प्रमुख राजा थे। इल्तुतमिश ने कन्नौज के राज्य का अन्त कर दिया था।

शाकभरी, दिल्ली और अजमेर का चौहान राज्य—शाकभरी(सांभर)में चौहानराज्य स्थापित हुआ जिसमें विग्रहराज द्वितीय, अजयराज, विग्रहराज, विसलदेव और पृथ्वीराज तृतीय प्रसिद्ध नरेश हुए। तराइन के युद्ध में मुहम्मदगोरी द्वारा पृथ्वीराज के पराजित होने पर चौहान राज्य क्षीण हो गया।

बुन्देल खण्ड का चन्देल राज्य—नवीं सदी में खजुराहो और बाद में महोबा में चन्देल राज्य स्थापित हुआ। इस वंश के नरेशों में यशोवर्मन, धंग, गंड, और कीर्तिवर्मा प्रमुख थे। सन् १२०३ में कुतुबुद्दीन ने अपने आक्रमण से इस राज्य की शक्ति क्षीण कर दी।

त्रिपुरी का कलचुरि राज्य—आठवीं सदी में यह राज्य स्थापित हुआ था और इसमें लक्ष्मणराज, गांगेयदेव, लक्ष्मीकर्ण, यशःकर्ण, नरसिंह आदि प्रमुख नरेश थे। तेरवीं सदी में दिल्ली के सुलतान ने इस राज्य का अन्त कर दिया।

मालवा का परमार राज्य—दसवीं सदी में यह राज्य स्थापित हुआ और इसमें श्रीहर्ष मुंज, सिंधुराज, भोजदेव, जयसिंह और ललितादित्य प्रमुख नरेश थे। इनमें भोज अपनी विद्वता, वीरता, विद्यानुराग और ग्रंथों के लिये विशेष प्रख्यात है। सन् १३०५ में अलाउद्दीन खिलजी ने इस राज्य का अन्त कर दिया।

सीमान्त क्षेत्र और पंजाब का शाही राज्य—उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र और पंजाब में शाही हिन्दू राज्य था। इस राज्य में जयपाल, आनन्दपाल और त्रिलोचनपाल प्रमुख थे। इन्होंने आक्रमणकारी तुर्कों से अनेक युद्ध किये।

सिंध का ब्राह्मण राज्य—चच ने सिंध में ब्राह्मण वंश का राज्य स्थापित किया। इसका प्रसिद्ध राजा दाहिर था। अरबों ने अपने आक्रमण से इस ब्राह्मण राज्य का अन्त कर दिया।

काश्मीर में कार्कोटक, उत्पल, पर्वगुप्त और लोहर राज्य—ये विभिन्न राज्य काश्मीर में रहे। काश्मीर के राजाओं में ललितादित्य, अवन्तिवर्मन, शंकरवर्मन और रानी जिद्दा थी। सन् १३३९ में लोहर राज्य का अन्त कर यहाँ मुस्लिम राज्य स्थापित कर दिया।

बंगाल में पाल और सेन राज्य—यहाँ आठवीं सदी से पालवंश के राजा राज्य करते रहे। इनमें देवपाल, धर्मपाल और महिपाल नरेश अधिक प्रसिद्ध हैं। पालवंश के शासन काल में भवन निर्माण-कला, शिक्षा और साहित्य की खूब प्रगति हुई। ग्यारहवीं सदी के मध्य में बंगाल में सेन राजवंश का राज्य स्थापित हो गया। विजय सेन और लक्ष्मणसेन इसके प्रसिद्ध नरेश थे। महम्मद बिन बख्तियार खिलजी के

आक्रमण के समय यह राज्य नष्ट कर दिया गया था।

कलिंग का गंग राज्य—आठवीं सदी में कलिंग में गंग राज्य स्थापित हुआ और चौदहवीं सदी में तुगलक सुलतान ने इसका अन्त कर दिया।

कामरूप या आसाम का राज्य—यहाँ सातवीं सदी से तीन राजवंशों के अलग-अलग राज्य एक के बाद एक स्थापित किये गये। नवीं सदी में यहाँ का प्रसिद्ध नरेश रत्नपाल था।

दक्षिण भारत के राज्य

विकेन्द्रीकरण की प्रवृति से दक्षिण भारत मेंभी अलग अलग राज्य हो गये जिनमें निम्नलिखित प्रमुख थे।

चालुक्य राज्य—वातापी नगर में चालुक्य राज्य या पूर्वकालीन चालुक्य राज्य स्थापित हुआ था। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध नरेश पुलकेशिन था जो दक्षिण भारत का महान सम्राट माना जाता है। इसके बाद कल्याणी में चालुक्य राज्य स्थापित हुआ जिसे उत्तर कालीन पश्चिमी चालुक्य राज्य कहते हैं। विक्रमादित्य षष्टम इस चालुक्य राज्य का सर्वश्रेष्ठ नरेश था। वह एक महान विजेता, योग्य प्रशासक और विद्वानों का आश्रयदाता था। बारहवीं सदी के अन्त में इस राज्य का अन्त हो गया। आधुनिक आंध्रराज्य में सातवीं सदी में वेंगी का चालुक्य राज्य या पूर्वी चालुक्य राज्य स्थापित हुआ। इस राज्य में नवीं सदी में विजयादित्य तृतीय और भीम तृतीय नरेश विशेष उल्लेखनीय हैं। चालुक्य नरेश कला और साहित्य के बड़े उदार संरक्षक थे।

राष्ट्रकूट राज्य—सातवीं सदी से महाराष्ट्र के पूर्वी भाग और आंध्र प्रदेश में राष्ट्रकूट राज्य प्रारम्भ हुआ। दन्ति दुर्ग नरेश राष्ट्रकूट राज्य की महानता का संस्थापक था। राष्ट्रकूट नरेशों में ध्रुव, गोविन्द तृतीय, अमोघवर्ष प्रथम, और कृष्ण तृतीय अधिक प्रसिद्ध थे। राष्ट्रकूट नरेश अपनी धार्मिक उदारता,कला-प्रेम, और साहित्य सरंक्षण के लिये अधिक प्रसिद्ध रहे थे।

देवगिरी का यादव राज्य—दौलताबाद या देवगिरी का यादवराज्य स्थापित हुआ। सिंहण, कृष्ण और महादेव, तथा रामचन्द्र इस राज्य के प्रसिद्ध नरेश थे। अलाउद्दीन खिलजी ने यादव राज्य का अंत कर दिया था। यादव नरेश साहित्य और कला के संरक्षक थे।

वनवासी का कदम्ब राज्य—पश्चिमी घाट पर यह ब्राह्मण राज्य था। इसमें मयूरवर्मन, काकुतस्थवर्मन और रविवर्मन प्रमुख नरेश थे। चौदहवीं सदी में मलिक काफूर ने इस राज्य का अन्त कर दिया।

तलकाड का गंग राज्य—यह राज्य आधुनिक मैसूर राज्य के क्षेत्र में था। इसके नरेशों में हरिबर्मन, दुर्विनीत व श्रीपुरुष प्रमुख थे। ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में इस राज्य का अन्त हो गया था।

वारंगल का काकतीय राज्य—पूर्वी समुद्र तट के क्षेत्र में वारंगल में काकतीय राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें गणपति और रानी रुद्राम्बा सबसे अधिक योग्य

शासक थे। पन्द्रहवीं सदी में बहमनी सुलतान ने इसका अन्त कर दिया।

द्वार समुद्र का होयसल राज्य—बारहवीं सदी में यह राज्य स्थापित हुआ और पंद्रहवीं सदी में मलिक काफूर ने इसका अन्त कर दिया। इस वंश का सबसे शक्तिशाली नरेश वीर बल्लाल प्रथम था।

चोल राज्य—यह राज्य अत्यन्त प्राचीन था। इस राज्य के सबसे प्रमुख राजाओं में ग्यारहवीं सदी का राजराज, राजेन्द्र प्रथम और कुलोतंग प्रथम थे। ये राजा विजेता, सफल शासक और ललित कलाओं के आश्रयदाता थे। चौदहवीं सदी के प्रारम्भ में मलिक काफूर ने इस राज्य का अन्त कर दिया।

पांड्य और चेर राज्य—सुदूर दक्षिण में पांड्य और चेर राज्य थे। पांड्य राजाओं में सुन्दर पांड्य प्रथम और सुन्दर पांड्य द्वितीय विशेष उल्लेखनीय हैं। मलिक काफूर ने इस राज्य का अन्त कर दिया। केरल और मलाबार के क्षेत्र में चेर राज्य था। इस राज्य का सबसे अधिक शक्तिशाली नरेश सेनगुत्त बम था। दक्षिण में मुस्लिम आक्रमण के कारण इस राज्य का अन्त हो गया।

प्रशासन-व्यवस्था

सारा देश प्रान्तीय और वंशानुगत राज्यों में विभक्त था। राजा निरंकुश, स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित होते थे। निरंकुश होने पर भी प्रजा की रक्षा करना और जन-कल्याण के कार्य करना राजा अपना कर्त्तव्य समझते थे। वे प्रजाहितैषी होते थे और प्रजा को सुखी, समृद्ध और संतुष्ट करना चाहते थे। राजा के देवत्व में लोगों का विश्वास था और प्रजा राजा को देवता तुल्य मानती थी। राजा की निरंकुशता से प्रजा में राजा के प्रति उदासीनता थी। लोगों में राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति और राजनैतिक जागरुकता का अभाव था। राज्यों में परस्पर ईर्षा, द्वेष और गृह-युद्ध थे। उनमें राजनैतिक एकता और समष्टि का अभाव था। राजाओं ने दृढ़ विदेशी नीति नहीं अपनाई, उन्होंने अन्य नरेशों से सुरक्षात्मक संधियां नहीं की, न किलेबन्दी और सुरक्षा पंक्ति स्थापित कर सीमा की रक्षा की। देश की सुरक्षा और सैन्य शक्ति सामन्तों पर आश्रित होने से और प्रशासन में सामन्तों का अधिकार होने से राजनैतिक अव्यवस्था और प्रशासकीय शिथिलता आ गयी थी। राज्य में सामन्तशाही थी। प्रशासन और सेना में ऊँचे पदों पर सामन्तों और कुलीन परिवारों के लोग होते थे। सामन्तशाही प्रचलित होने से स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की प्रवृत्ति थी। सेना राजा की कम होती थी पर सामन्तों की सम्मिलित सेना थी। सेना में पदाति, अश्वारोही और हाथी होते थे। पाल नरेशों और चोल राजाओं के पास जल सेना भी थी। राज्य की सुरक्षा के लिये दुर्ग बनाये जाते थे। पर सैन्य संगठन दूषित था, रण-पद्धति और अस्त्र-शस्त्र प्राचीन थे। सैनिकों में अभ्यास, प्रशिक्षण और अनुशासन का अभाव था। राजपूत युद्धप्रिय होने से युद्ध और संघर्ष परम्परागत हो गये थे। सैनिकों के प्रोत्साहन के लिये भाट, चारण आदि होते थे। राज्य में न्यायदान की व्यवस्था थी। राजा और ग्राम-पंचायतें धर्मशास्त्रों और परम्पराओं के अनुसार न्याय करते थे। भूमि-कर, सामन्तों और जागीरदारों से प्राप्त वार्षिक कर, भेंट उद्योगों और आयात-निर्यात

पर लगे कर, आर्थिक दंड, वन तथा खदानों की वस्तुओं पर लगे कर राज्य की आय के मुख्य साधन थे। भूमिकर उपज का छठा भाग होता था। कर वसूल करने वाले अधिकारी को शौल्किक कहते थे। राज्य की आय-व्यय के चार भाग थे १. शासकीय कर्मचारियों, अधिकारियों का वेतन, २. राष्ट्रीय और सार्वजनिक कार्य, ३. शिक्षा और दान, ४. सेना, युद्ध और राजवंश पर व्यय। धर्मशाला, सदावर्त मंदिर, मठ, बिहार आदि पर भी धन व्यय होता था। प्रशासन की सुविधाओं के लिये सम्पूर्ण राज्य भुक्तियों, विषयों और ग्रामों में विभक्त होता था जिनमें स्थायी नौकर और अधिकारीगण होते थे। नियमित स्थायी नौकरशाही थी और अधिकारियों तथा कर्मचारियों के लिये "कायस्थ" शब्द का प्रयोग किया जाता था। प्रशासन में राजा की सहायता और सहयोग के लिये मंत्री होते थे। धर्म की रक्षा और धार्मिक कार्यों के हेतु राजपुरोहित होते थे। केन्द्र में युद्ध विभाग, परराष्ट्र विभाग, राजस्व विभाग, वाणिज्य विभाग, न्याय विभाग, राजप्रासादों और किलों की देखरेख का विभाग, पुलिस और गुप्तचर विभाग धर्म विभाग आदि होते थे। ग्रामों में स्थानीय स्वशासन प्रचलित था जिसे ग्राम परिषदें संभालती थीं। नगरों में भी स्थानीय प्रशासन व्यवस्था थी। शिक्षा, तालाब, बाँध, सिंचाई, मंदिर, देवालय, सुरक्षा आदि के लिये उपसमितियाँ होती थीं। निरन्तर युद्धों में रत रहने के कारण इस युग के नरेश ऐसी दृढ़ और स्थायी शासन व्यवस्था स्थापित न कर सके, जिससे दीर्घकालीन शान्ति और सुरक्षा स्थापित हो सके।

सामाजिक जीवन—लोगों में विभाजन की प्रवृत्ति, आचार-विचार की संकीर्णता, रुढ़िवादिता, अनुदारता और अंधविश्वास था। समाज की प्रगतिशीलता मंद हो गई थी और आत्मीयकरण की प्रवृत्ति लुप्त हो गई थी। अभी भी वर्णाश्रम धर्म समाज का आधार माना जाता था और वर्ण-व्यवस्था पर लोगों की श्रद्धा थी। हिन्दू समाज में जन्म, निवास स्थान, उद्योग-धन्धे, विवाह और खान-पान के भेद-भावों, रीति-रिवाजों और धार्मिक संस्कारों के कारण अनेक जातियों और उपजातियों का उत्कर्ष हुआ। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों में अनेकानेक उप जातियाँ बन गईं, तथा अछूतों के पंचमवर्ग का उत्कर्ष हुआ। इन जातियों की जटिलता, संकीर्णता, अपरिवर्तनशीलता, रुढ़िवादिता और वर्जनशीलता में वृद्धि हुई। समाज में विदेशियों को आत्मसात करने की वृत्ति लुप्त हो गई तथा उसकी व्यापकता और प्रगतिशीलता मंद हो गई। साधारण लोगों के भोजन में सादगी व पवित्रता थी, पर मांस, मदिरा और अफीम सेवन भी अधिक प्रचलित हो गया था। वेश-भूषा सादी थी पर रंगों की विविधता थी। समाज में अनेक प्रकार के संस्कार और श्राद्ध की प्रथा प्रचलित थी। सवर्ण, सजातीय, कभी-कभी अन्तर्धार्मिक और अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे। बहु-पत्नि प्रथा प्रचलित थी और बाल-विवाह प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। क्षत्रियों में कन्या हरण और राजपरिवारों में स्वयंवर-प्रथा थी। राजपूतों में कन्या-जन्म अशुभ और अवांछनीय माना जाने पर कन्या की शैशवकाल में ही हत्या करदी जाती थी। समाज में स्त्रियों का सम्मान था और उन्हें शिक्षा दी जाती थी। उच्च कुलीन परिवारों में अनेक स्त्रियाँ विदुषी होती थीं, कतिपय स्त्रियाँ प्रसिद्ध कवियत्री भी थीं, कुछ

रानियाँ युद्ध और प्रशासन में दक्ष थीं। समाज में पर्दा-प्रथा नहीं थी, पर सती-प्रथा, देवदासी-प्रथा और वैश्यावृत्ति प्रचलित थी। इस युग में स्त्रियों की पराधीनता और परवशता बढ़ गई थी। राजपूत स्त्रियों में प्रतिष्ठा, पवित्रता और सतीत्व के उच्च आदर्श थे और उनकी रक्षा के लिये वे जौहर तक करती थीं। समाज में उत्सव, मेला, रथ-यात्रा, जुलुस, संगीत, नृत्य, अभिनय, शतरंज, जुआ, पानी के खेल आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। भारतीय अपने उज्वल चरित्र, पवित्र, श्रेष्ठ व्यक्तित्व, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और न्यायप्रियता के लिये प्रसिद्ध थे। परन्तु तांत्रिक आचार-विचार और मांस-मदिरा के बाहुल्य ने, चरित्र, सदाचार और आदर्श का स्तर निम्न कर दिया था। इस्लाम के आक्रमणकारियों की निरन्तर विजय, क्रूरता और बर्बरता से अनेक हिन्दुओं ने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। परन्तु ऐसे मुसलमान होने वाले हिन्दुओं को शुद्धकर पुनः हिन्दू समाज और धर्म में लेने के लिये स्मृतिकारों ने विधान प्रस्तुत किये। परन्तु कालान्तर में इसका विरोध किया गया और इस्लाम में दीक्षित हिन्दू बहिष्कृत रहे।

आर्थिक जीवन—भारत पूर्व मध्यकाल में समृद्धिशाली और धनसम्पन्न था। ग्रामों की संख्या अधिक थी। वे स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर होते थे। गांवों का जीवन सीधा-सादा और पवित्र होता था। अनेक वैभवशाली, सम्पन्न नगर भी थे। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। भूमि-नाप और वर्गीकरण की प्रथा प्रचलित थी। कृषकों की आर्थिक दशा संतोषप्रद थी। सिंचाई के लिये तालाब, झीलें, कुए, बाँध, नहरें आदि साधन थे। देश में विभिन्न व्यवसाय प्रचलित थे। इनमें सूती और रेशमी वस्त्र बनाने का व्यवसाय अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय था। वस्तु-विनिमय और क्रय-विक्रय के लिये हाट, बाजार और मेले लगते थे। उद्योग-व्यवसाय और व्यापार की उन्नति के लिये व्यावसायिक श्रेणियां और संगठन होते थे। ये संगठन बैंकों का कार्य भी करते थे। भारत का मध्य एशिया के देशों, खोतान, कूचा, तिब्बत, चीन आदि देशों से तथा फारस, ईराक, मिश्र, अरब, आदि पश्चिमी देशों से व्यापार होता था। अनेक अरब व्यापारी भारत में विदेशी व्यापार की वस्तुएँ लाते और ले जाते थे। अनेक प्रसिद्ध बंदरगाह थे और कई वस्तुओं का आयात निर्यात होता था आंतरिक व्यापार प्रगतिशील था। कालान्तर में विदेशों से सम्बन्ध टूट जाने से और अरबों तथा तुर्कों के निरन्तर आक्रमणों के कारण विदेशी व्यापार अवरुद्ध हो गया था और औद्योगीकरण रुक गया था। विनिमय के हेतु सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के प्रचुर मात्रा में थे। इनके अतिरिक्त कौड़ियों का भी उपयोग होता था। इस युग में देश सम्पन्न होने के कारण विदेशियों ने अनेक आक्रमण किये।

धार्मिक जीवन—इस काल में प्रत्येक मुख्य धर्म अनेक मतों सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था। बौद्ध धर्म में हीनयान, महायान और वज्रयान के अतिरिक्त अनेक मत हो गये थे। वज्रयान में तंत्र-मंत्र, हठयोग, यौगिक क्रियाओं, मांस, मदिरा आदि का उपयोग होने लगा था और अनेक देवी-देवताओं की पूजा होने लगी थी। इससे बौद्ध संघ और विहार तंत्रवाद और गुह्य साधनों के केन्द्र बन गये थे। उनमें भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास और तीव्र मतभेद थे। बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों का जीवन

विलासमय और कलुषित हो गया था। राजपूत नरेशों ने बौद्ध धर्म को संरक्षण नहीं दिया पर बंगाल के पाल नरेशों के राज्याश्रय में बौद्ध धर्म वहाँ विद्यमान रहा। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बौद्ध विहारों और स्मारकों को नष्ट कर दिया। इस युग में जैन धर्म में भी अंधविश्वास, रुढ़िवादिता, मूर्ति-पूजा, मंदिर-निर्माण प्रथा अधिक बढ़ गई थी और जैन धर्म की प्रगति भी अवरुद्ध हो गई थी। उत्तरी भारत में जैनियों की संख्या कम हो गई थी पर दक्षिण भारत में कतिपय राजाओं के संरक्षण से जैन धर्म अधिक प्रचलित रहा।

इस युग में ब्राह्मणधर्म को अधिक लोकप्रिय आधार पर संगठित कर व्यापक बना दिया गया और सभी सम्प्रदायों के धार्मिक सिद्धांतों और विधियों का विशाल साहित्य तैयार किया गया। अवतारवाद का सिद्धांत दृढ़ और सर्वमान्य हो गया। विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा की जाने लगी। बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मानकर उसकी पूजा प्रारम्भ हो गई। भक्तिवाद का भी प्रचार खूब बढ़ा और इससे मंदिरों और मूर्ति-पूजा की बाहुल्यता हो गई। वैष्णव सम्प्रदाय का खूब प्रचार हो गया और राम तथा कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाने लगा। विष्णु की मूर्ति की पूजा और उपासना होने लगी। शैव धर्म भी अपने पाशुपत, कापालिक, वीरशैव, लिंगायत आदि सम्प्रदायों सहित प्रचलित था। शिव की उपासना व पूजा लिंग रूप में होने लगी। शैव सम्प्रदायों को राजपूत नरेशों ने, चोल और पांड्य राजाओं ने राज्याश्रय दिया था। शैव मत के विशाल मठ बनाये गये। शिव के साथ शक्ति उपासना भी प्रारम्भ हुई। दुर्गा, काली, भवानी, भगवती, अम्बा, अन्नपूर्णा, कंचनदेवी, सर्वमगला, लक्ष्मी, शीतला, पार्वती, आदि रूपों में शक्ति को देवी की पूजा की जाने लगी। पूजा में पशु और कभी-कभी नर-बलि भी दी जाती थी। शक्ति पूजा और शाक्त सम्प्रदाय के प्रसार से तंत्रवादका विकास हुआ। तंत्रवाद, जादू-टोना, झाड़-फूँक, मदिरा और मांस का उपयोग आदि भी धर्म का एक अंग मान लिया गया। अन्य देवी-देवताओं की पूजा उपासना के साथ सूर्य और गणेश की भी पूजा होती थी और सूर्य ग्रहण पर अतुल दान दिया जाता था। योगाभ्यास और यौगिक क्रियाओं के विकास से नाथ सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें हठयोग, प्राणायम और सिद्धि की प्रधानता मानी गई। लोग पवित्र तीर्थ स्थानों की यात्रा करते थे, वहाँ दान-पुण्य करते थे और धन-सम्पन्न लोग मंदिर, देवालय और मूर्तियां निर्मित करते थे। ये मोक्ष प्राप्ति के साधन माने जाते थे। हिन्दू धर्म को अधिक लोक-प्रिय और व्यापक बनाने के हेतु अनेक सुधारक और संत विद्वान भी हुए, इनमें, कुमारिलभट्ट, शंकराचार्य, निंबार्क, माध्वाचार्य आदि प्रमुख थे।

शिक्षा

इस युग में प्रसिद्ध आचार्य और विद्वान् शिक्षा प्रसार का कार्य करते थे। बड़े बौद्ध बिहार और मंदिर भी शिक्षा के केन्द्र हो गये थे। नालन्दा, विक्रम शीला, विक्रमपुर, जगधल और औदन्तपुरी के महाविहार तथा वाराणसी धारा, वलभी नवद्वीप, उज्जैन, कन्नौज, मदुरा, आदि भी शिक्षा के प्रधान केन्द्र थे। यहाँ धार्मिक

और लौकिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। वेद, वेदांग, बौद्ध त्रिपिटक, जैन आगम, धनुर्विद्या, चिकित्सा शास्त्र, तर्क विद्या, ज्योतिष, आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। उच्च शिक्षा के लिये नालन्दा और विक्रमशीला विश्वविद्यालय थे जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी।

साहित्य

इस युग में अनेक सामन्त, राजा और सम्राट साहित्य के उदार आश्रयदाता थे। राजा मुंज, भोज, अमोघवर्ष, आदि नरेश तो स्वयं बड़े विद्वान्, लेखक और कवि थे तथा इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की, विशेषकर राजा भोज ने। यद्यपि इस युग में अनेक विषयों पर ग्रंथ रचे गये पर ये ग्रंथ निम्न कोटि के थे। उनमें सरसता, सुरुचि और मौलिकता का अभाव था। अनावश्यक अलंकारों और क्लिष्ट कल्पना की प्रधानता थी। संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत, अपभ्रंश और प्रांतीय भाषाओं का अच्छा विकास हुआ और उनमें ग्रंथ लिखे गये।

———

अध्याय २

इस्लाम का उत्कर्ष

विश्व इतिहास में इस्लाम धर्म का उत्कर्ष और प्रसार एक अत्यन्त युग प्रवर्तक घटना है। इस्लाम के अनुयायियों ने अपने धर्म के प्रचारार्थ अरब देश से पूर्व और पश्चिम के देशों को प्रस्थान किया और वहाँ अपनी धार्मिक और राजनैतिक विजयों से तत्कालीन जीवन और संस्कृति को झकझोर दिया। आठवीं सदी में इस्लाम के अनुयायियों ने भारत पर आक्रमण किया और तब से निरन्तर आक्रमणों का क्रम सदियों तक चलता रहा। इन आक्रमणों से और भारत में इस्लाम के प्रवेश और प्रसार से एक नये युग का प्रारम्भ होता है। इन आक्रमणों के पूर्व और इस्लाम के आगमन के पहिले भारत पर अनेक बर्बर विदेशियोंने और विधर्मियों ने अनेकानेक आक्रमण किये। पर वे भारतीयों को विशिष्ट रूप से प्रभावित नहीं कर सके। इन आक्रमणकारियों की अपेक्षा इस्लाम के अनुयायियों के आक्रमण अधिक बर्बर, क्रूर और विनाशकारी प्रमाणित हुए। इस्लाम के अनुयायियों ने अपनी राजनैतिक सत्ता यहाँ स्थापित करली और सर्वप्रथम भारत को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। भारत में इन समस्त क्षेत्रों में सर्वथा विविध विचारधाराओं, आचार-विचार और विभिन्न संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। फलतः भारत में दो विरोधी संस्कृतियों और जीवन का उत्कर्ष हुआ तथा इन्होंने भारतीय एकता और समष्टि को गहरा आघात पहुँचाया। दीर्घकालीन सदियों के संघर्ष का युग प्रारम्भ हुआ, और बीसवीं सदी में भयंकर राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हुआ और देश का विभाजन हो गया।

अरब देश और उसके निवासी—पश्चिमी एशिया में अरब एक प्रायद्वीप है। अत्यधिक गर्मी, वर्षा का सर्वथा अभाव, बालु की प्रचुरता और भूमि की अनुर्वरता अरब देश की प्राकृतिक दशाओं की विशेषताएँ हैं। इससे वहाँ की जनसंख्या सीमित रही और कृषि के अभाव में पशु-पालन और लूट पर उनका जीवन आधारित रहा। अस्थायी निवास और खानाबदोश का जीवन रहा। सामरिक प्रवृत्ति, संघर्ष और युद्ध उनके स्वभाव के प्रमुख अंग बन गये। वे अनेक कबीलों या गिरोहों में विभक्त थे। संगठन व समष्टि का अभाव था। उनके विषय में एक विद्वान का मत है "अरबों का कार्य है लूट के उद्देश्य से निरन्तर धावे करना, शत्रु के विरुद्ध, अपने पड़ोसी के विरुद्ध और यदि कोई अन्य व्यक्ति न मिले तो अपने सगे भाई के विरुद्ध।"

अरब का समुद्र तट अधिक उपजाऊ और अधिक जनसंख्या वाला प्रदेश था। यहाँ के निवासी अन्य देशों के व्यापारियों के सम्पर्क में आये और धीरे-धीरे इन्होंने समुद्र पार करके भारत, फारस, ईराक और मिश्र के देशों से व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया। अरब के अनेक व्यापारी भारत के समुद्र तट के बन्दरगाहों और नगरों

तक आते थे और यहाँ की उपज, गरम मसाले, खनिज पदार्थ, दैनिक जीवन की वस्तुएं तथा अन्य व्यापारिक सामग्री पूर्वी और पश्चिमी देशों को ले जाते थे।

धार्मिक दृष्टि से अरब निवासी इस समय हिन्दुओं के समान ही थे। वे बहुदेव-वाद में विश्वास करते थे और देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते थे। वे कुल-देवता, ग्रामदेवता, कबीले या गिरोह के देवता में, भूत-प्रेत, आदि में विश्वास करते और उनकी पूजा-उपासना करते थे। उनमें अंधविश्वास अधिक था। मक्का नगर उनका प्रमुख तीर्थ स्थान था जहां ३६० मूर्तियों की पूजा होती थी। मक्का में, काबा में एक अति प्राचीन विशाल काला पत्थर है और ये ऐसा विश्वास करते थे कि ईश्वर ने इसे आकाश से पृथ्वी पर गिरा दिया। इससे वे इसे बड़ा पवित्र मानते थे और उसके दर्शन व पूजा करते थे। यह पत्थर आज भी विद्यमान है और बड़े सम्मान और श्रद्धा से देखा जाता है। अरब के इस धार्मिक जीवन और धारणाओं में मुहम्मद साहब ने अपने सिद्धान्तों और उपदेशों से क्रांति उत्पन्न कर दी।

पैगम्बर मुहम्मद साहब—(सन् ५७०-६३२) हजरत मुहम्मद साहब का जन्म सन् ५७० में मक्का में कुरेशी कबीले में हुआ था। इनके पिता का नाम अब्दुला और माता का नाम जुहरा था। बाल्यकाल में ही इनके माता-पिता का देहावसान हो जाने से इनके चाचा अबूतालिब ने इनका पालन-पोषण किया और वह स्वयं व्यापारी होने से उसने मुहम्मद साहब को भी अपने व्यापार में लगा लिया। व्यापार के कारण वे विभिन्न प्रदेशों में गये और अच्छा अनुभव प्राप्त किया। इसी बीच उन्होंने खदीजा नामक एक धन सम्पन्न व्यापारी महिला से प्रेम होने के कारण विवाह कर लिया। खदीजा मुहम्मद साहब से आयु मे अधिक बड़ी थी। खदीजा से छः संतान दो पुत्र और चार पुत्रियाँ हुईं। चालीस वर्ष की आयु तक मुहम्मद साहब सुखद पारिवारिक जीवन व्यतीत करते रहे। कहा जाता है कि इसके बाद एक दिन फरिश्ता जिबराइल ने मुहम्मद साहब को दर्शन दिये और उन्हें ईश्वर का यह संदेश सुनाया, "अल्लाह का नाम लो जिसने सब वस्तुओं की रचना की है।" कुछ समय बाद वे जब मक्का के समीप एक पर्वत पर भजन और उपासना में मग्न थे, उन्हें वहाँ ईश्वर के दर्शन हुए और यह संदेश मिला, "अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है।" इस प्रकार ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त होने के बाद मुहम्मद साहब ने अपने सिद्धातों का उपदेश देना प्रारम्भ किया। इससे उनके शिष्यों की संख्या में वृद्धि होने लगी। कुछ समय पश्चात् कुरेशी कबीले के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने मुहम्मद साहब का विरोध किया। क्योंकि मुहम्मद साहब कुरेशी कबीले के लोगों की मूर्ति-पूजा और अन्य धार्मिक बातों का विरोध करते थे। कुरेश कबीले के विरोधियों ने मुहम्मद साहब को मार डालने के लिये षड़यंत्र रचा। पर इसके कार्यान्वित होने के पूर्व ही सन् ६२२में वे मक्का से भाग कर मदीना चले गये। इसी घटना से मुसलमानोंका हिजरीसन् प्रारम्भ होता है।

मदीनावासियों ने मुहम्मद साहब का खूब सत्कार किया, उनके उपदेशों और सिद्धांतों को सुना और बहुत बड़ी संख्या में उन्होंने मुहम्मद साहब के नवीन धर्म को ग्रहण कर लिया। मदीने के कबीलों की एक सेना संगठित करके मुहम्मद साहब ने

अब मक्का पर आक्रमण किया और अन्त में वे विजयी हुए। मक्का के निवासियों ने अब उनके धर्म को ग्रहण कर लिया। धीरे-धीरे अरब के विभिन्न प्रदेशों में उनके धर्म और सिद्धान्तों का प्रचार बढ़ता गया और वे अब ईश्वर के पेगम्बर कहलाये। अब उन्होंने अपने धर्म के प्रचारार्थ विदेशों में कई व्यक्ति भेजे। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर आक्रमण कर इस्लाम का प्रसार किया। सन् ६३२ में उनका स्वर्गवास हुआ।

इस्लाम के सिद्धान्त--जिन सिद्धान्तों और उपदेशों का प्रचार मुहम्मद साहब ने किया वह इस्लाम धर्म के नाम से प्रख्यात है। "इस्लाम" शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के "सलम" शब्द से है जिसका अर्थ है आज्ञा का पालन। "इस्लाम" शब्द से अभिप्राय है आज्ञा का पालन करने वाला। इस्लाम का वास्तविक अर्थ है खुदा के हुक्म पर गर्दन रखने वाला। परन्तु आजकल व्यापक रूप में इस्लाम से अभिप्राय वह धर्म है जिसे मुहम्मद साहब ने प्रचलित किया था और जिसके वे संस्थापक और प्रवर्तक थे। मुहम्मद साहब के उपदेश "कुरान" नामक ग्रंथ में संग्रहित हैं। "कुरान" की उत्पत्ति अरबी के "किरन" शब्द से हुई जिसका अर्थ है पास या समीप। कुरान से तात्पर्य है वह ग्रंथ जो जन-साधारण को ईश्वर के समीप ले जाता है। मुहम्मद साहब ने ईश्वर का पैगाम या सन्देश लोगों को दिया इससे वे पैगम्बर कहलाये।

मुहम्मद साहब का सिद्धान्त था कि ईश्वर एक है और वह सर्व शक्तिमान, सर्वद्रष्टा तथा अत्यन्त दयालु है। सभी मानवों को ईश्वर ने बनाया है अतएव सभी समान हैं। उनमें ऊँच-नीच की भावना नहीं होना चाहिये अपितु भ्रातृत्व की भावना होना चाहिये। इसी बंधुत्व और समानता की भावना ने इस्लाम और इस्लाम के अनुयायियों के समाज को लोकतन्त्रात्मक बना दिया। मुहम्मद साहब ने लोगों को अल्लाह में कलमा, नमाज, कयामत, खैरात (दान), फरिश्ता आदि में विश्वास करने का उपदेश दिया। "अल्लाह" अरबी के "अलह" शब्द से बना है जिसका अर्थ है पाक या पवित्र जीव। कलमा से तात्पर्य है ईश्वर वाक्य, जो कुछ ईश्वर की ओर से लिखकर आया है वह कलमा है। नमाज दो शब्दों से मिलकर बना है--नम+आज। नम का अर्थ है ठंडा करने वाला या मिटाने वाला और आज का अर्थ है वासनाएं और बुरी इच्छाएँ। अतएव नमाज से तात्पर्य है प्रार्थना और उपासना करना जिससे मानव वासनाएँ नष्ट होती हैं। प्रत्येक मुसलमान के लिये दिन में पांच बार--प्रातः, दोपहर, तीसरे पहर, संध्या और रात्रि--में नमाज पढ़ना आवश्यक है। शुक्रवार को सभी सामूहिक रूप से एकत्रित होकर नमाज पढ़ते हैं। कयामत अरबी के क़यम शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है खड़ा होना। कयामत या प्रलय के दिन मुर्दों को अपनी कब्रों में से निकलकर खड़ा होना पड़ेगा। कयामत का वास्तविक अर्थ है विश्व का मिट जाना। खैरात से अभिप्राय है अपनी संपत्ति को दीन-दुखियों में दान देना। भिक्षा या दान देने से धन की वृद्धि होती है और दान में दिये धन को "जकात" कहते हैं। प्रत्येक मुसलमान या इस्लाम के अनुयायी को अपनी आय का चालीसवां हिस्सा खुदा की राह में या भीख व दान में देना चाहिये। प्रत्येक मुसलमान को रमजान माह में या नवें माह में रोजा रखना चाहिये। "रमजान" अरबी के "रमज" शब्द से निकला है जिसका अर्थ है शरीर के किसी अंग को जलाना। रमजान माह में रोजा या व्रत रखकर दिन

भर बिना खाये-पीये रहकर, शरीर को जलाया जाता है। इस व्रत के रखने से बरकत या वृद्धि होती है और आमदनी तथा कमाई बढ़ती है। प्रत्येक मुसलमान ने हज करना चाहिये। "हज" का अर्थ है इरादा या संकल्प करना, पर व्यवहारिक रूप में "हज" से तात्पर्य है मक्का में जाकर बन्दगी करना, तीर्थयात्रा और प्रार्थना, उपासना आदि करना। इन बातों के अतिरिक्त मुहम्मद साहब ने मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पुनर्जन्म, तंत्रवाद, ऊँच-नीच की भावना, अन्धविश्वास आदि का विरोध किया। उन्होंने मादक द्रव्यों को भी त्याग देने का उपदेश दिया था। अपने इन सिद्धान्तों और उपदेशों के द्वारा मुहम्मद साहब ने अरबों के विभिन्न परस्पर युद्ध करने वाले कबीलों को, सामरिकता की भावना त्याग, शान्ति का जीवन व्यतीत करने को प्रेरित किया, विशृंखलित अरबों को बन्धुत्व के भाव में लेकर, उत्साही, कर्मठ तथा संगठित जाति के रूप में परिणित कर दिया।

कालान्तर में इस्लाम धर्म के अनुयायी दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गये-- शिया तथा सुन्नी। 'शिया' का अर्थ है गिरोह परन्तु व्यवहार में शिया से तात्पर्य उन मुसलमानों से और उनके उस सम्प्रदाय से है जो अली को ही मुहम्मद साहब का वास्तविक उत्तराधिकारी मानते हैं, प्रथम तीन खलिफाओं को नहीं। "सुन्नी" शब्द अरबी के "सुनत" शब्द से उत्पन्न हुआ है जिससे तात्पर्य है मुहम्मद साहब के कामों की नकल करना। सुन्नी सम्प्रदाय के लोग प्रथम तीन खलिफाओं को ही मुहम्मद साहब का वास्तविक उत्तराधिकारी मानते हैं, मुहम्मद साहब के जमाई अली को नहीं।

खलिफाओं का अभ्युदय और इस्लाम का प्रसार—जिस समय मुहम्मद साहब ने अपने धर्म का प्रचार और प्रसार प्रारंभ किया, अरब प्रायद्वीप के पड़ोसी राज्य शक्तिहीन थे। इसके विपरीत अरबों में नवीन धर्म का जोश और दक्षता थी। वे इस्लाम के प्रसार करने के लिये "तलवारों के साये में नमाजे हक" अदा करने का नारा बुलन्द करने लगे। मुहम्मद साहब की भी उत्कंठा इस्लाम का अधिकाधिक प्रसार करना था। अतएव अरब के पार्श्ववर्ती प्रदेशों की शक्तिक्षीणता और विघटन की प्रवृत्तियों ने अरबों को अनेकानेक अच्छे अवसर इस्लाम के प्रसार के लिये दिये। इस प्रसार में मुहम्मद साहब के शिष्यों और अरब के खलिफाओं ने खूब योगदान दिया। "खलिफा" शब्द की उत्पत्ति अरबी के "खलफ" शब्द से हुई है और खलफ से तात्पर्य है उत्तराधिकारी। मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी खलीफा कहलाये। प्रारम्भ में तो खलीफा का पद निर्वाचित होता था, परन्तु कालान्तर में यह पद आनुवंशिक हो गया।

मुहम्मद साहब ने किसी को भी अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। इसलिये उनके अनुयायियों में उत्तराधिकारी बनने के लिये झगड़ा हो गया, विशेषकर दो व्यक्तियों में, प्रथम मुहम्मद के दामाद अली और द्वितीय उनके ससुर अबूबकर में। बड़े विवाद के बाद अबूबकर मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी चुन लिये गये। यह प्रथम खलीफा था। उसने मुहम्मद साहब की इच्छानुसार मेसोपोटामिया और सीरिया में बलपूर्वक इस्लाम धर्म का प्रचार किया। सन् ६३४ में उनकी मृत्यु के बाद उमर निर्विरोध खलीफा निर्वाचित हुआ। उसने इस्लाम के अनुयायियों की एक विशाल दृढ़ सेना संगठित की और दिग्विजय, राज्य-विस्तार और धर्म प्रसार के कार्य एक साथ

किये। पराजित देशों के लोगों को उसकी सेना शक्ति के आधार पर मुसलमान बना लेती थी। उसने सीरिया, मेसोपोटामिया, असीरिया, बेबीलोन, फारस और मिश्र में इस्लाम का प्रसार किया। अब पूर्व में अफगानिस्तान से पश्चिम में त्रिपोली और स्पेन तक इस्लाम फैल गया। सन् ६४४ में उसकी मृत्यु के बाद उसमान खलीफा बना। परन्तु वह विलासी और निष्क्रिय था। इसलिये उसका वध कर दिया गया और मुहम्मद साहब के दामाद अली को खलीफा बना दिया गया। पर कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। इससे गृह-युद्ध छिड़ गया और अन्त में अली की हत्या कर दी गयी। अली के उत्तराधिकारी उसके पुत्र हसन ने खलीफा के उच्च पद को संभालने में अपने को असमर्थ पाया और खलीफा पद से त्याग-पत्र दे दिया। अब सीरिया प्रदेश का राज्यपाल मुआबिया जो खलीफा उमर के वंश का था, खलीफा निर्वाचित हो गया और हसन ने मुआविया के पक्ष में इसलिये इस शर्त पर त्यागपत्र दे दिया कि खलीफा का पद निर्वाचित रहेगा, वह आनुवंशिक नहीं किया जायगा।

उमैयद या उमइया वंश के खलीफा—मुआविया खलीफा का वंश उमइया वंश था। इसलिये वह और उसके उत्तराधिकारी उमइया वंश या उमैयद वंश के खलीफा कहलाये। मुआविया महत्वाकांक्षी था और अपने ही वंश का राज्य दृढ़ करना चाहता था। इसलिये उसने खलीफा की राजधानी मदीना से हटाकर दमिश्क में स्थापित कर ली। उसने बीस वर्ष तक शासन किया और इस्लाम का प्रचार किया। अपने इस शासन काल में उसने खलीफा का पद निर्वाचित करने की अपेक्षा पैतृक कर दिया और अपने पुत्र याजिद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। इससे तीव्र असन्तोष फैला और पुनः गृहयुद्ध भड़का। इसका नेतृत्व खलीफा अली के पुत्र हसन के भाई इमामहुसेन ने किया और सेना संगठित कर उमैयद खलीफा की सेना का रणक्षेत्र में बड़ी वीरता और साहस से सामना किया। पर इस युद्ध में हुसेन उसके विरोधियों द्वारा कत्ल कर दिया गया। जिस रणक्षेत्र में हुसैन मारा गया उसे अरब में कर्बला कहते हैं। "**कर्बला**" दो **शब्दों से बना** है—कर्ब अर्थात् मुसीबत और बला अर्थात दुःख। रणक्षेत्र में मुहम्मद साहब की कन्या के पुत्र हुसेन का वध कर दिया गया था और इस मुसीबत और दुःख में उसने अपनी बली दे दी थी, इसीलिये इस मैदान का नाम कर्बला हो गया। यह घटना मुहर्रम माह की दसवीं तारीख को हुई थी, इसलिये इस्लाम के अनुयायी इस माह को शोक का महीना मानते है और इस माह की दसवीं तारीख को मुहर्रम का त्योहार मनाते हैं।

उमैयद वंश के खलीफाओं के शासन काल में इस्लाम का राज्य विस्तार करने के लिये साम्राज्यवादी सामरिक नीति अपनाई गयी और दूर-दूर देशों में सेना द्वारा विजय करके धर्म का प्रचार किया गया। इस समय सिंधु, सार्डेनिया, अफ्रीका के उत्तरी भाग, वेजेन्टाइन साम्राज्य, फारस और ईराक खलीफाओं के साम्राज्य में मिला लिये गये। भारत में भी इन खलीफाओं के शासन काल में इस्लाम के प्रसार के प्रयत्न किये गये। उमैयद खलिफाओं का साम्राज्य दीर्घकाल तक स्थायी नहीं रह सका। क्योंकि इन खलिफाओं में अरबवासियों के प्रति विशेष अभिरुचि और पक्षपात था। वे साम्राज्य के अन्य देशों के लोगों की अपेक्षा अरबों को अधिक महत्व देते थे और

अरबोंके अयोग्य होने पर भी उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त करते थे। इससे साम्राज्यके अन्य देशों के अधिकारी और निवासियों के हृदय में खलीफाओं के प्रति श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा कम होती गयी और अरबों के प्रति द्वेष, ईर्षा बढ़ती गयी। इसी द्वेष-ईर्षा और प्रतिहिंसा का लाभ उठाकर अब्दुल अब्बास नामक व्यक्ति ने खलीफा अली के पुत्र इमामहुसैन द्वारा प्रारम्भ किये गृह-युद्ध को उमैयद खलिफाके विरुद्ध पुनःप्रारम्भ किया और विद्रोह खड़ाकर उसका नेतृत्व किया। उसने तत्कालीन खलीफा और उसके वंश के व्यक्तियों की हत्या कर दी और स्वयं खलीफा बन गया।

अब्बासीद वंश के खलीफा—अब्दुल अब्बास खलीफा का वंश अब्बासीद वंश कहलाया और उसके उत्तराधिकारी खलीफा अब्बासीद वंश के खलीफा कहलाये। इन खलीफाओं ने सन् ७४९ से १२५६ तक शासन किया। इन्होंने अपनी राजधानी दमिस्क से बदल कर बगदाद में स्थापित की। ये खलीफा इस्लाम के शिया सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वे अरबवासियों में और उनके साम्राज्य के अन्य देशों के निवासियों में कोई भेदभाव नहीं रखते थे और उन्होंने अरबों के विशेष अधिकारों का अन्त कर दिया। इस्लाम के सभी अनुयायियों के प्रति उन्होंने समानता का व्यवहार किया और योग्य तथा कार्य कुशल व्यक्तियों को ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित किया। इससे धीरे-धीरे उन्होंने धार्मिक कट्टरता और धर्मान्धता की नीति त्याग दी तथा सहिष्णुता और सद्भावना की नीति अपनाई। प्रजा के साथ उन्होंने समुचित व्यवहार किया, न्याय प्रियता अपनाई और अत्याचार तथा नृशंसता की नीति त्याग दी। इस वंश के खलिफाओं में अनेक प्रतिभाशाली खलीफा हुए जिन्होंने अपने कार्यों से इस्लाम के जगत में विशेष ख्याति प्राप्त की। इन खलिफाओं में हारुंरशीद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह अत्यन्त ही न्याय प्रिय, प्रजावत्सल, धर्मनिष्ठ, दयालु और कर्त्तव्य परायण खलीफा था। वह साहित्य और कला का भी उदार संरक्षक था।

इन खलिफाओं के शासन काल में ईरानियों और तुर्कों का प्रभाव अधिक बढ़ने लगा। तुर्कों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया और वे इन खलिफाओं के शासनकाल में अधिकाधिक शक्तिशाली होते गये। खलिफाओं ने भी तुर्कों को बहुत बढ़ावा दिया था। वे प्रशासन के ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त हो गये, राजनीति में अधिकाधिक हस्तक्षेप करने लगे तथा प्रशासन की सत्ता और अधिकार अपने हाथों में ले लिये। खलिफाओं पर भी उन्होंने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। धीरे-धीरे खलिफाओं की शक्ति सीमित हो गयी, उनका पद नाम-मात्र के लिये रह गया। तुर्कों ने शासन सत्ता खलिफाओं के हाथों से छीनकर, अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये और सुलतान पद को प्रतिष्ठित करना प्रारम्भ किया। खलीफा के राजनैतिक अधिकार और शक्ति समाप्त हो गयी थी और खलीफा का पद केवल धार्मिक ही रह गया था, और वह भी नाम-मात्र के लिये ही। इसी बीच मध्य एशिया में भयंकर राजनैतिक उथल-पुथल मची। मध्य एशिया में मंगोल जाति की बढ़ती हुई साम्राज्यवादी नीति ने खलिफाओं की शक्ति का अन्त कर दिया। सन् १२५६ में चंगेजखां के पौत्र हलाकुखां ने अब्बासीद वंश के अंतिम

खलीफा को युद्ध में परास्त कर बगदाद पर अधिकार कर लिया। अंतिम खलीफा मुस्तसीम का उत्तराधिकारी मंगोलों से अपनी जान बचाकर मिश्र चला गया। वहाँ के सुलतान ने उसे आश्रय दिया। मिश्र में रहकर खलीफा अपने धार्मिक अधिकारों का उपभोग करते रहे पर उनके हाथ में कोई राजनैतिक सत्ता या अधिकार नहीं थे। कालान्तर में यह अधिकार भी विलीन हो गये तथा खलिफाओं का गौरवशाली युग समाप्त हो गया।

भारत में इस्लाम का प्रवेश और प्रसार

जिस उत्साह, लगन और तीव्र गति से अल्पकाल में इस्लाम धर्म का प्रसार हुआ, उतना विश्व मे अन्य किसी भी धर्म का प्रसार नहीं हुआ। इसमें युद्ध,विजय और शक्ति से धर्म प्रचार हुआ। जिससे इस्लाम धर्म अपने प्रादुर्भाव के एक शताब्दि बाद ही विश्व के एक विस्तृत क्षेत्र में फैल गया।

भारत में भी इस्लाम का आगमन और प्रसार हुआ। यहाँ भी युद्ध, दिग्-विजय, शक्ति और व्यापार के साधनों से इस्लाम का प्रचार किया गया। खलिफाओं के शासनकाल में अरब व्यापारी भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर बस गये थे। अनेक अरब व्यापारी अरब से व्यापार के हेतु भारतीय राज्यों में आते-जाते रहते थे। भारतीय नरेशों ने इन व्यापारियों को खूब प्रोत्साहन दिया और इन नरेशों की धार्मिक सहिष्णुता और उदारता का लाभ उठाकर इन व्यापारियों ने इस्लाम का प्रचार किया, मसजिदें बनाई और इस्लाम के सन्तों द्वारा धर्म का प्रचार करवाया। दक्षिण भारत में और पश्चिमी समुद्रतटपर, इस शान्तिनीति द्वारा इस्लामधर्म का प्रचार होता रहा। परन्तु उत्तरी भारत में यह प्रचार शक्ति और बर्बरता से हुआ। वहाँ आक्रमण, नृशंसता, लूट-खसोट, अनाचार, अत्याचार के द्वारा इस्लाम का प्रसार हुआ। सिंध में अरबों के आक्रमण और विजय से तथा बाद में सुबक्तगीन और महमूद गजनी के निरन्तर आक्रमणों से भारत का द्वार इस्लाम के प्रचार के लिये खुल गया। मुहम्मद गौरी की विजय के बाद भारत में इस्लाम का राज्य स्थापित हो गया और इसके बाद दिल्ली के सुलतानों, सामन्तों और उनके अधिकारियों ने तथा प्रान्तीय शासकों ने यहाँ के निवासियों का धर्म परिवर्तन किया। इस्लाम धम अपनाने वाले को राज्य में ऊंचे पदों पर प्रतिष्ठित किया गया। समृद्धि और शासकीय पद व सम्मान प्राप्त करने के लिये इस्लाम का ग्रहण करना सरल सुगम मार्ग था। राजकीय और प्रशासकीय साधनों के अतिरिक्त इस्लाम के सन्तों ने भी अपने उपदेशों और आचार-विचार से इस्लाम का प्रसार किया। इन सन्तों में नूरुद्दीन, शेखमुइनुद्दीन चिस्ती, फरीदुद्दीन, निजामुद्दीन औलिया, नासिरुद्दीन, शेखसलीम चिश्ती आदि प्रमुख थे। इनमें से अधिकांश सूफी सन्त थे। इन्होंने प्रेम, श्रद्धा, भक्ति और साहित्यिक ग्रंथों द्वारा इस्लाम के सिद्धान्तों का प्रचार किया। भारत में इस्लाम के प्रचार और प्रसार का कार्य ग्यारहवीं सदी से तीव्रगति से प्रारम्भ हुआ और सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु पर्यंत लगभग छः सौ वर्षों तक यह कार्य चलता रहा। भारत में इस्लाम के प्रवेश, प्रचार और प्रसार की दीर्घ कहानी नृशंसता, संघर्ष, युद्ध और रक्त से रंजित है।

भारत में इस्लाम के व्यापक प्रसार और प्रचार के कारण

१. इस्लाम के अनुयायियों ने अपने आक्रमणों और युद्धों में पराजित राजपूत और हिन्दू राज्यों के निवासियों को लूटा, आतंकित किया। इस लूट, आतंक, अत्याचार और नृशंसता से अपनी रक्षा करने के लिये अनेक भारतीयों ने विवश होकर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। अनेक अवसर पर धर्म परिवर्तन के लिये शक्ति का उपयोग किया गया। (२) इस्लामी राज्य स्थापित हो जाने पर, इस्लाम का प्रचार करना और काफिरों का धर्म परिवर्तन करना राज्य का प्रमुख लक्ष हो गया। राज्य के प्रचुर साधनों का उपयोग इस्लाम के प्रसार में होने लगा। राजनीति और धर्म दोनों ही मिश्रित हो गये। (३) इस्लामी राज्य में हिन्दुओं पर जजिया कर तथा अन्य करों का अधिक बोझ लाद दिया गया। उनकी आर्थिक स्थिति को गहरे आघात लगाये गये। निर्धन और निस्सहाय हिन्दुओं ने जजिया तथा अन्य करों से मुक्ति पाने के लिये इस्लाम ग्रहण कर लिया। (४) प्रशासन में ऊंचे पद व राजकीय सम्मान का प्रलोभन और धार्मिक कर से मुक्ति हिन्दुओं को इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिये विवश करते थे। सम्पन्नता, समृद्धि, ऊंचे पद और सम्मान इस्लाम को अपनाने से सरलता से प्राप्त हो सकते थे। (५) जिन हिन्दु पुरुषों और स्त्रियों को विषम कठोर परिस्थिति वश विवश होकर इस्लाम धर्म ग्रहण भी करना पड़ा, उन्हें पुनः अवसर मिलने पर हिन्दू धर्म और समाज में चाहने पर भी स्थान न मिल सका। हिन्दू धर्म के कट्टर समर्थकों ने ऐसे धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को समाज में लेने का निषेध किया। उस समय हिन्दू धर्म और समाज में शुद्धि और संगठन की प्रवृत्ति नहीं थी। (६) हिन्दू समाज में ऊंच नीच की प्रवृत्ति, जातिवाद की जटिलता और हीन निम्नस्तर के लोगों पर हुए अत्याचारों से अनेक नीची जाति के लोग ऊब गये थे। वे अपने सामाजिक अपमान और धार्मिक नीषिद्धता को अब अधिक नहीं सहन कर सकते थे। इस्लामी समाज और धर्म में बन्धुत्व और समानता की भावना थी। इसलिये समाज में त्रस्त अनेक हिन्दुओं ने इस्लाम ग्रहण कर लिया। पंडितों से बहिष्कृत और ठुकराये लोग मौलवियों की गोद में जा बैठे। (७) इस्लाम के सिद्धान्त भी सरल थे—एक ईश्वर में विश्वास करना, नमाज पढ़ना और मुहम्मद साहब को ईश्वर का पैगम्बर मानना—ये मूलभूत सिद्धान्त बिना किसी कर्मकांड के अपनाये जा सकते थे। इस्लाम धर्म की इस सरलता ने निम्नस्तर के अनेक कुचले हुए लोगों को इस्लाम की ओर आकृष्ट कर लिया और वे मुसलमान हो गये। (८) जातिवाद की जटिलता और हिन्दू धर्म की संकीर्णता से वे हिन्दू पुरुष, स्त्रियाँ, शिल्पी और व्यापारी जो घनिष्ठ रूप में मुसलमानों के निरन्तर सम्पर्क में आते थे, हिन्दू समाज और धर्म में बहिष्कृत किये जाने लगे। फलतः इन्होंने विवश होकर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। (९) तुर्कों और पठानों में हिन्दू कन्याओं और स्त्रियों से बलात् विवाह करने का फेशन चल पड़ा था। फलतः अनेकानेक निस्सहाय हिन्दू युवतियों और स्त्रियों को विषम परिस्थिति से विवश होकर नये मुस्लिम परिवार में इस्लाम धर्म ग्रहण करना पड़ता था। (१०) अनेक इस्लामी सन्तों और सूफी महात्माओं ने अपने "कमाल" या चमत्कारिक कार्य प्रदर्शित कर, उनकी कहानियों का

व्यापक प्रचार कर, इस्लाम के सिद्धांतों का उपदेश देकर अनेक हिन्दुओं को प्रभावित कर इस्लाम अपनाने के लिये आकृष्ट किया।

सारांश

विश्व के इतिहास में इस्लाम का उत्कर्ष और प्रादुर्भाव युग प्रवर्तक घटना है। इस्लाम का प्रसार विश्व में शीघ्र ही हो गया। भारत में भी इस्लाम के आगमन और प्रचार से भारतीय एकता को गहरा आघात लगा और भारत में दो विरोधी संस्कृतियों का उत्कर्ष हुआ जिससे देश विभाजित हो गया।

अरब देश और उसके निवासी—अरब में अत्यधिक गरमी, वर्षा के अभाव, भूमि की अनुर्वरता और बालू की प्रचुरता ने वहाँ के लोगों का जीवन खानाबदोश का जीवन बना दिया जो पशु-पालन और लूट-खसोट पर निर्भर रहने लगे। परन्तु अरब के समुद्रतट के निवासी भारत और दूसरे देशों के व्यापारियों के सम्पर्क में आये और भारत में आकर वहाँ की व्यापारिक वस्तुओं को पूर्वी और पश्चिमी देशों को लाने ले जाने लगे। अरब के लोग मूर्ति पूजक थे और काबा में रखे एक विशाल काले पत्थर की पूजा करते थे और अनेक देवताओं और भूतप्रेतों में विश्वास करते थे।

पैगम्बर मुहम्मद साहब—मुहम्मद साहब का जन्म सन् ५७० में मक्का में हुआ था। बाल्यकाल में इनके माता-पिता का देहावसान हो गया था। इनके चाचा के संरक्षण में इन्होंने व्यापार किया और खदीजा नामक एक विधवा व्यापारी स्त्री से विवाह कर लिया। चालीस वर्ष की आयु के बाद एक फरिश्ता ने इन्हें दर्शन दिये और ईश्वर के विषय में कहा। कुछ समय बाद इन्हें ईश्वर के दर्शन हुए और ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। अब उन्होंने अपने नवीन सिद्धांतों का उपदेश देना प्रारम्भ किया। पर लोगों के विरोध करने पर वे मक्का से मदीना चले गये। वहाँ उनके धर्म का अधिक प्रचार हुआ और उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ गयी। अन्त में वे मदीना से मक्का सेना की सहायता से आ गये और अपने धर्म तथा सिद्धांतों का प्रचार करते रहे। सन् ६३२ में उनका देहावसान हो गया।

इस्लाम के सिद्धांत—मुहम्मद साहब द्वारा प्रचलित धर्म इस्लाम कहलाया तथा उनके उपदेश और सिद्धांत कुरान में संग्रहित हैं। उनका सिद्धांत था कि ईश्वर एक है और वह सर्वशक्तिमान, सर्वदृष्टा और दयालु है तथा मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं। मुहम्मद साहब ने ईश्वर, फरिश्ता, कलमा, नमाज, बधुत्व, खैरात आदि में विश्वास करने को तथा दिन में पाँच बार नमाज पढ़ने तथा रमजान माह में रोजा रखने और हज करने को कहा। उन्होंने, ऊंच-नीच, अवतारवाद, बहुदेववाद, मूर्ति पूजा और अन्धविश्वास का विरोध किया तथा विश्रृङ्खलित अरबों को सुसंगठित किया।

खलीफाओं का अभ्युदय और इस्लाम का प्रसार—मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी खलीफा कहलाये। उनकी मृत्यु के बाद उनके ससुर अबूबकर उनका उत्तराधिकारी निर्वाचित हुआ। उसने इस्लाम का अन्य देशों में प्रसार किया। उसके

बाद उमर उसका उत्तराधिकारी और खलीफा हुआ। उसने भी अपनी सेना से अन्य कई देशों पर विजय कर इस्लाम को फैलाया। उसके बाद उसमान खलीफा हुआ और फिर मुहम्मद साहब का दामाद अली। पर अली की हत्या करदी गयी। उसके बाद उसका पुत्र हसन खलीफा बना पर अयोग्य होने से उसने त्याग-पत्र दे दिया, जिससे मुआविया खलीफा हो गया। उसके वंश के खलीफाओं को उमैयद या उमइया वंश के खलीफा कहते हैं। मुआविया ने खलीफा पद को पैतृक कर दिया और अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। इससे खलीफा अली के पुत्र इमाम हुसेन ने इसका विरोध किया और विद्रोह किया पर वह कत्ल कर दिया गया। उमैयद खलीफाओं के समय दिग्विजय और साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाई गयी जिससे इस्लाम का प्रचार भारत से सिंध और अफगानिस्तान से लेकर पश्चिम के यूरोप के देशों और स्पेन तक हो गया। उमैयद वंश के अन्तिम खलीफा का वध अब्दुल अब्बास नामक व्यक्ति ने कर दिया और वह खुद खलीफा हो गया। उसके वंश के खलिफाओं को अब्बासीद वंश के खलीफा कहते हैं। इन्होंने सन् ७४९ से १२५६ तक प्रशासन किया। उन्होंने साम्राज्य में सभी देशवासियों के प्रति समानता का व्यवहार किया और धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई। इस वंश के खलिफाओं में हारूंरशीद खलीफा अपनी न्यायप्रियता और प्रजा-वत्सलता के लिये अधिक प्रसिद्ध रहा। इन खलिफाओं ने तुर्कों को खूब बढ़ावा दिया, जिससे प्रशासन के सभी अधिकार और सत्ता उनके हाथ में चली गयी और खलीफा का पद केवल धार्मिक रह गया। सन् १२५६ में अन्तिम खलीफा मुस्तसीम को चंगेजखाँ के पौत्र हलाकुखाँ ने परास्त कर खलीफा की शक्ति और राज्य समाप्त कर दिया।

भारत में इस्लाम का प्रवेश और प्रसार—भारत में प्रारम्भ में पश्चिमी तट और दक्षिण में अरब व्यापारियों ने अपने व्यापार के साथ-साथ इस्लाम का प्रचार किया, मसजिदें बनवाईं और भारतीय नरेशों ने उन्हें प्रोत्साहित किया। उत्तरी भारत में इस्लाम का प्रचार आक्रमण, लूट-खसोट, नृशंसता, अत्याचार और शक्ति के द्वारा किया गया। दिल्ली के सुलतानों, उनके अधिकारियों और प्रांतीय शासकों ने इस्लाम के प्रसार में योग दिया। इन्होंने अनेक लोगों को इस्लाम धर्म ग्रहण करवाया। इस्लाम के संतों और महात्माओं ने भी अपने उपदेशों और सिद्धान्तों से इस्लाम का प्रचार किया।

भारत में इस्लाम के व्यापक प्रसार और प्रचार के कारण—(१) इस्लाम के अनुयायियों के आक्रमणों और युद्धों में पराजित अनेक हिन्दू उनकी नृशंसता से अपनी रक्षा करने के लिये मुसलमान बन गये। (२) भारत में स्थापित इस्लामी राज्यों ने इस्लाम के प्रचार के लिये राज्य के साधनों का उपयोग किया। (३) जजिया और अन्य करों से मुक्ति पाने के लिये अनेक दरिद्र और निस्सहाय लोगों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया। (४) धन, समृद्धि और ऊंचे पदों के प्रलोभन से कई मुसलमान हो गये। (५) विषम कठोर परिस्थिति में इस्लाम ग्रहण करने वालों को

पुनः हिन्दू समाज और धर्म में आने का निषेध था। (६) हिन्दू समाज की ऊंच-नीच की प्रवृत्ति, जातिवाद की जटिलता, सामाजिक अत्याचार और धार्मिक निषिद्धता से नीची जाति के अनेक हिन्दू मुसलमान बन गये। (७) इस्लाम के सरल सिद्धांतों, समानता की भावना और कर्मकांड के अभाव से निम्न श्रेणी के अनेक लोगों ने इस्लाम अपना लिया। (८) हिन्दू धर्म और समाज की संकीर्णता और जटिलता से मुसलमानों के निरन्तर सम्पर्क में आने वाले हिन्दू बहिष्कृत हुए और मुसलमान बन गये। (९) कठोर विषम परिस्थितियों में अनेकानेक हिन्दू स्त्रियों को इस्लामी परिवार में रहने पर विवश होकर मुसलमान बनना पड़ा। (१०) इस्लामी संतों और सूफी महात्माओं ने भी अनेक हिन्दुओं को इस्लाम की ओर आकृष्ट किया।

अध्याय ३

अरबों के सिंध पर आक्रमण

मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् अरब के खलिफाओं ने अपनी दिग्विजयी और साम्राज्यवादी नीति से पश्चिम में ईरान, सीरिया, आर्मीनिया, केन्द्रीय यूरोप, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, उत्तरी अफ्रिका आदि देशों में और पूर्व में बलूचिस्तान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया के देशों में इस्लाम धर्म फैलाया। सन् ६६८ के लगभग अफगानिस्तान के प्रमुख नगर काबुल पर अरबों का आधिपत्य स्थापित हो गया और अब उन्होंने पंजाब, मुलतान और सिंध के निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण करने प्रारंभ कर दिये। अरब के खलिफाओं और उनके समर्थकों ने अनेक अरब व्यापारियों से भारत की धन सम्पन्नता और मूर्तिपूजा तथा बहुदेववाद के विषय में सुन रखा था। अतएव इस धन को प्राप्त करने तथा काफिरों के देश में इस्लाम का प्रचार करने के लिये खलीफा उमर ने प्रोत्साहन दिया और सर्वप्रथम सन् ६३६-३७ में अरबों ने भारत के पश्चिमी तट पर थाना के निकट आक्रमण किया। उनकी सेना को मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और भारतीयों के साथ हुए संघर्ष और युद्ध में वे परास्त हुए और अरब वापिस लौट गये। परन्तु भारत की राजनैतिक दुर्बलता और धन वैभव, जिसका विवरण वे अरब व्यापारियों से सुनते रहते थे, खलीफा और अरबों को भारत पर पुन: आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया। फलत: अरबों का दूसरा आक्रमण खलीफा उसमान के समय सन् ६४४ में स्थलमार्ग से हुआ। इस समय अरबों ने किरमन और सीस्तान विजय करके आगे को मकरान की ओर प्रस्थान किया। परन्तु सिंध और मकरान के राजाओं की सम्मिलित सेनाओं ने अरबों का विरोध किया, पर उन्हे सफलता नहीं मिली और अरब विजयी हुए। अरबों के नेता अब्दुला ने और आगे बढ़कर भारत के अन्य प्रदेशों पर विजय करके इस्लाम का प्रचार करना चाहा, परन्तु कारणवश खलीफा ने उसे आगे प्रस्थान करने की आज्ञा प्रदान नहीं की। अतएव अरबों का विजय मार्ग प्रशस्त न हो सका और उन्हें वापिस अरब लौटना पड़ा।

मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण

सन् ७१२ में अरबों ने पुन: मुहम्मद बिनकासिम के नेतृत्व में सिंध पर आक्रमण किया। इस आक्रमण के निम्नलिखित कारण थे।

आक्रमण के कारण—

(१) **साम्राज्य-लिप्सा**—खलीफा और उसके समर्थक अरब अपने इस्लामी साम्राज्य का पूर्व में विस्तार करना चाहते थे। वे भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने को उत्सुक थे।

(२) **इस्लाम का प्रसार**—भारत मूर्तिपूजकों और अवतारवाद तथा बहुदेववाद में विश्वास करने वालों का देश था। अरब लोग ऐसे देश में अपने इस्लाम का तीव्र गति से प्रचार करना चाहते थे और मूर्तियों व मन्दिरों को तोड़ना चाहते थे। उनमें अत्यधिक धार्मिक उत्साह था।

(३) **भारतीय धन सम्पत्ति की प्राप्ति**—भारत के अतुल वैभव और अपार सम्पत्ति के विषय में अरबों और उनके खलीफा ने दीर्घकाल से सुन रखा था। भारत की धन सम्पन्नता और समृद्धि ने अरबों को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। भारत की अपार सम्पत्ति को लूट-खसोट कर वे अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना चाहते थे।

(४) **तात्कालिक कारण**—उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त अरबों के कतिपय जहाजों की भारतीयों द्वारा लूट तत्कालिक कारण था। इसके विषय में निम्नलिखित तीन मत हैं।

(अ) ईसा की आठवीं सदी के प्रारम्भ में लंका या सिंहलद्वीप में कतिपय अरब व्यापारियों और इस्लाम के अनुयायियों की लंका में मृत्यु हो गयी। ये ईराक देश के निवासी थे। फलतः सिंहलद्वीप के नरेश ने इन लोगों की संपत्ति और उनकी कन्याओं को एक जहाज में ईराक के मुस्लिम राज्यपाल अलहज्जाज के पास भेज दिया ताकि राज्यपाल उन कन्याओं को धन सम्पत्ति सहित उनके संरक्षकों या अभिभावकों को सौंप दे। जब यह जहाज भारतीय समुद्र तट से ईराक की ओर अग्रसर हो रहा था तब भारतीय समुद्री डाकुओं ने इस जहाज पर आक्रमण किया, जहाज को लूट लिया और कन्याओं को भी ले गये।

(ब) हेग महोदय का मत है कि लंका के राजा ने इस्लाम ग्रहण कर लेने पर बहुमूल्य उपहार अरब के खलीफा को जो इस्लामी विश्व का धार्मिक और राजनैतिक नेता था, एक जहाज में भरकर भेजे। जब यह जहाज भारतीय समुद्रतट से जा रहा था, तब भारतीय समुद्री डाकुओं ने इस जहाज को लूट लिया और जहाज के लोगों को देवल या आधुनिक कराची के बन्दरगाह में बन्द कर दिया।

(स) तीसरा मत है कि खलीफा ने अपने कुछ अधिकारियों को कतिपय दास-दासी और अन्य वस्तुओं को क्रय करने के लिये भारत में भेजा था और जब ये दास-दासियों को तथा अन्य वस्तुओं को खरीदकर जहाज में उन्हें अरब ले जा रहे थे, तब कतिपय भारतीयों ने इस जहाज को लूट लिया।

उपरोक्त तीनों मतों में यह सार तत्व है कि भारतीयों ने अरबों के जहाजों को लूटा। ईराक के राज्यपाल और खलीफा के प्रतिनिधि अलहज्जाज ने इस लूट से क्रुद्ध होकर सिंध के तत्कालीन नरेश दाहिर से लूट का धन लौटाने और अपराधियों को दंड देने के लिये तथा क्षति-पूर्ति करने के लिये लिखा। पर दाहिर ने उत्तर दिया कि लूटने वाले समुद्री डाकू उसकी प्रजा नहीं होने से उसके नियंत्रण के बाहर हैं और वह इन अभियुक्तों को दण्ड देने में असमर्थ है। इस उत्तर से हज्जाज अत्यंत ही कुपित हुआ और खलीफा वाहिद से दाहिर पर आक्रमण करने की अनुमति प्राप्त कर ली। अब उसने सिंध पर हमला करने की विस्तृत योजना बनाई। इस प्रकार सिंध पर आक्रमण

करने का प्रधान कारण राज्य विस्तार की कामना न होकर प्रतिशोध की भावना अधिक थी।

सिंध की दशा—इस समय सिंध में ब्राह्मण राजा दाहिर राज्य कर रहा था। उसके पिता चच ने जो सिंध के शूद्र नरेश सहसी का मंत्री था, राजा का वध कर सिंध की राज्य सत्ता अपने हाथ में कर ली और सहसी की विधवा रानी से विवाह भी कर लिया। अब उसने कठोरता और नृशंसता से प्रशासन किया और विरोधियों को दबा दिया। उसने सिंध के जाटों को भी जो वीर सेनानी थे, अपने निर्दयता के कार्यों से क्षुब्ध कर दिया था। उसके इन कार्यों से सिंध की प्रजा उससे अत्यन्त ही असन्तुष्ट और विरोधी हो गयी थी। चच के बाद उसके पुत्र दाहिर का शासन भी कठोर और अव्यवस्थित था। राज्य की आर्थिक दशा भी दयनीय थी। राजवंश में आन्तरिक गृह-कलह था। इससे दाहिर की स्वयं की स्थिति डांवाडोल थी, वह स्वयं ही शक्तिहीन और असमर्थ शासक था।

हज्जाज के सिंध पर आक्रमण—खलीफा से सिंध पर आक्रमण करने की अनुमति प्राप्त करके हज्जाज ने विशाल सेना तैयार की। उसने प्रथम, एक महान सेना, सेनापति उबेदुल्लाह के नेतृत्व में सिंध पर आक्रमण करने को भेजी। पर सिंधवासियों ने अरबों की इस सेना को परास्त कर दिया। इस पराजय के बाद हज्जाज ने एक अन्य विशाल सुसज्जित सेना तैयार की और उसे बुदैल के सेनापतित्व में सिंध पर आक्रमण करने के लिये भेजी। हज्जाज का यह दूसरा आक्रमण था। पर दाहिर की सेना ने अरबों की इस सेना को भी परास्त कर दिया, तथा बुदैल को भी पकड़कर वध कर दिया। इस प्रकार दो पराजयों से चिढ़कर हज्जाज ने तीसरी विशाल सेना को संगठित करने की योजना बनाई। इस सेना में उसने पंद्रह सहस्र पदाति, छै सहस्र चुने हुए अश्वारोही और छै सहस्र ही प्रशिक्षित ऊंटों की सैन्य तथा लूट का माल लाने के लिये तीन सहस्र ऊंट तैयार किये और इस सेना के नेतृत्व का भार हज्जाज ने अपने भतीजे और दामाद मुहम्मद बिन कासिम को दिया। मुहम्मद बिन कासिम बड़ा वीर, साहसी और महत्वाकांक्षी था। आक्रमण के समय उसकी आयु केवल १७ वर्ष की थी।

मुहम्मद बिन कासिम का सिंध अभियान—ऊपर वर्णित विशाल सेना को लेकर मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण करने के लिये मकरान के मार्ग से प्रस्थान किया। खलीफा ने भी उसके लिये सभी आवश्यक सामग्री की व्यवस्था की। मार्ग में भी कासिम को एक अरबी सेना मुहम्मद हारू के सेनापतित्व में मिली और वह कासिम की सेना के साथ सम्मिलित हो गयी। देवल बन्दरगाह पहुँचने के पूर्व उसे समुद्री मार्ग से भेजे गये पांच तोपखाने के सैनिक भी प्राप्त हो गये। दाहिर से असन्तुष्ट जाटों ने भी देशद्रोही का काम करके कासिम का साथ दिया। देवल नगर के समीप पहुंचने पर जो अरब व्यापारी वहाँ थे, उन्होंने भी दाहिर के विरुद्ध कासिम का साथ और सहयोग दिया। देवल पर आक्रमण करने का कासिम का कार्य इसलिये भी सुलभ हो गया कि वहाँ के अनेक बौद्ध-भिक्षुओं ने ब्राह्मण राजा दाहिर के विरुद्ध अरबों को सहयोग दिया और कहा जाता है कि कासिम को इसके लिये आमंत्रित भी किया।

देवल पर आक्रमण और उस पर अधिकार—सन् ७११ में शरद ऋतु में कासिम

ने विशाल सेना से देवल पर आक्रमण कर नगर को घेर लिया और तोपखानों से प्रहार किया। देवल नगर के प्रमुख मंदिर के एक देशद्रोही ब्राह्मण पुजारी ने अरबों को यह गुप्त सूचना भेजी कि उस मंदिर के ऊपर जो लाल झंडा गड़ा है और उसमें नीचे जो तावीज बंधी हुई है, जब तक उसे हटाया नहीं जायगा, देवलनगर को जीतना असंभव है। अरबों ने तत्काल ही मंदिर पर आक्रमण करके झंडे को काटकर गिरा दिया। इससे सिंध के सैनिक और नगर निवासी हतोत्साह हो गये तथा अरबों के उत्साह और विजय की आकांक्षा अत्यधिक बढ़ गयी। अरब सेना ने अब देवलनगर की चहार दीवारी के सैनिकों को युद्ध में परास्त कर दिया। इस युद्ध में राजा दाहिर का भतीजा, कुछ योद्धा और प्रमुख अधिकारी मारे गये। विजय के बाद अरब नगर में घुस गये, नगर-निवासी अत्यन्त भयभीत हो गये, नगर का शासक बिना युद्ध किये ही राजकोष को छोड़कर अपनी सुरक्षा के लिये भाग गया। अब अरबों ने नगर को खूब लूटा और नगर निवासियों को मुसलमान बन जाने की आज्ञा दी और जब लोगों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया तब सत्रह वर्ष और इससे अधिक की आयु के स्त्री-पुरुषों को कत्ल किया गया और ये नृशंसता के कार्य और कत्लेआम निरन्तर तीन दिन और रात चलते रहे। जो बच गये थे उन्हें इस्लाम ग्रहण करने और दास बनने के लिए बाध्य किया गया। मूर्तियों, मंदिरों और पूजागृहों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, उनके स्थान पर मसजिदें बनाई गयीं और खुतबा पढ़ा गया। देवलनगर की लूट के माल का पांचवाँ भाग हज्जाज को भेजा गया और शेष सैनिकों में विभाजित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त नगर और अन्य स्थान की ७५ सहस्र स्त्रियाँ भी ईराक के राज्यपाल हज्जाज के पास भेजी गयीं। इस प्रकार देवल पर सरलता से कासिम का अधिकार हो गया। इस सुगम विजय से उसका उत्साह अधिक बढ़ गया और उसने अब अन्य नगरों की ओर विजय के लिये प्रस्थान किया।

नीरुन, सेहवान और सीसम पर अधिकार—देवल की विजय के बाद विजयोन्मत्त कासिम और अरब सेना अन्य स्थानों पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ी। मार्ग में अनेक स्थानों पर अरबों के आतंक से भयभीत हुए लोगों ने युद्ध किये बिना ही धन देकर अरबों की आधीनता स्वीकार करके अपनी कायरता प्रदर्शित की, तथा जीवन और स्वतंत्रता का सौदा किया। अधिकांश लोग बौद्ध थे और उन्होंने शीघ्र ही आत्मसमर्पण कर दिया। अब मुहम्मद बिनकासिम नीरुन दुर्ग पहुंचा। यह बड़ा सुदृढ़ दुर्ग था और इसकी सुरक्षा के लिये दाहिर का पुत्र जयशीश अपनी सेना सहित तत्पर था। परन्तु कासिम के वहां पहुंचने के पूर्व ही दाहिर ने अपने पुत्र को बुला लिया और दुर्ग की सुरक्षा का भार एक ब्राह्मण अधिकारी को सौंप दिया। मुहम्मद बिन कासिम के नीरुन पहुँचने पर इस ब्राह्मण अधिकारी ने बिना संघर्ष और युद्ध किये ही कासिम को दुर्ग सौंप दिया और आत्म समर्पण कर दिया। कासिम ने नीरुन में एक अरब अधिकारी को नियुक्त किया और स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ा। वह अब सेहवान पहुंचा। सेहवान के निवासी अधिकांश में बौद्ध और व्यापारी थे, जो युद्ध की अपेक्षा शांति चाहते थे। सेहवान का शासक राजा दाहिर का चचेरा भाई था। वह

भी कासिम का सामना किये बिना ही नगर और दुर्ग त्याग कर भाग गया । नीरुन के समान सेहवान भी सरलता से कासिम के हाथ लगा । अब वहां से कासिम जाटों के प्रमुख नगर सीसम पहुंचा । यहां जाटों और उनके शासक ने अरबों का वीरतापूर्वक सामना किया और उनसे युद्ध किया, पर वे अल्पसंख्यक थे और अन्य किसी नरेश या शासक ने उनकी सहायता नहीं की थी, इसलिये वे परास्त हुए । यहीं दाहिर का चचेराभाई बंमारा युद्ध में मारा गया । सीसम पर भी कासिम ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया ।

रावर का युद्ध और ब्राह्मणाबाद पर अधिकार—नीरुन, सेहवान और सीसम पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद कासिम ब्राह्मणाबाद नगर की ओर बढ़ा । मार्ग में नगरों और गांवों को लूटते, विध्वंस करते हुए, उसने नौकाओं की सहायता से सन् ७१२ में जून माह में अपनी सेना सहित सिंध नदी पार की । राजा दाहिर भी अरबों का सामना करने के लिये विशाल सेना सहित ब्राह्मणाबाद से पचास सहस्त्र सैनिकों सहित रावर या राओर (Raor) की ओर बढ़ा । अब दिनांक २० जून सन् ७१२ को दाहिर और कासिम की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ । अलबिलादुरी ने लिखा है कि यहां एक ऐसा भयंकर युद्ध हुआ जैसा कि पहिले कभी सुना ही नहीं गया था । इस भयंकर युद्ध में राजा दाहिर के हाथी के हौदे में एक बाण से आग लग गयी, बाद में चतुर्दिक अरबों से घिर जाने और भयंकर बाण वर्षा से एक तीर उसकी आंख में लग गया और वह हाथी पर से गिर पड़ा । परन्तु संभल कर वह फिर एक अश्व पर सवार होकर पुनः युद्ध करने लगा । युद्ध में उसने अपूर्व वीरता व साहस का परिचय दिया । परन्तु युद्ध में पुनः घिर जाने और एक अरब द्वारा मस्तक पर प्रहार कर देने से वह घायल होकर गिर पड़ा और रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ । उसकी सेना अपने राजा और नेता को न पाकर रणक्षेत्र से तितर-बितर होकर भाग गयी । वीर दाहिर की धर्मपत्नि रानीबाई भी वीर थी । उसने लगभग पंद्रह सहस्त्र सैनिकों की सहायता से शत्रुओं पर पाषाणों और चक्रों की भीषण वर्षा करके उनके मार्ग को रोकने का प्रयास किया और युद्ध करती रहीं । परन्तु अरबों के बहुसंख्यक होने से और अपनी पराजय निश्चित जानकर उसने अन्य स्त्रियों सहित अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा के हेतु अग्नि में जलकर जौहर किया ।

राओर के इस भयंकर युद्ध और रक्तपात के बाद मुहम्मद बिनकासिम ने ब्राह्मणाबाद की ओर कूच किया । यहां दाहिर के पुत्र जयशीश या जयसिंह ने अपनी सीमित सेना से अरबों से युद्ध किया पर विजय की आशा न देखकर वह ब्राह्मणाबाद को छोड़कर चितूरा या चितौड़ स्थान पर सुरक्षा के लिये चला गया । अब कासिम ने ब्राह्मणाबाद पर अधिकार कर लिया और नगर को खूब लूटा । यहां उसे राजकोष, बहुमूल्य सामग्री, दाहिर की अन्य रानी लाडी और उसकी दो कुमारी पुत्रियां सूर्यादेवी और परमल देवी हाथ लगी । कासिम ने स्वयं लाडी से विवाह कर लिया और दोनों राजकन्याओं को अरब में खलीफा के पास भेंट के रूप में भेज दिया ।

अरोरा पर अधिकार--ब्राह्मणाबाद विजय करने के पश्चात् विजयी मुह-

म्मद बिनकासिम अरोरा की ओर बढ़ा। यह सिंध का प्रमुख नगर, दुर्ग और राजधानी मानी जाती थी। दाहिर का एक अन्य पुत्र यहां अपनी सेना सहित था। अरबों की सेना के अरोरा पहुंचने पर इसने नगर और दुर्ग की रक्षा करने का प्रयास किया। परन्तु वह विजय से उन्मत्त अरबों की विशाल सेना से हतोत्साह हो गया और पराजित होने पर वह भी वहां से भाग गया। नगर और दुर्ग पर अरबों का अधिकार हो गया और वहाँ अरब शासक नियुक्त किये गये।

मुलतान पर आक्रमण और आधिपत्य—मुहम्मद बिनकासिम ने अपनी वीरता और रणकुशलता तथा बहुसंख्यक अरबों की सेना से सिंध प्रदेश को जीत लिया और वहां अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इसके बाद वह मुलतान की ओर आगे बढ़ा। मार्ग के ग्रामों और नगरों को विध्वंस करता हुआ, वह सहसा मुलतान नगर के प्रवेश द्वार तक पहुँच गया। मुलतान के शासक और सैनिकों ने शत्रु से संघर्ष और युद्ध प्रारम्भ कर दिया। वे बड़ी वीरता, उत्साह और साहस से लड़े। परन्तु एक देशद्रोही और राजद्रोही व्यक्ति ने उस जल स्रोत और धारा का गुप्तभेद शत्रुओं को प्रगट कर दिया जिससे मुलतान दुर्ग व नगर में जल प्राप्त होता था। अरब आक्रमणकारियों ने इस स्रोत और धारा को बन्द कर दिया। फलतः जल के अभाव में मुलतान के शासकों और सैनिकों ने आत्म समर्पण कर दिया और मुहम्मद बिनकासिम ने मुलतान में सेना सहित प्रवेश कर नगर को खूब लूटा, भारतीय सैनिकों को बन्दी बना लिया गया और उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया तथा उनकी स्त्रियों और बच्चों को दास बना लिया गया। उन समस्त नगरवासियों को कत्ल कर दिया जिन्होंने इस्लाम ग्रहण करने से इनकार कर दिया। परन्तु जिन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया या जजिया कर देना स्वीकार कर लिया उन्हें जीवन-दान दिया गया। यहाँ हिंदू मन्दिरों और मूर्तियों को नहीं तोड़ा गया, परन्तु उनकी अपार संपत्ति लूट ली गयी। ये मंदिर अरब शासकों को नियमित आय के स्रोत बन गये, क्योंकि हिंदू उपासकों, भक्तों और दर्शकों द्वारा जो धन, भेंट या चढ़ावा मंदिरों में दिया जाता था, उसे अरब शासक और अधिकारी जबरदस्ती लेने लगे। इसी आर्थिक लाभ के कारण अरबों ने मुलतान के मंदिरों को विध्वंस नहीं किया।

सिंध और मुलतान विजय से मुहम्मद बिन कासिम का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया और उसने भारत के अन्य प्रदेशों को जीतना चाहा और इसके हेतु कन्नौज की ओर प्रस्थान करने और उस पर आक्रमण करने की योजना बनाई, पर उसे कार्यान्वित करने के पूर्व ही उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

मुहम्मद बिन कासिम का देहावसान—जिस प्रकार मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण और उसकी घटनाएं हृदय विदारक और रोमांचकारी है, उसी प्रकार उसकी मृत्यु भी हृदय विदारक मानी जाती है। जिस द्रुतगति से उसका उत्कर्ष हुआ और तीव्र तूफानी गति से उसे विजय पर विजय प्राप्त होती रही, उतनी ही तीव्रता से उसका अन्त भी हुआ। शायद ही किसी महान विजेता और आक्रमणकारी का उत्थान और पतन इतना शीघ्र तूफानी ढंग से हुआ हो।

मुहम्मद बिनकासिम की मृत्यु के विषय में दो मत हैं। प्रथम मत है कि उसने

राजा दाहिर की दो कुमारी राज्य कन्याओं को अपने सम्राट खलीफा के पास उपहार स्वरूप भेजा था। जब ये कन्याएँ खलीफा के सम्मुख प्रस्तुत की गयीं, तो उन्होंने उससे निवेदन किया कि वे उसके योग्य नहीं हैं, क्योंकि मुहम्मद बिनकासिम ने उन्हें खलीफा के पास भेजने के पूर्व ही उनके कुमारित्व को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। इसे सुनकर खलीफा आग-बबूला हो गया और उसने आज्ञा दी कि कासिम को जीवित ही बैल की खाल में बन्द करके उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाय। इस आज्ञा का पालन किया गया और मुहम्मद बिनकासिम ने अपने आपको खाल में सिलवा दिया और तीन दिन बाद जब वह सीली हुई खाल खलीफा के सम्मुख पेश की गयी तो उसके भीतर ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी। जब खलीफा ने कासिम की मृतदेह को खाल में से दोनों राजकुमारियों के सामने निकलवाया, तब उन्होंने कहा कि मुहम्मद बिनकासिम निर्दोष था और यह कार्य उन्होंने अपने पिता के हत्यारे से प्रतिहिंसा की भावना से किया। खलीफा ने क्रोधित होकर इन दोनों कन्याओं को घोड़ों की पूंछ से बन्धवाकर उस समय तक घसीटवाया जब तक कि उनके प्राणों का अन्त न हो गया। इस प्रकार बडी निर्ममतापूर्वक उनकी हत्या की गयी। कुछ विद्वान इस घटना को असत्य और कपोल कल्पित मानते हैं। यह बाद की मनगढत कथा है।

दूसरा मत है कि मुहम्मद बिनकासिम की हत्या राजनैतिक कारणों द्वारा की गयी। तत्कालीन खलीफा सुलेमान, हज्जाज और मुहम्मद बिनकासिम की बढ़ती हुई सत्ता, यश और प्रतिष्ठा के कारण उनसे घृणा, ईर्षा और द्वेष करता था। वह उनसे भयभीत होने लगा था। वह उनका अन्त करना चाहता था। इसलिये उसने मुहम्मद बिनकासिम को बन्दी बनाकर बुलाया और उसे कई प्रकार की यातनाएँ देकर सन् ७१५-१६ में मरवा डाला। इसकी पुष्टि "फुतुहे बुल्दान" से हो जाती है।

अन्य प्रदेशों पर अरबों के धावे—मुहम्मद बिनकासिम ने अपनी सिंध विजय के बाद ही वहां अरब प्रशासन-व्यवस्था स्थापित की। उसमें कई अरब पदाधिकारी, सामन्त और सूबेदार नियुक्त हुए। मुहम्मद बिनकासिम के बाद सिंध में खलीफा की ओर से जुबेद और बाद में तमिन नामक राज्यपाल नियुक्त हुए। उन्होंने तथा अन्य अरब सूबेदारों ने सिंध में अपनी शक्ति स्थापित करने के पश्चात् सौराष्ट्र, गुजरात तथा अन्य प्रदेशों को जीतने के लिये आक्रमण प्रारंभ किये। सिंध के अरब सूबेदारों ने गुजरात के वलभी राजाओं से संघर्ष प्रारम्भ किया, उन पर धावे किये, परन्तु बाद में उन्होंने वलभी के मैत्रक राजाओं, उनके उत्तराधिकारी चावड़ और चालुक्य नरेशों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये। सन् ७३८ में चालुक्य नरेश पुलकेशीन के राज्य पर सिंध के अरबों ने तमिन के नेतृत्व में भयंकर आक्रमण किया और वे उसके राज्य में प्रविष्ट हो गये, पर पुलकेशीन ने अरबों की इस सेना को नवसारी के रणक्षेत्र में बुरी तरह परास्त कर दिया। इसी प्रकार गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभट्ट के राज्य पर भी अरबों ने निरन्तर आक्रमण किये, परन्तु नागभट्ट ने इन्हें पराजित कर खदेड़ दिया। अरबों ने भारत में सिंध से आगे बढ़ने का प्रयास किया और गुर्जर प्रतिहार नरेशों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। गुर्जर प्रतिहारों और अरबों में संघर्ष का युग प्रारम्भ हो गया परन्तु अरबों के प्रसार की बाढ़ को रोकने के लिये गुर्जर प्रतिहारों ने

विशाल लोह दीवार का काम किया। गुर्जर प्रतिहारों की प्रबल शक्ति से लोहा लेने में जब अरब असमर्थ हो गये, तब उन्होंने गुर्जर प्रतिहारों के परम शत्रु मान्यखेत के राष्ट्रकूट नरेशों से मित्रता स्थापित कर ली तथा अन्य पड़ौसी राज्यों से भी उन्होंने अपने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये। परन्तु अरबों का राज्य और शासन भारत में स्थायी नहीं रहा।

अरबों का सिंध में प्रशासन

मुहम्मद बिनकासिम ने अपनी साम्राज्य विस्तार की नीति और विजयोन्माद में असंख्य हिन्दुओं की निर्दयतापूर्वक हत्या कर दी। वह नृशंस आततायी था जिसमें कट्टर धर्मान्धता थी। परन्तु जब सिंध में प्रशासन व्यवस्था स्थापित करने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो उसके लिये हिन्दुओं का सहयोग और सहायता लेना, तथा उनके प्रति उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाना अनिवार्य हो गया। इसके निम्नलिखित कारण थे।

(१) अरबों को प्रशासन की गुत्थियों, राजस्व, न्याय आदि का ज्ञान हिन्दुओं की अपेक्षा अत्यन्त ही कम था। शिक्षा, साहित्य और प्रशासन में अरब हिन्दुओं से पिछड़े हुए थे। उन्हें हिन्दुओं के विधि-विधानों, रीति रिवाजों और परम्पराओं का भी ज्ञान नहीं था। ऐसी दशा में हिन्दुओं का सहयोग आवश्यक था।

(२) मुहम्मद बिनकासिम के साथ जो अरब सैनिक और पदाधिकारी आये थे, उनमें से आधे से अधिक युद्धों में मर चुके थे और हताहत हो चुके थे। शेष आधी संख्या के अरब थोड़े थे और वे भी सैनिक और योद्धा थे, प्रशासक नहीं। अतएव सिंध ऐसे विशाल प्रदेश के शासन की व्यवस्था सम्भालने में मुट्ठी भर अरब असमर्थ थे। हिंदुओं की सहायता उनके लिये अत्यन्त ही वांछनीय थी।

(३) शक्ति के बल पर इस्लामीकरण के सिद्धान्त का हिन्दु भी दृढ़ता से विरोध कर रहे थे। उनमें भी धार्मिक उत्साह और धर्म के हेतु बलि देने की उत्कंठा का अभाव नहीं था। इस्लाम अंगीकार न करने वाले सभी हिन्दुओं की नृशंसतापूर्वक निरन्तर हत्या करना भी कासिम के लिये असंभव था।

(४) हिन्दुओं की विकसित संस्कृति और धर्म का निरन्तर विरोध करना भी असंभव था, यह राजनैतिक और प्रशासकीय अदूरदर्शिता थी।

(५) सिंध की जलवायु, वहाँ के जीवन और समृद्धि से अरब प्रभावित हुए और अनेक वहीं बस गये। उन्होंने हिन्दु स्त्रियों से विवाह भी कर लिये थे। उनमें परिवार की और स्थायी जीवन की मनोवृत्ति बलवती हो गयी थी। वे अब हिन्दुओं का निरन्तर प्रतिरोध करने की अपेक्षा उनसे मत्री-सम्बन्ध कर शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहते थे।

(६) थोड़ी अवधि में निम्न श्रेणी के अनेकों हिन्दुओं ने अरब शासकों को आत्म-समर्पण कर दिया और उन्होंने खलीफा को जजिया कर तथा अन्य कर देना भी स्वीकार कर लिया था। ऐसी दशा में उन पर अधिक अत्याचार करना या उन्हें मुसलमान बनाना श्रेयस्कर नहीं था।

इन सब तथ्यों को ध्यान में रखकर, परिस्थितियों से विवश हो मुहम्मद बिन-कासिम ने नृशंसता, अत्याचार, धर्मान्धता और अमानवता की नीति त्याग दी और हिन्दुओं के प्रति धार्मिक उदारता, सहिष्णुता की नीति अपनाई ।

(१) **प्रशासन की इकाइयाँ**—सिंध के जीते हुए प्रान्तों को अक्तों या जिलों में और अक्तों को ग्रामों में विभक्त किया गया । प्रत्येक अक्त का प्रमुख अधिकारी जिलाधीश के समान होता था । वह जिले के समस्त प्रशासन के लिये उत्तरदायी होता था । वह अपने से ऊपर के शासकों या सूबेदारों को सैनिक सहायता देता था । जिलाधीश अरब अधिकारी होता था । स्थानीय प्रशासन का भार स्थानीय संस्थाओं पर छोड़ दिया, क्योंकि अरब प्रशासक और अधिकारी भारत के स्थानीय कानूनों, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं से पूर्ण रूप से अनभिज्ञ थे ।

(२) **सामन्त प्रथा**—प्रशासन में सामन्त प्रथा को प्रचलित किया गया । और अरब सैनिकों, अधिकारियों, विद्वानों, फकीरों आदि को विभिन्न प्रकार की जागीरें दी गयीं । क्योंकि जीते हुए देश की भूमि पर विजयी अरबों का अधिकार मान लिया गया था ।

(३) **कृषि और भूमि व्यवस्था**—अरब अधिकारी, प्रशासक और सैनिक पद पर ही रहे । उनमें विलासिता और कामलोलुपता भी अधिक आ गयी थी । इसलिये अरब सैनिक कृषि कार्य नहीं करते थे । कृषि का, हल जोतने और फसलें काटने का कार्य हिन्दुओं को करना पड़े और वे एक प्रकार से दास (Serfs) ही थे । उपज का चतुर्थांश भाग भूमि कर या खिराज के रूप में लिया जाता था । नहरों द्वारा सिंचाई होती थी और सिंचाई से उत्पन्न उपज का $\frac{२}{५}$ भाग राज्य सिंचाई कर के रूप में लेता था । यदि कृषक सिचाई के लिये सरकारी नहरों का प्रयोग करते थे तो उन्हें चालीस प्रतिशत और यदि सरकारी नहरों का प्रयोग नहीं करते थे तो केवल २५ प्रतिशत कर देना पड़ता था ।

(४) **राज्य की आय के स्रोत**—भारत में लूटे हुए माल का $\frac{१}{५}$ भाग खलीफा को भेज दिया जाता था और शेष $\frac{४}{५}$ भाग अरब शासन के राजकोष में जमा हो जाता था या सैनिकों में वितरित कर दिया जाता था । सुरा, तथा समुद्र से उत्पन्न होने वाले मोतियों और मछलियों का $\frac{१}{५}$ भाग राजकोष में कर के रूप में जमा होता था । उद्यानों की फसलों का एक तिहाई भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था । अन्य कर भी अनेक थे, पर वे पूर्ववत् ही रखे गये । जजिया नामक एक बड़ा धार्मिक कर प्रारम्भ किया गया । इस कर की तीन दरें थीं । प्रथम-४८ दिरहम का जजिया-कर, यह ऊँचे वर्ग के व्यक्तियों के लिये था । (२) २४ दिरहम का जजिया जो मध्यम वर्ग के लिये था और (३) १२ दिरहम का जजिया जो निम्न वर्ग के लोगों के लिये था । जजिया कर उन व्यक्तियों से लिया जाता था जो इस्लाम धर्म अंगीकार नहीं करते थे । स्त्रियों, बच्चों, तथा ऐसे व्यक्तियों से जो काम करने के अयोग्य होते थे जजिया कर नहीं लिया जाता था ।

(५) **न्याय व्यवस्था**—अरबों ने न्याय-दान की व्यवस्था इस्लामी कानूनों के आधार पर की, चाहे वादी और प्रतिवादी इस्लाम का अनुयायी हो अथवा हिन्दू हो ।

न्याय कुरान के आधार पर किया जाने लगा तथा न्याय के लिये काजी नियुक्त किये गये। राजधानी में एक प्रमुख काजी था और अन्य प्रधान नगरों में सहायक काजी थे। ये न्याय पक्षपात पूर्ण करते थे। न्यायदान के अधिकारी भी एक से नहीं थे। जिलों में अरब जिलाधीश, जागीरों में सामन्त और नगरों में काजी न्याय करते थे। न्याय के नियम भी एक समान नहीं थे। हिन्दुओं को निष्पक्ष न्याय नहीं प्राप्त होता था। साधारण अपराधों पर इन्हें प्राणदण्ड दिया जाता था। दण्ड-विधान मौर्य शासकों के दण्ड-विधान से भी कठोर था। चोरी जैसे अपराध के लिये चोर को जीवित जलाने का दण्ड दिया जाता था और कभी-कभी तो चोर के बच्चों और स्त्री को भी अग्नि में जीवित जला दिया जाता था। अमीरों, सरदारों और सामन्तों को अपराधी के लिये प्राणदण्ड देने का अधिकार था। हिन्दुओं के ऋण, उत्तराधिकारी तथा पारस्परिक और व्यक्तिगत मुकदमों व अभियोगों का निर्णय उनकी पंचायतें करती थीं।

६. **सैनिक व्यवस्था**—अरबों की सैन्य-व्यवस्था दूषित थी। जिन अरब सैनिकों की शक्ति और सहायता के बल पर सिंध प्रदेश जीता गया था, वे अरब सैनिक कामुक और विलासप्रिय हो गये थे। अनेक अरब सैनिक सिंध की स्त्रियों से विवाह कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे थे। कुछ अरब सैनिक व्यापारी बन गये थे। इसके अतिरिक्त राज्य की ओर से अरब सैनिकों व अधिकारियों को विशेष सुविधाएं होने से वे भी कठोर परिश्रमी जीवन के अभ्यस्त नहीं रहे। धीरे-धीरे उन्होंने सेना से अपने आपको मुक्तकर लिया और युद्ध तथा संघर्ष के समय आवश्यकता होने पर उन्होंने किराये के सैनिक सेना में लेना प्रारम्भ कर दिया। इससे अरबों की सैनिक व्यवस्था और संगठन पर गहरा आघात लगा।

७. **धार्मिक व्यवस्था**—अरब सिंध में इस्लाम का प्रचार करने और मूर्तिपूजकों को मुसलमान बनाने के लिये आये थे। इसलिये प्रारम्भ में उन्होंने हिन्दुओं पर अनेक धार्मिक और आर्थिक अत्याचार किये और अनेकों को मुसलमान बना लिया। उन्होंने बलपूर्वक इस्लाम का प्रसार किया और अनेक मसजिदें बनाई तथा इस्लाम धर्म के फकीरों, साधु-संतों और विद्वानों को अनुदान में भूमि दी। इस्लाम के कानूनों और कुरान के आधार पर उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया।

८. **हिन्दुओं के साथ व्यवहार**—सिंध में युद्ध और विजय के काल में अरबों ने हिन्दुओं के साथ अत्यन्त ही नृशंसता का व्यवहार किया और उन पर असीम अत्याचार किये। आक्रमण और युद्ध के समय मंदिरों व मूर्तियों को तोड़ा गया, हिन्दुओं को निर्दयतापूर्वक कत्ल किया गया, उनकी स्त्रियों और बच्चों को अपहरण कर दास बना लिया गया और उनकी धन सम्पत्ति लूट ली गयी। अनेक पराजित और जीवित हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया। समाज में उनकी स्थिति हीन करदी। कतिपय श्रेष्ठ हिन्दू जातियों को घोड़े की सवारी करने, बहुमूल्य वस्त्र धारण करने तथा सिर पैर ढकने का अधिकार नहीं दिया गया था। हिन्दुओं को प्रत्येक मुसलमान यात्री या पर्यटक के लिये तीन दिन तक भोजन की व्यवस्था करना अनिवार्य थी। उन पर ही अरबों के खर्चीले शासन का और करों का बोझ लादा गया। पर

धीरे-धीरे अरबों ने यह अनुभव किया कि अत्याचारों की नींव पर उनका राज्य संगठित और दृढ़ नहीं हो सकता। बिना हिन्दुओं की सहायता और सहयोग के अल्प संख्यक अरबों से राज्य चलाना असम्भव था। परिस्थितिवश अरब प्रशासकों को हिन्दुओं के प्रति उनके व्यवहार को परिवर्तित करना पड़ा। उन्होंने अब हिन्दुओं के प्रति उदारता और सहिष्णुता का व्यवहार किया। अब हिन्दुओं के लिये धर्म परिवर्तन करना और इस्लाम धर्म की दीक्षा प्राप्त करना अनिवार्य नहीं था। वे जजिया कर देकर अपनी मूर्ति-पूजा और देवोपासना पूर्ववत् करने लगे। सेना में भी उनकी भर्ती की जाने लगी। प्रारम्भ में प्रशासन में नीचे पदों पर और बाद में ऊंचे पदों पर हिन्दुओं की नियुक्तियाँ होने लगीं। नगर-जीवन में कतिपय श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्राथमिकता दी गयी और उन्हें उच्च पद प्रदान किये गये। अल्पकाल में ही वे अरब प्रशासन के अभिन्न अंग बन गये। इस प्रकार की व्यवहारिक राजनीति और धार्मिक उदारता व सहिष्णुता से अरब और हिन्दू संस्कृति का समन्वय आरम्भ हुआ। फलतः अरबों ने हिन्दुओं से बहुत कुछ सीखने का प्रयत्न किया।

सिंध और दाहिर की पराजय के कारण

अरबों के मुहम्मद बिनकासिम के नेतृत्व में जो आक्रमण सिंध प्रदेश में हुए और उन्हें जो विजयश्री निरन्तर प्राप्त हुई तथा सिंध के हिन्दुओं और राजा दाहिर की जो लगातार पराजय हुई उसके अनेक कारण हैं। इनका विश्लेषण निम्नलिखित रूप से है—

१. राजनैतिक कारण—सिंध प्रदेश की राजनैतिक स्थिति अरबों की सफलता में अधिक सहायक हुई। सिंध की दयनीय राजनैतिक दशा का लाभ उस समय कोई भी सफल नेता और रणकुशल सेनापति उठा सकता था, फिर मुहम्मद बिनकासिम में तो कतिपय विशिष्ट योग्यता और प्रतिभा थीं।

(i) **सिंध में नये ब्राह्मण राजवंश का अस्थायी अल्पकालीन अस्तित्व**—सिंध में वहाँ के शूद्र राजवंश का अन्त कर चच ने ब्राह्मण वंश का राज्य स्थापित किया था। यह नया परिवर्तन षडयंत्र, हत्या और विश्वासघात पर आधारित था। जनता का उसमें न तो कोई हाथ था और न उसकी स्वीकृति। यह नया राज्य और शासन लोकप्रिय नहीं था, वह जनता की सद्भावना व सहयोग, श्रद्धा और भक्ति पर आधारित नहीं था। उसके प्रतिष्ठित होने के थोड़े समय बाद ही अरबों ने आक्रमण कर दिये। नये राज्य का अल्पकालीन अस्तित्व और जनसाधारण की राजभक्ति और सहयोग का अभाव अरबों के लिये सहायक हुए।

(ii) **सिंध के राज्य के कूटनीति और मैत्री सम्बन्धों का अभाव**—सिंध के नवीन और प्राचीन दोनों ही राज्यों ने देश के बाहरी और आंतरिक स्वतंत्र राज्यों से कोई कूटनीति और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित नहीं किये। फलतः आक्रमण और संकट-काल में सिंध का राज्य अन्य राज्यों से न तो कोई घनिष्ठ सम्पर्क साध सका और न कोई सहायता ही प्राप्त कर सका।

(iii) **राजनैतिक एकता और समष्टि का अभाव**—सारे देश और सिंध में

इस समय राजनैतिक एकता और समष्टि नहीं थी। भारत का यह विशाल देश असंख्य छोटे-छोटे प्रांतीय राज्यों में विभाजित था और सिंध में भी विघटन और पृथक्करण की प्रवृत्ति प्रबल थी। इससे विदेशी सबल आक्रमणकारी के लिये सिंध-विजय सरल था।

(iv) **प्रशासन की दुर्बलता**— सिंध में दृढ़ केन्द्रीय सत्ता की कमी थी। प्रांतीय शासक, दुर्गपति और अधिकारीगण अर्द्धस्वतंत्र थे। इन्होंने केन्द्रीय सत्ता और राजा दाहिर की सहायता करने और आक्रमणकारियों का डटकर सामना करने की अपेक्षा, शत्रु को गुप्त भेद प्रगट कर दिये, सामरिक महत्व के स्थानों को शत्रु के हाथों में सौंप दिये और रणक्षेत्र छोड़कर भाग गये।

राजा दाहिर के शासनकाल में पक्षपातपूर्ण व्यवहार हुआ। सभी को समान अधिकार नहीं थे। निम्न वर्ग के लोगों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार होता था। जाट और मेड़ जातियों पर नृशंस अत्याचार किये गये। उन्हें श्रेष्ठ बहुमूल्य वेश-भूषा और आभूषण धारण करने, अश्व पर शान से सवारी करने, तथा अन्य प्रमुख कार्यों के करने का निषेध था। इससे इन दलित वर्गों ने दाहिर के प्रशासन से असन्तुष्ट होकर आक्रमणकारियों का साथ दिया और दाहिर की सत्ता के विरुद्ध उनका स्वागत किया। असन्तुष्ट निम्न वर्ग के लोगों ने अन्त में इस्लाम ग्रहण कर लिया।

इसके अतिरिक्त इस समय सिंध में प्रशासन अयोग्य और दुर्बल व्यक्तियों के हाथों में था। वे अपना अधिकांश समय भोगविलास एवं पारस्परिक संघर्ष, वैमनस्य और ईर्ष्या में व्यतीत करते थे। वे न तो योग्य, सफल और रणकुशल सेनापति एवं वीर योद्धा ही थे, और न प्रवीण प्रशासक ही। उन्हें प्रजा का विश्वास और भक्ति प्राप्त नहीं थे। सारा राज्य अव्यवस्थित और शक्तिहीन था।

(v) **दाहिर की दुर्बलता**—राजा दाहिर न तो वीर साहसी सैनिक व योद्धा ही था और न कुशल प्रशासक ही। उसका शासन कठोर और निरकुंश था। उसमें लोकप्रियता का अभाव था। फलतः प्रजा उससे बड़ी असन्तुष्ट थी। अतएव आक्रमण और युद्ध के समय उसे अपनी प्रजा से पूरी सहायता और सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त दाहिर में दूरदर्शिता और कूटनीति का भी अभाव था। उसने अन्य राज्यों से कोई मैत्रीपूर्ण संधियाँ नहीं की और न सीमांत प्रदेश की सुरक्षा की व्यवस्था ही। उसके राज्य में सिंध का विस्तृत समुद्र तट था और इस तट पर से समुद्री आक्रमण की सम्भावना सदा बनी थी तथा समुद्री डाकुओं के भी भयंकर उत्पात होते थे। पर दाहिर ने समुद्र तट की सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की थी और न समुद्री आक्रमणों को रोकने के लिये दृढ़ जल सेना ही संगठित की थी। फलतः अरबों ने सरलता से उस पर आक्रमण कर दिये और तीव्रगति से उसके राज्य में फैल गये और विजय प्राप्त की।

(vi) **राष्ट्रीयता का अभाव**—इस समय सिंधवासियों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना की कमी थी। वे अपने निजी स्वार्थों और संकीर्ण मनोवृत्ति के कार्यों पर देश-हित की बलि दे देते थे। कतिपय ब्राह्मणों और बौद्धों ने, तथा अन्य व्यक्तियों ने देश-द्रोह के कार्य किये, उन्होंने शत्रु का साथ दिया और सिंध को पराधीन बनाने में

पूर्ण सहयोग दिया। मकरान के शासक भी मुहम्मदबिन कासिम को स्थानीय भौगोलिक स्थिति का ज्ञान बताकर और सैनिक सहायता देकर देशद्रोही बनकर अरबों की विजय में सहायक हो गया।

२. **धार्मिक कारण**—इस समय सिंध में विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के अनुयायी निवास कर रहे थे। इनमें ब्राह्मणों और बौद्धों की संख्या विशेष थी। इनमें परस्पर तीव्र वैमनस्य, और संकीर्ण साम्प्रदायिकता थी। उनके लिये देश के संकटकाल में संगठित होना असम्भव था। सिंध के बौद्ध भिक्षुगण वहाँ के राजा और शासकों से इसलिये क्रुद्ध हो गये थे कि उन्होंने शैवधर्म को राज्याश्रय दिया था। फलत: देशद्रोही बौद्धों ने अरब आक्रमणकारियों को प्रोत्साहित किया, उन्हें सहयोग दिया और युद्ध तथा संकट के समय धर्म और अहिंसा के नाम पर अरबों से युद्ध करने के लिये मना कर दिया। इसके अतिरिक्त बौद्धों व ब्राह्मणों ने अध्यात्मवाद को युद्ध और भौतिक विजय से अधिक श्रेयस्कर समझा और उन्होंने विदेशियों की नृशसता की अवहेलना करते हुए उनका स्वागत किया। उन्होंने हज्जाज से अभय दान प्राप्त करके देशद्रोह का कार्य किया।

३. **भौगोलिक स्थिति**—सिंध की भौगोलिक परिस्थिति, वहाँ की मरुभूमि और जनसंख्या की कमी ने अरबों को सफल बनाने में बड़ा योगदान दिया। अनेक कारणों से सिंध भारत के अन्य शेष प्रदेशों से पृथक् हो गया था। फलत: उसे भारत के अन्य राज्यों से समय पर समुचित सहायता प्राप्त होने में व्यवधान उत्पन्न हो गया। इस विषम भौगोलिक परिस्थिति के कारण सिंध दीर्घकालीन संघर्ष और भीषण युद्ध के लिये सर्वथा तत्पर नहीं हो सकता था।

४. **सामरिक और सैनिक कारण**—राजा दाहिर का सैन्य संगठन दूषित और अव्यवस्थित था। अरबों की सेना की अपेक्षा दाहिर की सेना संख्या में कम थी। उसकी सेना इतनी सुसज्जित और रणकुशल भी नहीं थी जितनी कि मुहम्मदबिन कासिम की। दाहिर की सेना में युद्ध सामग्री और अस्त्र-शस्त्रों का अभाव था। देवल बन्दरगाह में दाहिर के केवल चार हजार सैनिक थे, जबकि अरबों के पच्चीस हजार। इन थोड़े से मुट्ठीभर सैनिकों ने बड़ी विशाल सुसज्जित विदेशी सेना से युद्ध किया, और पराजय निश्चित थी। युद्ध और संघर्ष के अन्य स्थानों में भी सेना में तत्काल ही ऐसे रंगरूट भरती कर लिये गये थे जिन्हें युद्ध-प्रणाली और अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान भी नहीं था। अरबों के पास अच्छी प्रशिक्षित अश्वारोही सेना थी और सेना में वे प्राय: अश्वों का ही उपयोग करते थे। इसके विपरीत हिन्दुओं की सेना में हाथियों की प्रचुरता थी और ये हाथी उन्हे युद्ध में उन्मत्त होने पर रौंद डालते थे। दाहिर स्वयं हाथी पर सवार होकर युद्ध करता रहा और इसी हाथी ने होदे में अग्नि प्रज्वलित होने पर दाहिर और होदे को नदी के प्रवाह में पटक दिया। सेना के हतोत्साह होने के लिये यह पर्याप्त था।

दाहिर का सैन्य संचालन ढीला और दोषपूर्ण था। उसमें सामरिक ज्ञान का अभाव था। सेना को शत्रु के विरुद्ध सामरिक ढंग से संगठित और व्यवस्थित करने तथा सफल नेतृत्व करने की अपेक्षा वह एक सैनिक और योद्धा के रूप में युद्ध करने

लगा, अन्त में घिर गया, परास्त हुआ और रणक्षेत्र में ही शत्रु द्वारा मार डाला गया।

दाहिर की सेना में अरब सैनिकों का एक दस्ता भी था। इसने दाहिर की सहायता करने की अपेक्षा, उसके साथ विश्वासघात करके शत्रु को सहयोग दिया।

अपनी विलासिता और अकर्मण्यता के कारण अरबों के आक्रमण के समय उसने तत्काल ही कोई सामरिक कदम नहीं उठाये। उसने अरबों को सिंध प्रदेश के समुद्र तट पर शांति से उतरने दिया, और तट पर ही उन्हें विश्राम और आक्रमण की तैयारी करने दी, यही नहीं उसने अरबों को तूफानी गति से अपने राज्य की सीमा में भी प्रवेश करने दिया और देवल, निरुन, सेहवान आदि स्थानों और दुर्गों को जीतने और उन पर अपना आधिपत्य स्थापित करने दिया। इसके अतिरिक्त दाहिर ने सिंध नदी के पश्चिम का भाग खाली करके पूर्वी तट से घाटी को रोककर बचाव के युद्ध का प्रबंध किया। इस नीति से अरबों का हौसला बढ़ गया, क्योंकि उन्हें अनायास ही सिंध का पश्चिमी भाग प्राप्त हो गया था। दाहिर की गलत युद्ध-नीति से कासिम का कार्य सुगम हो गया। ये उसकी भयंकर अक्षम्य भूलें थीं। यदि वह चाहता तो जब समुद्र तट पर अरबों की अश्वारोही सेना के अश्व किसी पशु रोग से बहुसंख्या में मर रहे थे, अरबों पर बिजली की तरह टूट पड़ता और उन्हें आक्रमण करने के और आगे बढ़ने के पूर्व ही परास्त कर देता। पर उसने अपनी विलासिता, प्रमाद, अकर्मण्यता और अज्ञानता के कारण ऐसा नहीं किया। प्रारम्भ में ही उसने अरबों को रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया और अपनी राजधानी ब्राह्मणाबाद में ही पड़ा रहा। इससे मुहम्मदबिन कासिम बड़ी सरलता से राज्य में प्रवेश कर विजय करता और आगे बढ़ता चला आया। इससे आक्रमणकारियों का उत्साह बढ़ गया और भारतीय सैनिक हतोत्साह हो गये।

५. **आर्थिक कारण**—सिंध मरु प्रदेश होने से जनसंख्या की भी कमी थी और वह भी विभिन्न वर्गों में विभाजित। मरुभूमि की बाहुल्यता, उपज का तीव्र अभाव और जन संख्या की कमी से राजकीय आय के साधन अत्यन्त सीमित हो गये। सिंध में विशाल दृढ़ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना देश के रक्षार्थ रखना असंभव था। सिंध की आर्थिक विपन्नता और दरिद्रता से दीर्घकालीन भीषण संग्राम असम्भव था। फलतः दाहिर भी विशाल सेना से अरबों को परास्त कर खदेड़ने में असमर्थ रहा।

६. **अरबों का कुशल सैन्य संगठन और सेना की विशालता**—अरब सेना का संगठन उच्च कोटि का था। उसमें अरब, सीरिया तथा ईरान के प्रसिद्ध सैनिक तथा अश्वारोही विद्यमान थे। मुहम्मद बिन कासिम की सेना राजा दाहिर की सेना की तुलना में अधिक विशाल और रण-कुशल थी। कासिम की सेना में चुने हुए वीर, साहसी तपेतपाये और अनुभवी सैनिक थे जिनको नवीन अरब रणनीति की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त हो चुकी थी। ईराक के राज्यपाल के अतिरिक्त खलीफा ने भी कासिम की सहायता के लिये विशाल सेना भेजी थी। इन्होंने अरब सेना को दृढ़ और सुसंगठित बनाया था और इस सेना के पास युद्ध के नवीनतम उपकरण थे। जैसा ऊपर लिखा है दाहिर की सेना की संख्या अरब सेना से बहुत कम थी। उसके पास युद्ध की सामग्री व नवीन उपकरणों का अभाव था। दाहिर के सैनिकों

ने प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों और परम्परागत युद्ध प्रणाली का उपयोग किया जिससे उनकी पराजय निश्चित थी।

७. अरब सेना का धार्मिक उत्साह—अरब सेना में अत्यधिक धार्मिक उत्साह था जिसका सिंध के सैनिकों में सर्वथा अभाव था। अरब सैनिक अपने को ईश्वर द्वारा भेजे हुए धर्म प्रचारक समझते थे और मूर्ति-पूजक काफिरों को निर्मूल कर इस्लाम का प्रचार करने की प्रेरणा से वे अपने जीवन और प्राणों की चिन्ता किये बिना ही निरन्तर संघर्ष और युद्ध करते थे। वे धार्मिक भावना से ओत-प्रोत थे और इस्लाम के प्रचार और प्रसार के लिये सदैव युद्ध में अपने प्राणों की बलि देने को तत्पर रहते थे। उन्होंने अदम्य उत्साह और श्लाघ्य सामरिक शक्ति का परिचय दिया। इस्लाम धर्म-प्रसार और भारत से अतुल धन की प्राप्ति के उद्देश्यों ने अरब सैनिकों में अपार साहस, वीरता और त्याग की भावना का संचार किया। सिंध के सैनिकों में ऐसी कोई भी प्रेरणादायक वृत्ति नहीं थी।

८. मुहम्मद बिन कासिम की योग्यता, नेतृत्व और नीति--अरबों का सेनापति मुहम्मद बिन कासिम बड़ा योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह बड़ा ही वीर, साहसी तथा रण-कुशल सेनापति था। उसमें सैन्य-संचालन और सैन्य-संगठन की अद्भुत प्रतिभा थी। उसकी प्रतिद्वन्दिता करने की योग्यता तथा सामर्थ दाहिर में नहीं थी। मुहम्मद बिन कासिम राजनीति में निपुण भी था। आक्रमण और विजय के प्रारम्भिक दिनों में तथा देवल बन्दरगाह में उसने बड़ी कठोर और नृशंस नीति का अनुकरण किया। उसने कत्ले-आम करवाया। इससे भारतीय अत्यंत ही भयभीत और आतंकित हो उठे। विजय प्राप्त करने के लिये आतंकवादी नीति अनिवार्य सी थी, परन्तु निरन्तर विजय प्राप्त करने और अपना आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद उसने उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाई जिससे कि वह भारतीयों का सहयोग और सहायता प्राप्त कर सके। समाज व धर्म के क्षेत्र में असन्तुष्ट वर्ग को और प्रशासन में पीड़ित लोगों को उसने अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया और उदासीन वर्ग का समर्थन प्राप्त किया।

९. अरबों की सफलता और विजय-उल्लास—सिंध में प्रवेश करते ही मुहम्मद बिन कासिम को सफलता प्राप्त हुई और युद्धों में भी उसे निरंतर सफलता और विजय श्री उपलब्ध होती रही। इससे अरब सैनिकों में दिन प्रतिदिन उत्साह और विजय का उल्लास बढ़ता रहा। इसके विपरीत हिन्दु सैनिक निरन्तर पराजय से हतोत्साह होते चले गये, उनका उल्लास घटता चला गया और वे युद्धों में उतनी प्रतिभा, वीरता, उत्साह और साहस प्रदर्शित नहीं कर सके जितनी उनसे आशा थी।

भारत में अरब राज्य और शासन की असफलता

अरबों ने अपनी दृढ़ सामरिक शक्ति और विशाल सेना से भारत के एक प्रदेश, सिंध में अपना राज्य और शासन स्थापित कर लिया था। इन्होंने पार्श्ववर्ती राजाओं पर भी आक्रमण किये और अन्य राजपूत नरेशों से मैत्री पूर्ण संबंध भी स्थापित किये। तत्कालीन भारतीयों ने अपनी शक्ति और सेना को सुसज्जित

सिंध में अरबों के सफल आक्रमण और विजय के कारण

या

सिंध और दाहिर नरेश की पराजय के कारण

- **राजनैतिक कारण**
  - (i) ब्राह्मण राज वंश का अस्थायी अल्पकालीन अस्तित्व
  - (ii) सिंध के कूटनीति और मैत्री सम्बन्धों का अभाव
  - (iii) राजनैतिक एकता का अभाव
  - (iv) प्रशासन की दुर्बलता
  - (v) दाहिर की दुर्बलताएँ, अदूरदर्शिता
  - (vi) राष्ट्रीयता का अभाव
- **धार्मिक कारण** बौद्धों, ब्राह्मणों का वैमनस्य
- **भौगोलिक स्थिति** मरुभूमि, कम जनसंख्या, दीर्घ संघर्ष का अभाव
- **सामरिक और सैनिक कारण**
  - (i) दाहिर का सैन्य संगठन दूषित, अव्यवस्थित
  - (ii) हस्ति सेना द्वारा अहित
  - (iii) सफल सेनापतित्व का अभाव
  - (iv) दाहिर की सैनिक अदूरदर्शिता व अकर्मण्यता
- **आर्थिक कारण** मरुभूमि, उपज का अभाव, सीमित साधन, दरिद्रता, सेना व संघर्ष की कठिनाई
- **अरबों का कुशल सैन्य-संगठन**
  - (i) सेना की विशालता
  - (ii) नवीनतम उपकरण, युद्ध सामग्री
- **धार्मिक उत्साह,** इस्लाम के प्रचार की तीव्र भावना
- **मुहम्मदबिन कासिम की योग्यता,** नेतृत्व और नीति
- **अरबों की निरन्तर सफलता** और विजय का उल्लास

और संगठित कर अरबों को शीघ्र ही देश से खदेड़ने का कोई निरन्तर प्रयास भी नहीं किया। वे पूर्ववत् मौन और असावधान ही रहे। ऐसी अनुकूल परिस्थिति में अरबों ने सिंध में अपना प्रभुत्व और प्रशासन स्थापित किया तथा क्षत-विक्षत अवस्था में यह लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक सिंध में चलता रहा। उसमें दीर्घकालीन स्थायित्व नहीं आया। थोड़े समय बाद ही अरब सत्ता समाप्त हो गई। अरब आक्रमण और प्रशासन सिंध की एक प्रादेशिक घटना मात्र रह गई। इसके निम्नलिखित कारण हैं। ये कारण मोटे रूप से दो प्रकार के हैं—आन्तरिक कारण और बाह्य कारण। इनका विवेचन निम्न लिखित है।

(अ) **आन्तरिक कारण**—आन्तरिक कारणों में नीचे लिखे तत्व प्रमुख है।

१. **सिंध की भौगोलिक स्थिति**—सिंध एक मरुस्थल और निर्जन प्रदेश रहा है जहाँ सामरिक सामग्री और धन-जन का सदैव अभाव रहा है। ऐसे प्रदेश को आधार बनाकर शेष भारत पर विजय करना अरबों के लिये कठिन था। अरबों ने भारत में सिंध के एक ऐसे मार्ग से प्रवेश किया, जो लाभप्रद और आशाजनक नहीं था। मरुस्थल के कारण सिंध भारत के अन्य प्रदेशों से अलग रहा। सिंध की इस प्रथकता ने अरबों को भारत की राजनैतिक दशा का पूर्ण ज्ञान नहीं होने दिया।

सिंध की भौगोलिक स्थिति अरब आक्रमणकारियों के प्रतिकूल थी। सिंध के पूर्व में राजस्थान का मरुभूमिवाला विस्तृत क्षेत्र रहा है। यहां राजपूतों की अजेय शक्ति का प्रभाव रहा। यहीं राजपूतों के ऐसे प्रबल राज्य थे जिन पर विजय प्राप्त करना अरबों के लिये दुष्कर कार्य था। इसी प्रकार सिंध के उत्तर में भी राजपूतों के शक्तिशाली विस्तृत राज्य थे। सुमेर राजपूतों ने अरबो को बुरी तरह परास्त कर दिया था। इस पराजय से भी अरब अपना स्थायी राज्य बनाने में असफल रहे। इस प्रकार अरब अक्रांता एक गलत मार्ग से आकर सिंध के दरिद्र प्रदेश में फंस गये।

इसके अतिरिक्त सिंध देश अरबों के देश से इतना अधिक दूर था कि अरबों के खलीफा सिंध प्रदेश पर अपना पूर्ण दृढ़ प्रभुत्व और नियन्त्रण बनाये रखने में असमर्थ रहे। इसके साथ-साथ सिंध प्रदेश और अरब के बीच की राजनीति भी सदैव परिवर्तित होती रही। अतएव प्रारम्भ से ही खलीफा को सिंध को अपने प्रभुत्व में रखना ही दुष्कर कार्य प्रतीत हुआ।

२. **सिंध की असंतोषपूर्ण आर्थिक दशा**—सिंध मरुभूमि प्रधान देश है जहां जनसंख्या कम है। इससे सिंध की आर्थिक दशा भी दयनीय रही। उसके आय के स्रोत सीमित रहे और पर्याप्त सामग्री और साधनों का सर्वथा अभाव रहा। कोई भी विदेशी सत्ता ऐसे सीमित आय, सामग्री और साधनों से दृढ़ शासन नहीं चला सकती। सिंध की विपिन्नता और दरिद्रता तथा डांवाडोल असन्तोषप्रद आर्थिक स्थिति ने अरब राज्य की नींव उखाड़ने में विशेष योग दिया। सिंध के अरब शासकों को भी वहां की आय और सामरिक सामग्री के अभाव ने इतना अधिक दबा दिया था

कि वे भी सिंध से आगे बढ़कर निरन्तर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकते थे।

३. **भारत में छोटे-छोटे प्रांतीय राज्यों का बाहुल्य**—इस समय भारत छोटे-छोटे प्रान्तीय राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों की संख्या भी अधिक थी। अरब आक्रमणकारियों को सिंध और भारत के अन्य प्रदेशों में अपने प्रभुत्व और राज्य को स्थायी बनाने के लिये इन राज्यों से युद्ध करना पड़ता था जिससे उनके धन-जन की शक्ति क्षीण होती गई। इसके अतिरिक्त इन प्रांतीय राज्यों पर आक्रमण करते समय अरब अपने मूल देश से अधिकाधिक दूर होते जाते थे। इससे इनके आक्रमणों और युद्धों पर प्रभाव पड़ता और वे किसी भी एक युद्ध में पूर्ण रूप से विजयी नहीं बन सके। फलतः भारत का अधिकांश भू भाग इनके हाथों में नहीं आया और उनका राज्य व सत्ता स्थायी नहीं बन सके।

४. **प्रशासन-व्यवस्था से अरबों की अनभिज्ञता**—अरब आक्रमणकारियों में न तो शासन करने की क्षमता ही थी और न वे शासन-व्यवस्था की कला से पूर्ण रूप से अवगत ही थे। वे केवल विजेता और सैनिक बनकर ही भारत में आये और इसी रूप में यहाँ निवास करने लगे। उन्होंने प्रशासन व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने विजय और प्रशासन-संगठन का कार्य साथ-साथ नहीं किया। इससे वे दृढ़ स्थायी शासन स्थापित नहीं कर सके और न अपनी शक्ति और प्रभुत्व को ही प्रबल बना सके।

५. **उन्नत और प्रभावशील भारतीय सभ्यता और संस्कृति**—भारतीयों की सभ्यता तथा संस्कृति अरबों की सभ्यता तथा संस्कृति से अधिक परिष्कृत, उन्नत और विकसित थी। फलत: उससे अरब अधिक प्रभावित हुए। परन्तु अरब भारतीयों पर किसी प्रकार का प्रभाव न डाल सके। पुरोहितों और ब्राह्मणों के नेतृत्व में सिंध के हिन्दू अपनी सभ्यता और संस्कृति को अरबों की सभ्यता और संस्कृति से अधिक श्रेष्ठतम और विकसित समझते थे। उनकी दृष्टि में अरब बर्बर, नृशंस और असभ्य लोग थे जो लूट-खसोट,रक्तपात और सामरिक बातों में अधिक अभिरुचि रखते थे। इसी भावना से प्रेरित होकर अरबों के नृशंस अत्याचारों और अनाचारों को सहन करके भी हिन्दुओं ने अरबों की संस्कृति के प्रति विराग रखा, और अपने विशिष्ट धर्म को परित्याग कर बहुसंख्या में इस्लाम धर्म को ग्रहण नहीं किया।

६. **अरबों का विलासप्रिय जीवन**—अनेक अरब सैनिक और अधिकारी जिनको सिंध प्रदेश में जागीर प्राप्त हुई थी, स्थायी रूप से यहाँ रहने लगे। अरब कबीलों ने सिंध में मंसूरा, बैंजा, महफूजा, मुलतान आदि स्थानों में अपने दृढ़ उप-निवेश स्थापित किये। उन्होंने अपने विवाह सम्बन्ध भी सिंधियों के साथ कर लिये और अरब रक्त को भारतीय रक्त में मिश्रित कर दिया। अब वे विलासिता और आलस्य का जीवन व्यतीत करने लगे। अब उनका चारित्रिक पतन हो गया था। विलासप्रिय जीवन के साथ-साथ उनमें पारस्परिक द्वेष भी उत्पन्न हो गया था जिससे उनकी एकता के सूत्र छिन्न-भिन्न हो गये। इसके साथ-साथ अब उनमें न तो पहिले जैसा संगठन ही रहा, न सामरिक शक्ति और न शासन करने की क्षमता ही। फलत:

उनमें भारत के अन्य प्रदेशों को जीतने और इस्लाम के साम्राज्य का विस्तार करने की इच्छा और उत्कंठा ही नहीं रही। इससे सिंध का संपूर्ण राज्य भी धीरे-धीरे उनके हाथों से निकल गया।

७. मुहम्मद बिन कासिम की आकस्मिक मृत्यु—मुहम्मद बिन कासिम बड़ा वीर, साहसी सेनापति और सफल प्रशासक तथा संगठनकर्त्ता था। उसके आकस्मिक निधन से सिंध में अरबों के राज्य को गहरा आघात लगा। उसके देहावसान के बाद अरबों की शक्ति शिथिल हो गयी और अब उनमें कोई ऐसा अरब शासक और नेता नहीं था जो बिखरते और लड़खड़ाते हुए अरब राज्य को सम्भालता। ऐसा कोई रण-कुशल अरब सेनापति भी नहीं था जो अदम्य उत्साह और वीरता से आगे बढ़ता और राजपूतों की अजेय शक्ति और दृढ़ राज्यों से लोहा लेता। योग्य और सफल सेनापति के नेतृत्व में अरबों का भारत विजय का कार्य भी अवरुद्ध हो गया। मुहम्मद बिन कासिम के उत्तराधिकारी इतने अयोग्य और निर्बल निकले कि वे बिना खलीफा की सहायता और सहयोग के सिंध में अधिक समय तक टिक नहीं सके।

(ब) बाह्य कारण—अरबों का शासन स्थायी और प्रभावशील न हो सका इसके निम्नलिखित बाह्य कारण हैं।

१. खलीफाओं के नियंत्रण । अभाव—सिंध अरब से समुद्रपार इतना अधिक दूर देश था कि खलीफा उस पर अपना नियमित दृढ़ नियंत्रण नहीं रख सके। आवश्यक साधनों के अभाव में समुचित नियंत्रण असम्भव था। इससे खलीफा द्वारा नियुक्त सिंध के राज्यपाल स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे और साम्राज्य विस्तार के प्रयत्न करने लगे। कठोर नियंत्रण के अभाव तथा स्वतंत्र व विघटन की प्रवृत्ति से खलीफा सिंध की ओर से उदासीन हो गये।

२. खलीफाओं की उदासीनता और निष्क्रियता—अत्यधिक धन और जन नष्ट करने के बाद खलीफाओं को सिंध जैसा निर्जन मरुस्थल का प्रदेश प्राप्त हुआ, ऐसा देश जहाँ आर्थिक दारिद्रय और सीमित साधन तथा आय के स्रोत थे। ऐसे विजित प्रदेश से कोई आर्थिक लाभ की आशा नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार सिंध विजय खलीफाओं को अत्यन्त महंगी पड़ी और अब वे भारत विजय के प्रति अधिक उदासीन और निष्क्रिय हो गये। उन्होंने भारत के अन्य प्रदेशों की विजय के लिये कोई महत्वपूर्ण प्रयास नहीं किये। उनकी इस उपेक्षा, उदासीनता, अवहेलना और निष्क्रियता से सिंध स्थित अरबों को आगे आक्रमण और विजय के लिये कोई प्रोत्साहन और प्रेरणा नहीं प्राप्त हुई।

३. धार्मिक प्रेरणा और उत्साह का अभाव—खलीफाओं में धार्मिक उत्साह और साहस का अन्त हो चुका था। वे अन्य राजाओं और सम्राटों की भाँति विलासी जीवन व्यतीत करने लगे थे। उनका नैतिक पतन हो गया था और उनके प्रशासन में दुर्बलता और अस्थायीत्व आ गया था। इससे वे सिंध स्थित अरबों को इस्लाम के प्रसार और विजय के लिये कोई प्रेरणा और उत्साह नहीं दे सकते थे। प्रारम्भ में

अरबों ने जिस धार्मिक प्रेरणा, जोश और बलिदान की भावना से सिंध विजय की थी वह धीरे-धीरे समाप्त हो गयी थी। इस्लाम पर मर मिटने की मनोवृत्ति और कट्टरता लुप्त हो चुकी थी और इसके स्थान पर उनमें विलासिता, कामुकता, अर्थलोलुपता और अकर्मण्यता घर कर गयी थी।

४. **खलीफाओं का वंश परिवर्तन**—सन् ७५० में दमिश्क में हुए एक विद्रोह के परिणामस्वरूप अरब में खलीफाओं के उमैय्या वश का अन्त हो गया था और अब्बासी वंश के खलीफाओं का उत्कर्ष हुआ और उन्होंने शीघ्र ही इस्लामी साम्राज्य पर अपना आधिपत्य प्रतिष्ठित कर लिया। इस नवीन खलाफत के सूत्रपात और वंश-परिवर्तन से पहिले के खलीफाओं के अधिकारियों और शासकों को अपने पद से अलग होना पड़ा और प्रशासन नवीन रूप से प्रारम्भ हुआ। इसका दुष्परिणाम सिंध के अरब प्रशासन और राज्य पर भी गहरा पड़ा तथा शासन में शिथिलता और निर्बलता आ गयी।

५. **एकता और संगठन का अभाव तथा आंतरिक दुर्बलता**—खलीफाओं के वंश-परिवर्तन और नवीन प्रशासन से इस्लामी साम्राज्य अत्यधिक प्रभावित हुआ। इसमें राष्ट्रीयता की भावना का स्थान साम्प्रदायिकता ने ले लिया तथा इस्लामी एकता और संगठन का विनाश हो गया। अनेक सम्प्रदायों और दलों के आविर्भाव तथा तीव्र मतभेदों ने स्लामी सत्ता और शक्ति की नींव ही कुरेद दी। इसके साथ-साथ खलीफाओं की बढ़ती हुई विलासिता ने खलीफाओं की सत्ता और साम्राज्य का इस्लाम धर्म के मौलिक और जीवनदायी तत्वों से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। अब उनमें धार्मिक जोश और कट्टरता तथा अरब जीवन की सादगी लुप्त हो गयी थी। इस्लाम की सादगी, समानता, बन्धुत्व और कठोरता ही केवल ऐसे तत्व थे जो इस्लाम के साम्राज्य की एकता और संगठन को बनाये रख सकते थे परन्तु खलीफाओं तथा उनके परामर्शदाताओं और नवीन अधिकारियों ने इन्हें पूर्ण रूप से त्याग दिया था। इस आंतरिक दुर्बलता से सिंध स्थित अरब शक्ति और शासन अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसे खलिफाओं की ओर से प्राप्त होने वाली सहायता बन्द हो गयी।

(६) **खलाफत का अन्त**—मध्य एशिया में तुर्कों की शक्ति का उत्कर्ष होने से अरब के खलिफाओं की शक्ति धीरे-धीरे नष्ट हो गयी। कालान्तर में खलिफाओं का अन्त हो गया; और साम्राज्य तथा समस्त सत्ता पर तुर्कों का अधिकार स्थापित हो गया। अरब शासकों का ध्यान तुर्कों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के प्रयासों पर केन्द्रीभूत हो गया। सिंध की अरब सत्ता की ओर वे ध्यान ही नहीं दे सके। जब भारत पर तुर्कों के आक्रमण प्रारम्भ हुए तब लड़खड़ाता हुआ अरब राज्य धराशायी हो गया और सिंध में अरब प्रशासन और शक्ति का अन्त हो गया। जिस द्रुत तूफानी गति से अरबों ने सिंध पर विजय प्राप्त की थी, उसी तीव्र-गति से उनका अन्त भी हो गया।

भारत में अरब राज्य की असफलता और अल्पकालीनता के कारण

आन्तरिक कारण	बाह्य कारण
१. सिंध की भौगोलिक स्थिति, मरुस्थल, निर्जन प्रदेश, सामग्री व धन का अभाव, अरब व सिंध की दूरी।	१. खलीफाओं के नियन्त्रण का अभाव।
२. सिंध की डांवाडोल, असन्तोष पूर्ण, आर्थिक दशा।	२. खलीफाओं की उपेक्षा, उदासीनता, निष्क्रियता।
३. छोटे प्रान्तीय राज्यों का बाहुल्य।	३. विलासी खलिफाओं में धार्मिक प्रेरणा और उत्साह का अभाव।
४. अरब विजेता और सैनिक, प्रशासक नहीं।	४. खलीफाओं का वंश परिवर्तन, शासन में शिथिलता निर्बलता।
५. उन्नत भारतीय सभ्यता व संस्कृति से अरब प्रभावित।	५. एकता, संगठन का अभाव, सांप्रदायिकता व आन्तरिक दुर्बलता।
६. अरबों का विलासमय जीवन, चारित्रिक पतन।	६. खलीफाओं का अन्त, तुर्कों का उत्कर्ष।
७. मुहम्मद बिन कासिम की आकस्मिक मृत्यु।	

अरब आक्रमण का मूल्यांकन

भारतीय इतिहास में अरब आक्रमण और विजय एक साधारण घटना मानी जाती है। भारत के इतिहास में इसका कोई विशिष्ट उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा। अरबों ने जिस शीघ्रता और तीव्रता से सिंध पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया, उतनी ही शीघ्रता से वे अपने राज्य और शक्ति भारत के अन्य प्रदेशों में स्थापित और परिवर्द्धित नहीं कर सके। अरबों का प्रभाव और क्षेत्र सिंध तथा मुलतान तक ही सीमित रहा और वे राजपूतों की अभेद्य शक्ति व राज्यों के कारण आगे नहीं बढ़ पाये। मुहम्मद बिन कासिम राजस्थान के मध्यवर्ती क्षेत्र और चित्तौड़ तक कभी पहुँच नहीं सका। कासिम के उत्तराधिकारी कन्नौज के सशक्त राजपूत राजाओं से युद्ध करने और गंगापार आने के लिये कभी तत्पर नहीं हुए। कच्छ में कुछ अरब, डाकूओं के समान धावे कर अघोई तक पहुँच गये पर वहाँ उन्होंने कोई प्रदेश जीता नहीं और न कोई शासन स्थापित किया। इस पृष्ठभूमि में कर्नल टाड का यह मत है कि अरब आक्रमण से समस्त उत्तरी भारत दहल गया, नितान्त भ्रममूलक है।

हाँ, यह बात अवश्य है कि अरबों ने अपने तूफानी आक्रमण से सिंध विजय कर विशाल भारत के एक सीमांत प्रदेश में ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के अनुयायियों में तलवार और शक्ति के आधार पर इस्लाम का प्रचार अवश्य किया और जबरन वहां के निवासियों को उनके पुरखाओं के मान्य धर्म को त्यागकर इस्लाम स्वीकार करने के लिये बाध्य किया और छोटे से सीमान्त क्षेत्र में ऐसे धर्म का सूत्रपात किया जिसके अनुयायियों ने मध्ययुग में विशाल भारत के अधिकांश प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया। पर इस्लाम के इस साम्राज्य का श्रेय अरबों को नहीं अपितु तुर्कों को है,

जिन्होंने दसवीं सदी में भारत के उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र में निरन्तर आक्रमण करके इस्लाम धर्म को अरबों की अपेक्षा अधिक भयंकर और नृशंस रूप में लाये। इसीलिये कहा जाता है कि अरबों के आक्रमण और सिंधविजय भारतीय इतिहास में एक गौण और महत्वहीन घटना है। इस विशाल देश के एक छोटे से कोने पर ही इसका प्रभाव पड़ा। शेष भारत पर अरब कोई अक्षुण्ण और स्थायी प्रभाव नहीं डाल सके। स्वयं हिन्दु और अनेक राजपूत नरेश भी अरबों के इन आक्रमणों के प्रति उदासीन थे। अरबों की इस विजय का उनकी राजनीति में कोई महत्व नहीं था। उन्होंने इस बाह्य शक्ति को सामूहिक सैनिक संगठन और दृढ़ता से निर्मूल करने और सीमान्त क्षेत्र से विदेशियों को खदेड़ने का कोई प्रयास ही नहीं किया। स्वयं अरबों में भी इतनी शक्ति नहीं थी कि वे तत्कालीन राजपूत राज्यों को युद्ध में धराशायी करते। कालान्तर में अपनी कबीलेदार ईर्षा, वैमनस्य और धार्मिक मतभेद के कारण अरब परस्पर ही युद्ध और संघर्ष करने लगे। इससे उनके केन्द्रीय शासन का अन्त हो गया और अरब शासन का प्रभाव प्राय: नगरों तक ही केन्द्रित रह गया। अरबों के मुलतान और मंसूरा नगरों को छोड़कर शेष सिंध पर शीघ्र ही हिन्दू राजाओं का अधिकार हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस्लामी आंधी और तूफान सिंध तथा पंजाब के निचले क्षेत्र में ही अपनी तांडव लीला कर पीछे लौट गया और यत्र-तत्र कुछ चिन्ह छोड़ गया। इसीलिये वुल्जेहेग ने भी कहा है कि अरबों की सिंध विजय "भारत के इतिहास में एक कथा मात्र थी और इस विशाल देश के बहुत छोटे भाग पर इसका प्रभाव पड़ा।" स्टेनले लेनपूल ने भी इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि "अरबों ने सिंध प्रदेश पर अधिकार किया पर यह विजय भारत तथा इस्लाम के इतिहास में एक कथा मात्र थी। यह एक ऐसी विजय थी, जिसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।"[1]

अरब आक्रमण का प्रभाव एवं महत्व

राजनैतिक दृष्टिकोण से अरब आक्रमण का भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। अरबों का राज्य भी भारत में स्थायी नहीं बन सका। उनकी सिंध-विजय प्रभावहीन-सी रही। अरब आक्रमण का राजनैतिक प्रभाव नगण्य रहा हो परन्तु इस का सांस्कृतिक प्रभाव निश्चित ही रहा, अरबों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। अरब यात्री, व्यापारी,और इस्लाम के साधु-संत निरन्तर भारत आते-जाते रहे और भारत के विषय में लिखते-पढ़ते रहे, अन्य देशों को भारत के विषय में अवगत करते रहे। इससे आगे चल कर तुर्कों को भारत पर आक्रमण करने में सहायता प्राप्त हुई।

अरबों पर हिन्दू संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव—भारत की श्रेष्ठ और विकसित संस्कृति ने अरबों पर विजय प्राप्त की। अरबों की इस्लामी संस्कृति पर भारतीय संस्कृति का अमिट प्रभाव पड़ा। भारतीयों के संमुख अरब अभी भी बर्बर और नृशंस थे, वे असभ्यों की श्रेणी से ऊँचे नहीं थे। जब अरब आक्रमणकारी भारतीयों के निकट

2. "It was an episode in the History of India and Islam, a triumpb without results." Sir Stanley—Lane-poole

तथा घनिष्ट सम्पर्क में आये तब वे भारतीयों की उत्कृष्ट संस्कृति से आकृष्ट हुए और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अरबों ने भारतीयों से शिक्षाएँ ग्रहण कीं।

(१) **साहित्य और विज्ञान का प्रभाव**--अरब भारतीय साहित्य और विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने भारतीय ज्योतिष, चिकित्सा, रसायनशास्त्र, गणित, दर्शन आदि के सीखने के प्रयत्न किये। इसके लिये उन्होंने तत्कालीन बौद्ध संतों और ब्राह्मण पंडितों तथा विद्वानों के चरणों में बैठकर इन विषयों का अध्ययन किया और अनेकानेक अरब विद्वान भारत में विविध विषयों का अध्ययन करने के लिये आये। उन्होंने भारतीय विद्वानों, लेखकों और साहित्यकारों का बड़ा सम्मान किया। बगदाद के खलिफाओं और विशेषकर खलीफा हारुं रशीद ने इस कार्य में बड़ी अभिरुचि ली। एक बार खलीफा हारुं रशीद ने अपने असाध्य रोग की चिकित्सा के लिये एक भारतीय वैद्य को बगदाद बुलाया और जब उसे चिकित्सा में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई तब उस वैद्य का बड़ा राजकीय सम्मान किया और उसे ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित भी किया। इसके बाद अनेक भारतीय विद्वानों और लेखकों को बगदाद आमन्त्रित किया गया और उनकी सहायता और सहयोग से अनेक भारतीय ग्रंथों और शास्त्रों का अनुवाद अरबी भाषा में करवाया गया। उनका यह कार्य खलीफा मंसूर (सन् ७५३-७७४) और खलीफा हारुं रशीद (सन् ७८६-८०८) के शासनकाल में बड़े उत्साह और अभिरुचि से हुआ। इन खलिफाओं के प्रधान मंत्री बरमका भारतीय बौद्ध थे। उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। इससे पहिले वे मध्य एशिया में बल्ख के बौद्धों के नव-विहार के प्रधान रह चुके थे। इन्होंने भारत से अनेक विद्वान और लेखक अनुवाद करने के लिये आमन्त्रित किये। यद्यपि इनके भारतीय नाम तो नहीं प्राप्त होते हैं पर इनके प्राप्त होने वाले अरब नाम हैं--बहला, मनका, बाजीगर, फलबरफल, सिंदबाद, बारवर, राजा, अनकू, अरीकल, आदि। अनुवाद किये हुए ग्रथों में महत्वपूर्ण ग्रंथ भारतीय विद्वान वैज्ञानिक ब्रह्मगुप्त के "ब्रह्म सिद्धांत" और "खंड खाण्डयक" हैं। अलबरुनी के कथनानुसार इन ग्रंथों तथा अनुवाद के कार्यों से अरबों को वैज्ञानिक ज्योतिष के प्रारम्भिक मूल सिद्धान्तों का ज्ञान हुआ। अनुवाद किये हुए अनेक ग्रन्थों से अरबी भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि हुई एवं उसके रिक्त कोष की पूर्ति हुई। प्रसिद्ध अरब ज्योतिषी अबूमशहर ने भारत में आकर वाराणसी में दस वर्ष तक विद्याध्यन किया। अरबों को गणित के अंकों का ज्ञान भारतीयों से प्राप्त हुआ। अंक विद्या, शून्य से नो तक के अंक और दशमलव प्रणाली को जिसका आविष्कार और प्रचार भारत में हुआ था, अरबों ने भारतीयों से सीखकर यूरोप और मध्य एशिया के प्रदेशों में इसका प्रचार किया। भारतीय अंक प्रणाली को अरबों ने "हिन्द-सा" कहा। भारतीय चिकित्सा शास्त्र और औषधि-विज्ञान की भी अनेक बातें और सिद्धान्त अरबों ने भारतीयों से सीखी। भारतीय दर्शन का भी अध्ययन कर अरबों ने उसके तत्वों को अपनाने का प्रयास किया।[1]

---

1. 'The sublimity of the Hindu philosophic ideas and the richness and versatility of Hindu intellect were a strong revelation to them (Arabs), The cardinal doctrine of Muslim theology, that

(२) **ललित कलाओं का प्रभाव**—साहित्य और विज्ञान के अतिरिक्त भारतीय ललित कलाओं से भी अरब प्रभावित हुए। अरबों ने संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला, युद्ध-कला, अस्त्र-शस्त्र विद्या आदि में भी भारतीयों को गुरू माना। वे असंख्य भारतीय कलाकारों को अपने अरब देश में ले गये और उनके निर्देशन में उन्होंने भारतीय ढंग की मसजिदें बनवाईं और एक नवीन भवन-निर्माण कला का प्रादुर्भाव हुआ। भवन-निर्माण कला का ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त अरबों ने विष में बुझे हुए अस्त्रों की विद्या तथा युद्ध विद्या भी सीखी।[2] ऐसा माना जाता है कि भारतीयों का शतरंज का खेल भी अरबों ने सीखा। सबसे प्रथम दाहिर की राजकन्याओं ने यह शतरंज का खेल खलीफा को सिखलाया था।

भारतीय शास्त्रों और विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर अरबों ने उसे यूरोप तथा मध्य एशिया के विभिन्न देशों में प्रसारित किया। इससे भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति ने इन देशों को प्रभावित किया। इस पृष्ठभूमि में यह कथन अतिरंजित नहीं है कि मध्ययुग में भारत अरबों के गुरूपद पर आसीन था। हैवेल ने भी इसी मत का समर्थन किया है। "भारत ने अरबों को अनेक विद्याओं का ज्ञान कराया तथा उनके साहित्य और कला को विशेष रूप से प्रभावित किया।" अरबों ने भारत से प्राप्त अपने ज्ञान को अरब देश तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु उन्होंने यूरोप के प्रदेशों में अपने आक्रमणों के समय भारतीय ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति का प्रचार किया। इसीलिये प्रसिद्ध विद्वान एच. जी. वेल्स ने कहा है कि "मध्य युग में जब यूरोप में अविद्या का प्रचार था, वहाँ ज्ञान का दीपक अरबों को भारत से प्राप्त हुआ था।" इस्लाम धर्म का दर्शन और अरब जीवन व संस्कृति के अनेक तत्व भी भारतीय ज्ञान व संस्कृति से प्रभावित हुए हैं। हैवेल ने इस मत का समर्थन किया है।[3]

३. **धार्मिक प्रभाव**—अरब आक्रमण के परिणाम स्वरूप अनेक अरब सिंध के नगरों में बस गये और उन्होंने इस्लाम धर्म का प्रचार किया। अब भारत में ऐसे धर्म का प्रचार हुआ जो सरल और लोकतन्त्रात्मक था, जिसमें बन्धुत्व, समानता और ऐकेश्वरवाद की भावना थी। इससे भारत के निम्न और शोषित जातियों ने इस धर्म को ग्रहण कर लिया। उन लोगों ने भी इस्लाम को स्वीकार कर लिया जिन्हें शक्ति द्वारा

---

there is one God, was already known to the Hindu saints and philosophers, and they found that in the nobler arts, which enhance the dignity of man the Hindus far excelled them"

—Dr. Iswari Prasad.

2. "The Arabs themselves possessed little or no genius for the art of building and if their places of worship were to be as attractive as those of rival creeds, it was indispensible that they should impress into their service the builders and artists of the newly conquered countries."

—Sir John Marshall

3 "The Muslim historians are apt to forget or minimise the debt which the Saracenic civilisation owed to Indo-Asyan culture.

इस धर्म को अंगीकार करने के लिये बाध्य किया गया था। इससे भारत में कालान्तर में इस्लाम धर्म के प्रचार और इस्लाम पर आधारित साम्राज्य को स्थापित करने में खूब प्रोत्साहन, सहयोग और सहायता प्राप्त हुई। इस प्रकार अरब आक्रमण का सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव स्थायी और अमिट रहा।

सारांश

मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद अरब के खलिफाओं ने इस्लाम धर्म और साम्राज्य पूर्व और पश्चिम के अनेक देशों में फैलाया। इन खलिफाओं ने अरबों की सेना से भारत के प्रचुर धन को प्राप्त करने और वहाँ इस्लाम का प्रसार करने के लिये सन् ६३६-३७ में भारत के पश्चिमी तट पर थाना के पास और बाद में सन् ६४४ में किरमन, सीस्तान और मकरान पर आक्रमण किये। पर वहाँ भारतीयों द्वारा अरब पराजित हुए।

मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण और अरबों की सिंध विजय—सन् ७१२ में इस्लाम के साम्राज्य का भारत में विस्तार करने, वहाँ इस्लाम का तीव्रगति से प्रचार करने, तथा भारत की प्रसिद्ध धन-सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये अरबों ने आक्रमण किये। इसका तात्कालिक कारण था कि भारतीय समुद्री डाकुओं द्वारा खलीफा को भेजी जानेवाली सामग्री, धन जहाजों से लूट लिया गया था। इन डाकुओं को दण्ड देने के लिये और हानि की पूर्ति करने के लिये ईराक के राज्यपाल हज्जाज ने सिंध पर अरबों की सेना से दो बार आक्रमण किये। पर उसकी सेना परास्त कर खदेड़ दी गयी। तब हज्जाज ने अपने वीर और साहसी भतीजे मुहम्मद बिनकासिम के नेतृत्व में एक सुसज्जित और विशाल संगठित अरब सेना सिंध पर आक्रमण करने के लिये भेजी। इस समय सिंध में ब्राह्मण राजा दाहिर था। जिसके प्रशासन से जनता असन्तुष्ट थी और देश में गृह-कलह था।

सन् ७११ में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध के देवल बन्दरगाह पर आक्रमण किया। थोड़े सैनिकों और राजा दाहिर के भतीजे ने आक्रमणकारियों का सामना किया, पर वे परास्त हुए। अरबों ने नगर को लूटा, असंख्य नागरिकों को कत्ल किया, मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ा, और अनेकानेक लोगों को तलवार के बल पर इस्लाम ग्रहण करने और दास बनने के लिये बाध्य किया। देवल पर अधिकार करने के बाद मुहम्मद बिन कासिम सिंध के भीतरी भाग की ओर बढ़ा और नीरुन, सेहवान तथा

A great many of the elements of the Arabian culture, which afterwards had such a marvallous effects upon Eusopean civilisotion were borrowed from Iudia."

"It was India not Greece, that taught Islam in the impressionable years of its youth, formed its philosophy and esoteric religious ideals and inspired its most characteristic expression in literature, art and architecture." Havel, Aryan Rule in India-Page 256.

सीसम दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सीसम में जाटों ने कासिम से युद्ध किया पर वे परास्त हुए। अब कासिम ब्राह्मणाबाद की ओर मार्ग में गांवों को लूटता, विध्वंस करता हुआ, आगे बढ़ा। ब्राह्मणाबाद के समीप राजादाहिर और मुहम्मद बिन कासिम की सेना में राओर में २० जून ७१२ को भयंकर युद्ध हुआ। दाहिर ने बड़ी वीरता और साहस से युद्ध किया, पर वह पराजित हुआ और रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। इस युद्ध के बाद दाहिर की रानी ने शत्रु सेना को रोकने के लिये उस पर पाषाणों और चक्रों की वर्षा की, परन्तु असफल होने पर अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा के लिये अन्य स्त्रियों सहित अग्नि में जलकर मर गयी। राओर के युद्ध के बाद कासिम ने ब्राह्मणाबाद को खूब लूटा और उस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस लूट में दाहिर की दो राजकन्याएं, अत्यन्त बहुमूल्य सामग्री व राजकोष उसके हाथ लगे। इसके बाद कासिम ने सिंध के प्रमुख नगर और राजधानी अरोरा पर आक्रमण किया, वहां की सेना को परास्त कर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब कासिम ग्रामों और नगरों को विध्वंस करता, लूटता हुआ, मुलतान की ओर सहसा बढ़ा। वहाँ के सैनिकों और शासक ने उससे युद्ध किया। परन्तु जल के अभाव में उन्होंने हार मानकर आत्मसमर्पण कर दिया। इस पर कासिम ने नगर में प्रवेश करके उसे खूब लूटा, नगर निवासियों को इस्लाम ग्रहण न करने पर कत्ल कर दिया और उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बना लिया। सिंध और मुलतान विजय से प्रोत्साहित होकर मुहम्मद बिन कासिम ने कन्नौज पर आक्रमण करने की योजना बनाई, पर उसे कार्यान्वित करने के पूर्व ही वह मर गया।

मुहम्मद बिनकासिम की मृत्यु—दाहिर की जिन दो राजकन्याओं को मुहम्मद बिनकासिम ने खलीफा के पास उपहार के लिये भेजा था, उन्होंने खलीफा से कहा कि कासिम ने पहिले ही उनके कुमारित्व को नष्ट कर डाला है। इस पर खलीफा ने क्रुद्ध होकर कासिम को जीवित ही बैल की खाल में सिलवाकर अपने सामने मंगवाया और जब खाल खोली गयी तब मुहम्मद बिनकासिम मरा हुआ पाया गया। कुछ इतिहासकार इस घटना को असत्य बताते हैं और उनका मत है कि मुहम्मद बिन-कासिम की बढ़ती हुई शक्ति, विजय और यश से चिढ़कर खलीफा सुलेमान ने उसे बन्दी बनाकर बुलवा लिया और मरवा डाला।

भारत के अन्य प्रदेशों पर अरबों के धावे—मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु के बाद खलीफा ने सिंध में जुबेद और तमिक नामक राज्यपाल नियुक्त किये। इन्होंने गुजरात और कच्छ पर आक्रमण किये और बाद में उससे आगे बढ़े, परन्तु चालुक्य नरेश पुलकेशीन ने अरबों को बुरी तरह परास्त कर खदेड़ दिया। इसके बाद उन्हें गुर्जर प्रतिहारों ने निरन्तर हराकर उत्तरी भारत में आगे बढ़ने से रोका। अब अरबों ने अपना राज्य सिंध में ही सीमित कर वहाँ अपना प्रशासन स्थापित किया।

अरबों का सिंध में प्रशासन—अरबों को न तो हिन्दुओं के समान प्रशासन का ज्ञान था और न वे उसके लिये योग्य ही थे। सिंध में प्रशासन स्थापित करने के लिये उनकी संख्या भी नगण्य थी। हिन्दुओं का और उनकी विकसित संस्कृति का

निरन्तर विरोध करना और नृशंसतापूर्वक उनकी हत्या करते रहना अरबों के लिये असम्भव था। प्रशासन को स्थायीत्व देने के लिये हिन्दुओं का सहयोग व सहायता भी आवश्यक थी। इसलिये कासिम ने हिन्दुओं के प्रति उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाई।

प्रशासन के लिये सिंध को अक्तों (जिलों) और ग्रामों में विभाजित किया गया। जिलाधीश अरब होता था। कई अरब सैनिकों, अधिकारियों और इस्लामी फकीरों व संतों को जागीर देकर सामन्त-प्रथा प्रारम्भ की गयी। कृषि का कार्य हिन्दू करते थे। भूमिकर उपज का $\frac{1}{4}$ था, पर सिंचाई कर $\frac{2}{5}$ था। सुरा, मछलियों, मोतियों फलों आदि पर लगे करों के अतिरिक्त अन्य करों से और लूट के माल से भी राज्य की आय होती थी। इस्लाम ग्रहण न करने वाले लोगों से जजिया कर लिया जाता था। इस्लामी कानूनों के अनुसार न्याय-दान होता था और इसके लिये काजी नियुक्त थे। दण्ड विधान कठोर था। चोरी जैसे अपराध के लिये भी जीवित जलाने का दण्ड था। हिन्दुओं को निष्पक्ष न्याय नहीं प्राप्त होता था। अनेक अरब सैनिकों और अधिकारियों ने सिंधी स्त्रियों से विवाह कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करना या व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया था। इसलिये आवश्यकता पड़ने पर किराये के सैनिक अरब सेना में लिये जाते थे। अरबों ने अपना राज्य इस्लाम और कुरान के नियमों पर आधारित किया था, इसलिये उन्होंने बलात् अनेकानेक लोगों को मुसलमान बनाया।

सिंध में अरबों के सफल आक्रमण और विजय के कारण या सिंध और दाहिर की पराजय के कारण—(१) सिंध में षडयंत्र और हत्या करके दाहिर का नया ब्राह्मण राज्य स्थापित हुआ था। उसका अस्तित्व अल्पकालीन था। वह लोकप्रिय भी नहीं था। अरबों ने इससे लाभ उठाया। (२) सिंध के राजाओं ने आक्रमणकारियों के विरुद्ध कोई संधि या कूटनीति संबंध अन्य राज्यों से स्थापित नहीं किये थे। (३) सिंध में विघटन और प्रथक्करण की प्रवृत्ति होने से वहां राजनैतिक एकता और समष्टि का अभाव था। (४) दाहिर के राज्य में सभी लोगों के साथ निष्पक्ष समानता का व्यवहार नहीं था। निम्न, दलित वर्ग के लोगों पर नृशंस अत्याचार किये गये थे। (५) प्रशासन अयोग्य दुर्बल व्यक्तियों के हाथों में था। राज्य अव्यवस्थित और शक्तिहीन था। (६) लोगों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना नहीं थी। बौद्धों और कतिपय ब्राह्मणों ने तो देशद्रोही का काम किया और आक्रमणकारी अरबों को सहयोग दिया। इस राजनैतिक दुर्बलता का अरबों ने खूब लाभ उठाया। (७) राजा दाहिर न तो वीर योद्धा और सेनापति ही था और न कूटनीतिज्ञ। अदूरदर्शिता के कारण उसने सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की। (८) सिंध में विभिन्न मत और सम्प्रदाय होने से तीव्र साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और वैमनस्य था; बौद्धों ने तो अहिंसा के नाम पर रुक कर युद्ध करने की अपेक्षा अरबों को प्रोत्साहित किया। (९) सिंध अपनी मरुभूमि और जनसंख्या की कमी के कारण तथा भारत के अन्य प्रदेशों से पृथक रहने से अरबों के विरुद्ध दीर्घकालीन युद्ध व संघर्ष के लिये तैयार नहीं हो सकता था। (१०) दाहिर की सेना अरबों की अपेक्षा कम थी और वह उतनी सुसज्जित और रण-कुशल भी नहीं थी जितनी कि अरबों की थी।

दाहिर की सेना में युद्ध-सामग्री और अस्त्र-शस्त्रों का भी अभाव था। उसने अश्वारोही सेना की अपेक्षा हाथियों का उपयोग किया जो अहितकर हुआ। (११) दाहिर ने अपनी विलासिता, अकर्मण्यता, प्रमाद, अज्ञान और अदूरदर्शिता के कारण अरबों को सिंध के समुद्र तट पर उतरते समय ही रोकने की अपेक्षा उन्हें आगे बढ़ने दिया और प्रोत्साहित किया। (१२) सिंध अपनी आर्थिक दरिद्रता, आय के सीमित साधन तथा अल्प जनसंख्या के कारण अरबों से दीर्घकाल तक युद्ध करने के लिये विशाल सेना भी नहीं रख सकता था। अरबों की सेना अधिक विशाल,सुसज्जित,संगठित और रणकुशल थी। उनके पास पर्याप्त युद्ध सामग्री व उपकरण थे। (१३) उनमें इस्लाम का प्रचार करने के लिये युद्ध में मर मिटने की भावना और धार्मिक उत्साह था। (१४) मुहम्मद बिन कासिम योग्य प्रतिभावान शासक, वीर और साहसी योद्धा तथा रणकुशल नेता था जिसका मुकाबला करने के लिये दाहिर के पास कोई व्यक्ति नहीं था। (१५) अरबों की निरन्तर सफलता से उनका विजयोल्लास बढ़ता गया और भारतीय पराजय से हतोत्साह होते गये।

भारत में अरब राज्य और शासन की असफलता—यद्यपि अरबों ने भारतीयों को पराजित कर सिंध में अपना राज्य और प्रशासन स्थापित कर लिया था, परन्तु अरब आक्रमण और प्रशासन सिंध की एक प्रादेशिक घटना मात्र रह गयी और अरब राज्य क्षत-विक्षत होकर नष्ट हो गया। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. सिंध ऐसे मरुस्थल और पर्याप्त धन-जनहीन वाले देश को आधार बना कर अरबों के लिये भारत के अन्य प्रदेशों को जीतना असम्भव था।

२. सिंध के पूर्व और उत्तर के शक्तिशाली राजपूत राज्यों को आगे बढ़कर परास्त करना भी अरबों के लिये असम्भव था।

३. सिंध अरब से इतना अधिक दूर था कि परिवर्तित होती हुई राजनीतिक दशा में खलीफा के लिये सिंध पर नियंत्रण रखना दुष्कर कार्य था।

४. सिंध की सीमित आय, सामग्री और साधनों ने, उसकी असन्तोषप्रद आर्थिक दशा और दरिद्रता ने अरब राज्य की नींव उखाड़ने में योग दिया।

५. सीमान्त क्षेत्र में भारत के अनेक छोटे-छोटे राज्यों पर आक्रमण करने से अरबों की धन-जन की शक्ति क्षीण हो गयी और इससे उनका राज्य स्थायी नहीं बन सका।

६. अरब केवल सैनिक थे, प्रशासक नहीं। उन्होंने विजय और प्रशासन-संगठन का कार्य साथ-साथ नहीं किया।

७. हिन्दू अपनी उन्नत, विकसित और प्रभावशील संस्कृति के कारण अरबों को हीन, असभ्य और नृशंस समझने लगे। इससे उनके स्थायित्व में बाधा पहुँची।

८. अरबों के विलासप्रिय और आलसी जीवन से, पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष से, उनकी सामरिक शक्ति नष्ट हो गई और नैतिक पतन हो गया।

९. मुहम्मद बिन कासिम की आकस्मिक मृत्यु से, अरबों की शक्ति शिथिल हो गई। उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और निर्बल थे तथा इस समय उनमें रण-कुशल, उत्साही, सेनापति और नेता का अभाव था।

१०. सिंध अरब देश से अधिक दूर होने पर अरब के खलीफा सिंध के राज्यपाल और अधिकारियों पर कठोर नियन्त्रण नहीं रख सके। सिंध का जीता हुआ प्रदेश मरुस्थल और निर्जन होने से, वहाँ की दरिद्रता, सीमित साधन और आय होने से खलीफा राज्य व विजय के प्रति उदासीन और निष्क्रिय हो गये।

११. खलीफाओं के विलासमय जीवन ने उनमें धार्मिक प्रेरणा और उत्साह का अभाव हो गया, जिससे सिंध स्थित अरबों का धार्मिक जोश लुप्त हो गया।

१२. उमैया वंश के खलिफाओं के अन्त होने और अब्बासी वंश के खलिफाओं के उत्कर्ष से सिंध के अरब राज्य के स्थायित्व को आघात लगा। खलिफाओं के वंश परिवर्तन व नवीन प्रशासन से तथा साम्प्रदायिकता के उत्कर्ष से इस्लामी साम्राज्य की एकता व संगठन लुप्त हो गया, आंतरिक दुर्बलता आ गयी और सिंध के अरब राज्य को खलीफाओं की सहायता बन्द हो गयी। खलीफाओं के अन्त होने से और तुर्कों के प्रादुर्भाव से सिंध का लड़खड़ाता अरब राज्य नष्ट हो गया।

अरब आक्रमण का मूल्यांकन—भारतीय इतिहास में अरब आक्रमण और विजय साधारण घटना रही। अरबों का प्रभाव और क्षेत्र सिंध और मुलतान तक ही सीमित रहा और वे आगे बढ़कर राजपूतों के शक्तिशाली राज्यों को परास्त कर भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं कर सके। सिंध विजय होने पर उन्होंने वहाँ के निवासियों को शक्ति और हिंसा के आधार पर इस्लाम धर्म ग्रहण करवाया। इसके अतिरिक्त अरब शेष भारत पर कोई स्थायी अमिट प्रभाव नहीं डाल सके। इस्लामी आंधी और तूफान सिंध और निचले पंजाब में अपनी तांडव-लीला कर लौट गया और कुछ चिह्न छोड़ गया। इसीलिये अरबों की सिंध विजय प्रभावहीन है।

अरब आक्रमण का प्रभाव और महत्त्व—यद्यपि अरब आक्रमण का राजनैतिक प्रभाव नगण्य रहा, परन्तु इसका सांस्कृतिक प्रभाव निर्दिष्ट रहा।

१. अरब भारतीयों के घनिष्ट सम्पर्क में आने के कारण, भारतीयों की विकसित उत्कृष्ट संस्कृति से प्रभावित हुए और उन्होंने भारतीय ज्योतिष, चिकित्सा, रसायनशास्त्र, गणित, दर्शन आदि विषय भारतीयों से सीखे। अनेक भारतीय विद्वानों को अरब में आमंत्रित किया गया और उनकी सहायता तथा सहयोग से अनेक भारतीय ग्रंथों और शास्त्रों का अनुवाद अरबी भाषा में करवाया गया। अरबों ने ज्योतिष के सिद्धान्तों, गणित के अंकों और दशमलव प्रणाली का ज्ञान तथा चिकित्साशास्त्र का ज्ञान भारतीयों से सीखा और यूरोप के देशों में इनका प्रचार किया।

२. अरबों ने संगीत, चित्रकला, स्थापत्यकला, अस्त्र-शस्त्र-विद्या, शतरंज का खेल आदि में भी भारतीयों को गुरू माना और भारतीय शिल्पकारों के निर्देशन में उन्होंने नवीन भवन-निर्माण-शैली की मसजिदें बनवाईं। हेवेल के अनुसार भारत ने अरबों को अनेक विद्याओं का ज्ञान कराया तथा उनके साहित्य और कला को भी विशेष रूप से प्रभावित किया। एच. जी. वेल्स का भी मत है कि ज्ञान का दीपक अरबों को भारत से प्राप्त हुआ था।

३. अरबों ने भारत में तलवार और शक्ति के आधार पर इस्लाम का प्रचार किया और अनेकों को बलात् इस्लाम ग्रहण करना पड़ा। कालान्तर में इससे इस्लामी साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया। इस प्रकार अरब आक्रमण का धार्मिक प्रभाव अमिट रहा।

अध्याय ४

तुर्कों का उत्कर्ष और भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमण तथा विजय

तुर्क—चीन की पश्चिमोत्तर सीमा के समीप गोबी के रेगिस्तान के पास साइबेरिया के दक्षिण के क्षेत्र में तुर्क लोग ईसा की प्रारम्भिक सदियों में रहते थे। इनकी बोलचाल की भाषा तुर्की होने से ये तुर्क कहलाये। ये गौरवर्ण, हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले, साहसी और वीर थे। खाद्यान्न के अभाव में ये लूटमार करते, और खानाबदोश का पर्यटनशील जीवन व्यतीत करते थे। इससे इनमें हिंसात्मक और सामरिक प्रवृत्ति आ गयी थी।

तुर्कों का इस्लामीकरण और शक्ति संचय—अरब के उमइया खलीफाओं के शासनकाल में मध्य एशिया के देशों में अरब साम्राज्य का विस्तार हुआ। इस विस्तार के समय मध्य एशिया में अनेक तुर्क अरबों के सम्पर्क में आये और उन्हें बलात् मुसलमान बना लिया गया। कई तुर्कों को दासवृत्ति करना पड़ी। अनेक अपनी सामरिक वृत्ति के कारण अरब सेनाओं में भरती हो गये। तुर्कों के गुणों और प्रतिभाओं के कारण खलीफाओं का झुकाव इनकी ओर अधिक रहा। खलीपाओं के विलासप्रिय और शक्तिहीन होने पर शासनसत्ता तुर्कों के हाथों में चली गयी। ज्यों-ज्यों अरबों की शक्ति का ह्रास होता गया, तुर्कों की राजनैतिक, प्रशासकीय और सैनिक शक्ति में वृद्धि होती गयी और शीघ्र ही उन्होंने अपने अलग-अलग सेनापतियों और सामन्तों के नेतृत्व में स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये। उनके इस्लामीकरण ने इसमें बहुत योग दिया। इस समय तक अरबों का धार्मिक उत्साह ठंडा पड़ गया था, पर तुर्कों में धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता और धर्म पर अपने जीवन का बलिदान करने की भावना अत्यधिक बलवती हो रही थी। इस्लाम का प्रचार और प्रसार उनके जीवन का एक लक्ष्य हो गया था। उनकी इस धार्मिक कट्टरता और उत्साह, युद्ध-प्रियता और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति ने अनुकूल परिस्थितियों के कारण अजेय विशाल इस्लामी राज्य एशिया और यूरोप में स्थापित कर दिये।

तुर्कों के राज्य—दक्षिणी पश्चिमी एशिया में सेल्जुक नामक सेनापति के नेतृत्व में तुर्कों का एक समूह आगे बढ़ा और ईसाइयों से निरन्तर युद्ध करके जेरुसलम तथा अन्य प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और विशाल तुर्की राज्य की स्थापना की। सन् १९१८ तक जेरुसलम में तुर्कों का प्रभुत्व रहा। उस्मान नामक एक अन्य सेनापति के नेतृत्व में तुर्कों का एक अन्य समूह पूर्वी यूरोप की ओर बढ़ा और रोमन साम्राज्य पर आक्रमण करके सन् १४५३ में कुस्तुन्तुनिया या कांस्टन्टीनोपल

राज्यों और लोगों में राष्ट्रीय भावना और देशभक्ति का सर्वथा अभाव था। उनमें राष्ट्रीय गौरव के भाव और राजनैतिक जागरुकता नहीं थी। वे किसी एक राजा या सेनापति के नेतृत्व में संगठित होकर राष्ट्र की सुरक्षा के लिये एक प्रबल मोर्चा स्थापित नहीं कर सकते थे। राजपूत राज्यों का बाहुल्य था और राजपूत नरेश निरंकुश और स्वेच्छाचारी होते थे। वे और उनके सामन्त शासन पर अपना एकाधिकार समझते थे। उनका प्रशासन जनता की सद्इच्छा, सहायता और सहयोग पर निर्भर नहीं था। जन साधारण में राजनैतिक जागरुकता और राष्ट्रीयता नहीं थी। इसीलिये विदेशी आक्रमणों के समय केवल राजपूत ही लड़ते और जूझते रहे तथा परास्त होते रहे एवं जनता लूटी जाती रही और नृशंस कत्लेआम होता रहा।

सामाजिक दशा

अराजकता और अव्यवस्था होने से देश में विघटन की प्रवृत्ति, आचार विचार की संकीर्णता, रूढ़िवादिता, परम्परावाद, अनुदारता और असहिष्णुता थी।

समाज में अनेक जातियों और उपजातियों का उत्कर्ष हुआ। जाति का आधार कर्म या व्यवसाय न होकर पूर्णतया जन्म हो गया था। जातियों की जटिलता, संकीर्णता और अपरिवर्तनशीलता से समाज में विदेशियों को आत्मसात करने या मिलाने की प्रवृत्ति लुप्त हो गई। यह निश्चित है कि इससे समाज की प्रगतिशीलता और व्यापकता मंद हो गई। परन्तु यहां पर मुसलमानों की सामाजिक कट्टरता भी उल्लेखनीय है। तुर्कों के आक्रमणों के पूर्व ही अरबों द्वारा भारत में इस्लाम का प्रचार प्रारम्भ किया जा चुका था और इस्लाम के अनेकानेक अनुयायी यहां विद्यमान थे। सिंध और मुलतान में तो मुस्लिम शासक भी थे। ये मुसलमान इस्लाम का प्रचार करते थे, हिन्दुओं को मुसलमान बनाने को दृढ़ संकल्प थे और हिन्दू समाज व धर्म के विरोधी थे तथा वे अपने अस्तित्व को अलग ही रखना चाहते थे। हिन्दुओं के चाहने पर भी समाज में मुसलमानों को आत्मसात करना असम्भव था। इसलिये इस्लाम धर्म और समाज से दूर रह कर ही, हिन्दुओं ने अपनी सुरक्षा के लिये अपनी जाति, समाज और धर्म की पवित्रता व शुद्धता पर अत्यधिक बल दिया। उन्होंने मुसलमानों और विदेशी इस्लाम के अनुयायियों को म्लेच्छ कहा और अछूत बतलाया और खान-पान तथा सामाजिक व्यवहार में उन्होंने अपने को इन मुसलमानों से दूर रखा। जाति-बंधनों को और समाज की अपरिवर्तनशीलता को इतना दृढ़ और कठोर कर दिया कि वे नवागन्तुकों को अपने में आत्मसात न कर सके।

समाज में ब्राह्मणों व क्षत्रियों का बड़ा सम्मान था। क्षत्रिय या राजपूत जाति के लोग नरेश और सामन्त होते थे। वे अपनी वीरता, साहस, युद्ध प्रियता और रणकुशलता के लिये प्रसिद्ध थे। ब्राह्मणों ने अपने अध्ययन-अध्यापन, उज्वल चरित्र और आदर्श कर्मकांड और धार्मिक कार्यों, जादू-टोने आदि के कार्यों से अपने-आपको जनप्रिय बना लिया था। इससे वे समाज में आदर्श माने जाते थे। जातियों की विविधता, विषमता से समाज में ऊंच-नीच और अछूत की भावना बलवती होती

जा रही थी। चांडालों और निम्न-व्यवसाय करने वालों की दशा दिन प्रतिदिन दयनीय और सोचनीय हो रही थी। निम्नश्रेणी के लोग अनेक व्यवसाय करते थे और वे प्राय: विभिन्न ललित कलाओं और शिल्प विद्या में प्रवीण होते थे।

सेना और शासन में एकाधिकार राजपूतों का था। इसलिये अन्य जातियाँ राजनीति और सामरिक कार्यों में विशेष अभिरुचि नहीं लेती थीं। इससे युद्धों के समय वे देश की सैनिक सेवा करने से वंचित रह गयीं। सुरक्षा और युद्ध का समस्त भार राजपूतों पर पड़ा और उनकी संख्या सीमित होने से देश व समाज की सुरक्षा खतरे में पड़ गई।

साधारण लोगों के जीवन में सादगी और सात्विकता थी। पर राजपूतों में अफीम सेवन और सुरापान अधिक था। सवर्ण, सजातीय, कभी-कभी अन्तर्धार्मिक और अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे। बहु-विवाह या बहुपत्नि प्रथा प्रचलित थी। बालविवाह-प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। राजपूतों में कन्या-जन्म अशुभ माना जाता था। समाज में पर्दा-प्रथा नहीं थी। पर सती-प्रथा, देवदासी-प्रथा और वैश्यावृत्ति प्रचलित थी। स्त्रियों की पराधीनता और परवशता बढ़ गई थी। राजपूत स्त्रियों में नारित्व, सतीत्व और पवित्रता के उच्च आदर्श थे और उनकी रक्षा के लिये वे जौहर तक करती थीं।

भारत का विदेशों से संबंध विच्छेद होने से इस युग में विदेशों में होने वाली युग-प्रवर्तक घटनाओं और प्रतिक्रियाओं से भारतीय सर्वथा अनभिज्ञ रहे। उनको वहां की क्रान्तियाँ, राजनैतिक उथल-पुथल, नवीन सामरिक प्रवृत्ति, युद्ध-प्रणाली, नवीनतम अस्त्र-शस्त्र व साधन, आदि का ज्ञान नहीं हो पाया। इससे भारतीयों की प्रतिभा कुन्ठित हो गई, उनकी प्रगतिशीलता मंद हो गई और जीवन के प्रवाह में स्थिरता और अवरोध आ गया। इसके साथ-साथ तीन सौ वर्षों से विदेशी आक्रमण न होने से भारतीय समाज में एक नवीन वृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीयों की यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि भारत भूमि को कोई भी शक्ति आक्रान्त नहीं कर सकती। भारतीय अपने आपको विश्व की अन्य जातियों और कबीलों से श्रेष्ठतम समझने लगे, अपनी सभ्यता और संस्कृति को उच्च और परिष्कृत मानने लगे और अपने धर्म तथा विचारधाराओं को आदर्श बताने लगे। वे अन्य लोगों को अन्त्यज मानने लगे थे और उनके साथ संसर्ग या सम्पर्क करने को तैयार नहीं थे। इस संकीर्णता और जटिलता से न केवल विदेशियों का भारतीय समाज में समाविष्ट होना बंद हो गया, अपितु जो हिन्दू किसी कारणवश समाज से निकल जाते थे, या बहिष्कृत होते थे, या इस्लाम धर्म अपना लेते थे, उनका समावर्तन भी असंभव हो गया था।

आर्थिक दशा

लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। सिंचाई के लिये तालाब, झीलें, कुए, बांध, नहरें आदि साधन थे। आन्तरिक व्यापार प्रगतिशील था, पर विदेशों से सम्बन्ध टूट जाने से विदेशी व्यापार अवरुद्ध हो गया था तथा औद्योगीकरण रुक गया था। पर व्यापार तथा कृषि के शान्ति और सुव्यवस्थित रीति से चलने के कारण लोगों की आर्थिक दशा अच्छी थी।

देश की उर्वराभूमि और खनिज पदार्थों की बाहुल्यता से तथा ग्रामों की

आत्मनिर्भरता से भारतीयों को अपनी जीविका-उपार्जन के साधन सरलता से प्राप्त हो जाते थे। उनकी दैनिक आवश्यकताएँ सरलता से पूर्ण हो जाती थीं। उनका जीवन सुखी और सन्तोषप्रद था। राजाओं, सामन्तों तथा उच्च वर्ग के लोगों का धन सम्पत्ति पर एकाधिकार था। उनकी आय अत्यधिक थी। देश धन-धान्य सम्पन्न था और विदेशों में वह "सोने की चिड़िया" कहा जाता था।

धर्मनिष्ठा, बहुदेववाद और मूर्तिपूजा के कारण तथा धन की प्रचुरता से अनेक कलापूर्ण मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ तथा इन भव्य मन्दिरों में अत्यधिक आय होने से सदियों से अतुल सम्पत्ति, स्वर्ण तथा हीरे मोतियों का बड़ा भंडार संग्रहीत हो गया था। इस अपार धनराशि से वे इतने जगमगा रहे थे कि उनसे विदेशियों की आँखें चकाचौंध हो गयीं। गजनी और मध्य एशिया के अन्य राज्य भारतीय सीमा से लगे होने के कारण वहां के शासक और सेनापति भारत की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने उसकी अतुल सम्पत्ति को लूट कर अपने साम्राज्य के धन के अभाव की पूर्ति करने के प्रयास किये।

धार्मिक दशा

यह युग बौद्ध धर्म के पतन और पौराणिक हिंदू धर्म के उत्थान का काल था। जैन धर्म भी था। बौद्ध धर्म विकृत हो गया था। उसमें तंत्रवाद का बाहुल्य था और अनेक बौद्ध भिक्षु सिद्धयोगी बन गये थे। बौद्ध मठ या बिहार अनाचार, पापाचार, कामुकता के केन्द्र बन गये थे। पौराणिक हिंदू धर्म में अनेक मत और सम्प्रदाय प्रचलित थे जो विष्णु, शिव, दुर्गा, काली, सूर्य, गणेश आदि की प्रधानता के आधार पर एक दूसरे से ईर्षा—द्वेष रखते थे। पौराणिक धर्म या हिन्दू धर्म में अवतारवाद, और कर्मकांड की प्रधानता आ गई थी और जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार आवश्यक माने जाने लगे थे। अनेक देवी-देवताओं की पूजा और उपासना होने लगी थी, व्रत, उपवास, उत्सव, तीर्थ-यात्रा, दान-पुण्य आदि अधिक प्रचलित हो गये थे और धर्म रूढियों और अंधविश्वास में जकड़ गया था।

लोगों में आध्यात्मिक प्रगति की ओर अभिरुचि नहीं थी और अनेक वाम-मार्गी सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय हो गये थे, विशेषकर बंगाल और काश्मीर में। इनके अनुयायी मांस, मदिरा और महिलाओं के उपयोग में, व्यभिचार, दुराचार में व्यस्त रहते थे। "खाओ, पीओ और मस्त रहो" का सिद्धान्त वे अपनाने लगे थे। तंत्रवाद ने लोगों की नैतिकता को प्रभावित किया और साहित्य तथा कला में अश्लीलता आ गयी। देवदासी प्रथा ने विलासिता और वैश्यावृत्ति को प्रोत्साहन दिया। मठ, बिहार, देवालय, मंदिर और उनकी शिक्षण संस्थाएं आदि कलुषित हो गयी तथा धार्मिक और नैतिक जीवन अत्यन्त विशृंखलित और पतनोन्मुख हो गया। धार्मिक विघटन और साम्प्रदायिकता के कारण लोगों में एकता नहीं थी जिससे विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध वे संघबद्ध न हो सके।

इस प्रकार महमूद गजनवी के आक्रमणों के समय भारत बाह्य रूप में अखंड विशाल और दृढ़ प्रतीत हो रहा था, पर आन्तरिक रूप में वह खड-खंड हो, शक्ति हीन हो चुका था। बाहर से सशक्त दिखने पर भी भारत इस योग्य न था कि वह अपने धर्म और स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके। राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक

किसी भी रूप में वह सुदृढ़ और सशक्त नहीं था, विदेशी आक्रान्ताओं का सामना करने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। राजनैतिक फूट, सामन्तशाही, सैनिक संगठन, दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव, लोगों की राजनैतिक उदासीनता, सामाजिक विश्रृंखलता, धार्मिक और नैतिक पतन — ये सभी विदेशी आक्रमणकारियों का मार्ग सुलभ कर रहे थे और उनके विजय कार्य में योग दे रहे थे तथा देश की सम्पत्ति और समृद्धि आक्रान्ताओं और उनके अनुयायियों को प्रलोभन देकर उनका उत्साहवर्धन कर रही थी। तुर्कों ने ऐसी परिस्थिति से लाभ उठाया और भारत पर आक्रमण किये। उस युग में भारत एक ऐसे रक्षकहीन राजकोष के समान था जिसकी रक्षा करने वाले चौकीदार और पहरेदार पारस्परिक संघर्ष में उलझकर अपने रक्षक के कर्तव्य को विस्मरण कर चुके थे। दृढ़ रक्षकों के अभाव में राजकोष और सम्पत्ति का लुट जाना स्वाभाविक था। सारा देश उस जलपोत के समान था जो समुद्र में तूफान आने के पूर्व ही टूट चुका था।

महमूद गजनवी (सन् ९९८–१०३०)

प्रारम्भिक जीवन—महमूद का जन्म सन् ९७१ में हुआ था। उसकी माता जाबुलिस्तान के एक सरदार की कन्या थी। महमूद योग्य और साहसी पिता का योग्य एवं वीर पुत्र था। उसे बाल्यकाल में इस्लामी ढंग की श्रेष्ठ शिक्षा दी गई थी। वह कुरान, हदीस और शरह के नियमों से पूर्ण रूपेण अवगत था। बाल्यकाल से ही उसमें वीरोचित गुणों और युद्धप्रियता का विकास हो चुका था। उसने अपने पिता के साम्राज्य-विस्तार और धर्म प्रचार के स्वप्नों को साकार कर उसकी समस्त आशाओं को पूर्ण कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि एक रात्रि को सुबक्तगीन ने अपने राज–प्रासाद के मध्य में अग्नि स्थान से एक वृक्ष को पनपते देखा और वह शीघ्र ही उतना ऊंचा और विशाल हो गया कि उसने अपनी छाया से राजमहल को ही नहीं अपितु विश्व को आच्छादित कर दिया। उसके पुत्र महमूद ने राजप्रासाद से निकलकर एशिया के अनेक प्रदेशों पर विजय प्राप्त की, वहां के शासकों की शक्ति को पददलित की और अपने साम्राज्य का खूब विस्तार किया।

किशोरावस्था में महमूद ने अपने पिता सुबक्तगीन की ओर से अनेक युद्ध किये और उसे विभिन्न आक्रमणों में बड़ा सहयोग दिया। पिता के जीवनकाल में ही उसने सन् ९९४ में खुरासान की सेना का संचालन किया। उसने हिरात, खुरासान, नेशापुर आदि स्थानों में तथा भारत के जयपाल राजा के विरुद्ध युद्ध करके अपने कुशल नेतृत्व, साहसिक कार्यों और सफल युद्धकला और रणकौशल का परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर उसके पिता सुबक्तगीन ने उसे खुरासान में प्रांतीय राज्यपाल नियुक्त किया। सुबक्तगीन की मृत्यु के समय वह खुरासान में था। फलतः अमीरों ने उसके भाई इस्माइल को गजनी का सुलतान बना दिया। इस पर महमूद विशाल सेना लेकर खुरासान से गजनी की ओर बढ़ा और इस्माइल तथा महमूद की सेनाओं में भयंकर संग्राम हुआ जिसमें इस्माइल पराजित हुआ। वह बन्दी बना लिया गया। महमूद ने उसका वध करने की अपेक्षा उसके साथ दया और उदारता

पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। ये आक्रांता उस्मानी तुर्क कहलाये। धीरे-धीरे इन्होंने यूनान, मिश्र और दक्षिणी पूर्वी यूरोप के अनेक प्रदेशों पर अधिकार करके विशाल तुर्की साम्राज्य स्थापित कर लिया। यूरोप के इतिहास में इसे ओटोमन एम्पायर कहते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध तक यह राज्य तुर्कों के अपने सीमित क्षेत्र में चलता रहा।

अब्बासीद खलिफाओं के शासनकाल में ही मध्य एशिया के क्षेत्र में तुर्की राज्य स्थापित हुए। इनमें समन राज्य विशेष उल्लेखनीय है। सन् ९११ में समन-निवासी अमीर इस्लाम ने बुखारा में एक तुर्की राज्य स्थापित किया। अमीर इस्लाम समन-निवासी होने से इस राज्य का नाम समन-वंश का राज्य हो गया। कालान्तर में इस राज्य का विस्तार फारस या ईरान, मध्य एशिया तथा अफगानिस्तान के बहुत बड़े भाग पर हो गया। इस राज्य में सेना और प्रशासन के पदों पर अनेक योग्य और प्रतिभाशाली तुर्क थे। इस राज्य के पतन-काल में सन् ९६२ में राज्य के अलप्तगीन नामक एक तुर्की अधिकारी ने अफगानिस्तान के पर्वतीय क्षेत्र में गजनी में अपना छोटासा स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। प्रारम्भ मे अलप्तगीन एक तुर्क दास था जिसे समनी राज्य के नरेश अहमद ने खरीद लिया था। अपनी योग्यता और प्रतिभा के कारण यह दास धीरे-धीरे खुरासान का अधिकारी और बाद में एक स्वतंत्र राज्य का संस्थापक बन गया।

सुबक्तगीन और भारत पर तुर्कों के प्रारम्भिक आक्रमण

सुबक्तगीन गजनी के तुर्की राज्य के शासक अलप्तगीन का तुर्की दास और दामाद था। अलप्तगीन ने सुबक्तगीन को दास के रूप मे खरीदा था। उसकी योग्यता, गुणों और प्रतिभाओं के कारण अलप्तगीन ने उसे एक के बाद एक ऊंचे पदों पर नियुक्त किया और उससे प्रभावित होकर अपनी पुत्री का विवाह भी उससे कर दिया।

कालान्तर में अलप्तगीन गजनी राज्य का स्वतन्त्र शासक बन गया। सन् ९६[illegible] में अलप्तगीन की मृत्यु के बाद उसके दो उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य थे। उसके दूसरे उत्तराधिकारी का अन्त कर सन् [illegible]७७ में सुबक्तगीन ने राज्य की सत्ता अपने हाथों मे ले ली और इस प्रकार गजनी में एक नये राजवंश की स्थापना की। अब्बासीद खलिफाओं की क्षीण होती हुई शक्ति से लाभ उठाकर महत्वाकांक्षी सुबक्तगीन ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ कर लिया और खुरासान, काबुल घाटी में लगमान और बाद में सीस्तान जीत लिये। इन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद उसने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

इस समय भारत के सीमान्त क्षेत्र में शाही नामक हिन्दूराज-वंश का नरेश जयपाल राज्य कर रहा था। पहिले यह राजवंश अफगानिस्तान में काबुल में राज्य करता था। परन्तु तुर्कों के निरन्तर प्रसार, दबाव और अभियानों के कारण यह राजवंश भारत के सीमान्त क्षेत्र में आ गया और ओहिन्द को अपनी राजधानी बनाया। इस समय इस वंश के राजा जयपाल का राज्य सरहिन्द से लगमान तक और सिंध में मुलतान से काश्मीर तक फैला था। लगमान जीतने से सुबक्तगीन भारत के सम्पर्क में

आ गया और तत्कालीन सीमान्त क्षेत्र के राजा जयपाल से उसका संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी सुबक्तगीन ने सन् ९८६ में जयपाल के कुछ सीमांत दुर्गों पर आक्रमण कर उन्हें लूटा और उन पर अधिकार कर लिया। इस पर जयपाल एक विशाल सेना लेकर सुबक्तगीन से युद्ध करने के लिये आगे बढ़ा। वह गजनी राज्य में घुस गया। सुबक्तगीन और जयपाल दोनों की सेनाओं में छुटपुट हमले और संघर्ष कई दिनों तक होता रहा। इसी बीच एक भयंकर हिम-झंझावात और हिम-वर्षा ने जयपाल की सेना को गहरी क्षति पहुँचाई। लाचार हो जयपाल ने सुबक्तगीन को संधि प्रस्ताव भेजा। सुबक्तगीन के पुत्र महमूद ने जो जयपाल की विवशता और प्रतिकूल परिस्थिति का लाभ उठाना चाहता था, इस संधि प्रस्ताव का विरोध किया। इस पर जयपाल ने यह स्पष्ट किया कि वह संधि प्रस्ताव मृत्यु के डर से नहीं कर रहा है, पर परिस्थितियों से विवश होकर। यदि आवश्यकता हुई तो उसकी समस्त सेना रणक्षेत्र में मृत्यु का स्वागत करेगी पर शत्रु को कोई भी युद्ध-योग्य व उपयोगी सामग्री उपलब्ध न होने देगी। जयपाल की इस दशा का वर्णन करते हुए मुस्लिम इतिहासकार उतबी ने अपने ग्रंथ "तारीखेयामिनी" में लिखा है—"ऐसे संकट के उपस्थित होने पर, जैसा हम पर घिर आया है, हिन्दू किस प्रकार प्राणों का मोह त्यागकर निर्ममतापूर्वक जूझ पड़ते हैं, यह तुम खूब देख चुके हो। इसलिये इस लूट-पाट, भेंट, हाथियों और बंदियों की आशा में तुम हमारे संधि-प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हो, तो हमारे लिये केवल यही विकल्प रह जाता है कि हम कठोर संकल्प पर आरूढ़ होकर अपनी सम्पत्ति को नष्ट करदें, अपने हाथियों की आँखें निकाल दें, अपने बाल-बच्चों को अग्नि को समर्पण करदें और तलवार तथा भाले लेकर एक दूसरे पर टूट पड़ें, जिससे तुम्हारे लिये केवल पाषाण, कूड़ा-कचरा, मृत देहें और छितरी हुई अस्थियाँ ही शेष रह जाँय।" इस धमकी के परिणामस्वरूप सुबक्तगीन ने जयपाल से संधि करना स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार जयपाल ने सुबक्तगीन को युद्ध की क्षति-पूर्ति के लिये एक लाख दरहम मुद्राएँ, पचास हाथी, तथा कुछ दुर्ग और भूमि दी। यह संधि जयपाल के लिये अपमानजनक थी। अतएव जब संधि की शर्तों को पूरा करने तथा उसमें उल्लखित अन्य सामग्री प्राप्त करने के लिये सुबक्तगीन के दो अधिकारी जयपाल के पास उसकी राजधानी में आये, तब उसने सन्धि की शर्तों को तोड़ दिया और इन दो अधिकारियों को कारावास में बन्द कर दिया। जयपाल के इस अवांछनीय अशिष्ट व्यवहार से क्रुद्ध होकर सन् ९९१ में सुबक्तगीन ने जयपाल पर विशाल सेना लेकर आक्रमण किया और उसके सीमान्त क्षेत्र के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। जयपाल ने भी कालिंजर, कन्नौज, अजमेर आदि के राजाओं से सैनिक सहायता प्राप्त कर एक विशाल सुसज्जित सेना का संगठन किया और सुबक्तगीन पर आक्रमण कर दिया। घमासान भीषण युद्ध हुआ, पर विजयश्री जयपाल के हाथ लगने की अपेक्षा सुबक्तगीन के हाथ लगी। क्योंकि सुबक्तगीन की सुरक्षित रखी हुई ताजी सेना ने युद्ध के दिवस के अन्त होते होते जूझती हुई जयपाल की हिन्दू सेना पर भयंकर आक्रमण कर दिया। इस विजय के फलस्वरूप सुबक्तगीन को खैबर दर्रे का क्षेत्र, पेशावर का दुर्ग और

नगर हाथ लगे। सुबक्तगीन ने इस क्षेत्र की रक्षार्थ एक विशाल दस सहस्र सेना योग्य सेनापति के नेतृत्व में पेशावर में रख दी। सुबक्तगीन की इस विजय और पेशावर पर हुए अधिकार का भारतीय इतिहास में विशिष्ट महत्व है। इस विजय से तुर्कों ने वह मार्ग प्राप्त कर लिया जो भारत के उर्वर धन सम्पन्न प्रदेशों को जाता था। अब इस प्रवेश द्वार से बर्बर, लुटेरे, कट्टर-पंथी धर्मांध तुर्क राज्य विस्तार और इस्लाम के प्रसार के लिये निरन्तर आक्रमण करते रहे। इन्होंने भारत की अपार, अतुलनीय धन-सम्पत्ति को लूटा और अनेकों बार लूटी हुई सम्पत्ति को सहस्त्रों ऊंटों और अश्वों पर लाद कर भारत के बाहर ले गये, भारत में अनेकानेक मूर्तियों को तोड़ा फोड़ा और मंदिरों व देवालयों को विध्वंस किया, अगणित हिन्दुओं को कत्ल किया और अनेकों को बलात् तलवार और शक्ति के आधार पर इस्लाम ग्रहण करवाया, नवीन तुर्की राज्य उत्तरी भारत में स्थापित किये और इनके साधनों और शक्ति का भरसक उपयोग इस्लाम धर्म, सभ्यता और संस्कृति के प्रसार में किया। इससे भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है जिसे "मुस्लिमयुग" कहा जाता है।

महमूद गजनवी

सन् ९९७ में सुबक्तगीन की मृत्यु हो जाने पर उसके दो पुत्रों इस्माइल और महमूद में उत्तराधिकार के लिये गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। महमूद को इसमें विजय प्राप्त हुई और सन् ९९८ में वह गजनी का शासक बन गया। गजनी का शासक होने से उसे महमूद गजनवी भी कहते हैं। उसने भारत पर अपने निरन्तर आक्रमणों में विजय प्राप्त करके उत्तरी भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना और इस्लाम के प्रचार के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया। उसके आक्रमणों का वर्णन करने के पूर्व भारत की तत्कालीन दशा का वर्णन करना समीचीन होगा।

महमूद गजनवी के आक्रमणों के समय भारत की दशा

इस दशा के विभिन्न अंगों का वर्णन निम्नलिखित है।

राजनैतिक दशा।

समस्त भारत विभिन्न छोटे-छोटे प्रान्तीय राज्यों में विभक्त था।

१. सिंध और मुलतान में इस्लामी राज्य—इस क्षेत्र में अरबों का लड़खड़ाता राज्य था। यहां का इस्लामी शासक सिया सम्प्रदाय का था। इस इस्लामी राज्य की सहानुभूति परधर्मी हिन्दुओं के साथ न होकर स्वधर्मी तुर्कों के साथ हो सकती थी।

२. हिन्दूशाही राज्य—हिंदूकुश पर्वत से लेकर चिनाब नदी तक उत्तर-पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र और पंजाब में शाही नामक हिन्दू राज्य था और जयपाल इसका नरेश था। गजनी से होने वाले तुर्कों के सभी आक्रमणों का सामना अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इस हिन्दूशाही राज्य को करना पड़ा। यह राज्य तुर्कों के तूफानी आक्रमणों का अकेला सामना करने की क्षमता नहीं रखता था, परन्तु फिर

भी इसने बीस वर्ष तक निरन्तर तुर्कों से सामना, संघर्ष और युद्ध किये और अन्त मे इसी में उसका अस्तित्व नष्ट हो गया।

३. **काश्मीर राज्य**—इस समय काश्मीर में हिन्दूरानी दिद्दा शासन कर रही थी। उसकी अनैतिकता और भ्रष्टाचार से काश्मीर राज्य अस्त-व्यस्त और ढीला था।

४. **कन्नौज का प्रतिहार राज्य**—कन्नौज में राज्यपाल नामक अयोग्य और शक्तिहीन प्रतिहार राजा राज्य कर रहा था। उसमें तुर्कों के आक्रमणों का सामना करने की क्षमता नहीं थी। प्रतिहारों का राज्य पूर्व में काशी तक फैला हुआ था।

५. **बंगाल का पाल राज्य**—बंगाल में पाल वंश का नरेश महिपाल राज्य कर रहा था। वह अपने राज्य और प्रभुता-क्षेत्र के विस्तार के लिये कन्नौज के प्रतिहार नरेश से दीर्घकालीन संघर्ष और युद्ध कर रहा था। प्रतिहार और पाल नरेश परस्पर लड़कर अपनी शक्ति का संहार कर रहे थे। सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा का इन्हें ध्यान नहीं था। बंगाल सुदूर पूर्व में होने से उसे तुर्कों के आक्रमणों का भय नहीं था। वहां के नरेशों ने उत्तर पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा और राजनीति में कोई अभिरुचि नहीं ली।

६. **चालुक्य, चन्देल और परमार राज्य**—गुजरात में चालुक्य राजा, बुन्देलखंड में चन्देल राजा और मालवा में परमार वंश के नरेश राज्य कर रहे थे। चालुक्य और परमार नरेश में भी पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। इस समय मुंज और राजा भोज प्रसिद्ध परमार नरेश थे। चन्देलों के अधिकार में महोबा और कालिंजर के प्रसिद्ध दृढ़ दुर्ग थे।

७. **दक्षिण भारत के राज्य**—दक्षिण भारत में राष्ट्रकूट और पल्लव नरेशों के राज्यों का अन्त होने पर वहां परवर्ती चालुक्यों और चोलों का उत्कर्ष हो गया था। कल्याणी के चालुक्य राजा और चोल नरेश में निरन्तर युद्ध हो रहे थे। इस समय चालुक्य राजा तैलप (सन् ६६४–१००८) था तथा चोल नरेश राजराज प्रथम (सन् ९८५–१०१४) और राजेन्द्र चोल (सन् १०१४–१०४२) थे। इन विभिन्न राज्यों से राजनैतिक दुर्दशा उत्पन्न हो गई थी।

राजनैतिक दुर्बलताएँ और दोष

इन प्रांतीय स्वतन्त्र राज्यों के उत्कर्ष से भारत की राजनैतिक एकता बिल्कुल नष्ट हो गई थी और उत्तरी भारत में ऐसे दृढ़ केन्द्रीय राज्य का अभाव था जो तुर्कों के आक्रमणों को पीछे ढकेल देता। इन विभिन्न प्रांतीय राज्यों में परम्परागत संघर्ष, युद्ध और वैमनस्य इतने तीव्र थे कि विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने के लिये वे संगठित होकर संयुक्त मोर्चा भी नहीं बना सकते थे। कभी-कभी राज्य विस्तार के प्रलोभन से ये राज्य परस्पर युद्ध करते और स्वयं अपनी सैनिक शक्ति का विनाश कर रहे थे।

सीमान्त क्षेत्र के या अन्य राज्यों ने भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा की सुरक्षा की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और न सुरक्षात्मक कार्यवाही ही की। उन्हें विदेशी आक्रमणकारी का भय ही नहीं था।

से उत्तरी भारत की भूमि रक्तरंजित हो गयी और हिन्दू कराह उठे, पर फिर भी वह मन्दिरों को लूटता और मूर्तियों को तोड़ता अपनी धर्मान्धता में आगे ही बढ़ता गया। महमूद के समय में और उसके बाद सदियों तक जो विद्वान और लेखक इस्लाम की व्याख्या और विवेचना करने वाले समझे जाते थे, उनका यह स्पष्ट मत रहा है कि गजनी का सुलतान महमूद कभी भी इस्लाम के कट्टर नियमों से विचलित नहीं हुआ और उसने अपने आचरण और व्यवहार द्वारा इस्लाम का मस्तक ऊंचा किया। मुस्लिम इतिहासकार महमूद के भारत पर हुए आक्रमणों को धर्मयुद्ध कह कर उसकी प्रशंसा करते थे। इससे भी महमूद का धर्म प्रचार का लक्ष्य स्पष्ट है।

५. **खलीफा का आदेश**—कुछ विद्वानों का मत है कि जब सन् ९९९ में खलीफा ने महमूद को उपाधियों से विभूषित किया, विरुद प्रदान किया था, तब महमूद ने यह प्रण कर लिया था कि वह प्रतिवर्ष भारत पर आक्रमण करके जेहाद (धर्मयुद्ध) करेगा। महमूद ने प्रतिवर्ष भारत पर निश्चित अवधिमें आक्रमण कर अपने प्रण को पूरा किया। काफिरों का संहार और जेहाद वह इस्लाम धर्म की सेवा समझता था। आक्रमण के समय वह जेहाद की भावना से प्रेरित हुआ था। यह संभव है कि अन्य तुर्कों की तरह वह भी इस्लाम के प्रचार के लिये उत्सुक और सतत प्रयत्नशील रहा हो। इससे महमूद की धार्मिक कट्टरता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

६. **भव्य मंदिरों और मूर्तियों का विध्वंश और उनकी लूट**—महमूद का उद्देश्य स्वर्ण गर्भित मन्दिरों को लूटना और उनकी अनेकानेक मूर्तियों को तोड़ना फोड़ना था। मंदिर की अपार संपत्ति लूटना उसने आक्रमणों का एक लक्ष्य बनाया था। मंदिरों को लूटने और मूर्तियों को विध्वंश करने में महमूद को अपार धन प्राप्त होने के साथ-साथ मूर्ति-पूजा के विरुद्ध धर्म-युद्ध करने की उसकी दृढ़ लालसा भी पूर्ण हो जाती थी तथा उसके अनुयायियों को भी धार्मिक उत्तेजना प्राप्त हो जाती थी। उनमे नवीन स्फूर्ति, नवीन उत्तेजना, और नवीन जोश तथा उमंग आ जाते थे और ये काफिरों (हिन्दुओं) के मूलोच्छेदन की प्रेरणा देते थे। मूर्तियों को तोड़ने और विध्वंस करने के कारण ही महमूद अपने आपको "बुतशिकन" (मूर्तियों को तोड़ने वाला) कहता था। इससे धर्मान्ध अफगान, तुर्क तथा अन्य धन-लोलुप व्यक्ति सहर्ष उसकी सेना के साथ आने को तैयार हो जाते थे और इससे उसके सैनिकों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती रहती थी। प्रोफेसर हबीब महमूद के इन कार्यों को भी क्षम्य मानते है। उनका कथन है कि मंदिरों की संपत्ति की लूट और मूर्तियों का खंडन, नर-संहार और नृशंसता के कार्य तत्कालीन युद्ध प्रणाली के अंग थे। इसलिये महमूद क्षम्य है। यह तथ्य को बहुत दूर अपने पक्ष मे घसीटना है। आज अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि महमूद ने धर्म की आड़ में जो कार्य किया वह सर्वथा निन्दनीय है।

महमूद के वास्तविक उद्देश्य और विचार चाहे जो भी रहे हों, परन्तु इस मत से विमुख नहीं हो सकते कि उसमें इस्लामजगत मे, सम्मान, गौरव, प्रतिष्ठा और यश प्राप्त करने की तीव्र लालसा भी थी और इसके लिये उसने भारत में धन-प्राप्ति के साथ-साथ काफिरों का मूलोच्छेदन करना और इस्लाम का प्रचार करने का

भी कार्य किया। आतंकित और परास्त लोगों को संतुष्ट करने और अपने पक्ष में लेने के लिये वह उनके प्रति कभी-कभी सहिष्णुता का व्यवहार भी करता था और इसीलिये उसने तिलक जैसे हिन्दू को भी अपनी सेना में ऊंचे पद पर नियुक्त किया था। महमूद के अधिकांश अनुयायी तथा मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकार उसके आक्रमणों को धर्मयुद्ध बतलाकर उसके गुण–गान करते थे। आगे आने वाले तुर्क सेनापतियों और विजेताओं ने भी मंदिर और मूर्तियों को तोड़ने-फोड़ने और विध्वंस करने में महमूद की नीति और उद्देश्यों का अनुकरण किया।

भारतीय राजपूत नरेशों और प्रान्तीय शासकों की राजनैतिक और सैनिक दुर्बलता तथा फूट का परिचय वह अपने पिता सुबक्तगीन के समय ही प्राप्त कर चुका था। इसलिये उनके विरुद्ध आक्रमण और युद्ध में उसे विजय और सफलता की खूब आशा थी। भारतीयों की फूट और दुर्बलता से लाभ उठाकर विजय प्राप्त करना सुगम था। आक्रमणों के पूर्व उसने अनेक मुस्लिम पर्यटकों और व्यापारियों से भारत का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लिया था जिससे उसे भारत पर आक्रमण करने में सुविधा हुई। उत्तरी पश्चिमी भारत का सीमांत क्षेत्र उसके अधिकार में था और भारत के प्रवेश द्वार पेशावर पर पहिले से ही उसकी सेना विद्यमान थी और सीमान्त क्षेत्र का राजा जयपाल पहिले भी परास्त हो चुका था। उससे उसे भय नहीं था, अपितु उसे युद्ध में परास्त करने की खूब आशा थी। प्रारम्भिक आक्रमणों में उसे सफलता और विजय श्री ही हाथ लगी। इसलिये भारत पर आक्रमण करना आर्थिक, राजनैतिक, और सामरिक दृष्टि से उपयोगी ही नहीं था, अपितु धर्मान्धता के उस युग में जेहाद और बुतशिकन बनने का नारा लगाकर, अपने अनुयायियों और सेनानियों की संख्या बढ़ाकर उसे भारत पर आक्रमण करने की सुविधा भी प्राप्त होती थी और इस्लामी विश्व में उसका नाम भी अजर अमर होता था।

महमूद गजनवी के आक्रमण

महमूद ने सन् १००० से सन् १०२६ तक की अवधि में भारत पर सत्रह आक्रमण किये। वह शीतकाल के प्रारंभ में भारत पर आक्रमण करता था और ग्रीष्म के प्रारम्भ होते ही वह गजनी पुनः लौट जाता था। ये आक्रमण उसने अपने साम्राज्य के शासन-प्रबंध की समुचित व्यवस्था करने के बाद प्रारंभ किये। इन सभी आक्रमणों में उसे सफलता प्राप्त हुई। इन आक्रमणों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है।

१. **सीमांत दुर्गों पर आक्रमण**—उसने सन् १००० में अपने पिता के प्रतिद्वंदी और शत्रु जयपाल के राज्य के सीमान्त दुर्गों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधिकार में कर लिया, और शान्त हो गया।

२. **पंजाब के राजा जयपाल पर आक्रमण**—सीमान्त दुर्गों पर आक्रमण और अधिकार के परिणाम स्वरूप जयपाल ने प्रतिशोध के लिये सैनिक तैयारी प्रारम्भ करदी। इस पर महमूद ने दस हजार अश्वारोहियों की सेना सहित सन् १००१ में पंजाब पर आक्रमण कर दिया। जयपाल और महमूद की सेनाओं में पेशावर के समीप २८ नवम्बर सन् १००१ को भीषण संग्राम हुआ। अधिक सेना होने पर भी और

वीरता तथा साहस से युद्ध करने पर भी जयपाल के हाथ पराजय लगी। इसका कारण महमूद का योग्य और कुशल सैन्य संचालन तथा जयपाल की अव्यवस्थित सेना थी। जयपाल अपने निकटतम संबंधियों सहित बन्दी बना लिया गया। उन्हें शारीरिक यंत्रणाएं दी गयीं और राजसभा में अपमानित किया गया। दो लाख दरहम के मूल्य के मणियों का कठहार जयपाल के गले से बलपूर्वक निकाल लिया गया। जयपाल ने शत्रु महमूद को पच्चीस सहस्र दरहम और पचास हाथी देकर अपनी मुक्ति प्राप्त की। इसके बाद महमूद जयपाल की राजधानी वैहन्द (उदमाण्डपुर) तक पहुँचा और नगर को खूब लूटा और अपार धन राशि लेकर गजनी वापस लौट गया। अन्त में महमूद और जयपाल में संधि हो गई और अत्यधिक धन जयपाल द्वारा महमूद को दिया गया। भविष्य में जयपाल कोई उपद्रव न कर सके इसलिये महमूद ने जयपाल का एक पुत्र तथा एक पौत्र धरोहर के रूप में अपने पास रख लिये। जयपाल इस पराजय और अपमान को सहन न कर सका और उसके स्वाभिमान को ऐसा गहरा आघात लगा कि उसने चिता में जलकर अपने को अग्नि को समर्पित कर अपने अपमानजनक जीवन को समाप्त कर दिया। इस वीर कार्य का उसके वंशजों पर इतना अधिक गहन प्रभाव हुआ कि उन्होंने निरन्तर बीस वर्षों तक महमूद और तुर्कों का घोर विरोध किया और वे लगातार संघर्ष और युद्ध करते रहे।

३. **भेरा पर आक्रमण**—सन् १००३ में महमूद ने झेलम नदी के तट पर स्थित भेरा नामक स्थान पर आक्रमण किया। भेरा के राय ने चार दिन तक बड़ी वीरता और अदम्य उत्साह से महमूद की सेना से युद्ध किया, पर वह परास्त हो गया। विजय के बाद महमूद ने भेरा में खूब लूटपाट की और अपार धन लेकर गजनी लौट गया और भेरा को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। भेरा के राजा को अपनी पराजय और अपमान का बड़ा दुख हुआ और उसने आत्महत्या करली।

४. **मुलतान पर आक्रमण**—सन् १००४–५ में महमूद ने मुलतान पर आक्रमण किया। इस समय मुलतान में अब्दुल फतह दाऊद नामक इस्लामी नरेश राज्य कर रहा था। वह शिया सम्प्रदाय के करामाथी मत का अनुयायी था। महमूद सुन्नी सम्प्रदाय का होने से शियामत वाले नरेश दाऊद का काफिरों के समान नाश करना चाहता था। इसके अतिरिक्त, दाऊद ने महमूद की तुर्क सेना को मुलतान राज्य से गुजरने नहीं दिया था। इन दोनों कारणों से महमूद ने मुलतान पर आक्रमण किया। आक्रमण करने के पहिले उसने पंजाब के नरेश जयपाल के उत्तराधिकारी आनन्दपाल से प्रार्थना की कि वह उसकी सेना को मुलतान पर आक्रमण करने के लिये उसके (आनन्दपाल के) राज्य में से जाने दे। आनन्दपाल इस प्रार्थना पर ध्यान देने की अपेक्षा विशाल सेना लेकर पेशावर की ओर चल पड़ा। अब महमूद और आनन्दपाल में भयंकर संग्राम हुआ, आनन्दपाल पराजित हुआ और उसने काश्मीर में शरण ली। अब महमूद ने मुलतान की ओर प्रस्थान किया। फतह दाऊद ने महमूद की सेना का बड़ी वीरता से सामना किया, किन्तु वह परास्त हुआ। उसने महमूद को बीस सहस्त्र वार्षिक कर देने का वचन दिया और तत्काल एक बड़ी धन

राशि भेंट स्वरूप प्रदान की। अब महमूद मुलतान से प्रस्थान करने के पूर्व जयपाल के पौत्र (आनन्दपाल के पुत्र) सुखपाल (सेवकपाल) को अपनी ओर से मुलतान का राज्यपाल नियुक्त कर गया। सुखपाल को महमूद जयपाल को पराजित कर धरोहर के रूप में गजनी ले गया था। वहां सुखपाल को इस्लाम का अनुयायी बना दिया गया और उसे नौशाशाह नाम दिया गया। महमूद इस समय सेवकपाल को शीघ्र ही राज्यपाल बना कर गजनी लौट गया था, क्योंकि उसे ऐसी सूचना प्राप्त हुई थी कि उसकी अनुपस्थिति में काशगर के सुलतान ने गजनी पर अधिकार कर लिया।

५. भटिंडा पर आक्रमण (१००५)—महमूद गंगा-यमुना के मैदान में बढ़कर वहां के प्रसिद्ध नगरों और मंदिरों को लूटकर वहा की अपार धन संपत्ति को हथियाना चाहता था। भटिण्डा गंगा-यमुना की घाटी में प्रवेश करने के मार्ग में पड़ता था और प्रसिद्ध दुर्ग था। महमूद ने यह अनुभव कर लिया था कि भटिण्डा पर बिना अधिकार किये गंगा-यमुना दोआब पर आक्रमण करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। इसलिये उसने सन् १००५में भटिण्डा पर आक्रमण किया। भटिण्डा नरेश बाजीराय ने अपूर्व साहस से रणक्षेत्र में महमूद से तीन दिन तक निरंतर युद्ध किया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि विजय श्री बाजीराय को प्राप्त होगी। इस पर महमूद ने अपने सैनिकों के धार्मिक जोश को उभाड़ा और उनमें नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर पुन: साहस और निर्भिकता से युद्ध किया। फलत: बाजीराय परास्त हो गया और उसने वन में छिपकर छापामार युद्ध करने की तैयारी की। पर महमूद ने वनों में उसका पीछा किया, जब बाजीराय के लिये बन्दी हो जाने का खतरा बढ़ गया, तब उसने अपने सम्मान की रक्षा के लिये आत्महत्या कर ली। महमूद ने भटिण्डा दुर्ग को अपने अधिकार में करके असंख्य निर्दोष नर नारियों को कत्ल कर दिया, अनेकानेक व्यक्तियों को इस्लाम अपनाने के लिये बाध्य किया। मंदिरों को विध्वंसकर मसजिदें निर्मित की और नवीन मुसलमानों को इस्लाम की शिक्षा देने के लिये कतिपय मौलवियों को वहां नियुक्त कर दिया। भटिंडा नगर, राजकोष तथा दुर्ग में लूट-खसोट से महमूद को अपार संपत्ति हाथ लगी और इसके साथ ही सेना में उपयुक्त हाथियों की एक टुकड़ी भी प्राप्त हुई।

६. सेवकपाल या नौशाशाह और आनन्दपाल पर आक्रमण (सन् १००८)—मुलतान के राज्यपाल नौशाशाह ने जो पहिले हिन्दू था इस्लाम धर्म का परित्याग कर दिया और सेवकपाल के नाम से मुलतान का स्वतंत्र शासक बन बैठा। इस पर महमूद ने कुपित होकर सन् १००८ में सेवकपाल को दंड देने के लिये मुलतान पर आक्रमण किया। युद्ध में सुखपाल या सेवकपाल परास्त हुआ, वह बन्दी बना लिया गया और महमूद ने उससे चार लाख दरहम अपराध के प्रायश्चित के रूप में वसूल किये। और उसे उत्तरी पंजाब में खदेड़ दिया। इसके बाद दाऊद मुलतान का शासक बना दिया गया। सेवकपाल का अन्त करने के बाद सन् १००८ में ही महमूद ने आनन्दपाल पर आक्रमण किया।

राजा आनन्दपाल पर आक्रमण और नगरकोट की लूट सन् (१००८)—महमूद ने सन् १००८ में जयपाल के उत्तराधिकारी आनन्दपाल पर आक्रमण किया क्योंकि—

का व्यवहार किया और अपने श्वसुर की देखरेख में उसे छोड़ दिया और गजनी राज्य से बाहर कर दिया।

महमूद का राज्यारोहण और उसकी प्रारम्भिक विजयें—सुबक्तगीन की मृत्यु के एक वर्ष बाद, गृहयुद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद सन् ६६८ में महमूद का राज्यारोहण बड़े ठाट-बाट और शानशौकत से सम्पन्न हुआ। उस समय गजनी राज्य में केवल गजनी और खुरासान प्रदेश ही सम्मिलित थे।

महमूद बड़ा प्रतिभाशाली और महत्वाकांक्षी था। वह अपने छोटे से राज्य को एक महान साम्राज्य के रूप में परिणित करना चाहता था। इसके लिये उसने योजना भी बनाई। शीघ्र ही मध्य एशिया में सामानीवंश में उत्तराधिकार का प्रश्न खड़ा हो गया। महमूद ने इस आन्तरिक पारस्परिक संघर्ष से लाभ उठाया और वहां हस्तक्षेप कर सामानी सुलतान से बलपूर्वक खुरासान छीनकर उस पर अपना अधिकार कर लिया और इस प्रकार बुखारा राज्य के आधे भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब वह सामानी राजवंश से स्वतन्त्र होकर गजनी का पूर्णरूप से स्वतंत्र शासक बन गया और सुलतान की पदवी से अपने को विभूषित किया। बगदाद के तत्कालीन खलीफा अल-कादिर वल्लाह ने महमूद की विजय से प्रसन्न होकर उसे उसके समस्त नवीन साम्राज्य का स्वतंत्र शासक स्वीकार कर लिया और उसे अमीन-उल-मिल्ला (मुसलमानों का संरक्षक) और अमीनुद्दौला (साम्राज्य का दाहिना हाथ) की उपाधियों से सुशोभित किया तथा सम्मानसूचक वेशभूषा और मान्यता-पत्र भी प्रदान किये। मुस्लिम इतिहासकार उतबी के मतानुसार ऐसा खिताब और सम्मान उस समय तक किसी भी मुसलमान या सुलतान को नहीं दिया गया था। इस प्रकार के राजकीय खिताब और सम्मान से, उसकी सामरिक और कूटनीतिक सफलताओं से, विजयों और राज्य विस्तार से महमूद के उत्साह, महत्वाकांक्षा और साम्राज्यवादी नीति में खूब वृद्धि हुई और वह एक विशाल इस्लामी साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगा।

महमूद का साम्राज्य विस्तार—अब उसने अपनी विशाल सुसज्जित सेनाओं से, अपनी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता से, रण-कौशल और सफल नेतृत्व से, विरोधी पड़ौसी राज्यों पर आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया और उनके राज्यों को तथा अन्य शक्तिहीन पार्श्ववर्ती छोटे राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिये। इस प्रकार उसने सन् ६६६ में खुरासान राज्य, सन् १००२ में सीस्तान राज्य, सन् १०१२ में गरशिस्तान राज्य, सन् १०१७ में ख्वारिज्म राज्य और बाद में सन् १०१९-२० में गोर राज्य पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने अधीन कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। निरन्तर आक्रमणों, युद्धों, विजयों और साम्राज्य प्रसार से महमूद को अनेक समय अपने पड़ोसी अधीन राज्यों के षड़यन्त्रों तथा अर्द्ध विजित प्रान्तों के विद्रोहों के कारण भयंकर संघर्ष व युद्ध करना पड़े और शक्ति, कूटनीति, उदारता, न्यायपूर्ण मध्यस्थता आदि से वह विजयी और सफल रहा। इन आक्रमणों और युद्धों के बीच वह भारत की ओर आकर्षित हुआ और उसने भारत पर अनेक आक्रमण किये।

महमूद के भारत आक्रमण के कारण व लक्ष्य

महमूद के आक्रमणों के उद्देश्यों के विषय में इतिहासकारों में बड़ा विवाद है, विशेषकर उसके धार्मिक लक्ष्य को लेकर। अनेक प्रयोजनों और उद्देश्यों से उसने भारत पर आक्रमण किये। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

१. **धन सम्पत्ति प्राप्त करना**—अलीगढ़ विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रोफेसर हबीब तथा अन्य इतिहासकार इस बात को मानते हैं कि महमूद धन का लालची पहिले था और धार्मिक व्यक्ति बाद में।

(i) महमूद एक ऐसे प्रदेश का शासक था जो बड़ा निर्धन, और पर्वतीय था। उसे अपने इस देश और प्रजा को सुखी-समृद्ध करना था और अपने नवीन साम्राज्य के शासन को सुचारु और सुसंगठित रूप से चलाने के लिये, उसे सुरक्षित तथा स्थायी बनाये रखने के लिये, धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। वह भारत के धन वैभव और मंदिरों की अतुल सम्पत्ति के विषयों में अनेकों बार लोगों से, व्यापारियों और यात्रियों से सुन चुका था। वह इस धन सम्पत्ति की प्राप्ति का स्वप्न देख रहा था। वह इस अपार संपदा और धन से अपने रिक्त राजकोष को भरना और अपने राज्य को सम्पन्न बनाना चाहता था और इस प्रकार अपनी राजधानी गजनी को अलंकृत कर अपने गौरव की वृद्धि करना चाहता था।

(ii) महमूद को मध्य एशिया में एक विशाल साम्राज्य स्थापित करना था और फिर इस साम्राज्य की, जो पश्चिम की ओर टाइग्रिस नदी तक विस्तृत हो गया था, रक्षा भी करना था। उत्तर में उसे उन तुर्क कबीलों का सामना करना पड़ रहा था जो निरंतर उसके राज्य पर आक्रमण कर रहे थे और जिनसे वह लगातार संघर्ष कर रहा था। मध्य एशिया और पश्चिम में अपने साम्राज्य के विस्तार और उत्तर में सुरक्षा के हेतु वह अपार धन और युद्ध सामग्री चाहता था। ये सब उसे भारत जैसे समृद्ध और धन-सम्पन्न देश से प्राप्त हो सकते थे। इसीलिये उसने राज्यों की राजधानियों पर आक्रमण करके समृद्धिशाली नगरों तथा भव्य, प्रसिद्ध, धन-धान्य से पूर्ण मंदिरों पर ही आक्रमण किये।

(iii) वह तुर्क और अन्य लड़ाकू जातियों के लोगों को सेना में भरती करना चाहता था। भारत पर आक्रमण कर वहाँ लूट में अपार सम्पत्ति प्राप्त करना धन-लोलुप तुर्क और अन्य युद्धप्रिय लोगों के लिये अच्छा प्रलोभन था। इससे वे सहर्ष सैनिक बनना स्वीकार कर लेते थे और महमूद के लिये युद्ध करते थे। इस प्रकार धनलिप्सा ने महमूद को भारत पर आक्रमण करने के लिये खूब प्रेरित किया। कहा जाता है कि वृद्धावस्था में मृत्यु के समीप आने पर वह अपनी संग्रहित की हुई अपार धन सम्पत्ति को देखकर आंसू बहाने लगा। यूरोपीय इतिहासकार हैवेल लिखते है कि "महमूद बगदाद और खलीफा के विरुद्ध भी युद्ध करने को तत्पर हो जाता, यदि उसे सोमनाथ मन्दिर की भाँति वहाँ भी अपार धन प्राप्त करने की आशा होती।"

२. **हाथियों का दल प्राप्त करने की लालसा**—महमूद बड़ा वीर, साहसी और रण-कुशल योद्धा था। उसने यह अनुभव कर लिया था कि यदि वह मध्य

एशिया में अपने विरोधी राज्यों को कुचलने और साम्राज्य विस्तार के लिये विपक्षियों को परास्त करने के लिये भारतीय हाथियों की सेना का समुचित उपयोग करे, तो उसे निस्सन्देह सफलता प्राप्त होगी। अतएव सुदृढ़ हाथियों की सेना प्राप्त करने के अभिप्राय से उसने भारत पर आक्रमण किये।

३. **साम्राज्य स्थापना**—कतिपय इतिहासकारक यह संकेत करते हैं कि महमूद भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने भारत पर आक्रमण किये और पंजाब को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। परन्तु निष्पक्ष विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में साम्राज्य स्थापित करना या सीधा शासन प्रतिष्ठित करना महमूद का लक्ष्य नहीं था। क्योंकि—

(i) पंजाब को उसने अपने गजनी राज्य में इसलिये सम्मिलित किया कि वह पंजाब को आधार स्थल, सैनिक केन्द्र और अड्डा बना कर भारत पर बार-बार सुगमतापूर्वक आक्रमण कर सकता था।

(ii) यद्यपि महमूद सौराष्ट्र में सोमनाथ और उत्तरी भारत में कन्नौज तथा कालिंजर तक घुस आया था, पर उसने इन जीते हुए प्रदेशों को अपने अधीन नहीं किये और न वहाँ अपना राज्यपाल ही नियुक्त किया। यद्यपि उसने लगभग समस्त उत्तरी भारत पर धावे किये परन्तु विजित प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। उसके आक्रमणों का लक्ष्य सुरक्षित राजधानियां और सुदृढ दुर्गों के स्थान पर धन संपन्न नगर तथा भव्य सोने-चांदी से परिपूर्ण मंदिर और देवालय ही होते थे।

(iii) महमूद ने अनुभव कर लिया था कि यदि वह भारत में अपने साम्राज्य को स्थायी रूप से स्थापित करने के प्रयास करता तो वह अपने मध्य एशिया स्थित पूर्वजों के साम्राज्य को खो देता, क्योंकि इतने विशाल और विस्तृत साम्राज्य को सुरक्षित रखना और संभालना एक व्यक्ति के लिये असंभव था। भारत अत्यन्त विशाल देश था और उस पर गजनी जैसे दूरस्थ नगर से शासन करना असंभव था।

(iv) भारत की गरम और आर्द्र जलवायु महमूद के अनुयायी तुर्कों के अनुकूल न थी क्योंकि ये ठंडे और शुष्क देश के निवासी थे।

(v) भारत में अनेक प्रान्तीय राज्य थे। इनमें पारस्परिक ईर्षा, द्वेष, और वैमनस्य था, वे निरन्तर पारस्परिक संघर्ष और युद्ध में व्यस्त रहते थे। उनमें एकता व संगठन का अभाव था। ऐसे विभिन्न प्रांतीय राजपूत राज्यों पर आक्रमण करना और उन्हें लूटना सरल था, परन्तु उन पर विजय प्राप्त कर स्थायी शासन स्थापित करना दुष्कर कार्य था।

४. **इस्लाम धर्म का प्रचार**—अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना था। इसके विपरीत कुछ आधुनिक मुस्लिम इतिहासज्ञों की धारणा है कि महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य धार्मिक नहीं था। इस विषय में श्री जाफर लिखते हैं "महमद एक धर्मान्ध प्रचारक की अपेक्षा एक विजेता अधिक था। यह कहना कि उसने भारत पर बार बार अपना (इस्लाम)

धर्म फैलाने के लिये आक्रमण किये, ऐतिहासिक दृष्टि से गलत है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असत्य है।"

अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रो० मुहम्मद हबीब ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि, "महमूद ने भारत पर आक्रमण धार्मिक उद्देश्यों को लेकर नहीं, अपितु लूट के लालच से किये थे। इस्लाम किसी भी आक्रमणकारी को अत्याचार या आततायित्व की इजाजत नहीं देता। शरियत का कोई सिद्धान्त उसके (महमूद के) उन भारतीय शासकों पर किये गये नाजायज आक्रमणों को उचित नहीं ठहरा सकता, जिन्होंने उसका (महमूद का) और उसकी प्रजा का कुछ नहीं बिगाड़ा था।"

श्री हबीब और नाजिम ने प्रमाण देकर यह बताने का प्रयास किया है कि महमूद ने इस्लाम के प्रचारार्थ भारत पर आक्रमण नहीं किया था। नाजिम का मत है कि यद्यपि महमूद की विजयों के पीछे–पीछे इस्लाम धर्म के प्रचारक भी गये थे और उनके प्रभाव से कुछ हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, परन्तु उसका उद्देश्य विजय और धन प्राप्त करना ही था। महमूद ने इस्लाम के प्रति कोई बुरा कार्य नहीं किया, क्योंकि उस समय धर्म-विरोधियों से व्यवहार करने के यही मान्य ढंग थे जो महमूद के थे।

महमूद की धार्मिक कट्टरता और इस्लाम के प्रचार के लक्ष्य को इस प्रकार आधुनिक तर्कों से ढकने का प्रयास किया है। महमूद के समकालीन इतिहासकार और उसकी राजसभा का विद्वान उतबी स्वयं "तारीख-ए-यामिनी" में लिखता है कि, "सुलतान महमूद ने अपने हृदय में पहिले सिजिस्तान जाने का संकल्प किया, किंतु बाद में उसने पहिले हिन्दुओं के विरुद्ध जेहाद करना अधिक अच्छा समझा। फिर उसने अस्त्र-शस्त्र बाँट दिये और एक सभा आमंत्रित की जिससे उसे अपनी इस योजना को पूरा करने के लिये आशीर्वाद प्राप्त हो सके, जिसका उद्देश्य इस्लामी झंडे का उत्कर्ष करना, पुण्य के क्षेत्र को विस्तीर्ण करना, सत्य के वचन को देदीप्यमान करना और न्याय की शक्ति को सुदृढ़ करना था. इसके बाद उसने ईश्वरीय सहायता में पूर्ण विश्वास रखते हुए भारत की ओर कूच किया और ईश्वर ने अपने प्रकाश तथा शक्ति से उसका पथ-प्रदर्शन किया और उसे प्रतिष्ठा तथा समस्त आक्रमणों में विजय प्रदान की।" इस कथन से यह बिना किसी सन्देह से स्पष्ट होता है कि महमूद ने काफिरों के देश भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिये आक्रमण किये थे। महमूद के समकालीन एक अन्य प्रसिद्ध विद्वान और लेखक अलबरूनी का भी मत यही रहा है कि इस्लाम के प्रसार के लिये महमूद ने भारत पर आक्रमण किये। भारत पर आक्रमण करके महमूद ने इस्लाम की सेवा ही नहीं की बल्कि उसके यश-गौरव को भी बढ़ाया था। परन्तु अलबरूनी ने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि महमूद ने अपनी धार्मिक कट्टरता और क्रूर कार्यों के कारण इस्लाम को बहुत बदनाम कर दिया और हिन्दुओं के हृदय में उसके प्रति घृणा के भाव दृढ़ कर दिये। यह सत्य है कि महमूद ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के हेतु अमानवता का नग्न प्रदर्शन किया, उसके द्वारा की गई अनेकानेक हिन्दुओं की निर्मम हत्याओं और नृशंस संहार

(i) आनन्दपाल ने मुलतान के नरेश दाऊद को महमूद के विरुद्ध सहायता प्रदान की थी ।

(ii) जब तक आनन्दपाल के अधिकार में पंजाब था, महमूद भारत के भीतरी प्रदेशों में आगे नहीं बढ़ सकता था ।

(iii) आनन्दपाल अपनी और अपने पिता की पराजय का बदला महमूद से लेना चाहता था।

(iv) महमूद की सत्ता का अन्त करने और भारत-सुरक्षा के लिये आनन्दपाल ने अनेक राजपूत राजाओं का एक संघ निर्मित किया था।

इन सब कारणों से महमूद ने कुपित होकर आनन्दपाल की राजधानी लाहौर पर आक्रमण किया । आनन्दपाल ने उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली, अजमेर आदि स्थानों के राजाओं से और उनकी प्रजा के अनेक व्यक्तियों से सैनिक और धन की सहायता प्राप्त करके, विशाल सेना संगठित कर, वैहन्द के समीप महमूद से भयंकर युद्ध किया। कहा जाता है कि धन-सम्पन्न परिवारों की महिलाओं ने अपने आभूषण बेचकर और गरीब घरों की स्त्रियों ने कई दिनों तक चर्खे चलाकर मजदूरी कर, धन प्राप्त कर देश की रक्षा के लिये आनन्दपाल की सहायता की थी । इस युद्ध में महमूद के पराजय होने की बहुत आशंका थी । जब आनन्दपाल की विजय होने वाली थी, तब सहसा उसका हाथी बिगड गया और रणक्षेत्र से भाग निकला। फलतः उसकी सेना में भगदड़ मच गई। महमूद ने इससे लाभ उठाया और अपने चुने हुए सैनिकों द्वारा हिन्दुओं की सेना पर अन्तिम धावा पीछे से बोल दिया । हिंदुओं के पैर उखड़ गये और उनकी पराजय हुई । महमूद ने भागती हुई सेना का पीछा किया । महमूद ने आनन्दपाल की राजधानी को लूटकर अपार धन प्राप्त किया।

इस विजय और धन प्राप्ति से महमूद और उसके सैनिकों का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया और उसने कांगड़ा प्रदेश की राजधानी नगरकोट पर आक्रमण किया। यहां ज्वालामुखी देवी के मन्दिर में अपार धन संग्रहित था और दुर्ग में आनन्दपाल का कोष और सम्पत्ति थी । महमूद ने इसे प्राप्त करने के लिये नगर और दुर्ग को घेर लिया । तीन दिन के भयंकर युद्ध से हतोत्साह होकर हिन्दुओं ने आत्म-समर्पण कर दिया। महमूद ने नगर और दुर्ग में प्रवेश कर उन्हें खूब लूटा । इस लूट में ४०० मन सोना, चांदी, अनेकानेक जड़ाऊ वस्त्र और वेशभूषा तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त हुईं । इस लूट के माल को ले जाने के लिये सेना के ऊंट भी कम पड़ गये थे।

७. **नारायणपुर पर आक्रमण और विजय (१००९)**—राजस्थान में आधुनिक अलवर जिले के अन्तर्गत नारायणपुर का छोटा राज्य था । नारायणपुर मध्य एशिया और भारत के बीच परस्पर होने वाले व्यापार का केन्द्र था और खुरासान से इसका सम्बन्ध था । इसी नगर से होकर उत्तरी भारत में अन्य प्रमुख राजमार्ग भी जाते थे। अतएव इस नगर पर अधिकार कर लेने से महमूद के लूट का मार्ग सुलभ और प्रशस्त हो जाता था । इसीलिये महमूद ने नारायणपुर के राजा पर

आक्रमण किया और उसे परास्त कर दिया और उससे मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

८. **मुलतान पर आक्रमण (सन् १०१०)**—मुलतान के तत्कालीन शासक दाऊद ने स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। अतएव महमूद ने दाऊद की अवशेष शक्ति को समाप्त करने के लिये मुलतान पर आक्रमण किया। इसमें महमूद विजयी हुआ और मुलतान में सहस्रों क्रियाओं का वध किया। अब संपूर्ण मुलतान राज्य को गजनी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

९. **त्रिलोचनपाल पर आक्रमण (सन् १०१३-१४)**—आनन्दपाल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र त्रिलोचनपाल शाही नरेश हुआ। महमूद ने सन् १०१३ में उस पर आक्रमण किया, पर इसमें वह असफल रहा। इसलिये सन् १०१४ में उसने फिर त्रिलोचनपाल की राजधानी नन्दन पर आक्रमण किया। परन्तु महमूद के अप्रतिम सैन्य-संचालन के कारण त्रिलोचनपाल परास्त हुआ और वह सहायता के लिये काश्मीर की ओर भाग गया। महमूद ने उसका पीछा किया और त्रिलोचनपाल तथा काश्मीर नरेश की संयुक्त सेना को उसने परास्त कर दिया। महमूद ने नन्दन पर अपना अधिकार करके वहां एक तुर्क शासन स्थापित किया।

१०. **थानेश्वर पर आक्रमण (सन् १०१४)**—महमूद ने सुन रखा था कि थानेश्वर में चक्रवाक स्वामी का अत्यन्त प्रसिद्ध धन-सम्पन्न मन्दिर था। अतएव उसे लूटने के लिये उसने १०१४ में गजनी से प्रस्थान किया। मार्ग में सतलज नदी के पूर्वी किनारे से राजाराम नामक एक हिन्दू नरेश ने महमूद का मार्ग अवरुद्ध कर उससे भयंकर युद्ध किया। यद्यपि इस युद्ध में महमूद विजयी हुआ, पर उसके मृतकों और हताहत सैनिकों की संख्या राजाराम के हताहत सैनिकों से कहीं अधिक थी। इस विजय के बाद महमूद थानेश्वर पहुँचा। थानेश्वर नरेश के पास युद्ध के लिये अनेकानेक हाथी थे जिनपर उसे बड़ा विश्वास था। महमूद इन हाथियों को प्राप्त करना चाहता था। थानेश्वर के नरेश ने महमूद का बड़ी वीरता से सामना किया, पर परास्त होने पर भाग गया। अब महमूद द्वारा अनेकानेक लोगों की नृशंसता से हत्या की गयी। एक लेखक के अनुसार थानेश्वर में मार-काट और हत्याएं इतनी भयानक और अधिक थी कि मृतकों के रक्त से नदी का जल भी रक्तवर्ण हो गया था। इसके बाद नगर और चक्रवाक स्वामी के मंदिर को खूब लूटा। अनेक प्रतिमाओं को ध्वंस करवा दिया, पर चक्रवाक स्वामी की मूर्ति को वह गजनी ले गया और वहां अपमानजनक ढंग से इस मूर्ति को सार्वजनिक चौक में फेंक दिया गया। थानेश्वर की लूट की विशाल धनराशि को वह अनेकों हाथियों पर लादकर गजनी ले गया।

११ **काश्मीर पर आक्रमण (सन् १०१५)**—पंजाब के वीर नरेश त्रिलोचनपाल और उसके पुत्र भीमपाल ने काश्मीर में शरण ली और वहां अपनी शक्ति संगठित करने लगे। महमूद ने इसके लिये काश्मीर नरेश को दंड देने तथा भीमपाल को बन्दी बनाने के लिये काश्मीर पर आक्रमण किया। काश्मीर में मार्ग के अवरोधों और ऋतु की खराबियों के कारण महमूद को सफलता प्राप्त नहीं हुई और वह

निराश होकर गजनी लौट गया। सन् १०२१ में उसने काश्मीर विजय के लिये फिर आक्रमण किया। पर इस दुर्गम पहाड़ी प्रदेश को जीतने में उसे सफलता नहीं मिली। इस बार-बार की असफलता से उसने काश्मीर विजय करने का विचार त्याग दिया।

१२. भारत के भीतरी प्रदेश और मथुरा व कन्नौज पर आक्रमण (सन् १०१८-१९)—उत्तरी भारत में मथुरा भव्य और धन से भरे-पूरे मंदिरों का सबसे बड़ा समृद्धिशाली और पवित्र नगर माना जाता था और कन्नौज उत्तरी भारत की प्रमुख राजधानी और सबल प्रतिहार नरेशों की शक्ति का केन्द्र समझा जाता था। महमूद इन्हें लूटने और इनका धन प्राप्त करने को अत्यंत ही उत्सुक था। इसलिये उसने दुर्गम वनों को पार किया और यमुना नदी को पहाड़ी क्षेत्र में पार करके बरन को जो आजकल बुलन्दशहर के नाम से प्रसिद्ध है जीत लिया। यहा के राजा हरदत्त ने अपने सैनिकों सहित युद्ध करने की अपेक्षा, आत्म-समर्पण कर दिया। इसके बाद महमूद महाबन पहुंचा। यहां के नरेश कुलचन्द्र को उसने परास्त कर दिया और यहां से बहुत साधन सामग्री और ८० हाथी प्राप्त करके महमूद ने मथुरा पर आक्रमण कर दिया। नगर के चारों ओर सुरक्षा के लिये दीवार थी, पर नगर की रक्षा का प्रयत्न किसी ने नहीं किया। मथुरा इस समय दिल्ली नरेश विजयपाल के शासन के अन्तर्गत था। महमूद मथुरा के मदिरों की शिल्पकला और अपार धनराशि को देखकर मन ही मन मुग्ध हो गया और झूम उठा। उसकी राजसभा का इतिहासकार उतबी मथुरा के विषय में लिखता है कि "उसने (महमूद ने) एक ऐसा नगर देखा, जो योजना तथा निर्माण की दृष्टि से इतना आश्चर्यजनक था कि उसे देखकर यह कहना पड़ता है कि वह स्वर्गीय है। किन्तु उसका सौन्दर्य नारकीय जीवों (हिन्दुओं) की कृति है। इसलिये कोई बुद्धिमान व्यक्ति तो उसका सौंदर्य वर्णन सुनकर विश्वास ही नहीं कर सकता था...। नगर के मध्य में एक ऐसा ऊंचा भव्य मंदिर है जिसका सौंदर्य और सजावट वर्णन करने मे न तो लेखकों की लेखनियां और न चित्रकारों की तूलिकाए ही समर्थ है।" उतबी ने मथुरा के मंदिरों में से प्राप्त शुद्ध स्वर्ण की पांच मूर्तियों का वर्णन करते हुए लिखा है कि प्रत्येक प्रतिमा पाँच हाथ ऊंची थी। एक में पचास सहस्त्र दीनार मूल्य की लाल मणियां जड़ी थीं और एक अन्य प्रतिमा में चार सौ मिश्काल मूल्य का ठोस नीलम जड़ा हुआ था, तथा इसी प्रकार एक तीसरी मूर्ति में चरणों पर चार लाख मिश्काल मूल्य का स्वर्ण जड़ा हुआ था। चाँदी की मूर्तियाँ तो कई सौ गुना थीं। महमूद ने पहिले तो मथुरा और वृन्दावन के मंदिरों की मूर्तियों की कला की खूब प्रशंसा की और फिर उन मंदिरों में संचित सोना, चाँदी तथा रत्न भंडार को लूटा और उन पर अधिकार कर लिया। नगर को भी उसने मनमाने ढंग से खूब लूटा। अब उसने नगर और मंदिरों में आग लगवा कर उन्हें भस्मीभूत कर दिया। वृन्दावन में भी उसने लूट, अग्निकांड और नृशंसतापूर्वक लोगों की हत्या कर अमानवता का तांडव नृत्य किया। महमूद ने मथुरा की इतनी सराहना करके अपनी लूट, आगजनी और कुत्सित कार्यों द्वारा उसकी कला सम्पन्नता और प्राचीन यश-गौरव को धूलि-धूसरित कर मानवता और सभ्यता व संस्कृति के इतिहास में एक घृणित वीभत्स अध्याय जोड़ दिया।

मथुरा को लूटने के बाद महमूद कन्नौज की ओर बढ़ा। कन्नौज उत्तरी भारत का केन्द्रीय समृद्ध नगर था। कला, धन सम्पन्नता और मंदिरों की दृष्टि से वह मथुरा से कम स्थान नहीं रखता था। उतत्री ने लिखा है कि "यहाँ सहस्रों संगमरमर के भवन धर्मात्माओं के धर्म के समान दृढ़ बने हुए हैं तथा यहाँ असंख्य मंदिर हैं।" उस समय वहाँ गुर्जर-प्रतिहार नरेश राज्यपाल राज्य कर रहा था। वह बड़ा कायर, दुर्बल और निकम्मा था। जब सन् १०१९ में महमूद कन्नौज पहुँचा तब राज्यपाल अपने कथित अधीनस्थ शासकों और राजाओं के समान भी आत्म सम्मान और युद्ध का प्रदर्शन नहीं कर सका. वह महमूद का बिना सामना किये ही भाग गया। महमूद ने इस वैभवशाली नगर को भी मनमाने ढंग से लूटा, मंदिरों को विध्वंस किया और अनेकों को मौत के घाट उतार दिया। यहां भी महमूद को अपार धन तथा बहुसंख्य हाथी प्राप्त हुए। अब महमूद ने मनोच (जफराबाद) की ओर प्रस्थान किया और पन्द्रह दिनों के घेरे के बाद उसे भी जीतकर लूटा। इसके बाद महमूद मार्ग में अशनी और शर्न नामक नगरों को तथा अन्य स्थानों को लूटता, फूंकता और उजाड़ता हुआ गजनी लौट गया। इन आक्रमणों और लूट में महमूद को अत्यधिक धन-संपत्ति और अनेक हाथी हस्तगत हुए।

१३. कालिंजर पर आक्रमण (सन् १०१९)–पवित्र धार्मिक नगर मथुरा और वृन्दावन के भस्मसात होने से हिन्दुओं की सुसुप्त धार्मिक भावना जागृत हुई तथा कन्नौज के राजा राज्यपाल के कायरतापूर्ण व्यवहार से स्वतंत्रता-प्रिय नरेश विक्षुब्ध हो गये और अब तुर्कों से प्रतिरोध लेने के लिये बुन्देलखंड में कालिंजर के चन्देल राजपूत नरेश गंड (विद्याधर) के नेतृत्व में एक संघ स्थापित हुआ। इस संघ के नरेशों की सेना ने गंड के सेनापतित्व में, राजपूतों के नाम को कलंकित करने वाले राज्यपाल को दंड देने हेतु, उस पर आक्रमण किया और उसे मार डाला। इससे महमूद ने कुपित होकर गंड को दंड देने के लिये विशाल सेना लेकर गंड की राजधानी कालिंजर पर आक्रमण किया। गंड ने संघ के सदस्यों, मित्रों और सामंतों की एक विशाल सेना एकत्रित की और महमूद से युद्ध करने के लिये तत्पर हुआ। इस सेना में फरिश्ता के अनुसार ३६ सहस्र अश्वारोही, ४५ सहस्र पदाति और ६४० हाथी थे। इतनी विशाल रणवाहिनी को देखकर महमूद घबड़ा गया और उसके होश-हवास गुम हो गये। उसने भय और आतंक से अल्लाह से विजय के लिये प्रार्थना की। संभव है उसकी प्रार्थना प्रभावशील रही और किसी अज्ञातकारण से रात्रि को ही गंड रणक्षेत्र से भाग निकला। उसके आकस्मिक पलायन का कारण या तो उसकी कायरता थी अथवा अपने साथी नरेशों की नेकनीयति, युद्ध में एकता और ईमानदारी में अविश्वास था जोकि उस युग में राजनैतिक ईर्षा-द्वेष के कारण असंभव नहीं था। महमूद को बिना संघर्ष के ही विजय प्राप्त हो गई थी। अब उसने हिन्दू सेना के शिविरों और नगर को खूब लूटा और अतुल धन लेकर गजनी लौट गया।

१४. पंजाब पर आक्रमण (सन् १०२०)–भारत के भीतरी प्रदेशों पर आक्रमण करने के लिये महमूद पंजाब को अपना आधार-स्थल बनाना चाहता था। और उसे पूर्ण रूप से अपने आधिपत्य और प्रशासन में रखना चाहता था। इसकी ला दी थी कि मूर्ति भंजक महमूद ने अन्य मंदिरों और देवताओं की प्रतिमाओं को

लिये उसने सन् १०२० में गजनी से प्रस्थान किया। मार्ग में उसने स्वात, बाजों तथा अन्य स्थानों के निवासियों को जो बौद्ध थे, बलपूर्वक मुसलमान बनाया और सीमांत प्रदेश के लोगों का दमन किया। उसने प्रसिद्ध दुर्ग लोहकोट को घेरकर उसे प्राप्त करने का प्रयास किया, पर सफल नहीं हुआ। इसके बाद उसने लूट खसोट बन्द करके पंजाब में सुव्यवस्थित प्रशासन स्थापित किया, उसने अलग-अलग भागों में अपने राज्यपाल या प्रतिनिधि शासक नियुक्त किये और सामरिक महत्व के स्थानों पर सेनाएं रखीं।

१५. ग्वालियर और कालिंजर पर आक्रमण (सन् १०२२)–कालिंजर की विजय के बाद महमूद के लौट जाने पर गंड ने पुनः अपने राज्य पर अधिकार कर लिया और पूर्ववत् शासन करने लगा। पर महमूद उसकी शक्ति को पूर्णरूप से नष्ट करना चाहता था। इसलिये सन् १०२१ में उसने गजनी से प्रस्थान किया और मार्ग में ग्वालियर के प्रसिद्ध दुर्ग को घेर लिया, क्योंकि ग्वालियर नरेश ने महमूद के विरुद्ध गंड की सैनिक सहायता की थी। पर ग्वालियर के सुदृढ़ दुर्ग पर विजय कर उसमें वह प्रवेश नहीं कर सका। उसने ग्वालियर नरेश से संधि कर ली और कालिंजर की ओर सन् १०२२ में बढ़ा और दुर्ग को घेर लिया। घेरा दीर्घकाल तक चलता रहा। महमूद को शीघ्र ही गजनी लौट जाना था। इसलिये कालिंजर की विजय में अधिक समय व्यतीत करने की अपेक्षा उसने गंड से संधि कर ली। इस संधि के अनुसार महमूद ने गंड नरेश से तीन सौ हाथी और अनेक बहुमूल्य उपहार प्राप्त किये। इस संधि से कालिंजर और चन्देल राज्य भीषण लूट-पाट और नर-संहार से बच गया।

१६. सोमनाथ पर आक्रमण (सन् १०२५-२६) महमूद का प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण आक्रमण सौराष्ट्र के सुविख्यात सोमनाथ मंदिर पर था। यह प्रभास क्षेत्र में अखिल भारत में प्रख्यात शिव मंदिर था। मंदिर में हीरों जड़ी तथा तारों की भाँति चमकते मोतियों से मढी छत के नीचे पाषाण निर्मित विशाल शिवलिंग था। यह शिव प्रतीक प्रतिमा मंदिर के मध्य भाग में निराधार लटक रही थी। चुम्बक पाषाण से निर्मित दीवारों के कारण ऐसा प्रभाव शिल्पियों ने उत्पन्न किया था। चन्द्रग्रहण के अवसर पर यहाँ एक लाख से भी अधिक यात्री दर्शन और पूजा के लिये आते थे। प्रतिदिन सहस्रों भक्त और यात्री आते थे और सर्वाधिक मूल्यवान वस्तुएं यहाँ भेंट चढ़ाई जाती थीं। नित्यप्रति गंगाजल मूर्ति के प्रक्षालन तथा मंदिर को धोने के लिये लाया जाता था। मंदिर में पूजा-अर्चना के लिये एक सहस्र ब्राह्मण थे। मंदिर के प्रवेश द्वार और सभा मंडप में पांच सौ सुन्दरियाँ नृत्य-गान करती थीं। मंदिर का सभामंडप शीशे से मढ़े हुए ५६ स्तंभों पर आधारित था। दो सौ मन स्वर्ण-श्रृंखला से मंदिर के घंटे बजते थे। इस मंदिर का व्यय दस सहस्र ग्राम की आय और अनेक राजाओं की भेंट और उपहार से चलता था। मन्दिर की इस महिमा, महत्व, उपहार और व्यय के अनुपात में ही मंदिर में अतुल रत्न, मणियाँ और स्वर्ण राशि संग्रहित हो गई थीं। महमूद के सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण के निम्न लिखित कारण थे—

१. महमूद की धन लोलुपता ने उसे सोमनाथ मंदिर की अतुल धन संपत्ति प्राप्त करने के लिये अत्यधिक प्रोत्साहित किया।

२. ऐसा माना जाता है कि सोमनाथ के पुजारियों और ब्राह्मणों ने यह बात

इसलिये विध्वंस किया कि सोमनाथ उनसे रुष्ट हो गये थे। महमूद इस व्यंग से क्रुद्ध हो गया और उसने शीघ्र ही सोमनाथ पर आक्रमण कर दिया।

३. मंदिरों को लूटने और मूर्तियों को तोड़ने-फोड़ने में और वहाँ के काफिरों (हिन्दुओं) को कत्ल करने में उसे विशेष अभिरुचि थी।

महमूद ने एक विशाल रणवाहिनी सहित जिसका संचालन वह स्वयं कर रहा था, दिसम्बर सन १०२५ में गजनी से प्रस्थान किया और मुलतान होकर राजस्थान के मरुस्थल में प्रविष्ट हुआ। इस समय महमूद के पास सेना भी सर्वाधिक थी, पर मरुस्थल में से जाने के लिये उसने सैनिकों के लिये पर्याप्त भोजन, पानी और आवश्यक दैनिक वस्तुओं को तीस सहस्र ऊंटों पर लदवाकर साथ ले लिया था। थोड़े दिनों बाद वह जनवरी १०२६ में अन्हिलवाडा पहुँचा। वहाँ के सोलंकी नरेश भीमदेव ने बिना युद्ध किये नगर छोड़ दिया। इस पर महमूद ने नगर को खूब लूटा। इसके बाद वह सोमनाथ दुर्ग पहुँचा और उसे घेर लिया। आसपास के हिन्दू सामन्त और नरेश अपनी सेनाओं सहित मंदिर और दुर्ग की रक्षा के लिये आ गये थे। कई दिनोंतक दुर्ग का घेरा चलता रहा। यद्यपि हिंदू सैनिक अप्रतिम उत्साह और वीरतासे लड़े और महमूद की सेना के दाँत कुछ समयके लिये खट्टे कर दिये, पर वे विशाल बहुसंख्यक मुस्लिम सेना के संमुख हताश हो गये। फलतः वे पराजित हुए और महमूद ने दुर्ग और नगर में प्रवेश किया। वहां उसने पचास हजार से अधिक ब्राह्मणों और हिन्दुओं का वध किया और इस्लाम की शक्ति का प्रदर्शन किया। जब महमूद सोमनाथ के मंदिर पर लूट और विध्वंस के लिये पहुंचा, तब रक्षकों के दल मंदिर में से एक के बाद एक निकल कर आये और युद्ध में मारे गये। बचे हुए समुद्र की ओर भाग गये, पर वे पकड़ लिये गये और मौत के घाट उतार दिये गये। मंदिर के प्रवेश द्वार पर भीषण हृदय-विदारक नर-संहार हुआ। मंदिर में प्रविष्ट होकर महमूद ने मंदिर की संपत्ति को खूब लूटा। इस समय मंदिर के पुजारियों और ब्राह्मणों ने महमूद से प्रार्थना की, यदि वह मूर्ति नहीं तोड़ेगा तो वे उसे अपार धनराशि देंगे। इस पर महमूद ने उत्तर दिया कि वह विश्व में मूर्ति-भंजक के नाम से प्रसिद्ध होना चाहता है, मूर्ति विक्रेता के नाम से नहीं। इसके बाद ही उसने मंदिर के शिवलिंग के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और इन टुकड़ों को उसने गजनी, मक्का, और मदीना भिजवा दिये और वहाँ गलियों और मसजिदों की सीढ़ियों में लगवाये जिससे वे वहाँ आने-जाने वाले मुसलमानों के पैरों से कुचले जा सकें। मूर्ति को तोड़ने पर उसमें से इतने बहुमूल्य रत्न, मणियाँ और धन निकला जिसे देखकर महमूद की आँखे चकाचौंध हो गई। मूर्ति के बदले में जो धन उसे भेंट दिया जा रहा था, वह इस धन की तुलना में नगण्य और तुच्छ था। मंदिर में से प्राप्त लूट के सम्पूर्ण माल की कीमत लगभग दो करोड़ दीनार थी। इतना अधिक धन महमूद को किसी भी आक्रमण और लूट में नहीं प्राप्त हुआ था। इस अपार धन को वह ऊंटों और हाथियों पर लदवाकर गजनी की ओर लौटा।

सोमनाथ मंदिर पर हुए आक्रमण में महमूद की सफलता के निम्न लिखित कारण माने गये हैं—

(i) सोमनाथ मंदिर के प्रमुख पुरोहित या महंत पद के लिये जो पारस्परिक झगड़े और ईर्षा-द्वेष चल रहे थे, उससे कुछ देशद्रोही अधार्मिक व्यक्तियों ने महमूद को सोमनाथ की सुरक्षा व धन-संपत्ति का गुप्त भेद दिया और उसकी सहायता की।

(ii) अनेक हिन्दू नरेशों और सामंतों की धारणा थी कि महमूद गजनी से मरुस्थल को पार कर सोमनाथ तक उतनी दूरतक नहीं पहुंच सकेगा, और यदि वहाँ पहुँचा भी तो उस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकेगा। इससे वे सैनिक और सुरक्षा के प्रयत्नों के प्रति उपेक्षित रहे।

(iii) महमूद ने स्वयं मार्ग में सैन्य संचालन किया और आक्रमण तथा युद्ध के समय भी वही सेनापति और नेता था। उसके सफल सैन्य संचालन और कुशल रणनीति से उसे सफलता प्राप्त हुई।

जब महमूद सोमनाथ के इस प्रसिद्ध मंदिर की* लूट का माल लेकर गजनी लौट रहा था, तब वह मार्ग भूल गया। गुजरात नरेश भीमदेव ने भी महमूद की सेना को घोर कष्ट दिये और उसे खूब तंग किया। कतिपय विद्वानों का मत है कि जब सोमनाथ की लूट की खबर मालवा में धार के पराक्रमी परमार नरेश भोजदेव को प्राप्त हुई तब उसने महमूद का पीछा कर उसका मार्ग रोककर उसे दंड देने की योजना बनाई और इसके लिये सेना का प्रस्थान भी हुआ। जब इसकी सूचना महमूद को प्राप्त हुई तब उसने कच्छ की खाड़ी के

---

*प्राचीन गाथाओं के अनुसार राजा सोम ने शंकर की आराधना के हेतु सोमनाथ का मन्दिर निर्मित किया था। सोमनाथ का शिवलिंग भारत के बारह ज्योतिर्लिंगों में श्रेष्ठ माना गया है। मंदिर से लगभग आधे किलो मीटर दूर वह स्थान है जहाँ श्रीकृष्ण ने देहोत्सर्ग किया था। यह संपूर्ण क्षेत्र प्रभास पाटन या देव-पाटन कहलाता रहा है। सोमनाथ का मंदिर उस स्थान पर बना है जहां सरस्वती नदी समुद्र से मिलती है। अन्वेषणों के अनुसार प्रभास पाटन प्राचीनकाल में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र था और भारत के सबसे अधिक व्यस्त बन्दरगाहों में से एक था। ईस्वीवीसन् की प्रथम सदी में सोमनाथ शैवधर्म के पाशुपत सम्प्रदाय का केन्द्र स्थल था। सोमनाथ का सबसे प्राचीन और प्रथम मन्दिर इसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित था। सौराष्ट्र में जब सातवीं सदी में वल्लभी का राज्य अधिक शक्तिशाली था, तब सोमनाथ का द्वितीय मन्दिर निर्मित हुआ। उत्तरी भारत में कन्नौज में गुर्जर-प्रतिहार सार्वभौम नरेश थे। ये गुजरात से आये थे। संभव है इसलिये उन्होंने दूसरे मंदिर के ढांचे पर सोमनाथ के एक तीसरे मंदिर को निर्मित किया। ग्यारहवीं सदी में सोमनाथ एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान ही नहीं अपितु एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र भी था। मंदिर के अथाह कोष ने महमूद गजनवी को अपनी ओर आकृष्ट किया। सोमनाथ पर यह सबसे पहिला आक्रमण था। महमूद द्वारा सोमनाथ मंदिर के विध्वंस हो जाने पर मालवा के राजा भोजदेव परमार और गुजरात के भीम सोलंकी नरेश ने सोमनाथ के तीसरे मंदिर के अवशेषों पर चौथा मंदिर निर्मित किया। इसके बाद सन् ११६९ में गुजरात के प्रसिद्ध शक्तिशाली नरेश कुमारपाल ने सोमनाथ का पांचवा मंदिर निर्मित किया, जिसके भग्नावशेष सन् १९५० तक अपनी गौरव गाथा सुनाते

उथले पानी को पारकर दूसरे मार्ग को अपनाया, परमार नरेश की सेना खाड़ी के इस पार ही रह गई। महमूद बचकर निकल गया। उसने परमार वाहिनी का सामना करने का साहस ही नहीं किया। पर आगे के मार्ग में जाटों ने महमूद की सेना को खूब तंग किया, उसके अनेक घोड़ों, ऊंटों और हाथियों को मार डाला और उसके लूट के माल में से बहुतसा धन छीन लिया, तथा महमूद को थका दिया। बड़ी कठिनाई से वह अपनी रक्षा करता हुआ गजनी पहुंचा। इस लूट के धन से उसने गजनी में एक भव्य सुन्दर मसजिद बनाई और सोमनाथ मंदिर के प्रवेशद्वार पर स्वर्ण से मढ़े हुए दरवाजे जिन्हें वह साथ ले गया था, इस मसजिद में उसने लगवाये।

१७. **जाटों और खोखरों पर आक्रमण (सन् १०२७)**—महमूद का अंतिम आक्रमण सन् १०२७ में उन जाटों और खोखरों पर हुआ जिन्होंने उसे गजनी लौटते समय अधिक तंग किया था। उनकी धृष्टता का दंड देने और उनसे बदला लेने के लिये महमूद ने यह आक्रमण किया था। इस समय उसने उन्हें बुरी तरह परास्त कर उनका दमन किया। उनकी बस्तियां जलादी गयीं। अनेक नदी में डुबो दिये गये। कई कत्ल कर दिये गये और उनके बाल-बच्चों को व स्त्रियों को पकड़ कर दास बना लिया। इस दमन के साथ ही महमूद के आक्रमणों की कड़ी समाप्त हो गयी।

महमूद की मृत्यु—३० अप्रेल सन् १०३० को महमूद की मृत्यु हो गयी।

रहे। सन् १२९७ में दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति अल्फखां ने सोमनाथ के इस मन्दिर को विध्वंस कर दिया और उसके ज्योतिर्लिंग को तोड़-फोड़ डाला। सन् १३०८ से १३२५ की अवधि में राजा महिपालदेव ने फिर से सोमनाथ मंदिर का पुनरुद्धार किया, परन्तु सन् १३७५ में गुजरात के सुलतान ने फिर सोमनाथ के ज्योर्तिलिंग को पूजा-स्थल से हटा दिया। पर अवसर आने पर कुछ ही वर्षों में वहां जनता ने फिर ज्योर्तिलिंग स्थापित कर दिया।

गुजरात के मुस्लिम सुलतान इससे रुष्ट हो गये और कुछ समय बाद सन् १४१३ में अहमदाबाद के सुलतान शाहअहमद ने फिर एक बार ज्योर्तिलिंग को वहां से हटाकर नष्ट कर दिया पर शिव के भक्तों ने उसे पुनः स्थापित कर दिया। हिन्दुओं के इस प्रकार से ज्योर्तिलिंग को बार-बार स्थापित करने के प्रयास को समूल नष्ट करने के लिये गुजरात के मुस्लिम सुलतान बोगड़ा ने सन् १४५९ में मंदिर को विध्वंस कर, ज्योर्तिलिंग को तोड़-फोड़ कर वहां मुसलमानों के लिये एक मसजिद बनादी। सुलतान की शक्तिक्षीण होने पर हिन्दुओं ने इस मसजिद को मंदिर में परिवर्तित कर दिया और सोमनाथ का मदिर और ज्योर्तिलिंग फिर समृद्ध और प्रसिद्ध हो गया।

मुगलकाल में शांति के समय यही सम्पन्नता और धर्मनिष्ठा की दशा रही, परन्तु धर्मान्ध मुगल सम्राट औरंगजेब ने सन् १७०६ में सोमनाथ के ज्योर्तिलिंग को हटाकर उसके मंदिर को मसजिद में परिवर्तित कर दिया। पर खंडहरों में बनी यह मसजिद इतनी भयावनी मालूम होती थी कि वहां कोई नमाज के लिये नहीं गया। परिणाम स्वरूप जब सौराष्ट्र में फिर हिन्दू सत्ता स्थापित हुई, तब वहां सोमनाथ के

उस समय गजनी का साम्राज्य बड़ा विस्तृत और विशाल था और उसका राजकोष असंख्य धन राशि से परिपूर्ण था ।

महमूद के आक्रमणों का प्रभाव

महमूद ने अपने आक्रमणों और विजयों से खुरासान और गजनी से लेकर गंगा की घाटी, कन्नौज और कालिंजर तक विशाल साम्राज्य स्थापित कर उस पर इस्लामी पताका फहराई । पर उसके आक्रमणों का उद्देश्य था भारत में काफिरों का इस्लामीकरण, मूर्ति-भंजन और धन-लोलुपता । वह केवल मूर्ति-नाशक की प्रसिद्धि, इस्लाम का प्रसार और भारतीय नगरों में संग्रहित धन सम्पत्ति और रत्न-राशि चाहता था । वह भारत में स्थायी शासन स्थापित करना नहीं चाहता था । उसका लक्ष्य धन था, राज्य नहीं, मूर्तिपूजा का विनाश था, विजय और विस्तार नहीं । उसके आक्रमण उस भयंकर आंधी के समान थे जो तूफानी गति से प्रारम्भ होती है और उसके मार्ग के छोटे-मोटे वृक्षों को धराशायी करती हुई स्वतः ही शान्त होती है ।

इसलिये कतिपय विद्वानों का मत है कि महमूद के आक्रमणों का कोई विशिष्ट स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा । यद्यपि उसके निरंतर आक्रमणों से भारत में अपार धन

ज्योतिर्लिंग की स्थापना हो गई और उसकी नियमित उपासना होने लगी । इसी बीच सन् १७८३ में इन्दौर राज्य की महारानी अहिल्याबाई होलकर ने इस मन्दिर के समीप ही एक नये सोमनाथ मंदिर को निर्मित किया । ब्रिटिश शासनकाल में प्रभास-पाटन और सोमनाथ मन्दिर का क्षेत्र सौराष्ट्र में जूनागढ़ रियासत के अन्तर्गत आ गया । इस रियासत का शासक मुसलमान था और ८० प्रतिशत प्रजा हिन्दू रही । सन् १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ ही दिनों बाद यह मुस्लिम शासक अपने राजपरिवार सहित पाकिस्तान को पलायन कर गया । १३ नवम्बर सन् १९४७ को भारत के तत्कालीन गृहमन्त्री और उपप्रधान मंत्री लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल और नवा नगर के महाराजा जाम साहब सोमनाथ मंदिर को दर्शनार्थ गये और उन्होंने मंदिर की जीर्ण-शीर्ण दशा को देखकर नवीन मन्दिर के निर्माण का निश्चय किया । फलतः सरकार और प्रजा तथा धनवान भक्तों के संयुक्त प्रयासों से पांचवें प्राचीन सोमनाथ मंदिर के स्थान पर उसी के अनुरूप एक नवीन भव्य सोमनाथ मंदिर का निर्माण हुआ। इसमें एक करोड़ से भी अधिक रुपया व्यय हुआ । ११ मई सन् १९५१ को सोमनाथ के ज्योतिर्लिंग को इस नवीन मन्दिर में फिर स्थापित किया गया । इस अवसर पर विश्व के समस्त देशों की मिट्टी, समस्त पवित्र नदियों का जल और सभी समुद्रों का क्षार युक्त जल ज्योतिर्लिंग के मुहूर्त के लिये सोमनाथ लाया गया था । विश्वास है कि अब शक्ति सम्पन्न स्वतन्त्र भारत में कोई भी विदेशी आक्रांता सोमनाथ की अतुल सम्पत्ति के प्रलोभन से वहां आक्रमण नहीं करेगा ।

और जन की हानि हुई, पर भारत जैसे विशाल देश पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता था, क्योंकि भारत में जन और धन दोनों का ही अत्यधिक बाहुल्य था। वह धन-संपत्ति और रत्न राशि जो महमूद भारत से लूट ले गया, उसकी और विदेशों की दृष्टि में चाहे कितनी हो, परन्तु विशाल भारत इतना धन-सम्पन्न और समृद्ध था कि महमूद के पश्चात् भी अनेक बाह्य आक्रमणकारियों, लुटेरों और विजेताओं द्वारा की गई क्षति को सहन करने की सामर्थ्य उसमें थी। क्योंकि आय के मुख्य स्त्रोतों पर महमूद ने प्रहार नहीं किया था, और देश का अधिकांश भाग अभी भी उसकी लूट से बचा हुआ था। भारत ने अपने विदेशी व्यापार और संबंधों से धन की क्षति को अल्पकाल में ही पूर्ण कर लिया। कतिपय स्थानों पर उसके आक्रमणों का प्रभाव शीघ्र ही नष्ट हो गया और आगे लगभग दो सदी तक राजपूत नरेश उत्तरी भारत के स्वामी बने रहे। भारत की आन्तरिक शासन-प्रणाली व युद्ध-नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जो सैनिक और प्रशासकीय दोष थे वे मुहम्मद गौरी की, तुर्कों की विजय के और उसके बाद भी बने रहे। फलतः महमूद के आक्रमण इतिहास की घटना मात्र रह गये। यद्यपि इस विवेचन में सत्य का अंश अवश्य है, परन्तु महमूद के आक्रमणों का प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य ही पड़ा है। इसका विवेचन निम्नलिखित है।

१. पंजाब और सीमांत क्षेत्र का गजनी साम्राज्य में सम्मिलित हो जाना—

महमूद के आक्रमणों का प्रमुख परिणाम यह हुआ कि भारत का उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र, वहाँ के सुदृढ़ दुर्ग, खैबर का प्रवेश द्वार और पंजाब प्रदेश, सिंध और मुलतान भारतीयों के हाथों से निकलकर गजनी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिये गये। इस क्षेत्र में अनेक तुर्क बस्तियाँ बस गई और बहुसंख्यक तुर्क विद्यार्थी, व्यापारी, धर्म-प्रचारक, आदि यहाँ से भारत के भीतरी प्रदेशों में आने-जाने और बसने लगे। इसके बाद यह प्रदेश कभी पूर्ण रूप से स्वतंत्र न हो सका। कभी दृढ़ता और कभी निर्बलता से सिंध, पंजाब और सीमांत क्षेत्र पर मुसलमानों का इस्लामी शासन चलता ही रहा। सन् ११८६ तक महमूद के गजनीवंश के नरेश यहाँ राज करते रहे और इसके बाद गोरवंश के तुर्क नरेश। इसी पंजाब प्रदेश और सीमान्त क्षेत्र को आधार बनाकर तुर्कों, पठानों, मंगोलों आदि ने आक्रमण कर उत्तरी भारत पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार पंजाब भारतीय तुर्क साम्राज्य के निर्माण में प्रथम सोपान रहा।

२. इस्लाम का प्रसार—अरब आक्रमण से तो सिंध और मुलतान तक ही इस्लाम का प्रसार हो सका था, पर महमूद के निरंतर आक्रमणों से कन्नौज और गंगा की घाटी तक इस्लाम की छाया फैल गई। अनेकानेक व्यक्ति बलात् मुसलमान बना लिये गये और जब वे हिन्दू समाज और धर्म में पुनः प्रविष्ट न हो सके तो वे स्थायी रूप से भारत में इस्लाम के कट्टर प्रचारक और प्रतिनिधि बनकर इस्लाम की जड़ें दृढ़ और गहरी करने लगे। महमूद के आक्रमणों और उसके बाद के अन्य अभियानों के समय अनेक मुस्लिम प्रचारक, सेवक "करामाती" इस्लामी संत और फकीर भारत में आने लगे, वे भारतीय समाज में घुल-मिल गये और निरन्तर इस्लाम का प्रसार करते रहे।

इन नये मुसलमानों और तुर्क बस्तियों ने मुहम्मद गोरी को और उसके बाद भारत पर आक्रमण करने वालों को भारत के विरुद्ध अत्यधिक सहायता प्रदान की।

३. भारत की सैनिक और राजनैतिक शक्ति पर घोर आघात तथा उसकी दुर्बलता का प्रदर्शन—

(i) महमूद के निरन्तर बड़े सत्रह आक्रमणों से राजपूतों की सैनिक और राजनैतिक शक्ति को आघात पहुंचा।

(ii) इन हमलों व युद्धों ने कुछ भारतीय राजवंशों का अंत कर दिया और कुछ को इस भीषणता से झकझोर दिया कि वे अधिक काल तक अपना अस्तित्व न रख सके, तथा राज्यों की सीमा व शक्ति में परिवर्तन हो गया।

(iii) आक्रमणों व युद्धों में लाखों भारतीय सैनिकों का वध कर दिया गया, अनेक सेनापति और चुने हुए वीर योद्धा रणक्षेत्र में काम आये। अनेक सैनिक पकड़ लिये और दास बनाकर गजनी भेज दिये गये। सैनिकों के बाल-बच्चों और स्त्रियों को भी या तो मौत के घाट उतार दिया या दास बना लिया गया। इमसे भारत की सैन्य शक्ति कुछ समय के लिये कम हो गई।

(iv) यद्यपि महमूद को अपने आक्रमणों के समय तीन बार सफलता और विजय के संबंध में भीषण आशंका उत्पन्न हुई थी, पर फिर भी विजय सदा उसकी हुई।

(v) इन आक्रमणों से ही उसे भारत की भौगोलिक स्थितियों का ज्ञान हो गया। तुर्कों को तथा अन्य विदेशियों को यह ज्ञान प्राप्त हो गया कि भारतीय नरेशों और राजपूतों में पारस्परिक फूट है, एकता और संगठन का अभाव है, उनकी रण-नीति और सैन्य-संचालन दूषित है। ये समस्त राजनैतिक, सामरिक और सैनिक दुर्बलताएँ भारत के भावी आक्रमणकारियों के लिये प्रेरणादायक हो गई। भारत की इन दुर्बलताओं का ज्ञान विदेशियों को हो गया था, जिसका लाभ उन्होंने भारत पर आक्रमण करके यहां अपने राज्य स्थापित करके उठाया। भारत के राजनैतिक खोखले-पन और आन्तरिक फूट ने ही भारत को बार-बार नीचे गिराया।

४. भारत के अपार धन की क्षति और कला का नाश— इन आक्रमणों से भारत की सदियों से संग्रहित अपार धन-संपत्ति, रत्न-राशि और अतुलनीय स्वर्ण-चांदी विदेशों को चली गई। इससे भारत की आर्थिक व्यवस्था को गहरा आघात लगा, चाहे वह थोड़े समय के लिये ही क्यों न हो। महमूद ने अनेकानेक भव्य कलापूर्ण मंदिरों को लूटा और मूर्तियों को तोड़ा ही नहीं अपितु इन्हें विध्वंस कर दिया और भस्मीभूत कर दिया। मथुरा, कन्नौज, थानेश्वर, नगरकोट, सोमनाथ आदि नगरों के सुन्दर कलात्मक भवनों को भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार उसने अपने नृशंसात्मक कार्यों से भारतीय कलानिधि को अमिट क्षति पहुँचाई, और भारतीय संस्कृति की प्रगति मे अवरोध ला दिया। महमूद भारतीय ललित कलाओं का ऐसा घोर शत्रु था कि कला के उत्कृष्ट स्मारकों व आदर्शों को ही विध्वंस करके वह मौन और शांत नहीं रहा, अपितु उच्च श्रेणी के भारतीय शिल्पियों को भी वह बलपूर्वक पकड़ कर गजनी ले गया

और वहां उनसे शक्ति और तलवारके आधार पर कला का कार्य ही नहीं करवाया गया, अपितु इन्हें मुसलमान भी बना लिया गया। ये शिल्पि और उनकी अप्रतिम कला भारत से सदा के लिये खो गई।

५. मध्य एशियाई साम्राज्य की रक्षा एवं वृद्धि— महमूद के भारतीय अभियान और उनमें प्राप्त अपार धनराशि, विशाल हस्ति सेना और महावत उसके गजनी साम्राज्य के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हुए। इस धन से उसने अपने मध्य एशियाई साम्राज्य की सुरक्षा एवं वृद्धि के हेतु एक विशाल सेना रखी। भारतीय धन और सेना के अभाव में महमूद के लिये निरंतर युद्ध में रत रहना संभव न था। भारतीय धन-संपत्ति, हस्ति सेना, तथा कुशल महावतों का उसने मध्य एशिया के युद्धों में प्रयोग कर विजय प्राप्त की। इससे मध्य एशिया में उसकी धाक जम गई और उसके साम्राज्य का खूब विस्तार हुआ।

६. कला और साहित्य का संरक्षण— महमूद ने भारत से प्राप्त अपार धन, रत्न-भंडार का उपयोग विद्वानों, कवियों और लेखकों को तथा कलाकारों को राज्याश्रय देने में किया। साथ ही अपने उत्तराधिकारियों के लिये भी वह प्रचुर संपत्ति छोड़ गया।

(i) महमूद भारत से अनेक शिल्पियों, कलाकारों व कारीगरों को बलपूर्वक गजनी ले गया। उसने इनसे अनेक भव्य भवन, मसजिदें, राजप्रासाद, आदि निर्मित करवाये। इनकी कलाकृतियों ने गजनी ही नहीं सम्पूर्ण मध्य एशिया को गौरवमय बना दिया, महमूद के नाम को तत्कालीन इस्लामी जगत में अत्यधिक सम्मानित बना दिया और वहां के कलाकारों को प्रभावित एवं लाभान्वित किया तथा मध्य एशिया को भारत की सांस्कृतिक देन से उपकृत किया।

(ii) महमूद ने आक्सस नदी के नगरों से, केस्पियन समुद्र तट से, ईरान और खुरासान से पूर्वी साहित्यिक नक्षत्रों को गजनी में आमंत्रित किया और भारतीय धन की प्रचुरता से उसने उन्हें उदारता से राज्य संरक्षण दिया।

७. भारत पर भावी आक्रमण के लिये नवीन मार्ग—अरबों ने भारत में जिस मार्ग से प्रवेश किया था, वह अत्यंत दुष्कर था। इससे अरबों को उत्तरी भारत के सिंध और मुलतान में ही प्रवेश करने और राज्य बनाने का अवसर प्राप्त हुआ था। परन्तु महमूद के आक्रमणों ने यह प्रमाणित कर दिया कि उसके द्वारा भारत में प्रवेश का मार्ग अरबों के मार्ग की अपेक्षा बहुत अधिक सुगम है; और वास्तव में इसी मार्ग द्वारा भारत की विजय सम्भव है। भविष्य में भारत पर जितने भी आक्रमण हुए और आक्रांता प्रविष्ट हुए, वे इसी मार्ग से हुए और वे सरलता से भारत में अपने राज्य स्थापित करे सके।

८. अग्रदूत का कार्य—महमूद के आक्रमणों ने मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के लिये अग्रदूत का कार्य किया। डाक्टर मजूमदार के मतानुसार महमूद के आक्रमणों से भारत के राजनैतिक ढांचे में दरारें पड़ गई। उस युग में पुराने सड़े ढांचे का पतन होना आवश्यक था। महमूद के आक्रमणों से मार्ग सुलभ हो गया जिससे दो सौ वर्षों के बाद गंगा की घाटी के राज्यों को परास्त तथा नष्ट-भ्रष्ट किया गया। महमूद ने

ही बारहवीं सदी में होने वाले मुहम्मद गोरी की भारत में अधिक स्थायी विजयों के द्वार खोल दिये। यदि मुहम्मद गोरी को महमूद गजनवी का निर्दिष्ट और निर्देशित मार्ग उपलब्ध न होता तो वह अपना कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता था। यद्यपि महमूद ने भारत मे स्थायी राज्य स्थापित नहीं किया, किन्तु उसने अपने उत्तराधिकारियों के लिये भारत में मुस्लिम साम्राज्य को स्थापित करने के मार्ग को सुगम और सुलभ अवश्य बना दिया जिससे लाभ उठाकर मुहम्मद गोरी तथा अन्य मुस्लिम विजेताओं ने भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना की और एक नवीन युग का आरम्भ किया जो लगभग छः सौ वर्षों तक बना रहा।

महमूद की सफलता और विजय के कारण

महमूद ने भारत पर आक्रमणों की झड़ी लगा दी और उसे अपने इन आक्रमणों में अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई। कुछ आक्रमणों और युद्धों में उसे निराशा हुई और पराजय की कठिन आशंका उत्पन्न हो गई, जैसे आनन्दपाल के विरुद्ध सन् १००८ में हुए युद्ध के समय, भाटिंडा नरेश बाजीराय के युद्ध में (सन् १००५) और चन्देल नरेश गंड के विरुद्ध सन् १०१९ में। इन युद्धों में उसके दांत खट्टे हो गये थे और अन्त में सोमनाथ के आक्रमण से लौटते समय जाटों से बहुत दुखी हो गया था व उसका बहुत सा धन-द्रव्य उन्होंने छीन लिया था। इसी समय वह इतना आशंकित और निराश भी हो गया था कि धार के परमार नरेश भोजदेव की रणवाहिनी का सामना करने का भी उसने साहस नहीं किया। पर अन्ततोगत्वा विजयश्री उसके ही हाथ लगी। महमूद की इस अनवरत सफलता के कारण निम्नलिखित हैं:—

१. **राजनैतिक मतभेद और फूट**—भारतीय नरेशों में राजनैतिक मतभेद, वैमनस्य और पारस्परिक फूट थी। उनमें एकता और संगठन का अभाव था। फलतः वे महमूद के आक्रमणों के समय और संकटकालीन दशा में संगठित रूप से शत्रु को विफल बनाने का प्रयास न कर सके।

२. **भारतीयों में सक्रिय देशभक्ति और राष्ट्रीयता का अभाव**—उस समय न तो जनसाधारण में और न शासकों में आजकल सी उग्र राष्ट्रीय भावनाएं, राजनैतिक जागरूकता और सचेत देशभक्ति ही थी। भारत राष्ट्र, देश और प्रजा के रक्षार्थ वे गम्भीरता से सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से कार्य नहीं कर सकते थे। राष्ट्र के रक्षार्थ कार्य करने की अपेक्षा कतिपय व्यक्तियों ने तो राष्ट्रद्रोही के कार्य किये और शत्रु से मिल कर गुप्त भेद प्रकट कर दिये। सोमनाथ के पुजारियों के पारस्परिक झगड़ों से, उन्हीं में से किसी एक ने शत्रु को दुर्ग व मन्दिर का गुप्त भेद दिया और संभवतः सोमनाथ पर आक्रमण के लिये आमन्त्रित भी किया। कन्नौज के नरेश राज्यपाल और कालिंजर के चन्देल राजा गंड ने तो महमूद से युद्ध करने की अपेक्षा पलायन करना ही श्रेयस्कर समझा। अन्हिलवाड़ा के भीमदेव ने महमूद का सामना करने का साहस ही नहीं किया। कुछ शासकों और राजाओं ने पहिले महमूद का विरोध किया और बाद में जब उन्हें महमूद की श्रेष्ठतर शक्ति का अनुमान लग गया तब उन्होंने उससे विनयपूर्वक सन्धि कर ली और वार्षिक कर देने का वचन दिया।

इससे स्पष्ट है कि युद्धों में महमूद की सफलता का कारण भारतीय सैनिकों की कायरता नहीं थी, पर शासकों की अयोग्यता, निर्बलता थी। देशभक्ति, राष्ट्रीयता और राजनैतिक जागरूकता का अभाव था।

३. महमूद का सैन्य-संगठन, सैन्य संचालन और रण-नीति तथा रणविधि— (i) महमूद कुशल सेनानी और वीर योद्धा तो था ही, उसमें सेना को समुचित ढंग से संगठित करने और युद्ध क्षेत्र में ठीक रीति से संचालित करने की विशेष प्रतिभा भी थी। वह शत्रु की दुर्बलताओं से सदा लाभ उठाने की ताक में रहता था। (ii) उसकी रणनीति और रण-विधि भी अप्रतिम थी। वह प्रत्येक युद्ध में कुछ न कुछ श्रेष्ठ चुनी हुई सेना शत्रु पर अन्तिम निर्णायक युद्ध और प्रहार के लिए अलग सुरक्षित रख लेता था और समय आने पर उसका उपयोग करता था। फलत: उसने अनेक बार अपनी पराजय को विजय में परिणित कर दिया। आनन्दपाल और बाजीराय के विरुद्ध उसने इसी रण-विधि का प्रयोग किया। (iii) इसके अतिरिक्त भयंकर युद्ध के समय वह ऐसी रण-नीति का उपयोग करता था जिसके अनुसार उसकी सेना विविध वर्गों और टुकड़ियों में विभक्त होकर बारी बारी से शत्रु पर प्रहार करती थी। इससे उन्हें सफलता प्राप्त होती थी, क्योंकि हिन्दू सेना दिन भर लड़ते-लड़ते क्लांत और अधीर हो जाती थी। (iv) महमूद आवश्यकता पड़ने पर अपने व्यक्तिगत निर्भीक कार्यों द्वारा अपने सैनिकों को पुनरुत्साहित करने का भी सफल प्रयास करता था। अपने अप्रतिम सैनिक गुणों और योग्यता से उसने उस विकराल स्थिति और संकटकाल में भी अदम्य उत्साह और साहस का परिचय दिया जबकि कोई अन्य सेनापति निस्संदेह पराजित हो जाता। (v) असफलता और पराजय की भीषण आशंका पर वह अल्लाह से सच्चे हृदय से शक्ति और विजय के लिए प्रार्थना किया करता था और इसका वर्णन सुनकर उसकी हताश सेना भी कई गुना उत्साहित और ताजी होकर युद्ध में संलग्न हो जाती थी।

४. महमूद की सेना की विशेषताएं और भारतीयों की सैनिक दुर्बलताएं— (i) महमूद ने अपनी सेना में अरब, तुर्क, अफगान तथा अन्य लड़ाकू जातियों का कुशलता से समन्वय किया था। इनकी संख्या इतनी अधिक होती थी कि वे शत्रुओं का दिल दहलाने में सफल होते थे। महमूद की बहुसंख्यक सेना की तुलना में भारतीयों की सेना कम होती थी। (ii) महमूद की सेनाओं के तीरन्दाज भारतीयों की अपेक्षा अधिक कुशल थे। (iii) उसकी सेना में युद्ध के कुछ ऐसे नवीन अस्त्र-शस्त्र भी थे जो भारतीय सैनिकों और नरेशों के पास नहीं थे। (iv) महमूद की सेना के अश्व और अश्वारोही सैनिकों का रण-कौशल हिन्दुओं से बहुत बढ़ा-चढ़ा था। हिन्दुओं की अपेक्षा वे अधिक दृढ़ और परिश्रमी थे। (v) महमूद के सैनिकों में लूट और धन की लोलुपता थी। इसके लिये वे विजय प्राप्त करने के लिये कोई कसर नहीं उठा रखते थे और प्राणों को हथेली पर रखकर हिन्दुओं से युद्ध करते थे। महमूद के सैनिकों में यह दृढ़ विश्वास था कि विजयश्री सुलतान के ही हाथ लगेगी और विजय होने पर भारत की प्रचुर संपत्ति और रत्न राशि की लूट में उनको अपना भाग प्राप्त होगा। हिन्दुओं में ऐसा कोई प्रेरणात्मक तत्व नहीं था। (vi) हिन्दु नरेशों और सेनापतियों ने अपनी रणनीति में कोई परि-

वर्तन नहीं किया। वे युद्ध में शत्रु के कुशल अश्वारोही सैनिकों के विपरीत हाथियों की सेना का उपयोग करते थे और हाथी निरन्तर प्रहारों और घावों से पागल होकर युद्ध क्षेत्र से विमुख हो अपने ही सैनिकों को रौंद डालते थे। हिन्दू नरेश भी प्राचीन प्रणाली के अनुसार हाथियों पर ही सवार होकर रणक्षेत्र में सेनापतित्व और नेतृत्व करते थे। ये हाथी संकटकाल में अकस्मात भड़क जाते या बिगड़ जाते और रणक्षेत्र से भागकर सेनापति या प्रमुख नरेश को किसी अनुपयुक्त स्थान में बलात् ले जाते थे। अपने सेनापति या नरेश की अनुपस्थिति में हिन्दू सेना विचलित हो उठती और हतोत्साह होकर युद्धक्षेत्र छोड़कर पलायन कर जाती। इससे विजय महमूद की होती थी। (vii) महमूद ने अपनी सेना में कुशल गुप्तचर विभाग रखा था। उसके गुप्तचर बड़े दक्ष थे। वे भारत की भौगोलिक स्थिति और शत्रु की सामरिक तय्यारियाँ तथा दुर्बलताओं का ठीक ठीक पता लगाकर महमूद को उससे अवगत कर देते थे। भौगोलिक स्थितियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वह आक्रमण के समय मार्ग नहीं भूलता था और शत्रु की स्थिति की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने में कभी नहीं चूकता था। इससे कोई भी शत्रु या भारतीय नरेश महमूद को धोखा देकर संकट में नहीं फंसा सके।

५. **धार्मिक उत्साह**—महमूद और उसके सैनिकों में अदम्य धार्मिक उत्साह और नवीन जोश था। इस्लाम के नाम पर वे हर कुर्बानी देने को तत्पर थे। धर्म की इस नवीन स्फूर्ति और जोश से महमूद की विजय के लिये वे सब कुछ करने को उद्यत हो जाते थे। स्वार्थपरता और धन लोलुपता के अतिरिक्त महमूद के सैनिकों में यह दृढ़ धारणा थी कि उनका युद्ध धार्मिक युद्ध है और वे ईश्वर के कार्य के लिये युद्ध कर रहे हैं और अपनी बलि दे रहे हैं। हिन्दुओं में इस प्रकार की कोई प्रेरणादायक या उत्तेजक बात नहीं थी। अपितु विभिन्न सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों के कारण उनमें पारस्परिक वैमनस्य और ईर्ष्या-द्वेष थे।

६. **महमूद का व्यक्तित्व व उसके गुण**—महमूद का विलक्षण व्यक्तित्व और उसके विभिन्न गुण व प्रतिभा उसे महान् विजेताओं और सेनानायकों की प्रथम श्रेणी में रखते हैं। उसका साहस, शौर्य, वीरता, उत्साह, निर्भीकता, आत्मविश्वास, ईश्वर में विश्वास, कुशल सेनापतित्व, मनुष्यों की परख, शत्रु की स्थिति और दुर्बलताओं का अध्ययन करके तदनुसार अपनी रण-नीति में परिवर्तन करना, और अपने सैनिकों व अनुयायियों का पूर्ण विश्वास, और श्रद्धा प्राप्त करने की क्षमता रखना—आदि ऐसे गुण हैं जिनके समन्वय से भारत में उसकी सामरिक सफलता सुगम हो गयी थी।

महमूद का व्यक्तित्व, चरित्र और उसका मूल्यांकन

यद्यपि महमूद का भारतीय इतिहास और राजनीति से विशिष्ठ घनिष्ट संबंध नहीं रहा, और वह भारतीय इतिहास में अतृप्त बर्बर आक्रमणकारी प्रतीत होता है, परन्तु फिर भी उसके अनवरत आक्रमणों और गजनी अधिकृत पंजाब ने भारत के द्वार खोलने की कुंजी का काम किया और हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का मार्ग सुलभ कर दिया, जिससे दो सौ वर्षों पश्चात् उत्तरी भारत में इस्लामी राज्य स्थापित हुए। इसलिये यहाँ उसके व्यक्तित्व, चरित्र और कार्यों का मूल्यांकन करना समीचीन होगा।

महमूद के व्यक्तित्व और चरित्र के मूल्यांकन करने में इतिहासकारों में विभिन्न मत हैं। कतिपय इतिहासकार उसे एक महान् विजेता, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, कुशल सेना-नायक, श्रेष्ठ कला-प्रेमी, न्याय-प्रिय और सफल प्रशासक मानते हैं और उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। वे उसकी दुर्बलताओं और नृशंसता पर सफेदी पोतकर उसके उज्वल पक्ष को ही प्रस्तुत करते हैं और उसके अन्धकारमय पक्ष से आँख मूंद लेते हैं। अन्य विद्वान इतिहासज्ञ उसके गुणों के साथ-साथ उसकी धन-लोलुपता, धर्मांधता, अनाचार, अत्याचार, बर्बरता, नृशंसता, आदि का अतिरंजित विवेचन भी करते हैं। यहाँ दोनों पक्षों की समीक्षा की जायगी।

१. **महान् विजेता और साम्राज्य निर्माता**—महमूद ने अपनी दिग्विजयों से एक बड़ा विशाल और विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया था। उसके राज्यारोहण के समय उसके साम्राज्य में केवल खुरासान और गजनी दो ही प्रदेश थे। परन्तु उसने अपने युद्धों और विजयों से गजनी राज्य की सीमाओं का अधिक विस्तार किया और मध्यएशिया में ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में एक महान् विस्तृत धन-धान्यपूर्ण साम्राज्य स्थापित कर दिया जो पश्चिम में हमदान, इस्फहान और केस्पियन समुद्रतट से लेकर पूर्व में पंजाब तक फैला हुआ था। आयु भर उसने अपने नवीन साम्राज्य की रक्षा भी की। जब कभी उसे अपने साम्राज्य पर कोई संकट दृष्टिगोचर होता, तभी वह सेना लेकर वहाँ शीघ्र ही पहुँच जाता और विजय, विस्तार का यह क्रम उसने वृद्धावस्था तक रखा। इसीलिये प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार गिबन (Gibbon) उसकी गणना विश्व के महान् सम्राटों में करता है। एशिया के मुस्लिम शासकों में तो वह महानतम था ही। उसके साम्राज्य की तुलना सिकन्दर और नेपोलियन के महान् विस्तृत साम्राज्यों से की जाती है। उसका साम्राज्य बगदाद के खलीफा के साम्राज्य से भी बड़ा था।

२. **वीर योद्धा और महान् सेनापति**—महमूद साहसी वीर योद्धा और कुशल महान सेनापति था।

(i) छब्बीस वर्षों तक वह निरन्तर युद्ध क्षेत्र में रहा। वह लगभग प्रतिवर्ष ठंड की ऋतु में भारत पर आक्रमण करता और ग्रीष्मकाल में मध्यएशिया में नये प्रदेश जीतने और जीते हुए प्रदेशों की सुरक्षा के लिये चला जाता था। भारत के अनवरत आक्रमणों और युद्धों में वह कभी पराजित नहीं हुआ। मार्ग के समस्त संकटों, व्यवधानों और अवरोधों को पार करके भारत में धावे कर विजय लेना एक साहसी, वीर, उत्साही व्यक्ति के लिये ही सम्भव था।

इसी प्रकार भारत और मध्यएशिया में एक साथ विजय अभियान जारी रखना और निरन्तर विजय प्राप्त करना उसके अभूतपूर्व सैन्य-संगठन, सैन्य-संचालन, और रण-कौशल का प्रमाण है।

कतिपय विद्वानों का मत है कि उसने भारत में ही अपने सेनानायकत्व का परिचय दिया, क्योंकि यहाँ का राजनैतिक और सैनिक संगठन दूषित था। पर यह धारणा भ्रममूलक है। उसे भारत और मध्यएशिया दोनों में एक समान सफलता प्राप्त हुई। भारत में अपने विजयपूर्ण सफल आक्रमणों के अतिरिक्त उसे शत्रु तुर्कों के

विरुद्ध दो प्रख्यात आक्रमणों और धावों का श्रेय है जिनमें उसने इलकखां एवं सेलजुक तुर्कों की सेनाओं को परास्त कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद बाबर और नेपोलियन के समान जन्मजात सैनिक था। युद्ध उसके लिये एक व्यसन था। उसका पूर्ण जीवन युद्धों में ही व्यतीत हुआ।

(ii) उसने अपनी सेना में अरब, तुर्क, अफगान, हिन्दू आदि विविध धर्म और नस्ल तथा कबीलों के लोग रखे थे, परन्तु अपने सफल सेनापतित्व के कारण उसने इन विरोधी तत्वों का भी सेना में सुन्दर समन्वय किया और उन्हें एकता के सूत्र में बांध दिया।

(iii) सेनानायक के नाते उसमें अदम्य उत्साह और साहस था, उसमें अपार मानसिक और शारीरिक शक्ति थी। युद्ध की कठिनाइयों को वह अदम्य जोश, निर्भीकता, और वीरता से सामना करता था और प्रतिकूल परिस्थितियों पर भी वह अपने चरित्र बल से विजय पा जाता था। आनन्दपाल के विरुद्ध, बाजीराय से विरुद्ध व कालिंजर के गंड नरेश के विरुद्ध युद्ध में और राजस्थान की मरुभूमि को पार कर सोमनाथ पर आक्रमण करने हेतु जाते समय और वहाँ से लौटते समय महमूद को ऐसी कठिन प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा कि उसकी पराजय की आशंका बढ़ गयी। परन्तु उसने साहस और धीरज से, ईश-प्रार्थना से, अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति से, उच्चकोटि की निर्भीकता से सैनिकों का उत्साह बढ़ाया, उनका सफलतापूर्वक संचालन किया और उसकी विजय का यही भेद था।

(iv) वह उपलब्ध सामरिक साधनों का शत्रु के विरुद्ध कुशलता से उपयोग करता था और सैनिकों के गुणों और अपने अनुयायियों की प्रतिभाओं को भलीभांति समझता था। उनमें वह आत्मविश्वास और दृढ़ता उत्पन्न करता था। मानवी चरित्र का वह अच्छा पारखी था और प्रत्येक से अपनी इच्छा और उसकी योग्यता व प्रतिभा के अनुसार कार्य करवाने में सफल होता था। इसीलिये वह अपनी अभियान-योजनाओं में विजय प्राप्त कर सका।

(v) उसने अपनी सेना में दक्ष गुप्तचर रखे थे जो उसे भौगोलिक स्थिति और शत्रु की दुर्बलताओं से पूर्णरूप से अवगत करते थे और महमूद अपनी विचार शक्ति और सेनानायक के गुणों से इस ज्ञान का पूरा-पूरा लाभ उठाता था।

(vi) भयंकर सामरिक स्थिति और संकटकाल में वह अपनी सेना को भिन्न-भिन्न वर्गों और भागों में विभक्त कर देता और बारी-बारी से उनसे शत्रु पर आक्रमण करवाता था। इसके अतिरिक्त युद्ध में वह चुने हुए अनुभवी सैनिकों की संरक्षित (Reserved) ताजी सेना भी रखता था जो युद्ध के अन्तिम दौर में शत्रु पर प्रहार कर उसका संहार करने लगती थी। इससे शत्रु की क्लांत सेना के पैर उखड़ जाते और उसे विजय मिलती थी।

३. न्यायप्रिय सम्राट—महमूद बड़ा न्यायप्रिय नरेश था। वह न्याय करने में बड़ा कठोर और निर्भय था और प्रजा को न्याय देने में सदा तत्पर रहता था। इसीलिये वह अपने राज्य में अपनी निष्पक्ष न्याय-प्रियता के लिए प्रसिद्ध था। फरिश्ता ने उसकी न्याय-प्रियता की प्रशंसा करते हुए यहां तक लिखा है कि "महमूद के राज्य

में भेड़ और भेड़िये एक ही घाट पर पानी पीते थे।" उसकी न्याय-प्रियता और कठोर दण्ड के विषय में अनेक किवदंत्तियाँ प्रचलित रहीं। कहा जाता है कि एक समय एक व्यक्ति ने महमूद से उसके भतीजे के विरुद्ध यह शिकायत की कि वह उसकी पत्नी के साथ अनुचित सम्बन्ध रखता है। महमूद उस समय उस व्यक्ति के घर गया, जब उसका दुष्ट भतीजा उसकी पत्नी के साथ था। महमूद ने इस आशंका से कि कहीं करुणा, स्नेह और ममता उसके न्यायोचित दण्ड में बाधा न डाले, प्रकाश बुझा दिया और अपने हाथ से दुष्ट भतीजे का मस्तक धड़ से अलग कर उसे शिकायत करने वाले पति के चरणों पर डाल दिया। एक अन्य किवंदत्ती के अनुसार महमूद के पुत्र राजकुमार मसूद पर किसी व्यापारी ने महमूद के सामने उसका ऋण न चुकाने का दावा किया। इस पर महमूद ने अपने पुत्र को आदेश दिया कि वह राजसभा में उपस्थित होकर व्यापारी का ऋण अदा कर दे; और ऐसा करने पर ही उसे मुक्ति दी गयी। पर महमूद की यह न्याय-प्रियता और निष्पक्ष दण्ड नीति उसके राज्य की सीमाओं में ही थी। निष्पक्ष मूल्यांकन की कसौटी पर महमूद की न्याय की लालिमा निस्तेज हो जाती है। उसका न्याय-प्रेम हिन्दुओं के लिए मौन हो जाता है, दब जाता है। महमूद की दृष्टि में हिन्दू विधर्मी थे, काफिर थे, वह उनसे घृणा करता था, विद्वेष रखता था। ऐसे विधर्मियों के लिए न्याय कैसा? कुरान के तत्कालीन टीकाकारों के मत में हिन्दुओं के लिए मौत या इस्लाम को ग्रहण करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नहीं था। फिर, जिन हिन्दुओं को मौत के घाट उतारना है, उनके लिए निष्पक्ष न्याय की क्या आवश्यकता है। अपने ही राज्य के विधर्मियों के प्रति ऐसी भावना रखने वाला सम्राट कहाँ तक न्याय-प्रिय कहा जा सकता है।

कुछ विद्वानों ने कहा है कि उसके निष्पक्ष न्याय और कठोर दण्ड-विधान के कारण उसके साम्राज्य में पूर्णतया शांति थी और कहीं कोई विद्रोह और आन्दोलन नहीं हुए। यह धारणा भ्रममूलक है। उसके साम्राज्य की शांति उसके आतंक, कठोर नृशंस शासन और भय के कारण थी।

४. साहित्य और विद्या का उदार संरक्षक—महमूद अकबर और शिवाजी की भाँति अधिक साक्षर न होते हुए भी बहुश्रुत था और इससे उसने अपने ज्ञान का अधिक संवर्धन कर लिया था। वह विद्वानों, लेखकों और कवियों का उदार आश्रय-दाता था। विद्वानों के सत्संग, वक्तृत्व और शास्त्रार्थ तथा कवियों की रचनाओं को सुनने में उसे अत्याधिक आनन्द आता था। कविता सुनने का भी उसे इतना शौक था कि युद्ध-काल में भी वह इसके लिए समय निकाल लेता था। वह विद्वानों और कवियों का बड़ा आदर सम्मान करता था। उसकी उदारता, विद्यानुराग और राज्याश्रय के कारण मध्य एशिया के अनेक साहित्यकारों, लेखकों, विद्वानों, कवियों आदि ने उसकी राज-सभा को अलंकृत किया था। दूर-दूर के स्थानों से उसने विद्वानों को अपनी राजसभा में आमन्त्रित किया था। महमूद अपनी राजसभा को देदिप्यमान बनाने हेतु स्वयं अनेक कलाकारों और शिल्पियों को अपने साथ विदेशों से लाया था। उसने आक्सस नदी के तट पर स्थित नगरों से, केस्पियन समुद्रतट के नगरों से, ईरान और खुरासान से, पूर्वी साहित्यिक नक्षत्रों को अपनी राजसभा में आमन्त्रित किया और उन्हें अपने प्रताप रूपी

सूर्य के चारों ओर उसी प्रकार भ्रमण करने के लिए बाध्य किया, जैसे सूर्य के तेज मंडल में अन्य नक्षत्र। पूर्वी संसार के प्रसिद्ध विद्वान उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न अलवरुनी जो गणितज्ञ, दार्शनिक, ज्योतिषी, तथा संस्कृत और खगोल विद्या का पंडित था, उसकी राजसभा का जगमगाता नक्षत्र था। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ उतवी, दर्शन-शास्त्र का विद्वान फराबी, "तारीख-ए-सुबुक्तगीन" ग्रंथ का लेखक बैहाकी, आदि उसके दरबार के बहुमूल्य रत्न थे। अन्सूरी, फारूखी, उजारी, असादीतुसी और असजुदी उसकी राजसभा के कवि थे। साहित्यकारों, विद्वानों और कवियों के साथ महमूद का व्यवहार और नीति इतनी अच्छी और प्रशंसनीय थी कि उसकी राजधानी गजनी में इतने विद्वान आ गये थे, जितने एशिया का कोई भी सम्राट कभी भी अपनी छत्रछाया में एकत्रित नहीं कर सका। इन सब कवियों और विद्वानों में सबसे अधिक प्रसिद्ध "शाहनामा" ग्रंथ का रचयिता फिरदोसी कवि था। महमूद की प्रशंसा में लिखे "शाहनामा" ने महमूद को इतिहास में अमर कर दिया। महमूद ने फिरदौसी को वचन दिया था कि वह, शाहनामा की रचना पूर्ण कर लेने पर, फिरदौसी को साठ सहस्र स्वर्ण मुद्राएं (दिरहम) पुरस्कार स्वरूप देगा। परन्तु इस उत्कृष्ठ ग्रंथ के पूर्ण हो जाने पर धन-लोलुप, लालची महमूद ने फिरदोसी को केवल साठ सहस्र चांदी की मुद्राएं दीं। इससे फिरदौसी का हृदय टूट गया और वह अपने गांव लौट आया। लौटते समय फिरदौसी ने घृणा और क्रोध के आवेश में महमूद की निन्दा में अनेक पद लिखे। जब महमूद को इसका पता लगा तो उसे बड़ा क्षोभ हुआ और उसने फिरदौसी से क्षमा-याचना सहित साठ सहस्र स्वर्ण मुद्राएं तथा राजसी वेश-भूषा फिरदौसी के निवास स्थान पर भेजी। पर इस समय फिरदौसी का देहावसान हो चुका था और उसके मृत-शरीर का जनाजा निकल रहा था। ये मुद्राएं फिरदोसी की कन्या ने ले लीं और इस धन से उसने फिरदोसी के गांव के लिये पीने के पानी की एक नहर बनवाई। यह महमूद की उदारता और विद्यानुराग था कि उसने अपने विषय में निन्दात्मक कविता लिखने वाले को दण्ड देने की अपेक्षा, पुरस्कार भेजा और भूल के लिये क्षमा-याचना की।

विद्या और ज्ञान के प्रसार के लिए महमूद ने अपनी राजधानी गजनी में एक महाविद्यालय और विशाल पुस्तकालय तथा अजायबघर निर्मित किये। गजनी के इस महाविद्यालय का प्रमुख अंसारी नियुक्त किया गया। इसे अनेक विद्यार्थी व ४०० विद्वान और कवि अपना गुरू मानते थे। पुस्तकालय में असंख्य ग्रंथ संग्रहित किये गये और अध्यापन के लिए कई प्राध्यापक नियुक्त किये गये।

५. कला का आश्रयदाता—महमूदने भारत में अनेक भव्य मन्दिरों, सुन्दर कलापूर्ण प्रतिमाओं और विशाल भवनों को नष्ट कर वास्तुकला और मूर्तिकला के प्रसिद्ध स्मारक विध्वस कर दिये। परन्तु उसने गजनी में कलाकारों और शिल्पियों को प्रश्रय प्रदान कर अपने देश और राज्य की कलात्मक प्रगति को बहुत आगे बढ़ाया था। भारत से प्राप्त अतुल धन राशि का उपयोग उसने मसजिदों, विद्यालयों, समाधियों तथा अन्य स्मारक के निर्माण में किया। उसने गजनी में अनेक पुल, एक विश्वविद्यालय, एक पुस्तकालय तथा अजायबघर निर्मित किये और उनको उन समस्त सुन्दर तथा बहुमूल्य

वस्तुओं से सुसज्जित किया जिनको वह अपने विभिन्न आक्रमणों के समय लूट में और विजय की स्मृति में भारत से लाया था। उसने गजनी में भव्य कलात्मक भवनों का निर्माण किया और वहाँ एक ऐसी सुन्दर कलापूर्ण मसजिद बनवाई जो अपने लालित्य एवं कला के कारण "स्वर्ग की वधू" (Celestial Bride) के नाम से प्रख्यात रही है। इस मसजिद को "पूर्व का आश्चर्य" भी कहा गया है। इन निर्माण कार्यों से महमूद ने गजनी को सुन्दर उच्चकोटि का नगर बना दिया और उसके भगीरथ परिश्रम से गजनी की गणना एशिया के सर्वश्रेष्ठ नगरों में होने लगी थी।

६. बाह्य शारीरिक सुडौलता और व्यक्तित्व की श्रेष्ठता—महमूद का शरीर बलिष्ठ, सुडौल और गठीला था, पर उसके शरीर का रंग सुन्दर नहीं था। महमूद कुरूप था, पर उसकी शारीरिक गठन अच्छी थी। ईश्वर ने उसे बाह्य शारीरिक सौन्दर्य से वंचित रखा था और वह स्वयं इस कमी को अनुभव करता था। एक समय स्वयं उसने अपने मंत्री से कहा था कि, "सम्राट का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि देखने वाले उसकी ओर आकर्षित हो जाँय, परन्तु प्रकृति मेरे साथ इतनी अनुदार रही है कि मेरे रूप में कोई आकर्षण नहीं है।"

कुरूप होने पर भी उसमें अपार शक्ति, अदम्य उत्साह और खूब साहस था। उसमें उच्चकोटि की विचार तथा मनन करने की शक्ति थी। वह दूरदर्शी और व्यवहारिक व्यक्ति था। किसी भी आक्रमण या कार्य करने के पूर्व वह उसकी पूर्ण रूपरेखा बना लेता था और उसे पूर्ण करने की पूरी व्यवस्था कर लेता था। वह कभी अंधेरे में पैर नहीं रखता था। वह अपने सैनिक अभियानों के पूर्व युद्ध की सामग्री की पूरी व्यवस्था कर लेता था और लौटने तथा रसद प्राप्त करने के लिये अपनी राजधानी का मार्ग सदा खुला, सुरक्षित और अपने अधिकार में रखता था। वह केवल सम्भव कार्यों के करने में ही अपनी शक्ति का प्रयोग करता था। वह अपने संकल्प का दृढ था और उसकी पूर्ति करने के लिये वह सब कुछ करने को तत्पर रहता था।

महमूद में आक्रमण की श्रेष्ठता थी। उसने अनेक सैनिक अभियान और आक्रमण किये, नगरों, गाँवों और मंदिरों को लूटा। उसने अनेकों को मौत के घाट उतारा तथा कई बालकों, स्त्रियों व पुरुषों को गुलाम बनाया। परन्तु उसने किसी स्त्री का सतीत्व नष्ट नहीं किया। उसे व्यभिचार और दुराचार से घोर घृणा थी। उसके आक्रमणों के बीच उसके व्यभिचार का एक भी उदाहरण नहीं है।

श्रेष्ठ आचरण के साथ-साथ उसमें उच्चकोटि की धार्मिकता भी थी। वह पूर्णरूपेण धर्मनिष्ठ था। इस्लाम के प्रति उसके हृदय में बड़ा आदर, श्रद्धा व निष्ठा थी। वह नियमित रूप से प्रतिदिन पाँच बार नमाज पढ़ता था। युद्ध करने के पूर्व वह सदा ईश्वर की प्रार्थना करता था और भीषण संकटकाल में वह ईश्वर के मंगलमय आशीश और सहायता की याचना करता था और सफलता प्राप्त होने पर ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करता था। वह ईश्वर और कुरान में दृढ़ विश्वास करता था। गम्भीर परिस्थितियों और भयानक आपत्तियों में वह कुरान से शकुन भी उठाया करता था।

अब तक महमूद के अच्छे गुणों का, उसके उज्वल पक्ष का विवेचन किया गया

है। अब उसकी दुर्बलताओं, कमियों और दोषों की, उसके अन्धकारपूर्ण पक्ष की समीक्षा की जायगी।

दुर्बल शासक—महमूद की प्रशासकीय कुशलता और सफल राजनीति पर इतिहासकारों में विभिन्न मत हैं। कोई उसे उदार सफल शासक, तथा सुव्यवस्थित शासन का निर्माता बतलाते हैं, तो अन्य उसे असफल प्रशासक। वे उसे कुशल और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ नहीं मानते।

डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद, महमूद को अच्छा शासक मानते हैं। उनके अनुसार उसमें रचनात्मक प्रतिभा का पूर्ण विकास हुआ था और वह नवीनतम योजनाओं को कार्यान्वित करने में सदा उद्यत रहता था। इसी मत के समर्थन करने वालों का कथन है कि उसका शासन बड़ा सुसंगठित और व्यवस्थित था। उसका साम्राज्य विभिन्न प्रांतों में विभक्त कर दिया गया था और योग्य प्रतिभावान राज्यपाल महमूद के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ शासन करते थे। राज्यपालों पर वह नियंत्रण रखता था और दोषी होने पर वह उन्हें अलग भी कर देता था। प्रांतों या प्रदेशों मे राजकीय आय-व्यय का पूरा लेखा-जोखा रखा जाता था। प्रशासन में वह अन्याय और अत्याचार का विरोधी था। प्रजा की सुख-समृद्धि का वह सदा ध्यान रखता था। वह राज्य में वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति के लिये सदा प्रयत्नशील रहता था। जनमार्गों और व्यापारिक मार्गों की वह सुरक्षा करता था और उन्हें आपत्ति से मुक्त रखता था। वह डाकुओं का नाश कर व्यापार की रक्षा करता था। ऐसा कहा जाता है कि वह प्रतिवर्ष लगभग एक सहस्र दीनार, न्याय-दान करने, प्रजा को सुखी और सन्तुष्ट करने तथा धार्मिक दान-पुण्य में व्यय करता था।

प्रशासन सम्बन्धी ये सब बातें, प्रजा-हित और लोक-कल्याण के ये सब कार्य बड़े अच्छे प्रतीत होते हैं। पर इन सब लम्बे कार्यों के पूर्ण करने के अवसर और समय महमूद को कैसे प्राप्त हुए होंगे। उसने बत्तीस वर्षों तक शासन किया और इन वर्षों में उसने अट्ठाइस वर्षों तक निरन्तर सैनिक अभियान, आक्रमण और युद्ध किये। उपरोक्त वर्णित अधिकांश कार्यों के विषय में सोचने, उनकी योजना बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने के लिये महमूद के पास समय ही नहीं था। उसे इन बातों का न तो कोई विशेष प्रशिक्षण मिला था और न उसमें इन कार्यों के सम्पादन हेतु विशिष्ट प्रतिभा ही थी।

महमूद के भारतीय अभियान और कार्य भी जिनके लिये महमूद ने अपनी अन्य योजनाएँ त्याग दी थीं किसी भी प्रकार के ठोस संगठन, या व्यवस्था की भावना का परिचय नहीं देतीं। उसके ये कार्य परस्पर असम्बद्ध और अनिर्णायक थे। हमें आज तक यह नहीं मालूम है कि महमूद ने किन्हीं नियमों, विधि-विधानों को बनाया हो, किन्हीं संस्थाओं और शासन प्रणालियों की नींव रखी हो, साम्राज्य के विभिन्न भागों, प्रांतों या जिलों के समुचित पारस्परिक सम्बन्धों के लिये कोई निर्दिष्ट योजना बनाई हो। उसने प्रजा को सताने और आतंकित करने वाले डाकुओं के दमन के लिये कोई प्रयत्न नहीं किये, पुलिस की कोई समुचित व्यवस्था नहीं की। इसके विपरीत उसने स्थानीय स्वतन्त्रता का दमन किया और विभिन्न जातियों, नस्लों,

धर्मों और संस्कृतियों के लोगों को विजय के बाद बलात् एक साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

सत्य तो यह है कि महमूद एक महान् विजेता और साम्राज्य निर्माता था, प्रशासक नहीं। शासन-प्रबन्ध करने की क्षमता उसमें नहीं थी। वह अपनी सारी आयु भर नवीन प्रदेशों को जीतने में ही संलग्न रहा। उसने अपने विजित प्रदेशों की शासन-व्यवस्था पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। वह अपने विजित राज्यों को व्यवस्थित करने में असमर्थ था, फिर भी वह नवीन देशों को जीतने के लिये आगे बढ़ता ही जा रहा था। वास्तव में वह रचनात्मक, तथा कुशल दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और निपुण शासक नहीं था। अपने विशाल साम्राज्य में उसने केवल ऊपरी व्यवस्था, तथा सुरक्षा का प्रयत्न किया। संगठन, एकता और प्रशासन स्थापित करना उसकी योजना में सम्मिलित नहीं था। इसीलिये उसकी मृत्यु के उपरान्त ही उसका विशाल साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।[1]

महमूद की धन-लिप्सा और धन-लोलुपता—महमूद का सबसे बड़ा अवगुण उसकी धन-लोलुपता थी। उसमें धन के लिये अत्यधिक लोभ था। अनेक विद्वानों ने महमूद पर धन-लिप्सा का आरोप लगाया है। "रोजत-उस-सफा" तथा "तबकाते अकबरी" ग्रंथों से भी यह स्पष्ट होता है कि महमूद अत्यधिक धन-लोलुप था। धन की प्राप्ति के लिये वह क्रूर से क्रूर साधनों का उपयोग कर सकता था और नृशंस तथा भयंकर आतंकवादी हो सकता था। प्रोफेसर ब्राउन ने महमूद के अन्य गुणों की प्रशंसा करते हुए इब्नुलअथिर का मत उद्धृत करते हुए उसकी धन-लिप्सा पर प्रकाश डाला है और लिखा है कि, "वह किसी उपाय से धन प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता था।" धन-परायणता और धन-लिप्सा तथा धन प्राप्ति के लिये उचित-अनुचित सभी साधनों का अनुकरण करना, महमूद के गुण सम्पन्न व्यक्तित्व पर गहरी कालिमा है। महमूद के धन के लोभ में हाव्हेल (Havell) ने लिखा है कि महमूद बगदाद पर भी आक्रमण कर देता यदि खलीफा से उसे उतने अधिक धन की प्राप्ति होती जितनी उसे सोमनाथ मंदिर से हुई थी। उसने खलीफा को एक बार यह धमकी भी दी थी कि यदि वह उसे समरकन्द नहीं देगा तो वह उसके प्राण हर लेगा। इस प्रकार साम्राज्य विस्तार और धन-प्राप्ति में उसने अपने धर्म गुरू खलीफा के मान-अपमान और गौरव-प्रतिष्ठा की भी चिंता नहीं की : महाकवि फिरदौसी के साथ किया गया उसका

---

* "A great soldier, a man of infinite courage and indefatigoble energy of mind and body, Mahmud was no constructive or far seeing statesman. We hear of no laws or institutions or methods of Govt. that sprang from his initiative. Out ward order and security was all he attempted to attain in his unwieldy empire, to organise and consolidate was not in his scheme. He left his dominions so ill-knitted together that they began to fall as soon as he was no longer alive to guard them by his vigilant activity."

—Lanepool.

दुर्व्यवहार उसकी धन लोलुपता का ज्वलंत उदाहरण है। फरिश्ता का यह कथन कि मृत्यु के समय उसने अपने समस्त धन को एकत्र किया और वह घंटों तक इसी बात पर रुदन करता रहा कि वह उस धन का उपभोग नहीं कर सकता, उसके लोभी स्वभाव तथा अधिक धन-लिप्सा की पुष्टि करता है।

कतिपय इतिहासकारों ने महमूद की इस धन-लिप्सा को भी उसके गुण में परिवर्तित कर उसकी प्रशंसा की है। उनके मतानुसार महमूद ने भारत से अपार धन सम्पत्ति लूट कर उसका सदुपयोग किया।

डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि "यदि वह धन पर प्राण खोता था तो मुक्त हस्त से व्यय भी करता था। उसने गजनी में एक विद्यापीठ, एक पुस्तकालय तथा विजित प्रदेशों की विचित्र वस्तुओं के एक संग्रहालय की स्थापना कर विद्या-प्रसार में बहुत योग दिया। उसके उदार प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप ही गजनी में उन सुन्दर भवनों का निर्माण सम्पन्न हुआ जिनसे गजनी पूर्व के सुन्दरता के नगरों में स्थान प्राप्त कर सका।" महमूद की धन-लिप्सा के कलंक को धोने का यह प्रयास अनुचित और अतिरंजित है। एक भयंकर धन लोलुप डाकू और लुटेरा भी लाखों रुपये लूट कर अनेकानेक व्यक्तियों को कत्ल कर, सहस्त्रों घर बरबाद कर, लूटे हुए धन से बड़ा विश्वविद्यालय स्थापित करदे तो वह डाकू प्रशंसनीय और विद्या का संरक्षक नहीं हो सकता। एक व्यक्ति अन्य देशों में आतंक और लूटमार से धन एकत्र करके स्वदेश में मुक्त हस्त से दान देता है, तो वह पुण्य का भागी नहीं होगा, वह डाकू और लुटेरा अधिक होगा, और दानी कम। इससे स्पष्ट है कि महमूद की धन लोलुपता के दोष से विमुख नहीं हो सकते। महमूद में धन की पिपासा जन्मजात प्रवृत्ति थी, जिसे वह अपने जीवन में ही नहीं अपितु मृत्यु के समय भी शांत नहीं कर सका। भारतीय नगरों, मंदिरों और भवनों की अपार धन सम्पत्ति और भंडार लूटने पर भी उसकी धन पिपासा शांत नहीं हुई, अपितु उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी और इस प्रकार धन लूटने और एकत्र करने में उसने धर्मान्धता, प्रदर्शित की निरकुंशता का व्यवहार और अमानवीय अत्याचार किये।

क्या महमूद धर्मांध था और इस्लाम धर्म का प्रचारक था ? क्या उसने इस्लाम धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए भारत पर आक्रमण किये ?

उपरोक्त प्रश्न बड़े विवाद ग्रस्त हैं और इतिहासकारों में इस विषय पर मतभेद हैं। विभिन्न धारणाओं और मतों के विश्लेषण से इस प्रश्न पर अगले पृष्ठों में प्रकाश डाला जायेगा।

महमूद व्यक्तिगत रूप से सच्चा और कट्टर मुसलमान था, इस्लाम का अनुयायी था और इस्लाम के सुन्नी मत का समर्थक था। सुन्नी धर्म को वह स्वयं श्रद्धा से मानता था और अन्य व्यक्तियों को इस धर्म पर चलाना अपना कर्तव्य समझता था। वह इस्लाम के सिद्धान्तों का पालन करता था और प्रतिदिन पाँच बार नमाज पढ़ता था। इस प्रकार का मुसलमान अवसर मिलने पर इस्लाम का प्रसार करेगा। भारत में सिंध और मुलतान के तत्कालीन मुसलमान शासक शियामत के अनुयायी थे। महमूद के लिये

वे विधर्मी थे और इसलिये उन पर उसने आक्रमण किया। यदि विधर्मियों और काफिरों को बलात् मुसलमान बनाने और उनके मंदिरों, देवालयों तथा उपासनागृहों को क्रूरता से विध्वंस करना इस्लाम के लिये प्रतिष्ठामूलक हो और इससे इस्लाम का प्रचार और प्रसार होता हो, तो महमूद ने निस्संदेह इस्लाम की प्रतिष्ठा बढ़ाई है और उसके अनुयायियों की वृद्धि कर उसका प्रसार किया है। कुछ इतिहासकार इस बात को बिना किसी संदेह या संकोच के मानते हैं कि महमूद इस्लाम धर्म का प्रचारक था। स्वयं महमूद के दरबारी और तत्कालीन इतिहासज्ञ उतबी ने लिखा है कि महमूद ने पहिले सिजिस्तान पर आक्रमण करने का संकल्प किया था, परन्तु बाद में उसने हिन्दुस्तान के विरुद्ध जिहाद (धर्मयुद्ध) करना ही अधिक अच्छा समझा। महमूद ने अपने मंत्रियों की एक बैठक आमन्त्रित की और उनसे कहा कि वे उसे आशीर्वाद दें जिससे कि वह धर्म का झंडा ऊंचा करने, सदाचार का क्षेत्र विस्तृत करने, सत्य को प्रकाशित करने और न्याय की जड़ों को दृढ़ करने की अपनी योजना में सबलता प्राप्त कर सकें। फलतः लगभग बीस वर्षों तक महमूद ने निरन्तर भारत पर आक्रमण किये, यहां के हिन्दू नरेशों को पराजित किया। नृशंसता से नगरों और मन्दिरों को लूटा, उन्हें तोड़ा-फोड़ा, मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट किया और अनेकानेक पराजित और आतंक से भयभीत हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश किया। जयपाल के पौत्र सुखपाल को भी जो महमूद के पास धरोहर के स्वरूप कुछ समय के लिए रखा गया था, महमूद ने बलात् मुसलमान बना लिया और उसका नाम नौशाशाह रख दिया। तिलक नामक एक सुशिक्षित गुणसम्पन्न हिन्दू व्यक्ति को भी मुसलमान बना लिया गया था और उसे ऊंचे पदों पर नियुक्त कर पुरस्कृत किया गया था। महमूद द्वारा इस प्रकार किये गये तोड़-फोड़, मंदिरों और पवित्र स्थानों तथा संस्कृति के निर्लज्ज विनाश की इस्लाम में कोई स्वीकृति नहीं है। महमूद ने धार्मिक जोश से प्रेरित होकर ये सब कार्य किये। उसने इस्लाम धर्म प्रचार के नारे से अपने साथियों, सैनिकों और सेनापतियों को जोश दिलाया और इससे वे इस्लाम के प्रचार के लिये हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध में प्राण न्यौछावर कर देते थे। इस्लाम के प्रसार की यह अतुलनीय धार्मिक प्रेरणा थी।

इस्लाम जगत के राजनैतिक सम्राट और धर्मगुरू खलीफा ने भी महमूद को इस्लाम के धर्म प्रचारक होने के कारण ही बड़ा सम्मान किया, उसे ऊंची पदवी और विरुद से अलंकृत किया। महमूद के समकालीन प्रसिद्ध विद्वान अलबरुनी ने भी यही मत व्यक्त किया है कि महमूद ने इस्लाम के प्रसार के लिए ही भारत पर आक्रमण किये थे। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद भी लिखते हैं कि महमूद अपने समय के मुसलमानों के लिये गाजी था जो काफिर प्रदेशों में अधार्मिकता मिटाने में संलग्न रहता था। महमूद के बाद की आगे की पीढ़ियों के अनेक मुसलमान शासकों, सेनापतियों और आक्रमणकारियों ने भी महमूद को इस्लाम धर्म का प्रसारक समझा और उसके कार्यों और नीति का अनुकरण किया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी पुस्तक "विश्व इतिहास की झलक" में लिखा है कि, "महमूद इस्लाम धर्म का एक बड़ा नेता समझा जाता था जो हिन्दुस्तान में इस्लाम धर्म प्रचार के लिये आया था।" इस प्रकार उपरोक्त मतों से स्पष्ट है कि महमूद एक धर्मान्ध व्यक्ति था जिसने विधर्मियों के पवित्र स्थानों को

तोड़ा-फोड़ा, लूटा और इस्लाम के प्रसार के लिये अनेक हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया।

उपरोक्त मतों के विरुद्ध कतिपय अन्य इतिहासकारों का मत है कि महमूद न तो धर्मान्ध था और न इस्लाम धर्म का कट्टर प्रचारक ही था और न उसने इन उद्देश्यों से भारत पर आक्रमण किये। महमूद का युग धर्मान्धता और कट्टर धार्मिकता का युग था। इस युग में महमूद ने धर्मान्धता का प्रदर्शन इसलिए किया कि वह अपनी सेना का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर सके। इस्लाम धर्म का प्रचार तो उसके साथियों और आक्रमणकारी सैनिकों को प्रेरणा दिलाने का साधन मात्र था, बहाना था, उसका मूल उद्देश्य तो भारत की अपार धन-संपत्ति लूटना और उसे अपनी राजधानी में संग्रहित करना था। वह धार्मिक उत्तेजना के कारण नहीं अपितु धनपिपासा के लिये मंदिरों और पवित्र स्थानों को विध्वंस करता था। हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ने फोड़ने और "बुतशिकन" की भावना और कार्यों से महमूद अनेक मुसलमान युवकों और योद्धाओं का समर्थन प्राप्त कर लेता था। उसने अपने लूट-खसोट और क्रूर नृशंस कार्यों के लिए धार्मिक जिहाद के आवरण का सहारा लिया।

ये विचार और तर्क महमूद की धार्मिक कट्टरता और इस्लाम के प्रचार के कार्यों पर पर्दा डालने का प्रयास है। यह निर्विवाद है कि महमूद ने हिन्दुओं के पवित्रतम स्थानों को विध्वंस किया और अमानुषिक अत्याचार कर अनेकानेक हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया। हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर घोर आघात किया। ये सब कार्य किसी निर्दिष्ट राजनैतिक योजनाओं का अंग नहीं थे। भले ही मुसलमान विद्वानों की दृष्टि में महमूद के ये नृशंस धर्मान्धता और धर्म प्रचार के कार्य, उचित ठहरते हों, पर ये सब महमूद के मस्तक पर गहरे कलंक हैं जिसे कभी धोया नहीं जा सकता। कोई आश्चर्य नहीं यदि हिन्दुओं की दृष्टि में वह शैतान का अवतार माना गया हो और इतिहास में वह मूर्तिभंजक के नाम से अमर हो गया हो।

क्या महमूद ने साम्राज्य विस्तार के लिये भारत पर आक्रमण किये? कुछ विद्वानों का मत है कि महमूद साम्राज्यवादी नरेश था। अपने राज्य का विस्तार करना उसकी नीति थी। इसी उद्देश्य से उसने मध्य एशिया में अनेकों आक्रमण किये, युद्ध किये, विजय प्राप्त की और राज्य की सीमाएँ बढ़ाई एवं यही क्रम उसने भारत में भी रखा। वह लूट-पाट कर धन संग्रह कर शान्त बैठने वाला व्यक्ति नहीं था। मध्य-एशिया और भारत में साम्राज्य विस्तार के लिये उसकी योजना थी। राज्यारोहण के प्रारम्भ से ही महमूद साम्राज्य विस्तार में संलग्न था। अपनी प्रतिभा, कूटनीतिज्ञता, राजनीतिज्ञता और सैनिक बल से उसने अपने साम्राज्य को धीरे-धीरे मध्य एशिया और भारत में गजनी से आगे बढ़ाया। वह नहीं चाहता था कि भारत के सीमान्त क्षेत्र, पंजाब, और उत्तरी भारत के नरेशों को एक साथ घमासान युद्ध में परास्त करके वहाँ अपना शासन स्थापित कर दे। वह ऐसे विशाल साम्राज्य की सुरक्षा और प्रशासन में गहराई से लीन नहीं होना चाहता था। उसने धीरे-धीरे अपना साम्राज्य विस्तार किया।

महमूद ने भारत के सीमान्त क्षेत्र के प्रहरी जयपाल, आनन्दपाल और त्रिलोचनपाल की दृढ़ सैनिक शक्ति को अलग-अलग आक्रमणों और युद्धों में नष्ट किया और

एक एक करके उनके प्रान्तों को हस्तगत किया। जब इन शाही नरेशों की शक्ति और राज्य पूर्ण रूप से विध्वंस हो गये, तब उसने इनके समस्त राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसने भारत के प्रवेशद्वार खैबर दर्रा, पेशावर को और बाद में पंजाब को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया और यहां उसने अपने अधिकारी, प्रशासक और राज्यपाल नियुक्त किये। पंजाब को आधार बनाकर वह आगे सीमा विस्तार करना चाहता था। इस प्रकार के साम्राज्य विस्तार के लिये यह आवश्यक था कि पहिले शत्रुओं की आर्थिक दशा दुर्बल कर दी जांय, उनकी धन-संपत्ति नष्ट कर दी जाय, लूट ली जाय और छीन ली जाय, नगरों और गांवों को विध्वंस कर उजाड़ दिया जाय जिससे शत्रु की आय के स्रोत नष्ट हो जाय। इस प्रकार शत्रु के प्रदेश को आर्थिक दृष्टि से पूर्णरूपेण दुर्बल और क्षीण बना देना और फिर प्रमुख शक्तिशाली शत्रु नरेशों पर सहसा आक्रमण कर उन्हें परास्त कर देना। इस तरह लूट-खसोट, विध्वस, आक्रमण तथा युद्ध करना और उसके बाद निर्दोष जनता पर अमानुषिक अत्याचार करना, क्रूरता और नृशंसता के ऐसे कार्य करना जिससे जनसाधारण आतंकित हो जाय तथा वह विद्रोह न कर सके और फिर विजित प्रदेशों पर प्रत्यक्ष शासन स्थापित करना, उसकी निर्दिष्ट विस्तारवादी नीति और योजना थी। इस प्रकार एक सफल कूटनीतिज्ञ, और साम्राज्यवादी नरेश की भांति महमूद भारत में धीरे-धीरे राज्य का विस्तार कर रहा था। उसके सिंध, मथुरा, पंजाब, कन्नौज, कालिंजर, सोमनाथ आदि के आक्रमण धन पिपासा की शांति के अतिरिक्त उसकी साम्राज्य-विस्तारवादी नीति के अंग भी थे। यदि वह कुछ वर्षो तक और जीवित रहता तो निश्चय ही वह भारत के इन सभी विजित प्रदेशों पर अपने प्रादेशिक प्रशासक नियुक्त कर राज्य करता। उसके उत्तराधिकारियों में इतनी शक्ति, क्षमता और दृढ़ता नहीं थी कि वे उसके इस विस्तृत साम्राज्य की विभिन्न कड़ियों को शृंखलाबद्ध कर संभाल कर उन पर शासन करते।

इतिहास में महमूद का स्थान—अन्य महान व्यक्तियों के समान महमूद में भी गुण-दोष थे। परन्तु फिर भी अपनी विजयों और प्रतिभा से वह एशिया के इतिहास में निर्भीक वीर, रण-निपुण सेनानी और महान विजेता था। उसकी महानता, उसके निरन्तर युद्धों और उनमें प्राप्त की गयी सफलताओं में नीहित है। साहित्य और कला का वह उदार आश्रयदाता था, निष्पक्ष और न्यायप्रिय शासक था। उसकी अद्वितीय बुद्धिमता, राजनीतिज्ञता और कूटनीतिज्ञता उसे अधिक महत्व प्रदान करती है। यद्यपि उसकी धन-लिप्सा की संतुष्टि के लिये उचित अनुचित समस्त साधनों का अनुकरण और बलात् इस्लाम का प्रचार उसके गुणसम्पन्न चरित्र पर कलंक की गहरी कालिमा है, फिर भी उसकी प्रतिभा, योग्यता, चरित्रबल और गुणों से वह विश्व के श्रेष्ठ सम्राटों में है, इस्लामी जगत का वह एक महान सुलतान है।

हिन्दूशाही राज्य

दशवीं सदी में भारत के उत्तरी पश्चिमी प्रदेश में और अफगानिस्तान में एक हिन्दू राजवंश का राज्य था। इसे शाही राजवंश कहते थे। अरबों और तुर्कों के

आक्रमणों के और इस्लाम के प्रसार के फलस्वरूप शाही राज्य प्रभावित हुआ। गजनी में तुर्क शासन स्थापित हो जाने से और उनसे कठोर संघर्ष में पराजय के परिणामस्वरूप शाही नरेशों को अफगानिस्तान त्यागना पड़ा। वे अपनी राजधानी काबुल छोड़कर भारत के उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र पर राज्य करने लगे और उन्होंने उदमान्डपुर (ओहिन्द) को अपनी राजधानी बनाया। शाही नरेशों ने काबुल को पुनः प्राप्त करने के प्रयत्न किये, परन्तु उनकी सीमित शक्ति गजनी के तुर्क सुलतान की विशाल और संगठित शक्ति व सेना के सामने व्यर्थ रही और उन्हें सीमान्त क्षेत्र में ही सीमित कर रहना पड़ा, परन्तु फिर भी वे गजनी की शक्ति को क्षीण करने के निरन्तर प्रयास करते रहे।

पिरीतगीन (सन् ९७२-९७७) और जयपाल—गजनी के तुर्क सुलतान अलप्तगीन के देहावसान के बाद पिरीतगीन सुलतान हुआ। इसके शासनकाल में गजनी में गृह-युद्ध छिड़ गया और दो दलों में शक्ति और राज्य के लिए संघर्ष छिड़ गया। इस समय गजनी के पड़ोस में शक्तिशाली शाही नरेश जयपाल राज्य करता था। गृहकलह में संलग्न एक दल ने जयपाल से सैनिक सहायता की याचना की। इस पर जयपाल ने अपने पुत्र आनन्दपाल के नेतृत्व में एक सेना उस दल की सहायतार्थ भेजी। इसी बीच अलप्तगीन के दामाद और शक्तिशाली सामन्त सुबक्तगीन ने इन दो दलों के विरुद्ध एक तृतीय दल स्थापित कर जयपाल की सेना से युद्ध कर उसे परास्त कर दिया। इस विजयी दल ने सुबक्तगीन को गजनी का सुलतान बना दिया और पिरीतगीन का अन्त कर दिया।

सुबक्तगीन और जयपाल—सुबक्तगीन ने गजनी का सुलतान बनने के बाद प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर सन् ९८६ में जयपाल के कतिपय सीमान्त दुर्गों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। सुबक्तगीन का यह प्रयास उसकी साम्राज्य-विस्तार की नीति का एक अंग भी था। सुबक्तगीन से अपने दुर्गों और सीमान्त क्षेत्र को मुक्त करने के लिए जयपाल ने सुबक्तगीन पर विशाल रणवाहिनी से आक्रमण किया। सुबक्तगीन और जयपाल दोनों की सशक्त सेनाएँ युद्ध के लिए एक दूसरे के सामने आकर डट गयी। कुछ दिनों तक दोनों ओर से आक्रमण और प्रत्याक्रमण तथा संघर्ष होते रहे, पर भीषण युद्ध नहीं हुआ। इसी बीच एक भयंकर हिमपात व झंझावात ने जयपाल की सेना को भारी क्षति पहुँचायी और उसे सुबक्तगीन से संधि करने के लिये विवश कर दिया। सुबक्तगीन के पुत्र महमूद ने जयपाल की विचलित सेना और क्षीण शक्ति को देखकर जयपाल के संधि प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। इस पर जयपाल ने महमूद की भर्त्सना करते हुए सुबक्तगीन को कड़ी धमकी से कहा कि उसकी सेना युद्ध में मरने मारने के लिये दृढ संकल्प है और सुबक्तगीन को रण-क्षेत्र में कूड़ा-कबाड़, मृत शरीर और अस्थियाँ ही उपलब्ध होंगी। इस पर सुबक्तगीन ने जयपाल से संधि कर ली। इस सन्धि में जयपाल की विवशता का लाभ उठा कर सुबक्तगीन ने जयपाल से एक लाख नगद दिरहम, युद्ध के हरजाने के रूप में ५० हाथी और कुछ प्रदेश देने का वचन ले लिया। जयपाल ने लाहौर लौट कर अपनी वस्तुस्थिति पर विचार किया और उसे इस अपमानजनक सन्धि पर क्षोभ हो गया। फलतः जब सुबक्तगीन के दो अधिकारी सन्धि के अनुसार दिरहम और हाथी

प्राप्त करने आये, तब जयपाल ने सन्धि की शर्तों को तोड़ कर इन दो अधिकारियों को बन्दी बना कर कारावास में डाल दिया।

जयपाल के इस दुर्व्यवहार से क्रोधित होकर सुबक्तगीन ने जयपाल के राज्य पर आक्रमण कर दिया, उसने प्रसिद्ध नगर लगमान को खूब लूटा और जयपाल के कुछ प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसका बदला लेने के लिये जयपाल ने सन् ९९१ में कन्नौज, अजमेर और कालिंजर के नरेशों से सैनिक सहायता प्राप्त कर गजनी पर आक्रमण कर दिया। सुबक्तगीन और जयपाल की सेनाओं मे भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में सुबक्तगीन ने बड़े रणकौशल से काम लिया। उसने अपनी सम्पूर्ण सेना को पांच भागों मे विभक्त कर दिया और उन्होंने बारी बारी से जयपाल की सेना पर आक्रमण किये और दिन के अन्तिम भाग में पांचों टुकड़ियों ने एकसाथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया वे हिन्दू सेना पर टूट पड़ी। इससे जयपाल की पराजय हुई और सुबक्तगीन ने जयपाल का सीमान्त क्षेत्र, खैबर का दर्रा और पेशावर अपने अधिकार में कर लिये। पेशावर में उसने सुरक्षा और व्यवस्था के लिये दस हजार सेना और अधिकारी नियुक्त किये।

महमूद गजनवी और जयपाल—सन् ९९७में सुबक्तगीन की मृत्यु हो जाने पर महमूद गजनी का सुलतान बना। सुबक्तगीन और जयपाल की पारस्परिक शत्रुता और प्रतिशोध की भावना को महमूद ने भी बनाये रखा और सन् १००१ में उसने जयपाल के सीमान्त प्रदेश पर आक्रमण करके उसे अपने राज्य में मिला लिया। इस पर जयपाल ने महमूद से युद्ध करने की तैयारियां प्रारम्भ की। इन्हें कुचलने के लिये महमूद ने सन् १००१ मे जयपाल पर दूसरा आक्रमण कर दिया। इस समय उसने अपनी सेना में योग्य, दक्ष, वीर योद्धा और अनुभवी सैनिक और निर्भीक अश्वारोही ही छाँट-छाँट कर रखे थे, जिनकी संख्या पंद्रह हजार थी। इसके विपरीत जयपाल की सेना मे बीस सहस्र अश्वारोही, तीस सहस्र पदाति और तीन सौ हाथी थे। २८ नवम्बर सन् १००१ को जयपाल और महमूद की सेनाओं में भयंकर घमासान युद्ध हुआ। जब जयपाल की सेना अपनी कुमुक की प्रतीक्षा कर रही थी, तभी महमूद ने उस पर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ जिसमें पंद्रह सहस्र हिन्दू सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए और जयपाल की पराजय हुई। जयपाल, उसके प्रमुख कर्मचारी तथा सम्बन्धी रणक्षेत्र में पकड़ कर बन्दी बना लिये गये और उन्हें कसकर रस्सियों से बांधकर महमूद के समक्ष उपस्थित किया गया। उतबी के अनुसार इनमें से कुछ के हाथ बलपूर्वक पीठ के पीछे बाध दिये गये थे। कुछ के गाल पकड़ कर घसीटा गया था, और कुछ को गर्दन में घूंसे लगाकर आगे ढकेला गया था। जयपाल और उसके सम्बन्धियों के गलोंमें जो बहुमूल्य रत्नजडित हार थे वे निस्संकोच उतारकर छीन लिये गये थे। जयपाल के कठहार का मूल्य दो लाख दरहम था। इन राजकीय बन्दियों के साथ अत्यन्त ही अमानवीय और क्रूर व्यवहार किया गया, उन्हें राजसभा में अपमानित किया गया और घोर शारीरिक यन्त्रणाएं और कष्ट दिये गये। अन्त में जयपाल ने महमूद को पच्चीस सहस्र दरहम और पचास हाथी देकर मुक्ति पाई। इसी बीच महमूद ने जयपाल की राजधानी वैहंद को खूब लूटा और विध्वंस किया। इसके बाद महमूद और जयपाल के बीच संधि हो गई जिसके अनुसार महमूद ने जयपाल से अत्यधिक धन प्राप्त किया

और जयपाल को दबाये रखने के लिये महमूद ने उसके एक पुत्र और एक पौत्र को धरोहर के रूप में अपने पास रख लिया। इस अपमानजनक संधि से जयपाल और उसके स्वाभिमान को इतना गहरा आघात लगा कि उसने अग्नि की चिता में जलकर अपना अपमानजनक जीवन समाप्त कर दिया। उसके वंशजों पर इसका इतना अधिक गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने महमूद से प्रतिरोध स्वरूप निरन्तर लोहा लेने का निश्चय किया।

महमूद और आनन्दपाल—सन् १००२ में जयपाल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र आनन्दपाल शाही सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। महमूद और आनन्दपाल दोनों में ही वंश परम्परा की शत्रुता बनी रही। जब महमूद ने सिंध मे मुलतान के मुस्लिम नरेश पर आक्रमण किया, तब उसने अपनी सेना को आनन्दपाल के राज्य में से ले जाना चाहा। पर आनन्दपाल ने महमूद को ऐसा नहीं करने दिया और महमूद का सामना करने के लिए पेशावर की ओर कूच किया। दोनों में युद्ध हुआ और आनन्दपाल पराजित हुआ तथा वह काश्मीर की ओर भाग गया। इसके बाद महमूद ने मुल्तान विजय कर वहां जयपाल के पौत्र और आनन्दपाल के पुत्र सुखपाल को अपना प्रांतपति नियुक्त किया। महमूद ने सुखपाल को जब वह धरोहर के रूप में उसके पास था, मुसलमान बना लिया था और उसका नाम नौशाशाह रख दिया था। पर कुछ ही समय बाद नौशाशाह हिन्दू हो गया और सेवकपाल के नाम से मुलतान का स्वतन्त्र शासक हो गया। इससे क्रुद्ध होकर महमूद ने सन् १००८ में सेवकपाल पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर काश्मीर की ओर खदेड़ दिया। अब महमूद ने आनन्दपाल की शक्ति नष्ट करना चाहा।

आनन्दपाल का राष्ट्रीय युद्ध--(१००९) आनन्दपाल ने मुलतान के नरेश दाऊद को महमूद के विरुद्ध सहायता प्रदान की थी, इससे महमूद उससे रुष्ट था और प्रतिशोध लेना चाहता था। आनन्दपाल का पंजाब पर अधिकार था और उसे पूर्णरूप से परास्त किये बिना महमूद उत्तरी भारत में आक्रमणों के लिए आगे नहीं बढ़ सकता था। पंजाब भारत का द्वार था और उसे अपने आधिपत्य में करने पर ही तुर्क भारत में भीतर सुगमता से पहुंच सकते थे। आनन्दपाल अपनी और अपने पिता की पराजय का बदला महमूद से लेना चाहता था और उसके आक्रमणों की गति को अवरुद्ध करना चाहता था। वह मुस्लिमों की सत्ता का भी अन्त करना चाहता था। इसलिए उसने "भारत रक्षा" के नाम पर अनेक राजाओं का संघ निर्मित किया। महमूद ने इन कारणों से आनन्दपाल पर सन् १००९ में आनन्दपाल की राजधानी लाहौर पर आक्रमण किया। राजा आनन्दपाल ने उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली, अजमेर आदि स्थानों के राजाओं से सैनिक और धन की सहायता प्राप्त कर वैहन्द के समीप महमूद से युद्ध किया। मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार हिन्दुओं ने पूर्ण रूप से संगठित होकर भयंकरता से महमूद का सामना किया। "इस अवसर पर हिन्दू स्त्रियों ने अपने आभूषण बेचकर धन प्राप्त किया, और उसे अपने अपने पतियों के पास भेज दिया जिससे उन्हें युद्ध की आवश्यक समस्त सामग्री उपलब्ध हो सके और वे एकाग्रचित्त होकर युद्ध में भाग ले सकें। जो स्त्रियां निर्धन थीं, उन्होंने सूत

कातकर, या अन्य ढंग से पारिश्रमिक प्राप्त कर उसे सहायतार्थ भेजा। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में देश-प्रेम जाग उठा और लोगों ने देश की रक्षा के लिए आनन्दपाल की सहायता की। कतिपय इतिहासकारों का मत है कि यह युद्ध हिन्दू और इस्लामी संस्कृति का युद्ध, दो जातियों और दो राष्ट्रों का युद्ध था। महमूद और आनन्दपाल की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में महमूद को अपनी पराजय होने की बहुत आशंका थी, पर उसने धैर्य और साहस से काम लिया और उपयुक्त समय पर अपने व्यक्तिगत अंग-रक्षकों की छोटी टुकड़ी को जिसमें उसके सर्वोत्कृष्ट तपे-तपाये सैनिक थे, पीछे से घूम कर भारतीय सेना पर आक्रमण करने के लिये भेजा। पीछे और आगे--दोमुखी युद्ध से हिन्दू सैनिक अधीर हो घबरा उठे। इसी बीच, जैसा कि पूर्व में अनेक बार हुआ, आनन्दपाल का हाथी बिगड़ गया और वह युद्ध क्षेत्र से पीछे की ओर भागने लगा और इसका भारतीय सेना पर बुरा प्रभाव पड़ा। सैनिकों का दिल टूट गया, सेना अस्त-व्यस्त और अनुशासनहीन हो गयी। सैनिक भागने लगे। महमूद ने भागती हुई सेना का तीन दिन तक पीछा किया और बीस सहस्र हिन्दू सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये। महमूद की पराजय विजय में परिणित हो गयी। इस प्रकार विदेशी आक्रमण-कारी के विरुद्ध मध्यकालीन हिन्दू भारत का एक अत्यधिक सुसंगठित, सुनिश्चित और शानदार राष्ट्रीय प्रयास विफल हुआ। महमूद ने आनन्दपाल की राजधानी को खूब लूटा और उसे अत्याधिक धन प्राप्त हुआ।

आनन्दपाल के राजकोष और नगरकोट की लूट—आनन्दपाल पर विजय प्राप्त कर लेने और धन प्राप्ति से महमूद और उसके सैनिकों का उत्साह अत्यधिक बढ गया और उसने कांगड़ा प्रदेश की राजधानी नगरकोट पर आक्रमण कर दिया। यहां ज्वाला-मुखी देवी के मन्दिर में अपार धन संग्रहित था और दुर्ग में आनन्दपाल का कोष व संपत्ति थी। महमूद ने इसे प्राप्त करने के लिए नगर और दुर्ग को घेर लिया। तीन दिन के भयंकर युद्ध के बाद महमूद के बहुसंख्यक सैनिकों के सामने विजय की आशा न रहने पर हिन्दुओं ने हतोत्साह होकर आत्मसमर्पण कर दिया। महमूद ने नगर और दुर्ग में प्रवेश कर उन्हें खूब लूटा और उन पर अपना अधिकार कर लिया। इतिहासकार उतबी के अनुसार इस लूट में महमूद को इतना अधिक धन प्राप्त हुआ कि जितने भी ऊंट मिल सके, उन पर उन्होंने धन लाद दिया और शेष बचे धन को सैनिकों में विभाजित कर दिया। सित्तर सहस्र शाही दरहम के मूल्य के भारतीय सिक्के तथा ४०० मन सोना-चांदी मिला जिसका मूल्य उस समय सात लाख दरहम था। ऐसे सुन्दर कोमल जड़ाऊ वस्त्र व वेश-भूषाएं प्राप्त हुईं जिसे तुर्कों के बूढ़ों और पूर्वजों ने कभी देखा नहीं था। इसी लूट में २८ मीटर लम्बा और १४ मीटर चौड़ा एक चांदी का घर भी मिला जो अमीरों व धन सम्पन्न लोगों के घर की भाँति था और इस घर की घड़ी (fold) की जा सकती थी। ३८ मीटर लम्बा और १९ मीटर चौड़ा रूमी वस्त्र का बना एक सुन्दर बहुमूल्य शामियाना भी मिला जो ढले हुए दो सोने और चाँदी के खम्भों पर सधा हुआ था। इस अतुल सम्पत्ति को लेकर महमूद गजनी लौट गया। यह धन उसने विदेशी राजदूतों, सामन्तों एवं प्रजा के समक्ष गजनी में प्रदर्शित किया। इस विजय से महमूद का अधिकार सिंध से नगरकोट तक हो गया। आनन्दपाल का राज्य संकुचित हो गया और उसने अब

अपनी राजधानी नन्दननगर में बना ली। निरन्तर संघर्ष और पराजय से आनन्दपाल का दिल टूट गया और कुछ ही समय बाद उसका देहावसान हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र त्रिलोचनपाल शाही नरेश हुआ।

त्रिलोचनपाल और महमूद—महमूद शाही नरेश की शक्ति को पूर्णरूप से नष्ट करना चाहता था। इसलिये उसने सन् १०१३ में त्रिलोचनपाल पर शीघ्र ही आक्रमण कर दिया। त्रिलोचनपाल ने बड़ी वीरता से महमूद का सामना किया और उसे परास्त कर दिया। महमूद ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिये अगले वर्ष त्रिलोचनपाल पर फिर आक्रमण कर दिया। महमूद ने अपनी बहुसंख्यक सेना और रणकौशल से त्रिलोचनपाल को परास्त कर दिया और उसकी राजधानी नन्दन को खूब लूटा और वहां अपना प्रशासक नियुक्त किया। त्रिलोचनपाल ने काश्मीर में शरण ली। महमूद ने काश्मीर में त्रिलोचनपाल का पीछा किया और त्रिलोचनपाल तथा काश्मीर नरेश दोनों की संयुक्त सेनाओं को परास्त कर गजनी लौट गया।

अपनी पराजय से निराश न होकर त्रिलोचनपाल ने फिर अपनी सेना और शक्ति संगठित की और धीरे-धीरे उसने अपने पूर्वजों के राज्य के कुछ प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया। अब उसने पूर्वी पंजाब में शिवालिक की पहाड़ियों के क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित किया।

महमूद ने जब कन्नौज पर आक्रमण किया और उसे लूट कर गजनी लौट गया तब त्रिलोचनपाल ने सन् १०१८ में चन्देल राजा विद्याधर से मिलकर महमूद के विजित प्रदेशों पर आक्रमण करने की एक योजना बनाई। इसमें त्रिलोचनपाल का उद्देश्य अपनी खोयी हुई शक्ति फिर से प्राप्त कर लेना था। जब इसकी सूचना महमूद को लगी, तब उसने सन् १०१६ में त्रिलोचनपाल पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर उसकी शक्ति नष्ट कर दी। अब त्रिलोचनपाल के पास सीमित पर्वतीय क्षेत्र ही रह गया था। सन् १०२१ में उसके देहावसान के बाद उसका पुत्र भीमपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ।

भीमपाल–यह बड़ा निर्भीक और साहसी योद्धा था। उसने अपनी खोई हुई शक्ति और राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिये महमूद और उसके प्रशासकों से निरन्तर युद्ध जारी रखा। पर सन् १०२६ में उसकी मृत्यु हो गयी। भीम के उत्तराधिकारी सशक्त वीर नहीं थे। अतएव उसकी मृत्यु के बाद अन्तिम सांस लेता हुआ हिन्दूशाही राज्य का अन्त हो गया।

शाही राज्य का महत्व—महमूद के आक्रमणों के युग में स्वातंत्र्य प्रेमी शाही राजाओं का विशेष महत्व है। उन्होंने निरन्तर तीस वर्षों तक हिन्दुओं की स्वतंत्रता, धर्म और संस्कृति की सुरक्षा के लिए गजनी के सुलतानों से संघर्ष किया। महमूद जैसे अत्यन्त ही सशक्त बर्बर आक्रमणकारी और आततायी का उन्होंने सामना किया, उससे निरन्तर युद्ध किये और उसके मूलोच्छेदन के लिये दीर्घकाल तक दुर्बल होने पर भी सतत प्रयत्नशील रहे। निरन्तर पराजित होने पर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। हिन्दुओं की स्वतन्त्रता तथा संस्कृति की रक्षा के लिए उनके दीर्घकालीन संघर्ष और प्रयास भारतीयों के लिए प्रेरणास्रोत रहेंगे।

अलबरुनी और उसका भारत-वर्णन

अलबरुनी अपने समय का एक प्रसिद्ध विद्वान, दार्शनिक, लेखक और इतिहासज्ञ था। उसका जन्म मध्य एशिया में खीवा प्रदेश में हुआ था और उसका बाल्यकाल भी वहां व्यतीत हुआ। जिस समय महमूद गजनी ने इस प्रदेश पर आक्रमण कर इसे जीता और विजय का माल लेकर गजनी लौटा था, उस समय अलबरुनी खीवा से बन्दी के रूप में गजनी लाया गया था। पर कालान्तर में अपनी योग्यता, प्रतिभा और विद्वता के कारण वह महमूद का कृपाभाजन बन गया और गजनी में महमूद की राजसभा को सुशोभित करता था। जब महमूद भारत में आक्रमण करने के लिये आता था, तब वह अपने साथ अलबरुनी को भी लाता था। फलत: अलबरुनी ने भारत को स्वयं अपनी आंखों से देखा है। उसने भारत की तत्कालीन दशा का वर्णन "तहकीक-ए-हिन्द" में किया है। इसमें भारत की उस काल की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साँस्कृतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों का आँखों देखा वर्णन है। वह प्रथम मुस्लिम इतिहासकार है जिसने भारत का वर्णन स्वयं देख कर लिखा है। वह स्वयं विद्वान होने से उसने भारत के हिन्दू धर्मग्रन्थों और शास्त्रों तथा ज्ञान-विज्ञान का अच्छा अध्ययन किया, ब्राह्मण पंडितों और दार्शनिकों के समीप बैठकर उसने उनसे सीखा और विभिन्न विषयों पर विचार-विनिमय किया। वह भारत के ज्ञान-विज्ञान और विद्याओं से अधिक प्रभावित हुआ था। इसलिए उसने भारत के विषय में अपने ग्रन्थ "तहकीक-ए-हिन्द"* में जो कुछ भी लिखा है, वह सत्य के अधिक निकट है और उसका अधिकाँश भाग प्रशंसात्मक और उत्साहवर्धक है। उसके भारत वर्णन की कुछ झांकियां निम्नलिखित है।

राजनैतिक दशा—भारत की राजनैतिक दशा का वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि भारत एक विशाल देश है किन्तु यहां छोटे-छोटे प्रान्तीय राज्य हैं जिनके अधिकांश शासक राजपूत हैं। देश इन छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। काश्मीर, सिंध, मालवा, तथा कन्नौज इनमें प्रमुख राज्य थे। इन राज्यों में पारस्परिक फूट और वैमनस्य था और ये छोटे-छोटे कारणों पर परस्पर संघर्ष और युद्ध करते रहते थे। विदेशी आक्रमण का भय न होने से राजपूतों ने भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की थी। अलबरुनी ने यहां के राजपूतों की न्यायप्रियता का अच्छा वर्णन किया है।

राजपूत नरेश न्यायप्रिय थे। प्रार्थी न्याय के लिए आवेदनपत्र प्रस्तुत करता था, किन्तु मौखिक प्रार्थनाएं भी प्रचलित थीं। शपथ दिलवाने की प्रथा भी प्रचलित थी। न्यायदान और मुकदमों के निर्णय साक्ष्यों और गवाहों के आधार पर होते थे। न्याय की दृष्टि में सभी को समान नहीं माना गया था। ब्राह्मण प्राण-दंड से मुक्त थे। ब्राह्मण व्रत, उपवास, प्रार्थना, दान-पुण्य द्वारा हत्या कर लेने का प्रायश्चित कर लेते थे। दंड-विधान कठोर नहीं, अपितु व्यावहारिक था। चोरी के अपराध का दंड चोरी गये

* इस ग्रंथ के विषय में कहा गया है कि, "A magic island of quiet impartial research in the midst of a world of clashing swords, burning towns and plundered temples."

धन के मूल्य के अनुरूप दिया जाता था। कुछ अपराधों में अंग-भंग का दंड भी दिया जाता था।

राजा प्रजा-हितैषी होते थे और जन-हित और प्रजा-कल्याण के कार्य करना वे अपना धर्म मानते थे। प्रत्येक राज्य में सामन्त प्रथा थी और प्रशासन में प्राय: सभी ऊंचे पद सामन्तों को दिये जाते थे। ये पद परम्परागत होते थे। राजपूत वंशों में कुलीनता की भावना बहुत ऊंची थी। अपने कुल से हीन कुल के व्यक्ति की अधीनता में रहना राजपूत कभी भी सहन नहीं कर सकते थे। भूमि कर या। उपज का छठा भाग उपज कर के रूप में लिया जाता था। यह राज्य की आय का प्रमुख साधन होता था। यद्यपि अन्य कर भी थे, पर उनका भार जनता पर कम था। विभिन्न पेशे वाले और व्यवसाय करने वाले आयकर देते थे। ब्राह्मणों को करों से मुक्त किया गया था। प्रजा सुखी और संतुष्ट थी।

सामाजिक दशा—सामाजिक दशा का वर्णन करते हुए अलबरुनी ने लिखा है कि उस समय समाज में जाति-प्रथा की प्रधानता थी। राजपूत जाति समाज की सबसे अधिक सम्मानित जाति मानी जाती थी। परन्तु उनके समाज में अनेक कुरीतियां थीं और समाज की प्रगति अवरुद्ध हो चुकी थी। वे अफीम का अधिक सेवन करते थे। सती प्रथा और बाल-विवाह का प्रचार अधिक था, पर विधवा विवाह नहीं होते थे। लड़के या लड़की के विवाह की व्यवस्था माता-पिता करते थे। दहेज प्रथा प्रचलित नहीं थी। समाज में जातियों के बंधन इतने अधिक जटिल और अपरिवर्तनशील हो गये थे कि अन्तर्जातीय विवाह समाज में बन्द हो गये थे। हिन्दू समाज की अपनी प्राचीन उदारता और विशाल हृदयता लुप्त हो गई थी। उसमें विदेशियों या विधर्मियों को अपने में आत्मसात करने की प्रवृति नष्ट हो चुकी थी। हिन्दुओं में स्वाभिमान की भावना अधिक थी। वे अपने समाज, धर्म, कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र, दर्शन एवं संस्कृति पर अगाध विश्वास करते थे। वे लोग न तो किसी से कुछ सीखना चाहते थे और न किसी को कुछ सीखाना चाहते थे। अलबरुनी लिखता है कि उनका विश्वास और दृढ़ धारणा थी कि उनके देश के समान अन्य कोई देश विश्व में नहीं है और उनके राजा के समान कोई राजा नहीं, उनकी जाति के समान कोई जाति नहीं है, उनके धर्म के समान कोई धर्म नहीं है, उनकी भाषा एवं विज्ञान के समान अन्य कोई भाषा तथा विज्ञान नहीं है। हिन्दू अभिमानी थे। वे अपने ज्ञान को अपने ही समाज में दूसरी जाति के लोगों को देने में बड़े हिचकते थे और इससे भी अधिक किसी विदेशी व्यक्ति को देने में। वे इतने गर्वीले थे कि यदि उनसे कोई कहे कि खुरासान या फारस देश में भी विज्ञान है, शास्त्र हैं और विद्वान हैं, तो वे कहने वाले को अज्ञानी और मिथ्याभाषी कहेंगे। यदि ये हिन्दू दूसरे देशों की यात्रा करें और वहां के लोगों में घुले मिलें, तो वे शीघ्र ही अपने विचारों में परिवर्तन कर लेंगे। क्योंकि उनके पूर्वज इतने संकीर्ण नहीं थे। अलबरुनी ने ऐसा लिखा है, क्योंकि उसे भारतीय ज्ञान-विज्ञान, विद्याओं और दर्शन का अध्ययन करने के लिये भारत में अत्यधिक कठिनाई पड़ी थी। सत्य तो यह है कि इस समय विदेशों से भारत के सम्बन्ध और संपर्क छिन्न-भिन्न हो गये थे और

विदेशों में होने वाली घटनाओं, परिवर्तनों और आविष्कारों से भारत सर्वथा अपरिचित रह गया था। इससे ऐसी संकीर्ण और संकुचित वृत्ति उत्पन्न हो गयी।

भारत पर महमूद के विध्वंसकारी आक्रमणों पर प्रकाश डालते हुए अलबरुनी ने लिखा है कि, "महमूद ने इस देश (भारत) की समृद्धि को पूर्णतया समाप्त कर दिया तथा ऐसा आश्चर्यजनक उत्पीड़न किया जिससे हिन्दू चतुर्दिक बिखरे हुए धूल के कणों के समान हो गये। लोगों के मुख में ये सब पुरानी कहानी के रूप में रह गये। हिन्दुओं के अवशिष्ट अंश अपने मन में मुसलमान मात्र के प्रति घृणा की घोरतम भावनाओं का पोषण करते हैं। यही कारण है कि भारतीय विद्याएँ उन स्थानों से बहुत दूर हट गयी हैं जिनको हमने विजय कर लिया है और काश्मीर, बनारस तथा अन्य ऐसे स्थानों पर पलायन कर गयी हैं, जहां तक अभी हमारे हाथ पहुंच नहीं पाते।"

धार्मिक दशा—देश में धार्मिक परिस्थिति के विषय में अलबरुनी ने लिखा है कि हिन्दुओं में मूर्तिपूजा का विशेष प्रचार था। वे अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते थे। इनकी मूर्तियां विभिन्न मंदिरों में स्थापित की गयी थीं। किन्तु ज्ञानी लोग ही मूर्ति-पूजा करते थे। उच्च वर्ग और विद्वत् समाज में अधिकांश एकेश्वरवाद का सिद्धान्त प्रचलित था। धर्म में अंधविश्वास और कुरीतियां उत्पन्न हो गयी थीं तथा कलुषित भावनाएं थी।

आर्थिक दशा—यद्यपि भारत के विदेशी व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त हो गये थे पर भारत एक धन सम्पन्न देश था। यहां के मन्दिरों में अपार सम्पत्ति संग्रहित थी। बड़े-बड़े धनी लोग अपने धन का उपयोग प्रायः मन्दिर निर्माण में करते थे। यहां की उपजाऊ भूमि एवं खनिज पदार्थों के कारण भारत की आर्थिक परिस्थिति अच्छी थी।

महमूद गजनवी के बाद भारत पर आक्रमण—महमूद की मृत्यु के बाद मसूद गजनी का सुलतान बना। मसूद ने अपने पिता के विजित भारतीय प्रदेशों पर शासक नियुक्त किये। इनमें अर्यारक, काजी सिराज और अहमद नियाल्तगीन प्रसिद्ध थे। नियाल्तगीन ने लाहौर से बनारस पर आक्रमण किये जहां अभी तक कोई भी मुस्लिम आक्रमणकारी नहीं पहुचा था। इस अभियान में वाराणसी की भव्य और धन संपन्न दूकानें लूटी गयीं जिससे सोने-चाँदी का अतुल भंडार हाथ लगा। अभियान के समय वाराणसी के ठाकुरों से नियाल्तगीन ने अत्यधिक भेंट और उपहार प्राप्त किये। नियाल्तगीन के विद्रोह के कारण तिलक को सन् १०३३ में पंजाब का प्रशासक नियुक्त किया गया। तिलक पहिले हिन्दू था, पर बाद में उसे मुसलमान बना लिया था। उसकी शिक्षा-दीक्षा काश्मीर में हुई थी। इसी के बाद सन् १०३७ में गजनी के सुलतान मसूद ने पंजाब के हाँसी दुर्ग पर आक्रमण किया। एक लम्बी यात्रा के बाद मसूद अपनी विशाल सेना सहित हाँसी पहुंचा, उसने दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। सुरंगें लगाकर बारूद द्वारा दुर्ग की दीवारें उड़ाकर मसूद ने किले पर विजय प्राप्त कर उसमें प्रवेश किया। ब्राह्मणों तथा अन्य लब्ध-प्रतिष्ठित लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया और अनेकानेक स्त्री और बच्चों को बन्दी बनाकर दास बना लिया गया। हांसी विजय करने के बाद, उत्साह बढ़ने पर मसूद दिल्ली की ओर आगे बढ़ा और सोनीपत पर आक्रमण किया। वहां का शासक इस आकस्मिक आक्रमण से भयभीत होकर वन में पलायन कर गया।

इसके बाद मसूद उसके अधिकारियों और सैनिकों ने नगर और राज-कोष को खूब लूटा। लूट का अपार धन लेकर मसूद गजनी लौट गया। गजनी में विजय उन्माद और हर्ष में उत्सव मनाये गये जिसमे सुरा-सुन्दरियों और प्रीतिभोजों का सागर उफनाया गया।

सन् १०४० में तुगरिल बेग नामक सल्जुकतुर्क द्वारा पराजित होने पर मसूद ने भारत में पंजाब में आकर शरण ली, पर १०४१ में उसका वध कर दिया गया। इसके बाद मुहम्मद, मादूद, इब्राहीम, अलाउद्दीन मसूद तथा मलिक अरसलान और बहराम गजनी के शक्तिहीन और अकर्मण्य शासक हुए। अलाउद्दीन मसूद सन् १०९८ में गजनी का सुलतान हुआ था। उसके शासन-काल में गगातटवर्ती प्रदेश पर मुसलमानों ने अभियान किये। अनेकों को कत्ल कर दिया गया, कई व्यक्तियों को बन्दी बनाकर दास बनाया गया और अपार सम्पत्ति लूटी गयी। अलाउद्दीन मसूद का उत्तराधिकारी अरसलन गजनी में अपनी सत्ता स्थायी नहीं रख सका और वह भारत में पंजाब में भाग गया जहां १११७ में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद बहराम और उसका पुत्र खुसरो मलिक गजनी के सुल्तान हुए। विघटनात्मक प्रवृतियों और विद्रोहों के कारण सुलतान खुसरोमलिक भारत भाग आया और लाहौर में शासन करने लगा। इसी बीच गोर नरेश गयासुद्दीन बिनसाम ने गजनी को जीत कर उस पर अपना अधिकार कर लिया और वहाँ का शासन अपने भाई मुइजुद्दीन (मुहम्मद गोरी) को सौंप दिया। अब गजनी में एक नये गोर राजवंश का उत्कर्ष हुआ और उसके सुलतान मुहम्मद गोरी ने भारतीय इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा।

सारांश

तुर्कों का इस्लामीकरण और शक्ति सचय — जब मध्य एशिया मे इस्लामी राज्य का विस्तार हुआ, तब वहां के अनेक तुर्कों को बलात् इस्लाम के अनुयायी बना लिया गया। उनकी सामरिक वृत्ति से उन्होंने अरबों की शक्ति क्षीण होने पर अपनी सैनिक और राजनैतिक शक्ति में वृद्धि की। उन्होंने इस्लामी साम्राज्य का विस्तार और इस्लामी धर्म का प्रचार अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

तुर्कों के राज्य — दक्षिणी पश्चिमी एशिया में तुर्कों ने जेरुसलम में विशाल तुर्की राज्य स्थापित किया, उस्मानी तुर्कों ने यूनान, मिश्र और दक्षिणी पूर्वी यूरोप में विस्तृत तुर्की साम्राज्य स्थापित किया। मध्य एशिया में समन तुर्की राज्य स्थापित हुआ और इस राज्य के पतन-काल में अलप्तगीन ने सन् ९६० में अफगानिस्तान में एक अन्य तुर्की राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी गजनी थी।

सुबक्तगीन और भारत पर तुर्कों के आक्रमण-अलप्तगीन के निर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारी को अलग कर सुबक्तगीन गजनी का सुलतान बना था। खुरासान, काबुलघाटी, और सीस्तान में अपने राज्य का विस्तार करने के बाद सुबक्तगीन ने राज्य विस्तार की भावना से भारत के उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र के दुर्गों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधिकार में ले लिया। इस समय यहां हिन्दू-

शाही राजवंश का राजा राज्यपाल राज्यकर रहा था। सुबक्तगीन के बढ़ते हुए आक्रमण और प्रभाव को रोकने के लिये जयपाल ने गजनी राज्य पर आक्रमण किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। सुबक्तगीन और जयपाल में संधि हो गयी जिसके अनुसार जयपाल को एक लाख दरहम, ५० हाथी, कुछ दुर्ग और भूमि सुबक्तगीन को देने का वचन दिया। कुछ ही समय बाद जयपाल ने इस अपमानजनक संधि की शर्तों को तोड़ दिया। तब सन् ६६१ में सुबक्तगीन ने जयपाल पर आक्रमण किया। जयपाल और सुबक्तगीन में भयंकर युद्ध हुआ, पर विजय सुबक्तगीन की हुई, जिसके फलस्वरूप सुबक्तगीन को खैबर दर्रे का क्षेत्र व पेशावर हाथ लगे। इससे तुर्कों को वह मार्ग प्राप्त हो गया जो सीमांत क्षेत्र से भारत के उपजाऊ धन सम्पन्न प्रदेशों को जाता था। इस मार्ग से तुर्कों, पठानों और मंगोलों ने राज्य विस्तार और इस्लाम के प्रसार के लिये निरन्तर क्रूर आक्रमण किये और भारत में इस्लामी राज्य स्थापित किये। इससे भारत में एक नवीन युग जिसे "मुस्लिम युग" कहते हैं प्रारंभ होता है।

महमूद गजनवी—सन् ६६७ में सुबक्तगीन की मृत्यु के बाद गृह-युद्ध में विजय प्राप्त करके उसका पुत्र महमूद सन् ९९८ में गजनी का सुलतान बना। उसने भारत पर निरंतर आक्रमण किये।

महमूद के आक्रमणों के समय भारत की दशा—इस समय भारत में विभिन्न प्रांतीय राज्य थे। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं।

सिंध और मुलतान—में सिया सम्प्रदाय का इस्लामी शासक राज्य कर रहा था। हिन्दुकुश से चिनाब नदी तक, उत्तरी पश्चिमी सीमांत क्षेत्र और पंजाब में हिन्दू शाही राज्य था और जयपाल इसका राजा था। काश्मीर में हिन्दू रानी दिद्दा थी। कन्नोज में शक्तिहीन प्रतिहारराजा राज्यपाल था। बंगाल में पाल वंश का राज था। गुजरात में चालुक्य राज्य, बुन्देलखंड में चन्देल राज्य और मालवा में परमार राज्य थे। दक्षिण भारत में चालुक्यों और चोलों का उत्कर्ष हो रहा था। इन प्रांतीय और स्वतन्त्र राज्यों से देश में राजनैतिक एकता नष्ट हो गयी थी, दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव था। उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा नहीं की गयी थी। राज्यों और लोगों में राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति और राजनैतिक जागरुकता नहीं थी। राजपूत राज्यों का बाहुल्य था, इसलिये विदेशी आक्रमणकारियों से वे हीं लड़ते रहे और परास्त होते रहे। समाज में अनेक जातियों और उपजातियों की वृद्धि होने से जटिलता, संकीर्णता, अपरिवर्तनशीलता, और अप्रगतिशीलता आ गयी और विदेशियों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति लुप्त हो गयी थी। अरबों के आक्रमणों और राज्य के कारण समाज में इस्लाम के विदेशी अनुयायी और मुसलमान थे जिन्हें म्लेच्छ कहा जाता था। समाज में क्षत्रियों, राजपूतों, ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रों तथा निम्न व्यवसाय करने वालों की अनेक जातियां और उपजातियाँ थीं जिससे ऊंच-नीच और छुआछूत की भावना बढ़ रही थी। सेना और शासन में राजपूतों का अधिकार था, इसलिये सुरक्षा और युद्धों का भार राजपूतों पर पड़ा। साधारण लोगों के जीवन में सादगी और सात्विकता थी। बहु-विवाह, बाल विवाह, सतीप्रथा, देवदासी प्रथा, वेश्यावृत्ति प्रचलित थी। स्त्रियों की पराधीनता

बढ़ रही थी। भारत का विदेशों से संबंध विच्छेद हो जाने से भारतीयों की प्रतिभा कुंठित हो गयी, उनकी प्रगति मंद हो गयी, जीवन में स्थिरता और अवरोधता आ गयी और भारतीय अपने आपको विश्व की अन्य जातियों और कबीलों से श्रेष्ठतम समझने लगे और अपनी संस्कृति, धर्म और विचारों को आदर्श बताने लगे।

आर्थिक दृष्टि से देश धन सम्पन्न था। लोगों की आर्थिक दशा अच्छी थी। कृषि और विभिन्न व्यवसाय उन्नत थे। देश आत्म निर्भर था। राजाओं, सामन्तों और उच्च वर्ग के लोगों में संपत्ति केन्द्रीभूत थी। धर्मनिष्ठा, बहुदेववाद और मूर्ति पूजा के कारण अनेक मंदिर बनाये गये और इनमें सदियों से अतुल संपत्ति स्वर्ण, हीरे मोती आदि संग्रहित होते रहे। यह युग बौद्ध धर्म के पतन और पौराणिक हिन्दू धर्म के उत्थान का युग था। तंत्रवाद का बाहुल्य था। अनैतिकता, अनाचार, पापाचार, कामुकता, विलासिता बढ़ रही थी। जिससे तत्कालीन साहित्य और कला में भी अश्लीलता आ गयी थी। मठ, विहार, देवालय आदि कलुषित हो गये थे। हिन्दू धर्म में अनेक मत और सम्प्रदाय हो गये थे, अवतारवाद, कर्मकांड संस्कारों और रूढ़ियों की प्रधानता हो गयी थी। धार्मिक विघटन और साम्प्रदायिकता से लोगों में एकता नहीं थी। इस प्रकार महमूद के आक्रमणों के समय बाहरी रूप में भारत अखंड, विशाल और दृढ़ प्रतीत हो रहा था, पर आन्तरिक रूप से वह खंड खंड हो चुका था। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक किसी भी रूप में वह सुदृढ़ और सशक्त नहीं था। विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। इससे विदेशी आक्रमणकारियों का मार्ग सुलभ हो गया।

महमूद गजनवी की प्रारंभिक विजयें—महमूद का जन्म सन् ९७१ में हुआ था। उसमें बाल्यकाल से ही विरोचित गुणों और युद्ध प्रियता का विकास हो चुका था। किशोरावस्था में उसने अपने पिता सुबुक्तगीन की ओर से अनेक युद्ध किये और उसे विभिन्न आक्रमणों से पूरा सहयोग दिया। इससे सुबुक्तगीन ने उसे खुरासान का प्रांतीय राज्यपाल बना दिया। सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद जब वह सुलतान बना, तब महमूद ने महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी होने से अपने राज्य-विस्तार की योजना बनाई। उसने अपनी राजनीतिक सूझबूझ, विशाल सेना, रणकौशल, युद्ध और सफलता से खुरासान राज्य, सीस्तान राज्य, गरशिस्तान राज्य, ख्वारिज्म राज्य और गोर राज्य को जीतकर अपने राज्य में मिला लिये। बगदाद के खलीफा ने महमूद की विजयों और इस्लामी राज्य के विस्तार से प्रभावित और प्रसन्न होकर उसको स्वतन्त्र सुलतान मान लिया और उसे 'अमीन-उल-मिल्ला' और 'अमीनुद्दौला' की पदवियों से अलंकृत किया। अब महमूद भारत की ओर आकर्षित हुआ और उसने आक्रमण आरंभ किये।

महमूद के भारत-आक्रमण के कारण और उद्देश्य

(१) भारत का धन-सम्पत्ति प्राप्त करना—महमूद को अपने नवीन साम्राज्य को सुरक्षित और स्थायी बनाने के लिये, उसके शासन को सुचारु और सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये, और अपने राज्य को सम्पन्न बनाने के लिये धन

की अत्यन्त आवश्यकता थी। मध्य एशिया और पश्चिम में अपने साम्राज्य विस्तार, सुरक्षा और युद्ध के लिये, तुर्क कबीलों के निरन्तर आक्रमणों को रोकने के लिये, तुर्क और अन्य लड़ाकू जातियों के लोगों को सेना में भरती करने और उनके व्यय के भार को वहन करने के लिये उसे धन की आवश्यकता थी। वह स्वयं भी अत्यधिक लोभी और धन पिपासु था। इसलिये भारत की अतुल सम्पत्ति को वह चाहता था।

(२) हाथियों का दल प्राप्त करने की तीव्र लालसा—मध्य एशिया में अपने शत्रुओं का युद्ध में कुचलने और परास्त करने के लिये भारत से हाथियों की सेना प्राप्त करना।

(३) साम्राज्य स्थापना—महमूद भारत में साम्राज्य स्थापित करना या सीधा शासन स्थापित करना नहीं चाहता था। क्योंकि भारत में अनेक छोटे-छोटे प्रांतीय राज्य थे। उन पर विजय प्राप्त करना सरल था, पर उन्हें संगठित कर शासन करना कठिन था। मध्य एशिया और भारत से विशाल देश के साम्राज्य पर गजनी से शासन करना असम्भव था। उसके आक्रमणों के लक्ष्य धन सम्पन्न नगर, सोने चांदी से परिपूर्ण मन्दिर थे। इसलिये उत्तरी भारत के अनेक राज्यों को परास्त करने पर भी उसने उन्हें अपने राज्य में नहीं मिलाया। केवल पंजाब को अपने साम्राज्य में इसलिये मिलाया कि उसे वह सैनिक आधार स्थल बनाकर भारत पर सरलता से आक्रमण कर सके।

(४) इस्लाम धर्म का प्रचार—जाफर हबीब, नाजिम आदि विद्वानों का मत है कि महमूद ने भारत पर इस्लाम के प्रचार के लिये आक्रमण नहीं किये। उसके आक्रमणों का उद्देश्य धन प्राप्त करना था। परन्तु उतबी, अलबरुनी के मतों और वर्णन से स्पष्ट है कि महमूद भारत में जिहाद करना चाहता था, उसने हिन्दुओं की निर्मम हत्याएं कीं, अनेकों को बलात् मुसलमान बनाया और कई मन्दिरों को लूटा और मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा। महमूद के बाद मुसलमानों ने इसीलिये उसे गाजी माना। उनका मत था कि उसने भारत में इस्लाम का प्रचार कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। खलिफा ने भी महमूद को भारत में आक्रमण कर धर्म युद्ध करने की प्रेरणा दी थी। इस प्रकार काफिरों का संहार करना और जेहाद करना महमूद इस्लाम धर्म की सेवा समझता था।

(५) भव्य मंदिरों और मूर्तियों का विध्वंस और उनकी लूट—स्वर्ण-गर्भित मंदिरों को लूटने और मूर्तियों के विध्वंस करने में महमूद को अपार धन सम्पत्ति प्राप्त होने के साथ-साथ मूर्ति-पूजा के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने की उसकी लालसा भी पूर्ण हो जाती थी और उसके अनुयायियों को भी धार्मिक उत्तेजना और काफिरों के मूलोच्छेदन की प्रेरणा प्राप्त होती थी। मूर्तियों को तोड़ने-फोड़ने से ही महमूद "बुतशिकन" कहलाया।

महमूद गजनवी के आक्रमण—महमूद ने सन् १००० से १०२६ तक भारत में सत्रह आक्रमण किये और इन सभी में उसे सफलता प्राप्त हुई। ये आक्रमण निम्नलिखित हैं —

(१) सीमांत दुर्गों पर आक्रमण—उसने सन् १००० में राज्यपाल के सीमांत दुर्गों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधिकार में कर लिया।

(२) राज्यपाल पर आक्रमण (सन् १००१)-महमूद ने जब पंजाब पर आक्रमण किया तब जयपाल और महमूद में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें जयपाल महमूद के योग्य और कुशल सैन्य संचालन के कारण परास्त हुआ, तथा वह और उसके साथी बन्दी बना लिये गये। अन्त में महमूद और जयपाल में संधि हो गयी जिसमें महमूद को अत्यधिक धन दिया गया और जयपाल कोई उपद्रव न करे इसलिये महमूद ने उसके एक पुत्र और पौत्र को धरोहर के रूप में रख लिया। इस अपमानजनक संधि से जयपाल के सम्मान और स्वाभिमान को इतना गहरा आघात लगा कि वह चिता में जलकर मर गया।

(३) भेरा पर आक्रमण (१००३)—जब भेलम नदी तट पर स्थित भेरा पर महमूद ने आक्रमण किया तो वहाँ के राय ने चार दिन तक बड़ी वीरता से युद्ध किया, पर परास्त हो गया। महमूद ने भेरा को खूब लूटा।

(४) मुलतान पर आक्रमण (१००४-५)—मुलतान का मुस्लिम शासक अब्दुल फतह दाऊद शिया था और महमूद कट्टर सुन्नी था। दाऊद ने महमूद और उसकी सेना को पहिले आक्रमण के समय मुलतान राज्य से नहीं गुजरने दिया था। इसलिये महमूद ने मुलतान पर आक्रमण कर दिया और दाऊद को परास्त कर दिया। उसने दाऊद से बड़ी धनराशि ली और बीस सहस्र वार्षिक कर का वचन लेकर नौशाशाह (सुखपाल) को मुलतान का राज्यपाल बनाकर गजनी लौट गया।

(५) भटिंडा पर आक्रमण (१००५)—महमूद ने जब अनुभव किया कि पंजाब में भटिंडा पर बिना अधिकार किये गंगा-यमुना के दोआब पर आक्रमण करना दुष्कर था, तब उसने भटिंडा पर आक्रमण किया। वहां के राजा बाजीराय ने तीन दिन तक महमूद से युद्ध किया, पर वह परास्त हो गया। महमूद ने भटिंडा को लूट कर उसे अपने अधिकार मे कर लिया। अनेकों को इस्लाम मानने के लिये बाध्य किया। भटिंडा में महमूद को अपार धन संपत्ति और सेना में उपयोग के लिये हाथी प्राप्त हुए।

(६) नौशाशाह और आनन्दपाल पर आक्रमण (१००८)—मुलतान का राज्यपाल नोशाशाह जब स्वतन्त्र शासक हो गया, तब महमूद ने उस पर आक्रमण किया, उसे परास्त कर दाऊद को पुनः मुलतान का शासक बना दिया। इसके बाद महमूद ने जयपाल के उत्तराधिकारी आनन्दपाल पर आक्रमण किया, क्योंकि आनन्द-पाल ने दाऊद को महमूद के विरुद्ध सहायता दी थी, आनन्दपाल भी अपने पिता की पराजय और अपमान का बदला लेना चाहता था और इसके लिये उसने राजपूत राजाओं का एक संघ भी बना लिया था। वैहन्द के समीप आनन्दपाल और महमूद की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। महमूद परास्त होने वाला ही था कि आनन्दपाल का हाथी बिगड़ गया और रणक्षेत्र से भाग निकला। इससे सेना में भगदड़ मच गयी। महमूद ने इसका लाभ उठाकर अन्तिम धावा कर हिन्दुओं को परास्त कर दिया। इसके बाद महमूद ने नगरकोट और ज्वालामुखी देवी के मन्दिर पर आक्रमण

कर उन्हें खूब लूटा। इस लूट में उसे ४०० मन सोना चांदी और अनेकानेक बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त हुईं।

(७) नारायणपुर पर आक्रमण (१००९)—राजस्थान में अलवर क्षेत्र में स्थित नारायणपुर के राजा पर महमूद ने आक्रमण कर वहां के राजा को परास्त कर दिया।

(७) मुलतान पर आक्रमण (१०१०)—जब दाऊद ने स्वतन्त्र होने का प्रयास किया तब महमूद ने उस पर हमला कर उसे परास्त कर दिया और मुलतान राज्य को गजनी में सम्मिलित कर लिया।

(६) त्रिलोचनपाल पर आक्रमण (१०१३-१४)—आनन्दपाल के उत्तराधिकारी त्रिलोचनपाल पर महमूद ने आक्रमण कर अपने अप्रतिम सैन्य संचालन से उसे हरा दिया और बाद में त्रिलोचनपाल और काश्मीर नरेश की सम्मिलित सेना को भी उसने परास्त कर दिया।

(१०) थानेश्वर पर आक्रमण (१०१४)—जब महमूद ने थानेश्वर के प्रसिद्ध धन सम्पन्न चक्रवाक स्वामी के मंदिर पर आक्रमण किया तब मार्ग में पंजाब में राजाराम नामक हिंदू राजा ने उससे युद्ध किया और उसके अनेकों सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। पर विजय महमूद के हाथ लगी। इसके बाद उसने थानेश्वर के राजा को परास्त कर नगर और मंदिरों को खूब लूटा।

(११) काश्मीर पर आक्रमण (१०१५)—त्रिलोचनपाल और उसके पुत्र भीमपाल काश्मीर में अपनी शक्ति संगठित कर रहे थे। महमूद ने उन पर दो बार आक्रमण किये पर सफलता नहीं मिली।

(१२) मथुरा और कन्नौज पर आक्रमण (१०१८-१९)—मथुरा और कन्नौज अपने धन से परिपूर्ण भव्य मंदिरों और अतुल संपत्ति के लिये प्रसिद्ध थे। इसलिये महमूद ने इन पर आक्रमण किये। मार्ग में उसने राजा हरदत्त और कुलचंद्र को परास्त किया। मथुरा की सुरक्षा की व्यवस्था न होने से महमूद सरलता से मथुरा में पहुँच गया। मथुरा और वृन्दावन नगर, उनके मन्दिरों और मूर्तियों की भव्यता, कला सौंदर्य और सजावट को देखकर महमूद आश्चर्य चकित रह गया। परन्तु उसने इनको लूटा, मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा और आग लगाकर भस्मीभूत कर दिया। यहाँ उसे सोने की विशाल पाँच मूर्तियाँ और चाँदी की कई सौ मूर्तियाँ, रत्न, मोती, हीरे, धन आदि प्राप्त हुए। अब महमूद ने कन्नौज पर हमला किया। कन्नौज का नरेश राज्यपाल भाग गया। उसने कन्नौज को भी लूटा, मंदिरों को विध्वंस कर दिया और अनेकों को मौत के घाट उतार दिया।

(१३) कालिंजर पर आक्रमण (१०१९)—कन्नौज नरेश राज्यपाल के कायरतापूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध होकर तत्कालीन राजपूत राजाओं ने कालिंजर के राजा गंड के नेतृत्व में राज्यपाल पर आक्रमण किया और उसे मार डाला। इस पर महमूद ने गंड को दंड देने के लिये कालिंजर पर हमला किया। गंड ने अपने मित्र राजाओं की सहायता से एक विशाल सेना एकत्र की पर रणक्षेत्र से वह रात्रि को

भाग निकला। इससे महमूद को बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त हो गयी। अब उसने हिन्दू सेना के शिविरों और नगर को खूब लूटा।

(१४) पंजाब पर आक्रमण (१०२०)—भारत पर अपने आक्रमणों को सरल और सफल बनाने के लिये महमूद ने पंजाब पर आक्रमण किया और उसे पूर्ण रूप से अपने साम्राज्य में मिला वहाँ व्यवस्थित प्रशासन स्थापित किया।

(१५) ग्वालियर और कालिंजर पर आक्रमण (१०२२)—गंड की बढ़ती हुई शक्ति को नष्ट करने के लिये महमूद ने फिर कालिंजर पर आक्रमण किया। मार्ग में उसने ग्वालियर नरेश से युद्ध किया। महमूद ने कालिंजर दुर्ग को घेर लिया, पर उसे दीर्घकाल तक न बनाये रखने के कारण उसने गंड से संधि करली और तीन सौ हाथी और उपहार लेकर लौट गया।

(१६) सोमनाथ पर आक्रमण (१०२५-२६)— सौराष्ट्र में सोमनाथ का मन्दिर अपनी अपार धन सम्पदा, अतुल रत्न, मणियाँ और स्वर्ण के लिये प्रसिद्ध था। महमूद ने इस धन को प्राप्त करने और वहाँ मन्दिर को लूटने, और मूर्तियों को तोड़ने फोड़ने के लिये सोमनाथ पर आक्रमण किया। मार्ग में उसने अन्हिलवाड़ा को लूटा। सोमनाथ के आसपास के हिन्दू सामन्तों और नरेशों ने सोमनाथ की रक्षा के लिये महमूद से युद्ध किया, पर महमूद की बहुसंख्यक विशाल सेना के सामने वे परास्त हुए। अब महमूद ने मन्दिर में प्रवेश किया। मन्दिर के प्रवेश द्वार पर उसने भीषण हृदय-विदारक नरसंहार किया और जब मन्दिर के पुजारियों ने उससे प्रार्थना की कि वह मूर्ति को नहीं तोड़े तो महमूद ने उत्तर दिया कि वह मूर्ति भजक के नाम से प्रसिद्ध होना चाहता है, मूर्ति विक्रेता के नाम से नहीं और फिर उसने मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उन्हें मक्का, मदिना और गजनी भिजवाया ताकि वहाँ के मुसलमान उन्हें पैरों तले कुचले। इसके बाद महमूद ने नगर और मन्दिर को खूब लूटा और दो करोड़ दीनार की कीमत का धन प्राप्त किया। इतना धन उसे किसी भी लूट या आक्रमण में नहीं प्राप्त हुआ था। गजनी लौटते समय महमूद की सेना को गुजरात नरेश भीमदेव की सेना ने और जाटों ने खूब तंग किया और कष्ट दिये। जाटों ने तो उसका बहुत सा धन भी छीन लिया था। बड़ी कठिनाई से महमूद गजनी लौट सका।

(१७) जाटों और खोखरों पर आक्रमण——जाटों ने महमूद को लौटते समय अधिक कष्ट दिया था, इसलिये उन्हें और खोखरों को कड़ा दण्ड देने के लिये उसने उन पर आक्रमण किया, उन्हें परास्त कर उनका बुरी तरह दमन किया और अनेकों को नृशंसतापूर्वक कत्ल कर दिया। इस आक्रमण के बाद सन् १०३० में महमूद की मृत्यु हो गयी।

महमूद के आक्रमणों का प्रभाव——महमूद के आक्रमण उस भयंकर आँधी के समान थे जो तूफानी गति से प्रारम्भ होती है और उसके मार्ग के छोटे-मोटे वृक्षों को धराशायी करती हुई स्वतः ही शांत हो जाती है। यद्यपि उसके आक्रमणों से अपार धन की और जन की हानि हुई फिर भी भारत ने अपनी धन सम्पत्ति की क्षति को पूरा कर लिया, इसलिए उसके आक्रमणों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा।

फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से उसके प्रभाव हैं। (१) पंजाब और उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र को महमूद ने गजनी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। यह क्षेत्र फिर स्वतन्त्र न हो सका। इसी क्षेत्र को आधार बनाकर तुर्कों, मंगोलों, पठानों आदि ने भारत पर आक्रमण किये। पंजाब भारत में तुर्क और मुस्लिम साम्राज्य के निर्माण में प्रथम सोपान रहा। (२) महमूद के आक्रमणों से सिंध, मुलतान, कन्नौज और गंगा की घाटी तक इस्लाम की छाया फैल गयी। सहस्रों व्यक्ति बलात् मुसलमान बना लिये गये। इस्लाम के फकीर, संत और तुर्क बस्तियों ने भी इस्लाम के आक्रमण और प्रसार को भारत में बढ़ाया। (३) उसके आक्रमणों और युद्धों से अनेक भारतीय राजवंशों का अन्त हो गया, राज्यों की सीमा व शक्ति में बड़ा परिवर्तन हो गया, अनेकानेक सैनिकों के युद्ध में काम आने या बाद में वध कर दिये जाने से भारत की सैनिक शक्ति कम हो गयी। भारत के राज्यों में पारस्परिक फ़ूट है, एकता व संगठन का अभाव है राजनैतिक खोखलापन है—ये सब राजनैतिक, सैनिक और सामरिक दुर्बलताएँ विदेशियों को प्रगट हो गयीं। (४) भारत की सदियों से एकत्रित अपार धन-राशि अतुलनीय स्वर्ण और चाँदी, रत्न आदि विदेशों को चले गये। इससे भारत को अपार धन की क्षति हुई। अनेक नगरों, भवनों, मन्दिरों और मूर्तियों को विध्वंस कर देने से भी भारतीय कलानिधि को अमिट क्षति पहुँची। (५) भारत से प्राप्त अपार धन और हस्ति सेना से महमूद ने मध्य एशिया में अपने साम्राज्य विस्तार को लिये युद्ध किये और साम्राज्य की सुरक्षा की। (६) भारत से प्राप्त अपार धन से उसने मध्यएशिया के अनेक कवियों, लेखकों, विद्वानों और साहित्यिक नक्षत्रों को गजनी में राज्याश्रय दिया और भारत से ले गये अनेक कलाकारों और शिल्पियों से उसने गजनी में अनेक भव्य भवन मसजिदें, राजप्रासाद आदि निर्मित करवाये। (७) महमूद के आक्रमणों ने भारत पर भविष्य में आक्रमण करने के लिये नवीन सरल मार्ग खोल दिया जो अरबों द्वारा खोले गये मार्ग से अधिक सुगम था। (८) महमूद के आक्रमणों ने मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के लिये अग्रदूत का काम किया। महमूद के निर्दिष्ट मार्ग का अनुकरण करके मुहम्मद गोरी ने आक्रमण किये और भारत में स्थायी मुस्लिम राज्य स्थापित कर लिया और इसका लाभ उठाकर अन्य विजेता और आक्रमणकारियों ने भारत मे मुस्लिम राज्य की वृद्धि की।

महमूद की सफलता और विजय के कारण—यद्यपि महमूद को उसके आक्रमणों में यत्रतत्र असफलता व निराशा मिली, पर उसे प्रायः सफलता ही हाथ लगी। इसके कारण हैं—(१) भारतीय नरेशों में राजनैतिक मतभेद, वैमनस्य और फूट थी। (२) भारतीयों में देशभक्ति, राष्ट्रीयता, राजनैतिक जागरुकता नहीं थी। कतिपय लोगों ने देशद्रोही होकर शत्रु की सहायता की तो कुछ कायर हो गये। (३) महमूद का सैन्य संगठन, सैन्य संचालन और रणनीति श्रेष्ठ होने से वह अनेकों को परास्त कर सका। वह स्वयं एक कुशल सेनानी और वीर योद्धा था और विकराल स्थिति में अदम्य उत्साह से कार्य करता था। (४) भारतीयों की सेना की अपेक्षा महमूद की सेना बहुत बड़ी होती थी और उसमें अरब, तुर्क, अफगान व अन्य लड़ाकू जातियों का कुशलता से समन्वय होता था। भारतीयों की अपेक्षा महमूद के सेनानी अधिक अच्छे

तीरन्दाज थे, उसके अश्व और अश्वारोही भी बढ़े चढ़े थे। महमूद के सैनिकों में भारत के धन को लूटने व प्राप्त करने की तीव्र लालसा होने से वे युद्ध में प्राण न्यौछावर कर देते थे। हिन्दु राजाओं ने अपनी रणनीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। यह जानने पर भी कि हस्ती सेना का उपयोग घातक है, उन्होंने युद्धों में हाथियों का उपयोग किया और परास्त हुए। महमूद की सेना के कुशल गुप्तचर उसे शत्रु की स्थिति और दुर्बलता की पूरी जानकारी देते थे। (५) महमूद और उसके सैनिकों में इस्लाम का प्रचार करने का अदम्य उत्साह था। वे उनका युद्ध धार्मिक युद्ध मानते थे और उसके लिये बलि देने को सदा तत्पर रहते थे।

महमूद का व्यक्तित्व और उसका मूल्यांकन—(१) महमूद एक महान् विजेता और साम्राज्य निर्माता था। उसने गजनी के छोटे से राज्य को अपनी विजयों से विशाल साम्राज्य में परिणित कर दिया जो पश्चिम में हमदान, इस्फहान और केस्पियन समुद्रतट से लेकर पूर्व में पंजाब तक फैला था और जो बगदाद के खलीफा के राज्य से भी बड़ा था। (२) महमूद बड़ा साहसी, वीर योद्धा और महान कुशल सेनापति था। उसने भारत और मध्यएशिया में अपने निरन्तर आक्रमणों और युद्धों में अपनी वीरता, सेनापतित्व, रण-कौशल और सैन्य संचालन से सफलता प्राप्त की। सेनानायक के नाते उसमें अदम्य उत्साह साहस, निर्भिकता और मानसिक व शारीरिक शक्ति थी। इससे वह अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाता था और उनमें आत्मविश्वास और दृढ़ता उत्पन्न करता था। उसने अपनी सैनिक प्रतिभा और योग्यता से अपनी सेना में अरब, तुर्क, अफगान आदि विभिन्न धर्मों व नस्लों के सैनिकों का कुशलता से समन्वय किया था। (३) महमूद बड़ा न्यायप्रिय सम्राट था। न्याय करने में वह बड़ा कठोर, निष्पक्ष और निर्भय था और प्रजा को न्याय देने में सदा तत्पर रहता था। पर वह हिन्दुओं के प्रति उनके विधर्मी होने से निष्पक्ष न्याय नहीं करता था। उसका न्याय-प्रेम हिन्दुओं के लिये मौन हो जाता था। (४) महमूद साहित्य और विद्या का उदार संरक्षक था, वह कवियों, लेखकों, विद्वानों और साहित्यकारों का आश्रयदाता था। उसकी राजसभा फिरदौसी, अलबरुनी, उतबी, फराबी, बैहाकी, अंसूरी, फारुखी, उजारी, असादीतुसी, असजुदी जैसे महान् साहित्यिक व्यक्तियों और कवियों से अलकृत थी। विद्या और ज्ञान के प्रसार के लिये महमूद ने गजनी में एक महाविद्यालय, विशाल पुस्तकालय और अजायबघर निर्मित किये थे। (५) महमूद कला का भी संरक्षक था। उसने गजनी में कलाकारों और शिल्पियों को प्रश्रय दिया और अपने देश व राज्य की कलात्मक प्रगति को आगे बढ़ाया। भारत से लाये शिल्पियों और धन का उपयोग उसने मसजिदों, विद्यालयों, भवनों, स्मारकों और समाधियों के निर्माण में किया। गजनी में उसने ऐसी कलापूर्ण मसजिद बनवाई जो स्वर्ग की वधू के नाम से प्रसिद्ध थी। (६) महमूद में बाहरी शारीरिक सुडौलता और बलिष्ठता थी पर शरीर सुन्दर होने की अपेक्षा कुरूप था। उसमें चारित्रिक बल था। वह दूरदर्शी, व्यवहारिक और दृढ़ संकल्प का व्यक्ति था। उसमें श्रेष्ठ आचरण और उच्चकोटि की धार्मिकता थी। वह इस्लाम धर्म के नियमों का पालन करता था और ईश्वर में दृढ़ विश्वास करता है। (७) महमूद महान् विजेता और साम्राज्य निर्माता तो था,

पर वह दुर्बल प्रशासक था। वही सारी आयु भर नवीन प्रदेशों को जीतता रहा, पर इन सभी प्रदेशों और साम्राज्य के विभिन्न भागों, प्रांतों और जिलों को संगठित और व्यवस्थित नहीं कर सका, वहाँ सक्षम प्रशासन स्थापित नहीं कर सका। वह रचनात्मक, कुशल दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और निपुण शासक नहीं था। (८) महमूद का सबसे बड़ा अवगुण उसकी धन लोलुपता और धन पिपासा थी। अपनी धन लिप्सा को शांत करने के लिये वह उचित-अनुचित सभी साधनों को अपनाता था। भारत पर निरंतर आक्रमण करने का उसका उद्देश्य भारत की अपार धन सम्पत्ति, रत्न आदि प्राप्त करना था। इसके लिये उसने भयंकर अमानुषिक क्रूर अत्याचार और नृशंस हत्याएँ कीं। यह महमूद के चरित्र पर गहरा कलंक है। इस पर भी महमूद अपनी विजयों, रण निपुणता, चरित्र, प्रतिभा और योग्यता से विश्व के महान् श्रेष्ठ सम्राटों में से है।

उतबी, अलबरुनी, तथा अन्य इतिहासकारों का मत है कि महमूद इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी था, उसमे धर्मान्धता थी और वह इस्लाम धर्म का प्रचारक भी था। उसने भारत में विधर्मी हिन्दुओं के अनेक नगरों, मंदिरों, पवित्र स्थानों को लूटा, विध्वंस किया और अनेकानेक मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा तथा असंख्य हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया। उसने तिलक और सुखपाल जैसे श्रेष्ठ हिन्दुओं को भी इस्लाम ग्रहण करने के लिये बलपूर्वक बाध्य किया। इस्लाम के धर्म प्रचार के कार्यों और जिहाद से उसने अपने साथियों को इस्लाम प्रसार और युद्ध के लिये प्रेरणा दी। महमूद इस्लाम धर्म का महान् नेता, धर्म प्रचारक और गाजी था।

कतिपय विद्वानों का यह मत भी है कि महमूद ने साम्राज्य विस्तार के लिये भारत पर आक्रमण किये। भारत के आक्रमण उसकी साम्राज्य विस्तार नीति के अंग थे। उसने पहिले नगरों और प्रदेशों की धन सम्पत्ति विध्वंस कर, लूटकर अपने शत्रुओं की आर्थिक दशा दुर्बल करदी। साथ ही निरीह जनता पर अमानुषिक अत्याचार और नृशंसता के कार्य कर लोगों को इतना अधिक आतंकित कर दिया कि वे महमूद या उसके प्रतिनिधि प्रशासकों के विरुद्ध विद्रोह न कर सकें और फिर उसने एक के बाद एक शक्तिशाली नरेशों को परास्त कर उनकी शक्ति और सत्ता नष्ट कर दिये। उसने छोटे और बड़े राजाओं का संघ बनाकर संगठित होने के लिये दीर्घकाल तक अवसर भी नहीं दिये। इसके अतिरिक्त भारत में साम्राज्य विस्तार और आक्रमण करने के लिये उसने पंजाब को अपने साम्राज्य में मिला लिया और उसे आधार बना लिया।

हिन्दूशाही राज्य—भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र और पंजाब में हिन्दूशाही नरेशों का राज्य था। इनमें जयपाल, आनन्दपाल, त्रिलोचनपाल, भीमपाल आदि प्रमुख राजा थे। इन्होने गजनी के सुलतान सुबुक्तगीन और महमूद से लोहा लिया और भारत पर उनके निरन्तर आक्रमणों को लोह दीवार बनकर रोकने का लगभग तीन वर्षों तक लगातार प्रयत्न किये। यद्यपि अनेक कारणों से वे युद्धों में परास्त हुए, पर देश व धर्म की रक्षा के लिये उनके ये संघर्ष प्रशंसनीय और प्रेरणादायक हैं।

अलबरुनी का भारत वर्णन—अलबरुनी महमूद गजनवी की राजसभा का एक प्रमुख विद्वान् और लेखक था और महमूद के आक्रमणों के समय वह महमूद के साथ भारत आया जाया करता था। इसलिये उसने तत्कालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दशा का आँखों देखा हाल लिखा है। उसने भारत के छोटे-छोटे प्रांतीय राज्यों, उनकी आपसी फूट, सामन्तशाही, राजनैतिक दुर्बलता, राजाओं की न्यायप्रियता, समाज में जातियों और उपजातियों की बाहुल्यता और विविधता, राजपूतों की सर्वश्रेष्ठता, बाल-विवाह, सती प्रथा, ऊंच-नीच की भावना, आदि कुरीतियाँ, हिन्दुओं का बहुदेववाद, और मूर्ति-पूजा, व अंधविश्वास, ज्ञान-विज्ञान शास्त्र तथा विविध विद्याओं पर हिन्दुओं के एकाधिकार की भावना और अभिमान, उनकी संकीर्णता आदि का वर्णन किया है। वह भारत की संस्कृति, धर्मशास्त्र, ज्ञान और दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित हुआ था और इनकी उसने प्रशंसा की है।

———

अध्याय ५

मुहम्मद् गोरी और भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना

गजनी साम्राज्य की शक्ति का ह्रास—सन् १०३० में महमूद गजनवी के देहावसान के बाद उसके दो पुत्रों मसूद और मुहम्मद में उत्तराधिकार के लिये युद्ध हुआ। उसमें मसूद मुहम्मद को परास्त कर गजनी का सुलतान बन गया। मसूद ने अपने पिता महमूद गजनवी की शानशौकत और साम्राज्य को बनाये रखा। इसी बीच खुरासान के तुर्क शासक तुगरिल बेग ने अपनी शक्ति और सत्ता में वृद्धि करली जिससे मसूद की शक्ति को खतरा उत्पन्न हो गया। फलत: मसूद ने तुगरिल पर आक्रमण किया और दोनों सेनाओं में भयकर युद्ध हुआ जिसमें मसूद परास्त हुआ और बाद में लाहोर की ओर भागा। पर उसकी सेना ने विद्रोह किया और उसे राजसिंहासन से अलग कर उसके भाई मुहम्मद को गजनी का सुलतान बनाया। सन् १०४१ में मसूद को कत्ल कर दिया गया, पर मसूद के पुत्र मादूद ने मुहम्मद का वध कर अपने पिता के कत्ल का बदला लिया और स्वय गजनी का सुलतान हो गया। थोड़े समय तक उसने राज्य किया। उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और शक्तिहीन थे। उनके शासन काल मे गजनी साम्राज्य की शक्ति का खूब ह्रास हुआ। महमूद गजनवी के वंश का अन्तिम शासक बहरामशाह था। सन् १०५२ मे उसकी मृत्यु के बाद गजनी में तुर्कों ने अपना अधिकार और सत्ता स्थापित करली।

गोरी राज्य का उत्कर्ष—गजनी और हिरान के बीच पर्वतीय क्षेत्र में गोर एक छोटी सी जागीर थी जिसे सन् १०१० में महमूद गजनवी ने जीत कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। गोर के जागीरदार और वहाँ के लड़ाकू अफगानों ने महमूद को उसके आक्रमणों और युद्धों मे बड़ा योग दिया। गजनी साम्राज्य के पतन के काल मे गोर के जागीरदार स्वतन्त्र शासक हो गये। ये शासक शसबानी वश के तुर्क थे। गजनी के अन्तिम शासक बहरामशाह ने अपनी पुत्री का विवाह गोर के तुर्क शासक कुतुबुद्दीन के साथ किया था। किन्तु अपने दामाद कुतुबुद्दीन से मतभेद होने के कारण बहरामशाह ने उसे कत्ल करवा दिया। इससे गोर और गजनी के राजवंश में अधिक वैमनस्य और शत्रुता बढ़ गयी। गोर के नये शासक सैफुद्दीन ने अपने भाई कुतुबुद्दीन की हत्या का बदला लेने के लिये गजनी पर आक्रमण किया। पर उसे परास्त होना पड़ा। वह बन्दी बना लिया गया और मार डाला गया। सैफुद्दीन के बाद उसका भाई अलाउद्दीन गोर का शासक बना। उसने अपने भाई सैफुद्दीन की पराजय व हत्या का बदला लेने के लिये गजनी पर आक्रमण किया। वह विजयी हुआ और उसने गजनी को खूब लूटा और विध्वस कर दिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के

बाद उसका पुत्र गोर का शासक बना। पर वह केवल दो वर्ष तक ही राज्य कर सका। उसके बाद उसका चचेरा भाई गयासुद्दीन गोर का शासक बना।

मुहम्मद गौरी—गयासुद्दीन ने गजनी पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया और अपने छोटे भाई मुइजुद्दीन मुहम्मदबिन साम को गजनी का शासक नियुक्त किया। यही मुइजुद्दीन भारतीय इतिहास में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के नाम से प्रसिद्ध है। अपने भाई और गोर के शासक गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद मुइजुद्दीन ने गोर को भी अपने अधिकार में कर लिया और अब उसने गोर और गजनी दोनों राज्यों को एक ही राज्य में संगठित कर लिया। मुहम्मद गोरी ने गजनी में अपनी शक्ति दृढ़ करके, उत्तरी भारत पर आक्रमण कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। क्योंकि वह साम्राज्यवादी और महत्वाकांक्षी सुलतान था।

मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय भारत की दशा-- महमूद गजनवी के समय भारत में जो राज्य थे, वे प्राय: नष्ट हो गये थे और अब नवीन राज्यों का उत्कर्ष हुआ जिनमें निम्नलिखित मुख्य थे।

राजनैतिक दशा

(१) **सिंध और मुलतान का मुस्लिम राज्य**—महमूद ने सिंध और मुलतान दोनों पर विजय पायी थी। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद गजनी के पतन के युग में सिंध और मुलतान के शासक स्वतन्त्र हो गये। सिंध में सुम्र जाति का मुसलमान शासक राज्य करता था। वह शिया सम्प्रदाय का अनुयायी था। मुलतान में शिया सम्प्रदाय के करमाथी मुसलमान शासक राज्य करते थे। इन्हें इस्मालिया शिया भी कहते थे।

(२) **पंजाब**—यहाँ गजनी के सुलतान का राज्य था और पंजाब गजनी राज्य का एक अंग था और लाहौर इसकी राजधानी था। यहाँ महमूद गजनवी के वंश का १५ वाँ शासक खुसरो या खुसरव मलिक जो नाम मात्र का गजनी का सुलतान था राज्य करता था। उसके हाथ से गजनी का सारा प्रदेश छीना जा चुका था। सन् ११६० में खुसरव मलिक का पिता खुसरबशाह से जब तुर्कों ने गजनी का राज्य छीन लिया था, तब वह पंजाब में भाग कर चला आया था और यहीं शासन करने लगा था।

सिंध, मुलतान और पंजाब राज्यों के साधन सीमित थे। ये शक्तिहीन थे और इन्हें स्थानीय भारतीयों का कोई सहयोग, श्रद्धा या भक्ति प्राप्त नहीं थी। इसीलिये किसी भी विदेशी आक्रमणकारी के लिये इन राज्यों को जीतना सरल था।

उत्तरी भारत में राजपूतों के विभिन्न छोटे-छोटे प्रांतीय राज्य थे। गुर्जर-प्रतिहारों की सार्वभौम शक्ति का पतन हो चुका था। इन राजपूत राज्यों में निम्नलिखित प्रमुख थे—

(३) **दिल्ली व अजमेर का चौहान राज्य**—बारहवीं सदी में अजमेर के चौहान वंश के राजपूत नरेश विग्रहराज या बिसलदेव ने दिल्ली, हांसी तथा पंजाब के पूर्वी भाग पर तुर्कों से युद्ध करके अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। दिल्ली उन दिनों प्रतिहारवंशीय शाखा के तोमरवंशीय राजपूत नरेश के अधिकार में थी जिसके राज्य की सीमा पंजाब में आधुनिक हरियाना प्रांत तक थी। अजमेर के चौहान नरेश

ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया था। मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय दिल्ली और अजमेर में पृथ्वीराज चौहान का राज्य था। वह बड़ा ही वीर प्रतापी और महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी नरेश था। उसने अपने पार्श्ववर्ती राजपूत नरेशों से युद्ध करके, उनके कुछ प्रदेशों पर अधिकार करके अपने राज्य और शक्ति की वृद्धि करली थी! वह अपने समय का सबसे महान एवं यशस्वी वीर सम्राट था। इसे भारतीय यश का अन्तिम सूर्य (The Last sun of Indian glory) कहा गया है। उत्तर पश्चिम में उसके साम्राज्य की सीमा पंजाब में स्थित गजनी सुलतान के राज्य से टकराती थी। हांसी, पाकपट्टम और भटिंडा उसके राज्य के सीमान्त दुर्ग थे। तुर्कों के अभियानों को रोकने के लिये इन दुर्गों को सेनाओं से अधिक दृढ़ और शक्तिशाली बना दिया गया था।

(४) **कन्नौज का राठोड़ राज्य**—दिल्ली के चौहान राज्य के पूर्व में कन्नौज में गहढ़वाल-राठोड़ राजपूतों का राज्य था। कन्नौज से काशी तक यह राज्य फैला हुआ था। यहाँ मुहम्मद गोरी का समकालीन राजा जयचन्द्र राठोड़ था। राजनीतिक और व्यक्तिगत कारणों से जयचन्द्र और पृथ्वीराज चौहान परस्पर प्रतिद्वन्दी थे और इनमें दीर्घकाल तक संघर्ष चलता रहा। राठोड़ और चौहान दोनों वंशों का वैमनस्य परम्परागत हो गया था। पृथ्वीराज चौहान ने जयचन्द्र की कन्या संयोगिता को स्वयंवर सभा से अपहरण कर लिया था। इससे दोनों में अत्यधिक वैमनस्य और ईर्षा उत्पन्न हो गयी थी।

(५) **बंगाल और बिहार का सेन राज्य**—बारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में बंगाल के पाल नरेशों की क्षीण शक्ति और अयोग्यता का लाभ उठाकर विजयसेन नामक सामन्त ने बिहार में सेन वंश का राज्य स्थापित कर लिया। सन् ११५६ में विजयसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बल्लालसेन राजा बना। उसने बंगाल, बिहार और कलिंग में सेन राज्य और शक्ति की वृद्धि की। मुहम्मद गोरी का समकालीन सेन नरेश लक्ष्मणसेन था जो सन् ११७० में राजसिंहासन पर बैठा था। वह अधिक प्रभावशाली नरेश था। इसके समय सेन राज्य में पारस्परिक फूट और संघर्ष बढ़ गये थे।

(६) **गुजरात का बघेल या सोलंकी राज्य**—दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यहाँ सोलंकी राजपूत वंश का राज्य स्थापित हुआ था। इसकी राजधानी अन्हिलवाड़ा थी। महमूद गजनवी के समय यहाँ भीमदेव राजा था। उसके बाद जयसिंह, सिद्धराज्य और कुमारपाल प्रसिद्ध राजा हुए। सन् ११७३ में कुमारपाल की मृत्यु के बाद सोलंकी राज्य की शक्ति क्षीण हो गयी। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय यहाँ भीम द्वितीय राज्य करता था। वह एक दुर्बल शासक था और उसका राज्य गुजरात और सौराष्ट्र तक ही सीमित था।

(७) **बुन्देलखण्ड का चन्देल राज्य**—इस युग में उत्तरी भारत के संघर्षशील राजपूत राज्यों में बुन्देलखण्ड के चन्देल या जेजाक भुक्ति के चन्देल राज्य का भी विशेष महत्व है। महमूद गजनवी के समय यहाँ विद्याधर चन्देल राजा था जिसकी शक्ति क्षीण करने के लिये महमूद ने कालिंजर पर दो बार आक्रमण किये। विद्याधर के बाद चन्देल-शक्ति क्षीण हो गयी थी। पर मदन वर्मन और परमर्दिदेव के शासनकाल में चन्देल राज्य का पुनः उत्कर्ष हुआ। परमर्दिदेव पृथ्वीराज चौहान का समकालीन था।

सन् ११८२ में पृथ्वीराज चौहान ने परमर्दिदेव को परास्त करके उसके राज्य का बहुत बडा प्रदेश छीन कर अपने राज्य में मिला लिया था। इसी युद्ध में बुन्देलखण्ड के दो योद्धाओं, आल्हा और ऊदल ने वीरता के कौशल दिखाकर वीरगति पायी थी।

(८) **दक्षिण भारत के राज्य**—दक्षिण भारत में चालुक्य और चोल राजवंशों का पतन हो चुका था। इनके स्थान पर तीन अन्य प्रांतीय राज्यों का उत्कर्ष हुआ था—देवगिरी, वारंगल तथा द्वारसमुद्र के राज्य। बारहवीं सदी में देवगिरी में यादव राज्य शक्तिशाली हो गया और पूर्वी समुद्रतट पर वारंगल में काकातीय राज्य तथा दक्षिण में द्वारसमुद्र में होयसल राजवंश का राज्य शक्तिशाली हो गया था। सुदूर-दक्षिण में मदुरा में पांड्य, और केरल प्रदेश में चेर राजवंश का क्षीण अस्तित्व था। बारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया तब दक्षिण के ये राज्य पारस्परिक संघर्ष में रत थे। परन्तु उत्तरी भारत के आक्रमणों के क्षेत्रों से दूर होने के कारण तथा आवागमन की असुविधा से ये राज्य तुर्क आक्रमणों और उनके दुष्परिणामों से सुरक्षित रह सके।

(९) **राजनैतिक दुर्बलताएँ और दोष**—समस्त भारत छोटे-छोटे प्रादेशिक राज्यों में विभक्त था और उनमें पारस्परिक द्वेष, ईर्षा, फूट और मनोमालिन्य था जिसकी अग्नि में वे भस्मीभूत हो रहे थे। उनमें राष्ट्रीय एकता, राजनैतिक दृढ़ता, संगठन और जागरुकता का सर्वथा अभाव था। राजपूत राज्य परस्पर एक दूसरे की सहायता करने की अपेक्षा, बाह्य शत्रुओं और आक्रमणकारियों को सहायता और सहयोग देने के लिये प्रस्तुत रहते थे। उनमें पारस्परिक फूट और वैमनस्य तथा प्रतिशोध की भावना इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि एक राज्य अपना कुछ अहित सहन करके भी दूसरे राज्य या अहित करना चाहता था। विदेशी आक्रमणकारियों और तुर्कों से संयुक्त रूप से लोहा लेने की अपेक्षा वे अपने पड़ौसी राज्यों पर आक्रमण होते और उन्हें परास्त होते देखकर प्रसन्न होते थे। जातीयता और कटुता का यह संकीर्ण और हीन रूप विकसित हो रहा था। इन सब तत्वों ने राष्ट्र भक्ति की भावनाओं को कुचल दिया था और देश में सार्वभौम शक्ति के उत्कर्ष और दृढ़ केन्द्रीय सत्ता और शासन के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था।

राजाओं में स्थानीय प्रशंसा और पद-वृद्धि की भूख थी। वे चारणों और भाटों की चाटुकारिता, नर्तकियों की श्रृङ्गारिकता, अतृप्त मन की कामुकता की सन्तुष्टि में तथा राजप्रासादों की विलासिता में डूबे रहते थे। इससे शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गयी थी। तुर्कों के अभियानों को रोकने की दिशा में वे न तो सोचते थे और न ध्यान देते थे। सामन्त प्रथा के कारण, जनता सामन्तों के अत्याचारों से पीड़ित और आतंकित थी। इससे वह राजाओं और विदेशियों के आक्रमणों के प्रति उदासीन थी। राजनैतिक फूट और वैमनस्य इतनी गहराई तक व्याप्त थे कि और राजपूतों का जातिगत अहंकार इतना बढ़ गया था कि वे परस्पर संधि करके तुर्कों को भारत से बाहर निकालकर सीमा की सुरक्षा की कोई स्थायी व्यवस्था करने में सर्वथा अक्षम थे। राजपूत नरेशों ने तुर्कों की आन्तरिक स्थिति का ठीक पता लगाने के लिये गुप्तचर नहीं भेजे। गुप्तचर विभाग का समुचित संगठन नहीं किया गया। इन राजाओं ने न

तो दृढ़ विदेशी नीति अपनाई और न सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध ही किया। सुरक्षा के लिये उनकी सेना भी अपर्याप्त और असंगठित थी। स्थायी सेना की संख्या न्यून थी। बड़े-बड़े राजा युद्ध के समय या विदेशी आक्रमणों को रोकने के लिये सामन्तों और अधीनस्थ राजाओं की सेना पर अधिक आश्रित रहते थे। इससे सेना में नियमित प्रशिक्षण, अनुशासन और संगठन का अभाव रहता था। विदेशी आक्रान्ताओं से नरेशों और सेनापतियों ने अभी भी संगठन, एकता और अश्वारोही सेना का अधिक उपयोग का पाठ नहीं सीखा था। अभी भी युद्ध में हस्ति सेना पर अधिक विश्वास किया जाता था और कुशल अश्वारोही सेना के सामने हस्ति सेना का ठहरना दुष्कर था। लोग सामरिक प्रवृत्ति के नहीं थे। केवल राजपूतों पर ही युद्ध का भार था। देश के बहुसंख्यक लोग न तो युद्ध-कला से अवगत ही थे और न देश की सुरक्षा के प्रति सजग ही। इसके अतिरिक्त पंजाब गजनी साम्राज्य का अंग बन गया था और विदेशियों के हाथों में चला गया था। इससे भी देश की रक्षा खतरे में पड़ गयी थी।

सामाजिक दशा—समाज में भी जातियों की बाहुल्यता और विविधता के कारण एकता, सहयोग और संगठन का सर्वथा अभाव था। समाज में विघटन की प्रवृत्तियाँ बलवती थीं। अनेक कुरीतियों और अन्धविश्वास घर कर रहे थे। सतीप्रथा, बालविवाह, बहु-विवाह आदि का अधिक प्रचार था।

धार्मिक दशा—समाज में अनेक सम्प्रदाय और मतमतान्तर थे। अनेक हिन्दू धर्म या पौराणिक धर्म में भी अनेक भेद थे। बहुदेववाद, अवतारवाद और मूर्तिपूजा का बाहुल्य था। धर्म केवल परम्पराओं, बाह्य आडम्बरों, क्रिया-विधियों, तन्त्र-मन्त्र, आदि का एक समूह मात्र रह गया था। धर्म की विभिन्नता और सम्प्रदायों की विविधता से जनसाधारण में धर्म और संस्कृति की सुरक्षा के हेतु चेतनता, उमंग और जोश नहीं था। जेहाद की प्रेरणा और दृढ़ भावना वाले विदेशी आक्रमणकारियों के लिये ऐसी दशा लाभप्रद थी।

आर्थिक दशा—महमूद गजनवी द्वारा निरन्तर लूटते रहने पर भी भारत की आर्थिक दशा सन्तोषप्रद थी, क्योंकि आय के स्रोत नष्ट नहीं हुए थे। देश अभी भी धन-धान्य से परिपूर्ण था, सम्पन्नता और समृद्धि थी। विभिन्न व्यवसाय और उद्योग अभी भी प्रगतिशील थे। नगरों और राजधानियों में सुखी और सम्पन्न जीवन हिलोरे ले रहा था। विदेशी आक्रान्ताओं के लिये ये प्रलोभन पर्याप्त थे।

मुहम्मद गोरी के भारतीय आक्रमणों का उद्देश्य

मुहम्मद गोरी के भारतीय अभियानों के लक्ष्य निम्नलिखित थे—

१. **गोरी साम्राज्य का विस्तार**—मुहम्मद गोरी साम्राज्यवादी और महत्वाकांक्षी नरेश था। वह अपने गोर के छोटे से सीमित राज्य से सन्तुष्ट नहीं था। वह भारत की राजनैतिक, सैनिक, और सामाजिक दुर्बलताओं और दोषों का लाभ उठाकर, भारत पर निरन्तर आक्रमण कर अपने साम्राज्य का विस्तार भारत में करना चाहता था।

२. **अवशिष्ट गजनी साम्राज्य का अन्त**--गजनी और गोर के राजवंशों में पीढ़ियों से शत्रुता और संघर्ष चला आ रहा था। इसमें गोर के नरेशों ने विजय पायी थी और अब मुहम्मद इस विजय को और भी आगे बढ़ाना चाहता था। वह गजनीवंश और उसके राज्य का समूल नाश करना चाहता था। गजनी के शासक गोर नरेशों से भयभीत होकर भारत में चले आये थे और पंजाब में राज्य करते थे। लाहौर उनकी राजधानी थी। मुहम्मद पंजाब में इस अवशिष्ट गजनीवंश और उसके राज्य का संहार करना चाहता था। इसी समय सिंध और मुलतान में इस्माइलिया शिया मुसलमानों का राज्य था। यह इस्लामी राज्य भी गोर राज्य के विरोध में था। मुहम्मद गोरी की यह धारणा थी कि किसी भी समय पंजाब का गजनी राज्य और मुलतान का यह इस्माइलिया राज्य उसके विरुद्ध संगठित होकर उस पर आक्रमण कर सकता है और प्राचीन गजनी राज्य को पुन: हस्तगत करने का प्रयास कर सकता है। ऐसी दशा में मुहम्मद ने पंजाब और मुलतान पर आक्रमण कर इस खतरे का अन्त कर देना अधिक अच्छा समझा।

३. **शक्ति संचय और साधनों की वृद्धि**—मुहम्मद गोरी चतुर्दिक शत्रुओं से घिरा होने के कारण उनके दमन के लिये अपनी शक्ति को अधिक दृढ़ और साधनों को अधिक विस्तृत करना चाहता था। एशिया में पश्चिम में ख्वारिज्म के बादशाह से उसका संघर्ष चल रहा था और खुरासान का राज्य भी मुहम्मद का शत्रु था। पूर्व में पंजाब और मुलतान के मुस्लिम शासक भी उसके शत्रु थे। ऐसी दशा में उसने दृढ़ता से अपनी शक्ति-संचय करने का प्रयास किया। पश्चिम और उत्तर में वह शक्ति और सीमा में विस्तार नहीं कर सकता था, क्योंकि वहाँ सशक्त राज्य थे और उसके बन्धु को उनसे संघर्ष करने में असफलता प्राप्त हो चुकी थी। ऐसी दशा में पंजाब और मुलतान तथा उत्तरी भारत के प्रदेश जहां राजनैतिक दुर्बलताएं थीं, मुहम्मद गोरी को अपने अभियान करने और शक्ति तथा राज्य सीमा में वृद्धि करने के लिये अधिक उपयुक्त प्रतीत हुए।

४. **गोरी राज्य के और स्वयं के गौरव की वृद्धि** — गोर एक नवोदित इस्लामी राज्य था। इस्लामी जगत में उसके यश-गौरव की, सम्मान और प्रतिष्ठा की अभीवृद्धि के हेतु मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किये। गोरी राज्य की श्रीवृद्धि के साथ-साथ वह इस्लामी जगत में और एशिया में अपना भी यश बढ़ाना चाहता था। भारत पर निरन्तर अभियान करके वह अपना नाम अमर कर देना चाहता था।

५. **इस्लाम की सेवा और प्रचार** —मुहम्मद गोरी एक कट्टर इस्लाम का अनुयायी था। इस्लाम की सेवा करना, काफिरों में उसका प्रचार करना, मूर्ति पूजा का विनाश करना, और मूर्ति पूजकों को बलात् इस्लाम का अनुयायी बनाना वह अपना कर्तव्य समझता था। भारत में मूर्ति-पूजा का विनाश और इस्लाम का प्रसार उसके लिये एक बड़ा आकर्षण था।

६. **धन सम्पत्ति की प्राप्ति**--भारत अपनी अतुल धन सम्पत्ति के लिये प्रख्यात था। मुहम्मद इसे प्राप्त करना चाहता था। भारत से प्राप्त इस सम्पत्ति तथा युद्ध सामग्री से वह खुरासान, ख्वारिज्म आदि अन्य राज्यों के शत्रुओं से सरलता से युद्ध करके उन्हें परास्त कर सकता था।

७. **मुस्लिम राज्य की स्थापना**—भारत पर अभियान करके वहां से अपार धन प्राप्त करना, वहां की मूर्तियों और मन्दिरों को तोड़फोड़ कर,वहाँ इस्लाम का प्रसार करना, भारत में युद्ध के लिये अपने साथियों और सैनिकों को धार्मिक प्रेरणा देना, जेहाद के लिये प्रोत्साहित करना, मुहम्मद जैसे महत्वाकांक्षी आक्रमणकारी के लिये स्वाभाविक था। पर इन सबके अतिरिक्त मुहम्मद गोरी का प्रमुख लक्ष्य भारत में एक मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना करना था। उसके पूर्व के आक्रमणकारियों ने इस दिशा में कभी गम्भीरता से सोचा भी नहीं और न दृढ़ता से प्रयास ही किये। भारत में निरंतर आक्रमणों द्वारा विजय प्राप्त कर वहां मुस्लिम साम्राज्य स्थापित कर मुहम्मद गोरी इतिहास में अमर हो गया।

सत्य तो यह है कि मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का प्रमुख लक्ष्य राजनैतिक था। धन प्राप्ति, मूर्ति-पूजा का विनाश और इस्लाम का प्रचार उसके लिये गौण थे। यदि भारत मूर्ति पूजक देश न भी होता, तो भी यहां राजनैनिक, सामाजिक और धार्मिक दुर्बलताओं और दोषों से लाभ उठाकर मुहम्मद भारत पर आक्रमण करने से कभी नहीं चूकता। धन-प्राप्ति, मूर्ति पूजा का विनाश और इस्लाम के प्रसार ने मुहम्मद को आक्रमण करने के लिये अधिक उत्साहित और उत्तजित किया। ये सब सहायक कारण हैं। मुहम्मद गोरी के अभियानों के मार्गों और कार्य पद्धति से यह स्पष्ट है कि उसका वास्तविक उद्देश्य और संकल्प भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करना था।

मुहम्मद के भारत पर आक्रमण

१. **मुलतान पर आक्रमण**—सन् ११७५ में मुहम्मद ने मुल्तान पर आक्रमण किया, क्योंकि—

(१) भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर मुलतान सबसे अधिक दुर्बल राज्य था।

(२) गजनी से भारत आने के लिये मुलतान का मार्ग सरल और सुगम था।

(३) मुलतान का शासक शिया था और मुहम्मद ने सुन्नी होने से इसके विरुद्ध अपने सैनिकों में धार्मिक प्रेरणा दी थी।

(४) मुलतान की विजय के बाद उसके सैनिक दोहरे जोश से भारत के अन्य प्रदेशों की ओर सरलता से आगे बढ़ सकते थे। मुलतान मे उत्तर और दक्षिण की ओर भारत पर आक्रमण करना सरल था, विशेष कर सिंध और पंजाब पर। इसलिये गजनी पर अधिकार करने के दो वर्ष बाद ही मुहम्मद ने मुलतान पर आक्रमण किया, उसे घेर लिया और वहां के शासक को परास्त कर उसने मुलतान पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

२. **सिंध में उच्छ पर आक्रमण**—(सन् ११७५) मुलतान विजय करने के बाद मुहम्मद अपनी विजय वाहिनी सहित उच्छ की ओर आगे बढ़ा। उच्छ ऊपरी सिंध का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार यहाँ भट्टी राजपूतों का राज्य था। यहाँ की रानी ने मुहम्मद के वचनों के जाल में फंस कर अपने पति की हत्या कर दी। इससे उच्छ नगर तथा दुर्ग में मुहम्मद ने सरलता से प्रवेश कर वहां अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। मुहम्मद ने रानी को बन्दी बना कर गजनी भेज दिया और उसकी राजकन्या से विवाह कर लिया। ऐतिहासिक खोजों से यह प्रमाणित हो चुका

है कि इस समय न तो सिंध में और न उच्छ में कहीं भी राजपूतों का राज्य नहीं था और न वहाँ भट्टी राजपूत ही थे। इस समय उच्छ करमाथी मुसलमान शासक के अधिकार में था और इसे मुहम्मद ने विश्वासघात से परास्त कर उच्छ पर अपना अधिकार कर लिया था। फरिश्ता की उच्छ विजय की गाथा केवल एक मनगढ़ंत कथा है जो मुस्लिम सैनिकों को प्रेरणा देने के लिये और मुहम्मद गोरी के प्रभुत्व और यश के प्रसार के लिये प्रचलित की गयी थी।

३. **शेष सिंध विजय**--ऊपरी सिंध को सन् ११७५ में जीत लेने के पश्चात् सन् ११८२ में मुहम्मद गोरी ने शेष सिंध को भी जीत लिया और वहां का देवल बन्दरगाह तथा पूर्ण समुद्रतट तक का क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया।

४. **गुजरात पर आक्रमण**--सन् ११७८ में मुहम्मद ने गुजरात पर आक्रमण किया क्योंकि (i) उसकी धारणा थी कि गुजरात पर विजय करके वह गुजरात के अधीनस्थ पूर्वी राजस्थान के राज्यों पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लेगा।

(ii) गुजरात से पूर्वी राजस्थान होते हुए गंगा-यमुना के प्रदेश पर आक्रमण करना सरल था।

(iii) सदियों की व्यवसायिक प्रगति और विदेशी सामुद्रिक व्यापार से गुजरात अपनी अपार धन सम्पत्ति के लिये प्रसिद्ध था। इसे प्राप्त कर मुहम्मद अपने अभियानों और युद्धों का व्यय चला सकता था।

(iv) गुजरात और पूर्वी राजस्थान पर अधिकार हो जाने से पंजाब पर सुगमता से आक्रमण करके वहाँ के गजनीवंश के शासक खुसरो मलिक को सरलता से परास्त किया जा सकता था।

(v) गंगा-यमुना के भीतरी प्रदेश में प्रवेश करने के लिये पृथ्वीराज चौहान के राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित दुर्ग पंक्ति को भेदने मे जो सामरिक श्रम अनिवार्य था, वह बच जाता और उसके राज्य पर उस ओर से हमला किया जा सकता था जिस ओर उसकी सुरक्षा व्यवस्था शिथिल थी।

इन कारणों से मुहम्मद ने गुजरात पर आक्रमण किया। रेगिस्तान की अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए वह गुजरात राज्य की सीमा में प्रविष्ट हुआ। पर वहां के युवक नरेश मूलराज ने विशाल सेना से मुहम्मद का युद्ध में सामना किया और उसे बुरी तरह से परास्त कर दिया। मुहम्मद वहाँ से अपनी प्राण रक्षा के लिये अत्यंत ही तीव्र गति से भागा। परन्तु राजपूतों ने उससे भी तीव्रगति से उसका पीछा किया और उसके अनेकानेक सैनिकों को धराशायी कर दिया। इस पराजय से मुहम्मद की भारत विजय की योजना तो क्षत-विक्षत हुई ही, पर वह इतना अधिक आतंकित हो गया था कि उसने बीस वर्षों तक अन्हिलवाड़ा और गुजरात पर आक्रमण करने का विचार ही त्याग दिया।

५ **पेशावर पर आक्रमण और अधिकार** (सन् ११७९)गुजरात में पराजित होने के बाद, हतोत्साह न होते हुए, मुहम्मद ने पेशावर और पंजाब से भारत पर आक्रमण करने की और आगे बढ़ने की योजना बनाई। अतएव उसने सन् ११७९ में पेशावर पर जो भारत का प्रवेश द्वार था, आक्रमण किया। पेशावर पंजाब के शासक खुसरो

मलिक के अधीन था। मलिक के अयोग्य और शक्तिहीन होने से मुहम्मद ने सुगमता से पेशावर पर अपना अधिकार कर लिया।

(६) **पंजाब पर अभियान और विजय तथा लाहौर पर अधिकार**–सन् ११८१ में उसने पंजाब की राजधानी लाहौर पर आक्रमण किया। खुसरोमलिक उसका सामना करने में असमर्थ था इसलिये उसने मुहम्मद गोरी से संधि कर ली और अपने चार वर्ष के पुत्र को उसके पास धरोहर के रूप में रख दिया। मुहम्मद इससे संतुष्ट नहीं हुआ। उसने सन् १०८५ में लाहोर पर फिर असफल आक्रमण किया और सियालकोट तक का प्रदेश हस्तगत कर लिया। वहाँ उसने एक दुर्ग निर्मित कर अपनी स्थिति दृढ कर ली। इसी बीच उसने खुसरो मलिक के शत्रु काश्मीर नरेश से मैत्री कर ली और सन् १०८६ में फिर लाहोर पर आक्रमण किया। इस समय काश्मीर नरेश से उसे सहायता प्राप्त हुई थी। पर फिर भी शीघ्र ही विजय की आशा न देखकर उसने कूटनीति से काम लिया और संधि करने के बहाने लाहोर के शासक खुसरो मलिक को अपने शिविर में आमंत्रित कर बन्दी बना लिया और उसे गोर भेज दिया। वहाँ ११९२ में उसका वध कर दिया गया। अब पंजाब और लाहौर पर मुहम्मद गोरी का आधिपत्य हो गया। इससे उसका गंगा-यमुना के प्रदेश में आगे बढ़ने और भारत विजय करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। लाहौर केन्द्र बनाकर उसने अपनी शक्ति दृढ़ कर ली। इसके अतिरिक्त, अब मुहम्मद गोरी के भारत में स्थित सभी मुस्लिम प्रतिद्वंदी और शासकों का भी अन्त हो गया था। अब उसने राजपूतों और हिन्दू नरेशों से युद्ध करने और विजय प्राप्त करने का निर्णय किया और योजना बनाई। अब राजपूतों से संघर्ष अनिवार्य और अवश्यंभावी हो गया।

(७) **तराइन का प्रथम युद्ध और पृथ्वीराज के हाथों मुहम्मद गोरी की पराजय (सन् ११९१)**–पंजाब विजय के बाद तीन वर्ष तक अभियान और युद्ध की तैयारी करने के बाद मुहम्मद गोरी ने सन् ११८९ में दिल्ली के राजपूत सम्राट पृथ्वीराज चौहान के राज्य की सीमा के भटिंडा दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के दुर्गरक्षक राजपूतों के परास्त होने पर मुहम्मद गोरी ने भटिंडा पर अपना अधिकार कर लिया और वहाँ अपने बारह सहस्र सैनिकों को सुरक्षा और व्यवस्था के हेतु रखकर वह गजनी लौट गया। जब पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गोरी की इस विजय और आधिपत्य की खबर मिली तब वह एक विशाल सेना लेकर दिल्ली से भटिंडा की ओर बढ़ा। मुहम्मद गोरी भी तीव्र गति से अपनी विशाल सेना लेकर लौट पड़ा। थानेश्वर और कर्नाल के मध्य, थानेश्वर से लगभग १४ किलोमीटर दूर तराइन (आधुनिक तरावरी) के मैदान में सन् ११९१ में मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान दोनों की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अनेक राजपूत नरेशों ने पृथ्वीराज चौहान को सैनिक और आर्थिक सहायता प्रदान की थी। फरिश्ता के अनुसार पृथ्वीराज की सेना में इस समय दो लाख अश्वारोही और तीन सहस्र हाथी थे। मुहम्मद गोरी ने बड़ी वीरता और साहस से पृथ्वीराज का सामना किया। राजपूत सैनिकों ने प्रचंड वेग से उसकी सेना के दोनों पार्श्व भागों पर भयंकर आक्रमण किया। उसकी सेना इस आक्रमण को न रोक सकी और वह अस्त-व्यस्त हो गयी। इसी बीच रणक्षेत्र में मुहम्मद गोरी

को पृथ्वीराज के भाई गोविंदराज ने उससे युद्ध करने की चुनौती दी। इस द्वंद्व युद्ध में गोरी ने गोविंदराज के मस्तक और मुंह पर तलवार से प्राणघातक वार किया। इससे गोविन्दराज का जबडा टूट गया और मुँह पर गहरा आघात लगा। पर उसने अपने जबड़े को बांधकर मुँह को शीघ्र ही ठीक कर गोरी को युद्ध क लिये फिर ललकारा। अब इस युद्ध में गोविन्दराज ने गोरी की गर्दन और भुजा पर तलवार से इतना गहरा प्राणघातक वार किया कि आघात की भयंकरता और वेदना की तीव्रता से वह विह्वल हो उठा और मूर्छित होकर अपने अश्व पर से गिर ही रहा था कि पीछे से एक खिलजी सैनिक ने उसे अपनी भुजाओं में पकड़ लिया और उसे अपने अश्व पर बिठाकर तीव्र गति से रण-क्षेत्र के बाहर ले भागा। मिन-हाज-उस-सिराज ने अपने ग्रंथ में इस घटना का वर्णन किया है। गोविन्दराज ने राजपूतों के रण-क्षेत्र के नियमों के अनुसार घायल और मूर्छित होते हुए शत्रु पर दूसरा प्राणघातक वार नहीं किया और गोरी को जाने दिया। अन्यथा तराइन के प्रथम युद्ध में ही मुहम्मद गोरी का अन्त हो जाता।

मुहम्मद की सेना परास्त होने पर मुहम्मद के साथ ही रणक्षेत्र से भाग खड़ी हुई। लगभग साठ कीलोमीटर तक राजपूतों ने इस भागती हुई सेना का पीछा किया। इसमें राजपूतों ने सरहिंद दुर्ग पर आक्रमण कर उसे जीत लिया और भटिंडा को उन्होंने पुन: अपने अधिकार में कर लिया।

मुहम्मद गोरी अपनी इस करारी पराजय से अधिक संतप्त और क्रोधित हुआ और अपनी पराजय के लिये उसने अपने सेनानायकों को उनकी लापरवाही के लिये बुरी तरह फटकारा, उनकी भर्त्सना की और अफगान, खिलजी और खुरासानी नायकों को अपमानित भी किया और अनेकों को कारागृह में डाल दिया। अब उसने पराजय का बदला लेने और नवीन अभियान करने के लिये पूर्ण रूपेण सामरिक तैयारियां प्रारम्भ कर दी।

(८) तराइन का द्वितीय युद्ध और पृथ्वीराज की पराजय (सन् ११९२)—यदि एक ओर मुहम्मद अपनी भीषण पराजय का प्रतीकार करने के लिये पूर्ण तैयारियां कर रहा था, तो दूसरी ओर पृथ्वीराज और अन्य राजपूत अपनी विजय के मद में उन्मत्त हो शत्रु को हीन समझकर विलास में मग्न हो गये थे। उन्होंने यह कल्पना नहीं की थी कि मुहम्मद इतनी बुरी तरह परास्त होने के बाद भी शीघ्र ही भारत पर आक्रमण कर देगा। अतएव उन्होंने युद्ध के हेतु कोई विशेष तैयारियाँ नहीं की थी।

पूर्ण तैयारी के बाद एक लाख बीस हजार सैनिकों की एक दृढ़ सुसंगठित और विशाल सेना लेकर सन् ११९२ में मुहम्मद गोरी ने भारत की ओर प्रस्थान किया। लाहोर पहुँचकर उसने मार्ग की थकान भी दूर की और युद्ध की अवशेष पूर्ण तैयारी भी कर ली। इसी बीच मुहम्मद ने एक कूटनीति की चाल भी पृथ्वीराज के साथ चली। उसने पृथ्वीराज को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिये संदेश भेजा। पृथ्वीराज ने उत्तर दिया कि वह भागते हुए शत्रु को अभयदान देने का अभ्यस्त है। अत: सुलतान अपने और अपनी सेना के प्राणरक्षा हेतु स्वदेश लौट सकता है। इसी बीच मुहम्मद गोरी लाहोर से प्रस्थान कर तराइन तक अपनी सेना

ले आया। यहां आकर उसने फिर एक संदेश पृथ्वीराज को भेजा कि वह तो अपने बड़े बंधु का सेवक है और उसकी आज्ञा के बिना न तो युद्ध ही कर सकता है और न पीछे ही लौट सकता है और अब वह उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में है। इस प्रकार मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को भुलावे में रखा और इसी बीच उसने पृथ्वीराज और राजपूतों की दुर्बलताओं, दोषों और वास्तविक शक्ति की खोजबीन कर ली और युद्ध नीति तथा सैन्य संचालन में संलग्न रहकर अब युद्ध करने की पूर्ण रूप से तैयारी कर ली और फिर पृथ्वीराज को सूचना भेज दी कि उसके भाई ने युद्ध करने की आज्ञा दे दी है। इस प्रकार पृथ्वीराज ने कूटनीति के जाल में फसकर अपनी सामरिक अदूरदर्शिता से मुहम्मद गोरी को पूर्ण तैयारी कर तराइन के मैदान तक आगे बढ़ आने का और पूर्ण रूप से युद्ध की तैयारियां करने का अवसर दिया।

इतना होने पर भी पृथ्वीराज शीघ्र ही सतर्क हो गया और उसने अनेक राजपूत नरेशों और सामन्तों को युद्ध का निमंत्रण देकर एक विशाल सेना एकत्रित कर ली। १५० राजपूत नरेश युद्ध के लिये एकत्रित हो गये। मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार पृथ्वीराज के पास इस समय पांच लाख अश्वारोही और तीन सहस्र हाथी थे। पदाति सैनिकों की तो गिनती ही नहीं थी। यह एक राष्ट्रीय युद्ध था। पर इस राष्ट्रीय युद्ध मे उत्तरी भारत का एक शक्तिशाली नरेश, कन्नोज का राजा जयचंद्र सम्मिलित नहीं हुआ था। वह पृथ्वीराज से खार खाये बैठा था। उन दोनो में पारस्परिक शत्रुता और वेमनस्य था। क्योंकि पृथ्वीराज स्वयंवर सभा से जयचंद्र की कन्या संयोगिता को हर ले गया था। "पृथ्वीराज रासो" ग्रंथ के रचयिता चन्दबरदाई ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि जयचन्द राठौड़ ने मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया था। परन्तु इस तथ्य का उल्लेख तत्कालीन किसी भी मुस्लिम इतिहासकार ने नहीं किया है। चन्दबरदाई के कथन की सत्यता संदिग्ध है। आधुनिक इतिहासकारो का मत है कि मुहम्मद गोरी का पृथ्वीराज पर द्वितीय आक्रमण उसके पराजय से बदले की भावना से प्रेरित था, गोरी की सामरिक प्रतिक्रिया का फल था।

तराइन के रणक्षेत्र में पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी की सेनाओं मे भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुहम्मद गोरी ने रणकुशलता और चतुर सेन्यसंचालन से काम लिया। उसने सुदृढ व्यूह-रचना की। उसने अपनी सेना के पांच भाग किये। मध्य के भाग की सेना को पीछे सुरक्षित रखा, इसमें सैनिक झंडे, शामियाने, हाथी आदि थे। सेना के शेष चार भागों में जिसमें चुने हुए, तपे-तपाये अश्वारोही सैनिक थे, राजपूतों की सेनाओं पर चारों ओर से आक्रमण करने के लिये भेजा। और उन्हें साथ ही यह आदेश भी दिया कि वे शत्रु की पकड़ से दूर रहें ताकि वह अपने हाथियों का समुचित उपयोग न कर सके और न संगठित ढंग से लड़ ही सके। गोरी की सेना का यह आक्रमण अत्यन्त तीव्रगति और प्रहार से हुआ। राजपूत बड़ी वीरता और साहस से लड़ रहे थे। उन्हें भुलावा देने के लिये मुहम्मद ने अपनी पूर्व निश्चित रणनीति के अनुसार सेना के चारों भागों को यह आदेश दिया कि वे युद्ध स्थल क्षेत्र से पलायन का अभियान करते हुए बड़ी सतर्कता से पीछे हट जांय। जब लड़ते हुए राजपूतों ने गोरी

की सेना को पलायन करते हुए देखा, तब वे युद्ध को धीमाकर अस्त व्यस्त हो गये। इसी बीच गोरी ने मध्य की सुरक्षित सेना को राजपूतों पर आक्रमण करने के लिये भेजा। पलायन करती हुई सेना की टुकड़ियाँ भी लौटने लगीं। दिवस का अवसान समीप था। एक ओर सहस्रों ताजे अश्वारोही सैनिक और दूसरी ओर दिनभर के युद्ध में क्लांत सैनिक। परिणाम निश्चित ही था। बहुसख्यक होने और अत्यधिक वीरता और साहस से लड़ने पर भी ऐसी दशा में राजपूत पराजित हुए। राजपूत सैनिकों में मृत्यु तथा विनाश फैल गया। वे परास्त हुए और युद्धक्षेत्र से भागने लगे। पृथ्वीराज को उसके सामन्तों ने परामर्श दिया कि वह दिल्ली की ओर भाग कर शत्रु का सामना करने के लिये अन्य सेना को संगठित करने का प्रयास करे। इसलिये पृथ्वीराज भी अश्व पर सवार हो पलायन कर रहा था परन्तु सरस्वती नदी के तट पर शत्रुओं ने उसे पकड़ लिया और अन्त में उसे "दोजख (नरक) भेज दिया गया," उसका वध कर दिया गया।

पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय मे बडा विवाद है। कतिपय इतिहासकार कहते हैं कि वह रणक्षेत्र में ही युद्ध करते मारा गया और बाद में उसके शव को ढूंढा गया और उसकी रानी संयोगिता उसके साथ सती हो गयी। कुछ मुस्लिम इतिहासकार कहते है कि पृथ्वीराज अश्व पर सवार होकर रणक्षेत्र से भागा परन्तु भागते हुए उसे पकड़ लिया गया और बाद मे उसे कत्ल कर दिया गया। हसन नजामी का मत है कि पृथ्वीराज को पकड़कर अजमेर ले जाया गया और वहाँ विद्रोह के अपराध में उसका वध कर दिया गया। डॉक्टर श्रीवास्तव का कथन है कि पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी की अधीनता स्वीकार करली और तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद भी वह कुछ समय तक जीवित रहा था। चन्दबरदाई ने लिखा है कि गोरी पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर गजनी ले गया और वहाँ उसकी आँखे निकाल कर उसे अन्धा बना दिया गया। वहाँ राजसभा में ही शब्दभेदी बाण द्वारा गोरी का वध कर दिया और बाद मे वह मारा गया। चन्दबरदाई की "न चूके चौहान" वाली घटना केवल कवि कल्पना और किवदंती है। मुहम्मद गोरी तराइन के युद्ध के १४ वर्षों पश्चात् खोखरों द्वारा मारा गया।

६. **तराइन के युद्ध के बाद अन्य विजय**—तराइन के युद्ध के पश्चात् मुहम्मद गोरी सेना सहित आगे बढ़ा और उसने सिरसुती (सरस्वती), हांसी और कुहराम नामक स्थानों पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज का सम्पूर्ण दिल्ली राज्य उसके अधीन आ सकता था। पर इस विशाल राज्य के प्रशासन को सम्भालना और व्यवस्थित रखना गोरी के लिये असम्भव था। इसीलिये उसने राजनैतिक दूरदर्शिता से काम लेकर पृथ्वीराज के एक पुत्र गोविन्दराज को अपने सामन्त की हैसीयत से चौहानों के राजसिंहासन पर बिठा दिया। उसने वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया और उसे अजमेर का शासन प्राप्त हुआ। गोरी ने एक तोमर राजकुमार को दिल्ली का प्रशासक नियुक्त किया और उसने भी गोरी को निश्चित कर देना स्वीकार किया। दिल्ली के समीप इन्द्रप्रस्थ में गोरी ने कठिनता से प्राप्त तराइन की विजय को चिरस्थायी बनाने के विचार से अपने एक विश्वसनीय सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। सुरक्षा के लिये उसके अधीन एक तुर्क सेना रख दी। ऐसा माना

जाता है कि इसके बाद गोरी अजमेर पहुंचा। उसने नगर को खूब लूटा और अनेकानेक नागरिकों का नृशंसतापूर्वक वध कर दिया। अनेक मंदिरों और मूर्तियों को नष्ट करके उनके स्थान पर मसजिदों का निर्माण किया गया। इसके बाद मुहम्मद गोरी गजनी लौट गया।

तराइन के युद्ध का महत्व—भारतीय इतिहास में तराइन का युद्ध एक युग प्रवर्तक घटना, एक निर्णायक युद्ध है। इस युद्ध का अपना विशिष्ट निम्नलिखित महत्व है—

(i) इस युद्ध मे मुहम्मद गोरी के हाथ चौहान राज्य, हांसी, कुहराम, सरसुती, दिल्ली और बाद में अजमेर हाथ लगे। युद्ध के बाद उसने अपने गजनी साम्राज्य का विस्तार ही नहीं किया, अपितु इन्द्रप्रस्थ में कुतुबुद्दीन ऐबक को अपना प्रतिनिधि शासक नियुक्त कर गोरी ने भारत में स्थायी मुस्लिम राज्य स्थापित कर दिया। इस प्रकार पेशावर से दिल्ली और अजमेर तक इस्लामी पताका फहराने लगी।

(ii) गोरी ने दिल्ली के तोमर राजकुमार और अजमेर में पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज को अपने अधीन कर देने वाले हिन्दू शासक नियुक्त कर राजपूतों की एकता को नष्ट कर दिया।

(iii) तराइन के युद्ध से उत्तरी भारत में चौहान नरेशों की शक्ति क्षीण हो गयी। इससे मुहम्मद गोरी का गंगा-यमुना के प्रदेश और पूर्वी राजस्थान के क्षेत्र में प्रवेश कर आगे बढने का मार्ग प्रशस्त हो गया। सुदृढ़ चौहान राज्य के नष्ट होने से गोरी का मार्ग निष्कंटक हो गया।

(vi) तराइन की विजय ने मुहम्मद गोरी और उसके साथियों को भारत में अभियानों की वृद्धि करने और मुस्लिम सत्ता स्थापित करने में अपार उत्साह और प्रेरणा प्रदान की।

(v) तराइन की पराजय से राजपूतों के राज्यों और शक्ति को इतना गहरा आघात लगा, कि राजपूत इतने हतोत्साह और निराशावादी हो गये थे कि किसी भी राजपूत राजा या हिन्दू नरेश में संगठित होकर मुस्लिम आक्रान्ताओं का सामना करने की शक्ति नहीं रह गयी थी। बढते हुए मुस्लिम राज्य का प्रतिरोध करने के लिये और राजपूतों को विदेशियों के आक्रमणों को रोकने के लिये एक ही ध्वज के नीचे एकत्रित और संगठित कर लेने का अपार उत्साह रखने वाला कोई भी नरेश या योद्धा नहीं रह गया था। इससे यदि एक ओर भारतीय समाज में घोर निराशा व्याप्त हो गयी तो दूसरी ओर इस्लामी राज्य स्थापित करने का मुसलमानों का कार्य सुगम हो गया। भारत पर मुस्लिम अभियानों की अन्तिम सफलता निश्चित हो गयी।

१०. **मुहम्मद के प्रतिनिधि प्रशासक ऐबक की विजयें** (सन् ११९२-११९४)—मुहम्मद गोरी के गजनी लौट जाने पर उसके प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबक के विरुद्ध राजपूतों ने विद्रोह किया। पंजाब में, हांसी में राजपूतों ने तुर्की सेना को घेर लिया। राजपूतों का सेनानायक चौहानवंशीय था। ऐबक ने इन राजपूतों को परास्त कर पीछे ढकेल दिया और विद्रोह को दबा दिया। इसी बीच अजमेर में भी विद्रोह हो गया। वहाँ पृथ्वीराज के भाई हरीराज ने अपने भतीजे और पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज को

अजमेर से भगाकर, अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया और रणथंभोर के दुर्ग को घेर लिया। ऐबक ने रणथंभोर और अजमेर पहुंच कर स्थिति सम्भाल ली और दोनों स्थानों से हरीराज को खदेड़ दिया। अजमेर में राजपूतों के विद्रोह को देखकर एक तोमर शासक ने विद्रोह कर दिल्ली को घेर लिया पर ऐबक ने उसे भी दबा दिया और अब सन् ११९३ में दिल्ली में सीधा अपना शासन स्थापित कर दिया। इस समय से दिल्ली तुर्कों और बाद में अन्य मुस्लिम सुलतानों और सम्राटों की राजधानी हो गया। इसके बाद ऐबक ने मेरठ, कोल (अलीगढ़) पर अपना अधिकार कर लिया।

११. **मुहम्मद गोरी का कन्नौज पर आक्रमण और राठोड़ों की पराजय सन् ११९४**--उत्तरी भारत में दिल्ली से आगे दोआब मे कन्नौज मे गहढवाल या राटौड़ राजपूतों का शक्तिशाली राज्य था। जयचन्द्र यहाँ का नरेश था। पृथ्वीराज से व्यक्तिगत वैमनस्य होने से जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को मुहम्मद गोरी के विरुद्ध तराइन के युद्ध सहायता नही दी। दिल्ली और अजमेर विजय कर लेने के बाद भी मुहम्मद गोरी की उत्तरी भारत की विजय अपूर्ण थी, क्योंकि कन्नौज का दृढ़ और शक्तिशाली राज्य अभी भी स्वतन्त्र था और उसकी अधीनता में नहीं था। कन्नौज राज्य की सीमा बनारस तक थी। अत: कन्नौज विजय कर लेने से बनारस और उससे आगे पूर्व में बंगाल और बिहार विजय करना सरल था। इसीलिये सन् ११९४ में गोरी ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया। जयचन्द्र ने भी एक विशाल सेना से गोरी का सामना किया। इस समय किसी राजपूत राजा ने जयचन्द्र का साथ नही दिया। इटावा और कन्नौज के बीच यमुना तट पर चन्द्रवार नामक स्थान पर मुहम्मद गोरी और जयचन्द्र की सेना में भयंकर युद्ध हुआ। राजपूत सेना अत्यन्त वीरता से लड़ी। मुहम्मद गोरी की सेना के पैर उखड़ गये और गोरी रणक्षेत्र से पलायन करना ही चाहता था कि जयचन्द्र की आँख में एक तीर लगा और वह अपने हाथी से नीचे गिर पड़ा और गिरते ही उसकी मृत्यु हो गयी। अपने राजा और सेनापति की मृत्यु से राजपूतों की सेना में भगदड़ मच गयी और इससे विजयश्री गोरी के हाथ लगी। हिन्दुओं का भीषण नरसंहार हुआ। "ताज-उल-मासिर", "तवकात-ए-नासिरी" तथा अन्य ग्रन्थों से विदित होता है कि कन्नौज विजय में मुहम्मद गोरी ने अत्यधिक नर हत्या की।

१२. **बनारस की लूट**-चन्दावर युद्ध में विजय करने के बाद गोरी ने असनी दुर्ग पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसी दुर्ग में जयचन्द्र का विशाल राजकोष था। इस दुर्ग से बहुत सा धन गोरी के हाथ लगा। इसके बाद गोरी बनारस की ओर बढ़ा। उसने नगर में प्रवेश कर अनेकानेक व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया, नगर को खूब लूटा गया। लगभग एक सहस्र मंदिरों को विध्वंस कर उनके स्थान पर मसजिदों का निर्माण किया गया। बनारस में अनेक हाथी पकड़े गये। उनमें एक श्वेत हाथी भी था। जब इन सभी हाथियों को पकड़कर गोरी के सामने लाया गया और उन्हे अभिवादन करने की आज्ञा दी गयी तो उस श्वेत हाथी को छोड़कर सभी ने अभिवादन किया। बनारस की लूट में मुहम्मद गोरी को अत्यधिक धन प्राप्त हुआ और वह उसे १४०० ऊटों पर लादकर गजनी ले गया। लौटते समय गोरी कुतुबुद्दीन ऐबक को अपने विजीत भारतीय प्रदेशों पर राज्य करने के लिये छोड़

गया। चन्दावर के युद्ध में पराजित होने पर कन्नौज के राठौर राजवंश के लोगों और उनके कतिपय साथी सामन्तों ने गोरी के प्रतिनिधि ऐबक की सेना से लोहा लिया। लगभग चार वर्षों तक वे विद्रोह करते रहे। अन्त में परास्त होने पर राठौर वंश राजस्थान चला गया और वहाँ मरुभूमि में जोधपुर क्षेत्र में एक स्वतन्त्र राजपूत राज्य स्थापित किया। उनके राजस्थान चले जाने पर सन् ११९८ में पूर्णरूप से कन्नौज मुहम्मद गोरी के अधिकार में आ गया।

१३. गोरी की अनुपस्थिति में राजपूतों के विद्रोह और हरिराज का अंत तथा अजमेर पर तुर्क आधिपत्य—मुहम्मद गोरी गजनी लौटते समय कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर गया था। गोरी के लौट जाने पर राजपूतों ने विद्रोह किये। इन्हें कुचलने का भार ऐबक पर पड़ा। सर्वप्रथम कोल या अलीगढ के समीप राजपूतों ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये विद्रोह किया। परन्तु ऐबक ने वहां स्वयं उपस्थित होकर सैनिक शक्ति से राजपूतों का विद्रोह कुचल दिया। इसी बीच राजस्थान में हरीराज ने भी विद्रोह किया और अजमेर के तुर्की शासक को खदेड़ दिया और सन् ११९५ में एक सेना दिल्ली विजय के लिये भी भेजी। ऐबक ने इस सेना को परास्त किया और स्वयं अजमेर जाकर हरिराज को दुर्ग में घेर लिया। हरिराज ने दीर्घकाल तक युद्ध करने का प्रयास किया परन्तु शक्ति क्षीण होने पर उसने, शत्रुओं के हाथ अपमानित होने की अपेक्षा, अपने साथियों सहित अग्नि में जल कर अपनी रक्षा की। यद्यपि, अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये तुर्कों के विरुद्ध निरन्तर प्रयत्न करने वाले हरिराज को अन्त में असफलता और मृत्यु ही प्राप्त हुई, पर स्वाधीनता के संघर्ष में उसके कार्य स्तुत्य और प्रेरणादायक हैं। हरिराज की मृत्यु के बाद ऐबक ने अजमेर पर पूर्ण अधिकार करके वहां अपना एक तुर्क सूबेदार नियुक्त कर दिया।

मुहम्मद गोरी का बयाना तथा ग्वालियर पर आक्रमण (११९५-९६)—मुहम्मद गोरी ने सन् ११९५ में भारत में पुनः प्रवेश किया और आगरा के समीप बयाना दुर्ग पर आक्रमण किया। बयाना में भट्टी राजपूतों का राज्य था। उनके दुर्ग नरुनगढ़ और विजय मंदिरगढ पर आक्रमण कर तुर्कों ने उन्हें भी जीत लिया। बयाना में उन्हें कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। बयाना विजय करने के बाद गोरी ने ग्वालियर के अभेद्य दुर्ग पर आक्रमण किया। ग्वालियर के सुदृढ़ दुर्ग को विजय करने मे असमर्थ होने पर गोरी ने वहां के राजपूत शासक से संधि कर ली। पर उसने बयाना के अपने तुर्क सूबेदार बहाउद्दीन तुगरिल को बाद में ग्वालियर नरेश पर सैनिक दबाव डालने के आदेश दिये। इस निरन्तर डेढ़ वर्ष के सैनिक दबाव और घेरे के कारण विवश होकर राजपूत नरेश ने सन् ११९७ में ग्वालियर का दुर्ग तुर्कों को सौंप दिया।

ऐबक का गुजरात पर आक्रमण और विजय (११९७)—हरिराज की पराजय और मृत्यु होने पर भी, हतोत्साह न होकर, मुहम्मद गोरी की अनुपस्थिति में राजपूतों ने सगठित होकर तुर्कों के विरुद्ध विद्रोह कर उनकी सत्ता को उखेड़ फेंकने का निश्चय किया। उन्होंने विशेषकर अजमेर के मेंड़ और अन्य राजपूत सामन्तों

ने एक संघ बनाया और गुजरात नरेश भीमदेव के नेतृत्व में उन्होंने तुर्कों के केन्द्र अजमेर पर आक्रमण किया और वहां के तुर्क शासक को घेर लिया। इस पर ऐबक स्वयं एक सेना लेकर उसकी सहायता के लिये अजमेर पहुँचा। परन्तु राजपूतों ने उसे परास्त कर दिया। ऐबक ने विवश होकर अजमेर दुर्ग में शरण ली। राजपूतों ने दुर्ग का घेरा डाल दिया। इसी बीच ऐबक ने मुहम्मद को गजनी से सैनिक सहायता की याचना की। थोड़े समय में ही गजनी से ताजी सेना के आ जाने से राजपूतों ने अजमेर का घेरा उठा लिया और कुतुबुद्दीन ऐबक मुक्त हो गया। अब उसने शीघ्र ही अवसर पाकर गुजरात पर अपनी पराजय का बदला लेने के लिये आक्रमण किया। गुजरात नरेश भीमदेव ने ऐबक की सेना से युद्ध किया, पर उसकी पराजय हुई। इस भयंकर युद्ध मे राजपूतों के लगभग पंद्रह सहस्त्र सैनिक हताहत हुए और बीस सहस्त्र बन्दी बना लिये गये। युद्ध में विजय के पश्चात् ऐबक ने गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा मे प्रवेश कर उसे खूब लूटा और नगर को विध्वंस कर दिया और वहां एक तुर्क शासक को नियुक्त कर लौट आया। पर गुजरात के चालुक्य राजपूतों ने कुछ ही समय मे उसे परास्त कर खदेड़ दिया और फिर वहां राजपूतों की सत्ता स्थापित कर ली।

ऐबक की अन्य विजयें (सन् ११९७–१२०३)–गुजरात पर विजय करने के पश्चात् ऐबक ने बदायूं पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार म कर लिया। वाराणसी (काशी) क्षेत्र में भी उसने अपनी सेनाएँ भेजकर अपनी सत्ता और राज्य का विस्तार किया। अजमेर में चौहान राजवंश की सत्ता नष्ट हो जाने पर इस राजवंश के सशक्त उत्तराधिकारियों ने दक्षिण राजस्थान में कोटा, बूंदी और सीरोही मे अपने नवीन स्वतन्त्र राजपूत राज्य स्थापित किये। परन्तु ऐबक ने अपनी सैनिक शक्ति से इन राज्यों पर भी दबाव डाला और उसने उज्जैन तक आक्रमण किया। इसका उल्लेख मिनहाज-उस-सिराज ने अपने ग्रंथों मे किया है।

ऐबक का चन्देलों से युद्ध और कालिंजर विजय (सन् १२०२–१२०३)— बुन्देलखण्ड में चन्देल राजपूत राजवंश का राज्य था और परिमर्दिन यहां का तत्कालीन राजा था। सन् १२०२ में कुतुबुद्दीन ऐबक ने परिमर्दिन देव पर आक्रमण किया और चन्देलों के प्रसिद्ध दुर्ग कालिंजर को घेर लिया। दीर्घ काल तक घेरा बंदी रहने और विजय की आशा न रहने पर परिमर्दिन देव ने ऐबक से संधि वार्ता प्रारम्भ की, पर इसी बीच उसकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद उसके वीर मन्त्री अजयदेव ने संधि वार्ता स्थगित कर युद्ध जारी रखा। परन्तु इसी बीच ऐबक की तुर्की सेना ने कालिंजर दुर्ग में जाने वाले पानी के स्रोत को बंद कर दिया। यह भी कहा जाता है कि यह स्रोत अपने आप बंद हो गया। ऐसी दशा में विवश होकर चन्देलों को कालिंजर छोड़कर अजयगढ़ दुर्ग में शरण लेना पड़ी। इससे चन्देलों की सैनिक शक्ति क्षीण हो गयी और कुतुबुद्दीन ऐबक का कालिंजर पर अधिकार हो गया। इस विजय में तुर्कों ने हिन्दू मंदिरों को लूटा और विध्वंस कर दिया। "पचास सहस्र हिन्दुओं के गले में दासता का फंदा डाला गया और हिन्दुओं के शवों से पृथ्वी ढक गयी।" ऐबक ने कालिंजर में हसन अर्नाल को अपना प्रतिनिधि और शासक नियुक्त किया। कालिंजर विजय के

बाद ऐबकने महोबा,खजुराहो और कालपी पर भी आक्रमण कर उन्हें अपने अधिकार में कर लिया ।

मुहम्मद बिन बख्तियार की बिहार और बंगाल विजय (सन् ११९७-१२०५)– जब कुतुबुद्दीन ऐबक उत्तरी भारत और राजस्थान में राजपूतों के विद्रोह दमन और तुर्की साम्राज्य के विस्तार मे संलग्न था, तब उसका एक साधारण सेनानायक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी उत्तरी भारत में पूर्वी प्रदेशों और राज्यों पर आक्रमण कर रहा था । वाराणसी तक का प्रदेश तो मुहम्मद गोरी ने कन्नोज पर आक्रमण करने के समय जीत लिया था और ऐबक ने वहां तक तुर्की सत्ता स्थापित कर ली थी । वाराणसी के आगे के पूर्वीय प्रदेशों को जीतकर तुर्की साम्राज्य में सम्मिलित करने का कार्य मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने पूर्ण किया । यह भी पहिले ऐबक की भांति एक साधारणदास था और मुहम्मद गोरी की सेवा में था । उसमें शारीरिक सौष्ठव की अपेक्षा बेढंगा डीलडौल और कुरूपता थी । परन्तु उसमें अपार उत्साह, वीरता और महत्वाकाँक्षा थी । वह बड़ा साहसी और अध्यवसायी था । अपनी प्रतिभा और सैनिक कुशलता तथा सामरिक प्रवीणता के कारण वह सेना-नायक बन गया । ऐबक की कृपा से उसे बिहार प्रदेश के पश्चिमी सीमा के निकट एक छोटी सी जागीर भी प्राप्त हो गयी थी । वाराणसी तक मुहम्मद गोरी का राज्य स्थापित हो जाने पर उसने बिहार प्रदेश की सीमा में अनेक आक्रमण कर लूटपाट और विध्वंस के अनेक कार्य किये । सन् १२०२[1] में कुतुबुद्दीन ऐबक से आक्रमण की अनुमति लेकर उसने दो सौ अश्वारोही सैनिकों सहित बिहार पर सहसा आक्रमण कर दिया । उसने कतिपय प्रमुख दुर्गों पर अपना अधिकार भी स्थापित कर लिया । इस समय बिहार में बौद्ध धर्म का बाहुल्य था । यहां उस समय नालन्दा, विक्रमशीला, उदण्डपुर आदि प्रसिद्ध बौद्ध विहार और विश्व विद्यालय थे । अनेकों बौद्ध भिक्षु इन विहारों और नगरों में रहते थे । अहिंसा में विश्वास करने के कारण बिहार में ये बौद्ध भिक्षु और नगरों में उनके अनुयायी तुर्कों की सेना का वीरतापूर्वक सामना करने की अपेक्षा कायरता मे अपने स्थानों से पलायन कर गये । मुहम्मद बिन बख्तियार खिजली और उसके तुर्क अश्वारोहियों ने इस कायरता से लाभ उठाकर वहां के नगरों और दुर्गों को नष्ट कर दिया । सिरघुटे बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों को तलवार के घाट उतार दिया गया । अनेक बौद्ध तिब्बत की ओर भाग गये और कई ग्रामीण क्षेत्र की ओर जाकर बस गये । नालन्दा, विक्रमशीला और ओदन्तपुरी या उदंडपुर के विहारों और विश्वविद्यालयों को तथा वहां के विशाल पुस्तकालयों को नष्टभ्रष्ट कर अग्नि में जला दिया । अनेकानेक बौद्धों का कत्लेआम किया गया । मुहम्मद बिनबख्तियार खिलजी ने ओदन्तपुरी को अपना केन्द्र बना लिया और वहां एक दुर्ग भी निर्मित किया । नगरों और बौद्ध केन्द्रों की लूट में खिलजी को अपार धनराशि प्राप्त हुई थी । जब विजय के बाद वह ऐबक के पास पहुंचा तब उसकी वीरता, विजय और लूट की अपार संपत्ति

१. कतिपय इतिहासकारक यह आक्रमण सन् ११९७ में मानते हैं तो कतिपय विद्वान इस आक्रमण को सन् ११९७-१२०२ की अवधि में ।

से प्रसन्न होकर ऐबक ने उसका शाही सम्मान किया और उसे राजकीय सम्मानसूचक वेशभूषा प्रदान की ।

बिहार की विजय से उल्लासित होकर दो वर्ष बाद सन् १२०५ में मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने बंगाल पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान किया । उसके इस बंगाल आक्रमण और विजय का पूरा विवरण मिनहाज-उस-सिराज ने अपने ग्रंथ में किया है । बंगाल पर आक्रमण करने के लिये मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने एक सेना तैयार की । इस समय बंगाल में सेनवंश का लक्ष्मणसेन राजा राज्य करता था और नवद्वीप या नदिया उसकी राजधानी थी । खिलजी ने इतनी तीव्र गति से प्रस्थान किया कि उसकी सेना पीछे रह गयी और वह केवल अठारह अश्वारोही सैनिकों सहित राजधानी नदिया में प्रवेश कर गया । अश्वों का व्यापारी बताकर खिलजी तूफानी गति से राजप्रासाद के प्रवेश द्वार तक पहुँच गया और वहां प्रहरियों को मौत के घाट उतारकर राजमहल में प्रवेश कर गया और अपने मार्ग में आये लोगों को कत्ल करके आतंक फैला दिया । इस समय राजा लक्ष्मणसेन दोपहर का भोजन करने बैठा ही था। वह प्रवेशद्वार और राजमहल में होनेवाले शोरगुल और आतंक से घबरा गया और इसके पहिले कि वह वास्तविक स्थिति को जानले, अचानक ही राजमहल के पीछे के दरवाजे से भाग गया। वह सोनारगांव के समीप विक्रमपुर चला गया । उसकी अनुपस्थिति में खिलजी ने राजमहल, राजकोष, धन सम्पत्ति आदि पर अपना अधिकार कर लिया । इसी बीच उसकी सेना भी आ गयी । दुर्ग खुला मिल जाने के कारण उसमें प्रवेश पा जाना सुगम हो गया । अब उसने नदिया नगर को खूब लूटा । पर लक्ष्मणसेन सेना संगठित कर रहा था, उसकी शक्ति से आतंकित होकर खिलजी ने नदिया छोड़ दिया और लखनौती या गौड़ को अपनी राजधानी बनाया और मुस्लिम प्रशासन स्थापित किया । विजय के उपलक्ष में मसजिदों में खुतबा पढा गया, और नवीन सिक्के प्रचलित किये गये । बंगाल की विजय और लूट में खिलजी को जो धन राशि प्राप्त हुई थी, उसका अधिकांश भाग उसने कुतुबुद्दीन ऐबक की सेवा में भेज दिया । इसके बदले में उसने ऐबक से बंगाल की सूबेदारी प्राप्त कर वहाँ शासन करने लगा । इस समय उसके अधिकार में बंगाल का बहुत बड़ा भूभाग था जिसमें मालदा, दीनापुर, मुर्शिदाबाद और वीरभूमि के जिले सम्मिलित थे ।

बंगाल का शासक बनने के बाद मुहम्मद बिनबख्तियार खिलजी ने तिब्बत और आसाम पर आक्रमण किया । इसमें उसका उद्देश्य भूटान, आसाम से आने वाले घोड़ों के व्यापारियों को अपने अधीन करना था । उसने दस सहस्र सैनिकों को लेकर आसाम में वर्धनकुटी नगर और ब्रह्मपुत्र नदी को पार करके तिब्बत के पहाड़ी क्षेत्र में प्रवेश किया । यहाँ स्थानीय नरेशों और सामन्तों ने उसका विरोध किया और उसे युद्ध में बुरी तरह परास्त कर दिया और उसकी समस्त सेना नष्ट कर दी । इस अत्यन्त अपमानजनक पराजय से उसे गहरा आघात लगा और इस सदमे के कारण शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी । कुछ विद्वानों का मत है कि खिलजी जाति के एक सामन्त अलीमरदन ने प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर उसकी हत्या कर दी । कुछ अन्य

इतिहासकारों की धारणा है कि उसने अपने अपमानजनक पराभव के कारण आत्महत्या कर ली।

मुहम्मदगोरी का पराभव और विघटनात्मक प्रवृत्तियां तथा विद्रोह—सन् १२०३ में गोर राज्य के शासक मुहम्मद गोरी के बड़े भाई गयासुद्दीन का देहावसान हो गया। अब मुहम्मद गोरी पूर्णरूप से गजनी तथा गोर दोनों राज्यों का सुलतान हो गया और मुईजुद्दीन की उपाधि धारण की। अब मुहम्मद गोरी की तीव्र लालसा थी कि वह मध्य एशिया में आक्सस या आमू नदी के तट के प्रदेश को जीतकर अपने साम्राज्य मे सम्मिलित कर ले। इसके लिये उसने एक विशाल सेना लेकर सन् १२०४ मे ख्वारिज्म प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। ख्वारिज्म के शाह अलाउद्दीन मुहम्मद ने खुरासान और कराकिता से सैनिक सहायता प्राप्त कर गोरी से युद्ध किया। इस भयानक युद्ध में ख्वारिज्म के शाह ने गोरी को बुरी तरह परास्त कर दिया। गोरी की सेना कुचल दी गयी और वह अत्यन्त कठिनाई से अपनी जान बचा कर भागा।

इस पराजय से मुहम्मद गोरी का पराभव और पतन प्रारम्भ होता है। उसकी इस पराजय के संदेश से गजनी राज्य में विघटन और विद्रोह की प्रवृत्तियां बलवती हो गयीं। समस्त राज्य में अशांति और अराजकता का वातावरण उत्पन्न होगया। गजनी के एक अधिकारी ने गोरी के पराभव से प्रेरित होकर भारत आकर मुहम्मद गोरी का जाली अधिकार पत्र और आदेश दिखाकर मुलतान को अपने अधिकार में कर लिया और वहां का शासक बन गया। गजनी मे एक अन्य महत्वाकांक्षी अधिकारी अल्दौज ने जो गोरी का दास था, गजनी नगर का प्रवेशद्वार बन्द करके रणक्षेत्र में पराजित होकर लौटते हुए सुलतान का प्रवेश निषिद्ध कर दिया और स्वयं शासन सत्ता अपने हाथ में ले ली। पंजाब और सीमान्त क्षेत्रों में भी अनेक महत्वाकांक्षी अधिकारियों ने अपनी सत्ता में वृद्धि करली और गोरी के प्रतिनिधि शासकों को हटाकर स्वयं शासक बनने के प्रयास किये। इस प्रकार गोरी के पतन के साथ-साथ उसके समस्त साम्राज्य में विघटनात्मक प्रवृतियाँ और विद्रोह प्रबल हो उठे। पर गोरी ने साहस से इनका सामना किया, और गजनी तथा मुलतान पर पुनः अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

खोखरों का विद्रोह और मुहम्मद गोरी की हत्या—पंजाब में लाहोर से सीमांत क्षेत्र तक खोखर नामक खूंखार लड़ाकू और युद्धप्रिय जाति रहती थी। साम्राज्य के अन्य भागों में विद्रोह हो जाने पर खोखरों ने भी पंजाब में विद्रोह कर दिया, उन्होंने लूट-खसोट और कत्ले आम प्रारम्भ कर दिया और लाहौर पर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया। मुहम्मद गोरी इन खोखरों के विद्रोह को दमन करने के लिये और उन्हें दण्ड देने के लिये भारत आया और कुतुबुद्दीन ऐबक को भी सेना सहित पंजाब आने के आदेश दिये। गोरी और ऐबक के संयुक्त सैनिक अभियान ने खोखरों को परास्त कर दिया। अनेक खोखर खेत रहे और अनेक बन्दी बना लिये गये। कुछ प्राण रक्षा के लिये वन मे जा छिपे। इस पर गोरी ने जगल को घेरकर उसमें आग लगा कर खोखरों का दमनकर दिया। इसके बाद गोरी लाहोर गया और वहाँ ठहरकर पंजाब के शासन को व्यवस्थित कर गजनी की ओर उसने प्रस्थान किया। इसी

बीच बचे हुए खोखरों ने प्रतिशोध की भावना से शिया लोगों से मिलकर गोरी की हत्या का एक षड़यंत्र रचा। जब सुलतान गोरी गजनी की ओर लौट रहा था, तब वह झेलम के किनारे धामियक नामक ग्राम में विश्राम के लिये डेरा डाले था। यहीं जब वह संध्या को नमाज पढ रहा था, तब कुछ खोखरों व मुलाहिद लोगों ने (इस्लाम के अनुयायी और शिया सम्प्रदाय के मानने वाले) सहसा उसके तम्बू पर आक्रमण किया और उसे घेर लिया। उन्होंने तीन शस्त्रधारी प्रहरी व अनुचरों को और दो झाडू लगाने वाले सेवकों को कत्ल कर दिया। एक या दो व्यक्ति सुलतान गोरी के पास पहुँचे और उस पर आक्रमण कर पाँच या छै साँघातिक घाव कर दिये। इससे सुलतान शीघ्र ही मर गया। यह घटना १५ मार्च सन् १२०६ की है। "ताज-उल-मासिर" और "तब-कात ए-नासिरी" में गोरी की इस प्रकार की हत्या का विवरण है। परन्तु फरिश्ता का कथन है कि बरमहीक स्थान पर बीस खोखरों ने गोरी का वध कर दिया।

मुहम्मद गोरी का चरित्र और मूल्यांकन

मुस्लिम इतिहासकारों ने मुहम्मद गोरी के चारित्रिक गुणों, कार्यों और सफलताओं की अधिक प्रशंसा की है। मिनहाज-ए-सिराज ने अपने ग्रन्थ "तबकात-ए-नासिरी" में उदारता से लिखा है कि "वह (मुहम्मद गोरी) शरीफ, धार्मिक, विश्वसनीय, न्यायप्रिय और जनप्रिय शासक था।" फरिश्ता ने भी गोरी के गुणों की सराहना की है और उसके मूल्यांकन में उदारता दिखलाई है। फरिश्ता के अनुसार मुहम्मद गोरी की प्रकृति "न्यायपरायण शासकों की सी थी, (वह) ईश्वर से डरने वाला तथा हृदय में सदा प्रजा की भलाई का ध्यान रखने वाला था।" इन मुस्लिम इतिहासकारों और इनके समर्थकों ने गोरी के चरित्र और सफलताओं पर, उसके गुण-दोषों पर, समुचित रूप से तुलनात्मक दृष्टि से विचार नहीं किया है। एशिया और भारत के इतिहास में तुलनात्मक दृष्टि से उसके कार्यों और नीति का अपना महत्व है।

१. **मुहम्मद गोरी का मानवी स्वरूप**--एक मनुष्य के रूप में मुहम्मद गोरी का चरित्र प्रशंसनीय है। मनुष्य के नाते वह उच्चकोटि का व्यक्ति था। उसकी आदतें व स्वभाव अच्छे थे। उसमें पारिवारिक स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, बन्धुत्व, स्वामिभक्ति आदि गुण थे। वह अपने भाई गयासुद्दीन के प्रति विशेष भ्रातृत्व और वफादारी के भाव रखता था और उसकी अधीनता में रहकर कार्य करता था। गजनी के सुलतान के रूप में मुहम्मद गोरी की शक्ति उसके भाई गयासुद्दीन की अपेक्षा अत्यधिक थी और यदि वह चाहता तो गयासुद्दीन को पदच्युत कर उसका गोर का राज्य छीन सकता था और अपने साम्राज्य की सीमा में वृद्धि कर सकता था। परन्तु गोरी ने ऐसा नहीं किया। वह अपने भाई के प्रति सदा सम्मान, श्रद्धा और भक्ति रखता था और जीवन भर उसका विश्वासपात्र बना रहा। ऐसे संघर्षमय युग में ऐसा होना अस्वाभाविक था। मुहम्मद गोरी सन्तानहीन होने से अपने हृदय में दूसरों के प्रति, विशेषकर अपने दासों के प्रति उदार, दयालु और स्नेही था। वह अपने गुलामों को अपनी सन्तान समझता था और उनके साथ अच्छा व्यवहार करता था। एक बार सन्तानहीन कहे जाने पर गोरी ने कहा कि उसके सारे गुलाम उसकी सन्तान हैं और उसके देहावसान के बाद

उसका नाम रोशन करेंगे। गोरी के स्नेह और वात्सल्य से उसके गुलाम अत्यधिक प्रभावित हुए थे और वे उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक इसका ज्वलन्त उदाहरण है। ऐबक ने अपने स्वामी गोरी के लिये प्राणहथेली पर रखकर अनेकानेक दुष्कर कार्य किये, संघर्ष और युद्ध किये और विजयश्री उपलब्ध की।

मुहम्मद गोरी में अपने विशिष्ट कार्यों के लिये व्यक्तियों को पहिचानने और उन्हें चुनने की एक विशेष प्रतिभा थी। वह ऐसे व्यक्तियों को पहिचान लेता और चुन लेता था जो अत्यधिक निपुण, प्रयत्नशील और स्वामिभक्त होते थे। वह मानव स्वभाव और चरित्र का अच्छा पारखी था। वह अपने गुलामों और अधिकारियों में से अच्छे श्रेष्ठ व्यक्तियों को परख लेता था और उन्हें संरक्षण, पदोन्नति और प्रोत्साहन देता था। इन चुने हुए लोगों ने भी गोरी की परखशक्ति और विश्वास को अपने कार्यों और चरित्र से समुचित प्रमाणित कर दिया।

इसके अतिरिक्त मुहम्मद गोरी में विषम परिस्थितियों और असमान दशाओं को समझने, उनका विश्लेषण करने और साहस तथा शक्ति से उनका सामना करने और उन पर अधिकार करने की अद्भुत प्रतिभा थी। इसके साथ-साथ उसमें कृत-संकल्प हो कार्य करने की प्रवृत्ति भी थी। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये दृढ़ संकल्प हो कार्य करने की अनूठी शक्ति और क्षमता उसमें थी। वह दृढ़ संकल्पवाला व्यक्ति था। एक बार जिस बात को वह सोच लेता था, उसको पूरा करके ही वह सन्तुष्ट होता था। भारत पर सैनिक अभियान और आक्रमण तथा राज्य विस्तार का निर्णय करने के बाद उन्हें पूर्ण करने का उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था, और अन्त में उसे सफलता प्राप्त हुई।

२. **सफल विजेता**—यद्यपि मुहम्मद गोरी महमूद गजनवी के समान सुयोग्य और कुशल सेनानायक नहीं था, परन्तु वह एक वीर योद्धा और सफल विजेता अवश्य था। वह एक योग्य सेनापति और सेना-संचालक नहीं था। उसे अन्हिलवाड़ा, तराइन के युद्ध में तथा ख्वारिज्म के युद्ध में भयंकर पराजय प्राप्त हुई, पर वह कभी भी अन्तिम रूप से अपनी पराजय स्वीकार करने को तैयार नहीं होता था। विषम परिस्थितियों और कठिन दशाओं में भी वह नहीं घबराता था और बड़े साहस तथा वीरता से उनका सामना करता था। वह बड़ा उत्साही तथा साहसी था। उसके भारतीय अभियान, विजय और साम्राज्य विस्तार उसे एक सफल विजेता के रूप में प्रकट करते हैं। जब वह गजनी के सिंहासन पर बैठा था, तब उसके अधिकार में गजनी और उसके पार्श्ववर्ती भूभाग ही उसके अधिकार में थे। पर जब उसका देहावसान हुआ तब वह एशिया में पश्चिम से पूर्व तक एक विस्तृत विशाल साम्राज्य छोड़ गया था। यह उसकी निरन्तर विजयों का परिणाम था।

वह सैनिक अभियान की योजना बनाने में निपुण और रणनीति का अच्छा ज्ञाता था। शत्रु की दुर्बलताओं को वह जल्दी भाँप लेता था और भलीभाँति समझ लेता था कि शत्रु पर किस प्रकार आघात करके विजय प्राप्त की जा सकती है। अपनी निर्दिष्ट योजनाओं, अभियानों और युद्धों से उसने उत्तरी भारत के शक्तिशाली राज्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया। रणक्षेत्र में भी उसमें युद्ध कौशल था। तराइन के

प्रथम युद्ध में परास्त होने पर भी उसने धैर्य व साहस नहीं छोड़ा और द्वितीय युद्ध में तो उसने व्यूह रचना, वीरता और रणनीति से ही अधिक शक्तिशाली शत्रु पर विजय प्राप्त की थी।

३. **कुशल राजनीतिज्ञ**--मुहम्मद गोरी में राजनीतिक परिस्थितियों को समझने और उनसे पूरा लाभ उठाने की क्षमता थी। तत्कालीन भारत की राजनैतिक विश्रृङ्खलता को उसने भलीभाँति समझ लिया था। उसने पूर्णरूप से समझ लिया कि भारत का राजनैतिक शरीर सड़ चुका था, वह खोखला हो गया था और उसे नष्ट कर वह अपना स्थायी राज्य स्थापित करना चाहता था। इस प्रकार वह एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। मुहम्मद का दृष्टिकोण महमूद गजनवी के दृष्टिकोण से अधिक राजनीतिक था।

४. **साम्राज्य निर्माता और भारत में मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक**--मुहम्मद गोरी ने छोटे से पर्वतीय गजनी राज्य को अपने अभियानों और दिग्विजयों से अपनी सामरिक प्रतिभा, दूरदर्शिता और निरुत्साहहीनता से मध्य एशिया के शक्तिशाली साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया। मध्य एशिया में पश्चिम में और दक्षिण-पूर्व में भारत में उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं की खूब वृद्धि की। इसीलिये वह एशिया के इतिहास में एक सफल साम्राज्य निर्माता है।

भारत में मुहम्मद गोरी मुस्लिम राज्य का संस्थापक भी है। भारत में निर्दिष्ट रूप से मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना का श्रेय मुहम्मद गोरी को है। गोरी के पूर्व भारत में मुस्लिम साम्राज्य के विस्तार का कार्य अरब आक्रमणकारियों और महमूद गजनवी ने किया था। अरबों ने प्रतिशोध की भावना से सिंध पर आक्रमण किये। भारत में गलत मार्ग से प्रवेश करने के कारण वे असफल भी रहे। उनकी सत्ता अल्पकालीन रही। खलीफाओं ने भी भारत में इस्लामी साम्राज्य के निर्माण के लिये कोई ठोस प्रयत्न नहीं किये। महमूद गजनवी में सैनिक शक्ति का कोई अभाव नहीं था, परन्तु उसने दृढ़ साम्राज्य निर्माण करने का प्रयत्न नहीं किया। वह तो केवल भारत से अपार धन-सम्पत्ति चाहता था। इसके अतिरिक्त गजनी से पूर्व और पश्चिम में विस्तृत होते हुए साम्राज्य पर शासन करने की क्षमता भी उसमें नहीं थी। इसके विपरीत मुहम्मद गोरी ने तो साम्राज्य निर्माण के उद्देश्य से ही भारत पर आक्रमण किये और युद्ध लड़े। मुहम्मद के भारतीय अभियान और विजय की योजनाएँ सुनियोजित और दृढ़ थीं, वे श्रृङ्खलाबद्ध और सुविचारित थीं। उसका लक्ष्य साम्राज्य निर्माण था, न कि धन सम्पत्ति की प्राप्ति। एक कुशल साहसी सैनिक की भांति उसने भारत विजय की निश्चित और सुश्रृंखल योजनाएं बनाईं तथा निरन्तर कठिनाइयों के होने पर भी उसने सफलतापूर्वक उन्हें कार्यान्वित किया। भारत के विभिन्न प्रदेशों को विजय करने के साथ-साथ वह वहाँ नागरिक प्रशासन भी स्थापित करता रहा। सभी विजित प्रदेशों पर उसने अपने अधिकारी, सूबेदार और प्रशासक तथा प्रतिनिधि नियुक्त कर दिये और कतिपय सेनानायकों को जागीरें भी प्रदान करदीं। इसके अतिरिक्त उनकी सुरक्षा के लिये भी वह गजनी से सेना और कुमुक भेजता रहता था। इस प्रकार उसने भारत में सर्वप्रथम मुस्लिम साम्राज्य स्थापित किया। उसके देहावसान

के बाद यद्यपि उसका गजनी साम्राज्य विघटित हो गया था, पर उसका भारत का साम्राज्य बढ़ता गया और कालान्तर में यह दिल्ली के सुलतानों का साम्राज्य बन गया जो पूर्व के विशाल शक्तिशाली राज्यों में गिना जाने लगा था। इस्लामी साम्राज्य के विस्तार की दृष्टि से मुहम्मद का यह योगदान तुच्छ नहीं कहा जा सकता। मुहम्मद गोरी द्वारा भारत में स्थापित मुस्लिम साम्राज्य छः सौ वर्षों तक विद्यमान रहा, जब मुगलों से अंग्रेजों ने राज सत्ता छीन ली थी। यह मुहम्मद गोरी की कम सफलता नहीं थी।

५. **प्रवीण प्रशासक**—मुहम्मद गोरी विजेता, साम्राज्य निर्माता ही नहीं था, अपितु वह एक प्रवीण प्रशासक भी था। तत्कालीन इतिहासकारों ने उसे न्यायप्रिय शासक कहा है। मिनाहाज-ए-सिराज ने उसकी साहित्य प्रियता और उदारता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मुहम्मद गोरी विद्वानों को संरक्षण देता था। प्रशासन में भी वह रुचि लेता था और स्वयं प्रशासकीय व्यवस्था करता था। उसने अपने साम्राज्य की प्रशासकीय व्यवस्था को सुसंगठित करने के लिये अनुभवी, योग्य और सफल प्रशासक और सूबेदार नियुक्त किये। वह अपने सेनानायकों पर भी नियन्त्रण रखता था। अपनी सैनिक शक्ति और प्रशासकीय व्यवस्था से वह साम्राज्य में होने वाले विद्रोहों को भी कुचल देता था। गजनी, मुलतान तथा पंजाब के विद्रोहों का उसने दमन कर दिया था। वह अपने अधीनस्थ अधिकारियों पर भी पूर्ण नियन्त्रण रखता था। महमूद गजनवी की भाँति वह नवीन प्रदेशों को शीघ्रातिशीघ्र जीतने का शौकीन नहीं था, अपितु वह जितने भी प्रदेश जीतता था, वहाँ सुदृढ़ प्रशासकीय व्यवस्था स्थापित करके फिर आगे बढ़ता था। विजय और व्यवस्था दोनों ही साथ-साथ होते थे।

एक योग्य शासक के रूप में उसने अपने उत्तराधिकारियों के चयन में बड़ी सावधानी और सतर्कता रखी। यह उसकी दूरदर्शिता का ही परिणाम था कि वह ऐबक और इख्तियारुद्दीन जैसे शासकों के हाथों में अपनी विरासत को छोड़ गया।

महमूद की धार्मिक सहिष्णुता और धर्म-निष्ठा की इतिहासकारों ने प्रशसा की है। वह धर्मपरायण व्यक्ति था और ईश्वर से सदा डरता था। विद्वानों का मत है कि उसमें धर्मांधता और कट्टरता नहीं थी। अन्य मुसलमान आक्रमणकारियों और शासकों की भाँति उसने बलात् लोगों को धर्म परिवर्तन कर इस्लाम ग्रहण करने के लिये बाध्य नहीं किया। खंजर, तलवार और शक्ति के बल पर उसने अनेकानेक काफिरों को इस्लाम ग्रहण करने के लिये विवश नहीं किया। इसके विपरीत कतिपय इतिहासकारों का तर्क है कि मुहम्मद में धार्मिक असहिष्णुता थी। उसकी सेना और प्रशासन में न तो हिन्दू सैनिक ही थे और न हिन्दू पदाधिकारी ही। उसने भारत पर आक्रमण करने वाले अन्य मुसलमान आक्रांताओं के समान हिन्दुओं के मंदिरों, देवालयों और पवित्र स्थानों को लूटा, और नगरों को विध्वंस किया, और अनेकानेक निर्दोष मनुष्यों को मौत के घाट उतार दिया। लूटपाट, नरसंहार और विध्वंस उसके अभियानों में निहित थे। उसके सैनिकों के अपने धर्म में लूटपाट और नरसंहार विधि-विहित था। परन्तु मुहम्मद का उद्देश्य धन-प्राप्ति और लूटमार नहीं था। वह साम्राज्य स्थापित करने की अपनी सुनिश्चित योजनाओं को राजनैतिक दृष्टिकोण से

कार्यान्वित करना चाहता था। उसने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को इतनी ठेस नहीं पहुँचाई जितनी महमूद गजनवी ने। वह व्यक्तिगत रूप से सैनिकों को लूटने और विध्वंस करने की प्रेरणा नहीं देता था। धर्म के नाम पर उसमें जो कुछ भी धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता थी, जो कुछ भी विध्वंस और नरसंहार के कार्य उसने किये उसके पीछे मुहम्मद के युग का प्रभाव था।

मुहम्मद गोरी के भारत आक्रमण के परिणाम

(१) **हिन्दु साम्राज्य का पराभव**—मुहम्मद गोरी के आक्रमण के पूर्व उत्तरी भारत में हिन्दुओं के विभिन्न स्वतन्त्र राज्य विद्यमान थे। उनमें अनेक शक्तिशाली और समृद्ध थे। उनमें से कुछ उत्तरी भारत पर अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे और संभव था कि भारत में उस समय गुप्त साम्राज्य या वर्द्धन साम्राज्य की भांति कोई विशाल सार्वभौम सशक्त साम्राज्य स्थापित हो जाता। परन्तु गोरी के अभियानों और विजयों ने हिन्दुओं के इस प्रयास को समाप्त कर दिया। उसके साम्राज्य स्थापित करने के प्रयासों और दिग्विजयों से हिन्दुओं की शक्ति को ऐसा गहरा आघात लगा कि तराइन के युद्ध के बाद ऐसा कोई हिन्दू नरेश बचा नहीं था जो हिन्दुओं की शक्ति को संवारता, संगठित करता और विदेशी आक्रांताओं को देश से खदेड़ देता। भारत की राजधानी दिल्ली पर गोरी का अधिकार हो गया जिससे उत्तरी भारत की विजय करना उसके लिये सरल हो गया। एक नवीन मुस्लिम साम्राज्य का अभ्युदय हुआ। यद्यपि मराठों और राजपूतों ने अनेक बार दृढ़ केन्द्रीय हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के प्रयत्न किये पर वे असफल रहे और वे मुस्लिम सत्ता और साम्राज्य का शीघ्र ही अन्त न कर सके।

(२) **मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना**—मुहम्मद गोरी के अभियानों और विजय का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम था, भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना। इससे पूर्व अरब विजेताओं और महमूद गजनवी ने जो प्रयत्न किये थे वे कई कारणों से असफल रहे। गोरी का लक्ष्य ही मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करना था और उसके द्वारा स्थापित मुस्लिम साम्राज्य भारत में लगभग छः सदियों तक विद्यमान रहा जिसके परिणाम स्वरूप मुसलमान शासक भारत के भाग्य-विधाता रहे।

(३) **धर्म और समाज में नवीन प्रवृत्तियां**—मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के बाद भारत में मुस्लिम शासकों ने इस्लाम के प्रसार के लिये राज्य के सभी साधनों का उपयोग किया। राज्यपद, प्रगति, और धन सम्पत्ति व समृद्धि प्राप्ति के लिये इस्लाम अपनाना सरल मार्ग था। अनेकानेक हिन्दू मुसलमान हो गये। इससे कालान्तर में धार्मिक और साम्प्रदायिक दोष उत्पन्न हो गये। समाज में हिन्दू और मुस्लिम ऐसे दो वर्ग बन गये जो समानान्तर रेखाओं के समान कभी मिल नहीं सकते थे। मुस्लिम वर्ग सदा ही हिन्दुओं से अपने को अलग समझता रहा और प्रेरणा के लिये मक्का और मदीना की ओर देखता रहा। भारतीय जीवन के विभिन्न अंगों पर इन प्रवृत्तियों का बुरा प्रभाव पड़ा।

(४) **बाह्य विदेशी वाणिज्य-व्यापार**—भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो

जाने से भारत का गजनी, फारस, अरब, खुरासान, बल्ख आदि अन्य मुस्लिम देशों से व्यापारिक संपर्क बढ़ गया। भारत की अनेकानेक वस्तुएँ सीमान्त क्षेत्र के दर्रों से उन देशों में पहुँचने लगीं। इस बाहरी वाणिज्य-व्यापार से भारतीय समृद्धि में खूब वृद्धि हुई जिसका प्रभाव और परिणाम मुगलकाल की धन सम्पन्नता और शाहजहाँ की शान-शौकत में प्रगट हुए।

सांस्कृतिक प्रभाव—मुस्लिम साम्राज्य स्थापित होने से, इस्लाम धर्म के प्रचार और प्रसार से भारत में एक नवीन इस्लामी संस्कृति का विकास हुआ। इस्लाम की पाश्चात्य प्रवृत्तियाँ भारत में प्रविष्ट हो गयीं जिससे भारतीय साहित्य, कला और दैनिक जीवन अत्यधिक प्रभावित हुआ।

महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी की तुलना

भारत पर आक्रमण और विजय करने वाले मुस्लिम शासकों में जिन व्यक्तियों ने भारतीय इतिहास में अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है उनमें महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों के कार्यों, चरित्र और सफलताओं की तुलनात्मक विवेचना निम्न पृष्ठों मे की गयी है—

(१) प्रारम्भिक परिस्थितियाँ

महमूद गजनवी	मुहम्मद गोरी
(i) महमूद को बाल्यकाल से ही राजकीय वातावरण प्राप्त हुआ था, उसके व्यवहार और संस्कार में राजकीयता थी।	(i) मुहम्मदगोरी को अपने बाल्यकाल में गजनवी के समान न तो व्यापक राजकीय वातावरण ही प्राप्त हुआ और न वैसे राजकीय संस्कार निर्माण करने के अवसर ही।
(ii) महमूद को राज्यारोहण के समय अपने पिता का साम्राज्य और उसके सभी साधन प्राप्त हो गये थे जिन्होंने उसकी महत्वाकांक्षाओं और योजनाओं की पूर्ति में बड़ा योगदान दिया।	(ii) मुहम्मद गोरी को विरासत में न तो कोई विशाल साम्राज्य ही प्राप्त हुआ और न उसकी सुनियोजित योजनाओं की पूर्ति के लिये समुचित सुविधाएँ और उपकरण ही।

(२) चरित्र और व्यक्तित्व

महमूद गजनवी	मुहम्मद गोरी
(i) महमूद गजनवी शरीर से कुरूप था, पर कुरूप होते हुए भी वह सौन्दर्य का महान प्रेमी था। उसके इस सौन्दर्य-प्रेम का ही परिणाम था कि उसकी राजधानी अपने सुन्दर	(i) मुहम्मद शरीर से सुन्दर था, पर उसे सौन्दर्य और कला से विशेष अभिरुचि नहीं थी। गजनी को सर्वश्रेष्ठ सुन्दर नगर बनाने में उसने कोई प्रयास नहीं किया।

भवनों के कारण उसके युग में इस्लामी विश्व का सर्वश्रेष्ठ नगर बन गया।

(ii) महमूद गजनवी चरित्र में श्रेष्ठ था। वह षडयंत्र और विश्वासघात नहीं करता था परन्तु उसमें पारिवारिक स्नेह और बंधुत्व का अभाव था। उसने अपने भाई को युद्ध में पराजित करके राज्य सिंहासन प्राप्त किया था और भाई को अपने राज्य के बाहर कर दिया था। महमूद ने अपने भाई को जीवन पर्यन्त कारागार में डाल दिया था।

(ii) मुहम्मद गोरी आकर्षक व्यक्तित्व का सुलतान था। पर चरित्र में वह गजनवी से गिरा हुआ था। उसने अनेक स्थलों पर विश्वासघात और षडयंत्र करके अपने कार्यों में सफलता प्राप्त की। उसकी राजनीति का यह एक अंग था। उच्छ की रानी तथा लाहौर के मलिक खुसरो के साथ किया गया विश्वासघात का व्यवहार उसके चरित्र पर कलंक है। परन्तु गोरी में अपने परिवार वालों के प्रति श्रद्धा और भक्ति थी। वह अपने भाई के प्रति जीवन भर स्वामिभक्त रहा। एक विशाल शक्तिशाली साम्राज्य का स्वामी होते हुए भी वह अपने भाई के प्रति अधिक विनयशील, विश्वासी, सम्मान और भक्तिवाला था, और उससे परामर्श के लिये वह गोर जाता था।

(३) सैनिक योग्यता

(i) महमूद गजनवी पराक्रमी, वीर, निर्भीक, साहसी योद्धा था। वह रणकुशलता और सैन्य संचालन तथा सैन्य संगठन में अत्यधिक प्रवीण था। महमूद जैसा असाधारण सैन्य संचालन और सैनिक संगठन की योग्यता बिरले ही व्यक्तियों में होती है। महमूद निस्संदेह विश्व के उच्चकोटि के सबसे बड़े सेनानायकों में से था।

(ii) महमूद गजनवी ने समस्त आयु भर एक ओर मध्य एशिया और दूसरी ओर भारत में अपने विजय अभियान जारी रखे। वह जीवनभर रणक्षेत्रों में ही रहा। पर रणभूमि में उसे

(i) मुहम्मद गोरी भी बड़ा वीर साहसी योद्धा था। रण-कुशल होने पर भी मुहम्मद गोरी महमूद के समान सैन्य संचालन और सैन्य संगठन में प्रवीण नहीं था। मुहम्मद गोरी में वह सामरिक प्रतिभा नहीं थी जो गजनवी में थी। सैनिक योग्यता में वह उससे नीचे था।

(ii) मुहम्मद ने अनेक आक्रमण और युद्ध किये और यद्यपि उसने भारत के अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी, पर ये विजय तत्कालीन राजपूत नरेशों की राजनैतिक दुर्बलताओं, दोषों और गोरी के

कभी पराजय नहीं मिली । उसने भारत को सत्रह बार पदाक्रान्त किया, पर एक बार भी वह परास्त और नतमस्तक नहीं हुआ । वह मध्य एशिया का एक महान विजेता था ।

साहस का फल थी, न कि उसकी वीरता और सैन्य संचालन व सैन्य संगठन का प्रतिफल । मुहम्मद को राजपूतों के हाथ गुजरात और तराइन में और मध्य एशिया में ख्वारिज्म के शाह के हाथ परास्त होना पड़ा । तराइन के प्रथम युद्ध के समान मुसलमानों ने काफिरों से इतनी करारी हार पहिले कभी नहीं खाई थी । गोरी की विजयों का श्रेय उसके वीर गुलामों और कुतुबुद्दीन ऐबक को है ।

(४) विजेता

(i) महमूद गजनवी तुर्क शासक था और उसने अपने भुजबल और दिग्विजयों से अपने पिता के छोटे से पर्वतीय गजनी राज्य को एशिया के विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया । महमूद को अपने पिता से बड़ा राज्य मिला था और उसके साधन भी अधिक थे ।

(i) मुहम्मद गोरी भी गजनी का तुर्क शासक था । उसने भी अपनी वीरता और दिग्विजयों से गजनी के छोटे से राज्य को विशाल राज्य बना दिया । परन्तु मुहम्मद गोरी का अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त गजनी राज्य महमूद को प्राप्त गजनी राज्य की अपेक्षा छोटा था । मुहम्मद के साधन सीमित थे इसलिये उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पडा ।

(ii) महमूद ने अपनी वीरता, दिग्विजयों से मध्य एशिया और भारत दोनों क्षेत्रों में अपने राज्य की सीमाएं बढ़ायीं। मध्यएशिया में महमूद का राज्य अधिक विशाल था । भारत में सिंध, गुजरात, कन्नौज और बनारस तक उसने विजये प्राप्त की थीं और ये सब उसने स्वयं अपने सैनिक अभियानों से ही । महमूद की विजयें अधिक व्यापक थी और साम्राज्य विशाल था ।

(ii) मुहम्मद गोरी ने भी अपनी वीरता और दिग्विजयों से राज्य का विस्तार किया पर मध्य एशिया में उसे ख्वारिज्म के शाह से परास्त होना पड़ा । मध्यएशिया में मुहम्मद का राज्य महमूद की अपेक्षा सीमित था । भारत में महमूद के समान ही उसकी विजयें गुजरात, कन्नौज और बनारस तक थी । यद्यपि बंगाल और बिहार उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे, पर उन्हें उसके गुलाम व सेनानायक मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने जीता था ।

(iii) सैनिक अभियानों और कठिन परिस्थितियों में वह कभी नहीं घबराता था, अपितु धैर्य, साहस और शक्ति से शत्रु का सामना करता था और विजय प्राप्त करता था।

(iv) महमूद के आक्रमणों के समय मंदिरों, देवालयों पवित्र स्थानों को लूटा और मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा गया और नगरों को विध्वंस किया जाता था। अनेकानेक मनुष्यों का संहार होता था। इन सबके लिये महमूद प्रोत्साहन और प्रेरणा देता था और वह स्वयं भी ये कार्य करता था। उसने अमानुषिक अत्याचार और नृशंसता के कार्य किये।

(iii) आक्रमणों, युद्धों और कठिन परिस्थिति में मुहम्मद भी नहीं घबराता था, वह भी धैर्य, वीरता और शक्ति से शत्रुओं का सामना करके उन्हें परास्त करता था।

(iv) अभियानों और युद्धों के समय मुहम्मद मंदिरों को लूटने, मूर्तियों को तोड़ने, नगरों को नष्ट करने और भयंकर नरसंहार के लिये प्रोत्साहन नही देता था। मुहम्मद के समय लूट-पाट, विध्वंस, नरसंहार केवल युद्ध और उसके बाद के परिणाम होते थे।

(५) उद्देश्य

(i) महमूद के भारतीय आक्रमणों और युद्धों का उद्देश्य भारत के मंदिरों और मूर्तियों को लूटना, तोडना-फोड़ना और उनके अतुलनीय धन को प्राप्त करना था। धन, स्वर्ण, मोती, हीरे आदि प्राप्त कर वह स्वदेश लौट जाता था और जीता हुआ प्रदेश भी छोड़कर चला जाता था। वहां के निवासियों की सुरक्षा और सुव्यवस्था की ओर वह तनिक भी ध्यान नहीं देता था। वह नये नये प्रदेशों को जीतने का शोकीन था और वहाँ के लूटे हुए धन से अपने गजनी राज्य को समृद्ध करना चाहता था। महमूद का ध्येय कभी भी स्थायी विजय और राज्य की प्राप्ति नहीं था।

(ii) महमूद अपने नये जीते हुए प्रदेशों की प्रशासन व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं देता था। इससे उसके साम्राज्य में भयंकर अशांति और

(i) मुहम्मद के उद्देश्य महमूद गजनवी की अपेक्षा अधिक महान और महत्वशाली थे। उसका उद्देश्य धन लूटना और गजनी को समृद्ध बनाने की अपेक्षा भारत में स्थायी मुस्लिम राज्य की स्थापना करना था। उसने भारत के प्रदेशों को जीतकर यहाँ स्थायी राज्य और सत्ता स्थापित करने के प्रयत्न किये। वह बड़े से बड़े राज्य का भूखा था, जिसे वह अपने उत्तराधिकारियों को विरासत में देना चाहता था। मुहम्मद गोरी को भारत में इस्लामी राज्य स्थापित करने का श्रेय है। वह भारत में मुस्लिम राज्य का संस्थापक है।

(ii) मुहम्मद नये प्रदेशों को जीतकर वहां अपने अधिकारी, सूबेदार और प्रतिनिधि नियुक्त कर व्यवस्थित प्रशासन स्थापित करता था। विजय और प्रशासन दोनों साथ-साथ

अव्यवस्था व्याप्त थी। उसकी शासन व्यवस्था अत्यन्त दुर्बल थी, इससे उसकी मृत्यु के शीघ्र पश्चात् उसका साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

(iii) महमूद का उद्देश्य इस्लाम का प्रसार करना तथा काफिरों का नाश करना था। वह भारत में एक धर्म प्रचारक और लुटेरे के समान आया था। वह आंधी के समान आया और तूफान के समान धन लेकर चला गया।

होते थे। उसके साम्राज्य में श्रेष्ठ प्रशासन व्यवस्था रही जिससे उसकी मृत्यु के बाद भी उसका साम्राज्य भारत में बना रहा।

(iii) मुहम्मद गोरी का उद्देश्य इस्लाम का प्रसार करना या धन लूटना नहीं था।

(६) राजनीतिज्ञता

(i) महमूद ने भारत की राजनैतिक दुर्बलताओं का अच्छा अध्ययन कर लिया था और इससे लाभ उठाकर भारत में लूटपाट मचाई और अथाह धनराशि प्राप्त की। राज्य स्थापित करने की राजनीति उसमें नहीं थी। वह कत्लेआम, मृत्यु, विध्वंस, और विजय के साथ आया और वापिस लौट गया। इसीलिये उसकी विजयों के कोई स्थायी राजनैतिक परिणाम नहीं हुए। महमूद गजनवी केवल विजेता सैनिक ही था, राजनैतिक नहीं।

(i) महमूद की अपेक्षा मुहम्मद एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। भारत की तत्कालीन राजनैतिक दशा और दोषों को अच्छी तरह समझकर उसने भारत विजय की निर्दिष्ट श्रंखलाबद्ध योजना बनाई और उसे कार्यान्वित किया। मुहम्मद ने राजनीति का यह तत्व समझ लिया था कि धन के ढेर तो समाप्त हो सकते हैं, पर सुदृढ़ राज्य सदा स्थायी रहेगा। मुहम्मद की राजनीतिक दूरदर्शिता से भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो गया। राजनीतिज्ञता की दृष्टि से मुहम्मद गोरी की कुशलता प्रशंसनीय है।

(७) कला और साहित्य का संरक्षण

(i) महमूद स्वयं शिक्षित नहीं था, परन्तु उसे विद्या से अनन्य प्रेम था। वह विद्वानों और साहित्यकारों का उदार आश्रयदाता था। उसकी राजसभा दूर-दूर के दिग्गज विद्वानों से अलंकृत थी। अंसूरी, फारूखी, अलबरुनी, उतवी, बेहानी, उजरी, फिरदौसी आदि विद्वानों से उसकी

(i) मुहम्मह गोरी शिक्षित था, पर विद्यानुराग और विद्वानों के राज्याश्रय में वह महमूद के समक्ष बौना प्रतीत होता है। कला और साहित्य के संरक्षणों की ओर मुहम्मदगोरी ने कोई ध्यान नहीं दिया। फिर भी उसकी राजसभा में फखरुद्दीनराजी और नजामीउरूजी जैसे कवि थे।

राजसभा जगमगाती रहती थी। ऊंचे विद्वानों तथा श्रेष्ठ व्यक्तियों के साथ महमूद का व्यवहार इतना अच्छा था कि उसकी राजधानी में इतने विद्वान विद्यमान थे, जितने एशिया का कोई भी सम्राट कभी भी एकत्र नहीं कर सका।

(ii) कलात्मक भवनों से महमूद ने अपनी राजधानी गजनी को खूब सजाया। वहां उसने बड़े कलात्मक भवन, मसजिदें, अजायबघर, एक विशाल पुस्तकालय, कई पुल व सड़कें आदि निर्मित किये। यहाँ उसने भारत के तथा अन्य देशों के शिल्पियों और कलाकारों का उपयोग किया। फलतः गजनी उस युग में पूर्व का सर्वश्रेष्ठ और राजनैतिक हलचलों का प्रमुख नगर बन गया।

(ii) मुहम्मद में कला-प्रेम नहीं था। उसने उच्चकोटि के कलापूर्ण सुन्दर भवन निर्मित नहीं किये। मुहम्मद में न तो महान् सम्राट महमूद सी बुद्धि ही थी और न प्रतिभा ही थी। महमूद के समान उसकी अभिरुचि साहित्य, कला और विजय सभी में नहीं थी।

निष्कर्ष—महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी दोनों मुस्लिम विजेता अपने अपने ढंग से अनेक गुणों के स्वामी थे। पर उनके उद्देश्यों में विभिन्नता थी। एक ने भारत में धन लूटा तो दूसरे ने राज्य। नरसंहार और विध्वंस दोनों ने कुछ कम ज्यादा मात्रा में किये। महमूद का नाम महान विजेता के रूप में एशिया में विख्यात है। पर मुहम्मद गोरी महान विजेता न होते हुए भी अधिक अच्छे स्थायी उद्देश्यों और स्थायी राज्य स्थापित करने के कारण अवश्य ही अधिक महान है। महमूद ने भारत में प्रविष्ट होने का मार्ग बतलाया, मुहम्मद गोरी ने उसका अनुकरण किया और स्थायी मुस्लिम साम्राज्य स्थापित किया। दोनों के कार्य एक दूसरे के पूरक थे।

मुसलमानों की भारत विजय के कारण
या
मुसलमानों के विरुद्ध राजपूतों की पराजय के कारण

प्राचीनकाल में भारतीय नरेशों और उनकी सेनाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों का सफलतापूर्वक दृढ़ता से सामना किया और उन्हें पराजित कर खदेड़ दिया। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस को, पुष्यमित्र शुंग ने मिनेंडर को, पाटलिपुत्र के गुप्त सम्राटों ने कुषाणों, पहलवों, शकों और हूणों को तथा मालवा के यशोधर्मन ने हूणों को परास्त कर खदेड़ दिया। पूर्व मध्यकाल में इस्लाम के अनुयायियों के निरन्तर श्रंखलित आक्रमण हुए। इन आक्रमणकारियों का राजपूतों ने युद्धों में सामना किया पर वे इन विदे-

शियों को स्थायी रूप से रोक न सके। उनके सामने अनेक राजपूत नरेश नत मस्तक हुए। जिस भारत से विदेशी आक्रमणकारी अपनी मुँह की खाकर रणक्षेत्र से पीछे लौट गये, उसी भारत में लगभग ईस्वी सन् १२०० के पश्चात् विदेशी आक्रमणकारी यवन विजेता हो गये और अपने राज्य स्थापित कर दीर्घकाल तक भारत में शासन करते रहे। देश की राजनैतिक स्वतंत्रता लुप्त हो गयी। यद्यपि यवनों की इस विजय का कारण भारत की तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक दशा थी, परन्तु राजपूत भी इस विफलता के लिये उत्तरदायी हैं। यह निर्विवाद है कि यवनों के आक्रमणों के समय भारत अनेक दृष्टि से पतनोन्मुख हो चुका था, और विदेशियों ने इसका लाभ उठाकर यहाँ अपने राज्य स्थापित किये, परन्तु इसके लिये तत्कालीन राजपूतों का भी उत्तरदायित्व है। उनकी पराभव के कारण निम्नलिखित हैं।

(अ) राजनैतिक कारण

मुसलमानों की विजय या राजपूतों की पराजय के निम्न लिखित राजनैतिक कारण हैं–

(१) राजनैतिक विश्रृङ्खलन–मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व समस्त उत्तरी भारत राजनैतिक विश्रंखलन की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। हर्ष के देहावसान के पश्चात् उत्तरी भारत अनेकानेक छोटे-छोटे राजपूत राज्यों में विभक्त हो गया था। उनमें विघटन की प्रवृत्ति थी, संगठन की नहीं। अनेक बार राजपूत राजाओं ने अपने प्रतिद्वन्दी का विनाश करने के लिये विदेशियों को आमंत्रित किया, उन्हें अपने प्रतिद्वन्दी के विरुद्ध सहायता और सहयोग दिया एवं समय आने पर गुप्तभेद भी प्रकट कर दिये। मुसलमानों ने इस राजनैतिक स्थिति का लाभ उठाकर आक्रमण किये और एक-एक करके राजपूत नरेशों को परास्त कर दिया।

(२) राजनैतिक एकता, दृढ़ केन्द्रीय सत्ता और राष्ट्रीयता का अभाव–राजपूतों में राष्ट्रीयता की भावना का सृजन नहीं हुआ था। राजपूत नरेश और सामान्त अपने राज्य और वंश या कुल के लिये अधिक स्वामिभक्त थे। उसके लिये वे अपना सर्वस्व बलिदान कर देते थे। अपने राज्य या वंश के राज्य पर हुए आक्रमणों का सामना करने को व कटिबद्ध थे, परन्तु भारत के अन्य भागों पर होने वाले विदेशी आक्रमणों के प्रति वे उदासीन और तटस्थ रहते थे। उन्होंने कभी भी पूर्णरूप से सम्मिलित और संगठित होकर आक्रमणकारियों का सामना नहीं किया। राष्ट्रीय भावना का अभाव राजपूतों में ही नहीं था, अपितु जनता में भी था। साधारण लोग राजा के प्रति ही अपना कर्तव्य समझते थे और देश के अन्य प्रदेशों व राज्यों की घटनाओं के प्रति उदासीन और अनभिज्ञ रहते थे।

देश में राजनैतिक एकता और दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का भी अभाव था। देश में कोई ऐसी केन्द्रीय शक्ति नहीं थी जो समस्त राजपूतों को संगठित कर आक्रमणकारियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकती।

(३) सामन्त शाही–राजपूतों में सामन्त-प्रथा प्रचलित होने से प्रशासन और सैन्य संगठन में सामन्तों का ही बाहुल्य होता था। वे प्रशासन और सेना में उच्च पदों पर नियुक्त होते थे। राज्य की शक्ति और उसकी रक्षा इन सामन्तों की स्वामि-भक्ति

पर आश्रित थी। राज्य की आन्तरिक शाँति, बाह्य भय और आतंक पर निर्भर रहती थी। जब राज्य पर किसी बाहरी शत्रु के आक्रमण का भय नहीं रहता था तो ये सामन्त अस्थिर हो जाते थे और उनके तथा राजवंशों और राजपूत के विभिन्न झगड़े सामने आकर प्रबल हो जाते थे। इसके अतिरिक्त राजा के दुर्बल होने पर या उसके देहावसान होने पर बड़े-बड़े सामन्त स्वतंत्र राजा बन जाने का प्रयास करते थे। इस प्रवृत्ति से राज्य में सदा पारस्परिक कलह, गृहयुद्ध और विद्रोह की संभावना बनी रहती थी।

(४) **दृढ़ सीमान्त नीति का अभाव**–आधुनिक काल के पूर्व भारत के समस्त आक्रमण उत्तर-पश्चिमी सीमा की ओर से ही हुए। भारत के अधिकांश नरेशों ने विदेशी नीति की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने उत्तर पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा की अवहेलना भी की। न तो उन्होंने वहां कोई किलेबंदी की और न दृढ़ सुसज्जित और प्रशिक्षित सेना ही रखी। फलतः देश में प्रवेश करने में बाहरी आक्रमणकारी और शत्रु को कोई कठिनाई नहीं होती थी। आक्रमणकारियों को सीमा पर रोकने और खदेड़ने के प्रयत्न नहीं किये जाते थे। सीमान्त क्षेत्र के छोटे-छोटे राज्यों में एकता व संगठन का अभाव तो था ही, पर वे अपने पारस्परिक संघर्ष और युद्ध में इतने संलग्न रहते थे कि वे विदेशी आक्रमणकारी को रोकने में असमर्थ हो गये। इससे आक्रमणकारी सीमान्त क्षेत्र से पंजाब में सरलता से आ सके और विजय प्राप्त कर सके। पंजाब से दिल्ली बढ़कर और वहां अपना सैनिक आधार बनाकर वे अन्य राज्यों को सरलता से परास्त कर सके।

(५) **कूटनीति का अभाव**–राजपूत सफल कूटनीतिज्ञ नहीं थे। उनमें छल-कपट और कूटनीति नहीं थी। वे सदैव धर्मयुद्ध करते थे। उनके युद्ध के अपने उच्च आदर्श और सिद्धान्त थे। वे भागते या पीठ दिखाते हुए शत्रु को परास्त कर उसका वध नहीं करते थे। वे छल-कपट द्वारा युद्ध में विजयी होना नहीं चाहते थे। वे बड़े सीधे-सादे ईमानदार और वचन-बद्ध होते थे। अपनी वचन पूर्ति के लिये वे राष्ट्र हितों का बलिदान तक कर देते थे और शत्रु के सम्मुख वे बड़े से बड़े भेद प्रकट कर देते थे जिसका लाभ उठाकर शत्रुओं ने उन्हें परास्त किया। इसके विपरीत राजपूतों के यवन शत्रु कूटनीति और छल-कपट में प्रवीण थे और वे राजनीति तथा युद्धों मे इनका खुल कर सदुपयोग करते थे और राजपूतों को अपने जाल में फंसा लेते थे। इससे राजपूतों का पराभव हुआ और उन्हें खूब क्षति उठाना पड़ी।

(६) **मुस्लिम उपनिवेशों का अस्तित्व**–सीमान्त क्षेत्र तथा पंजाब व दिल्ली में प्रारंभिक विजय उपलब्ध कर लेने के बाद मुस्लिम आक्रमणकारियों ने वहाँ अपने उपनिवेश और राज्य स्थापित कर लिये थे। हिन्दुओं ने और विशेषकर राजपूत नरेशों ने इन उपनिवेशों को नष्ट करने का कोई प्रयास नहीं किया। फलतः सिन्ध, सीमान्त क्षेत्र, पेशावर, मुलतान, लाहौर और दिल्ली पर विदेशियों का अधिकार सरलता से हो गया और वहाँ उनके स्थायी राज्य बन गये।

(७) **राजनैतिक उदासीनता**–भारत में अनेक अरब और तुर्क व्यापारी आते-जाते रहते थे और उनमें से अनेक भारत में स्थायी रूप से बस गये। भारत के पश्चिमी

तट पर उन्हें बसाने तथा देश के अन्य भागों में उन्हें स्थायित्व प्राप्त करने में राष्ट्रकूट नरेशों तथा अन्य राजाओं का हाथ था। इन अरब व्यापारियों ने विदेशों में भारत की राजनैतिक दुर्बलताएं प्रदर्शित की और भारत में हिन्दू धर्म के विरुद्ध इस्लाम का प्रचार किया तथा अरब और तुर्क आक्रमणकारियों को सहयोग दिया। इतना होने पर भी राजा-प्रजा दोनों में ही राजनैतिक उदासीनता रही। उन्होंने अरब तुर्क व्यापारियों के प्रवाह को अवरुद्ध नहीं किया।

(८) **रक्षा और युद्ध का भार राजपूतों पर**—इसके अतिरिक्त उस युग में देश रक्षा और युद्ध का भार केवल राजपूतों पर ही था। बाहरी आक्रमणों के समय राजपूतों को ही शत्रुओं से लोहा लेना पड़ा। देश के अन्य लोग और जातियाँ देश के प्रति उदासीन रही। राजपूतों को छोड़कर हिन्दू समाज की सभी जातियाँ असामरिक हो गयी। फलतः सीमित संख्या वाले राजपूत दीर्घकाल तक बाहरी शत्रुओं से निरन्तर युद्ध नहीं कर सके। उनकी क्षति होने लगी और उनकी संख्या में उत्तरोत्तर कमी आने लगी। इससे वे परास्त हो गये।

(९) **पारस्परिक वैमनस्य और ईर्षाद्वेष**—राजपूतों में पारस्परिक गृह-कलह, वैमनस्य, और ईर्षा-द्वेष अत्यधिक था। राजपूत राज्यों में सद्भावना और सहयोग का सदा अभाव था। वे एक दूसरे से निरन्तर संघर्ष करने और नीचा दिखाने में सदा तत्पर रहते थे। इसके अतिरिक्त राजपूत राजवंशों में वैमनस्य परम्परागत हो गये थे। वे अपनी शक्ति और शौर्य का दुरुपयोग पारस्परिक युद्धों और गृह-कलह में करते थे। इससे उनकी सैनिक शक्ति आंतरिक झगड़ों में ही लग जाती थी व उनकी शक्ति क्षीण हो गयी और वे संगठित होकर विदेशियों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा स्थापित कर उनका दृढ़ता से सामना नहीं कर सके।

(१०) **राजनैतिक और प्रशासकीय भेदभाव**—शासन के महत्वपूर्ण पदों पर किसी भी वर्ग या जाति के योग्य, प्रतिभावान कार्यकुशल व्यक्ति की नियुक्ति नहीं होती थी, परन्तु ब्राह्मणों व क्षत्रियों के वर्ग में से ही जिनकी मान प्रतिष्ठा अन्य वर्गों के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक थी, ऐसे पदों पर नियुक्त होते थे। इस प्रशासकीय भेद और राजनैतिक पक्षपात के कारण अन्य वर्गों व जातियों के लोग राज्य के कार्यों व कर्तव्यों के प्रति उदासीन हो गये थे। साधारण जनता को प्रशासन और राजनीति में अधिकार नहीं होने से लोग असन्तुष्ट थे। फलत: विदेशी आक्रमणों के संकटकाल में राजाओं को विशेष रूप से सहायता नहीं दी गई।

(ब) सामाजिक कारण

मुसलमानों की विजय या राजपूतों के पराभव के सामाजिक कारण निम्नलिखित हैं।

(१) **संकीर्ण सामाजिक भावना**—उस युग में समाज में संकीर्ण मनोवृत्ति थी। सामाजिक एकता का अभाव था। राजपूत और उनकी अनेक उपजातियों को विशेष महत्व दिया जाता था। अन्य वर्गों में भी जातियों और कुलों का महत्व था। जातियों और वर्गों में परस्पर कोई सहानुभूति और सहयोग नही था। कुछ विभिन्न जातियों और वर्गों के लोग अपने को अन्य जातियों और वर्गों के व्यक्तियों से ऊंचा व श्रेष्ठ समझते थे तथा अन्य कुलों व जातियों को हेय मानते थे। इस जातीय तथा कुलीनता

के दंभ ने समाज को दुर्बल कर दिया था। इससे समाज की सुरक्षा और संगठन की ओर लोगों ने ध्यान नहीं दिया।

जाति, कुल या वंश की शान से प्रेरित सामाजिक संकीर्णता के कारण राजपूत किसी अन्य राज्य के अधिनायक या सेनापति के अधीन संगठित होकर बाहरी शत्रु का सामना करने में अपना अपमान समझते थे। इसे वे अपने गौरव और प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानते थे। वर्ग एवं जाति विभाजन से उत्पन्न संकीर्ण मनोवृत्ति से राजपूतों का वीरत्व, साहस, रण-कौशल और सद्‌गुणों का उपयोग नहीं हो सका।

(२) **विलासिता**–शांति के समय राजपूतों का अधिकांश समय रनवास की विलासिता और भोग विलास में, सौन्दर्य की गोद में, द्यूत-क्रीड़ा और आखेट में, तथा अन्य आमोद-प्रमोद में व्यतीत होता था। उनका यह सामाजिक पतन था। इसके अतिरिक्त निरन्तर अफीम के सेवन और सुरा-पान से तथा बहुविवाह से उनकी बुद्धि कुंठित हो गयी थी, शक्ति क्षीण हो गयी थी तथा स्वभाव अस्थिर हो गया था और वे शीघ्र आवेश में आ जाते थे। इससे शत्रु का सामना होने पर उनका पक्ष दुर्बल पड़ जाता था।

(३) **अंध विश्वास और भाग्यवादिता**–राजपूतों में अन्धविश्वास और भाग्य वादिता का विशेष महत्व था। वे भविष्यवाणी और ज्योतिषियों में अधिक विश्वास करते थे। वे भाग्य पर विश्वास करके उसके सहारे बैठे रहते थे। उनकी यह धारणा व अंधविश्वास हो गया था कि "कलियुग में म्लेच्छों का शासन होगा"। वे तुर्कों और अरबों के आक्रमणों और राज्य को नियति का फेर जानकर बैठे रहे। इससे समाज की कर्मण्यता, उत्साह और वीरता पर निराशा का गहरा आवरण हो गया। देवी-देवताओं और भाग्य की आड में तथा ज्योतिषियों के कथन में सामाजिक जीवन अकर्मण्य हो गया, लोगों में जागरूकता और कार्यक्षमता लुप्त हो गयी। उनमें आत्म-विश्वास नष्ट हो गया, और वे उत्साही आक्रमणकारियों के सम्मुख धाराशयी हो गये।

(स) सैनिक कारण

मुसलमानों की विजय या राजपूतों की पराजय के निम्नलिखित सैनिक कारण थे।

(१) **पदातियों का बाहुल्य**–राजपूत सेनाओं में पैदल सैनिकों की संख्या सबसे अधिक होती थी। इससे वे तीव्रगति से संचालित नहीं हो सकते थे। इसके अतिरिक्त पदाति न तो अधिक गतिशील और पैतरेबाज होते थे और न पूर्णरूप से प्रशिक्षित। उन्हें पराजित करना अत्यन्त सरल था। इसके विपरीत बाहरी यवनों की संख्या में दृढ़ अश्वरोहियों की संख्या अधिक होती थी। वे बड़े गतिशील और प्रशिक्षित होते थे। राजपूतों के पदाति इन अश्वारोहियों से सफलतापूर्वक युद्ध करने में असमर्थ थे।

(२) **स्थायी सेना का अभाव**–राजपूतों में विशाल संगठित स्थायी सेना की संख्या नगण्य थी। राजा और प्रशासक, सामन्तों द्वारा प्रदत्त सेनाओं पर निर्भर रहते थे। अधिक सैनिकों की आवश्यकता होने पर नौसिखियों को भी सेना में भरती कर रणक्षेत्र में भेज दिया जाता था। युद्ध-काल में भरती किये सैनिक युद्ध कला से अपूर्ण तथा अपरिचित रहते थे। इस प्रकार सामन्तों की सेना और नौसिखियों की सेना में

उचित सैनिक प्रशिक्षण, अनुशासन और योग्यता का नितान्त अभाव था। उनमें अपने स्वामि के प्रति भक्ति भी नहीं होती थी। ऐसे सैनिक युद्ध कला से पूर्णतया अनभिज्ञ भी रहते थे। फलतः पराभव स्वाभाविक था।

(३) **सुरक्षा सेना का अभाव**—राजपूत युद्धों के समय अपने साथ और पीछे सामरिक स्थानों में सुरक्षा सेना (Reserve Force) नहीं रखते थे। वे अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ युद्ध प्रारम्भ कर देते थे। जब वे युद्ध करते-करते थक जाते तब शत्रु अपनी रक्षित सेना का उपयोग करते। इस रक्षित और नई ताजी सेना से युद्ध में संलग्न सेना को विशेष सहायता प्राप्त होती थी, उसमें साहस व उत्साह का संचार होता था, और थके हुए राजपूतों को परास्त करना सरल होता था। एक ही बार में युद्ध निर्णायक हो जाते थे।

(४) **सैनिकों की दोषपूर्ण नियुक्ति**—राजपूत सेनाओं में सैनिक और अधिकारी पिता का पुत्र, सैनिक और अधिकारी नियुक्त किया जाता था, चाहे उसमें सैनिक योग्यता और प्रतिभा हो या न हो, चाहे उसमें युद्ध-प्रियता और वीरत्व हो या न हो। इसके अतिरिक्त सैनिक अशक्त और वृद्ध होने पर भी वह अपने पद पर बना रहता था। सैनिकों की भरती के क्षेत्र भी सीमित होते थे। इससे युवक सैनिकों का निरन्तर प्रवाह अवरुद्ध हो जाता था। मुसलमानों की सेनाओं में ये तत्व नहीं थे। उन्हें मध्यएशिया के ठंडे देशों से सदैव कुशल वीर और युवा सैनिक निरन्तर प्राप्त होते रहते थे।

(५) **हस्ति सेना की दुर्बलता**—राजपूत अपनी सेना में हाथियों को आगे रखते थे जिससे कि वे आक्रमणकारियों को रौंद कर नष्ट करदें। पर हस्तिसेना युद्ध में आघातों से और भीषण मार-काट से व्याकुल होकर बिगड़ जाती और हाथी पीछे मुड़ कर शत्रुपक्ष की अपेक्षा अपनी ही सेना को रोंद डालते और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालते थे। इसके विपरीत तुर्क या अरब सेना में हाथियों का उपयोग शत्रु के दुर्ग-द्वारों को तोड़ने के लिये या शत्रु की प्रगति को अवरुद्ध करने के लिये किया जाता था।

हस्ति सेना के विपरीत मुसलमान अश्वारोही सेना का अधिक उपयोग करते थे। राजपूत पदाति सेना, शत्रुओं की अश्वारोही सेना का सामना करने में असमर्थ होती थी और राजपूतों की हस्तिसेना विपक्षी अश्वारोही सेना का दौड़ में मुकाबला नहीं कर सकती थी। इस प्रकार हस्तिसेना राजपूतों के लिये घातक ही होती थी।

(६) **राजपूतों की प्राचीन युद्ध प्रणाली**—राजपूत पुरातन युद्ध प्रणालियों का ही उपयोग करते थे। राजपूत सेनापति सैन्य-संचालन के साथ-साथ स्वयं भी सैनिकों के समान रणक्षेत्र में युद्ध करते और अपने वीरत्व का प्रदर्शन करते थे। इसका दुष्परिणाम यह होता था कि उन्हें युद्ध में संलग्न अपनी सेना की तनिक भी खबर नहीं हो पाती थी, और न वे स्वयं अपनी सुरक्षा की ही चिंता कर पाते थे। इससे कभी-कभी सेनापति के घायल हो जाने पर या युद्ध में वीर गति प्राप्त होने पर, विजय करती हुई सारी राजपूत सेना ही रणक्षेत्र से भाग खड़ी होती थी। सेनापति के अभाव में पराजय की आशंका से सारी सेना हतोत्साहित हो जाती थी और युद्ध से पलायन करने लगती थी। शत्रु इसका लाभ उठाकर सरलता से विजय प्राप्त कर लेते थे।

राजपूतों के अस्त्र-शस्त्र भी प्राचीन ढंग के होते थे। वे प्रायः तलवार और

भालों का ही उपयोग करते थे। इससे वे विदेशी मुस्लिम तीरदाजों के सम्मुख ठहर नहीं पाते थे। राजपूत तीरंदाजी की युद्ध कला से और तोपों से लड़ने की प्रथा से अनभिज्ञ से थे। तलवार, ढाल और भाले का सदुपयोग तभी हो सकता था जब सैनिक आमने-सामने व्यक्तिगत युद्ध कर रहे हों। पर विदेशी मुसलमान आक्रमणकारी सैनिक दूर से ही तीरों द्वारा अपने शत्रुओं को घायल कर परास्त कर देते थे। राजपूत विदेशी तीरदाजी के सामने ठहर न सके।

(७) **दोषपूर्ण युद्ध-योजना और सैन्य-संचालन**-राजपूत नरेशों में निर्दिष्ट युद्ध योजना नहीं होती थी। वे कब, कैसे और कहां युद्ध करेंगे इसका कोई निर्णय नहीं होता था। इससे वे अपनी संपूर्ण सैनिक शक्ति का सदुपयोग नहीं कर सकते थे। उन युद्धों में जिनमें अनेक छोटे-छोटे राजपूत नरेश अपनी सेनाओं सहित सम्मिलित होते थे, निर्दिष्ट युद्ध-योजना का अभाव अत्यन्त ही घातक होता था। विभिन्न राजा या सेना-नायक अपनी-अपनी सेना को अलग-अलग मनमाने ढंग से व विभिन्न स्थानों से, युद्ध के आदेश देते और युद्ध करते थे। सैनिकों में भी स्वामि-भक्ति विभाजित होती थी; एक सुयोग्य वीर अधिनायक के नेतृत्व में युद्ध करना वे उनके सम्मान व प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानते थे। इससे रण-क्षेत्र में अव्यवस्था उत्पन्न होती थी, और विजय की अपेक्षा पराजय ही अधिक होती थी। इसके विपरीत मुसलमान योजनापूर्वक संगठित होकर युद्ध करते थे। उनकी व्यूह रचना भी श्रेष्ठ थी। यद्यपि राजपूत अपने बलवान, साहसी विरोधियों की अपेक्षा कम वीर और साहसी नहीं थे। पर वे युद्ध-विन्यास और सैन्य-संचालन में अपने विरोधियों से पीछे थे। उनके पराक्रम और शौर्य में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, कमी थी तो उस पराक्रम और वीरत्व को लाभप्रद ढंग से उपयोग करने की।

(८) **योग्य, प्रतिभावान, अनुभवी सेनापतियों और श्रेष्ठ नेताओं का अभाव**— राजपूतों में सुयोग्य प्रतिभावान अनुभव वाले सेनापतियों का अभाव रहा। उनमें उत्साह और वीरता की कमी नहीं थी, परन्तु कमी थी दूरदर्शी, सफल, योग्य नेताओं की जो उन्हें संकटकाल में एकता के सूत्र में बांधकर विदेशी आक्रमणकारियों को सफलता से परास्त करवादे। इसके विपरीत मुसलमानों में श्रेष्ठ नेतृत्व की कमी नहीं थी, उनके सेनापति बड़े रण-कुशल और अनुभवी होते थे और अपनी सेना का संचालन बड़ी सफलता और दूरदर्शिता से करते थे।

(९) **राजपूतों का रक्षात्मक युद्ध**-राजपूतों ने सीमान्त की सुरक्षा की अवहेलना की। इससे विदेशी आक्रमणकारी सरलता से पंजाब और दिल्ली तक आ गये और उन्होंने अपनी सत्ता दृढ़ता से स्थापित कर ली। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि राजपूतों को रक्षात्मक युक करना पड़े। वे कभी आक्रांता न हो सके। उनके समस्त युद्ध भारत में ही हुए। विजय चाहे जिस पक्ष की हो, क्षति भारतीयों की ही होती थी। उनके कृषि, व्यापार और उद्योग धंधे अस्त-व्यस्त होते थे।

(१०) **मुसलमानों की सैनिक विशेषताएं और सफलताएं**–मुसलमान आक्रमणकारियों ने मध्यएशिया के अनेक प्रदेशों में विजय प्राप्त की थी। इससे उनका सामरिक अनुभव, उत्साह, और साहस अधिक बढ़ गया था। भारत में भी निरन्तर मिलने वाली विजयों से भी उनके उत्साह और शौर्य में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके विपरीत राजपूतों की निरन्तर पराजयों से वे हतोत्साहित हो गये थे। फलत: उन पर विजय प्राप्त करना सरल था। मुसलमानों में अश्वारोही सेना की बाहुल्यता, रण-कुशलता तथा तीव्रगति से उनकी विजय सुगम हो गयी। राजपूतों के सैनिकों की संख्या सीमित थी। राजपूत सैनिकों के विनाश की पूर्ति अन्य जाति के युवकों और सैनिकों ने नहीं की। इसके विपरीत मुसलमानों को मध्यएशिया के विभिन्न प्रदेशों से निरन्तर सैनिक प्राप्त होते रहते थे। इनकी सेना में भी विशेष स्फूर्ति और तीव्र गतिशीलता रहती थी। सेना भी सुसंगठित, आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित और प्रशिक्षित तथा अनुशासन-बद्ध होती थी। मुसलमानों के सेनानायक भी रण-कुशल और सैन्य संचालन में अनुभवी और प्रवीण थे।

(द) आर्थिक कारण

आर्थिक क्षीणता–राजकीय वैभव और विलासिता ने तथा सतत् युद्धों ने राजपूत नरेशों के कोष को रिक्त कर दिया था। मंदिरों, धार्मिक स्थानों, तीर्थों आदि में जनता ने अतुल संपत्ति संचित कर रखी थी। विदेशी आक्रमणकारियों ने इन स्थानों पर आक्रमण कर वहां की अतुल धन संपत्ति को लूटा; नगरों को और धन-सम्पन्न व्यक्तियों को भी लूटा, उनकी संपत्ति भी प्राप्त करली और अनेक स्थानों को भस्मीभूत कर दिया। इससे कृषि एवं उद्योग व्यवसाय अस्त-व्यस्त होते गये और देश की आर्थिक क्षीणता में वृद्धि होती गयी। इससे राज्य की सैन्य शक्ति भी क्षीण होती गयी जिससे राजपूतों को परास्त करना सरल और सुगम हो गया।

(य) धार्मिक कारण

यवनों में जेहाद और निश्चित उद्देश्य की भावना–भारत पर आक्रमण करने के हेतु मुसलमान सैनिकों और नेताओं में प्रमुख निश्चित उद्देश्य था, भारत मे जेहाद कर, इस्लाम धर्म का प्रसार करना, मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ना-फोड़ना, और लूटना। उनकी दृढ़ धारणा थी कि जेहाद और इस्लाम धर्म के प्रसार में पुण्य प्राप्त होता है और इसमें प्राण त्यागने से जन्नत या स्वर्ग प्राप्त होता है। यदि वे भारत में जेहाद और इस्लाम के लिये युद्ध करके विजयी हुए तो उन्हें अतुल सम्पत्ति और राज्य प्राप्त होगा और यदि पराजित हुए या वीर गति को प्राप्त हुए तो भी उन्हें पुण्य मिलेगा और खुदा जन्नत देगा। फलत: आक्रमण करने और युद्ध में लड़ने के लिये यवनों का उत्साह अत्यधिक था। राजपूत सैनिकों और राजाओं में निर्दिष्ट राष्ट्रीय भावना और धार्मिक उद्देश्य के अभाव से विरोधियों के समान उनमें उत्साह, आत्म-विश्वास, दृढ़ता और साहस का संचार नहीं हो पाया था।

राजपूतों की पराजय या मुसलमानों की विजय के कारण

राजनैतिक कारण	सामाजिक कारण	सैनिक कारण	आर्थिक दशा	धार्मिक कारण
१. राजनैतिक विशृङ्खलन और विघटन	१. संकीर्ण सामाजिक भावना, जातीय और कुलीनता का दंभ	१. राजपूतों में स्थायी सेना, सैनिक प्रशिक्षण, अनुशासन, और योग्यता का अभाव	वैभव, विलासिता, निरन्तर युद्धों, व विदेशियों द्वारा धन-सम्पत्ति की लूट से, आर्थिक क्षीणता, सैनिक शक्ति व राजकीय सत्ता की दुर्बलता	मुसलमानोंमें जेहाद, इस्लाम के प्रचार की दृढ़ भावना और निश्चित उद्देश्य
२. राजनैतिक एकता, दृढ़ केन्द्रीय सत्ता और राष्ट्रीयता का अभाव	२. राजपूतों की विलासिता, सुरापान, अफीम सेवन, सामाजिक दुर्गुण और पतन	२. युद्धकाल में सुरक्षा सेना का अभाव		
३. सामन्तशाही, स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की प्रवृत्ति	३. अन्ध-विश्वास और भाग्यवादिता, अकर्मण्यता की प्रधानता, आत्मविश्वास और जागरूकता का अभाव	३. पदातियों का बाहुल्य		
४. दृढ़ सीमान्त और सफल विदेशी नीति का अभाव		४. सैनिकों की दोषपूर्ण नियुक्ति		
५. राजपूतों में छल, कूटनीति का अभाव, व मुसलमानों में इसकी प्रधानता		५ हस्ति सेना की दुर्बलता		
६. सीमान्त क्षेत्र में मुस्लिम उपनिवेशों व राज्यों का अस्तित्व		६. राजपूतों की प्राचीन युद्ध-प्रणाली, प्राचीन ढंग के अस्त्र-शस्त्र, सेनापति पर निर्भरता		
७. राजा-प्रजा में राजनैतिक उदासीनता, देश रक्षा व युद्ध का भार राजपूतों पर		७. युद्ध की दोषपूर्ण योजना और सैन्य संचालन, सैनिकों की विभाजित स्वामिभक्ति		
८. पारस्परिक वैमनस्य और ईर्षा-द्वेष; संगठन व सयुक्त मोर्चे का अभाव		८. योग्य अनुभवी सेनापतियों और नेताओं का अभाव		
९. राजनैतिक पक्ष-पात और प्रशासकीय भेदभाव		९. राजपूतों का रक्षात्मक युद्ध; भारतीयों की ही क्षति		
		१०. मुसलमानों की सैनिक विशेषताएँ और सफलताएँ		

सारांश

गजनी साम्राज्य का पतन— सन् १०३० में महमूद की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मसूद गजनी का सुलतान बना। उसकी सेना ने विद्रोह कर उसे राजसिंहासन से अलग कर उसके भाई मुहम्मद को सुलतान बना दिया। उसके बाद मसूद का पुत्र मादूद गजनी का सुलतान बना। उसके निर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारी थे। गजनी का अन्तिम सुलतान बहरामशाह था। सन् १०५२ में उसकी मृत्यु के बाद गजनी पर तुर्कों का अधिकार हो गया।

गौरी राज्य का उत्कर्ष— हिरात और गजनी के बीच पहाड़ों में गोर की जागीर थी। गजनी साम्राज्य के पतन के बाद गोर के शासक स्वतंत्र हो गये। गजनी व गोर के सुलतानों में पारस्परिक शत्रुता थी। गोरी के एक शासक अलाउद्दीन ने गजनी पर आक्रमण किया और उसे लूटा। अलाउद्दीन के बाद जब गयासुद्दीन गोर का शासक बना, तब उसने गजनी पर आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में करके अपने छोटे भाई मुहम्मदबिनसाम को. जो भारतीय इतिहास में मुहम्मद गोरी के नाम से प्रसिद्ध है, गोरी का शासक बना दिया। गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद उसने गोर और गजनी दोनों राज्यों को सम्मिलित कर लिया। उसने भारत पर आक्रमण कर अनेक प्रदेश जीत कर स्थायी रूप से गजनी साम्राज्य का विस्तार किया।

मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय भारत की दशा—इस समय सिंध में सुभ्रजाति का शिया सम्प्रदाय का मुसलमान शासक था और मुलतान में शिया सम्प्रदाय का करमाथी मुसलमान शासक राज्य करता था। पंजाब गजनी राज्य का एक अंग था और यहाँ गजनी राजवंश का खुसरो मलिक सुलतान था। गजनी राज्य उसके हाथ से छीना जा चुका था। अजमेर का चौहान राजा पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर का शक्तिशाली राजा था। पंजाब तक उसके राज्य की सीमा थी। दिल्ली के पूर्व में कन्नौज राज्य था जिसकी सीमा वाराणसी तक थी और यहाँ जयचन्द राठोर राज्य करता था। पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द में परस्पर वैमनस्य और संघर्ष था। बिहार और कलिंग में सेन वंश का लक्ष्मण सेन राजा था। वह पूर्व में अधिक प्रभावशाली नरेश था। गुजरात में बघेल राजा भीमदेव सोंलकी राज्य करता था और अन्हिलवाड़ा उसकी राजधानी थी। बुन्देलखंड में जेजाक भुक्ति का चंदेल राज्य था। परमर्दिदेव यहाँ का वीर नरेश था। दक्षिण भारत में देवगिरी, वारंगल और द्वारसमुद्र में होयसल राज्य था। सुदूर दक्षिण में पांड्य और चेर राज्य थे।

राजनैतिक दुर्बलताएँ और दोष— ऊपर वर्णन किये अनुसार सारा भारत छोटे-छोटे प्रांतीय राज्यों में विभक्त था। उनमें पारस्परिक ईर्षा, द्वेष, फूट और मनोमालिन्य था। राष्ट्रीय एकता और चेतना का उनमें अभाव था। उनमें इतनी अधिक कटुता, वैमनस्य और प्रतिशोध की भावना थी कि विदेशी आक्रमणकारियों से संयुक्त रूप से मोर्चा लेने की अपेक्षा, अपने पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण होते और उन्हें परास्त होते देखकर वे प्रसन्न होते थे। प्रांतीय नरेश चाटुकारिता, शृंगारिकता, कामुकता

और विलासिता में डूबे रहते थे। शासन में शिथिलता थी। सीमा की सुरक्षा की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं थी। राजाओं ने कोई दृढ़ विदेशी नीति नहीं अपनाई। स्थायी सेना की संख्या भी अपर्याप्त थी। लोगों में भी सामरिक प्रवृत्ति नहीं थी।

सामाजिक और धार्मिक दशा—समाज में भी एकता, संगठन और सहयोग का अभाव था। समाज में अनेक सामाजिक कुरीतियाँ और अन्धविश्वास था। समाज में अनेक धर्म, सम्प्रदाय मत-मतान्तर थे। धर्म में बाह्य आडम्बर, तंत्र-मंत्र, अवतारवाद, मूर्ति-पूजा अधिक प्रचलित थे। जन-साधारण में धर्म और संस्कृति की सुरक्षा हेतु चेतना और जोश नहीं था।

आर्थिक दशा— आर्थिक परिस्थिति संतोषप्रद थी। देश धन-धान्य से पूर्ण था। विभिन्न व्यवसाय और उद्योग प्रगतिशील थे।

मुहम्मद गोरी के भारतीय आक्रमणों के उद्देश्य

(१) मुहम्मद गोरी महत्वाकांक्षी होने से अपने गजनी राज्य का भारत में विजय कर विस्तार करना चाहता था। (२) गोरी और गजनी राज्यों में पीढ़ियों की शत्रुता होने से मुहम्मद गजनी वंश का समूल नाश करना चाहता था। इसके लिये वह पंजाब में अवशिष्ट गजनी राज-वंश के सुलतान और मुलतान में इस्मालिया शिया मुसलमान राज्य का अन्त करना चाहता था। (३) मध्यएशिया में अपने शत्रुओं तथा पंजाब और मुलतान में भी शत्रुओंके विरुद्ध तथा राज्य विस्तारके लिये वह अधिक शक्ति-संचय और साधनों की वृद्धि करना चाहता था। (४) इस्लामी जगत और एशिया मे वह अपने राज्य और स्वयं के यश गौरव की वृद्धि करना चाहता था। (५) इस्लाम का अनुयायी होने के नाते उसके लिये भारत में मूर्तिपूजा का विनाश और इस्लाम का प्रसार करने का बड़ा आकर्षण था। (६) एशिया में शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध करने व उन्हें परास्त करने के लिये वह भारत की धन सम्पत्ति प्राप्त करना चाहता था। (७) वह भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना करना चाहता था। धन-प्राप्ति, मूर्तिपूजा का विनाश और इस्लाम का प्रसार उसके लिये गौण थे।

मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण

(१) मुलतान पर आक्रमण— मुलतान एक दुर्बल राज्य था, गजनी से भारत आने के लिये मुलतान का मार्ग सरल था, मुलतान से सिंध व पंजाब पर आक्रमण करना सरल था और मुलतान का शासक शिया था। इसलिये मुहम्मद ने मुलतान पर आक्रमण कर उसे जीत कर अपने अधिकार में कर लिया।

(२) सिंध पर आक्रमण सन् (११७५)— ऊपरी सिंध में उच्छ महत्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ के शासक के साथ विश्वासघात करके मुहम्मद ने उच्छ पर आक्रमण कर उसे अपने आधिपत्य में कर लिया। इसके बाद सन् ११८२ में शेष सिंध और सिंध का समुद्रतट भी गोरी ने जीत लिया।

(३) गुजरात पर आक्रमण (सन् ११७८)— गुजरात की अपार धन सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये, गुजरात के अधीनस्थ पूर्वी राजस्थान के राज्यों पर अधिकार करने के लिए, गुजराज से पूर्वी राजस्थान होते हुए गंगा यमुना के दोआब

पर और पृथ्वीराज चौहान के राज्य पर आक्रमण करना सरल था। इसलिये मुहम्मद ने गुजरात पर आक्रमण किया, पर वहां के राजपूत नरेश मूलराज ने उसे बुरी तरह परास्त कर दिया था।

(४) पेशावर पर अधिकार— पेशावर पंजाब के शक्तिहीन शासक खुसरो मलिक के आधीन था, इसलिये मुहम्मद ने भारत के इस प्रवेश द्वार पर सरलता से आक्रमण कर अपने अधिकार में कर लिया।

(५) पंजाब पर आक्रमण और विजय—पंजाब में दुर्बल खुसरो मलिक शासक था। उसकी राजधानी लाहौर थी। गोरी ने सन् ११८१, सन् ११८५ और सन् ११८६ में पंजाब पर आक्रमण किये और विश्वासघात से खुसरो मलिक को शिविर में बन्दी बनाकर, लाहौर को अपने अधिकार में कर लिया। इससे गंगा-यमुना के प्रदेशों में आगे बढ़ने और भारत विजय करने का मार्ग प्रशस्त हो गया तथा इस क्षेत्र के राजपूती राज्यों से संघर्ष भी अवश्यम्भावी हो गया।

(६) तराइन का प्रथम युद्ध और गोरी की पराजय (सन् ११९१)— सन् ११८९ में गोरी ने दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज चौहान के राज्य की सीमा के भटिंडा दुर्ग पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया, जब इसकी सूचना पृथ्वीराज को मिली तब उसने विशाल सेना लेकर भटिंडा की ओर प्रस्थान किया। मुहम्मद गोरी भी अपनी सेना सहित आ गया और सन् ११९१ में दोनों की सेनाओं में तराइन के मैदान में भीषण संग्राम हुआ। राजपूतों ने प्रचंड वेग से आक्रमण किया। इसी बीच पृथ्वीराज के भाई गोविंदराज ने भी द्वन्द्व-युद्ध में गोरी के मस्तक पर इतने जोर से सांघातिक वार किया कि वह अपने घोड़े से गिर ही रहा था कि एक खिलजी सैनिक ने उसे बचा लिया और रणक्षेत्र से बाहर ले गया। इसी अवधि में गोरी की सेना के परास्त होने और रणक्षेत्र से भागने पर राजपूती सेना ने लगभग साठ कीलोमीटर तक उसका पीछा किया।

(७) तराइन का द्वितोय युद्ध और पृथ्वीराज की पराजय(सन् ११९२)- बुरी तरह परास्त होने पर भी गोरी ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिये एक वर्ष तक पूर्ण तैयारी कर लेने के बाद फिर पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज भी अपनी और अन्य राजपूत नरेशों की सेना के साथ युद्ध के लिये आगे बढ़ा। यह बात सत्य नहीं है कि कन्नोज के राजा जयचंद ने जो पृथ्वीराज का शत्रु था मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया। पृथ्वीराज और गोरी की सेना में तराइन के रणक्षेत्र में फिर युद्ध हुआ। राजपूत बड़ी वीरता और साहस से लड़ने पर भी परास्त हुए। पृथ्वीराज पकड़ लिया गया और उसका वध कर दिया गया। विजय के बाद गोरी ने आगे बढ़ कर सरस्वती, हांसी और कुहराम नामक स्थानों पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज के एक पुत्र को अपने अधीनस्थ सामन्त के रूप में चौहान राज-सिंहासन पर बिठा दिया और दिल्ली के पास इन्द्रप्रस्थ में कुतुबुद्दीन ऐबक को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। इसके बाद गोरीने अजमेर जाकर नगर को खूब लूटा। तराइन के युद्ध का बड़ा महत्व है। इससे अजमेर और दिल्ली में स्थायी मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया। राजपूत राज्यों को ऐसा गहरा आघात लगा कि अब उनमें से किसी में भी ऐसी शक्ति नहीं थी कि वे सब को संगठित कर मुस्लिम सत्ता को उखाड़ दे।

(८) कुतुबुद्दीन ऐबक की विजयें (सन् ११६२-६४)— **मुहम्मद गोरी के गजनी लौट जाने पर उसके प्रतिनिधि शासक कुतुबुद्दीन ऐबक के विरुद्ध पंजाब में हांसीमें चौहान राजपूतों ने और अजमेरमें पृथ्वीराज के भाई हरीराज ने और दिल्ली में तोमर शासक ने विद्रोह किये। पर ऐबक ने सब का दमन कर दिया और अजमेर तथा दिल्ली पर सीधी मुस्लिम सत्ता स्थापित कर दी तथा मेरठ और अलीगढ़ पर भी अपना अधिकार कर लिया।**

(६) मुहम्मद गोरी का कन्नौज पर आक्रमण और जयचन्द की पराजय (सन् ११६४)— **उत्तरी भारत की विजय पूर्ण करने के लिये मुहम्मद गोरी ने राजपूतों के एक दृढ़ स्वतन्त्र राज्य कन्नौज पर आक्रमण किया। यहां का राजा जयचन्द राठौर बड़ी वीरता और साहस से लड़ा, परन्तु परास्त हुआ और रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। इस विजय के बाद गोरी ने जयचन्द के कोष के दुर्ग असनी को लूटा और बाद में बनारस जाकर वहाँ भी नगर को खूब लूटा, वहाँ लगभग एक हजार मन्दिर नष्ट करके उनके स्थान पर मस्जिदें निर्माण की। यहां से गजनी लौटते समय गोरी कुतुबुद्दीन ऐबक को अपने विजीत भारतीय प्रदेशोंपर राज्य करने के लिये छोड़ गया।**

(१०) राजपूतों का विद्रोह और हरीराज का अंत—**गोरी के गजनी लौट जाने पर अलीगढ़ के समीप राजपूतों ने विद्रोह किया, कुतुबुद्दीनऐबक ने उसे दबा दिया। इसी बीच राजस्थान में हरीराज ने विद्रोह किया और अजमेर के तुर्की शासक को खदेड़ दिया। परन्तु ऐबक ने उसे परास्त कर दिया और अजमेर में तुर्क शासक नियुक्त कर दिया।**

(११) मुहम्मद गोरी का बयाना तथा ग्वालियर पर आक्रमण—(११९५-९६) **गोरी ने बयाना दुर्ग पर आक्रमण करके उसे जीतकर नहनगढ़ और विजयमंदिरगढ़ को भी अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद उसने ग्वालियर के अभेद्यदुर्ग पर आक्रमण किया पर उसे शीघ्र सफलता न मिलने पर ग्वालियर नरेश से संधि कर ली और गजनी लौट गया पर बाद में गोरी के तुर्क सूबेदार के सैनिक दबाव के कारण ग्वालियर का किला उसके अधिकार में आ गया।**

(१२) ऐबक का गुजरात पर आक्रमण और विजय (११६७)—**गोरी की अनुपस्थिति में राजपूतों ने गुजरात नरेश के नेतृत्व में तुर्कों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अजमेर पर आक्रमण कर दिया। ऐबक ने गजनी से प्राप्त ताजी सेना की सहायता से राजपूतों का सामना किया और गुजरात पर आक्रमण किया, राजपूतों को परास्त किया तथा गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा को खूब लूटा और विध्वंस किया।**

(१३) ऐबक की अन्य विजय (११६७-१२०३)—**गुजरात विजय के बाद उसने बदायूँ, वाराणसी और उज्जैन तक के क्षेत्र में अपनी सेना भेजकर अपनी सत्ता और राज्य का विस्तार किया।**

(१४) ऐबक का कलिंग पर आक्रमण (१२०२-३)—**ऐबक ने बुंदेलखन्ड में प्रसिद्ध चंदेलराजा परिमर्दनदेव और उसके कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया।**

कालिंजर दुर्ग में जाने वाले पानी के स्रोत के बन्द हो जाने पर राजपूतों ने कालिंजर छोड़ दिया और ऐबक ने कालिंजर पर अधिकार कर लिया और वहाँ हसन अर्नाल को शासक नियुक्त किया। कालिंजर के बाद ऐबक ने महोबा, खजुराहो और कालपी को भी अपने अधिकार में कर लिया।

(१५) मुहम्मदबिन बख्तियार की बिहार और बंगाल विजय (सन्-११९७-१२०५)—वाराणसी तक का प्रदेश तो गोरी ने जीत लिया था। उससे आगे के पूर्व प्रदेश बिहार और बंगाल गोरी के एक अन्य गुलाम सेनानायक मुहम्मदबिन बख्तियार खिलजी ने जीत लिया। उसने दो सौ अश्वारोहियों से बिहार पर सहसा आक्रमण कर दिया। नालन्दा, विक्रमशीला, उदण्डपुर आदि प्रसिद्ध बौद्ध बिहारों और विश्व विद्यालयों व उनके पुस्तकालयों को उस ने लूटा और उनमें आग लगाकर उन्हें भस्मीभूत कर दिया तथा अनेक बौद्धों को कत्ल कर दिया। इस विजय से प्रेरित होकर उसने बंगाल पर आक्रमण किया। उस समय वहाँ लक्ष्मणसेन राजा था और नदिया उसकी राजधानी थी। खिलजी ने केवल १८ अश्वरोही सेनिकों सहित नदिया में प्रवेश किया और अपने को घोड़ों का व्यापारी बतलाकर राजमहल के प्रवेश द्वार तक पहुँच गया और वहाँ पहरियों का कत्ले आम करके आतंक फैला दिया। इसी बीच राजा लक्ष्मणसेन जो दोपहर का भोजन करने बैठा था घबरा कर भाग गया। अब खिलजी की सेना भी आ पहुंची। उसने राज प्रासाद, राजकोष और नगर को लूट कर लखनौती को अपनी राजधानी बनाया। बंगाल का शासक बनने के बाद उसने घोड़े के व्यापारियों को अपने अधिकार में करने के लिये तिब्बत और आसाम पर आक्रमण किया पर उसे वहां युद्ध में बुरी तरह परास्त कर दिया गया। इस अपमानजनक पराजय के सदमे से उसका देहावसान हो गया।

(१६) मुहम्मदगोरी की पराजय और उसके साम्राज्य में विद्रोह—जब सन् १२०४ में गोरी ने मध्य एशिया में ख्वारिजम प्रदेश पर आक्रमण किया, तब वहाँ के शाह ने गोरी को युद्ध में इतना बुरी तरह परास्त किया कि वह अपने प्राणों की रक्षा के लिये भागा। उसकी इस भयंकर पराजय से उसकी शक्ति और सम्मान को गहरा आघात लगा और उसके महत्वाकांक्षी अधिकारियों और प्रतिनिधि शासकों ने गजनी, मुलतान आदि में उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिये। पर मुहम्मद ने इन्हें दबा दिये।

(१७) खोखरों का विद्रोह और मुहम्मद गौरी की हत्या—पंजाब में खोखर नामक खूंखार व युद्धप्रिय जाति रहती थी। इन्होंने गोरी की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया और लूट खसोट तथा कत्लेआम किया। गोरी इनको दण्ड देने के लिये भारत आया और युद्ध में खोखरों को परास्त करके अनेकों को बन्दी बनाया, आग में जला दिया और कत्ल कर दिया। खोखरों ने गोरी से इसका बदला लिया। गजनी लौटते समय जब गोरी झेलम तट पर धामियक गांव में विश्राम कर रहा था, तब खोखरों ने उसका वध कर दिया।

मुहम्मदगोरी का चरित्र और मूल्यांकन—गोरी का चरित्र प्रशसनीय है। वह उच्च कोटि का व्यक्ति था। उसकी आदतें व स्वभाव अच्छे थे। उसमें अपने परिवार

के सदस्यों के लिये स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, बन्धुत्व, स्वामिभक्ति आदि गुण थे। वह गजनी का शक्तिशाली शासक होने पर भी अपने बड़े भाई गयासुद्दीन के प्रति जीवन भर श्रद्धालु और स्वामीभक्त रहा। वह अपने दासों को भी अपनी संतान के समान समझता था। गोरी के स्नेह और वात्सल्य से उसके गुलाम अधिक प्रभावित होते थे और वे उसके लिये अपने प्राणों की बाजी लगा देते थे। गोरी में व्यक्तियों को पहचानने और चुनने की एक विशेष प्रतिभा थी। वह मानव स्वभाव और चरित्र का अच्छा पारखी था। मुहम्मदगोरी में विषम परिस्थितियों और असमान दशाओं को समझने तथा साहस व शक्ति से उनका सामना करने की अद्भुत प्रतिभा थी। इसके साथ उसमें अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये दृढ़ संकल्प हो कार्य करने की अनूठी शक्ति और क्षमता भी थी।

यद्यपि मुहम्मदगोरी महमूद गजनवी के समान सुयोग्य और कुशल सेनापति और सैन्य संचालक नहीं था परन्तु वह एक वीर योद्धा और सफल विजेता अवश्य था। उसके भारतीय अभियान, विजय और साम्राज्य विस्तार उसे एक सफल विजेता के रूप में प्रगट करते हैं। अपनी निर्दिष्ट योजनाओं, अभियानों, शत्रु की दुर्बलताओं को समझ कर किये गये युद्धों से उसने उत्तरी भारत के शक्तिशाली राज्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया।

मुहम्मदगोरी एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। उसने भारत की राजनैतिक विश्रृंखलता और खोखलेपन को समझ कर उसे नष्ट कर भारत में स्थायी मुस्लिम राज्य स्थापित कर लिया था। वह एशिया में साम्राज्य निर्माता और भारत में मुस्लिम राज्य का संस्थापक माना जाता है। उसने छोटे से पर्वतीय गजनी राज्य को अपनी दिग्विजयों से मध्य एशिया के शक्तिशाली साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया। भारत में अरब आक्रमणकारियों और महमूद गजनवी ने इस्लामी साम्राज्य निर्माण करने के कोई ठोस कार्य नहीं किये। मुहम्मदगोरी ने धन सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये नहीं, अपितु साम्राज्य निर्माण के उद्देश्य से सुनियोजित, श्रृंखलाबद्ध सैनिक अभियान भारत पर किये और अनेक प्रदेशों को विजय करके यहाँ मुस्लिम साम्राज्य स्थापित किया। विजय के साथ-साथ उसने यहाँ विजीत प्रदेशों में अपने सूबेदार और प्रशासक भी नियुक्त किये। मुहम्मदगोरी द्वारा स्थापित भारत का मुस्लिम राज्य कालान्तर में इस्लामी साम्राज्य में शक्तिशाली गिना जाने लगा और भारत में छः सौ वर्षों तक विद्यमान रहा। मुहम्मदगोरी विजेता और साम्राज्य निर्माता ही नहीं था, अपितु वह एक प्रवीण न्यायप्रिय शासक भी था। वह अनुभवी, योग्य और सफल प्रशासक नियुक्त करता था और अपनी सैनिक शक्ति तथा प्रशासकीय व्यवस्था से नियंत्रण भी रखता था। कहा जाता है कि उसमें धार्मिक, सहिष्णुता और धर्म-निष्ठा भी थी। उसने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को इतनी ठेस नहीं पहुँचायी जितनी कि महमूद गजनवी ने।

मुहम्मदगोरी के भारत आक्रमण के परिणाम—उसके आक्रमणों से हिन्दू साम्राज्य का पराभव हो गया और हिन्दूओं के स्वतंत्र राज्य नष्ट हो गये। उनमें ऐसा कोई नरेश नहीं बचा था जो उनसे दीर्घकाल तक लोहा लेता और उन्हें

देश से खदेड़ देता। गोरी के आक्रमणों से भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना हो गयी। इससे भारत के धर्म और समाज में नवीन प्रवृत्तियाँ जाग्रत हुईं, धार्मिक और साम्प्रदायिक दोष उत्पन्न हो गये। गोरी के आक्रमणों से भारत में मुस्लिम राज्य बन जाने से भारत का व्यापार अन्य मुस्लिम देशों से बहुत बढ़ गया। भारत में इस्लामी और हिन्दू संस्कृति दो विभिन्न धाराओं का विकास हुआ।

मुसलमानों के विरुद्ध राजपूतों की पराजय के कारण

यद्यपि मुसलमानों के आक्रमणों के समय भारत अनेक दृष्टि से पतनोन्मुख हो गया था, फिर भी राजपूतों की पराभव के निम्नलिखित कारण हैं:—

(अ) राजनैतिक कारण—(१) राजनैतिक विशृंखलन, देश में विभिन्न छोटे छोटे राजपूत राज्य, (२) राजनैतिक एकता, दृढ़ केन्द्रीय सत्ता और राष्ट्रीय भावना का अभाव, पूर्ण संगठन का अभाव, (३) सामन्तशाही, सेना और प्रशासन में सामन्तों का बाहुल्य, उनमें स्वतंत्र बनने की प्रवृत्ति, (४) विदेशी नीति के प्रति उदासीनता और दृढ़ सीमान्त नीति का अभाव, सीमाओं पर किलेबन्दी की कमी, (५) राजपूतों में छल-कपट और कूटनीति का अभाव, मुसलमानों में इसकी प्रधानता (६) सीमान्त क्षेत्र में मुस्लिम आक्रमणकारियों के उपनिवेश और राज्य तथा उससे उनको लाभ, (७) राजा और प्रजा दोनों में तुर्क और अरब व्यापारियों के प्रति उदासीनता, देश की सुरक्षा और युद्ध का भार सीमित राजपूतों पर ही रहा, (८) राजपूतों में पारस्परिक वैमनस्य, ईर्षा और द्वेष से निरन्तर संघर्ष और गृह युद्ध एवं शक्ति का दुरुपयोग होता गया, विदेशी शत्रु के विरुद्ध संयुक्त मोर्चे का अभाव, (९) राजनैतिक पक्षपात और प्रशासकीय भेदभाव के कारण लोगों में राज्य के कार्यों व कर्त्तव्यों के प्रति गहरी उदासीनता।

(ब) सामाजिक कारण—(१) अनेक जातियाँ और उप-जातियों का उत्कर्ष, उनमें पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग का अभाव, सामाजिक एकता की कमी, संकीर्ण सामाजिक भावना, (२) राजपूतों में विलासिता, द्यूत-क्रीड़ा, आखेट, सुरापान व अफीम का सेवन, इससे शक्ति की क्षीणता व नैतिक पतन, (३) विदेशी आक्रमणकारियों को नियति का फेर मानना, अंधविश्वास और भाग्यवादिता का बाहुल्य, इससे वीरता, आत्म-विश्वास और कर्मण्यता की कमी।

(स) सैनिक कारण—(१) राजपूतों में स्थायी दृढ़ सेना का अभाव, सामन्तों की सेना में और नौसिखियों को सेना में प्रशिक्षण, अनुशासन व योग्यता का अभाव, (२) राजपूत सेनाओं में पदातियों का बाहुल्य, उनमें तीव्र गतिशीलता और पैंतरेबाजी का अभाव, (३) राजपूतों में युद्ध के समय सुरक्षा सेना का अभाव, (४) सैनिकों की दोषपूर्ण नियुक्ति, युवक सैनिकों का निरन्तर प्रवाह नहीं, (५) हस्तिसेना की दुर्बलता, हाथी स्वयं अपनी सेना को रौंद देते थे, मुसलमानों की अश्वारोही सेना की विशेषता, (६) राजपूतों की प्राचीन युद्ध प्रणाली, युद्ध में सेनापति या राजा पर निर्भरता, प्राचीन ढंग के अस्त्र -शस्त्र, विदेशियों की तीव्र तीरन्दाजी, और तोपों का प्रयोग (७) राजपूतों की दोष-पूर्ण युद्ध योजना और सैन्य संचालन, सैनिकों में

विभाजित स्वामी-भक्ति, मुसलमानों का सफल युद्ध-विन्यास और सैन्य संचालन, (८) योग्य प्रतिभावान, अनुभवी सेनापतियों और श्रेष्ठ नेताओं का अभाव (९) राजपूतों का रक्षात्मक युद्ध, भारतीयों की ही क्षति, (१०) मुसलमानों की सैनिक विशेषताएँ और सफलताएं; विदेशों में उनका सामरिक अनुभव, अदम्य उत्साह, साहस, अश्वारोही सेना की तीव्रता व रण-कुशलता, निरन्तर सैनिकों की प्राप्ति, प्रशिक्षित और अनुशासन बद्ध, स्फूर्ति और तीव्रगति वाली सेना ।

(द) आर्थिक कारण—राजपूतों की विलासिता, सतत युद्धों से राजकोष की रिक्तता, मंदिरों और धार्मिक स्थानों तथा नगरों की विदेशियों द्वारा लूट-पाट, इससे देश की आर्थिक क्षीणता हो गयी और विशाल सेना रखना असंभव हो गया ।

(य) धार्मिक कारण—आक्रमणकारी यवनों में जेहाद की भावना और निर्दिष्ट उद्देश्य तथा इस्लाम के प्रसार की प्रबल इच्छा, उत्साह, आत्मविश्वास और दृढ़ता की प्रधानता ।

अध्याय ६

दिल्ली के तुर्क सुल्तान

तथाकथित दास वंश

मुहम्मद गोरी के गजनी साम्राज्य का पतन और विभाजन— मुहम्मद गोरी के पुत्रहीन होने के कारण उसकी मृत्यु के बाद उसका भतीजा गयासुद्दीन महमूद उसका उत्तराधिकारी हुआ, पर वह अयोग्य और दुर्बल शासक था। वह विशाल विस्तृत गजनी साम्राज्य को संभाल नहीं सकता था। इसलिये गजनी साम्राज्य का पतन हो गया और विद्रोह प्रारम्भ हुए। फलतः मुहम्मद गोरी के शक्तिशाली सेनापतियों ने गजनी साम्राज्य को परस्पर विभाजित सा कर लिया। गजनी और उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रों पर करमान के प्रशासक ताजुद्दीन यल्दौज ने, सिन्ध और उच्छ में वहाँ के प्रशासक नासिरुद्दीन कुबैचा ने और उत्तरी भारत में दिल्ली के प्रशासक कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपनी स्वतंत्र राज्यसत्ता स्थापित कर ली। बंगाल और बिहार में मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने गोरी की मृत्यु के पूर्व ही सन् १२०५ में अपनी स्वतंत्र राज्यसत्ता स्थापित कर ली थी। खिलजी की मृत्यु के पश्चात् बंगाल और बिहार में उसके उत्तराधिकारी स्वतन्त्र नरेश हो गये।

दासप्रथा— पूर्व मध्यकालीन युग में मध्य एशिया और यूरोप में दासप्रथा प्रचलित थी। विभिन्न कारणों से निरीह छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं को पकड़ कर किसी पशु या वस्तु के समान बाजार में बेच दिया जाता था। क्रय करने वाले व्यक्ति के यहाँ ये बालक-बालिका दास बन कर रहते थे। खरीदने वाले को इन बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ता था और इसके बदले में वह इनके शरीर व आत्मा का सर्वाधिकारी होता था। इनका जीवन पशुतुल्य होता था और इन पर इनके स्वामी नृशंस और अमानुषिक अत्याचार करते रहते थे। यदि किन्हीं दासों का स्वामी दयालु, सहिष्णु और उदार होता था, तो दासों के साथ सद्व्यवहार हो कर उन्हें दासता से मुक्त भी कर दिया जाता था। मध्य एशिया में अनेक धन-सम्पन्न व्यक्तियों, सामन्तों, अमीरों, अधिकारियों और सुलतानों के पास अनेकानेक दास होते थे। दसवीं से तेरहवीं सदी तक मध्य एशिया में यह दासप्रथा विशेषरूप से अत्यधिक प्रचलित थी और समाज में दासों का बाहुल्य था।

सेल्जुक तुर्कों के साम्राज्य में दासों का बड़ा सम्मान होता था। उनकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था की जाती थी और उनकी भावी प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया जाता था। उन्हें उनके व्यक्तित्व के विकास के पूर्ण अवसर प्रदान किये जाते थे। सेल्जुक साम्राज्य में दास सामन्तों का बड़ा सम्मान होता था।। उनमें कई दास तो सम्राट भी बन गये थे।

अनेक सामन्त अमीर और सुलतान अपने दासों को पुत्रवत् समझ कर उनको शिक्षित भी करते थे और उनके योग्य और प्रतिभावान होने पर उन्हें ऊँचे पदों पर भी नियुक्त करते थे, ऐसी दशा में दास नियमित रूप से स्वतन्त्र कर दिये जाते थे। ये दास अपने स्वामी के प्रति अत्यन्त ही श्रद्धालु और स्वामि-भक्त होते थे और उसके लिये आत्म-बलिदान करने के हेतु सदैव तत्पर रहते थे। अपने स्वामी सुलतान के देहावसान के पश्चात् ये ऊंचे पदों पर होने से अत्यधिक शक्तिशाली होते थे। इससे ये विद्रोह करते थे और अवसर आने पर इनमें सबसे शक्तिशाली दास सुलतान बन जाते थे। कई बार अनेक शक्तिशाली दास अधिकारी और प्रशासक दलबन्दियां करके विद्रोह करते थे और सुलतान के राज-सिंहासन को हिला देते थे। इससे कभी-कभी ये दास, सुलतान की शक्ति और सत्ता के लिये अहितकर भी होते थे।

कुछ सुलतान तो बड़े-बड़े सामन्तों और प्रशासकों के समान ही अपने दासों के साथ व्यवहार करते थे। कई सुलतान उन्हें अपने पुत्र के समान मानते थे। कई दास ऊँचे अधिकारी और सेनापति बन गये और उन्होंने युद्ध करके अपने स्वामी सुलतान की सत्ता और राज्य की वृद्धि में बड़ा विस्तार किया। गजनी का सुलतान सुबुक्तगीन, दिल्ली के सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और गयासुद्दीन बलबन ऐसे ही दास सुलतान थे। ये अपनी प्रतिभा, चरित्र और गुणों से दास की निम्न श्रेणी से बढ़ कर सेनापति और सुलतान के पद तक पहुंच गये थे। गजनी के सुलतान मुहम्मद गोरी के अनेक दास थे। वह निसन्तान था, अतएव वह अपने दासो को पुत्रवत् प्यार करता था, उनके प्रति उसका व्यवहार वात्सल्य और सहृदयता पूर्ण होता था। एक समय जब किसी दरबारी ने मुहम्मद गोरी से उसके पुत्र-हीन होने और उत्तराधिकारी के विषय में चर्चा की तो, उसने निसन्तान होने पर खेद नहीं प्रगट किया, अपितु कहा कि, "अन्य सुलतानों को एक या दो पुत्र हो सकते है, पर मेरे सहस्रों पुत्रों के रूप में ये दास हैं, जो मेरे साम्राज्य के उत्तराधिकारी होंगे और जो मेरे बाद अपने-अपने राज्यों में खुतबा में मेरा नाम सुरक्षित रखेंगे।" उसका कथन सत्य हुआ। उसके दासों ने उसका नाम सुरक्षित रखा और उसके पुत्रों के समान उसके विशाल साम्राज्य के उत्तराधिकारी हुए। उसने अपने चार प्रमुख दासों को अपने जीवनकाल में ही अपने विशाल साम्राज्य के प्रशासन, सुरक्षा और विस्तार का उत्तरदायित्व सौंप दिया था। उसने यल्दोज को अफगानिस्तान का शासक, कुबैचा को सिन्ध का प्रशासक मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी को बंगाल और बिहार का तथा कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली और उसके पार्श्ववर्ती प्रदेशों का शासक और अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया था। मुहम्मद गोरी के देहावसान के पश्चात् ही ये स्वतन्त्र नरेश हो गये।

तथाकथित दास-वंश—मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद उसका भारत स्थित मुस्लिम साम्राज्य उसके प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों में आ गया। वह सन् १२०६ से १२१० तक दिल्ली का सुलतान रहा। उसने भारत में प्रथम प्रभुतासम्पन्न मुस्लिम राज्य स्थापित किया जो सन् १२०६ से १२९० तक विद्यमान रहा। दिल्ली इस राज्य की राजधानी होने से इसे दिल्ली सल्तनत कहा गया और वहाँ के नरेशों को दिल्ली के सुलतान कहा गया। इस प्रथम मुस्लिम राज्य का संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक था। वह मुह-

म्मद गोरी का दास या गुलाम था, इसलिये सन् १२०६ से लेकर १२६० तक की अवधि के सुलतान दास या गुलाम वंश के सुलतान कहलाये। इसके अतिरिक्त इनमें कुछ प्रमुख सुलतान अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में दास भी रह चुके थे। सुलतान इल्तुतमिश ऐबक का गुलाम था, तो सुलतान बलबन इल्तुतमिश का गुलाम था। इस वंश के तीनों प्रसिद्ध शासक, ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन गुलाम थे। इसीलिये इतिहासकारों ने इस वंश को गुलाम या दास-वंश कहा और इस वंश के सुलतानों को गुलाम या दास सुलतान कहा गया।

कुछ इतिहासकारों ने इस दास वंश और दास-सुलतानों के नामकरण को उचित नहीं माना है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इन सभी सुलतानों को दास या गुलाम सुलतान कहना गलत होगा। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

(१) कुतुबुद्दीन ऐबक ने जिस दास राजवंश की स्थापना की थी, वह तो उसके पुत्र आरामशाह के बाद और इल्तुतमिश के राज्यारोहण के साथ ही समाप्त हो गया था।

(२) कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर सन् १२०६ से १२६० तक के युग में जो सुलतान हुए, वे न तो एक ही वंश के थे और न उन्हें सामान्य उत्तराधिकार के ढंग से राज्य ही प्राप्त हुआ था। ऐबक द्वारा स्थापित वंश कैकुबाद तक नहीं माना जा सकता और न यह गुलाम या दास वंश ही कहा जा सकता है।

(३) सन् १२०६ से १२६० तक तीन राजवंशों का राज्य दिल्ली में रहा, प्रथम कुतुबुद्दीन ऐबक का दास वंश सन् १२०६ से १२११ तक, द्वितीय इल्तुतमिश का राजवंश जिसने १२६६ तक राज्य किया और इसके बाद तृतीय बलबन का राजवंश, जिसने नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद सन् १२६६ से १२६० तक राज्य किया।

(४) यह कथन कि इन तीन राजवंश के संस्थापक–ऐबक. इल्तुतमिश, और बलबन-- दास थे, इसलिये इनके वंश के सुलतान भी दास कहलाये, अनुचित है। इसका कारण यह है कि इन राजवंशों के ये तीनों संस्थापक अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में दास अवश्य रह चुके थे, पर इन राजवंशों के अन्य सुलतान दास नहीं थे। इसके अतिरिक्त, यद्यपि ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन अपने प्रारम्भिक जीवन में गुलाम अवश्य थे, पर जब वे ऊँचे पदों पर नियुक्त हुए तो वे उनके स्वामी सुलतानों द्वारा दासता से मुक्त कर दिये गये थे। कुतुबुद्दीनऐबक ने दिल्ली का सुलतान बनने के पूर्व अपने स्वामी मुहम्मद गोरी के भतीजे और उत्तराधिकारी सुलतान गयासुद्दीन महमूद से दासत्व का मुक्ति-पत्र और राज वितान प्राप्त कर लिये थे। इल्तुतमिश भी अपने स्वामी से, सुलतान बनने के बहुत पूर्व ही, दासता से मुक्त हो चुका था। बलबन भी जो इल्तुतमिश के चालीस तुर्की दासों में से था, इन दासों के साथ ही मुक्ति पा चुका था।

इस प्रकार सन् १२०६ से १२९० तक तथाकथित दासवंश में कुल ११ सुलतान हुए, इनमें केवल तीन ही अपने प्रारम्भिक जीवन में दास रह चुके थे और स्वतन्त्र सुलतान बनने के पूर्व दासता से मुक्ति भी पा चुके थे। शेष आठ सुलतान अपने पूर्वजों के सम्बन्धी या पुत्र थे। इसलिये इन सुलतानों के वंशों को दास-वंश कहना और सुलतानों को दास-सुलतान कहना उचित प्रतीत नहीं होता। इस वंश के सभी सुलतान

तुर्क थे। इसलिये इस वंश के सुलतानों को तुर्क सुलतान और इनके राज-वंश को तुर्क वंश कहना अधिक उपयुक्त होगा।

तथाकथित दास-सुलतानों के राज्य का महत्व—दास वंश और उसके सुलतानों का भारतीय इतिहास में अपना महत्व है। यह निम्नलिखित हैं--

(१) इस वंश के राज्य की स्थापना से भारत के प्राचीन युग का अन्त हो जाता है। प्रमुख शक्तिशाली राजपूत राज्यों का अन्त हो जाता है। उत्तरी भारत की प्रभु-सम्पन्नता हिन्दू राजाओं और राजपूत नरेशों के हाथ से निकल कर तुर्की सुलतानों के हाथ में आ जाती है। राज्यसत्ता विदेशियों को हस्तान्तरित हो जाती है।

(२) नये मुस्लिम युग का प्रारम्भ होता है। भारत में अब सर्वप्रथम मुस्लिम साम्राज्य का प्रारम्भ दास वंश से होता है। इस वंश से इस्लाम के अनुयायियों ने लगभग छै सदियों तक भारत पर दिल्ली से शासन किया।

(३) दास-वंश का राज्य-काल दिल्ली सल्तनत के अभ्युदय का युग था। दास सुल्तानों के शासन काल (सन् १२०६ से १२९० तक) में दिल्ली सल्तनत को भारत में प्रतिष्ठित कर उसे दृढ़ करने का प्रयास किया गया। इसके लिये तत्कालीन हिन्दू नरेशों और सामन्तों को युद्धों और संघर्षों में परास्त किया गया, उनके विद्रोहों का दमन कर, उनकी शक्ति को कुचल देने का प्रयास किया गया।

(४) दिल्ली के सुलतानों ने अपना राज्य स्थापित करने के बाद, इस्लाम के प्रसार और प्रचार के लिये राज्य के समस्त साधनों और शक्तियों का उपयोग किया। बलात्, तलवार और शक्ति के आधार पर अनेकानेक व्यक्तियों को इस्लाम ग्रहण करवा कर मुसलमान बनाया गया। देश में संकीर्ण साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और कट्टरता का युग प्रारम्भ हो गया। हिन्दुओं के पवित्र स्थानों, देवालयों, मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ना, फोड़ना, लूटना और विध्वंस करना तथा उनके स्थानों पर मसजिदें निर्माण करना, मुस्लिम राज्य का कर्तव्य सा हो गया था और कई सुलतान स्वयं उन कार्यों में रुचि लेते और प्रेरणा देते थे।

(५) भारतीय समाज में धीरे-धीरे हिन्दू और इस्लामी दो संस्कृति का विकास हुआ। हिन्दू समाज और संस्कृति इस नवीन इस्लामी संस्कृति, धर्म और उनके अनुयायियों को आत्मसात् न कर सकी। समाज और धर्म के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान दो विभिन्न वर्गों का दो समानांतर रेखाओं के समान विकास होने लगा।

(६) दास-वंश के शासन के अन्त तक दिल्ली के सुलतान, शासक और उनके इस्लामी अधिकारी विदेशी माने जाते थे। इन विदेशी शासकों और भारत के शासित लोगों के मध्य एक बड़ी गहरी खाई थी, अत्यधिक भेद-भाव था। परन्तु सहिष्णुता व उदारता की नीति से और सद्भावना से यह खाई, ये भेद-भाव कालान्तर में कम होने लगे। विदेशी इस्लाम के अनुयायी भारतीयकरण की ओर झुके। उनके दैनिक जीवन में, कला और साहित्य में, भारतीयकरण की प्रवृत्तियाँ सजग हो गयी। इसीलिये कहा जाता है कि दास वंश का युग मुसलमानों के भारतीयकरण का प्रातःकाल था।

(७) दास-वंश के काल से भारत को राजनैतिक एकता के सूत्र में बाँधा गया। दिल्ली के सुलतानों ने अपनी दिग्विजयों से भारत के विभिन्न प्रदेशों को अपने साम्राज्य

में सम्मिलित कर एकछत्र शासन करने का प्रयास किया। राजनैतिक एकता स्थापित करने के प्रयत्न किये गये।

सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक (सन् १२०६-१२१०)

कुतुबुद्दीन ऐबक का प्रारम्भिक जीवन— कुतुबुद्दीन ऐबक तुर्किस्तान का निवासी था। वह एक उच्च कुल में उत्पन्न हुआ था। यद्यपि वह कुरूप था, पर कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभावान था। बचपन में ही इसे पकड़ कर दास बना लिया गया था। बाल्यकाल में इसे एक व्यापारी फारस देश में निशापुर ले गया और उसे वहाँ के काजी फखरुद्दीन अब्दुल अजीज के हाथों बेच दिया। यह काजी कुतुबुद्दीन की प्रतिभा से अधिक प्रभावित हुआ और उसने अपने पुत्रों के साथ कुतुबुद्दीन की शिक्षा-दीक्षा, उसके धार्मिक तथा सैनिक प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी। काजी ने उसे उचित शिक्षा देकर योग्य बनाने में कोई कसर नहीं रखी। काजी की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों ने कुतुबुद्दीन को दास के रूप में एक व्यापारी के हाथ बेच दिया। यह व्यापारी कुतुबुद्दीन को फारस से गजनी लाया। गजनी में मुहम्मद गोरी ने इसको दास के रूप में खरीद लिया। **कुतुबुद्दीन की प्रगति और पदोन्नति**—काजी द्वारा प्राप्त शिक्षा के कारण गजनी में कुतुबुद्दीन को गोरी के सामने आने के अवसर मिले। मुहम्मद गोरी ने कुतुबुद्दीन की योग्यता और गुणों से प्रभावित होकर उसे सैनिकों की एक छोटी सी टुकड़ी का नेता बना दिया और उसे अमीर-ए-आखुर (अश्वशालाध्यक्ष) के पद पर नियुक्त कर दिया। कुछ समय बाद गोरी ने कुतुबुद्दीन को "ऐबक" के नाम से पुकारना प्रारम्भ कर दिया। 'ऐबक' का अर्थ है चन्द्रमुखी। जब गोरी ने ख्वारिजम के शाह पर आक्रमण किया तो उसने ऐबक को अश्वारोहियों की सेना के संचालन का कार्य सौंपा। इसमें उसे सफलता प्राप्त हुई। गोरी ऐबक के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी पदोन्नति करता गया। अब कुतुबुद्दीन ने अपने गुणों, स्वामिभक्ति, उदारता, कर्तव्यनिष्ठा, वीरता और योग्यता का प्रदर्शन मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमणों के समय किया। जब मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किये तब कुतुबुद्दीन उसके साथ भारत आया और शत्रुओं पर विजय करने के लिये उसने गोरी की अत्यधिक सहायता की। तराइन के द्वितीय युद्ध के पश्चात् पृथ्वीराज की पराजय के बाद मुहम्मद गोरी ने कुतुबुद्दीन ऐबक को अपने जीते हुए प्रदेश पंजाब और दिल्ली में अपना प्रतिनिधि शासक नियुक्त कर दिया। इस प्रकार अपनी योग्यता से ऊँचे-ऊँचे पद प्राप्त करते हुए कुतुबुद्दीन एक दिन गोरी के भारतस्थित साम्राज्य का प्रशासक बन गया। इस पद पर रह कर कुतुबुद्दीन ने अपनी स्वामिभक्ति का ही परिचय नहीं दिया, अपितु एक सर्वोच्च शासक और राज-प्रतिनिधि के रूप में उसने गोरी के साम्राज्य की सीमाएं और यश गौरव भी बढ़ाया। उसने कई नये प्रदेश जीत कर गौरी के साम्राज्य में सम्मिलित किये।

कुतुबुद्दीन मुहम्मद गोरी के राज प्रतिनिधि और प्रशासक के रूप में—सन् ११९२-१२०५—गोरी की अनुपस्थिति में, गोरी के विरुद्ध हुए राजपूतों के विद्रोहों का दमन करने, गोरी के भारत साम्राज्य को दृढ़ करने और नवीन प्रदेशों को जीतकर साम्राज्य में सम्मिलित कर साम्राज्य को विस्तृत करने का श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक को है। ऐबक के निम्नलिखित कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) **हांसी की विजय**— तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद गोरी के गजनी लौट जाने पर ऐबक ने पंजाब में हाँसी के दुर्ग पर आक्रमण करके वहाँ के जाटों को परास्त कर दिया।

(२) **अजमेर के विद्रोहों का दमन**— गोरी की अनुपस्थिति में दिल्ली और अजमेर के राजपूतों ने गोरी की सत्ता के विरुद्ध निरन्तर विद्रोह किये और सन् ११९२ से ११६७ तक ऐबक ने इन विद्रोहों का दमन करके नव स्थापित मुस्लिम राज्य की रक्षा की। राजपूतों का पहिला विद्रोह सन् ११९२ में अजमेर में हुआ जिसके नेता पृथ्वीराज चौहान का भाई हरिराज था। रणथंभोर और अजमेर में ऐबक ने इसे परास्त कर दिया था। राजपूतों का दूसरा विद्रोह दिल्ली के तोमर शासक ने किया। पर ऐबक ने दिल्ली का घेरा डालकर दिल्ली को जीत लिया। राजपूतों का तीसरा विद्रोह हरिराज ने सन् ११६५ में अजमेर में किया। दिल्ली के तोमर वंशी शासक ने भी विद्रोह करके हरिराज का साथ दिया। हरिराज ने कुतुबुद्दीन ऐबक के प्रतिनिधि को परास्त कर दिया। पर ऐबक ने अजमेर पहुंचकर हरिराज को दुर्ग में घेर लिया। ऐबक ने अपनी पराजय विजय में परिणित कर दी। हरिराज ने घिर जाने तथा पराजय से लज्जित होकर चिता में जलकर अपने प्राण दे दिये। अब ऐबक ने अजमेर में अपना एक सूबेदार अधिकारी नियुक्त किया।

(३) **दिल्ली, मेरठ और बुलन्दशहर की विजय**— दिल्ली के तोमर शासक को सन् ११६३ में परास्त कर ऐबक ने पूर्णरूप से दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया और उसे अपनी राजधानी बना लिया। इसके बाद सन ११६३ में ही ऐबक ने बुलन्दशहर और मेरठ को भी जीत कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(४) **कन्नौज विजय में सहायता**—सन् ११६४ में जब मुहम्मद गोरी ने उत्तरी भारत में कन्नौज के प्रसिद्ध और शक्तिशाली राजा जयचन्द पर आक्रमण किया और उसके विरुद्ध चन्दावर मे युद्ध हुआ, तब ऐबक ने गोरी को महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसा माना जाता है कि इस युद्ध की विजय उसकी वीरता, साहस और युद्ध-कौशल का परिणाम थी। गोरी ने कन्नौज विजय करके उसके शासन का भार कुतुबुद्दीन को ही सौंपा।

(५) **अलीगढ़ और रणथंभोर पर अधिकार**— सन् ११९५ में मुहम्मद गोरी की शक्ति के विरुद्ध कोल् या अलीगढ़ के जाट राजपूतों ने विद्रोह किया पर इस विद्रोह का भी ऐबक ने सफलतापूर्वक दमन किया। इसी वर्ष, जैसा ऊपर लिखा है, ऐबक ने अजमेर के विद्रोह को भी दबाकर राजस्थान के प्रसिद्ध रणथंभोर किले को भी जीत लिया।

(६) **गुजरात की विजय**— सन् ११६५ में राजस्थान में गुजरात के चालुक्य राजा भीमदेव के नेतृत्व में राजपूतों ने संगठित होकर विद्रोह किया और अजमेर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। ऐबक परास्त हुआ और अजमेर के दुर्ग में शरण ली। परन्तु शीघ्र ही सेना की कुमुक आ जाने से उसने राजपूतों को पराजित कर दिया। विजय प्राप्त करने के पश्चात् ऐबक गुजरात के राजा भीमदेव से बदला लेने की भावना से गुजरात की ओर बढ़ा; क्योंकि भीमदेव ने अजमेर में राज-

पूतों की सहायता की थी। ऐबक ने युद्ध में भीमदेव को परास्त कर दिया और गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा को लूट कर वहाँ का बहुमूल्य सामान प्राप्त कर लौटा। सन् ११९७ में उसने अजमेर के निकट मेढ़ राजपूतों को परास्त कर दिया। इसी वर्ष उसने चन्दावर और कन्नौज नगर पर भी अधिकार कर लिया।

इस प्रकार सन् ११९२ से ११९६ तक कुतुबुद्दीन ऐबक ने राजपूतों के उग्र विद्रोहों का सामना कर उन्हें परास्त कर दिया और नव स्थापित मुस्लिम राज्य की रक्षा की, एवं उसकी सीमा में वृद्धि की और सदा अपने स्वामी मुहम्मद गौरी की इच्छाओं का पालन किया। फलतः सन् ११९६ में शहाबुद्दीन गौरी ने उसे अपने भारतीय साम्राज्य का नियमित रूप से वायसराय या राज प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया।

(७) **मुहम्मद गोरी की विजयों में सहायता**— जब सन् ११९५-९६ में मुहम्मद गौरी ने बयाना और ग्वालियर पर आक्रमण किये और सन् १२०२ में बुन्देलखंड में चन्देल राजा परिमर्दिदेव पर आक्रमण कर कालिंजर दुर्ग घेर लिया, तब भी ऐबक ने गोरी की अत्यधिक सहायता की थी। ऐबक की सहायता और सहयोग से गोरी कालिंजर, महोबा, खजुराहो, कालपी और बदायूं विजय कर सका। जब पंजाब में सन् १२०५ में खोखरों ने विद्रोह किया तब स्वयं ऐबक ने सेना भेजकर अथवा स्वयं उपस्थित होकर गोरी का हाथ बटाया। ऐबक ने ही मुहम्मद बिनबख्तियार खिलजी को भी बंगाल और बिहार विजय करने की प्रेरणा दी थी और उसकी विजय और राज्य विस्तार के उपलक्ष में उसे राजकीय वेशभूषा से सम्मानित भी किया था।

इस प्रकार सन् ११९२ से १२०५ तक गौरी की भारतीय विजय का कार्य प्रायः ऐबक ने ही किया। ऐबक ही एक प्रकार से मुहम्मद गोरी के भारतीय साम्राज्य का भाग्य विधाता था और भारत में स्थित गौरी के समस्त सैनिक अधिकारी, प्रशासक और कर्मचारी ऐबक को ही अपना प्रधान समझते थे। मुहम्मद गोरी के जीवनकाल में ही समस्त उत्तरी भारत को मुस्लिम साम्राज्य के अन्तर्गत करने का श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक को ही है। इसीलिये कुतुबुद्दीन के लिये गोरी की मृत्यु के बाद भारत का स्वतंत्र शासक बन सकना सरल और सुगम था।

कुतुबुद्दीन ऐबक सुलतान के रूप में (सन् १२०६ से १२१०)—**ऐबक का राज्यारोहण**— मुहम्मद गौरी के प्रमुख अधिकारियों और सेनापतियों, यल्दोज, कुबैचा, मुहम्मद बिनबख्तियार खिलजी और कुतुबुद्दीन ऐबक में सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रभावशील ऐबक ही था। गोरी की मृत्यु के पश्चात् यद्यपि उसका भतीजा गयासुद्दीन मुहम्मद गोर व गजनी का सुलतान हो गया था, पर वह निर्बल और अयोग्य था। वह गजनी के भारतीय राज्य को संभालने में असमर्थ था। इसलिये इस भारतीय राज्य की राजधानी लाहौर के सामन्तों व नागरिकों ने कुतुबुद्दीन को प्रभुसम्पन्नता और राजशक्ति ग्रहण करने के लिये आमंत्रित किया। ऐबक सन् १२०६ में लाहौर अवश्य गया, पर वहाँ उसने न तो राज्य की सार्वभौम शक्ति और न सुलतान का पद ही ग्रहण किया। उसने लाहौर में मसजिदों में अपने नाम का न तो खुतबा ही पढ़वाया और न मुद्राएँ ही प्रचलित कीं। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) ऐबक स्वयं स्वतंत्र सुलतान बनना चाहता था, वह गौरी या गजनी राज्य

के अधीन नहीं रहना चाहता था। पर इसके लिये उपयुक्त अवसर नहीं आया था।

(२) उसका नवीन स्वामी और सुलतान गयासुद्दीन मुहम्मद गौरी उसे शीघ्र ही स्वतंत्र सुलतान बन जाने देना नहीं चाहता था।

(३) कुछ अन्य तुर्की सामन्त और प्रशासक गजनी के भारतीय राज्य को अपने अधिकार में करना चाहते थे और ऐबक में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह इनका विरोध कर सके।

(४) यल्दौज और कुबैचा जैसे उसके शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी विद्यमान थे। सुलतान बनने के पूर्व इन्हें परास्त करना या इनकी सहानुभूति और सहायता प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक था।

(५) कुतुबुद्दीन ऐबक को ऐसी विषम परिस्थितियों में अपने समर्थकों का शक्तिशाली दल भी बनाना आवश्यक था।

(६) वह स्वयं सुलतान का दास या गुलाम था और गुलाम होने के कारण वह सुलतान नहीं बन सकता था और अपने नाम से खुतबा नहीं पढ़वा सकता था। अपने प्रतिद्वंद्वियों, सामन्तों व अधिकारियों (यल्दौज व कुबैचा) के विरोध को कम करने के लिये, उनकी सहायता, सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करने के लिये, अपने समर्थकों का दल संगठित करने के लिये तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये ऐबक ने अपने राज्याभिषेक के पूर्व और बाद में निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किये—

(१) उसने वैवाहिक संबंधों की नीति अपनाई और अपनी बहिन का विवाह मुलतान और सिंध के शासक नासिरुद्दीन कुबैचा के साथ, स्वयं अपना विवाह गजनी के प्रशासक ताजुद्दीन यल्दौज की पुत्री के साथ, और अपनी पुत्री का विवाह इल्तुतमिश के साथ कर दिया। इससे कुबैचा और यल्दौज की ओर का खतरा उसके लिये कम हो गया।

(२) ख्वारिजम का शाह गजनी के राज्य को जीतकर अपने साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। इस समय गजनी के सुलतान गयासुद्दीन मुहम्मद गौरी में इतनी शक्ति, प्रतिभा और प्रभाव नहीं था कि वह ख्वारिजम के शाह के आक्रमण को रोक कर युद्ध में उसे परास्त कर दे। ख्वारिजम के शाह के विरुद्ध उसे अन्य सशक्त शासक की सैनिक सहायता की आवश्यकता थी। ऐबक इसके लिये उपयुक्त था। इसके अतिरिक्त गयासुद्दीन की सामर्थ्य नहीं थी कि वह भारत स्थित ऐबक को पूर्णरूप से अपने नियंत्रण में अधीनस्थ शासक रखे। ऐबक ने भी इस परिस्थिति से लाभ उठाया और उसने गयासुद्दीन से यह निवेदन किया कि वह ऐबक को भारत का सुलतान मान ले, तो वह गयासुद्दीन की सैनिक सहायता ख्वारिजम के शाह के विरुद्ध करेगा। गयासुद्दीन ने शीघ्र ही इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अपने एक राजदूत के हाथ सन् १२०८ में ऐबक को एक सिंहासन, छत्र, राजकीय पताका और नगाड़ा भेजा और ऐबक को नियमित रूप से सुलतान की पदवी से विभूषित किया। ये सब स्वाधीनता के चिन्ह थे।

इन्हीं सब कारणों से कुतुबुद्दीन ऐबक का राज्याभिषेक उसके सिंहासनारोहण के तीन माह बाद दिनांक २४ जून १२०६ में हुआ था। पर नियमानुसार गयासुद्दीन से

राजकीय चिन्ह और स्वतंत्र शासक के प्रतीक प्राप्त होने पर ऐबक को सन् १२०८ में दासता से मुक्ति मिली।

कुतुबुद्दीन ऐबक की कठिनाइयाँ और समस्याएं

यद्यपि कुतुबुद्दीन भारत का सुलतान बन गया था, किंतु उसका ताज पुष्पशय्या न होकर काँटों से आच्छादित था। उसके सामने अनेक कठिनाइयाँ और समस्याएँ थीं। इनमें निम्नलिखित प्रमुख थीं।

(१) **हिन्दू नरेशों का विरोध**— उत्तरी भारत के हिन्दू नरेशों ने उसे विदेशी आक्रांता मान रखा था और वे उसके आधीन होने की अपेक्षा उसकी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने को तत्पर रहते थे। वे ऐबक के विरुद्ध अपना सिर उठाने में लगे थे।

(२) **शक्तिशाली कुबैचा**— नासिरुद्दीन कुबैचा, जिसे गौरी ने सम्मानित पद दिया था, सिन्ध और मुलतान में स्वतंत्र शासक बन गया था। उसने अपनी प्रतिष्ठा और शक्ति खूब बढ़ा ली थी। साम्राज्य विभाजन और साम्राज्य विस्तार में वह ऐबक का बड़ा प्रतिद्वंद्वी था।

(३) **महत्वाकांक्षी यल्दौज**— मुहम्मद गोरी के निस्सन्तान मर जाने से उसके समस्त शक्तिशाली अमीर गजनी के विशाल साम्राज्य को हस्तगत करने को उत्सुक थे। उसके गुलाम ही बड़े महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली अमीर और शासक थे। इससे वे एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी भी थे। इनमें से एक ताजुद्दीन यल्दौज ने गजनी पर, अधिकार कर लिया था। गजनी का स्वामी बन जाने पर यल्दौज गजनी साम्राज्य के भारतीय सामन्तों व अधिकारियों को अपने आधीन रखना चाहता था। वह ऐबक की शक्ति को कम करके लाहौर और दिल्ली को अपने अधिकार में करना चाहता था। मुहम्मद गौरी का उत्तराधिकारी बन जाने के कारण वह गजनी के भारतीय साम्राज्य को और दिल्ली तथा लाहौर को स्वाभाविक रूप से अपने अधिकार में मानता था।

(४) **अलीमदनि**— बंगाल और बिहार में बख्तियार खिलजी के पुत्र इख्तियारुद्दीन मुहम्मद ने भी स्वतंत्र शासन स्थापित कर लिया था और वहां के तत्कालीन नरेश लक्ष्मणसेन को नदिया से बहुत दूर पूर्व की ओर ढाका के निकट खदेड़ दिया था। परन्तु कुछ ही समय बाद अलीमदनि खिलजी नामक सामन्त ने इख्तियारुद्दीन का वध कर दिया और वह बंगाल का स्वतंत्र शासक बन बैठा। ऐसे महत्वाकांक्षी शक्तिशाली शासकों में तलवार ही निर्णायक थी। शक्ति के ही द्वारा राज्य को हस्तगत किया जा सकता था।

(५) **असुरक्षित पश्चिमोत्तर सीमा**—ऐबक अपने भारतीय राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा भी सुरक्षित रखना चाहता था। यल्दौज जो मुईजुद्दीन गोरी का उत्तराधिकारी बन गया था, भारतीय साम्राज्य को हथियाने का इच्छुक था और पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत से भारत पर आक्रमण कर सकता था।

(६) **सशक्त सामन्त व अधिकारी**— तुर्की सामन्तों और अधिकारियों में भी पारस्परिक वैमनस्य और संघर्ष था। ऐबक को यह आशंका होने लगी थी कि भारतीय नरेश इसका लाभ उठाकर स्वतंत्र होने के प्रयत्न करेंगे।

(७) **राजपूतों द्वारा शक्ति व सत्ता संचय**— राजपूत नरेश ऐबक और उसके साथी तुर्कों से घृणा करते थे और उन्हें देश से बाहर खदेड़ने के लिये षडयंत्र और विद्रोह करने लगे थे। उन्होंने तुर्कों से अपने राज्य के अधिकांश प्रदेश छीन लिये थे। बुन्देलखण्ड में चन्देल नरेश त्रैलोक्यवर्मा ने प्रसिद्ध कालिंजर दुर्ग को पुनः अपने आधिपत्य में कर लिया था और तुर्कों को परास्त कर भगा दिया था। कन्नौज के गहड़वाल नरेश जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र ने अपनी शक्ति बढ़ाकर ऐबक के विरुद्ध विद्रोह किया, उसने बदायूं तथा फर्रुखाबाद में गहड़वाल राजसत्ता पुनः स्थापित कर दी। ग्वालियर दुर्ग पर प्रतिहार राजपूतों का पुनः अधिकार हो गया। बंगाल और बिहार में भी अनेक विद्रोह होने लगे। सेन वंश के शासक पूर्वी बंगाल से पश्चिम की ओर आगे बढ़ कर अपना राज्य और शक्ति पुनः प्राप्त करने के प्रयास करने लगे। दोआब के प्रदेश में अनेक छोटे-मोटे सामन्तों और नरेशों ने ऐबक को वार्षिक कर देना बंद कर दिया। इससे ऐबक की स्थिति और भी डाँवाडोल हो गयी।

(८) **आन्तरिक अव्यवस्था और अशांति**— संपूर्ण उत्तरी भारत में विद्रोहों के कारण आंतरिक शांति-व्यवस्था, प्रशासन और कानून शिथिल हो गये थे। चतुर्दिक् अशांति और अव्यवस्था व्याप्त थी। ऐबक के लिये स्थायी साम्राज्य स्थापित करने के लिये शांति, कानून और व्यवस्था स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक था।

(९) **ख्वारिजम का शाह**— मध्य एशिया का ख्वारिजम का शाह भी ऐबक के लिये एक समस्या था। वह मुहम्मद गोरी के राज्य को विशृंखलित और विघटित देख कर गजनी के विशाल साम्राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में करने के स्वप्न देख रहा था। गजनी से वह लाहौर तथा दिल्ली तक के क्षेत्र पर राज्य करने को उत्सुक था। गजनी और दिल्ली पर उसकी गिद्ध दृष्टि पड़ रही थी तथा उसके आक्रमण का भय कुतुबुद्दीन ऐबक को अधिक भयभीत किये था।

कठिनाइयों का सामना और समस्याओं का समाधान— इन अनेक कठिनाइयों और समस्याओं के होने पर भी कुतुबुद्दीन ऐबक ने धैर्य, वीरता, साहस और दूरदर्शिता से इनका सामना किया। भारत का स्वतंत्र सुलतान बन जाने पर कुतुबुद्दीन का सारा समय विरोधियों के साथ सुलझने, विद्रोहियों का दमन करने में और विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में ही व्यतीत हुआ। उसने दिल्ली के सुलतान की हैसियत से कुल चार वर्ष तक राज्य किया। परन्तु उसकी यह चार वर्ष की शासन-अवधि शांति से नहीं व्यतीत हुई। उत्तर-पश्चिम से आने वाले सभी संकटों और कठिनाइयों का सामना करने के लिये उसने दिल्ली को छोड़कर पंजाब में अपना शिविर स्थापित किया और शेष जीवन भी वहीं व्यतीत किया।

कुतुबुद्दीन के प्रतिद्वंदी

(१) **ताजुद्दीन यल्दौज**— कुतुबुद्दीन ऐबक का प्रथम और शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी ताजुद्दीन यल्दोज था। इसकी ओर से ऐबक को अपने साम्राज्य के लिये अधिक संकट और कठिनाइयों की आशंका थी। गौरी की मृत्यु के बाद यल्दौज ने बलपूर्वक गजनी पर अधिकार कर लिया। गजनी के भारतीय राज्य को और वहाँ के तुर्क सरदारों को अपने आधीन करने के लिये उसने सन् १२०८ में एक सेना लेकर भारत की ओर गजनी

से प्रस्थान कर दिया। वह सिंध और मुलतान के स्वतंत्र शासक कुबैचा से भी असन्तुष्ट और चिढ़ा हुआ था क्योंकि उसने ऐबक को सुलतान स्वीकार कर लिया था। यल्दौज का सामना करने के लिये ऐबक एक दृढ़ सुसज्जित सेना लेकर लाहौर पहुंचा और आगे बढ़ कर यल्दौज की सेना को परास्त करके उसे भारत के बाहर खदेड़ दिया और स्वयं सेना सहित यल्दौज की शक्ति को स्थायी रूपसे कुचलने के लिये गजनी पहुंच गया। गजनी की प्रजा और सामन्तगण भी उसे गौरी का सबसे सुयोग्य दास समझ कर गजनी के सिंहासन पर बिठाना चाहते थे। परन्तु ऐबक ने ऐसे सुअवसर का लाभ नहीं उठाया।

प्रथम, ऐबक की सेना ने गजनी पहुँच कर, विजय प्राप्त करने पर गजनी के नागरिकों के साथ नृशंसता और अमानवीय व्यवहार किया। द्वितीय, गजनी के विजय कर लेने के दंभ में ऐबक स्वयं अपने आपको विस्मरण कर गया और आमोद-प्रमोद तथा सुरापान और मदिरा गोष्ठियों में संलग्न हो गया। तृतीय, गजनी के नागरिकों, अधिकारियों और सामन्तों को यह अनुभव होने लगा था कि मुहम्मद गौरी तक गजनी के सुलतान भारतीय प्रदेशों पर राज्य करते थे और अब गोरी का एक दास ऐबक भारत में रह कर गजनी पर शासन करेगा। यह अपमानजनक स्थिति थी। इसलिये गजनी के नागरिकों और तुर्क सरदारों ने असन्तुष्ट होकर ऐबक और उसकी सेना के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और ताजुद्दीन यल्दौज को गजनी आकर शासन करने के लिये आमंत्रित किया और अपना सुलतान निर्वाचित कर लिया। ऐबक के लिये ऐसी विषम स्थिति में गजनी में रहना असंभव था। इसलिये वह सन् १२०८ में चालीस दिन तक गजनी का स्वामी बना रह कर भारत लौट आया। उसके लौट जाने पर गजनी पर यल्दौज ने पुनः अधिकार कर लिया।

यद्यपि ऐबक गजनी पर अधिकार करने के अपने प्रयत्नों में असफल रहा, परन्तु फिर भी उसने यल्दौज को एक बार परास्त करके अपनी दृढ़ शक्ति का परिचय दे दिया। यल्दौज भी भारत में अपने पैर पसारने के विचारों में सफल नहीं हुआ। ऐबक के रहते उसने भारत की ओर अपने राज्य व शक्ति का प्रसार करने का विचार त्याग दिया। इसके अतिरिक्त यल्दौज ने ऐबक की कूटनीति का शिकार होकर अपनी पुत्री का विवाह ऐबक से कर दिया था; इससे वह ऐबक से खुल्लम-खुल्ला युद्ध भी नहीं कर सकता था। इन सबका परिणाम यह हुआ कि ऐबक यल्दौज की ओर से निश्चित हो गया और यल्दौज ने भी भारत के तुर्क साम्राज्य से शत्रुता मोल लेना उचित नहीं समझा।

(२) **नासिरुद्दीन कुबैचा**— मुहम्मद गोरी के देहावसान के पश्चात् नासिरुद्दीन कुबैचा ने सिंध और मुलतान के प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया और स्वतंत्र शासक बन बैठा। पहिले यह इसी प्रदेश का गोरी के अधीनस्थ सूबेदार था। वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और १२०६ तक उसने अपनी प्रतिष्ठा खूब बढ़ा ली थी। उसकी बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिये ऐबक ने कूटनीति से काम लिया और अपनी बहिन का विवाह उसके साथ कर दिया। परन्तु ऐबक कुबैचा को न तो युद्ध में परास्त ही कर सका और न उसे अपने आधीन ही रख सका। अतः ऐबक के शासनकाल में वह सिंध और मुलतान का स्वतंत्र शासक बना रहा। वह दिल्ली के अधीन नहीं रहा। बंगाल में अलीमर्दान खिलजी के विद्रोह को दमन करने में संलग्न रहने के कारण, और

बिहार व बंगाल में शांति-व्यवस्था स्थापित करने के प्रयत्नों के कारण भी ऐबक कुबैचा की ओर भी अधिक ध्यान नहीं दे सका।

(३) **बंगाल और बिहार का विद्रोह और अलीमर्दान की अधीनता**— बंगाल और बिहार में इख्तियारुद्दीन का वध करके अलीमर्दान खिलजी विद्रोह करके वहाँ का स्वतंत्र शासक बन बैठा। परन्तु खिलजी सामन्तों ने इसका विरोध किया और उसे बंदी बना कर कारावास में डाल दिया और मुहम्मद शेरा को राजसिंहासन पर बिठा दिया। अलीमर्दान कारावास से भागकर ऐबक के पास दिल्ली पहुँचा और उससे बीच बचाव और हस्तक्षेप के लिये निवेदन किया। ऐबक ने इस सुअवसर का लाभ उठाया और बंगाल के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करके अलीमर्दान और उसके अमीरों में समझौता करवा दिया और अन्त में अलीमर्दान को सेना देकर बंगाल और बिहार का प्रशासक नियुक्त कर वहाँ भेज दिया। इससे अलीमर्दान ने ऐबक की अधीनता स्वीकार करली और उसे वार्षिक खिराज देना भी प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार ऐबक ने बंगाल कौर बिहार का विद्रोह शांत कर दिया, और वहाँ के शासक को दिल्ली के अधीन कर खिलजियों के विरोध का तथा उस प्रदेश के स्वतन्त्र होने की आशंका का अन्त कर दिया।

(४) **मध्य एशिया के प्रति तटस्थता की नीति**— मध्य एशिया में ख्वारिजम का शाह बड़ा महत्वाकांक्षी सुलतान था। वह गजनी और भारत के साम्राज्य की ओर भी आंखें लगाये था। पर ऐबक ने ख्वारिजम के शाह से संघर्ष टालने का प्रयास किया। ऐबक ने मध्य एशिया की राजनीति में कोई विशेष उल्लेखनीय भाग नहीं लिया। उसने मध्य एशिया और शाह के प्रति तटस्थता की नीति अपनाई जिससे शाह के आक्रमणों का भय भी कम हो गया।

(५) **राजपूतों के विद्रोह और उनकी बढ़ती हुई शक्ति**— ऊपर यह उल्लेख है कि गोरी की मृत्यु के बाद राजपूतों ने बुन्देलखण्ड, ग्वालियर, बदायूं आदि क्षेत्रों में विद्रोह करके, तुर्कों की सेनाओं को खदेड़ करके अपनी शक्ति और राज्य की सीमाओं में वृद्धि की। परन्तु कुतुबुद्दीन उत्तर-पश्चिम के झगड़ों और अपने प्रतिद्वन्द्वियों के संघर्ष में इतना व्यस्त रहा कि उसे राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति को कम करने का, उनके विद्रोहों को दबाने का अवसर ही नहीं मिल पाया। अपनी आपत्तियों के बाहुल्य और समयाभाव के कारण वह राजपूतों की ओर ध्यान ही नहीं दे पाया था। फलस्वरूप राजपूतों ने अपने स्वतंत्र राज्य पुनः स्थापित कर लिये। फिर भी ऐबक ने पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा की व्यवस्था करके अन्तर्वेद के राजाओं पर दबाव डाला और बदायूं पर पुनः अधिकार करके वहाँ अपने एक दास इल्तुतमिश को अधिकारी नियुक्त किया तथा दूसरे छोटे राजाओं से कर वसूल किया। पर वह ग्वालियर और कालिंजर को जीत न सका।

कुतुबुद्दीन ऐबक का शासन प्रबन्ध— कुतुबुद्दीन ऐबक ने स्वतंत्र सुलतान के रूपमें केवल चार वर्ष तक शासन किया था। समुचित शासन व्यवस्था के लिये यह अवधि अत्यन्त ही थोड़ी है। ऐबक का जीवन और उसके शासन का सम्पूर्ण समय संघर्षों, युद्धों और विद्रोहों में ही व्यतीत हुआ। इनमें ही वह फंसा रहा, इसीलिये प्रशासन की

ओर वह ध्यान नहीं दे सका। परन्तु उसने अपने राज्य में शान्ति व्यवस्था स्थापित कर ली थी और विद्रोहों का दमन कर लिया था। इसका कारण यह था कि उसने आन्तरिक सुरक्षा के लिये विभिन्न स्थानों पर सैनिक टुकड़ियाँ और सेनानायक नियुक्त कर दिये थे। इस प्रकार उसकी आन्तरिक शासन व्यवस्था सैनिक शक्ति पर आधारित थी, सफल और दृढ़ नागरिक प्रशासन पर नहीं। ऐसी सैनिक शान्ति व्यवस्था के ही कारण लेनपूल ने कहा है कि "उसके (ऐबक) के राज्य में भेड़ और भेड़िया एक घाट पर पानी पीते थे।" चोर, डाकुओं का उसके राज्य में नामोनिशान भी नहीं था। डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद का भी कथन है कि ऐबक के शासन काल में सड़कों पर डाकुओं का भय नहीं था। ऐबक का शासन प्रबन्ध उत्तम था। वह राज्य में सुख और समृद्धि की वृद्धि की चेष्टा करता था।

परन्तु अन्य इतिहासकार यह मानते हैं कि कुतुबुद्दीन ऐबक में सफल शासक के गुणों का अभाव था। उनमें रचनात्मक प्रतिभा नहीं थी। उसने न तो प्रशासन सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना की और न प्रशासन सम्बन्धी कोई सुधार ही किये। उत्तरी भारत को विजय करने के उपरान्त उसने शासन व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किये। स्थानीय स्वशासन हिन्दुओं के हाथों में ही रहा, पर राजधानी और प्रांतीय नगरों का प्रशासन मुस्लिम अधिकारियों के हाथों में आ गया। ऐबक ने शासन-प्रबन्ध में केवल इतना ही परिवर्तन किया कि हिन्दू पदाधिकारियों के स्थान पर मुस्लिम पदाधिकारियों की नियुक्ति कर दी। राजस्व सम्बन्धी प्राचीन नियम भी पूर्ववत् ही रखे गये। इससे उसके शासन काल में शासक और शासितों में एक गहरी खाई थी। विदेशी प्रशासकों और मुस्लिम अधिकारियों के अनाचार और अत्याचारों से जनता भयभीत और आन्तकित थी।

हिन्दुओं के प्रति वह उदार और सहिष्णु नहीं था। जब उस युग में तुर्कों और हिन्दुओं में संघर्ष हो रहे थे, और ऐबक उनका नेता और सुलतान था, तब ऐबक से हिन्दुओं के प्रति धार्मिक सहिष्णुता और उदारता की नीति की आशा नहीं की जा सकती। ऐबक ईश्वर के नाम पर हिन्दुओं से युद्ध करता था, सहस्रों हिन्दुओं को उसने दास बनाया, असंख्य हिन्दुओं को युद्ध और युद्ध के बाद भी मौत के घाट उतारा, हिन्दू जनता पर उसने नृशंसता से अत्याचार किये। अनेकों को बलपूर्वक इस्लाम ग्रहण करने के लिये बाध्य किया। उसे हिन्दुओं पर विश्वास ही नहीं था और इसीलिये उसने हिन्दुओं के स्थानों पर मुस्लिम अधिकारी और कर्मचारी रखे थे। मूर्ति भंजन की परम्परा का पालन करते हुए ऐबक ने कई मन्दिरों को विध्वंस किया और उनकी मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा तथा उन मन्दिरों और पवित्र स्थानों के भग्नावशेषों पर उनकी अवशिष्ट सामग्री से ही सुन्दर मस्जिदें निर्माण करवायीं।

कुछ इतिहासकार उसे बड़ा उत्साही, उदार और न्यायप्रिय शासक मानते हैं। उनका कथन है कि उसका न्याय सबके लिये एक समान होता था। पर डॉ. श्रीवास्तव का मत है कि ऐबक की न्याय-व्यवस्था भद्दी तथा भौंडी थी। वह दानप्रिय, दानशील सुलतान था और उसकी दानशीलता की प्रशंसा करते हुए मिनहाज-उस-सिराज ने लिखा है कि ऐबक "हातिम द्वितीय" था। "ईश्वर ने उसे ऐसी वीरता और दान-

शीलता प्रदान की थी कि विश्व में पूर्व तथा पश्चिम में कोई भी बादशाह उसकी तुलना नहीं कर सकता था।" वह लाखों और सहस्त्रों मुद्राएँ दान करता था। इसलिये उसे लाखबख्श या लक्षदाता कहते थे। भारत में मंदिरों और नगरों की लूट से उसे इतना अधिक कोष और सम्पत्ति प्राप्त हुई थी कि वह लाखों मुद्राएँ दान में दे देता था। इस प्रकार लूट की सम्पत्ति से लाखों का दान तो विशाल पैमाने पर डाके डालने वाला डाकू या लुटेरा भी कर सकता था। लाखों के दान के साथ-साथ ऐबक निर्मम हत्यायें भी इतनी अधिक करता था कि ऐसा कहा जाता है कि उसके दरवाजे पर प्रतिदिन शव मिलता था।

कुतुबुद्दीन का देहावसान—सन् १२१० में लाहौर में चौगान या पोलो खेल खेलते समय घोड़े से गिर पड़ने पर कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु हो गई। गेंद खेलते समय वह घोड़े पर से गिर पड़ा, घोड़ा भी उस पर गिर पड़ा और काठी के सामने का भाग उसकी छाती से टकरा गया और कुछ भाग पेट में घुस गया। इस सांघातिक चोट से अकस्मात् ही उसका देहावसान हो गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक का चरित्र, उसकी सफलताएँ और उनका मूल्यांकन

कुतुबुद्दीन ऐबक का भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

(१) **भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक**— कुतुबुद्दीन ऐबक वास्तविक अर्थ में भारत में इस्लामी साम्राज्य का संस्थापक था। यह सत्य है कि मुईजुद्दीन गोरी ने कुतुबुद्दीन ऐबक को उसके गुणों को देखकर उच्च पद पर नियुक्त किया और भारत में उसे रखकर गोरी ने अपने साम्राज्य की रक्षा करने मे गजनी से सेनाएँ भेज उसकी सहायता की। समय-समय पर गोरी ऐबक को आवश्यक निर्देश भी भेजता रहा। गोरी के जीवनकाल में ऐबक ने गोरी को आक्रमणों में सहायता देने, राज्य की सुरक्षा की व्यवस्था करने, विद्रोहों को दबाने, आदि के लिये जो कुछ भी किया, उसका श्रेय मुहम्मद गोरी को है। परन्तु यह भी निर्विवाद है कि गोरी की योजनाओं को कार्यान्वित करने, समयानुकूल उनमें संशोधन और परिवर्तन करने और उन्हें हर प्रकार से सफल बनाने में ऐबक ने बहुत बड़ा भारी योग दिया। ऐबक की अनुपस्थिति और अभाव में गोरी के कई आक्रमण, कार्य और योजनायें असफल हो रहतीं। उसके विजित प्रदेशों की शासन व्यवस्था करना और शत्रुओं से उनकी रक्षा करना—ऐबक का ही कार्य था।

गोरी की मृत्यु के बाद भी, ऐबक की अनुपस्थिति और अभाव में गोरी का भारतीय साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता। मुहम्मद गोरी के देहावसान के बाद उसके साम्राज्य की स्थिति अत्यन्त ही डांवाडोल हो गई थी और सम्भवतः महमूद गजनवी के अधीनस्थ पंजाब और सीमान्त क्षेत्र की जो दशा, गजनवी की मृत्यु के बाद हुई, वही परिस्थिति गोरी के भारतीय साम्राज्य की भी होती। पर ऐबक ने ऐसा न होने दिया। सर्वप्रथम ऐबक ने अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता से मुहम्मद गोरी के भारतीय राज्य को उसके गजनी और मध्य एशिया के अभारतीय राज्य से अलग कर दिया और दिल्ली में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया और इस दिल्ली सल्तनत का प्रारम्भिक संगठन किया। ऐबक ने गोरी के देहावसान के बाद उसके भारतीय साम्राज्य की कोई हानि

नहीं होने दी। उसने भारत का सम्बन्ध गजनी से सदा के लिये विच्छेद करके, उत्तरी भारत को गजनी के प्रभुत्व से हमेशा के लिये मुक्त कर दिया और अपनी शक्ति तथा तलवार से दिल्ली में नवीन स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य प्रतिष्ठित किया। उत्तरी भारत जैसे विशाल देश को, जिसके लिये मुस्लिम लोग अभी विदेशी ही थे, तथा जहां से उन्हें कोई सहानुभूति और सहायता की भी आशा नहीं थी। अपने आधीन बनाये रखना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। पर ऐबक ने अपने साहस एवं बल से इस दुःसाध्य कार्य को सम्पादित किया और नवीन मुस्लिम राज्य की नींव को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। उसने इस नवीन मुस्लिम राज्य को अपनी सैनिक प्रतिभा से बनाये रखा तथा आगे आने वाले शासकों के लिये स्वतन्त्र दिल्ली सल्तनत की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। ऐबक की यह सबसे बड़ी सफलता थी और इसीलिये उसे भारत में मुस्लिम राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाना चाहिये।

(२) **योग्य कुशल सेनापति**— कुतुबुद्दीन ऐबक अच्छा अश्वारोही, अचूक तीरंदाज, साहसी नेता तथा योग्य, कुशल और सफल सेनापति था। अपने सैनिक गुणों के कारण ही वह मुहम्मद गोरी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हो सका तथा भारत से गोरी द्वारा उसका राजप्रतिनिधि बन सका। मुहम्मद गोरी की अधिकांश विजयों का श्रेय ऐबक को ही है। उसने मुहम्मद गोरी की अनुपस्थिति में अपनी वीरता और सेनानायक के गुणों से राजपूतों के विद्रोहों का दमन किया, उन्हें युद्ध में परास्त किया तथा अपने प्रतिद्वन्द्वियों को भी हताश किया। यदि इन विद्रोहों का और प्रतिद्वन्दियों को सफलतापूर्वक दमन नहीं किया गया होता तो मुहम्मद गोरी द्वारा जीते गये राजपूत राज्य और अन्य भारतीय प्रदेश हाथ से निकल जाते और इस प्रकार भारत में तुर्की शासन स्थापित और सुरक्षित नहीं हो पाता। जिस युग में कुतुबुद्दीन भारत का सुलतान बना था, वह युग शक्ति का था। तलवार ही सुलतान की सबसे बड़ी निर्णायक शक्ति थी। यदि कुतुबुद्दीनमें सैनिक प्रतिभा नहीं होती तो वह अपने प्रतिद्विन्द्वियों से अपनी रक्षा करने में भी कभी समर्थ नहीं हो पाता। अपने विशाल राज्य को वह सैनिक बल पर ही बनाये रख सका।

(३) **कुशल राजनीतिज्ञ**— ऐबक केवल योग्य और सफल सेनापति ही नहीं था, अपितु वह कुशल राजनीतिज्ञ भी था। अपनी सामरिक और राजनैतिक स्थिति दृढ़ करने के लिये उसने अपने प्रतिद्विन्द्वियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये। गजनी के यल्दौज की लड़की से उसने अपना विवाह किया तथा कुबैचा के साथ अपनी बहिन का विवाह करके उसने अपनी स्थिति को दृढ़ कर लिया। अपने सबसे शक्तिशाली और प्रतिभावान गुलाम इल्तुतमिश के साथ ऐबक ने अपनी कन्या का विवाह कर इल्तुतमिश और उसके साथियों का पूर्ण समर्थन और सहयोग प्राप्त कर लिया। गजनी के राज्य से अपने अधीन भारत के राज्य का सम्बन्ध विच्छेद करने में भी ऐबक ने अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया।

(४) **दानशील, न्यायप्रिय एवं धर्मान्ध शासक**— कुतुबुद्दीन दानप्रिय शासक था और अपनी दानशीलता के लिये वह अधिक प्रसिद्ध था। मुसलमानों के लिये तो वह दरियादिल बादशाह था। "तबकात-ऐ-नासीरी" के प्रणेता मिनहाज-ए-सिराज ने

लिखा है कि ऐबक लाखों का दान करता था तथा लाखों की हत्या करता था। अपनी मुसलमान प्रजा के लिये वह लाख बख्श था। ऐबक न्यायप्रिय शासक भी माना जाता था। "ताजउल मसीर" के रचयिता हसन निजामी ने लिखा है कि "उसके शासन में भेड़ तथा भेड़िया एक ही घाट में पानी पीते थे।" यह कथन कुतुबुद्दीन की न्यायप्रियता का परिचायक है।

परन्तु कुतुबुद्दीन ने धार्मिक सहिष्णुता की उदारनीति का अनुकरण नहीं किया। वह हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु था। उसमें धर्मांधता थी। हिन्दुओं के साथ उसका व्यवहार क्रूरता और निर्दयतापूर्ण था। उसने अनेक हिन्दुओं का वध करवाया और अनेकानेक हिन्दू स्त्री-पुरुषों और बच्चों को दास बना दिया। अनेकों को बलपूर्वक इस्लाम का अनुसरण करने के लिये बाध्य किया। हिन्दुओं के मन्दिरों को लूटकर विध्वंस कर मूर्तियों को उसने तोड़ा-फोड़ा और मन्दिरों के भग्नावशेषों पर उसने मस्जिदें निर्माण कीं। हिन्दुओं के प्रति किये गये असहिष्णु व्यवहारों और धर्मान्धता के आधार पर ही इतिहासकारक विंस्टेन्ट स्मिथ ने ऐबक को मध्य एशिया के तत्कालीन क्रूर एवं धर्मांध बर्बर योद्धाओं का नेता कहा है। परन्तु यहाँ इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि कुतुबुद्दीन ऐसे युग में शासन करता था, जब धार्मिक सहिष्णुता और उदारता के नाम से लोग अपरिचित थे। यह धर्मान्धता मध्य एशिया और युरोप दोनों में इस युग में प्रचलित थी। ऐसे धर्मान्धता और कट्टरता के युग में हिन्दुओं के प्रति ऐसा व्यवहार ऐबक से अपेक्षित ही था।

(५) साहित्य और कला का आश्रयदाता—कुतुबुद्दीन ऐबक साहित्य एवं कला का पोषक था। उसकी राज्यसभा में अनेक विद्वान आश्रय प्राप्त करते थे। हसन निजामी तथा फरुखेमुदीर जैसे प्रतिभावान् विद्वानों को प्रश्रय प्राप्त हुआ था। इन विद्वानों ने कतिपय महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं और उन्हें ऐबक को समर्पित किया गया। ऐबक कलाप्रेमी भी था। भवन और मस्जिद निर्माण में उसे विशेष रुचि थी। सन् ११९१ में उसने जामे मस्जिद अथवा कुवातुल इस्लाम मस्जिद का निर्माण करवाया। यह मस्जिद दिल्ली विजय के उपलक्ष में निर्मित की गई। महात्मा ख्वाजा कुतुबुद्दीन की स्मृति में ऐबक ने कुतुबमीनार की स्थापना और निर्माण का आयोजन किया था। इस कुतुबमीनार को पूर्ण करने के पहिले ऐबक मर गया था, इसलिये उसे इल्तुतमिश ने पूर्ण करवाया। कतिपय विद्वानों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि मूल रूप में कुतुबमीनार हिन्दू नरेश द्वारा निर्मित की गई थी और ऐबक तथा इल्तुतमिश ने उसमें परिवर्तन कर उसका वर्तमान रूप दे दिया। जैसा ऊपर लिखा है हिन्दुओं के मन्दिरों के भग्नावशेषों पर उन मन्दिरों की सामग्री से ही मस्जिदें बनाई जाती थीं। कुतुबुद्दीन ने अजमेर में सन् १२०० में हिन्दुओं के पवित्र स्थान और मन्दिर को तोड़कर ढाई दिन में वहाँ एक मस्जिद बना डाली, जिसे आजकल ढाई दिन का झोपड़ा कहते हैं।

(६) पुरुषार्थी, सुयोग्य, प्रतिभावान पुरुष—ऐबक पुरुषार्थी, साहसी, धैर्यशील, कर्तव्यनिष्ठ, स्वामी-भक्त, उत्साही, सुयोग्य और प्रतिभावान पुरुष था। वह अपनी प्रतिभा के आधार पर ही एक साधारण गुलाम की हैसियत से अपनी योग्यता, गुणों और प्रतिभा के बल पर ऊचे पदों पर आसीन होता गया और अन्त में सुलतान बन गया।

दास के निम्न स्तर से स्वतन्त्र सुलतान के पद तक उठ जाना, यह ऐबक की विशेष महत्वशाली सफलता थी। व्यक्तिगत रूप से भी उसका चरित्र उत्तम था। उसने अपनी समस्त कठिनाइयों का बड़ी निर्भीकता, वीरता तथा साहस से सामना किया और किसी भी समय उनसे भयभीत नहीं हुआ।

(७) **असफल शासक**— डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद ने ऐबक को शक्तिशाली और सुयोग्य शासक माना है। वह वीर तथा शक्तिसम्पन्न शासक और इस्लाम की दृष्टि में चतुर तथा न्यायी शासक माना गया है। पर अन्य इतिहासकारों का मत है कि कुतुबुद्दीन ऐबक में अच्छे शासक के गुणों का अभाव था। उसने भारत में मुस्लिम राज्य तो स्थापित किया पर उसे प्रशासकीय दृष्टि से सुव्यवस्थित और सुसंगठित बनाने का प्रयत्न नहीं किया। उसने न तो शासन सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना ही की और न कोई प्रशासकीय सुधार ही किये। उसने प्रशासन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन भी नहीं किये। कुशल और सफल शासक के नाते उसमें धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का अभाव था। उसका राज्य इस्लाम के सिद्धान्तों पर आधारित था। उसके कार्यों द्वारा भारत में इस्लाम का प्रचार हुआ। यद्यपि उसने हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार किये पर वह अत्यन्त ही क्रूर और नृशंस अत्याचारी शासक नहीं था। उसने तैमूर या नादिरशाह की भांति कत्लेआम नहीं किया।

इतिहास में ऐबक का स्थान— इस बात का श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक को है कि उसने गोरी द्वारा स्थापित नवीन तुर्की साम्राज्य के शत्रुओं का दमन किया, विजित प्रदेशों के प्रशासन की काम चलाऊ व्यवस्था की और सुलतान बन जाने पर दिल्ली सल्तनत का प्राथमिक संगठन किया। यद्यपि उसमें धार्मिक अनुदारता और असहिष्णुता थी, तथा वह सुदृढ़ और व्यवस्थित शासन स्थापित करने में असफल रहा, परन्तु यह गर्व और गौरव की बात है कि वह एक निम्न दास के पद से उन्नति करते-करते भारत का सुलतान बन गया। चाहे वह महान् साम्राज्य निर्माता न हो सका हो, पर राजवंश की स्थापना में ऐबक का वही स्थान है जो बाबर का स्थान मुगलवंश की स्थापना में है।

आरामशाह (सन् १२१०-१२११)

लाहौर में कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद वहाँ के तुर्क सरदारों ने आरामशाह को राज्याभिषेक कर सुलतान घोषित कर दिया। प्रजा की शान्ति, सेना के संतोष और राज्य की सुव्यवस्था और प्रशासन के लिये उन्होंने शीघ्र ही आरामशाह को सुलतान बनाना उचित समझा। कुछ विद्वानों का मत है कि कुतुबुद्दीन के केवल तीन ही पुत्रियाँ थीं, कोई पुत्र नहीं था। पर तुर्की सामान्तों ने सल्तनत को डांवाडोल स्थिति से बचाने के लिये आरामशाह नामक व्यक्ति को सुलतान बना दिया। पर वह अयोग्य और दुर्बल शासक था। दिल्ली के तुर्क सामन्तों और अधिकारियों को आरामशाह का सुलतान होना समीचीन नहीं प्रतीत हुआ। इन्हीं सामन्तों का प्रमुख था अली इस्माइल। उसने बदायूँ के तत्कालीन शासक इल्तुतमिश को दिल्ली आने और सुलतान बनने के लिये आमंत्रित किया। जब इल्तुतमिश दिल्ली आ गया, तब आरामशाह ने अपनी सेना सहित

लाहौर से प्रस्थान कर इल्तुतमिश पर आक्रमण किया। किन्तु इल्तुतमिश ने दिल्ली के पास जूद के रणक्षेत्र में उसे परास्त कर दिया। इसके बाद सम्भव है आरामशाह का वध कर दिया गया हो, अथवा उसे बन्दी बना लिया हो और बाद में बंदीगृह में उसका देहावसान हो गया हो।

सारांश

मुहम्मद गोरी के देहावसान के बाद शक्तिशाली, योग्य पुत्र और उत्तराधिकारी के अभाव में उसके साम्राज्य का पतन और विभाजन हो गया। यल्दोज ने गजनी और उसके आसपास के क्षेत्र, कुबैचा ने मुलतान और सिन्ध तथा कुतुबुद्दीन ऐबक ने पंजाब और दिल्ली में अपनी सत्ता स्थापित करली।

दास प्रथा— पूर्व मध्यकाल में मध्यएशिया में छोटे बालकों को पकड़ कर दास बना कर बेच दिया जाता था। समाज में दासों का बाहुल्य था। दासों का जीवन पशुवत होता था। अनेक सामन्त और सुलतान योग्य और प्रतिभावान दासों को दासता से मुक्त कर ऊंचे पदों पर नियुक्त करते थे। ऐसे दास कभी-कभी शक्तिशाली अधिकारी, प्रशासक और सुलतान भी हो जाते थे। वे अपने स्वामी सुलतान के राज्य व शक्ति की वृद्धि करने में बड़ा योग देते थे। अल्पतगीन, सुबुक्तगीन, कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश व बलवन ऐसे ही दास थे जो बाद में प्रगति करते करते सुलतान बन गये।

तथाकथित दासवंश—मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद उसका भारत स्थित मुस्लिम साम्राज्य उसके प्रतिनिधि कुतुबुद्दीनऐबक के हाथ में आ गया और वह दिल्ली का सुलतान बन गया। वह मुहम्मद गोरी का दास था इसलिये सन् १२०६ से १२९० तक होने वाले ग्यारह सुलतान दास सुलतान कहलाये। इन सुलतानों में प्रसिद्ध तीन सुलतान थे—ऐबक, इल्तुतमिश, और बलवन, और ये भी दास होने से इन सुलतानों को दास सुलतान कहा जाता है। परन्तु कुछ इतिहासज्ञों का मत है कि ये तीनों व्यक्ति सुलतान बनने के पूर्व दासता से मुक्ति पा चुके थे और ये सभी सुलतान तुर्क थे। इसलिये इनको दास सुलतान कहने की अपेक्षा तुर्क सुलतान कहना चाहिये।

तथाकथित दास सुलतानों के राज्य का महत्व—दास सुलतानों का शासन स्थापित हो जाने से प्रभुता सम्पन्न हिन्दू और राजपूतों के राज्यों का अन्त हो गया, तथा राजसत्ता विदेशियों को हस्तान्तरित हो गयी। मुस्लिम साम्राज्य के स्थापित होने से नवीन मुस्लिम युग का प्रारम्भ हो गया। दासवंश का राज्य दिल्ली सल्तनत के अभ्युदय का युग माना गया। इस युग से दिल्ली के सुलतानों ने इस्लाम के प्रसार और प्रचार के लिये राज्य की शक्तियों और साधनों का उपयोग किया और बलात् अनेकों को मुसलमान बनाया गया। हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों को विध्वंस कर उनके भग्नावशेषों पर मसजिदें निर्माण करने का युग प्रारम्भ हुआ। समाज में हिन्दू और इस्लामी संस्कृति का विकास हुआ। कालान्तर में उदारता, सहिष्णुता व सदभावना की वृत्तियां प्रबल हो गयीं और विदेशी इस्लाम के अनुयायी

भारतीकरण की ओर झुके। दैनिक जीवन, कला और साहित्य में इसका प्रभाव आया।

कुतुबुद्दीन ऐबक (सन् १२०६-१२१०)

कुतुबुद्दीन का प्रारम्भिक जीवन और प्रगति—यह तुर्किस्तान का निवासी था। कुरूप होने पर भी वह कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभावान था। बचपन में वह दास बना लिया गया था और उसे एक काजी ने खरीद लिया था। काजी ने उसे उचित शिक्षा दी। और काजी के पुत्रों ने ऐबक को बेच दिया और बाद में मुहम्मद गोरी ने उसे एक व्यापारी से खरीद लिया। गोरी ने ऐबक की शिक्षा और गुणों से प्रभावित होकर उसे सेना में ऊंचे पद पर नियुक्त किया। जब गोरी ने भारत पर आक्रमण किये तब ऐबक उसके साथ भारत आया था और उसे अत्यधिक सहायता दी थी। इससे प्रसन्न होकर गोरी ने उसे भारत में अपने जीते हुए प्रदेशों का प्रशासक नियुक्त कर दिया। इस पद पर रहकर उसने नये प्रदेश जीत कर गोरी के साम्राज्य व उसकी सीमा और यश गौरव को बढ़ाया।

कुतुबुद्दीन ऐबक गोरी के प्रशासक प्रतिनिधि के रूप में-तराइन के युद्ध के बाद मुहम्मद गोरी गजनी लौट गया और कुतुबुद्दीन को अपने भारतीय राज्य की देखभाल के लिये अपने प्रतिनिधि के प रूमें छोड़ गया। गोरी की उपस्थिति में ऐबक ने पंजाब में हांसी के दुर्ग पर आक्रमण करके वहां जाटों को परास्त कर दिया। गोरी के विरुद्ध राजपूतों के तीन विद्रोहों का उसने दमन किया। इनमें दो अजमेर में हरिराज ने और तीसरा दिल्ली के तोमर शासक ने किया था। इसके बाद ऐबक ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया और मेरठ तथा बुलन्दशहर को जीत लिया। जब सन् ११९४ में गोरी ने कन्नौज के राजा जयचन्द पर आक्रमण किया, तब कुतुबुद्दीन ऐबक की वीरता और रण-कौशल से गोरी को विजय प्राप्त हुई। इस पर कन्नौज के शासन का भार गोरी ने ऐबक को सौंप दिया। इसके बाद ऐबक ने अलीगढ़ के जाट राजपूतों के विद्रोह को दबाया और रणथम्भौर के किले को भी जीत लिया। गुजरात के भीमदेव ने अजमेर के राजपूतों के विद्रोह में सहायता दी थी, इसलिये ऐबक ने गुजरात पर आक्रमण किया, भीमदेव को परास्त कर उसकी राजधानी अन्हिलवाड़ा को भी खूब लूटा तथा दोआब में चन्दावर और कन्नौज को अपने अधिकार में कर लिया। जब मुहम्मद गोरी ने बयाना, ग्वालियर और बुन्देलखण्ड में कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया तो ऐबक ने सेना से और स्वयं उपस्थित होकर गोरी को सहायता दी। मुहम्मदबिन बख्तियार खिलजी को बंगाल और बिहार जीतने की प्रेरणा भी ऐबक ने दी। इस प्रकार गोरी के जीवनकाल में ही समस्त उत्तरी भारत को मुस्लिम नरेश के आधिपत्य में लाने का श्रेय ऐबक को ही है।

कुतुबुद्दीन ऐबक सुलतान के रूप में—मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी गयासुद्दीन निर्बल और अयोग्य था। इसलिये लाहौर के सामन्तों और नागरिकों ने ऐबक को गोरी का उत्तराधिकारी बनाने, उसे राज्य सत्ता देने के लिये आमंत्रित किया और कुछ समय बाद उसका राज्याभिषेक किया गया और ऐबक सुलतान बन गया।

कुतुबुद्दीन की समस्याएं और कठिनाइयाँ—यद्यपि ऐबक सुलतान बन गया था, पर हिन्दू नरेश उसे विदेशी आक्रांता मानते थे और उसके विरुद्ध विद्रोह के लिये तत्पर थे। सिंध और मुलतान में नासिरुद्दीन कुबैचा स्वतन्त्र शासक बन गया था। ताजुद्दीन यल्दौज ने गजनी पर अधिकार कर लिया था और वह गजनी साम्राज्य के भारतीय प्रदेशों को और दिल्ली को अपने अधिकार में करना चाहता था। कुबैचा और यल्दौज दोनों ही ऐबक के महत्वाकांक्षी शक्तिशाली प्रतिद्वंदी थे। बंगाल और बिहार में अलीमर्दान खिलजी ने स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली थी। भारत की पश्चिमोत्तर सीमा भी असुरक्षित थी और यल्दौज आक्रमण करके भारतीय राज्य को हड़पने का इच्छुक था। राजपूत नरेशों ने भी तुर्कों से अपने राज्यों के अनेक प्रदेश पुनः छीन लिये थे। ग्वालियर और कालिंजर पर राजपूतों ने पुनः अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। बंगाल और बिहार में भी अनेक विद्रोह होने लगे थे। इससे ऐबक की स्थिति डांवा-डोल हो गयी थी और राज्य में आन्तरिक शान्ति, व्यवस्था, प्रशासन और कानून शिथिल हो गये थे।

कठिनाइयों का सामना—कुतुबुद्दीन ऐबक ने बड़ी वीरता और साहस से इन समस्त कठिनाइयों का सामना किया, विद्रोहों का दमन किया और विरोधियों तथा प्रतिद्वन्द्वियों की शक्तियों को कम कर दिया। जब ताजुद्दीन यल्दौज ने गजनी से सेना सहित पंजाब पर आक्रमण किया तब ऐबक ने उसे परास्त कर भारत के बाहर खदेड़ दिया और उसकी शक्ति व एकता को नष्ट करने के लिए स्वयं गजनी पहुँच गया। इसका परिणाम यह हुआ कि यल्दौज ने भारत में अपनी शक्ति व राज्य के प्रसार करने का विचार त्याग दिया। सिंध और मुलतान के स्वतन्त्र शासक कुबैचा की बढ़ती हुई शक्ति को भी उसने कम करने के लिये प्रयास किये। बंगाल और बिहार में अलीमर्दान ने इख्तियारुद्दीन का वध करके स्वतन्त्र शासक हो गया पर खिलजी सरदारों ने अलीमर्दान को पकड़ कर कारावास में डाल दिया और मुहम्मद शेरा को शासक बना दिया। ऐबक ने हस्तक्षेप करके, समझौता करवा के अलीमर्दान को बंगाल का शासक बना दिया। इस सहायता के बदले में अलीमर्दान ने ऐबक की अधीनता मान ली। मध्यएशिया व ख्वारिजम के शाह के प्रति कुतुबुद्दीन ऐबक ने तटस्था की नीति अपनाई। यद्यपि वह राजपूतों के पुर्नसगठन और विद्रोहों को नहीं दबा सका पर उसने अन्तर्वेद के राजाओं पर पुनः दबाव डाला, और बदायूं पर अधिकार करके वहां अपने दामाद इल्तुतमिश को शासक नियुक्त किया।

कुतुबुद्दीन का शासन प्रबन्ध—समयाभाव के कारण वह समुचित प्रशासन व्यवस्था स्थापित नहीं कर सका। परन्तु विभिन्न स्थानों पर सैनिक टुकड़ियाँ रख कर उसने आन्तरिक सुरक्षा स्थापित की। उसमें रचनात्मक प्रतिभा नहीं थी। उसने प्रशासन में कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन या सुधार नहीं किये। उसके शासनकाल में शासक और शासितों में गहरी खाई थी। हिन्दुओं के प्रति वह असहिष्णु था। उसने अनेकानेक हिन्दुओं को दास बनाया और कत्ल करवाया। उसने मूर्ति-भंजन और मंदिरों के तोड़-फोड़ की परम्परा का पालन किया। मुस्लिम इति-

हासकार उसकी उदारता, दानशीलता और न्याय-प्रियता की प्रशंसा करते हैं। उसके उदारदान के लिये उसे लाख बख्श कहते हैं।

लाहोर में चौगान का खेल खेलते वह घोड़े पर से गिर कर मर गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक का चरित्र और उसका मूल्यांकन—कुतुबुद्दीन भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। कुतुबुद्दीन ने मुहम्मद गोरी के आक्रमणों, कार्यों में बहुत अधिक योग दिया, उसकी योजनाओं को कार्यान्वित किया और गोरी की अनुपस्थिति में उसने गोरी के विजित प्रदेशों की शासन व्यवस्था की और शत्रुओं तथा विद्रोहियों से उनकी रक्षा की। गोरी के भारतीय राज्य को गजनी साम्राज्य से अलग कर उसे बनाये रखा और उसकी कोई हानि नहीं होने दी। उसने अपनी सैनिक प्रतिभा से नवीन मुस्लिम राज्य की नींव को सुदृढ़ किया और आगे आने वाले सुलतानों के लिये दिल्ली सल्तनत की प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। कुतुबुद्दीन ऐबक अच्छा अश्वारोही, अचूक तीरंदाज, साहसी नेता और योग्य कुशल सेनापति था। इन्हीं गुणों के कारण वह गोरी के आक्रमणों और युद्धों में सफल हुआ, अपने विद्रोहियों और प्रतिद्वंदियों का दमन कर सका तथा गोरी की मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत को स्थापित कर उसे सावधानी से बनाये रखा। सफल सेनापति व नेता होने के साथ-साथ कुतुबुद्दीन राजनीतिज्ञ भी था। उसने राजनैतिक दूरदर्शिता से गजनी के यल्दोज की पुत्री से विवाह कर लिया, अपनी बहिन का विवाह कुबैचा से कर दिया और पुत्री का विवाह इल्तुतमिश से कर दिया। इस प्रकार उसने अपने विरोधियों और प्रतिद्वंदियों को अपने पक्ष में कर लिया।

कुतुबुद्दीन न्यायप्रिय और दानशील शासक था। मुसलमानों के लिये वह दरियादिल व लाखबख्श बादशाह था, पर हिन्दुओं के प्रति वह असहिष्णु और धर्मान्ध था। उसने असंख्य हिन्दुओं को नृशंसता से कत्ल करवाया और अनेकों को दास बना दिया। अनेकानेक मंदिरों और मूर्तियों को विध्वंस किया और उसके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण किया। ऐबक साहित्य और कला का आश्रयदाता भी था। उसकी राजसभा को हसननिजामी, फरुखेमुदीर जैसे विद्वान अलंकृत करते थे। ऐबक ने भवन और मजिस्दें भी बनवाये। उसने दिल्ली में कुतुबमीनार, कुबातुल इस्लाम मजिस्द और अजमेर में ढाई दिन का झोपड़ा नामक मजिस्द बनायी। ऐबक शक्तिशाली और सुयोग्य शासक नहीं था। उसने भारत में मुस्लिम राज्य तो स्थापित किया पर प्रशासन की दृष्टिसे उसे सुव्यवस्थित और संगठित नहीं किया। ऐबक पुरुषार्थी, साहसी, धैर्यशील, कर्तव्य परायण, स्वामि-भक्त, उत्साही और प्रतिभावान पुरुष था। वह अपने इन गुणों और प्रतिभा के आधार से ही दास के निम्न पद से प्रगति करते-करते दिल्ली का सुलतान बन गया। राजवंश की स्थापना में ऐबक का वही स्थान है जो बाबर का स्थान मुगलवंश की स्थापना में है।

———

अध्याय ७

सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश सन् १२११-१२३६

इल्तुतमिश का प्रारम्भिक जीवन— इल्तुतमिश तुर्क था और तुर्कों के इलबरी शाखा के सरदार दालम खां का पुत्र था। उसके अन्य बन्धु भी थे। वह अत्यन्त सुन्दर, प्रतिभासम्पन्न और कुशाग्र बुद्धि का बालक था। अपनी इस सर्वगुणसम्पन्नता के कारण वह अपने पिता का विशेष प्रेम-भाजन बन गया था, उसे अपने पिता का विशेष प्यार प्राप्त हुआ था। इससे उसके बंधु-बांधव तथा अन्य परिवारजन उससे ईर्ष्या-द्वेष रखने लगे थे। फलतः एक दिन उन्होंने इल्तुतमिश को चुरा कर बुखारा जाने वाले व्यापारी के हाथ बेच दिया। अब इल्तुतमिश दास हो गया और यहीं से उसके दास-जीवन का सूत्रपात होता है। बुखारा आने वाले इस व्यापारी से प्रधान काजी के किसी संबंधी ने इल्तुतमिश को खरीद लिया और वह उसका दास बना रहा। इसके पश्चात् इल्तुतमिश दो बार और बिका और तब जमालुद्दीन नामक एक बड़े व्यापारी ने इसे खरीद लिया। यह व्यापारी इल्तुतमिश को बेचने के लिये गजनी में मुहम्मद गोरी के पास गया पर व्यापारी द्वारा अधिक धन मांगने के कारण गोरी ने इल्तुतमिश को नहीं खरीदा और जमालुद्दीन लौट गया। इस घटना के थोड़े समय बाद कुतुबुद्दीन ऐबक अपनी गुजरात विजय और अन्हिलवाड़ा की लूट के बाद गोरी द्वारा आमंत्रित करने पर गजनी पहुंचा था। इस समय फिर व्यापारी जमालुद्दीन भी इल्तुतमिश को बेचने के लिये गजनी आया था। मुहम्मद गोरी से अनुमति प्राप्त कर कुतुबुद्दीन ऐबक ने इल्तुतमिश को खरीद लिया और अपने साथ भारत ले आया। इस प्रकार इल्तुतमिश 'दास का दास' बन गया।

भारत में कुतुबुद्दीन के संरक्षण में इल्तुतमिश की पदोन्नति—भारत में कुतुबुद्दीन के संरक्षण और स्वामित्व में इल्तुतमिश ने सैनिक और व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त की तथा अच्छा सैनिक बन गया। कुतुबुद्दीन इल्तुतमिश के गुणों, कर्तव्यनिष्ठा और प्रतिभा से अधिक आकृष्ट और प्रभावित हुआ। इससे वह उसके साथ सद्व्यवहार करता था। फलतः इल्तुतमिश ऐबक का कृपा-भाजन बन गया। ऐबक ने इल्तुतमिश की योग्यता से प्रसन्न होकर उसे सर जानदार, अमीरे-शिकार, आदि ऊँचे पदों पर उत्तरोत्तर नियुक्त किया। जब सन् १२०५ में मुहम्मद गोरी ने खोखरों के विरुद्ध पंजाब में सैनिक अभियान प्रारम्भ किया, तब इल्तुतमिश ने गोरी को अपनी सैनिक सहायता और वीरता से अत्यधिक प्रभावित किया। फलतः गोरी ने उसकी बहुत प्रशंसा की और ऐबक को कह कर इल्तुतमिश को दासता से मुक्त करा दिया और कहा कि, "इल्तुतमिश के साथ अच्छा व्यवहार रखना, क्योंकि वह स्वयं अपना स्थान बना लेगा।" इसके पश्चात् तो

इल्तुतमिश उत्तरोत्तर अपने पद की उन्नति करता ही गया। जब कुतुबुद्दीन ने ग्वालियर दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया, तब उसने इल्तुतमिश को वहाँ का अमीर बना दिया और अपनी पुत्री का विवाह इल्तुतमिश के साथ कर उसके पद और सम्मान को अत्यधिक बढ़ा दिया।

जब ऐबक ने बदायूं पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया, तब उसने इल्तुतमिश को बदायूं का शासक नियुक्त किया। बदायूं का शासक होने पर इल्तुतमिश ने वहाँ गहढ़-वाल सामन्तों से अनेक युद्ध कर उनकी शक्ति क्षीण कर दी। इन युद्धों में उसने रण निपुणता, दृढ़ता, योग्यता और सामरिक प्रतिभा का परिचय दिया। ऐबक की मृत्यु के समय इल्तुतमिश बदायूं का शासक था। इल्तुतमिश ने अपनी सेना, सामरिक गुणों, वीरता और शौर्य से ऐबक की खूब सेवा की और साम्राज्य विस्तार और उसकी सुरक्षा में अत्यधिक योग दिया। उसने अपने स्वामी सुलतान ऐबक के प्रति सदा बड़ी स्वामिभक्ति और कर्तव्यनिष्ठा प्रदर्शित की। जीवन पर्यन्त उसने ऐबक के प्रति किसी भी प्रकार की कृतघ्नता नहीं प्रगट की। जिस प्रकार कुतुबुद्दीन ऐबक मुहम्मद गोरी के लिये था, उसी प्रकार इल्तुतमिश भी ऐबक के लिये था और ऐबक ने इल्तुतमिश के साथ अपने पुत्र के समान व्यवहार किया।

इल्तुतमिश का सुलतान होना— ऐबक के देहावसान के बाद आरामशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। पर वह निकम्मा, अयोग्य और शक्तिहीन था। लाहौर के अमीरों ने आरामशाह को ऐबक का उत्तराधिकारी सुलतान बनाया था। दिल्ली के तुर्क सरदारों को यह पसन्द नहीं आया और उन्होंने बदायूं के तत्कालीन शक्तिशाली शासक इल्तुतमिश को सुलतान का पद ग्रहण करने के लिये दिल्ली आमंत्रित किया। वे चाहते थे कि राजनीति का केन्द्र और सल्तनत की राजधानी दिल्ली रहे, लाहौर नहीं। आमंत्रण पर इल्तुतमिश तत्काल दिल्ली आ गया और उसने दिल्ली के समीप जूद के युद्ध में आरामशाह को परास्त कर बन्दी बना लिया और वह स्वयं सुलतान हो गया। इस प्रकार एक दास के निम्न पद से प्रगति करते-करते अपने गुणों और प्रतिभा तथा व्यक्तित्व के कारण इल्तुतमिश सुलतान हो गया।

इल्तुतमिश का सिंहासन पर अधिकार

या

क्या इल्तुतमिश ने दिल्ली के सिंहासन का अपहरण किया?

इल्तुतमिश के सिंहासनारूढ़ होने और सुल्तान बन जाने के अधिकार के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि इल्तुतमिश कुतुबुद्दीन ऐबक के वास्तविक उत्तराधिकारी उसके पुत्र आरामशाह से सिंहासन छीन कर स्वयं सुलतान बन गया। उसने राज्य पर बलात् अधिकार कर लिया। इस मत का प्रतिपादन डॉ. एरनाल्ड ने अपनी पुस्तक—"खलीफात" (Caliphate) में किया है और कुछ अन्य विद्वानों ने उसका समर्थन किया है। इन्होंने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं—

(१) इल्तुतमिश स्वयं "दास का दास" था। इसलिये कुतबी तथा मुइज्जी

अमीरों ने उसे सुलतान नहीं माना । स्वतन्त्र तुर्क सरदार इस दास के दास को अपना स्वामी स्वीकार करने में अपना बड़ा अपमान मानते थे ।

(२) सुलतान ऐबक के राजवंश से इल्तुतमिश का कोई भी सम्बन्ध नहीं था ।

(३) राज्यलिप्सा के कारण उसने दिल्ली के तुर्की सरदारों और अधिकारियों की सहायता और सहयोग से ऐबक के पुत्र और उत्तराधिकारी को परास्त कर, बन्दी बना, उसका वध करवा दिया और स्वयं सुलतान बन गया ।

(४) लाहौर के सामन्तों ने आरामशाह को कुतुबुद्दीन का पुत्र मान कर उसे सुलतान घोषित कर दिया और उसका राज्याभिषेक कर दिया । उन्होंने सेना के संतोष, देश की सुरक्षा व सुव्यवस्था तथा जनता में शान्ति के हित के लिये ऐसा किया था ।

(५) आरामशाह का सुलतान के सिंहासन पर पैतृक अधिकार था । इसके विपरीत इल्तुतमिश ने राज्य सिंहासन उत्तराधिकार के नियम से प्राप्त नहीं किया था ।

कुछ इतिहासकार और विद्वान् यह मानते हैं कि इल्ततमिश ने दिल्ली के सिंहासन का अपहरण नहीं किया, राज्य शासन पर शक्ति से अधिकार करने का जो आरोप उस पर लगाया गया है, वह निराधार है । इस मत के समर्थक निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(१) इल्तुतमिश दास अवश्य था । पर स्वयं गोरी ने उसके गुणों और प्रतिभा से प्रभावित होकर ऐबक से उसकी खूब प्रशंसा की, उसे दासत्व से मुक्त करवा दिया और ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित करवा दिया । इल्तुतमिश सुलतान बनने के पूर्व ही दासता की मुक्ति का प्रमाणपत्र प्राप्त कर चुका था । दासता से मुक्त होने पर वह कोई भी राजनैतिक और प्रशासकीय कार्य करने के लिये स्वतन्त्र था ।

(२) यह भी कहना मिथ्या है कि ऐबक के वंश से इल्तुतमिश का कोई सम्बन्ध नहीं था । ऐबक ने अपनी एक कन्या का विवाह इल्तुतमिश से कर दिया था और इस प्रकार ऐबक के राजवंश से इल्तुतमिश का सम्बन्ध हो गया था । कई बार दामाद भी शाह या सुलतान के उत्तराधिकारी होते हैं ।

(३) मिनहाज के मत के अनुसार ऐबक के केवल तीन पुत्रियाँ ही थीं और उसके कोई पुत्र नहीं था । मिनहाज आरामशाह को ऐबक का पुत्र नहीं मानता । उसका कथन है कि "कुतुबुद्दीन ऐबक ने शम्सुद्दीन (इल्तुतमिश) को राज्य देने का विचार किया था । वह उसे अपना पुत्र पुकारता था और उसे बदायूँ की जागीर भी दे दी थी ।" इस से स्पष्ट होता है कि ऐबक के पुत्र के अभाव में उसके दामाद इल्तुतमिश का जिसे वह पुत्रवत् मानता था उसका उत्तराधिकारी होना स्वाभाविक था ।

(४) अब्दुल्ला वस्साफ के मतानुसार आरामशाह कुतुबुद्दीन का पुत्र नहीं था । अतएव वह दिल्ली के सुलतान के सिंहासन का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता और इल्तु-तमिश ही दामाद होने से वास्तविक उत्तराधिकारी था ।

(५) विशेष परिस्थिति में लाहौर के तुर्की अमीरों ने राज्य की सुरक्षा, सुव्य-वस्था, शान्ति और सेना के सन्तोष के लिये आरामशाह को कुतुबुद्दीन के बाद शीघ्र ही सुलतान घोषित कर दिया और उसका राज्याभिषेक कर दिया । उन्होंने इस तथ्य की

ओर किंचित् ध्यान ही नहीं दिया कि आरामशाह का पैतृक अधिकार सल्तनत के सिंहासन पर है भी या नहीं। उन्होंने आरामशाह जैसे निकम्मे व्यक्ति को शीघ्र ही सुलतान बना दिया। इसके तीन कारण थे। प्रथम, वे नहीं चाहते थे कि कुतुबुद्दीन की आकस्मिक मृत्यु के बाद वास्तविक उत्तराधिकारी के अभाव में नवीन मुस्लिम राज्य की स्थिति डांवाडोल हो जाय, राज्य में अशांति और विद्रोह फैल जाय। द्वितीय, लाहौर के तुर्की अमीर, दिल्ली के तुर्की अमीरों से ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य रखते थे। वे नहीं चाहते थे कि कुतुबुद्दीन का उत्तराधिकारी नवीन सुलतान दिल्ली के तुर्की अमीरों द्वारा प्रतिष्ठित हो, और वह उनके हाथ की कठपुतली हो जाय। तृतीय, कुतुबुद्दीन अपन शासन के चार वर्षों में अधिकांश समय तक दिल्ली की अपेक्षा लाहौर में ही रहा। वहाँ सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा और सामरिक कार्यों में ही उसका समय व्यतीत हुआ। अतएव इससे दिल्ली की अपेक्षा लाहौर का महत्व अधिक बढ़ गया था। इससे लाहौर के तुर्की सरदार लाहौर को ही राजधानी बनाना चाहते थे और नये सुलतान को भी अपने यहाँ रखना चाहते थे। इन्हीं लाहौर के अमीरों ने गोरी के देहावसान के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक को आमंत्रित किया था और उसे भी सुलतान बना दिया था। क्योंकि खोखरों और हिन्दुओं से लाहौर को खतरा था और उस समय लाहौर में ऐबक के अतिरिक्त कोई अन्य प्रभावशाली व्यक्ति भी नहीं था। आरामशाह के समय भी उन्होंने ऐसा ही किया।

इसके विपरीत दिल्ली के अमीर दिल्ली के महत्व को किसी भी प्रकार कम नहीं करना चाहते थे। वे अपनी ही पसन्द का सुलतान चाहते थे। इस प्रकार सामन्तों और सरदारों के पारस्परिक वैमनस्य और विशिष्ट राजनैतिक परिस्थितियों के कारण आरामशाह सुलतान बन गया। राज-सिंहासन पर उसका अधिकार नहीं था।

(६) आरामशाह अयोग्य शक्तिहीन और प्रभावक्षीण होने से राज्य में शीघ्र ही अराजकता व्याप्त हो गई। सिन्ध में कुबाचा जो ऐबक की अधीनता स्वीकार कर चुका था, शीघ्र ही स्वतन्त्र हो गया और बंगाल में भी अलीमर्दान खिलजी स्वतन्त्र हो गया। ऐसी राजनैतिक दशा का लाभ उठा कर लाहौर के अमीरों का प्रतिरोध करने के लिये दिल्ली के अमीरों ने इल्तुतमिश को सुलतान बनने के लिये आमंत्रित किया। सुलतान बन जाने के बाद इल्तुतमिश ने राज्य में व्याप्त अराजकता का नाश किया, विद्रोहों का दमन किया और दिल्ली से स्वतन्त्र होने वाले शासकों को पुनः अपने अधीन कर लिया। राजनैतिक परिस्थितियों से और उसकी सफलताओं से भी इल्तुतमिश का सुलतान हो जाना समीचीन और न्यायसंगत प्रतीत होता है।

(७) आरामशाह को प्रशासन युद्ध आदि विषयों का कोई अधिक ज्ञान नहीं था, जब कि इल्तुतमिश इनमें विशेष दक्ष था। ऐबक की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली सल्तनत जिस डाँवाडोल स्थिति में आ गई थी, उसमें तुर्की अमीरों और व्यापारियों के लिये तथा उनकी सल्तनत के हित में इल्तुतमिश जैसे अनुभवी, वीर, योद्धा, कुशल शासक और साहसी व्यक्ति को सुलतान निर्वाचित कर देने से बढ़कर कोई अन्य उचित मार्ग नहीं था। मुसलमानों के नियमानुसार राज्य सिंहासन और राज्य की प्रभुसत्ता उसी व्यक्ति को उपलब्ध होना चाहिये जो उनके लिये सर्वाधिक ढंग से उपयुक्त और योग्य

हो और इल्तुतमिश इस समय अपनी योग्यता और उपयोगिता में किसी से बिलकुल कम नहीं था।

(८) इल्तुतमिश को उसकी योग्यता, अनुभव और उपयोगिता के कारण दिल्ली के अमीरों और सौदागरों ने सुलतान बनने के लिये आमंत्रित किया था और उसने फिर आरामशाह को युद्ध में भी परास्त कर दिया था। सामन्तों द्वारा सुलतान पद के लिये उसका निर्वाचन तथा युद्ध में उसकी विजय—दोनों ही उसे सुलतान के सिंहासन का अधिकारी बना देते हैं। वह सिंहासन का अपहरणकर्ता नहीं हो सकता।

(९) कुछ विद्वानों का मत है कि कुतुबुद्दीन ऐबक वास्तव में दिल्ली का सुलतान नहीं बन पाया था। क्योंकि न तो ऐबक ने अपने नाम के सिक्के ढलवाकर प्रसारित किये और न मसजिदों में अपने नाम का खुतबा ही पढ़वाया था। किसी सुलतान के नाम की मुद्राएँ और उसके नाम का खुतबा उसकी स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता प्रगट करते हैं। कुतुबुद्दीन के नाम की असंदिग्ध मुद्राएँ अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं और मिनहाज-ऐ-सिराज को छोड़कर किसी ने भी यह नहीं लिखा कि कुतुबुद्दीन ने अपने नाम की मुद्राएँ प्रसारित कीं और खुतबा पढ़वाया। विद्वानों का मत है कि मिनहाज-ऐ-सिराज ने केवल परम्परा के कारण यह लिख दिया कि ऐबक के नाम के सिक्के ढाले जाने लगे और खुतबा पढ़ा जाने लगा। डॉ० ए०बी०एम० हबीबुल्ला का भी मत है कि ऐबक ने सिक्कों और खुतबों में अपना नाम नहीं रखा। इसके अतिरिक्त दिल्ली के पार्श्ववर्ती क्षेत्र में ही कुछ ऐसे प्रशासक थे जो ऐबक की प्रभुसत्ता स्वीकार नहीं करते थे। दिल्ली के समीप ही बयाना में मुस्लिम सेनानायक बहाउद्दीन ऐबक को अपना स्वामी और सुलतान मानने को तैयार नहीं था, इब्नबतूता ने भी अपने ग्रंथ में ऐबक को दिल्ली का प्रथम स्वतन्त्र सुलतान स्वीकार नहीं किया है। अफीफ ने भी अपने ग्रन्थ "तारीख-ऐ-फिरोजशाही" में कुतुबुद्दीन ऐबक का नाम दिल्ली के सुलतानों की सूची में नहीं लिखा है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि ऐबक पूर्णरूपेण स्वतन्त्र सुलतान नहीं बन सका था और इसीलिये कोई आश्चर्य नहीं कि उसका नाम सिक्कों और खुतबे में नहीं हो।

यदि कुतुबुद्दीन स्वतन्त्र सुलतान नहीं था, तब उसके उत्तराधिकारी का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। ऐबक की मृत्यु के बाद इल्तुतमिश को भी दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने का उतना ही अधिकार था जितना कि आरामशाह को था। दोनों का ही पैतृक अधिकार दिल्ली के सिंहासन पर व दिल्ली की प्रभुसत्ता पर नहीं था। पर इल्तुतमिश ने अपने निर्वाचन से और आरामशाह पर विजय प्राप्त कर इस सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इसीलिये कतिपय इतिहासकारों का मत है कि दिल्ली सल्तनत की सार्वभौम मुस्लिम सत्ता इल्तुतमिश से प्रारम्भ होती है।

(१०) यदि गहन विश्लेषण और निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो इल्तुतमिश के लिये अपहरण करने के लिये कुछ था ही नहीं। न तो कुतुबुद्दीन ऐबक स्वतन्त्र शक्तिशाली सुलतान ही था और न भारत में अब तक तुर्कों का दृढ़ केन्द्रीय सुसंगठित राज्य ही स्थापित हो पाया था। जिस राज्य को मुहम्मद गोरी और उसके तुर्क सेनानायकों ने जीता था, वह उसके देहावसान के बाद चार विभिन्न प्रांतीय राज्यों में विभक्त हो गया था। इनके नाम थे—लाहौर, मुलतान व उच्छ, बदायूं और लखनौती के राज्य।

इन राज्यों के स्वतन्त्र शासक थे। दिल्ली के सुलतान की अपनी कोई सार्वभौम सत्ता थी ही नहीं। ऐसी दशा में इल्तुतमिश के लिये अपहरण करने, अपने अधिकार में करने के लिये कुछ था ही नहीं। ऐसी परिस्थिति में उस पर अपहर्ता का दोष मढ़ना निराधार और भ्रममूलक है।

इल्तुतमिश की कठिनाइयाँ और समस्याएं

इल्तुतमिश के सुलतान बनते ही उसे अनेक कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा। उस पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। दिल्ली का राजसिंहासन उसके लिये पुष्पों की सेज नहीं था। उसके लिये निष्कंटक राज्य असम्भव था। उसे जिन कण्टकों, प्रतिद्वन्दियों, कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(१) **स्वतन्त्र तुर्की सामन्त**— दिल्ली और लाहौर में अनेक प्रभावशील, शक्तिशाली और स्वतन्त्र तुर्की सरदार थे। इल्तुतमिश के सुलतान बनने के पूर्व इनमें से अधिकांश तुर्की या कुतुबी अमीर और सरदार इल्तुतमिश से अधिक ऊंचे और सम्माननीय पदों पर आसीन थे। जब वह स्वयं बदायूं का शासक था, तब उसका पद इनमें से अनेकों के पदों की अपेक्षा कम महत्वशाली था। ये अमीर और सरदार इल्तुतमिश को दास का दास मानते थे और उसके अधीन रहने में और उसे अपना स्वामी मानने में वे अपना अपमान समझते थे। दिल्ली और उसके पार्श्ववर्ती मुस्लिम सरदार इल्तुतमिश की प्रभुता स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे। दिल्ली का प्रभावशाली तुर्क सरदार अली-इस्माइल जिसने इल्तुतमिश को दिल्ली आमंत्रित किया था। स्वयं भी उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार करने को उद्यत नहीं था। ऐबक के तुर्की अंगरक्षकों का सरदार तथा अनेक कुतुबी और मुइज्जी सरदार दिल्ली के समीप इल्तुतमिश के विरुद्ध सेना एकत्रित करने में लगे थे।

(२) **सेना**—ऐबक की मृत्यु के समय सेना दो भागों में विभक्त थी। जब इल्तुतमिश ने दिल्ली में शक्ति संभाली तब भी सेना के दो भाग थे। सीमान्त की सुरक्षा के लिये सेना का एक भाग लाहोर में था और दूसरा अंग दिल्ली में था जो दोआब की सुरक्षा के लिये नियुक्त किया गया था। दिल्ली की सेना अली इस्माइल के अधिकार में थी। यह अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्ति था और तुर्की सरदारों का प्रधान ही नहीं, अपितु दिल्ली का प्रधान काजी भी था। इसी इस्माइल के निमंत्रण पर इल्तुतमिश बदायूं से दिल्ली आया था। इस्माइल और उसकी सेना ने इल्तुतमिश का साथ दिया था। इस सेना का और लाहौर की सेना का उसे विश्वास प्राप्त करना था। सेना के दोनों अंगों का उसे प्रिय भाजन बनना था। सेना की स्थिति भी उसे सुदृढ़ करना थी। अपने प्रतिद्वन्दियों के दमन और राज्य में शांति व्यवस्था के लिये एक सुदृढ़ और सुसंगठित सेना अत्यंत ही आवश्यक थी।

(३) **साम्राज्य का विभाजन**-कुतुबुद्दीन की आकस्मिक मृत्यु से और उस के अयोग्य, निकम्मे, प्रभावहीन और क्षीणशक्ति वाले उत्तराधिकारी आरामशाह के होने से साम्राज्य और प्रशासन में शिथिलता आ गयी, नये मुस्लिम राज्य की जड़ें हिल

उठीं। स्वतंत्र शक्तिशाली अमीरों ने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और साम्राज्य चार भागों में विभक्त हो गया। प्रथम, सिंध में मुलतान व उच्छ का स्वतंत्र शासक कुबैचा, द्वितीय, लाहौर में तुर्की सरदार और उनका प्रतिनिधि आरामशाह तृतीय, दिल्ली में अली इस्माइल और उसके साथी तुर्की अमीर, सरदार तथा उनका प्रतिनिधि बदायूं का शासक इल्तुतमिश और चतुर्थ, बंगाल और बिहार में खिलजी सरदार और शासक अलीमर्दान जिसकी राजधानी लखनौती थी। इल्तुतमिशके लिये इन सब की बढ़ती हुई शक्ति को कम करके साम्राज्य को अपने अधीन कर एक सूत्र में बांधना था।

(४) **पश्चिमोत्तर सीमा सुरक्षा की समस्या**—इस समय दिल्ली साम्राज्य के पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा की समस्या भी बड़ी जटिल हो गयी थी। क्योंकि इस समय मध्य एशिया में तुर्क और मंगोल राज्यों में परस्पर संघर्ष चल रहा था और अनेक मंगोल सामन्त और सेनानायक अपना प्रदेश छोड़कर अन्य प्रदेशों को नवीन राज्य स्थापित करने की भावना से जा रहे थे। वे अफगानिस्तान और भारत की ओर आक्रमण करने की दृष्टि से बढ़ रहे थे। इसके अतिरिक्त पंजाब के खोखर भी विद्रोही प्रवृत्ति के हो रहे थे और शांति व व्यवस्था भंग कर रहे थे।

(५) **गजनी का ताजुद्दीन यल्दौज**—यह मुहम्मद गोरी का एक प्रबल सेनानायक था। गोरी की मृत्यु के बाद वह अपने आप को उसका उत्तराधिकारी मानता था और इसी नाते से उसने गजनी पर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी और गजनी के भारतीय राज्य, मुल्तान, उच्छ, पंजाब और दिल्ली पर भी उसने अपना दावा प्रस्तुत किया। वह अपने स्वयं को मुहम्मद गोरीके समस्त साम्राज्य का सुलतान समझता था। और उस पर अपना नियंत्रण रखना चाहता था। वह इल्तुतमिश को अपने अधीन प्रशासक समझता था और इसी उद्देश्य से उसने इल्तुतमिश के पास, अपनी प्रभु-सत्ता का प्रदर्शन करने के लिये, कुछ राजचिन्ह और राजकीय सम्मान की वेश-भूषा इल्तुतमिश को भेजी थी। इल्तुतमिश ने अपनी विषम परिस्थितियों और भयंकर कठिनाइयों से विवश होकर इन्हें स्वीकार कर लिया। इल्तुतमिश मन में इसे अपना अपमान समझता था और यल्दौज से स्वतंत्र होने के अवसर की ताक में था।

(६) **सिंध का नासिरुद्दीन कुबैचा**-इसने सिंध में मुल्तान और उच्छ पर पूर्ण अधिकार करके अपने आपको स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया था। अब वह लाहौर और पंजाब पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। उसने पंजाब का बहुत बड़ा भाग अपने अधिकार में दबा लिया था और लाहौर, भटिंडा, सरसुती, कुहराम, आदि प्रसिद्ध दुर्गों पर अपनी चौकियां स्थापित कर ली थीं। वह थोड़ा और अधिक शक्तिशाली बनने और दिल्ली पर अपना प्रभुत्व स्थापित करन का महत्वाकांक्षी था। इस प्रकार कुबैचा इल्तुतमिश का उग्र प्रतिद्वंदी था।

(७) **खिलजी मलिक और अलीमर्दानखां**-बनारस के पूर्व की ओर बिहार में खिलजी सरदारों और उनके प्रधान खिलजी मलिक ने अपनी शक्ति और सत्ता में वृद्धि कर ली थी तथा खिलजी मलिक ने अपना स्वतंत्र शासन स्थापित कर लिया था। इसी प्रकार बंगाल में भी अलीमर्दान ने अलाउद्दीन का विरुद धारण करके अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी। वह वहां निर्दयता और निरंकुशता से शासन करता था।

(८) **राजपूत शासक और नरेश**— अपनी स्वतंत्रता और राजसत्ता के छीने जाने तथा शक्ति के बल पर तुर्की साम्राज्य की स्थापना को राजपूत नरेश व हिन्दू कभी भी चुपचाप सहन न कर सके । उन्हें जब कभी तुर्की सल्तनत की दुर्बलता और शिथिलता का आभास होता, वे उसकी अधीनता का चोला उतार फेंकने का पूर्ण प्रयत्न सतत करते रहते थे । जिन राजपूत हिन्दू नरेशों को मुहम्मद गोरी तथा कुतुबुद्दीन ऐबक ने नत-मस्तक कर दिया था, वे फिर ऐबक की आकस्मिक मृत्यु और तुर्की साम्राज्य की दुर्बलता का अवसर देखकर अपनी खोयी हुई स्वतंत्रता और राज्य को पुनः प्राप्त करने के अवसर की ताक में बैठे थे । जालौन तथा रणथंभोर के शासक फिर स्वतंत्र हो गये थे । इल्तुतमिश के बदायूं छोड़ते ही वहां फिर गहढ़वाल राजपूतों की प्रतिक्रिया प्रारंभ हो गयी थी और उन्होंने लूट-पाट शुरू कर दी थी तथा उनके आक्रमणों का वेग बढ़ गया था । राजपूतों के प्रसिद्ध दुर्ग कालिंजर और रणथंभोर तो ऐबक की मृत्यु के पहिले ही स्वतंत्र हो गये थे ।

(९) **अस्तव्यस्त प्रशासन**-ऐबक की दिल्ली सल्तनत नवनिर्मित थी,उसका प्रशासन का ढांचा निर्दिष्ट नहीं हुआ था । अतएव जब इल्तुतमिश सुलतान बना तब साम्राज्य में शासकीय अस्त-व्यस्तता और शिथिलता थी । दृढ़ प्रशासकीय संगठन का अभाव था । मजबूत केन्द्रीय सत्ता नहीं थी ।

राज्य में इस्लाम धर्म की बाहुल्यता और शक्तिशाली सामन्तों की प्रधानता थी । प्रशासन में सामन्तवाद और धर्म राज्य के शक्तिस्तंभ थे । इससे सुलतान की शक्ति नगण्य थी । इल्तुतमिश को राजसत्ता के नवीन सिद्धान्तों की स्थापना करनी थी । उसे विशुद्ध मुस्लिम प्रशासन प्रणाली प्रतिष्ठित करना थी और सामन्तों की शक्ति का दमन तथा सुलतान की सत्ता और शक्ति में वृद्धि करना था एवं दृढ़ केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की नींव रखना था ।

इल्तुतमिश द्वारा कठिनाइयों और समस्याओं का सामना और उन पर विजय-सुलतान बन जाने पर इल्तुतमिश ने अपनी कुशलता, योग्यता, प्रतिभा तथा राजनैतिक दूरदर्शिता से अपनी विभिन्न समस्या को भी निम्नलिखित रूप से हल कर लिया ।

(१) **कुतुबी और मुइज्जी सरदारों और अमीरों का दमन**—जब इल्तुतमिश सुलतान बना तब कुतुबुद्दीन ऐबक के तुर्की अंग-रक्षकों के प्रधान तथा अनेक कुतुबी और मुइज्जी सरदार और अमीर इल्तुतमिश को अपना सुलतान मानने और उसके सामने मस्तक झुकाने को तैयार नहीं थे । ये इल्तुतमिश से लोहा लेने के लिये, जैसा ऊपर लिखा है, दिल्ली के समीप अपनी सेनाएं एकत्रित कर रहे थे। इल्तुतमिश ने इनका सामना किया और इनकी शक्ति तथा विद्रोह का दमन किया । इन विद्रोही सामन्तों के नेता को उसने सेना की शक्ति से पूरी तरह परास्त कर दिया और अन्य अमीरों की बढ़ती हुई शक्ति का दमन किया । इन विद्रोही अमीरों का दमन करने के कुछ महिनों पश्चात् उसने बदायूं, अवध, वाराणसी तथा तराई क्षेत्र के तुर्क सामन्तों और हिन्दू सरदारों तथा छोटे-छोटे राजाओं को परास्त किया और उन्हें अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिये बाध्य किया । इस प्रकार उसने अपनी राजधानी दिल्ली तथा उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रों के विद्रोही सामन्तों का दमन कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली ।

(२) **चालीस तुर्की अमीरों के दल का संगठन**-इल्तुतमिश ने सामन्तों का एक नवीन दल संगठित किया। यह पूर्णतया इल्तुतमिश के अधीन था। इसे "चालीस दासों का दल" कहा जाता है। इन चालीस अमीरों और सामन्तों को उसने राज्य में प्रशासन के ऊँचे पदों पर नियुक्त किया और अवशेष कुतुबी और मुइज्जी अमीरों को पदच्युत कर दिया गया। इस प्रकार सामन्तों का नवीन दल निर्मित करने और उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त करने के निम्नलिखित कारण थे—

(१) गोरी और ऐबक के समय के अमीर इल्तुतमिश की श्रेष्ठता स्वीकार करने को उद्यत नहीं थे। वे इल्तुतमिश के प्रति पूर्ण स्वामिभक्त भी नहीं थे।

(२) राज्य की आन्तरिक सुरक्षा, व्यवस्था और प्रगति के लिये योग्य, स्वामिभक्त सामन्तों का होना अत्यंत आवश्यक था। उनके महत्वपूर्ण सहयोग और सहायता से, उनके एकमत होकर राज्य की सेवा करने से, राज्य के शत्रुओं और बाहरी आक्रमणकारियों को सरलता से परास्त किया जा सकता था तथा आन्तरिक शासन सुव्यवस्थित किया जा सकता था। ऐसे सामन्त राज्य के स्तंभ होते थे।

(३) प्रशासन में अधीनस्थ कर्मचारियों और अधिकारियों की पूर्णस्वामिभक्ति और असीम सहयोग व सद्भावना प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक था कि सैनिक और असैनिक सभी प्रकार के पदों पर ऐसे प्रतिभावान और सुयोग्य व्यक्ति रखे जांय, जिनका अस्तित्व और पदोन्नति इल्तुतमिश की कृपा से हुई हो।

(४) यदि इल्तुतमिश द्वारा ही निर्मित सामन्त ऊंचे पदों पर आसीन होकर शक्तिशाली हो गये तब अन्य अवशिष्ट कुतुबी और मुइज्जी अमीरों पर आतंक छा जायगा, वे उसके अधीन हो जायेंगे और उन्हें अपने जीवन का मद भी बढ़ जायगा।

इसीलिये इल्तुतमिश ने अमीरों का एक नवीन दल संगठित किया। इसे "चरगान" या चालीस कहा जाता था।

(३) **ताजुद्दीन यल्दौज का दमन**-इल्तुतमिश का प्रथम और प्रबल प्रतिद्वन्दी ताजुद्दीन यल्दौज था। वह उसका भयानक शत्रु था। गजनी पर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेने के बाद यल्दौज ने उत्तरी भारत के आन्तरिक प्रदेश पर आक्रमण प्रारंभ कर दिये और पंजाब के अधिकांश भू-भाग को अपने अधिकार में कर लिया। वह दिल्ली पर हमला कर उसे हथियाना चाहता था। इस समय इल्तुतमिश की अनेक प्रारंभिक कठिनाइयां थीं। इसलिये आरंभ में उसने कूटनीति और दूरदर्शिता से काम लिया। उसने यल्दौज द्वारा भेजे हुए छत्र, दंड आदि राजकीय चिन्ह स्वीकार कर लिये और यल्दौज की प्रभुता ग्रहणकर उससे समझौता कर लिया। इस प्रकार यल्दौज के तात्कालिक संकट को दूर करके उसने आरामशाह को परास्त करने और अन्य सबल विद्रोही सामन्तों की शक्ति को कुचलने का समय निकाल लिया। इस प्रकार इल्तुतमिश ने प्रारंभ में सुरक्षात्मक नीति अपनाई।

इसी बीच ख्वारिज्म के शाह ने गजनी पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। इससे पराजित यल्दौज को बाध्य होकर गजनी छोड़ना पड़ा और भारत की ओर पलायन करना पड़ा। भारत में पंजाब और सिंध में नासिरुद्दीन कुबैचा का अधिकार था। यल्दौज ने पंजाब में आकर कुबैचा को परास्त कर दिया और पंजाब और लाहौर को अपने अधीन कर लिया।

दिल्ली की सल्तनत के लिये अब यल्दौज भयंकर खतरा हो गया क्योंकि वह दिल्ली पर किसी भी समय आक्रमण कर सकता था। यही नहीं, यल्दौज ने लाहौर आकर इल्तुतमिश पर फिर अपना आधिपत्य बतलाया और दिल्ली की तरफ प्रस्थान किया। इल्तुतमिश भी यल्दौज से निपटना चाहता था। इसके अतिरिक्त याल्दौज के राज्य चिन्ह फेंककर उससे स्वतन्त्र होने के लिये भी इल्तुतमिश उद्यत था। उसने अपनी शक्ति अब दृढ़ कर ली थी। फलतः सन् १२१५ में तत्काल इल्तुतमिश ने विशाल सेना लेकर लाहौर की ओर प्रस्थान किया और तराइन के रणक्षेत्र में यल्दौज को परास्त कर दिया और उसे बन्दी बना लिया। दिल्ली सुलतान के सिंहासन का दावा करने वाले यल्दौज को फटे-पुराने, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहिनाकर इल्तुतमिश ने, बन्दी के रूप में अपमानपूर्वक दिल्ली के राजमार्गों पर घुमाया और बाद में उसे कैदी के रूप में बदायूं के दुर्ग में भेज दिया जहां कुछ समय पश्चात् उसका वध कर दिया गया। इस प्रकार इल्तुतमिश ने एक शक्तिशाली शत्रु से उसका अंत कर मुक्ति पाई।

यल्दौज को परास्त कर इल्तुतमिश ने ऐबक के समान गजनी पर आक्रमण करना उचित नहीं समझा। क्योंकि वह इस तथ्य से अवगत था कि गजनी पर आक्रमण करने से ख्वारिज्म के शाह से युद्ध करना होगा और उसमें परास्त होने पर उसकी शक्ति विध्वंस हो जायगी। इसलिये उसने गजनीसे अपना ध्यान हटाकर अपने भारतीय राज्य को सुदृढ़ कर उसमें ही उसने संतोष किया। गजनी राज्य के प्रति उसने उदासीनता की तटस्थ नीति अपनाई।

(४) **नासिरुद्दीन कुबैचा को अधीन करना**-यल्दौज की पराजय से लाहौर पर इल्तुतमिश का अधिकार हो गया और इस विजयसे प्रोत्साहित होकर इल्तुतमिश ने कुबैचा पर आक्रमण कर उसे परास्त कर सन् १२१७ में उसे अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य किया।

(५) **ख्वारिज्म के शाह तथा चंगेज खां मंगोल के खतरे का सामना**-यल्दौज और नासिरुद्दीन कुबैचा से इल्तुतमिश निपट ही पाया था कि उसे एक नवीन भयंकर संकट का सामना करना पड़ा। इस समय मध्य एशिया में मंगोल लोगों ने अपने आक्रमणों और विजयों से बड़ा भयंकर तूफान मचा रखा था। उनके नेता तिमुंजिन उर्फ चंगेजखां ने अत्यधिक शक्ति संचय करके मध्य एशिया के अनेक देशों को रौंद डाला था। वह बड़ा बर्बर और निर्दयी था। जहां भी वह गया, संस्कृति और सभ्यता को विध्वंस कर दिया और असंख्य लोगों को कत्ल कर दिया। इस समय ख्वारिज्म का शाह योग्य और साहसी सुलतान मुहम्मद था। उसने गजनी पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। इस सुलतान मुहम्मद ने चंगेजखां के एक राजदूत का अपमान कर दिया था। चंगेजखां ने इसे अपना स्वयं का अपमान समझकर ख्वारिज्म पर आक्रमण कर दिया। सुलमान मुहम्मद परास्त हो गया और ख्वारिज्म व गजनी छोड़कर इधर उधर भटकता फिरा और चंगेजखां की सेना से युद्ध करता रहा। तीन वर्ष तक युद्ध करते रहने से उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी जलालुद्दीन मंगवरनी ने भी चंगेजखां से युद्ध जारी रखा। पर चगेजखां ने उसे परास्त कर दिया और भारत की ओर खदेड़ दिया। जलालुद्दीन ने भारत में सेना सहित आकर सिंध के ऊपरी प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया और नासिरु-

द्दीन कुबैचा और उसके हाकिमों को मार भगाया। कुबैचा को मुलतान के दुर्ग में शरण लेने के लिये बाध्य होना पड़ा। अब जलालुद्दीन ने खोखरों की सहायता से पंजाब पर भी अधिकार कर लिया और लाहौर की ओर आगे बढ़ा। वहां पहुँचकर उसने इल्तुतमिश के पास अपना एक राजदूत भेजकर उससे प्रार्थना की कि वह उसे अपने राज्य में शरण दे और चंगेजखां से युद्ध करने के लिये उसे सैनिक सहायता भी दे। क्योंकि चंगेजखां उसका पीछा कर रहा था। इसी बीच सन् १२२० में चंगेज खां भी जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा तक आ पहुंचा।

इल्ततुमिश इस भयंकर खतरे को समझ गया। वह यह भलिभाति जान गया था कि यदि जलालुद्दीन शरण के लिये दिल्ली आ जाय, तो उसकी उपस्थिति से दिल्ली के अमीर और सरदार इल्तुतमिश के विरुद्ध विद्रोह करने का प्रयास करेंगे। इल्तुतमिश यह भी समझता था कि जलालुद्दीन के वंश और व्यक्तित्व के प्रभाव से भारत में पंजाब और दिल्ली में उसका राज्य जम सकता था और ऐसी दशा में इल्तुतमिश की स्थिति, राज्य और शक्ति खटाई में पड़ सकती थी। इसके अतिरिक्त जलालुद्दीन को दिल्ली में रहते देख चंगेजखां भी इल्तुतमिश और दिल्ली पर आक्रमण कर देगा और समस्त पंजाब, सिंध तथा दिल्ली प्रदेश को रौंद डालेगा, बर्बरता, नृशंसता और कत्लेआम का नग्न नृत्य होगा। इल्तुतमिश को भी चंगेजखां का युद्ध में सामना करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा और यह बहुत कुछ संभव है कि अन्य मुस्लिम राज्यों के समान उसका दिल्ली का राज्य भी मंगोल नष्ट-भ्रष्ट कर दें।

ऐसे संकट काल में इल्तुतमिश ने दूरदर्शिता और कूटनीति से कार्य किया। उसने जलालुद्दीन के राजदूत को मरवा दिया और उसे नम्रता पूर्वक यह संदेश भेज दिया कि भारतवर्ष की जलवायु उसके अनुकूल नहीं होगी। इसलिये दिल्ली राज्य में शरण लेना और रहना उसके लिये अनुपयुक्त होगा। अप्रत्यक्ष रूप से उसने जलालुद्दीन को पंजाब से लौट जाने को कहा। निराश होकर जलालुद्दीन ने अपनी अवशिष्ट सेना से चंगेजखां का युद्ध में सामना किया, पर परास्त हुआ और युद्ध के समय ही सिंधुनदी पार कर भारतसे फारस चला गया। चंगेजखां भी अपने शत्रु जलालुद्दीनके पलायन करने पर सीमान्त क्षेत्र से लौट गया और भारत की ओर नहीं आया। चंगेजखां के भारत से लौट जाने का दूसरा कारण यह भी था की मंगोलों की सेना और चंगेजखां को भारत क तत्कालीन उष्ण जलदायु अनुपयुक्त हुआ। उन्होंने विजय के लिये भारत में आगे बढ़ने और भारत में स्थायी राज्य स्थापित करने और निवास करने का विचार त्याग दिया इस प्रकार इल्तुतमिश ने अपनी दूरदर्शिता, कूटनीति और साहस से भारत को मंगोलों की नृशंसता, कत्लेआम, लूट-खसोटसे बचा लिया। एक भयंकर संकट टल गया और इल्तुतमिश एक भयानक शत्रु से बच गया अन्यथा दिल्ली सल्तनन का अन्त चंगेजखां के हाथ से हो जाता।

(६) **कुबैचा का अंत**— जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि कुबैचा, जो मुहम्मद गोरी का एक दास था और जो अपने स्वामी का प्रिय-पात्र होने के कारण पदोन्नति और प्रगति करते करते सिंध और मुलतान का स्वतन्त्र शासक बन गया था, इल्तुतमिश का बड़ा प्रतिद्वंदी था। सन् १२१७ में इल्तुतमिश द्वारा लाहोर विजय करने और

कुबैचा को परास्त कर देने से, कुबैचा ने विवश होकर इल्तुतमिश की अधीनता स्वीकार कर ली थी। परन्तु वास्तव में वह इल्तुतमिश को अपना सुलतान स्वीकार नहीं करना चाहता था। ख्वारिजम के शाह जलालुद्दीन के भारत में पदार्पण करने और चंगेजखां के द्वारा उसका पीछा करते हुए भारत के सीमान्त क्षेत्र में आ जाने से नया संकट उत्पन्न हो गया था। अतएव इल्तुतमिश कुबैचा की शक्ति का दमन करने के प्रयत्न न कर सका। वह कुबैचा को पूर्णतया परास्त नहीं कर सका। ख्वारिजम के शाह जलालुद्दीन के सेना सहित पंजाब और सीमान्त क्षेत्र में आने का एक परिणाम यह भी हुआ कि कुबैचा की शक्ति और राज्य सिंध में सिकुड़ कर रह गये। तीन चार वर्ष की अवधि में जब तक जलालुद्दीन भारत में रहा, उसने खोखरों की सहायता से कुबैचा के राज्य को लूटना और नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था। मंगोल सेना ने भी मुलतान पर आक्रमण करके उसको क्षतिग्रस्त कर दिया था। इससे कुबैचा की शक्ति और प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। इसके अतिरिक्त अनेक खिलजी तुर्क जो सीमान्त क्षेत्र में आकर बस गये थे, कुबैचा को कई प्रकार से तग कर रहे थे। इन सब कारणों से कुबैचा शक्तिहीन होगया। इल्तुतमिश ने इस अवसर से लाभ उठाया। सन् १२२४ में जब शाह जलालुद्दीन भारत से लौट गया, और मंगोल संकट टल गया, तब इल्तुतमिश ने शीघ्र ही सेना भेजकर कुबैचा के राज्य के दक्षिणी-पूर्वी भाग को जो पहिले दिल्ली राज्य का अंग था जीत लिया तथा इस प्रदेश के भटिंडा, कुहराम और सुरसुती दुर्गों व नगरों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। सन् १२२७ में उसने लाहोर पर पुनः अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद सन् १२२८ में कुबैचा पर आक्रमण करने और उसे घेरने के लिये इल्तुतमिश ने उस पर सेना सहित दो ओर से आक्रमण किये; एक ओर लाहोर से मुलतान पर आक्रमण करने के लिये नासिरुद्दीन ऐतिगीन के सेनापतित्व में एक सेना भेजी और दूसरी ओर दिल्ली से उच्छ पर आक्रमण करने के लिये कमालुद्दीन मुहम्मद जुनैदी के नेतृत्व में सेना भेजी। उच्छ जाने वाली सेना के साथ स्वयं सुल्तान भी था। इस प्रकार के दो ओर की आक्रमण की सूचना से कुबैचा घबरा गया और उसने उच्छ छोड़कर अपने राजकोष को लेकर भाग कर सिंध में मक्कर के किले में शरण ली और वहीं अपनी सेना से किलेबंदी की। कुबैचा ने उच्छ की रक्षा का भार अपने मंत्री पर डाल दिया। इल्तुतमिश ने उसे परास्त कर मुलतान और उच्छ को अपने अधिकार में कर लिया और फिर जुनैदी के नेतृत्व में अपनी सेना भेजकर मक्कर के दुर्ग का दृढ़ घेरा डाल दिया। यह घेरा दो मास सत्ताइस दिन तक रहा। इस घेरे से कुबैचा घबरा गया और उसने अपने पुत्र अलाउद्दीन मसऊद बहरामशाह को भेजकर इल्तुतमिश से संधि का प्रस्ताव किया। परन्तु इल्तुतमिश ने इसे अस्वीकृत कर दिया और कुबैचा को सेना सहित आत्मसमर्पण करने के आदेश दिये। इस संकटकालीन स्थिति से घबरा कर कुबैचा के सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया और कुबैचा अपने राजकोष को लेकर नाव द्वारा सिंध नदी को पार कर भागने लगा। परन्तु नाव के डूब जाने से वह सिंधु नदी में डूब गया और मर गया। इस प्रकार इल्तुतमिश ने उत्तर-पश्चिम के अन्तिम खतरे से मुक्ति पाई और सिंध तथा मुलतान पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। हसननिजामी के कथनानुसार इस विजय से इस क्षेत्र के बारह विशाल दुर्गों पर इल्तु-

तमिश का अधिकार हो गया तथा सीस्तान व लक्की दर्रे से लेकर समुद्रतट के प्रदेश तक उसके साम्राज्य की सीमाएं फैल गयीं। परन्तु यह कथन अतिरंजित है। अन्य इतिहासकारों ने इस क्षेत्र का कुछ भाग गजनी राज्य के अन्तर्गत बतलाया है। फिर भी, कुबैचा के अन्त और इल्तुतमिश की विजय से दिल्ली सल्तनत की सीमायें पश्चिमोत्तर क्षेत्र में खूब फैल गयीं।

(७) **गयासुद्दीन (हुसामुद्दीन इवाज) का दमन और बंगाल विजय**—इल्तुतमिश ने पश्चिम में अपने विरोधियों और प्रतिद्वन्दियों को कुचलने के बाद पूर्व में बंगाल की ओर ध्यान दिया। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद आरामशाह के सिंहासन रूढ़ होने की सूचना पाते ही बंगाल और बिहार में अलीमर्दान ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। अब उसके नाम से खुतबा पढ़ा जाने लगा। उसने सन् १२१२ तक शासन किया। अलीमर्दान बड़ा क्रूर शासक था और उदंड खिलजी अमीरों का सरदार था। उसकी क्रूरता से अनेक खिलजी सामंत उससे रुष्ट थे। इससे अवसर पाकर एक शक्तिशाली सामंत हुसामुद्दीन इवाज ने अलीमर्दान की हत्या करके राज्य सत्ता अपने अधिकार में कर ली। उसने बंगाल और बिहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और पार्श्ववर्ती हिन्दू नरेशों के राज्यों को भी अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसने गयासुद्दीन सुलतान की उपाधि धारण की और जाजनगर, तिरहुतबंग तथा कामरूप के पड़ौसी राज्यों से कर वसूल करना प्रारम्भ कर दिया।

इल्तुतमिश बंगाल में इस प्रकार गयासुद्दीन की बढ़ती हुई शक्ति और स्वतंत्र अस्तित्व को कभी सहन नहीं कर सकता था। उसने सन् १२२५ में जब वह मंगोल आक्रमण के संकट से मुक्त हो गया था, बंगाल की ओर प्रस्थान किया। गंगा नदी के किनारे-किनारे सेना सहित आगे बढ़कर इल्तुतमिश ने दक्षिण बिहार पर अपना अधिकार कर लिया और बंगाल की ओर आगे बढ़ा। गयासुद्दीन (इवाज) ने प्रथम तो इल्तुतमिश से युद्ध करने की तैयारी की, परन्तु जब उसे इल्तुतमिश की शक्ति और सेना का आभास मिला तब उसने बिना युद्ध किये ही इल्तुतमिश की अधीनता स्वीकार कर ली और बिहार पर इल्तुतमिश का अधिकार मान लिया। गयासुद्दीन ने सुलतान की उपाधि और स्वतंत्र राजत्व के लक्षणों को त्याग दिया। इसके अतिरिक्त उसने सुलतान इल्तुतमिश को ३८ हाथी, और अस्सी लाख मुद्राएं समर्पित कीं और उसे वार्षिक कर देने का तथा इल्तुतमिश का नाम सिक्के और खुतबे में चालू रखने का वचन भी दिया। अब इल्तुतमिश अलाउद्दीन जानी को बिहार का शासक नियुक्त कर दिल्ली लौट आया।

ज्योंही इल्तुतमिश दिल्ली पहुँचा गयासुद्दीन (इवाज) ने जानी को परास्त कर बिहार से खदेड़ दिया और उसके स्थान पर बिहार में अपना प्रशासक नियुक्त कर दिया तथा सुलतान इल्तुतमिश को वार्षिक कर देने का वचन भंग कर पुनः अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इल्तुतमिश इससे बहुत कुपित हुआ और उसने अपने पुत्र नासिरुद्दीन महमूद को, जो इस समय अवध का सूबेदार था, यह आदेश दिया कि अवसर पाते ही वह गयासुद्दीन के विरुद्ध सेना सहित बंगाल की ओर प्रस्थान करे। फलतः जब गयासुद्दीन पूर्व की ओर किसी युद्ध और संघर्ष में अधिक व्यस्त था, तब नासिरुद्दीन

महमूद ने सन् १२२६ में अचानक गयासुद्दीन की राजधानी लखनौती पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। अपनी राजधानी और राज्य की सुरक्षा के लिये गयासुद्दीन शीघ्र ही लौटा और नासिरुद्दीन महमूद से युद्ध किया। इस युद्ध में नासिरुद्दीन ने उसे परास्त कर दिया और युद्ध में ही गयासुद्दीन की मृत्यु हो गई। इस विजय से प्रत्यक्ष रूप से सुलतान इल्तुतमिश का बिहार और बंगाल पर अधिकार हो गया और वहां शांति स्थापित हो गई।

परन्तु इस समय बंगाल में ऐसे अनेक खिलजी सरदार और अधिकारी थे जो दिल्ली के सुलतान इल्तुतमिश की अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहते थे। अतः वे उपद्रव और विद्रोह करते रहे। इसी बीच दुर्भाग्यवश सन् १२२९ में नासिरुद्दीन महमूद का अकस्मात् देहावसान हो गया और बंगाल तथा बिहार में खिलजी सरदारों ने पुनः विद्रोह प्रारंभ कर दिये। उनके एक नेता बलका खिलजी ने जो गयासुद्दीन का पुत्र था राजसिंहासन पर अपना अधिकार जमा दिया और अपने स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी। इल्तुतमिश ने बलका के इस स्वतंत्र राज्य के दमन के लिये सन् १२३० में पुनः सेना भेजकर बंगाल पर आक्रमण किया। बलका परास्त हुआ और बाद में उसका वध करा दिया गया। अब इल्तुतमिश ने बलाउद्दीन जानी को बिहार और बंगाल में अपना प्रतिनिधि प्रशासक नियुक्त किया। इस समय से बंगाल और बिहार के दो विभिन्न राज्य स्थापित हुए और दोनों पर इल्तुतमिश का अधिकार हो गया। प्रत्येक में एक-एक सूबेदार नियुक्त किया गया। इस प्रकार सन् १२३० में बंगाल और बिहार दिल्ली सल्तनत के अभिन्न अंग बन गये।

(८) **खोखरों का दमन और सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा** – कुबैचा की शक्ति और सत्ता के अन्त होने पर भी सीमान्त क्षेत्र और पंजाब में इल्तुतमिश के शत्रु और विरोधी शेष रह गये थे। ये थे खूंखार युद्धप्रिय खोखर जाति के लोग और उनका सैफुद्दीन करलभ जो पश्चिमी पंजाब में ख्वारिजम के शाह जलालुद्दीन मंगबरनी का आधिपत्य बनाये रखने में प्रयत्नशील था। इल्तुतमिश ने इनके दमन के लिये पंजाब में सेना भेजी जो अनेक मास तक खोखरों से युद्ध करती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि इल्तुतमिश खोखरों के राज्य के कुछ भाग को अपने अधिकार में कर सका और लाहौर के अतिरिक्त स्यालकोट, जालंधर तथा नंदना के दुर्गों और नगरों पर भी उसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। खोखरों की शक्ति को कुचलने और उनके उपद्रवों का दमन करने के लिए इल्तुतमिश ने नासिरुद्दीन ऐतिगीन को नन्दना में अधिकारी नियुक्त किया। जहां खोखरों के अधिक उत्पात होते थे, उस क्षेत्र में उसने अनेक सैनिक चौकियाँ स्थापित की और उनमें प्रशिक्षित अफगान और तुर्क सैनिक रखे। कुछ सैनिकों और सेनानायकों को उसने खोखरों के ग्राम जागीर में दे दिये ओर उन्हें वहां बस जाने के लिए प्रलोभन दिये। इस प्रकार के उपायों से और युद्धों से इल्तुतमिश ने सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा की व्यवस्था की और खोखरों का दमन कर समस्त पंजाब पर अपना अधिकार जमा दिया।

(९) **राजपूत राज्यों से युद्ध और विजय**– जैसा पहिले लिखा है कि उत्तरी भारत में तुर्की सत्ता और साम्राज्य के कड़वे घूंट को हिन्दू प्रजा और राजपूत नरेश कभी

भी चुपचाप शान्ति से नहीं निगल सके। जब कभी उन्हें दिल्ली के तुर्क सुलतान की क्षीण-शक्ति और दुर्बलता का आभास प्राप्त होता था, तभी वे उसकी अधीनता का चोला उतारकर फेंकने का सतत प्रयत्न करते रहते थे। ऐबक की मृत्यु के बाद इल्तुतमिश अपने विरोधियों और प्रतिद्वन्दियों को कुचलने और उनका अन्त करने में अत्यधिक व्यस्त रहा। उसे निरन्तर अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ा और वह उनमें ही उलझा रहा। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर हिन्दू सामन्तों और राजपूत नरेशों ने अपनी खोयी शक्ति और राज्य को पुनः प्राप्तकर उन्हें संगठित करने के प्रयास किए और अपने राज्यों की सीमाओं में वृद्धि कर पुनः अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के यथेष्ठ प्रयत्न किये।

राजस्थान में चौहानों की प्रभुसत्ता का विस्तार हुआ और उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया था। जालोर में चौहान नरेश उदयसिंह ने तुर्कों को पराजित कर चौहानों की लुप्तप्राय: स्वतंत्रता को पुन: प्राप्त कर लिया था। रणथंभोर के दुर्ग पर राजपूतों ने पुन: अपना अधिकार जमा लिया और वहाँ के राजपूत नरेश बल्लनदेव ने अपनी शक्ति का विस्तार कर जोधपुर राज्य तथा अन्य पड़ोसी राज्यों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। जालोर के उदयसिंह और रणथंभोर के बल्लनदेव ने राजपूतों की सत्ता और स्वतंत्रता में वृद्धि की। अनेक राजाओं ने उनका अधिपत्य स्वीकार कर लिया। मध्यप्रदेश के मध्यभारत क्षेत्र और बुन्देलखंड प्रदेश में प्रतिहारों और चंदेल राजपूतों की शक्ति भी खूब बढ़ गयी थी। ग्वालियर में प्रतिहारों और कालिंजर में चन्देलों की शक्ति संचित हो रही थी। अजमेर भी तुर्कों की अधीनता से स्वतंत्र हो चुका था। अलवर और बयाना पर भी तुर्कों का आधिपत्य शिथिल पड़ गया था। दोआब के राजपूत नरेश भी स्वतंत्र हो गये थे। बदायूं, कन्नोज और वाराणसी तुर्कों की सत्ता से मुक्त हो गये थे और रुहेल खंड का प्रदेश भी पूर्णतया स्वतंत्र हो गया था।

राजपूतों की बढ़ती हुई सत्ता और शक्ति का सामना करने के लिए इल्तुतमिश ने सर्व प्रथम राजस्थान में सन् १२२६ में रणथंभोर पर आक्रमण किया और वहां राजपूत सेना को परास्त कर दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया। सन् १२२७ में उसने मंदोर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। जोधपुर [नागोद] की स्वतंत्रता भी नष्ट कर दी गयी और उसे दिल्ली राज्य का अंग बना दिया गया। सन् १२२८ से १२३० की अवधि में उसने अजमेर, बयाना. तहनगढ़, सांभर और जालौर राज्यों को परास्त कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। जालौर के नरेश उदयसिंह ने घमासान युद्ध के पश्चात आत्मसमर्पण कर दिया और उसके द्वारा वार्षिक कर का वचन देने पर इल्तुतमिश ने उसका राज्य उसे वापिस दे दिया। सन् १२३१ में इल्तुतमिशने ग्वालियरके प्रसिद्ध दुर्ग पर आक्रमण किया और उसे घेर लिया। यहां के प्रतिहार नरेश मंगलदेव या मलयवर्म-देव ने शीघ्र ही सुरक्षात्मक कार्यवाही कर तत्परता से किलेबंदी कर ली। एक वर्ष की निरन्तर किलेबन्दी और रक्षात्मक युद्ध करने के पश्चात् भी जब उसे विजय की कोई आशा नहीं रही, तब उसने किला छोड़कर अन्य स्थान में शरण ली। इस तरह ग्वालियर के दुर्ग पर इल्तुतमिश ने अधिकार कर लिया। और वहां रशीदुद्दीन को अपना शासक नियुक्त किया। इसके बाद इल्तुतमिश ने सन् १२३३ में बुन्देलखंड

में चंदेलों के प्रसिद्ध दुर्ग कालिंजर पर आक्रमण कर उसे घेर लिया इससे चंदेल राजा कालिंजर छोड़कर अन्यत्र चला गया। फलत: थोड़े समय के लिये कालिंजर पर इल्तु-तमिश का अधिकार हो गया। पर वह अस्थायी सफलता थी। कालिंजर के पार्श्ववर्ती क्षेत्र के चन्देल सामन्तों और नरेशों ने परस्पर संगठित होकर इल्तुतमिश की तुर्क सेना को खदेड़ दिया। गुजरात पर भी इल्तुतमिश ने आक्रमण किया, पर उसे असफलता ही हाथ लगी। सन् १२३४-३५ में उसने मध्यप्रदेश में मालवा के प्रसिद्ध समृद्ध नगर विदिशा (भेलसा)और उज्जैन पर आक्रमण किये। इन नगरों को खूब लूटा गया। इस लूट में उसे अत्यधिक धन सम्पत्ति मिली और इन नगरोंमें धन-जन की अत्यधिक हानि हुई। मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा फोड़ा और विध्वंस किया गया। उज्जैन के प्रसिद्ध महाकाल के मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। इसके बाद उसने गहलौत राजपूतों की राजधानी नागोद पर आक्रमण किया, परन्तु वहां राजपूतों ने तुर्कों को मार भगाया। इन आक्रमणों, और विध्वंसात्मक कार्यों से कुछ काल के लिये इल्तु-तमिश और उसकी तुर्क सेना का आतंक जम गया। पर इससे दिल्ली के तुर्क साम्राज्य की विशेष उल्लेखनीय सीमा वृद्धि नहीं हुई और न उसका कोई विशिष्ट प्रभाव ही पड़ा।

यद्यपि मालवा, मध्यभारत, बुन्देलखण्ड और राजस्थान में राजपूतों के विरुद्ध युद्धों में इल्तुतमिश को विशेष प्रशंसनीय सफलता और श्रेय प्राप्त नहीं हुआ था, परन्तु कटेहर, दोआब, अवध और बिहार में राजपूतों से युद्ध करने में इल्तुतमिश को अधिक सफलता हाथ लगी। इल्तुतमिश ने बदायूं, कन्नोज और वाराणसी पर हमला करके उन्हें पुनः अपने अधिकार में कर लिया। दोआब के राजपूत नरेशों के कतिपय प्रमुख दुर्गों पर उसने अधिकार कर लिया और उन्हें सुलतान को वार्षिक कर देने के लिए बाध्य किया। अपने अधीन राजपूतों के दुर्गों में और उनके आसपास ग्रामीण क्षेत्रों में इल्तुतमिश ने अनेक तुर्की सैनिकों को बसा दिया। जिससे कि वे राजपुतों को शक्ति सम्पन्न होने के पूर्व ही दबा सकें और उनके विद्रोहों को कुचल सकें। इन तुर्क सैनिकों और उनके अधिकारियों को इल्तुतमिश ने ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवस्था और शान्ति बनाये रखने के हेतु जागीरें भी दे दी। अवध और रुहेलखण्ड के क्षेत्र के राजपूत राज्यों पर भी कड़े संघर्ष के बाद इल्तुतमिश ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया और वहाँ अपने पुत्र नासिरुद्दीन को सूबेदार नियुक्त किया। परन्तु इस क्षेत्र के राजपूत अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये तुर्कों से निरन्तर संघर्ष करते रहे। वे तुर्की सत्ता के कट्टर शत्रु थे। उनके नेता पिर्थ ने तुर्कों से जीवनभर निरन्तर युद्ध किया। फलत: पिर्थ के देहावसान के बाद ही इल्तुतमिश की सत्ता पूर्णरूपेण स्थापित हो पायी थी। इसी बीच इल्तुतमिश ने चन्दावर और तिरहुत पर भी आक्रमण किये, पर विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। परन्तु उसे वहां से अधिक धन प्राप्त हुआ।

(१०) **इल्तुतमिश के निरन्तर संघर्ष और युद्धों का महत्व**—इल्तुतमिश ने बड़े धैर्य, साहस, दृढ़ता और दूरदर्शिता से अपने विरोधियों, शक्तिशाली प्रतिद्वन्दियों और विदेशी आक्रमणकारियों का सामना किया, उनकी शक्तियों का दमन किया और आन्त-रिक विद्रोहों को कुचल दिया। इसके लिये उसने अनेक स्थानोंपर संघर्ष किया और

युद्ध लड़े तथा अपनी विजय की योजनाओं को धीरे-धीरे कार्यान्वित किया। इन सबका परिणाम निम्नलिखित हुआ।

(१) उसके राज्यारोहण के समय तुर्की सल्तनत जो टूटकर कई भागों में विभक्त हो गई थी, इल्तुतमिश के युद्धों और विजयों से, दिल्ली सल्तनत को स्थायित्व प्राप्त हुआ और उसकी स्थिति पहले की अपेक्षा दृढ़ हो गयी।

(२) दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का विस्तार हुआ। इल्तुतमिश ने उन समस्त प्रदेशों पर अधिकार कर लिया जो किसी समय मुहम्मद गोरी के गजनी साम्राज्य के अन्तर्गत थे। इसके अतिरिक्त उसने सल्तनत के दक्षिण के कुछ नवीन प्रदेशों पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसने इन प्रदेशो को जीतकर वहाँ मुस्लिम सत्ता को सुदृढ़ कर दिया।

(३) इल्तुतमिश ने पुनर्संगठित राजपूत राज्यों की शक्ति और सत्ता खूब कुण्ठित कर दी और उनके राज्यों की सीमाएं सिकुड़ दी। राजपूत विद्रोहियों का दमन करके अनेक राजपूत राजाओं को दिल्ली की तुर्की सल्तनत की अनिवार्य अधीनता स्वीकार कर लेने के लिये बाध्य किया।

(४) कुतुबुद्दीन ऐबक बंगाल और सिंध में वहां के मुस्लिम शासकों को अपनी अधीनता स्वीकार कराके संतुष्ट हो गया। उसने सिंध, बिहार और बंगाल के आन्तरिक कार्यों और प्रशासन में अधिक हस्तक्षेप नहीं किया। इसलिये इन प्रदेशो में दिल्ली सुलतान से स्वतंत्र होने की भावना बलवती होती रही। इल्तुतमिश ने सिंध, बिहार और बंगाल में विरोधियों का दमन करके आन्तरिक प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के लिये अपने अधिकारी और प्रशासक नियुक्त किये। उनके अधिकार क्षेत्र को भी सीमित कर दिया जिससे कि वे विद्रोह करके, दिल्ली सल्तनत से पृथक होकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित नहीं कर सके। इससे इन प्रदेशों पर दिल्ली सल्तनत का आधिपत्य अधिक सुदृढ़ और स्थायी हो गया।

इल्तुतमिश को खलीफा का प्रमाणपत्र—इल्तुतमिश के जीवन के अंतिम वर्षों का महत्वशाली कार्य था बगदाद के खलीफा से प्रमाणपत्र प्राप्त करना। बगदाद का खलीफा मुस्लिम जगत का सर्वोच्च नेता, और धार्मिक गुरु तथा राजनैतिक सम्राट माना जाता था। इल्तुतमिश ने अपने सैनिक अभियानों, युद्धों और कूटनीति से अपने प्रबल प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर उन्हें अपने आधिपत्य में ले लिया था। पर उसे यह भय था कि मुअवसर पाकर वे दबी हुई विद्रोही शक्तियां पुनः उसके विरुद्ध सिर उठा लेंगी। इसलिये उसने खलीफा से अपने राज्य को वैधानिक रूप से स्वीकार करने की प्रार्थना की। इसके अतिरिक्त इल्तुतमिश की निरन्तर विजयों और दिल्ली के इस्लामी राज्य के विस्तार तथा इस्लाम के प्रसार से सन् १२२८ में बगदाद का तत्कालीन अब्बासी खलीफा अलइमाम मुस्तंसिर बिल्ला अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसे दिल्ली का सुलतान स्वीकार कर लिया तथा उसे "नासिर अमीर उल मोमिनीन" (मुसलमानों के प्रधान अथवा खलीफा के सहायक) की पदवी से विभूषित किया एवं इसके लिये इल्तुतमिश को खलीफा ने एक खिलअत व प्रमाण-पत्र भी भेजे। इस प्रकार खलीफा ने उसे भारत के मुस्लिम साम्राज्य का स्वतन्त्रता से शासन करने का अधिकार

पत्र दे दिया। इल्तुतमिश ने अब अपने नवीन अरबी सिक्कों पर खलीफा का नामांकन भी किया। अब सुल्तान इल्तुतमिश के संबंध में लिखा जाने लगा—"धर्मनिष्ठों के सेनापति नासिर अमीर-उल-मुअमीन का सहायक"। इस प्रकार खलीफा द्वारा उसे सुलतान मान लेने एवं तत्सम्बन्धी प्रमाणपत्र भेज देने से निम्नलिखित परिणाम हुए।

(१) इल्तुतमिश एवं उसके वंश और उत्तराधिकारियों का दिल्ली के राज सिंहासन पर वैधानिक अधिकार हो गया। अब दिल्ली की तुर्की सल्तनत वैध (कानूनी) रूप में प्रकट हो गयी। इल्तुतमिश की सुलतान की पदवी ने वैधानिक स्वरूप धारण कर लिया।

(२) दिल्ली के सिंहासन पर इल्तुतमिश के अधिकार को उस महान व्यक्ति खलीफा की स्वीकृति प्राप्त हो गई जिसके प्रति समस्त मुस्लिम जगत आदर और श्रद्धा रखता था। इससे धर्मभीरु और धर्मपरायण मुसलमानों ने इल्तुतमिश के आदेशों की अवहेलना करना त्याग दिया। क्योंकि अब वे मानने लगे थे कि इल्तुतमिश की आज्ञाओं का उल्लंघन करने में इस्लाम धर्म की अवहेलना और उपेक्षा होगी।

(३) तुर्की अमीरों के संमुख इल्तुतमिश ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली और उसे खलीफा की स्वीकृति से नैतिक और धार्मिक बल प्राप्त हो गया। अब तक उसे वास्तविक राजसत्ता ही प्राप्त थी, परन्तु अब उसे नैतिक राजसत्ता भी उपलब्ध हो गयी।

(४) राजनैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से, इल्तुतमिश के विरोधियों ने अब जन्म और दासता के आधार पर उसका विरोध करना बंद कर दिया। उसके विरुद्ध विद्रोह करना नैतिक और धार्मिक अपराध माना जाने लगा था।

(५) इस्लामी जगत में इल्तुतमिश की प्रतिष्ठा, सम्मान और यश-गौरव में अत्यधिक वृद्धि हुई। उसकी स्थिति स्वतन्त्र नरेश सी हो गयी। इसीलिये अनेक इतिहासकारों ने इल्तुतमिश को दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक मान लिया।

शिया सम्प्रदाय का विद्रोह—इस्लाम के अनुयायियों में शिया और सुन्नी दो परस्पर विरोधी सम्प्रदाय रहे हैं। इल्तुतमिश के शासनकाल में उसके स्वयं सुन्नी होने के कारण, सुन्नी सम्प्रदाय के अनुयायियों का बाहुल्य था। इल्तुतमिश ने भी अनेक सुन्नियों को प्रशासन में ऊंचे श्रेष्ठ पदों पर नियुक्त किया था। उन्हें राज्य की ओर से सभी सुविधाएं उपलब्ध होती थीं। इससे उनका प्रभाव भी अधिक था। फलतः शिया सम्प्रदाय के अनुयायी उनसे ईर्षा-द्वेष रखते थे। वे अपने मत को राजधर्म बनवाना चाहते थे और वे सभी सुविधाएं प्राप्त करना चाहते थे जो सुन्नी लोगों को मिली थीं। परन्तु इल्तुतमिश इसमें सहायक नहीं हुआ और उन्हें निराश होना पड़ा। इससे शिया लोगों ने विशेषकर इस्माइलिया मत के लोगों ने इल्तुतमिश की हत्या का गुप्त षड़यंत्र रचा। सन् १२३५ में एक दिन जब इल्तुतमिश अपने अन्य अनुयायियों के साथ मसजिद में नमाज पढ़ रहा था, उदंड शियाओं ने प्रचंड विद्रोह कर दिया और हाथों में नग्न तलवारें लेकर आतंक फैलाते हुए उस मसजिद में प्रविष्ट हो गये, जहां इल्तुतमिश नमाज पढ़ रहा था। वे उसका वध करना चाहते थे। मसजिद में हंगामा और भगदड़ मच

गयी। इल्तुतमिश मसजिद के मध्य में अन्य लोगों के बीच में होने से बच गया और वह शीघ्र ही अपनी प्राण रक्षा के लिये मसजिद से पलायन कर गया। राजप्रासाद में पहुँच कर उसने दृढ़ता से विद्रोही और उदण्ड मुलाहिदों को पकड़वा लिया और उन्हें प्राण दंड देकर शियाओं के विद्रोह का दमन किया।

इल्तुततमिश का देहावसान— निरन्तर संघर्ष, सैनिक अभियान और युद्ध करते रहने से इल्तुतमिश का शरीर जीर्ण हो गया था और उसका स्वास्थ्य भी गिर गया था। अन्ततः उसे रोग ने घेर लिया। रोग-ग्रस्त हो जाने के कारण उसने खोखरों के विरुद्ध बनियान पर आक्रमण करने की अपनी योजना स्थगित कर दी। अभियान के समय वह मार्ग में ही बिमार पड़ जाने के कारण राजधानी लौट आया और थोड़े समय बाद ही सन् १२३६ में राजप्रासाद में उसकी मृत्यु हो गयी।

इल्तुतमिश की प्रशासन-व्यवस्था—जब इल्तुतमिश ने शासन-कार्य संभाला, तब तत्कालीन प्रशासन में अनेक दोष थे। प्रथम, प्रशासन का प्रधान स्वरूप सैनिक था। सेना और उसके अधिकारियों की शक्ति पर सारा राज्य और शासन आश्रित था। सामरिक महत्व के स्थानों, नगरों और दुर्गों पर सैनिक अधिकारी नियुक्त कर दिये जाते थे। वे अपनी सैनिक शक्ति के प्रदर्शन और सत्ता के बल पर हिन्दू राजाओं, सामन्तों, भूमिपतियों और लोगों से वार्षिक कर वसूल करते थे और उन्हें दिल्ली सल्तनत के अधीन बनाये रखते थे। राज्य की सुरक्षा, आन्तरिक विद्रोहों का दमन और राजकोष की वृद्धि में ही वे सतत संलग्न रहते थे। शासकीय अधिकारी और सेनापति जनसाधारण के सपर्क में नहीं आते थे। उन्हें जन-कल्याण के कार्यों से कोई तात्पर्य नहीं था। फलतः शासक और शासितों में एक गहरी खाई थी। प्रशासन में स्थिरता और दृढ़ता नहीं थी।

द्वितीय, प्रशासन संबंधी सुधार या योजनाओं तथा मुद्रा-सुधार की ओर किंचित भी ध्यान नहीं दिया गया था। प्रशासन संस्थाएं नहीं थी और तत्कालीन अधिकारियों और सूबेदारों में प्रशासन में रचनात्मक प्रवृत्ति और जनहित की भावना का अभाव था।

तृतीय, कुतुबुद्दीन ऐबक और इल्तुतमिश का अधिकांश समय विद्रोहों को कुचलने, विरोधियों का दमन करने, सैनिक अभियान करने और शत्रुओं से युद्ध करने तथा विजयश्री प्राप्त करने व राज्य की सीमाओं का विस्तार करने में ही व्यतीत हुआ था। उन्हें प्रशासन की ओर शांति से ध्यान देने और उसमें सुधार करने के अवसर ही नहीं मिले। इन सब दोषों के और विषम परिस्थिति होने पर भी इल्तुतमिश ने प्रशासन की ओर ध्यान दिया। युद्धों, विजय योजनाओं और विद्रोहों के दमन में संलग्न रहने पर भी उसने प्रशासन में कुछ सुधार करने के प्रयास किये। ये सुधार निम्नलिखित थे।

(१) **मुद्रा-सुधार**— मुद्राएं या सिक्के यह प्रदर्शित करते है कि कौन से विशिष्ट काल में कौन व्यक्ति शासक था। मुद्राए उस शासक का प्रतिनिधित्व करती हैं और मुद्राओं की बनावट, आकार, धातु की शुद्धता आदि उस युग की आर्थिक समृद्धि पर प्रकाश डालती हैं। इल्तुतमिश ने पूर्णरूपेण, राजनैतिक, धार्मिक और नैतिकरूप से स्वतन्त्र सुल्तान

बन जाने पर नवीन सिक्कों को ढालकर प्रचलित किया। उसने पूर्णतया अरबी ढंग का नया सिक्का चलाया जो 'टंक' कहलाता था। यह वजन में १७५ ग्रेन का था। 'टंक' सिक्के चान्दी तथा स्वर्ण दोनों के ही होते थे। इन नवीन सिक्कों के प्रचलन से निम्नलिखित लाभ हुए—

(अ) जन साधारण को नवीन सुलतान के स्थायित्व में अधिक विश्वास होने लगा था।

(ब) सिक्कों के अरबी ढंग के होने से और उन पर खलीफा के चिन्ह अंकित होने से इल्तुतमिश को मुस्लिम लोगों की भावना पर नियन्त्रण रखने एवं उनसे राजभक्ति प्राप्त करने में खूब सफलता प्राप्त हुई।

(२) **न्याय-व्यवस्था**– इल्तुतमिश न्यायप्रिय सुलतान था और इसीलिये उसने न्याय-व्यवस्था का प्रबंध किया। इब्नबतूता के ग्रन्थ रिहेला में लिखे विवरण से विदित होता है कि सुलतान इल्तुतमिश के राजप्रासाद के सम्मुख दो सिंह बने हुए थे जिनके गलों में घन्टियाँ लटकी हुई थीं। कोई भी सताया हुआ या पीड़ित व्यक्ति इन जंजीरों को खींचकर घन्टी बजा सकता और शाही अधिकारी शीघ्र ही उसकी फरियाद सुनते थे या वह स्वयं सुलतान के सम्मुख फरियाद प्रस्तुत कर सकता था। तत्काल ही उसके न्याय की व्यवस्था की जाती थी। किन्तु यह व्यवस्था केवल रात्रि के लिए ही थी। दिनमें फरियादी विशेष प्रकार का लाल वस्त्र धारण कर अपने को सताया हुआ सूचित कर सकता था और सुलतान का ध्यान आकर्षित कर सकता था। तथा उसकी फरियाद सुनी जा सकती थी। हो सकता है कि इब्नबतूता का यह विवरण प्रचलित कहानियों पर आधारित हो। परन्तु इससे यह निष्कर्ष स्पष्ट व्यक्त होता है कि सुलतान इल्तुतमिश न्यायप्रिय था और न्याययुक्त शासन प्रतिष्ठित करने को उत्सुक था।

जनता को समुचित न्याय प्राप्त हो सके इसके लिए उसने राज्य के विभिन्न बड़े नगरों में अमीर दाद और राजधानी दिल्ली में अनेक काजी नियुक्त किये थे। इन सबके कार्यों का निरीक्षण करने तथा उनके निर्णय या न्यायदान के विरुद्ध अपील सुनने के लिए एक प्रधान काजी नियुक्त किया गया और उसके ऊपर स्वयं सुलतान इल्तुतमिश था। सुलतान सर्वोच्च न्यायाधीश माना जाता था।

(३) **अमीर और अधिकारी**– प्रशासन को सुव्यवस्थित और सुचारु रूप से चलाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रथम, जन साधारण और सामन्त लोग, सुलतान या शासक का पद और उसकी प्रतिष्ठा राज्य और देश में सर्वोपरि माने और द्वितीय, प्रशासन में ऐसे कर्मचारी और अधिकारी हों जो शासक के प्रति अत्यन्त ही स्वामीभक्त और निष्ठावान हों तथा जो अपनी पदोन्नति के लिए शासक पर आश्रित हो। इल्तुतमिश ने इस सिद्धान्त को समझ लिया था। इसलिये उसने निम्नलिखित कदम उठाये —

(अ) वे कुतुबी और मुइज्जी अमीर तथा अधिकारी जो उसके विरोध में थे और जो उसकी श्रेष्ठता और अधीनता अंगीकार नहीं करते थे, इल्तुतमिश द्वारा संघर्ष, दमन और युद्धों में परास्त कर दिये या मार डाले गये, जो अवशेष रह गये उन्हें अपने अपने पदों से पृथक् कर दिया गया। ऐसा करने से अन्य अमीरों पर सुलतान का आतंक छा गया और वे भी इल्तुतमिश के समर्थक और अनुयायी हो गये।

(ब) उसने चालीस गुलामों का एक दल (चरगान) संगठित किया। ये वास्तव में शक्तिशाली अमीर थे जो इल्तुतमिश के प्रति अत्याधिक स्वामीभक्त और निष्ठावान थे। वे उसके प्रति अधिक आदर और श्रद्धा रखते थे। वे सुल्तान के अधिक विश्वासपात्र भी थे। ऐसे चालीस अमीरों द्वारा इल्तुतमिश ने अपनी राजसभा में एक नया दल संगठित कर लिया। इन्हीं में से उसने अपने परामर्शदाता और मंत्री नियुक्त किये। वे सदा उसकी कृपा पर निर्भर रहते थे। उनका उत्थान व पतन सुलतान पर आधारित था। इससे सुलतान की सर्वोपरिता तथा प्रतिष्ठा में खूब वृद्धि हो गयी।

(स) इल्तुतमिश ने अपने चालीस गुलामों के दल में से श्रेष्ठ और योग्य व्यक्तियों को प्रशासन में ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। इससे शासन-व्यवस्था में उसे योग्य, विश्वासपात्र और स्वामीभक्त अधिकारियों का सहयोग प्राप्त हुआ।

(द) उसने विदेशी और भारतीय मुसलमानों में से श्रेष्ठ, योग्य, अनुभवी, स्वामीभक्त और प्रतिभावान व्यक्तियों का चयन करके उन्हें प्रशासन में ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। शासन को अधिक दक्ष और सफल बनाने के लिए उसने पदाधिकारियों में भारतीय और विदेशी दोनों मुसलमानों को स्थान दिया। उस काल के प्रसिद्ध विद्वान और इतिहासकार मिनहाज-ऐ-सिराज को प्रधान काजी और सदरेजहां के पद पर तथा फखरुमुल्क इसामी को अपने मंत्री या वजीर के पद पर नियुक्त किया। इसामी विदेशी मुसलमान था जो तीन वर्ष तक बगदाद में खलीफा का वजीर रह चुका था।

(४) **आन्तरिक शांति व्यवस्था**– अपने राज्य में विरोधियों को कुचलने और आन्तरिक शान्ति स्थापित करने के लिए, इल्तुतमिश ने सेना का सहारा लिया। उसने प्रशासन ही सैनिक व्यवस्था पर आश्रित कर लिया। जिन क्षेत्रों, स्थानों, वनों या पर्वतीय प्रदेशों में अधिक विरोध, विद्रोह या उत्पात होते थे, वहाँ उसने अनेक तुर्की सैनिकों और उनके योग्य नेताओं और सेनापतियों को बसा दिया। दोआब और खोखर प्रदेश में तथा सामरिक दुर्गों के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में उसने ऐसी अनेक तुर्क सैनिक बस्तियां स्थापित कर दीं।

(५) **जागीर प्रथा**– इल्तुतमिश ने अपने सैनिक अधिकारियों, अन्य ऊंचे पदाधिकारियों और सामन्तों पर शासन प्रबन्ध और सुरक्षा का भार डाला था। परन्तु उसने उन्हें नियमित मासिक वेतन नहीं दिया, अपितु जीवन-निर्वाह के लिए जागीरें प्रदान कर दीं। अनेक स्थानों पर उन्हें जागीरें देकर बसाया भी गया। इससे प्रशासन में दोषपूर्ण जागीर प्रथा का खूब प्रचार हुआ।

(६) **साहित्य तथा कला को संरक्षण**—इल्तुतमिश स्वयं प्रकाण्ड विद्वान नहीं था, पर उसे लेखकों और विद्वानों को राज्याश्रय देने में अधिक अभिरुचि थी। उसके शासनकाल में मध्य एशिया में अत्यधिक राजनैतिक उथल-पुथल के कारण अनेक विद्वान, लेखक और साहित्यकार मध्यएशिया के मुस्लिम राज दरबारों से भागकर भारत में सुरक्षा के हेतु आ गये थे। इल्तुतमिश ने उन्हें अपनी राजसभा में संरक्षण दिया। इस प्रकार उसने अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य के विकास में योग दिया।

भवन-निर्माण में भी इल्तुतमिश ने योगदान दिया। ऐसा माना जाता है कि कुतुबमीनार जिसे कुतुबुद्दीन ने प्रारंभ किया था, पर जो उसकी आकस्मिक मृत्यु के कारणों

अधूरी रह गयी थी, इल्तुतमिश ने पूर्ण किया। इसके अतिरिक्त उसने कतिपय मस-जिदों का भी निर्माण किया।

(७) **इल्तुतमिश की धार्मिक नीति**—इल्तुतमिश कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसमें धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का अभाव था। उस काल के अन्य शासकों के समान उसने धर्मान्धता पूर्ण नीति का अनुकरण किया। उसका राज्य इस्लाम की कट्टरता पर आधारित था। मुल्ला एवं मौलवियों को उसकी राजसभा में विशेष अधिकार प्राप्त थे। धार्मिक कार्यों और मामलों में उसने उस उलमा वर्ग का समर्थन किया जो सुन्नी सिद्धान्तों का समर्थक और अनुयायी था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि अधिकांश तुर्क सेनानी और अधिकारी तथा भारतीय मुसलमान सुन्नी मत के मानने वाले थे। सुन्नी मत को अपनाने और उसका राजसभा मे कट्टरता से समर्थन करने से उलमा वर्ग का, अधिकांश तुर्कों और भारतीय मुसलमानों का उसे अधिक सहयोग, समर्थन और राज निष्ठा उपलब्ध हो गई। इस कारण राजनैतिक और धार्मिक दृष्टि से इल्तुतमिश की स्थिति अधिक सुदृढ़ हो गयी।

परन्तु इस धार्मिक नीति के दुष्परिणाम भी हुए। मुल्ला और मौलवियों को राजसभा में इतने अधिक विशेष अधिकार मिल गये, उल्मा वर्ग की सम्मति को इतना अधिक महत्व दिया जाने लगा कि वे अन्य सम्प्रदाय के लोगों पर अत्याचार करने लगे। फलतः शिया सम्प्रदाय के अनुयायी मुसलमान उसके अत्यधिक कट्टर शत्रु हो गये और उसकी हत्या करने के लिये उन्होंने षडयंत्र रचा और विद्रोह किया। इस दूषित धार्मिक नीति का अन्य बुरा परिणाम यह भी हुआ कि इल्तुतमिश हिन्दुओं के प्रति उदार और सहिष्णु नहीं बन सका। उसने अपनी हिन्दू प्रजा पर और विजित प्रदेश के हिन्दुओं पर अनेक धार्मिक अत्याचार किये। उसने मूर्तिभंजन और विध्वस की नीति बनाये रखी। हिन्दुओं के अनेक मंदिरों, मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा गया, और उनके पवित्र स्थानों को लूटा गया और विध्वंस किया गया तथा उनके भग्नावशेषों पर मस-जिदें निर्मित की गयीं। इल्तुतमिश की इस धार्मिक कट्टरता और पक्षपात से, इस्लाम के बलपूर्वक प्रचार से, हिन्दू लोग और राजपूत नरेश अत्यधिक असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने उसके विरोध में अनेक स्थानों पर विद्रोह भी किये। इनमें दोआब के हिन्दुओं के विद्रोह विशेष उल्लेखनीय हैं।

इल्तुतमिश की शासन-नीति की समीक्षा— युद्धों और अभियानों में अधिकांश समय व्यतीत करने के बावजूद भी इल्तुतमिश प्रशासन के प्रति सजग रहा और उसने प्रशासन संबंधी सुधार के कार्यों को प्रारभ कर अपनी प्रतिभा का ही परिचय नहीं दिया अपितु उसने अपनी सल्तनत की स्थिति भी दृढ़ कर ली। उसने राज-दरबार में सुलतान के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि कर ली। पर उसके शासन का मुख्य स्वरूप सैनिक था और उसका समस्त राज्य तथा सल्तनत सेना के बल पर निर्भर था। सेनापतियों और अधिकारियों को नगद वेतन देने की अपेक्षा उन्हें जागीर देकर उसने राज्य में विघटनकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। उसने लोकहित के कोई सुधार नहीं किये। उसके अधिकारी भी जनसाधारण की समृद्धि के प्रति सचेत नहीं थे। उन्हें तो केवल राज्य की आन्तरिक सुरक्षा एवं राजकोष की निरंतर वृद्धि से और आसपास

के प्रदेश की लूटपाट कर धन एकत्र करने से ही मतलब था। दिल्ली सल्तनत के झंडे के नीचे अधिकाधिक सामन्तों और हिन्दू नरेशों का लाना ही उनका प्रधान कर्त्तव्य था। इन सबका परिणाम यह हुआ कि साधारण जनता में दिल्ली सल्तनत के प्रति राज-भक्ति और निष्ठा का अभाव था। मुस्लिम अधिकारियों की प्रधानता और सुल्तान इल्तुतमिश की धार्मिक अनुदारता तथा असहिष्णुता की नीति के कारण हिन्दुओं की दशा अच्छी नहीं थी। उन पर अत्याचार होते थे। शासक और शासित वर्ग में धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक असमानता और भिन्नता थी। उनके मध्य गहरी खाई थी। उनमें परस्पर एक-दूसरे के प्रति वैमनस्य, संदेह और अविश्वास की भावना थी। हिन्दू मुसलमानों को और उनकी संस्कृति को हेय समझते थे और उन्हें अपना शत्रु मानते थे। अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के लिये उनमें विद्रोही मनोवृत्ति बलवती होती जा रही थी। सल्तनत के प्रशासन में यह विस्फोटक स्थिति थी। इल्तु-तमिश ने इसके निवारण के लिये कोई ठोस कदम नहीं उठाये।

इल्तुतमिश के कार्यों का मूल्यांकन

(१) **चरित्र एवं व्यक्तित्व**—इल्तुतमिश शरीर से स्वस्थ, सुडौल और सुन्दर था। उसकी बाह्य आकृति सुन्दर और आकर्षक थी। इस शारीरिक सुन्दरता के साथ-साथ उसमें योग्यता, प्रतिभा और अनेक गुण भी थे। उसका हृदय उदार और दयालु था। गरीबों और निस्सहायों के प्रति वह सहिष्णु और कृपालु था। उसकी दया, सहा-नुभूति और उदारता के विषय में अनेक किंवदंतियाँ हैं। वह अपने सद्‌गुणों, जैसे संयम, साहस, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, प्रतिभा, योग्यता, दृढ़ता और व्यक्तित्व के कारण ही एक निम्न श्रेणी का दास होने पर भी प्रगति और पदोन्नति करते-करते सुलतान के पद तक पहुंच गया। अपने इन्हीं गुणों से उसने दासता से मुक्ति प्राप्त की थी और अमीर-ए-शिकार का पद प्राप्त कर धीरे-धीरे बदायूं का सूबेदार और बाद में दिल्ली का सुलतान हो गया। जो व्यक्ति प्रारंभ में दास का दास रह चुका हो, उसके द्वारा दिल्ली का राज्य सिंहासन प्राप्त कर लेना और दिल्ली राज्य पर अपनी शक्ति और गुणों से लगभग पच्चीस वर्षों तक शासन करना, मध्ययुग में असाधारण और अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कार्य था। यह पदोन्नति और शासन उसके श्रेष्ठ व्यक्तित्व और चरित्र का परिचायक है।

(२) **धर्मनिष्ठ, पर धर्मान्ध और असहिष्णु सुलतान**—इल्तुतमिश इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी था। उसमें अधिक धर्म-निष्ठा थी। वह प्रतिदिन विधिवत् पाँच बार नमाज पढ़ता था और अन्य धार्मिक कार्य करता था। उसने अनेकों विध-र्मियों और हिन्दुओं को इस्लाम का अनुयायी बनाया। तत्कालीन लेखकों ने उसकी धार्मिकता, धर्मनिष्ठा और इस्लाम की सेवा की बड़ी प्रशंसा की है। वह धार्मिक पुरुषों, काजियों आदि का आदर करता था। उसकी राजसभा में उलमाओं और मौल-वियों की अत्यधिक प्रतिष्ठा होती थी।

परन्तु इल्तुतमिश कट्टर धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। वह सुन्नी सम्प्रदाय का अनुयायी था। इसलिये शिया सम्प्रदाय तथा अन्य असनातनी इस्लामी सम्प्रदाय और

हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार अत्याचार पूर्ण, असहिष्णुता और अनुदारता का था। उसने हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने का प्रयास किया और उनके अनेक मंदिरों को विध्वंस किया और मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा। उसकी इस धार्मिक कट्टरता और अत्याचारों के कारण दिल्ली के इस्माइली शिया मुसलमानों ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था और उसकी हत्या करने का षड़यंत्र रचा था।

(३) **अपूर्व साहसी सेनानायक और विजेता**—इल्तुतमिश एक वीर, साहसी, सजग सेनानायक और सफल विजेता था। उसमें उच्चकोटि की सैनिक प्रतिभा थी। उसकी इस सैनिक प्रतिभा और योग्यता के कारण ही वह एक साधारण दास से बढ़कर बदायूं की सूबेदारी प्राप्त कर सका और इन्हीं सैनिक गुणों के कारण और उसकी वीरता से प्रभावित होकर दिल्ली के अमीरों और सरदारों ने उसे सुलतान निर्वाचित कर लिया। यह उसके लिये बड़े गौरव की बात थी। उसके शौर्य, साहस, वीरता और सैनिक प्रतिभा व गुणों के कारण से सेना में दिन-प्रतिदिन उसके प्रति स्वामिभक्ति के भाव बढ़ते गये और उसकी लोकप्रियता में वृद्धि होती गयी। सुलतान बनने के बाद भी उसने अपने बाहु-बल से अपने सभी प्रबल प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर दिया; उसने यल्दौज, कुबैचा तथा अन्य प्रमुख राजपूत नरेशों पर विजय प्राप्त की, विद्रोहों का दमन किया, हिन्दू सामन्तों, और राजाओं की उभरती हुई शक्ति को नतमस्तक किया, बिहार और बंगाल में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की, मंगोलों के आक्रमणों से राज्य की सुरक्षा की और दोआब में पुनः अपनी राजसत्ता प्रतिष्ठित की। मध्यकालीन उत्तरी-भारत मंगोल आक्रमण से सुरक्षित रहने के कारण इल्तुतमिश का ऋणी है। उसने अपने युद्धों और विजयों से मुहम्मद गोरी द्वारा जीते हुए भारतीय प्रदेशों पर पुनः तुर्कों की प्रभुसत्ता स्थापित ही नहीं की, अपितु कुतुबुद्दीन ऐबक की विजय-योजनाओं को पूर्ण किया और दिल्ली राज्य का विस्तार भी किया। उसने अमीरों के विद्रोह से होने वाले विनाश और विघटन से राज्य को सुरक्षित भी रख लिया। उसने अपनी वीरता, युद्धों और विजयों से चतुर्दिक शत्रुओं का सफाया ही नहीं किया, अपितु भारत में तुर्कों की सत्ता को दृढ़ और स्थायी कर दिया। इल्तुतमिश का अधिकांश जीवन विजय योजनाओं और युद्धों में ही व्यतीत हुआ। वह जीवन के अंतिम दिनों तक रण-क्षेत्र में ही डटा रहा और विजय अभियान जारी रखा। यदि वह रोग-ग्रस्त न होता और मरता नहीं तो, निस्संदेह वह भारत के शेष भागों को भी विजय कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने का प्रयास करता। केवल एक या दो अवसरों को छोड़कर उसे रण-क्षेत्रों में कभी भी पराजय का मुंह नहीं देखना पड़ा। उसने अपने सेनापतित्व, वीरता और विजयों के कारण न दिल्ली के सैनिक राजतंत्र की नींव को ही दृढ़ नहीं किया, अपितु उसके चूड़ान्त विकास और प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया।

(४) **दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ**–इल्तुतमिश एक सफल कूटनीतिज्ञ था। अनेक अवसरों पर उसने अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। सिंहासनारूढ़ होने के बाद अपने शासन के प्रारंभ में चतुर्दिक कठिनाइयों से घिरा होने के कारण उसने अपने शक्तिशाली पतिद्वन्दी और शत्रु ताजुद्दीन यल्दौज से संघर्ष कर पराजित होने की अपेक्षा उसके द्वारा भेजे गये राजचिन्ह स्वीकार कर उसकी आधीनता मान ली। उससे छेड़-

छाड़ या युद्ध करना अच्छा नहीं समझा और उसकी नाम मात्र की प्रभुता स्वीकार कर ली। परन्तु बाद में अपनी शक्ति दृढ़ करके उसने यल्दोज को युद्ध में पराजित ही नहीं किया, अपितु उसे बन्दी बनाकर उसकी हत्या करवा दी। इसी प्रकार उसने सिंध में मुलतान और उच्छ के शासक कुबैचा के साथ भी प्रारंभ में संधि कर और बाद में मंगोल आक्रमण के पश्चात् उस पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया। ये उसकी कूटनीति की सफलताएँ थीं। मंगोल नेता चंगेजखाँ के भय, आतंक, नृशंसता और कत्लेआम से बचने के लिये उसने ख्वारिजम के शाह के प्रति बड़ी कूट-नीति का परिचय दिया। अपनी सल्तनत के लिए खलीफा से स्वीकृति प्राप्त करना और अपने साम्राज्य को इस प्रकार नैतिक, धार्मिक तथा वैधानिक और राजनैतिक दृष्टि से सबल करना उसे एक कूटनीतिज्ञ प्रमाणित करता है। राज्य की बाह्य नीति में उसने कुशलता, दृढ़ता, कूटनीति और दूरदर्शिता का परिचय दिया।

(५) **योग्य शासक**— इल्तुतमिश एक विजेता होने के साथ साथ एक दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ और योग्य शासक भी था। यद्यपि उसका अधिकांश समय सैनिक आक्रमणों संघर्षों और विजयों में ही व्यतीत हुआ, परन्तु प्रशासन की ओर भी उसने ध्यान दिया, तथा प्रशासकीय सुधारों के प्रति वह सजग भी था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने एक विशृंखलित अस्त-व्यस्त और असुरक्षित राज्य छोडा था। इल्तुतमिश ने उसे अपनी प्रतिभा और सुधारों से संगठित किया। चोरों, डाकुओं और उपद्रवियों को दंडित कर, उनको कुचलकर, विद्रोहियों का नाशकर उसने आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। आवागमन की सुविधाओं में भी उसने वृद्धि की। उसने मुस्लिम शासन में प्रथम बार अरबी स्वरूप की शुद्ध मुद्राएं प्रसारित कीं। उसने तत्कालीन मुद्रा स्थिति में सुधार किए। तुर्की गुलामों और सरदारों को उसने इस प्रकार से संगठित किया कि वे साम्राज्य के प्रबल स्तम्भ बन गये। उसने ऐसे कर्मचारियों और पदाधिकारियों को प्रशासन में नियुक्त किये जो अधिक सुयोग्य, और स्वामीभक्त थे। वह न्याय-प्रिय शासक था। रात और दिन में उसने न्यायदान की अलग अलग व्यवस्था की थी। दिन में न्याय का इच्छुक फरियादी लाल वस्त्र धारण कर और रात्रि में उसके राजप्रसाद के सम्मुख सिंह की ग्रीवा में बंधी घन्टियों को बजाकर सुल्तान इल्तुतमिश का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर न्याय प्राप्त कर सकता था। न्याय व्यवस्था के हेतु अलग काजी भी थे। इल्तुतमिश न्यायप्रिय ही नहीं दानशील सुलतान भी था। "तबकात-ए-नासिरी" के रचियिता मिनहाज-ऐ-सिराज ने अपने इस ग्रंथ में लिखा है कि 'इल्तुतमिश दान में दूसरा हातिम था। यद्यपि सुलतान कुतुबुद्दीन अपने समय में लाखों की सम्पत्ति का दान देता था, किन्तु सुलतान शमसुद्दीन (इल्तुतमिश) एक लाख के स्थान पर सौ सौ लाख का दान दिया करता था। ... ..अपने राज्य के प्रारंभ से ही वह आलिमों (विद्वानों), सैयदों, मालिकों, अमीरों तथा सद्रों को हजार लाख से भी अधिक दान देता था। ......उस बादशाह की दानशीलता के कारण इस शहर (दिल्ली) में लोग भिन्न-भिन्न भागों से आते थे।" इल्तुतमिश ने अपने इन प्रशासकीय कार्यों से राज्य में शान्ति और सुरक्षा ही स्थापित नहीं की, अपितु दिल्ली में प्रथम बार इस्लामी निरंकुश सैनिक राजतंत्र की स्थापना की। उसने मुस्लिम निरंकुश शासन की ओर प्रथम कदम उठाया और मुस्लिम

शासन की वह रूपरेखा तैयार की, वह ढांचा बनाया जिस पर से आगे के सुलतानों और शासकों नें प्रशासन का भवन खड़ा किया । उसने अपनी दृढ़ और बुद्धिमत्तापूर्ण नीति मे दिल्ली राज्य में एकता कायम की । वुल्जे हेग का मत है कि वह असाधारण रूप से योग्य शासक था। इतिहासकार बर्नी लिखता है कि इल्तुतमिश की मृत्यु बहुत समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी जन-साधारण को उसके समृद्धिशाली और गौरवपूर्ण शासन का स्मरण कराती रही ।

यह निर्विवाद है कि उसने हिन्दुओं और शियाओं के प्रति धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता, अनुदारता और निर्मम अत्याचार की नीति अपनायी। विधर्मी लोग उसकी असहिष्णुता, धर्मांधता और कट्टरता के शिकार हुए, परन्तु वह सब तत्कालीन परिस्थितियों, धार्मिक भावनाओं और मान्यताओं का परिणाम था, व्यक्तिगत कठोरता का फल नहीं। इस धार्मिक नीति का दूसरा अंग यह भी है कि उसने धर्म और राजनीति के कुशल सम्मिश्रण से उसने अपनी व्यक्तिगत स्थिति भी सुदृढ़ कर ली और अपने वंशजों और उत्तराधिकारियों के लिए एक सुरक्षित साम्राज्य भी बना दिया ।

(६) **साहित्य तथा कला का संरक्षक**–उसे कला तथा साहित्य से भी अभिरूचि थी । वह लेखकों और विद्वानों के गुणों की प्रशंसा करता था और उनको प्रश्रय देकर आदर भी करता था । मध्यएशिया में मंगोलों के अन्याचारों और दुर्व्यवहार से पीड़ित होंकर अनेक प्रसिद्ध विद्वान, कवि, लेखक, अमीर, वजीर भाग कर भारत आये थे और इल्तुतमिश ने उन्हें शरण दी। उसकी राजसभा में उच्चकोटि के विद्वान थे। उनके संरक्षण के प्रति वह सदा सजग रहता था। मिनहाज-उस सिराज, रुहानी और बगदाद के वजीर फक्र-उल-मुल्क-उसामी के प्रति उसनें उदारतापूर्ण व्यवहार किया । स्थापत्य कला से भी उसे प्रेम था । दिल्ली में प्रसिद्ध कुतुबमीनार के निर्माण का प्रारंभ कुतुबुद्दीन ऐबक ने किया था, परन्तु इसके समय इसकी पहिली मंजिल ही बनकर तैयार हुई थी और ऐबक की मृत्यु हो गयी । पर इस मीनार का शेष निर्माण कार्य इल्तुतमिश ने ही पूरा किया । आज भी विशाल कुतुबमीनार जो अपने सौन्दर्य और शिल्प कला में अद्वितीय है, इल्तुतमिश की कलाप्रियता का ज्वलंत उदाहरण है । इस मीनार के अतिरिक्त उसने अन्य मस्जिदें भी बनवायीं ।

इल्तुतमिश का इतिहास में स्थान––मध्ययुगीन भारत के इतिहास में दिल्ली के नरेशों में इल्तुतमिश का स्थान ऊंचा है । तेरहवीं सदी के साम्राज्य निर्माताओं में इल्तुतमिश का एक विशिष्ट स्थान है। वह एक विजेता ही नहीं था, अपितु एक अच्छा शासक भी था। अपने अभियानों और दिग्विजयों से उसने साम्राज्य का निर्माण किया और उसकी सीमाओं में वृद्धि की। दिल्ली की तुर्की सल्तनत को स्थायित्व प्राप्त करने में उसने बड़ा योग दिया। उसने अपनी दृढ़ और बुद्धिमत्ता पूर्ण नीति से साम्राज्य में प्रशासकीय सुधार किये, राज्य में एकता स्थापित की, मुस्लिम शासन की रूप-रेखा निर्मित की, इस्लामी निरंकुश शासन व सत्ता को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रथम चरण उठाये। कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में दिल्ली सल्तनत का प्रारूप तैयार करने वाला था और इल्तुतमिश इस दिल्ली सल्तनत का प्रथम संगठनकर्ता और सफल शासक था। उसने

अपनी विजयों और प्रशासन से दिल्ली सल्तनत को ऐसा स्थायित्व प्रदान किया, ऐसा दृढ़ और शक्तिशाली बनाया कि उससे खिलजी साम्राज्यवाद का मार्ग प्रशस्त और सुलभ हो सका।

भारत में इल्तुतमिश मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक– कतिपय विद्वानों का मत है कि इल्तुतमिश भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। इसके लिये निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये हैं।

(१) इल्तुतमिश के पूर्व आठवीं सदी से इस्लाम के अनुयायियों के सैनिक अभियान और आक्रमण भारत पर होने लगे थे और उत्तरी भारत में सर्व प्रथम मुस्लिम आक्रमणकारी अरब लोग थे। उन्होंने सिंध को जीतकर वहाँ अपना राज्य स्थापित कर दिया था, परन्तु इसे स्थायित्व नहीं प्राप्त हुआ था। अरबों की सिंध-विजय भारतीय इतिहास में परिणामहीन विजय मानी गयी है। सिंध में अरबों के राज्य और शक्ति का उन्मूलन हो गया।

(२) अरब के बाद गजनी के सुलतान महमूद ने नवीन मार्ग से भारत पर सत्रह आक्रमण किये। उसके आक्रमणों का प्रमुख उद्देश्य भारत की अपार धन संपत्ति, रत्नराशि को लूटना, मंदिरों और पवित्र स्थानों को विध्वंस करना और मूर्ति भजन के कार्य करना था। जहाँ तक भारत का संबंध है वह एक बड़े पैमाने पर लूटने वाला डाकू था। वह भारत में स्थायी राज्य स्थापित नहीं करना चाहता था। वह झंझावात और हिमपात की भांति आया और तूफान की भाँति चला गया।

(३) महमूद गजनवी के बाद भारत में मुस्लिम राज्य और सत्ता स्थापित करने के उद्देश्य से मुहम्मद गोरी ने बारहवीं सदी के अन्त में भारत पर आक्रमण किये। सन् ११९२ में तराइन के द्वितीय युद्ध में भारत के तत्कालीन शक्तिशाली सम्राट पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गोरी ने परास्त करके दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित कर भारत के प्रथम मुस्लिम साम्राज्य की नींव डाली और धीरे धीरे उसने उत्तरी भारत के अनेक राजाओं को नत् मस्तक कर दिया और अपने राज्य का विस्तार किया। पर मुहम्मद गोरी स्वयं भारत में नहीं रहना चाहता था। उसे गजनी और गौर प्रदेशों की जलवायु उपयुक्त थी और इनके प्रति वह अधिक अभिरुचि भी रखता था। इसलिये उसने अपने विश्वास पात्र सेवक और सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में अपना प्रतिनिधि शासक नियुक्त किया और वह भारत मे अपने जीते हुए प्रदेशों पर गजनी मे ही राज्य चलाता रहा। इस प्रकार मुहम्मद गोरी न तो स्वय भारत में रहा, न उसने यहाँ रह कर राज्य किया और न अलग राज्य-संस्थाएँ ही स्थापित की। यद्यपि उसने उत्तरी भारत के अनेक राज्यों को जीत लिया था और मुस्लिम राज्य की नींव डाली थी, पर वह भारतीय सुल्तान नहीं था। उसने मुस्लिम राज्य को कोई स्थायित्व नहीं प्रदान किया और न प्रशासन के कोई सुधार या शांति-व्यवस्था के प्रयास ही किये।

(४) कुतुबुद्दीन ऐबक सन् ११९२ से १२०६ तक भारत में मुहम्मद गोरी के प्रतिनिधि प्रशासक के रूप में रहा। मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद ऐबक गोरी के भारतीय साम्राज्य का स्वामी बना और उसने सन् १२०६ से १२१० तक सुल्तान

के रूप में दिल्ली में राज्य किया। उसने लगभग समस्त उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त कर ली थी और प्रथम बार दिल्ली में मुस्लिम सल्तनत की वास्तविक रूप से स्थापना की। उसने गजनी साम्राज्य से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर स्वतंत्र सुलतान के रूप में शासन किया। परन्तु वह भारत के मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक नहीं माना जाता क्योंकि—

(i) मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद ही उसका विस्तृत साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। भारत में भी चारों ओर विद्रोह होने लगे थे और कुतुबुद्दीन ऐबक को अपने चार वर्ष इन विद्रोहों का दमन करने में ही व्यतीत करना पड़े। उत्तर पश्चिम में तो भयानक संकट के बादल घिर आये थे और उन्हें छिन्न-भिन्न करने के पूर्व ही उसका देहावसान हो गया था। भारत के राजपूत नरेशों की भी शक्ति को वह पूर्ण रूप से नष्ट नहीं कर सका था। वे दिल्ली की अधीनता स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे। ताजुद्दीन यल्दौज ने, जो गजनी का सुल्तान था, ऐबक की स्वतंत्र सत्ता और राज्य को स्वीकार नहीं किया था। बंगाल और बिहार में खिलजी अमीरों की शक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही थी। ऐसे ही समय में कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु हो गयी और उसका राज्य डगमगा गया।

(ii) यद्यपि कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने वैवाहिक सम्बन्धों से अपने राज्य को कुछ अवधि तक सम्भाले रखा और प्रतिद्वन्दियों को शान्त रखा, परन्तु उनकी गिद्ध दृष्टि से वह अपना राज्य दीर्घकाल तक सुरक्षित नहीं रख सकता था।

(iii) कुतुबुद्दीन में सफल और सुयोग्य प्रशासक की प्रतिभा और गुणों का अभाव था। यद्यपि उसने एक नवीन राज्य की बागडोर संभाल ली थी, परन्तु प्रशासकीय सुधारों से उसे संगठित और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास नहीं किया। फलतः उसके शासन के अन्तिम चरण में ही उसका राज्य विश्रृंखलित होने लगा था।

(iv) कुतुबुद्दीन सुल्तान हो गया था, परन्तु वह दास ही माना जाता था। उसने अपने नाम से न तो खुतबा पढ़वाया और न अपने नाम की मुद्राएं प्रचलित कीं। ये दोनों ही स्वतन्त्र सुल्तान होने के चिन्ह माने गये हैं। ऐबक में इनका अभाव होना उसकी स्वतन्त्र सत्ता के अस्तित्व में संदेह उत्पन्न करता है।

(v) ऐबक को मुस्लिम जगत के राजनैतिक सम्राट और धार्मिक गुरु खलीफा से स्वतंत्र सुल्तान पद के लिये कोई प्रमाण पत्र नहीं प्राप्त हुआ था। खलीफा ने न तो उसे किसी विशिष्ट विरुद से विभूषित ही किया था और न सुल्तान का पद ही उसे दिया था। गजनी के सुल्तान गयासुद्दीन मुहम्मदगोरी ने उसे सुल्तान की पदवी अवश्य दी थी परन्तु उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं था। यह अधिकार तो खलीफा को था। इसलिये कुतुबुद्दीन ऐबक केवल दिल्ली और हांसी का प्रांतपति ही माना जा सकता है।

(vi) कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा स्थापित राज्य दृढ़ संगठित साम्राज्य नहीं था। वह तो केवल एक अव्यवस्थित और असंबद्ध संत्र सा था जिसे कुतुबुद्दीन का व्यक्तित्व अल्पकाल के लिये संभाले हुए था। ऐबक की मृत्यु के बाद ही यह छिन्न-भिन्न हो गया और उसका साम्राज्य विश्रृंखलित और विघटित हो गया।

(५) कुतुबुद्दीन का उत्तराधिकारी आरामशाह हुआ। वह सुल्तान हो गया

और अपने नामका खुतबा पढ़वाया। परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि वह कुतुबुद्दीन का पुत्र न होने से राजसिंहासन का हकदार नहीं था। दिल्ली और लाहौर के सामन्तों की पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता के कारण वह सुल्तान बन गया। इसके अतिरिक्त उसमें ऐसी वीरता, रणकुशलता और प्रतिभा नहीं थी कि वह विषम परिस्थितियों का सामना करता। उसमें सुल्तानोंचित गुणों का अभाव था। न वह सेना में लोकप्रिय था और न उसमें प्रशासन का अनुभव और योग्यता थी। सभी कुतुबी और मुइज्जी सामन्तों और खलीफा ने भी उसे सुल्तान नहीं माना था। ऐसी दशामें यदि आरामशाह पदासीन रहता तो वह दिल्ली सल्तनत से हाथ धो बैठता और वह मुस्लिम राज्य का विनाशक बन जाता।

(६) निकम्मे और शक्तिहीन आरामशाह को परास्त कर इल्तुतमिश दिल्ली का सुलतान बना। जिस समय वह सुलतान बना दिल्ली सल्तनत की शक्ति लगभग समाप्त हो चुकी थी। इससे इल्तुतमिश को प्रारंभ से ही सल्तनतके निर्माण का कार्य करना पड़ा।

(i) इल्तुतमिश ने अपनी प्रतिभा, वीरता, साहस और सैनिक गुणों से अपने प्रबल शक्तिशाली प्रतिद्वन्दियों, कुबैचा, यल्दोज, और अन्य सशक्त सामन्तों को परास्त कर दिया, उन्हें और उनकी शक्ति को ध्वंस कर दिया तथा भयंकर मंगोल नेता चंगेजखां और उसके नृशंस आक्रमण से दिल्ली सल्तनत की रक्षा की। उसने बंगाल और बिहार के विद्रोहियों को कुचलकर उस क्षेत्र को पुनः दिल्ली के अधीन कर दिया।

(ii) हिन्दुओं और राजपूत राजाओं की बढ़ती हुई शक्ति का उसने अन्त कर दिया। उसने न केवल उन राजपूत नरेशों को दिल्ली सुल्तान की अधीनता मानने के लिये विवश किया जिन्हें मुहम्मद गोरी और कुतुबुद्दीन ऐबक ने युद्धों में परास्त किया था, परन्तु कुतुबुद्दीन के देहावसान के बाद जो राजपूत स्वतन्त्र हो गये थे, उसने उन्हें तथा अन्य नरेशों को भी परास्त कर नत मस्तक किया और दिल्ली के अधीन कर लिया।

(iii) इल्तुतमिश ने प्रशासकीय सुधार करके प्रशासन को भी ठीक करने और साम्राज्य में आंतरिक शांति और व्यवस्था बनाये रखने के प्रयास किये। उसने निरंकुश मुस्लिम राजतंत्र की स्थापना की। यह निश्चित है कि उसने ये कार्य सैनिक शक्ति के आधार पर किये। परन्तु सैनिक शक्ति व सत्ता के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था, जिसके अनुकरण से शांति और प्रशासकीय व्यवस्था स्थापित की जा सकती थी।

(iv) उसने अपनी दृढ़ता, कूटनीति और दूरदर्शिता से भारत के मुस्लिम साम्राज्य को गजनी से प्रथक करके उसके स्वतन्त्र और स्थायी अस्तित्व को प्रतिष्ठित किया।

(v) इल्तुतमिश ने खलीफा से प्रमाणपत्र तथा अपने लिये विरुद प्राप्त करके अपने राज्य को नैतिक बल और वैधानिक शक्ति प्राप्त की तथा मुस्लिम जगत में मान्यता, प्रतिष्ठा और गौरव प्राप्त किया।

(vi) उसने अपने श्रेष्ठ चरित्र, सद्गुणों, और धर्मनिष्ठा से भी दिल्ली सल्तनत को अधिकाधिक बल प्रदान किया। वह धार्मिक विचार का व्यक्ति था और अपनी धर्मपरायणता से उसने अपनी राजसत्ता को मुसलमानों की दृष्टि में देवत्व प्रदान कर दिया था।

इस प्रकार इल्तुतमिश ने अपने कार्यों से न केवल दिल्ली के नवनिर्मित मुस्लिम राज्य को पतन के गर्त में गिरने से बचाया, अपितु दिल्ली सल्तनत को पुनः स्थापित किया। कुतुबुद्दीन के देहावसान के बाद उसका राज्य विघटित हो गया था। ऐबक ने दिल्ली के राज्य का प्रारम्भ किया। पर वह विशृंखलित हो, छिन्न-भिन्न हो गया। दिल्ली के इस साम्राज्य को इल्तुतमिश ने अपने ऊपर वर्णित कार्यों और सफलताओं द्वारा पुनः स्थापित, संगठित और सुरक्षित किया। इल्तुतमिश ने दिल्ली राज्य का निर्माण इतनी दृढ़ता और व्यवस्था से किया कि वह कालान्तर में स्थायी हो गया और सदियों तक चलता रहा। उसके द्वारा निर्मित साम्राज्य को आगे चलकर बलवन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक आदि सुलतानों ने संवारा और समृद्ध किया। पच्चीस वर्ष के अथक परिश्रम से इल्तुतमिश ने अपने उत्तराधिकारियों के लिये एक विशाल, सुसंगठित, सुव्यवस्थित और सुदृढ़ राज्य विरासत में छोड़ा था। वास्तव में उसने कुतुबुद्दीन के अधूरे कार्य को, उसके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य को, अपने विजयों और सद् प्रयत्नों से पूर्ण किया तथा उत्तरी भारत में शक्तिशाली तुर्की साम्राज्य की स्थापना की।

सारांश

इल्तुतमिश का प्रारम्भिक जीवन—**इल्तुतमिश तुर्कों के सरदार इलम खां का पुत्र था। उसे अपने पिता का अधिक प्यार प्राप्त था, इसलिये उसके अन्य बन्धु उससे ईर्षा करते थे और एक दिन उन्होंने उसे एक व्यापारी को बेच दिया। इस व्यापारी ने उसे दास बनाकर बेच दिया। अनेक हाथों दास के रूप में बिकने के बाद इल्तुतमिश कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा गजनी में खरीद लिया गया। कुतुबुद्दीनऐबक इल्तुतमिश के सद्गुणों, योग्यता, प्रतिभा और स्वामि-भक्ति से अधिक प्रसन्न हुआ और उसे उत्तरोत्तर ऊँचे पदों पर नियुक्त कर दिया। ऐबक ने अपनी पुत्री का विवाह भी इल्तुतमिश के साथ कर दिया और उसके पद व सम्मान को अधिक बढ़ा दिया। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के समय इलततमिश बदायूं का शासक था।**

इल्तुतमिश का सुलतान बनना—**आरामशाह कुतुबुद्दीन का उत्तराधिकारी सुलतान बना पर वह निकम्मा और अयोग्य था। इसीलिये दिल्ली के तुर्क सरदारों ने इल्तुतमिश को सुलतान बनने के लिए दिल्ली आमंत्रित किया। फलतः इल्तुतमिश दिल्ली आ गया और बाद में दिल्ली के पास आरामशाह को युद्ध में परास्त कर, उसे बन्दी बना, स्वयं सुलतान हो गया। कतिपय विद्वानों का मत है कि इल्तुतमिश का दिल्ली के सिंहासन पर कोई अधिकार नहीं था। उसने कुतुबुद्दीन के उत्तराधिकारी आरामशाह को पराजित कर बलात् उससे दिल्ली का सिंहासन अपहरण कर लिया। इल्तुतमिश "दास का दास" था और इसीलिये अनेक अमीर और सरदार उसे अपना सुलतान मानने को तैयार नहीं थे। आरामशाह का सिंहासन पर पैतृक अधिकार भी था। इस मत के विपरीत कुछ विद्वानों का तर्क है कि इल्तुतमिश सुलतान बनने के पूर्व ही दासता की मुक्ति का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर चुका था। दासता से मुक्त होने पर वह सुलतान बनने के लिए स्वतंत्र था। ऐबक के कोई**

पुत्र नहीं था, अपितु केवल तीन पुत्रियां ही थीं जिसमें स एक इल्तुतमिश को ब्याही गयी थी। पुत्र के अभाव में दामाद इल्तुतमिश का ऐबक का उत्तराधिकारी होना स्वाभाविक था। । लाहौर का महत्व रखने के लिए वहां के अमीरों ने आराम-शाह को सुलतान घोषित किया था। उनके प्रतिद्वंदी दिल्ली के अमीरों ने दिल्ली का महत्व बढ़ाने के लिए इल्तुतमिश को सुलतान निर्वाचित कर लिया। आरामशाह अयोग्य, शक्तिहीन और निकम्मा था और इल्तुतमिश ने उसे परास्त भी किया था। इसीलिये उसका सिंहासन पर न्याय संगत अधिकार था। उसका निर्वाचन और युद्ध में उसकी विजय-दोनों ही उसे सुलतान के सिंहासन का अधिकारी बना देते हैं।

इल्तुतमिश की कठिनाइयां और समस्याएँ--सुलतान बनने के बाद इल्तुतमिश को निम्नलिखित प्रतिद्वंदियों, कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा।

(१) स्वतंत्र शक्तिशाली तुर्की सामन्त--अनेक प्रभावशाली, सबल और स्वतन्त्र तुर्की सरदार इल्तुतमिश को दास का दास मानते थे। इसलिए वे उसकी अधीनता और प्रभुसत्ता को अंगीकार नहीं करते थे।

(२) सेना--इस समय सेना के दो शक्तिशाली गुट थे-एक लाहौर में और दूसरा दिल्ली में। उसे इन दोनों गुटों का विश्वास प्राप्त करना था। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने और अपने प्रतिद्वन्दियों का दमन करने तथा आंतरिक शांति स्थापित करने के लिये उसे सेना की सहायता और सहयोग की अत्यधिक आवश्यकता थी।

(३) साम्राज्य का विभाजन--कुतुबुद्दीन की आकस्मिक मृत्यु से साम्राज्य चार सबल शासकों में विभक्त हो गया था,(१) सिंध में कुबैचा, (२) लाहौर में तुर्की सरदार और उनका प्रतिनिधि आरामशाह, (३) दिल्ली में अलीइस्माइल और उसके साथी तुर्की अमीर और उनका प्रतिनिधि बदायूं का शासक इल्तुतमिश, (४) बंगाल और बिहार में अलीमर्दान खां।

(४) पश्चिमोत्तर सीमा-सुरक्षा—मध्यएशिया में तुर्कों और मंगोलों के संघर्ष के कारण अनेक मंगोल सामन्त और सेनानायक अफगानिस्तान और भारत की ओर आक्रमण करने की दृष्टि से बढ़ रहे थे तथा पंजाब के खोखर भी विद्रोहों और उत्पातों से शान्ति भंग कर रहे थे। इससे पश्चिमोत्तर क्षेत्र की सुरक्षा खतरे में पड़ गई थी।

(५) गजनी का ताजुद्दीन यल्दौज—मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद यल्दौज ने गजनी पर अपना अधिकार जमा लिया था और फलतः वह गजनी के भारतीय राज्य मुलतान, उच्छ, पंजाब और दिल्ली पर भी अपना दावा रखता था और इल्तुतमिश को अपने अधीन समझता था।

(६) सिंध का नासिरुद्दीन कुबैचा—सिंध के स्वतन्त्र शासक कुबैचा पंजाब के बहुत बड़े भाग पर अपना अधिकार करके दिल्ली पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का महत्वाकांक्षी था।

(७) खिलजी मलिक और अलीमर्दान खां—बिहार में खिलजी मलिक

और बंगाल में अलीमर्दान अलाउद्दीन का विरुद् धारण करके स्वतन्त्र शासक हो गये।

(८) राजपूत शासक और नरेश—जिन राजपूत हिन्दू नरेशों को मुहम्मद गोरी और ऐबक ने नतमस्तक कर अपने अधीन कर लिया था, वे फिर से तुर्की साम्राज्य की दुर्बलता का अवसर देखकर अपनी खोयी हुई आजादी और राज्य को पुनः प्राप्त करने के अवसर की ताक में बैठे थे। जालौर, रणथंभोर, कालिंजर के राजपूत नरेश स्वतन्त्र हो चुके थे और गहड़वाल के राजपूतों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिये थे।

(९) अस्त-व्यस्त प्रशासन—साम्राज्य में शासकीय अस्त-व्यस्तता और शिथिलता थी। दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव था। सामन्तवाद और इस्लाम धर्म राज्य के शक्ति स्तम्भ थे। इल्तुतमिश को मुस्लिम प्रशासन प्रणाली स्थापित करना थी, सामन्तों की शक्ति को कुचलकर सुलतान की प्रतिष्ठा, सत्ता और शक्ति में वृद्धि करना थी।

इल्तुतमिश द्वारा समस्याओं का सामना और उसकी सफलता—अपनी योग्यता, दक्षता, प्रतिभा और राजनैतिक दूरदर्शिता से इल्तुतमिश ने अपनी निम्नलिखित समस्याओं को हल कर लिया।

(१) सरदारों और अमीरों का दमन—इल्तुतमिश ने, उन कुतुबी और मुइज्जी सरदारों और अमीरों को जो उसे अपना सुलतान स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, सेना से परास्त किया और उनकी शक्ति तथा विद्रोहों का दमन किया और बदायूं, अवध, वाराणसी, तराई क्षेत्र तथा दिल्ली के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों के सामन्तों को भी अपनी प्रभुसत्ता मानने के लिये बाध्य किया।

(२) चालीस तुर्की अमीरों के दल का संगठन—स्वामिभक्त सामन्तों, और अधिकारियों का सहयोग और सहायता प्राप्त करने के लिये उसने चालीस तुर्की अमीरों का ऐसा दल संगठित किया जो पूर्णतया उसके अधीन हो। इसे "चालीस दासों का दल" कहा गया। इसी दल में से चयन करके उसने सेनानायक कर्मचारी और पदाधिकारी नियुक्त किये।

(३) ताजुद्दीन यल्दौज का दमन—गजनी पर अपनी प्रभुसत्ता प्रतिष्ठित करने के बाद यल्दौज ने पंजाब के कुछ भागों को भी अपने अधिकार में कर लिया और दिल्ली पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। ऐसी दशा में कठिनाइयों से घिरे होने के कारण इल्तुतमिश ने यल्दौज की अधीनता स्वीकार कर ली। इसी बीच मध्य एशिया में ख्वारिज्म के शाह ने गजनी पर हमला कर यल्दौज को वहां से खदेड़ दिया। अब यल्दौज ने भारत में आकर पंजाब और लाहौर को अपने अधिकार में करके दिल्ली की ओर कूच किया। सन् १२१५ में इल्तुतमिश और यल्दौज में तराइन के रणक्षेत्र में युद्ध हुआ जिसमें यल्दौज परास्त हुआ और बन्दी बनाकर बदायूं भेज दिया गया, जहां बाद में उसकी हत्या कर दी गयी। इस प्रकार इल्तुतमिश ने अपने प्रबल प्रतिद्वंदी और शत्रु से मुक्ति पायी।

(४) नासिरुद्दीन कुबैचा को अधीन करना—इल्तुतमिश ने सन् १२१७ में कुबैचा को पराजित कर उसे अपने अधीन कर लिया।

(५) ख्वारिज्म के शाह और चंगेज खां के खतरे का सामना—ख्वारिज्म के शाह सुलतान जलालुद्दीन मंगबरनी पर मंगोल नेता चंगेज खां ने आक्रमण किया और उसे परास्त कर भारत की ओर खदेड़ दिया। भारत में जलालुद्दीन ने पंजाब और लाहौर पर अपना अधिकार करके इल्तुतमिश से दिल्ली में शरण देने और चगेज खां से युद्ध करने के लिए सैनिक सहायता मांगी। इसी बीच चंगेज खां जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर आधमका। इल्तुतमिश समझता था कि जलालुद्दीन को शरण देने पर वह दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयास करेगा और चंगेज खां उसका पीछा करते हुए दिल्ली आकर बर्बरता, लूट और कत्ले आम मचा देगा। फलतः कूटनीति से इल्तुतमिश ने जलालुद्दीन से कह दिया कि भारत की जलवायु उसके उपयुक्त न होने से उसे दिल्ली में शरण प्राप्त नहीं होगी। निराश होकर जलालुद्दीन ने चंगेजखां की सेना से युद्ध किया और परास्त होने पर फारस लौट गया और उसके जाते ही चगेज खां भी भारत के सीमान्त क्षेत्र से चला गया। इल्तुतमिश भयानक संकट और शत्रु से बच गया।

(६) कुबैचा का अन्त—जलालुद्दीन, व चंगेजखां के भारत में आने से और अनेक खिलजी तुर्क सामन्तों के सीमान्त क्षेत्र में बस जाने से कुबैचा की शक्ति क्षीण हो गयी थी। ऐसे अवसर पर इल्तुतमिश ने कुबैचा के राज्य का अधिकांश भाग अपने अधिकार में करके सन् १२२८ में उस पर आक्रमण कर दिया। इससे घबराकर कुबैचा ने सिंध में भक्कर के दुर्ग में शरण ली। इल्तुतमिश ने उसे वहां सेना से घेर लिया और आत्म समर्पण के लिए आदेश दिया। ऐसा न करके उसने नाव में बैठकर भागना चाहा, पर नाव के डूब जाने से वह सिंध नदी में डूब कर मर गया। कुबैचा के अन्त से इल्तुतमिश ने अपना राज्य पश्चिमोत्तर क्षेत्र में खूब फैला लिया।

(७) गयासुद्दीन का दमन और बंगाल की विजय—बंगाल और बिहार में वहां के स्वतन्त्र और क्रूर शासक अलीमर्दान का वध करके हुसामुद्दीन इवाज ने बंगाल व बिहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और गयासुद्दीन के नाम से वहाँ का स्वतन्त्र सुलतान बन गया। इल्तुतमिश इस स्वतन्त्र सत्ता को सहन नहीं कर सका और उसने सन् १२२५ में गयासुद्दीन पर आक्रमण कर दिया। इल्तुतमिश की शक्ति और सेना से घबरा कर गयासुद्दीन ने उससे संधि करली और वार्षिक कर देकर उसे अपना सुलतान मान लिया। पर शीघ्र ही उसने यह संधि भंग कर दी। इस पर इल्तुतमिश ने अपने पुत्र नासिरुद्दीन महमूद को सेना सहित गयासुद्दीन पर आक्रमण करने के लिए भेजा, युद्ध हुआ जिसमें गयासुद्दीन परास्त हुआ और रणक्षेत्र में खेत रहा। परन्तु गयासुद्दीन के पुत्र बलका ने अपने आपको खिलजी सरदारों की सहायता से बंगाल और बिहार का स्वतन्त्र सुलतान घोषित कर दिया। किन्तु इल्तुतमिश ने उसे भी हराकर, उसका वध करवा कर बिहार और बंगाल में अलाउद्दीन जानी को अपना प्रतिनिधि शासक नियुक्त किया और उस प्रदेश को दिल्ली राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(८) खोखरों का दमन और सीमान्त क्षेत्र की रक्षा—पंजाब में युद्धप्रिय खूंखार खोखर जाति के विद्रोहों और लूटपाट के दमन के लिए इल्तुतमिश ने सेना भेजी, उपद्रव ग्रस्त क्षेत्रों में अनेक सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं और कई सैनिकों और सेनानायकों को खोखरों के ग्रामों में बसा दिया।

(९) राजपूत राज्यों पर विजय—दिल्ली सुलतान की क्षीण शक्ति होने पर और अन्य समस्याओं में संलग्न रहने पर अनेक राजपूत हिन्दू नरेशों ने अपनी खोई हुई राजशक्ति और स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर ली। जालोर के चौहान नरेशों और रणथंभोर के बल्लनदेव ने, मध्यभारत व बुन्देलखन्ड में प्रतिहारों और चन्देल राजाओं ने स्वतन्त्र होकर अपने राज्य और शक्ति का विस्तार कर लिया। अजमेर, बयाना, अलवर, बदायूं, कन्नौज और वाराणसी भी तुर्कों से स्वतन्त्र हो गये। फलतः इल्तुतमिश ने रणथंभौर, मंदोर और नागोद (जोधपुर) पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया और इसके बाद दो वर्ष में अजमेर, बयाना, तहनगढ़, सांभर और जालोर को भी परास्त कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। एक वर्ष के संघर्ष के बाद उसने ग्वालियर दुर्ग पर भी अपना अधिकार कर लिया। यद्यपि कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण करके उसे भी उसने जीत लिया था, पर बाद में उसकी सेना को राजपूतों ने खदेड़ दिया। यद्यपि गुजरात के आक्रमण पर उसे सफलता नहीं मिली, पर विदिशा और उज्जैन के हमले, लूटमार और मंदिरों व मूर्तियों की तोड़-फोड़ में उसे अधिक सफलता प्राप्त हुई। दोआब के राजपूत राज्यों और उनके दुर्गों पर भी उसने अपना अधिकार जमा लिया।

इल्तुतमिश के युद्धों का परिणाम और महत्व—इल्तुतमिश के निरन्तर सैनिक अभियानों और युद्धों का परिणाम यह हुआ कि, दिल्ली सल्तनत को स्थायित्व प्राप्त हो गया और इल्तुतमिश की स्थिति पहिले की अपेक्षा अधिक दृढ़ हो गयी। उसने गोरी और ऐबक द्वारा जीते हुए भारतीय प्रदेशों पर ही अधिकार नहीं किया, अपितु कुछ नवीन प्रदेश जीत कर दिल्ली सल्तनत की सीमाएँ बढ़ाई। राजपूत विद्रोहों का दमन करके अनेक राजपूत राज्यों को दिल्ली के अधीन कर लिया।

खलीफा का प्रमाण पत्र—इल्तुतमिश के इस्लामी राज्य के विस्तार से प्रसन्न होकर मुस्लिम जगत के धार्मिक गुरु और राजनैतिक सम्राट बगदाद के खलीफा ने, इल्तुतमिश को दिल्ली का सुलतान मान करके उसे "नासिर अमीर उलमोमिनीन" (मुसलमानों के प्रधान या खलीफा के सहायक) की पदवी दी तथा इसके लिए प्रमाण पत्र भी भेजा। अब इल्तुतमिश ने अपने अरबी स्वरूप के सिक्कों पर खलीफा का नाम भी अंकित करवाया। इस प्रमाण पत्र से दिल्ली के सिंहासन पर इल्तुतमिश का वैधानिक अधिकार हो गया। उसके राज्य को नैतिक और धार्मिक बल प्राप्त हो गया तथा इस्लामी जगत में उसकी प्रतिष्ठा और गौरव में वृद्धि हुई और उसके प्रति विरोध कम हो गया।

शियाओं का विद्रोह—इल्तुतमिश ने सुन्नी होने से सुन्नी मतावलम्बियों को ऊँचे पद दिये और इससे राज्य में मुल्ला, मौलवियों का भी अधिक प्रभाव रहा। इस धार्मिक कट्टरता से रुष्ट होकर शियाओं के इस्लाइमिया सम्प्रदाय के लोगों ने विद्रोह

कर इल्तुतमिश की हत्या करने का प्रयास किया, पर वे असफल रहे और उनके प्रमुख व्यक्तियों को प्राण दण्ड दिया गया।

इल्तुतमिश की मृत्यु—लगातार युद्ध करते रहने से उसका स्वास्थ्य खराब हो गया और वह रोग ग्रस्त होकर सन् १२३६ में मर गया।

इल्तुतमिश की शासन व्यवस्था—जिस समय इल्तुतमिश सुलतान बना, प्रशासन में स्थिरता और दृढ़ता नहीं थी, शासन सुधारों की ओर ध्यान नहीं दिया गया था, जनहित की भावना का अभाव था। पर इल्तुतमिश ने युद्धों में लगे रहने पर भी प्रशासन की ओर ध्यान दिया। इल्तुतमिश ने मुद्राओं में सुधार करके अरबी ढंग के चाँदी व सोने के नये सिक्के चलाये। न्याय-प्रिय सुलतान होने से इल्तुतमिश ने न्याय चाहने वालों की फरियाद सुनने और शीघ्र न्याय देने की विशेष व्यवस्था की। उसने नगरों में न्याय करने के लिये अमीर दाद और काज़ी भी नियुक्त किये। उसने उन कुतबी और मुइज्जी अमीरों और अधिकारियों को जो उसका विरोध करते थे, उनको पदों से अलग कर दिये। उसने चलीस अमीरों का ऐसा दल संगठित किया जो उसके प्रति अधिक स्वामिभक्त और निष्ठावान थे और इस दल के श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्रशासन में अधिकारियों और कर्मचारियों के पदों पर नियुक्त किया। शासन को अधिक दक्ष बनाने के लिये उसने प्रतिभावान भारतीय और विदेशी मुसलमानों को भी ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। आन्तरिक शान्ति के लिये उसने विद्रोहों और उत्पातों के स्थानों में तथा सामरिक महत्व के स्थानों में तुर्की सैनिकों और अधिकारियों को बसा दिया। उसने अधिकारियों और सैनिकों को नियमित और मासिक वेतन देने की अपेक्षा जीवन निर्वाह के लिये जागीरें प्रदान कीं। इल्तुतमिश विद्वानों और लेखकों को राज्याश्रय भी देता था। मध्यएशिया के मुस्लिम राजसभाओं से भागे हुए अनेक विद्वानों और लेखकों को उसने अपने दरबार में संरक्षण दिया था। इल्तुतमिश ने कुतबुद्दीन द्वारा प्रारम्भ की गयी कुतुब मीनार को पूर्ण करवाया और कुछ मस्जिदों को भी बनवाया।

इल्तुतमिश की धार्मिक नीति—सुन्नी होने से इल्तुतमिश में धार्मिक कट्टरता थी। उसमें धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का अभाव था। मुल्ला और मौलवियों को विशेष अधिकार प्राप्त थे। उलमा वर्ग का खूब प्रभाव था। इसमें ये अन्य सम्प्रदाय के लोगों, शियाओं और हिन्दुओं को पीड़ित करने लगे। हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार किये गये। उनके मंदिरों, पवित्र स्थानों को लूटा गया और विध्वन्स किया गया।

इल्तुतमिश के कार्यों का मूल्यांकन

(१) चरित्र और व्यक्तित्व—इल्तुतमिश सुन्दर, सुडोल और आकर्षक था। उसमें अनेक गुण थे, जैसे उदारता, दयालुता, सहानुभूति, संयम, साहस, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, दृढ़ता आदि। अपने इन गुणों, प्रतिभा, योग्यता, श्रेष्ठ चरित्र और व्यक्तित्व के कारण ही वह एक दास की श्रेणी से पदोन्नति करते-करते सुलतान बन गया था। मध्ययुग में वह एक असाधारण, महत्वपूर्ण और गौरवशाली कार्य था।

(२) धर्मनिष्ठ, किन्तु धर्मान्ध और असहिष्णु–इस्लाम धर्म का निष्ठावान सुन्नी मत का अनुयायी होने के कारण इल्तुतमिश प्रतिदिन पांच बार नमाज पढ़ता था और अन्य धार्मिक कार्य करता था। वह धार्मिक प्रवृति का होने से धार्मिक व्यक्तियों, काजियों और उलमाओं का बड़ा आदर करता था। परन्तु वह शियाओं और हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु और अनुदार था। अनेक हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया गया और हिन्दू मंदिरों और पवित्र स्थानों को विध्वन्स किया गया।

(३) साहसी सेनानायक और विजेता—वह एक वीर, साहसी, सजग सेना नायक और सफल विजेता था। उसकी सैनिक प्रतिभा व वीरता के कारण वह अमीरों द्वारा सुलतान निर्वाचित कर लिया गया था। इन्हीं गुणों के कारण उसने यल्दौज व कुबैचा जैसे प्रबल प्रतिद्वंदियों, शत्रुओं और विद्रोही राजपूत नरेशों को परास्त कर दिया, विरोधी सामन्तों को नतमस्तक किया, विनाश और विघटनकारी प्रवृत्ति से राज्य की रक्षा की, मंगोलों के आक्रमणों और खोखरों के उत्पातों से राज्य को सुरक्षित रखा। उसने अपने युद्धों और विजयों से भारत में तुर्कों की सत्ता को दृढ़ और स्थायी कर दिया, दिल्ली के सैनिक राजतन्त्र की नींव को मजबूत कर दिया तथा उसके विकास के मार्ग को प्रशस्त कर दिया।

(४) दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ—वह एक सफल कूटनीतिज्ञ था। उसने अपनी दूरदर्शिता और कूटनीति का परिचय, अल्पकाल के लिये यल्दौज की प्रभुता स्वीकार करने और बाद में उसे परास्त कर वध करवा देने में, कुबैचा के साथ प्रारम्भ में संधि और बाद में उस पर भयंकर आक्रमण करने में मंगोलों और ख्वारिज्म के शाह के साथ व्यवहार करने में, तथा खलिफा से राज्य की स्वीकृति के हेतु प्रमाणपत्र प्राप्त करने में दिया। राज्य की बाह्य नीति में उसकी कुशलता, दृढ़ता और कूटनीति स्पष्ट कहलाती है।

(५) योग्य शासक—इल्तुतमिश दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ होने के साथ-साथ योग्य शासक भी था। प्रशासन की ओर उसने ध्यान दिया। उसने कुतुबुद्दीन ऐबक से प्राप्त विश्रृंखलित और अरक्षित राज्य को अपनी प्रतिभा और सुधारों से सगठित किया। उसने चोरों, डाकुओं और उपद्रवियों को दंडित और कुचलकर आन्तरिक शान्ति स्थापित की और तत्कालीन सिक्कों में सुधार करके उसने नये चांदी व सोने के सिक्के प्रचलित किये। उसने ऐसे कर्मचारी और पदाधिकारी नियुक्त किये जो अधिक सुयोग्य और स्वामिभक्त थे। न्यायप्रिय सुलतान होने से उसने फरियाद सुनने और न्याय देने के लिये घंटियों की व्यवस्था की थी और काजी तथा अमीरदाह नियुक्त किये और स्वयं भी सर्वोच्च न्यायाधीश बनकर न्याय करता था। वह दानशील सुलतान भी था और लाखों की सम्पत्ति विद्वानों, सैयदों, मलिकों, सद्रों आदि को दान करता था। उसने अपने शासकीय कार्यों से शान्ति, व्यवस्था और सुरक्षा स्थापित की तथा इस्लामी निरंकुश सैनिक राजतंत्र को प्रतिष्ठित किया। यद्यपि उसने हिन्दुओं और शियाओं के प्रति धर्मान्धता, असहिष्णुता और अत्याचार की नीति अपनाई, पर यह बात तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों, धार्मिक भावनाओं और मान्यता का फल था, व्यक्तिगत कठोरता का परिणाम नहीं।

(६) साहित्य और कला का संरक्षक—इल्तुतमिश को कला और साहित्य से अभिरुचि थी। मध्यएशिया के अनेक विद्वानों, लेखकों, कवियों, अमीरों और वजीरों को उसने अपनी राजसभा में आश्रय दिया था। उसकी राजसभा में उच्चकोटि के विद्वान थे, जैसे मिनहाज-उस-सिराज, रुहानी और फक्र-उल-मुल्क उसामी। स्थापत्य कला से भी उसे प्रेम था। उसने कुतुबमीनार के अवशेष कार्य को पूर्ण करवाया और अन्य मस्जिदें बनाई।

इतिहास में स्थान—मध्ययुगीन भारत के इतिहास में इल्तुतमिश का श्रेष्ठ ऊंचा स्थान है। वह एक विजेता ही नहीं, अपितु एक अच्छा प्रशासक भी था। उसने भारत मे निरंकुश इस्लामी राजतंत्र को प्रतिष्ठित किया और उत्तरी भारत में शक्तिशाली तुर्की साम्राज्य को स्थापित किया। उसने दिल्ली सल्तनत को ऐसा स्थायित्व और दृढ़ता प्रदान की कि उसके आधार पर अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने अपने साम्राज्यवाद को प्रशस्त किया। वास्तव में इल्तुतमिश भारत में मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक था।

———

अध्याय ८

सुलतान रुकुनुद्दीन फिरोजशाह और सुलताना रजिया

सुलतान रुकुनुद्दीन फिरोजशाह--इल्तुतमिश का सबसे बड़ा पुत्र नासिरुद्दीन महमूद जो बड़ा योग्य और प्रतिभाशाली था, इल्तुतमिश के जीवन-काल में ही मर चुका था। उसका दूसरा पुत्र रुकुनुद्दीन फिरोजशाह प्रमादी, उत्तरदायित्वहीन और भोगविलासी था। इसलिये सुलतान इल्तुतमिश ने अपनी योग्यतम पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी निश्चित किया, किंतु अमीरों और सामन्तों ने इसका विरोध किया। उसने विरोधी सरदारों से कहा कि "मेरे पुत्र जीवन के विलासमय आनन्द में मग्न रहते हैं। उनमें राज्य कार्य सम्भालने की योग्यता नहीं है। मेरी मृत्यु के बाद यह स्पष्ट हो जायगा कि इनमें से कोई भी मेरी पुत्री के समान योग्य नहीं।" परन्तु इल्तुतमिश के देहावसान के पश्चात् ही सरदारों ने इल्तुतमिश के निर्णय को अस्वीकृत कर दिया। उन्हें एक स्त्री का शासन और अधीनता सर्वथा अमान्य थी। अतएव इल्तुतमिश के आँख मूँदते ही अमीरों ने उसके दूसरे ज्येष्ठ जीवित पुत्र रुकुनुद्दीन फिरोज को दिल्ली के राजसिंहासन पर बिठा दिया और उसे सुलतान घोषित कर दिया।

रुकुनुद्दीन आलसी, विलासी और अयोग्य सुलतान था तथा अश्लील और असभ्य कार्यों में राजकोष का धन व्यय करता था। वह प्रायः मद्यपान में मस्त होकर, हाथी पर सवार होकर, दिल्ली के प्रमुख राजमार्गों पर घूमता-फिरता था और स्वर्ण-मुद्राओं को लुटाता फिरता था। उसके ऐसे कार्यों और प्रशासन के प्रति उपेक्षा के कारण उसकी माता शाहतुर्कान ने शासन सत्ता अपने हाथों में ले ली। वह मदान्ध, विवेकशून्य और निर्दयी रानी थी। वह अपने अनुपम रूप-लावण्य के कारण राजप्रासाद की निम्नवंशीय साधारण चेरी से इल्तुतमिश की पटरानी बन गयी थी। फिरोज रुकुनुद्दीन की अयोग्य और विलासिता से तथा शाहतुर्कान की निर्दयता और अपमानजनक व्यवहार से वजीर कमालुद्दीन जुनैदी और अन्य सामन्तों ने सुलतान और उसकी माता दोनों का विरोध किया, तीव्र असन्तोष बढ़ने लगा, तथा चारों ओर विद्रोह होने लगे। सुलतान और उसकी माता दोनों ने इल्तुतमिश के एक पुत्र कुतुबुद्दीन की आँखें निकलवा लीं और इसके बाद शाहतुर्कान ने सुलतान रुकुनुद्दीन का मार्ग प्रशस्त और निष्कंटक करने के लिये रजिया का वध करने का षड़यन्त्र रचा। पर रजिया ने सतर्कता से काम लिया। उसने रुकुनुद्दीन के विरुद्ध तीव्र असन्तोष और विद्रोहों की लहर का लाभ उठाया। न्याय प्राप्त करने के लिये एक दिन लाल वस्त्र धारण कर नमाज के बाद लोगों और सैनिक अधिकारियों के समक्ष आकर रजिया ने फिरोज रुकुनुद्दीन के विरुद्ध न्याय दान की और सहायता की याचना की। इस समय रुकुनुद्दीन दिल्ली से

बाहर गया हुआ था। रजिया ने कहा कि वह सुलतान इल्तुतमिश की वास्तविक उत्तराधिकारिणी है और यदि उसे राजसत्ता सौंपी जाय तो वह राज्य में शांति-व्यवस्था स्थापित कर सकेगी। उसने उपस्थित लोगों को अपने पिता इल्तुतमिश के अच्छे कार्यों की भी याद दिलाई। उसकी मार्मिक अपील से प्रभावित होकर जनसाधारण तथा सैनिक अधिकारियों ने उसका साथ दिया तथा रुकुनुद्दीन के दिल्ली लौट आने के पूर्व ही शाहतुर्कान को बंदी बना लिया। कुछ समय बाद फिरोज रुकुनुद्दीन भी पकड़ा गया और सन् १२३६ में उसकी हत्या करदी गयी और इस घटना के बाद शीघ्र ही रजिया ने राजसत्ता अपने हाथों में ले ली। इस प्रकार इल्तुतमिश के देहावसान के बाद लगभग सात माह तक फिरोज रुकुनुद्दीन दिल्ली का सुलतान रहा और उसके वध के बाद रजिया ने दिल्ली के राजसिंहासन को सुशोभित किया।

रजिया सुलताना (सन् १२३६--४०)

रजिया की राजकीय शिक्षा—रजिया इल्तुतमिश की पुत्री थी और उसकी माता सुलतान इल्तुतमिश की पटरानी थी और प्रमुख राजप्रासाद में रहा करती थी। उसके बाल्यकाल में इल्तुतमिश उसके गुणों और व्यवहार से प्रभावित हुआ और उसने रजिया को राजकुमारों के समान शिक्षा-दीक्षा दी। उसने रजिया को अक्षर-ज्ञान और धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ घोड़े की सवारी करना, तलवार व तीर चलाना, भाले का उपयोग करना, युद्ध में सैनिकों का संचालन करना, युद्ध में मोर्चे को बाँधना व तोड़ना, आदि विभिन्न प्रकार की सैनिक शिक्षा दी। उसने अपने राज्योचित गुणों का और प्रशासन करने की प्रतिभा का परिचय इल्तुतमिश को अनेक बार दिया। सुलतान इल्तुतमिश ने भी अनुभव कर लिया था कि उसके पुत्र अयोग्य, दुर्बल और विलासप्रिय हैं और उसके उत्तराधिकारी बनकर शासन नहीं सम्भाल सकेंगे। इसलिये वह रजिया की ओर अधिक आकर्षित हुआ।

रजिया को उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा—रजिया सुयोग्य थी और प्रशासन के कार्यों में उसे अधिक अभिरुचि थी। इसलिये सुलतान इल्तुतमिश ने सन् १२३१–३२ में जब वह ग्वालियर-विजय के लिये गया था, रजिया पर राजधानी दिल्ली के प्रशासन और सुरक्षा का भार सौंपा था। रजिया ने सुलतान की अनुपस्थिति में ऐसी दक्षता एवं योग्यता से प्रशासन का कार्य संपादित किया कि इल्तुतमिश उससे अत्यधिक प्रसन्न हो गया और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय किया। इल्तुतमिश ने उसकी वीरता, योग्यता, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता, कार्यक्षमता से प्रभावित होकर यह निश्चय किया कि वह उसके देहावसान के बाद दिल्ली के राजसिंहासन पर सुलताना के रूप में आसीन हो। अपने इस निर्णय से उसने अपने मंत्रियों और अमीरों को अवगत कराया। मिनहाज-ए सिराज ने अपने ग्रन्थ तबकाते नासिरी में लिखा है कि, "सुलतान ने रजिया के व्यक्तित्व में, वीरता, बुद्धिमत्ता और शक्ति के चिन्ह देखे। इसी कारण उसने अपने मंत्री को आदेश दिये कि वह उसके पश्चात् रजिया का नाम ही दिल्ली के सिंहासन के लिये उत्तराधिकारिणी के रूप में लिख दे।" वयस्क राजकुमारों के जीवित होते हुए एक युवती स्त्री को राज-काज सौंपने का निर्णय तुर्क

अमीरों को रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। वे एक स्त्री को सुलतान मानने में अपना अपमान समझते थे। इल्तुतमिश के प्रभाव और व्यक्तित्व के कारण उस समय उन्होंने उसका विरोध नहीं किया और यह आश्वासन दे दिया कि वे उसकी मृत्यु के बाद रजिया को ही भारत का सुलतान मानेंगे। परन्तु इल्तुतमिश का स्वप्न पूरा न हो सका।

रजिया का सिंहासनारोहण—फिरोज रुकुनुद्दीन के वध के बाद रजिया ९ नवम्बर १२३६ को दिल्ली के सुलतान पद पर आसीन हुई। पूर्व मध्यकालीन भारत में मुस्लिम राज्यों में रजिया एकमात्र स्त्री थी जिसे इतना उच्च पद प्राप्त करने का गौरव प्राप्त हुआ था।

रजिया के सुलताना होने के कारण—रजिया को सुलतान पद प्राप्त करने में निम्नलिखित परिस्थितियाँ सहायक हुईं।

(१) **रजिया के राजकीय गुण**—रजिया इल्तुतमिश की अत्यन्त ही प्रिय पुत्री थी। वह उसे अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करता था। क्योंकि वह प्रतिभावान और राजकीय गुणों से सम्पन्न थी। उसमें सुलतान और प्रशासक के गुणों का बाहुल्य था। इसलिये इल्तुतमिश के स्वामिभक्त और समझदार अमीर रजिया को सम्मान और आदर की दृष्टि से देखते थे।

(२) **रुकुनुद्दीन की विलासिता और तुर्कान के अत्याचार**—फिरोज रुकुनुद्दीन की विलासिता, दुराचार, व्यभिचार और निकम्मेपन से तथा उसकी माता शाह तुर्कान के अत्याचार और नृशंसता के व्यवहार से अनेक अमीर और सरदार इन दोनों से अत्यधिक असन्तुष्ट होकर रजिया की ओर झुक गये थे। रजिया को वध करने के शाह तुर्कान के षड़यन्त्र के कारण इन सरदारों और अमीरों की सहानुभूति रजिया की ओर अधिकाधिक बढ़ गयी थी।

(३) **शान्ति और सुव्यवस्था की आवश्यकता**—फिरोज रुकुनुद्दीन अयोग्य, निकम्मा और विलासी सुलतान था और उसकी परामर्शदात्री एवं राजप्रभुता को सम्भालने वाली शाह तुर्कान भी मदान्ध, अदूरदर्शी, निर्दयी और अधिकार-पिपासु रानी थी और जब उसे बन्दी बना लिया गया तब अमीरों और सरदारों के सम्मुख रुकुनुद्दीन को सिंहासनच्युत कर रजिया को सुलतान बनाने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा भी नहीं था। राज्य में चतुर्दिक विद्रोह हो रहे थे और शांति-व्यवस्था का अभाव था। इन विद्रोहों का दमन करने, शाँति बनाये रखने के लिये और रजिया के प्रति सहानुभूति रखने वाली जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये अमीरों और सरदारों ने रजिया को राजसिंहासन पर बिठाना श्रेयस्कर समझा। वे जन साधारण के सम्मुख यह स्पष्ट करना चाहते थे कि सुलतान इल्तुतमिश की इच्छा रजिया को उसका उत्तराधिकारी बनाकर, पूर्ण की जा रही है।

(४) **वजीर कमालुद्दीन जुनैदी से ईर्षा-द्वेष**—सुलतान रुकुनुद्दीन का वजीर कमालुद्दीन जुनैदी था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली वजीर था। उसने राज्य की सर्वोच्च शक्ति अपने हाथों में केन्द्रीभूत करली थी। इससे अनेक तुर्की अमीर और सरदार उससे ईर्षा-द्वेष रखने लगे थे। वे उसे अपने पद से हटाने और उसकी सर्वोच्च शक्ति का उन्मूलन करने को उत्सुक थे।

इन्हीं कारणों से फिरोज रुकुनुद्दीन का वध कर दिया गया और रजिया को सुलतान बना दिया गया।

रजिया की समस्याएं और कठिनाइयां—सुलतान बनने के बाद शीघ्र ही रजिया को अनेक विषम कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा। इनमें से निम्नलिखित प्रमुख थीं—

(१) **आंशिक समर्थन**—यद्यपि रजिया सुलतान के पद पर आसीन हो गयी थी, परन्तु उसे राज्य के समस्त सामन्तों, सरदारों और अधिकारियों का समर्थन प्राप्त नहीं था। उसे केवल थोड़े से फिरोज रुकुनुद्दीन के विरोधी अमीरों और सरदारों तथा दिल्ली के मुस्लिम नागरिकों का ही समर्थन प्राप्त था। सुलतान का तत्कालीन प्रबल सशक्त प्रधानमंत्री कमालुद्दीन जुनैदी भी रजिया के विपक्ष में था। उसके साथ में कतिपय प्रांतीय सूबेदार, हाकिम तथा अन्य सरदारगण भी थे।

(२) **विरोधी और प्रतिद्वन्दी**—रजिया के कतिपय बंधु अभी भी जीवित थे और वे शक्ति के आधार पर दिल्ली सिंहासन को प्राप्त करने का प्रयास करने को उद्यत थे। रजिया के ये बंधुगण और उनके समर्थक रजिया के विरुद्ध सतत क्रियाशील थे। ये उसके विरोधी और प्रतिद्वन्दी थे। कुछ अमीर फिरोज रुकुनुद्दीन के स्थान पर इल्तु-तमिश के एक अन्य पुत्र बहरामशाह को राजसिंहासन पर आसीन करने का षड्यन्त्र कर रहे थे।

(३) **राजपूतों के विद्रोह**—राजपूत नरेश जिन्हें विवश होकर दिल्ली के सुलतान की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी, पुनः अपनी खोई हुई राजसत्ता प्राप्त कर स्वतन्त्र शासक होने की ताक में थे। वे सुलतान की दुर्बलता और विषम परिस्थि-तियों का लाभ उठाना चाहते थे। रजिया के सुलतान होते ही राजपूतों ने भी विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिये और राजस्थान में तो राजपूत सेना ने रणथम्भोर में मुस्लिम सेना के चतुर्दिक घेरा डाल दिया था और दुर्ग पर अपना अधिकार करना चाहा था।

(४) **प्रांतीय हाकिमों द्वारा आक्रमण**—रजिया की निर्बलता का लाभ उठा-कर मुलतान, बदांयू, हांसी और लाहौर के हाकिम तथा सूबेदार संगठित होकर रजिया के विरोध में अपनी-अपनी सेनाओं सहित दिल्ली की ओर बढ़े। उन्होंने दिल्ली पर आक्र-मण कर दिया था। उन्होंने रजिया के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा स्थापित किया। प्रधानमंत्री जुनैदी भी इनसे जा मिला।

(५) **प्रशासन में अशान्ति और अस्त-व्यस्तता**—रुकुनुद्दीन की प्रशासन के प्रति उपेक्षापूर्ण नीति से चतुर्दिक विरोध, विद्रोह और संघर्ष के कारण राज्य में अशांति और अस्त-व्यस्तता थी तथा प्रशासन के सूत्र शिथिल पड़ गये थे।

(६) **रजिया का स्त्री होना**—सुलतान बन जाने के बाद रजिया को एक भयंकर असुविधा और कठिनाई यह थी कि वह एक नारी थी। अनेक नागरिक, अधि-कारी, सामन्त, अमीर और सरदार ऐसे थे जो रजिया को नारी होने के कारण सुल-तान बनने के अनुपयुक्त मानते थे। वयस्क राजकुमारों की उपस्थिति में एक स्त्री का सुलतान होना और उन्हें उसके अधीन रहना अनुचित और अपमानजनक प्रतीत होता था। वे रजिया के अनुशासन और प्रशासन को मानने को तत्पर नहीं थे।

रजिया सुलताना के कार्य

इन कठिनाइयों के होने पर भी रजिया ने धीरे-धीरे विषम परिस्थितियों और समस्याओं का सामना किया और उन पर विजय पाई। उसकी इन विजयों तथा अन्य कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है--

(१) **विद्रोहों का और विपक्षी अमीरों का दमन**--राज्य के प्रमुख अमीरों और बदायूँ, मुलतान, हांसी और लाहौर के प्रांतपतियों ने रजिया के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। वे रजिया को शासक और सुलतान के रूप में देखना नहीं चाहते थे। प्रधान वजीर मुहम्मद जुनैदी जो इल्तुतमिश के दूसरे पुत्र को सुलतान बनाना चाहता था, और रजिया के विरोध में था, इन विद्रोही हाकिमों से मिल गया। इन सबकी संयुक्त सेना ने दिल्ली की ओर रजिया को परास्त करने और उसे बन्दी बनाने के लिये प्रस्थान किया। इस शक्तिशाली दल के दिल्ली घेर लेने से रजिया सुलताना विपत्ति में फंस गयी। वह दुर्ग में घिर गयी थी। परन्तु वह अत्यन्त ही साहसी स्त्री थी जो विपत्ति और संकट में घबराती नहीं थी। ऐसी भयंकर स्थिति में उसने अनुभव किया कि खुले रणक्षेत्र में विद्रोही सेनाओं और हाकिमों को परास्त करना उसकी शक्ति और सामर्थ्य के बाहर है। इसलिये उसने धैर्य व कूटनीति से काम लिया। नुसरतुद्दीन तयारसी जिसे रजिया ने अवध का शासक नियुक्त किया था, रजिया की सहायता के लिये दिल्ली आ पहुंचा। अब रजिया ने विद्रोही हाकिमों और नेताओं में व्याप्त पारस्परिक ईर्षा-द्वेष और अधिकार-पिपासा व महत्वाकांक्षा का लाभ उठाकर, उनमें फूट डालदी और उनमें से इजुद्दीन सालारी तथा कबीरखाँ को अपने पक्ष में मिला लिया। इसी बीच विद्रोही सेनाओं में उसने यह भी प्रचार करवा दिया कि कुछ तुर्क सरदार रजिया से मिल गये हैं और अन्य सरदारों को बंदी बनाने का वचन दे चुके हैं। विद्रोही खेमे के सेनापति अब एक दूसरे में अविश्वास और सन्देह करने लगे। वे परस्पर ही लड़ने लगे। ऐसी परिस्थिति में रजिया ने उन पर सैनिक आक्रमण कर दिया और उन्हें परास्त कर दिया गया तथा वे विभिन्न दिशाओं में खदेड़ दिये गये। रजिया ने लाहौर के प्रान्तपति अलाउद्दीन जानी को बन्दी बना लिया और बाद में उसकी हत्या करवा दी। इससे भयभीत होकर वजीर जुनैदी सिरमूर की पर्वत श्रेणियों की ओर भाग गया और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। अनेक विद्रोहियों को रजिया ने पकड़ कर दंडित किया। इस प्रकार रजिया ने विपक्षियों का संघ छिन्न-भिन्न कर दिया और उनका पूर्णरूप से दमन कर दिया। उसकी सफलता और विजय से आतंकित होकर बंगाल और सिंध के प्रान्तपतियों ने रजिया सुलताना की अधीनता अंगीकार कर ली।

(२) **इस्माइलियों के विरोध का कुचलना**—नुरुद्दीन नामक एक विरोधी तुर्क के प्रलोभन देने से अनेकानेक इस्माइलिया मुसलमान जो सुन्नी सम्प्रदाय के अनुयायी थे, दिल्ली में आकर बस गये। उन्होंने उकसाने पर रजिया के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। वे रजिया पर आक्रमण कर उसे पकड़ना चाहते थे। इसलिये उन्होंने एक हजार की संख्या में संगठित होकर जामा मसजिद में प्रवेश किया। उन्होंने दो ओर से

आक्रमण किया। पर रजिया ने बड़ी कुशलता और सतर्कता से काम लिया। उसने शीघ्र ही सेना द्वारा इन विद्रोहियों को खदेड़ दिया।

(३) **राजपूतों से संघर्ष**—रजिया की निर्बलता और उसके चतुर्दिक विद्रोहों को देखकर राजपूतों ने राजस्थान में रणथम्भोर के दुर्ग पर आक्रमण कर वहां की यवन सेना को घेर लिया। रजिया ने तत्काल ही कुमुक और सेना भेजकर दुर्ग की रक्षा की और घिरी हुई मुसलमानी सेना को मुक्ति दिलवाई। इसी प्रकार जब ग्वालियर के राजपूत नरेश ने अपनी सत्ता संवारने का प्रयास किया, तब रजिया ने ग्वालियर में भी अपनी प्रभुता स्थापित कर ली।

(४) **राज प्रभुत्व की दृढ़ता और स्थायित्व**—विद्रोहों और विरोधियों के दमन के बाद रजिया ने अपनी राजकीय स्थिति को सुदृढ़ करने और अपने राज पद की प्रतिष्ठा और गौरव में वृद्धि करने के प्रयास किये। उसने प्रशासन में व्याप्त शिथिलता और अशांति को दूर करने के प्रयत्न किये। राज्य के उच्च और श्रेष्ठ पदों पर तुर्की सरदारों के बढ़ते हुए प्रभाव का उन्मूलन करने के लिये उसने अपने पक्ष के अमीरों को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। उसने चुन-चुन कर ऐसे तुर्की अमीरों व व्यक्तियों को उनके पद से हटाना प्रारम्भ किया जो उसके विरोधी और विपक्षी थे। उसने तुर्की सरदारों की शक्ति को कुचल दिया, उनके दंभ और प्रशासन में एकाधिकार को नष्ट कर दिया और उसने अपने सहायक गैर तुर्की अमीरों को अपने अधिकारी नियुक्त किये। इन गैर तुर्की अमीरों में अफ्रीका के अबीसीनीया देश के हबशी जमालुद्दीन याकूत भी था जिसे रजिया ने अमीर-आखूर के ऊंचे पद पर नियुक्त किया और ऐसा आदेशा दिया गया कि वह रजिया सुलताना की सेवा में उपस्थित होता रहे। इसके अतिरिक्त रजिया ने नायब वजीर ख्वाजा मुहाजबुद्दीन को पदोन्नत कर अपना वजीर बनाया तथा मलिक हसन गोरी को अपना सेनापति का पद प्रदान किया। कबीरखां तथा सालारी की जागीरों में भी वृद्धि कर दी। इससे उनका प्रभाव बढ़ गया।

इस प्रकार रजिया, प्रशासन में शक्तिशाली तुर्क सरदारों की शक्ति कुचलकर सर्वशक्ति सम्पन्न शासक बन बैठी और अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित कर ली। उसने शासन-सत्ता पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया और इस प्रकार सुदृढ़ राजप्रभुत्व प्रतिष्ठित किया।

(५) **रजिया का प्रशासन**—रजिया प्रशासन में अभिरुचि रखती थी। उसने राजप्रासाद का पर्दा त्याग दिया था और स्वयं पुरुष वेश धारण कर राजसभा में पदार्पण करती और नारी होने पर भी खुले मुँह बैठकर राजसभा में प्रशासन के कार्य करती थी। फरियाद सुनती थी और विभिन्न विभागों का निरीक्षण स्वयं करती थी। रणक्षेत्र में युद्ध और सैन्य संचालन में भी वह योद्धा की वेशभूषा को धारण करती थी और स्वयं सैनिक अभियान का नेतृत्व करती थी। रजिया में शासन करने के अनेक गुण विद्यमान थे।

(६) **रजिया की सफलता**-अपनी योग्यता, प्रतिभा, गुणों, वीरता और राजनीति तथा कूटनीति से रजिया ने आशातीत सफलता प्राप्त करली थी। उसने अपनी शक्ति और सत्ता दृढ़ करली थी और राज्य को व्यवस्थित कर लिया था। इसलिये तत्कालीन

मुस्लिम इतिहासकार मिनहाज-ऐ-सिराज ने लिखा है कि, 'लखनौती (बंगाल) से देवल (सिंध) तक समस्त हिन्दोस्तान के मलिक और अमीर उसकी शक्ति के नीचे दब गये थे और बंगाल से सिंध तक उसका अखण्ड राज्य स्थापित हो गया था।" उसने अपनी योग्यता और चरित्रबल से दिल्ली सल्तनत की राजनीति पर अपना एकाधिकार कर लिया था।

रजिया सुलताना का पतन

जिस अल्पकाल में रजिया ने विद्रोहियों को कुचलकर सारी सत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत करके सुलताना हो गयी, उतने ही अल्पकाल में तीव्र गति से उसका पतन भी हो गया।

(१) **रजिया और याकूत के सम्बन्ध**—प्रशासन में ऊंचे पद पर याकूत की नियुक्ति से और उसके प्रति विशेष अनुराग और अनुकम्पा प्रदर्शित करने से रजिया का पतन प्रारम्भ हो गया। तुर्की सरदारों और अधिकारियों ने रजिया के शक्ति और चरित्र पर सन्देह किया। याकूत अबीसीनिया का खान था जो अश्वारोहियों का प्रधान अधिकारी था। तुर्क सरदारों और अमीरों की यह धारणा थी कि याकूत और रजिया के पारस्परिक अनैतिक सम्बन्ध थे। रजिया याकूत के साथ अनावश्यक गहरा पक्षपात करती थी, उसे रजिया के सम्मुख प्रविष्ट होने की छूट थी। जिस समय रजिया घोड़े पर चढ़ती थी तब याकूत उसे सहारा दिया करता था। रजिया की इस विशेष कृपा और अनुराग से अमीरों में रजिया के प्रति तीव्र असन्तोष और घृणा उत्पन्न हो गयी।

रजिया और याकूत के पारस्परिक सम्बन्धों पर इतिहासकारों ने विभिन्न रूप से अपने-अपने मत प्रगट किये हैं। उस युग के रजिया के समकालीन विद्वान मिनहाज-ऐ-सिराज ने "तबकाते नासिरी" में केवल इतना ही लिखा है कि, "अबीसीनिया के याकूत ने सुलताना के सम्मुख उपस्थित होने में विशेष कृपा प्राप्त कर ली है।" इब्नबतूता ने याकूत के सम्बन्ध के विषय में रजिया को दोषी ठहराया है और उसकी निंदा की है। पर कुछ इतिहासकार उसके कथन की सत्यता पर सन्देह करते हैं। फरिस्ता ने अपनी पुस्तक "तारीख-ए-फरिश्ता" में लिखा है कि, "अबीसीनिया के याकूत और सुलताना में जो घनिष्टता है वह वास्तविक सच है। जब रजिया घोड़े पर सवार होती है, तब याकूत उसे सहायता देता है।" फरिस्ता ने इस प्रकार दोनों की घनिष्टता को निन्दनीय प्रगट किया है। निजामुद्दीन अहमद ने भी घोड़े पर चढ़ते समय याकूत द्वारा रजिया की भुजाओं में हाथ डालकर उसे घोड़े पर सवार कराने का उल्लेख किया है। टामस ने अपने ग्रंथ "The Chronicles of Pathan Kings" में लिखा है कि, "ऐसी बात न थी कि अविवाहित रानियों को प्रेम करने की आज्ञा न रही हो। वह किसी राजवंशीय व्यक्ति के साथ प्रेम-क्रीड़ा कर सकती थी या रनवास के अन्धेरे भागों में निर्बाध रूप से रंगरेलियां मना सकती थी, विलास कर सकती थी, परन्तु उसकी उच्छृंखलता उसको गलत दिशा की ओर ले गयी। साथ ही यह स्नेह व कृपा जिस व्यक्ति के प्रति प्रदर्शित किया गया था, उसको सभी तुर्क सरदार घृणा की दृष्टि से

देखते थे।" डाक्टर ईश्वरी प्रसाद ने भी रजिया के प्रेम और घनिष्टता की निन्दा करते हुए लिखा है कि, "सत्य जो कुछ भी हो, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस अबीसीनियाई के प्रति ऐसा स्नेह दिखाकर रजिया ने अक्षम्य भूल की है। इस प्रकार के व्यवहार पूर्ववर्ती प्रदेशों में संदिग्ध दृष्टि से देखे जाते हैं। रजिया ने उच्च वर्गीय महिला के उचित व्यवहार का अवश्य अतिक्रमण किया और यह उल्लघन उसके अविवाहित होने के कारण और भी निन्दनीय बन गया।" सत्य कुछ भी रहा हो। लेकिन इतना स्पष्ट है कि अविवाहित, वयस्क और लावण्यमयी सुलताना होने से याकूत के प्रति रजिया ने जो घनिष्टता, अनुराग और कृपा प्रगट की उससे तुर्की अमीरों के हृदय में दोनों के अनैतिक सम्बन्धों के विषय में दृढ़ मान्यता हो गयी, वे याकूत से ईर्षा करने लगे, रजिया के प्रति उनमें असन्तोष और घृणा फैल गयी। वे नहीं चाहते थे कि उनकी सुलताना का इतना अधिक नैतिक पतन हो। अतएव वे उसे पदच्युत करने के हेतु गुप्त षड्यन्त्र करने लगे।

(२) **रजिया की निरंकुश नीति से तीव्र असन्तोष**—रजिया एक शक्तिशाली और निरंकुश शासक बन गयी थी। स्वेच्छाचारी तुर्की अमीर एक नारी की निरंकुशता सहन नहीं कर सके। कुतुबुद्दीन ऐबक तुर्की और मुइज्जी अमीरों में एक प्रमुख अमीर था और इल्तुतमिश सुलतान बन जाने पर भी अपने ही समान अमीरों से राज सिंहासन पर बैठने में झेंपता और लज्जित होता था। परन्तु इल्तुतमिश की पुत्री रजिया ने सल्तनत की सार्वभौमसत्ता पर अपना अधिकार जमा लिया था और वह शान और गौरव से राजसिंहासन पर बैठती और अमीरों व सरदारों पर शासन करती थी। दुर्भाग्य से ये अमीर एक नारी की हुकूमत में रहना नहीं चाहते थे। इस स्थिति को वे सहन नहीं कर सके। वे नहीं चाहते थे कि एक स्त्री उन्हें राजनीति और प्रशासन में बेदखल कर दे और उन्हें केवल आज्ञापालक सेवक समझने लगे। इससे तुर्की अमीरों और सरदारों में रजिया के प्रति गहरा तीव्र असन्तोष व्याप्त हो गया।

(३) **जुबैदी का वध**—रजिया पर राजनैतिक हत्या का सन्देह किया गया। सन् १२३८ में ग्वालियर के हाकिम जियाउद्दीन जुबैदी को, रजिया ने दिल्ली बुलवा लिया, क्योंकि उसे ऐसी आशंका थी कि जुबैदी उसके विरुद्ध विद्रोह करेगा। दिल्ली में आने के बाद एक दिन सहसा जुबैदी लापता हो गया। अमीरों की धारणा हो गयी कि रजिया ने विश्वासघात करके उसे लापता कर उसका वध करवा दिया। इन सरदारों को आशंका होने लगी कि रजिया भविष्य में किसी भी दिन उनका भी यही हाल कर सकती है। इस प्रकार इस घटना का यह दुष्परिणाम हुआ कि अमीरों ने अपनी आत्म-रक्षा के हेतु रजिया के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचा।

(४) **तुर्की सरदारों का विद्रोह और षड्यन्त्र**—अमीरों के तीव्र असन्तोष ने रजिया के विरुद्ध षड्यन्त्र और विद्रोह का रूप ले लिया। वे रजिया को राजसिंहासन से उतारना चाहते थे। सर्वप्रथम सन् १२४० में पंजाब के प्रान्तपति कबीर खां आयाज ने, जो रजिया और याकूत के सम्बन्धों को हीन और अनैतिक समझता था, विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। रजिया स्वयं सेना लेकर पंजाब पहुंची और आयाज को परास्त कर उससे लाहौर छीन लिया और उसकी शक्ति कुचल दी। अब आयाज ने आत्म समर्पण

कर दिया। उसके पास केवल मुलतान रह गया था। इसी बीच विदेशी शासक सेफुद्दीन ने मुलतान पर आक्रमण करके आयाज को वहाँ से खदेड़ दिया। तुर्क सरदारों को आशा थी कि एक विदेशी शासक के आक्रमण करने पर रजिया अपने शम्सी तुर्क सरदार आयाज की सहायता करेगी। पर रजिया ने ऐसा नहीं किया। उसने आयाज की शक्ति को सेफुद्दीन द्वारा नष्ट होने दिया। इसके दो दुष्परिणाम हुए—प्रथम, रजिया की सैनिक निर्बलता और असामर्थ्य प्रगट हुए। द्वितीय, अमीरों में उसके प्रति सन्देह और अविश्वास की भावना बढ़ गयी। वे मानने लगे कि रजिया उन्हें किसी विदेशी आक्रमणकारी से युद्ध करने में अकेला और निस्सहाय छोड़ सकती है।

(५) **याकूत का वध और रजिया का बन्दी होना** कबीरखां आयाज की पराजय की घटना से सभी तुर्क अमीर सरदार अधिक सतर्क हो गये और उन्होंने संगठित होकर रजिया को गद्दी से पृथक् करने का निर्णय किया तथा दिल्ली पर आक्रमण करने की योजना बनाई। इस समय इन असन्तुष्ट अमीरों का नेता था बदायूं का शासक ऐतिगीन। योजनानुसार भटिंडा के शासक या सूबेदार मलिक अलतुनिया ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। रजिया विद्रोहियों को कुचलने के लिये एक विशाल सेना लेकर भटिंडा की ओर आगे बढ़ी। विद्रोहियों की योजनाएं गुप्त थी। जब वह अपने प्रेमी याकूत सहित भटिंडा पहुँची, तब सहसा याकूत को पकड़कर उसका वध कर दिया गया और स्वयं रजिया सुलताना को भी परास्त कर बन्दी बना लिया गया। बाद में उसे अल्तूनिया को सौंप दिया गया।

(६) **सुलतान बहराम शाह**—अब विद्रोही अमीरों ने इल्तुतमिश के तीसरे पुत्र बहराम को सुलतान बना दिया और सारे अधिकार अपने हाथों में ले लिये। विद्रोहियों के नेता ऐतिगीन की शक्ति खूब बढ़ गयी थी। उसके दुर्व्यवहार और अत्याचारों में भी खूब वृद्धि हो गयी। उससे असन्तुष्ट होकर सुलतान बहराम शाह ने उसका वध करवा दिया। पर अमीरों का महत्वपूर्ण पदों पर अधिकार पूर्ववत् ही रहा।

(७) **रजिया की पराजय और उसका वध**—ऐतिगीन की हत्या हो जाने से रजिया के एक प्रबल विरोधी का अन्त हो गया। बन्दी होने पर भी उसने धैर्य, साहस और कूटनीति से काम लिया। उसने अल्तूनिया को अपने प्रेम जाल में फंसाया व विवाह का प्रस्ताव रखा। अलतूनिया ने उसे कारागार से मुक्त कर उससे विवाह कर लिया। अब रजिया ने पुनः अपनी शक्ति और राज्य प्राप्त करने के लिये अल्तूनिया को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित कर सहमत कर लिया। फलतः सन् १२४० में रजिया और अल्तूनिया ने दिल्ली पर आक्रमण किया। पर सुलतान बहराम शाह की राजकीय सेना ने उन्हें परास्त कर दिया। पराजय के बाद जब वे दोनों कटेहर की ओर भाग रहे थे, तब कुछ हिन्दुओं ने उन्हें मार्ग में पकड़कर उनका वध कर दिया। इस प्रकार लगभग साढ़े तीन वर्ष तक शासन करने के बाद रजिया का अन्त हो गया।

जियाउद्दीन बर्नी ने अपने ग्रन्थ तारीख-ए-फिरोज शाही में लिखा है कि, "उलुग ने सुलतान रजिया की हत्या कर दी और उसका दामाद नासिरुद्दीन सिंहासन पर आसीन हुआ।" यह भ्रममूलक और असत्य है। उलुग खान या बलवन ने रजिया की

हत्या नहीं की। रजिया की हत्या और नासिरुद्दीन के राज्यारोहण के बीच दो सुलतानों ने शासन किया-(१) बहराम शाह (सन् १२४०-४२)और (२) अलाउद्दीन मसूद शाह (सन् १२४२–४६)।

रजिया के पतन और असफलता के कारण

यद्यपि रजिया सुलताना अधिक योग्य और राजपद के लिये सबसे अधिक उपयुक्त थी, परन्तु वह शासन-संचालन में और विरोधियों को कुचलने में असमर्थ रही। उसका शीघ्र ही पतन और अन्त हो गया। रजिया के इस शीघ्र पतन, पराजय और असफलता के निम्नलिखित कारण हैं।

(१) **सशक्त स्वार्थी तुर्की सरदार और अमीर**—राज्य में अनेक तुर्की सरदार और अमीर थे। वे अधिक शक्तिशाली और शासन-कार्यों के कर्णधार थे। उनका इतना अधिक प्रभाव था कि उनका विरोध करना दुष्कर कार्य था। सुलतान के लिये उनकी इच्छा के विरोध में जाना अत्यन्त ही कठिन था। रजिया ने इन तुर्की अमीरों की शक्ति, प्रभाव और महत्व को अत्यधिक कम कर दिया था और स्वयं स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता से शासन चलाने लगी। अमीरों के साथ उसका व्यवहार भी अच्छा नहीं था। वह उन्हें हीन समझती थी। ऐबक और इल्तुतमिश ने भी ऐसा नहीं किया। वे अमीरों के साथ परामर्श करते और उनके साथ भाईचारे का व्यवहार करते थे। फलतः सरदार रजिया से असन्तुष्ट हो गये और उसके विरोधी बन गये। यदि रजिया अपने इन सरदारों की कठपुतली बनकर रहती और सदैव उनके परामर्श से कार्य करती, तो बहुत कुछ सम्भव है कि वे उसे परास्त कर पदच्युत करने का प्रयत्न नहीं करते।

रजिया ने यह प्रयत्न किया कि वह अमीरों का एक नया प्रतिद्वंदी दल संगठित करे। पर इसके लिये उसे समुचित समय भी नहीं उपलब्ध हो सका।

(२) **रजिया की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता**—रजिया ने अपने विरोधियों का दमन करने के बाद शासन के सब अधिकार अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर लिये। प्रभावशाली तुर्की अमीरों और सरदारों को उनके महत्वपूर्ण पदों से चुन-चुन कर पृथक् कर दिया। अब वह निरंकुश स्वेच्छाचारी सुलताना बन कर स्वयं शासन करने लगी। अमीर और सरदार उसकी इस शासन-नीति और स्वेच्छाचारिता को सहन नहीं कर सके। उन्हें एक नारी की स्वेच्छाचारिता और अनियंत्रित शासन सर्वथा असह्य था। स्वेच्छाचारी अमीर जो स्वयं सब शक्ति और अधिकार अपने हाथ में रखना चाहते थे उनके लिये एक स्वेच्छाचारी सुल्तान से सहयोग करना असम्भव था। प्रारम्भ से ही कुछ अमीर और सरदार रजिया से इसी बात से रुष्ट थे कि वह एक स्त्री थी और एक स्त्री द्वारा शासित और नियंत्रित होना उन्हें रुचिकर नहीं था। इसके अतिरिक्त रजिया पुरुष वेशभूषा धारण कर घोड़े की सवारी करती, सैन्य संचालन करती, राजमहल का पर्दा त्यागकर खुले आम राजसभा में सिंहासन पर बैठती थी, फरयादें सुनती और शासन करती थी। रजिया के ये कार्य उन्हें इस्लाम के विरुद्ध प्रतीत हुए। कट्टर

मुसलमानों को यह सब सह्य नहीं था। इसलिये अमीरों ने उसके विरुद्ध तूफान खड़ा किया और उसका विरोध किया।

(३) **रजिया की नारी सुलभ दुर्बलताएं**—रजिया में स्त्री-सुलभ दुर्बलताएं भी थीं एक अबीसीनियन याकूत के प्रति अबाध स्नेह, अनुराग और विशिष्ट कृपा दिखाकर रजिया ने अक्षम्य भूल की। याकूत की पदोन्नति, रजिया का पर्दा त्याग और याकूत से प्रेम-बन्धन सरदारगण सहन न कर सके। तुर्की अमीर यह सहन नहीं कर सके कि उनकी शक्ति और अधिकार तो कुचल दिये जाँय और एक हब्शी पर रजिया विशेष अनुकम्पा रखे। इसे उन्होंने अपना अपमान समझा और वे रजिया के इस अनुचित पक्षपात से अत्यधिक असन्तुष्ट और क्रुद्ध हुए।

रजिया के गुण और उसकी प्रतिभा व योग्यता भी उसकी नारी सुलभ दुर्बलता की रक्षा करने में असमर्थ रहे। रजिया का स्त्री होना ही उसके लिये अभिशाप सिद्ध हुआ। याकूत के सम्बन्धों में उसकी दुर्बलता के दर्शन हुए। रजिया किसी राजवंश से संबंधित व्यक्ति को अपना प्रेम-पात्र चुनती और उससे विवाह करती तो शायद उसके विरुद्ध इतना भयंकर तूफान और विरोध न उठता।

इसके अतिरिक्त, रजिया की शारीरिक दुर्बलताएं और नारी की लज्जा, कोमलता व स्वभाव के कारण वह तुर्की सरदारों की स्वच्छन्द शक्ति को कुचल कर अपने वश में नहीं रख सकी। उस युग की विषम परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि एक स्त्री सशक्त तुर्की सरदारों को अपने अधिकार मे नही रख सकती थी। एक दृढ़ प्रवृत्ति का साहसी शक्तिशाली पुरुष ही उन पर विजय पाकर शासन कर सकता था।

इन्हीं सब कारणों से तुर्की सरदारों मे रजिया के प्रति तीव्र असन्तोष और विरोध की भावना बलवती होती गयी।

(४) **प्रजा के सहयोग का अभाव**—मुस्लिम प्रजा और नागरिक रजिया के और याकूत के अनैतिक प्रेम सम्बन्धों से रुष्ट हो गयी थी। वे भी इसी बात से रजिया को बदनाम करने लगे थे। इससे उनका समर्थन और सहयोग रजिया के विरोधियों को प्राप्त हो गया। प्रजाहित में भी रजिया का स्त्री होना उसके लिये एक अभिशाप बन गया।

भारतीय जनता और हिन्दू सम्पन्न वर्ग का समर्थन रजिया प्राप्त नहीं कर सकी। क्योंकि वह विदेशी और विधर्मी मानी जाती थी।

(५) **केन्द्रीय सत्ता की दुर्बलता**—दिल्ली में केन्द्रीय सरकार दृढ़ और सशक्त नहीं थी। स्थानीय हाकिमों और प्रांतपतियों पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण नियंत्रण नहीं था। प्रदेशों में स्थानीय हिन्दुओं और राजपूतों के अनेक विद्रोहों के होने से प्रांतपतियों को अनेक विशिष्ट राजनैतिक, आर्थिक और सैनिक अधिकार दिये थे। फलतः यदि प्रांतपति और हाकिम परस्पर संगठित होकर केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध गठबन्धन कर लेते, तो केन्द्रीय सरकार दुर्बल हो जाती और वह उनका दमन करने मे असमर्थ होती। रजिया को इसी कठिनाई का सामना करना पड़ा।

(६) **इल्तुतमिश के जीवित वयस्क पुत्र**—इल्तुतमिश के वयस्क पुत्र जीवित थे। इससे विरोधी सरदारों और अमीरों को खूब प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उन्हें इल्तुत-

मिश के वंश का नाश किये बिना ही, रजिया को हटाकर, इन जीवित पुत्रों के आधार पर, पुनः अपनी शक्ति संचित करने के अच्छे अवसर प्राप्त हो गये। इन पुत्रों को सुलतान बनाने के बहाने पर षड्यंत्रकारी विरोधियों ने रजिया की शक्ति नष्ट कर, उसे पदच्युत कर दिया।

(७) **विद्रोहों और षड्यन्त्रों का युग**—यह दुर्भाग्य की बात थी कि जिस समय रजिया दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठी, वह समय विरोध, विद्रोह और षड्यंत्रों का था। यदि वह किसी शांतिपूर्ण युग में सुलतान बनती तो निश्चय ही सफल रहती। परन्तु परिवर्तन और संघर्ष के उस युग में असाधारण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही सुलतान के पद का भार सम्भाल सकता था। मिनहाज-ऐ-सिराज का कथन है कि यदि वह पुरुष होती तो निर्विवाद रूप से सफल हुई होती।

रजिया का मूल्यांकन

(१) **प्रथम स्त्री सुलतान**—पूर्व मध्य युग में मुस्लिम शासन-काल में रजिया प्रथम और अन्तिम स्त्री सुलतान थी। उसे दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठने और लगभग चार वर्षों तक शासन करने का अवसर और यश-गौरव प्राप्त हुआ था। पर अनेक कारणों से दिल्ली सल्तनत उसकी सेवाओं से वंचित रह गयी। फिर भी दिल्ली सल्तनत के राजसिंहासन पर प्रथम बार एक नारी निरंकुश, स्वेच्छाचारी शासक के रूप में बैठी और सर्व सत्ता सम्पन्न सुलताना हो गयी। उसने सुलतान के पद को प्रभुत्वपूर्ण बना दिया तथा अपनी प्रतिभा, योग्यता और चरित्र बल से इस पद और उसकी राजनीति पर अधिकार रखा।

(२) **गुण सम्पन्न प्रतिभाशाली शासक**—रजिया बड़ी प्रतिभावान, सुयोग्य और गुण-सम्पन्न शासक थी। वह अपने बन्धुओं से भी सर्वाधिक योग्य थी। रजिया में सुलतानोचित गुण और प्रशासक की प्रतिभा विद्यमान थी और इनका परिचय उसने इल्तुतमिश को उसके जीवनकाल में और बाद में सुलतान बनने पर दे दिया था। इन्हीं गुणों और श्रेष्ठता के कारण इल्तुतमिश ने उसे अपने वयस्क पुत्रों को छोड़कर अपना उत्तराधिकारी चुना था। जिन विषम संकटकालीन परिस्थितियों में रजिया सिंहासनारूढ़ हुई और जिन समस्याओं का उसे सामना करना पड़ा, वे किसी भी पुरुष सुलतान के लिये अत्यन्त ही दुष्कर और असहनीय होतीं। परन्तु रजिया ने एक निर्भीक सुलतान के समान धैर्य, साहस, वीरता, बुद्धिमत्ता और अदम्य उत्साह से काम लिया और विजय उपलब्ध की। तत्कालीन इतिहासकार मिनहाजुद्दीन सिराज ने लिखा है कि, "वह महान शासक, बुद्धिमान, ईमानदार, उदार, शिक्षा की पोषक, न्याय करने वाली, प्रजा-पालक तथा युद्धप्रिय थी।"

(३) **वीर साहसी सैनिक**—रजिया सुलताना में उच्चकोटि की सैनिक योग्यता भी थी। उसमें वीर सैनिक के गुण विद्यमान थे। वह सैन्य संचालन की भी अनोखी क्षमता रखती थी। इन्हीं गुणों के कारण उसने अपने विरोधियों का दमन कर दिया और रण-क्षेत्र में अपने विपक्षियों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। अपने शासन

के प्रारंभिक काल में वह अपनी वीरता, शौर्य, साहस और धैर्य से विरोधियों के संघर्ष और विद्रोहों में सफल हो सकी।

(४) **स्वेच्छाचारी निरंकुश सुलतान**—रजिया ने अपने राजोचित गुणों और दृढ़ प्रवृत्ति से सुलनान के पद के प्रभुत्व और शक्ति में अत्यधिक वृद्धि की, उसे दृढ़ता और स्थायित्व प्रदान किया। उसने सुलतान के अधिकारों और शक्ति को अपने हाथों में केन्द्रीकरण कर स्वेच्छाचारी और निरंकुश प्रशासन का मार्ग प्रशस्त किया। दिल्ली की वह प्रथम तुर्की सुलताना थी जिसने मलिकों, अमीरों और सरदारों की शक्ति को कमकर दिया और उनको सुलतान के निर्णय मानने के लिये बाध्य किया तथा उन्हें सुलतान की इच्छानुसार कार्य करने लिये विवश किया। यही नहीं, अपितु रजिया ने अपने दृढ़ और अनियंत्रित शासन से रुकुनुद्दीन के शासन की बिगड़ी हुई स्थिति संभालकर, सल्तनत को इस प्रकार जीवित रहने का अवसर दिया कि सुलतान बलवन का सशक्त हाथ उसे संभाल ले।

(५) **कूटनीतिज्ञ**—रजिया कूटनीति में भी कुशल थी। उसने अपनी दूरदर्शिता और कूटनीति से विरोधियों के गुट में फूट डालकर उनमें परस्पर सन्देह और अविश्वास की भावनाएं उत्पन्न कर दीं। प्रारम्भ में उनकी शक्ति को कुचलकर उसने उन्हें पूर्ण रूप से अपने अधिकार में कर लिया। इसी प्रकार अल्तूनिया के कारावास में होने पर भी उसने कूटनीति और साहस से काम लिया और थोड़े समय के लिये सफलता प्राप्त करली। यदि ऐसे समय उसमें नारित्व की दुर्बलताएं नहीं होती तो निश्चय ही उसकी विजय और सफलता दीर्घकालीन होती। पर उसके ये सब श्रेष्ठ गुण अन्त में उसके काम नहीं आये और उसके नारित्व ने ही उसे असफल बना दिया।

सुलतान बहराम शाह (सन् १२४०-४२)

रजिया को पदच्युत करने के बाद अमीरों ने बहराम शाह को दिल्ली कासुलतान बना दिया। उसके शासनकाल में अनेक षड्यन्त्र, विद्रोह और हत्याएं हुई। क्योंकि यह सरदारों और अमीरों की शक्ति के उन्थान का काल था। इल्तुतमिश द्वारा स्थापित चालीस गुलामों (सरदारों) का दल अब अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था और मुलतान की भी उपेक्षा करता था। परिणाम यह हुआ कि सुलतान, जो स्वयं निर्भीक, साहसी और क्रूर व्यक्ति था, इसे सहन न कर सका और अमीरों के बीच कटुता और धिक वृद्धि हुई। क्रुद्ध होकर सुलतान बहराम शाह ने एक अत्यन्त ही प्रभावशाली अमीर और बदायूं के सूबेदार हबीब मलिक बदरुद्दीन सुनकर को पकड़वाकर उसकी हत्या करवा दी। इससे सुलतान का वजीर निजामुल्मुल्क मुहज्जबुद्दीन भी उसके विरुद्ध हो गया। इसी बीच सुलतान ने अयूब नामक एक दरवेश के प्रभाव में आकर एक काजी की हत्या का आदेश प्रसारित कर दिया। यह काजी अमीरों द्वारा अधिक आदर सम्मान पाता था। इन कारणों से आन्तरिक कलह और षड्यन्त्रों में वृद्धि हो गयी और अमीर सुलतान के विरोध में हो गये। इसी अवधि में मंगोलों ने अपने सरदार बहादुर ताइर के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण कर लाहौर को घेर लिया। लाहौर के तत्कालीन सूबेदार मलिक इख्त्यारुद्दीन ने मुगलों को रोकने के लिये बड़ी वीरता

से युद्ध किया, पर वह परास्त हुआ। मंगोलों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया, नगर को खूब लूटा और अनेकानेक लोगों को मौत के घाट उतार दिया। बहराम शाह ने एक सेना मंगोलों को खदेड़ने के लिये भेजी, पर वह ठीक समय पर लाहौर नहीं पहुँच पायी। वह दिल्ली लौट आई। सुलतान की ऐसी कठिन परिस्थिति को देखकर विपक्षी और असन्तुष्ट अमीरों ने सुलतान को पदच्युत करने का दृढ़ संकल्प किया। अमीरों का ऐसा दृढ़ पक्ष देखकर सेना ने भी विद्रोह कर दिया, सुलतान को दिल्ली में घेर लिया। बाद में १० मई सन् १२४२ में सेना ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया, सुलतान बहराम शाह पकड़कर कारावास में डाल दिया गया जहाँ कुछ दिनों पश्चात् उसका वध कर दिया गया।

सुलतान अलाउद्दीन मसूद शाह (सन् १२४२-४६)

बहराम की हत्या के बाद अमीरों ने फीरोज रुकुनुद्दीन के पुत्र और इल्तुतमिश के पौत्र अलाउद्दीन मसउद को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाकर सुलतान बना दिया। अब अमीरों ने अपनी शक्ति और अधिकारों को सुदृढ़ करने के लिये इल्तुतमिश के दोनों पुत्रों नासिरुद्दीन और जलालुद्दीन को कारागृह में डाल दिया जिससे राजवंश के ये व्यक्ति राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न न करें। इसके साथ-साथ उन्होंने राज्य के सभी ऊंचे पद परस्पर विभाजित कर उन पर आसीन होकर राज्य के अधिकार और सत्ता अपने हाथों में ले लिये। उन्होंने इस प्रकार सुलतान को निरंकुश और अनियंत्रित होने का अवसर ही नहीं दिया। परन्तु अल्पकाल मे ही अमीरों में परस्पर तीव्र असन्तोष और फूट व्याप्त हो गये और उन्होंने शक्तिशाली वजीर मुहज्जबुद्दीन की हत्या कर दी। इस फूट से लाभ उठाकर सुलतान अलाउद्दीन ने अपनी उदारता और सहिष्णुता प्रगट करने के लिये अपने चाचा जलालुद्दीन को कन्नौज की और नासिरुद्दीन को बहराइच की जागीर देदी। यद्यपि दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र में सुलतान की लोकप्रियता बढ़ रही थी, परन्तु दूरस्थ प्रांतों में अधीनस्थ सूबेदार स्वतंत्र होने का प्रयास कर रहे थे। बंगाल और मुलतान के प्रांतपति अधिक स्वतंत्र हो गये थे। खोखर भी अपने उपद्रवों और लूटपाट में क्रियाशील थे। कटेहर और बिहार के राजपूत हिन्दू नरेशों ने भी विद्रोह के झण्डे खड़े कर दिये थे। आंतरिक अशांति और विद्रोह के साथ-साथ सुलतान को पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्र में मगोलों का भी सामना करना पड़ा। सन् १२४५ में मंगोलों ने उनके सरदार मन्कूत के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया। सुलतान ने उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया। इस विजय के बाद सुलतान ने कतिपय प्रभावशील अमीरों और सरदारों की हत्याएं करदीं और स्वयं विलासिता में मग्न रहने लगा। परिणामस्वरूप अमीरों और मलिकों ने उसे पदच्युत करने का दृढ़ संकल्प किया और इल्तुतमिश के अन्य पुत्र नासिरुद्दीन को सुलतान बनने के लिये आमंत्रित किया। नासिरुद्दीन नारी के वेश में दिल्ली में प्रविष्ट हो गया और उसके पक्ष में अमीर हाजिब पद पर नियुक्त सरदार बलवन के नेतृत्व में अमीरों ने विद्रोह किया और एक षड़यन्त्र रचकर मसूद शाह को पदच्युत कर दिया और बाद में उसकी हत्या कर दी गयी। अब बलवन ने नासिरुद्दीन बलवन को सुलतान के सिंहासन पर आसीन कर दिया एवं अन्य सरदारों ने इसको स्वीकार कर लिया।

सारांश

सुलतान रुकुनुद्दीन फिरोजशाह—इल्तुतमिश के देहावसान के बाद उसके निर्णय और इच्छा के विरुद्ध अमीरों ने उसके द्वितीय पुत्र रुकुनुद्दीन फिरोज को सुलतान बना दिया। पर वह विलासी, अयोग्य, आलसी और अश्लील कार्यों में मग्न रहता था। इससे उसके विरुद्ध अमीरों और सेना ने विद्रोह करके, उसे बन्दी बनाकर उसकी हत्या कर दी तथा रजिया को सुलतान बना दिया।

रजिया सुलताना (सन् १२३६-१२४०)—रजिया इल्तुतमिश की पुत्री थी। उसे प्रसाशन करने, शस्त्र चलाने और युद्ध संचालन की शिक्षा इल्तुतमिश ने दी थी। जब इल्तुतमिश ग्वालियर विजय के लिये गया था, तब रजिया ने उसकी अनुपस्थिति में प्रशासन और सुरक्षा का कार्यभार बड़ी दक्षता से सम्भाला था। इससे प्रभावित होकर इल्तुतमिश ने रजिया को अपने पुत्रों की अपेक्षा अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। फिरोज रुकुनुद्दीन के वध के बाद रजिया सुलताना बनी। रजिया के सुलतानोचित राजकीय गुणों से प्रभावित होकर, सुलतान रुकुनुद्दीन की विलासिता और उसकी माता शाह तुर्कान के अत्याचारों से त्रस्त होने पर, था चारों ओर विद्रोहों का दमन करने और शान्ति बनाये रखने के लिये दृढ़ सुलतान की आवश्यकता होने से अमीरों और सरदारों ने रजिया को सुलतान पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

रजिया की समस्याएं और उसके कार्य—सुलतान बनने पर रजिया को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अनेक अमीरों, प्रांतीय हाकिमों और सूबेदारों का उसे समर्थन प्राप्त नहीं था। रजिया के वयस्क बंधु और उनके समर्थक रजिया के विरोधी और प्रतिद्वंदी बन गये थे। राजपूत नरेश भी अपनी खोयी हुई राज्य सत्ता को पुनः प्राप्त कर स्वतन्त्र शासक होने के प्रयत्न कर रहे थे। रजिया की निर्बलता से हाँसी, मुलतान, बदायूं और लाहौर के सूबेदारों ने भी संयुक्त रूप से दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। रजिया के नारी होने के कारण अनेक अधिकारी और अमीर उसे सुलतान मानकर उसके अनुशासन व आदेश में रहना अपना अपमान समझते थे। इससे उन्होंने रजिया का विरोध किया। रजिया ने सुलताना होते ही इन समस्याओं का सामना किया। जब विरोधी और विद्रोही अमीरों ने सेना से दिल्ली पर आक्रमण कर रजिया को घेर लिया, तब उसने कूटनीति और साहस से काम लिया। उसने विद्रोही अमीरों में से सालरी और कबीर खां को अपने पक्ष में मिला लिया और अन्य विद्रोही नेताओं में फूट डालकर उन पर आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया। अनेक विद्रोहियों को दंडित कर दिया और कुचल दिया। जब इस्माइलियों ने विद्रोह कर रजिया को पकड़ना चाहा तब रजिया ने स्फूर्ति और सतर्क होकर उन्हें सेना से परास्त कर खदेड़ दिया। राजपूतों के विद्रोह को दमन कर उसने रणथंभोर और ग्वालियर को पुनः अधिकार में कर लिया। सुलतान के पद की प्रतिष्ठा बढ़ाने, प्रशासन की शिथिलता और अशान्ति दूर करने, और अमीरों के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिये रजिया ने विरोधी अमीरों को पदों से अलग कर अपने समर्थकों को उन पर नियुक्त किया। उसने याकूत को अमीर आखूर के पद पर, ख्वाजा मुहाज

बुद्दीन को वजीर तथा मलिक हसन गोरी को सेनापति के पद पर नियुक्त किया तथा कबीर खां और सालारी की जागीरें बढ़ा दी। उसने शासन सत्ता पर पूर्ण अधिकार कर लिया। उसने पर्दा छोड़कर पुरुष वेश में राजसभा में बैठना, फरियादें सुनना, विभागों का निरीक्षण करना, सैन्य संचालन करना आदि अन्य प्रशासकीय कार्य सक्रियता से प्रारम्भ कर दिये। इससे रजिया को शासन में सफलता मिली और उसकी निरकुंश शासन और सत्ता स्थापित हो गयी।

रजिया का पतन—अबीसीनिया के हब्शी खान याकूत को रजिया ने ऊंचे पद पर पदोन्नत किया था और वह रजिया को घोड़े की सवारी करने में सदा सहायता व सहयोग देता था। उसे रजिया के सम्मुख आने-जाने की छूट थी। अधिकारियों और अमीरों की धारण थी कि याकूत और रजिया के परस्पर घनिष्ट अनैतिक सम्बन्ध हैं। याकूत के प्रति रजिया के अनुराग, स्नेह और पक्षपात से अन्य अमीर रजिया से अत्यन्त ही रुष्ट हो गये। रजिया की निरंकुश नीति और अमीरों पर दृढ़ अनुशासन से सरदारों में रजिया के प्रति तीव्र असन्तोष फैल गया था। जब रजिया ने ग्वालियर के हाकिम जुबैदी को दिल्ली में विद्रोह की आशंका से बुलवाया और वह लापता हो गया, तब अमीरों को रजिया पर जुबैदी की हत्या का संदेह हो गया और उन्होंने अपनी रक्षा के लिये रजिया के विरुद्ध षड़यंत्र रचा। तीव्र असन्तोष और षड़यंत्रों ने विद्रोह का रूप ले लिया और पंजाब के सूबेदार आयाज ने रजिया के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, पर रजिया ने उसे युद्ध में परास्त कर दिया और जब एक विदेशी शासक सैफुद्दीन ने आयाज पर आक्रमण किया, तब रजिया ने आयाज की शक्ति को नष्ट होने दिया। इसके बाद भटिंडा के हाकिम मलिक अल्तूनिया ने विद्रोह प्रारम्भ किया। रजिया उसे कुचलने के लिये सेना सहित भटिंडा गयी। पर विद्रोही अमीरों ने षड़यंत्र करके उसके प्रेमी याकूत का वध कर दिया और रजिया को बन्दी बनाकर अल्तूनिया को सौंप दिया तथा इल्तुतमिश के एक पुत्र बहराम को सुलतान बना दिया। ऐसी दशा में रजिया ने कूटनीति से काम लिया और अल्तूनिया से विवाह करके उसे दिल्ली पर आक्रमण करने और अपना खोया हुआ राज्य व शक्ति पुन: प्राप्त कर लेने के लिये सहमत कर लिया। अल्तूनिया और रजिया दोनों ने दिल्ली पर आक्रमण किया, पर सुलतान बहरामशाह ने उन्हें परास्त कर दिया। जब वे दोनों भागे जा रहे थे, तब उन्हें पकड़कर उनका वध कर दिया गया।

रजिया के पतन और असफलता के कारण—राज्य में अनेक सशक्त और स्वार्थी तथा ऊंचे पदों व अधिकार वाले कई अमीर थे। जब रजिया ने अपने स्वेच्छाचारी शासन से इनके प्रभुत्व, महत्व और अधिकारों को कम कर दिया, तब वे रजिया के घोर विरोधी बन गये। ये अमीर रजिया के निरकुंश शासन को सहन नहीं कर सकते थे। इन अमीरों को तथा अनेक कट्टर मुसलमानों को रजिया का पर्दा त्याग, पुरुष वेशभूषा में राजसभा में आना व बैठना, न्याय करना, घोड़े की सवारी करना, युद्ध करना, आदि पसन्द नहीं आया। रजिया के कार्य उन्हें इस्लाम विरोधी लगे। नारित्व की दुर्बलता से रजिया ने याकूत के प्रति अगाध स्नेह, अनुराग और कृपा प्रदर्शित कर अक्षम्य भूल की। रजिया का नारी होना ही उसके लिये अभिशाप सिद्ध

हो गया। उसके ऐसे अनैतिक सम्बन्धों के कारण अमीरों ने उसे राजसिंहासन से च्युत करने का संकल्प किया। इन्हीं सम्बन्धों के कारण रजिया को प्रजा का भी सहयोग और समर्थन नहीं मिला। रजिया को इस कठिनाई का सामना करना पड़ा कि केन्द्रीय सत्ता के निर्बल होने से दूरस्थ प्रांतपतियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किये। इल्तुतमिश के जो वयस्क पुत्र जीवित थे, उन्हें सुलतान बनाना और रजिया को पदच्युत करने की विरोधी भावना अमीरों में बढ़ती गयी। अन्त में विद्रोही अमीरों ने रजिया को युद्ध में परास्त कर ही दिया।

रजिया का मूल्यांकन—पूर्व मध्ययुग में रजिया प्रथम निरकुंश, स्वेच्छाचारी स्त्री सुलतान थी। वह बड़ी प्रतिभावान, सुयोग्य और गुण सम्पन्न शासक थी। इन्हीं सुलतानोचित गुणों के कारण इल्तुतमिश ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया था। रजिया ने निर्भीकता, धैर्य, साहस, वीरता, बुद्धिमानी और अदम्य उत्साह व दूरदर्शिता से अनेक समस्याओं का सामना किया और उन पर विजय पायी। उसमें एक वीर सैनिक के गुण थे, जिसके कारण उसने विद्रोहों और विरोधियों पर विजय प्राप्त की। कूटनीति और राजनीति में भी वह कुशल थी और इससे उसने अपने विपक्षियों में फूट डालकर उन्हें परास्त कर दिया। उसने मलिकों और अमीरों की शक्ति और अधिकार कम करके स्वयं स्वेच्छाचारी निरकुंश सुलतान बन गयी। मिनहाज-ए-सिराज के शब्दों में 'वह महान शासक, बुद्धिमान, ईमानदार, उदार, शिक्षा की पोषक, न्याय करने वाली, प्रजा-पालक तथा युद्धप्रिय थी।

सुलतान बहरामशाह और अलाउद्दीन मसूदशाह—रजिया के बाद अमीरों ने इल्तुतमिश के पुत्र बहरामशाह को सुलतान बना दिया और उसने १२४०-४२ तक शासन किया। उसके अयोग्य और विलासी होने के कारण अमीरों ने उसे कैद कर उसका वध कर दिया और उसके बाद फिरोज के पुत्र और इल्तुतमिश के पौत्र अलाउद्दीन मसूदशाह को सुलतान बनाया। उसने सन् १२४२–१२४६ तक राज्य किया। केन्द्रीय सरकार की दुर्बलता, सुलतान की विलासिता और प्रांतीय हाकिमों के विद्रोहों के कारण अमीरों ने मसूद की भी हत्या कर नासिरुद्दीन को सुलतान बनाया।

अध्याय ९

सुलतान नासिरुद्दीन महमूद सन् १२४६-६६

नासिरुद्दीन का राज्यारोहण--नासिरुद्दीन इल्तुतमिश का पुत्र था। उसकी माता का नाम मलका-ए-जहां जलाउद्दनियाबद्दीन था। उसका जन्म सन् १२२८ में हुआ था। वह इल्तुतमिश के ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन महमूद के देहावसान के बाद ही सन् १२२८ में उत्पन्न हुआ था। इसलिये इल्तुतमिश ने ज्येष्ठ मृत राजकुमार के नाम पर ही इसका नाम नासिरुद्दीन महमूद रख दिया था। राजनैतिक परिस्थितियों और षड़यन्त्रों के कारण नासिरुद्दीन को बाल्यकाल में ही कारावास में डाल दिया था। उसका अधिकांश समय बंदीगृह में ही व्यतीत हुआ। जब उसका बड़ा भाई अलाउद्दीन मसूदशाह सुलतान हुआ तब उसकी उदारता के कारण नासिरुद्दीन को बंदीगृह से मुक्ति मिली और वह बहराइच का सूबेदार नियुक्त किया गया। सूबेदार के पद पर रहकर नासिरुद्दीन ने बहराइच में उपद्रवों का दमन करके शांति और व्यवस्था स्थापित की। मिनहाज-ऐ- सिराज के अनुसार यहाँ उसने अनेक धर्मयुद्ध किये, अर्थात् उसने हिन्दुओं से युद्ध कर उनकी शक्ति को कुचलने का प्रयास किया। उसने अपने कुशल प्रशासन से ऐसी शांति व व्यवस्था स्थापित की कि बहराइच की जनता सुखी व सम्पन्न हो सकी। उसकी विजय एवं शासन सफलता की धाक चारों ओर जम गयी।

अलाउद्दीन मसूदशाह से पीड़ित और रुष्ट अमीरों और मलिकों को नासिरुद्दीन के "धर्म युद्धों" तथा बहराइच की प्रगति और समृद्धि की सूचनाएं प्राप्त होती रहती थीं। अतएव उन्होंने प्रसन्न होकर नासिरुद्दीन के पास गुप्त रूप से प्रार्थना पत्र भेजे कि वह दिल्ली आजाय और सुलतान का पद स्वीकार करे। अब नासिरुद्दीन ने अपनी माता मलका-ए-जहाँ के साथ पालकी में बैठकर अनेक सवारों तथा प्यादों के स थ दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। सुलतान मसूद शाह और अन्य लोगों को कोई आशंका न हो इसलिये नासिरुद्दीन की महत्वाकांक्षी माता ने यह घोषणा कर दी कि उसका पुत्र नासिरुद्दीन रुग्ण है और वह उसकी चिकित्सा के लिये उसे दिल्ली लेजा रही है। स्त्री की पालकी में मुंह को छिपाकर नासिरुद्दीन ने यात्रा की और गुप्त रीति से दिल्ली में बन्द पालकी में प्रवेश किया। राजधानी दिल्ली में नासिरुद्दीन और उसकी माता इतने गुप्त रूप से पहुँचे कि कोई भी जीवित जन्तु उनके आगमन का समाचार तब तक न प्राप्त कर सका, जब तक कि नासिरुद्दीन राज सिंहासन पर नहीं बैठ गया। दिल्ली में नासिरुद्दीन के प्रवेश करते ही उसके समर्थक अमीरों ने उसे सुलतान घोषित कर दिया। मसूद शाह को सुलतान पद से पृथक् कर दिया गया और जनवरी माह सन् १२४७ में प्रजा ने भी एक सार्वजनिक दरबार में नासिरुद्दीन को अपना सुलतान

मान लिया। दो वर्ष बाद बलबन नामक एक शक्तिशाली अमीर ने अपनी पुत्री का विवाह नासिरुद्दीन के साथ कर दिया। इससे नासिरुद्दीन के सम्मान और शक्ति में अधिक वृद्धि हुई।

नासिरुद्दीन की समस्याएं--अन्य सुलतानों के समान नासिरुद्दीन को भी प्रारंभ में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(१) **शक्तिशाली अमीर और मलिक**--इल्तुतमिश के निर्बल, निकम्मे और विलासप्रिय उत्तराधिकारियों के कारण राज्य के तुर्की अमीर, मलिक और सरदार अत्यधिक शक्तिशाली बन गये थे। राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर उनका अधिकार था। वे स्वार्थी और अधिकार-पिपासु थे और पारस्परिक ईर्षा-द्वेष के कारण अनेक दलों और गुटों में विभक्त थे। प्रत्येक गुट राजनीति और प्रशासन में हस्तक्षेप करता था और सुलतान को कठपुलती की भाँति नचाने का प्रयास करता था। इन्हीं महत्वाकांक्षी और स्वार्थ में संलग्न अमीरों के कारण प्राय: षड़यन्त्र और राजनैतिक उथल-पुथल होती रहती थी। सुलतान के पद से भी इनकी शक्ति अधिक बढ़ गयी थी। वे सुलतान-निर्माता तक हो गये। वे जब जिसे चाहे सुलतान के पद पर आसीन कर देते और रुष्ट व असन्तुष्ट होने पर उसे पदच्युत कर दूसरे को सुलतान बना देते थे। इन्हें नियंत्रित और अनुशासित करना राज्य के हित में अत्यन्त आवश्यक था।

(२) **आंतरिक शांति-व्यवस्था**—केन्द्रीय प्रशासन की दुर्बलता से, राजनैतिक षड़यन्त्रों और परिवर्तनों से राज्य में अशान्ति और अव्यवस्था फैल गयी थी और प्रशासन के सूत्र शिथिल पड़ गये थे।

(३) **खोखरों की समस्या**--पश्चिमोत्तर क्षेत्र और पंजाब में भयंकर खूंखार खोखर लोग निवास करते थे। वे सुलतान की शिथिलता और हाकिमों की निर्बलता और विद्रोहों से प्रोत्साहित होकर सल्तनत के सीमान्त क्षेत्र पर आक्रमण करते थे, और वहाँ की व्यवस्था को दुर्बल बनाने में योग देते थे। वे सुलतान को कामिनी-कंचन में फंसा देख उसकी सैनिक शक्ति को क्षीण जानकर अपने राज्य विस्तार के लिये सुलतान के राज्य पर आक्रमण करते, लूटपाट और हत्याएं कर अशांति और अव्यवस्था फैलाते थे।

(४) **राजपूतों के विद्रोह**--राजपूत अपनी स्वतंत्रता और राज्य प्राप्ति के लिये दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध निरन्तर विद्रोह कर रहे थे। वे कभी राज-कर नहीं देते थे, तो कभी सुलतान के आदेशों की अवहेलना करते थे। इनकी शक्ति इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि ये राजधानी दिल्लीमें प्रवेशकर लूटमार और उपद्रव भी करते थे। वे नवोदित तुर्की राज्य के लिये भयंकर खतरा थे।

(५) **मंगोलों के आक्रमण**--उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र में मंगोलों के आक्रमण निरन्तर बढ़ रहे थे। उनकी नृशंसता, लूटपाट, आगजनी और निर्मम हत्याओं से जनता अत्यन्त ही त्रस्त थी। मंगोलों के इन आक्रमणों को सीमान्त क्षेत्र के हाकिम रोकने में असमर्थ थे। दिल्ली सुलतान की निर्बलता मंगोलों को यह प्रलोभन दे रही थी कि वे दिल्ली की ओर बढ़ें और तुर्कों से उत्तरी भारत छीन लें। इस प्रकार मंगोलों के आक्रमणों और प्रकोप ने एक ओर जनसाधारण में अशांति और अव्यवस्था उत्पन्नकर

दी थी, तो दूसरी ओर दिल्ली की सल्तनत के अस्तित्व के लिये भी एक विनाशकारी खतरा उत्पन्न कर दिया था। मंगोलों की बाढ़ को अवरुद्ध किये बिना दिल्ली सल्तनत की रक्षा करना दुर्लभ था।

समस्याओं का निवारण--नासिरुद्दीन इन समस्याओं से विमुख नहीं हुआ, अपितु उसने इनका दृढ़ता और क्षमता से सामना किया और सफलतापूर्वक उन्हें सुलझा लिया।

(१) **बंगाल में विद्रोहों का बाहुल्य और बंगाल का पृथक्करण**--बिहार और बंगाल का प्रदेश दिल्ली से दूर रहा। वहाँ की राजधानी लखनौती के शासक दिल्ली सुलतान से स्वतंत्र होकर शासन करने लगे। नासिरुद्दीन के शासनकाल में लखनौती में विद्रोहों और उपद्रवों की विपुलता रही और एक के बाद एक करके आठ शासकों ने बंगाल में शासन किया। इनमें तुगन, उजबक, तुगरिहखां, अर्सलाखां आदि प्रमुख थे। सुलतान की निर्बलता, केन्द्रीय शासन की शिथिलता और दिल्ली व लखनौती की अधिक दूरी के कारण बंगाल के ये शासक दिल्ली सुलतान से स्वतंत्र हो गये और दिल्ली राज्य से बंगाल और बिहार पृथक् हो गये। नासिरुद्दीन को भी इतनी जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था कि, उसके पास न तो इतनी सैन्य शक्ति थी और न समय कि वह बंगाल में अपना स्थायी शासन और प्रभुत्व स्थापित कर सके।

(२) **लखनौती के तुर्क शासक**--यद्यपि बंगाल में लखनौती के शासक स्वतंत्र हो गये थे, परन्तु वे उड़ीसा, कामरूप (आसाम) और पूर्वी बंगाल के हिन्दू नरेशों से युद्धरत थे। नासिरुद्दीन के शासन काल में उड़ीसा के गंग वंशीय नरेश इन्द्रसिंह प्रथम ने दक्षिणी पश्चिमी बंगाल पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया था और उसके उत्तराधिकारियों ने इस प्रभुत्व को बनाये रखा। लखनौती के तुर्क शासक अपनी सीमावृद्धि के लिये पूर्व में आसाम की ओर बढ़े तब आसाम या कामरूप के नरेश ने भी तुर्क शासक से युद्ध छेड़ दिया और सन् १२५५ में उसे बुरी तरह परास्त कर बन्दी बना लिया। दक्षिण तथा पूर्वी बंगाल के हिन्दू नरेश भी लखनौती के तुर्क शासक से स्वतंत्र हो गये।

(३) **अमीरों पर नियन्त्रण**--सुलतान बनने के शीघ्र ही बाद नासिरुद्दीन ने अमीरों और अधिकारियों के पदों में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किये। अपने सहायकों और समर्थकों को भी उसने ऊंचे पदों पर नियुक्त नहीं किया। तीन वर्ष तक अमीरों का निरन्तर निरीक्षण करने के बाद नासिरुद्दीन ने सरकारी पदों पर अधिकारियों और अमीरों का इस प्रकार परिवर्तन किया जिससे किसी दल, वर्ग अथवा व्यक्ति विशेष की शक्ति, सत्ता और प्रभाव में अभिवृद्धि न हो। धीरे-धीरे उसने अमीरों में सर्वश्रेष्ठ अमीर बलवन की कार्यक्षमता और स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर सन् १२५० में उस पर विश्वास करके उसे अपना वकील या नायब-ए-मुमलिकात नियुक्त किया। उसने बलवन को अनेक अधिकार और शक्ति दी, पर उस पर दो शर्तें लगादीं, प्रथम, वह ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा, जिसके लिये वह अल्लाह के सम्मुख उत्तर न दे सके और, द्वितीय, वह ऐसा कोई कार्य न करे जिससे-सुलतान के पद और राज-प्रतिष्ठा पर आंच आय। बलवन के परामर्श से नासिरुद्दीन ने अन्य अमीरों और सूबेदारों के स्थानान्तरों

और पदों में परिवर्तन किये। उसने बलवन के परामर्श से शेरखां सुनकर को भटिंडा और लाहौर का हाकिम नियुक्त किया तथा पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा का भार भी उसी को दिया। इससे बलवन की शक्ति में वृद्धि हुई और उसके दल के सदस्यों की संख्या भी बढ़ी। नासिरुद्दीन ने बलवन के दल की सहायता से अन्य अमीरों और उनके गुटों पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया। इससे कुछ समय के लिये उसे सफलता अवश्य मिली। परन्तु बलवन के दल का प्रभुत्व बढ़ने लगा। बलवन की बढ़ती हुई शक्ति देखकर वजीर अबूबकर भी उसके दल में सम्मिलित हो गया। इस से प्रभावित होकर छोटे-मोटे तुर्की अमीर भी बलवन के दल में सम्मिलित हो गये। बलवन ने सुलतान नासिरुद्दीन को परामर्श दिया कि वह इन सशक्त स्वार्थी अमीरों और मलिकों का बलपूर्वक दमन करे। सुलतान में इतनी शक्ति, साहस और दृढ़ता नहीं थी कि वह इन अमीरों का दमन करे, क्योंकि वह उनसे डरता भी था और कुछ के प्रति सुलतान बनाये जाने के कारण कृतज्ञ भी था। अतः बलवन के आदेश और परामर्श को उसने पूर्ण रूप से तो नहीं माना, किन्तु उसने इतना अवश्य किया कि उसने अमीरों, सरदारों और मलिकों को यह आदेश दे दिया कि वे प्रायः स्वयं राजसभा में उपस्थित होकर सुलतान के प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करें। इस प्रकार अमीरों की शक्ति का दमन करने और उन्हें दबाने के हेतु सुलतान ने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया। उसकी इस नीति से वह कुछ सीमा तक सफल भी हुआ। उसकी इस शांतिपूर्ण समझौते और उदारता की नीति से वह प्रशंसित हुआ और उसे अनेक अमीरों, मलिकों और सरदारों का समर्थन प्राप्त हो गया।

(४) पंजाब पर पुनः अधिकार—बहरामशाह तथा मसूदशाह के शिथिल निर्बल शासन-काल में लाहौर, मुलतान और उच्छ पर दिल्ली सुलतानों का स्थायी आधिपत्य नहीं रहा था। मंगोल आक्रमणों के कारण सिंध और पंजाब की स्थिति अशांत और असन्तोषजनक हो गयी थी। पंजाब के कुछ क्षेत्र पर मंगोलों का अधिकार हो गया था। बलवन के परामर्श से नासिरुद्दीन ने स्वयं बलवन को साथ लेकर सेना सहित सन् १२४७ में लाहौर की ओर प्रस्थान किया। १० मार्च १२४७ को उसने रावी नदी पार की और वह सामान और हाथियों के साथ वजीराबाद में चिनाव नदी के तट पर ठहरा। बलवन सेना सहित आगे बढ़ गया और सिंध नदी तक चला गया। उसने नमक की पर्वत श्रेणियों के क्षेत्र के विद्रोही खोखरों को और हिन्दुओं को परास्त कर दिया और अनेकों को मौत के घाट उतार दिया। मिनहाज ऐ सिराज के अनुसार उसने "काफिरों को दोजख भेज दिया।" झेलम नदी के बाद बलवन को बराबर रसद प्राप्त नहीं हो रही थी, अतएव वह लौट गया और सुलतान के साथ दिल्ली आ गया। बलवन की इस विजय से पंजाब पर सुलतान का पुनः अधिकार हो गया और बलवन सुलतान का अधिक विश्वासपात्र बन गया।

(५) जलालुद्दीन का विद्रोह—नासिरुद्दीन का एक भाई जलालुद्दीन था। यह नासिरुद्दीन के शासन के प्रारम्भ में कन्नौज का हाकिम नियुक्त किया था। पंजाब विजय से लौटते समय सुलतान नासिरुद्दीन कन्नौज में ठहर कर जलालुद्दीन से सन् १२४८ में मिला। उसने सुलतान नासिरुद्दीन को सलाह दी कि वह बलवन को अपदस्थ करदे,

क्योंकि बलवन शक्तिशाली हो रहा है और बाद में वह खतरनाक होगा। पर नासिरुद्दीन ने इस परामर्श के ठीक विपरीत किया और बलवन की पदोन्नति कर उसे अपना नायब नियुक्त किया। जलालुद्दीन ने यह समझकर कि नासिरुद्दीन ने उसकी बातों को बलवन पर प्रगट कर दिया है और अब उसकी स्थिति खतरे से खाली नहीं है, उसने विद्रोह कर दिया और बाद में अपनी सुरक्षा के लिये भारत से बाहर चला गया। बलवन ने व्यास नदी तक उसका पीछा किया। जलालुद्दीन तुर्किस्तान में मंगोलों के नेता मंगूखां की राजसभा में पहुँचा और उसने मंगूखां से उसे दिल्ली के सिंहासन को दिलवाने की याचना की। परन्तु मंगूखां ने दिल्ली पर आक्रमण करने का उचित अवसर न समझकर जलालुद्दीन को सिंधु तट से लाहौर तक का प्रदेश, जो मंगोलों के अधीनस्थ था, शासन करने के लिये दे दिया। सुलतान बनने में सफलता प्राप्त न कर सकने के कारण निराश होकर जलालुद्दीन भारत लौट आया। पर नासिरुद्दीन ने उसके प्रति प्रतिहिंसा या दंड देने की भावना से व्यवहार करने की अपेक्षा उसके लिये बड़ी उदारता और सम्मान प्रदर्शित कर उसे सन् १२५५ में पंजाब में लाहौर का शासक नियुक्त कर दिया। नासिरुद्दीन की इस उदारता ने जलालुद्दीन की विद्रोही प्रवृत्ति को शांत कर दिया। इसके बाद जलालुद्दीन रैहन विरोधी दल में सम्मिलित हो गया और अब पुनः दिल्ली का सुलतान बनने का स्वप्न देखने लगा। परन्तु इस बार भी उसके हाथ निराशा और असफलता लगी। अन्त में विवश होकर वह लाहौर का शासक ही बना रहा।

(६) **कटेहर और दोआब में विद्रोहों का दमन**--नासिरुद्दीन के शासन के प्रारंभिक काल में ही दोआब और कटेहर में भयंकर विद्रोह हुए। ये विद्रोह वहां के हिन्दुओं और उनके राजा ने किये। सन् १२४७ में नासिरुद्दीन ने बलवन को सेना सहित साथ लेकर दोआब पर आक्रमण किया। कन्नौज की सीमा में तिलंसदा नामक दृढ़ दुर्ग में राजा और अनेक हिंदू शरण और सुरक्षा के लिये चले गये। मुसलमानों की सेना ने दुर्ग को घेर लिया और भयंकर युद्ध और भीषण रक्तपात के बाद नासिरुद्दीन ने दुर्ग को अधिकृत कर लिया। मिनहाज-ऐ-सिराज ने इस युद्ध के विषय में लिखा है कि, "काफिर हिन्दू उसी किले में शरण के लिये चले गये......और अन्त में उन विरोधियों को दोजख भेजकर उस स्थान को जीत लिया।" सन् १२५० में दोआब में पुनः विद्रोह हुआ और बलवन ने हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध छेड़कर विद्रोह को बड़ी क्रूरता से कुचल दिया। सन् १२५६ में जब दोआब में कुतलूगखां ने विद्रोह किया तब पुनः स्थानीय राजपूतों और हिन्दुओं ने अवसर का लाभ उठाकर सुलतान के विरुद्ध शस्त्र उठाये, तथा उपद्रव और लूटमार प्रारम्भ करदी। कटेहर में भी हिन्दू विद्रोहियों ने अपनी राजनैतिक शक्ति बढ़ा लेने का प्रयास किया। सुलतान ने बलवन को सन् १२५४ में कटेहर में हिन्दुओं के दमन के लिये भेजा। वहां हिन्दुओं के साथ हुए संघर्ष और युद्ध में मलिक रजीउल मुल्क इज्जुद्दीन दुमंशी तकलाबानी के स्थान पर मारा गया और सुलतान की सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी। यद्यपि इस युद्ध में बलवन ने हिन्दुओं को परास्त कर दिया था, किंतु कटेहर की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। कटेहर के अवशिष्ट विद्रोही हिन्दू नेता तुर्की सेना के शिविरों और सामरिक स्थानों पर आक्रमण करते थे तथा उन्होंने सुलतान को कर देना बंद कर दिया था।

(७) **किशलूखां का विद्रोह और दमन**—तुर्क अमीरों में उस समय किशलूखां भी एक प्रभावशाली सशक्त अमीर था। नासिरुद्दीन के शासन के प्रारम्भिक काल में किशलूखां सन् १२५०–५१ में नागोर का हाकिम था। उसने अपनी शक्ति वृद्धि के लिये सुलतान नासिरुद्दीन से मुलतान और उच्छ की सूबेदारी प्राप्त करली थी पर साथ ही उसने नागोर को भी अपने अधिकार में रखा। सुलतान के आदेशानुसार किशलूखां को नागोर कुरेश को दे देना चाहिये था। ऐसा न करने पर नासिरुद्दीन को क्रोध आया और वह स्वयं नागोर गया। उसने किशलूखां को बदायूँ भेज दिया और नागोर में एक अन्य हाकिम नियुक्त किया। किशलूखां बलवन का विरोधी था और बलवन की शक्ति वृद्धि होने के कारण उससे ईर्षा-द्वेष रखता था। उसने बलवन विरोधी षड़यन्त्रों में भाग लिया। उसने रैहन और कुतलुगखां के साथ सन् १२५८ तक बलवन को प्रभावशून्य और शक्ति क्षीण करने के प्रयत्न किये। उसने इसके लिये अन्य विरोधी मलिकों और सरदारों के साथ गुप्त गोष्ठियां और षड़यंत्र भी किये। पर नासिरुद्दीन ने विद्रोह का दमन करने के लिये उदारता से काम लिया और किशलूखां को अन्य विद्रोही सरदारों से प्रथक् करने और संतुष्ट करने के लिये किशलूखां को मुलतान और उच्छ का हाकिम नियुक्त कर दिया।

(८) **अन्य अमीरों का विद्रोह और बलवन का पदच्युत होना**–(१) बलवन ने विभिन्न विद्रोहों के दमन करने में नासिरुद्दीन को सहायता व सहयोग दिया। बलवन ने पंजाब में खोखरों और काफिरों का दमन कर पंजाब को पुनः सुलतान के अधिकार में ला दिया। उसने जलालुद्दीन की विद्रोही प्रवृत्तियों को कुचल दिया। दोआब व कटेहर में हिन्दुओं के विद्रोहों को कुचल दिया, तिलंसदा में हिन्दू राजा को परास्त कर दिया। प्रभावशाली अमीर किशलूखां के विद्रोह और शक्ति को नष्ट किया। (२) राजपूतों की शक्ति को हनन करने, बुन्देलखंड और बघेलखंड में चंदेल राजपूतों पर आक्रमण किया, और मालवा पर भी हमला किया।(३) बलवन ने नासिरुद्दीन को अमीरों के गुटों पर नियंत्रण पाने में परामर्श और सहायता भी दी। उसने अपनी पुत्री का विवाह भी नासिरुद्दीन के साथ कर दिया था। (४) उसके दृढ़ प्रशासन से राज्य की अव्यवस्था समाप्त हो गयी और दरबारी अमीरों के स्वार्थपूर्ण कार्यों का अन्त होने लगा। (५) बलवन की इन विजयों और सफलताओं से सुलतान की शक्ति, अधिकार और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और नासिरुद्दीन उसके प्रति विशेष कृपालु और सहिष्णु रहा। (६) इससे राज्य और दरबार में बलवन का प्रभाव और शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी। उसके संबंधी शेरखां सुनकर और किशलूखां ऊँचे पदों पर नियुक्त हो गये। फलतः राजसभा में बलवन दल प्रधान हो गया। इससे अनेक अमीर और मलिक उससे ईर्षा-द्वेष रखने लगे और उसके शत्रु हो गये। बलवन के प्रतिद्वन्दी उसे नीचा दिखाने के प्रयत्न करने लगे। बलवन विरोधी अमीरों ने सुलतान के कान भरना प्रारम्भ किये और विद्रोही भावना से बलवन के विरुद्ध एक षड़यंत्र रचा जिसमें बलवन की माता, इमामुद्दीन रैहन, कुतुलगखां, किशलूखां, तथा अर्सलानखां थे। इन्होंने सुलतान को समझाया कि बलवन की बढ़ती हुई शक्ति सल्तनत के लिये घातक सिद्ध होगी और उसकी स्वामीभक्ति भी सन्देहात्मक है। इन षड़यन्त्रकारियों ने बलवन की हत्या का भी प्रयत्न किया,

पर वे सफल नहीं हुए। अब उन्होंने सुलतान को समझाया कि बलवन का शासन बहुत ही खराब है और राज्य के हित में उसे पदच्युत करना आवश्यक है। सन् १२५३ में सुलतान ने इन विरोधियों के कहने में आकर बलवन को पदच्युत करके इमामुद्दीन रैहन को उसके स्थान पर नायब बना दिया। बलवन को हांसी का हाकिम बनाकर राजधानी से निष्कासित कर दूर भेज दिया। इमामुद्दीन रैहन एक धर्मपरिवर्तक हिंदू हिजड़ा था और सुलतान ने उसे वकील ए-दर का पद दे दिया था। बलबन ने सुलतान की आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया। उस समय बलवन इतना शक्तिशाली था कि यदि वह चाहता तो सुलतान का विरोध कर सकता था। पर स्वामिभक्त बलवन ने चुपचाप शांति से अपने स्वामी सुलतान की आज्ञा मान ली।

पदों और परिस्थितियों में परिवर्तन—बलवन को पदच्युत करने के साथ अन्य पदों में भी परिवर्तन किये गये। अर्सलानखां को पश्चिमोत्तर सीमा का प्रधान संरक्षक नियुक्त किया गया। बलवन के समर्थक अधिकारियों को स्थानान्तरित कर दिया गया। मुहम्मद जुनैदी को वजीर बनाया गया। प्रख्यात विद्वान और इतिहासकारक मिनहाज-ऐ-सिराज को काजी के पद से प्रथक् कर दिया गया। पदों का जो पुनः विभाजन हुआ उसमें मिनहाज वंचित रह गया। इसलिये उसने नये मंत्रियों, और इमामुद्दीन तथा उसके शासन की कटु आलोचना की है। उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति या अधिकारी जो बलवन का कृपापात्र और समर्थक था पदच्युत कर दिया गया तथा एक शांतिप्रिय राज्य के सुव्यवस्थित कार्य इमामुद्दीन के विनाशकारी हाथों में आ गये।

रैहन ने केन्द्रीय सरकार की शक्ति और अधिकारों में अभिवृद्धि करने तथा अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये उन भारतीय मुसलमानों के दल का संगठन किया जो स्वयं पहिले हिन्दू थे पर बाद में उन्होंने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। रैहन ने इन्हें शासन में तुर्की सरदारों और मलिकों के स्थान पर ऊँचे पदों पर नियुक्त किया।

बलबन का पुनः पदासीन होना—इमामुद्दीन नीच कुलोत्पन्न धर्म परिवर्तन किया हुआ मुसलमान था। वह स्वार्थी, अहंकारी और कपटी अमीर था। उसने शीघ्र ही शासन की सत्ता अपने हाथों में ले ली और ऊँचे पदों पर अपने समर्थक और सहायक बिठा दिये। इनमें अनेक अयोग्य कृपापात्र थे। तुर्की अमीर और मलिक रैहन जैसे नीच कुल के दंभी धर्म परिवर्तित सरदार की अधीनता में कार्य करना अपना अपमान मानते थे। उनके कुलीन वंशीय भावना, और जातीय स्वामिभक्ति को आघात लगता था। इससे उन्होंने रैहन से असहयोग किया। रैहन के व्यवहार के कारण उसके मित्र भी उसके शत्रु हो गये। प्रशासन में अव्यवस्था और शिथिलता उत्पन्न हो गयी तथा राजसभा में वैमनस्य, ईर्षा, विरोध, और प्रतिद्वंदिता की अभिवृद्धि हो गयी। मिनहाज-ऐ-सिराज ने लिखा हैं कि राजधानी दिल्ली के राजमार्गों पर गुन्डागर्दी होने लगी थी और वह छँ माह तक मसजिद में नमाज पढ़ने नहीं जा सका। ऐसी दशा में सारे राज्य मे अशांति, अव्यवस्था, और शिथिलता व्याप्त हो गयी। चतुर्दिक रैहन के प्रति विरोध बढ़ने लगा। तुर्की अमीर और सरदार रैहन की अहमन्यता, प्रशासन की शिथिलना से काफी असन्तुष्ट हो गये थे। उधर सुलतान विरोधी शक्तियां भी जोर पकड़ रही थीं। इमामुद्दीन में इतनी क्षमता नहीं थी कि इन विरोधी शक्तियों का

विनाश करता। इमामुद्दीन से सुलतान भी संतुष्ट नहीं था। इसीलिए कड़ा-मानिकपुर, अवध, तिरहुत, बदायूं, समाना, मुलतान, लाहौर, कुहराम आदि स्थानों के सूबेदार और हाकिमों ने बलवन से कार्यभार ग्रहण करने का अनुरोध किया और सल्तनत को रैहन के कुप्रभाव से मुक्त करने के लिये प्रार्थना की।

बलवन ने परिवर्तित परिस्थितियों से और अवसर से लाभ उठा कर गुप्त रूप से तुर्कों का दल संगठित किया और रैहन विरोधी अमीरों और हाकिमों को उसमें सम्मिलित किया गया। मंगोलों के शरण में गये उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र के भूतपूर्व प्रधान संरक्षक शेरखां सुनकर और नासिरुद्दीन के बंधु जलालुद्दीन को भी इस दल में सम्मिलित होने के लिए भारत आमंत्रित किया गया। अर्सलानखां को भी इस गुट में सम्मिलित किया गया। रैहन विरोधी अन्य तुर्क भी इस दल में आ गये। अब विचार-विमर्ष के बाद इस दल के अमीरों ने अपनी-अपनी सेनाओं सहित राजधानी दिल्ली पर आक्रमण किया। रैहन के परामर्श से नासिरुद्दीन ने शाहि सेना सहित विरोधियों का सामना करने के लिये प्रस्थान किया। रैहन ने सुलतान से कहा कि सैनिक विद्रोह का उत्तर सैनिक विजय के रूप में देना चाहिये। वह अपने विपक्षियों की शक्ति को सदा के लिए कुचल देना चाहता था। दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व दो प्रमुख तुर्की सरदारों मलिक शेरखां (बलवन का भानजा) और जलालुद्दीन खिलजी (बाद में खिलजी राजवंश का सस्थापक) ने सुलतान नासिरुद्दीन को यह परामर्श दिया कि वह व्यर्थ के रक्तपात को रोकने के लिए रैहन को अपदस्थ करदे और बलवन को पुनः उसके पद पर नियुक्त कर दे। इसी अवसर का वर्णन करते हुए मिनहाज-ऐ-सिराज ने लिखा है कि, "दो असन्तुष्ट सरदारों ने सुलतान से निवेदन किया कि वे सब उसकी आज्ञाओं और आदेशों का पालन करने को तैयार हैं, किन्तु उन्हें इमामुद्दीन रैहन के षड़यंत्रों से डर लगता है।" जब नासिरुद्दीन और विरोधी दल के नेताओं में संपर्क स्थापित हुआ तो उन्होंने संदेश भेजा कि वे सुलतान के नहीं अपितु रैहन के विरुद्ध हैं और यदि वे रैहन को अपदस्थ कर बलवन को पुनः नायब बना दें तो वे पूर्ववत स्वामिभक्त बने रहेंगे। नासिरुद्दीन ने रैहन को युद्ध करने की सलाह अस्वीकार करके वस्तु-स्थिति की गम्भीरता को समझकर रैहन को पदच्युत कर दिया और उसे बदायूँ का सूबेदार नियुक्त कर दिल्ली से दूर भेज दिया तथा सन् १२५४ में उसके स्थान पर बलवन को पुनः नायब नियुक्त कर दिया। इसके साथ-साथ विरोधी सरदार अर्सलानखां को कड़ा–मानिकपुर का सूबेदार, जलालुद्दीन को लाहौर का सूबेदार नियुक्त कर सुलतान ने विपक्षियों का भी समर्थन प्राप्त कर लिया। इस प्रकार नासिरुद्दीन की सूझबूझ, दूरदर्शिता ओर चतुराई से भीषण गृह युद्ध और भयंकर रक्तपात टल गया। राज्य में शांति-व्यवस्था हो गयी और स्वामिभक्त विश्वसनीय बलवन पुनः सुलतान का सहायक और परामर्शदाता बन गया।

बलवन द्वारा प्रतिस्पर्धो विरोधियों का दमन—बलवन के पुनः पदासीन होने पर उसके विरोधियों ने सन् १२५५—१२५८ तक ऐसे अनेक कार्य किये जिससे बलवन का प्रभाव शून्य हो जाय और अधिकार नगण्य बन जाय। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में गुप्त षड़यंत्र और विद्रोह किये।

बलबन ने इन्हें कुचलने के लिये विरोधियों के प्रमुख नेताओं और प्रधान सरदारों को दूरस्थ प्रांतों में भेज दिया।

(i) **रैहन और कुतलुगखां का स्थानान्तर**—बलवन ने रैहन को बहराइच से स्थानान्तरित करवा दिया और इसी प्रकार कुतलुगखां को, जिसने सुलतान नासिरुद्दीन की विधवा माता से विवाह कर लिया था, अवध भिजवा दिया। वहाँ उसकी नवीन पत्नी भी साथ भेज दी गयी।

(ii) **किशलूखां को मुलतान उच्छ में नियुक्ति**—किशलूखां को उसके असन्तोष के निवारणार्थ मुलतान और उच्छ का अधिकारी नियुक्त कर दिल्ली से दूर भेज दिया।

(iii) **रैहन और कुतलुगखां का विद्रोह**—नवीन परिवर्तन के पश्चात् भी समीपस्थ रहने का लाभ उठा कर रैहन और कुतलुगखां दोनों ने मिलकर विद्रोह किया। पर बलवन ने सेना भेजकर उसे दबा दिया और इसके कुछ समय बाद ही सन् १२५६ में रैहन का देहावसान हो गया।

(iv) **कुतलुगखां का विद्रोह और बलवन द्वारा उसका पीछा**—कुतलुगखां के विद्रोह करने के कारण बलवन ने उसे दंडित करने की दृष्टि से अवध से बहराइच स्थानान्तरित कर दिया। पर कुतलुगखां ने इस आदेश की अवहेलना की और उसने मलिक बकतमूर रुकनी के नेतृत्व में भेजी गयी शाही सेना को परास्त कर दिया। बकतमूर स्वयं भी युद्ध में खेत रहा। इस पर बलवन ने कुतलुगखां को नष्ट करने के लिये स्वयं अवध पर आक्रमण किया। पर कुतलुगखां डरकर हिमालय की तराई के प्रदेश में भाग गया। जब बलवन द्वारा पीछा करने पर भी वह पकड़ में नहीं आया, तब बलवन सेना सहित दिल्ली लौट आया। बलवन के दिल्ली आते ही कुतलुगखां ने हिमालयीन प्रदेश से लौट कर कड़ा, मानिकपुर और अवध पर अपना अधिकार करने का प्रयास किया पर अर्सलानखां के नेतृत्व में सुलतान की सेना ने उसे फिर परास्त कर खदेड़ दिया। कुतलुगखां भागकर देहरादून के आगे उत्तर में सिरमूर पहाड़ी क्षेत्र म संतौरगढ़ के राणा रणपाल की शरण में सुरक्षा हेतु चला गया। बलवन ने उसका पर्वतीय क्षेत्र मे पीछा किया और सन् १२५७ में रणपाल की हिन्दू सेना से भीषण युद्ध हुआ। उसने सिरमूर के पर्वतीय क्षेत्र को विध्वंस कर दिया। मिनहाज के अनुसार बलवन ने वहाँ धर्म युद्ध करके अनेकानेक हिन्दूओं को मौत के घाट उतार दिया। परन्तु परास्त होने और राज्य के विध्वन्स होने पर भी राणा रणपाल ने शरण मे आये कुतलुगखां की रक्षा की और उसे बलवन को नहीं सौंपा। मध्ययुग में स्वयं विध्वन्स होने पर भी विधर्मी को अभयदान देने का यह ज्वलन्त उदाहरण है। निराश और असफल होकर बलवन को दिल्ली लौटना पड़ा।

(v) **किशलूखां का विद्रोह**—किशलूखाँ मुलतान और उच्छ का हाकिम था और बलवन विरोधी था। उसने बगदाद में मंगोल शासक हलाकूखां से मित्रता की और उसकी अधीनता स्वीकार करके,उससे सहायता का वचन लेकर किशलूखां ने बलवन से बदला लेने के लिये सेना सहित प्रस्थान कर दिया। वह व्यास नदी के किनारे-किनारे होता हुआ, हिमालयीन तरेटी के प्रदेश मे कुतलुगखां की सेना से मिला और

अब दोनों सेना सहित किशलूखां ने दिल्ली पर आक्रमण किया। उसने दिल्ली में विरोधी व विद्रोही अमीरों और मलिकों से सम्पर्क और समर्थन प्राप्त कर यह सन्देश प्राप्त कर लिया था कि वे बलवन की अनुपस्थिति में दिल्ली में किशलूखां का शहर-कोट के दरवाजे खोलकर स्वागत करेंगे। बलवन ने विद्रोहियों के इस षड़यन्त्र और किशलूखां के दिल्ली में प्रवेश की खबर गुप्त रूप से प्राप्त कर ली थी। अतएव उसने नासिरुद्दीन को परामर्श देकर इन विरोधियों और विद्रोही अमीरों को दूरस्थ प्रदेशों को भिजवा दिया और दिल्ली की सुरक्षा तथा किशलूखां से युद्ध करने की तैयारी कर ली थी। किशलूखां जब दिल्ली के समीप आया, उसने सारी स्थिति का निरीक्षण कर मंगोलों से सैनिक सहायता की प्रार्थना की। यद्यपि उसे मंगोल सेना प्राप्त हो गई थी, पर वह सुलतान की सेना को परास्त नहीं कर सका और बलवन भी किशलूखां के मुलतान और उच्छ पर अधिकार नहीं कर सका। पर बलवन निरन्तर किशलूखां की शक्ति कम करने का प्रयास करता रहा और सन् १२६०-६६ के मध्य बलबन ने किशलूखां से मुलतान छीन लिया तथा सन् १२६६ के पूर्व शेरखां सुनकर को पश्चिमोत्तर क्षेत्र का प्रधान अधिकारी नियुक्त कर दिया था। इस प्रकार बलवन ने प्रतिस्पर्धी सरदारों और प्रबल प्रतिद्वंदी अमीरों का दमन कर दिया, उसने हर विद्रोही का अन्त कर दिया जिससे कोई भी उसके मार्ग का काँटा न बन सके।

नासिरुद्दीन और मंगोल--मंगोलों ने अफगानिस्तान और खुरासान को जीत कर ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन मंगबरनी को भी परास्त कर दिया था। जब जलालुद्दीन मंगबरनी इल्तुतमिश से सहायता और शरण प्राप्त न होने पर और मंगोलों द्वारा परास्त होने के बाद उत्तरी भारत के सीमान्त क्षेत्र से लौट गया था, तब उसके सरदारों का और विशेषकर हाकिम हसन करलुग का अधिकार सिंध और पश्चिमी पंजाब में बना रहा। इसके साथ-साथ मंगोल भी उस क्षेत्र में अपने प्रभुत्व और दबदबे का विस्तार कर रहे थे। इससे सीमान्त क्षेत्र में, लाहौर, मुलतान और उच्छ में दिल्ली सुलतान के हाकिमों का विशेष प्रभावशाली अधिकार नहीं रहता था। हसन करलुग की क्षीण शक्ति के कारण, सुलतान बहराम शाह और मसूद के दुर्बल शासन, नासिरुद्दीन की प्रारम्भिक जटिल समस्याओं और दिल्ली के केन्द्रीय शासन की दुर्बलता और पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र में दिल्ली के अधिकारियों की अकर्मण्यता के कारण मंगोलों को पंजाब पर आक्रमण कर दिल्ली की ओर प्रस्थान करने और उसे लूटने की प्रेरणा मिलती रही। नासिरुद्दीन और बलवन को भी यह भय था कि मंगोलों के आक्रमण से दिल्ली सल्तनत नष्ट हो जायगी और राजधानी उजड़ जायगी। इसलिये बलवन ने बड़े सशक्त और प्रभावशाली अमीर शेरखां सुनकर और किशलूखां को सीमान्त क्षेत्र लाहौर, उच्छ, मुलतान आदि का हाकिम नियुक्त किया। बलवन स्वयं भी इस क्षेत्र के खोखरों के उपद्रवों के दमन और शांति-व्यवस्था के लिये सन् १२४६-४७ में गया था।

सुलतान नासिरुद्दीन के भाई राजकुमार जलालुद्दीन ने दिल्ली का सुलतान बनने की महत्वाकांक्षा होने के कारण मंगोल नेता मंगूखां से सैनिक सहायता की याचना की। मंगूखां ने दिल्ली सुलतान से लोहा लेना उचित न समझ जलालुद्दीन को सिंधु तट से लाहौर तक का क्षेत्र जो मंगोलों के अधीन था, शासन करने के लिये दे दिया। सम्भव

है कुछ समय के लिये जलालुद्दीन मंगोलों के अधीन रहा हो। मंगोलों की सहायता से दिल्ली का सुलतान बनने के प्रयत्न में जलालुद्दीन के हाथ निराशा ही लगी।

दिल्ली सल्तनत का पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र का एक अन्य प्रधान हाकिम शेरखाँ सुनकर भी बलवन के प्रभाव और शक्ति को नगण्य करने के लिये मगोलों की शरण गया और सहायता की प्रार्थना की, पर उसे भी असफलता हाथ लगी। इसी प्रकार मुलतान और उच्छ का हाकिम किशलूखाँ भी जो बलवन विरोधी और प्रतिद्वंदी था, सुलतान नासिरुद्दीन को पदच्युत कर स्वयं सुलतान बनने का महत्वाकांक्षी था और इसके लिये मंगोलों से सैनिक सहायता की प्रार्थना की थी पर वह भी असफल रहा। क्योंकि मंगोलों के नेता हलाकूखां ने इसे स्वीकार नहीं किया। मंगोलों ने यह अनुभव कर लिया था और उन्हें विश्वास हो गया था कि बलवन का प्रभाव और सुलतान नासिरुद्दीन की सैनिक शक्ति, विदेशियों के आक्रमणों से दिल्ली सल्तनत की सुरक्षा और व्यवस्था के लिये समर्थ है। उन्होंने यह भी समझ लिया कि दिल्ली सुलतान मंगोलों के राज्य के प्रति बड़ी उदासीनता और तटस्थता की नीति अपना रहा है। इसलिये मंगोलों ने पंजाब और दिल्ली पर आक्रमण कर सुलतान और बलवन से लोहा लेना उचित नहीं समझा। इस प्रकार राजद्रोही बलवन-विरोधी, प्रतिद्वंदी तुर्की अमीरों ने मगोलों से साँठ-गाँठ कर दिल्ली सल्तनत के लिये संकट उत्पन्न कर दिया था। परिणाम स्वरूप सन् १२५७ में मंगोलों ने तुयनि के नेतृत्व में सिंध पर आक्रमण कर दिया, परन्तु जब सुलतान की शाही सेनाएं उनसे मोर्चा लेने पहुंची तब वे भारत से भाग गये थे।

इसी बीच नासिरुद्दीन करलुग नामक हाकिम ने मंगोलों के नेता हलाकूखाँ की अधीनता स्वीकार कर ली और साथ ही उसने अपनी कन्या का विवाह बलवन के पुत्र के साथ कर दिया। ऐसी दशा में वह मंगोल नेता और दिल्ली के सुलतान तथा उसके नायब बलवन दोनों पक्षों के मध्य मैत्री स्थापित करना चाहता था। उसकी प्रेरणा से हलाकूखाँ ने सन् १२५८-५९ में दिल्ली सुलतान की राजसभा में अपना एक दूत मण्डल भेजा। इस अवसर पर जब मंगोल दूत मण्डल राजधानी में था, तब बलवन ने विद्रोही मेवातियों को क्रूरता और नृशंसता से दण्ड दिया। सैनिकों की भव्य परेड हुई और मंगोल दूतमण्डल के सदस्यों से कहा गया कि वे राजपथ के दोनों ओर खड़ी सैनिक पंक्तियों के बीच होकर निकले। बलवन द्वारा दिये गये नृशंश दण्ड से और इस प्रकार सैनिक शक्ति प्रदर्शन से मंगोल राजदूत आतंकित हो गये। इसके बाद बलवन ने बड़ी ही शान-शौकत, भव्यता और सजधज से दूतमण्डल का राजसभा में स्वागत किया। मिनहाज ने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा है कि, "सुलतान सूर्य के समान और बलवन चमकदार चन्द्रमा के समान प्रतीत होते थे जो आदर और सत्कार के कारण घुटनों पर बैठा हुआ था, अमीर जो पंक्तिबद्ध खड़े थे, तारों के समान दृष्टिगोचर हो रहे थे तथा अन्य तुर्क भी बड़े सुसज्जित थे।" इसका प्रभाव मंगोलों पर हुआ और उनकी यह दृढ़ धारणा हो गयी थी दिल्ली का सुलतान बहुत धन-सम्पन्न, लोकप्रिय, शान-शौकत और शक्ति वाला है, उसके अनेक अमीर समर्थक और सहायक हैं, और उसकी सेना प्रशिक्षित, विपुल और उच्चकोटि की है।

मंगोल खूंखार और युद्धप्रिय जाति होने पर और सुलतान की वास्तविक स्थिति दुर्बल होने पर भी मंगोलों के नेताओं ने पंजाब और दिल्ली पर आक्रमण नहीं किये। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) इस समय मंगोलों ने बगदाद में खलीफा की शक्ति और राज्य का अन्त कर दिया था और वे स्वयं उस क्षेत्र के स्वामी बन गये थे। वे अब पश्चिमी एशिया में अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने और संवारने में संलग्न थे। उनको भारत पर आक्रमण करने का न तो अवकाश ही था और न शक्ति ही।

(२) जलालुद्दीन, कुतलुगखाँ, शेरखाँ सुनकर आदि तुर्क अमीर, सुलतान और बलवन के विरुद्ध मंगोलों से जा मिले और सैनिक सहायता की याचना की। परन्तु ये तुर्क अमीर अवसरवादी थे और प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित थे। वे केवल अपने कार्य की पूर्ति और सैनिक सहायता के लिये ही मंगोलों के शरणापन्न हुए थे। मंगोल इस तथ्य को भलिभांति समझ गये थे। अतएव मंगोलों ने उन पर विश्वास नहीं किया और भारत पर आक्रमण नहीं किये।

(३) बलवन और नासिरुद्दीन दोनों ही पंजाब और सीमान्त क्षेत्र के प्रति उदासीन नहीं थे। उन्होंने पंजाब में खोखरों का दमन कर शांति-व्यवस्था की, सीमा के दुर्गों का भलिभाँति सैनिक-करण वे किया और एक विशाल तथा दक्ष सेना मुगलों से युद्ध करने के लिये निर्मित की, तथा वे मंगोलों के विरुद्ध दिल्ली की सुरक्षा के लिये सदा सजग और सतर्क रहे। मंगोलों ने भी यह अनुभव कर लिया। इसलिये उन्होंने सुलतान और बलवन से व्यर्थ में लोहा लेना समीचीन नहीं समझा।

(४) मंगोल दूत मण्डल का बलवन द्वारा बड़ी भव्यता और सम्पन्नता से स्वागत करने से भी मंगोल अत्यधिक प्रभावित हुए और उन पर सुलतान की शक्ति, समृद्धि और सैनिक श्रेष्ठता की धाक जम गयी। फलतः मंगोल नेता ने अपने कर्मचारियों और अधिकारियों को यह स्पष्ट चेतावनी देदी कि वे दिल्ली राज्य की सीमा की उपेक्षा करें।

नासिरुद्दीन और राजपूत—दिल्ली सुलतान की क्षीण शक्ति से प्रेरित होकर राजपूतों ने अपनी शक्ति संवर्द्धन के लिये और स्वतन्त्र होने के लिये प्रयास किये।

(१) **बघेल और चन्देल राजपूत राज्य**—बुन्देलखंड में त्रैलोक्य वर्मा, वीर वर्मा, तथा हम्मीर वर्मा नामक नरेशों ने चन्देलों की खोयी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया था और अपने राज्य और प्रभाव का विस्तार उत्तर में यमुना नदी तक कर लिया था। कालपी से चुनार तक का क्षेत्र बघेल राजपूत राजाओं के अधीन था और बघेल नरेशों ने चन्देल राजाओं को अपना अधिपति मान लिया था। सुलतान के अवध के सूबेदारों और बघेल राजपूत राजाओं में परस्पर युद्ध और संघर्ष होते रहे परन्तु इससे बघेल राज्य की शक्ति क्षीण न हो सकी। चन्देल राजाओं की बढ़ती हुई शक्ति को कम करने के लिये बलवन ने सन् १२४८ में बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किये। परिणामस्वरूप चन्देलों का उत्तर की ओर प्रसार अवरुद्ध हो गया।

(२) **मालवा में नरवर, चन्देरी और ग्वालियर के राज्य**—इन राजपूत राज्यों की शक्ति में भी अभिवृद्धि हो रही थी। इस क्षेत्र के चाहड़देव हिन्दू राजपूत राजा ने तुर्कों से ग्वालियर छीन लिया। इस पर सन् १२५१-५२ में बलवन ने उस पर आक्रमण

किया। चाहरदेव के पास मिनहाज के अनुसार पांच सहस्र अश्वारोही तथा दो लाख पदाति सेना थी और उसने सुरक्षा के लिये दुर्गों का निर्माण किया था। बलवन ने अपने सैनिक अभियान के समय चाहरदेव के कुछ ग्राम और दुर्ग नष्ट कर दिये, परन्तु उसे पूर्ण रूप से परास्त कर उसकी शक्ति को नष्ट नहीं कर सका। उत्तरी मालवा और ग्वालियर क्षेत्र में चाहरदेव की शक्ति पूर्ववत् ही बनी रही।

(३) राजपुताने में रणथम्भोर, जालौर, जेसलमेर और मेवाड़ के राज्य—राजस्थान में चौहान राजपूत नरेशों ने पुनः अपनी सत्ता और शक्ति में अभिवृद्धि करली और रणथंभौर में तुर्कों को परास्त कर उन्हें वहाँ से खदेड़ कर पुनः स्वतन्त्र राजपूत राज्य स्थापित कर लिया था। रणथंभौर के जैत्रसिंह और हम्मीर चौहान नरेशों ने राजस्थान के बहुत विस्तृत प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। मालवा और गुजरात का कुछ प्रदेश भी उनके अधीन था। चौहानों ने अपनी शक्ति और राज्य इतने अधिक बढ़ा लिये थे कि वे दिल्ली पर भी आक्रमण करने लगे और उन्होंने राजस्थान से तुर्कों को खदेड़ दिया। इसी अवधि में जालौर के चौहानों, जेसलमेर के भट्टी राजपूत नरेशों और मेवाड़ में चित्तौड़ के गेहलोत राजपूत नरेशों ने भी तुर्कों के विरुद्ध संघर्ष करके अपनी शक्ति और राज्य सीमाओं में विस्तार कर लिया।

बलवन ने राजस्थान में राजपूतों की शक्ति कम करने के लिय, उन्हें दिल्ली की ओर बढ़ने से रोकने के लिये सन् १२४८, १२५४ और १२५८ में रणथंभौर पर आक्रमण किये। क्योंकि रणथंभौर इस समय राजपूत शक्ति का केन्द्र था। बलबन ने बूंदी और चित्तौड़ तक भी आक्रमण किये। बलवन के राजपूतों पर ये आक्रमण धर्मयुद्ध माने जाते थे और मिनहाज के अनुसार ये काफिर हिन्दुओं के विरुद्ध लड़े जाते थे। राजपूतों के साथ रणथंभौर में हुए युद्ध में शाही सेना का एक प्रधान नेता मलिक बहाउद्दीन ऐबक ख्वाजा खेत रहा। रणथंभौर के चतुर्दिक प्रदेश को उजाड़ कर बिना रणथंभौर दुर्ग पर विजय प्राप्त किये ही शाही सेना दिल्ली लौट गयी। रणथंभौर पर और अन्य राजपूत राज्यों पर बलवन के निरन्तर आक्रमण करने के बावजूद भी सुलतान नासिरुद्दीन व शाही सेना को विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली और राजस्थान में राजपूतों का प्रभुत्व पूर्ववत् ही बना रहा। उनके चित्तौड़ और रणथंभोर दुर्ग पहिले की अपेक्षा अधिक सुदृढ़, महत्वशाली और प्रख्यात माने जाने लगे तथा राजपूत शक्ति के केन्द्र समझे जाने लगे।

(४) दोआब और कटेहर—इन क्षेत्रों में भी राजपूतों ने विद्रोह किये उनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। सन् १२४७-४८ में और १२५० में बलवन ने सेना से विद्रोहों को कुचल दिया था और तिलसंदा के राजा को युद्ध में परास्त कर दिया था। सन् १२५४-५६ में पुनः वहां राजपूतों के विद्रोहों को शांत करने के लिये बलवन ने आक्रमण किया। परन्तु कटेहर में बलवन को विशेष सफलता नहीं मिली। राजपूतों की शक्ति मुसलमान सुलतान की शक्ति व सेना को क्षतिग्रस्त कर पूर्ववत् बनी रही।

मेवातियों के उपद्रव और उनका भीषण दमन--पंजाब में हरियाना और गुड़गांव क्षेत्र को मेवात कहा जाता था। यह क्षेत्र दिल्ली सुलतान के राज्य की सीमा पर ही था। यहाँ जादों भट्टी नामक राजपूत रहते थे। वे युद्धप्रिय थे। मुसलमान

इतिहासकारों ने इन्हें मेवाती कहा है। बलवन और नासिरुद्दीन को इन मेवाती राजपूतों के कड़े विरोध और उपद्रवों का सबसे अधिक सामना करना पड़ा। इस काल में राजपूतों में सर्वाधिक विरोध और विद्रोह मेवातियों का ही रहा। इनके उपद्रवों और लूटमार का क्षेत्र हाँसी और रेवाड़ी था और अनेक बार ये दिल्ली पर भी दिन-दहाड़े आक्रमण कर देते थे। ये छापामार नीति अपनाते थे। मुस्लिम राहगीरों को लूटना, पीटना, सुलतान के शाही कोष और रसद को छापा मारकर छीन लेना, इनके साधारण काम थे। इन्होंने अपने उपद्रवों से शासन और लोगों को आतंकित कर दिया था। फलतः सन् १२४९ में बलवन ने सेना सहित मेवात पर आक्रमण किया। निर्दयता से मेवातियों के अनेक ग्राम जला दिये गये और अनेकों का कत्लेआम कर दिया गया। परन्तु इससे मेवातियों पर कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने पुनः लूटपाट और उपद्रव की नीति अपनाई।

इस समय बलवन पदच्युत कर दिया गया था। जब वह पुनः पदासीन हुआ तो उसे उसके अन्य प्रतिद्वंदियों, और विरोधियों का कड़ा मुकाबला करना पड़ा और वह उनसे संघर्ष करने और उनका दमन करने में ही उलझा रहा। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर मेवातियों ने अपनी शक्ति खूब बढ़ा ली थी और अब वे दिल्ली नगर में दिन में भी घुसकर लूटपाट करते थे। पानी भरने वालों के बर्तन और भिश्तियों की मशकें भी वे छीन ले जाया करते थे। मिनहाज-ए-सिराज ने लिखा है कि मेवातियों से भूत भी भय खाते थे। फलतः जनवरी सन् १२६० में बलवन ने पुनः मेवातियों के प्रदेश पर आक्रमण किया। इस समय उसने उन सघन वनों को कटवा दिया जहां मेवाती आक्रमण के समय छिप जाते थे। बलवन ने इस समय पहिले की अपेक्षा भयंकर नृशंसता से मेवातियों का दमन किया। मेवातियों के नेताओं और सरदारों को बन्दी बना कर उन्हें भीषण यातनाएं देकर मरवा डाला। अनेक मेवातियों को पकड़कर जीते जी उनकी खाल खींच ली गयी। जहाँ जिन मेवातियों को बलवन पकड़ पाया उन्हें उसने कत्ल करवा दिया। उनके गाँवों में आग लगा कर उन्हें भस्मीभूत कर दिया। अनेक मेवातियों को बन्दी बनाकर मंगोल दूतमण्डल के संमुख उन्हें आतंकित करने के लिये कठोरता से कत्ल कर दिया। मेवातियों के इस दमन में बलवन को अत्यधिक सम्पत्ति और पशु हाथ लगे। हिन्दुओं का ऐसा भयानक नृशंस दमन बहुत कम हुआ है। इस विषय में स्वयं मिनहाज ने लिखा है, कि "(मेवातियों से) ऐसा बदला लिया गया कि किसी को वैसे बदले की याद नहीं थी और किसी भी सुनने वाले ने ऐसा बदला सुना ही नहीं था। परन्तु इन यातनाओं, हत्याओं, आगजनी, लूट-पाट और भीषण दमन चक्र के बावजूद भी मेवातियों के उपद्रव कम नहीं हुए और सुलतान अपने राज्य की सीमा पर स्थित मेवात पर अपना शासन स्थापित करने में असमर्थ रहा।"

नासिरुद्दीन का देहावसान—रोगग्रस्त रहने के कारण नासिरुद्दीन का सन् १२६६ में देहावसान हो गया। नासिरुद्दीन के एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, पर बाल्यकाल में ही वह काल कवलित हो गया था। ऐसी दशा में राज्य सिंहासन प्राप्त करने के लिये बलवन ने नासिरुद्दीन को विष देकर मार डाला। परन्तु इस धारणा के लिये ठोस ऐतिहासिक

प्रमाणों का अभाव है। सम्भव है सन्तान के अभाव में नासिरुद्दीन ने बलबन को ही अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित कर लिया हो।

नासिरुद्दीन का मूल्यांकन

(१) **व्यक्तिगत चरित्र**—मनुष्य के रूप में सुलतान नासिरुद्दीन बड़ा ही उदार, विनम्र, शांत और सरल प्रकृति का व्यक्ति था। उसमें न तो राजकीय दंभ की भावना थी और न राजकीय शान-शौकत और भव्यता के प्रदर्शन की इच्छा ही। वह साधारण वस्त्र धारण करता था और बड़ा ही चरित्रवान और सद्गुण सम्पन्न था। इससे उसके विषय में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हो गयीं। निजामुद्दीन का यह कथन कि वह कुरान की प्रतिलिपियां लिखकर अपना व्यय वहन करता था और राजकोष का उपयोग नहीं करता था, उसके केवल एक ही पत्नि थी और दासियों का अभाव था, और बदायूंनी का कथन भी कि वह राजसभा में ही शाही वेशभूषा धारण करता था और दैनिक जीवन में जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहिनता था, वह धर्मपरायण था और राज कार्यों में अभिरुचि नहीं रखता था—ये सब असत्य और भ्रममूलक है, ये अतिशयोक्तिपूर्ण कथन हैं। नासिरुद्दीन विलासमय रनवास में रहता था, उसकी अनेक बेगमें और दासियां थीं और उसने अपने रनवास की सुयोग्य दक्ष चालीस दासियों को अपनी बहिन के पास खुरासान भेजा था। वह प्रशासन में और युद्धों में रुचि भी लेता था और इसीलिये बीस वर्षों तक शासन कर पाया।

(२) **उदार सन्त शासक**—नासिरुद्दीन शांति-प्रिय, धर्मपरायण, दयालु सुलतान था। उसमें उदारता, सहिष्णुता और दयालुता कूट-कूट कर भरी थी। उस अशांत और असहिष्णुता के युग में नासिरुद्दीन अपने काल के सुलतानों की अपेक्षा अधिक उदार, कृपालु और सहिष्णु था। उसकी विशाल हृदयता और दानशीलता के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। अपने सच्चरित्र और इन श्रेष्ठ गुणों के कारण वह अपने अधिकारियों और सामन्तों में लोकप्रिय था। इसीलिये वह सन्त सुलतान कहा जा सकता है।

(३) **सफल सुलतान**—वह सूझबूझ और दृढ़ निश्चय की नीति का अनुकरण करने वाला सुलतान था। वह सल्तनत की समस्याओं को स्वयं आँखों से देखता, अनुभव करता था, और अपनी नीति और सूझ-बूझ से उन्हें स्वयं सुलझाने का प्रयत्न करता था। राजसिंहासन पर बैठने के बाद उसे अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा और प्रबल प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रशासन करना पड़ा था। परन्तु उसने अपने प्रधान मन्त्री बलबन की सहायता से बड़े धैर्य, साहस और उत्साह से इन समस्याओं का निराकरण किया।

विद्रोही अमीरो, मलिकों और सरदारों पर नियंत्रण रखने में वह पूर्ण रूप से सफल रहा। उसने महत्वाकांक्षी, प्रतिस्पर्धी और विरोधी सरदारों का दमन कर दिया। वह उसके हाथों में कठपुतली बन कर नहीं रहा और न उनकी दुशक्तियों का बोलबाला होने दिया। उसने एक ही दल को अत्यधिक शक्तिशाली बनाकर उसकी सहायता से अन्य विशृंखलित करने वाले सरदारों और मलिकों को कुचल दिया। उसने सुयोग्य

दृढ़ बलवन को अपना प्रधान मन्त्री बनाया और उसके दल को शक्तिशाली बनाया और इसी दल की सहायता व सहयोग से उसने विद्रोही तुर्की सरदारों, किशलूखां, कुतलुगखाँ, शेरखां, रैहन आदि का विनाश कर दिया। यदि सुलतान इस दृढ़ नीति का अनुकरण नहीं करता तो विपक्षी तुर्की सरदारों का दमन असम्भव था।

सुलतान नासिरुद्दीन अपने कर्मचारियों और अधिकारियों पर पूर्ण विश्वास रखता था। वह उन्हें दक्षता से कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करता था। उनकी सेवाओं से अधिकाधिक लाभ उठाने की कला में वह दक्ष था। वह उनमें दक्षता और स्वामिभक्ति के भाव प्रेरित करता था। वह गुणी और प्रतिभावान व्यक्तियों और अधिकारियों का आदर करता था और उन्हें अपने विकास के हेतु समुचित साधन उपलब्ध करता था। परन्तु वह अपने अधिकारियों और मन्त्रियों के परामर्श पर ही पूर्ण रूपेण निर्भर नहीं रहता था, वह उनके हाथ की कठपुतली बनकर कार्य नहीं करता था। वह अपने प्रभुत्व एवं प्राबल्य को अक्षुण्य बनाये रखता था और ऊंचे से ऊंचे पदाधिकारी, प्रांतपति और हाकिमों को राज्य के हित में पदच्युत करने तथा स्थानान्तरित करने में किंचित भी नहीं हिचकता था। वह उन्हें अपने नियन्त्रण में भी रखता था। यद्यपि बलवन उसका प्रमुख परामर्शदाता, प्रधान मन्त्री और दाहिना हाथ था, पर सुलतान ने उसे भी पूर्ण रूप से कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं दी थी। यद्यपि उसने बलवन को अनेक अधिकार दिये थे, परन्तु उसे निरंकुश और अनियन्त्रित नहीं होने दिया था। सुलतान कभी भी ऊंचे हाकिमों, या अमीरों द्वारा दबाया नहीं जा सका।

नासिरुद्दीन अपनी विद्वता और आकर्षक सुलेख के लिये प्रसिद्ध था। थामस नामक विद्वान का मत है कि सुलतान की इस विशेष योग्यता का प्रभाव कदाचित उसके शासन-काल के सिक्कों के निर्माण और उन पर अंकित लेखों और सुन्दर अक्षरों पर पड़ा हो जो पंक्तियों की सुन्दरता और फारसी अक्षरों के सुधार में प्राचीन सिक्कों से कहीं आगे थे।

सुलतान नासिरुद्दीन की धार्मिक नीति भी समयानुकूल और उदार थी। यद्यपि वह धर्मपरायण मुसलमान था और कुरान पर उसका श्रेष्ठ अध्ययन था, पर उसमे युग की कट्टर धर्मान्धता और नृशंसता नहीं थी।

(४) **सुरक्षात्मक नीति**—नासिरुद्दीन ने अपनी आन्तरिक और बाहरी नीति में सुरक्षा की भावना अपनाई। अमीरों के आन्तरिक विद्रोहों और उत्पातों से राज्य की सुरक्षा करना और शान्ति स्थापित करना उसका लक्ष्य था। दास सुलतानों में वह प्रथम सुलतान था, जिसने यह अनुभव कर लिया था कि भारत में नवोदित मुस्लिम राज्य की सुरक्षा के हेतु पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा करना अत्यन्त ही आवश्यक है और इसके लिये उसने निर्दिष्ट कदम उठाये। वह सीमान्त क्षेत्र में निरन्तर सशक्त प्रान्त-पतियों को नियुक्त करता रहा, उनके विरोध, और प्रतिस्पर्धा को कुचलता रहा, मेवातियों का दृढ़ता और निर्दयता से दमन करवाता रहा, सीमान्त क्षेत्र के दुर्गों का सैनिकीकरण करवाता रहा और मंगोलों के आक्रमणों के प्रति सदा सतर्क रहा। विदेशी सुलतान भी उसे आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। मंगोल नेता और

सरदार भी उससे मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने को उत्सुक थे। उसका शासनकाल अनेक समस्याओं और भयानक संकट का युग था, परन्तु उसने अपनी सतर्कता और सुरक्षात्मक नीति तथा बलवन की योग्यता व दृढ़ता से सल्तनत की रक्षा की।

(५) **साहसी सैनिक**—सुलतान नासिरुद्दीन में इल्तुतमिश और बलवन जैसी प्रतिभा, साहस और वीरता नहीं थी, परन्तु उसमें फीरोज रुकनुद्दीन, बहरामशाह और मसूदशाह जैसी निर्बलता, विलासप्रियता, अयोग्यता और निकम्मापन भी नहीं था। उसमें युद्ध के प्रति घृणा थी और वह शान्ति का इच्छुक सुलतान था। परन्तु परिस्थितियोंवश युद्ध के लिये विवश हो जाने पर वह रणक्षेत्र से पीछे नहीं हटता था। वह निर्भीकता से सैनिक अभियान करता था, और वीरता तथा साहस से युद्ध करता था। युद्ध करने और सैन्य-संचालन करने की उसमें क्षमता थी। अपने सैनिक गुणों का परिचय उसने अनेक सैनिक अभियानों, संघर्षों और युद्धों में दिया और इससे वह विरोधियों का दमन कर सका।

नासिरुद्दीन अपनी नीति और योग्यता के कारण तुर्क सरदारों, हिन्दुओं, मंगोलों के विरोध और विद्रोहों को अपने पूर्ववर्ती सुलतानों की अपेक्षा अधिक सफलता से सामना कर सका, सल्तनत को छिन्न-भिन्न होने से बचा सका। शान्ति-प्रिय उदार, विनम्र, विद्वान, सुलतानों में उसका स्थान महत्वपूर्ण है।

फरिश्ता के कथनानुसार सुलतान नासिरुद्दीन "अपने पिता के राजसिंहसान को अलंकृत करने के लिये वंश के अतिरिक्त, अपनी शूरता, योग्यता, विद्वता तथा अनेक सद्गुणों के कारण वह विशेष रूप से उपयुक्त था।"

नासिरुद्दीन एक अकर्मण्य शासक था और वास्तविक शासन-शक्ति बलवन के हाथों में केन्द्रीभूत थी।

कतिपय विद्वानों ने इब्नबतूता के कथन और अनेक किंवदंतियों के आधार पर यह धारणा बना ली कि नासिरुद्दीन विद्वान,मितव्ययी,नम्र और उदार तो था,परन्तु शासन करने में अयोग्य था। उसमें प्रशासन की प्रतिभा, और योद्धा की वीरता, साहस और रणकौशल नहीं था। वह कुरान की सुन्दर आकर्षक प्रतियाँ लिख-लिखकर,उन्हें बेचकर अपना समय व्यतीत करता था और व्यय वहन करता था। इससे प्रशासन और राज्य के समस्त अधिकार और शक्ति उसके प्रधानमंत्री और श्वसुर बलवन के हाथों में केंद्रीभूत थी। नासिरुद्दीन तो अकर्मण्य और शक्तिहीन था। वास्तविक शासक तो वही था। बलवन की दृढ़ता और नीति के अभाव में नासिरुद्दीन का शासन असफल हो जाता और उसे अपदस्थ कर अन्य राजकुमार को सुलतान बना दिया जाता। परन्तु नासिरुद्दीन के शासनकाल की घटनाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त मत भ्रम-मूलक है। निम्नलिखित तर्कों से यह और भी स्पष्ट हो जायगा।

(१) जब नासिरुद्दीन बहराइच का सूबेदार या हाकिम था, तब उसने वहाँ के स्थानीय हिन्दू सामन्तों, नरेशों से युद्ध किये, उनके विरोध को शान्त किया। उसने प्रशासकीय व्यवस्था स्थापित कर बहराइच की जनता को संतुष्टि और सम्पन्नता उपलब्ध कराई। इस अल्पकाल के शासन से प्रगट होता है कि नासिरुद्दीन मे सैनिक अभियानों की और विद्रोहों को शान्त करने की तथा प्रशासन में शान्ति व्यवस्था स्था-

पित करने की क्षमता थी। युद्ध और शासन दोनों में ही वह योग्य था और इसीलिये विपक्षी अमीरों ने उसे सुलतान बनने के लिये आमंत्रित किया था।

(२) नासिरुद्दीन महत्वाकांक्षी था और अपने लक्ष्य की पूर्ति के हेतु साधनों के चयन में चतुर भी था। वह सुलतान बनने के लिये बड़ा उत्सुक था, इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये उसने गुप्त षड़यंत्र किया, वह पालकी में बैठकर, दिल्ली में, चिकित्सा कराने के बहाने, चुपचाप गुप्त रूप से प्रविष्ट हो गया और बाद में सुलतान बन गया। इस प्रकार उसमें कार्य-साधन की चतुरता और सुलतान बनने की महत्वाकांक्षा प्रचुर मात्रा में थी।

(३) वह राज कर्मचारी, अधिकारी, हाकिम, प्रांतपति आदि को अपनी सूझ-बूझ से और निरीक्षण के बाद नियुक्त करता था, नियुक्त करने के बाद वह उन पर विश्वास करता था। वह उनमें आत्मविश्वास और राजभक्ति प्रोत्साहित करता था। समय और आवश्यकता के अनुसार और राज्य-हित में वह उन्हें अपदस्थ और स्थानान्तरित भी कर देता था। वह उनके हाथ में कभी भी कठपुतली बनकर नहीं रहा, उनके परामर्श, अवलम्बन और नीति के सहारे पूर्णरूपेण कार्य नहीं करता था। सिंहासनारूढ़ होने के बाद तत्काल ही अन्य सुलतानों की भांति उसने अपने समर्थक और सहायक अमीरों को ऊंचे पद नहीं दिये, अपना वकील या नायब-ए-मुमलिकात या प्रधानमंत्री नहीं बनाया। उसने अमीरों, मलिकों और सरदारों के पदों में भी कोई आमूल परिवर्तन नहीं किया। तीन चार वर्ष के निरन्तर प्रशासकीय अनुभव और निरीक्षण के बाद ही अपनी सूझ-बूझ और प्रतिभा से सबसे योग्य और श्रेष्ठ सरदार बलवन को चुन लिया और उसे अपना प्रधानमंत्री या नायब-ए-मुमलिकात नियुक्त किया। परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने और समय की मांग पर उसने बलवन को पदच्युत भी कर दिया, और पुन. कुछ मास बाद उसे पदासीन कर दिया। यदि उसमें निरीक्षण, अनुभव और कुशलता का बाहुल्य नहीं होता और दृढ़ता नहीं होती तो, निश्चित ही पदच्युत बलवन चुपचाप हांसी और रेवाड़ी जाने की अपेक्षा सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करता। इसी प्रकार जब इमामुद्दीन रेहन की अक्षमता और अयोग्यता के विरुद्ध सैनिक प्रदर्शन किया गया, तब भी नासिरुद्दीन में इतनी कुशलता और शक्ति थी कि उसने नये नायब रेहन को बदायूं भेजकर पुराने नायब बलवन को पुनः पदासीन कर दिया। नासिरुद्दीन अपनी माता का भी आदर करता था, परन्तु जब उसने देखा कि वह षड़यंत्रों और उपद्रवों में भाग लेकर अशान्ति को प्रोत्साहित कर रही है, तब उसने उसे राजधानी दिल्ली के बाहर भेजने की व्यवस्था कर दी।

(४) नासिरुद्दीन अमीरों, सरदारों, मलिकों और हाकिमों व प्रान्तपतियों के पारस्परिक ईर्षा-द्वेष, प्रतिस्पर्धा, वैमनस्य और प्रतिहिंसा की भावना को भी अच्छी तरह समझता था। वह उनके गुट-बन्दियों और दलगत षड़यंत्रों से ऊपर उठा रहा और किसी गुट विशेष का पक्ष नहीं लिया। राज्य के हित में वह इन स्वार्थी विपक्षी अमीरों और हाकिमों का दमन करता रहा। वह उनके हाथों का खिलौना नहीं बन गया था। अपने पूर्ववर्ती सुलतानों के समान वह सामन्तों और सरदारों पर शासन करने में दुर्बल नहीं था। बलवन जैसा दृढ़ सामन्त और नायब भी उसका स्वामिभक्त

राज्यनिष्ठ सेवक ही रहा स्वामी नहीं। वास्तव में शासन सत्ता नासिरुद्दीन के हाथों में ही थी। बलवन को शक्ति देने के साथ-साथ उसने अपने हाथ भी इतने सबल कर लिये थे कि वह सुचारु रूप से प्रशासन कर सका।

(५) प्रशासन के साथ-साथ नासिरुद्दीन में सेना का संचालन करने, सैनिक अभियान ले जाने, और विद्रोही तथा उपद्रवकारियों का दमन करने की प्रतिभा और शक्ति थी। बहराइच में, दोआब और पंजाब में, नासिरुद्दीन की युद्ध-कला का प्रदर्शन होता है। युद्ध में भी वह चतुर था और युद्धों और विद्रोहों के दमन में वह बलवन के के साथ सक्रिय भाग लेता रहा।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि नासिरुद्दीन केवल नाम मात्र का ही सुलतान नहीं था। उसने बीस वर्ष की अवधि तक केवल बलवन की कृपा और शक्ति के सहारे से शासन नहीं किया, अपितु अपनी शक्ति, योग्यता, प्रतिभा और गुणों के आधार पर वह सफल और संत सुलतान बन सका। फिर क्या कारण है कि नासिरुद्दीन की सफलता-सिद्धियों का श्रेय बलवन को दिया जा रहा है। इसके निम्नलिखित कारण हैं।

(१) नासिरुद्दीन के देहावसान के तत्काल बाद ही बलवन सुलतान बन गया। नासिरुद्दीन के समय ही दीर्घ काल तक वह शासन सत्ता से सम्बन्धित रहा और नासिरुद्दीन के कार्यों में सक्रिय योग दिया। उसके बाद भी बलवन ने दृढ़ता से सल्तनत की शक्ति और अधिकारों को, राज्य के यश-गौरव और सीमाओं को बनाये रखा। बलवन के कार्य और सफलताएं उसके पूर्ववर्ती शासकों के कार्यों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ थे। इसलिये बलवन के शासनकाल की ही नहीं, अपितु नासिरुद्दीन के काल की सफलता सिद्धियों का श्रेय बलवन को ही दे दिया गया।

(२) इल्तुतमिश का मत था कि उसके सभी पुत्र सुलतान के पद के अयोग और शक्तिहीन है। अन्य विद्वानों और इतिहासकारों ने उसके इस कथन पर विश्वास करके नासिरुद्दीन को भी निकम्मा और अयोग्य सुलतान मान लिया। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि जिस समय इल्तुतमिश ने अपने पुत्रों की अयोग्यता और निकम्मेपन का प्रमाण पत्र दिया, उस समय नासिरुद्दीन केवल निरीह बालक ही था और उससे बड़े तीन भाई और थे। इसीलिये नासिरुद्दीन को उत्तराधिकारी बनाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। इल्तुतमिश की मृत्यु के अनेक वर्ष बाद सन् ११४६–६६ की अवधि में नासिरुद्दीन के शासनकाल में ही यह स्पष्ट हो सका कि वह एक सफल सुलतान था। उसके शासनकाल में हुए विद्रोहों, उपद्रवों और राजनैतिक उथल-पुथल को देखकर कहा जा सकता है कि वह अमीरों और प्रान्तपतियों को अपने वश में नहीं कर सका, पर यह धारणा भी गलत है। उसके शासनकाल के ये विद्रोह या उपद्रव नासिरुद्दीन की दुर्बलताओं के कारण उसके विरुद्ध नहीं हुए, अपितु उसका भाई जलालुद्दीन की सुलतान बनने की महत्वाकांक्षा के कारण और शेरखां, किशलूखां, कुतलुगखाँ आदि अमीरों की स्वार्थपरता, प्रतिस्पर्धा और प्रतिहिंसा की भावना के कारण हुए।

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि नासिरुद्दीन अकर्मण्य और और निकम्मा नाम मात्र का सुलतान नहीं था, वह वास्तविक शासक था, जिसके हाथों में शासन शक्ति थी और जो स्वयं प्रशासन संचालित करता था।

सारांश

नासिरुद्दीन का राज्यारोहण–इल्तुतमिश के पुत्र नासिरुद्दीन का बाल्यकाल कारावास में व्यतीत हुआ था। परन्तु उसके भाई अलाउद्दीन मसूदशाह के सुलतान होने से वह बहराइच का हाकिम बन गया। बहराइच में उसके अच्छे प्रशासन और शांति स्थापित करने से वह अधिक प्रसिद्ध हो गया। इससे मसूदशाह से रुष्ट अमीरों ने नासिरुद्दीन को दिल्ली आमंत्रित किया। रात्रि में स्त्री पालकी में उसके दिल्ली आने पर अमीरों ने उसे सुल्तान घोषित कर दिया और सन् १२४६ में वह राजसिंहासन पर बैठा।

नासिरुद्दीन की समस्याएं–सुलतान बनने के बाद उसको निम्न लिखित प्रमुख कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। (१) राज्य में स्वर्थी प्रतिस्पर्धी शक्तिशाली अमीर अनेक गुटों में विभक्त थे। ये सुलतान के विरूद्ध षड़यन्त्र और विद्रोह करते थे और इनके नेता सुलतान-निर्माता हो गये थे। इनका दमन करना आवश्यक था। (२) राज्य में फैली अशांति और अव्यवस्था को दूर कनरा आवश्यक था। (३) पंजाब के युद्ध-प्रिय खोखर लोग सुल्तान के राज्य पर आक्रमण करते थे और लूटपाट अशांति और अव्यवस्था फैलाते थे। (४) राजा सुलतान के विरूद्ध विद्रोह कर रहे थे और सुलतान को राज कर नहीं दे रहे थे। (५) उत्तारी पश्चिममी सीमान्त क्षेत्र में मंगोलों के भयानक आक्रमणों और नृशंस लूटपाट से दिल्ली सल्तनत के अस्तित्व को एक विनाशकारी खतरा उत्पन्न हो गया था।

समस्याओं का निराकरण–नासिरुद्दीन ने दृढ़ता, योग्यता और क्षमता से अपनी समस्याओं का निम्न रूप से निराकरण किया।

१. सुलतान की निर्बलता और केन्द्रीय शासन की शिथिलता से बंगाल और बिहार के शासक दिल्ली से स्वतंत्र हो गये और नासिरुद्दीन अपनी समस्याओं की जटिलता और विपुलता के कारण बंगाल और बिहार से उपेक्षित रहा। इससे विभिन्न अमीर व अधिकारी, उड़ीसा और आसाम के हिन्दू नतेश अधिक शक्तिशाली हो गये। २. तीन वर्ष तक निरीक्षण और अनुभव करने के बाद नासिरुद्दीन ने बलबन को उसकी कार्यक्षमता के कारण चुनकर अपना नायब या प्रधान मन्त्री बना लिया, शेरखां सुनकर को भटिंडा और लाहौर का हाकिम नियुक्त किया तथा बलबन और उसके दल की शक्ति बढ़ाकर अन्य अमीरों पर नियंत्रण रखना प्रारम्भ किया। उसने सामन्तों के प्रति शांति पूर्ण समझौते और उदारता की नीति अपनाई (३) सन १२४७ में नासिरुद्दीन, बलबन और सेना सहित पंजाब में गया और वहां खोखरों को परास्त कर पंजाब पर पुन: अधिकार कर लिया। (४) नासिरुद्दीन के भाई जलालुद्दीन ने जो कन्नौज का हाकिम था सुलतान बनने की महत्वाकांक्षा से भारत छोड़कर तुर्कीस्तान में मंगोलों के नेता मंगूखां की राजसभा में जाकर नासिरुद्दीन के विरुद्ध सहायता मांगी। पर मंगूखां ने नासिरुद्दीन से युद्ध करने की अपेक्षा जलालुद्दीन को मंगोलों के अधीन मुलतान और उच्छ का शासक बनाकर भारत भेज दिया। बाद में नासिरुद्दीन ने उसके साथ उदारता से व्यवहार करके उसे लाहौर का हाकिम बना दिया। (४) दोआब में सन १२४७ में कन्नोज के पास

तिलसंदा के हिन्दू राजा के विद्रोह को निर्दयता से बलवन ने दबा दिया। सन् १२५० में जब पुन: हिन्दुओं ने दो आब में विद्रोह किया, तब भी बलवन ने बड़ी क्रूरता से उसे दबा दिया। सन १२५६ में पुन: वहां हिन्दुओं ने और कुतलुगखां ने विद्रोह किये। कटेहर के हिन्दुओं के विद्रोह को बलबन ने सेना से शांत कर दिया था। (५) नागोर के सक्रिय और शक्तिशाली अमीर किशलुखां ने बलवन विरोधी होने से विद्रोह किया। नासिरुद्दीन ने उसे बदायूं का हाकिम नियुक्त कर दिया। पर नासिरुद्दीन ने उसे अन्य विरोधियों और विद्रोहियों से प्रथक रखने और सन्तुष्ट रखने के लिए मुलतान और उच्छ का हाकिम बना दिया।

अमीरों के विद्रोह और बलवन का अपदस्थ होना—हिन्दुओं, राजपूतों और अमीरों के विद्रोहों को दबाने में और सरदारों पर नियन्त्रण करने में तथा उसमें सफलता प्राप्त होने में बलवन ने सुलतान को अत्यधिक सहायता दी। इससे बलबन के अधिकार, शक्ति, प्रभाव और प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ गये। बलबन के प्रतिस्पर्धी, विरोधी ईर्षालु अमीर इसे सहन न कर सके और उसके विरुद्ध षड़यन्त्र करके सुलतान के कान भर कर यह समझाया कि बलवन का शासन राज्य के लिये घातक है। इस लिए सुलतान ने बलबन को नायब पद से अपदस्थ कर हांसी का हाकिम बना कर राजधानी से दूर भेज दिया और उसके स्थान पर इमामुद्दीन रेहन को नायब बना दिया। बलबन के समर्थक अधिकारियों, अमीरों और सहायकों को भी स्थानान्तरित या पदच्युत कर दिया गया।

परिस्थितियों में परिवर्तन और बलवन का पुन: पदासीन होना—इमामुद्दीन रेहन ने तुर्की अमीरों को हटा कर उनके स्थान पर अपने समर्थकों और भारतीय मुसलमानों को नियुक्त कर दिया। रैहन स्वार्थी, अहंकारी और अक्षम होने से प्रशासन में शिथिलता आ गयी और रैहन के विरुद्ध अमीरों ने विद्रोह किये और दिल्ली की ओर अपनी सेना सहित कूच किया। नासिरुद्दीन ने परिवर्तित स्थिति को देखकर रैहन को पदच्युत कर दिया और उसे बदायूं का सूबेदार बना कर भेज दिया तथा सन् १२५४ में बलबन को इसके स्थान पर पुन: प्रधानमन्त्री या नायब नियुक्त किया। इससे राज्य में शांति-व्यवस्था कायम हो गयी।

बलबन द्वारा प्रतिस्पर्धी विरोधियों का दमन—बलबन ने नायब बन जाने पर अपने विरोधियों को कुचलने के प्रयत्न किये। उसने रैहन को बहराइच और कुतलुगखां को अवध स्थानान्तरित कर दिया, किशलूखां को अपने पक्ष में करने के लिए उसे मुलतान और उच्छ का हाकिम नियुक्त कर दिया, रैहन और कुतलुगखां दोनों ने इसके विरोध में विद्रोह किया पर बलबन ने दोनों के सम्मिलित विद्रोह को कुचल दिया। कुतलुगखां की शक्ति को नष्ट करने के लिये बलबन ने उसे सेना से परास्त कर अवध से पर्वतीय क्षेत्र में खदेड़ दिया और वहां उसका पीछा भी किया। इसी बीच किशलूखां ने कुतलुगखां की सेना से सहयोग कर मंगोलों से सैनिक सहायता प्राप्त कर दिल्ली पर आक्रमण किया। बलबन ने किशलूखां से युद्ध करने की तथा दिल्ली की सुरक्षा की तैयारी करली थी, इसलिए किशलूखां सफल नहीं हुआ। धीरे-

धीरे एक के बाद एक बलबन ने अपने प्रतिद्वंदियों और विरोधी अमीरों का दमन कर दिया।

नासिरुद्दीन और मंगोल—सुलतान बहरामशाह और मसूदशाह के दुर्बल शासन, नासिरुद्दीन की जटिल समस्याओं, दिल्ली के केन्द्रीय शासन की दुर्बलता तथा पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र में दिल्ली के प्रांतपतियों की अकर्मण्यता से मंगोलों ने नासिरुद्दीन के राज्य काल में पंजाब और दिल्ली पर आक्रमण करने के प्रयत्न किये। जलालुद्दीन ने भी सुलतान बनने के लिये नासिरुद्दीन के विरुद्ध मंगोलों से सहायता मांगी थी, पर व्यर्थ। शेरखाँ सुनकर ने भी बलबन के विरोध में मंगोलों से सहायता मांगी थी और किशलूखां ने भी नासिरुद्दीन को पदच्युत करके स्वयं सुलतान होने के लिये मंगोलों से सैनिक सहायता देने के लिये प्रार्थना की थी। परन्तु ये सब असफल रहे। मंगोलों ने बलवन की शक्ति और सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए उन्हें सहायता नहीं दी। नासिरुद्दीन करगुल नामक हाकिम के प्रयत्नों से मंगोलों और दिल्ली सुलतान में मैत्री संबंध स्थापित हो गये और मंगोलों के नेता हलाकूखां का एक दूत मंडल दिल्ली आया जिसका बलबन ने बड़े शान-शौकत और भव्यता से स्वागत किया। इससे मंगोलों पर बलबन की दृढ़ता, शक्ति और सम्पन्नता की धाक जम गयी।

नासिरुद्दीन और राजपूत—बुन्देलखंड में चंदेल राजपूत राजाओं ने और बघेलखंड में बघेल राजपूत राजाओं ने अपनी खोयी हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर ली और राज्य सीमाओं का विस्तार किया। आक्रमण करके सुलतान ने इन्हें रोकने का प्रयत्न किया पर व्यर्थ। मालवा में नरवर, चन्देरी और ग्वालियर के राजपूत राज्यों की शक्ति क्षीण करने के लिये बलबन ने उन पर आक्रमण किये। राजस्थान में रणथम्भोर के चौहान और जालोर के चौहान नरेशों, जेसलमेर के भट्टी राजपूत नरेशों ने और चित्तौड़ के गेहलोत राजपूत राजाओं ने तुर्कों से संघर्ष करके उन्हें खदेड़ कर अपने राज्य की सीमाओं में वृद्धि कर ली। इसके विरोध में बलबन ने रणथम्भोर पर तीन बार और चित्तौड़, बूंदी पर भी आक्रमण किये। परन्तु उसे कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त हुई और चित्तौड़ तथा रणथम्भोर पहिले की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली समझे जाने लगे।

मेवातियों का दमन—नासिरुद्दीन और बलबन को राजपूतों में सबसे अधिक मेवातियों के कड़े विरोध और उपद्रवों का सामना करना पड़ा। इनका क्षेत्र हांसी और रेवाड़ी था। ये लूटमार करते, शाही कोष व रसद छीन लेते और दिल्ली पर भी आक्रमण करते थे। बलबन ने मेवातियों के प्रदेश पर सेना से सन् १२४६ और १२६० में दो बार आक्रमण किये, उनके गाँव जला दिये, और अनेकों को कत्ल कर दिया, कई मेवातियों को जीते जी खाल खिचवा कर मरवा दिया। हिन्दुओं का ऐसा नृशंसात्मक और भीषण दमन बहुत कम हुआ है।

नासिरुद्दीन का देहावसान—अधिक बीमार रहने से सन् १२६६ में नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गयी। ऐसी धारणा है कि पुत्रहीन होने से उसने बलबन को अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित किया हो।

नासिरुद्दीन का मूल्यांकन—नासिरुद्दीन विनम्र, उदार, शांत और सरल प्रकृति का सुलतान था। उसमें न तो राजकीय दंभ था और न शाही शान-शौकत और शक्ति के प्रदर्शन की भावना ही। वह साधारण वेशभूषा पहिनता था और बड़ा चरित्रवान और सद्गुण सम्पन्न था। नासिरुद्दीन में दयालुता, उदारता, सहिष्णुता और धर्मपरायणता खूब थी। इन श्रेष्ठ गुणों और सच्चरित्रता के कारण ही नासिरुद्दीन संत शासक माना जाता है। सुलतान बनने पर उसे अनेक जटिल समस्याओं और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा परन्तु उसने अपनी सूझ-बूझ और दृढ़ निश्चय की नीति से सफलता प्राप्त की। उसने बलबन की सहायता से विरोधी, स्वार्थी, और प्रतिस्पर्धी सरदारों की शक्ति का दमन कर उन्हें नियंत्रित किया।

सुलतान नासिरुद्दीन अपने मंत्रियों व अधिकारियों पर पूर्ण विश्वास करता था और राज्य के हित में उन्हें पदच्युत व स्थानान्तरित भी कर देता था। वह उन्हें निरंकुश और अनियंत्रित नहीं होने देता था। वह अपनी विद्वता, कुरान के अध्ययन, आकर्षक सुलेख और धर्मपरायणता के लिए प्रसिद्ध था। सीमान्त क्षेत्र में मगोलों और मेवातियों के विरुद्ध उसने सुरक्षा की नीति अपनाई। उसने मेवातियों का बलबन की सहायता से दमन किया, सीमान्त क्षेत्र के दुर्गों का सैनिकीकरण किया और मंगोलों के आक्रमणों के प्रति सदा सतर्क रहा।

यद्यपि नासिरुद्दीन युद्ध से घृणा करता था, पर वह विलासप्रिय, अयोग्य और निकम्मा नहीं था। आवश्यकता पड़ने पर वह सैनिक अभियान करता था तथा वीरता व साहस से युद्ध करके विरोधियों का दमन करता था और इसीलिये वह सल्तनत को छिन्न-भिन्न होने से बचा सका। वह एक अकर्मण्य शासक भी नहीं था। उसमें इतनी कुशलता, शक्ति, योग्यता और दृढ़ता थी कि वह स्वयं शासन संचालन करता था। यद्यपि उसे बलबन से अधिक परामर्श और सहयोग प्राप्त ोता था, परन्तु वास्तविक शासन शक्ति बलबन के हाथों में केन्द्रीभूत नहीं थी।

———

अध्याय १०

सुलतान गयासुद्दीन बलबन, सन् १२६६–१२८६ ई.

बलबन का प्रारम्भिक जीवन—दास सुलतानों में बलबन अधिक प्रसिद्ध और शक्तिशाली माना जाता है। शक्तिशाली होने के पूर्व उसका जीवन कई उतार-चढ़ाव से पूर्ण रहा। बलबन का वास्तविक नाम बहाउद्दीन था। इसका जन्म धन-सम्पन्न राज सी कुल में हुआ था। इसका पिता इलबरी नामक तुर्क कबीले का प्रधान या खान था और उसके अधीन दस हजार तुर्क परिवार थे। अपने बाल्यकाल में लूट-खसोट के युग में, बलबन को मंगोलों ने पकड़ लिया और उसे गुलाम बना लिया। मंगोल उसे बेचने लिये अरब देश में खलीफा की राजधानी बगदाद में ले गये। वहाँ बसरा के ख्वाजा जमालुद्दीन के हाथ बलबन को बेच दिया गया। ख्वाजा ने बलबन को प्रतिभाशाली देखकर उसे शिक्षित और सुसंस्कृत किया और बाद में उसे वह दिल्ली ले आया। दिल्ली में उसने बलबन को सन् १२३२ में सुलतान इल्तुतमिश के हाथों बेच दिया।

दिल्ली में बलबन की प्रगति—दिल्ली में गुलाम रहकर बलबन ने खूब प्रगति की। उसके अलौकिक गुणों और प्रतिभा से आकर्षित होकर सुलतान इल्तुतमिश ने उसे अपनी स्वयं की सेवा में रखा और "खास बरदार" (Personal attendant) नियुक्त किया। उसकी सेवाओं और प्रतिभा से प्रसन्न होकर इल्तुतमिश ने उसे "चालीस गुलामों" के दल का सदस्य बना लिया।

बलबन का प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन और उसकी अवसरवादिता—इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद जब रुकनुद्दीन सुलतान बना तब बलबन ने शक्तिशाली सामन्तों का साथ देकर सुलतान रुकनुद्दीन का विरोध किया। परन्तु वह असफल रहा और बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया गया। रजिया के सुलतान बन जाने पर उसे कारागृह से मुक्त कर दिया गया। अब बलबन ने उपयुक्त अवसर देखकर सुलतान का पक्ष लिया और रजिया ने उसे पुन: उसका पद दे दिया और थोड़े समय बाद उसकी पदोन्नति कर उसे "अमीर-ए-शिकार" (आखेट का प्रमुख अधिकारी) बना दिया। जब सुलतान रजिया की शक्ति क्षीण हो गयी और सामन्तों ने उसका विरोध किया, तब बलबन सशक्त सामन्तों की ओर हो गया और उसने रजिया के विरुद्ध विद्रोहियों का साथ दिया तथा रजिया को सिंहासनाच्युत करवाने में बड़ा योग दिया। वह महत्वाकांक्षी और अवसरवादी था।

रजिया के बाद जब बहरामशाह सुलतान बना तब उसने बलबन की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे उच्च शासकीय पद देकर "अमीर-ए-आखूर" पद पर आसीन

किया और बाद में उसे रेवाड़ी तथा हांसी की जागीर दे दी। बलबन ने इन जागीरों का प्रशासन बड़ी सावधानी, कुशलता और योग्यता से किया। बहराम के बाद जब मसूदशाह सुलतान बना तब उसने बलबन को "अमीर-ए-हाजिब" पद पर नियुक्त किया। इसके बाद उसने अपनी सैनिक प्रतिभा का परिचय दिया। सन् १२४६ में जब मंगोलों ने मंगू के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया, और उच्छ का घेरा डाल दिया, तब बलबन ने मंगोलों का सामना किया और उन्हें उच्छ से खदेड़ दिया। इससे बलबन की शक्ति और यश-कीर्ति में खूब अभिवृद्धि हुई। वह चालीस गुलामों के दल का एक प्रमुख सशक्त सदस्य माना जाने लगा। अब उसने अवसर से लाभ उठा कर मसूदशाह का विरोध किया और मसूदशाह के स्थान पर नासिरुद्दीन को सुलतान बनाने के षड़यंत्र में उसने सक्रिय भाग लिया और इस प्रकार सन् १२४६ में उसने नासिरुद्दीन महमूद को सुलतान बनाने में बड़ा योग दिया। इस योगदान के पुरस्कार स्वरूप नासिरुद्दीन ने सुलतान होने पर बलबन को ऊंचे पद पर नियुक्त किया। उसे "उलुगखां" की पदवी प्रदान की और उसे अपना प्रमुख परामर्शदाता बनाकर "नायब-ए-मुमलिकात" के पद पर आसीन किया। धीरे-धीरे बलबन की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ती गई और उसने नासिरुद्दीन का प्रधानमंत्री बनकर बीस वर्ष तक शासन के समस्त सूत्र अपने हाथ में रखे। अब नासिरुद्दीन के शासन काल में बलबन ने सुलतान के प्रति अगाध स्वामिभक्ति प्रदर्शित की और उसके साथ विश्वासघात कर दिल्ली का सिंहासन छीनने का प्रयास नहीं किया। नासिरुद्दीन के शासन काल में बलबन ने दिल्ली सल्तनत की अनेक आपत्तियों और संघर्षों से रक्षा की, विद्रोहियों का दमन किया, मंगोलों के आक्रमणों से राज्य और सीमांत क्षेत्र की रक्षा की तथा अमीरों के षड़यंत्रों और विद्रोहों को कुचलकर उनकी शक्ति का ह्रास किया। बलबनने राजवंश से अपने वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपनी सत्ता भी खूब दृढ़ कर ली थी। उसने सन् १२४९ में अपनी पुत्री का विवाह सुलतान नासिरुद्दीन से कर दिया। नासिरुद्दीन ने अपनी एक दूसरी पत्नी से उत्पन्न राजकुमारी का विवाह बलबन के पुत्र बुगराखां के साथ कर दिया। इसके अतिरिक्त बीस वर्षों तक निरन्तर शासन का सर्वोच्च अधिकारी रहने के कारण अनेक सामंत और अधिकारी उसके पक्ष में होगये थे, वे उसके आधीन थे और उसकी आज्ञाओं के मानने के अभ्यस्त थे। उसका विरोध करने में किसी का साहस न था। इसलिये नासिरुद्दीन के देहावसान के पश्चात् जब बलबन सुलतान बना, तब किसी ने उसका विरोध नहीं किया।

बलबन ने दिल्ली सल्तनत को चालीस वर्षों तक सम्भाले रखा। नासिरुद्दीन के शासन काल में उसने बीस वर्ष तक प्रधानमंत्री के रूप में राज्य सम्भाला, अपनी शक्ति और अधिकारों का विकास किया, अराजकता और अव्यवस्था दूर कर विद्रोहों का दमन किया और सुलतान के पद व प्रतिष्ठा में वृद्धि की। वह राज्य का एक प्रमुख कर्णधार बन गया। इसके बाद १२६६ में वह सुलतान बना और बीस वर्षों तक सन् १२८६ तक वह दिल्ली का सुलतान रहा। इस अवधि में बलबन को अपनी प्रशासकीय प्रतिभा प्रदर्शित करने के और भी अधिक अवसर प्राप्त हुए।

सुलतान बलबन की प्रारम्भिक कठिनाइयां और समस्याएं--सुलतान बन जाने के बाद उसे निम्नलिखित कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा।

(१) **अराजकता और अशांति**—राज्य में विशेषकर पंजाब और पश्चिमोत्तर क्षेत्र में बड़ी अराजकता, अव्यवस्था और अशांति थी। राज्य में सुव्यवस्थित, संगठित और दृढ़ प्रशासन के अभाव में अशांति और अव्यवस्था बढ़ रही थी। पंजाब के अनेक कबीले, खोखर और मेवाती लोग खुले रूप से राज्य का विरोध करते थे, लूट-पाट करते, नृशंस हत्याएं करते थे और विदेशी मंगलों की उनके आक्रमण के समय सुलतान के विरुद्ध सहायता करते थे।

राज्य के केन्द्रीय क्षेत्र में स्थित राजपूत एवं भू-स्वामी राज्य के कर्मचारियों और अधिकारियों को तंग करते थे एवं रसद तथा राजकोष को लूट लिया करते थे। दोआब के कंपिल, भोजपुर आदि स्थान डाकुओं के अड्डे बन गये थे। और वे खूब लूट-पाट करते थे। प्रजा का जीवन असुरक्षित था और जनता भय-त्रस्त और आंतकित थी।

इतिहासकार बर्नी लिखता है कि, "सरकार का भय, जो सुशासन का आधार तथा राज्य के वैभव-समृद्धि का स्त्रोत है, लोगों के हृदय से जाता रहा था और देश दुर्दशा का शिकार हो गया था।"

(२) **मेवातियों की समस्या**—दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र में गुड़गांव और पंजाब में मेवातियों ने सुलतान की शक्ति और सत्ता को चुनौती दे रखी थी। मेवातियों के विषय में बर्नी ने लिखा है कि वे बहुधा रात्रि में नगरों पर आक्रमण कर देते थे, और निवास गृहों को तहस-नहस कर डालते थे। लोगों को उनके भय और आतंक से रात्रि में नींद नहीं आती थी। दिल्ली के समीप की बस्तियाँ मेवातियों ने ध्वंस कर डाली थीं। बंजारों और व्यापारियों को अपने माल सहित यात्रा करने का साहस नहीं रह गया था। "दिल्ली के आस-पास के मेवातियों की लूट के भय से दिल्ली राजधानी के पश्चिम दिशा के द्वार संध्या की नमाज के बाद ही बंद हो जाते थे और किसी को भी यह साहस नहीं होता था कि संध्या की नमाज के बाद बाहर निकल सके, श्रेष्ठ महानुभावों के दर्शन कर सके, आमोद-प्रमोद के लिए कोई हौजे सुलतान तक जा सके। अनेक मेवाती संध्या की नमाज के समय ही हौज के निकट पहुंच जाते थे। वे भिश्तियों तथा पानी भरने वाली दासियों को परेशान करते थे, उनकी मशक व बर्तन छीन लेते थे, उन्हें नंगा कर देते थे तथा उनके वस्त्र भी छीन लेते थे......।" इस प्रकार मेवातियों का आतंक इतना अधिक बढ़ गया था कि लोग रात्रि में घरों से बाहर नहीं निकलते थे, महिलाएं और कन्याएं कुओं पर अकेली पानी भी नहीं भर पाती थीं और दिल्ली में सर्वत्र हलचल और अशांति मच गयी थी।

(३) **आर्थिक समस्या और रिक्त राजकोष**—इल्तुतमिश के पश्चात तीस वर्ष की दीर्घ अवधि (सन १२३६-६६) में अशांति, षड़यंत्र, संघर्ष, विद्रोह, और युद्ध होते रहे। चालीस गुलामों का मंडल भी सुलतान का विरोध करता रहा और राजनीति और शासन में निरन्तर हस्तक्षेप करता रहा। इन सबका दमन करने के लिये सुलतानों को विशाल सेना रखना पड़ती थी। इसी प्रकार मंगोलों के आक्रमणों को रोकने के लिये भी विशाल सेना रखी जाती थी। इस सेना पर राज्य की आय का एक बहुत बड़ा अंश व्यय होता था। इसके अतिरिक्त दूरस्थ प्रांतों में व्यवहारिक प्रशासन

के अभाव, अधिकारियों की स्वतंत्रता, महत्वाकांक्षी सरदारों की स्वेच्छाचारिता, तथा मेवात, दोआब, कटेहर के हिन्दुओं की छापामार युद्ध प्रणाली के कारण राज्य की आय निरन्तर घटती गयी थी। इससे राज-कोष रिक्त हो गया था और बलबन की एक ज्वलंत समस्या आर्थिक कठिनाइयों को दूर कर रिक्त राजकोष की पूर्ति करना था।

(४) **चालीस गुलामों का मंडल**—कुतुबुद्दीन ऐबक के समय तुर्की सामन्तगण सुलतान की शक्ति और निरंकुशता पर अंकुश रखते थे। वे ऐबक के वास्तविक सुलतान होने के मार्ग में बाधक थे। इल्तुतमिश के समय इनकी संख्या चालीस हो गयी थी और उन्होंने अपना एक सुदृढ़ सशक्त संगठन बना लिया था। इल्तुतमिश ने इस मंडल की स्थापना मुस्लिम राज्य की नींव को सुदृढ़ करने के लिए की थी। प्रारम्भ में गुलामों का यह मंडल राज्य का स्तंभ था। सुलतान के विश्वासपात्र स्वामिभक्त सामन्तों का इसमें बाहुल्य था। स्वयं बलबन भी पहिले इसी मंडल का एक सक्रिय सामन्त था। इल्तुतमिश के देहावसान के बाद इस मंडल के गुलाम सामन्तों ने राज्य की विघटनकारी शक्तियों का नेतृत्व करना प्रारंभ कर दिया था। सुलतान की शक्ति की अभिवृद्धि में ये बाधक हो गये और विरोधी तत्वों के पोषक बन गये। इन्हीं सामन्तों ने इल्तुतमिश के बाद अपनी दलगत नीति और गुटबंदी के कारण कई व्यक्तियों को सुलतान बनाया और सिंहासनाच्युत किया था। चालीस गुलामों का एक मण्डल षड्यंत्रकारियों का गढ़ बन गया था। और इसके शक्तिशाली सदस्य सुलतानों के भाग्य विधाता बनने लगे थे। अयोग्य सुलतान इनके हाथ की कठपुतली होते थे। इस मंडल के सदस्यों का पद वंशपरम्परा का होने से इनमें योग्य, दूरदर्शी, श्रेष्ठ सामन्तों का सर्वथा अभाव हो गया था। शक्ति, दान और सम्पन्नता की बाहुल्यता के कारण इस मंडल के अधिकांश सदस्य विलासी और षड्यंत्रकारी हो गये थे तथा उनमें परस्पर मतभेद और गुटबन्दी की भावना बलवती हो गयी थी। नासिरुद्दीन के शासनकाल में प्रधानमंत्री के रूप में बलबन ने स्वयं अनुभव कर लिया था कि सुलतान की सहायता करने की अपेक्षा यह दल उसके मार्ग में बाधक बन गया था। चालीस गुलामों के इस मंडल के सशक्त महत्वाकांक्षी सामन्तों की शक्ति का दमन करके अपनी स्थिति दृढ़ करना और शक्ति में वृद्धि करना बलबन की बड़ी समस्या थी।

(५) **विरोधी अमीर, सरदार और सामन्त**—राज्य में ऐसे अनेक अमीर, सरदार और सामन्त थे जो स्वयं को सुलतान के समकक्ष समझते थे तथा सुलतान को भी इनके साथ भाई-चारे का व्यवहार करना पड़ता था। बहुधा ये लोग अपनी शक्ति और अधिकारों का दुरुपयोग करके सुलतान को पदच्युत तक कर देते थे। यद्यपि नासिरुद्दीन के शासनकाल में बलबन ने अनेक विरोधी अमीरों और सरदारों को शक्तिहीन कर दिया था, फिर भी अभी कुछ ऐसे अमीर सरदार विद्यमान थे जो स्वतंत्र होने या सुलतान बनजाने के अपने पुराने स्वप्न को किसी भी समय मूर्तरूप देने को तत्पर हो सकते थे। इन सरदारों और अमीरों की शक्ति कुचलना बलबन के सम्मुख समस्या थी।

(६) **मुल्ला मौलवियों का दूषित प्रभाव**—दिल्ली सल्तनत मुस्लिम राज्य था जो इस्लाम धर्म पर आश्रित था। फलतः इस्लाम धर्म के नेताओं और पंडितों अर्थात्

मुल्लाओं व मौलवियों को राज्य में प्रमुख स्थान प्राप्त था। राजसभा और प्रशासन में वे ऊँचे पदों पर नियुक्त थे। बलबन से पूर्व गुलाम सुलतान मुल्ला मौलवियों से राजनैतिक मामलों में परामर्श लेते थे। इससे राजनीति और प्रशासन में उनका प्रभाव प्रचुर हो गया। राजनीति में अपने प्रभाव के बाहुल्य के कारण मुल्ला अपने वास्तविक धार्मिक और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति विमुख हो गये थे। मुस्लिम इतिहासकार जियाउद्दीन बर्नी ने लिखा है कि उस समय के उल्माओं में न तो धार्मिकता ही शेष बची थी और न इमानदारी ही। वे बहुधा सुलतान की चाटुकारिता में संलग्न रहते थे।

(७) **राजपूतों का शक्ति संगठन और विद्रोह**—राजपूत विदेशी तुर्कों का शासन स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। राजस्थान, बुन्देलखंड, बघेलखण्ड में राजपूतों के स्वतंत्र राज्य दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली हो रहे थे। वे तुर्कों और मुसलमानों को देश से खदेड़ देने के लिये उत्सुक थे। वे दिल्ली सुलतान से संघर्ष कर उसके राज्य की सीमा को संकुचित करने में सदैव प्रयत्नशील थे। नवजात दिल्ली सल्तनत के लिये राजपूत राज्यों का पुनर्गठन और शक्ति संचय बड़ा भारी खतरा था जिसका निराकरण करना बलबन की समस्या थी।

राजपूत वर्ग के अनेक साहसी शक्तिशाली लोगों और फिरकों ने सल्तनत के क्षेत्रों में विद्रोह करने और लूटखसोट करने का व्यवसाय अपना लिया था। मुस्लिम इतिहासकारों ने इन्हें विद्रोही, डाकू और लुटेरा कहा है। ये इतने साहसी और उदंड हो गये थे कि राजधानी दिल्ली में प्रविष्ट होकर दिन-दहाड़े लूट-खसोट करते थे और कहा जाता है कि मुसलमान स्त्रियों के वस्त्राभूषण उतार कर, छीनकर वे सुलतान की शक्ति को कड़ी चुनौती देते थे।

(८) **मंगोलों के आक्रमण और पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा**—इल्तुतमिश के शासन-काल से ही मंगलों ने भारत पर निरन्तर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिये थे। फलत: दिल्ली सल्तनत की पश्चिमोत्तर सीमा असुरक्षित हो गयी। मंगोल आक्रमणकारी प्रति वर्ष भारत पर आ धमकते थे। पंजाब और सिंध उनके अधिकार क्षेत्र में आ गये थे। एक बार तो उन्होंने लाहौर भी जीत लिया था। मंगोलों ने सिंध तथा पश्चिमी पंजाब में अपने शासक नियुक्त कर रखे थे। मध्य-एशिया में मंगोल आक्रमणों और नृशंसता से अपनी रक्षा करके भागे हुए अनेक मुसलमान विद्वान, राजनीतिज्ञ, राजपुरुष सामन्त आदि दिल्ली सुलतान की राजसभा में शरण पाये हुए थे। यह राजसभा मध्यएशिया के मुसलमानों की शरणस्थली बन गयी थी। मंगोल सेना इस से चिढ़ गये थे और वे इस शरण-स्थल को विध्वंस कर दिल्ली सल्तनत को अपने मंगोल राज्य में आत्मसात करने को दृढ़ संकल्प थे। इस प्रकार मंगोलों के निरन्तर आक्रमण, प्रसार और उनकी महत्वाकाँक्षा तथा उनके आक्रमणों के विरुद्ध सल्तनत की सीमा-सुरक्षा बलबन के लिये बड़ी जटिल समस्या थी।

(९) **प्रशासकीय समस्या**—निरन्तर संघर्ष युद्ध और अभियानों के कारण दिल्ली राज्य मे समुचित और व्यवस्थित प्रशासन स्थापित नहीं हो पाया था। केन्द्र और प्रान्तों में उत्तरदायित्वपूर्ण, विवेकशील, स्वामिभक्त अधिकारियों का अभाव था।

सुलतान की आज्ञाएँ व आदेश पूर्ण रूप से मान्य नहीं होते थे। संपूर्ण राज्य में एकसी प्रशासन व्यवस्था, भूराजस्व तथा समुचित न्याय-व्यवस्था नहीं थी। राजस्व के आदर्श भी स्पष्ट नहीं थे। इल्तुतमिश के बाद में निर्बल, अयोग्य सुलतानों के होने से प्रशासन की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। सुलतान और उसके अधिकारियों को जनता या अपनी प्रजा के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी और जनसाधारण की दशा सुधारने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किये गये।

(१०) **सुलतान के पद और प्रतिष्ठा की क्षीणता**—निर्बल, निकम्मे, अयोग्य और प्रतिभाहीन सुलतानों के होने से सुलतान के पद का गौरव और उसकी प्रतिष्ठा घट गयी थी। अधिकारियों, जनता, सामन्तों और अमीरों की दृष्टि में सुलतान का पद ऐसा अलौकिक और असाधारण नहीं था कि वे उसके विरुद्ध विद्रोह न करें। सुलतान दास समझे जाते थे और शक्तिशाली तुर्क सरदार उन्हें अपनी कठपुतली और अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के साधन-मात्र बना लेते थे। ऐसी हीन परिस्थिति में सुलतान रहकर शासन चलाना बलबन के लिये बड़ा कठिन था।

बलबन द्वारा समस्याओं का निराकरण और कठिनाइयों का समाधान—ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि जब बलबन सुलतान बना तब उसके सामने विकट कठिनाइयां और विपुल समस्याएं थीं। इनके समाधान के लिए उसे भगीरथ प्रयत्न करना था तथा स्वयं में उच्च कोटि की योग्यताओं का होना अत्यन्त ही आवश्यक था। बलबन ने ये सब किए। बीस वर्ष तक प्रशासन से संबंधित होने के कारण और प्रधानमंत्री पद पर कार्य करने से वह बड़ा कुशल और अनुभवी व्यक्ति बन गया था। उसने दिल्ली के सुलतानों की विविध उथल-पुथल में सक्रिय भाग लिया था और विभिन्न अवसरों से लाभ उठाया था। इसलिए अपनी समस्याओं के निराकरण के लिये वह सदैव सजग और प्रयत्नशील रहा। उसने बड़ी योग्यता, कुशलता, कठोरता, तथा तन्मयता से अपने उत्तरदायित्व को निभाया और दिल्ली की तुर्क सल्तनत के सम्मान और प्रतिष्ठा को गौरवान्वित कर उसकी रक्षा की। उसमें वे गुण प्रतिभा, अनुभव, योग्यता और शक्ति थी जिसकी कि आवश्यकता उस युग में थी। उसने अपनी समस्याओं और कठिनाइयों के निराकरण के लिये निम्नलिखित कार्य किये।

(१) **मेवातियों का दमन**—बलबन ने अपने सिंहासनारोहण और सुलतान बनने के प्रथम वर्ष के अन्त में मेवातियों का दमन प्रारम्भ कर दिया। प्रशासन और शांति-व्यवस्था के लिए इसे सर्वोपरि समझा गया। उसने राजधानी छोड़कर मेवातियों के प्रदेश में जाकर उनके दमन के लिए वहां अपनी सेना का पड़ाव डाला। उसने निकटवर्ती वे सघन वन कटवा दिये जहाँ मेवाती शरण लेते थे। उसने अनुभवी मलिकों की सेना का संगठन किया और उसकी सहायता व सहयोग से मेवातियों को कुचल दिया गया। उसने बहुत बड़ी संख्या में मेवातियों को कत्ल करवा दिया। बारह वर्ष से अधिक आयु के सभी मेवाती पुरुष नृशंसता से मौत के घाट उतार दिए गए। स्त्रियां दासियां बनाकर बेच दी गयीं। बलबन ने मेवातियों के क्षेत्र में दुर्ग स्थापित किये, पुराने दुर्गों की मरम्मत करवायी गयी और वहाँ सेना रखी गयी। दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में थाने और सैनिक छावनियां स्थापित की गयीं। मेवातियों के

इस सामूहिक संहार में और उनसे हुए संघर्ष में बर्नी के अनुसार एक लाख व्यक्ति मारे गये।

(२) **दोआब में विद्रोहों को कुचलना**—मेवातियों के विनाश के शीघ्र ही बाद में उसने राज्य में हुए विद्रोहों का निर्दयता से दमन किया। दोआब में विद्रोहियों और डाकुओं को कुचल दिया गया। उसने दोआब क्षेत्र के वनों को काट कर सड़कें बनवाईं। जिससे डाकुओं और विरोधियों का सरलता से नाश किया जा सके। उसने विद्रोहियों के दुर्गों और डाकुओं के शरण-स्थलों को नष्ट कर दिया। विरोधियों के गांव के गांव नष्ट कर दिए गए। बलबन ने कपिल, पटियाली (एटा जिला) और भोजपुर में जो डाकुओं के दृढ़ गढ़ थे, अनेक विद्रोहियों और डाकुओं को तलवार के घाट उतार दिया और इसके लिए बलबन स्वयं वहां पांच छः माह तक रहा। बलबन ने डाकुओं को पकड़वा कर इतने अधिक दंड दिये कि बर्नी के अनुसार उसकी मृत्यु के साठ वर्ष बाद तक भी सड़कों पर लूटमार करने का डाकुओं का साहस नहीं होता था और प्रदेश यात्रियों, किसानों तथा सरकारी पदाधिकारियों के लिए पूर्णरूपेण सुरक्षित हो गया।

(३) **कटेहर में राजपूतों और विद्रोहियों का दमन**—कटेहर प्रांत में राजपूतों ने विद्रोह कर अमरोहा तथा बदायूं के हाकिमों को परास्त कर दिया। इस पर बलबन स्वयं सेना लेकर कटेहर गया। वहां उसने राजपूत विद्रोहियों का नृशंसता से दमन किया। उसने आठ नौ वर्ष की आयु के बालकों को और उससे ऊपर की आयु के पुरुषों को कत्ल करवा दिया तथा छोटे बच्चों और स्त्रियों को दास बना लिया गया। गांवों को लूट कर नष्ट कर दिया गया। यह लूट, विनाश और भीषण नरसंहार कई दिनों तक चलता रहा और बर्नी के अनुसार विद्रोहियों के रक्त की नदी बहादी गयी। "बलबन ने उपद्रवग्रस्त जिलों पर बाज की तरह झपट कर इतनी खून खराबी की कि उपद्रवियों के खून की नदियां बहने लगीं। प्रत्येक ग्राम, जंगल, और खेत के सामने लाशों के ढेर लगा दिये और इन शवों की दुर्गन्ध गंगा के किनारे तक जा पहुंची।" विद्रोही क्षेत्रों में नृशंस नर हत्याओं, भीषण रक्तपात और अमानवीय क्रूरताओं का प्रदर्शन करके दानवता का तांडव नृत्य करवाकर बलबन ने मेवात, दोआब और कटेहर में शांति स्थापित की।

(४) **पंजाब में लड़ाकू जातियों का दमन**—कटेहर के विद्रोह को कुचलने के बाद बलबन ने पंजाब की ओर ध्यान दिया। उसने पंजाब के नमक क्षेत्र में स्थित स्वतन्त्रता प्रिय लड़ाकू जातियों के विरोध का अंत किया तथा उनको अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। बलबन को पंजाब के इस दमन में अनेक श्रेष्ठ अश्व हाथ लगे।

(५) **चालीस गुलामों के मंडल का तथा तुर्की अमीरों और सरदारों की शक्ति का विनाश**—अपने निरंकुश शासन की दृढ़ता में अभिवृद्धि करने के लिये बलबन के लिए यह अत्यन्त ही आवश्यक था कि वह ४० तुर्की सरदारों के मंडल को भंग कर उनका संगठन छिन्न-भिन्न कर दे। इनमें से कुछ तो समय की गति के कारण काल कवलित हो गये थे, कुछ का विनाश बलबन ने अपने प्रधानमंत्रीत्व काल में कर

दिया था, परन्तु कुछ महत्वाकांक्षी सरदार और अमीर तथा सामन्त अभी भी अवशिष्ट थे, उनकी शक्ति निर्मूल नहीं हुई थी। अतएव उनका विनाश करना परम आवश्यक था। उनको दबाने तथा उनका महत्व क्षीण करने के लिये बलबन ने निम्नलिखित कार्य किये—

(i) उसने अपने व्यक्तिगत सेवकों और अधिकारियों का एक नवीन दल संगठित और निर्मित किया तथा राज्य में उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त किया।

(ii) उसने तुर्कों की श्रेष्ठता और रक्त की शुद्धता का सिद्धान्त अपनाया। कई पदाधिकारी ऐसे थे जो पहिले हिन्दू थे, पर बाद में मुसलमान बना लिये गये और ऊंचे पदों पर नियुक्त कर दिये गए थे। ऐसे नव मुस्लिम उच्च पदाधिकारियों को उसने पदच्युत कर दिया।

(iii) कई ऐसे पदाधिकारियों को जिनकी वंश परम्परा संदेहात्मक थी, अथवा जो निम्न वंश के थे, पदच्युत कर दिया गया। बलबन चाहता था कि श्रेष्ठ कुलीन वंश वालों को ही, जिनमें तुर्क उत्तम माने जाते थे, ऊंचे पद प्रदान किये जांय।

(iv) उसने ४० अमीरों व सरदारों के मंडल के सदस्यों को दी गयी जागीरों की जांच करवायी और उसने वृद्ध, दुर्बल और अयोग्य अमीरों और सरदारों को मंडल में से पृथक करके, उनको सेवा निवृत्ति की धनराशि या पेंशन दे दी तथा उनके समस्त राजनैतिक और सैनिक अधिकार छीन लिये।

(v) मृत सरदारों की विधवाओं से भी उनकी जागीरें अपहृत करली गयीं और उनको पेंशन दे दी गयीं।

(vi) युवक और योग्य अमीरों को ही चालीस गुलामों के मंडल का सदस्य रहने दिया गया तथा उनकी योग्यता व कार्य के अनुसार उनका वेतन निश्चित कर दिया गया। उनका प्रचुर फालतू धन छीन लिया गया।

(vii) बलबन ने सरदारों और अमीरों के पारस्परिक मेल-जोल पर कड़ा नियंत्रण रखा और इसके लिये उसने गुप्तचर नियुक्त किये।

(viii) जनसाधारण की दृष्टि में अमीरों और सरदारों का महत्व कम करने के लिए और उनकी शक्ति कुचलने के लिये बलबन ने साधारण अपराधों के लिये भी उन्हें कठोर दंड दिये। बदायूं के प्रांतपति (राज्यपाल) मलिक बकबक एक प्रमुख अमीर और चालीस गुलामों के मंडल का एक सक्रिय सदस्य था। उसने अपने एक सेवक को इतना पिटवाया कि उसकी मृत्यु हो गयी। बलबन ने मलिक बकबक को इस अपराध का दंड देने के लिए उसे भी जनता के सम्मुख कोड़ों से पिटवाया गया। अवध के शासक हैबतखां को भी बलबन ने पांच सौ कोड़े लगाने के आदेश दिये थे, क्योंकि उसने सुरा के नशे में एक व्यक्ति का वध कर दिया था। अवध के एक अन्य राज्यपाल और प्रमुख अमीर अमीनखां को बंगाल के विद्रोही शासक तुगरिलबेग से पराजित होने पर बलबन ने उसे अयोध्यानगर के प्रमुख प्रवेश द्वार पर लटका कर मार डाला था। शम्सी सरदारों में शेरखां सुंकर सबसे अधिक प्रभावशाली था और वह बलबन का चचेरा भाई भी था। बलबन के राज्यारोहण के समय वह भटिंडा, भटनेर, समाना, सुन्नम और दियालपुर का शासक था। अनेक विद्रोहियों का दमन करने

में, सुलतान का साथ देने में, सीमांत क्षेत्र में शांति व्यवस्था स्थापित करने में शेरखा ने बड़ा योग दिया था। इल्तुतमिश के देहावसान के बाद निरन्तर तीस वर्षों तक शेरखां ने पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र में मंगोलों के आक्रमणों को रोका। वह मंगोलों के लिए चीन की दीवार बना हुआ था। जब शेरखां ने यह अनुभव किया कि बलबन की नीति में शम्सी सरदारों का कोई महत्व नहीं है, तब उसने बलबन द्वारा दिल्ली आने और उससे मिलने के लिए आमंत्रित किये जाने पर भी, अवहेलना की और उसने बलबन के पास भय से जाना उचित नहीं समझा। बलबन को भी संदेह हो गया कि शेरखां मंगोलों की शरण में चला जायगा और मंगोलों की सहायता से अपने अधिकृत सीमांत क्षेत्रों में स्वतंत्र होकर दिल्ली सुलतान की सत्ता नष्ट कर देगा। तब बलबन ने ऐसे महत्वशाली, प्रभावशाली, वीर, साहसी तथा स्वामिभक्त सरदार को दिल्ली में बुलाकर विष दे दिया और उसके स्थान पर बंगाल के शासक तातारखाँ को सीमान्त क्षेत्र का शासक नियुक्त किया। इसके पश्चात् उसने पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्र के अन्य प्रभावशाली सरदारों पर जो वहां उच्च पदाधिकारी थे, अकर्मण्यता और लापरवाही के दोष लगाकर बन्दीगृह में डाल दिया और कुछ का वध करवा दिया। बलबन के इन प्रयत्नों से चालीस गुलामों का मंडल छिन्न-भिन्न हो गया, सरदार और अमीर प्रभावहीन और शक्तिहीन हो गये तथा उनमें आतंक छा गया। इन अमीरों और सामन्तों के विद्रोह और विरोध नष्ट हो जाने से राज्य में शांति स्थापित हो गयी।

(६) **हिन्दुओं का नृशंसता और क्रूरता से विनाश**—मुस्लिम शासन स्थापित हो जाने पर हिन्दू-मुस्लिम सामंजस्य की भावना प्रसारित करने की अपेक्षा, दिल्ली सुलतानों का व्यवहार हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता और अत्यन्त कठोरता का रहा। उन्हें समस्त राजनैतिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था और उनमें इस्लाम का प्रचार कर बलपूर्वक उन्हें इस्लाम के अनुयायी बनाया जा रहा था। बलबन ने भी इसी नीति का अनुकरण किया। वह कट्टर धर्मान्ध इस्लाम का अनुयायी था और उसने हिन्दुओं के साथ कठोर नृशंसता का व्यवहार कर उनका दमन किया। बर्नी के अनुसार सुलतान बलबन को ब्राह्मणों से घृणा थी। उसने अपने पुत्र तुगराखां को ब्राह्मणों के विनाश की आज्ञा भी दे दी थी। बलबन की इस दूषित नीति के कारण हिन्दुओं ने अवध और कटेहर प्रांत में बलबन के विरुद्ध विद्रोह किये, पर जैसा ऊपर वर्णित है उसने नृशंसता और क्रूरता से, भीषण नर सहार और रक्त-पात से हिन्दुओं के विद्रोहों का दमन कर दिया, उनकी संगठित शक्ति को कुचल दिया।

(७) **तुगरिल के विद्रोह का दमन**—बलबन के शासन काल में महत्वपूर्ण विद्रोह बंगाल में तुगरिलबेग का था। गुलाम वंश के शासन काल में बंगाल के शासक प्रायः सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करते रहे। बंगाल के प्रांतपति या राज्यपाल अधिकतर सुलतान के आधिपत्य से मुक्ति पाकर स्वतंत्र राज्य स्थापित करने के प्रयत्नों में संलग्न रहते थे। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(i) **बंगाल के शासकों के विद्रोह के कारण**—बंगाल प्रांत दिल्ली से अत्यधिक दूर था, मार्ग भी बहुत कष्टकारक थे, और बंगाल का जलवायु घातक था।

इससे दिल्ली के सुलतान का पूर्ण नियंत्रण बंगाल पर स्थापित न हो सका था। सुलतानों के निर्बल, निकम्मे और शक्तिहीन होने से भी बंगाल पर उनका शासन व नियंत्रण शिथिल हो गया था। इससे बंगाल में विघटनकारी तत्व फलते-फलते रहे और दीर्घकाल से वहां विद्रोह की प्रवृत्ति प्रदर्शित होती रही। बर्नी के अनुसार वहां के निवासी विद्रोह करने के आदी बन चुके थे। दिल्ली से जो भी शासक वहां नियुक्त होता था उसे वहां के विद्रोही और षड़यंत्रकारी उसके स्वामी सुलतान का विरोधी बना देते थे।

(ii) **बंगाल में शासक के पद पर तुगरिल की नियुक्ति**—सुलतान ऐबक के समय में बंगाल के शासक खिलजी मलिकों की स्वामिभक्ति संदिग्ध रही थी। इल्तुतमिश ने बंगाल को अपने अधीन करने के लिये अपने पुत्र को वहां का सूबेदार या प्रशासक नियुक्त किया था। किंतु इल्तुतमिश की मृत्यु के उपरांत दिल्ली के शक्ति क्षीण और अस्थिर सुलतानों के युग में बंगाल दिल्ली से प्रथक हो गया। बलबन ने सुलतान होने पर तुगरिल को उसकी वीरता, साहस, अनुभव, योग्यता, स्वामिभक्ति और प्रतिभा के कारण बंगाल का शासक नियुक्त कर दिया। तुगरिल बलबन का ही दास था। इस समय बंगाल की राजधानी लखनौती थी। तुगरिल वहां कई वर्षों तक शांतिपूर्वक शासन करता रहा।

(iii) **तुगरिल के विद्रोह के कारण**—सन् १२७९ में बलबन अचानक रोगग्रस्त हो गया और बंगाल में यह अनुमान लगाया गया कि वृद्ध बलबन इस रोग से अब मुक्त न हो सकेगा। इसी समय मंगोलों के आक्रमणों के कारण बलबन के वीर योद्धा योग्य पुत्र पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा में फंस गये थे और उनके तथा सुलतान के लिये बंगाल पर पूर्ण नियंत्रण रखना असंभव था। बलबन के स्वामिभक्त अमीरों और सेनापतियों में न तो इतनी योग्यता और अनुभव था और न इतनी सेना व साज सामान ही था कि वे बंगाल पर आक्रमण कर तुगरिल को पराजित कर सकें। तुगरिल ने अपने दीर्घकालीन शासन काल में पड़ौसी हिन्दू राजाओं को पराजित कर उनसे युद्ध में अनेक हाथी, सैनिक और अपार धन संपत्ति प्राप्त करली थी। उसने प्रसिद्ध वैभवशाली जाजनगर पर भी अधिकार कर लिया था। इससे उसकी सत्ता में अभिवृद्धि हुई और उसका गर्व अत्यधिक बढ़ गया था। ऐसे समय में चापलूस दरबारियों और अधिकारियों ने उसे स्वतन्त्र होने का परामर्श दिया और प्रोत्साहित किया। उन्होंने तुगरिल की शक्ति और परिस्थिति को इस ढंग से व्यक्त किया कि उसे विश्वास हो गया कि दिल्ली से स्वतन्त्र होने में किसी प्रकार का भय नहीं है।

(iv) **तुगरिल का विद्रोह**—इस प्रकार परिस्थिति व अवसर का लाभ उठा कर तुगरिल ने अपने आपको लखनौती का स्वतन्त्र सुलतान घोषित कर दिया और सुलतान मुगीसुद्दीन की पदवी धारण की। उसने अपने नाम की मुद्राएँ प्रसारित कीं, अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और स्वतन्त्र राजाओं की भांति छत्र, आदि का उपयोग करने लगा। इस प्रकार सन् १२७९ में तुगरिल ने बलबन की शक्ति और सत्ता का सही अनुमान लगाये बिना सुलतान के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया, अपनी

स्वतन्त्रता घोषित करदी और पार्श्ववर्ती प्रदेशों पर राज्य विस्तार के लिये आक्रमण प्रारम्भ कर दिये।

(v) **बलबन द्वारा तुगरिल के विद्रोह को कुचलने के प्रयास और दिल्ली से प्रस्थान**—जब बलबन को तुगरिल के विद्रोह की सूचना प्राप्त हुई तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया और उसने अवध के सूबेदार एतगिन मुएदराज, अमीनखां को विद्रोह कुचलने के लिए भेजा। परन्तु तुगरिल के सफल कुशल शासन, वीरता, लोकप्रियता और दानशीलता के कारण अमीनखां के अनेक सैनिक तुगरिल से मिल गये और फलतः युद्ध में तुगरिल ने अमीनखां को परास्त कर दिया। दूसरे वर्ष बलबन ने तिरमती के नेतृत्व में तुगरिल के विरुद्ध एक अन्य सेना भेजी, पर तुगरिल ने इस सेना को भी पराजित कर तितर-बितर कर दिया। असफलता और पराजय के कारण बलबन ने अमीनखां और तिरमती को मृत्यु दंड दिया और उनका वध करवा दिया। इसके बाद बलबन ने एक तीसरी सेना शहाबुद्दीन की अध्यक्षता में भेजी, पर वह भी पराजित हो गयी। दिल्ली की सेना के अनेक सैनिक और अधिकारी तुगरिल से मिल गये। तुगरिल की निरन्तर विजयों से उसका ऐश्वर्य, यश और होसले बढ़ गये और सेना में भी वृद्धि हो गयी। पर बलबन इस पराजय-जनित अपमान को अधिक सहन नहीं कर सका। उसके क्रोध की सीमा नहीं रही। क्रोध के आधिक्य और आवेश में वह अपना हाथ चबा लेता था। अंत में उसने तुगरिल के विनाश का दृढ़ संकल्प किया और स्वयं एक विशाल सेना लेकर लखनौती की ओर प्रस्थान कर दिया। उसने अपने पुत्र बुगराखां को भी अपने साथ उसकी सेना सहित ले लिया, क्योंकि वह तुगरिल को दंड देकर उसे नष्ट कर बुगराखां को बंगाल का शासक बनाना चाहता था। प्रस्थान करने के पूर्व दिल्ली का शासन प्रबन्ध उसने वहां के कोतवाल फ़खरुद्दीन को सौंप दिया तथा पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा और मंगोलों के आक्रमणों को रोकने और उनसे युद्ध करने का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को दे दिया। उस समय वह सिंध के मुलतान में था।

जब सुलतान अवध पहुंचा, तब उसने वहाँ से लगभग दो लाख पदाति, अश्वरोही धनुर्धारी कहार, दास आदि भरती किये। बंगाल में युद्ध करते समय नावों की आवश्यकता भी हो सकती थी, इसलिये सेना की वृद्धि के साथ-साथ अगणित नौकायें भी तैयार करवायीं और सेना के साथ-साथ वे भी जलमार्ग से बंगाल की ओर बढ़ीं। इस समय वर्षा प्रारम्भ हो चुकी थी, पर बलबन वर्षा की कठिनाइयों की परवाह किये बिना ही तेजी से लखनौती की ओर अग्रसर होने लगा। उसने यह दृढ़ संकल्प और प्रण कर लिया था कि तुगरिल को बिना दंड दिये वह दिल्ली नहीं लौटेगा।

(vi) **बलबन द्वारा तुगरिल का पीछा और उसका कत्ल**—सुलतान बलबन के सेना सहित आने के समाचार प्राप्त होने पर तुगरिल हतोत्साह हो गया और अब वह अपने साथ चुने हुए योद्धा, अपार धन संपत्ति और राजकोष, हाथी तथा परिवार के सदस्यों को लेकर बंगाल की राजधानी लखनौती छोड़कर पूर्व की ओर भागा। वह बलबन से युद्ध करने की अपेक्षा सुरक्षा के लिये जंगली क्षेत्र में चला गया। उसका

विश्वास था कि जब बलबन लखनौती से दिल्ली लौट जायगा तब वह पुनः राजधानी और बंगाल पर अपना अधिकार स्थापित कर लेगा।

तुगरिल का पीछा करते हुए बलबन लखनौती पहुंचा, जब वह लखनौती से लगभग साठ कीलो मीटर दूर था, तुगरिल लखनौती से भाग चुका था। बलबन लखनौती पर अधिकार करके वहां कुछ दिनों तक रुका और बाद में लखनौती को प्रधान सेनापति हिसामुद्दीन के अधिकार और शासन-प्रबन्ध में छोड़कर बलबन तुगरिल का पीछा करने और उसका पता लगाने के लिये पूर्व में चुनारगांव या मोनारगांव की ओर आगे बढ़ा। वहां के राजा दिनोजराय या दनुजमाधव ने बलबन को सहायता व सहयोग देने का वचन दिया। बलबन आगे बढ़ते हुए जाजनगर के समीप पहुंच गया। यहां से उसने अपनी सेना को छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभक्त किया और तुगरिल को ढूंढ निकालने के लिये उन्हें विभिन्न दिशाओं में पर्वतीय क्षेत्रों और वनों में भेजा। इनमें से एक टुकड़ी का अध्यक्ष या नेता शेर अंदाज मलिक मुहम्मद था। उसने उन बंजारों की सहायता से तुगरिल का शरण-स्थल खोज निकाला जो तुगरिल को रसद पहुंचाया करते थे। पहिले तो इन बंजारों ने तुगरिल का भेद देने से इन्कार किया, पर जब उनमें से दो का वध कर दिया गया, तब उन्होंने तुगरिल के पड़ाव का पता दे दिया। शेरअन्दाज और उसके गज की सैनिकों ने "तुगरिल तुगरिल" चिल्लाते हुए तुगरिल के पड़ाव पर सहसा तीव्रगति से आक्रमण किया। शिविर में भगदड़ मच गयी। तुगरिल स्वयं भयभीत होकर अपनी प्राणरक्षा के लिये एक नंगी पीठ के अश्व पर सवार होकर पास ही बहती हुई नदी की ओर भागा। उसका पीछा किया गया। तुगरिल कुश नामक एक सुल्तानी मलिक ने पीछा करके कटार से उसकी बगल में वार किया और उसे घोड़े से नीचे गिरा दिया। इसी बीच मुकद्दीर नामक एक अन्य सुलतानी मलिक ने तुगरिल का सिर काट दिया और उसके शव को नदी के पानी में फेंक दिया। तुगरिल की सेना बलबन से आतंकित होकर भाग खड़ी हुई। तुगरिल की बेगमें, पुत्र-पुत्रियां, परिवार के अन्य सदस्य, हाथी आदि बलबन की सेना के हाथ लगे। लगभग तीन सहस्त्र स्त्री पुरुष बन्दी बना लिये गये।

(vii) **तुगरिल के सहयोगियों का नृशंस कत्ल और भीषण नर संहार**—तुगरिल के अनेक सहयोगी और पदाधिकारी पकड़ लिये और उनको साथ लेकर बलबन लखनौती लौट आया। उसने लखनौती में प्रमुख राजमार्ग पर बाजार में जो एक कोस या तीन किलो मीटर से भी अधिक लम्बा था दोनों ओर तुगरिल के साथियों को खड़ा करके क्रूरतापूर्वक उन्हें कत्ल करवा दिया। इसमें तुगरिल के पुत्रों, दामादों, पदाधिकारियों, दासों, सैनिकों, सेनापतियों, प्रसिद्ध गायकों, आदि की भी हत्या कर दी गयी। बर्नी ने लिखा है कि लखनौती में ऐसा भीषण नर-संहार किसी बादशाह ने कभी नहीं किया। देखने वालों ने ऐसा भयंकर दृश्य कभी नहीं देखा। अनेक उन्हें देखकर मूर्छित हो गये थे। लोग इस भीषण नृसंश दंड से अत्यधिक आतंकित हो गये। इस भीषण कत्लेआम के समय सुलतान ने अपने पुत्र बुगराखां से कठोर दृष्टि से पूछा "क्या तूने देख लिया?" राजकुमार बुगराखां कुछ भी न समझ सका। बलबन ने पुनः प्रश्न दुहराया और पूछा "तूने बाजार में मेरा दण्ड देखा?" राजकुमार ने नम्र

भाव से भयभीत होकर गर्दन झुकादी और उत्तर दिया, "हां देखा"। तब बलबन ने कहा, "यदि हरामखोर विरोधी लोग तुम्हें दिल्ली के सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये प्रेरित करें, तो तुम उनकी बातों पर ध्यान नहीं देना, और इस दण्ड और हत्या को जो तुमने बाजार में देखा है, स्मरण कर लेना।" बलबन ने बुगराखां को बंगाल का शासक नियुक्त कर दिया और उसे यह चेतावनी दी कि यदि उसने कभी विद्रोह किया तो उसकी तथा उसके सम्बन्धियों की भी वही दशा होगी जो कि तुगरिल की हुई थी। अन्त में उसे शासन सम्बन्धी अन्य परामर्श देकर बलबन तीन वर्ष की अवधि के बाद दिल्ली लौट आया।

(viii) **बलबन का दिल्ली आगमन और विश्वासघातियों और विद्रोहियों को दण्ड**—तुगरिल के विद्रोह को दमन करते समय सुलतान की सेना के कई अधिकारी, कर्मचारी और सैनिक प्रलोभन में आकर तुगरिल से जा मिले और उन्होंने इसप्रकार सुलतान के साथ विश्वासघात और विद्रोह किया था। दिल्ली लौटने पर बलबन ने इन्हें कठोर दण्ड देने का निर्णय किया। परन्तु दिल्ली में बसे इन विद्रोहियों और बन्दियों के सम्बन्धियों के हाहाकार और रुदन क्रंदन से द्रवित होकर दिल्ली के काजी ने अपने प्रभावपूर्ण तर्कों से बलबन को इतना द्रवित कर दिया था कि उसने उनके दण्ड में कमी कर दी। सामान्य स्तर के सैनिकों को चेतावनी देकर मुक्त कर दिया, जो उनसे उच्च श्रेणी के थे उन्हें कुछ काल के लिये निष्कासित कर दिया गया उनसे बड़े अधिकारियों को जो राजधानी में प्रतिष्ठित पदों पर थे बंदीगृह मे डाल दिया गया और विद्रोह के कर्णधारों को और सेनानायकों को भैसों पर बिठाकर मुँह काला करके राजमार्गों में घुमाया गया और अन्त में सबको मुक्त कर दिया गया।

(ix) **तुगरिल के विद्रोह दमन का प्रभाव**-बंगाल के विद्रोह का क्रूरता से दमन कर बलबन ने अन्य विरोधी शासकों और जनसाधारण को आतंकित कर दिया था। बर्नी के अनुसार भारतवर्ष में इस प्रकार के दण्ड बलबन से पहिले कभी नहीं दिये गये। परन्तु इस भय और आतक से दिल्ली साम्राज्य मे बलबन शान्ति स्थापित करने मे सफल हो सका।

(८) **बलबन की रक्तरंजित दमन-नीति का महत्व**—अमानवीय कट्टरता, भीषण नरसंहार और क्रूरता से बलबन ने अनेको विद्रोहो का दमन कर दिया। उसके इस दमन में उसकी रक्तपिपासुता और संहारात्मक प्रवृत्ति प्रदर्शित होती है। विद्रोहियों के प्रति उसकी अमानुषिक कठोर दंड नीति भारतीय इतिहास में अपनी सानी नहीं रखती। इसीलिये उसे लौह और रक्त की नीति का सुलतान भी कहा जाता है। कभी कभी उसकी इस नर-संहार की क्रूर नीति से निर्दोषों का व्यर्थमें रक्त बहता था और अनेक परिवार उजड़ गये थे, पर राज्य और देश की दृष्टि से इस नीति का निम्नलिखित बड़ा महत्व रहा है।

(i) यदि विभिन्न क्षेत्रों में आन्तरिक विद्रोहों को इतनी निर्ममता और नृशंसता से नहीं कुचला जाता तो अन्यत्र विद्रोहों की आग भभकती रहती और उसे बुझाने में ही बलबन की जीवन-लीला समाप्त हो जाती।

(ii) इस नीति से जनता भयभीत हो गयी और उस पर सुलतान की महानता और सार्वभौम सत्ता का दबदबा बैठ गया। बलबन का आतंक इतना अधिक गहरा

व्याप्त हो गया था कि भविष्य में किसी ने भी उसके विरुद्ध मस्तक उठाने का दुस्साहस नहीं किया।

(iii) विद्रोहों के निर्मम दमन से सुलतान की आन्तरिक स्थिति दृढ़ हो गयी और उसे मंगोल आक्रमणों से देश की सुरक्षा करने के अवसर मिल गये। आन्तरिक शान्ति और दृढ़ता, दिल्ली सल्तनत की बाहरी सुरक्षा के लिये प्रथम अनिवार्य तत्व था। अब बलबन सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान दे सका।

(iv) विरोधियों के अन्त और विद्रोहों के अभाव में बलबन प्रशासन की ओर भी कुछ ध्यान दे सका और उसने कुछ प्रशासकीय सुधार भी किये तथा प्रशाकीय समस्याओं को सुलझा भी सका।

(v) विद्रोहों के कुचलने में और आन्तरिक शान्ति स्थापित करने में बलबन के जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत हो गया और इससे वह दिल्ली राज्य का दिग्विजयों द्वारा विस्तार नहीं कर सका। उसका समस्त जीवन दिल्ली के नवोदित मुस्लिम राज्य की आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा करने में ही व्यतीत हो गया।

(६) **मंगोलों के आक्रमण और सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा**—मंगोलों के नेता चंगेजखां के पौत्र हलाकू ने खलीफा अलमुस्तासिन पर आक्रमण कर उसकी निर्ममता पूर्वक हत्या कर बगदाद, को अपने अधिकार मे कर लिया था। मंगोलों ने खुरासान, अफगानिस्तान, बगदाद, मध्य एशिया के अन्य प्रदेश आदि में अपने राज्य स्थापित कर लिए थे। अब ये मंगोल भारत के मुस्लिम राज्य, दिल्ली सल्तनत को नष्ट करना चाहते थे। दिल्ली सल्तनत ही एक ऐसा मुस्लिम राज्य था जहाँ मध्य-एशिया के विभिन्न क्षेत्रों से मंगोलों के तूफानी आक्रमणों से त्रस्त और भयभीत होकर सुरक्षा व शरण के लिए अनेक मुस्लिम साधु-संत, विद्वान, राजपुरुष, योद्धा आदि आए थे। इन्हें सुलतान राजकीय आश्रय दिए हुए था। मंगोलों को यह बात खलती थी। वे इसका अन्त करने के लिए निरन्तर पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्र से दिल्ली सल्तनत पर आक्रमण करते थे। मंगोल बगदाद से सिंध और पंजाब पर आक्रमण करते थे। जब बलबन सुलतान बना, तब सिंध नदी के पश्चिम के क्षेत्र पर मंगोलों का अधिकार था और पंजाब का अधिकांश भाग भी उसके अधीन था। मुलतान, उच्छ और लाहौर भी उनके अधिकार क्षेत्र में थे। मंगोलों के इन आक्रमणों को रोकने के लिए और सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा के लिए बलबन ने निम्नलिखित प्रयत्न किए। दिल्ली सुलतानों में बलबन सर्व प्रथम था जिसका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ।

(i) बलबन ने एक दृढ़ सेना संगठित की। इसके लिए उसने अपने एक विश्वास पात्र अधिकारी इमादुलमुल्क को दिवान-ए-अर्ज (प्रधान सैनिक अधिकारी) नियुक्त किया। सेना के लिए धन की कठिनाई नहीं हो, इसलिए बलबन ने इमादुलमुल्क को आर्थिक मामलों में वजीर के नियंत्रण से मुक्त कर दिया। इमादुलमुल्क ने पदातियों और अश्वारोहियों की तेजी से भर्ती कर सेना में अत्यधिक वृद्धि कर दी। उच्च कोटि के सैनिकों को प्रोत्साहित किया गया। सैनिकों के वेतन में अभिवृद्धि की गयी, उनकी वर्दी तथा अस्त्र शस्त्रों और अश्वों की समुचित व्यवस्था की गयी। अनेक सैनिकों को नगद वेतन दिया जाने लगा। शिकार प्रथा प्रारम्भ कर सैनिकों के प्रशि-

क्षण की व्यवस्था की गई। बलबन के शिकार के समय सहस्त्रों सैनिक बारी-बारी से नियुक्त किए जाते थे और वे उस समय अपने अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते थे। इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बलबन की सेना संख्या में अधिक, रण-कौशल में अधिक कुशल और सुलतान के प्रति अधिक स्वामि-भक्त हो गई।

(ii) दिल्ली राजधानी में मंगोलों के आक्रमण का सामना करने के लिए एक विशाल सेना मलिक बेकनर्म के सेनापतित्व में सदा तैयार रखी गयी। इस सेना के तीस सहस्त्र अश्वारोही सीमांत सुरक्षा के लिए युद्ध करने को तैयार रहते थे और वे शीघ्र ही सीमान्त क्षेत्र में पहुंचाये जा सकते थे।

(iii) सीमान्त क्षेत्र के दुर्गों का जीर्णोद्धार किया गया। नये दुर्गों का निर्माण किया गया और वहाँ कुशल वीर सैनिक व अनुभवी सरदार रखे गए। सुलतान बनने के बाद शीघ्र ही बलबन ने लाहौर के दुर्ग की मरम्मत करवाई और वहाँ सीमा रक्षक सेना की एक टुकड़ी रख दी। अनेक स्थानों पर सैनिक चौकियां बनाकर वहां वीर सैनिक रखे गए। इस प्रकार उसने सीमान्त क्षेत्र में सैनिक स्थिति दृढ़ कर दी। उसने उन प्रदेशों में लोगों को बसाया जिनको मंगोलों ने उजाड़ डाला था।

(iv) बलबन ने वीर, साहसी योद्धा और सेनानायक शेरखां को सीमान्त क्षेत्र का प्रशासक बनाया। उसके अधिकार में मुलतान, समाना और दिपालपुर थे। वह निरन्तर मंगोलों से लोहा लेता रहा और उनके आक्रमणों को रोककर सीमान्त क्षेत्र की रक्षा सफलतापूर्वक करता रहा। जिससे समस्त प्रदेश में शांति स्थापित हो गई।

(v) सन् १२७० में शेरखां की मृत्यु हो जाने पर बलबन ने सीमांत क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया और अपने दोनों पुत्रों को वहाँ नियुक्त किया। उसने मुलतान, सिंध तथा लाहोर के प्रशासन व सुरक्षा के लिए मुलतान में अपने प्रिय तथा ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद को तथा समाना में बुगराखाँ को नियुक्त किया। उनके अधीन बलबन ने सर्वाधिक योग्य सैनिक और पर्याप्त युद्ध सामग्री रखी। इन दोनों बन्धुओं ने अपने कर्तव्यों का बड़ी योग्यता, वीरता तथा साहस से पालन किया तथा मंगोलों को परास्त किया। मंगोलों ने कई बार पंजाब में व्यास नदी तक को पारकर भारतीय सीमा में प्रविष्ट होने की चेष्टा की परन्तु उन्हें बार-बार मुंह की खाकर लौटना पड़ा।

(vi) सन् १२७९ में मंगोलों के एक बड़े पैमाने पर आक्रमण करने पर राजकुमार मुहम्मद ने अपनी सेना से मंगोलों से भयंकर युद्ध किया और उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया।

(vii) सन् १२८५ में मंगोलों के नेता और अफगानिस्तान के मंगोल शासक तैमूरखां ने भारत के सीमान्त क्षेत्र पर भयंकर आक्रमण किया। उसने लाहोर और दिपालपुर क्षेत्र को रौंद डाला और लूट लिया। शाहजादा मुहम्मद उनका प्रतिरोध करने के लिए सेना सहित आगे बढ़ा परन्तु वह मंगोलों की रणनीति का शिकार हुआ और मारा गया। युद्ध करते समय मंगोलों ने नाटकीय ढंग से पलायन किया और मुहम्मद ने उनका पीछा किया। जब मुहम्मद की सेना का अधिकांश भाग पीछे रह गया तब पलायन करने वाले मंगोल लौट कर मुहम्मद पर टूट पड़े। इधर-उधर छिपे हुए मंगोलों ने भी मुहम्मद की सेना पर धावा बोल दिया। इस संघर्ष में मुहम्मद मारा

गया। बलबन को युवराज मुहम्मद की मृत्यु से गहरा आघात लगा। क्योंकि वह बड़ा सुयोग्य और लोकप्रिय शासक और सफल सैनिक था। उसकी राजसभा में अमीर खुसरो तथा अमीर हसन जैसे महान कवि रहते थे। बलबन का वह योग्य व सफल उत्तराधिकारी होता।

(viii) युवराज मुहम्मद की मृत्यु के बाद बलबन को सीमान्त क्षेत्र की चिंता बढ़ गयी। क्योंकि मुहम्मद के अभाव में मंगोलों से प्रतिरोध करने की सल्तनत की शक्ति क्षीण पड़ गई। फिर भी मुहम्मद की मृत्यु के बाद उसके पुत्र कैखुसरो ने सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा का भार सम्भाला और मंगोलों को मुलतान, उच्छ तथा अन्य किसी भी प्रदेश पर अधिकार स्थापित नहीं करने दिया।

(ix) मुहम्मद के देहावसान के पश्चात् बलबन ने सीमान्त क्षेत्र में गाजीमलिक को मंगोलों के अभियानों को रोकने के लिए नियुक्त किया।

(x) बलबन ने राजधानी दिल्ली को छोड़कर कहीं न जाने का निर्णय किया। जिससे कि वह मंगोलों के आक्रमणों के प्रति सदा सजग और तत्पर रह सके।

(xi) उसने अपनी सैन्य शक्ति में खूब वृद्धि कर ली थी और वृद्ध सैनिकों के स्थानों पर युवक सैनिक भरती किए गए। सैनिकों के लिए नवीन अस्त्र-शस्त्र भी निर्मित किये जाने लगे। परन्तु बलबन मंगोलों के प्रतिरोध में पहिले जैसा सफल नहीं हो सका। लाहोर से उस पार का क्षेत्र मंगोलों से आक्रांत होता रहा और वृद्ध सुलतान बलबन उनका सामना नहीं कर सका।

बलबन की मंगोल नीति की समीक्षा—निरन्तर विभिन्न सैनिक, प्रशासकीय और राजनैतिक प्रयत्न करने के बाद भी बलबन पूर्ण रूप से मंगोलों पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। वह स्थायी रूप से उनका उन्मूलन नहीं कर सका और न वह उनकी शक्ति तथा सत्ता ही कम कर पाया, क्योंकि उसकी मृत्यु के बाद भी दिल्ली सल्तनत के लिए मंगोलों का खतरा वैसा ही बना रहा, परन्तु जहां तक देश और राज्य की सुरक्षा का प्रश्न है, उसकी मंगोल नीति सफल रही। मंगोलों को उसने दिल्ली राज्य के किसी भी भाग पर अधिकार नहीं करने दिया।

बलबन का शासन प्रबन्ध

विभिन्न विद्रोहों और आक्रमणों के विरुद्ध सैनिक अभियानों में सफलता प्राप्त करने के साथ-साथ बलबन ने अपने विरोधियों और अन्य विघटनकारी तत्वों का दमन करके सुदृढ़ और शक्तिशाली शासन व्यवस्था भी स्थापित की। दिल्ली के प्रारंभिक सुलतानों में बलबन एक कुशल शासक भी था। बलबन ने राज्यारोहण के पश्चात् दिग्विजय की नीति त्याग दी। वह राजधानी को छोड़कर उसी समय बाहर जाता था, जब उसे विद्रोहों का दमन करना पड़ता था। कुचक्रों और षड़यंत्रों के भय के कारण वह दिल्ली में ही रहता था। इससे वह आन्तरिक प्रशासन में अधिक रुचि लेकर व्यवस्थित शासन प्रबंध स्थापित कर सका।

बलबन के शासन का स्वरूप निरंकुश राजतन्त्र--बलबन का शासन अर्द्ध-नागरिक और अर्द्ध सैनिक था। उसने निरंकुश राजतन्त्र स्थापित किया और उसके

विकास और दृढ़ता के लिए अनेक प्रयत्न किए। बलबन सम्राट के रूप में समस्त शक्तियों और अधिकारों का स्त्रोत था। सुलतान के अधिकार असीमित माने जाते थे। राजकीय सत्ता उसके हाथों में केन्द्रीभूत थी। विकेन्द्रीकरण और विघटनकारी प्रवृत्तियों को उसने प्रोत्साहित नहीं किया, अपितु उनका दमन किया। प्रान्तपतियों और शासकों को विशेष अधिकार नहीं दिए गए थे। वह उनसे अपने आदेशों और आज्ञाओं का दृढ़तापूर्वक पालन करवाता था। उसने अपने पुत्रों को भी, जिनके अधिकार में महत्वपूर्ण प्रान्त थे, अपने विवेक से कोई कार्य करने का अधिकार प्रदान नहीं किया। उनको भी महत्वपूर्ण विषयों पर राजकीय आज्ञा बलबन से प्राप्त करना पड़ती थी। और जिसका पालन दृढ़ता से किया जाता था। बलबन की दृढ़ धारणा थी कि राजशक्ति स्वभाव से ही निरंकुश है। प्रजा से राजकीय आज्ञाओं और आदेशों का पालन करवाने तथा राज्य को सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि सुलतान पूर्णरूपेण निरंकुश हो।

बलबन के राजत्व का आदर्श देवी-सिद्धान्त—बलबन के राजत्व का आदर्श श्रेष्ठ था और वह सुलतान के दैवी अधिकार में दृढ़ विश्वास करता था। उसका कथन था कि सुलतान देवता का रूप होता है और उसका पद पवित्र होता है। सम्राट ईश्वर का प्रतिनिधि स्वरूप है और उसके कार्यों द्वारा ईश्वरीय मर्यादा लक्षित होना चाहिये। बलबन का विश्वास था कि राजत्व उत्तराधिकारी या बाहुबल से नहीं प्राप्त होना है, वरन दवी इच्छा से प्राप्त होता है। जिस पर भगवान की विशेष कृपा होती है, वही व्यक्ति सम्राट होता है। और राज्य के कर्तव्यों का पालन करने के लिये उसे ईश्वर से प्रेरणा प्राप्त होती है। बलबन ने एक स्थल पर स्वयं कहा था कि "राज्य हृदय ईश्वरीय कृपा का विशेष भंडार है और इस दृष्टि से कोई भी राजा की समानता का अधिकारी नहीं है।" सम्राट पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में अवतरित हुआ है। इस दैवी सिद्धान्त में निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता निहित थी। सम्राट को निरंकुश और स्वेच्छाचारी होना चाहिये तभी तो वह विद्रोहों का कठोरतापूर्वक दमन कर सकेगा और अपने अधिकार असीमित, अनियंत्रित कर सकेगा तथा अपनी आज्ञाओं का दृढ़ता से पालन करवा सकेगा। इस प्रकार बलबन स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता में दृढ़ विश्वास करता था।

बलबन सुलतान के पद को उन्नत और श्रेष्ठ समझता था। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि सुलतान को दैवी सिद्धान्तों के अनुसार पवित्रता और श्रेष्ठता से आचरण करना चाहिये। अन्यथा जनता का उनपर से विश्वास उठ जायगा और वह उसके विरुद्ध विद्रोह करना प्रारम्भ कर उसकी शक्ति का अन्त कर देगी। बर्नी ने अपने ग्रथ में लिखा है कि बलबन ने अपने पुत्र मुहम्मद और बुगराखां से अपने देवी सिद्धान्तों और राजत्व के आदर्शों का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया था और उन्हें भी उनको मानकर उन पर चलने का आदेश दिया था।

प्रजा वत्सलता की भावना—यद्यपि बलबन निरंकुश सुलतान था और सुलतान के दैवी सिद्धान्तों में विश्वास करता था, परन्तु उसमे प्रजाहित की भावना भी थी। यद्यपि वह अपने अधिकार को सीमित और अनियंत्रित मानता था, परन्तु उसने कभी

इनका दुरुपयोग नहीं किया। उसका कथन था कि प्रजा की रक्षा करना, दुष्टों का दमन करना, तथा प्रजा के सम्मुख अपना उच्च श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करना सुलतान का एक प्रमुख कर्तव्य है। जियाउद्दीन बर्नी ने बलबन की प्रजावत्सलता के विषय में बलबन के भाव प्रगट किये हैं। "(सुलतान) अपने कर्तव्यों का अनुभव... (वह) इस प्रकार जीवन व्यतीत करे कि उसी के वचन तथा कर्म एवं उसके सम्पूर्ण कार्य मुसलमानों में अत्यंत विश्वसनीय हो जायं...। बादशाही देन के प्रति वही बादशाह अपने कर्तव्यों का पालन करता है जो अपनी राज व्यवस्था से सम्बन्धित कार्यों को जन-कल्याण के लिये करता है।" बर्नी ने एक अन्य स्थान पर बलबन के भावों को प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि, "सम्राट को चाहिये कि वह अल्लाह के भय और प्रजा के सुख को बिना भूले हुए मर्यादा और गौरव का आव्हान करे तथा अपनी शक्ति का उपयुक्त अवसरों पर प्रयोग करे।

इस्लामेत्तर भावना व कार्य—परन्तु यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि बलबन की यह प्रजावत्सलता की भावना केवल उसकी मुस्लिम प्रजा तक ही सीमित थी। हिन्दुओं के लिये जनकल्याण के कार्य करना उसकी प्रजावत्सलता के दायरे के बाहर था। वह हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु और अनुदार था और ब्राह्मणों का कट्टर विरोधी था। बलबन का दृढ़ विश्वास था कि खुदा ने अपने कुछ चुने हुए बन्दों को ही सुख पहुंचाने के लिये बलबन जैसी शक्ति को भेजा है। उसकी प्रजावत्सलता की भावना में राजत्व के आदर्श और सुलतान के कर्तव्यों के पालन में इस्लामी भावना ओत-प्रोत है। मूर्ति-भंजन और इस्लाम के प्रसार मे वह विश्वास करता था। जियाउद्दीन बर्नी ने बलबन की इस्लामेत्तर भावना और कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि—"ईश्वर की इस अनुपम देन, बादशाही के प्रति वही बादशाह अपने कर्तव्यों का पालन करता है जो अपना वैभव, ऐश्वर्य, प्रताप, लाव-लश्कर, कर्मकारी, राजकोष सम्पत्ति आदि जो उसे खुदा ने प्रदान किये हैं, कुफ्र और काफिरों, शिर्क और बुतपरस्ती को नष्ट करने में लगा सके। दुराचार, व्यभिचार, विरोध और षडयंत्र का अन्त कर दे, खुदा और रसूल के शत्रुओं, खुदा के अवज्ञाकारियों और दीन-ए-इस्लाम के विरोधियों का मूलोच्छेदन करदे। यदि यह सम्भव न हो तो खुदा और मुहम्मद साहब के शत्रुओं को जलील करे तथा उनके विश्वास और आदर का अन्त करदे। अपने राज्य में उनकी सुख सम्पन्नता, उनके मान तथा पदों का नामोनिशान न रहने दे।"

लौह और रक्त की क्रूर नीति—शासन के निरंकुश [illegible] और स्वेच्छाचारिता और अनियंत्रित सत्ता के कारण बलबन ने लौह और रक्त की क्रूर नीति अपनाई। बलबन ताकत और तलवार में विश्वास करता था। वह शासन में कठोरता और ठोस नियंत्रण का पोषक था, और इस बात का हिमायती था कि राज्य [illegible] में किया जाय। बलबन का यह दृढ़ विश्वास था कि [illegible] उतना ही राज्य की शान्ति और सुरक्षा के लिये [illegible] होगा। मेवातियों, डाकुओं और [illegible] का दमन बलबन ने इसी नीति से [illegible] किया। कुछ मेवातियों को हाथियों के भारी भरकम पैरों से [illegible] कुचलवाकर मरवा दिया

अनेकों को नृशंसता से कत्ल कर दिया तथा कई अभागे जिन्दे मेवातियों की खालें खिचवालीं। तुगरिल बेग, और उसके साथियों में तथा कटेहर और अवध के हिन्दुओं के दमन में उसने बेमिसाल भीषण नर-संहार किया और रक्त की नदियाँ बहाई। यदि बलबन उस युग में लौह और रक्तपात की नीति नहीं अपनाता, विद्रोहों का दमन कठोरता और निर्ममतापूर्वक नहीं करता, तो वह राज्य में शान्ति स्थापित करने, मंगोलों का प्रतिरोध करने और सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा करने में कभी भी सफल नहीं हो सकता था।

सुलतान के पद की प्रतिष्ठा और गौरव में वृद्धि—जैसा ऊपर वर्णित है इल्तुतमिश के अयोग्य उत्तराधिकारियों के शासनकाल में राज्यगौरव और प्रतिष्ठा का पूर्ण अन्त हो चुका था और अमीरों व सरदारों के हौसले बढ़ गये थे। विभिन्न निकम्मे सुलतान अमीरों के इशारों पर कठपुतलियों के समान नाचते थे। बलबन ने स्वयं देखा और अनुभव कर लिया था कि तुर्की सैनिक अमीरों के कारण सुलतान की स्थिति गिरकर एक साधारण सामन्त की सी रह गयी। बलबन ने इस दुर्दशा को सुधारने के लिये विशेष ध्यान दिया। उसने अपनी व्यक्तिगत मर्यादा बढ़ाकर सम्राट के पद को भी अधिक गौरवपूर्ण तथा प्रतिष्ठित बनाया। इसके लिये उसने निम्न-लिखित प्रयास और कार्य किये—

(i) बलबन कहता था कि रसूल के अतिरिक्त और कोई भी अन्य पद इतना प्रतिष्ठित और महान नहीं है, जितना कि सम्राट का। इसलिये सभी को उसकी आज्ञाओं और आदेशों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये, ऐसा न करने वालों को उसने कठोर दण्ड दिया।

(ii) बलबन ने स्वयं अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये अपने को सुप्रसिद्ध तूरानी शासक अफरासियान का वंशज घोषित किया और उसने अपने पौत्रों के नाम भी मध्य एशिया के प्राचीन सुलतानों की परम्परा में कैखुसरो, कैकुबाद आदि रख दिये।

(iii) उसने अपने व्यवहार और दैनिक जीवन में सम्राट की प्रतिष्ठा और गौरव क अनुरूप ही कार्य करने प्रारम्भ कर दिये। उसने अपने आचरण में आश्चर्य-जनक परिवर्तन कर दिये। उसने अपने पुत्र को कहा था कि, "उसे (सुलतान) ने निरन्तर अपने पद की शोभा तथा गौरव के स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। उसे इसी प्रकार का व्यवहार अपनाना चाहिये और स्त्री, बच्चों, दासों तथा मित्रों के साथ भी ऐसा करना चाहिये।" बलबन सदा राजकीय वेशभूषा मे सजधज के साथ राजप्रासाद से बाहर निकलता था। किसी ने उसको खुले शरीर या अर्द्धनग्न रूप तक में भी नहीं देखा।

(iv) वह स्वयं नियमों और अनुशासन का पालन करता था। वह बड़ा अनुशासन प्रिय था। वह किसी व्यक्ति द्वारा नियमों का उल्लंघन सहन नहीं कर सकता था। अनुशासन की अवहेलना करने या भंग करने वालों को वह कठोर दण्ड देता था। उसने स्वयं अपने पुत्र से कहा था कि "उसे अपने राज्य के अन्दर

अशिष्टता और अनाचार को रोकने के लिये सचेष्ट रहना चाहिये और तदर्थ दण्ड अथवा जुर्माने की व्यवस्था करनी चाहिये।

(v) बलबन ने स्वयं मद्यपान त्याग दिया था तथा पदाधिकारियों, एवं दरबारियों के लिये मद्यपान निषिद्ध घोषित कर दिया गया था। अमीरों और सरदारों का सामुहिक रूप से सुरापान रोक दिया गया।

उच्चवंश परम्परा और कुलीनता—बलबन उच्चवंश परम्परा और कुलीनता को अधिक महत्व देता था। वह उच्चकुलीन वंशों के व्यक्तियों से ही मिलता-जुलता था और उन्हें ऊंचे पद देता था। वह संदिग्ध सम्मान वाले व्यक्तियों तथा तुर्केतर जातियों के लोगों को शासन और राजसभा में कोई ऊँचा श्रेष्ठ पद नहीं देता था। वह यह मानता था कि उच्च पद प्राप्त करने के लिये व्यक्ति की योग्यता के साथ-साथ उच्च श्रेष्ठ कुल का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। जब अमरोहा के प्रशासकीय पद के लिये कमालमह्या का नाम प्रस्तावित हुआ तो बलबन ने उसे उस पद पर नियुक्त नहीं किया क्योंकि वह नव मुस्लिम था और उसने हिन्दु धर्म को त्यागकर इस्लाम अपनाया था। जांच करके उसने कई निम्नश्रेणीय कुल के व्यक्तियों को अपने पदों से पृथक कर दिया। कुलीनों को ही वह शासकीय नौकरियों के योग्य समझता था और उनके चयन में वह बड़ी सावधानी और सतर्कता से काम लेता था।

बलबन निम्न श्रेणी के व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखता था। वह न तो उनसे वार्तालाप करता था और न उन्हें मुँह लगाता था। वह अशिष्ट और तुच्छ व्यक्तियों के सहवास में भी नहीं रहता था और न उनसे घनिष्टता ही स्थापित करता था। जब दिल्ली का एक समृद्ध व्यापारी व रईस फखरबाउनी ने सुलतान से भेंट करने, दर्शन करने तथा उससे वार्तालाप करने की आज्ञा प्रदान करने के लिए कर्मचारियों और अधिकारियों को बहुमूल्य उपहार भेंट किए, तब बलबन ने उसे सुलतान का दर्शन करने और वार्तालाप करने का अनाधिकारी ठहराकर भेंट की जाने वाली धन-राशि को भी ठुकरा दिया। इस अवसर पर बलबन ने कहा था कि, "यदि बादशाह कमीनों, तुच्छ चरित्रहीनों,......नर्तकियों, मसखरों तथा अन्य निम्नस्तरीय व्यक्तियों से वार्तालाप करने लगे......उच्च पदाधिकारियों तथा विश्वासपात्र अधिकारियों के अतिरिक्त सर्व साधारण को मुँह लगाने लगे तो वह अलिअभ्री का वैभव, सम्मान तथा उसकी प्रतिष्ठा अपने हाथों नष्ट कर देगा।"

राजकीय वैभव, ऐश्वर्य और राजसभा—बलबन ने अपनी राजसभा का विशेष रूप से संगठन किया, जिससे उसके दरबार की गणना एशिया के प्रसिद्ध दरबारों में होने लगी थी। इसके लिए उसने निम्नलिखित कार्य किए।

(i) उसने ईरानी ढंग और आदर्शों पर अपने दरबार का संगठन किया और अपने लिये शक्तिशाली स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट भयानक अंग-रक्षक नियुक्ति किए। उसके अंग-रक्षक चम-चमाते हथियारों और आकर्षक वस्त्रों से सुसज्जित होकर नंगी तलवार लिए पंक्तिबद्ध चलते थे और दरबार में सुलतान के आसपास व पीछे खड़े रहते थे। इन अंगरक्षकों की तलवारों की चमक से आगन्तुकों की आंखें चक-चौंधियां जाती थीं।

(ii) बलबन सार्वजनिक अवसरों पर राजसभा में बड़ी शान-शौकत से उपस्थित होता था। वह स्वयं दरबार में अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक और बहुमूल्य वस्त्र धारण करके बैठता था। उसके दरबारी भी बिना राजकीय उचित दरबारी वेश-भूषा पहिने दरबार में उपस्थित नहीं हो सकते थे। उसने दरबारियों की वेश-भूषा निर्धारित कर दी थी।

राजसभा में बलबन सुसंस्कृत प्राच्य राजाओं की भांति आचरण करता था। वह इतनी शान और सम्मान से रहता था कि दरबार में ही नहीं अपितु अपने निजी सेवकों और अंग-रक्षकों के सम्मुख भी बिना पूरी पोषाक पहिने नहीं निकलता था।

(iii) राजसभा में बलबन ने अनुशासन विशेष रूप से रखा था। वह दरबार में मद्यपान नहीं करता था और न अन्य दरबारियों को करने देता था। वह किसी मित्र अथवा अपरिचित व्यक्ति के साथ अनावश्यक रूपसे घनिष्टतापूर्वक बात नहीं करता था। राजसभा में वह न तो स्वयं हंसता था और न अपने सामने किसी को हंसने देता था और न विनोद करने देता था।

(iv) बलबन ने अपने यहाँ पदच्युत राजाओं को आश्रय दे रखा था और बलबन के आदेशानुसार उन्हें नियमित रूप से दरबार में उपस्थित रहना पड़ता था। खलीफ़ा के वंश के दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष सभी दरबारियों को राजसभा में खड़ा रहना पड़ता था।

(v) उसने दरबार में मध्य एशिया के सल्जूक और ख्वारिजमी सुलतानों के ढंग का शिष्टाचार प्रचलित किया। उसने दरबार में अभिवादन करने के लिए "सिजदा" और "पैबोस" प्रथा प्रारम्भ की। दरबारियों के अनुशासन तथा शिष्टाचार के लिए उसने नियम निर्धारित कर दिए थे, तथा दरबार के रीति-रस्म भी निश्चित कर दिए थे। इनसे किंचित भी विचलित होने की किसी को आज्ञा नहीं थी।

(vi) बलबन ने अत्यन्त गम्भीरता और आतंक से अपने दरबार के वैभव ऐश्वर्य और शान-शौकत की रक्षा की और वह स्वयं दरबार के नियमों व अनुशासन का पालन करता था।

उसने दरबार के वातावरण को गम्भीरता और भय का चोगा पहिना दिया था। अपने परम योग्यतम और प्रिय पुत्र मुहम्मद की मृत्यु का शोक संवाद राजसभा में सुनकर विचलित नहीं हुआ और गम्भीरतापूर्वक दरबारी और प्रशासकीय कार्य करता रहा। पर बाद में राजप्रासाद में जा कर वह फूट-फूट कर रोया और अपने दुःख को एकान्त में व्यक्त किया।

अपने दरबार के इस प्रकार के संगठन से, गम्भीरता, शिष्टाचार तथा अनुशासन के नियमों से उसने सम्राट के पद, गौरव और मर्यादा तथा प्रतिष्ठा में भी वृद्धि की। इससे बड़े-बड़े अमीर और मलिक भी उसके प्रभाव और आतंक के नीचे दब जाते थे।

निरीक्षण एवं नियंत्रण—बलबन ने शासन की प्रत्येक कड़ी पर अपना कठोर नियंत्रण रखा। राज्य का कोई भी कार्य वह अपने पुत्रों या कर्मचारियों पर पूर्णतया नहीं छोड़ता था। वह सभी महत्वपूर्ण कार्यों को अपनी देख-रेख में कराता था। कम

महत्व वाले कार्यों का भी निरीक्षण करता था। बलबन स्वयं आखेट के बहाने पार्श्व-वर्ती क्षेत्र व प्रान्त के अधिकारियों में पहुंच जाता तथा उसके कार्यों का निरीक्षण करता था।

साहित्यकारों व विद्वानों को आश्रय—बलबन स्वयं शिक्षित और शिष्ट था। वह साहित्यकारों को एवं विद्वानों के प्रति अनुरागी और सहिष्णु था तथा उन्हें वह अपने दरबार में आश्रय देता था। मध्य एशिया से मंगोलों से आतंकित होकर अनेक विद्वान और साहित्यकार भाग कर भारत चले आये थे। बलबन ने इन्हें अपनी राज-सभा में शरण दी थी। इससे उसकी राजसभा विद्वानों, विद्यानुरागियों और साहित्य-कारों का केन्द्र बना गया था। उर्दू का प्रारम्भिक साहित्यकार और हिन्दी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो जिसने हिन्दू धर्म त्यागकर इस्लाम ग्रहण कर लिया था, बलबन के दरबार में रहता था और उसे राज्याश्रय प्राप्त था। राजसभा और प्रशासन में बलबन प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों की इज्जत करता था और उन्हें सादर सम्मान प्रदान करता था।

मद्यनिषेध—बलबन ने अपनी प्रजा और अमीरों का नैतिक स्तर ऊँचा करने के लिये सुरापान निषिद्ध कर दिया था। अपने राज्यारोहण के बाद बलबन ने स्वयं सुरापान बन्द कर दिया था। मदिरा का क्रय-विक्रय नियमित और नियन्त्रित हो गया। अमीरों और सरदारों का सामूहिक रूप से सुरापान तथा परस्पर लोगों में मिलकर आमोद-प्रमोद मनाना भी एकदम बन्द कर दिया गया। इससे एक बड़ा लाभ यह हुआ कि अमीरों, मलिकों, और सामन्तों के सामुहिक रूप से एकत्रित होकर सुरापान करने व द्यूत क्रीड़ा के साथ-साथ सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र रचने और विद्रोह करने के अवसरों का अन्त हो गया।

कठोर तथा निष्पक्ष न्याय-व्यवस्था—बलबन न्यायप्रिय सुलतान था, इसलिए उसने कठोर और निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था की। शांति और सुव्यवस्था के लिए भी निष्पक्ष न्याय-दान आवश्यक था। बलबन की मान्यता थी कि न्याय प्रशासन का मूल आधार है। निष्पक्ष न्याय प्रजा को आकृष्ट करने वाला सबसे बड़ा जादू है।

बलबन निष्पक्ष न्याय करके अपराधियों को कठोर दंड देता था। न्याय के सामने पद और वंश का, ऊँच-नीच और गरीब-अमीर का ध्यान नहीं रखा जाता था, सभी समान थे। अपराध करने पर बड़ा से बड़ा अधिकारी भी दंडित होता था। बर्नी के शब्दों में बलबन की न्याय-व्यवस्था का उल्लेख है, "न्याय के सम्बन्ध में वह (बलबन) बड़ा कठोर था। इसमें वह अपने सम्बन्धियों, सहयोगियों और सेवकों तक के साथ कोई पक्षपात नहीं करता था और यदि इनमें से कोई किसी के प्रति अन्याय या अपराध करता, तो वह सताये हुए व्यक्ति को संतुष्ट करने का प्रयत्न करता था। कोई भी व्यक्ति अपने दास-दासी पर आवश्यकता से ज्यादा कठोरता का व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता था।" इसके कुछ उदाहरण भी हैं। बदायूं के हाकिम और अमीर मलिक बकबक ने अपने गुलाम को इतने कोड़े मारे कि उसकी मृत्यु हो गयी। उस गुलाम की विधवा पत्नि ने जब सुलतान बलबन से इस दुर्व्यवहार की शिकायत की, तब बलबन ने यह आदेश दिया कि हाकिम बकबक को भी इतने कोड़े लगाये

जांय कि वह मर जाय। इसी प्रकार, जब अवध के शासक हैबतखाँ ने अपने एक सेवक की हत्या कर दी, तब बलबन ने हैबतखाँ को राजसभा में कोड़े लगवाये और मृत व्यक्ति की विधवा को यह आदेश दिया कि वह हैबतखाँ को कत्ल कर अपने पति का बदला ले। विधवा ने रुपया लेकर हैबतखाँ को छोड़ दिया। विद्रोहियों को वह क्रूरता से दंड देता था और उनका वध करवा देता था। इस प्रकार की कठोर न्याय-व्यवस्था से एक ओर प्रजा प्रभावित होती थी और सम्राट के पद और प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी, तो दूसरी ओर उपद्रवी, विरोधी, विद्रोही तथा राज्य में अशांति और गड़बड़ करने वाले तत्व सिर नहीं उठा सकते थे। न्याय की निष्पक्ष व्यवस्था तथा कठोर दंड-विधान से बलबन को शक्ति तो दृढ़ हुई ही, साथ ही अपराधों और उपद्रवों में भी कमी हुई।

सेना का पुनर्गठन—बलबन की शक्ति और प्रशासन का आधार उसकी सशक्त सेना थी। उसने सेना को पुनर्गठित कर उसकी त्रुटियों, दोषों और अभावों को दूर करने का प्रयास किया। इसके लिये उसने निम्नलिखित कदम उठाये।

(i) दास वंश के प्रारंभिक शासकों ने योग्य सैनिकों तथा सेनापतियों को उनकी राजकीय, सैनिक और सामरिक सेवाओं के उपलक्ष में जागीरें प्रदान की थीं। उन जागीरों पर उनके उत्तराधिकारियों का अधिकार हो जाया करता था। चाहे वह सैनिक सेवाओं में हो या न हो। इसके अतिरिक्त यह भी प्रथा थी कि दिल्ली सल्तनत की सीमा के बाहर की जिस भूमि को सैनिक या सेनापति जीतते थे, वह उनके पास ही रह जाती थी। बलबन ने इन सब की जांच करवायी और उसे निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए।

(१) अनेक सैनिकों और सेना अधिकारियों के उत्तराधिकारियों के पास पीढ़ियों से भूमि थी। वे नियमित सैनिक सेवा से प्रथक रह कर भी उस भूमि या जागीर का उपभोग इस प्रकार करते थे, मानो वह जागीर उन्हें इनाम में दी गयी हो।

(२) कुछ ऐसे सैनिक और अधिकारी भी थे जो दूध मुंहे बच्चे और अनाथ विधवाओं और निस्सहाय स्त्रियों को छोड़कर मर चुके थे। उनके अनाथ अवयस्क उत्तराधिकारियों और विधवाओं का भरण-पोषण उनकी जागीरों से होता था। सैनिक आवश्यकता होने पर उनका कोई सम्बन्धी या दास मौलिक पारिवारिक सैनिक के स्थान पर सुलतान की सेवा में उपस्थित हो जाता था। इस वर्ग की दशा दयनीय और सोचनीय थी।

(३) अनेक भूमि स्वामी सैनिक और सेना के पदाधिकारी बहुत ही वृद्ध और अशक्त हो चुके थे, पर अपनी जागीरों का उपयोग कर रहे थे और सैनिक सेवा नहीं कर रहे थे।

(४) कुछ ऐसे भी थे, जो वयस्क थे और सैनिक सेवा के उपयुक्त भी थे, पर वे सुलतान की ओर से अपने पिता को प्राप्त भूमि जागीर का उपयोग कर रहे थे। इन्हें किसी भी प्रकार की नौकरियों की आवश्यकता नहीं थी। वे धन-सम्पन्न और वैभवशाली थे। इन दोषों को दूर करने के लिये बलबन ने निम्नलिखित कदम उठाये।

(अ) बलबन ने एक घोषणा द्वारा उपरोक्त इन सभी प्रकार के व्यक्तियों की जागीरें समाप्त करदीं, उन्हें जप्त करलीं। (ब) जो वयस्क थे और सैनिक सेवा के उपयुक्त थे, उन्हें सेना में भरती कर लिया गया और तत्कालीन नियमों व श्रेणी के अनुसार उन्हें नगद वेतन दिया जाने लगा। (स) स्वर्गवास हुए सैनिकों और पदाधिकारियों की विधवाओं के लिए उसने नकद पेंशन या वजीफे की व्यवस्था की। परन्तु भूमि या जागीर पर इनका अधिकार नहीं रहा। (द) वास्तविक वृद्ध और अशक्त सैनिकों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने जीवनकाल तक ही अपनी जागीर और भूमि का उपयोग कर सकेंगे। ये सुविधाएँ दिल्ली के वृद्ध काजी के अनुनय-विनय करने पर द्रवित होकर बलबन ने प्रदान की। वृद्ध सैनिकों और विधवाओं ने अपनी फरियाद इस काजी के द्वारा सुलतान तक पहुँचाई थी।

(i) बलबन के इस कदम से सैनिक सरदारों व जागीरदारों के होसले पस्त हो गये और वे बलबन से भयभीत हो गये।

(ii) बलबन ने सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया था, इससे सैनिकों के उत्साह और कार्यक्षमता में अधिक वृद्धि हो गयी। यद्यपि बलबन ने वेतन देने की प्रथा प्रारम्भ कर जागीर और भूमि देने की प्रथा का अन्त कर दिया, परन्तु प्रांतीय और स्थानीय अधिकारी और हाकिम अपने अधीनस्थ सैनिकों को भूमि के रूप में ही वेतन प्रदान करते थे।

(iii) सेना में आवश्यकतानुमार पदाति और अश्वारोही भरतो किये गये और राजधानी दिल्ली में एक संरक्षित सेना तैयार की जो मंगोलों के आक्रमणों तथा विरोधियों और प्रतिद्वन्दियों के विद्रोहों को कुचलने के लिए सदा तत्पर रहती थी।

(iv) ऐसा अनुमान है कि बलबन ने सेना के घोड़ों को दागने की प्रथा प्रारंभ की जिससे कि अश्वारोही सैनिक अश्व के व्यय और अपने वेतन में अनुचित लाभ न उठा सकें।

(v) बलबन ने सैनिक पदाधिकारियों में परिवर्तन किये, जिसमे सैनिक क्षमता और दृढ़ता में वृद्धि हो। उसने इमाद-उल-मुल्क को दीवान-ए-आरीफ, सेना का सर्वोच्च अधिकारी, नियुक्त किया। यह बड़ा अनुभवी, सुयोग्य और कार्य-कुशल व्यक्ति था। उसके व्यक्तित्व ने सेना में नव स्फूर्ति उत्पन्न की। इसके अतिरिक्त उसने योग्य और प्रतिभावान व्यक्तियों को ही सेना में उच्च पद प्रदान किये।

(vi) बलबन ने सेनापति को अर्थ सचिव के नियंत्रण से मुक्त कर दिया। इससे सेनापति स्वतंत्र रूप से सेना पर आवश्यकतानुसार व्यय कर सकता था तथा सैनिक सुधार भी सरलता मे किये जा सकते थे।

(vii) सेना में कठोर अनुशासन स्थापित किया गया। सैनिक नियमों की अवहेलना करने या उनका उल्लंघन करने वालों को कठोर दंड दिया जाने लगा।

(viii) अनेक सैनिकों को तो सैनिक अभियानों व युद्धों के समय प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता था। पर दिल्ली में स्थित संरक्षित सेना को ऐसे अवसर नहीं प्राप्त होते थे। इसलिये बलबन ने उनके प्रशिक्षण के लिए विशेष व्यवस्था की। उसने यह सैनिक नियम बना दिया था कि, जब प्रति सप्ताह बलबन आखेट करने जाय, तब

सहस्त्रों सैनिक बारी-बारी से उसके साथ जांय, वे सैनिक अभियानों का कार्य करें और अस्त्र-शस्त्रों पर अपने हाथ साफ करें।

(ix) बलबन ने सेना के लिये दुर्गों के सुदृढ़ीकरण की ओर विशेष ध्यान दिया। प्राचीन दुर्गों का जीर्णोद्धार तथा नवीन दुर्गों का निर्माण किया गया। इन दुर्गों में अनुभवी सैनिक अधिकारियों की अध्यक्षता और नियंत्रण में पर्याप्त संख्या में कुशल व दक्ष सैनिक रख दिये।

(x) उसने सैनिक छावनियों और सीमान्त क्षेत्र के दुर्गों में प्रशिक्षित, योग्यतम अनुभवी सैनिक और पदाधिकारी नियुक्त किये।

इन उपायों से बलवन के पास एक सुसंगठित, सुसज्जित और विशाल सेना बन गयी। इससे उसे अपने साम्राज्य को संगठित करने तथा सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा करने में अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई। बलबन ने अपने सुधारों से सेना में नया जीवन ला दिया।

गुप्तचर व्यवस्था—सरदारों, जागीरदारों व अमीरों की शक्ति नष्ट करने के लिये, दूरस्थ प्रदेशों के प्रांतपतियों, हाकिमों और अधिकारियों पर पूर्ण नियंत्रण रखने के लिये, तथा प्रशासन संबंधी व विद्रोहों संबंधी खबरों, सूचनाओं, आदेशों आदि के आदान-प्रदान के लिये बलबन ने सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था स्थापित की। राजधानी दिल्ली, तथा राज्य के दूरस्थ प्रांतों तथा जिलों में भी बलवन ने अपने कुशल गुप्तचर नियुक्त किये। गुप्तचर विभाग के संगठन और व्यवस्था में उसने स्वयं अभिरुचि ली, और अपना अधिक समय और धन व्यय किया। वह गुप्तचरों की नियुक्ति छान बीनकर स्वयं करता था और खास चुने हुए राजभक्त और स्वामिभक्त लोगों को ही वह गुप्तचर का कार्यभार सौंपता था। गुप्तचरों को अच्छा वेतन दिया जाता था और बलबन सीधा उन्हें अपने अधीन रखता था, मलिकों या सरदारों व प्रांतपतियों के अधीन नहीं। गुप्तचर बलबन के प्रति उत्तरदायी होते थे। वे प्रांतीय अधिकारियों के अनुशासन, अधीनता और उत्तरदायित्व से सर्वथा मुक्त होते थे। उसने संपूर्ण साम्राज्य में कार्य-कुशल, योग्यतम और तीव्र गतिशील गुप्तचरों का जाल-सा बिछा दिया था। उसने अपने पुत्रों के विरुद्ध तक गुप्तचरों को तैनात कर रखा था। ये गुप्तचर बलबन को राज्य में होने वाले षड़यंत्रों और विद्रोहों से अवगत करते थे। वे अमीरों, सूबेदारों, अधिकारियों आदि के संबंध में गुप्त समाचार प्रतिदिन बलबन को भेजते थे। ये सूबेदारों के विद्रोह करने के पूर्व ही उसकी सूचना सुलतान तक पहुँचा देते थे। बलबन की इस कठोर गुप्तचर व्यवस्था से सरदारों, अमीरों और अधिकारियों का वर्ग इतना अधिक आतंकित हो गया था कि वे अपने निवास-गृहों में भी परस्पर वार्तालाप करते हुए यह भय रखते थे कि कहीं सुलतान का गुप्तचर उनकी कोई बात सुन न ले। प्रायः बलबन द्वारा इन गुप्तचरों की भी कठिन परीक्षा ली जाती थी, उन पर सख्त नियंत्रण रखा जाता था। बलबन अयोग्य, और विश्वासघाती गुप्तचरों को कठोर दंड देता था। यदि कोई गुप्तचर भय या लालच के कारण किसी बात को सुलतान से छिपा जाता या गलत सूचना देता तो उसे मृत्यु दंड होता था। गुप्तचर विभाग की दृढ़ व्यवस्था, बलबन के निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन का एक प्रमुख आधार स्तम्भ

थी। गुप्तचरों की सहायता से षड़यंत्रों, विद्रोहों और अशांति के उस युग में बलबन शांति स्थापित कर सफलता से शासन कर सका। बलबन को न्याय-कार्य में भी गुप्तचर विभाग से पूर्ण सहायता प्राप्त होती थी।

बलबन की आर्थिक नीति—बलबन ने उत्तराधिकार में रिक्त राजकोष और आर्थिक समस्याएँ प्राप्त की थीं। परन्तु उसने अपने कठोर प्रशासन से राजकोष की रिक्तता को दूर किया, कर वसूल कर धन एकत्रित किया और आर्थिक कठिनाइयों को हल किया। राजकीय आय की अभिवृद्धि के लिये उसने पूर्णरूपेण प्रयत्न किये। उसने अनुभव कर लिया था कि राज्य की सुरक्षा और व्यवस्था के लिये धन आवश्यक है। उसकी नीति थी कि अधिक से अधिक धन एकत्र करना और उचित मदों में उसे व्यय करना राज्य के पक्ष में हितकर होता है। इसी नीति के विषय में बलबन ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को कहा था कि, "तू अपने राज्य के आय-व्यय के विषय में पूर्ण जानकारी रक्खा कर। व्यय आय का आधा होना चाहिये। शेष राजकोष में सुरक्षित रख जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर वह तेरे काम आवे और आवश्यक मदों में उसे व्यय किया जा सके। अपव्यय न कर, क्योंकि ईश्वर अपव्ययी को अपना मित्र नहीं रहने देता। धन एकत्र करने के लिए विशेष प्रयत्न किया कर।"

बलबन की धार्मिक नीति और हिन्दुओं के प्रति व्यवहार—बलबन धर्मनिष्ठ कट्टर मुसलमान था। वह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करता था और कुरान तथा इस्लाम धर्म के नियमों का पालन करता था। पर इस्लाम धर्म के उलमाओं के प्रति उसकी नीति नियंत्रण और कठोरता की थी। बलबन के पूर्व के सुलतानों के दुर्बल शासन-काल में उलमाओं की शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी थी। उनका धार्मिक स्तर गिर गया था। वे व्यर्थ के झगड़ों में अधिक व्यस्त रहते थे और राजनैतिक हलचलों में भी वे विशेष अभिरुचि रखते थे और उनमें भाग लेते थे। उन्होंने धर्म और राजनीति दोनों को परस्पर मिलाने का प्रयत्न किया। पर बलबन ने उन्हें राजनीति से पूर्ण रूप से अलग कर दिया। वह राजनीति में उलमाओं का हस्तक्षेप, परामर्श आदि हितकर नहीं समझता था और इसीलिये उसने राजनीति में उनका प्रभाव कम कर दिया। उसने अपने आपको धार्मिक मामलों में प्रधान बना लिया परन्तु फिर भी वह उनके प्रति सम्मान और श्रद्धा की भावना रखता था। मुसलमान संतों का वह समुचित आदर करता था और उनसे धर्म चर्चा करता था। उसने अपनी मुद्राओं पर खलीफा के शब्द का भी प्रयोग किया, इससे उसको धार्मिक सुदृढ़ता प्राप्त हो गयी।

पर बलबन में धार्मिक संकीर्णता थी। हिन्दुओं के प्रति वह असहिष्णु और अनुदार था। उसमें धर्मांधता और धार्मिक कट्टरता थी। वह हिन्दुओं को प्रशासन में कोई अधिकार व पद नहीं देता था। उसने हिन्दुओं को राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा और उन्हें किसी प्रकार भी उन्नति करने के अवसर नहीं दिये। जब हिन्दुओं ने उसकी नीति का घोर विरोध कर उसकी राज-सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किये, तब बलबन ने अत्यन्त ही नृशंसता से हिन्दुओं का भीषण नर-संहार किया। अवध और कटेहर में तो उसने हिन्दुओं का इतना अधिक कत्लेआम किया कि वहां रक्त की नदी-सी बह गयी और शवों से दीर्घकाल तक वातावरण दुर्गंधयुक्त

रहा। जो हिन्दू प्रलोभनों में आकर या नृशंसता से आतंकित होकर विवशता से मुसलमान हो गये थे, बलबन उनके प्रति भी उदार और कृपालु नहीं था। वह ऐसे नवीन धर्म परिवर्तित मुसलमानों को प्रशासन में ऊँचे पदों पर नियुक्त नहीं करता था और जो नियुक्त हो गये थे, उसने उन्हें पदच्युत करवा दिया।

बलबन का यह दृढ़ विश्वास था कि खुदा ने उसे अपने कुछ चुने हुए बंदों के हित के लिए, तथा उन्हें सुख पहुँचाने के लिए भेजा है। खुदा के ये चुने हुए बंदे मुसलमान थे। बलबन ने अपनी इस धारणा को अनेक बार व्यक्त किया। हिन्दू खुदा के बंदे नहीं हैं, इसलिए उन्हें हर प्रकार से उपेक्षित रखा जाय। बलबन की यही नीति थी। प्रशासन में जो उसने सुधार किये, दान दिये, अधिकारीगण नियुक्त किये, और अनेकों को पदोन्नत किया, पर ये सब कार्य उसने खुदा के बन्दे मुसलमानों के लिए किये। हिन्दुओं के लिए जन-कल्याण के उसने कोई कार्य नहीं किए। हिन्दू जनता के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास की उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। उसने उनकी प्रगति के लिए या उनकी सद्भावना, सहयोग और सहायता प्राप्त करने के लिए कोई कार्य नहीं किये। पर उस युग की यह नीति ही बन गयी थी और बलबन में यह स्पष्टतया प्रतिबिंबित हुई थी।

बलबन के प्रशासन की समीक्षा—इस प्रकार बलबन ने बड़ी कुशलता से शिथिल शासन को सुव्यवस्थित कर सम्राट की प्रतिष्ठा एवं गौरव में वृद्धि की। पर यह बात स्पष्ट है कि बलबन ने शासन के क्षेत्र में किन्हीं मौलिक, राजनैतिक, या प्रशासकीय संस्थाओं का सृजन नहीं किया, किन्तु पुरातन संस्थाओं में ही परिवर्तन, परिवर्द्धन कर उनकी शिथिलता को दूर कर उन्हें सफल संचालन के योग्य बनाया और जनता को शांति व सुरक्षा प्रदान की। उसने एक विशाल सुदृढ़ सेना संगठित की, पर सैनिक अभियानों, राजविस्तार और दिग्विजयों के लिए उसने उसका उपयोग नहीं किया। वह विजय अभियानों के लिए राजधानी दिल्ली से बाहर नहीं गया।

बलबन का देहावसान—जब सन् १२८५ में मंगोलों ने सीमांत क्षेत्र में भयंकरता से आक्रमण किया, तब उनसे युद्ध करने में और उन्हें खदेड़ने में बलबन का ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद मारा गया। इस समय बलबन की आयु ८० वर्ष की थी। वह अपने प्रिय तथा होनहार पुत्र का दुखद समाचार अधिक काल तक सहन नहीं कर सका और सन् १२८६ में थोड़े समय बाद ही उसका देहावसान हो गया। मृत्यु के कुछ समय पूर्व उसने मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, परन्तु अमीरों ने उसकी इच्छा के विरुद्ध बलबन के दूसरे पुत्र बुगराखां के बेटे कैकूबाद को राज्य सिंहासन पर बिठा दिया।

बलबन का चरित्र एवं उसका मूल्यांकन

मध्यकालीन युग के सम्राटों में बलबन विशेष उल्लेखनीय है। उसने उत्तरी भारत में चालीस वर्ष तक शासन किया, बीस वर्ष प्रधान मंत्री के रूप में तथा बीस वर्ष सुलतान के रूप में उसके इस दीर्घकाल के शासन के विभिन्न पहलुओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है—

(१) **निरंकुश तथा दैवी अधिकारों में विश्वास करनेवाला सुलतान**—बलबन ने अपनी नीति और शक्ति से सही अर्थों में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना कर दी। जिस निरंकुश राजसत्ता की स्थापना करने में कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और रजिया बेगम जैसे शक्तिशाली शासक सफल नहीं हो सके, वह बलबन ने स्थापित कर दिया। यह उसकी बड़ी सफलता है। वह राजत्व के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का अनुयायी था तथा स्वयं को खुदा के अतिरिक्त किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं मानता था। वह निरंकुश स्वेच्छाचारी अनियंत्रित सुलतान था तथा राज्य के बड़े-बड़े अमीर व सरदार और उसके पुत्र तक भी जो बड़े-बड़े हाकिम और प्रांतपति थे, उसकी आज्ञा के बिना कुछ कार्य नहीं कर सकते थे। विशुद्ध निरंकुशवाद और दैवी अधिकार का सिद्धान्त उसकी राजकीय नीति का आधार स्तम्भ था। दैवी सिद्धान्त के पीछे वह पूर्ण निरंकुश बन गया।

(२) **लोह और रक्त की नीति अपनाने वाला कठोर शासक**—अपने निरंकुश राजतन्त्र को स्थापित करने के लिए तथा राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए बलबन ने लोह और रक्त की नीति अपनाई। उसने उपद्रवियों, डाकुओं, लुटेरों, विरोधियों और विद्रोहियों को सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से निर्दयतापूर्वक दण्ड दिया। तुगरिलबेग के विद्रोह का दमन, मेवातियों के उपद्रवों और दोआब के हिन्दुओं के विद्रोहों का नृशंसता से दमन उसकी दृढ़ लोह और रक्त की नीति के ज्वलंत उदाहरण हैं। उसने निर्दयता और नृशंसता से सर्वत्र आतंक स्थापित करके अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की। उसने अपने शत्रुओं, प्रतिद्वंदियों, विद्रोहियों और विरोधियों को जो कठोर और निर्दयतापूर्वक दंड दिए, उससे आलोचकों ने उसे निर्दयी, अमानुषिक और बर्बर कहा है। जो दंड उसने दिए, वे आवश्यकता से अधिक कठोर और अमानवीय थे। उसकी दंड विधान की कठोरता, पराकाष्ठा को भी पार कर जाती थी और वह नर-संहार को उचित मानता था। परन्तु उसकी इस कठोर नीति से उसका मंतव्य और उद्देश्य प्राप्त हो के, मेवाती, खोखर, राजपूत, प्रतिद्वन्दी, अमीर और विरोधी सरदार, उपद्रवी और लुटेरे नष्ट हो गए और वे फिर कभी भी सिर न उठा सके। बलबन की क्रूर नीति की आलोचना करते समय यह भी स्मरण रखना चाहिए कि दंड और रक्तपात की नीति में जिस निर्मम दानवता का परिचय बलबन ने दिया था, वह उस युग की माँग थी। जिस परम्परा में बलबन सुलतान हुआ, उसमें केवल तलवार व शक्ति का ही सहारा था। अपने दमनचक्र के उद्देश्य के सम्बन्ध में बलबन ने एक बार स्वयं कहा था कि, "मैं जो भी करता हूँ, वह निर्दयी लोगों की निर्दयता रोकने के लिए और कानून के सामने सबको बराबर बनाने के लिए ही करता हूँ। किसी भी राज्य का सम्मान उसकी प्रजा के सुख तथा समृद्धि में ही निहित होता है।"

यह सत्य है कि बलबन की लोह और रक्तपात की नीति दीर्घकाल तक सफल होकर नहीं चल सकी। परन्तु उस शक्ति के युग में इसी प्रकार की नीति का अनुसरण अनिवार्य था। जो सुलतान इस प्रकार की नीति का अनुकरण नहीं कर सके, उनका पतन भी शीघ्र ही हो गया।

(३) **सहृदय सुलतान**—यदि बलबन उपद्रवियों और विरोधियों के दमन के लिए अत्यन्त निर्मम और बर्बर था, तो व्यक्तिगत रूप से वह दयालु और सहृदय सुलतान भी था। बलबन का पारिवारिक जीवन अत्यन्त ही सरल एवं स्निग्ध था। उसे अपने परिवार के सदस्यों से बहुत प्रेम और स्नेह था। वह अपने पुत्रों व सम्बन्धियों से ही नहीं अपितु परिवार के प्रत्येक सदस्य से प्यार करता था। अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद की मृत्यु से जो आघात उसे लगा और जिसके कारण वह राजप्रासाद में भीतर एकांत में फूट-फूट बिलखा और रोया, उससे बलबन के उच्चकोटि के पारिवारिक प्रेम का पता लगता है। उसकी राजसभा में जो अपरिचित व्यक्ति या सताये हुए व्यक्ति आकर शरण लेते थे, उनके प्रति भी वह उदारता से व्यवहार करता था। शरणार्थियों तथा निस्सहायों पर दया करना तथा उन्हें सहायता देना वह अपना कर्तव्य मानता था। विशेष कारण या समय आने पर वह अपराधियों को क्षमा भी प्रदान कर दिया करता था।

दयालु, स्नेही और सहृदय होने पर भी बलबन यह नहीं चाहता था कि उसका पुत्र या उसका कोई सम्बन्धी कोई ऐसा कार्य करे जिससे सल्तनत को या सम्राट के पद अथवा प्रतिष्ठा को आघात पहुँचे। वह अपने निकटतम संबंधियों और परिवार के सदस्यों से आशा करता था कि वे उसकी नीति और न्याय के विरुद्ध न चलें। अपने पुत्र मुहमूद और बुगराखां को बलबन ने जो लम्बी-चौड़ी धार्मिक और राजनैतिक नसीहतें दी हैं, उनमें उसका उद्देश्य, दूरदर्शिता, नीति, प्रशासन विधि, न्याय की भावना आदि परिलक्षित होते हैं। बर्नी ने अपने ग्रंथ में इनका अनेक स्थलों पर विशद वर्णन किया है। इन नसीहतों से यह भी स्पष्ट है कि बलबन खुदा के अस्तित्व में विश्वास करता था, उससे डरता भी था, अपने पुत्रों से भी वह ऐसी ही आशा करता था। इसके अतिरिक्त यह भी विदित होता है कि बलबन न केवल अपना ही लोक एवं परलोक बनाने की चिंता करता था, अपितु अपनी सन्तान को भी लौकिक और पारलौकिक सुख दिलाना चाहता था, वह उन्हें नैतिक और धार्मिक उपदेश देता था तथा उनके द्वारा प्रजा व राज्य की सुख समृद्धि करवाना चाहता था।

(४) **योग्य एवं प्रतिभाशाली सम्राट**—दास वंश के और दिल्ली के सुलतानों में बलबन एक योग्यतम और प्रतिभावान सम्राट था। उसकी योग्यता, परिश्रम, कार्यक्षमता और प्रतिभा का यह ज्वलंत प्रमाण है कि वह दास के निम्न स्तर से पदोन्नति करते-करते, प्रधानमंत्री के पद तक पहुँच गया और बाद में सुलतान के पद पर आसीन हो गया। राज्य विस्तार का कार्य तो इल्तुतमिश ने किया और इस विशाल राज्य को सुव्यवस्थित और सुसंगठित करने का श्रेय बलबन को है। उसने राजनीति में कई व्यवहारिक कार्य किए। उसकी सीमान्त नीति, न्याय-व्यवस्था, सीमान्त क्षेत्रों की सुरक्षा तथा राजसभा का संगठन, उसकी मौलिक प्रतिभा के प्रतीक हैं। वह आत्मकल्याण से अधिक जनकल्याण को महत्व देता था, जिसके कारण निरंकुश होते हुए भी उसने सर्वदा प्रजा का ध्यान रखा। सम्राट के पद और प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करने और राजकीय गौरव को बढ़ाने के लिए बलबन ने अनेक कार्य किए। यह निर्विवाद

है कि बलबन का राज्य शक्ति और सेना पर आधारित था, पर बलबन प्रजा-पालक सुलतान था।

(५) **कुशल प्रशासक**—बलबन एक कुशल शासक भी था। उसका दीर्घ शासनकाल उसकी प्रशासनिक प्रतिभा का परिचायक है। बलबन ने शासन के सुदृढ़ीकरण की ओर दासवंश के सुलतानों में सबसे अधिक ध्यान दिया। उसने अपनी नीतियों और कार्यों द्वारा शासन को संगठित और सुदृढ़ बनाया और अपने पूर्व के सुलतानों द्वारा निर्मित और विस्तारित राज्य के खोखलेपन को दूर किया। जिन विभागों में प्रशासकीय दुर्बलताएँ थीं और जिनमें शिथिलता आ गयी थी। बलबन ने उन्हें दूर कर उनकी समुचित व्यवस्था का प्रबन्ध किया। वह अधीनस्थ कर्मचारियों और अधिकारियों पर कठोरता से निगरानी रखता था। आखेट के बहाने उनके क्षेत्रों में जा कर उनके कार्यों का निरीक्षण भी करता था और अपने कर्तव्यों के प्रति अवहेलना करने वाले और राजकीय कार्यों के प्रति उदासीन रहने वाले अधिकारियों व कर्मचारियों को कठोर दंड भी देता था। उसकी दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था, निष्पक्ष न्याय का प्रबन्ध, विद्रोहियों का दमन और शान्ति व्यवस्था के प्रयास, उसके द्वारा कानूनों और अनुशासन का पालन, व्यक्तिगत जीवन और राजसभा में उसका कठोर नियंत्रण, अनुशासन और गंभीरता आदि उसके अच्छे शासन-प्रबंधक होने के प्रमाण हैं। शासन और समाज में नैतिकता को उन्नत करने के लिए बलबन ने मद्यपान निषिद्धकर दिया था, मदिरापान की सभाएँ व सामूहिक आमोद-प्रमोद का निषेध कर दिया था। श्रेष्ठ वंश परम्परा और उच्चकुलीनता को उसने शासन में विशेष स्थान दिया और उसने ऊँचे कुलीन व्यक्तियों को ही ऊँचे पदों पर आसीन किए। अन्य मध्यकालीन राजाओं की भांति उसने अपने दरबार में आमोद-प्रमोद तथा हास्य को स्थान नहीं दिया। सम्राट के पद और प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करने के लिए उसने कई कार्य किए। बलबन के पूर्व के सुलतानों ने केवल सामरिक और दिग्विजय की नीति अपनाई थी, पर बलबन ने उसमें प्रशासन का व श्रेष्ठ सिद्धान्तों का समावेश किया। वह एक दूरदर्शी और अनुभवी शासक था। उसने समझ लिया था कि कब कठोरता का व्यवहार करना चाहिए और कब नम्रता का। इस प्रयोगात्मक बुद्धि से उसे अधिक सफलता मिली।

यह सत्य है कि दिल्ली के अन्य सुलतानों की भांति बलबन में रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था। उसमें शान्ति-स्थापित कर व्यवस्था स्थापित करने की शक्ति और प्रतिभा तो थी, परन्तु नवीन क्रांतिकारी नीतियों को अपनाने की क्षमता नहीं थी। उसने प्रशासन या सेना संबंधी कोई नवीन संस्थाएँ नहीं स्थापित की। प्रशासन की दृष्टि से उसमें रचनात्मक प्रतिभा नहीं थी। फिर भी बलबन प्रशासन में निरन्तर सजग और दत्तचित्त रहकर अधिक अभिरुचि से कार्य करता था। इससे पुराने प्रशासकीय विभागों और संस्थाओं ने समुचित ढंग से कार्य प्रारम्भ कर दिए। इससे बलबन प्रशासक के रूप में सफल रहा परन्तु उसके प्रशासन में मानवोचित करुणा, सहानुभूति, सहिष्णुता और प्रेम का सर्वथा अभाव था।

(६) **योग्य सैनिक**—बलबन एक योग्य सैनिक और कुशल सेनापति था। उसने अपने विरोधियों और विद्रोहियों से युद्ध कर उनमें विजयश्री प्राप्त कर अपनी

सैनिक और सामरिक प्रतिभा का परिचय दिया। मंगोलों से अपने राज्य की सुरक्षा करने के लिए और विद्रोहों का अन्त कर शान्ति बनाये रखने के लिए उसने सेना का पुनर्गठन किया, सैनिकों और सेना-अधिकारियों को सैनिक कार्यों और सेवाओं के लिए दी गयी जागीरों की जांच करवाई, उनमें वृद्ध और अशक्त सैनिकों को अलग कर पेंशनें या सेवा वृत्तियाँ दे दीं, योग्य और वयस्क व्यक्तियों को उसने सेना में रखे, उन्हें नगद वेतन दिया और सैनिक सुधारों के लिए सेनापति को अर्थ-नियंत्रण से मुक्त कर दिया। यद्यपि बलबन में ऐबक और इल्तुतमिश जैसे पूर्ववर्ती शासकों की भांति सामरिक प्रतिभा नहीं थी, फिर भी उसने अपने विद्रोहियों तथा राज्य को विश्रृंखलित करने वाले अन्य लोगों के साथ और मंगोलों के आक्रमणों के विरुद्ध जो व्यवहार किया और नीति अपनाई, वह उसे एक सफल सेनापति की श्रेणी में रखते हैं। प्राय: आलोचकों का मत है कि बलबन ने एक विशाल सेना संगठित करके, दुर्गों का सुदृढ़ीकरण करके और अधिक धन व्यय करके भी न तो दिल्ली सल्तनत की सीमाओं की वृद्धि की ओर न दिग्विजय की। परन्तु इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि बलबन का उद्देश्य दिग्विजय नहीं था, उसकी नीति आक्रमक नहीं, रक्षात्मक थी। दिल्ली की तुर्क सल्तनत को खतरे में डालकर साम्राज्य विस्तार करना उसकी नीति के विरुद्ध था। उसने जितने भी कठोर नियमों को और नीति को अपनाया, उन सबका मुख्य उद्देश्य साम्राज्य की रक्षा ही था।

(७) **चरित्रवान, धर्मनिष्ठ व्यक्ति**—बलबन इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी था। वह धर्मान्ध सुन्नी और धर्मनिष्ठ मुसलमान था। वह इस्लाम के नियमों के अनुसार सावधानी से आचरण करता था। सुलतान बनने के पूर्व वह मद्यपान और मदिरापान की सभाओं, विलासपूर्ण महफिलों और नाचरंग में विशेष अभिरुचि रखता था। पर सुलतान बन जाने पर उसने ये दुर्व्यसन त्याग दिये थे। इबादत एवं ईश्वर की आज्ञाकारिता तथा रोजे-नमाज में अब वह अधिक रुचि लेता था। नमाजे इशराक (प्रातः-काल की नमाज), नमाजे चाश्त (नाश्ते के पश्चात् की नमाज) में उसे अधिक आनन्द आता था। हज के महीनों में वह रात्रि भर नमाज पढ़ा करता था, तथा राजभवन में अबराद (कुरान के वे भाग जो दिन-रात पढ़े जाते हैं) पढ़ने में उसे लगन थी। उसने इस्लाम धर्म के अनुसार पवित्रता से अपना जीवन बिताया।

बलबन सच्चरित्र और गुणवाला सुलतान था। मुस्लिम धर्माधीशों, संतों और विद्वानों के सत्संग में उसकी बहुत अभिरुचि थी। कहा जाता है कि वह सदैव मुस्लिम विद्वानों के साथ भोजन करता था और भोजन के समय मुस्लिम संत और विद्वान तथा बलबन परस्पर कानून व धर्म पर वाद-विवाद और विचार-विनिमय करते थे। वह धर्म के बुजुर्गों के दर्शनार्थ उनके निवास-गृह जाया करता था। काजी शरफुद्दीन, बलबलजी, मौलाना सिराजुद्दीन संजरी तथा मौलाना नजमुद्दीन दमिश्की, जो तत्कालीन उलमाओं में प्रख्यात थे, बलबन द्वारा बड़े सम्मानित किये जाते थे। बलबन उन्हें बड़े आदर और श्रद्धा से देखता था। बर्नी ने लिखा है कि "यदि नगर में कोई सैयद, सन्त अथवा आलिम का स्वर्गवास हो जाता था, तो सुलतान (बलबन) उसके जनाजे के साथ उपस्थित रहता था।"

यद्यपि बलबन अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति भयंकर अत्याचार नहीं करता था, पर उसे भारतीय मुसलमानों, शियाओं और विशेष कर हिन्दुओं से घृणा थी। वह उन्हें न तो शासकीय नौकरियाँ देता था और न उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त करता था। तुर्की मुसलमानों के प्रति उसे अत्यधिक झुकाव व लगाव था। इस दूषित धार्मिक नीति का परिणाम यह हुआ कि उसे प्रशासन में सर्वश्रेष्ठ अनुभवी और प्रतिभावान व्यक्तियों और अधिकारियों की सेवा प्राप्त न हो सकी। राज्य उनकी सेवाओं का लाभ प्राप्त करने से वंचित हो गया। यद्यपि बलबन ने अन्य मुस्लिम शासकों की भांति हिन्दुओं के मंदिरों को विध्वस कर, मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर उनके अवशेषों पर मसजिदें निर्मित नहीं की, पर वह हिन्दुओं के प्रति उदार और सहिष्णु नहीं था।

(८) **विद्या का पोषक**—बलबन विद्या और साहित्य का अनुरागी था। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों का प्रेमी और उनके सत्संग में आनन्द लेने वाला सुलतान था। बड़े-बड़े खान, मलिक तथा प्रतिष्ठित और सम्मानित विद्वान और व्यक्ति उसके अतिथि होते थे। उसने मध्य-एशिया के अनेक राजकुमारों और विद्वानों को अपने दरबार में शरण दी थी। ये मंगोलों के भय से भाग कर भारत आ गये थे और बलबन के उदार राज्याश्रय से लाभांवित हो रहे थे। बलबन की राज्य सभा उस युग में इस्लामी ज्ञान, विद्या और संस्कृति का केन्द्र थी।

बलबन की राज्य-सभा में दिल्ली और विभिन्न प्रांतों में बड़े-बड़े विद्वान, ज्ञानी, कार्यकुशल लोग, ज्योतिषी, चिकित्सक, दार्शनिक, संत, विश्वास पात्र कव्वाल और अद्वितीय गायक रहते थे। जियाउद्दीन बर्नी ने अपने ग्रंथ "तारीख-ए-फिरोज-शाही" में बलबन के राज्य की विभिन्न विभूतियों का उल्लेख किया है। इनमें बदायूँ के काजी कुतुबुद्दीन जो शहर के शेख-उल-इस्लाम थे, समाना के सैयद मोइनउद्दीन, आलिमों में फरीदुद्दीन मसूद, संतों में शेख सद्रुद्दीन, शेख बदरूद्दीन गजनबी, और सीदीमौला प्रसिद्ध थे। मौलाना हमीदुद्दीन मुतरिज बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी और चिकित्सक थे, मौलाना बदरूद्दीन दमिश्की और मौलाना हिसामुद्दीन मारीगला बड़े दक्ष और धर्मनिष्ठ हकीम थे। प्रसिद्ध विद्वानों में मौलाना बुरहानुद्दीन मल्ख, काजी फखरूद्दीन, मौलाना नजमुद्दीन दमिश्की, मौलाना शरफुद्दीन बलबलजी, काजी जलालुद्दीन काशानी, आदि थे। हिन्दी तथा फारसी के तत्कालीन विद्वान और कवि अमीर-खुसरो तथा अन्य विद्वान अमीर हसन बलबन के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद की राजसभा में रहकर उसकी शोभा बढ़ाते थे। मुहम्मद स्वयं भी विद्वान और विद्यानुरागी था। फारसी के प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ शाहनामा, दीवान-ए-सनई आदि उसकी राजसभा में पढ़े जाते थे और विद्वानगण उन पर वाद-विवाद और वार्तालाप करते थे।

इतिहास में बलबन का स्थान—गुलाम वंश के सुलतानों मे बलबन का स्थान सर्वोपरि माना गया है। उसने चालीस वर्षों तक निरन्तर परिश्रम करके दिल्ली सल्तनत को सुदृढ़ करने का जो अभिनय प्रयास किया वह उसकी राजविज्ञता, दक्षता और प्रतिभा का परिचायक है। तेरहवीं सदी का उत्तरार्द्ध अशांति, अव्यवस्था और अराजकता का युग था और इस युग की दो प्रधान आवश्यकताएँ थीं—प्रथम सुलतान के राजपद और प्रतिष्ठ तथा गौरव में वृद्धि करना, द्वितीय विरोधियों और विद्रो-

हियों को कुचल कर शांति स्थापित करना। बलबन ने दूरदर्शी राजविज्ञ होकर इन दोनों आवश्यकताओं को समझकर उनकी पूर्ति करने का सफल प्रयास किया। राज-सभा की सजावट, शान-शौकत, प्रभावोत्पादक आकर्षक राजकीय वेश-भूषा, सामाजिक उत्सवों पर ऐश्वर्य प्रदर्शन, भयावह आकृति के व चमकीले अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित अंगरक्षकों की नियुक्ति, राजदरबार में भय, आतंक, गंभीरता, अनुशासन का वाता-वरण से और निरंकुश और अनियंत्रित राजतंत्र की स्थापना से बलबनने प्रथम आवश्यकता की पूर्ति की। कठोर शासन-व्यवस्था तथा तलवार के बल पर नृशंसता और बर्बरता से उसने विद्रोहियों, उपद्रवियों और विपक्षियों का दमन करके उसने दूसरी आवश्यकता को भी पूरा किया। उसने शासन-व्यवस्था को सजग और संगठित कर दिल्ली के नवो-दित तुर्की राज्य को दृढ़ स्वरूप प्रदान कर देश में शांति और सुव्यवस्था स्थापित की। इससे दिल्ली सल्तनत एक शक्तिशाली राज्य बन गयी। इससे पूर्व वह षड़यंत्र-कारियों का केन्द्र बनी हुई थी। बलबन ने जिस शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया, वही अलाउद्दीन खिलजी के समय भारत का एक छत्र राज्य बन गया।

बलबन ने निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की। दैवी अधिकार का सिद्धांत और अनियंत्रित स्वेच्छाचारिता उसके राजतंत्र के आधार स्तम्भ थे। बलबन ने विरोधियों और प्रतिद्वंदियों व विद्रोहियों को बर्बरता से कुचलने की लोह और रक्त की नीति अपनायी। राजकीय वैभव और ऐश्वर्य, तथा सुलतान के पद और प्रतिष्ठा के लिये एवं राजसभा की श्रीवृद्धि के लिये उसने अनेक कार्य किये। उसकी कठोर निष्पक्ष न्याय-व्यवस्था, प्रजावत्सलता की भावना, सेना का पुनर्गठन, जागीरों का सर्वेक्षण, नगद वेतन की प्रथा, उसकी सीमान्त नीति, दुर्गों का पुनरुद्धार, सैनिकचौकियों का निर्माण, प्रशिक्षित वीर अनुभवी सैनिकों और अधिकारियों की नियुक्तियां और इस प्रकार मंगोल आक्रमणकारियों से राज्य की सुरक्षा, जागीरदारों और अमीरों का सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से दमन, सामूहिक मद्य-पान और आमोद-प्रमोद का निषेध, शासन सम्बन्धी सुधारों की ओर उसकी अभिरुचि आदि—बलबन ने अनेक ऐसे कार्य किये जो बड़े महत्व के हैं। अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने उसके इन कार्यों को पूर्ण किया और उसकी नीति के विभिन्न पहलुओं को अपनाया इसीलिए बलबन को अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक का अग्रगामी माना गया है। बलबन ने अलाउद्दीन खिलजी के लिए मार्ग प्रशस्त किया। बलबन के अथक परिश्रम का ही यह परिणाम हुआ कि दिल्ली का मुस्लिम राज्य कालान्तर में शक्तिशाली होकर दीर्घकाल तक बना रहा। बलबन को ही यह श्रेय है कि उसने अपने कार्यों व नीति से नवोदित मुस्लिम राज्य को एक नाजुक अवसर पर नष्ट होने से बचा लिया।

बलबन और इल्तुतमिश की तुलना—गुलाम वंश में इल्तुतमिश और बलबन दो ही प्रमुख शक्तिशाली सुलतान हुए हैं। सर वुल्जेहेग ने इल्तुतमिश को दास वंश का सबसे महान सुलतान माना है, पर श्रीराम शर्मा, तथा अन्य भारतीय इतिहास-कारों ने बलबन को महान स्वीकार किया। नीचे दोनों के कार्यों, नीति और

सफलता की समीक्षा व तुलना से यह स्पष्ट हो जायगा कि बलबन ही इन सुलतानों में श्रेष्ठ था।

(१) बलबन और इल्तुतमिश दोनों ही अपने प्रारम्भिक जीवन में दास थे पर अपनी प्रतिभा, कार्यक्षमता और योग्यता से पदोन्नति करते हुए सुलतान बन गये। (२) दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने और सुलतान बनने में भी दोनों ने अपने ढंग से प्रयास किये। इल्तुतमिश को आरामशाह के अयोग्य निकम्मे और असफल होने पर अमीरों ने सुलतान चुन लिया था, क्योंकि वे इल्तुतमिश की वीरता, साहस, प्रशासकीय व्यवस्था से प्रभावित हुए थे। कहा जाता था कि इल्तुतमिश ने सिंहासन को वास्तविक उत्तराधिकारी से छीन लिया था। सुलतान नासिरुद्दीन पुत्रहीन था और नासिरुद्दीन के शासनकाल में ही बलबन अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था, इसलिए सुलतान बनने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। कहा जाता है कि नासिरुद्दीन ने ही उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। (३) सुलतान बनने के पूर्व ही बीस वर्ष तक निरन्तर प्रशासन से संबंधित रहने के कारण बलबन को प्रशासन और राजनीति का पूरा अनुभव था। इल्तुतमिश के लिए ऐसे अनुभव प्राप्त करने के कोई अवसर नहीं थे और न उसे प्रशासन, सेना और राजनीति का बलबन के समान अनुभव था। (४) सिंहासनारूढ़ होने के बाद इल्तुतमिश और बलबन दोनों को ही अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अधिकांश में दोनों की ही समस्याएँ समान थीं। बलबन के सम्मुख अमीरों व सरदारों तथा विद्रोहियों के दमन की समस्या, हिन्दुओं और राजपूतों को नतमस्तक करने की समस्या, सेना के पुनर्गठन की समस्या, मेवातियों और डाकूओं की समस्या, सीमांतक्षेत्र की मंगोलों से सुरक्षा करना, आदि समस्याएँ थीं। इल्तुतमिश के सामने भी ऐसी ही समस्याएँ थीं, पर इल्तुतमिश की समस्याओं और कठिनाइयों में बलबनकालीन समस्याओं की अपेक्षा अधिक तीव्रता थी। बलबन जब सुलतान बना, तब दिल्ली सल्तनत नासिरुद्दीन के शासनकाल में स्थायित्व प्राप्त कर चुकी थी, पर इल्तुतमिश के सिंहासनारूढ़ होने के समय दिल्ली सल्तनत छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। विघटनकारी प्रवृत्तियाँ अपनी पराकाष्ठा पर थीं। जिन शृंखलाओं से दिल्ली राज्य बन्धा हुआ था वे जर्जरित होकर विशृंखलित हो चुकी थीं और यल्दौज तथा कुबैचा जैसे सशक्त प्रतिद्वन्दियों का सामना इल्तुतमिश को करना पड़ा। बलबन के लिए ऐसी कोई तीव्र समस्या नहीं थी। नासिरुद्दीन के शासनकाल में राजसत्ता बलबन के हाथों में ही होने से सिंहासनारूढ़ होने के समय बलबन की समस्याओं की अधिकता और तीव्रता इतनी अधिक नहीं थी, जितनी की इल्तुतमिश की थी। यल्दौज और कुबैचा के समान बलबन का कोई भी महत्वाकांक्षी शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी नहीं था। (५) समस्याओं के निराकरण के लिए दोनों के पास साधन थे। दोनों ही साधन-सम्पन्न दक्ष, साहसी और प्रतिभावान थे। परन्तु इल्तुतमिश में सामरिक प्रतिभा, वीरोचितगुण और सैनिक योग्यता बलबन की अपेक्षा अधिक थी। उसने सुलतान ऐबक के विजय अभियानों में सक्रिय योग दिया था और अनेक युद्धों में भाग ले अन्य राजाओं को परास्त कर दिल्ली राज्य की सीमाओं की वृद्धि की थी। बलबन में सेनापति और सामरिक प्रतिभा

का अभाव था। इसलिए वह विजय अभियानों की ओर अधिक रुचि नहीं ले सका। उसने अपनी विशाल सेना का उपयोग विद्रोहों को कुचलने में और मंगोलों के अभियानों और प्रसार के लिए किया। इल्तुतमिश ने अपने सैनिक साधनों का उपयोग प्रतिद्वन्दियों के दमन और राज्य विस्तार के लिए किया।

(६) बलबन और इल्तुतमिश दोनों को ही आन्तरिक विद्रोहों, उपद्रवों, डाके, लूटपाट और विरोधी अमीरों का सामना करना पड़ा। इन्हें कुचलने में दोनों को ही सफलता प्राप्त हुई। परन्तु दोनों की नीति में अन्तर है। इल्तुतमिश ने अपने प्रतिद्वन्दियों के दमन के हेतु चालीस गुलामों का दल संगठित किया और इसकी सहायता व सहयोग से उसने विरोधी अमीरों और सरदारों को कुचल दिया और आंतरिक विद्रोहों को कम कर दिया। पर बलबन के लिए चालीस गुलामों का यही मंडल बड़ा शक्तिशाली हो गया था, अपनी नीति व कार्यों से जागीरों और सेना के पुनर्गठन से बलबन ने इस मंडल को शक्तिहीन कर दिया। विपक्षियों और विरोधियों के विद्रोहों को, डाकुओं, उपद्रवियों और हिन्दुओं के दमन के लिए बलबन ने जिस भीषण नर-संहार और बर्बरता की नीति का सहारा लिया, इल्तुतमिश ने ऐसी दानवता की अमानवीय नीति नहीं अपनायी। बलबन विरोधी को विष देकर, जीवित अपराधी की खाल खींच कर, हाथी के पैरों से कुचलवाकर और कत्लेआम करवा कर शांति स्थापित कर सका। बलबन की शांति इल्तुतमिश की अपेक्षा दीर्घकाल तक रही।

(७) प्रशासन में दोनों ने ही अभिरुचि लेकर कार्य किये। दोनों ने ही न्याय की और प्रशासकीय सुधारों की व्यवस्था की। पर बलबन की न्याय व्यवस्था अधिक निष्पक्ष और दंड विधान इल्तुतमिश की अपेक्षा अधिक कठोर व बर्बर था। यदि इल्तुतमिश ने मुद्रा सम्बन्धी सुधार किया तो बलबन ने कुलीनता व उच्च वंश की परम्परा के आधार को प्रशासन में अपनाया, दक्ष गुप्तचर प्रथा को संगठित किया, और अधिकारियों पर कठोर नियंत्रण और निरीक्षण रखा तथा प्रशासकीय विभागों की शिथिलता दूर की। बलबन ने दृढ़ता से पतित और भ्रष्टाचारी उल्माओं और मौलवियों को प्रभावहीन कर दिया और राजनीति व प्रशासन से उन्हें अलग कर दिया। इल्तुतमिश ऐसा करने में असमर्थ था। राज्य के सुदृढ़ीकरण के लिए उसने कोई ठोस कदम नहीं उठाये। इल्तुतमिश ने ऐसे प्रशासकीय सुधार व कार्यक्षमता के काम नहीं किये। वह विजेता अधिक और संगठनकर्ता तथा प्रशासक कम था, पर बलबन विजेता नहीं था, वह कुशल प्रशासक और संगठनकर्ता ही था। लेकिन दोनों में सृजन और निर्माण की शक्ति तथा रचना की प्रतिभा नहीं थी।

(८) यदि आन्तरिक नीति और शांति स्थापना तथा प्रशासन में बलबन अधिक सफल रहा तो बाह्य नीति और सीमांत की सुरक्षा में भी बलबन ने अत्यधिक सफलता प्राप्त की। इल्तुतमिश ने सीमा की सुरक्षा के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाये और उसने कोई निर्धारित सीमान्त नीति नहीं अपनाई। इसके विपरीत बलबन ने पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा के लिए दुर्गों का सुदृढ़ीकरण किया और सैनिकों की नियुक्तियाँ की तथा एक निर्धारित सीमान्त नीति अपना कर मंगोलों के आक्रमणों का निर्भिकता और दक्षता से सामना कर देश और राज्य की सुरक्षा की।

(९) राजनैतिक दृष्टिकोण और राज वैभव में बलबन और इल्तुतमिश दोनों में ही अन्तर था। दोनों ही मुसलमानों के प्रति अधिक जागरुक और हिन्दू प्रजा के प्रति असहिष्णु और अनुदार थे। दोनों ही हिन्दुओं की उन्नति के प्रति उदासीन थे। पर बलबन की अपेक्षा इल्तुतमिश में अधिक धर्मांधता और कट्टरता थी। उसने अनेक हिन्दू मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा, और नगरों को लूट कर विध्वंस किया। इल्तुतमिश राजनीति में उल्माओं के धार्मिक प्रभाव का पोषक था, बलबन नहीं था। बलबन ने राजकीय ऐश्वर्य, दरबार के वैभव और सुलतान के पद व प्रतिष्ठा मे अधिक वृद्धि की, क्योंकि वह सुलतान के पद और राजसभा को उसकी सजधज और तड़क-भड़क को अत्यधिक महत्व देता था। बलबन की राजसभा इस्लामी जगत में विद्या, ज्ञान, संस्कृति का केन्द्र थी। पर इल्तुतमिश ने राजसभा व सुलतान के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि करने के लिए कोई कार्य नहीं किये, क्योंकि वह सैनिक और विजेता था।

(१०) यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में बलबन और इल्तुतमिश दोनों ही शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक थे, परन्तु दोनों के स्वभाव में विभिन्नता थी। इल्तुतमिश सुन्दर, सुडोल, आकर्षक आकृति का था। बलबन में शारीरिक सौन्दर्य, गठन और आकर्षण का अभाव था। इल्तुतमिश स्वभाव में विनम्र, उदार और विशाल हृदय वाला सुलतान था। बलबन में यह बातें नहीं थीं। उसमें उग्रता और अनेक बार उसके स्वभाव और कार्यों में अमानवीयता और बर्बरता प्रदर्शित हुई थी। मानवोचित करुणा और सहृदयता उसमें नहीं थी। इल्तुतमिश में उच्चवंश की कुलीनता, और वंश परम्परा की अमान्यता नहीं थी, परन्तु बलबन में इसका बाहुल्य था।

धार्मिक दृष्टिकोण में दोनों में विभिन्नता थी। दोनों ही इस्लाम के सिद्धान्तों का अनुकरण करते थे। धार्मिक क्षेत्र में इल्तुतमिश खलीफा को धार्मिक गुरु मानकर उसे अपने से श्रेष्ठ समझता था, उसने खलीफा की अधीनता मानली थी। इससे वह मुल्लाओं व मौलवियों से प्रभावित था। पर बलबन स्वतंत्र प्रभुतासम्पन्न राजतंत्र में विश्वास करता था। वह सुलतान के दैवी अधिकारों व शक्ति में दृढ़ धारणा रखता था और स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। ऐसी दशा में उसने खलीफा और उल्माओं का राजनैतिक प्रभाव नगण्य कर दिया। थोड़ी बहुत विभिन्नता और मतभेदों के होने पर भी इल्तुतमिश और बलबन दोनों ने ही नवोदित मुस्लिम राज्य को स्थायित्व प्रदान करने में अधिक योगदान दिया।

सुलतान बलबन की समस्याएँ

प्रारंभिक जीवन, उसकी कठिनाइयां व पदोन्नति

1. राजकीय कुल में जन्म
2. बसरा, दिल्ली में दास के रूप में बेचा गया
3. इल्तुतमिश की सेवा में "खास सरदार"
4. प्रतिभा व पदोन्नति 'अमीर-ए-शिकार' "अमीर-ए-हाजिब" "अमीर-ए-आखूर"
5. मंगोलों से युद्ध
6. नासिरुद्दीन का "नायब-ए-मुमालिकान"
7. षड़यन्त्रों व विरोधियों का सामना
8. बलबन के वैवाहिक संबंध, परिणाम

आन्तरिक समस्याएँ

1. राज्य में अराजकता, अशांति, भय
2. मेवातियों की लूट-खसोट, आतंक
3. अत्यधिक व्यय, रिक्त राजकोष
4. चालीस गुलामों के दल की शक्ति, षड़यंत्र
5. सशक्त विरोधी अमीर
6. मुल्ला मोलवियों का दूषित प्रभाव
7. राजपूतों का शक्ति संगठन
8. अव्यवस्थित प्रशासन
9. सुलतान के पद व प्रतिष्ठा की क्षीणता

बाह्य समस्याएँ

1. मंगोलों का प्रसार
2. मंगोलों के आक्रमण, अभियान
3. पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा

सुलतान बलबन के कार्य व सफलताएँ

शांति व्यवस्था के कार्य

1. मेवातियों का बर्बरता से दमन
2. दोआब में विद्रोहियों व डाकुओं का नाश
3. कटेहर में राजपूत विद्रोहियों का नृशंसता से दमन
4. पंजाब में लड़ाकू जातियों का दमन
5. रक्त रंजित दमन नीति व उसका प्रभाव

राजकीय शक्ति, सत्ता की वृद्धि के कार्य

1. चालीस गुलामों के दल की शक्ति का नाश, जागीरों की जांच, परिवर्तन
2. अमीरों, सरदारों की शक्ति का दमन, पदों का परिवर्तन, दंड
3. हिन्दुओं का क्रूरता से विनाश
4. तुगरिल के विद्रोह का दमन, कत्लेआम
5. राजसभा का संगठन, वैभव

सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा के कार्य

1. मंगोलों के अभियान
2. सेना का संगठन
3. दुर्गों, छावनियों की व्यवस्था
4. सैनिक अधिकारी, शेरखां सुन्कर, राजकुमार मुहम्मद
5. मंगोलों के आक्रमण युद्ध, मुहम्मद की मृत्यु
6. कैखुसरो व गाजी मलिक द्वारा सुरक्षा
7. दृढ़ सुरक्षा, सफल मंगोल नीति

सुलतान बलबन की नीति और प्रशासकीय कार्य

नीति व आदर्श

1. निरंकुश राजतंत्र
2. दैवी अधिकारों व शक्ति का सिद्धान्त
3. प्रजावत्सलता, इस्लामेत्तर भावना
4. लोह व रक्त की क्रूर नीति, नृशंसता
5. उच्च वंश परम्परा, कुलीनता की नीति
6. सुलतान के श्रेष्ठ पद व प्रतिष्ठा की भावना

प्रशासकीय कार्य

1. प्रशासन में निरीक्षण, नियंत्रण
2. साहित्यकारों, विद्वानों को आश्रय
3. सामूहिक आमोद-प्रमोद व मद्य-निषेध
4. निष्पक्ष न्याय-व्यवस्था, कठोर दंड विधान
5. सेना का पुनर्गठन, जागीरों का सर्वेक्षण, नयी भर्ती, परिवर्तन, इमादुल मुल्क
6. गुप्तचर-व्यवस्था, कठोर नियंत्रण
7. आर्थिक दृढ़ता, आय-व्यय की व्यवस्था
8. इस्लाम में धर्मनिष्ठा, मुल्ला मौलवियों का प्रभाव कम, धार्मिक संकीर्णता, "खुदा के बंदों" के प्रति उदारता व पक्षपात की भावना

सारांश

बलबन का प्रारंभिक जीवन और उसको प्रगति—**बलबन का जन्म एक राजसी परिवार में हुआ था। उसके पिता इलबरी नामक तुर्क कबीले का प्रधान था। बचपन में मंगोल उसे पकड़कर ले गये और बगदाद में उसे गुलाम के रूप में ख्वाजा-जमालुद्दीन को बेच दिया और जमालुद्दीन ने सन् १२३२ में बलबन को दिल्ली में इल्तुतमिश को बेच दिया। इल्तुतमिश ने उसे अपने निजी सेवकों में रखा और बाद में उसे "चालीस गुलामों" के मंडल का सदस्य बना दिया। यद्यपि सुल्तान रुकनुद्दीन ने उसे बंदी बना दिया था, पर रजिया ने उसे मुक्त कर उसकी पदोन्नति कर उसे "अमीर-ए-शिकार" (आखेट का प्रमुख अधिकारी) बना दिया था। रजिया के बाद सुलतान बहरामशाह ने उसे पदोन्नतकर हाँसी और रेवाड़ी की जागीर दे दी। सुल-तान मसूदशाह ने उसे "अमीर-ए-हाजिब" पद पर नियुक्त किया। सन् १२४६ में जब मंगोलों ने आक्रमण किया तब बलबन ने उन्हें पराजित कर खदेड़ दिया था। इससे उसकी शक्ति बढ़ गयी। जब बलबन ने नासिरुद्दीन को सुलतान बनाने में बड़ा योग-दिया, तब नासिरुद्दीन ने प्रसन्न होकर बलबन को उलुगखां की उपाधि दी और अपना प्रमुख परामर्शदाता बना दिया। अब बलबन नासिरुद्दीन का प्रधान मंत्री बनकर शासन**

संभालता रहा। उसने विद्रोहियों का दमन किया, मंगोलों के आक्रमणों से राज्य और सीमांत क्षेत्र की रक्षा की, अमीरों के षड़यंत्रों और विरोध को कुचलकर उनकी शक्ति का ह्रास किया तथा दिल्ली सल्तनत की अनेक आपत्तियों और संघर्ष में रक्षा की। इस प्रकार बलबन दिल्ली के नवोदित मुस्लिम राज्य का एक प्रमुख कर्णधार बन गया। सन् १२६६ में नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद बलबन स्वयं सुलतान हो गया।

सुलतान बलबन की प्रारंभिक कठिनाइयां—सुलतान बनने के बाद बलबन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनमें निम्नलिखित मुख्य थीं–(१) राज्य में अराजकता, अव्यवस्था और अशांति थी। खोखर और मेवाती लोग लूटपाट करते, हत्याएँ करते थे, और आक्रमणकारी मंगोलों की सहायता करते थे। राजपूत और कई जागीरदार रसद और राजकोष लूट लेते थे। प्रजा असुरक्षित और भयत्रस्त थी। (२) दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र में मेवाती खूब लूटपाट करते थे, बंजारों और व्यापारियों को लूटते और गांवों को नष्ट कर देते थे। उनका आतंक इतना बढ़ गया था कि दिल्ली में रात्रि में लोग घरों से बाहर नहीं निकलते थे और स्त्रियां अकेली पानी भरने नहीं जाती थीं। (३) राज्य में विद्रोहों, युद्धों और मंगोलों के आक्रमणों के कारण तथा विशाल सेना के व्यय के कारण, जागीरदारों और प्रांतपतियों द्वारा बराबर करों के न देने के कारण राजकोष रिक्त हो गया था और आर्थिक कठिनाइयां बढ़ गयी थीं। (४) चालीस गुलामों के मंडल के सदस्यों ने विघटनकारी प्रवृत्ति अपनाई, सुलतान की शक्ति की अभिवृद्धि में वे बाधक हो गये, विरोधियों के पोषक हो गये और सुलतान को अपने हाथों की कठपुतली बना दिया और उनमें परस्पर गुटबंदी हो गयी। इस मंडल के सामन्तों की बढ़ती हुई शक्ति बलबन के लिये खतरनाक थी। (५) कई शक्तिशाली सरदार और अमीर बलबन के विरोधी थे। वे अपने को दास सुलतान के समकक्ष समझते थे और सुलतान के अधिकार व नियंत्रण से स्वतंत्र होने के प्रयास करते थे। (६) मुल्ला और मौलवी राज्य में ऊँचे पदों पर होने से राजनीति और प्रशासन में बड़े प्रभावशील थे। (७) राजस्थान, बुन्देलखंड और बघेलखंड के राजपूत राज्यों ने सुलतान की सत्ता को स्वीकार नहीं किया था। वे अपने राज्यों के पुनर्गठन और शक्ति के संचय में तत्पर थे। दिल्ली राज्य के अनेक क्षेत्रों में वे विद्रोह करते और लूटपाट करते थे। (८) पंजाब, सिंध, मुलतान और पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र में मंगोल निरंतर आक्रमण कर रहे थे। इससे बलबन के लिये सल्तनत की सीमा सुरक्षा एक समस्या बन गयी थी। (९) निरन्तर युद्धों और विद्रोहों के कारण तथा उत्तरदायित्वपूर्ण विवेकशील अधिकारियों के अभाव के कारण समुचित और सुव्यवस्थित प्रशासन नहीं था। (१०) सुलतानों के दास समझे जाने से तथा निर्बल और निकम्मे सुलतानों के होने से सुलतान के पद की प्रतिष्ठा और गौरव घट गया था।

बलबन द्वारा समस्याओं का निराकरण—बलबन ने अपनी उपरोक्त समस्याओं और कठिनाइयों का निराकरण निम्नलिखित ढंग से किया—(१) मेवातियों के दमन के लिये उसने मेवातियों के शरण स्थल के सघन वनों को कटवा दिये, उसने बारह वर्ष से अधिक की आयु के मेवातियों को कत्ल करवा दिया, स्त्रियों को

दासी बनाकर बेच दिया गया, और मेवातियों के क्षेत्रों में कई सैनिक नियुक्त किये। (२) दोग्राब के विद्रोहों और डाकुओं को कुचलने के लिये बलबन ने वहाँ के वनों को काट कर वहाँ सड़कें बनादीं, विद्रोहियों के गांवों, दुर्गों और शरण-स्थलों को नष्ट कर दिया, और अनेक डाकुओं को मौत के घाट उतार दिया। यह नर संहार और विनाश कई दिन तक चलता रहा। (३) कटेहर और अमरोहा में राजपूत विद्रोहों को कुचलने के लिये बलबन स्वयं सेना लेकर गया और उस क्षेत्र के आठ नौ वर्ष के बालकों को तथा उससे ऊपर की आयु के पुरुषों को कत्ल कर दिया, छोटे बच्चों व स्त्रियों को दास बना दिया गया, उनके गांवों को विध्वंस कर दिया गया। इस दमन में भीषण रक्तपात, और अमानवीय क्रूरता का तांडव नृत्य हुआ। (४) पंजाब के नमक क्षेत्र की खूंखार लड़ाकू जातियों के विद्रोह को भी बलबन ने कुचल दिया। (५) चालीस गुलामों के मंडल के शक्तिशाली, महत्वाकांक्षी सदस्यों को कुचलने के लिये तथा तुर्की अमीरों और सरदारों की शक्ति का विनाश करने के लिये बलबन ने अपने व्यक्तिगत सेवकों और अधिकारियों का एक नवीन दल सगठित कर उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त किया, नये मुसलमान हुए उच्च पदाधिकारियों को पद-च्युत कर दिया, संदेहात्मक वंश वाले या निम्न वंश वाले अधिकारियों को भी अपने पदों से अलग कर उनके स्थान पर कुलीनवंश के तुर्कों को नियुक्त किया। दुर्बल और अयोग्य सरदारों व अमीरों को सेवा निवृत्त कर दिया, और मृत सरदारों की विधव ओं की जागीरें छीन लीं। योग्य और युवक अमीरों को ही चालीस गुलामों के मंडल का सदस्य बनाया। सरदारों और अमीरों के परस्पर हेल-मेल पर गुप्तचरों द्वारा कठोर नियंत्रण रखा गया। लोगों की दृष्टि में अमीरों और सरदारों का महत्व कम करने के लिये तथा उनकी शक्ति कुचलने के लिये बलबन ने इन्हें साधारण अपराधों के लिये भी कठोर दंड दिये, जैसे मलिक बकबक और हेबतखां को दिये गये दंड. एक प्रमुख शक्तिशाली सरदार और प्रांतपति शेरखां सुन्कर को तो बलबन ने विष देकर मरवा डाला। (६) बलबन ने हिन्दुओं के दमन के लिये उनके साथ अत्यन्त ही नृशंसता, कटुता और असहिष्णुता का व्यवहार किया तथा उन्हें कई राजनैतिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया। (७) बलबन के शासनकाल में सबसे महत्व-पूर्ण विद्रोह बंगाल के शासक तुगरिलबेग का था। तुगरिल बलबन का दास था और बंगाल के खिलजी मलिकों की शक्ति का नाश करके बलबन ने तुगरिल को उसकी वीरता, अनुभव और स्वामिभक्ति के कारण बंगाल का शासक नियुक्त कर दिया। अपने शासनकाल में तुगरिल ने अपनी विजयों से खूब शक्ति बढ़ाली थी। सन् १२७९ में बलबन के सख्त बीमार पड़ जाने से तुगरिल ने यह आशा की कि वह शीघ्र मर जायगा और परिस्थिति का लाभ उठाकर तुगरिल ने अपने आपको स्वतंत्र सुलतान घोषित कर दिया, और स्वतंत्र राजा की भांति राजछत्र, उपाधि आदि का उपयोग प्रारंभ कर दिया। बलबन ने तुगरिल के इस विद्रोह को कुचलने के लिये तीन बार सेनाएं भेजी पर तुगरिल ने इन्हें परास्त कर दिया और बलबन के कई सैनिकों और अधिकारियों को भी अपनी ओर फोड़ लिया। इस पराजय से बलबन आगबबूला हो गया और तुगरिल को कुचलने के लिये स्वयं एक विशाल सेना सहित बंगाल की

और चल पड़ा। बलबन के आगमन पर तुग़रिल अपनी राजधानी लखनौती को छोड़ कर वनों में भाग गया। बलबन ने लखनौती पर अधिकार कर लिया और तुगरिल का पीछा करते हुए पूर्व की ओर आगे बढ़ा। तुगरिल की खोज के लिये उसने अपनी सेना की छोटी-छोटी टुकड़ियों को वनों में भेजा और अन्त में शेरअंदाज मलिक मुहम्मद के नेतृत्व में भेजी गयी एक टुकड़ी ने तुगरिल को उसके शिविर सहित खोज लिया तथा उस पर आक्रमण किया। तुगरिल अश्व पर सवार होकर प्राण-रक्षा के लिये भागा, पर उसे पकड़कर कत्ल कर दिया गया। अब बलबन ने तुगरिल के सेनापतियों, सहयोगियों, पदाधिकारियों, पुत्रों, दामादों आदि को पकड़कर लखनौती के बाजार में खड़ा करके कत्ल कर दिया। इसके बाद उसने अपने पुत्र बुगराखां को बंगाल का शासक नियुक्त किया और यह हिदायत दी कि यदि उसने सुलतान के विरुद्ध विद्रोह किया और स्वतंत्र होने का प्रयास किया तो उसकी भी वही दशा होगी जो तुगरिल की हुई।

बलबन की रक्तरंजित, नर-संहार की क्रूर नीति के कारण, अन्यत्र विद्रोहों की आग नहीं भभकने पायी, बलबन की सत्ता और आतंक का इतना अधिक दबदबा बैठ गया कि बाद में किसी ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह करने का साहस नहीं किया। विद्रोहों के कुचलने से आतंरिक शांति स्थापित हो गयी और बलबन मंगोलों के आक्रमणों से सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा और प्रशासन की ओर विशेष ध्यान दे सका।

मंगोलों के आक्रमण और सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा—मंगोलों ने बगदाद के खलीफा की हत्या करके अरब और मध्य एशिया के अनेक देशों पर विजय प्राप्त करके, दिल्ली राज्य के सिंध और पंजाब पर भी अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था और अब वे दिल्ली पर आक्रमण करने को तत्पर थे। बलबन ने इन्हें रोकने के लिये निम्नलिखित प्रयत्न किये। बलबन ने इमादुलमुल्क को विशेष अधिकार देकर उसे प्रधान सैनिक अधिकारी बनाया, और एक विशाल सेना का पुनर्गठन किया। सैनिकों के वेतन में वृद्धि की गयी और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी। पश्चिमोत्तर क्षेत्र के प्राचीन दुर्गों का जीर्णोद्धार और नवीन दुर्गों का निर्माण कर वहां अनुभवी वीर सैनिक और अधिकारी रखे गये। शेरखां सुन्कर को सीमान्त क्षेत्र का शासक और सेनापति नियुक्त किया और वह मंगोलों से निरन्तर लोहा लेता रहा और उन्हें आगे बढ़ने से रोके रखा। शेरखां की मृत्यु के बाद बलबन ने अपने दोनों वीर पुत्रों को सीमान्त क्षेत्र में सेनानायक नियुक्त किये और सुरक्षा का भार उन पर सौंपा। दिल्ली में भी तीस हजार अश्वारोहियों की प्रशिक्षित सेना तैयार रखी गयी जो आवश्यकता पड़ने पर मंगोलों से युद्ध करने के लिये सीमांत क्षेत्र में भेजी जा सकती थी। जब सन् १२७९ में मंगोलों ने आक्रमण किया तब वे परास्त कर खदेड़ दिये गये। पर जब सन् १२८५ में मंगोलों ने पुनः आक्रमण किया, तब उन्हें परास्त तो कर दिया गया, पर उनसे हुए युद्ध में बलबन का प्रिय और योग्य ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद मारा गया। मुहम्मद की मृत्यु के बाद बलबन ने गाजी मलिक को मंगोलों के सैनिक अभियानों को रोकने के लिये सीमांत क्षेत्र का अधिकारी नियुक्त किया। यद्यपि बलबन पूर्ण रूप से मंगोलों का उन्मूलन कर उन पर विजय प्राप्त नहीं कर सका, परन्तु वह

उनकी सत्ता और शक्ति अवश्य ही कम कर पाया और मंगोलों से वह दिल्ली सल्त-नत की रक्षा कर सका।

बलबन का शासन-प्रबंध—विद्रोहों और मंगोलों के आक्रमणों का सामना करने के साथ-साथ बलबन ने प्रशासन की ओर भी ध्यान दिया। उसने अर्द्ध नागरिक और अर्द्ध सैनिक तथा निरंकुश स्वेच्छाचारी राजतंत्र स्थापित किया। उसने राज्य के समस्त अधिकार और सत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर लिये। उसके शासन में विकेन्द्रीकरण और प्रांतपतियों के लिये अधिकार विभाजन नहीं था। बलबन सुलतान के दैवी अधिकारों में विश्वास करता था। उसकी धारणा थी कि सुलतान ईश्वर का प्रतिनिधिस्वरूप है और उसके कार्यों द्वारा ईश्वरीय मर्यादा लक्षित होती है। यद्यपि बलबन निरंकुश था, पर उसमें प्रजा-वत्सलता की भावना थी। परन्तु उसकी प्रजा हित की भावना केवल उसकी मुस्लिम प्रजा तक ही सीमित थी। उसका दृढ़ विश्वास था कि खुदा ने उसे अपने कुछ चुने हुए बंदों (मुसलमानों) को ही सुख पहुंचाने के लिये भेजा है। काफिरों (हिन्दुओं) के विनाश, मूर्ति भंजन और इस्लाम के विपक्षियों के मूलोच्छेदन में तथा इस्लाम के प्रसार में वह विश्वास करता था।

निरंकुश राजतंत्र और अनियंत्रित सत्ता के कारण बलबन ने लोह और रक्त की नीति अपनाई। वह ताकत और तलवार में विश्वास करता था। उसने अपने विपक्षियों, विरोधियों का दमन इतनी क्रूरता और नृशंसता से किया कि अनेकों की खालें खिचवालीं, कई व्यक्तियों को कत्लेआम कर दिया। शांति स्थापित करने के लिये ऐसा करना आवश्यक था। बलबन के समय निर्बल, निकम्मे सुलतानों के कारण सुलतान की स्थिति एक साधारण सामन्त-सी हो गयी थी। इसे दूर करने और अपनी तथा सुलतान के पद, प्रतिष्ठा और गौरव में वृद्धि करने के लिये बलबन ने सुलतान की आज्ञाएँ न मानने वालों को कठोर दंड देना प्रारम्भ कर दिये, स्वयं अपने को प्रसिद्ध तूरानी शासक अफरासियान का वंशज घोषित कर दिया, उसने स्वयं नियमों और अनुशासन का पालन कठोरता से किया, दैनिक जीवन में शिष्टाचार और गंभीरता अपनाली, उसने स्वयं मद्यपान त्याग दिया और अमीरों में मद्यपान निषिद्ध कर दिया। उसने शासन में ऊँचे कुलीन व्यक्तियों को ही ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। वह निम्न श्रेणी के तुच्छ व्यक्तियों से न तो वार्तालाप करता था, न उनके सहवास में रहता था और न उन्हें प्रशासन में रखता था। उसने अपनी राजसभा का विशेष रूप से संगठन किया। उसने अपने लिये ऐसे भयानक हृष्ट-पुष्ट अंगरक्षक नियुक्त किये जिनके हथियारों और तलवारों की चमक से आंखें चकाचोंधिया जाती थी। वह राज-सभा में बहुमूल्य सुन्दर राजसी वेशभूषा पहिनता था। दरबारियों के लिये भी निश्चित वेशभूषा थी। वह राजसभा में न तो स्वयं सुरापान करता था और न हंसता था तथा दूसरों को भी ऐसा नहीं करने देता था। उसने अपने दरबार में सिजदा और पैबोस की प्रथा प्रारंभ की। वह अनेक दरबारियों को राजसभा में खड़ा रखता था। वह प्रशासन के सभी कार्यों को स्वयं देखता था और अधिकारियों का निरीक्षण कर उन पर नियंत्रण रखता था। वह स्वयं विद्वान और विद्यानुरागी था। मध्य एशिया के अनेक विद्वानों और कवियों व लेखकों को उसने अपनी राजसभा में प्रश्रय दिया था।

कवि खुसरो और हसन उसकी राजसभा को अलंकृत करते थे। नैतिक स्तर ऊँचा करने के लिये बलबन ने मदिरा के क्रय-विक्रय को नियमित और नियंत्रित कर दिया था। सामन्तों में सामूहिक सुरापान व आमोद-प्रमोद निषिद्ध बना दिया। बलबन ने कठोर और निष्पक्ष न्याय-व्यवस्था की। वह न्याय के सामने पद व वंश का, अमीर व गरीब का, ऊँच-नीच का ध्यान नहीं रखता था। अपराध करने पर उसने बड़े से बड़े अधिकारियों को दंडित किया। बदायूं के हाकिम बकबक और अवध के शासक हेबतखां को दिये गये दंड इसके उदाहरण हैं। निष्पक्ष न्याय-व्यवस्था और कठोर दंड-विधान से बलबन की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी तथा अपराधों व उपद्रवों में कमी हुई। बलबन ने अपने कठोर प्रशासन से राजकोष की रिक्तता को दूर किया, कर वसूल कर धन एकत्रित किया, राजकीय आय की वृद्धि करने के उसने कई प्रयत्न किये। बलबन की धार्मिक नीति पक्षपातपूर्ण थी। वह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करता था, तथा कुरान व इस्लाम के नियमों का पालन करता था एवं नियमानुसार नमाज पढ़ता था। वह धर्मनिष्ठ मुसलमान था। उसने उलमाओं को राजनीति और प्रशासन से अलग कर दिया। पर उसमें धार्मिक संकीर्णता थी। वह हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त ही असहिष्णु था और क्रूरता व नृशंसता से उनकी शक्ति व उपद्रवों का दमन किया।

सेना का पुनर्गठन और गुप्तचर व्यवस्था—बलबन ने सेना में व्याप्त दोषों को दूर कर उसे सुसंगठित किया। सैनिकों और सेना अधिकारियों को दी गयी जागीरों की उसने जांच करवायी और इसके आधार पर उसने सैनिक सेवाओं के लिये दी गयी जागीरें जप्त करलीं, वयस्क और योग्य व्यक्तियों को सेना में रखकर उन्हें नगद वेतन दिया, स्वर्गवास हुए सैनिकों व पदाधिकारियों की विधवाओं के लिये पेंशन की व्यवस्था की, अशक्त और वृद्ध सैनिकों को उनके जीवनभर के लिये जागीर भूमि के उपयोग करने की आज्ञा दे दी। आवश्यकतानुसार उसने पदाति और अश्वारोही सैनिक भरती किये और उन्हें जागीर देने की अपेक्षा नगद वेतन दिया। उसने सैनिक अधिकारियों में परिवर्तन किये और इमादुलमुल्क को सेना का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त किया तथा उसके अधिकार बढ़ा दिये। उसने सेना में कई सुधार किये। सैनिकों के अस्त्र-शस्त्रों और प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी। दुर्गों का सुदृढ़ीकरण किया गया, और सीमांत क्षेत्र तथा सैनिक छावनियों में प्रशिक्षित वीर व अनुभवी सैनिक रखे। जागीरदारों व अमीरों की शक्ति नष्ट करने, हाकिमों और अधिकारियों पर नियंत्रण रखने, प्रशासन व विद्रोहों संबंधी सूचनाओं, आदेशों आदि के आदान-प्रदान के लिये बलबन ने दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था संगठित की। उसने खास चुने हुए कुशल स्वामिभक्त और राजभक्त गुप्तचरों का जाल राज्य में बिछा दिया, उन्हें अच्छा वेतन देकर अपने ही प्रति उत्तरदायी रखा। अयोग्य, विश्वासघाती और ठीक सूचना न देने वाले गुप्तचरों को उसने कठोर दंड भी दिये।

बलबन का चरित्र एवं उसका मूल्यांकन—(१) बलबन स्वेच्छाचारी, निरंकुश तथा दैवी अधिकार के सिद्धान्त में विश्वास करने वाला सुलतान था। उसने निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की। (२) इसके लिये तथा विद्रोहों, उपद्रवों को कुचलने के लियेएवं शांति-व्यवस्था स्थापित करने के लिये बलबन ने लोह और रक्त की

नीति अपनाई। उसने इतनी निर्दयता और नृशंसता से अपराधियों को दंड दिया कि उसके दंड में अमानवीयता, दानवता और बर्बरता आ गयी थी। पर इस नीति से उसे सफलता मिली और ऐसी दृढ़ लोह नीति युग की मांग भी थी। (३) बलबन अपने व्यक्तिगत जीवन में सहृदय और दयालू था। वह अपने परिवार के सदस्यों, पुत्रों और संबंधियों से अपार स्नेह करता था। उसका पुत्र-प्रेम और पुत्र की मृत्यु पर उसका शोक और रुदन प्रसिद्ध है। वह निराश्रितों को सहायता देकर उनके प्रति भी दयालू और उदारता का व्यवहार करता था। (४) दास वंश के सुलतानों में बलबन एक सुयोग्य और कुशल प्रतिभाशाली सम्राट था। इसका प्रमाण यह है कि वह दास के निम्नस्तर से पदोन्नति करते-करते प्रधानमंत्री बन गया और बाद में सुलतान। इल्तुतमिश द्वारा जीते हुए विस्तार किये हुए राज्य को सुव्यवस्थित कर उसकी रक्षा करने क श्रेय बलबन को है। उसकी सीमान्त नीति, और सीमान्त क्षेत्रों की सुरक्षा, उसकी कठोर न्याय व्यवस्था, राजसभा का संगठन और सम्राट के पद और प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करने के अनेक उपाय बलबन की मौलिक प्रतिभा के उदाहरण हैं। (५) बलबन कुशल शासक भी था। उसने अपनी नीतियों और कार्यों द्वारा शासन को संगठित और सुदृढ़ बनाया और अपने पूर्व के सुलतानों द्वारा निर्मित और विस्तारित राज्य के खोखलेपन को दूर कर दिया। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों और अधिकारियों का निरीक्षण और उन पर कठोर नियंत्रण, और दंड, उसकी गुप्तचर प्रथा और निष्पक्ष कठोर न्याय व्यवस्था, राजसभा में उसका कठोर नियंत्रण, अनुशासन व गंभीरता, मद्य-निषेध, उच्चकुलीन व्यक्तियों को प्रशासन में ऊंचे पद, आदि उसके अच्छे शासन प्रबंधक होने के प्रमाण हैं। पर उसमें प्रशासकीय रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था और उसमें नवीन क्रांतिकारी नीतियों को अपनाने की क्षमता नहीं थी। यद्यपि वह प्रशासन में सजग रहा, पर उसके प्रशासन में मानवोचित करुणा, सहानुभूति और प्रेम का अभाव था। (६) बलबन एक योग्य सैनिक और कुशल सेनापति था। विद्रोहों का दमन, मंगोलों के आक्रमणों से सुरक्षा, सैनिक सेवाओं और सेना का पुनर्गठन, आदि उसकी सैनिक प्रतिमा का परिचय देते हैं। पर उसमें सामरिक प्रतिभा नहीं थी। विशाल सेना होने पर भी दिग्विजय उसकी नीति नहीं थी, उसकी नीति आक्रमक नहीं, रक्षात्मक थी। (७) बलबन चरित्रवान एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति था। उसने मदिरापान और विलासमय महफिलों को त्याग दिया था। इबादत, नमाज और ईश्वर के अस्तित्व में वह विश्वास करता था और इस्लाम धर्म के अनुसार पवित्रता से अपना जीवन व्यतीत करता था। इस्लाम के संतों, विद्वानों और मुल्ला मौलवियों के सत्संग में उसे अधिक रुचि थी और उनका बड़ा सम्मान करता था। पर वह शियाओं, ब्राह्मणों, हिन्दुओं और भारतीय मुसलमानों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था। (८) बलबन साहित्य और विद्या का अनुरागी होने से, बड़े-बड़े खान, मलिक, प्रतिष्ठित विद्वान, कवि, राजकुमार, आदि उसकी राजसभा में रहते थे, विशेषकर मध्य-एशिया से भाग कर आये हुए विद्वान और साहित्यकार। उसकी राजसभा इस्लामी विद्या, ज्ञान और संस्कृति का केन्द्र स्थल था। गुलाम वंश के सुलतानों में बलबन का स्थान सर्वोपरि माना गया है। बलबन ने जिस शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया

वह कुछ वर्षों बाद अलाउद्दीन खिलजी के समय भारत का एक छत्र राज्य बन गया। बलबन ने अपनी नीति और कार्यों से अलाउद्दीन खिलजी के दृढ़ निरकुंश सैनिक शासन और साम्राज्यवाद का मार्ग प्रशस्त किया। बलबन द्वारा प्रारम्भ किये गये अनेक सैनिक और प्रशासकीय कार्य अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने पूर्ण किये और तत्संबंधी नीतियां अपनायी। इसीलिय बलबन को अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक का अग्रज या अग्रगामी माना गया है।

———

अध्याय ११

सुलतान कैकुबाद् (सन् १२८७–८६) व दासवंश का अन्त

कैकुबाद का राज्यारोहण—अपनी मृत्यु के पूर्व सुलतान बलबन ने अपने प्रिय एवं ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था और उसका यह निर्णय सर्वथा उपयुक्त भी था। कैखुसरो तत्कालीन राजकुमारों में अधिक योग्यतम और गुण संपन्न था। परन्तु बलबन के देहावसान के पश्चात् अमीरों और सरदारों में उत्तराधिकार के प्रश्न पर मत-भेद हो गया और दो दल हो गये। एक दल का नेता दिल्ली का कोतवाल मलिक फखरुद्दीन था और दूसरे दल का नेता हसनबसरी था। फखरुद्दीन ने बलबन के पुत्र बुगरा खाँ, के जो बंगाल का शासक था पुत्र कैकुबाद का और हसनबसरी ने राजकुमार मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो का पक्ष लिया। फखरुद्दीन और उसके साथियों ने अपने-अपने पक्ष के लिए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये—

(i) बुगराखा बंगाल का एक सशक्त शासक है और यदि उसके पुत्र कैकुबाद को सुलतान बना दिया जायगा तो वह शांत और प्रसन्न हो जायगा, अन्यथा वह दिल्ली सल्तनत पर अधिकार करने का प्रयास करेगा और तब सल्तनत संकटाछन्न हो जायगी।

(ii) यदि कैखुसरो को सुलतान बनाया गया तो बुगराखां उसका घोर विरोध करेगा और इस प्रकार गृह-युद्ध प्रारम्भ हो जायगा जो घातक होगा।

(iii) कैकुबाद मौलवियों और गुरुजनों के स्वस्थ वातावरण में रहने से बड़ा ही चरित्रवान, सहृदय तथा शीलवान था। इसके विपरीत कैखुसरो उग्र प्रकृति का व्यक्ति था और वह सुलतान बनने के अयोग्य था।

(iv) कैकुबाद बलबन के देहावसान के समय राजधानी में उपस्थित था और ऐसी दशा में उसे सुलतान बना लेना अधिक हितकर था।

कैखुसरो के समर्थकों ने इसका विरोध किया और उन्होंने कैखुसरो का समर्थन इस तर्क से किया कि (i) बलबन ने उसे स्वयं अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था और (ii) उसमें अनेक सद्गुण और सामरिक प्रतिभा थी। परन्तु फखरुद्दीन ने षड़यत्र करके अपने साथियों को सशक्त करके कैकुबाद को दिल्ली का सुलतान बना दिया। राज्यारोहण के समय कैकुबाद की आयु सत्रह वर्ष की थी।

कैकुबाद की प्रतिक्रिया—कैकुबाद स्वयं बड़ा सुन्दर और सरल प्रकृति का युवक था। बलबन ने स्वयं अपने निरीक्षण में उसका लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की थी। प्रारम्भ से ही बलबन ने उसकी पवित्रता और सद्चरित्रता पर अधिक बल

दिया। राजकुमार कैकुबाद को कभी सुरापान नहीं करने दिया गया और न उसे लावण्यमय युवतियों के सम्मुख या सहवास में रखा गया। विलासप्रिय कामुक जीवन से वह दूर रहा। उसके शिक्षकगण उसे अच्छी कलाओं की शिक्षा देते थे। वह सदा मौलवियों और गुरुजनों से घिरा हुआ उनके उपदेश सुनता रहता था। परन्तु राज्यारोहण और सुलतान बनने के शीघ्र बाद ही कैकुबाद ने इन श्रेष्ठ शिक्षाओं को विस्मरण कर दिया और वह विलासिता में लिप्त हो गया। सुलतान पद के वैभव एवं ऐश्वर्य ने उसकी आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करदी और वह शाही विलासिता में निमग्न हो गया। सुलतान कैकुबाद ऐसा विलासी और भ्रष्ट चरित्र हो गया तथा शराबी होकर दुश्चरित्र स्त्रियों के संघर्ष में इतना अधिक फंस गया था कि वह राज्यकार्यों की उपेक्षा करने लगा। इस नाच-रंग और विलासिता में सभी अमीर, सरदार खुले तौर पर सम्मिलित होते और राजदरबार नाच गाने और सुरापान की महफिल बन गया। बलबनकालीन राजसभा के समस्त तौर-तरीके और अनुशासन जिनसे अमीर व सरदार सुलतान के प्रभाव मे रहते थे, समाप्त हो गये और सुलतान अमीरों की कठपुतली बन गया। फलतः शासन की बागडोर कोतवाल फखरुद्दीन के भतीजे व दामाद मलिक निजामुद्दीन ने अपने हाथों में ले ली।

निजामुद्दीन का षड्यंत्र और उसके कुकृत्य—मलिक निजामुद्दीन दिल्ली का न्यायाधीश और वकील-ए-दर था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी, चालाक और उद्धत प्रकृति का व्यक्ति था। वह अवसर पाकर असंयमित शराबी कैकुबाद का वध करके स्वयं दिल्ली का सिंहासन हड़पकर सुलतान बनना चाहता था। इसलिए उसने अपने विरोधियों और प्रतिद्वन्दियों को अपने मार्ग से अलग कर उनका अंत करना चाहा। उसने सर्वप्रथम सुलतान कैकुबाद को अपने प्रभाव में ले लिया और उसे सुरा तथा सुन्दरी में लिप्त कर दिया।

(i) उसका सबसे बड़ा विरोधी कैखुसरो था जिसे निजामुद्दीन के विपक्षी सुलतान बनाना चाहते थे क्योंकि वह अपने पिता के समान ही बड़ा प्रतिभाशाली और योग्यतम था। निजामुद्दीन ने सुलतान कैकुबाद के कान भरे और कैखुसरो की हत्या के लिये षड़यंत्र रचा गया। कैखुसरो जो पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र में मुलतान में सूबेदार के रूप में रह रहा था, सुलतान द्वारा दिल्ली बुलवाया गया और मार्ग में जब वह रोहतक पहुँचा तब उसकी हत्या कर दी गयी। राजकुमार कैखुसरो की इस हत्या और कुकृत्य से अनेक अमीर और सरदार अप्रसन्न हो गये, वे अपने जीवन के लिये सशंकित हो गये और उन्हें अपने जीवन की सुरक्षा का विश्वास न रहा।

(ii) कैखुसरो की मृत्यु के बाद निजामुद्दीन ने सुलतान के वजीर ख्वाजा खाजीर पर यह मिथ्या दोषारोपण किया कि वह कैखुसरो से पत्र व्यवहार कर रहा था और फलतः उसे गधे पर बिठाकर दिल्ली नगर की सड़कों पर घुमाकर, उसका बड़ा अपमान कर, राजधानी से बहिष्कृत कर दिया।

(iii) निजामुद्दीन ने अपनी पत्नि को सुलतान के राजभवन में निवास करने और राजमहल मे सुलतान और उसके रनवास को अपने वश में कर प्रभावित करने के लिये भेज दिया। राजमहल से बाहर निजामुद्दीन स्वयं सब संभाल रहा था।

(iv) विदेशी अमीरों और सरदारों पर उसने राजद्रोह का अपराध लगाकर, उनके नेताओं की हत्या करवाकर, उनके शवों को नदी में फेंक दिया गया, अनेक प्रमुख अमीरों को निष्कासित कर दिया गया और उनकी संपत्ति छीन ली गयी। उनके रिक्त स्थानों पर निजामुद्दीन ने अपने समर्थकों को नियुक्त किया। इस प्रकार बलबनकालीन अनेक स्वामीभक्त अमीरों को मरवा दिया गया।

(v) इसी समय गजनी के मंगोल नेता तमरखां के नेतृत्व में मंगोलों ने पंजाब पर आक्रमण किया और लाहोर को लूट लिया। पर बलबन द्वारा की गयी प्रशिक्षित और सशक्त सेना ने उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया। इस आक्रमण का लाभ उठाकर निजामुद्दीन ने सुलतान को यह विश्वास दिला दिया कि दिल्ली के समीप बसे हुए, इस्लाम धर्म को अपनाने वाले मंगोलों ने विदेशी आक्रमणकारी मंगोलों से पत्र-व्यवहार किया था। इसलिये उसने उन पर विश्वासघात का आरोप लगाकर सुलतान से उनके वध की आज्ञा प्राप्त करली। इसके बाद बहुत बड़ी संख्या में बिना अपराध प्रमाणित हुए ही निजामुद्दीन ने इन निर्दोष मंगोलों की हत्या करवादी।

राजसभा में अमीरों के दो दल—इस समय राजसभा राजनीति और प्रशासन में अमीरों और सरदारों के दो दल बन गये थे, एक खिलजी अमीरों का दल और दूसरा तुर्क अमीरों का दल। खिलजी तुर्कों के विपक्षी और प्रतिद्वंदी थे। उनका नेता जलालुद्दीन फिरोज खिलजी था। तुर्की अमीरों के दल का अग्रणी स्वयं निजामुद्दीन था। दोनों ही दल परस्पर एक दूसरे को नीचा दिखाने और अपनी शक्ति और संगठन को सुदृढ़ करने का प्रयत्न करते थे। परन्तु खिलजी अमीरों का प्रभाव और उनकी शक्ति अधिक थी। वे निजामुद्दीन के मार्ग में बाधक थे। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए (स्वयं सुलतान बन जाना) निजामुद्दीन ने खिलजी अमीरों का विध्वंस करने का दृढ़ संकल्प किया।

इसी बीच निजामुद्दीन के कुकृत्यों, हत्याओं, दुष्ट व्यवहार से अनेक अधिकारी और अमीर उसके विरोधी और आलोचक हो गये थे। उसके श्वसुर फखरुद्दीन ने उसे समझाया और चेतावनी भी दी पर उसने फखरुद्दीन के परामर्श पर ध्यान नहीं दिया और खिलजी अमीरों के दमन का निश्चय कर लिया।

निजामुद्दीन का प्रशासन—निजामुद्दीन योग्य और सफल शासक था। वह दृढ़ केन्द्रीय सत्ता में विश्वास करता था। अपने शासन में उसने केन्द्रीयकरण के सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन किया और उसने केन्द्रीय सरकार की प्रभुता तथा प्रतिष्ठा को बनाये रखने का प्रयत्न किया। बलबन के समान ही दृढ़ केन्द्रीय राजतंत्र में उसका दृढ़ विश्वास था। जिस किसी ने केन्द्रीय सत्ता की और निजामुद्दीन की उपेक्षा की, उसे निजामुद्दीन ने कठोर दंड देकर नत-मस्तक किया। इस प्रकार वह सल्तनत को संगठित और सुव्यवस्थित रखने के लिये सदैव सतर्क और सजग था। परन्तु उसका लक्ष्य स्वयं सुलतान बनने का था। प्रशासन को दृढ़ करने के लिये उसने जो कुछ भी किया, वह इसी स्वार्थ से प्रेरित होकर किया। उसकी इस स्वार्थ लोलुपता ने उसके प्रशंसनीय प्रशासकीय कार्यों की महत्ता कम करदी। उसकी क्रूर नीति व कुकृत्यों से सभी असन्तुष्ट हो गये और सभी उससे घृणा करने लगे।

बुगराखां और कैकुबाद की भेंट और बुगराखां द्वारा सुधार का प्रयास—कैकुबाद के पिता बुगराखां ने सुलतान नासिरुद्दीन का विरुद धारण कर बंगाल में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली। यद्यपि बुगराखां अपने पुत्र कैकुबाद के सुलतान होने पर प्रसन्न हुआ था, पर वह स्वयं उसके अधीन रहकर बंगाल का शासक नहीं बनना चाहता था। इसलिये उसने दिल्ली सल्तनत से अपनी स्वतन्त्रता घोषित करदी। परन्तु वह दिल्ली की घटनाओं का बड़ी सतर्कता से अवलोकन कर रहा था और कैकुबाद की विलासप्रियता तथा अकर्मण्यता से उद्विग्न होकर दिल्ली की राजनीति में हस्तक्षेप करना चाहता था। उसने कैकुबाद को पत्रों द्वारा परामर्श देकर अपने दैनिक जीवन और आचरण को सुधारकर परिस्थिति को संभालने के लिये लिखा। पर जब कैकुबाद पर इसका कोई प्रभाव नहीं गिरा, तब निजामुद्दीन के कुचक्रों का अन्त करने और कैकुबाद को सद्परामर्श देकर उसे सन्मार्ग पर लाने के लिये, बुगराखां ने अपनी सेना सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

बुगराखां के आगमन से निजामुद्दीन शंकित हो गया और उसे अपनी शक्ति व सत्ता छीन जाने का भय हो गया। इसलिये उसने यह प्रगट किया कि बुगराखां दिल्ली पर अधिकार करना चाहता है। इसलिये सुलतान की सेना और बुगराखां की सेना में संघर्ष हो जाय और सुलतान तथा उसका पिता बुगराखां दोनों की परस्पर भेंट भी न हो। पर कैकुबाद स्वयं अपने पिता से किसी भी प्रकार से संघर्ष करने को तत्पर नहीं था। तब निजामुद्दीन ने यह शर्त रखी कि बंगाल का शासक बुगराखां दिल्ली सुलतान के अधीन है। इसलिये उसे सुलतान से भेंट करते समय सभी राजविधियों को संपन्न करना चाहिये। बुगराखां ने इसे स्वीकार कर लिया। सरयू नदी के तट पर दोनों के सम्मेलन की शाही व्यवस्था की गयी। सुलतान के दरबार के प्रवेश द्वार पर बुगराखां अपने अश्व पर से उतर पड़ा और तीन बार भूमि का चुम्बन करके तथा राजसभा के नियमों के अनुकूल कार्य करने के बाद उसने राजसभा में विधिवत् प्रवेश किया। कैकुबाद अपने पिता को नतमस्तक अधीनस्थ शासक के समान आते देखकर पितृभक्ति व स्नेह से द्रवित हो गया और स्वयं सिंहासन पर से नीचे उतर कर पिता से मिला और उसके चरणों पर गिर पड़ा। बुगराखां ने उसे उठाकर आलिंगन किया। दोनों के हृदय में स्नेह-भाव उमड़ पड़े और अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। बुगराखां ने कैकुबाद को सिंहासन पर बिठाकर एक प्रांतीय शासक की भांति उसका अभिनन्दन किया। अंतिम भेंट और प्रस्थान के पूर्व बुगराखां ने कैकुबाद को सच्चरित्र बनने, स्थिति को स्वयं संभालने, प्रशासन की ओर ध्यान देने तथा निजामुद्दीन के चंगुल से मुक्त होने का परामर्श दिया। इस मिलन के बाद कैकुबाद दिल्ली लौट आया।

निजामुद्दीन की हत्या—यद्यपि कैकुबाद कुछ समय तक अपने पिता के परामर्श को मानता रहा, पर दिल्ली में उसने पुनः सुरा, सुन्दरी और विलास का दौर प्रारम्भ कर दिया। पर जब वह सचेत हुआ तो उसे अपने पिता के परामर्श का स्मरण आया और उसने निजामुद्दीन को दिल्ली से बाहर जाकर मुलतान का शासन सम्भालने के आदेश दिए। पर महत्वाकांक्षी निजामुद्दीन वहाँ जाने में टालमटोल करने लगा।

इसी बीच निजामुद्दीन के विपक्षियों को सुलतान के आदेश और धारणाओं का पता लग गया और उन्होंने निजामुद्दीन को विष दे कर उसकी हत्या कर दी।

अमीरों का षड़यन्त्र और कैकुबाद का वध—निजामुद्दीन की हत्या से घबराकर अनेक तुर्क सरदार दिल्ली में एकत्रित हो गए। खिलजी अमीरों ने भी अपना संगठन दृढ़ कर लिया। उनका नेता जलालुद्दीन खिलजी जो समाना में था, सुलतान द्वारा दिल्ली बुला लिया गया और उसे बरन का हाकिम तथा आरिज-ए-मुमालिक (प्रमुख सैनिक अधिकारी) नियुक्त किया गया। खिलजियों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव का तुर्क अमीर और उनके नेता कच्छन और सुर्खा सहन नहीं कर सके। उन्होंने जलालुद्दीन खिलजी और उसके समर्थक खिलजी सरदारों का वध करने का षड़यन्त्र रचा। इसी बीच सुलतान कैकुबाद को पक्षाघात हुआ और वह रोगग्रस्त हो गया तथा प्रशासकीय कार्य करने में असमर्थ हो गया। जब जलालुद्दीन को षड़यंत्र का पता चला, तब उसने कच्छन का वध कर दिया और राजमहल पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण और संघर्ष में तुर्कों का नेता सुर्खा तथा अन्य सरदार मारे गए। जलालुद्दीन ने कैकुबाद के अवयस्क पुत्र कैमूर्स को सिंहासन पर बैठा दिया। इसी बीच एक खिलजी सैनिक अधिकारी ने कैकुबाद के राजभवन में प्रवेश कर उसे ठोकर मार-मार कर मार डाला और उसके शव को यमुना नदी में फेंक दिया।

इसके बाद जलालुद्दीन ने बलबनवंशीय मलिक छज्जू को और बाद में दिल्ली के कोतवाल मलिक फखरुद्दीन से शिशु सुलतान कैमूर्स का संरक्षक बनने का अनुरोध किया। पर जब उन्होंने इसे अस्वीकार किया तब जलालुद्दीन स्वयं संरक्षक हो गया और कुछ समय पश्चात् ही उसे कारावास में डाल दिया गया जहाँ उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी और इसके बाद जलालुद्दीन स्वयं सुलतान हो गया।

इस प्रकार तुर्की सरदारों की पराजय हुई और अन्ततः उन्हें खिलजियों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार सन् १२९० में गुलाम वंश का अन्त हो गया और दिल्ली सल्तनत पर खिलजियों का अधिकार हो गया। दिल्ली में एक नवीन राज्यवंश का उदय हुआ जो इतिहास में खिलजी वंश के नाम से प्रख्यात है।

दास वंश के पतन के कारण

दिल्ली में सन् १२०६ से १२९० तक दासवंश ने शासन किया। एक सदी के भीतर ही उसका अन्त हो गया। उसके इस अल्पकालीन पतन के निम्नलिखित कारण हैं।

(१) **दासवंश के सुलतानों का विदेशी होना**—दासवंश के तुर्क सुलतान और उनके समर्थक तुर्क सरदार भारत में विदेशी माने जाते थे। हिन्दू जनता, उनके शासक और राजपूत नरेश उन्हें विदेशी और म्लेच्छ मानते थे। हिन्दू-मुस्लिम सामंजस्य की भावना अभी तक उत्पन्न नहीं हुई थी। सल्तनत के इसी विदेशीपन को तत्कालीन इस्लामी शासन-व्यवस्था ने और भी अधिक गहन कर दिया था। सुलतानों की प्रशासन-व्यवस्था, भारतीय होने की अपेक्षा विदेशी थी जो कुरान पर आधारित थी। इस प्रशासन के सिद्धान्त भारतीय न होकर गजनी, गोर, बगदाद और ईरान से लिए गए

थे। फलत: इस विदेशी प्रशासकीय व्यवस्था और उसके सिद्धान्तों को भारत में विस्तृत रूप में प्रचलित करना दुष्कर कार्य था और विदेशीपन के कारण भारतीय सदैव दृढ़ता से उनका घोर विरोध करते थे। इससे इस दिल्ली सल्तनत को जनसाधारण का वह सहयोग और सद्भावना नहीं प्राप्त हुई जो किसी राज्य के स्थायित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(२) **निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन**—दास सुलतानों का शासन स्वेच्छाचारी निरंकुश और अनियंत्रित था। ऐसे शासन और एक छत्र राजतन्त्र का आधार सुलतान का व्यक्तित्व, योग्यता और सैनिक शक्ति होती थी। इस आधार के अभाव में शासन पतन की ओर अग्रसर होता था। यदि सुलतान योग्य, प्रतिभाशाली होता तो वह सैनिक शक्ति से विस्तृत राज्य को, प्रशासन के भार को वहन कर लेता और शासन सम्भाले रहता, परन्तु अयोग्य और निकम्मे सुलतान के रूप में इस निरंकुश शासन का प्रचलन सर्वथा असम्भव हो जाता। इल्तुतमिश के देहावसान के बाद अनेक निकम्मे और अयोग्य सुलतान आये। जिनमें निरंकुश शासन व स्वेच्छाचारी राजतन्त्र बनाये रखने की क्षमता नहीं थी। उनके शासनकाल में पारस्परिक संघर्ष, विरोध और विद्रोहों ने अपना नग्न तांडव-नृत्य किया। फलत: साम्राज्यका पतन प्रारम्भ हो गया।

इसके अतिरिक्त दासवंश के सुलतानों ने प्रशासन को सुधारने का कोई भी प्रयास नहीं किया। उनमें रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था। इसलिए, बलबन के अतिरिक्त किसी भी सुलतान ने न तो प्रशासन में रुचि लेकर उसके सुधारने की ओर ध्यान ही दिया और न प्रशासन संबंधी कोई सृजनात्मक कार्य ही किये। इससे साम्राज्य सुव्यवस्थित और संगठित न हो पाया और संघर्षों, षड़यन्त्रों और अराजकता का वोलबाला हो गया। परिणामस्वरूप सल्तनत पतन की ओर अग्रसर हुई और बलबन के अयोग्य, विलासी और निकम्मे उत्तराधिकारी के शासनकाल में तो उसका अन्त ही हो गया।

(३) **सैनिक शक्ति और दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव**—नव स्थापित तुर्की सल्तनत का आधार सैनिक शक्ति और राज्य में दृढ़ केन्द्रीय सत्ता था और यह दीर्घ काल तक स्थायी नहीं रह सका। उस युग में तलवार और ताकत निर्णायक मानी जाती थी। जो सुलतान योग्य और बलशाली होकर सेना और शक्ति का समुचित उपयोग कर सकता था, वही सफल होता था। अनेक असमर्थ, विलासी और निकम्मे सुलतानों के हाथ में सत्ता आ जाने से, वे शक्ति के उपयोग में असमर्थ रहे और राज्य सत्ता उनके हाथों से छिन गयी तथा साम्राज्य का पतन हो गया।

सैनिक शक्ति के साथ-साथ केन्द्र को भी जहाँ सुलतान रहता हो और प्रशासन और सत्ता का प्रमुख स्थान हो, दृढ़ और शक्तिशाली बनाना परम आवश्यक है। उस युग में केन्द्र के प्रधान सुलतान के हाथ में प्रशासन और सत्ता की सम्पूर्ण बागडोर रहती थी। सैनिक शक्ति पर आधारित राज्य के लिए केन्द्र के प्रधान व्यक्ति सुलतान में असाधारण योग्यता और प्रतिभा होना अनिवार्य थी। जब कभी ऐसा नहीं हुआ तो दिल्ली राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। दिल्ली राज्य विशाल होनेके कारण,

दूरस्थ प्रान्त लाहोर, बंगाल, मुलतान, सिंध आदि के प्रान्तपति और शासक, केन्द्रीय सत्ता के दुर्बल होने पर, निकम्मे और अयोग्य व्यक्तियों के सुलतान बन जाने पर, दिल्ली से स्वतन्त्र होने के सफल प्रयास करते थे। इल्तुतमिश तथा बलबन के जैसे योग्य और शक्तिशाली सुलतानों के शासनकाल में प्रान्तीय शासक और सूबेदार आतंकित रहते थे। वे दिल्ली के आधीन ही रहते थे। विरोध और विद्रोह करने पर उन्हें भयंकर दंड मिलता था। परन्तु अयोग्य सुलतानों के काल में सैनिक शक्ति का समुचित उपयोग न हो सका, और केन्द्रीय सत्ता शक्तिहीन हो गयी। इससे ऐसे समय में सुलतानों का शासन दिल्ली के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों तक सीमित रहा। इस प्रकार सैनिक शक्ति और दृढ़ केन्द्रीय सत्ता द्वारा संचालित राज्य चिरस्थायी नहीं हो सकता था।

(४) **सरदारों और अमीरों की शक्ति का उत्कर्ष और उनके षड़यन्त्र**—दासवंश के सुलतान विदेशी होने के कारण सरदारों, अमीरों और सामन्तों की शक्ति और सहयोग पर निर्भर रहते थे। सुलतान की ओर से इन्हें जागीरें और उच्चपद प्राप्त थे। संकट और संघर्ष के समय सुलतान इनसे धन और सेना की सहायता की आशा रखता था। परन्तु कालान्तर में इन सरदारों, अमीरों और सामन्तों ने अपनी सत्ता और शक्ति खूब बढ़ा ली थी। इल्तुतमिश द्वारा स्थापित चालीस गुलामों के मण्डल और उसके सदस्यों ने अमीरों और सरदारों की शक्ति में भी खूब वृद्धि की। ये अमीर और सरदार योग्य और शक्तिशाली सुलतान के समय तो शान्त रहते थे। परन्तु निर्बल सुलतान के शासनकाल में षड़यन्त्र करते थे। इनकी महत्वाकांक्षा और स्वार्थपरता अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए भी षड़यन्त्र किया करते थे। इससे सुलतानों की स्थिति डांवाडोल होती रहती थी। उन्होंने सुलतानों को अपनी कार्य सिद्धि और महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने का साधन बनाया। बहुधा वे सुलतान को पदच्युत कर उसका वध भी कर देते थे और अपनी इच्छानुसार मनमाने ढंग से किसी भी राजकुमार को सिंहासन पर बिठा देते थे। वे अपने भूतपूर्व सुलतान की इच्छा और उत्तराधिकारी की घोषणा की ओर भी कभी ध्यान नहीं देते थे, यद्यपि वे स्वयं उसे कार्यान्वित करने को वचन बद्ध होते थे। इल्तुतमिश और बलबन की उत्तराधिकारी संबंधी इच्छाओं को इन्होंने नहीं माना। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद रजिया को सुलतान बनाने की अपेक्षा रुकनुद्दीन को सुलतान बना दिया गया और बलबन के देहावसान के बाद कैखुसरो के स्थान पर कैकुबाद को राजसिंहासन पर बिठा दिया।

अमीर और सरदार भी शक्तिशाली गुटों में विभाजित थे और जो गुट शक्तिशाली होता था, वह सुलतान पर हावी हो जाता था और सुलतान उनके हाथ का खिलौना मात्र बनकर रह जाता था। इससे सुलतान का पद और प्रतिष्ठा खूब गिर गयी थी और सुलतान का पद भी सुरक्षित नहीं था। ऐसी दशा में सल्तनत स्थायी नहीं बन सकती थी। अमीरों के विरोधी गुटों और षड़यंत्रो ने ही गुलाम वंश के अन्तिम सुलतान का वध कर दिया और गुलामवंश का अन्त हो गया।

(५) **अधिकांश अयोग्य, विलासी और निकम्मे सुलतान**—दासवंश के सुलतानों में कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश और बलबन ही योग्य और समर्थ सुलतान थे। इनके उत्तराधिकारी शक्तिहीन, अयोग्य, विलासी और निकम्मे थे। यद्यपि रजिया में राज्यो-

चितगुण और वीरता थी, पर उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता उसका नारी होना था जिससे उसका विरोध शीघ्रता से और तीव्र रूप से होने लगा। वह युग सैनिक अशांति और राजनैतिक अस्तव्यस्तता का था और ऐसे युग मे केवल कुशल सेनापति के गुणों से युक्त योग्यतम सुलतान ही दीर्घकाल तक शासन कर सकता था। इसके अभावों में गुलाम वंश का पतन हो गया।

(६) **मंगोलों के आक्रमण**—इल्तुतमिश के शासनकाल से ही मंगोलों के सैनिक अभियानों और आक्रमणों का आतक भारत में व्याप्त हो गया था। इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी सुलतानो को मंगोलों के भयंकर बर्बर आक्रमणों का सामना करना पड़ा और उनसे निरंतर युद्ध करना पड़े। इन मंगोल आक्रमणों ने राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा पर अशांति उत्पन्न कर दी थी और राज्य की सुरक्षा की तीव्र समस्या खड़ी कर दी थी। मंगोलों के अभियानों और आक्रमणों को रोकने के लिये और सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा के लिए प्रथम, सुलतान का शक्तिशाली और वीर योद्धा होना आवश्यक था और द्वितीय, एक बहुत विशाल सेना और धन की आवश्यकता थी। इल्तुतमिश और बलबन के उत्तराधिकारियों के लिए यह सम्भव नहीं था।

इसके अतिरिक्त सीमांत क्षेत्र के प्रांतपतियों या सूबेदारों व अधिकारियों को अधिक सत्ता और पर्याप्त स्वतंत्रता का उपयोग करने दिया जाता था। सुलतान उन्हें और विशेषकर पंजाब के प्रांतपति को अधिक शक्तिशाली बना देता था। परंतु इसका दुष्परिणाम हुआ। ये सूबेदार और अधिकारी बहुधा अपनी शक्ति और अधिकारियों का दुरुपयोग करते थे। उन्होंने अपने अधीनस्थ शासकों पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखा और साथ ही सुलतान के विरुद्ध भी अपनी सेना, शक्ति और अधिकारों का उपयोग किया और स्वयं स्वतंत्र होने और दिल्ली राज्य को छिन्न-भिन्न करने की चेष्टा की। इससे दिल्ली राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया। बलबन के पश्चात इन आक्रमणकारियों को रोकने लिये शक्तिशाली सुलतानों की आवश्यकता थी और कैकुबाद इसके लिये सर्वथा अनुपयुक्त था।

(७) **दृढ़ सीमांत नीति का अभाव**—सुलतान बलबन को छोड़ कर किसी भी दास सुलतान ने सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा की ओर किंचित भी ध्यान नहीं दिया। सुलतान पश्चिमोत्तर क्षेत्र की दृढ़ सुरक्षा के प्रति उदासीन रहे। इससे भी विदेशी आक्रमणों से दिल्ली राज्य निर्बल और पतनोन्मुख हो गया।

(८) **हिन्दुओं के प्रति क्रूरनीति और अमानवीय व्यवहार**—समस्त दास सुलतान हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु और अनुदार रहे। उन्होंने हिन्दुओं के साथ बर्बरता और क्रूरता का व्यवहार किया और उन्हें मौलिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों से वंचित कर दिया। बलबन ने तो अत्यंत ही नृशंसता से भीषण नरसंहार करके हिन्दुओं की शक्ति को कुचलने के प्रयास किये। फलतः हिन्दुओं का जो सल्तनत की प्रजा का बहुत बड़ा भाग था, सहयोग और सद्भावना सुलतानों को नहीं प्राप्त हो सकी। इसके विपरीत हिन्दू, मुसलमानों और सुलतानों को विरोधी के रूप में देखते रहे। हिन्दू नेता और राजा तुर्कों की अधीनता स्वीकार करने को

तैयार नहीं थे और वे निरन्तर विरोध और विद्रोह करते रहते थे। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये तथा मुस्लिम शासन का अन्त करने के लिये भगीरथ प्रयत्न किये। राजपूत स्वतंत्रता प्रिय थे और उन्होंने मुसलमानों की प्रभुता कभी भी पूर्णरूपेण अंगीकार नहीं की। दिल्ली सुलतानों के लिये राजपूत भयंकर सिर दर्द बने रहे। उनके दमन में और हिन्दुओं की शक्ति कम करने में सल्तनत की जड़ें खोखली होती गयीं।

(९) **दास प्रथा के दुष्परिणाम**—उस युग में दास-प्रथा का बड़ा बाहुल्य था। सुलतानों के अनेक दास होते थे। प्रत्येक सुलतान ने अपने किसी प्रिय दास को बहुत महत्व प्रदान कर दिया था और उसे ऊंचे पद दे दिये थे। सुलतान का प्रत्येक दास उच्चतम पद प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहता था और अमीर और सरदार उनके समर्थक होते थे। इससे दरबार गुटबन्दियों का अखाड़ा बन गया था। यद्यपि सुलतान के दास स्वामीभक्त होते थे, परन्तु अपने स्वामी सुलतान की मृत्यु के बाद, वे शक्तिशाली होने के कारण नवीन सुलतान के विरुद्ध सफलतापूर्वक विद्रोह करते थे। इसके लिये उनमें अक्षुण्य क्षमता थी ; इन विद्रोहों ने राज्य की शक्ति व सत्ता को गहरा आघात पहुँचाया और अनेक बार सुलतान का तख्ता भी उलट दिया।

(१०) **उत्तराधिकार के नियम का अभाव**—दासवंश के सुलतानों में सुलतान की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी के लिये कोई निश्चित दृढ़ नियम नहीं था। सुलतान पिता का पुत्र ही सुलतान होगा, यह कोई आवश्यक नियम नहीं था। इससे सुलतान की मृत्यु के बाद संघर्ष, षड़यंत्र और हत्याओं का दौर प्रारंभ होता था और राज्य-शक्ति क्षीण होती थी। दासवंश के शासन काल में भी यही हुआ। फलतः पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(११) **सामन्तों व अधिकारियों में अनेक जातियों का सम्मिश्रण**—अमीरों, सरदारों, सामन्तों, सेनापतियों सूबेदारों, काजियों आदि में मुसलमान ही थे। इनमें नवीन मुसलमान भी थे जिन्होंने हिन्दूधर्म छोड़कर इस्लाम ग्रहण किया था। इन्हीं में तुर्क, खिल्जी और उनके विभिन्न कबीलों के और विविध जातियों के मुसलमान भी सम्मिलित थे। इससे इन सब में और सुलतान के समर्थकों में दलबन्दियां, और उनकी विशेष प्रतिद्वंदिता और स्वार्थपरता रही जो दासवंश के राज्य के लिये घातक प्रमाणित हुई।

(१२) **विद्रोहों का नृशंसता से दमन**—सुलतान, उनके अधिकारियों और समर्थकों ने विपक्षियों, विरोधियों के विद्रोहों का बड़ी नृशंसता और बर्बरता से दमन किया। जीवित अपराधियों की खालें खींच ली गयीं, अनेक जनसाधारण के सामने कत्ल कर दिये गये। दमन में अमानुषिक अत्याचार और भीषण नर-संहार किये गये। विरोधियों और विद्रोहियों के हृदयों पर अधिकार करने की नैतिक भी चेष्टा नहीं की गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि वे सदा के लिये राज्य के घोर शत्रु हो गये।

(१३) **जनहित की भावना का अभाव**––दासवंश के सुलतानों में अपनी समस्त प्रजा के लिये जन-हित के कार्य करने तथा उसके सुख-समृद्धि में वृद्धि करने की भावना नहीं थी। प्रशासन में भी लोक-कल्याण की भावना का सर्वथा अभाव था। उन्होंने जन-कल्याण और राज्य की आर्थिक उन्नति के लिए तनिक भी प्रयास नहीं किये। इससे दासवंश के सुलतान न तो लोकप्रिय हो सके, न वे जनता की श्रृद्धा और भक्ति प्राप्त कर सके न उनका शासन ही स्थायित्व प्राप्त कर सका।

(१४) **बलबन का उत्तरदायित्व**––बलबन इतना अधिक शक्तिशाली था कि उसने अपने समस्त प्रतिद्वन्दियों की और गुलामों के शक्तिशाली दल को शक्ति रहित कर दिया था। शासन में उसने अपनी प्रधानता और प्रभुत्व इतना अधिक बढ़ा लिया था कि कोई भी राजकुमार, अमीर या मंत्री शासन का पूर्ण अनुभव नहीं प्राप्त कर सका। उसने किसी भी मंत्री या राजकुमार को सुयोग्य शासक बनने का अवसर नहीं दिया। बलबन की मृत्यु ने एक ऐसी कमी उत्पन्न कर दी जो कभी भी पूरी नहीं हुई।

(१५) **कैकुबाद का दुर्बल व्यक्तित्व**—गुलाम वंश का अंतिम सुलतान कैकुबाद अल्पआयु, विलासप्रिय, अयोग्य और अनुभवहीन था। उसका वजीर निजामुद्दीन क्रूर, निर्दयी, अत्यधिक स्वार्थी और महत्वाकांक्षी था। उसने अमीरों के साथ अत्यंत ही कटुतापूर्ण दुर्व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। बलबन द्वारा नियुक्त उत्तराधिकारी कैखुसरो वास्तव में योग्य, समर्थ, प्रतिभावान और साहसी राजकुमार था। परन्तु निजामुद्दीन ने उसका वध करवा दिया। इससे अनेक अमीर कैकुबाद और निजामुद्दीन से अत्यन्त ही अप्रसन्न हो गये। अमीरों और सरदारों में पारस्परिक दलबन्दी होने के कारण तुर्कों तथा खिलजियों में शक्ति व सत्ता के लिये भयंकर संघर्ष हो गया। कैकुबाद अपने दुर्बल व्यक्तित्व और विलासिता के कारण इसे रोकने में असमर्थ रहा और अन्त में शक्तिशाली खिलजियों के दल ने जलालुद्दीन के नेतृत्व में उसकी हत्या कर गुलामवंश का अन्त कर दिया।

दास वंश की देन

तत्कालीन विघटनकारी प्रवृत्तियों का और राजनैतिक दुर्बलताओं का लाभ उठाकर और राजपूत नरेशों को परास्त कर दास वंश के सुलतानों ने भारत में प्रथम मुस्लिम राज्य प्रतिष्ठित किया और उसे पल्लवित करने के प्रयास किये। दास वंश प्रथम मुस्लिम राजवंश था जिसने उत्तरी भारत में मुस्लिम सत्ता और शासन स्थापित किया। यद्यपि इस दास वंश के अनेक सुलतान शक्तिहीन, निकम्मे, अयोग्य और विलासी थे, परन्तु फिर भी दास वंश के बलशाली सुलतानों की अपनी देन रही है जिसके प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं—

(१) सुलतान ने इल्तुतमिश और विशेषकर बलबन ने और उसके पदाधिकारियों ने खूँखार युद्ध-प्रिय मंगोलों के सैनिक अभियानों और आक्रमणों से अपने वंश और राज्य की रक्षा के साथ-साथ उत्तरी भारत की भी रक्षा की। उन्होंने अपनी निर्धारित सीमा नीति से और दृढ़ सेना से भारत की मंगोलों की क्रूरता और भीषण

नर-संहार से रक्षा की। सीमान्त क्षेत्र में उन्होंने अपनी सैनिक शक्ति से मंगोलों के विरुद्ध लोह दीवार-सी खड़ी करदी।

(२) इन सुलतानों ने यद्यपि कला और साहित्य में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित नहीं की, तथापि इनके किंचित आश्रय और प्रोत्साहन के फलस्वरूप स्थापत्य कला के क्षेत्र में भारत में एक नवीन शैली का निर्माण हुआ जिसे इंडो-मुस्लिम कला शैली या भारतीय मुस्लिम कला शैली कहते हैं। कुतुबमीनार और उसके आसपास के भवन इस शैली के प्रारम्भ के नमूने हैं।

(३) यद्यपि दास वंश के सुलतानों के प्रशासन में स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता, अनियंत्रितता, और राजनैतिक तथा धार्मिक पक्षपात का बाहुल्य था, फिर भी देश में एक नवीन मुस्लिम शासन प्रणाली का सूत्रपात हुआ। यह शासन-प्रबंध सर्वथा नवीन और मुस्लिम परम्परा के अनुकूल था। विद्रोहों, उपद्रवों, और गृहयुद्धों के कारण दास वंश के सुलतान अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि और जनहित के कार्यों की ओर ध्यान नहीं दे सके, फिर भी उन्होंने प्रशासन के उस मूल ढांचे को तैयार कर लिया था जिस पर खिलजी और तुगलक सुलतानों ने सल्तनत की शासन-व्यवस्था का भवन खड़ा किया था।

(४) दास वंश का शासन सैनिक शक्ति और धार्मिक पक्षपात पर निर्भर था। यह शासन धर्म निरपेक्ष नहीं था। धर्म के आधार पर राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जो पक्षपात प्रारम्भ हुआ वह दिल्ली के भावी सुलतानों की धार्मिक कट्टरता और धर्मान्धता के रूप में विकसित हुआ। सैनिक शक्ति पर आधारित जो निरंकुश राजतंत्र स्थापित हुआ वह दिल्ली के भावी सुलतानों ने अधिक विकसित और पल्लवित किया।

कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन की सेवाएँ दास वंश के लिये सबसे अधिक प्रशंसनीय और उल्लेखनीय हैं। उन्होंने ही भारत में उस मुस्लिम राज्य की नींव रखी जिस पर भावी दिल्ली साम्राज्य का राजभवन खड़ा किया गया और जिसकी छत्र-छाया में इस्लामी संस्कृति, सभ्यता, धर्म और कला पल्लवित होती रही।

दास सुलतानों की शासन-व्यवस्था

दास सुलतान और उनके राज्य की सीमाएँ—सन् १२०६ से लेकर सन् १२९० तक अर्थात् ८४ वर्ष की अवधि में दस दास सुलतान दिल्ली में राज्य करते रहे। यह युग अशांति, संघर्ष, युद्ध और हत्याओं का था, इसलिये इन दस सुलतानों में से केवल तीन ही शांतिपूर्वक राजमहल में मृत्यु शैय्या पर अंतिम सांस ले सके। अन्य सुलतानों की हत्या करदी गयी। मोटे रूप से इन दास सुलतानों के राज्य की सीमाएँ उत्तर में हिमालय पर्वत के तराई क्षेत्र से लेकर दक्षिण में मालवा व बुन्देलखंड तक थीं। पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में थंभोर, सिंध और अजमेर तक थीं। उत्तर-पश्चिम में उनके राज्य की सीमा निर्दिष्ट नहीं थी। मंगोलों के आक्रमणों के साथ-साथ यह सीमा झेलम नदी से व्यास नदी तक घटती बढ़ती थी। यदि विश्लेषण कर देखा जाय तो उत्तरी भारत में मुहम्मद गोरी और उसके सेनानायक कुतुबुद्दीन

ऐबक तथा मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने जो नवीन मुस्लिम राज्य स्थापित किया था और विभिन्न प्रदेशों को जीतकर उसका जो विस्तार किया था, दास सुल-तानों ने मोटे रूप से उसे वैसा ही बनाये रखा। कुतुबुद्दीन ऐबक ने सुलतान बनने के पूर्व जितने प्रदेश अधिकार में कर लिये थे, न्यूनाधिक रूप से वे वैसे ही बने रहे। ऐबक के उत्तराधिकारी सुलतानों ने उसमें कोई विशेष उल्लेखनीय वृद्धि नहीं की। वह राज्य लगभग वैसा ही बना रहा। यदि कभी राज्य में विजय और पराजय से कोई परिवर्तन हुआ भी तो उसके परिणामस्वरूप राज्य की सीमाएँ सिकुड़ गयीं, उनमें वृद्धि नहीं हुई। इसका प्रमुख कारण यह है कि दास सुलतानों को वर्ष-प्रतिवर्ष विद्रोहियों, विपक्षियों, और हिन्दुओं की शक्ति का दमन करने के लिये सैनिक अभि-यान करना पड़ते थे। एक ही सैनिक अभियान में न तो शक्ति का दमन हो पाता था और न उस प्रदेश पर विजय ही। फलतः एक ही सुलतान को एक विशिष्ट प्रदेश को अनेक बार विजय करने की आवश्यकता पड़ती थी।

मंगोलो के निरन्तर अभियानों और आक्रमणों के फलस्वरूप तथा स्थानीय नरेशों के विद्रोहों के कारण जम्मू तथा काश्मीर, पंजाब के उत्तर-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पर दास सुलतानों का अधिकार स्थायी रूप से नहीं रहा। पर सिंध, मुलतान तथा लाहौर एवं दोआब के क्षेत्र पर उनका प्रभुत्व स्थायी रहा। राजस्थान और बुन्देलखंड में उनका अधिकार क्षेत्र घटता बढ़ता रहा। दास सुलतानों के राज्य की इन सीमाओं के अन्तर्गत भी अनेक हिन्दू सामन्त और नरेश राज्य करते थे जिन्होंने कभी भी पूर्णरूपेण सुलतानों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। प्रांतीय मुस्लिम सूबेदार और शासक भी अनेक बार नाममात्र के लिये ही सुलतान के अधीन थे। इस प्रकार दास सुलतानों का राज्य विभिन्न प्रांतों का ढीला गठबंधन था और इस राज्य में भी इन सुलतानों को अपनी निरंकुश सत्ता और अधिकारों का उपयोग करने में भी अनेक बाधाएँ उपस्थित होती रहती थी।

शासन-प्रबंध

दास वंश की शासन-व्यवस्था के प्रमुख तत्व निम्नलिखित थे—

(१) **निरंकुश, इस्लामी व सैनिक राजतंत्र**—गुलाम वंश के सुलतानों के शासन का स्वरूप निरंकुश इस्लामी राजतंत्र था। सुलतान शासन का सर्वोच्च अधि-कारी था और उसके अधिकार और सत्ता अनियंत्रित और असीमित थे। इस राजतंत्र के दो अंग प्रमुख थे। प्रथम, यह राजतंत्र इस्लामी धर्म ग्रंथों और कुरान के नियमों पर आधारित साम्प्रदायिकता के आधार पर खड़ा था। कुरान के नियम "शरा" कहलाते थे, और सल्तनत के सभी साधन, धन और शक्ति इनके प्रचार और प्रसार के हेतु प्रस्तुत रहते थे। समस्त राज्य में इस्लाम ही राजधर्म के रूप में विद्यमान था। इस प्रकार यह सल्तनत धर्मसापेक्ष राज्य था जो अपनी बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम प्रजा की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं व धारणाओं को मान्यता प्रदान नहीं करता था। इस राजतंत्र का दूसरा प्रमुख तत्व यह था कि इसका आधार सैनिक था। ताकत और तलवार पर यह राजतंत्र अवलंबित था। जनता की सद्-

इच्छा, सद्भावना, सहयोग और सहायता पर यह राजतंत्र निर्भर नहीं था। इसमें जनता की इच्छा का कोई मूल्य नहीं रहता था।

(२) **दैवी अधिकार का सिद्धान्त**—इस्लामी सभ्यता के अनुसार राज्य का वास्तविक राजा ईश्वर माना जाता था और सांसारिक राजा उस राज्य को कुरान द्वारा इंगित किये गये नियमों के अनुसार प्रतिनिधि के रूप में प्रशासित करता था। अर्थात् सुलतान ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था और सुलतान के हृदय को ईश्वर का विशेष भंडार-गृह समझा जाता था। इस दैवी अधिकार के सिद्धान्त के आधार पर सुलतान के अधिकार और शक्ति असीमित और अनियंत्रित माने जाते थे। इसके साथ-साथ सुलतान की चारित्रिक दृढ़ता और शुद्धता पर भी बल दिया जाता था। इल्तुतमिश और बलबन के शासनकाल में ये सिद्धान्त ठीक थे। बलबन ने तो अपनी नीति और कार्यों मे निरंकुश राजतंत्र की अभिवृद्धि में खूब योग दिया। बलबन ने प्रजा के सामने दैवी अधिकार का सिद्धान्त रखकर शासित प्रजा की श्रद्धा और भक्ति भी प्राप्त करली।

(३) **उत्तराधिकार के नियम का अभाव और उसके दुष्परिणाम**—इस्लामीराज्य के सिद्धान्त के अनुसार राज्य की प्रमुख शक्ति मुस्लिम जनता की निर्वाचित संस्था—"मिल्लत" के हाथ में ही वैधानिक रूप से मानी जाती थी। ऐसी संस्था भारत में नहीं थी और न भारत के इस्लामी राज्य में इस सिद्धान्त को कार्यान्वित किया गया था। दास सुलतानों ने अपने उत्तराधिकार के लिए कोई निर्दिष्ट नियम नहीं निर्मित किये थे और न कोई प्रणाली ही निर्धारित की थी। पर ऐसी परम्परा डाल दी गयी थी कि सुलतान के परिवार में से ही नवीन सुलतान को, वंश की कुलीनता, योग्यता, प्रतिभा और पूर्वगामी सुलतान की इच्छा तथा प्रस्तुत शक्तिशाली अमीरों और सरदारों के समर्थन के आधार पर निर्वाचित कर लिया जाता था। उत्तराधिकार का कोई नियम व कानून न होने से,नवीन सुलतान का सिंहासनारोहण सशक्त सरदारों और अमीरों पर निर्भर था। किसी व्यक्ति का सुलतान बनना बलशाली अमीरों और सरदारों की सम्मति और निर्णय से होता था। वरिष्ठ, बलशाली और प्रभावशाली अमीर सुलतान के चुनाव में राज्य और जनता के हितों का ध्यान न रखकर अपने स्वार्थों का ही सर्वोपरि ध्यान रखते थे। नवीन सुलतान के शक्तिशाली समर्थक सरदारों और अमीरों की ताकत और तलवार ही निर्णायक प्रमाणित होती थी।

(४) **सुलतान के अधिकार और सत्ता**—जसा ऊपर वर्णित है सुल्तान संपूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न और पूर्णरूपेण निरंकुश शासक था। उस पर किसी बाहरी सत्ता का नियंत्रण नहीं था। राज्य की सर्वोच्च सत्ता और अधिकार उसमें निहित थे। वह सत्ता और न्याय का स्त्रोत तथा कानून की व्याख्या करने का सर्वोच्च अधिकारी माना जाता था। आधुनिक विधान के सिद्धान्त के अनुसार वह न्यायपालिका और कार्यपालिका का अध्यक्ष होता था। उसके अधिकार अनेकऔर सत्ता अपरिमित थी। वह सम्पूर्ण जनता का लौकिक प्रमुख माना जाता था। इस प्रकार सिद्धान्त के रूप में सुलतान के अधिकार अनियन्त्रित और असीमित माने जाते थे, परन्तु व्यवहार में वे सीमित थे, उन पर नियन्त्रण था। प्रथम, धार्मिक मामलों में वह उलमाओं के परा-

मर्श को मानता था। इस्लाम के अलिखित परम्परागत नियमों का उसे सम्मान करना पड़ता था। मुल्ला-मौलवियों की सलाह और निर्णय तथा कुरान के "शरा" या नियम सुलतान की शक्ति और अधिकारों पर वैधानिक प्रतिबन्ध माने जाते थे। सुलतान को कुरान के नियमों के अनुसार ही शासन चलाना पड़ता था।

यद्यपि बलबन जैसे दृढ़ निरंकुश सुलतान ने, धर्म को राजनीति से पृथक् रखने का प्रयास किया, पर उसने भी कुरान के नियमों का उल्लंघन नहीं किया। इस्लामी राजनीति के सिद्धान्त के अनुसार यह आदेश दिया गया है कि यदि कोई शासक कुरान के नियमों की अवहेलना करे या उनका उल्लंघन करे तो मुस्लिम प्रजा उस शासक के आदेशों और आज्ञाओं का पालन नहीं करे। द्वितीय, प्रान्तीय राज्यपालों और सरदारों की विद्रोही प्रतिक्रियावादी भावनाओं,महत्वाकांक्षाओं और स्वार्थ लोलुपता के कारण सुलतान की शक्ति और अधिकार सीमित हो गये थे।

इल्तुतमिश जैसा योग्य प्रतिभावान सुलतान भी अमीरों व सरदारों के परामर्श और इच्छा के अनुरूप ही शासन करता था। अयोग्य, निकम्मे, विलासी और शक्तिहीन सुलतान राजदरबारी अमीरों की गुट बन्दियों और स्वार्थपरता के कारण सरदारों और सामन्तों के हाथ की कठपुतली बन जाते थे। इससे सुलतान के पद और प्रतिष्ठा का खूब ह्रास होता था। तृतीय, सुलतान के अधिकार और सत्ता वास्तविक और व्यवहारिक रूप में उसकी सैनिक प्रतिभा और शक्ति पर निर्भर रहते थे। यदि उसके पास प्रचुर और पर्याप्त सैनिक बल और सामरिक प्रतिभा होती थी तो वह ऊपर वर्णित सभी प्रतिबन्धों की अवहेलना करके निरंकुश सुलतान बन सकता था।

(५) **खलीफा से सम्बन्ध**—खलीफा इस्लामी विश्व का सम्राट और धार्मिक तथा लौकिक गुरू माना जाता था। इस्लामी परम्पराओं के अनुसार खलीफा पैगम्बर का उत्तराधिकारी, "मिल्लत" का प्रधान, इस्लामी जगत का सर्वोच्च न्यायाधीश और इस्लाम धर्म का रक्षक माना जाता था। मध्ययुग में अत्यधिक इस्लामी राज्यों के निर्माण और दूरस्थ देशों में उनके प्रसार से खलीफा के धार्मिक और लौकिक अधिकारों का उपयोग इस्लामी राज्य के सुलतान करने लगे और उनके आदेशों को खलीफा की आज्ञाओं की परिधि में माना जाता था। नये स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य सैद्धान्तिक रूप में खलीफा को अपना धार्मिक और राजनैतिक नेता स्वीकार करते थे तथा वे उनकी मुद्राओं पर खलीफा का नाम अंकित करवाते थे और खुतबा में अपने नाम के साथ खलीफा का नाम भी सम्मिलित करवाते थे। खलीफा की ओर से नवोदित मुस्लिम राज्यों के शासकों या राजाओं को सुलतान की पदवी से विभूषित किया जाता था और उन्हें खिलअत (राज-सी वेशभूषा) भी प्रदान की जाती थी। बगदाद के अब्बसी खलीफा ने मुहम्मद गोरी को "सुलतान" की उपाधि प्रदान की थी। भारत में दास सुलतान सभी खलीफा के अन्तर्गत ही माने जाते थे। दास सुलतान इल्तुतमिश ने अपने नवोदित इस्लामी राज्य के लिए खलीफा की स्वीकृति प्राप्त कर ली और अपने नवीन अरबी सिक्कों पर खलीफा का नाम भी अंकित करवाया। इससे दिल्ली सल्तनत को वैधानिक और धार्मिक स्वरूप प्राप्त हो गया और इस्लामी जगत में दिल्ली

सुलतान का महत्व, सम्मान और प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ गयी। सिद्धान्त रूप में इल्तुतमिश के बाद सभी सुलतान परम्परा के अनुसार अपने को खलीफा का नायब मानते रहे। परन्तु सुलतान बलबन ने ऐसा नहीं किया। वह अपने आपको खलीफा से स्वतंत्र समझने लगा था। वह खलीफा को अपना प्रधान नहीं मानता था।

(६) **सुलतान के कर्तव्य**—सुलतान के प्रमुख कार्य निम्न थे—

(i) अन्य देशों को सैनिक अभियानों और आक्रमणों द्वारा जीतना और सल्तनत की सीमाओं का दूरस्थ प्रदेशों तक विस्तार करना;

(ii) विद्रोहों और उपद्रवों का दमन करना;

(iii) दमन और व्यवस्था के लिए नवनिर्मित सैनिक चौकियों और छावनियों में रक्षा सेना रखना;

(iv) कठोरतापूर्वक जनता से भूमिकर वसूल करवाना;

(v) राज्यों में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना और अपराधियों, विद्रोहियों और विरोधियों को कठोर दंड देना।

जनहित के कार्य करना तथा राज्य की प्रजा की भलाई व सुख-समृद्धि की वृद्धि के हेतु विविध कार्य करना सुलतान का कर्तव्य नहीं माना जाता था। जन-कल्याण के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाये जाते थे।

(७) **गैर मुस्लिम जनता पर अत्याचार और नियन्त्रण**—राज्य की बहुसंख्यक जनता गैर मुस्लिम या हिन्दू थी। इन्हें "जिम्मी" कहा जाता था। ये राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित थे। नागरिकता के अधिकार इनको प्राप्त नहीं थे। उन पर प्रतिबन्ध थे। सेना और प्रशासन में तथा राजसभा में वे ऊंचे पदों पर नियुक्त नहीं किए जाते थे। समय-समय पर उन पर धार्मिक और राजनैतिक अत्याचार भी होते थे।

(८) **न्याय-व्यवस्था**—सुलतान राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश माना जाता था। वह दरबार में बैठकर न्याय के हेतु फरियादी के प्रार्थना-पत्रों पर विचार करके न्याय प्रदान करता था। राजसभा में मुकदमे सुने जाते और निर्णय दिये जाते थे। धार्मिक मुकदमे और झगड़े सुलतान सदर और मुफ्ती की सहायता से तथा शेष सब मुकदमे काजी की सहायता से सुनता और निर्णय देता था। सुलतान इल्तुतमिश ने अपने ढंग से न्याय की व्यवस्था की थी। न्याय प्राप्त करने वाला फरियादी न्याय के लिए लगी जंजीर खींचकर अथवा लाल वस्त्र धारण कर सुलतान का ध्यान आकर्षित कर सकता था। न्याय विभाग में सुलतान के नीचे मुख्य काजी तथा अन्य नगरों और प्रान्तों में न्यायदान के लिए अन्य पदाधिकारी होते थे, जिन्हें दाद-ए-वक्त या अमीर-ए-दाद कहा जाता था। दासवंश में दिल्ली में मुख्य काजी के पद पर प्रसिद्ध विद्वान और इतिहासकार मिनहाज-ए-सिराज भी था। ग्राम्य जीवन में जन-साधारण के लिए न्याय-दान की शासन की ओर से कोई व्यवस्था नहीं थी। फलतः ग्रामीण पंचायतें ये कार्य करती थीं। हिन्दुओं के मुकदमें पंचायतों द्वारा निर्णित होते थे। यद्यपि अंग-भंग और कठोर शारीरिक यातनाओं का दंड-विधान नहीं था, परन्तु बलबन के समय न्यायदान में निष्पक्षता और दंड में कठोरता बरती जाती थी।

(९) **सेना की व्यवस्था**—दास वंश के मुसलमानों का राज्य सैनिक शक्ति पर आधारित था। उनकी सत्ता और शक्ति सेना की क्षमता पर निर्भर थी। इस लिए उन्होंने सेना की ओर विशेष ध्यान दिया। राजधानी दिल्ली में राज्य की कोई स्थायी नियमित सेना नहीं रखी जाती थी। प्रांतीय शासक और सूबेदार सुलतान की सहायता के लिए सेना भेजते थे। और उस पर ही वह विश्वास करता था। इस समय सेना में निम्न लिखित अंग थे।

(१) सुलतान के अंगरक्षकों की सेना, जिसका पदाधिकारी सर-ए-जांदार कहलाता था। (२) धर्म सेना, इसमें विशेष रूप से भरती किये सैनिक होते थे जो स्थानीय राजाओं और हिन्दु नरेशों के विरुद्ध युद्ध करते थे। (३) स्वयं सेवकों की सेना, ये भी हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध में भाग लेते थे। धर्म सेना और स्वयं सेवकों की सेना लूट के माल में से अपना भाग लेती थी। (४) पदाति या पैदल सेना। (५) अश्वारोही सेना। (६) हाथियों या ऊँटों की सेना। अन्तिम तीन सेना के अंगों में सुल्तान मुहम्मद गोरी के मुइज्जी गुलाम, कुतुबुद्दीन ऐबक के कुतुबी गुलाम और सुलतान इल्तुतमिश के शम्सी गुलाम सैनिक और सेनाधिकारी रहते थे। इस सेना का निरीक्षण और कार्य दीवान-ए-आरिज देखता था। सेना का महासेनापति सुलतान स्वयं होता था और प्रांतों में "मुक्ति" स्वयं अपनी-अपनी सेना के सेनापति होते थे। सुलताना रजिया के शासन-काल में प्रथक रूप से सेनापति नियुक्त किया गया था, प बाद में यह पद समाप्त कर दिया गया। प्रांतीय सूबेदारों की सेना पर कुछ अंश तक अपइज-ए-मुमालिक नामक अधिकारी का साधारण नियंत्रण रहता था। अधिकांश सैनिकों को उनकी सेवाओं के लिए नकद वेतन की अपेक्षा जागीरें दी जाती थीं, पर कभी-कभी नकद वेतन भी। सुलतान बलबन ने सैनिकों और सेना के पदाधिकारियों को दी गयी जागीरों की जांच करवाकर उसमें समुचित सुधार भी किये थे और नकद वेतन देने की प्रथा और सेना के अश्वों को दागने की प्रणाली भी प्रारंभ की थी।

उत्तरी पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में मंगोलों के आक्रमणों को रोकने के लिये दास सुलतान बलबन ने सेना की विशेष व्यवस्था की थी। वहां उसने नवीन दुर्ग निर्माण किये, प्राचीन दुर्गों का जीर्णोद्धार करवाया, सैनिक शिविर स्थापित करवाये और वहां प्रशिक्षित, अनुभवी और वीर, साहसी सैनिक और पदाधिकारी नियुक्त किये।

(१०) **राज्य की आय-व्यय**—सल्तनत की आय के लिए विभिन्न प्रकार के कर थे जैसे खिराज, खम्स, उश्र, जकात आदि। परन्तु सल्तनत की आय का सबसे अधिक लाभप्रद साधन हिन्दू प्रांतों और राज्यों की लूट थी जिसमें सुलतान को लाखों रुपयों की धन-संपत्ति प्राप्त होती थी। सुलतान का व्यय भी राजकीय आय से निकलता था। राज्य की संपूर्ण आय पर उसका अधिकार माना जाता था। आय का अधिकांश भाग सेना पर और विद्रोहों तथा उपद्रवों के कुचलने और शांति-व्यवस्था स्थापित करने पर होता था।

(११) **मंत्रीगण और उच्च पदाधिकारी**—दासवंश के शासन काल में केंद्रीय शासन का स्वरूप स्पष्ट और निर्धारित नहीं था। केंद्रीय शासन में अनेक मन्त्रीगण

और उच्च पदाधिकारी होते थे। उनकी नियुक्तियाँ सुलतान द्वारा शासन-प्रबन्ध की सुविधा के अनुसार हुआ करती थी, जनता द्वारा निर्वाचन या नियुक्तियां नहीं होती थीं।मंत्रीगण राजकीय सेवकों के रूप में सुलतान के प्रति उत्तरदायी होते थे। शासन की उच्चतम सत्ता और निर्णय उनके हाथ में नहीं थे। परन्तु अवयस्क और अनुभव-हीन निकम्मे सुलतानों के समय ये मंत्रीगण अपनी महत्वाकांक्षाओं की और स्वार्थ की पूर्ति के लिए सुलतान को साधन बनाकर उसे अपने हाथ की कठपुतली बना लेते थे। परन्तु बलबन जैसा दृढ़ और बलशाली सुलतान इन मंत्रीगणों के प्रभाव से मुक्त था उसकी साधारण आज्ञाओं और इच्छाओं को भी मंत्रीगण कार्यान्वित करते थे।

दासवंश के शासनकाल में प्रमुख मंत्री और उच्च पदाधिकारी निम्नलिखित थे।

(i) **वजीर**—प्रधानमंत्री वजीर कहलाता था। वह असैनिक पदाधिकारी था। पर आवश्यकता पड़ने पर उसे रणभूमि में जाकर सेना का संचालन और संगठन भी करना पड़ता था। वह अर्थ विभाग का अध्यक्ष था और सैनिक वेतन का कार्यालय भी उसके अधीन था। उसका एक बड़ा सचिवालय होता था जिसमें उसका एक सहायक "नायक" अधिकारी, तथा बहुसंख्यक लिपिक, लेखक और सचिव कार्य करते थे। उसकी सहायता के लिए उसके अधीन मुशरिफ-ए-मुमालिक (Chief Accountant) और मुस्तफी-ए-मुमालिक (Auditor) होते थे।

(ii) **आरिज-ए-मुमालिक**—यह सेना का अध्यक्ष और दीवान-ए-अर्ज का अध्यक्ष भी होता था। उसका कार्य सैनिकों को भरती करना, वेतन का वितरण करना, तथा सेना का निरीक्षण और देखभाल करना था।

(iii) **दीवान-ए-इंशा**—शासकीय और शाही घोषणाओं, आदेशों और पत्रों के मसविदे तैयार करने का काम तथा साधारण और राजनीतिक दोनों प्रकार के पत्रों के प्रबन्ध का कार्य दीवान-ए-इंशा के अधीन था। सल्तनत का डाक-प्रबन्ध भी यही करता था।

(iv) **दीवान-ए-रसालत**—यह मंत्री विदेशी विभाग का अध्यक्ष होता था और वह वैदेशिक और कूटनीतिक पत्र-व्यवहार और व्यवस्था का कार्य देखता था। विदेशी राजदूतों का स्वागत करने और उनसे संपर्क रखने का कार्य इसके अधीन था।

(v) **फरीद-ए-मुमालिक** - यह मन्त्री बड़े महत्व का होता था। वह केंद्रीय शासन का अत्यंत ही विश्वसनीय अधिकारी होता था। उसके अधीन राज्य के संवाद-दाता और गुप्तचर रहते थे। वह राज्य के सभी समाचारों को, प्रशासन के प्रत्येक अंग की रिपोर्ट को प्राप्त करता था।

(vi) **सद्र-उस-सदूर**—यह धार्मिक मामलों का अधिकारी था और वह संपूर्ण राज्य का मुख्य-न्यायाधीश अथवा काजी-मुमालिक का कार्यभार भी सम्भालता था।

(vii) **वकील-ए-दर** – यह सुलतान के परिवार और राजमहलों का प्रबन्धक था। यह शाही परिवार के लोगों की रक्षा करता था और उसकी आवश्यकता की वस्तुओं को लाने लेजाने की व्यवस्था करता था।

(viii) **अमीर-ए-हाजिब**—यह अधिकारी शाही समारोहों का प्रबन्ध करता था, राज्यसभा के शिष्टाचार और अनुशासन के नियमों के पालन की व्यवस्था करता था तथा सुलतान और अन्य छोटे पदाधिकारियों एवं जनता के बीच मध्यस्थ का कार्य करता था।

(ix) **अमीर-ए-आखूर**—यह शाही अश्वों की देखभाल करता था।

(x) **शाहन-ए-पीलां**—यह हाथियों की देखभाल करता था।

(xi) **सार-ए-जानदार**—यह अधिकारी सुलतान के अंगरक्षकों की देखभाल करता था और सुलतान का मुख्य अंगरक्षक था।

(xii) **अमीर-ए-शिकार**—यह अधिकारी सुलतान के आखेट की व्यवस्था करता था।

(xiii) **नायब-ए-मुमालिक**—यह सुलतान का एक प्रतिनिधि स्वरूप होता था और गुप्तचर विभाग का प्रमुख होता था। विशेष परिस्थितियों में 'नायब' वजीर से भी अधिक शक्ति और अधिकार का उपयोग कर लेते थे। बलबन के शासन-काल में जब नायब की शक्ति में खूब वृद्धि हो गयी, तब उसने उसपर नियंत्रण कर दिया और उसके अधिकार निश्चित कर दिये। इनके अतिरिक्त राजधानी दिल्ली में सुलतान अन्य पदाधिकारी, मुसाहिब, नौकर आदि रखते थे। इनका पद मंत्रियों और उच्च पदाधिकारियों के समक्ष नीचा होता था।

प्रांतीय प्रशासन

दासवंश के सुलतानों के शासन काल में प्रांतीय शासन सुसंगठित और सुव्यवस्थित नहीं था। क्योंकि विकेंद्रीकरण और विघटन की प्रवृत्तियां प्रांतीय सूबेदारों और शासकों में थीं। सारा राज्य समान प्रशासन और एक से तत्वों की श्रृङ्खला में नहीं बंधा था। उसका ढांचा शिथिल और ढीला था। समस्त राज्य सैनिक पदाधिकारियों के क्षेत्रों और सूबेदारों के प्रदेशों से बना हुआ था। इसलिए इसमें विकेन्द्रीकरण और ढीलापन होना स्वाभाविक था। राज्य ढीले-ढाले प्रांतों में विभक्त था। प्रांतों को "इकता" कहते थे और इसके प्रमुख अधिकारी को "मुक्ता" कहते थे। यह अपने क्षेत्र में व्यवहार में स्वतंत्र अधिकारी था। इसके प्रमुख कार्य राजाज्ञाओं को कार्यान्वित करना, युद्ध के समय सुलतान को सहायता के लिए सेना भेजना, राजस्व कर वसूल करना, शासन का व्यय वहन कर शेष आय केन्द्रीय सरकार के पास भेजना आदि थे।

कई जिलों को मिलाकर "खालसा" बनता था। खालसा की भूमि और जिले सीधे सुलतान के शासन प्रबन्ध में रहते थे। इनका राजस्व कर सीधे केन्द्रीय विभाग के द्वारा सुलतान वसूल कराते थे। इनका भूमिकर इकतों के लगान से कई गुना अधिक होता था।

दास सुलतानों का प्रशासन सुगठित और निर्दिष्ट नहीं था और उसमें एकरूपता का अभाव था। उसमें ढीलापन था, परन्तु वह दिल्ली के खिलजी और तुगलक नरेशों तथा मुगल सम्राटों के शासन की आधार शीला था।

सारांश

कैकुबाद का राज्यारोहण व उसकी प्रतिक्रिया—सुलतान बलबन की मृत्यु के बाद उसके पुत्र बुगराखां का लड़का कैकुबाद सुलतान बनाया गया। बलबन की इच्छा थी कि उसका उत्तराधिकारी उसके ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद का पुत्र कैखुसरो बने, अमीरों और सरदारों ने नहीं मानी। राज्यारोहण के समय कैकुबाद की आयु सत्रह वर्ष की थी। बलबन के स्वयं के निरीक्षण में कैकुबाद का लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा होने से कैकुबाद बड़ा सरल, सद्भावी और पवित्र जीवन वाला व्यक्ति था। परन्तु राज्यारोहण के बाद सुलतान पद के वैभव ने उसे विलासी, दुश्चरित्र और भ्रष्ट कर दिया। राजसभा नाचरंग और सुरा-पान की महफिल बन गयी। फलत: शासन की बागडोर वकील-ए-दर निजामुद्दीन के हाथों आ गयी।

निजामुद्दीन का षड़यंत्र और उसका शासन—निजामुद्दीन के विरोधियों और प्रतिद्वंदियों ने कैखुसरो को सुलतान बनाना चाहा था। इसलिये निजामुद्दीन ने कैकुबाद को अपने प्रभाव में लेकर कैखुसरो को मुलतान से दिल्ली बुलवा लिया और मार्ग में उसकी हत्या करदी गयी। उसने वजीर ख्वाजा खाजीर को भी राजधानी से बहिष्कृत करवा दिया। बलबनकालीन अनेक स्वामीभक्त अमीरों और सरदारों पर राजद्रोह का अपराध लगाकर मरवा डाला। उसने अपनी पत्नि को राजमहल में सुलतान और रनवास को अपने वश में और प्रभाव में करने के लिये निवास के लिये भेज दिया। जब मंगोलों ने पंजाब पर आक्रमण कर लाहौर को लूट लिया तब निजामुद्दीन ने दिल्ली के समीप बसे मंगोलों पर यह दोष लगाकर कि वे आक्रमणकारी मंगोलों से पत्र व्यवहार कर रहे थे, उनमें से अनेकों की हत्या करवा दी। निजामुद्दीन सफल, दृढ़ शासक था। उसने केन्द्रीय सत्ता की अवहेलना करने वालों को कठोरता से दंडित किया। परन्तु वह कैकुबाद की हत्या कर स्वयं सुलतान बनना चाहता था। उसकी क्रूर नीति और कुकृत्यों से सभी असन्तुष्ट हो गये और राजसभा व प्रशासन में दो दल बन गये थे—एक खिलजी अमीरों का दल जिसके नेता फिरोज खिलजी था और दूसरा तुर्की अमीरों का दल जिसका नेता स्वयं निजामुद्दीन था। खिलजी अमीरों का प्रभाव और उनकी शक्ति अधिक होने से निजामुद्दीन उन्हें विध्वंस करने के लिये दृढ़ संकल्प था।

बुगराखां और कैकुबाद की भेंट—बलबन का पुत्र बुगराखां बंगाल का स्वतंत्र शासक हो गया था और उसका पुत्र कैकुबाद दिल्ली का सुलतान। उसने कैकुबाद की विलासप्रियता और अकर्मण्यता से उद्विग्न होकर पत्रों द्वारा उसे अपनी स्थिति संभालने के लिये लिखा, परन्तु इसका कोई प्रभाव न गिरने से बुगराखां ने निजामुद्दीन के कुचक्रों का अन्त करने, और कैकुबाद को सन्मार्ग पर लाने के लिये दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। निजामुद्दीन के अत्यधिक विरोध करने के बावजूद भी कैकुबाद और बुगराखां में सरयू नदी के तट पर शाही शान शौकत से भेंट हुई और बुगराखां ने एक अधीनस्थ शासक के समान नतमस्तक होकर कैकुबाद का अभिवादन किया। बाद में उसने कैकुबाद को निजामुद्दीन के चंगुल से मुक्त होने, अपनी स्थिति को संभालने, सच्चरित्रवान होने और प्रशासन की ओर ध्यान देने का परामर्श दिया।

निजामुद्दीन की हत्या और कैकुबाद का वध—दिल्ली लौटने पर कैकुबाद ने निजामुद्दीन के कुकृत्यों का अनुभव करके उसे दिल्ली से मुलतान स्थानान्तरित कर दिया। पर इसके वहां न जाने पर उसके विरोधियों ने यह अनुभव कर लिया कि सुलतान उसे हटाना चाहता है, इसलिये उन्होंने निजामुद्दीन की हत्या कर दी। इसी बीच सुलतान ने खिलजियों के नेता जलालुद्दीन को दिल्ली बुलाकर उसे प्रमुख सैनिक अधिकारी नियुक्त किया। इससे खिलजी अमीरों की शक्ति और सत्ता में खूब अभिवृद्धि हुई। फलतः तुर्की सरदार अत्यन्त ही रुष्ठ हो गये और उन्होंने खिलजी नेता जलालुद्दीन और उसके समर्थकों का वध करने का षड्यन्त्र रचा। इसी बीच जलालुद्दीन ने सुलतान कैकुबाद के महल पर अधिकार करके उसका वध करवा दिया और उसके पुत्र कैमूर्स को सुलतान बना स्वयं उसका संरक्षक हो गया। थोड़े समय बाद कैमूर्स को कारावास में डाल दिया गया जहां शीघ्र उसकी मृत्यु हो गयी और जलालुद्दीन अब दिल्ली का सुलतान हो गया। इससे दिल्ली सल्तनत पर खिलजी वंश का अधिकार हो गया।

दास वंश के पतन के कारण—(१) दास वंश के सुलतान और उनके समर्थक तुर्की सरदार भारत में विदेशी माने जाते थे। उनके विदेशी प्रशासन और उसके सिद्धान्तों का भारतीयों ने दृढ़ता से विरोध किया। (२) दास सुलतान स्वेच्छाचारी, निरकुंश और अनियंत्रित थे। उनके ऐसे शासन का आधार सुलतान का व्यक्तित्व, योग्यता और सैनिक शक्ति होती थी। इल्तुतमिश और बलबन के बाद इसका अभाव रहा। निकम्मे, अयोग्य, शक्तिहीन सुलतानों से सत्ता का पतन हो गया। सुलतानों में प्रशासकीय और रचनात्मक प्रतिभा नहीं होने से दिल्ली राज्य सुव्यवस्थित और संगठित न हो पाया, अपितु उसमें संघर्षों, षड्यंत्रों और अराजकता का बाहुल्य हो गया। (३) सैनिक शक्ति और दृढ़ केन्द्रीय सत्ता, सल्तनत का आधार था। जब सैनिक शक्ति दुर्बल हो गयी, सुलतान निकम्मे और क्षीण शक्तिवाले हो गये और केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो गयी तो प्रांतीय शासक स्वतत्र हो गये और सल्तनत का पतन हो गया। (४) जब महत्वाकांक्षी और स्वार्थ लोलुप अमीरों और सरदारों की शक्ति का खूब उत्कर्ष हुआ, तब उन्होंने षड्यंत्र किये, गुटबाजी बढ़ी और सुलतान उनके हाथों में कठपुतली बन गया। उसे पदच्युत भी कर दिया जाता था। इससे सल्तनत स्थायी नहीं हो सकी। (५) दास वंश के अधिकांश सुलतान शक्तिहीन, निकम्मे, अयोग्य, और विलासी होते थे। उस सैनिक अशांति और राजनैतिक अस्तव्यस्तता के युग में ऐसे सुलतानों के होने से, सल्तनत का पतन शीघ्र हो गया। (६) निरन्तर मंगोल आक्रमणों का सामना करने, उनसे युद्ध करने के लिये सीमान्त क्षेत्र में सूबेदारों व हाकिमों के पास सुलतान विशाल सेना रखता था। सुलतान के दुर्बल होने पर इन्होंने अपनी सैनिक शक्ति और अधिकारों का उपयोग सुलतान के विरुद्ध विद्रोह और षड्यंत्र करने में किया इससे राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया। (७) दिल्ली सुलतानों ने हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता, अनुदारता और क्रूरता की नीति अपनाई, उनके साथ अमानुषिक व्यवहार कर उनका भीषण नर-संहार किया। फलतः हिन्दुओं और विशेषकर राजपूतों ने अनेकानेक विद्रोह और उपद्रव किये

जिनके दमन में सुलतानों की शक्ति खोखली हो गयी। (८) सुलतानों ने न तो पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था की और न दृढ़ सीमान्त नीति अपनाई, इससे विदेशी आक्रमणों से दिल्ली राज्य निर्बल हो गया। (९) दास प्रथा प्रचलित होने से सुलतान के कई दास ऊंचे पदों पर पहुंच जाते थे। इससे वे गुटबंदी बनाकर विद्रोह करते थे जिससे राज्य की शक्ति को गहरा आघात लगता था। (१०) उत्तराधिकार का कोई निश्चित, दृढ़ नियम नहीं होने से सुलतान की मृत्यु के बाद संघर्ष, षड़यंत्र और हत्याएँ होती थीं जिससे राज्य की शक्ति क्षीण होती थी। (११) अमीरों, सरदारों और हाकिमों में तुर्क, खिलजी, तथा विभिन्न कबीलों और जातियों के लोग होते थे जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रतिस्पर्धा और संघर्ष करते थे और यह राज्य के लिये घातक होता था। (१२) सुलतानों ने विद्रोहों का बर्बरता और नृशसता से दमन किया, इससे अवशिष्ट विद्रोही सदा के लिये राज्य के घोर शत्रु हो गये। (१३) बलबन ने सत्ता का अपने हाथों में केन्द्रीकरण करके किसी भी राजकुमार या अधिकारी को सुयोग्य शासक बनने का अवसर नहीं दिया। यह ऐसी कमी थी जिससे बलबन के बाद सल्तनत का पतन हो गया। (१४) दास सुलतानों में लोक कल्याण और आर्थिक उन्नति की भावना का अभाव था। इससे वे जनता की श्रद्धा, भक्ति और सद्भावना नहीं प्राप्त कर सके। (१५) सुलतान कैकुबाद अपने दुर्बल व्यक्तित्व, विलासिता, और अनुभवहीनता के कारण खिलजियों और तुर्कों के पारस्परिक संघर्षों को रोकने और राज्य के पतन को अवरुद्ध करने में असमर्थ रहा।

दास सुलतानों का शासन-प्रबंध

दास सुलतानों का शासन निरकुंश इस्लामी राजतंत्र था। इसमें जनता के सहयोग, सहायता, सद्भावना का अभाव था। सुलतान ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। इससे निरकुंश राजतंत्र की अभिवृद्धि हुई। उत्तराधिकार के लिये न तो कोई दृढ़ निर्दिष्ट नियम थे और न कोई निर्धारित प्रणाली ही। सुलतान पूर्णरूपेण प्रभुत्व संपन्न होता था। राज्य के समस्त अधिकार और सत्ता उसके हाथों में निहित होते थे। पर धार्मिक मामलों में वह उलमाओं का परामर्श और कुरान के नियमों को मानता था। सिद्धान्त या दास सुलतान खलीफा के अधीन माने जाते थे। दूसरे राज्यों को जीतना, सल्तनत की सीमाओं में वृद्धि करना, विद्रोहों का दमन करना शांति-व्यवस्था बनाये रखना, कर वसूल करना, आदि सुलतान के प्रमुख कर्तव्य थे। हिन्दुओं और गैर-मुस्लिम जनता पर अत्याचार किये जाते थे और उन्हें राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित किया जाता था। राज्य में न्याय की व्यवस्था थी। सुलतान सर्वोच्च न्यायाधीश था। न्याय-दान के लिये [illegible]जी, और अमीर-ए-दाद नामक अधिकारी होते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतें न्याय का कार्य करती थीं। राज्य की सेना में प्रांतीय हाकिमों द्वारा भेजे गये सैनिक होते थे। सेना में सुलतान के अंगरक्षक धर्म सेना, स्वयं सेवकों की सेना पदाति, अश्वारोही, ऊंट और हाथी होते थे। दीवान-ए-आरिज प्रमुख सेनाधिकारी होता था। सैनिकों को प्रायः नगद वेतन की अपेक्षा जागीरें दी जाती थीं। मंगोलों के आक्रमणों का रोकने के लिये विशेष सेना और

दुर्गों की व्यवस्था की गयी थी। विभिन्न कर और हिन्दू राज्यों की लूट से प्राप्त धन राज्य की आय के प्रमुख साधन थे। राज के प्रमुख मंत्री और उच्च अधिकारियों में वजीर आरिज-ए-मुमालिक, दीवान-ए-इंशा, दीवान-ए-रसालत, फरीद-ए-मुमालिक, सद्र-उस-सदूर, वकील-ए-दर, अमीर-ए-हाजिब, अमीर-ए-आखूर, शाहन-ए-पीलां, सार-ए-जानदार, अमीर-ए-शिकार, नायब-ए-मुमालिक आदि होते थे। प्रांतों के सूबेदार और हाकिम होते थे। प्रांत को इकता और उसके प्रमुख अधिकारी को मुक्ता कहते थे। दास सुलतानों का शासन अगठित और ढीला था, उसमें एकरूपता, व निर्दिष्टता का अभाव था।

दास वंश के पतन के कारण

सुलतानों संबंधी कारण	**सामन्तों सम्बन्धी कारण**	**नीति सम्बन्धी कारण**	**अन्य कारण**
१. सुलतानों और उनके प्रशासन का विदेशीपन २. निरकुंश स्वेच्छाचारी शासन और राजतंत्र ३. सैनिक शक्ति और दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव ४. अयोग्य, विलासी, निकम्मे, शक्तिहीन सुलतान ५. बलबन का उत्तरदायित्व ६. कैकुबाद का दुर्बल व्यक्तित्व	१. सरदारों, अमीरों की शक्ति का उत्कर्ष, उनके षड़यंत्र, विद्रोह २. सरदारों, अधिकारियों में विभिन्न जातियां व दलबन्दी	१. दृढ़ सीमान्त नीति का अभाव २. हिन्दुओं के प्रति क्रूरता और नृशंसता ३. उत्तराधिकार के नियम का अभाव ४. विद्रोहियों का नृशंसता से दमन ५. जन-हित की भावना व आर्थिक नीति का अभाव	१. मंगोलों के आक्रमण २. दास प्रथा के दुष्परिणाम

दास वंश का शासन-प्रबंध

केन्द्रीय शासन

१. निरंकुश इस्लामी और सैनिक राजतंत्र
२. दैवी अधिकार का सिद्धान्त और सुलतान की शक्ति
३. सुलतान के अधिकार व सत्ता और उन पर नियंत्रण
४. सुलतान के कर्तव्य
५. न्याय-व्यवस्था
६. सैन्य-व्यवस्था
७. राज्य की आय-व्यय
८. विभिन्न मंत्री और पदाधिकारी

प्रांतीय शासन

१. प्रांत—"इक्ता" पदाधिकारी "मुक्ता"
२. "खालसा" भूमि, उसकी आय
३. प्रांतपतियों के अधिकार और कर्तव्य

नीति

१. उत्तराधिकार के नियम का अभाव
२. खलीफा से संबंध
३. गैर मुस्लिम जनता पर अत्याचार, नियंत्रण
४. अव्यवस्थित ढीला प्रशासन

अध्याय १२
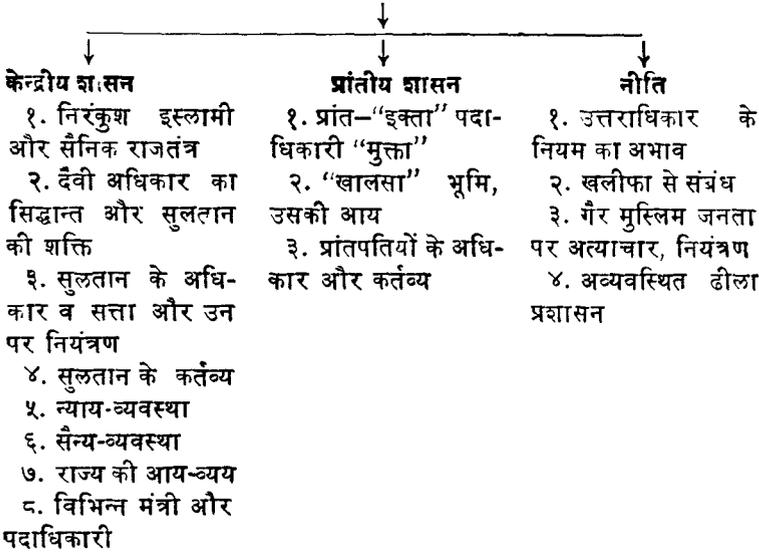
दिल्ली सल्तनत का चरम उत्कर्ष और संगठन

(अ) खिलजी साम्राज्यवाद

खिलजी राजवंश (सन् १२६० से १३२०)—जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने दासवंश के अन्तिम अवयस्क सुलतान का वध करवाकर स्वयं दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हो गया और दिल्ली में एक नये राजवंश, खिलजी वंश, का राज्य स्थापित किया। इस राजवंश मे जलालुद्दीन, अलाउद्दीन, कुतुबुद्दीन, मुबारकशाह और खुसरोखां सुलतान हुए। इन्होंने सन् १२६० से १३२० तक राज्य किया। यह युग और अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल दिल्ली सल्तनत के चरम उत्कर्ष का समय है। इस युग में खिलजी सुलतानों के साम्राज्यवाद और सैनिक शासन तंत्र के अन्तर्गत दिल्ली सल्तनत का खूब विकास और संगठन हुआ। इसलिए दिल्ली सल्तनत के इतिहास में खिलजियों का बड़ा महत्व है।

खिलजी कौन थे—खिलजियों की उत्पत्ति एक विवादपूर्ण विषय है। इनके विषय में इतिहासकारों और विद्वानों में मत-वैभिन्य है। तत्कालीन इतिहासकार कभी इस विषय में एक मत नहीं हैं। कुछ विद्वान खिलजियों को तुर्कों से भिन्न मानते हैं। इसमें निम्नलिखित विशिष्ट महत्व के हैं।

(१) समकालीन इतिहासकारक जियाउद्दीन बरनी ने अपने ग्रंथ तारीख-ए-फिरोजशाही में जलालुद्दीन का वर्णन करते हुए लिखा है कि खिलजी तुर्कों से भिन्न जाति के थे। खिलजी होने से जलालुद्दीन तुर्कों पर विश्वास नहीं करता था।

(२) पाश्चात्य विद्वान विंसेंट स्मिथ ने भी खिलजियों के तुर्कों से भिन्न अफगान या पठान माना है।

ये दोनों ही मत भ्रम मूलक हैं। बरनी खिलजियों को तुर्कों से भिन्न तो मानता है पर उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि खिलजी कौन जाति के थे, उनका मूल निवास स्थान क्या था और वे भारत में कैसे आये। बरनी के जीवन काल के पहिले से ही दिल्ली सल्तनत में तुर्क और खिलजी परस्पर विरोधी और प्रतिद्वन्दी थे तथा वे एक साथ परस्पर हिल-मिल कर नहीं रह सकते थे। इसलिए बरनी ने यह निष्कर्ष निकाला कि खिलजी और तुर्क अलग-अलग जाति के लोग थे। यह उसका भ्रम था। स्मिथ ने खिलजियों को अफगान या पठान बतलाया है क्योंकि भारत में आने के पूर्व खिलजी अफगानिस्तान में रह रहे थे और वे अफगानों के अनेक रीति-रिवाज अपना कर उनमें घुल-मिल गए। केवल दीर्घकाल के निवास के आधार पर खिलजियों को अफगान मान लेना तर्क संगत नहीं है।

खिलजी वास्तव में तुर्क थे—आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर तथा अन्य प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया है कि खिलजी वास्तव में तुर्क थे। इसके लिए निम्न-लिखित मत और प्रमाण हैं।

(१) तारीख-ए-फखरुद्दीन मुबारकशाही ग्रंथ के लेखक फखरुद्दीन ने लिखा है कि तुर्कों की चौंसठ जातियों में एकका नाम खिलजी था। तुर्कों की यह शाखा ईस्वी-सन् की चौथी सदी में अफगानिस्तान के दक्षिण भाग में बस गयी थी। दीर्घकाल तक वहाँ रहने से उन पर अफगान सभ्यता और संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अनेक अफगान परम्पराएँ, प्रथाएँ और आदतें अपना ली थीं। तेरहवीं शताब्दी की तीसरी दशाब्दी में अफगानिस्तान में मंगोलों के निरन्तर भयंकर आक्रमणों के होने से विवश होकर खिलजी भारत की ओर आगे बढ़े और कालान्तर में वे दिल्ली सल्त-नत की सेवाओं में आ गये। इसके पूर्व भी खिलजी गजनी के सुलतान महमूद और गोर के सुलतान मुहम्मद के आक्रमणों के समय उनकी सेनाओं के साथ भारत में आ गए थे।

(२) दसवीं सदी के अरब देश के एक भूगोल विशारद इब्नहौकल ने लिखा है कि खिलजी तुर्क थे और बहुत प्राचीनकाल से ही खिलजी हिन्दुस्तान तथा सिजि-स्तान के मध्यवर्तीय प्रदेश में बसे हुए थे। उनके रीतिरस्म, खान-पान, वेश-भूषा और रहन-सहन तुर्कों की भाँति ही थे। इससे भी खिलजी तुर्क प्रमाणित होते हैं।

(३) "हुदुदुल" के लेखक इसतरवारी और उसके अन्य समर्थक यह मानते हैं कि खिलजी तुर्क थे और प्राचीनकाल से ही अफगानिस्तान के खल्ज प्रदेश मे निवास करते थे।

(४) तबकाते नासिरी के लेखक मिनहाज-उस-सिराज का भी मत है कि खिलजी तुर्क थे और उन्होंने ख्वारिज्म के शाह की सेना में सैनिक पदों पर कार्य किया था। उन्होंने गोर गजनी के विभिन्न युद्धों में भी भाग लिया था।

(५) मेजर रेवर्टी (Major Raverty) ने अपने एक लेख मे (J. A. S. E. 1876 Part I page 36-37) मे तथा बारथोल्ड ने भी खिलजियों को तुर्क कबीले से सम्बन्धित माना है।

(६) अफगानिस्तान में हेल्मन्द नदी के दोनों तटों पर स्थित जो प्रदेश था उसे खल्ज कहते थे और वहाँ के निवासियों को खिल्जी कहा जाता था। खिल्जियों की इस प्रकार की तो उत्पत्ति ठीक हो सकती है पर इसमें यह स्पष्ट नहीं है कि वे कौन से कबीलों से सम्बन्धित थे।

(७) खिलजियों की उत्पत्ति के विषय में "तब कात-ए-अकबरी" के लेखक निजामुद्दीन अहमद का कथन है कि जलालुद्दीन खिलजी और महमूद खिलजी मंगोल नेता चंगेजखां के दामाद कल्जिखां के पौत्र थे जो अपने श्वसुर द्वारा ख्वारिज्म के शाह के परास्त किये जाने पर गोर और सरजिस्तान के पर्वतीय क्षेत्रों में अपने समर्थकों और साथियों सहित बस गया था। वह और उसके वंशज व अनुयायी कल्जि और वर्ण परिवर्तन से बाद में खल्जि और कालान्तर में निरन्तर प्रयोग मे आने के कारण खल्ज या खल्जि या खिलजी कहलाये। इसके बाद ही सुल्तान गोरी के भार-

तीय अभियानों के समय बहुसंख्यक खिलजी भारत में आ गए थे। प्रोफेसर किशोरी-रमणलाल ने निजामुद्दीन के उपरोक्त मत को नहीं माना है। क्योंकि निजामुद्दीन ने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि खिलजी सैनिक ख्वारिज्म के शाह की सेना में युद्ध कर चुके थे। इससे यह स्पष्ट है कि चंगेजखां के पूर्व ही खिलजी लोगों का अस्तित्व मध्य एशिया में था। इस मत की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि गजनी के इतिहास मे सुबुक्तगीन और महमूद के शासनकाल के वर्णन मे खिलजी लोगों का उल्लेख अनेक स्थानों पर है और गजनी के राज्य का अस्तित्व चंगेजखां के पूर्व ही था।

(८) "सलजूकन्नमा" के रचयिता के अनुसार खिलजी लोग तुर्क थे। ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद ने इसका उल्लेख किया है।

(९) प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता का कथन है कि सलजुक तुर्कों के इतिहासकारों के आधार पर यह कहा जाता है कि यफस के पुत्र तुर्क के ग्यारह पुत्र हुए जिनमें से एक का नाम खल्ज था और इसके वंशज खिलजी कहलाये।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि खिलजी वास्तव में तुर्क ही थे। दीर्घकाल तक ये अफगानिस्तान में रहे। भारत पर आक्रमण करने वाले गजनवी और गोरी सुलतानों की सेनाओं में रहकर ये भारत आये और बाद में बहुसंख्यक खिलजी भारत में प्रवेश कर गए, विशेष करके दास सुलतान इल्तुतमिश के शासनकाल से ऐसा हुआ। इनमें से अनेक योग्य व्यक्ति दास सुलतानों की सेवाओं में नियुक्त हो गए। परन्तु अन्य तुर्की सरदारों का बाहुल्य और प्रभाव होने के कारण वे शासन में ऊँचे-ऊँचे पदों पर आमीन नहीं थे। खिलजियों में से कुछ ही ऐसे सरदार थे जो प्रभावशाली ऊँचे पदों पर थे। फलत: खिलजियों की राजनैतिक शक्ति नगण्य थी। इससे अनेक तुर्क सरदार और अधिकारी खिलजी सरदारों व पदाधिकारियों को हेय दृष्टि से देखते थे। धीरे-धीरे दिल्ली सल्तनत में खिलजियों का प्रभाव दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। उनकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर भारतीय तुर्क उनसे ईर्षा-द्वेष रखने लगे। सुलतान की दुर्बलता और तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का लाभ उठाकर खिलजियों ने शासन सत्ता अपने अधिकार में करने का प्रयास किया। फलत: सुलतान कैकुबाद की राजसभा और प्रशासन में दो शक्तिशाली और प्रतिद्वन्दी दलों का उत्कर्ष हो गया था—एक तुर्कों का दल और दूसरा खिलजियों का दल। अन्त में खिलजियों ने जलालुद्दीन के नेतृत्व में विजय प्राप्त की और सिंहासन पर अपना अधिकार जमाकर खिलजी साम्राज्यवाद का सूत्रपात किया।

सुलतान जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (सन् १२९०-१२९६)

जलालुद्दीन का प्रारम्भिक जीवन और पदोन्नति—जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के पूर्वज भारत में आकर निवास करने लगे थे और दिल्ली के सुलतानों के यहां विभिन्न पदों पर कार्य करते थे। जलालुद्दीन फिरोज ने सुलतान नासिरुद्दीन महमूद-शाह अथवा सुलतान बलबन के शासनकाल में शाही शासकीय क्षेत्र में प्रवेश किया और सेना में भरती हो गया। उसने धीरे-धीरे अपनी योग्यता, बुद्धिमानी, परिश्रम और प्रतिभा से अपनी पदोन्नति कर ली। बलबन के शासनकाल मे वह उत्तरी-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा करने वाली सेना में पदाधिकारी था। बलबन द्वारा नियुक्त

सीमावर्ती प्रदेशों की मंगोलों के आक्रमणों से रक्षा करने वाले सेनापतियों में उसका महत्वपूर्ण स्थान बन गया था। बलबन ने जिन सेनापतियों को सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया था, उनमें जलालुद्दीन भी था।

सुल्तान कैकुबाद के शासनकाल में वह सुलतान के अंगरक्षकों का प्रमुख अधिकारी (सरजानदार) नियुक्त किया गया था। इसके पश्चात् वह सीमान्त क्षेत्र में समाना का सूबेदार नियुक्त किया गया। अब उसने वहाँ एक शासक और सैनिक के रूप में मंगोल आक्रमणकारियों का सफलतापूर्वक सामना करके उन्हे परास्त करने में अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की। सुलतान कैकुबाद के शासनकाल में वजीर निजामुद्दीन के पतन के पश्चात् जलालुद्दीन की सेवाओं से प्रसन्न होकर कैकुबाद ने उसे "शाइस्ताखां" की उपाधि से विभूषित किया और उसे युद्ध-मंत्री नियुक्त किया। अब उसके सम्मुख उन्नति करने और शक्ति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। वह खिलजी कबीले का नेतृत्व भी करता था। इससे उसके प्रभाव क्षेत्र में भी वृद्धि हुई। इससे समस्त खिलजी सरदार, कुछ असन्तुष्ट और अवसरवादी तुर्क सरदार, बहुसंख्यक तुर्केतर मुसलमान, अमीर, सरदार पदाधिकारी आदि उसके समर्थक हो गए। अनेक महत्वाकांक्षी खिलजी नवयुवकों ने जलालुद्दीन को राजसत्ता हस्तगत करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस समय वास्तव में महत्वाकांक्षी जलालुद्दीन के लिए शासन-सत्ता को अपने अधिकार में करने का स्वर्ण अवसर था। सुलतान कैकुबाद को लकवा मार गया था और साम्राज्य की शासन-व्यवस्था शिथिल हो गई थी। जलालुद्दीन ने इस अवसर का लाभ उठाया। तुर्की सरदारों ने खिलजियों की बढ़ती हुई शक्ति का अन्त करने और जलालुद्दीन और उसके साथियों व समर्थकों का वध करने के लिए एक गुप्त षड्यंत्र रचा और कैकुबाद के अल्पवयस्क पुत्र को सुलतान बनाकर राजसत्ता अपने हाथ में कर ली। जलालुद्दीन को इस षड़यंत्र का पता लग गया था। इसलिए उसने तुर्कों के नेता एतमार कच्छन को मार डाला और राजमहल को अपने अधिकार में करके वह बालक सुलतान का संरक्षक बन गया। इस समय सुलतान कैकुबाद विलासिता पूर्ण निकम्मे जीवन का दुष्परिणाम लकवे की भयंकर बिमारी के रूप में भोग रहा था और वह अत्यन्त ही शक्तिहीन और प्रभावहीन हो गया था।

ऐसी तत्कालीन परिस्थितियों और शोचनीय राजनैतिक दशा से तथा अपने समर्थकों की प्रेरणा व प्रोत्साहन से बाध्य होकर जलालुद्दीन ने कैकुबाद की हत्या करवा दी और उसके उत्तराधिकारी अवयस्क पुत्र का भी अन्त करवा दिया और स्वयं सुल्तान बन गया।

जलालुद्दीन का राज्यारोहण—१३ जून सन् १२९० को जलालुद्दीन ने फिरोजशाह खिलजी की उपाधि धारण की और ७० वर्ष की अवस्था में वह सिंहासनारूढ़ हुआ। राजहंता होने के कारण जलालुद्दीन तुर्की अमीरों के डर से दिल्ली नहीं गया, अपितु दिल्ली के समीप ही किलोखड़ी के राजभवन में उसने अपना राज्याभिषेक करवाया और वह कुछ समय तक वहीं रहा। यह राजमहल सुलतान कैकुबाद ने निर्मित किया था। यह अपूर्ण रह गया था इसलिये जलालुद्दीन ने इसे पूर्ण करवाने के आदेश प्रसारित किये। उसने यह निर्णय किया कि वह दिल्ली के स्थान पर किलो-

खड़ी को अपनी राजधानी बनाकर वहीं निवास करेगा। इसी बीच दिल्ली नगर के अनेक साधारण, कुलीन, सैनिक, व्यापारी अपने-अपने समूहों और साथियों के साथ किलोखड़ी आकर सुलतान जलालुद्दीन के दरबारे-आम के दर्शन करते थे। इससे प्रभावित होकर और तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करके जलालुद्दीन ने अपने मलिकों, अमीरों, राजकीय पदाधिकारियों, संबंधियों तथा दिल्ली नगर के संपन्न और सम्मानित नागरिकों को किलोखड़ी में स्थायी निवास करने और वहां अपना भवन निर्माण करने के लिये आग्रहपूर्ण आज्ञा प्रसारित की। उसने व्यापारियों और व्यवसायियों को भी किलोखड़ी के जिसे अब शहर-ए-नव कहा जाता था, हाट, बाजार और चौराहों की अभिवृद्धि करने हेतु प्रोत्साहित किया था। उसने स्वयं भी किलोखड़ी में ऊँचा पाषाण का हिसार (चार दिवारी) भी निर्मित किया था।

जलालुद्दीन की प्रारम्भिक अलोकप्रियता के कारण—सुलतान कैकुबाद की हत्या करके सहसा राजवंश में परिवर्तन करके जलालुद्दीन के सुलतान बनने के कारण से प्रारम्भ में वह अत्यधिक बदनाम और अलोकप्रिय हो गया था। लोग उसे अपहरण-कर्ता कहने लगे थे। उसकी इस प्रारंभिक अलोकप्रियता के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) जलालुद्दीन ने हत्याएँ करके सुलतान का सिंहासन प्राप्त किया था। इसलिए उसके इस घृणित कार्य से प्रजा रुष्ट थी। जलालुद्दीन और उसके समर्थकों की इस कृतघ्नता का अशुभ प्रभाव जन-साधारण पर पड़ा। लोग इस राजहंता को प्रजा-हंता समझने लगे। उनकी यह धारणा थी कि जलालुद्दीन ने बरबस राजसत्ता का अपहरण किया है।

(२) जलालुद्दीन में उच्चकुलीनता और श्रेष्ठतम सम्मान तथा प्रतिष्ठा नहीं थी। उसका जन्म श्रेष्ठ उच्चकुल में नहीं हुआ था और उसके पूर्वज भी शाही नौकरियों में निम्न पदों पर ही नौकरियां और सेवाएँ करते रहे। जन-साधारण किसी राजवंश के व्यक्ति को ही सुलतान देखना चाहती थी। सरदारों और अमीरों की भी यही धारणा थी कि सुलतान के सिंहासन पर कोई उच्चकुलीन श्रेष्ठतम और सुयोग्य व्यक्ति ही बैठ सकता है।

(३) दास सुलतानों के शासनकाल में और तुर्कों की सत्ता में जनता ने जो कष्ट सहन किए थे, उन्हें वह विस्मरण नहीं कर पायी थी। जैसी भी असह्य स्थिति थी उसमें वह रहने को तैयार थी। नया परिवर्तन करके उससे भी दयनीय और दुख-प्रद स्थिति में वह रहने को तत्पर नहीं थी।

(४) बलबन ने सल्तनत को सुदृढ़ कर राज्य में शांति और व्यवस्था स्थापित की थी। प्रजा ने और सरदारों तथा अमीरों ने यह अनुभव कर लिया था और उनकी यह धारणा भी थी कि बलबन के वंशज अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रजापालक हो सकेंगे और वे ही राज्य में शांति, विधि और सुव्यवस्था शीघ्र ही स्थापित कर सकेंगे। वे नए अधिकारी और सुलतान से शीघ्र ही सुदृढ़ीकरण और शांति व्यवस्था की स्थापना करने की आशा नहीं करते थे।

(५) तुर्कों और खिलजियों में पहिले से ही प्रतिद्वन्द्विता, ईर्षा, द्वेष और वैमनस्य था और तुर्क, खिलजियों को हेय और घृणा की दृष्टि से देखते थे। तुर्क अमीर,

सरदार और पदाधिकारी यह सहन नहीं कर सकते थे कि कोई तुर्केतर जाति का निम्न श्रेणी का व्यक्ति सुलतान के सिंहासन पर आसीन हो।

(६) तेरहवीं सदी के अशांति और सैनिक शक्ति के युग के राजा या शासक के जो गुण चाहिए थे, वे जलालुद्दीन में नहीं थे। वृद्ध और जीर्ण शरीर होने से उसमें न तो वह शक्ति और न वह उत्साह और प्रेरणा थी जो एक नवयुवक सुलतान में होती है। जलालुद्दीन अपनी दुर्बलताओं को भलिभांति जानता था।

(७) जलालुद्दीन एक दयालु, उदार और ढीले हृदय का व्यक्ति था। उसमें उदारता, नम्रता और सहृयता विद्यमान थी। व्यर्थ रक्त बहाने तथा युद्ध करने से उसे घृणा था। उसके इस ढीलेपन और उदारता के कारण असन्तुष्ट अमीरों में विद्रोह फैल रहा था। प्रथम, जलालुद्दीन ने गैर कानूनी और नाजायज तरीके से राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया था। इस कारण तुर्क सरदारों में उसके विरुद्ध भयंकर क्षोभ था। द्वितीय, अब उसकी कायरता और ढीलेपन के कारण तुर्क सरदारों को विद्रोह और विरोध के अवसर मिले। इससे जलालुद्दीन की अलोकप्रियता में अधिक वृद्धि हो गयी।

सुलतान जलालुद्दीन के प्रारम्भिक कार्य—अपनी प्रारम्भिक अलोकप्रियता को दूर करने और अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उसने निम्नलिखित कार्य किए जिससे वह एक अपहरणकर्ता के स्तर से उठ कर सुलतान बन गया।

(१) उसने किलोखड़ी को अपनी राजधानी बनाने का निर्णय किया और उसने वहाँ व्यापारियों, व्यवसायियों, अमीरों और अपने सम्बन्धियों को बसने के लिए आमंत्रित किया।

(२) उसने प्रेम, वात्सल्य, नम्रता और सद्भावना के आधार पर शासन करना प्रारम्भ किया और उसने बड़ी उदार और सान्त्वना पूर्ण गृह नीति अपनाई।

(३) उसने तुर्कों को भी उच्च पदों पर आसीन किया तथा बलबन के राज्य के सरदारों की नियुक्ति में विशेष उथल-पुथल नहीं की और कुछ पदाधिकारियों को भी अपने पूर्व के पदों पर ज्यों का त्यों रहने दिया। इससे अनेक पदाधिकारी और सरदार जलालुद्दीन के समर्थक और विश्वासपात्र बन गए।

(४) विरोधियों को अपने पक्ष में करने के बाद और उदारता से पद और उपाधि वितरण करने के बाद सुलतान जलालुद्दीन ने दिल्ली के कोतवाल फखरुद्दीन के निमंत्रण पर दिल्ली में प्रवेश किया और राजभवन में पहुँचकर राजसिंहासन पर बैठा और उपस्थित दरबारियों के सम्मुख इसके लिए ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट की। इसके बाद वह बलबन के लाल महल की ओर गया और वहाँ बलबन के इस महल के द्वार तक पहुँच कर घोड़े से उतर पड़ा और उसी प्रकार नतमस्तक होकर महल में चला जिस प्रकार वह बलबन के जीवनकाल में वहाँ चला करता था। महल में प्रवेश करने पर उसने बलबनके सिंहासन पर बैठने की अनिच्छा प्रगट की। उसने महल के उस प्रत्येक स्थान का जहाँ पर वह सुलतान बलबन की सेवा किया करता था और उसके सम्मुख खड़ा रहता था, पूर्णरूपेण आदर किया और वहाँ बैठने की अपेक्षा मलिकों और सरदारों की पंक्ति में जाकर बैठ गया। महल में बलबन के वंश की दयनीय दशा का

स्मरण कर फूट-फूट कर रोने लगा और वहाँ उसने अपने विनम्र भाषण द्वारा सुलतान के पद की निस्सारता प्रगट की और स्वयं अपनी अयोग्यता और दुर्बलता का वर्णन करने लगा। जलालुद्दीन के इस व्यवहार को देखकर सभासद और अमीर उसकी सरलता, नेकनीयती, मृदु हृदय और दयालुता से प्रभावित हुए और वे उसके समर्थक बन गए।

जलालुद्दीन का उदारता से पद और उपाधि वितरण

(१) जलालुद्दीन तुर्की सरदारों व अमीरों का विश्वासपात्र बन जाना चाहता था।

(२) वह शासन में अधिक शक्तिशाली तुर्की सरदारों की उपेक्षा नहीं करना चाहता था। उसने अनुभव कर लिया था कि उनके समर्थन और सहयोग के अभाव में शासन-संचालन करना असम्भव था।

(३) वह अभिमानी एवं स्वतन्त्रताप्रिय तुर्की अमीरों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता था।

(४) वह यह नीति स्पष्ट करना चाहता था कि वह किसी वर्ग विशेष या जाति व कबीले विशेष से प्रभावित या निर्देशित नहीं है और न वह किसी वर्ग विशेष के सरदारों को ही अपने आश्रय व संरक्षण में रखना चाहता है।

(५) वह तुर्की, खिलजी तथा अन्य तुर्केतर सरदारों पर सामान्य रूप से पूर्ण अधिकार स्थापित करना चाहता था। वह सभी वर्ग के अमीरों, और पदाधिकारियों को अपने नियंत्रण में रखना चाहता था।

इसलिये जलालुद्दीन ने बड़ी दयालुता, उदारता और सद्भावना से अमीरों, मलिकों और पदाधिकारियों में उपाधियां वितरित कीं तथा उन्हें पदों पर आसीन किया। उसने तुर्की सरदारों और अमीरों को उनके उच्च पदों पर आसीन रहने दिया जिससे वे सुलतान के प्रति प्रेम, सद्भावना और कृतज्ञता से नत मस्तक हो जांय। उसने सुलतान बलबन के भतीजे मलिक छज्जू को पुनः कड़ा और माणिकपुर का शासक नियुक्त करके आशवस्त किया। मलिक फखरुद्दीन को भी पूर्ववत दिल्ली का कोतवाल नियुक्त किया और ख्वाजा खातीर को वजीर के पद पर आसीन रहने दिया गया। इस प्रकार उसने इन बलबनी वंश के समर्थकों को अपदस्थ न करके उनके हृदय जीत लिये।

जलालुद्दीन ने अपने पुत्रों को महत्वपूर्ण पद प्रदान किये। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र महमूद को खान-खाना की उपाधि देकर दिल्ली के समीप के क्षेत्र का शासक नियुक्त किया। उसने मझले पुत्र को अरकलीखां की उपाधि देकर कुछ समय बाद मुलतान का सूबेदार नियुक्त किया और सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा का भार उस पर डाला। उसने छोटे पुत्र को कद्रखां की उपाधि से विभूषित किया और अपने भाई मलिक खामोश को युगरुश की उपाधि देकर उसे अरजे मुमालिक का महत्वपूर्ण पद दिया। अपने चचा मलिकहुसैन को ताजुलमुल्क की उपाधि दी और अपने एक भतीजे अलमसबेग को उलुगखां की उपाधि दी। उसने अपने दूसरे भतीजे अलाउद्दीन को अमीर-ए-तुजक बनाया और उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर उसे कड़ा का हाकिम

बना दिया। उसने अपने एक संबंधी और भानजे मलिक अहमद चप को बारबक का पद दिया तथा मलिक खुर्रम को वकीलदार नियुक्त किया गया। अन्य उल्लेखनीय तथा प्रसिद्ध अमीर और मलिक जिनको उसने पद दिये थे, निम्नलिखित थे - मलिक ताजुद्दीन कुची, मलिक कमालुद्दीन अबुलमग्राली, मलिक नासिरुद्दीन कुहरामी, मलिक नुसरत सुबाह, मलिक सोंज, मलिक तरगी, मलिक एवाही, मलिक हिरनमार और मलिक कीर।

इस प्रकार पद वितरण और उपाधियों को बांटने में उसने खिलजी और तुर्क दोनों ही वर्गों का ध्यान रखा। फलत: सभी अधिकारी व अमीर उसके शासन की ओर आकर्षित होने लगे। धीरे-धीरे जलालुद्दीन के चरित्र के गुण, नेकी, उदारता, न्यायप्रियता, नम्रता आदि अमीरों व दिल्लीवासियों पर प्रगट होने लगे। उसके प्रति घृणा व निरादर के भावों का अंत हो गया।

जलालुद्दीन की नीति और उसकी समीक्षा—सुलतान जलालुद्दीन ने अपने पूर्ववर्ती शासकों से भिन्न गृह नीति अपनाई। बलबन से तो उसकी नीति पूर्णतया विभिन्न थी। उसने भय और आतंक (लोह व रक्त की नीति) को त्यागकर प्रेम, कृतज्ञता, भक्ति, सद्भावना और महिष्णुता के आधार पर अपनी शासन-व्यवस्था स्थापित की। उसने बड़ी उदार, महिष्णु और सांत्वनापूर्ण गृह नीति अपनाई। वह मनुष्य की पैशाचिकता का कठोरता से दमन करने की अपेक्षा उसके मानवी और दैवी अंग को प्रोत्साहित करना चाहता था। वह अपराधी को यातना और दंड देने की अपेक्षा उसे भविष्य में सुधार करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहता था। वह विद्रोही अमीरों को दंड देने की अपेक्षा उनके साथ अच्छाई व विनम्रता का व्यवहार करता था और उन्हें क्षमा कर देता था। वह पदाधिकारियों की नेकनीयती और भलमनसाहत पर विश्वास करके उनका विश्वास, भक्ति और श्रद्धा प्राप्त करना चाहता था। वह विद्रोहियों को कुचलने और आक्रमणकारियों से युद्ध करने के लिये तत्पर रहता था, पर वह व्यर्थ में रक्त को बहाना नहीं चाहता था। वह कहा करता था कि "मैं उन बंधे हुए आदमियों की हत्या नहीं कर सकता, जो मेरे सामने लाये जाते हैं, हाँ युद्ध में अवश्य रक्तपात कर सकता हूँ। किसी का वध करते समय मुझे यह चिन्ता होती है कि किस प्रकार उसे बाल्यकाल में दूध पिला-पिलाकर पाला गया और बीस वर्षों में युवक हुआ, तो अब किस दिल से उसका वध करवा दिया जाय।" जलालुद्दीन की यह दृढ़ धारणा थी कि उदारता और सद्भावना की नीति का प्रतिफल भी श्रेष्ठ मिलेगा, क्योंकि मनुष्य में उदात्त और कोमल भावनाओं का बाहुल्य है।

जलालुद्दीन की इस असीम उदारता और सांत्वना की नीति को, उसकी रक्तपात की अवहेलना की नीति को, उसकी कायरता का परिचायक समझा गया। तत्कालीन खिलजी अमीरों ने भी उसकी इस नीति की कटु आलोचना की है और कुछ आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि जलालुद्दीन वृद्ध होने से सठिया गया था और उसकी बुद्धि कुन्द हो गयी और मस्तिष्क की शक्ति कुंठित हो गयी थी। वह बादशाही ऐश्वर्य और निरंकुशता का प्रदर्शन नहीं कर सका। यद्यपि वह सुलतान बन गया था, पर उसमें लेशमात्र भी गर्व नहीं था। उसमें सुलतानी वैभव की भावना नहीं थी। अपनी

इस मितव्ययता और सरलता से वह राजसत्ता धारण करने के सर्वथा अयोग्य था। राज व्यवस्था के लिये अत्यधिक दान और पर्याप्त व्यय की आवश्यकता होती है। जलालुद्दीन न तो दिल खोल कर खर्च करता था और न बादशाहों की भांति दान करता और उपहार देता था।

तेरहवीं सदी में तलवार और ताकत पर सल्तनत आधारित थी। उस युग में शुद्धता, उदारता, सांत्वना, कृतज्ञता, सहृदयता, आदि शासन के अस्त्र नहीं थे। अपितु क्रूरता, कठोर दंड, आतंक, भय, निर्दयता, आदि प्रमुख अस्त्र और साधन थे। जलालुद्दीन ने इन्हें नहीं अपनाया। उसने प्रारम्भ में ही बादशाही के कार्य और शान-शौकत की ढाल पटक दी तथा रक्तपात से घृणा प्रगट की। जलालुद्दीन के गुणों ने और उसकी नीति ने उसे असफलता की ओर ढकेल दिया। उसमें उन गुणों और दृढ़ नीति का अभाव था जिनका तेरहवीं सदी के शासक में होना नितांत आवश्यक था, विशेष रूप से जब राज्य में षड़यंत्रकारी विद्रोही प्रवृत्तियों का बोलबाला था और मंगोल आक्रांता सीमावर्ती क्षेत्रो पर मंडरा रहे थे। जलालुद्दीन की इस नीति की असफलता अवश्यंभावी थी। उसकी नीति से लोगों के हृदयों में राजभक्ति के प्रति अश्रद्धा और असन्तोष उत्पन्न हो गया। उसकी नीति दोषयुक्त थी। खिलजी सामन्त एक युद्धप्रिय, न्यायप्रिय और अद्वितीय शान-शौकत से युक्त सुलतान चाहते थे और इसीलिये अलाउद्दीन के नेतृत्व में विद्रोह हुआ और दयालु तथा संदेह रहित वृद्ध सुलतान का वध कर दिया गया।

जलालुद्दीन की विदेशी नीति भी उसकी निर्बलता, असावधानी और लापरवाही से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। उसका रणथंभोर का आक्रमण असफल रहा। राजपूतों ने उसका कड़ा प्रतिरोध किया जिसके फलस्वरूप जलालुद्दीन ने वहां से यह कह कर अपनी सेनाएँ हटालीं कि "वह दुर्ग का मूल्य एक मुसलमान के उत्तराधिकारी के मूल्य के समान भी नहीं समझता।"

हिन्दुओं के प्रति जलालुद्दीन की असहिष्णुता और धार्मिक कट्टरता की नीति—सुलतान जलालुद्दीन अपनी विनयशीलता, सहृदयता, और दयालुता के लिये प्रसिद्ध है। परन्तु उसके ये गुण मुसलमानों तक ही सीमित थे। गैर-मुस्लिमों के प्रति तो वह असहिष्णु और अनुदार था। वह हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा, भजन, मनन-चिंतन आदि का घोर विरोधी था। वह उन्हें ऐश्वर्य मे रहने तथा सुन्दर वस्त्र और आभूषण भी नहीं पहिनने देना चाहता था। वह उन्हें राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित करना चाहता था। मुस्लिम इतिहासकार बर्नी ने जलालुद्दीन की इस नीति और उसकी हिन्दू विरोधी भावनाओं को अहमद चाप के साथ हुई चर्चा में वर्णन किया है। बर्नी के अनुसार परामर्श व वार्तालाप के समय सुलतान ने अहमद चाप को उत्तर दिया—

"ऐ अहमद........इस्लाम के उन बादशाहों ने (सुलतान महमूद तथा सुलतान सजर) दीन की रक्षा तथा धर्म का पालन किया है। तूने नहीं सुना है कि महमूद के इन विस्तृत साम्राज्य मे किसी बेदीन तथा काफिरों को निवास करने की आज्ञा नही थी। उस धर्मनिष्ठ तथा दीन के आश्रयदाता बादशाह के बल और वैभव के कारण

इस्लामी विधि विधान अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। मूर्ति-पूजा का विनाश कर दिया गया था। सुलतान संजर के राज्य में सभी लोग इस्लाम का कलमा पढ़ने लगे थे.........। ऐ मूर्ख ! तू स्वयं को बहुत बड़ा इस्लाम का धर्मानुयायी मानता है, परन्तु यह नहीं देखता कि वे हिन्दू, जो खुदा और मुस्तफा के दुश्मन है प्रतिदिन बड़े ठाट-बाट तथा शान-शौकत से मेरे महल मे होकर जमुना तट पर जाते है, मूर्ति-पूजा करते हैं और शिर्क तथा कुफ्र के आदेशों का हमारे सामने ही प्रचार करते हैं, हम इतने बेहया हैं कि जो अपने आपको बादशाह कहते हैं, पर उनका कुछ नहीं बिगाड पाते। उन्हें हमारा, हमारे अधिकार तथा बल का कोई भय नही है। यदि मैं इस्लामी बादशाह होता और सच्चा बादशाह अथवा शाहजादा होता तथा दीन की रक्षा करने वाले बादशाहों का बल-वैभव अपने मे पाता तो इस्लाम के सम्मान तथा कट्टरता से सच्चे धर्म का पालन करने के लिये, खुदा तथा मुस्तफा के धर्मके लिये किसी भी दुश्मन को— खासकर हिन्दुओं को, जो कि मुस्तफा के धर्म के कट्टर दुश्मन है, निश्चिन्त होकर पान का बीड़ा न खाने देता, न उन्हें श्वेत वस्त्र धारण करने देता और न मुसलमानों के बीच ठाट-बाट मे जीवन बिताने देता। मेरे लिये, मेरी बादशाही के लिये और मेरे दीन की रक्षा के गुण को लज्जा आनी चाहिये कि हम इस बात की आज्ञा देते हैं कि जुमे के दिन हमारे नाम का खुतबा पढ़ा जाय, खुतबा पढ़ने वाले व्यर्थ ही हमे इस्लाम का रक्षक बनावें। हमारे शासनकाल मे, हमारे समक्ष तथा राजधानी में खुदा तथा मुस्तफा के धर्म के दुश्मन बड़े ठाट-बाट से धनधान्यपूर्ण होकर जीवन बिता रहे हैं; खुल्लमखुल्ला मूर्ति-पूजा करते है, ढोल पीट-पीटकर कुफ्र तथा शिर्क की आज्ञाओं का प्रचार करते हैं, हमारी बादशाही तथा हमारे दीन की रक्षा करने पर थू है, क्योंकि खुदा तथा रसूल के दुश्मन बड़े ठाट से श्रीसम्पन्न होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उनके खून की नदियां नहीं बहायी जा पाती।"

यदि जलालुद्दीन दीर्घकाल तक शासन कर पाता और उसे अवसर प्राप्त होता तो निश्चित ही वह हिन्दुओं का नृशंसतापूर्वक भीषण नर-संहार करने मे किंचित भी नही हिचकता; उनकी मूर्तियों, मंदिरों व धर्म स्थानों को तोड़ने-फोड़ने मे तनिक भी विचलित नही होता और उनके ऐश्वर्य व धन सम्पन्नता को निश्चित ही नष्ट करने का पूर्ण प्रयास करता।

मलिक छज्जू का विद्रोह—सुलतान जलालुद्दीन की दुर्बल नीति के कारण उसके सुलतान होने के दूसरे वर्ष मे ही कड़ा के सूबेदार मलिक छज्जू ने विद्रोह कर दिया। यह बलबन का भतीजा था। उसने कड़ा में राजछत्र धारण कर लिया और अपने नाम का खुतबा पढवाने लगा। अनेक असन्तुष्ट तुर्क सरदार जो बलबन के समय पदोन्नति कर सशक्त हो गए थे, विद्रोही हिन्दू और खिलजी नवयुवक वर्ग जो सुलतान जलालुद्दीन की नीति और अवांछनीय उदारता से क्षुब्ध हो चुके थे, मलिक छज्जू के साथ सुलतान के विरुद्ध विद्रोह मे सम्मिलित हो गए। इनमे सुलतान बलबन के एक दास का पुत्र अमीर अलीसरजानदार भी था जिसे अवध की अक्ता प्राप्त थी और जो हातिमखां के नाम से प्रख्यात था। छज्जू को बलबन वंश के समर्थकों का सहयोग व सहायता प्राप्त हो गयी। अब छज्जू ने पूर्णरूप से अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और

सुलतान मुर्गासुद्दीन की पदवी धारण कर अपने वंश के राजसिंहासन को हस्तगत करने के लिए राजधानी दिल्ली को प्रस्थान किया। बलबन वंश के समर्थकों तथा उन व्यक्तियों ने जो बलबन के शासनकाल में सम्पन्न और वैभवशाली हो गए थे, मलिक छज्जू कश्तीखां का साथ दिया और उसे बलबनी राज्य का वास्तविक अधिकारी और राजसिंहासन का स्वामी बतलाया। उन्होंने जलालुद्दीन को राजसत्ता का अपहरणकर्ता मान लिया। इस प्रकार छज्जू के पक्ष में जनमत भी हो गया था।

जब सुलतान जलालुद्दीन को मलिक छज्जू कश्तीखां के विद्रोह और प्रस्थान का संदेश प्राप्त हुआ, तब वह विशाल सेना सहित उसका सामना करने और उसका दमन करने के लिए बदायूं की ओर चल पड़ा। उसके पुत्र अर्कलीखां के नेतृत्व में शाही-सेना का अग्रिम दल था। अर्कलीखां ने सुलतान के पहिले ही बदायूं पहुँचकर विद्रोहियों को परास्त कर दिया। मलिक छज्जू के साथी प्रसिद्ध हिन्दू रावतों और पायकों ने भी छज्जू की विजय के लिए प्रयास किए, पर वे विफल हो गए। मलिक छज्जू ने पराजय के बाद भागने का प्रयत्न किया, किन्तु वह बन्दी बना लिया गया और उसे उसके साथियों सहित जलालुद्दीन की सेवा में दंड देने के लिए भेज दिया गया। उनकी इस बन्दी की दशा का वर्णन करते हुए बर्नी ने लिखा है कि "मलिक अमीर अली सरजान्दार, मलिक तरगी के पुत्र मलिक उलूगची, मलिकताजुदर, मलिक एहजन और अन्य प्रतिष्ठित अमीरों को सुलतान के संमुख इस दशा में लाया गया कि शिकंजे उनकी गर्दनों में पड़े थे। हाथ पीछे बंधे थे। वे ऊँटों पर सवार थे और सेना की धूल मिट्टी उनके सिर और मुख पर जमी हुई थी। वस्त्र मेले-कुचैले थे।"

जब मलिक छज्जू और उसके साथी सुलतान के समक्ष उपस्थित किए गए तो उनकी दयनीय दशा देखकर सुलतान का हृदय दया तथा सहानुभूति से भर गया। उसने बलबन एवं मुइज्जी काल के प्रतिष्ठित अमीरों व व्यक्तियों को बंदियों मे पृथक् करके शिविरों में भेजकर उनके लिए स्नान, वस्त्र, भोजन और मदिरा की व्यवस्था की। उसने मलिक छज्जू की मुक्ति का आदेश दिया और उसे आदरपूर्वक पालकी पर बिठाकर मुलतान की ओर भिजवा दिया जहाँ उसको एक महल, मदिरा, फल भोजन, तथा वस्त्र भेंट दिए जाने का आदेश दिया।

इस प्रकार उसने छज्जू के साथ विशेष नम्रता का व्यवहार किया। उन विद्रोहियों को जिनकी निर्ममता से हत्या कर देनी चाहिए थी, सुलतान ने, उनका अतिथि-सत्कार कर उन्हें अपना मित्र बना लिया। जब खिलजी अमीरों और अहमद चाप ने विद्रोहियों के क्षमा-दान को अनुचित एवं असंगत बतलाया, तब जलालुद्दीन ने उत्तर दिया, "मैंने उन कैदी मलिकों तथा अमीरों को इस कारण छोड़ दिया और उनकी हत्या नहीं करवायी कि वे भी मनुष्य हैं, यद्यपि उन्होंने विद्रोह किया था. किंतु मुसलमानों के बीच रहकर उन्हें खुदा तथा अन्य मनुष्यों के सम्मुख लज्जा आवेगी। मैं यह समझता हूँ कि वे मेरे कृतज्ञ रहेंगे और पुनः मेरे विरुद्ध विद्रोह न करेंगे।" और हुआ भी ऐसा ही। इस विद्रोह के बाद जलालुद्दीन के विरुद्ध विद्रोह नहीं हुए। इससे प्रतीत होता है कि विद्रोहियों के प्रति इस प्रकार की उदारता व क्षमाशीलता की नीति सफल रही।

अलाउद्दीन कड़ा का शासक—मलिक छज्जू के विद्रोह को शान्त करने के बाद सुलतान जलालुद्दीन ने अपने भतीजे तथा दामाद अलाउद्दीन को कड़ा प्रदेश का सूबेदार नियुक्त किया। जब अलाउद्दीन ने कड़ा जाकर अपना नया पद और कार्य-भार संभाला तो मलिक छज्जू के कई विश्वासपात्र, स्वामिभक्त अधिकारी और कर्म-चारी जिन्होंने सुलतान के विरुद्ध विद्रोह किया था, कड़ा पहुँच गए और अलाउद्दीन ने इन सब को अपनी सेवाओं में नियुक्त कर लिया। कुछ समय बाद इन्हीं विद्रोही मलिकों और अधिकारियों ने यह कपटपूर्ण परामर्श दिया कि अलाउद्दीन दिल्ली सल्त-नत को हस्तगत कर ले। इससे अलाउद्दीन के हृदय में बादशाही प्राप्त करने की महत्-त्वाकांक्षा पल्लवित होने लगी।

ठगों के साथ क्षमा और उदारता का व्यवहार—इस समय सुलतान की दुर्बल नीति और प्रशासन के ढीलेपन के कारण अनेक चोरों और ठगों ने उपद्रव प्रारम्भ किए। फिर भी इनमें से अनेक चोर और ठग पकड़ लिए गए, पर सुलतान ने सब को यह शपथ देकर छोड़ दिया कि वे भविष्य में चोरी नहीं करेंगे। इसके बाद राजधानी और अन्य स्थानों में भी अनेक ठग बंदी हुए। एक ठग ने तो एक सहस्त्र से भी अधिक ठग पकड़वा दिए। परन्तु सुलतान जलालुद्दीन ने उनमें से किसी को भी निर्मम दंड नहीं दिया और न किसी की हत्या करवाई। उसने उन्हें उपदेश दिया और सभी को मुक्त कर नौकाओं पर बिठाकर बंगाल में लखनौती को भेज दिया। इस प्रकार सुलतान की असीम उदारता व दयालुता पराकाष्ठा की सीमा पार कर गयी, जब उसने चोरों, ठगों व डाकुओं को भी विद्रोहियों के समान क्षमा कर दिया। सुलतान की इस उदा-रता की नीति से चोरों और डाकुओं को बहुत प्रोत्साहन मिला, शासन अव्यवस्थित और शिथिल हो गया और अमीरों में सुलतान के विरुद्ध क्षोभ उमड़ने लगा।

मदिरा-महफिल में सुलतान की तीव्र निंदा और अमीरों के साथ सुलतान का व्यवहार—सुलतान की असीम उदारता और क्षमा-दान की नीति की कटु आलोचना सर्वत्र होने लगी। सुलतान की शक्ति का भय, आतंक और दबदबा विलुप्त हो गया। इससे खिलजी अमीर जो सुलतान के समर्थक थे, उसके विरोधी हो गए। तुर्की मलिक और सरदार तो पहिले से ही खिलजियों के उत्कर्ष के कारण और जलालुद्दीन की नीति से असन्तुष्ट और विपक्षी थे। ये सभी सरदार और मलिक मदिरापान की महफिलों में सुलतान के विरुद्ध अपनी अप्रसन्नता और कृतघ्नता प्रगट करते थे,षड्यंत्र रचकर उसकी हत्या करने की योजना बनाते थे। एक बार मलिक ताजुद्दीन कूची के निवास स्थान पर आयोजित मदिरा-पान की महफिल में मदिरोन्मत दशा में अमीरों ने ताजुद्दीन से कहा कि वह सुलतान बनने के योग्य है न कि जलालुद्दीन। एक अमीर ने मदिरा की उत्तेजना में यह भी कह डाला कि वह सुलतान का सिर ककड़ी, खरबूजे की भांति काट कर फेंक देगा।

कुशल गुप्तचर प्रथा के कारण इस मदिरापान की महफिल की समस्त बातें सुलतान के पास पहुँच गयी और दूसरे दिन सुलतान ने राजसभा में इन मलिकों और अमीरों की भर्त्सना की और अपनी तलवार फेंक कर चुनौती दी कि, "तुम में से जिस किसी की भी इच्छा हो, मुझ से युद्ध कर ले। मैं देखना चाहता हूँ कि तुम में कितना

साहस और कितनी वीरता है।" सुलतान की इस कठोर भर्त्सना और साहसी चुनौती ने षड़यंत्रकारी अमीरों को अवाक कर दिया और वे नत-मस्तक हो गए। तब मलिक नुसरतशाह नामक अमीर ने जो मदिरा-महफिल में भी उपस्थित था, चाटुकारिता के द्वारा आत्मरक्षा करने का प्रयास किया। उसने विनम्रतापूर्वक सुलतान से कहा कि, "आप जैसा विवेकशील व्यक्ति मदिरोन्मत व्यक्तियों की बातों पर कभी भी विश्वास नहीं करेगा। यही नहीं, हम मे से कौन ऐसा मूर्ख होगा जो आप जैसे दयालु सुलतान का विरोध करेगा।" इससे सुलतान का क्रोध शान्त हो गया। पर उसने महफिलों में उन दुष्ट तथा अनुचित बातें करने वाले अमीरों को क्षमा करके राजधानी से दूर स्थानान्तरित कर दिया और यह आज्ञा दी कि वे एक वर्ष तक राजधानी दिल्ली में प्रवेश न करें। उन्हें यह चेतावनी भी दी गयी कि यदि वे फिर विद्रोह करेगे तो उन्हें सुलतान के मझले पुत्र अर्कलीखां को सौंप दिया जायगा, जो उन्हें जीवित नहीं छोड़ेगा। अर्कलीखां अपने कठोर निर्मम दंड-विधान के लिए कुख्यात था। इस प्रकार षडयंत्र एवं विद्रोह के फलस्वरूप कठोर दंड की व्यवस्था करने के स्थान पर केवल स्थानान्तरण कर देने में ही सुलतान ने आपनी सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था और अपराधियों के लिए पर्याप्त दंड समझा।

सीदी मौला का षड़यंत्र और उसका वध—सीदी मौला मूलतः फारस का एक फकीर या दरवेश था। सुलतान बलबन के राज्य के प्रारंभिक काल में वह दिल्ली आया था। वह अजोधन या पाकपट्टम के शेख फरीदुद्दीन गंजशकर का शिष्य था। शेख ने मौला को राजनीति और अमीरों की मित्रता से दूर रह कर आध्यात्मिक चिंतन-मनन में समय व्यतीत करने का उपदेश दिया था परन्तु भारत आने पर वह दिल्ली की राजनीति में अत्यधिक उलझ गया।

दिल्ली आने पर वह एक साधारण कुटी में रहने लगा परन्तु कालान्तर में वह बड़े महल-सी प्रतीत होने लगी। वह निर्मल चरित्र वाला व्यक्ति था, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता था, स्वल्पाहारी और संयमी था, साधारण वस्त्र और चादर धारण करता था। उसके कोई स्त्री, दास अथवा दासी नहीं थी। वह किसी से कुछ भी नहीं लेता था, परंतु वह इतना अधिक व्यय करता था कि लोग आश्चर्य चकित रह जाते थे। उसने अपने निवास-स्थान के सम्मुख एक विशाल खानकाह (सार्वजनिक भोजनालय) बनवायी थी। यहां लोगों को मुफ्त भोजन वितरित होता था। जल तथा स्थल मार्ग से यात्री खानकाह में आते थे और सीदी मौला उन्हें भोजन देता था। इस भोजनालय में इतने विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनते थे और उन पर इतना अधिक व्यय होता था कि उस युग का बड़े मे बड़ा अमीर भी न तो ऐसे व्यंजनों का उपयोग ही कर सकता था और न इस क्षेत्र के मौला का मुकाबला ही कर सकता था। बर्नी के अनुसार इस खानकाह में दो हजार मन मैदा, पांच सौ मन मांस, पांच सौ मन घी-तेल, दो तीन सौ मन शकर और सौ दौ सो मन साग-सब्जी का प्रतिदिन का व्यय था। इस प्रकार के दान-पुण्य, आतिथ्य-सत्कार और शाही खर्च से मौला का प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया था, उसकी लोकप्रियता में खूब वृद्धि हो गयी थी और उसके शिष्यों की संख्या लगभग दस सहस्र हो गयी थी। लोगों की यह

धारणा थी कि मौला को कीमिया या सोना बनाने वाले रसायन का ज्ञान है अथवा उसके पास पारस पत्थर है। उसके इस शाही वैभव, प्रभाव और लोकप्रियता को देखकर सुलतान जलालुद्दीन का ज्येष्ठ पुत्र भी उसके यहाँ जाने आने लगा और उसका परम भक्त तथा विश्वासपात्र बन गया। इसके बाद राजसभा से संबंधित अनेक व्यक्ति भी उसके यहां आने-जाने लगे।

वास्तविकता यह थी कि सुलतान जलालुद्दीन से क्षुब्ध और रुष्ट अमीर और अधिकारी सीदी मौला के पास आते रहते थे और वे रात में सत्संग और अध्यात्म चिंतन और मनन का ढोंग रचकर सुलतान के विरुद्ध मौला से और परस्पर गुप्त मंत्रणा किया करते थे। काजी जलाल काशानी, बलबनी खानों और मलिकों के पुत्र कोतवाल बिरंजतन तथा हतिया पायकज आदि ने मौला के यहां आकर जलालुद्दीन की हत्या का षड़यंत्र रचा। मौला में भी राजनीतिक सत्ता हस्तगत करने की इच्छा बलवती हो गयी और वह भी इस षड़यंत्र में सम्मिलित हो गया। यह निश्चय किया गया कि सीदी मौला का विवाह नासिरुद्दीन की एक कन्या से कर दिया जाय और उसका सम्बन्ध राजवंश से स्थापित कर दिया जाय और सुलतान जलालुद्दीन का वध करके सीदी मौला को खलीफा बनाया जाय। राज्य के ऊंचे और महत्वपूर्ण पदों का तथा अक्ताओं का वितरण बलबनी खानजादे एवं मलिक जादे परस्पर अपनी योग्यता व प्रभाव के अनुसार करलें। इस प्रकार जो मौला ने साधुता व सिद्धि का ढोंग करता था, हत्या द्वारा धन व धरती व राज्य प्राप्त करने की चेष्टा की। जब सारा षड़यंत्र परिपक्व अवस्था में पहुँचने वाला ही था कि एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने जो इस षड़यंत्र में सम्मिलित था, इस षड़यंत्र और उपद्रव की सूचना जलालुद्दीन को दे दी। कहा जाता है कि स्वयं जलालुद्दीन ने भेष बदलकर सीदी मौला के यहां जाकर षड़यंत्रकारी मंडली की मंत्रणाओं को सुन लिया और सारा गुप्त भेद प्राप्त कर लिया।

सुलतान ने समस्त षड़यंत्रकारियो को राजसभा में उपस्थित होने का आदेश दिया और मौला सीदी तथा उसके साथियो, सहयोगी अमीरो और अधिकारियों पर सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र करने का दोष लगाया। अब सुलतान ने आज्ञा दी कि अपराधियों की अग्नि परीक्षा ली जाय और उन्हें आग में डाल कर दंड दिया जाय। पर कानून के ज्ञाता विद्वानों (आलिमों) ने सर्वसम्मति से यह कहा कि उन्हें आग में डालना शरा (कुरान की आयत) के विरुद्ध है। तब सुलतान ने सीदी मौला के कुचक्रों और षड़यंत्र की निंदा की और शेख अबूबकर तूसी हैदरी और उसके शिष्यों की ओर जो उस समय राजसभा में उपस्थित थे, झुककर कहा कि, "ओ दरवेशों, क्या तुम में से कोई भी इस मौला से मेरा प्रतिशोध नहीं ले सकता।" सुलतान के इतना कहने पर एक दरवेश उस्तरा लेकर मौला पर टूट पड़ा और उसके शरीर पर अनेक घाव कर दिये। इसके बाद सुलतान के पुत्र अर्कलीखां के आदेश से मौला को हाथी के पैर के नीचे रोंदकर मार डाला गया। षड़यंत्र के एक प्रमुख व्यक्ति काजी जलाल काशानी को बदायूँ भेज दिया गया। कुछ षड़यंत्रकारियों को निष्कासित कर दिया गया, कुछ को राजधानी दिल्ली से दूर स्थानान्तरित कर दिया गया और अनेक षड़यंत्रकारियों की संपत्ति को जप्त कर लिया गया। सीदी मौला के षड़यंत्र

को कुचलने में सुलतान जलालुद्दीन खिलजी ने अपने जीवन में प्रथम और अंतिम बार अनुदारता तथा असाधारण क्रूरता का परिचय दिया। तत्कालीन मुस्लिम इतिहास-कारों ने जिनमें अंधविश्वास और इस्लाम धर्म की उन्मादता थी, सीदी मौला के दोषों पर पर्दा डाल दिया। निष्पक्षता का दावा करने वाले बर्नी ने सीदी मौला को निर्दोष बतलाया और जलालुद्दीन के दंड को अनुचित। बर्नी ने सीदी मौला के वध को अधार्मिक और जघन्य पाप माना। उसने लिखा है कि "जिस दिन सीदी मौला की हत्या की गयी थी, उस दिन एक ऐसी काली आंधी आयी कि, सारे विश्व में अंधकार छा गया। सीदी मौला की हत्या के बाद जलाली राज्य में विघ्न पड़ गया। ...वर्षा बन्द हो गयी। दिल्ली में भीषण अकाल पड़ गया। अनाज का भाव एक जीतल प्रति सेर हो गया और शिवालिक प्रदेश के हिन्दू दिल्ली में एकत्रित होने लगे और क्षुधा-पीड़ा से मुक्ति पाने के लिये यमुना में डूब मरने लगे।" बर्नी का मत है कि दरवेश मौला की हत्या के परिणाम स्वरूप ऐसा दैवी प्रकोप हुआ। सुलतान ने दर-वेशों के आदर सम्मान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और न उसने मान-मर्यादा की रक्षा की। इसीलिए कालान्तर में सुलतान की हत्या भी कर दी गयी। अन्य इति-हासकार एसामी ने भी दरवेश की निर्मम हत्या का फल देवी प्रकोप बताया और जलालुद्दीन के कार्य को अनुचित। तारीख-ए-मुबारिकशाही के लेखक यहया बिन अहमद ने भी सीदी मौला की हत्या का वर्णन करते हुए लिखा है कि अन्त में मरते समय सीदी ने भगवान से अपने पापों की क्षमा मांगी।

सीदी मौला की हत्या को अवांछनीय, अनुचित और अन्यायपूर्ण बताने वाले रूढ़िग्रस्त धर्मांध विद्वान थे। वास्तविकता तो यह है कि सीदी मौला का षड़यंत्र इल-वारी तुर्कों द्वारा अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का अंतिम प्रयास था। ऐसी स्थिति में सुलतान ने सीदी मौला के साथ जो भी कुछ व्यवहार किया और उसे दंड दिया, वह सर्वथा न्यायोचित और समयानुकूल था।

जलालुद्दीन की बाह्य नीति—सुलतान जलालुद्दीन की विदेश नीति भी उसकी गृहनीति के समान निष्प्रभ, दुर्बल और ढीली थी। उसने जो सामरिक प्रयत्न किये वे उपहास्यापद बनकर रह गये। उसके रण अभियान भी उसे मुसलमानों का रक्त बहाने में संकोच होने से तथा उसकी कायरता के कारण असफल हुए। सुलतान बनने के बाद उसने कतिपय आक्रमण किये थे, पर उसे विजयश्री नहीं प्राप्त हुई। इसके आक्रमण निम्नलिखित थे।

रणथंभोर पर आक्रमण (सन् १२९०)—अपने राज्यारोहण के कुछ समय बाद ही सुलतान ने राजस्थान के प्राचीन, प्रसिद्ध और अभेद्य दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। अपनी अनुपस्थिति में शासन-व्यवस्था संभालने के लिये उसने अपने मझले पुत्र अर्कलीखाँ को किलोखड़ी में नायब नियुक्त किया और स्वयं एक विशाल सेना लेकर रणथम्भोर की ओर प्रस्थान किया।

(अ) झाइन की लूट व मंदिरों का विनाश—उसने रणथंभोर के मार्ग में झाइन के छोटे नगर व दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया। अमीर खुसरो ने अपने ग्रंथ में इस आक्रमण और अधिपत्य का वर्णन किया है। उसके अनुसार

सुलतान झाइन के राजमहल की शिल्पकला को देखकर स्तंभित रह गया। उसने वहाँ के मंदिरों को कलुषित कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और स्वर्ण की मूर्तियां तुड़वा दी। राजमहल, दुर्ग तथा मंदिर ध्वंस कर दिये गये और लकड़ी के स्तंभों को जलवा दिया गया। दो पीतल की मूर्तियां जिनमें से प्रत्येक एक हजार मन के लगभग थी, तुड़वा डाली गयी और उनके टुकड़ों को मुसलमानों को दे दिया गया जिससे वे दिल्ली लौट कर उन्हें मसजिद के द्वार पर कुचले जाने के लिये फेंक दें।

(ब) **मालवा पर आक्रमण**—झाइन की लूट और विजयश्री से उन्मत होकर सुलतान ने अपनी सेना का एक अंग मालवा को लूटने और विजय करने के लिये भेजा। वहां इस सेना को लूट में पर्याप्त धन सम्पदा प्राप्त हुई। झाइन तथा मालवा की लूट में प्राप्त धन को सुलतान ने सैनिकों में वितरण करवा दिया।

(स) **रणथम्भोर से असफलता लिये वापसी**—सुलतान के आक्रमण की सूचना पर रणथम्भोर के नरेश ने अपने "रावतों" (सामन्तों) तथा वीर साहसी राजपूत सैनिकों सहित दुर्ग की रक्षा की समुचित व्यवस्था करली। वह सुलतान का प्रतिरोध करने के लिये कटिबद्ध था। इस दुर्ग की अभेद्यता, तथा वहां के राय की सैनिक तैयारियों से सुलतान जलालुद्दीन हताश हो गया और विजय की आशा त्यागकर रणथंभोर का घेरा उठा कर दिल्ली लौट आया। सुलतान रक्तपात से घृणा करता था। उसने सोचा कि इस दुर्ग की विजय का मूल्य युद्ध में अनेकानेक मुसलमानों के रक्त से चुकाना पड़ेगा, जो उसे मान्य नहीं था। जब इस आक्रमण व उसकी असफलता के विषय में उससे चर्चा की गयी तब उसने इस आक्रमण की असफलता को यह कह कर टाल दिया कि मुसलमानों के सिर का प्रत्येक बाल रणथंभोर जैसे सौ दुर्गों से अधिक मूल्यवान था। जब सुलतान के शयनागार के अध्यक्ष अहमद चप ने सुलतान के वापस लौटने की कायरता पूर्ण दब्बू नीति का विरोध किया और यह अनुरोध किया कि बिना युद्ध किये लौट जाना उचित नहीं है तब सुलतान ने यह उत्तर दिया कि वह अब वृद्ध हो चला है और मृत्यु के निकट पहुँच रहा है। वास्तविकता तो यह है कि रणथभोर की अभेद्यता और रातपूतों की युद्ध करने की कटिबद्धता देखकर ही सुलतान को यह सद्ज्ञान हो गया था कि विजय के लिये उसकी सैनिक शक्ति अपर्याप्त है। सुलतान अपनी राजनैतिक और सैनिक दुर्बलता और अभाव के कारण ही राजपूतों से बिना युद्ध किये दिल्ली लौट आया। सुलतान के इस कार्य से उसकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा।

मंदौर पर आक्रमण (सन १२९२)—रणथम्भोर के आक्रमण के बाद सुलतान ने राजस्थान में मंदौर पर आक्रमण कर दिया। यहां पर जलालुद्दीन के पूर्व दिल्ली सुलतान की सेनाओं ने आक्रमण करके राजपूतों के स्थान पर अपनी सत्ता स्थापित करली थी। पर सल्तनत की शिथिलता के कारण मंदौर पर पुनः राजपूतों ने अपना अधिकार कर लिया था। जलालुद्दीन ने इन्हें सरलता से परास्त कर दिया और मंदौर पर विजय करके उसने पार्श्ववर्ती प्रदेशों को लूटकर नष्ट कर दिया और अधिक धन संपत्ति प्राप्त की। इसके बाद उसने पुनः झाइन पर आक्रमण किया

और उसे भी फिर से लूट कर विध्वंस कर दिया। इस विजय और लूट में उसे अत्यधिक सम्पत्ति हाथ लगी और उसे लेकर वह सेना सहित दिल्ली लौट आया।

मंगोलों से युद्ध—सन १२९२ में मंगोल नेता हलाकू के पौत्र अब्दुल्ला ने एक विशाल मंगोल सेना लेकर भारत पर आक्रमण कर दिया और सुनाम प्रदेश तक घुस आया। उसकी इस आक्रमणकारी सेना में एक लाख से ड़ेढ़ लाख तक सैनिक थे। सुलतान जलालुद्दीन को सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा की व्यवस्था दीर्घकाल तक करने से वहां की सामरिक बातों का अच्छा अनुभव था। मंगोलों के आक्रमण की सूचना पाकर वह शीघ्र ही तीस सहस्र सैनिकों को लेकर सीमांत क्षेत्र की ओर प्रस्थान कर गया। सिंधु नदी के तट के समीप सुलतान की सेना और मंगोल सेना में भीषण युद्ध हुआ। मंगोल परास्त हुए और सहस्रों की संख्या में बन्दी बना लिये गये। अब्दुल्ला सुलतान से संधि कर मंगोलों की सेना लेकर लौट गया। परंतु इस समय चंगेजखां के पौत्र उलुगखां ने भारत में ही रहने का निर्णय किया और अपने चार सहस्र मंगोल अनुयायियों के साथ उसने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। सुलतान ने उलुगखां से अपनी एक कन्या का विवाह कर दिया और उलुगखां तथा उसके साथी मंगोलों को उनके परिवार सहित दिल्ली के समीप स्थायी रूप से निवास करने के लिये स्थान भी दे दिया और उनकी आजीविका की व्यवस्था भी की गयी। फलतः मंगोल किलोखड़ी, गयासपुर, इन्द्रप्रस्थ तथा तिलोका के निकट रहने लगे और इनकी बस्तियां मुगलपुर के नाम से प्रसिद्ध हो गयीं। परन्तु भारत की जलवायु और दिल्ली के पास का निवास उनके प्रतिकूल होने से अनेक मंगोल अपने स्त्रियों और बालकों सहित अपने देश को वापिस लौट गये। परन्तु जिन मंगोलों ने भारत में रहकर, मुसलमानों से घुल-मिल कर उनका रहन-सहन अपना लिया तथा उनसे वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिये, वे मंगोल "नव मुस्लिम" नाम से प्रख्यात हो गये। परन्तु बाद में इन मंगोलों ने दिल्ली की राजनीति में सक्रिय भाग लिया और सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र में सम्मिलित हो गये। उनमें विद्रोह की भावना बनी रही इसीसे सुलतान सदा चिंतित रहे और उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसलिये सुलतान जलालुद्दीन की मंगोलों के प्रति उदारता की नीति आगे चलकर राजनैतिक और सामरिक दृष्टि से घातक हुई।

जलालुद्दीन की हत्या—जालालुद्दीन के भतीजे और दामाद तथा कड़ा के हाकिम अलाउद्दीन ने मध्यप्रदेश में भेलसा पर और दक्षिण में देवगिरी पर आक्रमण कर अतुल सम्पत्ति प्राप्त करली थी। सुलतान जलालुद्दीन सन १२९६ में ग्वालियर पहुँचा और वहां उसे अलाउद्दीन की दक्षिण विजय, देवगिरी के सफल अभियान और उसमें प्राप्त विपुल धन संपत्ति की सूचना मिली। सरल हृदय सुलतान ने यह विश्वास कर लिया कि अलाउद्दीन उसे स्वयं सब धन भेंट कर देगा। अपने भतीजे की विजय के उपलक्ष में सुलतान ने भोग-विलास की गोष्ठी का आयोजन भी किया। उसने प्रधान राजकर्मचारियों से आगे के कार्य के लिये परामर्श भी लिया, क्योंकि अलाउद्दीन ने चंदेरी पर आक्रमण करने की अनुमति लेकर गुप्त रूप से देवगिरी पर आक्रमण कर दिया था। इससे स्वयं अलाउद्दीन सुलतान से भेंट करने के लिये

हिचक रहा था। अलाउद्दीन के इस अभियान, विजय और अतुल संपत्ति से कतिपय अमीर और अधिकारी अलाउद्दीन के प्रति शंकित हो गये थे। स्पष्टवादी अहमदचप ने और नीतिनिपुण नायक बारबक ने सुलतान को अलाउद्दीन के प्रति सतर्क रहने का परामर्श दिया। पर सुलतान ने उनकी अवहेलना करके उन्हें धिक्कारते हुए कहा, "तूने मेरे सामने के बालक को सिंह बनाकर पेश किया है।" अहमदचप ने सुलतान को यह स्पष्ट परामर्श दिया कि वह दक्षिण से कड़ा की ओर लौटते हुए अलाउद्दीन को मार्ग में ही रोक ले और उससे सारा धन प्राप्त करले। चपने कहा—

"हाथियों तथा संपत्ति के प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो जाने से अनेक झगड़े एवं आपत्तियों का सूत्र पात हो जाता है। जिसे ये वस्तुएं प्राप्त होती हैं वह इतना उन्मत्त हो जाता है कि वह अपने हाथों और पैरों में भी भेद नहीं कर पाता। कड़े का मुक्ता (हाकिम) अलाउद्दीन, मलिक छज्जू के समर्थक और साथी विद्रोही, विरोधी, तथा दुष्ट लोगों से घिरा हुआ है। वे बिना किसी राजकीय आदेश के उसे देवगिरी ले गये हैं और उन्होंने युद्ध करके अपार धन संपत्ति हस्तगत करली है। प्राचीन बादशाहों और बुद्धिमानों ने कहा है कि, "धन-संपत्ति और उपद्रव, उपद्रव एवं धन-संपत्ति" अर्थात धन और झगड़े का परस्पर एक दूसरे से संबंध है। मेरी यही सम्मति है कि हम अलाउद्दीन से भिड़ने के लिए चंदेरी की ओर यथासंभव शीघ्रता से प्रयाण कर दें और उसके प्रत्यागमन को बीच में ही रोक दें। जब वह सुल्तान की सेना को मार्ग मे देखेगा तो इच्छा या अनिच्छा से उसे लूट से प्राप्त सारी सपत्ति सिंहासन को भेंट कर देनी पडेगी।" परंतु जलालुद्दीन ने अलाउद्दीन के प्रति वात्सल्य भावना से प्रेरित होकर तथा दक्षिण विजय से प्राप्त अपार धन-संपत्ति की उत्कट लालसा हेतु इस श्रेष्ठ परामर्श और सुझाव को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और वह राजधानी दिल्ली लौट आया।

सुलतान जलालुद्दीन के दिल्ली लौटने पर अलाउद्दीन द्वारा भेजा गया, देवगिरी आक्रमण के संबंध में क्षमायाचना पूर्ण प्रार्थना पत्र मिला जिसमें यह लिखा था कि वह सारी संपत्ति सुलतान को भेंट कर सकता है जब कि उसे पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दे दिया जाय। सुलतान ने ऐसा आश्वासन भरा पत्र अलाउद्दीन के पास भिजवा दिया। इसके बाद कुचक्रि, मक्कार और षड्यंत्री अलाउद्दीन ने एक अन्य पत्र अपने भाई अलमस को भी लिखा जिसमें उसने यह प्रगट किया कि—मैंने सुलतान की आज्ञा की अवहेलना की है। यदि स्वयं सुलतान कड़ा आकर मुझे आश्वासन दें और क्षमा करदे तो मुझे संतोष होगा, अन्यथा मैं आत्महत्या कर लूंगा या हाथी तथा धन संपत्ति लेकर जहां जी चाहेगा, चला जाऊंगा। इस प्रकार अलाउद्दीन ने सुलतान को धोखे में रखा और स्वयं अपनी स्थिति सुदृढ़ करता रहा। सुलतान ने पत्र पर विश्वास कर शीघ्र कड़ा पहुंच कर अलाउद्दीन को आश्वस्त करने का आदेश दिया। सुलतान ने एक सहस्र सैनिक और कुछ अमीरों को साथ लेकर कड़ा की ओर प्रस्थान किया। अलमस बेग के यह प्रार्थना करने पर कि अलाउद्दीन इतने अधिक अमीरों व सैनिकों को देख कर भयभीत हो जायगा और आत्महत्या कर लेगा, सुलतान ने कुछ अमीरों के अतिरिक्त सब को पीछे छोड़ दिया। बाद मे इन थोड़े से

अमीरों और विश्वास पात्र अनुचरों तथा दासों को जिनके साथ सुलतान गंगा पार जाने के लिये नाव में बैठा था, अलमसबेग के अनुरोध पर निःशस्त्र कर दिया गया और उनके हथियार गंगा में फेंक दिये गये। सुलतान अलाउद्दीन पर विश्वास कर निर्भिक होकर आगे बढ़ा। जलालुद्दीन ने स्वभावगत उदारता और वात्सल्य के साथ समुचित सतर्कता नहीं बरती। उसने अलाउद्दीन की ओर से किसी भी विश्वासघात की कल्पना ही नहीं की और इसीलिए वह अपनी आत्मरक्षा के लिये इतना अधिक उदासीन रहा।

कपटी और विश्वासघाती अलाउद्दीन ने सुलतान के वध की सारी योजना विधिवतपूर्ण करली थी। ज्योंही सुलतान ने नाव में से उतरकर अलाउद्दीन को एक कृपालु और स्नेही पिता की भांति उसे बड़े प्यार से छाती से लगाया, उसके नैत्रों और कपोलों का चुम्बन किया और स्नेह से उसके गाल थपथपाने लगा, निर्लज्ज और कृतघ्न अलाउद्दीन ने सुलतान पर आक्रमण करने का संकेत किया और षड़यंत्रकारी जो पहिले से ही इस घिनौने, असंगत व निकृष्ट कार्य के लिये तैयार थे, सुलतान और उसके थोड़े से अनुयायियों व साथियों पर टूट पड़े। सभा के एक साधारण सैनिक महमूद सालिम ने जो स्वयं एक साधारण मामूली सैनिक का पुत्र था, सुलतान पर अपनी तलवार से तीव्र प्रहार किया। इससे सुल्तान का हाथ कट गया और वह घबराकर घायल अवस्था में ही नदी की ओर सुरक्षा के लिये भागा। पर अलाउद्दीन के एक कर्मचारी इख्तियारउद्दीन ने सुलतान का सिर काट लिया और इस मस्तक को जिससे रक्त टपक रहा था अपने स्वामी अलाउद्दीन के सम्मुख प्रस्तुत किया। बाद में अपने चाचा, ससुर, पालक, आश्रयदाता, बादशाह और स्वामी के इस सिर को भाले की नोक पर रख कड़ा और माणिकपुर की समस्त सेना में घुमाया गया जिससे सर्व साधारण सुलतान के वध को स्वीकार करलें और आतंकित हो जाय। सुलतान जलालुद्दीन के साथियों और अनुयायियों ने भागने का प्रयास किया; कुछ ने नदी में डूबकर आत्म-रक्षा की और कुछ को बन्दी बनाकर अलाउद्दीन ने वध करवा दिया। अंग्रेज इतिहासकारक लेनपूल के शब्दों में सुलतान जलालुद्दीन की हत्या, "इतिहास की सबसे निकृष्ट हत्या है।"

इस हत्या के बाद अलाउद्दीन ने अपने को सुलतान घोषित कर दिया और मुक्तहस्त से अपने विपुल धन का वितरण करता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ा।

सुलतान बनने के बाद की घटनाओं से विदित होता है कि जब तक अलाउद्दीन दिल्ली के सिंहासन पर आसीन रहा उसने इतने अधिक निर्दोष मनुष्यों की निर्मम हत्याएँ की और रक्त बहाया कि पश्चिम के नृशंस नरेश फारो ने भी इतना नहीं बहाया। भाग्य और कर्म ने उसकी इन नृशंस और निर्मम हत्याओं का दंड भी दिया और उसके मार्ग मे एक ऐसा विश्वासघाती अधिकारी का संयोग मिला दिया कि जिसके द्वारा उसका समस्त परिवार क्रूरता से नष्ट कर दिया गया। अलाउद्दीन को अपनी निर्दयता और नृशंसता का जैसा भयंकर और हेय दंड भुगतना पड़ा, उसकी समानता विधर्मियों के देशों तक में दिये गये भीषण और कठोरतम दंडों से भी नहीं की जा सकी है। परन्तु अलाउद्दीन ने अपने चाचा और ससुर सुलतान जलालुद्दीन की हत्या पर क्षोभ या पश्चाताप प्रगट नहीं किया। श्री के. एल. लाल के मतानुसार

अलाउद्दीन ने कभी अपने इस कार्य को अनुचित स्वीकार नहीं किया और न कभी अपने चाचा के प्रति व्यवहार को औरंगजेब के अपने पिता के प्रति व्यवहार के समान निर्लज्जतापूर्वक न्यायोचित व समुचित प्रमाणित करने का प्रयत्न ही किया। वह तो केवल इतना ही इच्छुक था कि लोग इस हत्याकांड को विस्मरण करदें।

जलालुद्दीन का मूल्यांकन

इतिहासकारों में जलालुद्दीन के व्यक्तित्व और कार्यों के मूल्यांकन में मतभेद है। एक ओर डॉक्टर किशोरीशरणलाल ने जलालुद्दीन की कटु आलोचना करते हुए लिखा है कि जलालुद्दीन जैसा बुद्धिहीन सुलतान दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठने के सर्वथा अयोग्य था। दूसरी ओर बर्नी, खुसरो, एसामी और इब्नबतूता जैसे समकालीन और निकट समकालीन इतिहासकारों ने उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। कतिपय आधुनिक इतिहासकार जलालुद्दीन को तेरहवीं सदी का एक बड़ा उदार सुलतान मानते हैं। उसके व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन निम्नलिखित है—

जलालुद्दीन का व्यक्तित्व—सुलतान जलालुद्दीन में चरित्र की उच्चता, हृदय की निश्छलता और पवित्रता, कोमलता और सहृदयता, उदारता और सहिष्णुता, वात्सल्य और स्नेह, क्षमाशीलता और सरलता थी। प्रतिक्रिया तो उसके हृदय में थी ही नहीं। वह व्यक्ति के मानवीय गुणों में विश्वास करता था और अवगुणों में अविश्वास। वह मानवता की भावना से ओतप्रोत था। उसकी दृढ़ धारणा थी कि दुर्गुण केवल शैतान में होते हैं। बर्नी जलालुद्दीन के गुणों से बहुत प्रभावित हुआ था। उसके मतानुसार जलालुद्दीन में अनेक नैतिकतापूर्ण बातें विद्यमान थीं। परन्तु उसके ये कुछ गुण उसकी सल्तनत के लिये घातक हो गये। उसने अपने जीवन में एक बार अलाउद्दीन के साथ हुई भेंट में अत्यधिक उदारता प्रदर्शित कर सुरक्षा की उपेक्षा की और यही उसके लिये प्राणघातक हुई।

उसके राजत्व का उच्च आदर्श और श्रेष्ठ नीति—सुलतान जलालुद्दीन ने राजनीति में भले और बुरे, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म का पूरा ध्यान रखा। वह बुरे कर्मों को करने, हत्या और रक्तपात करने से हिचकता था। अपनी नीति के विषय में उसका कथन था कि, "मैं अपने राजकाज में केवल उन लोगों का ही अनुकरण करता हूँ जो पैगम्बरों की आज्ञाओं का पालन करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं, जिनका यह अटूट विश्वास है कि कयामत अवश्य होगी और दुनिया में जो कुछ भले-बुरे काम किये गये हैं उनका उत्तर देना होगा।"

जलालुद्दीन प्रथम सुलतान था जिसने उदारता, कृपालुता और क्षमाशीलता को शासन की आधार-शिला बनाने का प्रयास किया। उसने चोरों, डाकुओं, ठगों और विद्रोहियों के वचनों पर विश्वास करके उन्हें उदारता से क्षमा कर दिया। अपनी पत्नि तथा अमीरों के बार-बार समझाने-बुझाने पर और परामर्श देने पर भी सुलतान ने अलाउद्दीन के विरुद्ध, उदारता और वात्सल्य के कारण, कोई कार्य नहीं किया। बर्नी ने लिखा है कि जलालुद्दीन अपने मलिकों, अमीरों और उच्च पदाधिकारियों को न तो कुछ कहता था और न उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुँचाता था। अपराध करने

पर भी न तो वह उन्हें बन्दी बनाता था और न दंड देता था। सुलतान जलालुद्दीन कहा करता था कि "मुझे इस बात से बड़ी शर्म आती है कि किसी को कोई अक्ता प्रदान करूं और फिर छीन लूं अथवा उसे कष्ट पहुँचा दूं।" तेरहवीं सदी में जब केवल नृशसता व क्रूरता से तलवार और ताकत से शासन किया जा सकता था, तब उदारता और क्षमाशीलता तथा दयालुता पर आधारित कोमल शासन का प्रारम्भ करना महान् साहस का कार्य था। जलालुद्दीन का ही साहस और दृढ़ता थी कि उसने इस प्रकार की शासन-व्यवस्था प्रारम्भ की। यह कायरता, नपुंसकता और अकर्मण्यता की नीति नहीं थी जैसा कि कुछ विद्वानों ने कहा है। परन्तु यह नवीन नीति थी जिससे प्रशासन में नवीन मोड़ देने का प्रयास किया गया। उसने अपनी इस नीति से राजसभा में और सामन्तों तथा मलिकों में चल रही पुश्तैनी ईर्षा-द्वेष, संघर्ष में कमी करदी, तथा विभिन्न दलों और वर्गों में शांति, सद्भावना, सहिष्णुता और समन्वय की भावनाएँ विकसित करदीं। तुर्की और खिलजी अमीरों को, सरदारों के विभिन्न कबीलों को अपने स्तर और सीमाओं में रखकर उनके संघर्षों को कम कर दिया और सभी वर्गों की स्वामि-भक्ति और श्रद्धा प्राप्त की।

सफल सैनिक नेता और योद्धा—जलालुद्दीन की रणथंभोर के सैनिक अभियान की असफलता और उसमें दिग्विजय करने तथा अन्य प्रदेशों को लूटने की भावना के अभाव होने से कुछ आलोचकों ने उसकी तीव्र निंदा की है। उसमें उन्होंने सैनिक गुणों और सामरिक प्रतिभा का अभाव बतलाया है। यह भ्रममूलक है। सुलतान बलबन के शासनकाल मे उसने मंगोलों से अनेक युद्ध करके, उन्हें परास्त कर पीछे खदेड़ कर अपनी वीरता, साहस और रण-कुशलता का परिचय दिया था। जब वह सीमांत क्षेत्र में था, तब उसने पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा की पूरी व्यवस्था अपनी सैनिक प्रतिभा और कुशल शासन से कर ली थी। वास्तव में वह एक सफल सैनिक और वीर योद्धा था। उसने सुलतान बनने के पूर्व और बाद में भी युद्धों में विजय प्राप्त की थी। परन्तु वह निरर्थक रक्त-पात और नर-संहार का पक्षपाती नहीं था। इसीलिए उसने रणथंभोर मे सेना हटा ली थी और मंगोलों से मित्रता का संबंध जोड़ा था। यह मानना भ्रम-मूलक होगा कि वह सैनिक संगठन की ओर उदासीन रहा। उसके सैनिक अभियानों के व दिग्विजय की नीति के अभाव की आलोचना करते समय कुछ विद्वान यह भूल जाते है कि जब जलालुद्दीन सुलतान बना, तब उसकी आयु ७० वर्ष की थी। उसने कहा भी था कि वह मृत्यु के निकट है और कब्र में पैर लटकाए बैठा है। ऐसी परिस्थिति और वृद्धावस्था मे उससे सैनिक अभियानों और आक्रमणों की तथा दिग्विजय की आशा करना अथवा पड़ोसी प्रदेशों में सैन्य-शक्ति का प्रदर्शन करने तथा लूटने की आशा करना समुचित प्रतीत नहीं होता।

जलालुद्दीन की कला-प्रियता—सुलतान जलालुद्दीन मे विद्या और विद्वानों के प्रति अनुराग था। वह विद्वानों की महफिले करता था और उनमें श्रेष्ठतम व्यक्ति, विद्वान, कवि, सुन्दर युवतियाँ, रखेल और लुभावने गायक सम्मिलित होते थे। उसकी महफिलों मे एकत्रित होने वाले विद्वानों मे मलिक कुतुबुद्दीन अलवी, मुईदजा जर्मी, सादुद्दीन, अमीर बहर, ख्वाजा जलालुद्दीन भक्खरी प्रमुख थे, और विद्यानुरागी अमीरों

में मलिक ताजुद्दीन कूची, मलिक अइज्जुद्दीन गौरी, मलिक फीर, मलिक नुसरत सुबाह, मलिक अहमद चप, मलिक कमालुद्दीन अबुलम आली, मलिक नसीरुद्दीन कुहरामी और मलिक साहुद्दीन मंतकी मुख्य थे। मलिक खुसरो जो समकालीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ था, जलालुद्दीन का कृपा पात्र था।

अच्छा शासक—यद्यपि जलालुद्दीन का शासन अधिक गौरवपूर्ण और महत्वशाली नहीं था, परन्तु उसने अपने अच्छे और शांतिपूर्ण शासन में जनसाधारण को सांस लेने का अवसर प्रदान किया। मीदी मौला के षड़यंत्र का तथा अन्य दूसरे षड़यंत्रों और गुप्तमंत्रणाओं का भेद प्राप्त कर लेने से विदित होता है कि जलालुद्दीन ने दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था बनाये रखी थी और उसका गुप्तचर विभाग अकर्मण्य नहीं था। प्रशासन में उसने विभिन्न पदों पर अहमद चप जैसे स्पष्टवादी और अनुभवी मलिक नियुक्त किए थे। खिलजी और तुर्क अमीरों में उसने निष्पक्ष भाव से पदों और उपाधियों का वितरण किया था तथा कुशल मलिकों को प्रांतपति नियुक्त किया था। चोरों, ठगों और डाकुओं के दमन के लिए नवीन अद्वितीय उपाय प्रयोग में लिए गए थे। जियाउद्दीन बर्नी ने जलालुद्दीन के शासन के बारे में लिखा है कि "वह ऐसा राज्य काल था जिसमें प्रजा को कष्ट पहुँचाने, दूसरों की संपत्ति का अपहरण कर लेने, लोगों के मिल्क तथा वक्फ पर अधिकार कर लेने, दूसरों की पैतृक संपत्ति छीन लेने, उनकी संपत्ति पर कुदृष्टि डालने, मुसलमानों से मार-पीट तथा उन्हें बन्दी बनाकर धन संपत्ति प्राप्त करने की घटना कभी भी नहीं घटी थी। यदि उस राज्य काल में कोई पदाधिकारी शराके विरुद्ध कोई बात कहता या करता था तो उसे उसका बहुत बड़ा अपराध समझा जाता था।......उस राज्य काल में कमीनों, नीचों, कम अस्लों, धूर्तों, बजारियों, अयोग्य व्यक्तियों तथा उनकी संतान को किसी प्रकार का सम्मान नहीं प्राप्त था।......अत्याचार तथा अत्याचारियों के हाथ-पैर इन्साफ की तलवार तथा न्याय की कटार से काट डाले जाते थे।" इससे विदित होता है कि जलालुद्दीन प्रशासकीय क्षमता से शून्य नहीं था। मध्ययुग के मुस्लिम शासन काल में जलालुद्दीन प्रथम सुल्तान था जिसने आतंक और क्रूर दमन नीति में, शक्ति और रक्तपात में, किंचित भी विश्वास नहीं करके मानव की सुकोमल उदात्त प्रवृत्तियों और श्रेष्ठतम गुणों में आस्था रख करके प्रशासन किया और सल्तनत की यवन राजनीति में एक नया मोड़ ला दिया, उसने अपनी नीतियों और विचारधाराओं से दिल्ली सल्तनत के इतिहास में एक नया पृष्ठ खोल दिया, राज्य में भिन्न वातावरण उत्पन्न कर दिया।

जलालुद्दीन की धर्मान्धता और धार्मिक पक्षपात—यद्यपि जलालुद्दीन उदार, सहिष्णु और क्षमाशील था, पर उसमें हिन्दुओं के प्रति उदारता नहीं थी। उसने धर्मान्धता और धार्मिक पक्षपात की नीति अपनाई। बर्नी ने लिखा है कि जलाली "राज्यकाल में अधर्मियों, बदमजहबों, हिन्दुओं तथा नास्तिकों को किसी स्थान में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी।" जलालुद्दीन की उदारता, क्षमाशीलता और सहिष्णुता गैर-मुसलमानों को नहीं छू सकी। जलालुद्दीन को इस बात का बहुत बड़ा दुख था कि वह हिन्दुओं के धार्मिक रीति-रिवाजों और मूर्ति पूजा का अन्त नहीं कर सका,

उनकी सम्पत्ति और ऐश्वर्य के उपभोग से वह उन्हें वंचित नहीं कर सका, वह "हिंदुओं को दाने- दाने के लिए मोहताज नहीं कर सका।"

जलालुद्दीन का इतिहास में स्थान—दिल्ली के सुलतानों में जलालुद्दीन प्रथम सुलतान था जो आतंक, नृशंसता और निरर्थक रक्तपात से घृणा करता था और जिसने अपनी बाह्य और आन्तरिक नीति में उदारता, शांति, स्नेह और क्षमाशीलता की नीति अपनाई। कठोरता और बर्बरता से शासन करना उसका आदर्श नहीं था। अपनी नीति, सद्‌गुणों और श्रेष्ठ विचारधाराओं से उसने शासन की गति को बलपूर्वक दूसरी दिशा में मोड़ने का प्रयास किया। यद्यपि इसमें उसे सफलता मिल रही थी, परंतु सहसा अलाउद्दीन के विश्वासघात और उसके अनूठे वात्सल्य में संघर्ष हुआ, उदात्त नीति पर कलुषित विचारधाराएँ छा गयीं, पुण्य पर पाप की विजय हो गई, और दिल्ली सल्तनत के इस नवीन अध्याय की इतिश्री हो गयी।

सारांश

खिलजी राजवंश का जलालुद्दीन खिलजी से सन् १२९० से प्रारम्भ होकर खुसरोखां तक सन् १३२० में अन्त हो गया। इस खिलजी युग में दिल्ली सल्तनत का खूब विकास और संगठन हुआ।

खिलजी तुर्क थे, उनका उत्कर्ष—स्मिथ और बर्नी के मतानुसार खिलजी पठान थे, तुर्क नहीं। तारीख-ए-फखरुद्दीन मुबारकशाही ग्रंथ के लेखक फखरुद्दीन, अरब के एक भूगोल विशारद इस्महोकल, हुदुदुल के लेखक इस्तखारी, तबकाते नासिरी के लेखक मिनहाज-उस-सिराज, "सलजूकन्नामा" के लेखक तथा मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार खिलजी तुर्क थे। वे दीर्घकाल से अफगानिस्तान में रह रहे थे। इससे उनका रहन-सहन और जीवन अफगानों-सा हो गया। वे गजनवी और गोरी सुलतानों की सेना में रहकर भारत आये थे और बाद में इनमें से अनेक योग्य व्यक्तियों को दास सुलतानों ने अपनी सेनाओं में नियुक्त कर लिया। प्रारम्भ में तुर्की सरदारों की प्रचुरता और प्रभाव से उनकी संख्या और शक्ति नगण्य थी। पर धीरे-धीरे उनका प्रभाव बढ़ गया। सुलतान की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाली और जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के नेतृत्व में उन्होंने अपना एक शक्तिशाली खिलजी दल संगठित कर लिया।

सुलतान जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (सन् १२९०–९६)—जलालुद्दीन फिरोज खिलजी अपने जीवन के प्रारम्भ में सुलतान नासिरुद्दीन के शासन काल में सैनिक था। उसने अपनी योग्यता और प्रतिभा से पदोन्नति की और सुलतान बलबन ने उसे सेना में मंगोलों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये सीमांत क्षेत्र में महत्वपूर्ण पद दिया। उसने मंगोल आक्रमणकारियों का सफलता से सामना किया। फलतः सुलतान कैकुबाद ने उसे युद्ध-मंत्री नियुक्त कर दिल्ली बुला लिया। अब वह खिलजियों का तथा अवसरवादी अमीरों और असन्तुष्ट तुर्क सरदारों का नेता हो गया था और खिलजियों की शक्ति खूब बढ़ाली थी। तुर्क सरदारों ने षड़यंत्र कर उसका अन्त करना चाहा। परन्तु शक्तिहीन, विलासी और प्रभावहीन सुलतान कैकुबाद की परिस्थिति

का लाभ उठाकर जलालुद्दीन ने तुर्क षड़यंत्रकारी नेताओं को कत्ल कर दिया, सुलतान कैकुबाद की हत्या करवादी और बाद में उसके अवयस्क पुत्र सुलतान कैमूर्स को भी मरवाकर स्वयं सुलतान बन गया।

जलालुद्दीन का राज्यारोहण—राजहंता और अपहरणकर्ता होने के कारण प्रारम्भ में जलालुद्दीन अलोकप्रिय हो गया और दिल्ली जाने की अपेक्षा वह दिल्ली के समीप किलोखड़ी में राजधानी बनाकर निवास करने लगा। उसने वहाँ से प्रेम, वात्सल्य, नम्रता और सद्‌भावना के आधार पर शासन करना प्रारम्भ किया और बड़ी उदारता और सान्त्वना व शांति की गृह नीति अपनाई। इससे उसके कुछ विरोधी संतुष्ट होकर उसके समर्थक बन गये। इसके बाद दिल्ली के कोतवाल फखरुद्दीन के निमंत्रण पर उसने दिल्ली में प्रवेश किया और राजसिंहासन पर बैठा।

जलालुद्दीन द्वारा उदारतापूर्वक पद और उपाधि वितरण—जलालुद्दीन तुर्की सरदारों और अमीरों का सहयोग, समर्थन और विश्वास प्राप्त करना चाहता था एवं सभी वर्ग के अमीरों और पदाधिकारियों को अपने नियंत्रण में रखना चाहता था। इसलिये उसने बड़ी उदारता और सद्‌भावना से अमीरों, मलिकों और पदाधिकारियों में उपाधियाँ वितरित कीं तथा उन्हे उच्च पदों पर आसीन किया। ऐसा करने में उसने खिलजी और तुर्क दोनों वर्गों के अमीरों का ध्यान रखा। उसने बलबन के भतीजे मलिक छज्जू को कड़ा और माणिकपुर का शासक नियुक्त किया और फखरुद्दीन को पूर्ववत् दिल्ली का कोतवाल बनाये रखा तथा ख्वाजा खातीर को वजीर के पद पर रहने दिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र महमूद को दिल्ली के पास के क्षेत्र का शासक बनाया, मझले पुत्र अरकलीखां को सीमांत क्षेत्र में मुलतान का सूबेदार नियुक्त किया, अपने भाई मलिक खामोश को अरजे मुमालिक का पद दिया, चचा मलिक हुसैन को ताजुलमुल्क की उपाधि तथा भतीजे अलमसबेग को उलुगखां की उपाधि दी और दूसरे भतीजे अलाउद्दीन को कड़ा का हाकिम बना दिया। भानजे मलिक अहमद चप को बारबक का पद दिया। इनके अतिरिक्त और भी प्रसिद्ध अमीरों और मलिकों को ऊँचे पद दिये।

जलालुद्दीन की नीति—उसने भय और आतंक, लोह और रक्त की नीति त्यागकर प्रेम व कृतज्ञता, भक्ति तथा वात्सल्य, सद्‌भावना और सहिष्णुता, सांत्वना और शांति के आधार पर शासन प्रारम्भ किया। वह मनुष्य की पैशाचिकता का कठोरता से दमन करने की अपेक्षा उसके मानवीय और दैवी अंग को प्रोत्साहित करता था। वह अपराधियों व विद्रोहियों को दंड देने की अपेक्षा उन्हें क्षमा कर सुधारने का प्रयास करता था। वह युद्ध करके व्यर्थ में रक्त नहीं बहाना चाहता था। कतिपय आलोचकों ने उसकी ऐसी नीति को उसकी कायरता का परिचायक समझा। उनका कहना है कि जलालुद्दीन अपनी मितव्ययता, सरलता, शाही ऐश्वर्य के अभाव से, शुद्धता, सान्त्वना, कृतज्ञता, सहृदयता आदि के कारण आतंक और भय के युग में सुलतान बनने के सर्वथा अयोग्य था। उसके इन गुणों और नीति ने उसे असफलता की ओर ढकेल दिया। उसकी विदेशी नीति भी उसकी निर्बलता, असावधानी और लापरवाही से प्रभावित हुई। रणथंभोर का असफल आक्रमण इसका प्रतीक है।

हिन्दुओं के प्रति जलालुद्दीन की नीति—हिन्दुओं के प्रति जलालुद्दीन असहिष्णु और अनुदार था और वह उनकी मूर्ति पूजा, भजन उपासना आदि का विरोधी था। वह उनके सार्वजनिक क्षेत्रों में प्रवेश के विपक्ष में था और उन्हें सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखना चाहता था। वह उनके ऐश्वर्य और धन संपन्नता को नष्ट करने का इच्छुक था। उसमें धार्मिक पक्षपात और धर्मांधता थी।

मलिक छज्जू का विद्रोह—जलालुद्दीन की दुर्बल नीति से प्रोत्साहित होकर कड़ा के सूबेदार बलबन के भतीजे मलिक छज्जू ने जलालुद्दीन के विरुद्ध विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित करदी। असन्तुष्ट तुर्क सरदार, विद्रोही हिन्दू, जलालुद्दीन से रुष्ट खिलजी अमीर, और बलबन वंश के समर्थकों ने छज्जू का साथ दिया तथा उसे बलबनी राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी और स्वामी मान लिया। मलिक छज्जू ने राजसिंहासन प्राप्त करने के लिए सेना सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। परन्तु सुलतान की सेना ने उसे परास्त कर दिया और मलिक छज्जू और उसके साथी अमीर बन्दी बनाकर सुलतान के संमुख उपस्थित किये गये। सुलतान ने उन्हें दंड देने और उनका वध करने की अपेक्षा, उनके साथ नम्रता का व्यवहार किया, उन्हें मुक्त कर, क्षमा देकर, उनका सत्कार किया और उन्हें अपना मित्र बना लिया। मलिक छज्जू के विद्रोह करने पर सुलतान ने अपने दामाद व भतीजे अलाउद्दीन को कड़ा का हाकिम बना दिया।

ठगों के साथ क्षमा और उदारता का व्यवहार—जब अनेक चोर, डाकू और ठग पकड़े गये, तब सुलतान ने उन्हें निर्मम दंड देने की अपेक्षा क्षमा करके सबको यह शपथ देकर मुक्त कर दिया कि वे भविष्य में चोरी नहीं करेंगे। इस नीति से शासन शिथिल हो गया।

मदिरा-महफिलें और अमीरों के साथ सुलतान का व्यवहार—सुलतान की असीम उदारता और क्षमादान की नीति से उसके समर्थक तुर्की और खिलजी अमीर और सरदार उससे असन्तुष्ट होकर उसके विरोधी बन गये और उन्होंने मदिरापान की महफिलों में सुलतान की कटु निंदा और आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया। एक बार मलिक ताजुद्दीन के गृह पर आयोजित मदिरा-महफिल में मदिरोन्मत्त अमीरों ने सुलतान का वध करने का षड़यंत्र रचा। जब सुलतान को यह विदित हो गया तो उसने उन अमीरों को बुलाया, उनकी भर्त्सना की और उन्हें चुनौती दी कि उनमें से जिस किसी की भी इच्छा हो सुलतान से युद्ध करले। अमीर अवाक रह गये। सुलतान ने षड़यंत्रकारियों को कठोर दंड देने की अपेक्षा, उन्हें क्षमा कर दिया और उनमें से कुछ का स्थानान्तर कर दिया और कुछ को दिल्ली से एक वर्ष के लिये निष्कासित कर दिया।

सीदीमौला का षड़यंत्र और उसका वध—सीदीमौला फारस का एक फ़कीर था जो दिल्ली में आकर बस गया था। यद्यपि उसका जीवन पवित्र, संयमी था और रहन-सहन, वेशभूषा साधारण थी, परंतु उसने अपने मकान के संमुख एक विशाल भोजनालय बनवाया था जहाँ सीदी मौला अनेक लोगों को मुफ्त भोजन खिलाता था।

सीदी मौला के दान-पुण्य, आतिथ्य सत्कार और शाही खर्च से उसका प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया था और अनेक अमीर,पदाधिकारी और नगर के लब्ध प्रतिष्ठित नागरिक उसके शिष्य होकर उसके यहाँ आते जाते थे। जलालुद्दीन से रुष्ट और क्षुब्ध तथा बलबनीवंश के समर्थक सरदार और अधिकारी मौला के यहां रात में जलालुद्दीन के विरुद्ध मंत्रणा करते और अन्त में उन्होंने एक षड़यंत्र रचा जिसके अनुसार जलालुद्दीन का वध करके सीदी मौला को खलीफा बनाने का निर्णय किया गया। परन्तु जलालुद्दीन को इस षड़यंत्र का पता चल गया और उसने सीदी मौला और उसके सहयोगी अमीरों को राजसभा में बुलाया। उन पर षड़यंत्र का दोष लगा कर मौला को हाथी के पैर के नीचे रौंदकर मार डाला गया, कुछ षड़यंत्रकारियों को दिल्ली से निष्कासित कर दिया गया और कुछ को स्थानान्तरित कर दिया गया और कुछ की संपत्ति जप्त कर ली गई। जलालुद्दीन की असाधारण क्रूरता का यह उदाहरण है। रूढ़िग्रस्त धर्मांध मुस्लिम इतिहासकारों ने सीदी मौला की हत्या को अवांछनीय, अनुचित और अन्यायपूर्ण बतलाया और जलालुद्दीन को दोषी। पर यह गलत है। वास्तव में सीदी मौला का षड़यंत्र तुर्कों द्वारा अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का अन्तिम प्रयास था और सुलतान ने षड़यंत्रकारियों को न्यायोचित दण्ड दिया।

जलालुद्दीन की बाह्य नीति और उसका असफल सैनिक अभियान—जलालुद्दीन की बाह्य नीति निष्प्रभ, दुर्बल और ढीली थी। इससे उसके सैनिक अभियान और सामरिक प्रयत्न हास्यास्पद बन गये। सन् १२९० में सुलतान ने राजस्थान के प्राचीन अभेद्य दुर्ग रणथंभोर पर आक्रमण किया। मार्ग में उसने झाइन के दुर्ग को को अपने अधिकार में कर लिया और वहां के हिन्दू मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करके मूर्तियों को तुड़वा दिया। झाइन की विजय और लूट से उन्मत्त हो उसने मालवा को लूटने के लिये अपनी सेना का एक भाग भेजा जहां उसे लूट में अत्यधिक धन सम्पदा मिली। रणथंभोर दुर्ग की अभेद्यता और वहाँ के राजपूतों की सैनिक तैयारियाँ देखकर जलालुद्दीन ने रणथंभोर का घेरा उठा लिया और बिना युद्ध किये अपनी सेना सहित दिल्ली लौट आया। उसने अपने इस आक्रमण की असफलता को यह कह कर टाल दिया कि मुसलमानों के सिर का प्रत्येक बाल रणथंभोर जैसे सौ दुर्गों से भी अधिक मूल्यवान था। उसने निरर्थक रक्तपात उचित नहीं समझा। पर इससे सुलतान की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा। सन् १२९२ में उसने मंदौर पर आक्रमण किया और वहां के राजपूतों को परास्त कर वहाँ के पार्श्ववर्ती प्रदेशों को लूट कर उन्हें विध्वंस कर दिया।

मंगोलों से युद्ध और मैत्री—सन् १२९२ में मंगोलों ने अब्दुल्ला के नेतृत्व में सीमान्त क्षेत्र पर विशाल सेना से आक्रमण किया। सुलतान सेना लेकर आगे बढ़ा और सिन्धु नदी के तट पर भीषण युद्ध में उसने मंगोलों को परास्त कर दिया। अब्दुल्ला तो मंगोलों की सेना लेकर लौट गया पर मंगोलों का दूसरा नेता उलुगखां अपने चार सहस्र मंगोलों सहित दिल्ली के आस्पास के क्षेत्र में आकर बस गया। इन मंगोलों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। सुलतान जलालुद्दीन ने इनकी आजीविका की व्यवस्था की। पर इन मंगोलों ने आगे चलकर सुलतान के विरुद्ध षड़यत्रों और

विद्रोहों में भाग लिया। इससे मंगोलों के प्रति जलालुद्दीन की नीति घातक रही।

जलालुद्दीन की हत्या—जलालुद्दीन के भतीजे, दामाद और कड़ा के हाकिम अलाउद्दीन ने भेलसा और देवगिरी पर आक्रमण करके अपार संपत्ति प्राप्त करली थी। जलालुद्दीन यह आशा करता था कि अलाउद्दीन समस्त लूट की संपत्ति उसे भेंट कर देगा। इसलिये दक्षिण अभियान से लौटते हुए अलाउद्दीन को चन्देरी के पास मार्ग में रोकने के परामर्श को अंगीकार न करके जलालुद्दीन ने वात्सल्य और उदारता से प्रेरित होकर उससे मिलना चाहा। अलाउद्दीन को उसके अपार धन ने तथा सुलतान बनने की महत्वाकांक्षा ने मदान्ध बना दिया और उसने जलालुद्दीन की हत्या करने का षड्यंत्र रचा। अलाउद्दीन ने सुलतान को कड़ा आमन्त्रित किया जिससे कि वह उससे भेंट कर दक्षिण अभियान के लिये क्षमा याचना कर सके। अलाउद्दीन और उसके षड्यंत्रकारी भाई अलमसबेग ने भेंट के समय सुलतान के साथ सुरक्षा के लिए सशस्त्र अमीरों, सेवकों और अंगरक्षकों को नहीं आने दिया। सुलतान जलालुद्दीन असुरक्षित होकर कड़ा को अलाउद्दीन से भेंट करने गया। ज्योंही उसने नाव से उतरकर अलाउद्दीन को स्नेह से गले लगाया, अलाउद्दीन ने सुलतान पर आक्रमण करने का संकेत किया। फलतः महमूद सालिम नामक सैनिक ने जलालुद्दीन पर तलवार से प्रहार कर दिया जिससे उसका हाथ कट गया और तब वह सुरक्षा के लिये नदी की ओर भागा। इसी बीच इख्तियारउद्दीन ने उसका सिर काट दिया और अलाउद्दीन के संमुख प्रस्तुत किया। अलाउद्दीन ने इसे भाले की नोक पर रखकर कड़ा और माणिकपुर की सेना में घुमाया जिससे सुलतान के वध की सूचना सबको हो जाय। इसके बाद अमीरों, अधिकारियों और सैनिकों में उसने विपुल धन वितरित किया जिससे वे इतिहास की इस निकृष्ट हत्या को भूल जांय और उसका समर्थन करें।

जलालुद्दीन का मूल्यांकन—सुलतान जलालुद्दीन में चरित्र की उच्चता, हृदय की निश्छलता और पवित्रता, कोमलता और सहृदयता, उदारता और सहिष्णुता, वात्सल्य और स्नेह, क्षमाशीलता और सरलता थी। उसमें अनेक नैतिकतापूर्ण बातें थीं। उसने राजनीति में भले और बुरे, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म का पूरा ध्यान रखा। वह शासन में बुरे कर्मों को करने और व्यर्थ में हत्या और रक्तपात करने से हिचकता था। वह प्रथम सुलतान था जिसने उदारता, कृपालुता, और क्षमाशीलता को शासन की आधारशिला बनाने का प्रयास किया। उसने चोरों, डाकुओं और ठगों को उनके वचनों पर विश्वास करके उदारता से उन्हें क्षमा कर दिया। उसने अपराधियों को बन्दी बनाकर दंड नहीं दिया। उसने नृशंसता और क्रूरता, तलवार और ताकत के शासन के स्थान पर उदारता, क्षमाशीलता तथा दयालुता पर आधारित कोमल शासन का साहसपूर्वक प्रारम्भ किया। उसने अपनी नीति से सामन्तों में व्याप्त पुश्तैनी ईर्षा और संघर्ष को कम कर उनके सभी वर्गों में शांति, सद्भावना, सहिष्णुता और समन्वय की भावनाएँ विकसित कीं तथा उनकी स्वामिभक्ति व श्रद्धा प्राप्त की।

वह एक सफल सैनिक और योद्धा था। मंगोलों को युद्ध में परास्त करके सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा कर उसने अपनी सैनिक प्रतिभा और कुशल शासन का प्रमाण दिया। पर वह निरर्थक रक्तपात और नरसंहार का पक्षपाती नहीं था। इसीलिये उसने रणथंभोर से बिना युद्ध किये सेना हटाली थी। उसकी वृद्धावस्था उसके सैनिक अभियानों और विजय में बाधक थे।

सुलतान जलालुद्दीन कलाप्रिय था। उसमें विद्या और विद्वानों के प्रति अनुराग था। वह विद्वानों की गोष्ठियाँ करता था जिनमें प्रसिद्ध विद्वान, कवि, श्रेष्ठतम व्यक्ति और लुभावने गायक सम्मिलित होते थे। मलिक खुसरो जो समकालीन कवियों में श्रेष्ठ था, उसका कृपापात्र था। यद्यपि जलालुद्दीन का शासनकाल विशेष गौरवपूर्ण नहीं था, परन्तु उसने शान्तिपूर्ण और अच्छा शासन स्थापित किया, जिसमें निष्पक्षता और न्याय था। उस शासन में रहकर जनसाधारण को सांस लेने का अवसर मिला। वह प्रशासकीय क्षमता से शून्य नहीं था। उसने मानव की सुकोमल उदात्त प्रवृत्तियों में आस्था रखकर प्रशासन किया और मध्य युग की यवन राजनीति में एक नया मोड़ ला दिया। परन्तु उसने हिन्दुओं के प्रति धर्मांधता और धार्मिक पक्षपात की नीति अपनाई। वह उनकी मूर्ति-पूजा, ऐश्वर्य और धन-संपत्ति का नाश करना चाहता था। मध्य युग के इतिहास में जलालुद्दीन का यह स्थान है कि उसने बाह्य और आन्तरिक नीति में उदारता, कृपालुता, शान्ति, स्नेह और क्षमाशीलता की नीति अपनाई। उसका आदर्श कठोरता, आतंक, और नृशंसता से शासन करना नहीं था। कतिपय इतिहासकारों ने उसके ऐसे आदर्श की प्रशंसा नहीं की, अपितु उसे कायर, शक्तिहीन और धर्मभीरु बतलाया है और उसकी हत्या को तुर्की सल्तनत के लिये उपयुक्त दर्शाया है। इस दृष्टि से वे अलाउद्दीन को हत्यारा और राज अपहरणकर्ता नहीं मानते अपितु उसे सल्तनत का उद्धारक, प्रगट करते हैं। यह उनका भ्रम है, उनका सीमित दृष्टिकोण है।। न तो स्वयं अलाउद्दीन ने ही अपने को इस दृष्टिकोण से देखा, न उसने अपने जघन्य कार्यों का इस प्रकार पिष्ठ पोषण किया और न समकालीन इतिहासकारों और विद्वानों ने ही अलाउद्दीन को दोष मुक्त कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा ही की है।

अध्याय १३

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी [सन् १२६६-१३१३]

अलाउद्दीन खिलजी का प्रारंभिक जीवन, उसका उत्कर्ष, नीति और साम्राज्य विस्तार—अलाउद्दीन का पिता और सुलतान जलालुद्दीन का भाई शहाबुद्दीन मसऊद खिलजी बलबन की सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा के लिये नियुक्त सेना में एक सैनिक था। अलाउद्दीन का जन्म सन् १२६६-६७ में हुआ था। उसे बचपन में अली अथवा गरशास्प कह कर पुकारा जाता था। वह अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र था। शहाबुद्दीन का देहावसान असामयिक रूप से हो गया था। इस समय जलालुद्दीन खिलजी बलबन की सेना में उच्च पदाधिकारी था। अतएव स्नेहवश जलालुद्दीन ने अपने दोनों भतीजे अलाउद्दीन और उसके छोटे भाई अलमसबेग के लालन-पालन का भार ग्रहण कर लिया। जलालुद्दीन ने दोनों भाइयों के भरण-पोषण की व्यवस्था समुचित ढंग से बड़े स्नेह और वात्सल्य से की। इससे अलाउद्दीन को अपने पिता की अनुपस्थिति नहीं खली। उस सैनिक वातावरण के युग में अलाउद्दीन को नियमित रूप से शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकी और स्वयं अलाउद्दीन को भी प्रारम्भिक शिक्षा में कोई विशिष्ट अभिरुचि नहीं थी। परन्तु सैनिक वातावरण में पलने के कारण अलाउद्दीन ने सैन्य संबंधी शिक्षा प्राप्त कर ली थी। पूर्ण रूप से वयस्क होने तक उसने घोड़े की सवारी, तलवार चलाने, भाले का उपयोग करने में, मल्ल युद्ध करने में, विभिन्न अस्त्रों-शस्त्रों के प्रयोग में तथा विविध खेल-कूदों में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। निरक्षर होने पर भी उसकी बुद्धि मंद एवं प्रतिभा कुंठित नहीं हो पायी थी। जलालुद्दीन उसकी इस प्रतिभा और प्रवीणता से अत्यन्त ही प्रसन्न और प्रभावित हुआ तथा उसकी ओर अधिक आकर्षित होने से उसने अपनी पुत्री का विवाह अलाउद्दीन से कर दिया। अलाउद्दीन का अपनी इस पत्नि से प्रारम्भ से ही मनमुटाव रहा और उसका दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं था। अब्दुल्लाह नामक विद्वान ने अपने ग्रंथ 'जफरुल वालेह बे मुजफ्फर वालेह' में अलाउद्दीन के दाम्पत्य जीवन और उसकी प्रेम गाथा पर प्रकाश डाला है। उसके अनुसार अलाउद्दीन का विवाह हो जाने पर भी वह महरू नामक एक अन्य सुन्दर युवती से प्रेम करता था और वह बलबन कालीन प्रसिद्ध अमीर मलिक संजर की कन्या थी। उसके इस प्रेम से अलाउद्दीन की पत्नि रुष्ट और क्षुब्ध रहती थी। परन्तु अलाउद्दीन उसकी उपेक्षा करता रहा और वह सुन्दरी महरू से बराबर मिलता जुलता रहता था और उनके प्रेमाख्यान चलते रहते थे। एक बार अलाउद्दीन की पत्नि को उसके एक सेवक से, जो अलाउद्दीन और उसकी प्रेमिका के निरीक्षण के लिये नियुक्त किया गया था, यह खबर मिली कि वे दोनों एक निकुंज में प्रेमाख्यान में मग्न

हैं। तत्काल ही अलाउद्दीन की पत्नि उनके पास वहाँ पहुँच गयी। उसने वहाँ दोनों को बुरा-भला ही नहीं कहा अपितु अपने जूते से उस युवती को मारा भी। अलाउद्दीन इस अपमान को सहन नहीं कर सका और उसने अपनी पत्नि पर तलवार से प्रहार किया, पर घाव गहरा नहीं लगा। इस घटना से पति-पत्नि में अधिक पारस्परिक कटुता बढ़ गयी और दोनों में परस्पर झगड़े भी होने लगे थे। अब तक जलालुद्दीन सुलतान बन चुका था। इसलिये उसकी पत्नि अपने शहजादीपन और कुलीनता में उन्मत्त रह कर अलाउद्दीन को जली-कटी बातें सुना देती थी। वह अपनी श्रेष्ठता के मद में रहती थी, क्योंकि उसका पिता सुलतान था। अलाउद्दीन स्त्रैण होकर रहने के लिये प्रस्तुत नही था। वह सुलतान की कन्या से मन ही मन असन्तुष्ट होने के कारण उसकी उपेक्षा करता था, और वह उपेक्षा को देखकर और भी कुढ़ती थी तथा जली-कटी बाते सुनाती रहती थीं।

दोनों की पारस्परिक वैमनस्यता और कटुता जब सुलतान जलालुद्दीन तक पहुँची तो उसकी पत्नी बेगम और अलाउद्दीन की सास ने अपनी कन्या का साथ दिया और उसने अलाउद्दीन को बेगम होने के नाते डराया और धमकाया और कहा कि उसकी पद-प्रतिष्ठा और उदरपूर्ति सुलतान की कृपा पर आश्रित है। परन्तु अलाउद्दीन स्त्रैण नहीं था। वह चतुर, महत्वाकांक्षी और स्वतन्त्र विचारों वाला व्यक्ति था। इसलिये बेगम की डाटडपट का प्रभाव अलाउद्दीन पर प्रतिकूल पड़ा। वह इन दोनों स्त्रियों के कटु व्यवहार से दुखी हो गया था और कभी-कभी अत्यन्त ही क्रोधित और क्षुब्ध भी हो जाता था। ऐसी ही पारिवारिक परिस्थिति मे उसकी पदोन्नति हुई।

अलाउद्दीन की पदोन्नति—जब जलालुद्दीन ने तुर्क अमीरों और बलबन वंश का अन्त करने का प्रयास किया, तब अलाउद्दीन ने सुलतान कैकुबाद की हत्या करने और दासवंश का अन्त करने में जलालुद्दीन को सक्रिय भाग लेकर अत्यधिक सहायता दी थी जलालुद्दीन इससे अत्यन्त प्रसन्न हुआ था और सुलतान बनने पर उसने अला-उद्दीन को अमीर-ए-तुजक (Master of the Ceremonies) के पद पर आसीन किया। इसके बाद बलबन वंश के मलिक छज्जू के विद्रोह का दमन करने में भी अलाउद्दीन ने अपनी योग्यता और सैनिक प्रतिभा का परिचय दिया और सुलतान जलालुद्दीन की सहायता की। इस सक्रिय सहयोग और सहायता के उपलक्ष में प्रसन्न होकर जलालुद्दीन ने अलाउद्दीन को कड़ा का हाकिम नियुक्त कर दिया।

स्वतण्त्र सुलतान बनने की महत्वाकांक्षा—अपनी योग्यता और [illegible] के कारण अलाउद्दीन एक बड़े प्रान्त का सूबेदार बन गया। धीरे-धीरे उसकी गणना खिलजी साम्राज्य के प्रसिद्ध कुशल सैनिक, सुलतान के स्वामिभक्त, समर्थक, योग्य प्रान्-पतियों व संचालकों में की जाने लगी। वास्तव में कड़ा का हाकिम नियुक्त हो जाने से अलाउद्दीन को, दिल्ली के पारिवारिक कलह से जिसमें अपनी सास दिल्ली की मलिका तथा धर्मपत्नी के मनोमालिन्य और झगड़े का बाहुल्य था, मुक्ति मिल गयी। अब वह अपने भविष्य की महत्वाकांक्षाओं पर विचार करने लगा। कड़ा की जागीर और उसका शासन अलाउद्दीन को प्राप्त होते ही मलिक छज्जू के अनेक विश्वासपात्र अधिकारी और कर्मचारी जिन्होंने सुलतान जलालुद्दीन के विरुद्ध विद्रोह किया था,

अलाउद्दीन के पास आ गये और उसने उन सबको अपनी सेवाओं में लेकर अधिकारी और परामर्शदाता नियुक्त किया। इन विद्रोही व विरोधी अमीरों और अधिकारियों ने अलाउद्दीन को अपना नेता स्वीकार किया। इनमें से कतिपय व्यक्ति अलाउद्दीन के अतंरंग मित्र भी बन गये। इन्होंने अलाउद्दीन को परामर्श दिया कि—

(i) जलालुद्दीन अपनी कायरता और दब्बू नीति के कारण दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के सर्वथा अनुपयुक्त है।

(ii) अलाउद्दीन को सुलतान बनना चाहिये, क्योंकि वह उसकी अद्वितीय प्रतिभा और गुणों के कारण सुलतान पद के सर्वथा योग्य है।

(iii) कड़ा और अवध की जनता अलाउद्दीन को सुलतान बनने के लिये पूरा-पूरा सहयोग देने को तत्पर हैं।

(iv) मलिक छज्जू के विद्रोह की असफलता का कारण यह था कि उसके पास पर्याप्त धन का अभाव था। इसलिए सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करने के पूर्व सुलतान बनने के लिये अलाउद्दीन ने पर्याप्त धन सम्पत्ति एकत्रि कर लेना चाहिए।

(v) ऐसी मान्यता थी कि सुलतान जलालुद्दीन की दब्बू नीति से लाभ उठा कर उसके साथ रहने वाले मलिक अहमद चप या सुलतान का पुत्र अर्कली खां स्वयं सुलतान बनने के लिये षड़यंत्र करे या विद्रोह कर दे और सल्तनत की सत्ता अपने हाथ में ले ले। इसलिये उत्तम होगा, अलाउद्दीन स्वयं सुलतान बनने का प्रयास करे।

इस प्रकार की चाटुकारिता और परामर्श से अलाउद्दीन की महत्वाकांक्षा उत्तरोत्तर पल्लवित होने लगी और उसने भी यह निष्कर्ष निकाला कि वह भी अपनी सास (मलिका) और पत्नी (राज कन्या) को यह बता देगा कि वह निकम्मा और अयोग्य नहीं है और सुलतान की कृपा पर भी निर्भर नहीं है। अब उसने निश्चय कर लिया कि वह सुलतान बनने की अपनी महत्वाकांक्षा को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करे और इसके लिये उसने सुलतान का अधिकाधिक विश्वास प्राप्त करने और उसके प्रति अपनी कृतज्ञता तथा स्वामिभक्ति प्रगट करने के लिये खूब प्रयास करना चाहिये। ऐसी दशा में उसने थोड़े समय के लिये सुलतान की अधीनता में रहना श्रेयस्कर समझा। वास्तव में वह सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करने और उसकी शक्ति पर प्रहार करने के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिये उसने तीन अधिक आवश्यक कार्य पूर्ण किये—

(i) अपने चतुर्दिक परखे हुए स्वामिभक्त, योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को रखना।

(ii) अपने अनुयायियों तथा सैनिकों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि करना और समुचित सैनिक संगठन करना।

(iii) अधिक से अधिक धन एकत्रित करना। इसके लिये उसने आक्रमण, विजय और लूट की योजना बनाई।

भेलसा पर आक्रमण और धन संपत्ति की प्राप्ति (सन् १२९२)—अपनी पूरी तैयारी करने के बाद अलाउद्दीन ने सुलतान से भेंट की और प्राचीन धन सम्पन्न नगर भेलसा (मध्यप्रदेश में भोपाल के समीप) पर आक्रमण करने की अनुमति प्राप्त कर

ली। अलाउद्दीन इतनी तीव्र गति से भेलसा की ओर बढ़ा और उसने वहाँ इतनी शीघ्रता से आक्रमण किया कि भेलसा (विदिशा)के निवासी उसका सामना करने और अपनी रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ से हो गये। फलत: अलाउद्दीन ने भेलसा के मंदिरों, भवनों, बाजारों और सेठों को निर्ममता से लूटा और विध्वंस किया तथा विपुल धन सम्पत्ति लेकर सुलतान के पास दिल्ली पहुँचकर लूट का माल सुलतान के चरणों पर रख दिया। इससे सुल्तान अधिक प्रसन्न हुआ और अलाउद्दीन को उसके सम्मान की वृद्धि हेतु अरज-ए-मुमालिख के पद पर प्रतिष्ठित किया तथा उसे अवध का प्रदेश भी सौंपकर पुरस्कृत किया। इस भेलसा विजय, पुरस्कार और पदोन्नति ने अलाउद्दीन की सुलतान बनने की महत्वाकांक्षा को विकसित और पल्लवित होने का सुअवसर प्रदान किया। इससे उसकी विजय और धन की लिप्सा अबाध गति से अनियंत्रित रूप में बढ़ती चली गयी।

देवगिरी पर आक्रमण, विजय और विपुल धन की प्राप्ति—मालवा में भेलसा के अभियान के बाद अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत में देवगिरी राज्य पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

(i) **देवगिरी का महत्व**—विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण में और कृष्णा नदी के उत्तर के क्षेत्र में देवगिरी राज्य फैला हुआ था। यहाँ यादववंशी हिन्दू नरेश राज्य करते थे। उन्होंने अपने विजय अभियानों से अपनी धन-सम्पत्ति, सैन्य शक्ति, राज्य-सीमाएँ एवं राजसत्ता में अत्यधिक वृद्धि करली थी। केन्द्रीय सत्ता की दृढ़ शक्ति के कारण राज्य में आन्तरिक शांति थी जिससे वाणिज्य-व्यापार के कारण जनता की सम्पन्नता में भी अभिवृद्धि हुई। देवगिरी राज्य की भौगोलिक स्थिति भी बड़े महत्व की थी। उत्तर भारत से दक्षिण विजय करने के अभिलाषी सुलतान को देवगिरी को विजय करना अनिवार्य था, क्योंकि यह राज्य दक्षिण जाने के मार्ग पर था। इस समय देवगिरी का राजा रामचन्द्रराव था।

(ii) **अलाउद्दीन द्वारा देवगिरी पर आक्रमण करने के कारण**—(अ) भेलसा अभियान और विजय के समय अलाउद्दीन देवगिरी की विपुल धन संपत्ति और वैभव के विषय में खूब सुन चुका था। देवगिरी राज्य की जनता की धन सम्पन्नता और वहाँ के राज्य के वैभव व कोष की विपुल धनराशि ने उदीयमान, साहसी शासक अला-उद्दीन को देवगिरी पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया था। अपार धन प्राप्ति की अलाउद्दीन की तीव्र लालसा प्रमुख कारण थी।

(ब) अलाउद्दीन दक्षिण विजय का महत्वाकांक्षी था।

(स) उसकी सास मलिका जहाँ की जली-कटी बातें और धमकियाँ, तथा अस-न्तुष्ट शाहजादी पत्नि के गृह क्लेश ने उसे प्रेरित किया कि वह अपने लिए किसी श्रेष्ठ उच्च स्थान की खोज करे। वह पारिवारिक कटुता और विषम परिस्थिति का अन्त कर देना चाहता था। उसने क्षुब्ध होकर अपनी सास व पत्नी से भी कहा था कि वह कहीं अन्यत्र चला जायगा। देवगिरी अभियान व विजय से वह अपनी सास व पत्नि को प्रभावित कर सकेगा।

(iii) देवगिरी अभियान की तैयारियाँ—अलाउद्दीन ने अपनी देवगिरी अभियान की योजना को गोपनीय रखा। उसने जलालुद्दीन से मध्यभारत क्षेत्र में स्थित चन्देरी राज्य पर आक्रमण करने की अनुमति चाही। उसने यह भी निवेदन किया कि चन्देरी अभियान और विजय में जो भी धन सम्पत्ति प्राप्त होगी उसे वह सुलतान को अर्पित कर राज कोष में दे देगा। उसका भेलसा-विजय का उदाहरण ताजा था ही। सरल हृदय स्नेही सुलतान जलालुद्दीन ने अलाउद्दीन को चन्देरी-अभियान की अनुमति प्रदान कर दी तथा उसे यह भी सुविधा प्रदान की कि वह अपने शासन के अन्तर्गत कड़ा तथा अवध क्षेत्र की आमदनी भी अपने सैनिक संगठन में उपयोग करले। फलतः अलाउद्दीन ने आठ सहस्त्र सैनिकों को संगठित किया तथा उनके उपयोग के लिये पर्याप्त युद्ध सामग्री और अस्त्र-शस्त्र एकत्र किये और कड़ा तथा अवध के शासन का भार अपने विश्वसनीय अधिकारी काजी अलाउलमुल्क को सौप दिया और उसे यह आदेश दिया कि वह उसके देवगिरी आक्रमण के प्रस्थान को गुप्त रखे और सुलतान को इस विषय में मनगढ़न्त सूचनाएँ प्रेषित करता रहे। अलाउद्दीन ने अपने गुप्तचरों द्वारा देवगिरी जाने के मार्ग तथा देवगिरी की आन्तरिक स्थिति का पूर्ण पता लगा लिया था।

(iv) देवगिरी पर आक्रमण के लिये प्रस्थान—पूर्ण सैनिक तैयारियाँ करके अलाउद्दीन चन्देरी, भेलसा होता हुआ, विंध्या पार करके एलिचपुर पहुँचा। मार्ग में उसने यह झूठी बात फैलादी कि वह अपने ससुर सुलतान जलालुद्दीन और सास मलिका जहाँ से अप्रसन्न होकर दक्षिण भारत में राजमुन्दरी नरेश के यहाँ शासकीय सेवा में रहने के लिये जा रहा है। इसलिये मार्ग में कहीं भी अलाउद्दीन का अवरोध नहीं किया गया।

एलिचपुर में अलाउद्दीन ने विश्राम किया और देवगिरी पर आक्रमण करने के सुअवसर की ताक में बैठा रहा। वहाँ जब अलाउद्दीन को उसके गुप्तचरों ने यह खबर भेजी कि देवगिरी नरेश रामचन्द्रराव का ज्येष्ठ पुत्र सिंघन (शंकरदेव) अपनी सेना सहित देवगिरी से दक्षिण की ओर विजय के लिये प्रस्थान कर गया है, तब अलाउद्दीन ने सहसा सेना विहीन देवगिरी पर आक्रमण किया। देवगिरी आक्रमण के प्रारम्भ से ही उसने छल-कपट की नीति अपनाई। राजा रामचन्द्र अलाउद्दीन की सैनिक गतिविधियों से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ था।

(v) देवगिरी पर आक्रमण—उपयुक्त अवसर पर अलाउद्दीन ने देवगिरी पर आक्रमण किया। पर नगर व दुर्ग तक पहुँचने के पूर्व देवगिरी राज्य के एक वीर सामन्त कान्हां ने अलाउद्दीन का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। फलतः अलाउद्दीन को उससे युद्ध करना पड़ा। मुस्लिम इतिहासकार एसामी के अनुसार प्रथम हल्ले में सामन्त कान्हां की सेना ने अलाउद्दीन की सेना को परास्त कर पीछे ढकेल दिया किन्तु अलाउद्दीन ने अपनी स्थिति संभालकर पुनः हमला बोला और विजय प्राप्त की। इस युद्ध में कान्हां की सेना में दो वीर महिलाओं ने सेना के एक अंग का संचालन कर शेरनी की भाँति अलाउद्दीन पर आक्रमण किया था।

अपनी सेना को आक्रमण और विजय के लिए अधिक प्रेरित करने के लिए अलाउद्दीन ने छलपूर्ण चाल चली। उसने अपनी सेना में यह अफवाह फैला दी कि जब देवगिरी राज्य की नारियाँ वीरांगना हैं और शेरनी की भाँति आक्रमण करती हैं, तब वहाँ की पुरुष सेना का सामना कर युद्ध करने की क्षमता उसकी सेना में नहीं है। इस पर उसकी सारी सेना उत्तेजित हो उठी और विजय के लिये दृढ़ संकल्प करने लगी। अलाउद्दीन ने इस अवसर का लाभ उठाकर अपनी सेना को नयी उमंग और अपूर्व वीरता व साहस से युद्ध करने की शपथ दी और फिर उसने देवगिरी पर बड़े जोर से हमला बोल दिया।

राजा रामचन्द्र अलाउद्दीन के इस आकस्मिक आक्रमण से स्तंभित रह गया। फिर भी उसने रक्षात्मक युद्ध करने का निश्चय किया और उसने दुर्ग में आवश्यक युद्ध सामग्री तथा सेना संग्रहित कर दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये और अपने पुत्र सिंघन को सेना सहित देवगिरी लौट आने की सूचना भेज दी। इसी बीच अलाउद्दीन ने अपनी विशाल आक्रमणकारी सेना सहित देवगिरी नगर में प्रवेश किया। उसने वहाँ अनेक ब्राह्मणों और धन सम्पन्न व्यापारियों को बन्दी बना लिया और नगर में विशेषकर दुर्ग के संमुख बाहर वाले भाग को खूब लूट लिया। लोगों में अपना भय और आंतक स्थापित करने के लिये और रामचन्द्र को अधिक प्रभावित करने के लिए अलाउद्दीन ने इस समय यह अफवाह फैलादी कि उसका चाचा सुलतान जलालुद्दीन दक्षिण विजय करने और देवगिरी को पदाक्रांत करने के हेतु वीस सहस्त्र अश्वारोहियों की सेना सहित वहाँ आ रहा है।

(vi) **प्रथम सन्धि**—जलालुद्दीन के आगमन की इस अफवाह, नगर की लूटपाट और घेरे की विषम परिस्थिति से भयभीत होकर राजा रामचन्द्र ने नगर व राज्य को सर्वनाश से बचाने के लिये अलाउद्दीन से संधि वार्ता प्रारम्भ की। अलाउद्दीन भी सिंघन के आगमन के पूर्व ही सन्धि करना चाहता था क्योंकि सिंघन से युद्ध करके विजयश्री प्राप्त करने के परिणाम पर वह शंकित था। फलतः रामचन्द्र और अलाउद्दीन में यह संधि हो गई कि रामचन्द्र अपने नगर और राज्य को अलाउद्दीन से मुक्त कराने के लिए निर्दिष्ट धन राशि देगा और अलाउद्दीन द्वारा लूट में प्राप्त धन का कोई विवरण नहीं माँगेगा। इसके बदले में अलाउद्दीन देवगिरी के बन्दियों को मुक्त कर देगा और दिल्ली लौट जायगा। पर इसी बीच रामचन्द्र का पुत्र सिंघन अपनी सेना सहित लौट आया। इससे परिस्थिति बदल गयी।

(vii) अलाउद्दीन और सिंघन में युद्ध—नवयुवक राजकुमार सिंघनदेव को उपरोक्त वर्णित अपमान जनक संधि स्वीकार नहीं थी। इसके साथ ही राजा रामचन्द्र राव भी संघर्ष के पक्ष में नहीं था। ऐसी दशा में सिंघनदेव ने अलाउद्दीन को यह संदेश भेजा कि वह देवगिरी में लूटे हुए धन को वापिस कर दे और फिर दिल्ली लौट जाय, अन्यथा उसे युद्ध में मृत्यु का सामना करना पड़ेगा। अलाउद्दीन ने इस संदेश और स्थिति से भयभीत होने की अपेक्षा साहस, धैर्य और कूटनीति से काम लेने का सोचा। उसने सोचा कि कड़ा से कोसों दूर देवगिरी आकर लूट का धन वापिस देकर अपमा-

नित होकर लौट जाना उसने उचित नहीं समझा। इसलिए उसने युद्ध करने का निर्णय किया।

उसने युद्ध की योजना बनाई कि रामचन्द्रराव दुर्ग में ही बंद रह जाय और वह अपने पुत्रकी सेना सहित सहायता न कर सके। अलाउद्दीन ने अपने एक सैनिक अधिकारी नसरत खाँ को यह आदेश दिया कि वह एक सहस्र सैनिक सहित नगर और दुर्ग का घेरा डाले रहे। अब अलाउद्दीन अवशिष्ट सेना लेकर सिंघन से युद्धके लिये आगे बढ़ा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ और सिंघन की सेना ने अलाउद्दीन को परास्त कर दिया और उसकी सेना के पैर उखाड़ दिये। पर इसी समय अलाउद्दीन के सौभाग्य से नसरत-खाँ ने अलाउद्दीन का संकट देखा और वह दुर्ग का घेरा छोड़कर रण-क्षेत्र की ओर चल पड़ा। अलाउद्दीन ने पहिले यह अफवाह फैला रखी थी कि सुलतान जलालुद्दीन उसकी सहायता के लिये बीस सहस्र सैनिक लेकर आ रहा है। नसरत की सेना को देखकर सिंघन की सेना ने समझा कि जलालुद्दीन अपनी सेना सहित अलाउद्दीन की सहायता के लिये आ गया है। उन्होंने वास्तविकता को नहीं समझा। इससे वे आतंकित और हतोत्साह हो गये और रणक्षेत्र छोड़कर बिखरने लगे। फलतः विजयश्री प्राप्त करता हुआ सिंघन परास्त हुआ और अलाउद्दीन ने पुनः दुर्ग का घेरा डाल दिया। अपने विजय उन्माद में अलाउद्दीन ने नगर के कुछ प्रमुख प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जिन्हें उसने बन्दी बना रखा था, वध कर दिया और अन्य बंदियों को निर्मम यातनाएँ देना प्रारंभ कर दिया।

इस विषम स्थिति को देखकर राजा रामचन्द्रराव ने कतिपय हिन्दू राजाओं का संगठन बनाकर अलाउद्दीन के विरुद्ध युद्ध करना चाहा। परन्तु जब उसे विदित हुआ कि सैनिक तैयारियाँ करते समय दुर्ग में अन्न के जो बोरे रखवाये गये थे वे विश्वास-घात से अन्न के न होकर नमक के थे। उसने संगठन व युद्ध का विचार त्याग दिया। हताश होकर रामचन्द्रराव को संधि करने के लिये विवश होना पड़ा।

(viii) द्वितीय संधि—रामचन्द्र और अलाउद्दीन के बीच संधि हो गयी। इसके अनुसार रामचन्द्रराव ने अलाउद्दीन को छः सौ मन सोना, सौ मन मोती, दो मन हीरे, लाल, पन्ने तथा नीलम, एक सहस्र मन[1] चांदी तथा चार सहस्र रेशमी वस्त्र के थान और बहु संख्यक घोड़े दिये। अलाउद्दीन ने रामचन्द्र से एलिचपुर प्रांत भी ले लिया क्योंकि उसे प्राप्त कर वह अपनी उस सेना का व्यय चलाना चाहता था जिसको वह वहां नियुक्त करने का इच्छुक था। इस विपुल धन संपत्ति को लेकर विजयोल्लास में फूला हुआ अलाउद्दीन कड़ा लौट आया। उसे अभूतपूर्व और अप्रत्याशित सफलता मिली।

(ix) देवगिरी में अलाउद्दीन की सफलता और रामचन्द्र की पराजय के कारण—

(१) रामचन्द्र की दुर्बल नीति—रामचन्द्र की नीति इतनी अधिक दुर्बल थी कि वह शत्रु अलाउद्दीन को शीघ्र राज्य की सीमा पर ही रोक नहीं सका। उसने आक्रमणकारी को आगे बढ़ने से रोकने की कोई व्यवस्था नहीं की। अलाउद्दीन कड़ा

---

१. एक मन साढ़े सैंतीस किलो ग्राम के बराबर होता है।

से सीधा देवगिरी तक विना किसी कठोर संघर्ष और युद्ध के पहुँच गया। रामचन्द्र ने कोई दृढ़ सीमान्त नीति नहीं अपनाई।

(२) **शिथिल प्रशासन और निकम्मी गुप्तचर व्यवस्था–** रामचन्द्र का शासन शिथिल और अव्यवस्थित था तथा उसकी गुप्तचर व्यवस्था क्षीण और निकम्मी थी। उसके शासकीय अधिकारी और गुप्तचर उसे आक्रमणकारी के निरन्तर आगे बढ़ने की ठीक-ठीक सूचना नहीं दे सके और न उन्होंने उसके मार्ग को अवरुद्ध करने का कोई प्रयास ही किया। उसके गुप्तचर और सैनिक अधिकारी अलाउद्दीन द्वारा फैलाई हुई अफवाह का खंडन भी नहीं कर सके, वे नसरतखां द्वारा दुर्ग का घेरा छोड़कर रण-क्षेत्र की ओर जाने की भी सूचना दुर्ग में रामचन्द्र को और युद्ध करती हुई सिंघन की सेना को नहीं भेज सके। यदि रामचन्द्र को ठीक से सूचना मिल जाती तो वह दुर्ग से अपनी सेना को लेकर बाहर निकल कर अलाउद्दीन की सेना पर टूट पड़ता और अलाउद्दीन, रामचन्द्र और सिंघन की सेना के बीच में घिर कर परास्त हो जाता और संभव है रणक्षेत्र में ही खेत रह जाता।

(३) **शासकीय भूलें और विश्वासघात**–रामचन्द्र के अधिकारियों ने अनेक भूलें और विश्वासघात किया। उन्होंने देवगिरी दुर्ग का घेरा डाले हुए अलाउद्दीन और उसके सैनिकों को गुरेल्ला युद्ध से तंग नहीं किया, उसे रसद प्राप्त करने में बाधा नहीं पहुँचाई, दुर्ग में घिरे हुए सैनिकों की सहायता के लिये, उनसे संपर्क साधने के लिये उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया। कतिपय अधिकारियों ने अपने राज्य और नरेश के साथ विश्वास-घात किया और उन्होंने सैनिक तैयारियों के समय दुर्ग में रसद के बोरों में अन्न के स्थान पर नमक के बोरे रखवा दिये। नमक चाटकर सैनिक युद्ध नहीं कर सकते थे। राजा रामचन्द्र और उसके सेना अधिकारियों ने अहंकार के कारण देवगिरी दुर्ग की सुरक्षा की उपेक्षा की।

(४) **सिंघन का दर्प और उसकी अदूरदर्शिता**—सिंघन ने सेना सहित लौटने पर देवगिरी के बाहर विश्राम किया और अलाउद्दीन को लौट जाने की चेतावनी देकर उसे भविष्य के लिये सतर्क कर दिया। यह उसकी अक्षम्य भूल थी। यदि वह देवगिरी आते ही अलाउद्दीन पर तीव्रता और शीघ्रता से बिना पूर्व सूचना के आक्रमण कर देता तो अलाउद्दीन की पराजय निश्चित थी। उसने प्रारंभ में राजकीय दर्प का प्रदर्शन किया, उसने दुर्ग में घिरे सैनिकों और रामचन्द्र से संपर्क नहीं साधा। उसने दुर्ग के घेरे में फंसी अलाउद्दीन की सेना की गतिविधि पर सतर्कता से दृष्टि रखने की कोई व्यवस्था नहीं की। उसने दुर्ग में घिरी यादव सेना को यह संदेश नहीं भेजा कि जब वह अलाउद्दीन को रणक्षेत्र में उलझाये रखे तब वे दुर्ग से बाहर निकल कर नसरत खां की सेना और अलाउद्दीन की सेना पर पीछे से तीव्रगति से आक्रमण करदे। उसने यह भी एक बड़ी भूल की, कि दुर्ग से बाहर रहकर उसने पड़ोसी हिन्दू नरेशों से मैत्री संबंध स्थापित कर आक्रमणकारी के विरुद्ध सैनिक सहायता नहीं प्राप्त की। यदि सिंघन दूरदर्शिता और सतर्कता से काम लेता तो निश्चित ही वह अलाउद्दीन को परास्त कर देता।

(५) **अलाउद्दीन की कूटनीति**—देवगिरी पर आक्रमण और विजय में अलाउद्दीन की कूटनीति और उसके साहस व अदम्य उत्साह ने बहुत योगदान दिया। दृढ़ता और तीव्रता से देवगिरी तक सैनिक अभियान कर देना, सहसा नगर में प्रविष्ट होकर वहाँ के सम्पन्न और लब्ध प्रतिष्ठित नागरिकों और ब्राह्मणों को बन्दी बना लेना और कुछ की हत्या कर देना, इस प्रकार नगर और दुर्ग में भय और आतंक का वातावरण बना देना, कूटनीति से यह अफवाह उड़ा देना कि सुलतान बीस सहस्त्र सैनिकों सहित देवगिरी विजय और उसकी सहायता के लिये आ रहा है, आदि ने अलाउद्दीन की विजय का मार्ग प्रशस्त किया। उसने बड़े साहस और वीरता से सिंघन का सामना किया और विजयश्री प्राप्त करने के लिये अपने सैनिकों को प्रोत्साहित किया। इन्हीं सब कार्यों से अलाउद्दीन को विजय प्राप्त हुई।

देवगिरी आक्रमण का महत्व—अलाउद्दीन का देवगिरी पर सैनिक अभियान और उसकी सरलता से प्राप्त विजय ने दक्षिण भारत की राजनैतिक दुर्बलता और खोखलेपन को स्पष्टतया प्रदर्शित कर दिया। इसमें प्राप्त विपुल धन से अलाउद्दीन की सुलतान बनने और दिग्विजय करने की महत्वाकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ी। अलाउद्दीन की दक्षिण विजय तो देवगिरी आक्रमण का अवश्यंभावी परिणाम था। मुस्लिम इतिहासकार बर्नी ने लिखा है कि अलाउद्दीन ने देवगिरी में इतना धन प्राप्त किया था कि वह फीरोज तुगलक के शासन काल तक चलता रहा।

अलाउद्दीन द्वारा सुलतान जलालुद्दीन की हत्या—देवगिरी अभियान की विजय तथा वहाँ से प्राप्त प्रचुर धन से उच्चाकांक्षी अलाउद्दीन के हृदय में सुलतान बनने की प्रबल इच्छा जागृत हो उठी तथा दिल्ली के सिंहासन पर आरुढ़ होने के लिये वह लालायित हो उठा। इसके साथ-साथ सुलतान बलबन के भतीजे मलिक छज्जू के विद्रोह के समर्थकों, अवांछनीय विद्रोहियों, मलिकों, अमीरों और सैनिकों ने अलाउद्दीन के कड़ा का मुक्ता (प्रांतपति) नियुक्त होने पर उसका नेतृत्व ग्रहण कर लिया और वे अलाउद्दीन को दिल्ली सल्तनत से पूर्णरूपेण स्वतन्त्र होने की प्रेरणा देते रहे। इससे धीरे-धीरे अलाउद्दीन के सुलतान बनने की उत्कण्ठा ने उग्र रूप ले लिया। पारिवारिक दृष्टि से भी अलाउद्दीन सुलतान से स्वतन्त्र होने का इच्छुक था। वह अपनी सास मलिका जहाँ और धर्मपत्नी से असन्तुष्ट था। वह पारिवारिक मनोमालिन्य और गृहकलह से खिन्न रहता था। पारिवारिक कष्ट से मुक्ति पाने के लिये वह अपने विश्वासपात्र अधिकारियों से परामर्श करता था और प्रायः यह कहा करता था कि वह सन्त होकर कहीं अन्यत्र प्रस्थान कर जाय अथवा किसी दूसरे स्थान पर अपना आधिपत्य स्थापित कर वहीं अपना निवास स्थान बनाले। इस प्रकार कड़ा में प्रांतपति नियुक्त होने की एक वर्ष की अवधि में ही उसने गृहक्लेश से मुक्त होकर, अपने भविष्य निर्धारण पर मनन प्रारम्भ कर दिया था। जलालुद्दीन की दुर्बलता और उदारता की नीति ने और दयालुतापूर्ण नम्र स्वभाव ने उसे अलोकप्रिय बना दिया था और उसके अनुयायी उससे अत्यधिक रुष्ट होकर खीज गये थे। वे दृढ़ता की ताकत और तलवार की नीति अपनाने वाले सुलतान को चाहते थे, जलालुद्दीन को नहीं। इन्हीं सब कारणों और परिस्थितियों से अलाउद्दीन का मस्तिष्क विक्षिप्त सा हो उठा और फलतः उसने अपने चाचा, ससुर और

सुलतान जलालुद्दीन की निर्मम हत्या का गुप्त षड़यन्त्र रचा और सन् १२९६ में अलाउद्दीन ने विश्वासघात की आड़ में जलालुद्दीन की नृशंस हत्या कर दी। इसका विस्तृत विवरण पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

जलालुद्दीन की हत्या के बाद अलाउद्दीन की समस्याएँ—सुलतान जलालुद्दीन की हत्या के बाद अलाउद्दीन को संकटकालीन स्थिति और गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ा। उसकी स्थिति खतरे से परिपूर्ण थी। उसकी समस्याएँ और विषम परि-स्थितियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) सुलतान जलालुद्दीन के वध की सूचना पाकर दिल्ली में स्थित जलाली व तुर्की अमीर, सरदार और अधिकारी, अपने अन्त और हत्या की आशंका करने लगे। वे अलाउद्दीन की कृतघ्नता से क्रोधित हो उठे और उन्होंने अपना अलग दृढ़ संगठन कर लिया। आन्तरिक विद्रोह की आशंका बलवती हो गयी।

(२) दिल्ली की जनता जो सुलतान जलालुद्दीन की सरलता और उदारता पर मुग्ध थी, और अपने वृद्ध सुलतान को उसके गुणों के कारण अधिक प्यार करती थी, अलाउद्दीन को निर्मम हत्यारा और अपहरण कर्ता मानने लगी। जनता अलाउद्दीन से अत्यन्त ही असन्तुष्ट हो गयी।

(३) जलालुद्दीन की विधवा मलिका जहाँ ने राज पद खाली न रख, बिना उच्च अधिकारियों और अमीरों के परामर्श के, अपने छोटे द्वितीय पुत्र कद्रखाँ को रुकनुद्दीन इब्राहीम के नाम से सुलतान घोषित कर दिया और उसकी संरक्षिका बन-कर समस्त राजसत्ता अपने हाथों में ले ली तथा उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र अर्कलीखाँ को जो मुलतान था दिल्ली आने का आदेश दिया। अर्कलीखां जो अपनी वीरता और रण कुशलता के कारण अपने समय का "रुस्तम-ए-हिन्द" था, मलिका जहाँ के कार्य से जलभुन गया। उसने दिल्ली आने में अपनी असमर्थता प्रगट की और कहला भेजा कि अमीरों की धन व पद लोलुपता के कारण राजसिंहासन पर अधिकार रखना असम्भव है।

(४) मुसलमानों अमीरों और सरदारों को गृह युद्ध और उत्तराधिकार की समस्या में उलझा देखकर सल्तनत के विरोधी हिन्दू राजा मुलतान के विरुद्ध विद्रोह करने की तैयारियाँ कर रहे थे।

(५) मुलतान तथा सिन्ध में सुलतान जलालुद्दीन की हत्या के बाद उसके पुत्र अर्कली खां ने सल्तनत से अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की घोषणा करदी।

दिल्ली की ओर अलाउद्दीन का प्रस्थान और तत्कालीन समस्याओं का निराकरण—अलाउद्दीन ने अपनी विषम स्थिति, गम्भीर उलझनों का, विकट समस्याओं का बड़े धैर्य, शौर्य और साहस से सामना किया। उनके निराकरण के लिए उसने निम्नलिखित कदम उठाये।

(i) उसने अपने सहयोगियों, समर्थकों और पदाधिकारियों को प्रसन्न और सन्तुष्ट कर अपनी ओर मिलाये रखने के लिए विभिन्न उपाधियों, पदों और मुद्राओं का मुक्त हस्त से वितरण किया। उसने अपने भाई अमलमबेग को उलुगखाँ की उपाधि प्रदान की, मलिक खंजर और मलिक हजबरुद्दीन को क्रमशः अलपखां और जफरखाँ

की उपाधि दी। अनेक योग्य व्यक्तियों को श्रेष्ठ ऊँचे पदों पर नियुक्त किया और लगभग समस्त कर्मचारियों और अधिकारियों की वेतन वृद्धि करदी। इससे पद और धन लोलुप स्वार्थी जलाली अमीर उसके अधिक समर्थक हो गये।

(ii) अलाउद्दीन ने अपने विरोधी अमीरों को और असन्तुष्ट जनसाधारण को अपार धन देकर अपना समर्थक बना लिया था। सैनिकों और प्रजाजनों का विश्वास और सहानुभूति प्राप्त करने के लिये, तथा अपने चरित्र पर से जलालुद्दीन की हत्या की कालिमा धोने के लिये अलाउद्दीन ने देवगिरी विजय से प्राप्त धन-सम्पत्ति का मुक्त हस्त से वितरण किया। कड़ा से दिल्ली जाते समय मार्ग में जहाँ कहीं भी अलाउद्दीन विश्राम करता, वहीं सोने, चांदी की वर्षा कर देता था। बर्नी ने लिखा है कि, "उसने (अलाउद्दीन ने) एक हलकी छोटी मंजनीक बनवायी थी। पाँच मन सोने के सितारे प्रतिदिन प्रत्येक पड़ाव पर जहाँ सुलतान के शिविर लगते, उसके शिविर में प्रवेश करने के समय लुटाये जाते थे। द्वार के सामने एक मंजनीक रखी रहती थी। उससे दर्शकों के ऊपर सोने की वर्षा की जाती थी।" इससे जनसाधारण यह समझने लगी कि अलाउद्दीन उसके चाचा और सुलतान जलालुद्दीन से भी अधिक दानशील, उदार और कृपालु है और इससे अलाउद्दीन का शासनकाल भी जलालुद्दीन की अपेक्षा अधिक शांति और सुखमय होगा। खुले रूप से विपुल धन के बांटने और लुटाने से जनता अपने शांति-प्रिय, धर्मपरायण और दयालु सुलतान जलालुद्दीन को और उसकी निर्मम हत्या को विस्मरण कर गयी और अलाउद्दीन का गुण-गान करने लगी। "अलाउद्दीन की धन रूपी वर्षा की बाढ़ में बूढ़े सुलतान की स्मृति रूपी नौका डूब गयी।"

(iii) अलाउद्दीन ने देहली के लिये प्रस्थान करने के समय अपने खानों, मलिकों और अमीरों को यह आदेश प्रसारित किया कि वे नवीन अश्वारोहियों और पदातियों को सेना में भरती करने का विशिष्ट प्रयास करें। इस आदेश से, सैनिकों की वेतन वृद्धि कर देने से तथा धन के लुटाने से एक विशाल सेना एकत्रित हो गयी। इससे उसके समर्थकों की संख्या में और भी अधिक वृद्धि हो गयी। वर्षा ऋतु होने पर भी अलाउद्दीन ने छप्पन सहस्र अश्वारोही और साठ सहस्र पैदल सैनिक अपनी सेना में भरती कर लिये।

(iv) जलाली शासनकाल के अनेक लब्ध प्रतिष्ठित और गणमान्य मलिकों एवं अमीरों को जिन्हें अलाउद्दीन से युद्ध करने के लिये मलिका जहाँ ने नियुक्त किया था, अलाउद्दीन ने धन देकर अपनी ओर मिला लिया। इनकी स्वार्थ लोलुपता का लाभ अलाउद्दीन ने उठाया। एक मुस्लिम इतिहासकार के मतानुसार इन अमीरों और मलिकों को बीस से तीस मन तक सोना प्रदान किया गया और उनके साथ आये प्रत्येक सैनिक को तीन-तीन सहस्र रुपये नगद पुरस्कारस्वरूप दिये गये। दिल्ली जाते समय मार्ग में से ही अलाउद्दीन ने अपने व्यक्तियों द्वारा दिल्ली में यह सूचना जोर-शोर से प्रसारित करदी थी कि अनेक जलाली अमीर आकर उससे मिल गये हैं और शेष अमीर भी उससे आकर मिल जांय।

अलाउद्दीन और रुकनुद्दीन का सामना और अलाउद्दीन की विजय—जुलाई सन् १२९६ में अलाउद्दीन ने जलालुद्दीन का वध कर दिया था और इसके थोड़े समय बाद वर्षा ऋतु होने पर भी अलाउद्दीन ने कड़ा से दिल्ली के लिये प्रस्थान कर दिया। अक्टूबर के माह तक अलाउद्दीन दिल्ली के समीप पहुँच गया था। उसकी प्रगति को अवरुद्ध करने तथा उससे युद्ध करने का निर्णय मलिकाजहाँ ने किया। परिणामस्वरूप अनुभवहीन सुलतान रुकनुद्दीन इब्राहीम अपनी सेना सहित दिल्ली से बाहर निकलकर बदायूं की ओर बढ़ा। रुकनुद्दीन अलाउद्दीन से युद्ध करना चाहता था पर अर्द्ध रात्रि के लगभग धन के लोभ में आकर और भय से घबराकर उसकी सेना के वाम पक्ष के सैनिक अलाउद्दीन से जा मिले। इससे खुल्लमखुल्ला युद्ध की नौबत ही नहीं आयी। निराश होकर पराजित-सा रुकनुद्दीन अपनी माता मलिका जहाँ तथा विश्वासपात्र अनुचरों सहित, राजकोष से कुछ स्वर्ण मुद्राओं की थैलियाँ तथा अस्तबल से कुछ चुने हुए अश्व लेकर, मुलतान की ओर भाग गया। उसके साथ अहमद चप, उलुग खां तथा कुछ अन्य सरदार भी भाग गये और इन सबने मुलतान में जाकर शरण ली।

अपनी इस विजय के पश्चात् अलाउद्दीन ने सिरी के मैदान में सेना सहित प्रवेश किया और उसने वहाँ विपक्षियों सहित सभी वर्गों और दलों का भक्तिभाव और समर्थन प्राप्त किया। यहां दिल्ली के माल कर्मचारी, सैनिक पदाधिकारी, व्यवस्थापक, प्रशासक, कोतवाल आदि उपस्थित हो गये और वहां से अलाउद्दीन ने नवीन व्यवस्था स्थापित की। अब उसके नाम का खुतबा पढ़ा गया और उसके नाम के सिक्के ढाले गये।

अलाउद्दीन का राज्यारोहण—सुलतान रुकनुद्दीन के दिल्ली पलायन कर जाने पर अलाउद्दीन ने दिल्ली पर बड़ी सरलता से अपना अधिकार स्थापित कर लिया। २० अक्टोबर सन् १२९६ को बलबन के लालमहल में अलाउद्दीन सिंहासन पर आसीन हुआ और बड़े ठाट-बाट और सज-धज से उसका राज्याभिषेक हुआ। प्रत्येक बड़े घर में महफिलें हुईं और अमीरों ने प्रीतिभोज दिये।

अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिये अलाउद्दीन के प्रारंभिक कार्य
या
अलाउद्दीन की प्रारंभिक समस्याएं और उनका निराकरण

दिल्ली का सिंहासन हस्तगत करने के बाद सुलतान अलाउद्दीन को आशा के विपरीत संकटमय विषम परिस्थितियों, गंभीर उलझनों और विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। दिल्ली राज्य इन भीषण समस्याओं से ग्रस्त था। दिल्ली का सिंहासन पुष्पशैय्या के समान न होकर, काँटों की शय्या के समान था जिस पर अधिकार करना या उसे अपने अधिपत्य में रखना दुष्कर कार्य था। विपत्तियाँ मंडराने लगीं। पर अलाउद्दीन ने बड़े धैर्य, साहस और कुशलता व कूटनीति से इन सभी समस्याओं का निराकरण किया और सफलता प्राप्त की। अलाउद्दीन से कम शक्तिशाली, उत्साही तथा योग्य शासक तथा निम्न कोटि की सैनिक प्रतिभा वाला सुलतान इन

विषम परिस्थितियों में अपने आप को सफल बनाने में समर्थ नहीं होता। अलाउद्दीन की इन विभिन्न समस्याओं का विवरण निम्नलिखित है—

(१) राजनैतिक समस्याएं—(i) जलाली राज्य ढीली शृंखलाओं से बना हुआ था। उसके प्रांत दृढ़ता से केन्द्रीय सत्ता से नहीं बंधे थे। केन्द्रीय और प्रांतीय प्रशासकीय व्यवस्था ढीली-ढाली और अव्यवस्थित थी।

(ii) पंजाब में इस स्थिति का लाभ उठाकर खोखर नामक एक युद्धप्रिय जाति ने उत्पात मचाना प्रारंभ कर दिये थे।

(iii) दोआब में मेरठ से पीलीभीत तक अनुशासन विहीन हिन्दू राजा तथा मुसलमान अमीर राज्य व्यवस्था संभाले हुए थे। इनमें अनेक उदंड और बुरी नीति व दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति थे जो शासन की अवज्ञा करने में पीछे नहीं रहते थे। ऐसे प्रशासन में जनता भी प्रायः असन्तुष्ट रहती थी।

(iv) सल्तनत के अधीन राजपूत व हिन्दू राज्य लगभग स्वतंत्र से हो गये थे। अवध, वाराणसी तथा गोरखपुर में भी दिल्ली सल्तनत की पूर्ण सत्ता स्थापित नहीं हो पायी थी।

(v) बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राज्य स्वतंत्र हो गये थे। इन पर हिन्दू नरेशों तथा स्वतंत्र मुसलमान शासकों का राज्य था। इनमें दिल्ली सल्तनत से प्रथक होकर स्वतंत्र रूप से राज्य करने की प्रवृत्ति बलबती हो रही थी। विघटनकारी प्रवृत्ति जोर पकड़ रही थी।

(vi) मालवा में धार, उज्जैन तथा बुन्देलखंड में अन्य राज्य व प्रदेश दिल्ली सल्तनत से पूर्ण स्वतंत्र थे। वे अभी तक जलाली मुस्लिम सत्ता के अधीन नहीं हुए थे।

(vii) राजस्थान में अनेक स्वाधीन राजपूत राज्यों का अस्तित्व था। रणथंभोर और मेवाड़ (चित्तौड़) इनमें प्रमुख थे।

(viii) गुजरात भी बघेले राजपूतों के अधीन था। बघेला नरेश अपनी शक्ति संग्रहीत कर रहा था और बघेला शासन में गुजरात के वैभव में वृद्धि हो रही थी।

(ix) दिल्ली सल्तनत से दक्षिण राज्यों का कोई विशेष संबंध नहीं था। यद्यपि अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत के देवगिरी के नरेश रामचन्द्र को परास्त कर दिया था, परन्तु अलाउद्दीन के उत्तरी भारत लौट आने पर रामचन्द्र राव ने पुनः अपनी स्वतंत्र-सत्ता और प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। वारंगल, द्वार समुद्र, चोल, चेल, पांड्य तथा सुदूर दक्षिण के अन्य राज्य दिल्ली सल्तनत की सत्ता और प्रभाव से दूर थे।

अलाउद्दीन ने इन सभी राज्यों को विजय करके उन्हें अपने अधीन कर लिया। उसने अपने सल्तनत राज्य के विस्तार की और दिग्विजय की एक निर्दिष्ट योजना बनाई। अभियानों, आक्रमणों, युद्धों और कूटनीति से उसने अपनी इस योजना को कार्यान्वित किया और अधिकांश भारत पर उसने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने दक्षिण को भी पदाक्रांत किया। वह प्रथम तुर्की सुल्तान था जिसने विंध्या पर्वत के दक्षिण के राज्यों को विजित किया और अतुल संपत्ति लाकर अपने राज्य को सुदृढ़ किया। उसकी इस दिग्विजय का वर्णन अगले पृष्ठों में सविस्तार किया जावेगा।

(२) **अलाउद्दीन की अलोकप्रियता**—अलाउद्दीन ने जलालुद्दीन जैसे शांति-प्रिय, उदार व दयालु सुल्तान की हत्या की और दिल्ली पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इससे जनता तथा अनेक अमीर, सरदार, सामन्त और अधिकारी अभी भी उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। वह निर्मम हत्यारा, नृशंसखूनी और अपराधी समझा गया। जनसाधारण ने और अनेक सामन्तों और मलिकों तथा अधिकारियों ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की।

अलाउद्दीन इससे तनिक भी हतोत्साह नहीं हुआ। उसने इस समस्या का सामना बड़ी योग्यता, कुशलता और तत्परता से किया। उसने अपने विरोधियों में, सामन्तों में तथा जन साधारण में अत्यधिक धन वितरण कर उनको अपने पक्ष में कर लिया। दीन-दुखियों में अन्न, वस्त्र तथा धन का वितरण किया। शेखों और अलियों को मुक्तहस्त से धन-धरती का दान दिया गया और दावतों का दौर कई दिनों तक रहा। स्वर्ण की अतुलनीय बोछार और मद्य की निरन्तर निर्झरणी से अलाउद्दीन ने प्रजा के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि सोने-चांदी की चमक ने अलाउद्दीन के निकृष्ट अपराध पर आवरण डाल दिया। सुलतान के भीषण अपराध की कोई चर्चा तक नहीं करता था। धन प्राप्ति की आशा ने लोगों की अनेक चिंताओं को दूर कर दी और वे अलाउद्दीन की प्रशंसा करने लगे। जन साधारण ने धन संपत्ति के लोभ में कभी यह नहीं कहा कि अलाउद्दीन ने कितना अनर्थ और जघन्य कार्य किया था। इस प्रकार अलाउद्दीन ने अत्यधिक पुरस्कार और धन वितरण से प्रजा को अपना हितैषी व राजभक्त बना लिया।

(३) **सेना**—दिल्ली सुलतान की सत्ता ताकत और तलवार पर आश्रित थी। सेना उसकी शक्ति की रीढ़ थी। इसलिये अलाउद्दीन ने सैनिकों की नवीन भरती कर अपनी सेना में अभिवृद्धि की। राज्यारोहण के प्रथम वर्ष में ही पहिले की और नवीन अलाई सेना ने विशाल रूप धारण कर लिया। निरंकुश शासन, आतंक, भय और दबदबा स्थापित करने के लिये ऐसी सेना की अत्यधिक आवश्यकता अलाउद्दीन को थी। उसने अपने इन सैनिकों में से प्रत्येक को वार्षिक वेतन और अर्द्ध वार्षिक वेतन पुरस्कार में दिया। इससे समस्त सेना और उसके अधिकारी भी अलाउद्दीन के दृढ़ समर्थक और स्वामिभक्त अनुयायी हो गये।

(४) **विपक्षी विरोधी अमीर तथा पद-वितरण और नवीन पद-व्यवस्था**—कई जलाली और तुर्क अमीर उसके कुकृत्यों से रुष्ट थे। उनमें उग्र विचारों के अमीरों और सरदारों ने विद्रोह करके नवीन सुलतान अलाउद्दीन को सिंहासनाच्युत करना चाहा। इस समस्या के निराकरण के लिये अलाउद्दीन ने कूटनीति से काम लिया। असन्तुष्ट अमीरों और सरदारों को, विपक्षी और विद्रोही सामन्तों को अपने पक्ष में करने के लिये उसने चार कदम उठाये। — (i) उसने जलाली अमीरों को और विशेष कर उनके प्रमुख नेताओं को ऊँचे पदों पर आसीन किया, जैसे ख्वाजा खातिर को जो ख्याति प्राप्त मंत्री था अलाउद्दीन ने अपना वजीर बनाया। वह पहिले के समान इस समय भी प्रधानमंत्री बना रहा। इसके साथ-साथ अलाउद्दीन ने सदरुउद्दीन आरिफ को काजी-ए-मुमालिक (प्रधान न्यायाधीश) नियुक्त किया और मलिक आवाजी को आखूरबेग बनाया

गया। ये तीनों ही जलाली अमीरों में प्रधान थे। (ii) कतिपय शक्तिशाली सरदारों को उनके पदों पर वैसे ही रहने दिया जैसे सैयद अजल शेखुल इस्लाम और खतीब को उनके पदों पर वैसे ही रहने दिया। (iii) अन्य महत्वशाली पदों पर अलाउद्दीन ने अपने विश्वासपात्र और स्वामिभक्त व्यक्तिगत सेवकों और अनुयायियों को नियुक्त किया। जैसे उसने नसरतखां को जो नायब मलिक था अपने सिंहासनारोहण के बाद प्रथम वर्ष में ही दिल्ली का कोतवाल नियुक्त किया, मलिक फखरुद्दीन कूची को राजधानी दिल्ली में न्यायाधीश के पद पर आसीन किया, उमुदतुल मुल्क तथा मलिक अइज्जुद्दीन को दीवान-ए-इंशा बनाया, मलिक अलाउल मुल्क को कड़ा प्रदेश का हाकिम या प्रांतपति और जफरखां को आरिज-ए-मुमालिक का पद प्रदान किया। उसने मलिक फखरुद्दीन को राजधानी में न्यायाधीश नियुक्त किया। (iv) उसने अमीरों, सरदारों और मालिकों में धन की बौछार करदी। धनप्राप्त विद्रोही और विपक्षी अमीर उसकी मुट्ठी में आ गये और वे उसके विश्वासपात्र और राजभक्त सामन्त व पदाधिकारी हो गये। इन उपायों से अलाउद्दीन ने दिल्ली में अपनी स्थिति भी सुदृढ़ कर ली।

(५) सुलतान जलालुद्दीन के पुत्रों की प्रतिद्वंद्विता और उनका विनाश—सुलतान जलालुद्दीन के पुत्र अर्कलीखाँ और कद्रखाँ (सुलतान रुकुनुद्दीन इब्राहीम) उसके वास्तविक उत्तराधिकारी थे। वे अलाउद्दीन के सुलतान होने के पक्ष में नहीं थे। वे सुलतान पद के लिये अलाउद्दीन के कठोर सशक्त प्रतिद्वंदी थे, वे उसके मार्ग में कांटे थे। जलालुद्दीन के इन दोनों पुत्रों और प्रतिद्वंदियों का नाश करना अलाउद्दीन के लिये परम आवश्यक था। ये दोनों ही इस समय सिंध में और मुलतान में थे। इसलिये अलाउद्दीन ने जफरखाँ और उलुगखाँ के नेतृत्व में चालीस सहस्र अश्वारोहियों की सेना इनके विनाश और मुलतान विजय के लिये भेजी। अर्कलीखाँ ने भी अलाउद्दीन की सेना से युद्ध करने की पूर्ण तैयारी करली। अलाउद्दीन के सेनापतियों ने मुलतान को घेर लिया और लगभग दो मास तक यह घेरा चलता रहा। पर नगर कोतवाल तथा अन्य पदाधिकारियों के विश्वासघात के परिणामस्वरूप मुलतान को विजय करने में सुलतान की सेना को सफलता मिली। अर्कलीखाँ, जलालुद्दीन का दामाद उलुगखाँ मंगोल, कद्रखाँ, अहमदचप, नायब अमीर हाजिब, मलिका जहाँ, और इनके सहायक तथा समर्थक बन्दी बना लिये गये। नसरतखाँ ने अलाउद्दीन के आदेश पर उनकी धन-सम्पत्ति, दास-दासियों को तथा उनके पास अवशेष सामग्री को छीन लिया। अर्कलीखाँ, कद्रखाँ, उलुगखाँ और अहमदचप की आँखें निकालकर उन्हें अन्धा कर दिया गया तथा उनकी स्त्रियों को उनसे प्रथक कर दिया गया। बाद में सुलतान जलालुद्दीन के दोनों पुत्रों अर्कलीखाँ और कद्रखाँ को हांसी के दुर्ग में बन्दी बनाकर भेज दिया गया जहाँ कुछ समय बाद उनका वध कर दिया गया। अर्कलीखाँ के सभी पुत्रों की भी निर्मम हत्या करदी गयी। राजमाता मलिका-ए-जहाँ तथा अहमदचप को राजधानी दिल्ली पहुंचने पर बन्दीगृह का दण्ड भोगना पड़ा। इस प्रकार जलालुद्दीन के दोनों पुत्रों तथा भूतपूर्व सुलतान के उन समस्त सम्बन्धियों और समर्थकों को मौत के घाट उतार दिया जिनसे उसे हानि होने की सम्भावना थी। अब राजसिंहासन की प्रतिद्वंदिता के लिये अलाउद्दीन के सम्मुख राजवंश का कोई भी व्यक्ति शेष नहीं था।

अलाउद्दीन के इस कदम से उसका राज्य पारिवारिक झगड़ों और गृह-क्लेश से मुक्त हो गया, उसकी निर्मम दमन नीति से उसके अलाई राज्य की धाक बैठ गयी तथा कूटनीति और शक्ति द्वारा अपने विरोधियों का दमन करने में सफल हुआ।

(६) **जलाली अमीरों की समस्या और उनका दमन**—कुछ समय बाद अलाउद्दीन के सम्मुख जलाली अमीरों की समस्या उत्पन्न हो गयी थी। यद्यपि राज्यारोहण के समय अलाउद्दीन ने जलाली अमीरों के प्रमुख नेताओं को धन और पद देकर अपने पक्ष में कर लिया था, परन्तु अन्य जलाली अमीर अपने स्वामी सुलतान जलालुद्दीन के कत्ल करने वाले व्यक्ति को किसी भी प्रकार क्षमा करने को तत्पर नहीं थे। वे अपने दयालु और उदार सुलतान जलालुद्दीन के हत्यारे अलाउद्दीन से प्रतिशोध लेने के लिये कुचक्रों का जाल बिछा रहे थे। कुछ महत्वशाली और बलशाली जलाली अमीर जलालुद्दीन और उसके उत्तराधिकारियों का समर्थन करते थे, अलाउद्दीन द्वारा सिंहासनारोहण को अवैध एवं अनुचित समझते थे, वे अलाउद्दीन को हत्यारा मानकर उससे घृणा करते और हेय दृष्टि से देखते थे तथा अलाउद्दीन को सिंहासन का अपहरण कर्ता मानकर उसे सुलतान स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे। अलाउद्दीन ऐसे विरोधी अमीरों के अस्तित्व को नष्ट करने के पक्ष में था।

कुछ ऐसे भी जलाली अमीर थे जो अपने आश्रयदाता सुलतान जलालुद्दीन के साथ विश्वासघात करके अलाउद्दीन के अनुयायी हो गये थे। उन्होंने अपने ऊँचे पद और विपुल धन की प्राप्ति में अपने उदार स्वामी सुलतान जलालुद्दीन के वध को विस्मरण कर दिया था और अलाउद्दीन का पक्ष ले लिया था। अलाउद्दीन ऐसे अमीरों को संदेह की दृष्टि से देखने लगा था। अपनी स्वार्थसिद्धि के पश्चात् अलाउद्दीन उन्हें राजद्रोही मानने लगा और इसके लिये अलाउद्दीन ने उन्हें जलालुद्दीन के उत्तराधिकारी के रूप में कठोर दण्ड देने का निर्णय किया। उसने इन जलाली अमीरों को निस्तेज कर उनके प्रभाव और महत्व को नष्ट करना चाहा। इसके लिये उसने इन जलाली सरदारों और अमीरों पर राजद्रोह का अपराध लगाया। उनकी समस्त सम्पत्ति छीन ली गयी। वह धन सम्पत्ति जो कि उन्हें सुलतान अलाउद्दीन ने प्रदान की थी, उनके घर-द्वार और माल-असबाब द्वारा अलाउद्दीन ने वसूल करली। कुछ जलाली अमीरों को अन्धा बना दिया गया, कुछ को दुर्गों में बन्दीगृह में डाल दिया गया और कुछ का निर्ममता से वध कर दिया गया। इन जलाली अमीरों की जागीरों की भूमि को "खालसा" भूमि में विलीन कर लिया गया और इस प्रकार उनकी सन्तानों को आश्रय विहीन कर दिया गया। उनके परिवारों को नष्ट कर दिया गया। इन अमीरों की "जड़ और शाखाएँ" भी काट डाली गयीं। इस प्रकार अलाउद्दीन ने उन समस्त जलाली अमीरों का अन्त कर दिया, जिन्हें वह दिल्ली सल्तनत के लिये घातक समझता था। जलाली अमीरों के रिक्त स्थानों की पूर्ति अलाउद्दीन के समर्थक अलाई अमीरों व सरदारों द्वारा करदी गई। इस सब कार्य में अलाउद्दीन को उसके विश्वासपात्र अधिकारी और अमीर नसरतखाँ ने खूब सहायता दी। ऐसी धारणा है कि जलाली अमीरों पर अधिक जुर्माने लगाकर उनकी सम्पत्ति

और धन का अपहरण करके नसरतखाँ ने एक करोड़ रुपयों की धन सम्पत्ति अलाउद्दीन के राजकोष में जमा करवायी।

(७) सीमान्त क्षेत्र की असुरक्षा और मंगोल आक्रमण—भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा असुरक्षित रहने से निरन्तर मंगोल आक्रमण होते रहे। सुलतान की बाह्य नीति इन मंगोलों के आक्रमणों से अत्यधिक प्रभावित होती थी। सुलतान अलाउद्दीन ने मंगोलों के आक्रमणों को अवरुद्ध करने और सीमान्त क्षेत्र को सुरक्षित रखने के लिये, बलबन की नीति अपनाई और इस नीति में बलबन द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को पूरा किया। उसने सन् १२९७ से १३०५ में मंगोल आक्रमणकारियों का सामना करने में बड़े धैर्य, साहस और वीरता से काम लिया। उसने बलबन की रक्षात्मक नीति तथा यदा-कदा मंगोलों की आक्रांतमक नीति का अनुकरण किया। उसने मंगोलों के मार्ग के दुर्गों की मरम्मत की, तथा वहाँ सर्वाधिक योग्य तथा वीर सेनापति मंगोलों का सामना करने के लिये रखे। साम्राज्य की सैनिक शक्ति में वृद्धि की गयी। इस नीति से मंगोल सदा के लिये कुचल दिये गये। अलाउद्दीन ने मंगोल समस्या का स्थायी रूप से निराकरण किया। मंगोलों के आक्रमण और अलाउद्दीन की नीति पर अगले पृष्ठों में विस्तृत विवेचन किया जावेगा।

(८) विद्रोह और उनका दमन—अलाउद्दीन के शासन के प्रारम्भ में उसके विरुद्ध षड़यंत्र और विद्रोह हुए, इनमें नये मुसलमानों का षड़यंत्र, अक्तखाँ का विद्रोह, अमीर उमरखाँ का विद्रोह तथा मंगूखाँ का विद्रोह और हाजीमौला का विद्रोह मुख्य थे। उसके भतीजे अक्तखाँ ने उसकी हत्या का असफल प्रयत्न किया। जब अलाउद्दीन रणथम्भौर के घेरे में व्यस्त था, तब अवध में अमीर उमरखाँ और मंगूखाँ ने विद्रोह किया। उधर राजधानी दिल्ली में हाजीमौला ने विद्रोह कर राजसत्ता हथियाने का प्रयास किया। अलाउद्दीन ने इन विद्रोहों का वीरता से सामना किया, विद्रोहियों और उनके समर्थकों व सहयोगियों को परास्त कर उनका निर्ममता से वध करवा दिया। उसने भविष्य में विद्रोहों की सम्भावना का पूर्णतया अन्त करने के लिये विद्रोहों के कारणों का अन्वेषण किया और ऐसी प्रशासन व्यवस्था स्थापित की, ऐसी कठोरता व आतंक की नीति अपनाई कि विद्रोहों का पूर्णतया अन्त हो गया। इस नीति के अन्तर्गत उसने अमीरों तथा साधारण व्यक्तियों की सम्पत्ति का अपहरण किया, उन्मादित करने वाले मद्यपान को निषिद्ध कर दिया, अमीरों और सामन्तों की सामाजिक बैठकों, समारोहों, पारस्परिक मिलन, विवाह आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिये और क्षण-क्षण के समाचारों से अवगत कराने वाले गुप्तचर विभाग का संगठन किया। षड़यंत्र और विद्रोहों के निर्मूलन की नीति में अलाउद्दीन ने यह भी व्यवस्था की थी कि यदि ऊँचे से ऊँचे सेनापति और अधिकारी के प्रति अराजभक्ति या देशद्रोह की शंका हुई तो उसका वध करवा दिया जाय और यदि स्वयं सुलतान के पुत्रों के कार्य भी संदेहजनक हों तो उन्हें भी कारागृह में डालकर दण्डित किया जाय। अगले पृष्ठों पर विस्तृत रूप से इन पर प्रकाश डाला जायगा।

(९) धर्म और राजनीति—सुलतान हो जाने के पश्चात् अलाउद्दीन के सन्मुख एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गयी थी—क्या वह इस्लाम के सिद्धान्तों के सर्वथा

अनुसार राज्य करे अथवा स्वतन्त्र राजनैतिक विचारों का प्रतिपादन करे। अलाउद्दीन ने अपने अनुभव और विवेक से निष्कर्ष निकाला कि वह धर्म और राजनीति को परस्पर एक दूसरे से प्रथक् रखकर धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित करेगा। उसने समझ लिया था कि "शरियत" या कुरान के नियम राज्य शासन के लिये नही है, धर्म व्यक्तिगत जीवन का विनोद मात्र है, नागरिक प्रशासन से धर्म का कोई सम्बन्ध नही है। इसलिये उसने शासन और नीति को धर्म के प्रभाव से, इस्लाम की शिक्षाओं के आधिपत्य से मुक्त कर दिया। उसने राज्य को इस्लाम धर्म से पूर्णतया अप्रभावित रखा।

अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसके जीवन में महत्वाकांक्षाओं ने असीम रूप धारण कर लिया था। इन्हें क्रियान्वित करने के लिये वह असम्भवी योजनाएँ बनाने लगा और विशिष्ट नीति अपनाने लगा। इन सबका विश्लेषण निम्नलिखित है—

(१) सिकन्दर महान् बनने और साम्राज्य विस्तार करने की योजना— अलाउद्दीन को अपने शासन के प्रारम्भिक तीन वर्षों में अनेक अप्रत्याशित सफलताएँ प्राप्त हुई थीं जैसे —

(i) उसने अपने संरक्षक, चाचा, स्वामी और ससुर की हत्या करके सरलता से दिल्ली सल्तनत का अपहरण कर लिया—यह एक बहुत बड़ी भारी सफलता थी।

(ii) मंगोल आक्रमणकारियों के विरुद्ध उसे प्रबल सफलता और विजय मिली। मंगोल आक्रांताओं के भय से वह विमुक्त हो गया। इसी मंगोल विजय में उसके शक्तिशाली सेनानायक जफरखां की मृत्यु हो गयी। जफरखां की शक्ति और प्रभाव असीम रूप धारण कर रहे थे। इससे अलाउद्दीन उसके प्रति शंकित हो गया था। वह उसका अंत देखना चाहता था। मंगोलों से युद्ध करते जफरखां के मारे जाने से अलाउद्दीन अधिक प्रसन्न हुआ और उसने इसे अपनी सफलताओं में अग्रगण्य स्थान दिया।

(iii) निरन्तर संघर्ष और विद्रोहों का दमन करके उसने विजयश्री प्राप्त की।

(iv) जलालुद्दीन के उत्तराधिकारियों और जलाली अमीरों का कठोरतापूर्वक दमन कर दिया था। अब उसे किसी शक्तिशाली शत्रु या प्रतिद्वन्दी का भय नहीं था और न किसी प्रबल विद्रोह या उत्पात की शंका ही थी।

(v) उसका पारिवारिक जीवन अपेक्षाकृत सुखी हो गया था और उसके कई पुत्रों का जन्म हो गया था।

(vi) राजकोष धनधान्यपूर्ण था और राजभवनों में अनेक सन्दूक हीरे, जवाहरात, मोतियों, स्वर्ण तथा अन्य बहुमूल्य सामग्री से भरे पड़े थे और उसके सामने इनका प्रदर्शन होता था। प्रशासन कार्य भी संतोषप्रद ढंग से चल रहा था।

(vii) देवगिरी तथा गुजरात विजय से उसे विपुल धन प्राप्त हुआ था जिससे वह हाथियों और अश्वारोहियों की एक विशाल सेना एकत्रित कर सका। उसकी राजधानी में इस समय सित्तर सहस्त्र अश्व थे। इस विशाल सेना के साथ-साथ उसके पास उलूगखां, नसरतखां तथा अल्पखां जैसे योग्य, विश्वासपात्र, एव निष्ठावान

सेनापति थे। अलाउद्दीन स्वयं भी वीर साहसी योद्धा था। उसे अपने व्यक्तिगत पौरुष पर भी गर्व था।

इन सफलताओं, वैभव और समृद्धि ने अलाउद्दीन को मदान्ध बना दिया था और वह ऐसी कल्पनाएँ करने लगा और योजनाएँ बनाने लगा जो उसके पूर्व किसी शासक के मस्तिष्क में उत्पन्न नहीं हुईं। मद्यपान की उन्मत्तता से, दर्प व मूर्खता से, हठी और क्रूर स्वभाव से, अशिक्षा और अज्ञान से वह असंभव, अनहोनी और अव्यवहारिक योजनाएँ बनाने लगा। जितनी ही सफलता उसे प्राप्त होती गयी, उसकी प्रबल इच्छाएँ पूर्ण होती गयीं, उतना ही वह और भी अधिक अभिमानी, विवेकशून्य और हठी होता गया और विक्षिप्त-सा असंभव योजनाएँ बनाने लगा। उसकी यह धारणा हो चली थी कि जो कुछ असंभव या अनहोनी बातें उसके हृदय या वाणी से निकलती हैं, वे अवश्य पूरी हो जावेंगी।

इसलिये अलाउद्दीन ने सिकन्दर महान के समान विश्व विजय कर संसार में अमर होना चाहा। वह समझता था कि विश्व विजय करना सरल कार्य है। वह सोचने लगा कि वह अपने पीछे किसी को भारत का प्रांतपति या शासक नियुक्त कर सिकन्दर के समान विश्व विजय के लिये कूच करदे और जहाँ तक मनुष्यों का निवास है, सारे विश्व को जीत ले, और इस प्रकार समस्त संसार अपने अधिकार में करले। युद्धों में कुछ सफलताओं और विजय के पश्चात् वह अपने आपको खुल्ले में "सिकन्दर सानी" (द्वितीय) संबोधित करवाने लगा और अपने सिक्कों पर भी यह उत्कीर्ण करने लगा।

जब अलाउद्दीन ने तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी के चाचा काजी अलाउलमुल्क से जो दिल्ली का कोतवाल था, अपनी योजनाओं के विषय में परामर्श लिया, तब उसने अलाउद्दीन से कहा—"देहली राज्य इतनी धन-संपत्ति व्यय करने एवं इतने रक्तपात के बाद प्राप्त हुआ है। इसको किस प्रतिनिधि को शासक बनाकर सौंप देंगे। उसको (शासक प्रतिनिधि) को कितनी सेना देंगे और स्वयं कितनी सेना लेकर सिकन्दर की भांति विश्व विजय करने के लिये प्रस्थान करेंगे। जिस किसी को भी दिल्ली के सिंहासन का प्रतिनिधि बनाइयेगा, या जो भी विजित प्रदेशों में सुलतान का प्रतिनिधित्व करेगा, तो यह किस प्रकार सम्भव होगा कि सुलतान के राजधानी लौटने तथा उन विजित प्रदेशों से वापस होने पर नियंत्रण के अभाव में वे प्रतिनिधि शासक इस युग में विद्रोह अथवा उत्पात न कर देंगे.........हर बादशाह सिकन्दर की तरह विश्व विजय के सपने देखता है, परन्तु यह बात आपके लिये असम्भव है। सिकन्दर के युग तथा इस युग में बड़ा अन्तर है। आपके पास अरस्तू जैसा कोई वजीर भी नहीं है। इसलिए आपको विश्व विजय का विचार त्यागकर भारत की विजय ही पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए।" इस प्रकार अलाउलमुल्क ने अलाउद्दीन का ध्यान आन्तरिक तथा वैदेशिक कठिनाइयों की ओर आकृष्ट किया और उसने यह समझाया कि भारत को पूर्णतया अधिकृत किये बिना विदेशों में रण अभियान करना तर्क संगत नहीं है। काजी अलाउलमुल्क ने अपनी दूरदर्शी, विवेकपूर्ण और युक्तिसंगत परामर्श से अलाउद्दीन को विश्व विजय से विमुख किया और

विस्तृत स्वतंत्र भारतीय प्रदेशों और राज्यों को जैसे रणथंभोर, चितौड़, मालवा, चन्देरी, सिवालिक से जालौर तक का प्रदेश, लाहौर और दिपालपुर के प्रदेश, आदि को विजय कर अपने अधीन करने के लिये प्रोत्साहित किया। इन्हीं प्रदेशों को वह इतना नियंत्रण में रखे कि वहाँ कोई विद्रोह या विरोध की आशंका न हो। इसके अतिरिक्त उसने अलाउद्दीन से कहा कि वह भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा के क्षेत्र को मंगोलों के आक्रमणों और भय से मुक्त करे। वहाँ की सड़कों को सुरक्षित रखे। काजी ने साहस बटोरकर सुलतान को यह भी परामर्श दिया कि अपनी विजय योजनाओं को पूर्ण सफल बनाने के लिये वह अत्यधिक मदिरापान त्याग दे, समारोह तथा महफिलें न करे, रात-दिन आखेट खेलना छोड़ दे, अपनी राजधानी में स्वयं उपस्थित रहे, उसे सुव्यवस्थित रखे और राज्य व्यवस्था तथा प्रशासन संबंधी बातों में निष्कपट दासों और परामर्शदाताओं से समुचित परामर्श करे। काजी की बुद्धिमत्तापूर्ण बातों का सुल्तान अलाउद्दीन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने उसके परामर्श के अनुसार चलने का निर्णय किया। उसने भारत विजय पूर्ण करने के लिए कमर कस ली। उसने संपूर्ण भारत को दिल्ली सल्तनत के अधीन करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। अलाउद्दीन भारत में प्रथम मुसलमान शासक था जिसने संपूर्ण भारत पर तो अपना अधिकार स्थापित किया ही अपितु दक्षिण भारत के भी अधिकांश भाग को अपने अधीन कर लिया।

(२) **धर्म निरपेक्ष राज्य**—अलाउद्दीन एक नया धर्म प्रवर्तक बनना चाहता था और अपने धर्म का प्रचार दूर-दूर देशों तक करना चाहता था। वह सोचने लगा कि वह भी पैगम्बर मुहम्मद साहब की भाँति एक नवीन धर्म प्रचलित करे। अलाउद्दीन का कथन था कि "खुदा ने पैगम्बर अलैहिस्लाम (मुहम्मद साहब) को चार मित्र प्रदान किये थे। उनके बल तथा ऐश्वर्य से उन्होंने एक शरीअत (नीति) तथा दीन (धर्म) प्रतिष्ठित किया और उस शरीअत तथा दीन के कारण पैगम्बर का नाम कयामत तक चलता रहेगा।" उसकी धारणा थी कि जिस प्रकार पैगम्बर मुहम्मद साहब को चार मित्र अबूबक्र, उस्मान, उमर और अली प्राप्त थे, उसी प्रकार उन्हीं की क्षमता रखने वाले चार मित्र उलूगखां, जफरखां, नसरतखां और अलपखां उसकी सहायता के लिये उद्यत हैं। इन चारों मित्रों की सहायता, सहयोग और बल पर वह एक नया दीन (धर्म) प्रचलित करेगा। उसकी और उसके मित्रों की तलवारें मनुष्य मात्र को एक नवीन धर्म स्वीकृत करालेंगी। इससे उसका और उसके मित्रों का नाम भी पैगम्बर तथा उसके मित्रों के नाम के समान कयामत तक अमर रहेगा। नवीन धर्म प्रवर्तन के संबंध में अलाउद्दीन कहा करता था कि "मैं किसी प्रकार कोई ऐसा कार्य करूँ जिससे मेरा नाम कयामत तक स्मरण किया जाये। जो कुछ मैं कर जाऊँ, उस पर लोग मेरी मृत्यु तथा मेरे अन्त के बाद भी आचरण करते रहें।"

जब सुलतान ने अपनी इस योजना के लिये काजी अलाउलमुल्क से विचार विमर्श किया, तब काजी ने वास्तविक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए सुलतान को यह परामर्श दिया और समझाया कि धर्म प्रचार का यह कार्य पैगम्बरों का है, सुलतानों का नहीं। तलवार के बल से तथा विस्तृत योजनाओं के सहारे धर्म स्थापना

और धर्म प्रचार संभव नहीं है। काजी ने सुलतान से कहा कि "दीन (धर्म) एवं शरीअत (नीति) का मार्ग निर्देशन नबियों का कर्तव्य है, बादशाहों का कार्य नहीं। धर्म एवं नीति ईश्वरीय साक्षात्कार या दैवी-प्रेरणा से संबंधित है। मनुष्य के प्रयास तथा सोच विचार द्वारा दीन एवं शरीअत का संचालन कभी भी नहीं हो सकता; आदम (आदि पुरुष) से इस समय तक दीन तथा शरीअत का संचालन नबियों (देवदूतों या पैगम्बरों) और रसूलों द्वारा हुआ जबकि बादशाहों का कार्य राज-व्यवस्था तथा शासन प्रबंध की देखरेख करना है। कुछ पैगम्बरों ने शासन का कार्य अवश्य किया है, परन्तु कोई बादशाह नबी (पैगम्बर) का स्थान जबसे यह सृष्टि है, न प्राप्त कर सका और न भविष्य में सृष्टि के अस्तित्व के अन्त तक भी प्राप्त कर सकेगा।" इसके बाद काजी ने सुलतान के समक्ष यह दृष्टान्त रखा कि, "चंगेज खां ने मुसलमानों के नगरों में रक्त की नदियां बहादीं, किंतु मुगलों (मंगोलों) का धर्म, संस्थाएँ, तथा उनकी आज्ञाएँ लोगों में प्रचलित न हो सकीं, वरन अधिकतर (मंगोल) मुसलमान हो गये और उन्होंने दीने मुहम्मदी (इस्लाम धर्म) ग्रहण कर लिया।" इस प्रकार काजी ने अलाउद्दीन को नया धर्म स्थापित और प्रचलित करने की योजना को त्याग देने का परामर्श दिया और इसे अलाउद्दीन ने आदरपूर्वक स्वीकार किया। वह काजी की बातों और सलाह से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि वह धर्म प्रचार करने से ही दूर नहीं रहेगा, अपितु धर्म को राजनीति से पूर्णतया प्रथक रखेगा और धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित करेगा। उसकी दृष्टि में धर्म राजनीति के लिये गौण वस्तु थी। परन्तु अलाउद्दान ने अकबर के समान ऐसा धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित नहीं किया जिससे उसे कट्टर उल्माओं का विरोध सहना पड़े। अलाउद्दीन ने प्रशासन को उल्माओं के प्रभाव और महत्व से मुक्त कर लिया, परन्तु उसने न्याय विभाग में उल्माओं को पूर्ववत् बड़े-बड़े पदों पर ही रहने दिया। इसके अतिरिक्त उसने अकबर के समान इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों को नहीं त्यागा और न उनका अन्य धर्मों से समन्वय किया। उसने इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों पर पूर्ण आस्था रखी और वह अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इस्लाम के सिद्धान्तों का विधिवत् पालन करता रहा। आवश्यकतानुसार वह समय-समय पर उल्माओं से विभिन्न विषयों पर विचार-विनिमय करता था, उनसे परामर्श भी लेता था, पर वह धर्मान्ध कट्टर पंथी मौलवियों, उल्माओं को तथा उनके सिद्धान्तों को देश-काल के लिये सर्वथा अनुपयुक्त समझता था तथा उन्हें वह राजनीति और प्रशासन में हस्पक्षेप नहीं करने देना चाहता था। वह राजनीति और प्रशासकीय व्यवस्था को इस्लाम धर्म के खूंटे से बांधना अनुपयुक्त समझता था। अतएव वह ऐसे राजनियम बनाना चाहता था, ऐसी नीति अपनाना चाहता था जो समसामयिक परिस्थितियों के अनुकूल हों और जिनसे राज्य और देश का हित हो। ऐसे नियम-उपनियम और नीति इस्लाम धर्म के अनुकूल होते हैं या प्रतिकूल, और इसके लिये उसे कयामत के बाद यातनाएँ सहन करना पड़ेगी या आनन्द का लाभ होगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं थी। अलाउद्दीन प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने राजनीति को धर्म से अलग करके उसे लौकिक और असाम्प्रदायिक आधार पर खड़ा किया। उसकी धर्म निरपेक्षता की

भावना, तथा धार्मिक निष्पक्षता का अनुमान उसके बयाना के काजी को दिये गये आदेश से स्पष्ट प्रगट होता है। उसने कहा था कि, "यद्यपि मैंने किसी विज्ञान अथवा धार्मिक ग्रंथ का अध्ययन नहीं किया है, फिर भी मैं मुसलमान हूँ—मुसलमानों के बीच में फलाफूला हूँ। सल्तनत और जनता के लिये मैं ऐसे आदेश जारी करता हूँ, जिन्हें मैं उपयोगी समझता हूँ। मैं नहीं जानता कि मेरे लिये ये आदेश धर्म सम्मत हैं या नहीं, सल्तनत के लिये अथवा प्रस्तुत समस्या को देखते हुए मुझे जो ठीक मालूम होता है, वही मैं करता हूँ।" इससे उसकी असाम्प्रदायिकता और धर्म निरपेक्षता पूर्ण रूप से झलकती है। जैसा ऊपर लिखा है वह राज्य के मामलों में मुल्लाओं तथा अन्य धार्मिक व्यक्तियों का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता था। उसके मतानुसार शासन विधान सुलतान की इच्छा पर आधारित था, पैगम्बर की नहीं। अलाउद्दीन के इस नवीन राजतंत्र का यही मूल आधार था। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि अलाउद्दीन इस्लाम का विरोधी था। उसने एक बार स्वयं कहा था, "मैंने कुरान नही पढ़ी है, किन्तु मैं मुसलमान वंश में जन्मा हूँ और मुसलमान हूँ।"

काजी अलाउलमुल्क पुरस्कृत—सुलतान अलाउद्दीन को दिल्ली के कोतवाल काजी अलाउलमुल्क के समुचित परामर्श, दूरदर्शिता पूर्ण युक्तियों, तर्क संगत बातों ने बहुत अधिक प्रभावित किया और अलाउद्दीन अपनी योजनाओं में अधिक व्यावहारिक हो गया। इसलिए उसने प्रसन्न होकर कोतवाल अलाउलमुल्क को उदारता से पुरस्कृत किया। सुलतान ने उसके लिए स्वर्ण के धागे से बुना हुआ सम्मान सूचक वेष-भूषा (जरदोजी की खिलअत) भेजी जिस पर सिंह की आकृति बनी हुई थी। इसके अतिरिक्त उसको कमर के लिए बुनी गई पेटी (कमर बाफ्त), आधा मन स्वर्ण, दस सहस्त्र तनके या स्वर्ण मुद्रायें, उत्तम श्रेणी के दो अश्व तथा दो गांव की जागीर भी पारितोषिक के रूप में प्रदान किए तथा उसे राज्य के अन्य लब्ध प्रतिष्ठित सरदारों और अमीरों के समकक्ष स्थान दिया गया।

(३) दृढ़ सीमांत नीति—भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा मंगोलों के निरन्तर आक्रमणों के कारण असुरक्षित थी। सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा के लिये और मंगोलों के आक्रमणों को रोकने के लिए उसने सुलतान बलबन की नीति अपनाई। इस विषय में यह भी कहा जाता है कि उसने बलबन की सीमांत नीति के अधूरे कार्य को पूर्ण किया। उसके शासन काल मे मंगोलों ने पांच-छै बार भारत को आक्रांत किया और भारत के भीतरी भागों तक छापा मारा। एक बार तो ये दो माह तक दिल्ली को घेरे पड़े रहे। इस प्रकार के मंगोलों के आक्रमणों से अव्यवस्था और अशान्ति फैल जाती थी। इन आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने के लिये अलाउद्दीन ने सीमांत प्रदेश की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने अनेक नवीन दुर्गों का निर्माण करवाया तथा प्राचीन दुर्गों की मरम्मत करवायी। सीमांत क्षेत्र के नगरों की सेना में वृद्धि की तथा अपनी समस्त सेना को पूर्ण रूप से सुसज्जित तथा अनुशासित करने की व्यवस्था की तथा प्रशिक्षित वीर सैनिकों और अधिकारियों को सीमांत क्षेत्र के किलों में रखा। समाना और दिपालपुर की अच्छी किले बन्दी की गई। युद्ध की सामग्री निर्माण करने के लिए अनेक कारखाने खोले गये। युद्ध में मंगोल आक्रमणकारियों को परास्त किया

गया। अनेक मंगोल अधिकारियों और सामन्तों को जीवित पकड़कर उन्हें हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया गया। सहस्त्रों मंगोलों को तलवार के घाट उतार दिया गया। इसके अतिरिक्त दिल्ली के समीप रहने वाले मंगोलों का हजारों की संख्या में वध करा दिया। अलाउद्दीन के इस प्रबल प्रतिरोध से और दृढ़ सीमांत नीति से मंगोलों में इतना आतंक छा गया कि उन्होंने आगामी १० वर्षों में भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

(४) **राजपूत नीति**—कतिपय विद्वानों की धारणा है कि अलाउद्दीन ने यह अनुभव कर लिया था कि राजपूतों और हिन्दुओं के सहयोग, सद्भावना और सहानुभूति के बिना भारत में राज्य करना और दिल्ली साम्राज्य की जड़ें दृढ़ करना संभव नहीं है। इसलिये उसने राजपूत नरेशों के साथ अपेक्षाकृत अच्छा व्यवहार किया। उसने अपना तथा अपने पुत्र का विवाह राजवंश की राजपूत स्त्रियों से कर लिया। इन राजपूत स्त्रियों को रनवास में ऊंचा पद प्रदान किया गया। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने अपनी राजपूत रानी से उत्पन्न राजकुमार को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। कतिपय राजपूतों की सहायता और सहयोग उसने राजपूतों के दमन के लिए प्राप्त किया। कुछ राजपूत नरेशों और अधिकारियों का उपयोग उसने राजपूतों को कुचलने के लिए भी किया। अलाउद्दीन के इन कार्यों का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि वह भारत में निष्पक्ष शासन स्थापित करना चाहता था, हिन्दुओं का और विशेष कर राजपूतों का सहयोग और सद्भावना, उनकी श्रद्धा और राजभक्ति को प्रशासन को दृढ़ करने के लिये चाहता था तथा उसने राजपूतों को प्रसन्न करने के लिये अनेक चेष्टाएँ की। यह भ्रम मूलक है कि उसने अकबर के समान उदार राजपूत नीति अपनाई।

(५) **हिन्दू विरोधी नीति**—सुलतान अलाउद्दीन ने हिन्दू विरोधी नीति अपनाई। उसने अपनी हिन्दू जनता के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। वह हिन्दुओं को अपनी प्रजा के रूप में स्वीकार नहीं करता था अपितु उन्हें कर देने वाला (जिम्मी) समझता था। उसका हिन्दुओं तथा मुसलमानों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार था। उसने हिन्दुओं के प्रति कठोर दमननीति अपनाई। उसकी यह धारणा थी कि हिन्दुओं को आर्थिक दृष्टि से इस प्रकार पंगु बना दिया जाय कि उनमें सुलतान के विरुद्ध सोचने का साहस ही न हो। इस उद्देश्य से उसने हिन्दू जनता को अधोलिखित कर देने के लिये बाध्य किया—

(अ) उपज का पचास प्रतिशत भूमि कर, (ब) पशु कर, (स) चराई कर, (द) गृहकर, (य) जजिया। इन करों के लगाने के अतिरिक्त हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए गये। उनके विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का, उनकी स्वतंत्रता का पूर्ण रूप से अपहरण किया गया। उन्हें भूखा नंगा रहने के लिये बाध्य किया गया। अलाउद्दीन ने हिन्दुओं के कल्याण तथा हित की ओर किंचित मात्र भी ध्यान नहीं दिया। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू जनता राजद्रोही बनकर अपने शत्रु अलाउद्दीन की सत्ता का अन्त करने के लिए अवसर

की प्रतीक्षा करने लगी और जैसे ही सुलतान का देहावसान हुआ हिन्दुओं ने विघटन और विशृंखलन में पूरा हाथ बटाया।

(६) अर्थ नीति—अलाउद्दीन के निरंकुश शासन का आधार उसकी तलवार और ताकत थी। उसकी विशाल सेना थी। विशाल सेना से ही उसने विभिन्न प्रदेशों पर विजय प्राप्त की थी। इस सैन्यबल के द्वारा ही वह देश को बाह्य सुरक्षा तथा आन्तरिक सुरक्षा प्रदान कर सकता था। इस विशाल और स्थायी सेना की व्यवस्था में उसे प्रचुर धन की आवश्यकता होती थी। इसलिए उसने स्थायी सेना के व्यय को वहन करने के लिये कई आर्थिक सुधार किए और धन की बचत की। इन आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत उसने विभिन्न वस्तुओं का मूल्य निर्धारण किया तथा बाजार पर नियंत्रण किया, एवं भूमि की नाप और भूमि कर की पूर्ण वसूली की व्यवस्था की।

इसके अतिरिक्त उसने अपने अनुभव से समझ लिया था कि विद्रोहों के मूल में जनता की आर्थिक सम्पन्नता है। पर्याप्त धन ही विद्रोहों को प्रेरणा देता है और महत्वाकांक्षाओं को उकसाता है। राज्य अपहर्ता होने से अलाउद्दीन को यह भय था कि उसके विरुद्ध विद्रोह और षड़यंत्र हो सकते हैं और इनसे उसे भारी क्षति हो सकती है। इसलिये उसने ऐसी अर्थनीति अपनायी और ऐसी व्यवस्था की जिससे न कोई इतना अधिक धनवान हो जाय की वह सुलतान के विरुद्ध विरोध और विद्रोह करे और न इतना निर्धन हो जाय की भूखा नंगा रहने लगे। अलाउद्दीन यह भी अनुभव करता था कि दरिद्र और भूखी नंगी जनता का विद्रोह अत्यन्त ही भयावह होता है। इसलिये उसने अपने पदाधिकारियों को सम्पन्नता विहीन करने के लिये जागीरें देना बन्द कर दिया और उन्हें सीमित नगद वेतन देना प्रारम्भ कर दिया। उसने राजस्व विभाग के चौधरियों, मुकद्दमों, खूतों और बलाहारों के आर्थिक विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया। जिससे कि वे लाभान्वित होकर अधिक धन सम्पन्न न हो सकें। इसके अतिरिक्त उसने विद्रोही और विपक्षीजनता को विशेष कर हिन्दुओं को अपनी अर्थनीति और व्यवस्था से इतना निर्धन और दरिद्र बना दिया था जिससे उनमें सुलतान के विरुद्ध मस्तक उठाने की क्षमता ही न हो। इस प्रकार अलाउद्दीन की अर्थनीति के दो प्रमुख उद्देश्य थे, प्रथम विशाल स्थायी सेना के व्यय का निर्वहन और द्वितीय जनता को आर्थिक दृष्टि से पंगु बना देना। देश में धन का इतना बड़ा अभाव हो जाय, लोग जीविकोपार्जन में ही इतने अधिक व्यस्त रहने लगे कि षड़यंत्र, विद्रोह या बगावत करने की ओर उनका ध्यान ही नही जाय।

(७) निरंकुश शासन और सैनिक तानाशाही की नीति—अलाउद्दीन अनियंत्रित सत्ता में विश्वास करता था। वह एक निरंकुश शासक था और अपनी स्वेच्छाचारिता तथा निरंकुशता के लिये विश्व विख्यात है। अपने इस निरंकुश शासन में उसने तुर्कों के एकाधिकार का अन्त कर दिया। उसने केवल तुर्कों और खिलजियों को ही शासकीय पद न देकर, हिन्दू नरेशों, तथा नव मुस्लिमों को भी राज्य की सेवा करने के अवसर दिये। अलाउद्दीन की प्रशासन नीति में वंश परम्परा का कोई विशेष महत्व नहीं था। वह मनुष्य की योग्यता और प्रतिभा का कायल था, न कि

जन्म का। बलबन शासन में ऊंचे पद केवल कुलीनवंश के व्यक्तियो को ही देता था, विशेषकर तुर्की सरदारों को । अलाउद्दीन ने तुर्कों के इस एकाधिकार का अन्त कर दिया। वह योग्य व्यक्तियों को नियुक्त करता था। मलिक काफूर एक नीच जाति का हिन्दू था जिसने प्रलोभनवश इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। अलाउद्दीन ने उसे अपना सबसे अधिक विश्वासपात्र एवं परामर्शदाता बनाया और शासन के अन्तिम वर्षों में वह काफूर के संकेतों और परामर्श पर चलने लगा था।

अलाउद्दीन अपने निरंकुश शासन में अपनी समस्याओं के निराकरण के लिये कठोर से कठोर उपायों का भी अवलम्बन करता था। वह अपनी नीति और निर्णय के सामने सभी को झुकने को बाध्य करता था। अमीर और सरदार, सामन्त और उच्च-पदाधिकारी, बड़े विद्वान्, मुल्ला और मौलवी, हिन्दू जमींदार और नरेश-सभी उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिये बाध्य किये गये थे। उसने दीर्घकाल तक अमानुषिक आतंक, कठोर दण्ड-विधान, विस्तृत गुप्तचर-व्यवस्था तथा दृढ़ सैनिक संगठन के आधार पर स्वेच्छाचारितापूर्वक शासन किया।

अलाउद्दीन के निरंकुश शासन का एक मात्र उद्देश्य था—सुलतान की शक्ति को अत्यन्त दृढ़ बनाना, उसे अधिकाधिक निरंकुश बनाना। अलाउद्दीन का उद्देश्य जन साधारण का कल्याण या लोक मंगल नहीं था। उसका ध्येय तो अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं अपना स्वार्थ साधन था। उसका शासन एक सैनिक शासन था। उसने जितनी भी सफलता प्राप्त की, सभी सेना के बल पर ही प्राप्त की थी। सेना का हित उसका हित था और सेना के हितों के लिए वह अन्य सभी हितों को बलिदान कर देता था।

अलाउद्दीन की नीति की अस्थायी सफलता—अपनी नीति और सुधारों के कारण अलाउद्दीन ने उसके शासन के प्रारम्भिक वर्षों में अप्रत्याशित सफलताएँ प्राप्त की। विजयों से लगभग सम्पूर्ण भारत पर उसका एकाधिपत्य स्थापित हो गया तथा उसका राजकोष धन, स्वर्ण, हीरे-मोती और रत्नों से परिपूर्ण हो गया। विपक्षियों का अन्त कर दिया गया। विद्रोह और षड़यंत्र निर्मूलन नीति में उसे सफलता मिली। बड़े से बड़े सामन्त और उच्च पदाधिकारी भी उसकी नीति व कार्यों की कटु आलोचना करना तो दूर रहा, अपने अन्तःपुर में भी सुलतान के विरुद्ध बातें करने का साहस नहीं करते थे।

अलाउद्दीन अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हुआ। समय और परिस्थितियों की अनुकूलता ने उसकी सफलता में बड़ा योगदान दिया। परन्तु जिन साधनों के आधार पर उसने अपनी विशिष्ट नीति अपनाई थी और ऐसे शासन की स्थापना की थी, वे साधन उसके शासनकाल के अन्तिम चरण में क्षीण-हीन हो गये। उसकी शारीरिक शक्ति भी क्षीण होने लगी थी। उसके द्वारा स्थापित और संगटित साम्राज्य में विघटन और विशृङ्खलता के कीटाणु प्रवेश करने लगे। उसके सामने ही उसकी कठोर निर्मम दमन नीति के दुष्परिणाम दृष्टिगोचर होने लगे। राजपूतों ने विद्रोह कर दिये, हिन्दू जनता जिसे निर्धन बनाने के लिये भरसक प्रयत्न किये गये थे, सुलतान के प्रति अत्यन्त क्षुब्ध होकर अपना तीव्र असन्तोष प्रगट करने लगी। मलिक

काफूर की कृतघ्नता और षड़यन्त्रों के कारण खिलजी वंश और साम्राज्य के अन्त का मार्ग प्रशस्त हो गया। विश्वासघात का प्रतिशोध अलाउद्दीन को विश्वासघात के ही रूप में मिलने लगा। उसकी शारीरिक दुर्बलता के साथ-साथ साम्राज्य और प्रशासन की भी दुर्बलता और क्षीणता प्रारम्भ हो गयी। अलाउद्दीन की नीति में इस प्रकार अनेक दोष होने से, उसमें निर्ममता, और अमानुषिकता का अंश अत्यधिक होने से वह स्थायी नहीं हो सकी। सुलतान अलाउद्दीन की सफलता अल्पकालीन रही और वह भी उनके व्यक्तिगत गुणों, प्रतिभा और साहस के कारण।

अलाउद्दीन की विजय और साम्राज्य विस्तार

जैसा ऊपर वर्णित है, प्रारम्भिक सफलताओं और विजयों ने अलाउद्दीन को बौखला दिया था और वह सिकन्दर महान् की भाँति विभिन्न देशों को जीतकर विश्व-विजेता के रूप में प्रख्यात होना चाहता था। परन्तु काजी अलाउलमुल्क के समझाने-बुझाने और तर्क संगत परामर्श देने पर अलाउद्दीन ने विश्व-विजय का विचार त्याग दिया, और भारत के उन प्रदेशों को जिन पर उसका अभी किसी प्रकार का अधिकार नहीं था, विजय करने का निश्चय किया।

अलाउद्दीन की विजय और विस्तार की योजना—उसने दक्षिण भारत और मालवा में विदिशा से प्राप्त धन से एक विशाल सेना संगठित की तथा इसका उपयोग उसने विजय करने और साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करने के लिये किया। उसने सम्पूर्ण भारत विजय की योजना बनाई। वह पूरे भारत का एक छत्र सम्राट बनना चाहता था। उसने दिल्ली सल्तनत की सीमाओं के बाहर स्थित स्वतन्त्र हिन्दू राजाओं को जीतने का दृढ़ संकल्प किया। उसकी साम्राज्य प्रसार की नीति का उद्देश्य था कि किसी भी स्वतन्त्र हिन्दू राज्य का अस्तित्व न रहे। इसलिये उसने बिना किसी कारण के उत्तरी भारत के हिन्दू राज्यों पर आक्रमण किये। हिन्दू राजाओं ने उसके विरुद्ध कोई ऐसे कार्य नहीं किये थे जिनसे उन पर आक्रमण करने का उसे कोई बहाना मिल जाय। अलाउद्दीन के अधिकांश युद्ध उसके भारत विजय के दृढ़ संकल्प को पूर्ण करने के लिये लड़े गये।

उसने पहिले उत्तरी भारत को विजय करने का संकल्प किया और उसके बाद दक्षिण भारत को विजय करने का निश्चय किया। परन्तु उसकी इन दोनों विजयों की नीति में भिन्नता है। उत्तरी भारत के विजित राज्यों में उसने वहाँ के नरेशों को पद-च्युत कर उन राज्यों को अपने दिल्ली राज्य में मिला लिया और वहाँ अपने प्रान्त-पति और शासक नियुक्त किये। ये विजित राज्य प्रत्यक्ष रूप से उसके अधिकार में रहे। परन्तु दक्षिण भारत के विजित राज्यों को उसने अपने दिल्ली राज्य में सम्मिलित नहीं किया, क्योंकि उस समय आवागमन की अत्यधिक कठिनाइयाँ थीं और दिल्ली से उन सुदूर दक्षिण भारत के राज्यों को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर उन पर प्रत्यक्ष रूप से शासन करना असम्भव था। इसलिये उसने दक्षिण के विजित राज्यों को वहाँ के नरेशों को लौटा दिये, वहाँ के स्थानीय राजवंशों को शासन करने के पूर्ण अधिकार दे दिये गये। इसके बदले में अलाउद्दीन ने उनसे निर्धारित वार्षिक

कर ले लिया और उन्हें अपने अप्रत्यक्ष शासन अधिकार में रखा। अलाउद्दीन मुस्लिम शासकों में सबसे पहिला था जिसने दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का दूरवर्ती प्रदेशों में विस्तार किया। उसके शासनकाल से दिल्ली सल्तनत के साम्राज्यवादी युग का प्रारम्भ होता है। अपने साम्राज्य विस्तार के लक्ष्य की पूर्ति के लिये वह सतत प्रयास करता रहा और अपने इस ध्येय को इच्छित रूप देने के लिये उसने नैतिक तथा अनैतिक सभी प्रकार के साधनों का उपयोग किया। अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन निम्नलिखित है—

(१) उत्तरी भारत, सिन्ध और मुल्तान विजय (सन् १२९६)—सिंहासनारोहण होने के बाद ही अलाउद्दीन ने भूतपूर्व सुलतान जलालुद्दीन के दो पुत्र अर्कलीखां और रुकनुद्दीन का जो उसके प्रतिद्वंदी थे सामना करने के लिये अपने दो विश्वासपात्र सेनापति जफर खां और उलूग खां को तीस से चालीस सहस्र सैनिकों की विशाल सेना सहित सिन्ध भेजा। इन्होंने मुलतान घेर लिया और दो माह के घेरे के पश्चात् इन्होंने नगर के कोतवाल को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया और मुलतान में प्रवेश कर उसे विजय कर लिया। अर्कलीखां और रुकनुद्दीन इब्राहीम बंदी बना लिये गये और बाद में उनका वध कर दिया गया। मुलतान विजय के बाद सिन्ध पर भी अलाउद्दीन के सेनापतियों ने अपना अधिकार कर लिया। इस विजय के उपलक्ष में अलाउद्दीन ने उलूग खां को जो उसका भाई था सिन्ध और मुलतान का हाकिम या प्रान्तपति नियुक्त किया।

(२) गुजरात विजय (सन् १२९७)—सिन्ध और मुलतान विजय करने के बाद अलाउद्दीन ने गुजरात पर आक्रमण कर उसे विजय करना चाहा। इसके निम्न लिखित कारण हैं—

आक्रमण के कारण—(i) गुजरात अपनी उर्वरा भूमि और प्रगतिशील आन्तरिक और बाहरी व्यापार से धनसम्पन्न प्रदेश था। अरब और फारस देश के व्यापारी गुजरात के बन्दरगाहों में आया-जाया करते थे और वहाँ से वे पश्चिमी देशों और भूमध्यसागर के तटीय राज्यों को भारतीय व्यापारिक वस्तुएँ ले जाते थे और वहाँ की सामग्री भारत लाते थे। इससे गुजरात के नगर और बन्दरगाह धनधान्यपूर्ण थे। अलाउद्दीन धन और धरती का बहुत लोभी था।

(ii) सदियों से गुजरात प्रदेश में शांति थी। इससे उसकी समृद्धि मे बड़ा योगदान मिला। इस समृद्धि व शांति से अलाउद्दीन प्रभावित हुआ था।

(iii) गुजरात के बन्दरगाहों को अपने अधिपत्य में करके अलाउद्दीन वहाँ के विदेशी व्यापार से अपने राज्य की समृद्धि करना चाहता था।

(iv) गुजरात में सदियों से चालुक्य, सोलंकी, राजपूत नरेश राज्य कर रहे थे। इन्होंने गुजरात और सौराष्ट्र में मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रभाव व राज्य को रोके रखा था। गुजरात के सोलंकी नरेश भीम द्वितीय ने तो मुसलमान आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी को बुरी तरह परास्त कर दिया था। दिल्ली में एक सदी तक के तुर्की शासन के बावजूद भी गुजरात दिल्ली सल्तनत के शासन से मुक्त रहा। अलाउद्दीन ऐसे स्वतन्त्र, समृद्ध राज्य के अस्तित्व को सहन नहीं कर सकता था।

उसकी साम्राज्य लिप्सा ने उसे गुजरात पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया।

राजा कर्ण पर विजय और गुजरात की लूट—इस समय गुजरात नरेश बघेला राजपूत शासक कर्ण था। वह निर्बल शासक था। अलाउद्दीन ने दो दिशाओं से गुजरात पर आक्रमण कर विजय करने का आदेश दिया। उसके सेनापति उलूग खाँ ने सिंध की ओर से और उसके दूसरे अनुभवी सेनापति नसरत खां ने राजस्थान की ओर से गुजरात पर आक्रमण किया। राजा कर्णदेव साधारण से युद्ध के पश्चात् ही घबरा कर भाग खड़ा हुआ। इस भगदड़ में वह अपने रनवास और राजकोष को भी अपने साथ सुरक्षित रूप से न ले जा सका। उसकी रानी कमलादेवी शत्रु पक्ष के हाथों में पड़ गयी और वह दिल्ली भेज दी गयी। जहाँ अलाउद्दीन ने उससे स्वयं अपना विवाह कर लिया। राजा कर्ण अपनी सुन्दर पुत्री देवलदेवी सहित दक्षिण में देवगिरी चला गया और वहाँ के राजा रामचन्द्र के यहां उसने शरण ली। अब उलूग खाँ, नसरत खां और उनकी सेना ने गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा, बन्दरगाह सूरत तथा अन्य प्रसिद्ध नगरों को खूब लूटा। सैनिकों की लूट का विरोध करनेवाला कोई था ही नहीं। फलत: उन्होने अनेक नगरों, गाँवों, भवनों और घरों को लूटा। उन्होंने नागरिकों को कठोर यातनाएँ देकर उनके गुप्त धन का भी पता लगाकर उसे भी लूट लिया। इस लूट-पाट में अनेक मंदिरों और पवित्र स्थानों को भी नष्टकर दिया गया और मुस्लिम आक्रमणकारियों ने मंगोलों और हूणों जैसी बर्बरता का प्रदर्शन किया। सहस्रों की संख्या में लोगों का वध कर दिया गया, और असंख्य व्यक्तियों को बन्दी बना लिया गया। राजा कर्ण का राजकोष, उसके रनिवास की सुन्दरियाँ, दास-दासी और कर्मचारी आक्रमणकारियों के हाथ लगे। मुसलमानों ने समस्त गुजरात प्रदेश को रोंद कर उसका सब धन लूट लिया।

सोमनाथ मन्दिर की लूट (२३ फरवरी सन् १२९९)—गुजरात प्रदेश को लूटने के बाद मुसलमान आक्रमणकारी सेनाएँ सौराष्ट्र की ओर बढ़ी और वहां समुद्रतट पर स्थित अत्यन्त प्राचीन और पवित्र सोमनाथ मन्दिर को लूटा और उसे विध्वंस कर दिया। सन् १०२५ में सुलतान महमूद ने अपने आक्रमण के समय भी सोमनाथ मंदिर को लूटा था और वहां की शिव प्रतिमा को नष्ट कर दिया था। उसके स्थान पर नवीन शिव प्रतिमा स्थापित की गयी और इसे सोमनाथ कहा जाने लगा। अलाउद्दीन की सेना ने इस मन्दिर को लूटा और इस नवीन प्रतिमा को इस्लाम की विजय के प्रतीक स्वरूप दिल्ली भेज दिया गया। वहाँ इसे यवनों के पैरों के नीचे रौंदने के लिये डाल दी गयी।

खंभात पर आक्रमण—सौराष्ट्र में खंभात प्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह रहा है। खंभात के ख्वाजा, नागरिक और व्यापारी अपनी धन सम्पन्नता और समृद्धि के लिये विशेष प्रसिद्ध थे। इसलिये गुजरात विजय से प्रोत्साहित होकर अलाउद्दीन के सेनानायक नसरतखाँ ने खंभात की ओर प्रस्थान किया। उसने नगर पर आक्रमण किया, पर उसका सामना करने वाला कोई नहीं था। फलत: उसने खंभात और उसके आसपास के प्रदेश को खूब लूटा। इस लूट में उसे अपार धन सम्पत्ति, जवाहरात तथा अनेकानेक बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुईं। पर इन सब में महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान पदार्थ

जो इस आक्रमण में नसरतखां को प्राप्त हुआ था, वह था एक सुन्दर दास काफूर। यह एक नीच जाति का हिन्दू था और बाद में इसने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। यह अधिक सुन्दर और आकर्षक था। इसलिये खंभात के एक प्रसिद्ध ख्वाजा व्यापारी ने इसे एक हजार दीनार में खरीद लिया था। नसरतखाँ ने बलपूर्वक उससे मलिक काफूर को छीन लिया और बाद में उसे सुलतान अलाउद्दीन के संमुख भेंट किया गया। सुलतान अलाउद्दीन इस दास के सौन्दर्य पर अत्यधिक रूप से आसक्त हुआ और उसने उसे अपना विश्वासपात्र सेवक बना लिया। धीरे-धीरे मलिक काफूर अपनी प्रतिभा और योग्यता से प्रगति करते-करते मलिक नायब बन गया और बाद में सेनानायक। कालान्तर में यही अलाउद्दीन का प्रधानमंत्री और उसकी दक्षिण विजय का सेनापति बना। गुजरात और खंभात की लूट का सबसे बड़ा तोहफा यही काफूर था जो सुलतान अलाउद्दीन को अर्पित किया गया।

जालोर में लूट के धन के लिये नवमुस्लिमों का विद्रोह—जब सुलतान की सेना लूट का अपार धन लिये दिल्ली लौट रही थी, तब उलूगखां और नसरतखां सेनापतियों ने सैनिकों से राज्य के लिये उनकी लूट का पंचमांश भाग माँगा और उनके पास छिपाये हुए धन का पता लगाने के लिये उनके साथ बड़ी निर्दयता और निर्ममता का व्यवहार किया गया। इससे सैनिकों में तीव्र असन्तोष व्याप्त हो गया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि इन सैनिकों से उनकी लूट के माल के पंचमांश से भी अधिक हिस्सा उनसे माँगा गया। इसे सैनिकों ने अनुचित और नियमों के विरुद्ध बतलाया और अधिक निर्मम व्यवहार के कारण वे भड़क उठे। वास्तविक कारण कुछ भी हो, पर यह निश्चित है कि लूट के माल के वितरण के प्रश्न पर सैनिकों ने जालोर के समीप सैनिक शिविर में विद्रोह खड़ा कर दिया। वे मंगोल जो मुसलमान बन गये थे और सैनिक थे,इस विद्रोह में विशेष रूप से आगे आये। उलूगखां ने मंगोल सैनिक सरदारों के साथ भी निर्ममता का व्यवहार किया था। इससे भी मंगोल सैनिक जिन्हें नवमुस्लिम सैनिक कहा जाता था चिढ़ गये थे। वे अपनी लूट के माल के पंचमांश से अधिक भाग राज्य को देने को तैयार नहीं थे। इसलिये उन्होंने विद्रोह कर दिया। उन्होंने सेनापति नसरतखां के भाई का वध कर दिया और नसरतखां का वध करने के लिये उसके शिविर की ओर आगे बढ़े। पर इसी बीच शाही सेना उनका सामना करने के लिये तैयार हो गयी। फलत: अनेक नवमुस्लिम सैनिक और उनके नेता अपने प्राणों की रक्षा के लिये भाग खड़े हुए। नेताओं ने हिन्दू नरेशों के यहां शरण ली। ऐसे ही एक सैनिक अधिकारी और नेता मुहम्मदशाह ने रणथंभोर के राजपूत नरेश के यहां शरण ली।

दिल्ली पहुँचने पर नसरत खां और अलाउद्दीन ने विद्रोही सैनिकों के परिवार वालों के साथ घोर नृशंसता और अभूतपूर्व दानवता और निर्ममता से व्यवहार किया। उनके स्त्री-बच्चों को बन्दी बना लिया गया और बाद में माताओं के सामने ही उनके बच्चों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। इस प्रकार निर्दोष स्त्रियों और बच्चों को उनके अभिभावकों व पालकों के अपराध के लिये भयंकर दंड दिया गया। नसरतखाँ ने तो अपने भाई के वध का प्रतिशोध लेने के लिये विद्रोहियों की स्त्रियों का सतीत्व लूटने

और उनके साथ घोर अपमानपूर्ण व्यवहार करने के आदेश दे दिये थे। फलत: बच्चों के निर्मम वध के बाद स्त्रियों को दुराचारियों के हाथ वेश्याओं के समान उपभोग करने के लिये दे दिया गया। इस प्रकार अलाउद्दीन ने किसी के अपराध के लिये किसी अन्य निर्दोष व्यक्ति को दंड देने की प्रथा को राजनैतिक सिद्धान्त पर ला दिया। यह था निरंकुश सैनिक तानाशाही का स्तर।

(३) जेसलमेर विजय (१२९९)—उत्तरी पश्चिमी राजस्थान में गुजरात की सीमा पर जेसलमेर राजपूत राज्य था। इस समय भाटी राजपूत नरेश दूदा यहाँ राज्य करता था। उसने अपने राज्य का विस्तार किया और अजमेर पर आक्रमण कर यहाँ अन्ना सागर नामक झील से सुलतान की सेना के अश्वों को लेकर चला गया। इससे अलाउद्दीन की सेना ने जेसलमेर पर आक्रमण किया। दूदा और उसका साथी तिलकसिंह युद्ध करते मारे गये, दस सहस्र राजपूत स्त्रियों ने जौहर किया और इसके बाद जेसलमेर पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।

(४) रणथंभोर की विजय (१३०१)—गुजरात की विजय के बाद अलाउद्दीन ने रणथंभोर विजय कर अपने राज्य में मिलाने का निर्णय किया। इस समय रणथंभोर में दिल्ली के राजपूत नरेश पिथौराराय का नाती हमीरदेव था जो चौहान राजा पृथ्वीराज का वंशज था। रणथंभोर दुर्ग अपनी अभेद्यता और हम्मीर अपनी वीरता और साहस के लिये प्रसिद्ध था। रणथंभोर पर अलाउद्दीन द्वारा आक्रमण करने के निम्न लिखित कारण थे—

(अ) रणथंभोर को कुतुबुद्दीन और इल्तुतमिश दोनों ही विजय कर अपने दिल्ली राज्य में सम्मिलित कर चुके थे। पर उनके उत्तराधिकारियों के दुर्बल और अयोग्य होने से रणथंभोर स्वतंत्र हो गया और वहाँ के वीर चौहान नरेशों ने तुर्की आधीनता की जंजीरें तोड़ फेंकी। पर अलाउद्दीन चौहान नरेश हम्मीर व रणथंभोर को पुन: दिल्ली सल्तनत के अधीन रखना चाहता था। वह उनकी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण नहीं बने रहना देना चाहता था।

(ब) गुजरात विजयके बाद राजस्थान दिल्ली सल्तनत से तीनों ओर से घिर गया था। इससे अलाउद्दीन की धारणा थी कि राजस्थान और रणथंभोर पर सरलता से अधिकार किया जा सकता है।

(स) गुजरात को स्थायी रूप से दिल्ली सल्तनत के अधीन रखने के लिये यह आवश्यक था कि राजस्थान पर अधिकार रखा जाय, क्योंकि दिल्ली से गुजरात जाने आने के मार्ग राजस्थान से गुजरते थे।

(द) राजस्थान के अनेक प्राचीन राजवंशों ने दिल्ली सल्तनत की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। वे अभी भी सबल और स्वतंत्र थे तथा दिल्ली साम्राज्य के विस्तार के लिये घातक थे। रणथंभोर भी उनमें से एक था। अलाउद्दीन की विश्व विजय की योजना में रणथंभोर बाधक था।

(य) रणथंभोर नरेश हम्मीरदेव ने अलाउद्दीन की सैनिक सेवा में संलग्न मंगोल (नव मुस्लिम) नेताओं मुहम्मदशाह और उसका भाई केहब्रु को अपने यहां शरण

दे दी थी। इन्होंने अलाउद्दीन के सेनापतियों के विरुद्ध विद्रोह किया था। अलाउद्दीन विद्रोहियों को पनपने का अवसर नहीं देना चाहता था

इन्हीं कारणों से अलाउद्दीन ने रणथंभोर विजय करने के लिये नसरतखां और उलूगखां के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी।

(i) **झायन विजय**—जब सुलतान की सेना रणथंभोर के रण-अभियान के लिये जाती हुई राजपूत राज्य झायन के समीप पहुँची, तब वहाँ के नरेशों ने इसका विरोध करना चाहा और अपने वीर नायक साहनी के नेतृत्व में युद्ध की तैयारी कर दी। दस सहस्त्र सैनिक एकत्रित व संगठित किये गये। राजपूत सेना और सुलतान की सेना में भयंकर युद्ध हुआ। साहनी अत्यधिक वीरता से लड़ा। उसकी वीरता और रण कौशल से प्रभावित होकर साहनी को अमीर खुसरो ने "लोहे का पर्वत" कहा है। पर अंत में साहनी परास्त हुआ। सुलतानी सेना झायन में प्रवेश कर गयी और उसे अपने अधिकार में कर लिया। कुछ समय बाद स्वयं अलाउद्दीन भी झायन पहुँच गया। झायन प्रदेश का वर्णन खुसरो ने इस प्रकार किया है, "सुलतान अलाउद्दीन झायन पहुँच कर राय के महल में ठहरा। महल की सजावट और शिल्पकला देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। वह राजभवन हिन्दुओं का स्वर्ग प्रतीत होता था... वहाँ की मूर्तियों को देखकर वह (सुलतान) चकित हो गया। राजभवन, प्रासाद दुर्ग तथा मंदिर लूटकर विध्वंस कर दिये गये। सैनिकों ने लूटमार में अपार धनसंपत्ति प्राप्त की। मंदिरों से यह आवाज आने लगी कि शायद कोई अन्य महमूद जीवित हो गया है।" झायन की इस लूट में अलाउद्दीन अपने साथ दो विशाल पीतल की मूर्तियों को जो प्रत्येक एक एक सहस्त्र मन के लगभग थी, तुड़वाकर दिल्ली ले गया और उनके टुकड़ों को दिल्ली में मसजिदों के द्वार पर पैरों से रोंदने और कुचलने के लिये फेंक दिया।

(ii) **रणथंभोर दुर्ग का घेरा**—अलाउद्दीन के सेनापतियों ने हम्मीरदेव के पास यह संदेश भेजा कि यदि वह मंगोल विद्रोही नेताओं को लौटा दे या स्वयं उनका वध कर दे तो सुलतान की सेना लौट जायगी। इस पर हम्मीर ने कहला भेजा कि राजपूत धर्म और परम्पराओं के अनुसार वह शरणागत की रक्षा करता रहेगा। यद्यपि वह सुलतान से शत्रुता मोल लेने का इच्छुक नहीं है, पर साथ ही वह शत्रुता से इतना भय भी नहीं खाता कि उसके कारण कर्त्तव्य विमुख हो जाय और जिनकी प्राण रक्षा करनी चाहिए उनकी हत्या में वह सहयोग दे। इस पर सुलतान के सेनापतियों ने रणथंभोर दुर्ग का घेरा डाल दिया। हम्मीर ने रक्षात्मक युद्ध की तैयारी कर ली। इसी घेरे की अवधि में जब एक दिन दुर्ग के समीप नसरत खाँ पाशेब बंधवाने और गरगच लगवाने में व्यस्त था, तो दुर्ग में से फेंके गये एक भारी पत्थर से वह घायल हो गया और इसके परिणाम स्वरूप कई युद्धों के विजेता नसरत खाँ की मृत्यु हो गई। इस अवसर का लाभ उठाकर हम्मीर ने दुर्ग से निकलकर अपनी विशाल सेना से सुलतान की सेना पर तूफानी आक्रमण बोल दिया। सुलतान की सेना को भारी क्षति उठाना पड़ी और परास्त सेनापति उलूग खाँ ने झायन के दुर्ग में पहुँचकर शरण ली।

जब अलाउद्दीन को इस पराजय की खबर प्राप्त हुई तब वह स्वयं एक विशाल सेना लेकर रणथंभोर की ओर बढ़ चला। मार्ग में जब वह आखेट करने के लिए रुक

गया था, तब उसके भतीजे अकबर खां ने उसके विरुद्ध विद्रोह करके, सहसा उस पर आक्रमण कर उसका वध करके दिल्ली का सुलतान बनना चाहा। इस आक्रमण में अत्यधिक बाणों के लग जाने से वह मरा नहीं था, पर बेहोश हो गया था। अपने अंग रक्षकों और सैनिकों की सहायता से उसने होश में आने पर विद्रोह का दमन कर दिया और अकबर खाँ को पकड़कर उसका वध कर दिया तथा उसके समर्थकों और सहयोगियों को भी मौत के घाट उतार दिया। अब आगे बढ़कर अलाउद्दीन ने रण-थंभोर का घेरा दृढ़ता से डाल दिया। वीर हम्मीर और उनके वीर राजपूत दुर्ग के भीतर से एक वर्ष तक निरन्तर युद्ध करते रहे। रणथंभोर के इस घेरे के विषय में अमीर खुसरो ने लिखा है कि, "अत्यधिक ऊंचा किला, जिसकी अट्टालिका नक्षत्रों से बातें करती थीं, इस्लामी सेना द्वारा घेर लिया गया। हिन्दुओं ने किले की दमों अट्टालिकाओं में आग लगा दी······थैलों में मिट्टी भरकर पावेश तैयार किया गया। कुछ नव मुसलमान जोकि इसके पूर्व मंगोल थे, हिन्दुओं से मिल गये थे। किले से बाणों की वर्षा के कारण पक्षी भी नहीं उड़ सकते थे। इस कारण शाही बाज भी वहां तक नहीं पहुँच सकते थे। किले के भीतर से "अरादों" द्वारा पत्थर फेंके जाते रहे किन्तु किले में अन्न के अभाव में अकाल पड़ गया। एक चांवल दाना दो दाना स्वर्ण देकर भी प्राप्त न हो सकता था।"

(iii) **संधि वार्ता तथा रणमल का विश्वासघात**—यद्यपि राजपूत बड़ी वीरता से युद्ध कर रहे थे और घेरे का सामना करते जा रहे थे, पर धीरे-धीरे युद्ध की सामग्री समाप्त हो रही थी और अलाउद्दीन की सतर्कता से बाहर से रसद और सैनिक सहायता नहीं प्राप्त हो रही थी। इसलिए विवश होकर हम्मीरदेव ने संधि वार्ता प्रारम्भ करने के लिये अपने सामन्त रणमल को भेजा। अलाउद्दीन ने अब लगभग एक वर्ष के घेरे के बाद यह अनुभव कर लिया था कि शक्ति व बल से राजपूतों को परास्त करना दुष्कर कार्य है। इसलिये उन्हें आधीन करने के लिये उसने छल-कपट और कूट-नीति का आश्रय लिया। संधि वार्ता करने की अपेक्षा अलाउद्दीन ने रणमल से दुर्ग के समस्त रहस्य जान लिये और उसे यह लिखित अश्वासन दे दिया कि हम्मीरदेव के जो सामन्त और सेनानायक अलाउद्दीन की सेवा में आ जावेंगे उन्हें क्षमा प्रदान किया जायगा। फलतः रणमल ने सामन्त रतनपाल और उसके कतिपय अन्य मित्रों को अलाउद्दीन के पक्ष में अपने साथ मिल जाने के लिये प्रोत्साहित किया।

(iv) **युद्ध और रणथंभोर का पतन**—जब हम्मीरदेव को रणमल तथा अन्य सामंत के विश्वासघात का पता लगा तब निराश होकर उसने अंतिम युद्ध की तैयारी कर ली। स्त्रियों और कन्याओं को उनके सतीत्व की रक्षा के लिये अग्नि को अर्पित कर दिया गया। जौहर प्रथा पूर्ण की गई और फिर हम्मीर अपने साथियों सहित सुल्तान की सेना से युद्ध करते हुए मारा गया। अमीर खुसरो ने अपने ग्रंथ "तारीख-ए अलाई" में लिखा है कि, "जौहर की भयंकर प्रथा पूर्ण की गई और एक रात्रि को राय ने पर्वत के शिखर पर अग्नि प्रज्वलित की और अपनी स्त्रियों तथा परिवार को इसकी लपटों में डाल दिया और तब वह थोड़े से स्वामीभक्त अनुयायियों सहित शत्रुओं पर टूट पड़ा और उसने निराशा में प्राणों का होम कर दिया।" परन्तु "हम्मीर महाकाव्य"

ग्रंथ के अनुसार हम्मीर की मृत्यु के विवरणों में भिन्नता है। इसमें लिखा है कि हम्मीरदेव की पराजय का कारण उसके दो सामन्त रतिपाल एवं कृष्णपाल का विश्वासघात था। युद्ध में आहत होने पर बचने का कोई उपाय न देखकर हम्मीर ने अपनी ही तलवार से अपना मस्तक काट लिया और आत्महत्या कर ली। स्वाभिमानी स्वतंत्रता प्रिय राजपूत के समान उसने विधर्मी मुसलमानों की आधीनता स्वीकार करने की अपेक्षा मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर समझा।

रणथंभोर के घेरे और युद्ध में यदि एक ओर रणमल और सुलतान के विश्वासघात और कूटनीति का उदाहरण है तो दूसरी ओर हम्मीर की वीरता, जौहर और मुहम्मद की स्वामिभक्ति और त्याग का ज्वलन्त उदाहरण भी विद्यमान है। ऐसा उदाहरण अन्यत्र कठिनाई से प्राप्त होगा। युद्ध और हम्मीर की पराजय के बाद जब अलाउद्दीन रणथंभोर दुर्ग की ओर आगे बढ़ रहा था तब उसने देखा कि हम्मीरदेव की सैनिक सेवा में रत मंगोल सरदार और सेनानायक मुहम्मदशाह युद्ध में घायल होकर रणभूमि में पड़ा कराह रहा था। सुलतान अलाउद्दीन ने उससे पूछा कि यदि सेवा-सुश्रुषा द्वारा उसके प्राणों की रक्षा कर दी जाय तो वह क्या करेगा। इस आहत योद्धा ने मरते मरते भी अपने प्राणों के भय से अपनी स्वामिभक्ति के पथ से विमुख न होकर उपेक्षित और गर्वीले शब्दों में उत्तर दिया कि, "यदि मेरे घाव ठीक हो जाय तो मैं तेरा वध कर दूँ और हम्मीरदेव के पुत्र को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दूँ।" यद्यपि क्रूर अलाउद्दीन ने इस स्वामिभक्त सेनानायक और योद्धा को हाथी के पैरों तले कुचलवा कर मरवा डाला, पर उसके शौर्य और स्वामिभक्ति से वह स्वयं भी अत्यधिक प्रभावित हुआ था और उसने आदेश दिया कि वीर मुहम्मदशाह का अंतिम संस्कार सम्मान पूर्ण विधि से सम्पन्न किया जाय। इस प्रकार एक विधर्मी सेनानायक ने अपने स्वामि के लिये रणक्षेत्र में अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया।

(v) **रणथंभोर पर अलाउद्दीन का आधिपत्य**—हम्मीर की पराजय के पश्चात् अलाउद्दीन की सेना दुर्ग की ओर बढ़ी और बालू के बोरों के सहारे शाही सैनिकों ने दुर्ग में प्रवेश कर उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया और दीर्घ अवधि के घेरे के बाद १० जुलाई सन् १३०१ को अलाउद्दीन ने रणथंभोर दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया और नगर व दुर्ग के राजमहल व भवन लूटे गये और भस्मी-भूत कर दिये। इसके उपरांत रणथंभोर का शासन उलूग खाँ को सौंपकर अलाउद्दीन दिल्ली लौट आया। इतिहासकार बर्नी और निजामुद्दीन के अनुसार अलाउद्दीन ने रणथंभोर दुर्ग तथा उसके समीपस्थ भू-प्रदेश को उलूग खां को जागीर के रूप में दे दिया। इसके बाद उलूग खाँ रोग ग्रस्त हो गया और दिल्ली आते समय मार्ग में उसका देहावसान हो गया। इसके विपरीत वुल्जे हेग का मत है कि उलूग खां ने दक्षिण में तेलंगाना और माबर पर सैनिक अभियान के हेतु एक विशाल सेना संगठित की परंतु भयंकर रोग से ग्रस्त होने के कारण उसकी मृत्यु हो गई और उसका शव दिल्ली लाकर दफना दिया गया।

अलाउद्दीन ने दिल्ली पहुँचकर हम्मीर के सामन्त और मंत्री रणमल तथा उसके साथियों का जिन्होंने राणा के साथ विश्वासघात व छलकपट किया था, वध

करवा दिया। ये विश्वासघाती अलाउद्दीन की धूर्ततापूर्ण नीति के शिकार हुए। अलाउद्दीन की नीति की यह विशिष्टता थी कि वह पहिले विश्वासघातियों को अपने पक्ष में करके उनकी सेवाओं से लाभ उठा लेता था और बाद में इन्हीं को अपने विश्वासघात के अपराध में जिससे वह अपनी सफलता प्राप्त करता था, मृत्यु दण्ड दे देता था।

चित्तौड़ पर आक्रमण और मेवाड़ विजय सन् १३०३

(i) **मेवाड़ राजपूत राज्य का महत्व**—रणथंभोर राज्य के समान ही मेवाड़ का सिसोदिया (गेहलोत) राजपूत राज्य की गौरवशाली परम्पराओं, प्राचीन वैभव और श्रेष्ठ राजपूत राजवंश के लिये प्रसिद्ध रहा है। राजस्थान के प्रमुख राज्यों में मेवाड़ का अपना विशिष्ट महत्व था और यह सबसे अधिक सम्मानित था। यह राज्य विस्तृत पर्वत श्रेणियों तथा सघन बीहड़ वन्य प्रदेशों में स्थित होने के कारण अपनी प्राकृतिक दशा के कारण सुरक्षित था। इसीलिए किसी भी आक्रांता के लिए मेवाड़ पर आक्रमण कर उसे जीतकर स्थायी रूप से अपने अधिकार में रखना दुस्कर था। मेवाड़ राज्य की राजधानी चित्तौड़ थी और चित्तौड़ का दुर्ग मेवाड़ राज्य का सर्वश्रेष्ठ अभेद्य दुर्ग था। चित्तौड़ दुर्ग एक विशाल ऊंची पर्वत श्रेणी के शिखर पर स्थित है। विशाल सीधी दीर्घकाय प्राकृतिक चट्टानें इसकी प्रचीर हैं। दुर्ग तीन ओर सघन वनों और अभेद्य पर्वतीय शृंखलाओं से घिरा हुआ है। परंतु एक ओर पश्चिम में दुर्ग के नीचे विस्तृत मैदान है, जहां राजपूत सैनिकों ने प्राणों का मोह त्याग कर मेवाड़ राज्य और चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा के लिए युद्ध करते करते अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। चित्तौड़ दुर्ग की सुरक्षात्मक प्राकृतिक दशा के कारण ही विदेशी आक्रांताओं को यहां असफलता ही प्राप्त होती रही है।

(ii) **चित्तोड़ पर आक्रमण के कारण**—अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे घेरलेने के निम्नलिखित कारण हैं—

(अ) रणथंभौर विजय से अलाउद्दीन को राजस्थान के अन्य प्रसिद्ध राजपूत राज्यों को विजय करने का प्रोत्साहन मिला।

(ब) विश्व विजय की महत्वाकाँक्षा रखने वाले और अपने साम्राज्य विस्तार की तीव्र लालसा रखने वाले अलाउद्दीन को शक्तिशाली स्वतन्त्र मेवाड़ राज्य का अस्तित्व खटकने लगा था। सुलतान अलाउद्दीन की कभी भी तृप्त न होने वाली विजय-लिप्सा ने उसको मेवाड़ विजय के लिए प्रेरित किया।

(स) इस समय मेवाड़ के राणा रतनसिंह[1] की रानी पद्मनी अपने अनुपम सौन्दर्य, अप्रतिम लावण्य और अनूठे सौष्ठव के लिए प्रसिद्ध थी। अलाउद्दीन पद्मनी के

---

१. राजस्थान इतिहास के प्रसिद्ध लेखक कर्नल टाड ने इस समय के राणा का नाम भीमसी (भीमसिंह) लिखा है। नैनसी ने अपने "ख्याल" में राणा को रतनसिंह कहकर संबोधित किया है। अबुलफजल और फरिश्ता नामक मुस्लिम इतिहासकारों ने अपने-अपने ग्रंथों में रतनसिंह नाम का ही उल्लेख किया है।

इस रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध था। उसकी कामुकता और रूप लोलुपता ने उसे पद्मनी की प्राप्ति के लिए चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया।

(iii) **चित्तौड़ का घेरा, पद्मनी का सौन्दर्य दर्शन और छल-कपट**—उपरोक्त कारणों से अलाउद्दीन ने विशाल सेना लेकर सन् १३०३ के प्रारम्भ में २८ जनवरी को चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया और दुर्ग को घेर लिया। राजपूतों ने किले में रह कर सुरक्षात्मक युद्ध किया। पांच माह तक घेरा बना रहने पर भी जब राणा ने हार नहीं मानी, तब अलाउद्दीन इस शर्त पर घेरा उठाने और दिल्ली लौट जाने के लिये राजी हो गया कि उसे दर्पण में पद्मनी का रूप-सौन्दर्य एक बार दिखा दिया जावे। राणा रतनसिंह ने मेवाड़ राज्य व दुर्ग की विध्वंस और लूट से बचाने के लिए अलाउद्दीन को पद्मनी के प्रतिबिम्ब को दर्पण में दिखलाकर उसकी काम लोलुप दृष्टि को तृप्त करना स्वीकार कर लिया। दुर्ग के राजमहल में दर्पण में पद्मनी के प्रतिबिम्ब को देखकर अलाउद्दीन ने पद्मनी को प्राप्त करने का अपना निर्णय और भी दृढ़ कर लिया। जब शिष्टाचार और अतिथि सत्कार के नाते राणा रतनसिंह सुलतान अलाउद्दीन को दुर्ग द्वार तक छोड़ने गया तब अलाउद्दीन ने छल-कपट से उसे बन्दी बना लिया। इसके बाद अलाउद्दीन ने रानी पद्मनी के पास यह संदेश भेजा कि यदि वह शाही रनवास में आना स्वीकार कर ले तो राणा को कारावास मुक्त कर दिया जायगा।

इस घटना के विषय में मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता ने इन शब्दों में लिखा है कि 'पद्मनी के सौन्दर्य के विषय में सुनकर अलाउद्दीन ने कारागार में राजा के पास यह सन्देश भेजा कि यदि वह इस अद्वितीय रूपवती को भेंट कर दे तो वह उसको मुक्त कर देगा। इस प्रस्ताव से वे लोग बहुत क्षुब्ध हुए और उन्होंने राणा के पास विष भेजने का निश्चय किया जिससे वह अपनी जीवन लीला समाप्त कर दे, किन्तु राणा की पुत्री ने एक उपाय बतलाया जिससे राणा को मुक्ति भी मिल जाय और कुल गौरव की रक्षा भी हो सके। अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित राजपूत पालकियों में बैठकर सुलतान के शिविर में गये। और राणा को छुड़ा लाये।" उपरोक्त वर्णन से डाक्टर ईश्वरीप्रसाद सहमत नहीं है, क्योंकि ब्रिग्ज महोदय द्वारा फरिश्ता के ग्रंथ का जो अनुवाद हुआ है वह अशुद्ध है। फरिश्ता के इस वर्णन से अधिक विश्वसनीय राजपूत गाथाएँ और राजवंशों के भाटों का वर्णन है।

(iv) **युद्ध और चित्तौड़ पर आधिपत्य**-- जब पद्मनी को शाही रनवास में आने का अलाउद्दीन का संदेश प्राप्त हुआ, तब उसने अलाउद्दीन के छल-कपट पर सूझ-बूझ एवं चतुराई द्वारा विजय प्राप्त करने का और अपने जातीय गौरव और राजवंश की प्रतिष्ठा की रक्षा करने का निश्चय किया। उसने अलाउद्दीन को यह संदेश उत्तर में भेज दिया कि वह राजोचित ढंग से, मान मर्यादा के अनुरूप विधि के अनुसार अपनी सात सौ सहेलियों सहित सुलतान के शिविर में आवेगी। विषय-वासना लोलुप अलाउद्दीन ने विवेक शून्य होकर इस प्रकार आने में कोई आपत्ति नहीं उठाई। अतः पद्मनी की सात सौ पालकियाँ सुलतान के शिविर की ओर चल पड़ीं। इन पालकियों में रानी तथा उसकी सहेलियों के स्थान पर सशस्त्र वीर राजपूत योद्धा बैठे हुए थे। जब ये

पालकियाँ शिविर के समीप पहुँच गयी, तब सुलतान के पास यह संदेश भेजा गया कि पद्मनी अंतिम बार एकान्त में अपने पति राणा से भेंट करना चाहती है। सुलतान ने इसके लिये अपनी अनुमति प्रदान करदी। इस भेंट के बहाने पालकियों के कतिपय वीर राजपूत योद्धा राणा रतनसिंह को शाही कारावास से छुड़ाकर चित्तौड़ दुर्ग की ओर चल पड़े। इसके साथ ही अन्य योद्धाओं ने पालकियों से निकलकर सुलतान के सैनिक शिविर पर अकस्मात धावा बोल दिया। शाही सेना में खलबली मच गयी। दोनों दलों में भीषण युद्ध हुआ। इसमें गोरा और बादल नामक दो राजपूत योद्धाओं ने मुट्ठी भर राजपूतों की सहायता से संग्राम में मुसलमानों के छक्के छुड़ा दिये। परन्तु बहु-संख्यक मुसलमानों ने उन्हें परास्त कर दिया। अब अलाउद्दीन ने दुर्ग का घेरा और भी अधिक दृढ़ कर दिया। फलतः विजय और सुरक्षा की कोई आशा न देखकर दुर्ग में जौहर सम्पन्न किया गया। रानी पद्मनी ने अनेक राजपूत रमणियों सहित अपने सतीत्व व धर्म की रक्षार्थ अपने सुकोमल सुन्दर शरीर को अग्नि को भेंट कर दिया। उन्होंने मुस्लिम विजेताओं के अपवित्र हाथों में पड़ने की अपेक्षा अग्नि में जल कर मृत्यु का आलिंगन श्रेयस्कर समझा। राजस्थान के पाश्चात्य इतिहासकार कर्नल टाड ने लिखा है कि, "सुन्दरी पद्मनी ने उस समूह का नेतृत्व किया, जिसमें वह समस्त स्त्री सौन्दर्य एवं यौवन सम्मिलित था, जिसको तातारों की कामुकता द्वारा लांछित होने का भय था। इनको उस तहखाने में लाया गया और भस्मसात करने वाले तत्वों (अग्नि) में अपमान से त्राण पाने के लिये अन्दर छोड़कर द्वार बन्द कर दिया गया।" जौहर संपन्नकर राजपूतों ने भयंकर संग्राम किया और मुस्लिम सेना के दांत खट्टे किये। उन्होंने चित्तौड़ दुर्ग की सुरक्षा हेतु अपने प्राणों को उत्सर्ग कर मेवाड़ की प्रतिष्ठा, गौरव-गाथा को अलंकृत किया। राणा रतनसिंह स्वयं युद्ध करते रणक्षेत्र में खेत रहे। क्षुब्ध होकर सुलतान ने चित्तौड़ के नागरिकों के वध के आदेश दे दिये और तीस सहस्र व्यक्ति निर्ममता से मौत के घाट उतार दिये गये और नगर व दुर्ग में प्रवेश कर उन्हें विध्वंस किया गया। कवि अमीर खुसरो ने जो चित्तौड़ के रणअभियान व भयानक संग्राम के समय अलाउद्दीन के साथ था, स्वयं इसका आंखों देखा हाल सविस्तार से वर्णन किया है। उसने लिखा है कि, "सोमवार ११ मुहर्रम ७०३ हिजरी (२६ अगस्त सन् १३०३) को सुलतान (अलाउद्दीन) उस किले में जहाँ चिड़िया भी प्रविष्ट नहीं हो सकती थी, प्रवेश पाने में सफल हुआ। राय (चित्तौड़ का राणा रतनसिंह) पलायन कर गया था पर फिर सुलतान की सेवा में आत्मसमर्पण के लिये उपस्थित हो गया।[1] उसने राय को कोई हानि नहीं पहुँचाई, किंतु उसके क्रोध द्वारा तीस सहस्र हिन्दुओं

---

१ रतनसिंह के विषय में खुसरो का यह मत भ्रम मूलक और असत्य है। जब सुलतान ने तीस सहस्र नागरिकों का नृशंसता से वध करवा दिया तो वह अपने विधर्मी शत्रु को कैसे छोड़ सकता था। नैनसी और कर्नल टाड के कथनानुसार रतनसिंह युद्ध करते-करते वीर गति को प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त इस भयंकर संग्राम के पश्चात् रतनसिंह के विषय में कुछ भी सुनने को नहीं मिलता। इन सबसे स्पष्ट है कि वह रणक्षेत्र में काम आया।

की हत्या हो गयी ।......चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रख दिया । उसने चित्तौड़ का शासन (अपने पुत्र) खिज्रखाँ को सौंप दिया । उसने खिज्रखाँ को एक लाल छत्र, सोने का काम किये हुए वस्त्र और दो ध्वज, एक हरा और दूसरा काला, प्रदान किये और इसके ऊपर लाल और पन्नों की बौछार की । इस प्रकार वह खिज्रखाँ को सम्मानित करने के बाद सीरी (दिल्ली) लौट गया ।"

(v) **चित्तौड़ का पुनः स्वतंत्र हो जाना**—मेवाड़ राज्य और चित्तौड़ दुर्ग का प्रबंध खिज्रखाँ को सौंपा गया और वहाँ सुलतान अलाउद्दीन का आधिपत्य स्थापित हो गया । पर दुर्ग की विशिष्ट प्राकृतिक और सुरक्षात्मक स्थिति के कारण खिज्रखाँ दुर्ग पर स्थायी रूप से दीर्घकाल तक अपना अधिकार न रख सका । स्वतंत्रता प्रिय राजपूत इसे पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे । उनके निरन्तर दबाव के कारण सन् १३११ में खिज्रखाँ को विवश होकर यह दुर्ग खाली कर देना पड़ा । इसके बाद सुलतान ने यह दुर्ग सोनिया राजपूत सामन्त मालदेव के नियंत्रण में दे दिया । नैनसी के कथनानुसार मालदेव भी इस दुर्ग पर नौ वर्ष तक ही अधिकार रख सका । तत्पश्चात राणा रतनसिंह के पौत्र हम्मीर राज कुमार ने छल-छद्म से इस दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और मालदेव को खदेड़ दिया । हम्मीर के राणा बन जाने पर मेवाड़ और चित्तौड़ की लुप्त शक्ति और सत्ता पुनः लौट आई और मेवाड़ फिर राजस्थान का सबल, श्रेष्ठ और प्रमुख राज्य बन गया ।

रानी पद्मनी की गाथा और उसकी ऐतिहासिकता

आजकल रानी पद्मनी की गाथा और चित्तौड़ आक्रमण इतिहास की एक विवाद ग्रस्त समस्या मान ली गयी है । पद्मनी के रूप-सौन्दर्य पर अलाउद्दीन के मुग्ध होने और उसकी प्राप्ति के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण करने की बात को कतिपय इतिहासकार कपोल कल्पित बतलाते हैं । अन्य विद्वान इसे ऐतिहासिक घटना बताते हैं । रानी पद्मनी की गाथा का वर्णन हिन्दी के कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावत में, मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता, अरब विद्वान व इतिहासकार हाजी उद-दबीर ने अपने ग्रंथों में तथा कर्नल टाड ने अपने राजस्थान के ऐतिहासिक ग्रंथों में किया है । मेवाड़ और चित्तौड़ में भी रानी पद्मनी की गाथाएँ प्रचलित हैं और राजस्थान के अनेक भाटों, चारणों और राजकवियों ने पद्मनी के रूप-सौन्दर्य और अलाउद्दीन के आक्रमण का वर्णन किया है । इन्ही साधनों की आलोचना और प्रत्यालोचना करके यदि एक ओर आधुनिक विद्वानों और इतिहासकारों ने पद्मनी गाथा को अनैतिहासिक माना है, तो दूसरी ओर इसे सत्य घटना प्रमाणित किया गया है । जिन विद्वानों ने इसे अनैतिहासिक बतलाया है उनके तर्क निम्नलिखित हैं—

पद्मनी की गाथा अनैतिहासिक है—(१) इस विषय में आधुनिक विद्वान **हलदार** ने तत्संबंधी विवरणों और घटनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन करके दोनों पक्षों का तर्क प्रस्तुत किया है, पर उन्होंने निर्णयात्मक ढंग से किसी भी एक पक्ष का समर्थन नहीं किया है ।

(२) **पंडित गोरीशंकर हीराचन्दओझा**—इन्होंने पद्मनी की गाथा को अपने प्रसिद्ध ग्रंथ राजस्थान के इतिहास में अनैतिहासिक प्रमाणिता किया है। उनका मत है कि पद्मनी की गाथा का मूल स्रोत मलिक मुहम्मद जायसी का "पद्मावत" नामक महाकाव्य है। यह प्रेमाख्यान है और इसमें लौकिक रूप-सौन्दर्य के साथ-साथ, सौन्दर्य की लोकोत्तर कल्पना भी की गयी और जायसी ने अपने ग्रंथ के अन्त में यह भी लिख दिया है कि चित्तौड़ दुर्ग शरीर है, राजा रतनसिंह मन है, सिंहल द्वीप (लंका) हृदय है और पद्मनी बुद्धि है, और सुलतान अलाउद्दीन को माया कहा है।[1] इससे प्रगट होता है कि पद्मनी की कथा मनगढ़ंत और कविकल्पना है और इसी प्रेमाख्यान से फरिश्ता और टाड ने पद्मनी की कथा को ले लिया है। इसलिए यह अविश्वसनीय है।

ओझाजी का दूसरा तर्क यह है कि पद्मनी का वर्णन राजस्थान के भाट और चारणों के गीतों में आया है। इन्होंने भी यह गाथा पद्मावत से ली है और फिर ये गीत प्रशंसात्मक होते हैं। इनमें भी कवि की कल्पना का पुट होता है और वीरों के युद्धों और महिलाओं के कार्यों का अतिशयोक्ति से वर्णन किया जाता है। इसलिए भी पद्मनी की कथा अनैतिहासिक है।

(३) **मलिक मुहम्मद जायसी का "पद्मावत"**—जायसी ने सन् १५४० में अपना प्रेमाख्यान "पद्मावत" महाकाव्य लिखा है। इसमें चित्तौड़ के राणा रतनसिंह द्वारा सिंहल द्वीप की सुन्दरी पद्मनी से प्रेम करने और उससे विवाह करने का वर्णन है। इसके लिये रतनसिंह ने कई वर्ष लंका में बिताये। राघव नामक भिक्षु से पद्मनी के रूप, सौन्दर्य का वर्णन अलाउद्दीन ने सुनकर, उसे प्राप्त करना चाहा। रतनसिंह को इसके लिये संदेश भेजा गया कि वह पद्मनी को सुलतान को सौंप दे। राणा के ऐसा न करने पर अलाउद्दीन ने आक्रमण कर चित्तौड़ घेर लिया। अभेद्य दुर्ग चित्तौड़ को प्राप्त न करने पर अलाउद्दीन ने राणा से दर्पण में पद्मनी का प्रतिबिम्ब देखकर लौट जाने का संदेश कहला भेजा। राणा ने इसे स्वीकार किया और जब राणा अलाउद्दीन को दुर्ग द्वार तक छोड़ने आया, तब वह बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाया गया और वहाँ से सुलतान ने यह संदेश भेजा कि यदि पद्मनी शाही रनवास में आये तो रतनसिंह मुक्त किया जा सकता है। तब गोरा, बादल नामक दो राजपूत वीरों सहित १६०० पालकियों में पद्मनी और उसकी सहेलियाँ दिल्ली पहुँचीं और वहाँ सुलतान से पद्मनी ने राणा रतनसिंह से भेंट करने की स्वीकृति प्राप्त करली और तब भेंट के बहाने राणा को कारावास से छुड़ाकर बादल के नेतृत्व में राजपूत राणा को चित्तौड़ ले आये और गोरा अपने साथियों सहित सुलतान की सेना से युद्ध करते हुए खेत रहा। इसके बाद रतनसिंह ने विश्वासघात के कारण कुम्भलगढ़ के राजा देवपाल से युद्ध किया जिसने राणा की अनुपस्थिति में पद्मनी को स्वयं के हेतु

---

१. "तन चित उर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनी चिन्हा।"
नागमती यह दुनिया–धंधा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघवदूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥

प्राप्त करना चाहा था। रतनसिंह ने देवपाल का वध कर दिया, पर स्वयं युद्ध में अत्यधिक घायल होने के कारण, चित्तौड़ लौटने के थोड़े समय बाद ही, रतनसिंह की मृत्यु हो गयी। तब पद्मनी और नागमती नामक अन्य रानी सती हो गयी। इसी बीच अलाउद्दीन ने फिर चित्तौड़ पर आक्रमण करके, उसे जीत कर वहां इस्लाम का झंडा फहराया। सुलतान ने ८ वर्ष तक चित्तौड़ का घेरा डाले रखा।

जायसी की यह कहानी निम्न लिखित कारणों से ऐतिहासिक नहीं मानी जा रही है—

(i) पद्मावत चित्तौड़ के आक्रमण के २३७ वर्ष बाद और अलाउद्दीन की मृत्यु के २२४ वर्ष बाद लिखी और सम्पूर्ण की गयी थी। इसके पूर्व राजस्थान के या फारसी भाषा के किसी भी इतिहासकार ने पद्मनी की गाथा और इससे उत्पन्न चित्तौड़ के आक्रमण और संग्राम का वर्णन नहीं किया है।

(ii) पद्मावत के पूर्वार्द्ध के भाग में कथा और घटनाएँ पूर्णतया अनैतिहासिक हैं। कवि होने के नाते और प्रेमाख्यान का वर्णन करने से जायसी ने कथा और घटनाओं में अपनी ओर से तोड़-मोड़ की है तथा अनेक प्राचीन ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं को मूल-कथा से संबंधित कर दिया है।

(iii) यह बहुत कुछ सम्भव है कि अलाउद्दीन के ऐतिहासिक आक्रमण लिखने के साथ-साथ वह कवि-कल्पना से राजपूती गौरव गाथा का वर्णन तत्कालीन परम्पराओं के अनुसार कर गया हो। सम्भव है जायसी के समय जब बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और वहाँ जौहर सम्पन्न हुआ, तब इसी से प्रेरणा ग्रहण करके जायसी ने पद्मनी की गौरव गाथा का वर्णन किया हो। इसी के आधार पर उसके बाद के फारसी भाषा के तथा अन्य इतिहासकारों ने इस कथा को अपने विवरणों में अपना लिया हो। फारसी इतिहासकार जो सत्य घटनाओं और गाथाओं में अन्तर की चिन्ता नहीं करते थे जायसी द्वारा लिखित पद्मनी की कहानी को सच समझे और जायसी के बाद यह ऐतिहासिक घटना मानी जाकर अनेक ग्रंथों में वर्णित की गयी।

(iv) रतनसिंह जिसने केवल एक वर्ष शासन किया था, यह सम्भव नहीं था कि वह जायसी के अनुसार पद्मनी की खोज में बारह वर्ष लंका में व्यतीत करे।

(v) रतनसिंह के समय लंका या सिंहल द्वीप का राजा पराक्रमबाहु चतुर्थ था न कि गोवर्धन जैसा कि जायसी ने लिखा है या हमीर संक जैसा टाड ने वर्णन किया है।

(vi) जायसी के अनुसार चित्तौड़ दुर्ग का घेरा और संग्राम निरन्तर आठ वर्ष तक चलते रहे, जो अनैतिहासिक हैं।

(vii) जायसी का कथन है कि पद्मनी के कारण ही अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था, जबकि फरिश्ता और हाजी उद-दबीर ने यह कारण नहीं बताया है।

(४) **फरिश्ता का वर्णन**—मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता ने जो जायसी का समकालीन था चित्तौड़ के आक्रमण का दो स्थानों पर उल्लेख किया है। एक स्थान

पर तो वह अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़ के घेरे, युद्ध का वर्णन करके खिज्र खां को चित्तौड़ देने का वर्णन करता है, वह पद्मनी के नाम का व उसकी गाथा का उल्लेख कहीं भी नहीं करता। दूसरे स्थान पर वह पद्मनी, रतनसिंह की कैद और उसकी पुत्री द्वारा युक्ति के अनुसार रतनसिंह की मुक्ति का वर्णन करता है। अंतिम भाग में वह जायसी की कहानी को अपना लेता है। फरिश्ता द्वारा किया गया वर्णन ऊपर लिखा जा चुका है।

फरिश्ता के विवरण में इतिहास की भूलें हैं और उसका वर्णन भी भेदपूर्ण है। चित्तौड़ के अभियानों में उसने चित्तौड़ के राजा का नाम नहीं लिखा है। वह यह भी निश्चित नहीं कर पाया कि पद्मनी रतनसिंह की पुत्री थी या पत्नि। उसका यह कथन भी कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को खिज्रखां से रतनसिंह के भानजे को दिलवा दिया था, असत्य है। रतनसिंह स्वयं जीते जी कभी ऐसा सहन नहीं कर सकता था। फरिश्ता द्वारा, खिज्र खां द्वारा चित्तौड़ को खाली करने की जो तिथि दी गयी है, वह भी सही नहीं है। इसलिये फरिश्ता द्वारा पद्मनी का वर्णन विश्वसनीय नहीं है।

(५) **हाजी उद-दबीर**—यह फरिश्ता का समकालीन था और उसके द्वारा पद्मनी की गाथा का जो वर्णन हुआ है, उसमें भिन्नता है। वह एक ही कहानी का अलग-अलग वर्णन करता है। रतनसिंह के बन्दी होने और मुक्ति के वर्णन में भी हाजी विभिन्न है। उसके अनुसार राजा को दिल्ली में बंदी नहीं किया गया था। हाजी ने रतनसिंह के नाम का उल्लेख नहीं किया है। उसने पद्मनी को चित्तौड़ के राजा की रानी नहीं लिखा है, अपितु उसका कथन है कि पद्मनी से हिन्दुस्तान की उन स्त्रियों से तात्पर्य है जिनमें स्त्री सुलभ अनेक सद्गुण और योग्यताएँ हों। इसके अतिरिक्त हाजी ने खिज्रखां के नाम का भी उल्लेख नहीं किया है। राजा की कारागार से मुक्ति की योजना वह पद्मनी की नहीं अपितु राजा की बुद्धि की उपज बतलाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हाजी उद-दबीर ने जायसी के पद्मावत से ही पद्मनी की गाथा का वर्णन अपना कर, घटा-बढ़ाकर विभिन्न रूप से उसका उल्लेख अपने ग्रंथ में कर दिया।

(६) **फारसी इतिहासकारों में पद्मनी की गाथा के वर्णन की भिन्नता**—फारसी इतिहासकार बर्नी, इसामी, अमीर खुसरो, इब्न बतूता तथा "तारीख-ए-मुहम्मदी" और "तारीख-ए-मुबारकशाही" के लेखकों ने पद्मनी की गाथा का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। अमीर खुसरो ने जो चित्तौड़ अभियान, आक्रमण और संग्राम के समय, स्वयं अलाउद्दीन के साथ था, पद्मनी की गाथा का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

जिन फारसी इतिहासकारों ने पद्मनी गाथा का वर्णन किया है, उनमें भी मतैक्य नहीं है, उनके विवरण में भी पर्याप्त साम्य नहीं है। उदाहरण के लिये जायसी पद्मनी की १६०० पालकियां, हाजी उद-दबीर ५०० पालकियां और फरिश्ता ७०० पालकियाँ भेजता है। जायसी और फरिश्ता का कथन है कि राणा को दिल्ली में सुलतान द्वारा बन्दी बना लिया गया, पर हादी उद-दबीर के अनुसार राणा दिल्ली नहीं गया, पर उसे सुलतान के सैनिकों के निरीक्षण में उसी के राज्य में बंदी बना

लिया गया, जिससे कि पद्मनी को अलाउद्दीन के पास जाने के लिये विवश किया जा सके। जायसी के अनुसार बन्दीगृह से राणा को मुक्त कराने की योजना पद्मनी की थी, फरिश्ता के अनुसार यह योजना रतनसिंह की पुत्री की थी और हाजी उद-दबीर के अनुसार यह स्वयं राणा की बुद्धि और विवेक की उपज थी। इतनी विभिन्नता से ऐसा भास होता है कि पद्मनी की कथा ऐतिहासिक तथ्यों से परे है।

(७) **चारणों और भाटों की कल्पना**—राजपूत राजाओं के यहाँ उनकी यश गौरव की गाथाओं के गान के लिये भाट और चारण होते थे। इनमें कुछ श्रेष्ठ कवि भी होते थे। इन चारणों, भाटों और कवियों के हाथों में प्रशंसा के कारण पद्मनी की गाथा परिवर्तित हो गयी। रूप, लावण्य व सौन्दर्य के चित्रण में, राजपूती सम्मान व गौरव की रक्षा में हुए बलिदान के वर्णन में तथा जौहर प्रथा की प्रतिष्ठा के यशगान में भाटों, चारणों और राजपूत राजसभा के कवियों ने निश्चय ही दिल खोलकर कल्पना का सहारा लिया होगा।

पद्मनी की कथा की ऐतिहासिकता—कतिपय इतिहासकारों का मत है कि पद्मनी की गाथा ऐतिहासिक है। इस गाथा में सत्यता है। इसके लिये निम्नलिखित प्रमाण दिये गये हैं—

(i) यह कथन कि जायसी के पूर्व पद्मनी की कथा का वर्णन नहीं है, भ्रम-मूलक है। जायसी के पूर्व संस्कृत में पद्मावती पर काव्य रचना हो चुकी थी जिससे यह प्रगट होता है कि लोक-जीवन में पद्मनी की गाथा अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी थी।

(ii) सम्भव है जायसी की सोलहवीं सदी में रचित पद्मावत का मूल स्रोत यह लोक गाथा हो। यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ में इस लोक गाथा का साहित्य में लिखित विवरण नहीं होने से, इसमें अनेक संशोधन, संवर्द्धन और परिवर्तन हो गये हों और जायसी ने ऐसी ही संवर्द्धित पद्मनी की लोक गाथा को अपने ग्रंथ का मूल स्रोत बना लिया।

(iii) जायसी के पद्मावत में पूर्व की कथा अनैतिहासिक अवश्य है, परन्तु उसके उत्तरार्द्ध की कथाएँ व घटनाएँ निश्चित ही ऐतिहासिक हैं। उत्तरार्द्ध में न केवल पद्मावत के पात्र ही ऐतिहासिक हैं, अपितु घटनाएँ भी बहुत कुछ इतिहास के समीप हैं। यह स्वाभाविक है कि कवि होने से जायसी ने कल्पना के आधार पर पद्मनी की मूल कथा को अधिक मनोरंजक, आकर्षक और सरस बनाने के लिये उसमें यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन कर दिया हो। इससे जायसी की पद्मनी की गाथा में और अन्य विद्वानों द्वारा वर्णित गाथा में साम्य न रहा हो। इस आधार पर पद्मनी की कथा को अनैतिहासिक बताना न्यायसंगत नहीं है।

(iv) यह बार-बार कहा गया है कि खुसरो जो स्वयं सुलतान अलाउद्दीन के साथ इस चित्तौड़ के घेरे और युद्ध के समय उपस्थित था, पद्मनी की गाथा का स्पष्ट रूप से कहीं भी वर्णन नहीं करता और न उसके बाद के मुस्लिम इतिहासकार ही। परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अमीर खुसरो राजपूतों के भाट और चारण के समान ही सन् १२६० से १३२५ तक दिल्ली सुलतानों का राजकवि रहा। वह

अलाउद्दीन का भी राजकवि था, वह उसकी प्रशंसा में लिखता था। खुसरो ने अपना ग्रंथ "खजायन-उल-फुतुह" अलाउद्दीन के दरबारी इतिहास के रूप में लिखा है और इसीलिये उसने उन घटनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया जो उसके संरक्षक के विपरीत थी। जो घटना अलाउद्दीन के विपक्ष में हो और जिससे अलाउद्दीन की दुष्टता, कपट, निर्ममता आदि प्रगट होता हो और जिससे अलाउद्दीन पर कलंक की कालिमा आती हो, खुसरो ने उसे छोड़ दिया है। उसका वर्णन करने की उपेक्षा की है। जैसे अलाउद्दीन द्वारा सुलतान जलालुद्दीन की हत्या, मंगोलों द्वारा सुलतान की पराजय और मंगोलों द्वारा दिल्ली पर आक्रमण और उसका घेरा, आदि। पद्मनी की गाथा जो अलाउद्दीन की काम लोलुपता का द्योतक है और उसके लिये कलंक कालिमा है, खुसरो द्वारा स्पष्टतया वर्णन नहीं किया गया है।

(v) यदि ध्यान पूर्वक देखें तो खुसरो ने उपमाओं के द्वारा पद्मनी गाथा की ओर संकेत किया है, जैसे खुसरो अलाउद्दीन की राजा सुलेमान से तुलना करता है, चित्तौड़ दुर्ग को उसका सीबा नगर मानता है और स्वयं को "हुद-हुद" पक्षी कहता है जो सीबा की सुन्दर रानी बिलक्सिस की सूचना इथोपिया के राजा सुलेमान के पास लाता है। पद्मनी के सौन्दर्य और लावण्य का संदेश भी पक्षी द्वारा लाया गया था। खुसरो यह वर्णन करता है कि चित्तौड़ दुर्ग ऐसा था कि राजपूतों की सजगता और तीरों की बोछार से पक्षी भी उसके भीतर उड़कर नहीं जा सकते थे। ऐसे दुर्ग में अलाउद्दीन ने स्वयं प्रवेश किया था और खुसरो उसके साथ था। यह घटना स्पष्ट है, दुर्ग के पतन के पूर्व की है। राणा रतनसिंह अलाउद्दीन के सैनिक शिविर तक आया और सुलतान अलाउद्दीन के दुर्ग से लौटने पर ही राणा ने सुलतान को आत्म-समर्पण कर दिया और उसकी अधीनता स्वीकार करली। क्षुब्ध और निराश अलाउ-द्दीन के आदेश से ही चित्तौड़ के तीस सहस्त्र नागरिकों का निर्ममता से वध कर दिया गया। ध्यान पूर्वक पढ़ने से स्पष्ट होता है कि खुसरो ने इन घटनाओं के वर्णन में कहीं कुछ सत्य को त्याग दिया है। दुर्ग में सुलतान क्यों गया, वहां तो राणा सुलतान का मित्र था, पर सुलतान के दुर्ग में से शिविर तक लौटने पर राणा ने किस प्रकार और क्यों अधीनता स्वीकार करली और अलाउद्दीन ने खीजकर, निराश होकर, नाग-रिकों के वध की आज्ञा क्यों दी, जिससे तीस सहस्त्र व्यक्ति मौत के घाट उतार दिये गये, इसका उल्लेख खुसरो ने स्पष्टतया नहीं किया है। इन्हीं घटनाओं के बीच में पद्मनी की गाथा है जिसे खुसरो ने जानबूझकर अपने अन्नदाता स्वामी सुलतान अलाउद्दीन के कलंक को छिपाने के लिये अपने विवरण में से पृथक रखा है। कुछ अन्य मुस्लिम इतिहासकार खुसरो के वर्णन से प्रभावित हुए और उन्होंने भी इस गाथा को त्याग दिया। प्रसिद्ध इतिहासकार बरनी तो केवल इतना ही लिख गया कि, "रणथंभोर विजय के पश्चात् सुलतान ने चित्तौड़ के विरुद्ध रण अभियान किया जिसको उसने थोड़े ही समय में जीत लिया और वह घर वापिस आ गया।"

(vi) ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी ने लोक गाथा से और खुसरो के ग्रंथ से अपनी पद्मावत के कथानक को अपनाया हो। पद्मावत के उत्तरार्द्ध की घटनाएँ इतिहास के अधिक निकट है और उनमें सत्य का अधिक अंश है।

(vii) मेवाड़ और समस्त राजस्थान में पद्मनी की गाथा सदियों से ही लोक-जीवन में प्रचलित रही है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चली आ रही है। लोक जीवन से यह गाथा लोक साहित्य में आयी और फिर अन्य ग्रंथों में व्याप्त हो गयी। यदि पद्मनी की गाथा को और पद्मावत के कथानक को कपोल कल्पित मान लिया जाय, तो अभी तक यह प्रमाणित नहीं किया जा सका है कि फिर मेवाड़ राज्य में और राजस्थान के जन-जीवन में पद्मनी की गाथा किस स्रोत से आयी और उसका अभी तक इतना अधिक प्रचार क्यों और कैसे हो गया। बिना सत्य का अंश हुए कोई भी गाथा लोक जीवन में इस प्रकार सदियों तक अपना अस्तित्व नहीं रख सकती।

(viii) उदयपुर के राजवंश ने भी जो राजस्थान में सबसे अधिक प्राचीन और गौरवशाली माना गया है, परम्परागत पद्मनी की गाथा को स्वीकार किया है। इस गाथा के प्रति आज भी इस सिसोदिया राजवंश की ममता है।

(ix) चित्तौड़ के दुर्ग में पद्मनी के स्मृति चिह्नों को सदियों से सुरक्षित रखा जा रहा है। दुर्ग में एक छोटी सी झील में पद्मनी का सुन्दर, आकर्षक राजभवन, उसके कक्ष, सुलतान द्वारा उसका प्रतिबिम्ब देखने का स्थान, तथा इस भवन के समीप प्रवेश द्वार एवं महल के चतुर्दिक दुर्ग-सी छोटी चहार दीवारी आज भी विद्यमान है। इसके आसपास के भवन, बाजार, मोहल्ले, आदि विध्वंस कर दिये गये। परन्तु इनके भग्नावशेष और इनके मध्य में से जाता हुआ सुनसान राजमार्ग अभी भी विद्यमान है। इनके विषय में आज भी दुर्ग में अनेक स्मृतियां और किवदंतियाँ सुनने को मिलती हैं।

(x) रूप, लावण्य और सौन्दर्यमयी युवती को राजस्थान और उसके समीपस्थ प्रदेश मालवा में "पद्मनी-सी सुन्दरी" की संज्ञा देने की कहावत सदियों से लेकर आज तक विद्यमान है। पद्मनी की गाथा मीरा की कथा के समान ही इस क्षेत्र के लोक जीवन में घर कर गयी और उसे असत्य नहीं माना जा सकता।

(xi) राजस्थान का समस्त इतिहास सती और जौहर के अनूठे उदाहरणों से, तथा वंश की प्रतिष्ठा व गौरव लिये एवं राजपूती शान के लिये शौर्य, त्याग, बलि और जीवनोत्सर्ग के अनिवर्चनीय अलौकिक उदाहरणों से परिपूर्ण है। कामलोलुप अलाउद्दीन का मेवाड़ की रानी पद्मनी पर मुग्ध होना, रानी द्वारा अपने पति को कपटी शत्रु से मुक्त कराने का प्रयत्न करना, तथा सुरक्षा और विजय की कोई सम्भावना नहीं रहने पर, सामूहिक रूप से जौहर प्रथा सम्पन्न कर देना, और अन्त में युद्ध करते-करते वीर गति को प्राप्त हो जाना—ये सब राजस्थान के अभूतपूर्व इतिहास में कोई असम्भव या अनोखी बात नहीं है।

उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में यह निर्विवाद है कि पद्मनी की गाथा केवल कपोल कल्पित नहीं है, अपितु उसमें पर्याप्त ऐतिहासिक सत्य है जो अधिक अनुसंधान और अध्ययन से ओर भी स्पष्ट हो जायगा।

रणथम्भोर और चित्तौड़ के पतन से प्रभावित और घबराकर अलवर का राजपूत नरेश नाहरदेव भी डर गया और उसने शीघ्र ही आत्मसमर्पण कर दिया।

(६) मालवा और मांडू की विजय (सन् १३०५)—राजस्थान विजय करने और वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित करने के बाद सुलतान अलाउद्दीन का ध्यान मालवा के राजपूत राज राज्य और वहाँ के प्रसिद्ध अभेद्य दुर्ग मांडू की ओर गया। मालवा में इस समय मल्हकदेव राज्य कर रहा था और उसका सेनापति व मन्त्री कोका था, जिसे युद्ध नीति और कूटनीति में पर्याप्त अनुभव था। अमीर खुसरो के अनुसार मल्हकदेव के पास इस समय तीस चालीस सहस्र अश्वारोहियों की सेना थी और इसीलिये मल्हकदेव ने सुलतान की अधीनता स्वीकार नहीं की। फलतः सुलतान अलाउद्दीन ने सन् १३०५ में ऐनुलमुल्क मुल्तानी के नेतृत्व में दस सहस्र सैनिकों की एक सेना मालवा पर आक्रमण कर उसे विजय करने के लिये भेजी। घमासान युद्ध हुआ और राजपूतों ने वीरतापूर्वक सुलतान की सेना का सामना किया। पर अन्त में वे परास्त हुए व अनेकों रण में काम आये। कोका प्रधान भी तीर द्वारा आहत होकर रणक्षेत्र में ही वीर गति को प्राप्त हुआ। वहाँ से उसका मस्तक काटकर सुलतान की सेवा में दिल्ली भेज दिया गया। युद्ध में परास्त होने के बाद राय मल्हकदेव ने मालवा के प्रसिद्ध दुर्ग मांडू में शरण ली। परन्तु सुलतान के आदेश पर उसकी सेना ने वहाँ भी मल्हकदेव का पीछा किया और उसे परास्त कर दिया गया। इस युद्ध में मल्हकदेव स्वयं युद्ध करते रणक्षेत्र में मारा गया। उसकी पराजय और मृत्यु के बाद सुलतान की सेना ने २३ नवम्बर १३०५ को मांडू दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

(७) उज्जैन, धार और चन्देरी की विजय (सन् १३०६)—मांडू पर विजय करने के बाद सेनापति एनुलमुल्क ने मालवा के प्रसिद्ध वैभवशाली नगर धार और उज्जैन पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर दिया। अब उसने उत्तरी मालवा में चन्देरी पर आक्रमण कर उसे भी जीत लिया। इन विजयों के परिणामस्वरूप मालवा में सुलतान के शेष विरोधियों का भी ऐनुलमुल्क ने अन्त कर दिया। इन विजयों से प्रसन्न होकर सुलतान अलाउद्दीन ने ऐनुलमुल्क को सन् १३०६ में मालवा और मांडू का प्रशासक नियुक्त कर दिया। इसके बाद मालवा दिल्ली साम्राज्य में मिला लिया गया।

(८) मारवाड़-विजय (सन् १३०८)—रणथम्भोर और मेवाड़ की पराजय के बाद राजस्थान के अन्य छोटे क्षेत्र सुलतान के हाथ में आ गये, पर राजस्थान के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में मारवाड़ का स्वतन्त्र राज्य अब भी शेष था। साम्राज्य विस्तार की भावना से अलाउद्दीन का ध्यान स्वतन्त्र मारवाड़ राज्य की ओर गया और सन् १३०८ में सुलतान अलाउद्दीन ने एक विशाल सेना इस मारवाड़ राज्य को विजय करने के लिये भेजी। इस समय मारवाड़ में राजपूत नरेश सीतलदेव राज्य कर रहा था और उसका प्रमुख और अभेद्य दुर्ग सिवाना था जो जोधपुर से लगभग ७५ कीलोमीटर दूर पर स्थित है। इस दुर्ग के विजय अभियान के लिये अलाउद्दीन स्वयं गया था और उसने दुर्ग को घेर लिया। राजपूतों ने कई मास तक सफलतापूर्वक रक्षात्मक

युद्ध चलाया और सीतलदेव ने साहस नहीं छोड़ा। शाही सेना ने दुर्ग पर तूफानी आक्रमण किया और वह दुर्ग में प्रवेश करने में सफल हो गयी। परन्तु राजपूतों ने दुर्ग को असुरक्षित छोड़कर पलायन नहीं किया यद्यपि घमासान युद्ध में उनके मस्तक काट डाले गये और उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। सीतलदेव ने पुनः संगठित होकर युद्ध करने के लिये जालौर की ओर भाग जाना चाहा, पर वह बन्दी बना लिया गया और उसका विशाल मस्तक काटकर सुलतान को भेंट किया गया। मारवाड़ राज्य के कुछ प्रदेशों को सुलतान ने अपने अमीरों को जागीर के रूप में प्रदान कर दिया और सिवाना का शासन प्रबन्ध अपने सेनापति कमालुद्दीन गुर्ग को सौंपकर सुलतान दिल्ली लौट गया।

(९) **जालौर विजय (सन् १३११)**—सिवाना दुर्ग के दक्षिण पूर्व में लगभग ८०किलोमिटर दूर जालौर का दुर्ग था। यहाँ का तत्कालीन नरेश चौहान वंशीय राजपूत राजा कान्हरदेव था। जिसे कृष्ण तृतीय भी कहा गया है। रणथम्भौर व चित्तौड़ के पराभव के बाद कान्हरदेव ने सुलतान अलाउद्दीन का आधिपत्य स्वीकार करके दिल्ली में निवास करना प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु धीरे-धीरे उसने आन्तरिक प्रशासन में स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी और उसमें राजपूती आन जग जाने के कारण वह स्वतंत्र शासक की भाँति कार्य करने लगा था और सुलतान के प्रति श्रृद्धाभाव व्यक्त करना कम कर दिया था। अतः सन् १३११ में अलाउद्दीन ने उसकी विद्रोही प्रवृत्ति के दमनार्थ एक विशाल सेना भेजकर जालौर पर आक्रमण कर दिया। प्रारम्भ में कान्हरदेव ने छुट-पुट हमलों में शाही सेना को परास्त कर दिया। पर अलाउद्दीन ने कमालुद्दीन गुर्ग के नेतृत्व में अधिक सैन्य और रसद भेजी तथा कूटनीति से काम लेकर कान्हरदेव के भाई मालदेव को अपनी ओर मिला लिया और युद्ध में कान्हरदेव को परास्त कर दिया। विजयी शाही सेना ने कान्हरदेव के साथियों और संबंधियों का वध कर डाला। मालदेव को जालौर विजय में उसकी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का प्रबंध सौंप दिया।

उत्तरी भारत में साम्राज्य विस्तार—सन् १३०५ की समाप्ति पर समस्त उत्तरी भारत (नेपाल, काश्मीर और आसाम को छोड़कर) अलाउद्दीन के अधिकार में आगया था। प्रत्येक नवीन विजय से अलाउद्दीन द्वारा प्रचलित और संचालित साम्राज्य विस्तार की नीति को नवीन उत्साह प्राप्त होता गया। फलतः उसने उत्तरी भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार करने में सफलता प्राप्त की। सन् १३०५के अन्त तक उत्तरीभारत का समस्त क्षेत्र अलाउद्दीन के शासन के अन्तर्गत आ गया और साम्राज्य वादी नीति जिसका वह बड़ा समर्थक था एक सुदृढ़ नींव पर आधारित हो गयी। नवीन विजयों एवं राज्य विस्तार से उस नीति को एक नया बल मिला।

राजस्थान में अलाउद्दीन की अल्पकालीन सफलता—यद्यपि ग्यारह वर्षों में ही अलाउद्दीन ने समस्त उत्तरी भारत को अपने अधिकार में कर लिया था और बड़े से बड़े शक्तिशाली राजपूत राज्य को विध्वंस कर दिया था, परन्तु राजस्थान में उसकी विजय और सफलता अल्पकालीन ही रही और थोड़े समय में ही राजस्थान के अनेक राज्यों ने सल्तनत की अधीनता की जंजीरें तोड़ कर पुनः अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करली।

रणथंभोर से उलुगखां को और चित्तोड़ से खिज्रखां को राजपूतों के निरन्तर संघर्ष व दबाव के कारण हटना पड़ा। इससे छोटे राजपूत राज्यों को प्रोत्साहन मिला और उन्होंने भी अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सुलतानी सेना से वीरतापूर्वक संघर्ष करके पुनः अपनी स्वतंत्रता ले ली।

राजपूतों के विरुद्ध अलाउद्दीन की सफलता के कारण—यद्यपि राजपूत बड़ी वीरता, साहस से युद्ध करते थे, परन्तु वे अलाउद्दीन की सेना से परास्त हो जाते थे। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) **एकता व सहयोग का अभाव**—राजपूतों में शक्ति, वीरता, अदम्य उत्साह, साहस और अपूर्व रणकुशलता थी। सैनिक व योद्धा के नाते वे विश्व में किसी भी जाति या देश के सैनिकों से पीछे नहीं थे। परन्तु उनमें संगठन, एकता और सहयोग की अपेक्षा पारस्परिक फूट, वैमनस्य और भेद-भाव का आधिक्य था। उनके गर्वीले स्वभाव, पारस्परिक ईर्षा-द्वेष की भावना व स्वाभिमानमय आचरण से शान व मान के प्रश्न पर अकारण मनमुटाव करने से राजपूत संकटकालीन स्थिति में भी, शत्रु का सामना करने के लिए एक ही झंडे के नीचे सामूहिक रूप से, एक ही कुशल नेतृत्व में संगठित नहीं होते थे। वे अपने-अपने राज्य की सीमाओं की वृद्धि में तथा सीमित स्वार्थ सिद्धि के हेतु व्यक्तिगत रूप से युद्ध करते और परास्त होते थे। उनमें यह भावना प्रस्फुटित और विकसित नहीं हो सकी कि तुर्कों और खिलजियों की शक्ति का प्रतिरोध सामूहिक रूप से योजनाबद्ध होकर करें और अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्य और स्थायी बनाकर रखें। जब मारवाड़ में सिवाना का राजपूत नरेश अलाउद्दीन द्वारा घेरा जाकर परास्त किया जा रहा था, तब केवल लगभग ८० किलोमीटर दूर जालौर का राजपूत नरेश उसकी सैनिक सहायता करने की अपेक्षा, उसकी ओर उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा था। रणथंभोर और चितौड़ के नरेशों ने भी संकटकाल में परस्पर एक दूसरे की सहायता नहीं की। सहायता की अपेक्षा वे एक दूसरे की पराजय देखकर प्रसन्न होते थे। इसलिये खिलजी सुल्तान के लिये छोटे-छोटे राजपूत राज्यों को नत मस्तक करना सरल हो गया।

(२) **तुर्कों व खिलजियों की सम्पन्नता और श्रेष्ठ व्यवस्था**—तुर्क सुलतानों की शासन-व्यवस्था में इस्लाम धर्म के अनुरूप जातिगत भेद के बिना समस्त मुसलमानों को समान रूप से राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य अधिकार उपलब्ध होते थे। मुसलमानों में भ्रातृत्व की भावना की प्रधानता थी और इससे उनमें बड़े-छोटे, गरीब-अमीर, राजा-रंक का भेद-भाव नहीं था। उनमें न तो जाति-प्रथा थी और न किसी प्रकार का जातिगत प्रतिबंध ही। इससे वे अत्यधिक शक्ति सम्पन्न और संगठित हो सके और साधारणतया एक ही सेनानायक का अनुसरण करते थे। इसके अतिरिक्त इस्लाम धर्म के प्रसार हेतु धर्म विजय और राज्य विजय के लिये वे प्राण विसर्जन में हिचकते न थे।

मुसलमान युद्ध को एक धार्मिक कृत्य समझकर प्राणों का उत्सर्ग करने में नहीं हिचकते थे क्योंकि उनकी दृढ़ धारणा थी कि युद्ध में विजयी होने पर वे गाजी कहलावेंगे और रणक्षेत्र में मृत्यु होने पर उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इस प्रकार

प्रत्येक मुसलमान काफिरों के विरुद्ध युद्ध करना महान राष्ट्रीय और धार्मिक कार्य समझता था। इसके विपरीत हिन्दुओं में वर्ण और जाति व्यवस्था के कारण राष्ट्रीयता की भावना का सर्वथा अभाव था। यद्यपि समाज में विभिन्न जातियाँ और उपजातियाँ थीं, पर इनमें से क्षत्रियों पर ही भारत की सुरक्षा, प्रशासन और राज्य कार्य का भार पड़ा। अन्य जातियों में सामरिक प्रवृत्ति नहीं थी, अपितु उनमें परस्पर संकीर्ण अपनत्व की भावना थी। जातियों और कुलों में वंश गर्व के कारण, एक कुल व समुदाय के लोग दूसरे कुल व समुदाय को हेय समझते थे। इसके अतिरिक्त राजपूत प्रशासन में, जाति और कुल के आधार पर राजनियमों में व व्यक्ति के साथ व्यवहार करने में पक्षपात किया जाता था। इसलिये समाज में निम्नवर्ग के लोगों में राजपूत शासन व्यवस्था के प्रति तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो गया, क्योंकि उन्हें प्रशासन के कार्यों व गतिविधियों से प्रथक् रखा गया था और शांति व सुरक्षा के लिये भी उन पर कोई उत्तरदायित्व नहीं था।

(३) **राजपूतों में जनकल्याण की भावनाओं का अभाव**—राजपूत शासक अपनी सामन्तवादी शासन व्यवस्था में, पारस्परिक कलह और संघर्ष में तथा मुस्लिम आक्रांताओं का सामना करने में सदा व्यस्त रहते थे। फलतः वे जनकल्याण की ओर उदासीन रहे। लोक-कल्याण के ठोस कार्य वे पर्याप्त रूप से नहीं कर सके। इसलिए राजपूत नरेश अपनी प्रजा का विश्वास, श्रद्धा, सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करने में असफल रहे। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि जब तुर्कों व खिलजियोंके आक्रमण और संघर्ष हुए तो जनसाधारण ने विशेष उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। इससे मुसलमान सरलता से विजय प्राप्त कर सके।

(४) **राजपूतों में कूटनीति का अभाव**—राजपूत वीरता से युद्ध करते रणक्षेत्र में मर जाने में अपना सम्मान और गौरव मानते थे। युद्ध में कूटनीति और छल-कपट को घृणास्पद मानकर उसे कभी अपनाते नहीं थे। वे अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। परन्तु उनकी युद्धनीति श्रेष्ठ और धर्मानुकूल थी। वे घायल शत्रु तथा रणक्षेत्र से पलायन करते हुए शत्रु पर प्रहार करना न्याय विरुद्ध और अपमानजनक समझते थे। इसके विपरीत मुसलमान रणभूमि में सैन्य और बल को विफल होते देख अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये छल-कपट और कूटनीति का आश्रय लेने में किंचित भी नहीं हिचकते थे। सुलतान और उसके सेनानायक विजय प्राप्त करने के लिये युद्ध के साथ-साथ कूटनीति भी अपनाते थे। राजनीति और कूटनीति राजपूतों में नगण्य थी, पर मुसलमानों में यह सफलता की कुन्जी थी। मुसलमानों के छल-कपट और कूटनीतिज्ञता ने राजपूतों के सरल स्वभाव और उज्ज्वल चरित्र को सदा धोखा दिया।

(५) **राजपूत नरेशों की विजित प्रदेशों के प्रति उदासीनता**—राजपूत नरेशों ने अपने जीते हुए प्रदेशों में स्थायी दृढ़ शासन व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास नहीं किया जिससे उनके राज्य में विद्रोहों और विप्लवों की सम्भावना सदा विद्यमान रहती थी। अतएव वे निरन्तर आंतरिक विद्रोहों और मुस्लिम आक्रांताओं का सामना करते रहते थे। इससे राज्य की आय कम होने लगी और आर्थिक दशा बिगड़ने लगी। वे

दीर्घकाल तक मुस्लिम आक्रमणकारियों का घेरे या युद्ध के समय सामना करने में असमर्थ हो गये। इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत और दक्षिण भारत के राजपूत राज्यों में भी एक दूसरे के प्रति उदासीनता थी, उनमें परस्पर मैत्री सम्बन्धों का अभाव था।

(६) **राजपूतों की प्राचीन युद्ध प्रणाली**—राजपूतों की युद्ध प्रणाली प्राचीन और परम्परागत थी जो सल्तनत के युग में सर्वथा अनुपयुक्त हुई। उन्होंने अपने सामरिक नीति और अस्त्र-शस्त्रों में कोई परिवर्तन नहीं किया था। वे अभी भी हस्ति सेना का उपयोग करते थे और धनुष-बाण काम में लेते थे। वे युद्ध विज्ञान व रण प्रणाली में हुए क्रांतिकारी परिवर्तनों से अनभिज्ञ थे, क्योंकि भारत का विदेशियों से सम्पर्क छूट जाने से उन्हें विदेशियों से युद्ध करने के अवसर ही प्राप्त नहीं होते थे। राजपूत सैनिक व्यवस्था दोषपूर्ण सामन्त प्रथा पर आश्रित थी। युद्ध काल में प्रत्येक सामन्त अपने राजा के लिये एक निर्दिष्ट संख्या में सेना उपलब्ध करता था और इसका एक दोष यह था कि वह अपने ही सेनापति पर निर्भर रहती थी, राजा के सेनापति पर नहीं। इस कारण उस सेनापति की मृत्यु हो जाने या आहत हो जाने पर सम्पूर्ण सेना पलायन कर जाती थी। राजपूत राजाओं की युद्ध करने की कोई निर्दिष्ट योजना नहीं बनती थी। जिससे वे सम्मिलित रूप से एक कुशल सेनापति के नेतृत्व में युद्ध करके सम्पूर्ण शक्ति का सदुपयोग करने में असमर्थ होते थे। साधारणतया छोटे-छोटे सामन्त और नरेश अपनी-अपनी सेना को पृथक्-पृथक् रीति से, विभिन्न स्थानों से मनमाने ढंग से युद्ध करने का आदेश देते थे। इसके विपरीत मुसलमानों ने सुसंगठित होकर योजनाबद्ध रूप से विजय अभियान को कुशल सैनिक नेतृत्व में आगे बढ़ाया और उन्हें एक सफलता के बाद दूसरी सफलता प्राप्त होती गई। सुलतान की सेना ने विदेशी मंगोलों से युद्ध करने के कारण, युद्ध प्रणाली के नवीन ढंग अपना लिये थे, जैसे "गरगच", "मिजनिक", आदि। उत्तरी पश्चिमी सीमा के पार अफगान पर्वत श्रृङ्खलाओं के पार सुलतान की सेना के लिये भर्ती केन्द्र थे। यहाँ से सैनिक अधिकाधिक संख्या में भारत की अपार सम्पत्ति से आकृष्ट होकर सुलतान की सेना में भरती होते थे। इससे सुलतान को अनवरत आक्रमणों और युद्धों में नये सैनिक उपलब्ध होते रहते थे। राजपूतों के पास ऐसे सैन्य स्रोत का अभाव था।

(७) **राजपूतों के सीमित साधन**—अनवरत युद्ध करने के लिये राजपूत राज्यों के साधन सीमित होते थे। उनके पास सीमित सेना, राजस्थान का अनुर्वर प्रदेश और पर्वती क्षेत्र होता था, वहाँ उपज और अन्न का सदा अभाव रहता था। इसके विपरीत सुलतान के पास युद्ध व विजय के लिये दिल्ली सल्तनत के समस्त साधन होते थे, पंजाब और अवध जैसे उपजाऊ और धन-सम्पन्न प्रदेश उसके पास होते थे। वह निरन्तर नवीन सैनिकों को भरती करता रहता था। रसद और सैनिकों का अभाव उसके पास नहीं था। सीमित साधनों और अल्प-संख्यक क्षत्रीय वीर योद्धाओं से जो स्थानीय राजनीति और क्षुद्र स्वार्थों की सिद्धि में व्यस्त रहते थे, तुर्कों की विशाल सेनाओं और असीम साधनों का सामना करना कठिन कार्य था।

(८) **राजपूतों में विश्वासघात की प्रवृत्ति**—राजपूत राज्यों में कतिपय सामन्तों और सेनानायकों ने अपनी स्वार्थपरता तथा अर्थलोलुपता के कारण अपने ही

स्वामी के साथ विश्वासघात किया तथा अपने ही नरेश को परास्त करवा दिया। रणमल, मालदेव आदि इसके उदाहरण हैं। यदि देवगिरी दुर्ग में रक्षात्मक युद्ध के समय विश्वासघात से अन्न के स्थान पर नमक के बोरे रख दिये गये, तो रणथम्भोर दुर्ग में अन्न भण्डार में पशुओं की कच्ची खालें बिछा दी गयीं।

(९) **दुर्ग के घेरे के समय राजपूतों की समस्याएँ**—सुलतान या उसके सेनापति द्वारा दुर्गों के घेरे जाने पर राजपूत अपने इन दुर्गों में सुरक्षात्मक युद्ध के लिये चले जाते थे। इससे वे बाहर के प्रदेश से प्राप्त होने वाली सेना, धन, रसद आदि से वंचित हो जाते थे और घेरे के दीर्घकालीन चलने पर उन्हें दुर्ग में दुर्भिक्ष, महामारी तथा कई अन्य अभावों का निरन्तर सामना करना पड़ता था। इन सबका अन्त युद्ध करके ही करना पड़ता था, जिसमें पराजय ही हाथ लगती थी। इसके विपरीत घेरा डालनेवाली सुलतान की सेना को रसद, सैन्य सहायता और दुर्ग के पार्श्ववर्ती प्रदेश की उपज व भूमिकर प्राप्त करने का लाभ भी प्राप्त होता था। इन सबसे सरलता से लाभान्वित होकर दुर्ग में घिरी सेना को वे सुगमता से परास्त करते थे।

(१०) **सुलतान अलाउद्दीन की सैनिक प्रवृत्ति और कुशल नेतृत्व**—सुलतान अलाउद्दीन स्वयं एक महत्वाकांक्षी एवं साम्राज्यवादी सुलतान था जो अपनी अनवरत सफलताओं के कारण अदम्य उत्साह और साहस से ओतप्रोत था। विजय अभियान के लिये उसमें सदा नवीन स्फूर्ति थी। इसके अतिरिक्त उसके पास चार वीर कुशल सेनापतियों, उलूगखां, नुसरतखां, जफरखां, अलपखां की सेवाएँ उपलब्ध थीं। इसके अतिरिक्त उसकी दक्षिण भारत की विजय में मलिक काफूर ने अत्यधिक प्रशंसनीय साहसी कार्य किये। इन सबने अलाउद्दीन को उसकी दिग्विजय में और साम्राज्य विस्तार करने में अपूर्व और सक्रिय योग दिया। इसके विपरीत राजपूतों के पास इस स्तर के सैनिक गुणसंपन्न वीर सेनापति और सैनिक प्रवृत्ति के कुशल सेनानायक नहीं थे। इसलिये वे दीर्घकाल तक सुलतानी सेनाओं का डटकर युद्ध करने में असमर्थ रहे।

अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण भारत विजय (सन् १३०७ से १३१३)

अलाउद्दीन एक अत्यन्त महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी सुलतान था। वह सम्पूर्ण भारत पर अपना एक छत्र साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद दक्षिण भारत को पदाक्रांत करना उसके साम्राज्य-विस्तार के उद्देश्य की पूर्ति के लिये आवश्यक था। अतएव अब अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत के विजय की ओर अपना ध्यान और शक्ति केन्द्रीभूत की।

अलाउद्दीन के समय दक्षिण भारत की दशा—जिस समय अलाउद्दीन ने उत्तरी भारत की विजय सम्पन्न कर ली और जब उसने दक्षिण विजय की ओर मुँह मोड़ा, तब दक्षिण भारत की राजनैतिक दशा निम्नलिखित थी।

(१) **देवगिरी राज्य**—विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में आंध्रप्रदेश में आधुनिक हैदराबाद क्षेत्र में देवगिरी का प्रसिद्ध राज्य था। इसकी राजधानी देवगिरी नगर था। यहाँ यादववंशी रामचन्द्रदेव राजा शासन करता था। वह अपनी धन सम्पन्ना, समृद्धि व विस्तृत राज्य के लिये प्रसिद्ध था।

(२) **तेलंगाना राज्य**—देवगिरी राज्य के दक्षिण-पूर्व में समुद्र तट के क्षेत्र तक तेलंगाना का राज्य था। इसकी राजधानी वारंगल थी। यहाँ काकातीय वंश का नरेश प्रतापरुद्रदेव द्वितीय राज्य करता था। यह देवगिरी की यादव राजकन्या रुद्रम्बा की कन्या का पुत्र था। पूर्वी देशों से विदेशी व्यापार करने से तेलंगाना राज्य और राजधानी वारंगल समृद्ध और धन सम्पन्न थे। जनसाधारण भी सुखी सम्पन्न थे। राजकोष में भी स्वर्ण और बहुमूल्य रत्नों का एक विशाल भंडार संग्रहित था।

(३) **होयसल राज्य**—तेलंगाना राज्य के दक्षिण-पश्चिम में तथा देवगिरी राज्य के दक्षिण में एक अन्य प्रसिद्ध और शक्तिशाली होयसल राज्य था। इसकी राजधानी द्वारसमुद्र थी। होयसल नरेश महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी थे। अपने राज्य विस्तार के लिये वे अपने पड़ौसी देवगिरी के नरेशों तथा तेलंगाना के राजाओं से निरन्तर युद्ध करते रहते थे। होयसल राज्य भी अपने धन सम्पत्ति और राजवैभव के लिये प्रसिद्ध था। इस समय यहाँ वीर बल्लाल तृतीय राजा राज्य कर रहा था।

(४) **पांड्य राज्य**—होयसल राज्य से दक्षिण में पांड्य राज्य था। यह दक्षिण भारत का बहुत प्राचीन राज्य था और इसकी राजधानी मदुरा थी। पांड्य राज्य और मदुरा नगर भी अपने प्राचीन वभव और समृद्धि के हेतु प्रसिद्ध थे। इस समय यहां का राजा कुलशेखर था जो अपनी दक्षता, राजकीय प्रभाव और वीरता के कारण सुदूर दक्षिण में प्रसिद्ध था।

इन शक्तिशाली राज्यों के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे राज्य भी थे, जो इनके अधीन थे। इन राज्यों की राजनैतिक दशा भी दयनीय और जर्जरित थी। इनमे भी उत्तरी भारत के समान एकता, संगठन और सहयोग का अभाव था। उनमें पारस्परिक द्वेष, ईर्षा, वैमनस्य और फूट थी। वे सामूहिक रूप से शक्ति संगठन करने की अपेक्षा पारस्परिक संघर्ष और युद्ध में अपनी शक्ति नष्ट कर रहे थे। विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध अपने पड़ोसी राज्यों पर हुए आक्रमण के समय वे सजग नहीं होते थे और अपने पड़ोसी राज्यों को सहयोग व सहायता नहीं देते थे। इन राज्यों ने अपनी सीमा सुरक्षा की ओर भी किंचित ध्यान नहीं दिया। उत्तरी भारत से आने वाले आक्रमणकारियों का मार्ग अवरुद्ध करने के लिये इन राज्यों ने अपनी सीमाओं पर न दुर्ग पंक्तियां स्थापित कर रखी थीं और न प्रशिक्षित सेना ही। इसलिये सुलतान अलाउद्दीन इन पर सरलता से आक्रमण कर सका। दक्षिण भारत के ये राज्य समुद्र पार विदेशों से व्यापार करते रहते थे। इस विदेशी व्यापार और आन्तरिक शान्ति से इन राज्यों और उनके राजकोष में विपुल धन संग्रहित हो गया था। इस धन सम्पन्नता से आर्थिक दशा अच्छी थी और इससे ललित कलाओं और साहित्य को खूब प्रोत्साहन मिला। अनेक प्रसिद्ध ग्रंथ रचे गये और विभिन्न विशाल मंदिर और देवालय निर्मित हुए। जिनमें उच्चकोटि की शिल्पकला प्रदर्शित हुई। लोगों की धर्मनिष्ठा और दान-पुण्य के कारण तथा जनता की समृद्धि के कारण इन मंदिरों में भी प्रचुर सम्पत्ति एकत्र हो गयी। मार्कोपोलो, अब्दुल रजाक आदि विदेशी यात्रियों ने तथा मुस्लिम इतिहासकारों ने दक्षिण भारत की इस शान्ति, सुख-वैभव, धन-सम्पन्नता और स्वर्ण रत्नों का रोचक वर्णन किया है।

दक्षिण भारत विजय की कठिनाइयाँ—अब तक दिल्ली के मुस्लिम शासकों का ध्यान केवल उत्तरी भारत या "हिन्दुस्तान" तक ही सीमित रहा था। दक्षिण भारत की विजय का कार्य वे दुष्कर समझते थे। खिलजी राज्य स्थापित होने तक भारत का मुस्लिम राज्य अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में था और ऐसे समय दक्षिण भारत की विजय का प्रयास सुरक्षा की दृष्टि से आपत्ति रहित नहीं था। दक्षिण राज्यों की प्राकृतिक स्थिति विषम थी। वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति विजय-अभियान में बाधक थी। सघन बीहड़ बनों, उपत्यकाओं, ऊँची पर्वत श्रेणियों, दुर्गम मार्गों, आवागमन के साधनों का तथा जन पथों के अभाव से दक्षिण विजय करना कठिन कार्य था। उत्तरी भारत के सैनिक अभियानों का दक्षिण भारत के नरेश उग्रता से विरोध करते थे। सल्तनत की राजधानी दिल्ली से, दक्षिण के राज्य अत्यधिक दूर थे। इस दूरी ने दक्षिण की अस्थाई विजय को यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य बना दिया था। इस सुदूरता से दक्षिण के राज्यों पर दिल्ली से शान्तिपूर्वक शासन संचालित करना दुष्कर कार्य था। इन कारणों ने दक्षिण भारत की विजय को असाध्य नहीं तो दुस्साध्य अवश्य बना दिया था। परन्तु अलाउद्दीन प्रथम मुस्लिम शासक था, जिसने दक्षिण भारत को विजय करने और राजधानी दिल्ली से उसे अपने अधिकार में रखने का प्रयास किया।

अलाउद्दीन के दक्षिण भारत के सैनिक अभियान और विजय के कारण—षड़यंत्रों और विद्रोहों के दमन से और मंगोलों के आक्रमणों से मुक्ति मिलने पर और लगभग समस्त उत्तरी भारत को विजय कर लेने के बाद सुलतान अलाउद्दीन ने अपनी विजय योजनाओं का पुनरारम्भ किया और दक्षिण विजय की ओर मुँह मोड़ा। इसके कारण निम्नलिखित हैं--

ये कारण दो प्रकार के हैं--सामान्य और विशिष्ट।

(१) सामान्य कारण

ये निम्नलिखित हैं—

(i) **साम्राज्य विस्तार**—अलाउद्दीन सम्पूर्ण भारत की विजय का मधुर स्वप्न देख रहा था। उत्तरी भारत की विजय ने उसका यह स्वप्न आधा साकार कर दिया था और दक्षिण विजय से इसका पूर्ण मूर्त रूप हो सकता था। सुलतान की साम्राज्य विस्तार की भावना उसके दक्षिण अभियान का प्रधान कारण है। वह समस्त भारत को अपने आधिपत्य और नियंत्रण में लाकर उस पर शासन करने की उच्च आकांक्षा रखता था।

(ii) **दक्षिण की अपार समृद्धि व धन सम्पत्ति की प्राप्ति**—उसका उत्तरी भारत का राज्य खूब विस्तृत हो गया था, सैनिक अभियानों और विजयों के कार्यों को सम्पन्न करने के लिये उसकी सेना भी वहुत ही विशाल हो गयी थी और उसे बनाये रखना था। उसके विस्तीर्ण राज्य का शासन भी अधिकाधिक व्यय शील हो गया था। इन सब के लिये उसे अपार धन सम्पत्ति की शीघ्र ही आवश्यकता थी और उसकी इस आवश्यकता की पूर्ति दक्षिण भारत के राज्यों के कोषों के संचित धन से हो सकती थी। देवगिरी के सफल सैनिक अभियान द्वारा अलाउद्दीन दक्षिण भारत की विपुल

धन सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य से भली-भांति परिचित हो चुका था। देवगिरी अभियान के समय उसको यह अनुभव हो गया था कि दक्षिण के राज्यों में उससे कहीं अधिक धन सम्पत्ति है, जितना कि उसने समझा था। जिस परिमाण में और जितनी सुविधा के साथ दक्षिण से धन प्राप्त करना सम्भव था, उतना भारत में अन्यत्र प्राप्त करना दुर्लभ था, क्योंकि दक्षिण भारत के राजवंश और वहाँ के मंदिर जो धन संग्रहित कर रहे थे, उनमें केवल वृद्धि हो रही थी। विदेशी आक्रमणकारियों से अछूते रहने के कारण दक्षिण भारत के राजवंशों में एकत्रित धन में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि ही होती गई थी। इस सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये वह अधिक लालायित हो गया था। दक्षिण के राज्य उनकी समृद्धि और धन सम्पत्ति अलाउद्दीन के लिये एक दुधारु गाय के समान थे। अलाउद्दीन ने केवल स्वर्ण के लिये दक्षिण पर दृष्टि डाली। उसने दक्षिण को धमका कर स्वर्ण हरण की नीति अपनाई।

(iii) **सीमा-सुरक्षा का अभाव**—दक्षिण के राज्यों की सीमायें न तो सुरक्षित थीं और न निर्दिष्ट ही। दक्षिण के नरेश अपनी सीमा सुरक्षा के प्रति उदासीन थे। सीमा सुरक्षा के लिये उन्होंने सीमा पर न तो कोई दुर्ग निर्मित किये थे और न वहां विशिष्ट प्रशिक्षित सैनिक ही रखे थे। इसलिये उन पर उत्तरी भारत से आक्रमण कर विजय पाना सरल था।

(२) विशिष्ट कारण

निम्न लिखित विशिष्ट कारण थे।

(i) **सैन्य वृद्धि और उसका उपयोग**—मंगोलों का प्रतिरोध करने तथा उत्तरी भारत की विजय करने के लिये सुलतान अलाउद्दीन ने सन् १३०८ तक अपने सैनिकों की संख्या में वृद्धि करके उसे चार लाख पचहत्तर सहस्त्र कर ली थी। यदि इन सैनिकों को किसी अभियान या आक्रमण में न लगाया जाता या इन्हें कोई सामरिक कार्य नहीं दिया जाता तो वे स्वयं उपद्रव व संघर्ष करते। उत्तरी भारत की विजय संपन्न हो चुकी थी और मंगोल आक्रमण भी बन्द हो गये थे, विद्रोह और षड्यंत्रों का भी दमन कर दिया गया था, और राज्य में आंतरिक शांति भी लगभग स्थापित हो गयी थी। ऐसी दशा में विशाल सेना को कार्यरत रखने का एक मात्र यही उपाय था कि उसे दक्षिण-विजय के लिये प्रस्थान कराया जाय।

(ii) **विस्तीर्ण साम्राज्य का व्ययशील प्रशासन**—व्ययशील शासन यंत्र को समुचित रूप से संचालित करने के लिये,तथा उसके बढ़ते हुए राजकीय वैभव एवं शान-शौकत को बनाये रखने के लिये उसे प्रचुर धन की आवश्यकता थी जो उसे दक्षिण भारत के राज्यों में ही प्राप्त हो सकता था।

(iii) **बंगाल और वारंगल का असफल सैनिक अभियान**—सन् १३०२में अलाउद्दीन ने बंगाल और वारंगल को जीतने के लिये जो सेना भेजी थी, वह परास्त हुई और पूर्णतया असफल रही। इससे विजय के उन्माद में मस्त साम्राज्यवादी सुलतान की गौरव-गरिमा और प्रतिष्ठा में गहरा आघात लगा। उसे सेना और धन की भी अत्यधिक क्षति उठाना पड़ी। वारंगल और दक्षिण की शीघ्र विजय से वह इस अपयश की कालिमा को धो देना चाहता था।

(iv) **देवगिरी के राजा रामचन्द्रदेव द्वारा कर न देना**—देवगिरी के तात्कालिक राजा रामचन्द्र देव ने जिसने बहुत समय पूर्व ही अलाउद्दीन की अधीनता मान ली थी और उसे वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया था, अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रयास किया। उसने सुलतान को अपना वार्षिक कर भेजना बन्द कर दिया।

(v) **देवलदेवी की तथाकथित चाह**—गुजरात के बघेला राजा कर्ण ने सुलतान द्वारा परास्त होने पर पलायन करके देवगिरी नरेश रामचन्द्रदेव के यहाँ शरण ली थी और उसके वहाँ अधीनस्थ सामन्त के रूप में रहकर नन्दिनबार के दुर्ग का नव-निर्माण कर अपनी शक्ति और सत्ता को पुनः संगठित किया। अपनी पारिवारिक दुखद स्थिति देखकर राजा कर्ण ने अपनी पुत्री देवलदेवी का पाणिग्रहण संस्कार राजा रामचन्द्रदेव के पुत्र सिंघन (शंकरदेव) के साथ कर देने का निश्चित किया, यद्यपि मन ही मन में वह शंकरदेव के मराठा होने से राजपूत मराठा प्रणय सम्बन्ध होने के विषय में प्रसन्न नहीं था। इसी बीच ऐसा कहा जाता है कि कर्ण की भूतपूर्व पत्नी और देवलदेवी की मां कमलादेवी जो इस समय सुलतान के रनवास में थी, देवलदेवी से मिलने और उसे प्राप्त करने के लिये उत्सुक थी। इसके लिए देवगिरी पर आक्रमण करना सुलतान के लिए आवश्यक-सा होगया था।

दक्षिण अभियान और विजय की तैयारी—इन्हीं उपरोक्त कारणों से सुलतान अलाउद्दीन ने एक विशाल तीस सहस्त्र प्रशिक्षित सेना तैयार करके उसे गुजरात से नुसरतखाँ द्वारा लाये गये हजार दीनारी दास मलिक काफूर के सेनापतित्व में दक्षिण अभियान और विजय के लिये भेज दिया। मालवा और गुजरात होता हुआ, उन्हें रौंदता हुआ सन् १३०७ में काफूर देवगिरी राज्य की ओर बढ़ा। मालवा से ऐनुलमुमुलतानी और गुजरात से अलपखामी अपनी अपनी सेनाओं सहित सुलतान के आदेशानुसार काफूर की सहायता और सहयोग के लिए देवगिरी राज्य पहुंच गये।

(१) **देवगिरी पर द्वितीय आक्रमण (सन् १३०७-८)**—अलाउद्दीन ने देवगिरी पर सर्व प्रथम आक्रमण सुलतान बनने के पूर्व सन् १२९६ में किया था। अब उसने दूसरा आक्रमण किया।

(i) **आक्रमण के कारण**—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है देवगिरी के राजा रामचन्द्रदेव ने गत तीन वर्षों से सुलतान अलाउद्दीन को खिराज (कर) नहीं भेजा था। अमीर खुसरो ने लिखा है कि, "राय रामदेव एक जंगली घोड़े के समान था जो एक बार वश में किया जा चुका था और दयापूर्वक उसका राज्य उसी को प्रदान कर दिया गया था, किन्तु वह एक मोटे ताजे घोड़े की भांति लगाम को भूल गया था"। अतः मलिक काफूर को तीस सहस्त्र सैनिकों सहित, उसकी विद्रोही प्रवृत्ति के दमनार्थ तथा वार्षिक कर वसूल करने के लिए भेजा गया। मलिक काफूर गुजरात होता हुआ देवगिरी की ओर बढ़ा।

(ii) **गुजरात नरेश कर्ण की पराजय व देवलदेवी की प्राप्ति**—अलपखाँ ने जो काफूर की सहायता के लिए गुजरात से भेजा गया था, गुजरात के राजा कर्ण पर आक्रमण कर दिया और दोनों के बीच युद्ध हुआ, इसमें कर्ण परास्त हुआ। इसी बीच राजा कर्ण ने अपनी पुत्री देवलदेवी को मुस्लिम आक्रमणकारियों के हाथ से बचाने

के लिये उसे देवगिरी नरेश रामचन्द्र के सुपुत्र शंकरदेव से विवाह करने के उद्देश्य से देवगिरी भेजा। जब इसकी सूचना अलपखां को प्राप्त हुई तो उसने दो सौ मुस्लिम सैनिकों को देवलदेवी की खोज करने और उसे पकड़ने के लिये भेजा। इन्होंने देवगिरी से लगभग २२ किलोमीटर दूर एलोरा की गुफाओं में छिपी देवलदेवी को पकड़ लिया और उसे बन्दी बनाकर बलपूर्वक दिल्ली भेज दिया। वहां अलाउद्दीन के पुत्र खिज्रखां के साथ उसका विवाह सम्पन्न कर दिया गया। इस युद्ध के बाद अलपखां ने गुजरात के शेप भाग को रोंद डाला और वह काफूर की सहायता के लिये आगे बढ़ा।

(iii) **राजा रामचन्द्र देव की पराजय और संधि**—इसी बीच मलिक काफूर ने देवगिरी राज्य के एलिचपुर पर अपना अधिकार कर लिया और देवगिरी की ओर बढ़ा। २४ मार्च १३०७ को रामचन्द्र नरेश और उसकी सेना में युद्ध हुआ, पर वह परास्त हुआ और उसकी लगभग आधी सेना पलायन कर गयी। विवश होकर रामचन्द्र ने संधि वार्ता प्रारम्भ की। इस पर अलाउद्दीन ने यह संदेश भेजा कि राजा रामचन्द्र और उसके परिवार की विशेष व्यवस्था की जाय और रामचन्द्र को दिल्ली भेज दिया जाय। फलतः राजा रामचन्द्र को दिल्ली भेज दिया गया। उसने सुलतान को आत्म समर्पण कर दिया और दिल्ली दरबार में उपस्थित होकर सुलतान को भेंट उपहार समर्पित किया। अलाउद्दीन ने उसका बड़ी धूम-धाम से शाही स्वागत किया और उसे क्षमा कर एक लाख स्वर्ण टंक भेंटकर "राय-रायान" की पदवी प्रदान की। फरिश्ता इतिहासकार ने यह भी लिखा है कि सुलतान ने रामचन्द्र को नवसारी जिला व्यक्तिगत जागीर के रूप में प्रदान किया तथा उसे अपने अधीन देवगिरी का शासक नियुक्त कर दिया तथा अपनी राजसभा में लगभग छः मास तक बड़े आदर सम्मान से रखा। इस प्रकार सुलतान ने राजा रामचन्द्र के साथ उदारता और मित्रता का हाथ बढ़ाकर उसे अपने पक्ष में करने का प्रयास किया। इस घटना पर बर्नी ने लिखा है कि "इस दिनांक से रामचन्द्रदेव आजीवन सुलतान अलाउद्दीन का आज्ञाकारी बना रहा और उसका कभी विरोध नहीं किया। वह सदा उसकी आज्ञानुसार आचरण करता रहा तथा वह सुलतान को निरन्तर उपहार तथा कर भेजता रहा।"

(iv) **अलाउद्दीन की उदारता की समीक्षा**—(अ) रामचन्द्र के प्रति अलाउद्दीन की इस महान उदारता और मैत्री सम्बन्ध पर इतिहासकारों ने टिप्पणी की। उनका कथन है कि इस उदारता और शाही सम्मान के पीछे अलाउद्दीन की स्वार्थपरता, और कूटनीति थी। दक्षिण अभियान और उसमें विजय प्राप्त करने के लिये उसे दक्षिण भारत के एक ऐसे नरेश की आवश्यकता थी, जो अलाउद्दीन को दक्षिण भारत के राज्यों की प्राकृतिक दशाएँ और राजनैतिक व आर्थिक दुर्बलताओं से अवगत करा सके तथा अलाउद्दीन को उसके दक्षिण अभियान में पूर्ण सहयोग दे सके। ये सब सुविधाएँ रामचन्द्रदेव से प्राप्त हो सकती थीं। इस प्रकार सुलतान की उदारता राजनैतिक कारणों से ओतप्रोत थी।

(ब) कुछ विद्वानों का मत है कि अलाउद्दीन ने यह अनुभव कर लिया था कि देवगिरी से प्राप्त अपार धन के कारण ही अलाउद्दीन दिल्ली का राजसिंहासन प्राप्त कर सका और सफलता से अन्य राज्यों को परास्त कर विजय प्राप्त कर सका। इस-

लिए स्वाभाविक रूप से ही वह रामचन्द्र के प्रति विशेष सद्भावना रखता था और अब उससे मैत्री संबंध का इच्छुक था।

(स) इसामी, वन्साफ और हाजी उदबीर नामक मुस्लिम विद्वानों ने लिखा है कि सुलतान अलाउद्दीन ने रामचन्द्रदेव की पुत्री से विवाह कर लिया था और उसी के पुत्र शहाबुद्दीन उमर को अपना उत्तराधिकारी भी घोषित कर दिया था। संभव है अपने ससुर रामचन्द्रदेव को राजोचित आदर सम्मान देने में अलाउद्दीन स्वाभाविक रूप से उदार हो गया हो और उसने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये हों।

(द) अलाउद्दीन जैसे क्रूर, कूटनीतिज्ञ से अपने शत्रु रामचन्द्र के प्रति इतनी उदारता, विशाल हृदयता और मैत्री का व्यवहार करना निस्संदेह आश्चर्यजनक है। धन और वैवाहिक संबंधों के कारण उस जैसा सुलतान कृतज्ञता प्रगट करेगा, विश्वसनीयसा नहीं प्रतीत होता। यह बहुत संभव है कि राजनीतिक सुविधाओं और सैनिक लाभ ही प्राप्त करने के लिये सुलतान ने मैत्री संबंध कर लिये।

(२) **देवगिरी पर तृतीय आक्रमण (सन् १३१२)**—चार वर्ष बाद देवगिरी नरेश रामचन्द्र की मृत्यु सन् १३१२ में हो जाने के कारण उसका पुत्र सिंघनदेव या शंकरदेव राजसिंहासन पर बैठा। इसके समय में एक ही वर्ष की अवधि में सुलतान ने अपनी सेना देवगिरी पर आक्रमण करने के लिये भेजी। इसके कारण थे—

(i) उसकी मंगेतर देवलदेवी के अपहरण से और खिज्रखां से उसका विवाह हो जाने से शंकरदेव अलाउद्दीन से व्यक्तिगत खीज और ईर्षा-द्वेष रखता था।

(ii) शंकरदेव बड़ा स्वाभिमानी नरेश था और दक्षिण भारत में यवनों के प्रसार के विरुद्ध था। इसलिये उसने दक्षिण भारत में होयसलों के विरुद्ध मलिक काफूर को उसके रण अभियान में पूर्ण सैनिक और आर्थिक सहायता नहीं दी थी।

(iii) शंकरदेव सहायता करने से विमुख ही नहीं हुआ, अपितु दक्षिण में द्वारसमुद्र, मदुरा आदि के अभियान में मलिक काफूर ने वहां जो सुरक्षित सेना रखी थी, उसे शंकरदेव ने परास्त कर खदेड़ दिया।

(iv) शंकरदेव सुलतान अलाउद्दीन के अधीन नरेश बनकर रहने का कट्टर विरोधी था। इसलिये उसने सुलतान को नियमित वार्षिक कर देना बंद कर दिया। उसने सुलतान से सब सम्बन्ध तोड़ दिये और स्वतन्त्रता पूर्वक राज्य करने लगा।

इन सब बातों से अलाउद्दीन क्रुद्ध हो उठा और उसने अपने सेनानायक मलिक काफूर को शंकरदेव के दमनार्थ सन् १३१२ में विशेष रूप से देवगिरी पर आक्रमण करने के लिये भेजा। मलिक काफूर ने समस्त महाराष्ट्र प्रदेश को लूट कर रोंद डाला। शंकरदेव ने युद्ध में उससे सामना किया, और वह युद्ध करते-करते वीर गति को प्राप्त हुआ। इसामी का यह कथन है कि शंकरदेव ने बिना युद्ध किये देवगिरी खाली कर दिया भ्रममूलक है। शंकरदेव को परास्त करने के बाद काफूर ने गुलबर्गा, रायचूर और मुदगल के महत्वपूर्ण दुर्गों पर अधिकार करके कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदी के मध्य के प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। बाद में उसे सुलतान के आदेश पर रामचन्द्रदेव के जामाता हरपालदेव को देवगिरी का शासक नियुक्त कर दिल्ली लौट जाना पड़ा।

(३) वारंगल विजय (सन् १३०९)—सन् १३०२ में जूनाखां की अध्यक्षता में सुलतान अलाउद्दीन ने उड़ीसा के मार्ग से एक सेना वारंगल विजय के लिये भेजी थी। पर वारंगलनरेश ने उसे परास्त कर दिया था। इसलिये अब अलाउद्दीन ने पूरी तैयारी के साथ मालिक काफूर को सन् १३०९ में देवगिरी के द्वितीय आक्रमण के बाद ही वारंगल विजय के लिये भेजा। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(i) सुलतान वारंगल राज्य की अतुल धन-संपत्ति अपनी सेना और प्रशासन के व्यय वहन करने के लिये चाहता था। वह वारंगल राज्य को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित नहीं करना चाहता था। इच्छित धन की प्राप्ति के लिये वह वारंगल राज्य को कामधेनु बनाना चाहता था।

(ii) वह वारंगल नरेश प्रताप रुद्रदेव द्वितीय की शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट करना नहीं चाहता था, अपितु उसे परास्त कर, उसका विपुल धन प्राप्त कर दक्षिण के अन्य राज्यों के विरुद्ध वह प्रताप रुद्रदेव की सहायता चाहता था।

(iii) सुलतान ने मलिक काफूर को वारंगल अभियान के पूर्व कुछ महत्वपूर्ण आदेश दिये, जिससे उसकी दक्षिण अभियान की नीति भी स्पष्ट होती है। मलिक काफूर उसके पहिले अभियान में इतना अधिक निर्भय और आततायी हो गया था कि स्वयं अलाउद्दीन भी उसकी क्रूरता सुनकर सहम गया था। इसलिये सुलतान ने उसे अधिकारियों और सैनिकों के प्रति नम्र होने के लिये कहा और राजा रुद्रप्रताप देव के लिये कहा कि यदि वह अपना राजकोष, जवाहरात, हाथी-घोड़े समर्पित करने और तदनन्तर वार्षिक कर देने को तत्पर हो जाय तो वह (काफूर) अधिक के लिये बल नहीं दे, जिससे कि राय निराश होकर प्रतिरोध करने के लिये बाध्य न हो जाये। यदि वह वारंगल का समस्त कोष और हाथी प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो वह राजा पर उससे (मलिक काफूर से) भेंट हेतु आने के लिये दबाव न डाले और काफूर अपने नाम तथा यश के लिये राय को आदर और सम्मान प्रदान किये जाने का प्रलोभन देकर उसे दिल्ली लाने पर भी अधिक बल न दें। सारांश में काफूर राय को अधिक तंग न करे।

रामचन्द्रदेव की सहायता—फलतः ३१ अक्टोबर सन् १३०९ को मलिक काफूर ने वारंगल विजय के लिये प्रस्थान किया। अनेक वेगवती नदियों और पहाड़ी क्षेत्रों को पार करके काफूर देवगिरी राज्य की सीमा पर पहुँच गया। सुलतान के मित्र रामचन्द्रदेव ने मलिक काफूर की खूब सहायता की। उसने कतिपय चुने हुए सैनिक काफूर के साथ कर दिये जो स्थानीय मार्गों से भलीभांति परिचित थे और वारंगल की राजनीतिक और भौगोलिक परिस्थितियों का पूरा ज्ञान रखते थे। रामचन्द्रदेव ने शाही सैनिकों की सुख सुविधा का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा। सेना के गुजरने वाले मार्ग पर रामचन्द्र ने बाजार स्थापित करवा दिये। जिससे सैनिकगण दिल्ली के सुलतान द्वारा निर्धारित दरों पर जीवन की आवश्यक वस्तुओं को क्रय कर सकें। उसने मराठे सैनिकों की कुछ टुकड़ियाँ भी शाही सेना के साथ करदीं जो आगे बढ़ती हुई सेनाओं की खाद्य सामग्री और जीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति की समुचित व्यवस्था करती थी।

सबर या सिरपुर पर विजय—वारंगल जाते समय काफूर ने मार्ग के नगरों व गाँवों को लूटना और विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही वह तेलंगाना राज्य के उत्तर में स्थित साबर या सिरपुर दुर्ग पहुँचा और उसे घेर लिया। भयंकर युद्ध हुआ। परन्तु जब प्रतिरोध व विजय की आशा नहीं रही तब जौहर किया गया और स्त्रियों व बच्चों को अग्नि ज्वालाओं को समर्पित कर अन्य वीर लोग आत्म समर्पण करने की अपेक्षा लड़ते-लड़ते मारे गये। किले का अधिपति भी रणक्षेत्र में वीर गति को प्राप्त हुआ। किले पर विजय करने के पश्चात् काफूर जनवरी सन् १३१० में वारंगल की सीमा में प्रवेश कर गया।

वारंगल दुर्ग का घेरा व युद्ध—मलिक काफूर द्वारा मार्ग में की गई लूट-पाट से आतंकित होकर, उन स्थानों के रायों ने अपने दुर्गों को छोड़कर वारंगल के सुदृढ़ दुर्ग में आश्रय प्राप्त किया। मलिक काफूर के आक्रमण को देख प्रताप रुद्रदेव ने वारंगल दुर्ग में सुरक्षात्मक युद्ध की समस्त तैयारियां करली। वारंगल का दुर्ग दक्षिण के दुर्गों में प्रचीनतम और अत्यधिक सुदृढ़ था। अमीर खुसरो ने इस किले की सुदृढ़ता के विषय में लिखा है कि दुर्ग की मोटी दीवारें मिट्टी की थीं, किन्तु वे बड़ी मजबूत थीं। उनमें लोहे का भाला तक नहीं घुस सकता था। यदि मगरिवी पत्थर या गोले फेंके जाते तो वे बालकों की गेंद के समान लौटकर वापिस आ जाते थे। प्रताप रुद्रदेव ने दुर्ग में से सुरक्षात्मक युद्ध करने के साथ छापामार युद्ध भी अपनाया। उसके छापा-मार सैनिक काफूर की रसद सामग्री को नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे और शाही हरकारों को रोकते और लूट लेते थे। प्रताप रुद्रदेव के एक अधिकारी विनायक देव ने एक रात्रि को पीछे से शाही सेना पर तूफानी आक्रमण कर दिया; शाही भंडार लूट लिया और सैनिक शिविर में आतंक उत्पन्न कर दिया। दुर्ग में से नीचे घेरा डालने वाली सुलतानी सेना पर ईंटें, बड़े पत्थर और वृक्ष फेंके जाते थे। अनवरत युद्ध चलता रहा। सुलतानी सेना के अधिक सफलता प्राप्त करने से और अपने विजय की कोई आशा न रहने पर प्रताप रुद्रदेव ने अपनी प्रजा व राज्य को यवनों की लूट से बचाने के लिए संधि-वार्ता प्रारम्भ की। उसने सुलतान को वार्षिक कर देना स्वीकार किया और आत्म समर्पण करने व अधीनता मानने के प्रतीक स्वरूप उसने स्वर्ण श्रृङ्खला युक्त अपनी एक स्वर्ण प्रतिमा काफूर के पास भेज दी। परन्तु काफूर ने यह शर्त रखी कि यदि रुद्रप्रताप देव समस्त राजकोष उसे देदे और आगे वार्षिक कर भी दे, तो वह हिन्दुओं का सामूहिक विध्वंस नहीं करेगा। तब विवश हो ऐसी संधि राजा ने स्वीकार कर ली।

संधि—इस संधि के अनुसार राजा प्रताप रुद्रदेव ने सौ हाथी, सात सहस्त्र अश्व, तथा अनेक बहुमूल्य रत्न एवं स्वर्ण-चाँदी दिये तथा आगामी वर्षों में उतना ही धन कर के रूप में देने का वचन दिया। राजा द्वारा समर्पित रत्नों में विश्वविख्यात कोहिनूर हीरा भी था जो खाफीखां तथा अन्य परवर्ती मुस्लिम इतिहासकारों के अनु-सार मलिक काफूर द्वारा दक्षिण से लाया गया था। बर्नी के अनुसार "राजकोष और धन संपत्ति के बोझ से कराहते हुए एक सहस्त्र ऊंटों को लेकर" मलिक काफूर देव-गिरी, धार और झायन के मार्ग से होते हुए मार्च सन् १३१० में दिल्ली लौट आया। इस

विजय और विपुल धन प्राप्ति के उपलक्ष में सुलतान ने मलिक काफ़र को यथोचित पुरस्कृत किया। यहां यह विशेष उल्लेखनीय है कि इस वारंगल अभियान में युद्ध निर्णयात्मक नहीं था। यह कहने के लिये प्रमाण हैं कि राजा रुद्रदेव के भीतरी दुर्ग ने समर्पण नहीं किया और न शाही सेना भीतरी दृढ़ दुर्ग में ही प्रवेश कर पायी और न स्वयं रुद्रप्रताप देव मलिक काफ़ूर के समक्ष आत्म समर्पण करने के लिए ही गया। केवल उसके राजदूत जो संधि की शर्तें निर्धारित करने के लिये गये थे, शाही चंदोवे के समक्ष झुके थे।

(४) **द्वार समुद्र के हौयसल राज्य की विजय (सन् १३१०)**—देवगिरी के दक्षिण में हौयसल राज्य था जिसकी राजधानी द्वार समुद्र थी। इस समय यहां राजा नरसिंह के पुत्र वीर बल्लाल तृतीय ने हौयसल राज्य और उसकी सीमा व शक्ति में खूब वृद्धि की थी। दक्षिण के विशाल क्षेत्र में यह राज्य व्याप्त था। इसमें कांगू प्रदेश, कोकण का भाग और समस्त वर्तमान मैसूर राज्य सम्मिलित था। वीर बल्लाल सुयोग्य और प्रजाहितैषी राजा था जिसने अपने समय के हिन्दू राजाओं की भांति धार्मिक दान देकर, अनेक अनुचित करों को तोड़ अपनी प्रजा की प्रगति की ओर अपनी शक्ति सुदृढ़ करली। हौयसल राज्य और देवगिरी राज्य दोनों में एकता, संगठन और मैत्री की अपेक्षा घोर प्रतिद्वंदिता और वैमनस्य था। इससे दोनों में संघर्ष होता था और उनकी शक्ति क्षीण हो रही थी। इस अवसर का लाभ अलाउद्दीन ने उठाया।

हौयसल पर आक्रमण के कारण—दक्षिण के सैनिक आक्रमणों की अपूर्व सफलता से और उनमें प्राप्त विपुल धन राशि से सुलतान अलाउद्दीन की विजय लालसा अधिकाधिक भड़क उठी और उसने अपने राज्य की सीमा दक्षिण में सुदूरतम प्रदेश तक स्थापित करने का निश्चय कर लिया। दक्षिण के हौयसल और पांड्य राज्य उसकी सीमा से परे थे। इसलिये अब उसने पहिले हौयसल राज्य पर आक्रमण करने के लिये सन् १३१० में मलिक काफ़ूर को दक्षिण भारत भेजा।

रामचन्द्र देव की सहायता– फरिश्ता व बरनी का यह कथन कि इस समय देवगिरी नरेश रामचन्द्रदेव का देहावसान हो चुका था और उसका पुत्र सींघनदेव देवगिरी का राजा हो गया था, असत्य है। द्वार समुद्र के अभियान के समय रामचन्द्र देव जीवित था। उसने और रुद्रप्रताप देव दोनों ने मलिक काफ़ूर की सहायता की। राजा रुद्रदेव ने सुलतान के लिये २३ हाथी काफ़ूर को भेंट किये जो बाद में दिल्ली भेज दिये गये। इसके बाद काफ़ूर देवगिरी में युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त करने के लिये कुछ दिनों तक ठहरा। राजा रामचन्द्र देव ने शाही सैनिकों के लिये आवश्यक सामान क्रय करने के बाजार की व्यवस्था की और शाही सेना को दक्षिण की ओर अग्रसर होने में सहायता करने के लिये परसुराम दलावे (पारसदेव देलवी) को नियुक्त किया। उसने सुलतान की सेना का पथ-प्रदर्शन किया।

बल्लाल तृतीय से युद्ध—हौयसल नरेश बल्लाल तृतीय पांड्य राज्य के गृह युद्ध में भाग लेने के लिये और वहां के वीर पांड्य की सहायता के लिये पांड्य राज्य में गया था। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर मलिक काफ़ूर ने हौयसल राज्य पर आक्रमण किया और २३ फरवरी १३११ को वह द्वार समुद्र तक पहुँच गया। बल्लाल

शीघ्र ही अपनी राजधानी लौट आया। वीर बल्लाल काफूर की विशाल सेना देखकर निराश हो गया और उसके मन में यह धारणा घर कर गई कि जिस सेना को रामचन्द्रदेव और रुद्रप्रताप देव परास्त नहीं कर सके, उसे वह कैसे पराजित कर सकेगा। यद्यपि उसने शाही सेना से छुट-पुट हमलों में युद्ध किया, पर अन्त में विवश हो आत्म-समर्पण कर दिया और संधि वार्ता प्रारम्भ की। मलिक काफूर ने बल्लाल को आदेश दिया कि या तो वह इस्लाम धर्म ग्रहण करले अथवा "जिम्मी" बनना स्वीकार करे अर्थात् अपरा धन राशि देकर प्राणदान और अपना राज्यदान प्राप्त करे। विवश होकर राजा ने संधि शर्तें स्वीकार करलीं।

संधि—बल्लाल ने मुलतान की अधीनता स्वीकार करली और वह उसे प्रतिवर्ष निर्धारित वार्षिक कर देगा। बल्लाल ने विशाल राजकोष जिसे तहखानों से निकालने में पूरा एक दिन व्यतीत हो गया था, और अनेक भव्य हाथी काफूर को भेंट दिये।

इसी समय विजय के उन्माद में काफूर ने द्वारसमुद्र के मंदिरों को लूटा और उन्हें विध्वंस किया गया। इसमें स्वर्ण का एक मंदिर भी था। मन्दिर की समस्त धन-संपत्ति छीन ली गयी और स्वर्ण की जड़ाऊ मूर्तियों के टुकड़े-टुकड़े करवा दिये गये। इस लूट और संधि में काफूर को ३६ हाथी तथा सोना-चाँदी और रत्नों व मणियों के असंख्य ढेर प्राप्त हुए।

(५) माबर या मदुरा विजय (सन् १३११)—सुदूर दक्षिण में मदुरा का पांड्य राज्य अति प्राचीन व प्रसिद्ध था।

(i) **गृह युद्ध** - यहाँ का राजा मारवर्मन कुल शेखर था उसके दो पुत्र थे—सुन्दर पांड्यम् और वीर पांड्यम्। राजा ने छोटे पुत्र वीर पांड्यम् का पक्ष लिया और उसे अपना उत्तराधिकारी नामजद कर दिया। सुन्दर पांड्यम् यह पक्षपात सहन न कर सका और क्रोधावेश में उसने अपने पिता की हत्या कर दी और मरडी (मदुरा) में वह राजसिंहासन पर बैठा गया। इस घृणित कार्य से और उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर दोनों पांड्य बन्धुओं में संघर्ष और गृहयुद्ध छिड़ गया। अपने चेचरे भाई की सहायता से वीर पांड्य ने सुन्दर पांड्य को परास्त कर दिया। सुन्दर पांड्य ने उत्तर की ओर भाग कर सुलतान अलाउद्दीन या मलिक काफूर से सैनिक सहायता की याचना की। इससे काफूर मदुरा पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित हुआ।

(ii) **मदुरा पर आक्रमण और वीर पांड्य की खोज और उसका पीछा**—काफूर ने सुन्दर पांड्य का पक्ष लेकर मदुरा पर आक्रमण कर दिया। उसने होयसल नरेश वीर बल्लाल को मदुरा का मार्ग दिखाने के लिये अपने साथ ले लिया। काफूर ने सुन्दर पांड्य के प्रतिद्वन्दी वीर पांड्य की खोज करने के लिये पर्वतों और सघन वनों में उसका खूब पीछा किया। मार्ग के गांवों, मन्दिरों और नगरों को खूब लूटा और विध्वंस कर दिया गया। वरमनपुरी (ब्रह्मपुरी या चिदम्बरम्) का स्वर्ण मन्दिर लूटा गया और भूमि सात कर दिया गया और उसकी मूर्ति (लिंग-ए-महादेव) तोड़-फोड़ दी गयी और लोगों का वध किया गया। खुसरो के शब्दों में यहाँ "ब्राह्मणों और मूर्ति पूजकों के सिर उनकी गर्दनों से उनके पैरों पर नाचते हुए जा गिरे। इस मन्दिर की

लूट में २५० हाथी व अपार धन मिला। इसके बाद कन्नापुर और श्रीरंगम् के श्रीरंगनाथ मन्दिर की भी यही दशा हुई। रंगनाथ की मूर्ति सहित मन्दिर का समस्त धन काफूर ने ले लिया। महिनों की भाग-दौड़ के पश्चात् भी जब मलिक काफूर वीर पांड्य को न पकड़ सका तब वह १६ अप्रेल सन् १३११ को मदुरा लौट आया। अपनी असफलता पर खीज कर काफूर ने मदुरा के मन्दिरों को लूट कर उनमें आग लगवा दी और नगर में खूब लूट-पाट मचाई।

ऐसा कहा जाता है कि काफूर लूटता और विध्वंस करता हुआ सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् तक जा पहुँचा था। उसने वहाँ का विशाल शिव मन्दिर लूट लिया और मूर्ति तोड़-फोड़ डाली। अपनी विजय के स्मारक स्वरूप काफूर ने वहाँ चूने तथा पत्थर की एक छोटी सी मस्जिद बनाई जिसमें अजान दी गयी और अलाउद्दीन के नाम का खुतबा पढ़ा गया। यह मस्जिद अभी भी सेतुबन्ध रामेश्वर में आज भी विद्यमान है।

(iii) **काफूर का अपार धन सहित दिल्ली लौटना**—जब महिनों की भाग-दौड़ के पश्चात् भी काफूर वीरपांड्य को न प्राप्त कर सका, तब वह विवश होकर सन् १३११ के अन्त में दिल्ली लौट गया। होयसल और पांड्य राज्य की लूट में प्राप्त ५१२ हाथी, (बर्नी के अनुसार ६१२) पांच सहस्त्र अश्व, (बर्नी के अनुसार बीस सहस्त्र घोड़े और ९६००० मन स्वर्ण) और विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य रत्न प्राप्त कर, मलिक काफूर दिल्ली लौट आया। अलाउद्दीन इससे अधिक प्रसन्न हुआ और उसने भव्य दरबार कर काफूर का अभिनन्दन किया। उसने अपने अमीरों को भी इस लूट के माल में से उनकी श्रेणी के अनुसार चार मन, दो मन, एक और आधा मन सोना भी दिया।

तत्कालीन इतिहासकारों का मत है कि इसके पूर्व दिल्ली में लूट की इतनी अधिक धन सम्पत्ति कोई भी नहीं लाया था। इसका मूल्य लगभग दस करोड़ रुपया था। बरनी के मतानुसार दक्षिण में प्राप्त सम्पत्ति इतनी थी कि मुसलमानों द्वारा दिल्ली अधिकृत किये जाने के पश्चात् कभी भी इतना कोष अधिकार में नहीं लिया गया था।

मलिक काफूर अपने साथ होयसल नरेश बल्लाल तृतीय को भी दिल्ली ले आया था। उसकी सहायता के फलस्वरूप दिल्ली में सुलतान ने उसके साथ सम्मान और उदारता का व्यवहार किया और उसे एक विशेष खिलअत, एक मुकुट और छत्र दिया तथा दस लाख टंक उपहार में दिये।

राजनैतिक दृष्टि से काफूर का पांड्य राज्य पर अभियान असफल ही रहा। क्योंकि निरन्तर प्रयासों के पश्चात् भी वह वीर पांड्य को खोजकर, उसे बन्दी बनाकर उसकी शक्ति को नष्ट नहीं कर सका। परन्तु आर्थिक दृष्टि से यह बहुत सफल रहा, क्योंकि इसमें अनिवर्चनीय धन प्राप्त हुआ।

काफूर का दक्षिण में अन्तिम आक्रमण—देवगिरी के राजा सिंघनदेव के विद्रोह को दमन करने तथा उसकी स्वतन्त्रता को कुचलने के लिये सन् १३१२ में अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को पुनः दक्षिण भेजा। काफूर द्वारा देवगिरी पर हुए इस अन्तिम और तृतीय आक्रमण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यादव राज्य को पुनः अपने अधिकार में करने के बाद काफूर ने तेलंगाना और होयसल राज्यों के आस-

पास के प्रदेशों पर आक्रमण कर उन्हें अपने प्रत्यक्ष शासन में ले लिया। अब उसने देवगिरी को अपने दक्षिण के प्रशासन का मुख्यालय बनाया और अब उसने देवगिरी में ही रहकर शासन करने का निर्णय कर लिया। उसकी इच्छा थी कि वह वहीं स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर ले। अलाउद्दीन भी इन बातों में चतुर था। उसने रोग-ग्रस्त होने पर काफूर को देवगिरी से सन् १३१४ में दिल्ली बुला लिया और इस प्रकार काफूर के मनसूबे पस्त हो गये।

अलाउद्दीन का साम्राज्य—दक्षिण विजयों से अलाउद्दीन का साम्राज्य बड़ा विस्तृत हो गया। अलाउद्दीन का साम्राज्य भारत का प्रथम विशाल मुस्लिम साम्राज्य था। अब तक किसी भी मुस्लिम शासक ने इतना विशाल साम्राज्य स्थापित नहीं किया था। उत्तर में अलाउद्दीन का साम्राज्य सिंधु नदी तक था। इसमें मुलतान और लाहोर क्षेत्र था। दक्षिण में मदुरा तक यह राज्य फैला हुआ था। पूर्व में यह साम्राज्य वाराणसी और अवध तक था और पश्चिम में यह गुजरात तक फैला हुआ था। सन् १३१२ के अन्तिम चरणों तक अलाउद्दीन का साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। परन्तु साम्राज्य के अन्तर्गत राजस्थान के विभिन्न राज्यों को वह पूर्णतः परास्त नहीं कर सका था, वे राज्य उसके करद राज्य थे। दक्षिण में भी पांड्य नरेशों ने सुलतान का अधिपत्य न तो कभी स्वीकार किया और न सुलतान को किसी प्रकार का कोई कर ही दिया।

अलाउद्दीन की दक्षिण विजय का स्वरूप और उसका महत्व

अपनी सैन्य वृद्धि और राज्य वृद्धि के कारण तथा प्रशासकीय समस्याओं के निराकरण के लिये अलाउद्दीन को उत्तरोत्तर अधिक धन की आवश्यकता हुई। उसे अपना अर्थाभाव अधिक खलने लगा। धन के इस घोर अभाव ने तथा उसके देवगिरी के प्रथम सुगम, सफल अभियान और विपुल धन सम्पत्ति की प्राप्ति से अलाउद्दीन को बार-बार रण अभियान की प्रेरणा मिलती रही। दक्षिण भारत के राज्यों की राजनैतिक दुर्बलताओं और सैनिक अभावों ने उसके आक्रमणों के अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया। फलतः उसने सन् १३०७ से १३१३ तक दक्षिण राज्यों पर आक्रमण कर उनसे युद्ध कर उन्हें परास्त कर दिया। इन राज्यों को अपने अधिपत्य में कर अपनी चिर पोषित साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा को संतुष्ट किया। सन् १२९४ में अलाउद्दीन का दक्षिण भारत का आक्रमक प्रथम मुस्लिम आक्रमण था जो भारत में मुस्लिम साम्राज्यवाद के उस नाटक की भूमिका थी, जो ओरंगजेब के शासन काल तक चलता रहा।

(i) **द.भा.विजय करनेवाला प्रथम सुलतान**—जैसा ऊपर उल्लेख है कि दिल्ली के मुस्लिम शासकों में वह सर्व प्रथम है जिसके आदेश से मध्ययुग में मुसलमानी सेना विंध्याचल पर्वत को पार कर दक्षिण के राज्यों को परास्त करने में सफल हुई। मुस्लिम युग में दक्षिण विजय का सर्वथा नवीन कार्य उसने सम्पादित किया। इससे उसकी राजनैतिक प्रतिष्ठा में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई। काफूर की विजयों ने सल्तनत काल के इतिहास में अलाउद्दीन का नाम अमर कर दिया।

(ii) **दक्षिण के करद राज्य**—अलाउद्दीन ने यह अनुभव कर लिया था कि दक्षिण की नवविजित जनता को एक ही शासन-सूत्र में बांधना दुष्कर कार्य है। उस युग में यातायात के सुगम-सुलभ साधनों का पूर्ण अभाव था, प्रायः जन मार्गों पर लूट खसोट होती रहती थी। दक्षिण पहुँचने के मार्ग भी भयानक सघन वनों, पर्वतीयश्रृङ्ख-लाओं, उपत्यकाओं, गहरी नदियों आदि से भरे पड़े हुए थे। इससे स्थिति और भी गम्भीर हो गयी थी। दिल्ली से अत्यधिक दूरी पर स्थित इन दक्षिणी राज्यों पर प्रशा-सन करना भी सम्भव नहीं था, और न ही दक्षिण राज्यों को दिल्ली साम्राज्य में विलीन करना, कठिनाइयों, समस्याओं व असुरक्षा को नियन्त्रण देना था। अपना प्रति-निधि शासक नियुक्तकरना भी सम्भव न था। इसलिये अलाउद्दीन दक्षिण राज्यों को अपने विशाल राज्य में सम्मिलित करने का कदापि इच्छुक नहीं था। इन राज्यों को उसने सीधे अपनी शासन व्यवस्था के अन्तर्गत लाने का विचार नहीं किया। वह दक्षिण के विजित राज्यों को पदाक्रांता करके उन्हें अपना करद राज्य बना कर ही संतुष्ट हो गया था। इन राज्यों के वार्षिक कर उसने निर्धारित कर दिये थे। दक्षिण के राज्यों द्वारा सुलतान की अधीनता स्वीकार कर लेने से और उसे नियमित निर्धा-रित कर देने से अलाउद्दीन संतुष्ट हो गया।

अलाउद्दीन की दक्षिण नीति यथार्थवाद पर आधारित थी। वह दक्षिण भारत के दूरस्थ राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर अशान्ति और विद्रोहों के नवीन केन्द्रों की स्थापना नहीं करना चाहता था। वह नवीन प्रदेशों को मिलाकर उपद्रवों और विद्रोहों को आमन्त्रित नहीं करना चाहता था।

(iii) **दक्षिण के राजाओं से उदारता का व्यवहार**–आशा के विपरीत अलाउ-द्दीन ने दक्षिण के पराजित राजाओं के साथ उदारता का व्यवहार किया। क्योंकि वह उन्हें सदा के लिये विध्वंस कर अपनी धन प्राप्ति के स्रोत का अन्त नहीं करना चाहता था। उसने देवगिरी के रामचन्द्र देव और द्वार समुद्र के वीर बल्लाल का दिल्ली दरबार में खूब अभिवादन व स्वागत किया। उन्हें अनेक बहुमूल्य उपहार व पुरस्कार दिये, पदवी दी और रामचन्द्र देव को तो सन् १३१२ में राजकुमार खिज्रखाँ के विवाह में आमन्त्रित किया था।

(iv) **धन प्राप्ति प्रमुख लक्ष्य**—जैसा ऊपर वर्णित है सुलतान के दक्षिण के निरन्तर रण अभियानों का उद्देश्य केवल दक्षिण की धन प्राप्ति थी। जिस उद्देश्य से अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत पर आक्रमण किया था, उसमें उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई। देवगिरी के प्रथम रण अभियान में उसे अपार धन प्राप्त हुआ था। स्वयं उसके लिये दिल्ली का राजसिंहासन दक्षिण के धन की देन थी। अलाउद्दीन दक्षिण भारत को दुधारी गाय समझता था। वह निरन्तर रण अभियानों और आतंक से दक्षिण के राजाओं से जीवन पर्यन्त धन उगाहते रहना चाहता था।

(v) **आर्थिक लाभ**—अलाउद्दीन को दक्षिण विजयों से अनिवर्चनीय आर्थिक लाभ हुआ। दिल्ली सल्तनत का राजकोष तो दक्षिण भारत की संपत्ति आजाने से उबल पड़ा था। यही नहीं सल्तनत के अमीरों, सरदारों और अधिकारियों के घर भी दक्षिण के हीरों, रत्नों और जवाहरातों से परिपूर्ण हो गये थे। शाही सैनिकों को

भी धन का अत्यधिक लाभ हुआ। लूट-पाट, विध्वंस और पदाक्रांत राजाओं से भेंट, उपहार व करों में सुलतान को इतना अधिक प्रचुर धन प्राप्त हुआ कि अलाउद्दीन के आतंक व प्रभाव में अत्यधिक अभिवृद्धि हो गयी। दक्षिण विजय से प्राप्त अतुल धन संपत्ति से वह अपने प्रति अमीरों तथा प्रजा की सहानुभूति प्राप्त कर सका। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरणीय है कि यह केवल दक्षिण की संपत्ति ही थी जिसने अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियों को अर्थाभाव से मुक्त रखा।

(vi) **राजनैतिक लाभ**–दक्षिण विजय से अलाउद्दीन को राजनैतिक लाभ भी अधिक हुआ। दक्षिण के अनेक इतिहास प्रसिद्ध गौरवशाली प्राचीन हिन्दू राज्यों को उसने पदाक्रांत कर दिया, कुछ को उसने नतमस्तक किया और कुछ को दिल्ली में अभिनन्दन कर उन्हें पुरस्कृत कर उन्हें अपना मित्र बना लिया। इससे वह दक्षिण के राजाओं और विद्रोहों और उपद्रवों की आशंका से निश्चित होगया और उत्तरी भारत में उसने दृढ़तापूर्वक अपनी राजसत्ता और सार्वभौमिकता को प्रतिष्ठित किया। दिल्ली के सुलतानों में जितने भी विजेता और साम्राज्यवादी थे, उनका प्रकाश अलाउद्दीन की विजयों के आगे क्षीण हो गया।

(vii) **दक्षिण विजय अल्पकालीन**––अलाउद्दीन ने दक्षिण विजयों के लिए लूट, विध्वंस और भीषण नर-संहार का मार्ग अपनाया। देवगिरी, वारंगल, और मानर के आक्रमणों के समय नर संहार, लूट-पाट खूब हुई। इससे जन साधारण में आतंक व्याप्त हो गया, तो दूसरी ओर अलाउद्दीन को इस नीति से सैनिक और आर्थिक लाभ भी हुए। लूट में विपुल संपत्ति अलाउद्दीन के हाथ लगी। अलाउद्दीन के आदेशानुसार काफूर ने दक्षिण के राजाओं को दुर्ग के घेरों में या खुले रणक्षेत्र में पूर्ण रूपेण परास्त कर उनकी शक्ति का उन्मूलन नहीं किया। अलाउद्दीन ने अपने निरन्तर अभियानों से दक्षिण नरेशों को आतंकित कर और उन्हें मोटे रूप से परास्त कर उनका राजकोष व जनता की धन संपत्ति छीन लेने तथा राजाओं को कर देने के लिये बाध्य करने की नीति थी। शाही सेना का यह केवल आतंक था जिसने दक्षिण भारत के राज्यों को दिल्ली सुलतान की सेवा में अतुल धन संपत्ति, हीरे-जवाहरात, हाथी-घोड़े एवं अमूल्य उपहार भेजने के लिये बाध्य किया था। ये राजा भी यह समझ गये थे कि आक्रमणकारी धन लोलुप है, इसलिये उन्होंने धन देकर अपने व अपने राज्य तथा प्रजा की रक्षा की।

इन्हीं कारणों से अलाउद्दीन की दक्षिण विजय अल्पकालीन रही। काफूर द्वारा देवगिरी राज्य पर तीसरा आक्रमण, बाद में तेलंगाना व होयसल राज्यों के अनेक नगरों पर धावे, और देवगिरी में शासन व सेना का काफूर द्वारा मुख्यालय बनाया जाना, यह स्पष्ट प्रगट करते हैं कि सुलतान की विजयी सेनाएँ दक्षिण के परास्त राज्यों से जैसे ही पीठ फेरती थी, वैसे ही दक्षिण के राजा सल्तनत के प्रति खुली शत्रुता का नहीं तो अवहेलना का रुख अपना लेते थे। वारंगल के प्रताप रुद्रदेव ने न तो काफूर से स्वयं भेंट की और न संधि की शर्तों को दीर्घकाल तक बनाये रखा। मलिक काफूर ने द्वार समुद्र से आगे आक्रमण किये, पर मदुरा के पाँड्य नरेशों ने कभी सुलतान का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया और न कोई वार्षिक कर ही दिया। जब काफूर अलाउद्दीन द्वारा देवगिरी से दिल्ली बुला लिया गया तो दक्षिण भारत सल्तनत से स्वतन्त्र हो

गया और बाद में मुबारक खिलजी और मुहम्मद तुगलक को पुनः दक्षिण विजय करना पड़ी।

(viii) **दक्षिण भारत में विनाश लीला**—अलाउद्दीन और काफूर के कारण अभियानों, लूट-खसोट, नर-संहार आदि से दक्षिण भारत के लोगों व राज्यों को अत्यधिक क्षति उठाना पड़ी। उनकी अतुलधन संपत्ति छीन ली गयी, अनेक नगरों व गांवों का नाश हुआ, इससे कृषि, उद्योग-धंधे और व्यापार अस्त-व्यस्त हो गये तथा आर्थिक विकास अवरुद्ध हो गया। निरन्तर आक्रमणों और युद्धों से दक्षिण राज्यों का प्रशासन भी शिथिल हो गया और आर्थिक कठिनाइयों व अर्थाभाव के कारण राजाओं को जनता पर अधिक कर लगाना पड़ा। जिससे जनता के कष्ट भी बढ़ गये। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन, काफूर उसके सेनानायकों तथा सैनिकों ने देवालयों और मंदिरों को लूटकर मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर दक्षिण भारत की कला का अत्यधिक नाश कर दिया। आक्रमणकारियों की इस विनाश लीला से दक्षिण की ललित कलाओ का जो विध्वंस हुआ, उसकी क्षति पूर्ति न हो सकी।

(ix) **दक्षिण में मुस्लिम संस्कृति**—अलाउद्दीन के निरन्तर रण अभियानों व विजयों से दक्षिण भारत में मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होने लगी, इस्लाम धर्म को अपनाया जाने लगा और मुस्लिम संस्कृति का प्रसार दक्षिण भारत में अधिकाधिक होने लगा।

सारांश

अलाउद्दीन का प्रारम्भिक जीवन और उसकी पदोन्नति—अलाउद्दीन का पिता शहाबुद्दीन खिलजी बलबन की सेना में एक सैनिक था। अलाउद्दीन का जन्म सन् १२६६-६७ में हुआ था। बचपन में पिता के देहावसान से तथा अपने चाचा सैनिक जलालुद्दीन द्वारा भरण-पोषण के कारण अलाउद्दीन की समुचित शिक्षा नहीं हो सकी। परन्तु उसने युद्ध कला और अस्त्र-शस्त्रों की सैनिक शिक्षा प्राप्त करली थी। उसकी प्रारम्भिक प्रतिभा से प्रभावित होकर उसके चाचा जलालुद्दीन ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। इस पत्नी के साथ अलाउद्दीन का दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं था क्योंकि वह महरु नामक एक सुन्दर युवती से प्रेम करता था। इससे अलाउद्दीन और उसकी पत्नी में पारस्परिक कटुता और वैमनस्य अत्यधिक बढ़ गया था। जब जलालुद्दीन ने दासवंश का अन्त किया और इसमें अलाउद्दीन ने सक्रिय सहायता दी तब, सुलतान जलालुद्दीन ने उसे अमीर-ए-तुजक के पद पर आसीन किया। इसके बाद मलिक छज्जू के विद्रोह का अन्त करने में सहायता व सहयोग देने पर अलाउद्दीन को कड़ा का हाकिम नियुक्त कर दिया गया। महत्वाकांक्षी होने से अलाउद्दीन ने अब दिल्ली का सुलतान होने का निश्चय किया। उसके साथी अमीरों और पदाधिकारियों ने तथा जलालुद्दीन की दब्बू नीति ने उसे ऐसा करने के लिये प्रोत्साहित किया। अब सुलतान बनने के लिये उसने अपने सैनिकों की संख्या में वृद्धि करने तथा अधिकाधिक धन प्राप्त करने के लिये भोपाल के समीप भेलसा पर आक्रमण किया। वहाँ उसने मंदिरों, भवनों, बाजारों और धनवानों को निर्ममता से लूटा,

विपुल धन-सम्पत्ति लेकर लौटा। अब सुलतान ने प्रसन्न होकर उसे पदोन्नत कर अरज-ए-मुमालिक नियुक्त किया और अवध का प्रदेश भी दे दिया।

देवगिरी पर आक्रमण—उस समय दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के उत्तरी भाग की ओर देवगिरी का सुसम्पन्न समृद्ध राज्य था। अलाउद्दीन दक्षिण विजय का महत्वाकांक्षी था और देवगिरी की धनसम्पन्नता व वैभव ने उसे देवगिरी पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया। उसने चन्देरी राज्य पर आक्रमण और विजय करने के बहाने प्रस्थान करके देवगिरी पर पूर्ण सैनिक तैयारियों के साथ आक्रमण कर दिया। मार्ग में उसने यह बात फैला दी कि वह दक्षिण भारत में राजमुन्दरी नरेश के यहाँ शासकीय सेवा में रहने के लिये जा रहा है। इससे मार्ग में किसी ने उसका विरोध नहीं किया। अलाउद्दीन एलिचपुर में विश्राम करता रहा और जब उसे यह सूचना मिली कि देवगिरी नरेश का पुत्र सिंघन विजय के लिये सेना सहित देवगिरी से प्रस्थान कर गया, तब उसने देवगिरी पर सहसा आक्रमण कर दिया। मार्ग में देवगिरी के वीर सामंत कान्हां ने युद्ध कर अलाउद्दीन को रोकने का प्रयास किया, पर वह परास्त कर दिया गया। अब अलाउद्दीन ने अपनी सेना को नई उमंग और अपूर्व वीरता तथा साहस से युद्ध करने की शपथ देकर देवगिरी नगर व दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। राजा रामचन्द्रराव ने रक्षात्मक युद्ध करने के लिये दुर्ग में आवश्यक सामग्री व सेना संग्रहित करके दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये। अलाउद्दीन ने देवगिरी नगर में प्रवेश करके वहाँ के अनेक ब्राह्मणों और धन सम्पन्न व्यक्तियों को बंदी बनाकर नगर को खूब लूट लिया। नगर की लूट और विनाश तथा घेरे की विषम स्थिति देखकर राजा रामचन्द्रराव ने अलाउद्दीन से संधि करली। इसके अनुसार रामचन्द्रराव अलाउद्दीन को निर्दिष्ट धनराशि देगा, अलाउद्दीन द्वारा लूट में प्राप्त धन का वह कोई विवरण नहीं मांगेगा। इसके बदले में अलाउद्दीन देवगिरी के बंदियों को मुक्त कर देगा। परन्तु इसी बीच राजकुमार सिंघन सेना सहित लौट आया और उसने यह अपमानजनक संधि अस्वीकृत करदी तथा अलाउद्दीन को संदेश भेजा कि वह लूट के धन को वापिस करके दिल्ली लौट जाय अन्यथा उसे युद्ध करना पड़ेगा। अतः अलाउद्दीन ने अपमानित होकर लौट जाने की अपेक्षा युद्ध करना उचित समझा। उसने अपने एक सेनानायक नसरतखाँ को नगर व दुर्ग का घेरा डाले रहने को छोड़ दिया और शेष सेना सहित उसने सिंघन से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। सिंघन की सेना ने अलाउद्दीन को परास्त कर दिया पर इसी बीच नसरतखाँ अलाउद्दीन की सहायता के लिये आ पहुँचा। अलाउद्दीन ने यह अफवाह फैला दी कि सुलतान जलालुद्दीन सेना लेकर उसकी सहायता के लिये आ रहा है। सिंघन की सेना ने नसरतखाँ की सेना को सुलतान की सेना समझ लिया और हतोत्साह होकर युद्ध में से बिखर गये। अलाउद्दीन की विजय हो गयी और रामचन्द्र तथा अलाउद्दीन के बीच संधि हो गयी। इसके अनुसार रामचन्द्र ने अलाउद्दीन को छः सौ मन सोना, सौ मन हीरे जवाहरात, एक सहस्त्र मन चाँदी, अनेक घोड़े और एलिचपुर प्रांत दिये। इस विपुल धन के साथ अलाउद्दीन कड़ा लौट आया।

राजा रामचन्द्र ने अलाउद्दीन को राज्य की सीमा में आगे बढ़ने से रोकने की कोई व्यवस्था नहीं की। उसका प्रशासन शिथिल और गुप्तचर व्यवस्था क्षीण और निकम्मी थी। अलाउद्दीन की सैनिक गतिविधियों की सूचना देकर व उसे रोक नहीं सके और न रामचन्द्र की दुर्ग में घिरी सेना और सिंघन की सेना अलाउद्दीन को परास्त करने के लिये परस्पर मिल सकी। गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को नहीं अपनाया गया। अधिकारियों ने विश्वासघात किया और देवगिरी दुर्ग में सुरक्षा के हेतु अन्न के बोरे रखवाने की अपेक्षा नमक के बोरे रखवा दिये। सिंघन ने अदूरदर्शिता से काम लिया और देवगिरी लौटते ही बराबर उसने अलाउद्दीन पर तीव्रगति से आक्रमण नहीं किया। अलाउद्दीन ने कूटनीति, अदम्य उत्साह और साहस से काम लिया। इन सब कारणों से उसे देवगिरी में विजय श्री प्राप्त हुई और रामचन्द्र को असफलता। इन आक्रमण और विजय से दक्षिण भारत की राजनैतिक दुर्बलता और खोखलापन प्रगट हो गया और अलाउद्दीन की दिग्विजय की महत्वाकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ी।

अलाउद्दीन द्वारा सुलतान जलालुद्दीन की हत्या—देवगिरी से प्राप्त प्रचुर धन से, दाम्पत्य जीवन के वैमनस्य व पारिवारिक मनोमालिन्य से, सुलतान जलालुद्दीन की उदारता, दुर्बलता और दब्बूपन की नीति से, और अपने समर्थकों के परामर्श से अलाउद्दीन ने छल कपट से सुलतान जलालुद्दीन को भेंट के बहाने आमंत्रित कर निर्ममता से उसकी हत्या करदी और स्वयं सुलतान बन गया। इससे दिल्ली की जनता अलाउद्दीन को निर्मम हत्यारा और अपहरणकर्ता मानने लगी और उससे असन्तुष्ट हो गयी। जलालुद्दीन की विधवा ने अपने छोटे पुत्र कद्रखाँ को रुकनुद्दीन इब्राहीम के नाम से सुलतान बना दिया और उसकी संरक्षिका बनकर राज्य करने लगी। सुलतान के ज्येष्ठ पुत्र अर्कलीखाँ ने मुलतान सिंध में अपने स्वतंत्र राज्य की घोषणा करदी।

अलाउद्दीन का दिल्ली प्रस्थान और जनता, सैनिकों व अधिकारियों का समर्थन—सुलतान की हत्या के बाद उसने अपने समर्थकों, सहयोगियों और पदाधिकारियों को सन्तुष्ट कर अपनी ओर मिलाये रखने के लिये उनमें उपाधियों, पदों और मुद्राओं का मुक्त हस्त से वितरण किया। योग्य व्यक्तियों को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया और कर्मचारियों व अधिकारियों की वेतन वृद्धि करदी। विरोधी अमीरों व उनके सैनिकों को धन देकर अपना समर्थक बना लिया। सैनिकों और प्रजा का विश्वास और समर्थन प्राप्त करने के लिये अलाउद्दीन ने दिल्ली जाते समय मार्ग में सोने-चांदी की वर्षा करदी, लोगों को अत्यधिक सोने के सितारे बाँटे गये। इससे जनता जलालुद्दीन की निर्मम हत्या को विस्मरण कर गयी और अलाउद्दीन के गुणगान करने लगी। दिल्ली जाते समय मार्ग में अलाउद्दीन ने अनेक सैनिकों की भरती कर अपनी सेना में खूब वृद्धि भी करली।

सुलतान रुकनुद्दीन से युद्ध और अलाउद्दीन की विजय तथा राज्यारोहण—जलालुद्दीन का वध करके थोड़े समय बाद ही अलाउद्दीन ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। वहाँ सुलतान रुकनुद्दीन इब्राहीम भी सेना लेकर युद्ध के लिये तैयार था। पर धन के लोभ में आकर उसकी सेना के वामपक्ष के अधिकारी व

सैनिक अलाउद्दीन से जा मिले। इससे युद्ध न हो सका और पराजित सा रुकनुद्दीन मुलतान की ओर अपने साथियों और समर्थकों के साथ भाग गया। इस जीत के बाद अलाउद्दीन ने सरलता से दिल्ली पर अधिकार कर लिया और बड़े शान-शौकत से वहाँ उसका राज्याभिषेक हुआ।

अलाउद्दीन के प्रारम्भिक कार्य या उसकी प्रारम्भिक समस्याएँ और उनका निराकरण—सुलतान बनने के बाद ही अलाउद्दीन को संकटों और समस्याओं का सामना करना पड़ा। जैसे ढीली-ढाली केन्द्रीय और प्रांतीय प्रशासकीय व्यवस्था, पंजाब में युद्धप्रिय खोखर जाति के उत्पात, सुलतान की अवज्ञा करने वाले कई हिन्दू राजा और मुसलमान सामन्त, बंगाल, बिहार और उड़ीसा राज्यों में दिल्ली सल्तनत से पृथक होने की प्रवृत्ति, राजस्थान व मालवा के स्वतंत्र राजपूत राज्यों की बढ़ती हुई शक्ति आदि। सुलतान की हत्या के कारण अलाउद्दीन निर्मम हत्यारा, नृशंस खूनी और अपहरणकर्ता माना जाने लगा था। उसकी अलोक प्रियता में वृद्धि हो गयी। इसे दूर करने के लिये अलाउद्दीन ने अपने विरोधियों, सामन्तों और जन-साधारण में अत्यधिक धन और पुरस्कार वितरण किये। फलतः लोग उसके भीषण अपराध को भूल गये। निरंकुश शासन और आतंक स्थापित करने के लिये अलाउद्दीन ने अनेकों को अपनी सेना में भरती कर उन्हें अग्रिम वेतन देकर अपनी सेना बहुत बढ़ा ली। असन्तुष्ट विपक्षी, विरोधी व विद्रोही सामन्तों को अपने पक्ष में करने के लिये जलालुद्दीन ने उनके नेताओं को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया, और उन्हें पदवियों से सम्मानित किया। शक्तिशाली सरदारों को उनके पदों पर ही रहने दिया। महत्व-शाली पदों पर उसने अपने स्वामिभक्त सेवकों को नियुक्त किया। इससे अमीर उसकी मुट्ठी में आ गये। राज्य-प्राप्ति में उसके शक्तिशाली प्रतिद्वंदी जलालुद्दीन के दो पुत्र सुलतान रुकनुद्दीन इब्राहीम और अर्कलीखाँ थे। ये अब मुलतान में थे। अला-उद्दीन ने सेना भेजकर उन्हें परास्त कर, बन्दी बनाकर कुछ समय बाद उनका वध करवा दिया और उनकी धन-सम्पत्ति छीन ली। अलाउद्दीन ने उन महत्वशाली और बलशाली जलाली अमीरों को जो अलाउद्दीन को हत्यारा समझते थे, या जिन्होंने उससे धन प्राप्त कर लिया था या जो उसके लिये घातक थे नष्ट कर दिया, उनकी सम्पत्ति छीन ली, कुछ को बन्दी बना लिया और कुछ का वध करवा दिया। सीमांत क्षेत्र में मंगोलों के आक्रमणों को रोकने और उस क्षेत्र की सुरक्षा करने के लिये उसने सैनिक शक्ति में वृद्धि की, दुर्गों की मरम्मत की तथा वहाँ वीर योग्य सेनापतियों व सैनिकों को रखा। विद्रोह का पूर्णतया दमन करने के लिये उसने अमीरों की सम्पत्ति का अपहरण किया, मद्यपान को निषिद्ध कर दिया, अमीरों के समारोहों, मिलन, विवाह आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिये और गुप्तचर विभाग का संगठन किया।

अलाउद्दीन की नीति और उसकी समीक्षा—सुलतान जलालुद्दीन की हत्या और सल्तनत का सरलता से प्राप्त हो जाने से, मंगोलों के विरुद्ध सफलताओं व विजय प्राप्त कर लेने से, विद्रोहियों और उत्तराधिकारी प्रतिद्वंदियों का सरलता से दमन व अन्त कर देने से, देवगिरी व गुजरात विजय से तथा कोष में अपार धन संग्रह से अलाउद्दीन की महत्वाकांक्षाएँ अधिकाधिक बढ़ गयी और वह अभियान से

अव्यवहारिक योजनाएँ बनाने लगा। वह सोचने लगा कि अपने पीछे भारत में किसी प्रांतीय शासक को नियुक्त करके सिकन्दर के समान विश्व विजय के लिये कूच करदे और सारे विश्व को जीत ले। परन्तु जब दिल्ली के कोतवाल काजी अलाउलमुल्क ने इस योजना की असम्भवता और अव्यवहारिकता को समझाया और भारत के विभिन्न राज्यों की विजय को ही पूर्ण करने के लिये परामर्श दिया, तब उसने सम्पूर्ण भारत को दिल्ली सल्तनत के अधीन करने का दृढ़ संकल्प किया। अलाउद्दीन एक नया धर्म प्रवर्तक बनकर अपने धर्म का दूरस्थ देशों तक प्रचार करना चाहता था। उसकी धारणा थी कि उसकी और उसके मित्रों और समर्थकों की तलवारें मनुष्यमात्र को एक नवीन धर्म स्वीकृत करा लेगी। इस पर भी काजी उलमुल्क ने अलाउद्दीन को समझाया कि धर्म प्रचार का कार्य पैगम्बरों का है, सुलतान का नहीं। तलवार के बल से और योजनाओं के सहारे धर्म स्थापना और धर्म प्रचार सम्भव नहीं है। बादशाहों का काम राज्य-व्यवस्था तथा शासन प्रबन्ध की देखरेख करना है। इस विवेक-पूर्ण परामर्श से अलाउद्दीन ने नवीन धर्म प्रवर्तन की योजना त्याग दी और धर्म को राजनीति से पूर्णतया पृथक रखने का संकल्प किया। इसका यह अर्थ है कि वह धर्मांध कट्टरपंथी उल्माओं को राजनीति और प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करने देना चाहता था। यद्यपि उसने उल्माओं के महत्व को कम कर दिया पर उन्हें न्याय विभाग में ऊँचे पदों पर ही रहने दिया। अकबर के समान उसने इस्लाम के सिद्धांतों को त्यागा नहीं और न उनका अन्य धर्मों से समन्वय किया। वह इस्लाम धर्म के सिद्धांतों का पूर्ण अनुयायी था। उसकी धर्म निरपेक्षता से तात्पर्य है कि वह सल्तनत के हित में या किसी समस्या के निराकरण में जो उसे उचित प्रतीत होती थी वैसे ही नियम या आदेश प्रसारित करता था, वे इस्लाम धर्म के अनुकूल है या प्रति-कूल इसकी वह चिन्ता नहीं करता था। सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा और मंगोल आक्रमणों को रोकने के लिये उसने सीमांत क्षेत्र में नवीन दुर्गों का निर्माण किया,प्राचीन दुर्गों की मरम्मत करवायी; वहाँ के नगरों की सेना में वृद्धि की और प्रशिक्षित वीर सैनिकों को इन किलों में रखा तथा युद्ध सामग्री के निर्माण के लिये अनेक कारखाने खोले गये। युद्ध में कई मंगोलों को परास्त कर मार डाला या बन्दी बना दिया। इससे मंगोल आतंकित हो गये थे। अलाउद्दीन ने अपना तथा अपने पुत्रों का विवाह राजपूत स्त्रियों से किया, राजपूत स्त्रियों को रनवास में ऊंचे पद दिये। कुछ राजपूत नरेशों और अधिकारियों को अपने पक्ष में करके उसने अन्य राजपूतों को कुचलने के प्रयास किये। पर इस राजपूत नीति का यह अर्थ नहीं कि अलाउद्दीन राजपूतों की श्रृद्धा, सहयोग और राजभक्ति चाहता था और वह उन्हें प्रसन्न और सन्तुष्ट करना चाहता था। सुलतान अलाउद्दीन ने हिन्दू विरोधी नीति अपनाई। उसने उनका दमन किया और आर्थिक दृष्टि से उन्हें अत्यधिक पंगु बना दिया। उन्हें पचास प्रतिशत भूमि कर, पशु-कर, गृह कर, जजिया आदि देना पड़ते थे। इससे हिन्दू उसके शत्रु हो गये और अला-उद्दीन की सत्ता का अन्त करने के प्रयत्न करने लगे। निरंकुश शासन और आंतरिक सुरक्षा के लिये तथा अपनी दिग्विजय के लिये अलाउद्दीन ने एक विशाल और स्थायी सेना रखी। इस सेना के व्यय को वहन करने के लिये उसने कई आर्थिक सुधार किये

जैसे, विभिन्न वस्तुओं का मूल्य निर्धारण किया, बाजार पर नियंत्रण किया, भूमि की नाप की और भूमि कर की पूर्ण वसूली की व्यवस्था की। यह जान लेने पर कि आर्थिक सम्पन्नता और धन ही विद्रोहों के मूल में होता है, अलाउद्दीन ने पदाधिकारियों को धन विहीन कर दिया, राजस्व विभाग से लाभान्वित होने वाले विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया, लोगों को इतना दरिद्र बना दिया था कि वे अलाउद्दीन के विरुद्ध मस्तक ही नहीं उठा सकते थे। अलाउद्दीन अनियंत्रित, निरंकुश और स्वेच्छाचारी सुलतान था। उसने तुर्कों और खिलजी अमीरों के साथ-साथ हिन्दुओं को भी शासकीय पद दिये। उसने योग्य व्यक्तियों को ही नियुक्त किया था। वह अपनी नीति और निर्णय के सामने सभी को झुकने के लिये बाध्य करता था। सभी वर्गों के लोगों को बाध्य किया जाता था कि वे अलाउद्दीन की इच्छा के अनुसार कार्य करें। उसने दृढ़ सैनिक संगठन के आधार पर स्वेच्छाचारितापूर्वक शासन किया। अलाउद्दीन के शासन का उद्देश्य जनसाधारण का कल्याण या लोकमंगल नहीं था। उसका शासन एक सैनिक निरंकुश शासन था और उसने अपनी सभी सफलताएँ सेना के बल पर प्राप्त की।

अलाउद्दीन की नीति की अस्थायी सफलता—अलाउद्दीन ने लगभग सम्पूर्ण भारत पर अपना साम्राज्य फैला दिया, राजकोष को धन, स्वर्ण और जवाहरातों से भर दिया, विपक्षियों और प्रतिद्वंदियों का अन्त कर दिया तथा शक्तिशाली सामन्तों को नतमस्तक कर महत्वहीन कर दिया। पर उसके शासनकाल के अन्तिम चरण में ही उसकी सफलता के साधन क्षीण हो गये, साम्राज्य विश्रृङ्खलित हो गया, राजपूतों ने विद्रोह कर दिये, प्रशासन दुर्बल और क्षीण हो गया, उसके विश्वासी मलिक काफूर ने षडयंत्र किये। इससे सुलतान अलाउद्दीन की सफलता अल्पकालीन रही। उसमें निर्ममता और अमानुषिकता अत्यधिक होने से वह स्थायी नहीं हो सकी।

अलाउद्दीन की विजय और साम्राज्य विस्तार—अलाउद्दीन ने विशाल सेना संगठित करके साम्राज्य विस्तार की योजना बनाई उसका उद्देश्य था कि किसी भी हिन्दू राज्य का अस्तित्व न रहे। उत्तरी भारत के राज्यों को विजय करके उसने उन्हें दिल्ली राज्य में मिला लिया, पर सुदूर दक्षिण भारत के विजित राज्यों को उसने आवागमन की और शासन करने की कठिनाई से वहीं के राजवंशों को शासन के अधिकार देकर लौटा दिये।

उत्तरी भारत की विजयें

उसकी उत्तरी भारत की विजयें निम्नलिखित हैं—

(१) **सिंघ व मुलतान विजय**—यहाँ जलालुद्दीन के दो पुत्र सुलतान रुकनुद्दीन व अर्कलीखाँ थे। अलाउद्दीन की सेना ने मुलतान नगर को घेर लिया और वहाँ के कोतवाल सैनिकों को धन का प्रलोभन देकर मुलतान दुर्ग व नगर में प्रवेश कर विजय प्राप्त करली। इसके बाद सिंघ पर भी अलाउद्दीन की सेना ने अधिकार कर लिया।

(२) गुजरात विजय (सन् १२९७)—गुजरात अपनी उर्वरा भूमि, विदेशी व्यापार, सदियों की निरन्तर आन्तरिक शान्ति के कारण समृद्ध धन सम्पन्न प्रदेश था और इससे लाभान्वित होकर अलाउद्दीन वहाँ के विदेशी व्यापार से अपने राज्य की समृद्धि करना चाहता था। गुजरात के चालुक्य व सोलंकी राजपूत राज्यों ने मुसलमानों के प्रसार को खूब रोका था। इन कारणों से अलाउद्दीन गुजरात को विजय करना चाहता था। उसके सेनापतियों ने गुजरात पर दो ओर से आक्रमण करके वहाँ के राजा कर्ण बघेला को परास्त कर दिया। कर्ण अपनी सुरक्षा के लिए देवगिरी चला गया। अब सुलतान की सेना ने गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा को सूरत तथा अन्य नगरों व गांवों को खूब लूटा और अनेक मंदिरों व पवित्र स्थानों को भी नष्ट कर दिया, सहस्रों का वध कर दिया गया और अनेकों को बन्दी बना लिया गया।

सोमनाथ मंदिर की लूट – गुजरात जीतने के बाद सन् १२९९ में सुलतान की सेना ने सौराष्ट्र को रौंद कर प्रसिद्ध मंदिर सोमनाथ को लूटा और वहाँ की शिव प्रतिमा को पैरों नीचे रौंदने के लिये डाल दी।

खम्भात पर आक्रमण—गुजरात विजय से प्रोत्साहित होकर अलाउद्दीन की सेना ने सौराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर व बन्दरगाह पर आक्रमण किया और उसे खूब लूटा। इस लूट में उसे अपार धन, सम्पत्ति, जवाहरात और काफूर नामक सुन्दर दास प्राप्त हुआ जो बाद में अपनी प्रतिभा व योग्यता से अलाउद्दीन का सेनापति बन गया।

जब सुलतान की सेना लूट का अपार धन लिये दिल्ली लौट रही थी, तब उलूगखाँ और नसरतखाँ सेनापतियों ने, सैनिकों द्वारा लूटे हुए माल को जिसे गुप्त रूप से छिपा दिया गया था उसे प्राप्त करने के लिये उन सैनिकों के साथ निर्ममता का व्यवहार किया गया। इस पर मंगोल या नवमुस्लिम सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और नसरतखाँ के भाई का वध कर दिया। फलतः इस वध का बदला लेने के लिये इन विद्रोही सैनिकों का वध किया गया, उनके बच्चों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उनकी स्त्रियों का वैश्या के समान उपयोग किया गया।

(३) जेसलमेर विजय (१२९९)—जेसलमेर के भाटी राजपूत नरेश दूदा ने अपनी शक्ति व राज्य का विस्तार कर अजमेर से सुलतानी सेना के अश्वों को ले गया। इससे उस पर आक्रमण कर, उसे परास्त कर दिया गया और जेसलमेर राज्य को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया गया।

(४) रणथम्भोर विजय (१३००–१)—रणथम्भोर पर अलाउद्दीन ने आक्रमण किया, क्योंकि—

(i) दास सुलतानों के शासन काल में रणथम्भोर उनके अधीन था और अब वहाँ के राजपूत राणा हम्मीरदेव ने अपने आपको स्वतन्त्र कर अपनी शक्ति में वृद्धि करली थी।

(ii) गुजरात को स्थायी रूप से अपने अधीन रखने के लिये राजस्थान और रणथम्भोर को जीतना आवश्यक था।

(iii) हम्मीर देव ने सुलतान के मंगोल विद्रोही नेताओं को शरण दी थी। सुलतान की सेना ने नसरतखाँ और उलूगखाँ के नेतृत्व में रणथम्भोर विजय के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में झायन के राजपूत नरेश की सेना जो साहनी के नेतृत्व में थी, इसे युद्ध करना पड़ा। इसमें विजय प्राप्त कर झायन के राजभवनों, दुर्ग, मंदिरों आदि को लूटकर उन्हें विध्वंस कर दिया गया। इसके बाद सल्तनत की सेना ने रणथम्भोर दुर्ग को घेर लिया। यह घेरा लगभग एक वर्ष तक रहा और हम्मीर देव अपने साथियों सहित किले के भीतर से युद्ध करते रहे। दुर्ग में रसद का अभाव हो रहा था और अलाउद्दीन दुर्ग पर विजय करने को उत्सुक था। अन्त में जब हम्मीर-देव की ओर से संधि-वार्ता प्रारम्भ हुई तब अलाउद्दीन ने उसके मंत्री रणमल और उसके सहयोगियों को धन व पद का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया तथा दुर्ग का रहस्य जान लिया। इस विश्वासघात से हम्मीर युद्ध करते हुए मारा गया और राजपूत स्त्रियों ने जौहर कर अपने धर्म की रक्षा की। १० जुलाय सन् १३०१ को अलाउद्दीन ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और इस दुर्ग तथा उसके समीपस्थ भू-प्रदेश को उलूगखाँ को जागीर में देकर अलाउद्दीन दिल्ली लौट आया।

(५) चित्तौड़ पर आक्रमण और मेवाड़ विजय (सन् १३०३)— राजस्थान में मेवाड़ अपने प्राचीन गौरव के लिये एक प्रमुख राज्य रहा है। इसकी राजधानी चित्तौड़ और वहाँ का प्रसिद्ध दुर्ग अभेद्य रहा है। अपने साम्राज्य विस्तार के लिये तथा चित्तौड़ की अनूपम सौन्दर्यवान रानी पद्मनी को प्राप्त करने के लिये अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और दुर्ग को घेर लिया। पांच माह तक घेरा रहने पर भी जब अलाउद्दीन को विजय की आशा नहीं रही तब उसने इस शर्त पर दिल्ली लौट जाना चाहा कि राणा रतनसिंह पद्मनी का प्रतिबिम्ब दर्पण में उसे बता दे। इस शर्त को पूरा करके जब राणा अलाउद्दीन को दुर्ग-द्वार तक छोड़ने आया, तब अलाउद्दीन ने उसे बन्दी बना लिया और उसकी मुक्ति के लिये यह शर्त रखी कि पद्मनी उसके रनवास में आ जाय। इस छल-कपट का बदला लेने और राजवंश की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये सशस्त्र वीर राजपूत योद्धा सात सौ पालकियों में गुप्त रूप से बैठे और इन पालकियों को पद्मनी की सहेलियों की पाल-कियाँ बताकर वे सुलतान के शिविर की ओर गयीं। वहाँ पद्मनी और राणा की भेंट के बहाने राणा को मुक्त कर चित्तौड़ दुर्ग में भेज दिया गया और अब राजपूत सुल-तान की सेना पर टूट पड़े। भयंकर युद्ध हुआ और राजपूत पराजित हुए। रानी पद्मनी ने अनेक स्त्रियों के साथ सामूहिक रूप से जौहर सम्पन्न किया। अलाउद्दीन ने नगर व दुर्ग में प्रवेश कर तीस सहस्र नागरिकों का वध कर दिया तथा राजमहलों व भवनों को विध्वंस कर दिया एवं अपने पुत्र खिज्रखाँ को चित्तौड़ का शासक नियुक्त किया। परन्तु थोड़े समय बाद ही राजपूतों के निरन्तर संघर्ष और दबाव के कारण खिज्र खाँ को चित्तौड़ छोड़ना पड़ा और अन्त में राजपूतों ने चित्तौड़ पर पुनः अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली।

पद्मनी के रूप, सौन्दर्य पर सुलतान अलाउद्दीन के मुग्ध होने और पद्मनी को प्राप्त करने के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण करने की घटना कतिपय आधुनिक इति-

हास कार कपोल कल्पित बतलाते हैं और इसका आधार मलिक मुहम्मद जायसी के महाकाव्य पद्मावत को बतलाते हैं। इसके पक्ष में कुछ तर्क दिये गये हैं। किन्तु अन्य इतिहासकारों ने अपने ठोस तर्क और तत्वों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि पद्मनी की गाथा सत्य है। यह हो सकता है कि इतिहास, कहानी, गाथा और किवदन्तियों के सम्मिश्रण से पद्मनी की कहानी और घटनाओं में अतिश्योक्ति आ गयी हो, परन्तु इसे कपोल कल्पित मनगढंत कहकर इतिहास के तथ्यों से विमुख नहीं हो सकते।

(६) मालवा और मांडू विजय—सन् १३०५ में सुलतान ने ऐनुल मुल्क के नेतृत्व में एक विशाल सेना मालवा विजय के लिये भेजी। मालवा के तत्कालीन राजपूत नरेश मल्हकदेव और उसके मन्त्री कोका प्रधान ने शाही सेना से युद्ध किया। कोका रणक्षेत्र में मारा गया और मल्हकदेव ने मांडू दुर्ग में शरण ली, पर वह वहाँ भी परास्त कर दिया गया और मालवा को दिल्ली राज्य में मिला लिया गया।

(७) उज्जैन, धार व चन्देरी विजय—मालवा विजय के बाद अलाउद्दीन ने धार और उज्जैन को अपने अधिकार में करके, चन्देरी पर आक्रमण कर उसे भी जीत लिया।

(८) मारवाड़ विजय—सन् १३०८ में अलाउद्दीन ने राजस्थान के स्वतंत्र राजपूत राज्य मारवाड़ विजय के लिये सेना भेजी। वहाँ के तत्कालीन राजपूत नरेश सीतलदेव को उसके दृढ़ अभेद्य दुर्ग सिवाना में घेर लिया। दीर्घकाल के घेरे के बाद तूफानी आक्रमण के कारण सुलतानी सेना ने दुर्ग में प्रवेश कर लिया, भयंकर युद्ध हुआ जिसमें सुरक्षा के हेतु भागते हुए सीतलदेव मारा गया। अब मारवाड़ पर दिल्ली का प्रशासक नियुक्त हो गया।

(९) जालौर विजय—चित्तौड़ और रणथम्भोर का पराभव देखकर जालौर के राजपूत नरेश कान्हरदेव ने सुलतान की अधीनता स्वीकार करली थी, पर धीरे-धीरे उसने अपनी स्वतन्त्रता बढ़ाली। उसके दमनार्थ अलाउद्दीन ने जालौर पर सन् १३११ में आक्रमण किया। सुलतान ने कान्हरदेव के भाई मालदेव को अपनी ओर मिला कर युद्ध में कान्हरदेव को परास्त कर दिया और जालौर को अपने अधिकार में कर लिया।

राजस्थान में अलाउद्दीन की विजय अल्पकालीन रही क्योंकि उसके द्वारा रणथम्भोर में नियुक्त प्रशासक उलूगखाँ को, चित्तौड़ में खिज्रखाँ को उनकी सेना सहित राजपूतों ने अल्पकाल में ही खदेड़ दिया था।

राजपूतों के विरुद्ध अलाउद्दीन की सफलता के कारण—राजपूतों के विरुद्ध अलाउद्दीन को सफलता प्राप्त होने के कारण थे—(१) राजपूतों में एकता, संगठन और सहयोग का अभाव तथा पारस्परिक फूट, वैमनस्य और संघर्ष की प्रचुरता। (२) तुर्कों व खिलजियों की शक्ति सम्पन्नता और श्रेष्ठ व्यवस्था, एक ही सेनानायक के नेतृत्व में रहने की प्रवृत्ति। (३) राजपूतों में जन-कल्याण की भावनाओं का अभाव, जिससे वे प्रजा की सहायता, सहयोग और सद्भावना नहीं प्राप्त कर सके। (४) राजपूतों में श्रेष्ठ धर्मानुकूल युद्ध नीति का बाहुल्य और छल-कपट

व कूटनीति का अभाव। (५) राजपूत नरेशों की विजित प्रदेशों के प्रति उदासीनता जिससे दृढ़ स्थायी शासन व्यवस्था न हो सकी और वे दीर्घकाल तक मुस्लिम आक्रमणकारियों का सामना करने में असमर्थ रहे। (६) राजपूतों की प्राचीन युद्ध-प्रणाली और पुरातन अस्त्र-शस्त्र, सैन्य व्यवस्था सामन्ती थी। सुलतानी सेना में नवीन सैनिक और परिवर्तित सामरिक प्रणाली व अस्त्र-शस्त्र थे। (७) राजपूतों के साधन सीमित थे, अन्न, धन व रसद का अभाव था। (८) राजपूत सामन्तों में विश्वासघात की प्रवृत्ति थी। (९) मुसलमानों द्वारा दुर्गों के घेरे जाने पर राजपूतों की अनेक समस्याएँ हो जाती थीं। (१०) अलाउद्दीन की सैनिक प्रवृत्ति, कुशल नेतृत्व और सफल सेनापतियों की सेवाएँ।

अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण-भारत विजय—उत्तरी भारत को विजय करने के बाद अपने साम्राज्य विस्तार के लिये अलाउद्दीन का ध्यान दक्षिण-भारत की ओर गया। इस समय दक्षिण-भारत में प्रमुख रूप से देवगिरी, वारंगल, द्वारसमुद्र और मदुरा के प्रसिद्ध राज्य थे। इनमें भी एकता, संगठन और सहयोग का अभाव था। पारस्परिक संघर्ष और युद्ध में वे अपनी शक्ति और धन नष्ट कर रहे थे। इन राज्यों ने उत्तरी भारत से आने वाले आक्रमणकारियों के विरुद्ध सीमा-रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की थी। विदेशी समुद्री व्यापार के कारण तथा आन्तरिक शांति से इन राज्यों में विपुल धन संग्रहित हो गया था।

अलाउद्दीन के दक्षिण भारत के आक्रमण और विजय के कारण—ये कारण सामान्य और विशिष्ट दो प्रकार के थे। सामान्यकारणों में प्रमुख थे—अलाउद्दीन की दक्षिण में साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा, अपनी विशाल सेना के व्यय के लिये तथा सैनिक अभियानों व विजयों के लिये दक्षिण-भारत के राजकोषों और मंदिरों में सदियों से संग्रहित विपुल धन प्राप्त करना था। विशिष्ट कारणों में निम्न लिखित मुख्य थे—(१) उसकी विशाल सेना को कार्यरत रखने के लिये दक्षिण विजय आवश्यक थी, (२) उसके विस्तीर्ण साम्राज्य के व्ययशील प्रशासन के खर्चे के भार को वहन करना, (३) बंगाल और वारंगल के असफल सैनिक अभियान से सुलतान की प्रतिष्ठा में जो आघात लगा था उसे विजय से दूर करना और धन की क्षति पूर्ति करना, (४) देवगिरी के राजा रामचन्द्रराव जिसने वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था और स्वतन्त्र होने का प्रयास किया था, उससे कर लेना और उसका दमन करना, (५) गुजरात के राजा कर्ण की रानी कमलादेवी जो अलाउद्दीन के रनवास में थी, अपनी पुत्री देवलदेवी से मिलने और उसे प्राप्त करने के लिये व्याकुल थी। राजा कर्ण ने देवलदेवी का विवाह देवगिरी के राजकुमार सिंघनदेव या शंकरदेव से करना चाहा था। इसे रोकने व देवलदेवी को प्राप्त करने के लिये तथा उपरोक्त कारणों से अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत पर आक्रमण किये। इसके लिये उसने मलिक काफूर के सेनापतित्व में तीस सहस्त्र सेना भेजी और उसकी सहायता के लिये गुजरात से अलपखाँ को और मालवा से ऐनुलमुल्क को उनकी सेना सहित भेजा।

(१) देवगिरी पर द्वितीय आक्रमण (सन् १३०७-०८)—देवगिरी के राजा रामचन्द्रदेव ने तीन वर्षों से सुलतान को वार्षिक कर नहीं दिया था और वह

पुनः स्वतन्त्र होने का प्रयास कर रहा था। इसलिये उस पर आक्रमण किया गया। इस समय गुजरात का राजा कर्ण देवगिरी के राजा रामचन्द्रराव की शरण में था। अलपखाँ ने कर्ण पर आक्रमण कर उसे युद्ध में परास्त कर दिया। कर्ण ने जब अपनी पुत्री देवलदेवी को सुरक्षा के लिये तथा शंकरदेव से विवाह करने के लिये इस पराजय के बाद देवगिरी भेजा, तो मार्ग में अलपखाँ ने उसे खोज निकाला और पकड़कर अलाउद्दीन के पास दिल्ली भेज दिया जहाँ अलाउद्दीन के पुत्र खिज्रखाँ के साथ उसका विवाह कर दिया गया। इसी बीच रामचन्द्रदेव और काफूर की सेना में युद्ध हुआ, रामचन्द्र परास्त हुआ। काफूर ने उसे दिल्ली भेज दिया जहाँ अलाउद्दीन ने बड़ी उदारता से उसका शाही स्वागत किया और उसे "राय रायन" की उपाधि दी और अपने अधीन देवगिरी का शासक नियुक्त किया। इस उदारता और कूटनीति के पीछे अलाउद्दीन की स्वार्थपरता थी। दक्षिण भारत के राज्यों को विजय करने के लिये, उसमें मार्ग प्रदर्शन और सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिये अलाउद्दीन ने दक्षिण के नरेश रामचन्द्रदेव को अपना मित्र बनाना श्रेयस्कर समझा।

(२) **देवगिरी पर तृतीय आक्रमण (सन् १३१२)**—राजा रामचन्द्रदेव की मृत्यु के बाद शंकरदेव देवगिरी का राजा बना। वह अपनी मंगेतर देवलदेवी के छिन जाने के कारण अलाउद्दीन से ईर्षा-द्वेष रखता था। उसने मलिक काफूर को दक्षिण के अन्य राज्यों को विजय करने के लिये सहायता नहीं दी थी। वह स्वाभिमानी था और अलाउद्दीन के अधीन नहीं रहना चाहता था। इसलिये उसने अलाउद्दीन को वार्षिक कर देना भी बंद कर दिया था। इन सब कारणों से क्रुद्ध होकर अलाउद्दीन ने काफूर को विशेष रूप से देवगिरी पर आक्रमण करने के लिये भेजा। काफूर और शंकरदेव की सेना में युद्ध हुआ। शंकरदेव परास्त हुआ और मारा गया। अब तुंगभद्रा और कृष्णा नदी के बीच के प्रदेश पर काफूर ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(३) **वारंगल विजय (सन् १३०९)**—इस समय तेलगांना या वारंगल राज्य में प्रताप रुद्रदेव राज्य कर रहा था। उसकी विपुल धन संपत्ति प्राप्त करने के लिये सुलतान ने मलिक काफूर को भेजा। देवगिरी के राजा रामचन्द्रदेव ने इस सेना की पूरी-पूरी सहायता की। उसके लिये खाद्य सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की विशेष व्यवस्था कर दी। मार्ग में काफूर अनेक गांवों, नगरों को लूटता हुआ साबर दुर्ग को अपने अधिकार में करके वारंगल दुर्ग पहुँच गया। यहाँ के नरेश प्रताप रुद्रदेव ने वारंगल दुर्ग में रहकर सुरक्षात्मक युद्ध छेड़ दिया और छापामार युद्ध प्रारम्भ कर दिया। शाही सेना की रसद भी लूट ली जाने लगी। अनवरत युद्ध चलता रहा। विजय की कोई आशा न देखकर राजा ने अपनी प्रजा को यवनों के विध्वंस से बचाने के लिये काफूर से अंत में संधि कर ली। इस संधि के अनुसार प्रताप रुद्रदेव ने काफूर को सौ हाथी, सात हजार घोड़े, अनेक बहुमूल्य रत्न, सोना-चांदी दिया और वार्षिक कर देने का वचन दिया। एक हजार ऊँटों पर यह सब धन लादकर काफूर दिल्ली लौट आया।

(४) हौयसल राज्य विजय (सन् १३१०)—दक्षिण के होयसल राज्य की विपुल धन सम्पत्ति ने अलाउद्दीन को उस पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। इसलिये सुलतान ने काफूर को आक्रमण के लिये भेज दिया। इस समय हौयसल राज्य में वीर वल्लाल तृतीय राज्य कर रहा था। काफूर के इस आक्रमण में राजा रामचन्द्रदेव और प्रताप रुद्रदेव दोनों ने आवश्यक सामग्री उपलब्ध करने और सेना का पथ-प्रदर्शन करने में सहायता की। राजा वल्लाल काफूर की विशाल सेना देखकर हताश हो गया और उसने काफूर से संधि कर ली जिसके अनुसार वल्लाल ने अपना सारा राजकोष और अनेक हाथी दिये और वार्षिक कर देना स्वीकार किया। इसके बाद काफूर ने राजधानी द्वार समुद्र के मंदिरों को खूब लूटा।

(५) माबर विजय (सन् १३११)—सुदूर दक्षिण में मदुरा या माबर का पांड्य राज्य था। यहाँ उत्तराधिकार के लिये वीर पांड्य और सुन्दर पांड्य बन्धुओं में गृह युद्ध छिड़ गया था। सुन्दर पांड्य ने जब काफूर से सैनिक सहायता मांगी तब काफूर ने इस गृह युद्ध का लाभ उठाकर मदुरा पर आक्रमण किया। उसने वीर पांड्य की खोज करने के लिये पांड्य राज्य को छान डाला, पर सब व्यर्थ हुआ, वीर पांड्य पकड़ा न जा सका। मार्ग में काफूर ने मंदिरों, नगरों, गांवों को खूब लूटा और उन्हें विध्वंस कर उनकी मूर्तियाँ तोड़-फोड़ दीं। लूटता हुआ काफूर रामेश्वरम् तक पहुँचा। वहाँ का शिव-मंदिर भी नष्ट कर दिया और एक मसजिद निर्माण की। कई महिनों की लूट के बाद काफूर ५१२ हाथी, पांच हजार घोड़े, ९६००० मन स्वर्ण तथा अनेक बहुमूल्य रत्न लेकर दिल्ली लौटा।

काफूर का दक्षिण में अन्तिम आक्रमण—देवगिरी के राजा शंकरदेव के विद्रोह के दमनार्थ अलाउद्दीन ने काफूर को सन् १३१२ में अन्तिम बार दक्षिण भेजा था। इस समय काफूर ने युद्ध में शंकरदेव को परास्त कर दिया, और देवगिरी राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद तेलंगाना और हौयसल राज्यों के आस-पास के क्षेत्रों पर भी आक्रमण कर उन्हें अपने आधिपत्य में कर लिया। अब वह स्वयं दक्षिण में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था। पर अलाउद्दीन द्वारा दिल्ली बुला लिये जाने पर वह ऐसा न कर सका।

अलाउद्दीन का साम्राज्य—इन विजयों के कारण अलाउद्दीन का साम्राज्य खूब विस्तृत हो गया था। उत्तर में सिंधु नदी से दक्षिण में मदुरा तक और पूर्व में वाराणसी से पश्चिम में गुजरात तक यह विस्तृत था।

अलाउद्दीन की दक्षिण विजय का महत्व—मध्य युग में अलाउद्दीन प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने विंध्या को पार करके दक्षिण राज्यों को नतमस्तक कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। राजधानी दिल्ली से दक्षिण राज्यों की दूरी, आवागमन के साधनों का अभाव और प्रशासन की अनेक समस्याओं को ध्यान में रख कर अलाउद्दीन ने दक्षिण के राज्यों को अपने सल्तनत में सम्मिलित करने की अपेक्षा उसने इन राज्यों को करद राज्य बना दिया तथा उसने उनसे निश्चित कर लेना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त आशा के विपरीत उसने दक्षिण के परास्त राजाओं के साथ बड़ी उदारता का व्यवहार किया, उन्हें पुरस्कार और पदवियाँ प्रदान कीं।

सुलतान की दक्षिण विजय का प्रमुख उद्देश्य था दक्षिण भारत के राज्यों, और मंदिरों में संग्रहित विपुल धन को प्राप्त करना। वह अपने लिये दक्षिण भारत को दूधारी गाय समझता था। दक्षिण विजय से अलाउद्दीन को अनिवर्चनीय आर्थिक लाभ हुआ। उसका राजकोष दक्षिण भारत की अतुल सम्पत्ति के आ जाने से उबल पड़ा था। उसे इतना अधिक धन व हीरे रत्न आदि प्राप्त हो गये थे कि उसका ही नहीं अपितु उसके उत्तराधिकारियों का अर्थाभाव भी दूर हो गया था। राजनैतिक दृष्टि से अलाउद्दीन दक्षिण भारत के हिन्दु राज्यों को पदाक्रांत कर समस्त भारत में अपना विशाल सार्वभौम राज्य स्थापित कर सका। परन्तु अलाउद्दीन की यह दक्षिण विजय अल्पकालीन रही। अलाउद्दीन के आक्रमणों के आतंक से दुखी और बाध्य होकर दक्षिण के नरेशों ने धन-लोलुप अलाउद्दीन को विपुल धन देकर अपने राज्य व प्रजा की रक्षा की। यद्यपि अलाउद्दीन ने उनसे वार्षिक कर देना स्वीकार करा लिया था, पर उन्होंने पूर्ण रूप से अलाउद्दीन की आधीनता स्वीकार नहीं की थी। इससे थोड़े समय बाद ही दक्षिण भारत सल्तनत से पूर्ण स्वतन्त्र हो गया और मुहम्मद तुग़लक को पुनः दक्षिण विजय करना पड़ी। अलाउद्दीन के आक्रमणों, लूट-खसोट और नर-संहार से दक्षिण-भारत के अनेक गांव व नगर नष्ट हो गये, कृषि और उद्योग-धंधे अस्त-व्यस्त हो गये, प्रशासन शिथिल हो गया, तथा मंदिरों और मूर्तियों के विनाश से कला अत्यधिक नष्ट हो गयी। इन आक्रमणों से दक्षिण भारत में मुस्लिम धर्म व संस्कृति के प्रसार का मार्ग प्रशस्त हो गया।

अलाउद्दीन की प्रारम्भिक समस्याएँ

(१) अलाउद्दीन खूनी व अपहरण कर्ता होने से अलोकप्रिय
(२) ढीला-ढाला प्रशासन
(३) खोखर जाति के विद्रोह
(४) हिन्दू राजाओं व मुस्लिम सामन्तों की पृथक्करण की नीति
(५) स्वतन्त्र राजपूत राज्यों की बढ़ती हुई शक्ति।
(६) सुलतान रुकनुद्दीन, इब्राहीम तथा अर्कली खां की प्रतिद्वंदिता।
(७) मंगोलों के आक्रमण।

अलाउद्दीन के लक्ष्य और नीति

अनेक सफलताओं की प्राप्ति से महत्वाकांक्षाओं में वृद्धि और अव्यवहारिक योजनाओं का निर्माण।

(i) सिकंदर महान् सा विश्व विजयी होना।

(ii) नवीन धर्म प्रवर्तक बनना।

(iii) काजी अला उलमुल्क का इसके

(i) सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा नीति मंगोलों का अवरोध।

(ii) राजपूतों को संतुष्ट करने के लिये विवाह सम्बन्ध।

(iii) हिन्दू-विरोधी नीति, हिन्दुओं के कुचलने के कार्य।

(iv) विशाल स्थायी सेना और दृढ़

विरोध में परामर्श।

सैनिक संगठन।

(v) आर्थिक सुधार और मूल्य निर्धारण

(vi) विद्रोहों के दमन व धन सम्पन्नता के विनाश की नीति।

(vii) अनियंत्रित, निरंकुश शासन की नीति।

(viii) सल्तनत शासन का उद्देश्य जन-कल्याण नहीं था।

(ix) अल्पकालीन सफलता।

अलाउद्दीन की विजय और साम्राज्य विस्तार

विजय का लक्ष्य

(i) साम्राज्य का विस्तार करना।

(ii) हिन्दू राजाओं का अन्त करना।

उत्तरी भारत में विजय—

(i) सिन्ध व मुलतान विजय।

(ii) गुजरात विजय, सोमनाथ की लूट, खंभात पर आक्रमण।

(iii) जेसलमेर विजय।

(iv) रणथंभोर विजय।

(v) चित्तौड़ विजय।

(vi) मालवा, मांडू की विजय।

(vii) उज्जैन, धार, चंदेरी विजय।

(viii) मारवाड़ विजय।

(ix) जालोर विजय

अलाउद्दीन की सफलता के कारण

(i) राजपूतों व हिन्दू नरेशों में एकता, संगठन व सहयोग का अभाव।

(ii) खिलजियों, तुर्कों की शक्ति सम्पन्नता, श्रेष्ठ सैन्य व्यवस्था।

(iii) राजपूत राज्यों में जन-कल्याण की भावना और जन-सहयोग का अभाव।

(iv) राजपूतों की धर्मानुकूल युद्ध नीति,

(v) राजपूतों में दृढ स्थायी शासन का अभाव।

(vi) राजपूतों की प्राचीन युद्ध-प्रणाली, सामन्ती सैन्य व्यवस्था।

(vii) शाही सेना की परिवर्तित युद्ध प्रणाली।

(viii) राजपूतों के सीमित साधन।

(ix) राजपूत-सामन्तों में विश्वासघात की प्रवृत्ति।

(x) सुलतान की कूटनीति।

(xi) दुर्गों में घिर जाने पर राजपूतों की समस्याएँ।

(xii) अलाउद्दीन का कुशल नेतृत्व, सेनापतियों की सेवाएँ।

अलाउद्दीन की दक्षिण भारत विजय

विजय के उद्देश्य व कारण	विजय	विजय का महत्व
(i) साम्राज्य विस्तार।	(i) देवगिरी पर द्वितीय आक्रमण रामचन्द्र देव से उदारता का व्यवहार।	(i) प्रथम मुस्लिम शासक का दक्षिण में साम्राज्य
(ii) सेना के व्यय हेतु धन प्राप्ति।	(ii) वारंगल विजय व संधि।	(ii) दक्षिण के करद राज्य
(iii) विशाल सेना को कार्यरत रखना।	(iii) होयसल राज्य की विजय।	(iii) दक्षिण राज्यों के प्रति उदारता की नीति।
(iv) व्ययशील प्रशासन के लिये धन प्राप्ति	(iv) माबर विजय पांड्य नरेश से असफल युद्ध।	(iv) दक्षिण में संग्रहित विपुल धन की प्राप्ति, दक्षिण भारत दूधारी गाय।
(v) वारंगल की असफलता के कलंक को धोना।	(v) देवगिरी पर तृतीय आक्रमण।	(v) विजय अल्पकालीन।
(vi) देवगिरी नरेश की स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति का दमन।	(vi) तेलंगाना, होयसल के क्षेत्रों पर आक्रमण।	(vi) कला व व्यवसायों की भारी क्षति, आर्थिक हानि।
(vii) देवलदेवी को प्राप्त करना।	(vii) मलिक काफूर का सैनिक नेतृत्व।	(vii) दक्षिण में मुस्लिम धर्म व संस्कृति का प्रसार।

अध्याय १४

सुलतान अलाउद्दीन की बाह्य और आंतरिक सुरक्षा नीति

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी को अपने शासन के प्रारम्भिक काल में साम्राज्य की पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा की विकट समस्या तथा साम्राज्य में आन्तरिक विद्रोहों की शृंखला का सामना करना पड़ा। सीमांत क्षेत्र में पंजाब, सिन्ध के प्रदेश थे। उनकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। इससे मध्य एशिया के मंगोलों ने भारत के द्वार निर्ममता से खटखटाये। उन्होंने अपने अनवरत आक्रमणों से सीमांत क्षेत्र की स्थिति भयावह बनादी। इन आक्रमणकारियों का सफल प्रतिरोध राज्य की सुरक्षा के लिए नितान्त आवश्यक था। इसके लिए अलाउद्दीन ने विशेष प्रयत्न किए और राज्य को मंगोल आक्रमणों से मुक्त कर सीमांत क्षेत्र को सुरक्षित कर दिया। इसी प्रकार उसके शासन-काल के प्रारम्भिक चरणों में उसकी राज्य सत्ता के उन्मूलन करने, तथा दिल्ली सल्तनत और शासन पर अधिकार करने के अभिप्राय से कुछ विद्रोह हुए। इन विद्रोहों की शृंखला ने राज्य की आन्तरिक शांति, सुरक्षा और सुव्यवस्था की समस्या उत्पन्न करदी। अलाउद्दीन ने अपनी दृढ़ नीति और कार्यों से इन विद्रोहों का विनाश किया तथा आन्तरिक सुरक्षा, शांति और सुव्यवस्था स्थापित की। इस अध्याय में अलाउद्दीन की बाहरी और आंतरिक सुरक्षा नीति व कार्यों का विवेचन किया जायगा।

अलाउद्दीन की मंगोल नीति और सीमांत की सुरक्षा

दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक काल से ही भारत पर मंगोलों जैसी खूंखार जाति ने निरन्तर आक्रमण शुरू कर दिये थे और सुलतान अलाउद्दीन के शासन काल में तो इन आक्रमणों की बाहुल्यता और भयावहता में अत्यधिक वृद्धि हो गयी थी। बलबन तथा जलालुद्दीन के शासन काल में जिन मंगोलों के आक्रमण हुए उनके नेता फारस से आये थे, क्योंकि फारस में मंगोलों ने अपनी सत्ता स्थापित करली थी। अलाउद्दीन के शासन काल में मध्य एशिया में ट्रांस आक्सियाना के मंगोल शासक दाऊदखां की महत्वाकांक्षा थी कि वह फारस के मंगोलों को नष्ट करके वहां अपना साम्राज्य स्थापित करले। इसलिये उसने फारस के अधीन अफगानिस्तान में गजनी पर आक्रमण किया और उसे जीत कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। गजनी से भारत पर आक्रमण करना सरल था। इसलिये दाऊद खां ने (सन् १२७२ से १३०६) भारत विजय की योजना बनाई और उसकी महत्वाकांक्षा यह थी कि भारत की तुर्क सल्तनत को जीतकर दिल्ली को भी अपने साम्राज्य में सम्मिलित करले। सुलतान जलालुद्दीन

के शासन काल तक होने वाले मंगोल आक्रमणों का उद्देश्य था भारत में नृशंसता-पूर्वक लूट पाट करना। वे प्रायः सीमांत क्षेत्र, सिंध और पंजाब पर ही आक्रमण करते रहे। परन्तु अलाउद्दीन के शासन काल में मंगोलों ने अपनी आक्रमण नीति में परिवर्तन कर दिया। अब उन्होंने सीमांत क्षेत्र पर आक्रमण करने की अपेक्षा सीधे दिल्ली पर आक्रमण करने और उस पर अधिकार करने की नीति अपनाई। इस अभि-प्राय से मंगोलों ने सन् १२९७ से १३०६ तक की अवधि में विशाल सेनाओं सहित छै बार भयंकर आक्रमण किये। अलाउद्दीन ने मंगोलों का सामना करने और उन्हें खदेड़ देने के लिये तथा पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा के लिये निम्नलिखित नीति अपनाई।

अलाउद्दीन द्वारा पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा व मंगोलनीति

यह निर्विवाद है कि दिल्ली सल्तनत की उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश की असुरक्षा के कारण, सुलतानों की बाह्य नीति मंगोल आक्रमणकारियों के भय से प्रभावित रही। सीमाप्रांत की असुरक्षित व्यवस्था के कारण सुलतानों की नीति मंगोलों के आक्रमणों से सदा आच्छादित रही। अलाउद्दीन ने दिल्ली साम्राज्य को मंगोल आक्रमणों से सुरक्षित न रखने के लिये और सीमान्त क्षत्र की सुरक्षा के लिये बलबन की नीति को श्रेयस्कर समझा और उसे अपनाया। इसके लिये उसने निम्न-लिखित ठोस उपाय किये।

(१) उसने सीमांत क्षेत्र के प्राचीन दुर्गों का जीर्णोद्धार किया और मंगोल आक्रमणकारियों के पड़ने वाले मार्ग में नवीन दुर्ग निर्मित किये। उसने दुर्गों की एक श्रृंखला बनादी। सीरी में एक नया दुर्ग बनाया गया और दिल्ली दुर्ग की मरम्मत करवाई गयी। इन दुर्गों की समुचित व्यवस्था के लिए व मंगोलों का सामना करने के लिए उसने योग्य अनुभवी प्रशिक्षित तथा युद्ध करने की प्रवृत्ति और अभिरुचि रखने वाले सैनिकों को एवं प्रसिद्ध तथा कार्य कुशल, युद्ध कला में निपुण विश्वासपात्र सेना नायकों को नियुक्त किया। इन दुर्गों में पर्याप्त युद्ध सामग्री व खाद्यान्न की भी व्यवस्था की।

(२) सैन्य सामग्री, युद्ध सामग्री, अस्त्र-शस्त्र, हाथी घोड़े आदि अन्य आवश्यक वस्तुओं की श्रेष्ठता पर बल दिया गया। बहुत अधिक संख्या में मंजनीक (पत्थर आदि फेंकने वाला यंत्र) तथा अर्रादेव अन्य प्रकार के नये तेज अस्त्र-शस्त्र निर्मित करवाये। शस्त्र कारखानों की गति भी तीव्र करदी गयी।

(३) शाही सेना को अधिक शक्तिशाली बनाया गया, उसकी संख्या में वृद्धि की गयी और मुगलों के प्रतिरोध के लिये उसे अस्त्रों शस्त्रों से सुसज्जित कर सदैव तत्पर रखा गया। इस समय शाही सेना पांच लाख के लगभग पहुँच गयी थी।

(४) समाना, दिपालपुर, मुलतान आदि प्रदेशों को सीमांतप्रांत घोषित कर दिया गया और वहां सुदृढ़ सैनिक छांवनियां निर्मित की गयीं। इन छावनियों का शासन-प्रबन्ध और सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा का कार्यभार गाजी तुगलक जैसे शक्ति-

शाली, अनुभवी सेनानायक को सौंप दिया। वह मंगोलों के लिये काल रूप सिद्ध हुआ।

(५) सीमांत क्षेत्र में संदेश वाहन की भी समुचित व्यवस्था की गयी और गुप्तचरों का जालसा बिछा दिया गया। इन्होंने मंगोल आक्रमण के समय उनकी गतिविधियों और सैनिक शिविरों व घेरों से अलाउद्दीन को अवगत रखा। इन्होंने शत्रु की शक्ति का और हलचलों का पता लगाया। ये सुलतान के पक्ष में मंगोलों के मार्ग में अनेकानेक अफवाहें भी उड़ा देते थे। इससे मंगोलों के विरुद्ध अलाउद्दीन को सफलता प्राप्त करने में बड़ी सहायता प्राप्त हुई।

(६) अलाउद्दीन ने मंगोलों के प्रति नृशंसता और बर्बर दमन की तथा प्रतिहिंसा की नीति अपनाई। युद्ध में बंदी मंगोलों को उसने निर्ममतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया। वह उनके सिर कटवा कर सिरों का मीनार बनवाता था। उसने जफर खां, उलूगखां, गाजी मलिक, मलिक नायक, मलिक काफूर आदि सेनापतियों को भी मंगोलों के प्रति ऐसा ही निर्मम दमन और नृशंसता की नीति अपनाने के आदेश दे दिये थे। अलाउद्दीन और उसके सेनापतियों के भीषण नर संहार से मंगोल अत्यधिक आतंकित हो गये थे। जब मंगोलों के घोड़े पानी नहीं पीते थे, तब वे कहते थे, "कयातूनेजफर खां का मुँह देख लिया है।" यह मंगोलों के भय का प्रतीक है।

(७) अलाउद्दीन ने अपनी रण नीति में भी परिवर्तन कर दिया। उसने अपने सेनापतियों की रक्षा के लिये सैनिक शिविरों के चतुर्दिक खाइयां खुदवायीं। सुरक्षा के लिये लकड़ी की ऊँची प्राचीर खड़ी की और हाथियों के छोटे दस्ते रखे। रणक्षेत्र में उसने नवीन शस्त्र का भी प्रयोग किया।

मंगोल आक्रमण

अलाउद्दीन के शासन काल में मंगोलों के निम्नलिखित आक्रमण हुए—

(१) **कादर और दाऊदखाँ के नेतृत्व में आक्रमण (सन् १२९६-९७)**—सुलतान अलाउद्दीन के सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही माह पश्चात् मंगोलों ने कादर खां के नेतृत्व में एक लाख सेना लेकर आक्रमण कर दिया। वह लाहौर के निकट तक पहुँच गया। परन्तु सुलतान के प्रसिद्ध योद्धा और सेनापति जफरखाँ ने उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया। इस आक्रमण के कुछ महीनों बाद ही सन् १२९७ में ट्राँस आक्सियाना के मंगोल शासक दाऊदखां ने पंजाब और सिंध विजय करने के लिये भारत पर भीषण आक्रमण किया। सुलतान ने एक विशाल सेना जफर खां और उलूग खाँ के नेतृत्व में भेजी। उन्होंने जालन्धर के समीप युद्ध में मंगोलों को परास्त कर दिया। इस युद्ध में बीस सहस्र मंगोल सैनिक मारे गये और अनेक मंगोल बन्दी बना लिये गये और उनका बाद में वध कर दिया गया। उनके सिर अलाउद्दीन के पास दिल्ली भेज दिये गये।

(२) **सालदी का आक्रमण (सन् १२९८-९९)**—दाऊदखां अपनी पराजय से निराश नहीं हुआ। जब सुलतान के सेनापति उलूगखां और नसरतखां सीमांत क्षेत्र से दूर गुजरात में विजय अभियान में फंसे हुए थे, तब उसने प्रतिशोध की भावना से

सालदी के नेतृत्व में विशाल सेना भेजकर भारत पर आक्रमण किया। सालदी ने सिंध में सिविस्तान को अपने अधिकार में कर लिया। अलाउद्दीन ने जफरखां को इसके विरुद्ध भेजा। जफरखां ने द्रुतगति से सिंध में जाकर दुर्ग का घेरा डालकर मंगोल सेनाओं को उनके दो सहस्र अनुयायियों सहित बन्दी बना लिया और जंजीरों में बाँध-कर उन्हें दिल्ली भेज दिया। जफर खां की विजय और सफलता इतनी आश्चर्यजनक और शानदार थी कि अलाउद्दीन और उलूग खां भी उससे ईर्षा करने लगे।

(३) कुतलुग ख्वाजा का आक्रमण (सन् १२९९)—दाऊद खाँ ने अपनी पराजय से खीजकर अपने सुयोग्य पुत्र कुतलुग खां के नेतृत्व में दो लाख विशाल सेना से भारत पर आक्रमण किया। अब तक के मंगोल आक्रमणों में वह सबसे भयानक आक्रमण था। मंगोल की सेना चीटियों तथा टिड्डी दल से भी अधिक थी। उन्होंने मार्ग में पड़ने वाले दुर्गों को कोई हानि नहीं पहुँचाई और न उन्होंने मार्ग के प्रदेशों की लूट खसोट की। क्योंकि उनका उद्देश्य ग्रामों व नगरों की लूट और नृशंस हत्या नहीं था, अपितु खिलजी सल्तनत की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण कर सल्तनत को अपने अधिकार में करना था। कुतलुग ख्वाजा ने बिना विशेष विरोध के सिन्धु पार करली और इतनी तीव्र गति से मंगोल दिल्ली की ओर बढ़े कि सुलतान के सीमांत रक्षक भी उन्हें रोक नहीं सके। मंगोलों के नृशंस अत्याचारों से बचने के लिये मार्ग की जनता दिल्ली में एकत्रित होने लगी। इसी विषय में बर्नी ने लिखा है कि "इतनी भीड़ शहर में एकत्रित हो गयी थी कि मनुष्यों को गली, बाजार तथा मसजिदों में रहने तक को कमरे नहीं मिले।" इसी बीच मंगोलों ने दिल्ली में खाद्यान्न का प्रवेश भी बन्द कर दिया था। इससे राजधानी में दशा और भी अधिक संकटापन्न हो गयी। जनता में आतंक छा गया।

सुलतान अलाउद्दीन ने तुरन्त युद्ध नीति निर्धारित करने के लिए युद्ध-समिति बुलाई। इसने मंगोलों की असंख्य संख्या को देखकर अलाउद्दीन के परामर्शदाता दिल्ली के कोतवाल अलाउल मुल्क ने तथा अन्य कुछ सदस्यों ने युद्ध को कुछ समय तक टाल देने और रक्षात्मक युद्ध नीति अपनाने की सलाह दी। पर अलाउद्दीन ने इसे अस्वीकार कर दिया और असीम धैर्य व साहसपूर्वक युद्ध करने का निर्णय किया। उसने कहा, "यदि मैं तुम्हारे कथनानुसार आचरण करूँगा, तो किसे मुँह दिखाऊँगा। अपनी स्त्रियों के महलों में किस प्रकार जाऊंगा। मेरी प्रजा मेरी गणना किन लोगों में करेगी। विद्रोही तथा विरोधी मुझ में कौनसी वीरता तथा बहादुरी देखेंगे जिससे प्रभावित होकर वे मेरे आज्ञाकारी बन सकेंगे। जो कुछ भी हो, मैं कल सीरीसे कीली के रणक्षेत्र में जाऊँगा और कुतलुग ख्वाजा तथा उसकी सेना से युद्ध करूँगा। फिर चाहे खुदा मुझे या उसे विजय प्रदान करे।" सुलतान अलाउद्दीन की धारणा थी कि इस समय युद्ध में जीवन उत्सर्ग करने, रक्तपात करने तथा नंगी तलवार लेकर मंगोल शत्रु का संहार करने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं था।

इसलिये सुलतान अलाउद्दीन ने स्वयं सैन्य संचालन किया और अपने अनुभवी उलूगखाँ और जफरखां नामक सेनानायकों को मंगोलों के विरुद्ध भेजा। दिल्ली के समीप कीली के मैदान में अपनी सेना का मोर्चा जमाया। उसने अपनी सेना को शत्रु

के आक्रमण से एक ओर जमुना नदी द्वारा सुरक्षित रखा और दूसरी ओर कांटों और झाड़ियों की एक पंक्ति द्वारा। उसने जफरखाँ को सेना के दाहिने पार्श्व का नेतृत्व सौंपा और उलूगखां को वाम पार्श्व का तथा सुलतान ने स्वयं नसरतखां और बारह सहस्र सैनिकों के साथ मध्य भाग का नेतृत्व किया। शत्रु के भयानक आघात के विरुद्ध रोक के रूप में प्रत्येक भाग के संमुख बाईस हाथी रखे। कुतलुग ख्वाजा ने भी अपने आप को मध्य में रखा और हजलग तथा तमार बुगा को बायें और दाहिने रखा तथा सेनानायक तरगी को एक विशाल अंश का नेतृत्व सौंप दिया। इस प्रकार दोनों पक्षों ने सुदृढ़ मोर्चा बन्दी कर युद्ध प्रारम्भ किया। युद्ध छिड़ते ही भीषण नर संहार होने लगा। जफरखां और उसके पुत्र दिलेरखां तथा शाही सेना के अन्य भागों के भीषण आक्रमणों के सम्मुख मंगोल परास्त हुए और भाग खड़े हुए। सुलतान ने स्वयं मध्य में हुए मंगोल आक्रमण को पीछे ढकेल दिया। जफरखां ने लगभग ५४ किलो मीटर की दूरी तक भागते हुए मंगोलों का पीछा किया और विशाल संख्या में मंगोलों को मार गिराया। पलायन के समय दस सहस्र मंगोल तरगी के नेतृत्व में छिप गये और जब जफरखां मंगोलों को खदेड़ कर लौट रहा था तब तरगी के नेतृत्व में मंगोलों ने जफरखां को घेर कर उस पर भीषण प्रहार किया। जफरखां के पास इस समय केवल एक सहस्र अश्वारोही ही थे। फिर भी जफरखां अन्तिम सांस तक युद्ध ही करता रहा। जब उसका अश्व उसके सामने ही कत्ल कर दिया गया तब वह पैदल ही अपनी तलवार से युद्ध करने लगा और "उसका प्रत्येक प्रहार एक मंगोल अश्वारोही को नीचे ले आता था।" ऐसे संकटमय समय में न तो अलाउद्दीन ने ही उसे कोई कुमुक भेजी, न उलूगखां ही स्वयं उसकी सहायता के लिये आया। युद्ध करते हुए जफरखां की वीरता और साहस से प्रभावित होकर कुतलुग ख्वाजा उसे यह कहला भेजा, "मेरे पक्ष में आजाओ। मैं तुम्हें अपने पिता के पास ले चलूँगा जो तुम्हारे साथ दिल्ली के सुलतान की अपेक्षा अधिक सम्मान से व्यवहार करेगा।" पर जफरखाँ ने मंगोलों के इस प्रलोभन की भर्त्सना करते हुए कहा, "कर्तव्यपालन के लिये मृत्यु का आलिंगन करने से अधिक महान सम्मान का ज्ञान मुझको नहीं है।" अन्त में युद्ध करते हुए जफरखां परास्त हुआ और रणक्षेत्र में मारा गया; उधर कुतलुग ख्वाजा भी मार्ग में बीमार पड़ गया और मर गया। इतना होने पर भी जफरखाँ के भयंकर आक्रमण से मंगोल अत्यधिक भयभीत हो गये। उसके आक्रमण और प्रहारों का भय उन पर वर्षों बना रहा। यदि उनके पशु कभी पानी नहीं पीते तो वे उनसे कहते थे कि "क्या जफरखाँ को देख लिया है जो पानी नहीं पीते।" इस पराजय से मंगोल इतने भयभीत हुए कि वे रात्रि में ही वापिस लौट गये और अगले छै वर्षों तक उन्होंने भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

इस मंगोल आक्रमण से अलाउद्दीन को दो लाभ हुए—प्रथम मंगोलों पर विजय प्राप्त करने से उसका यश गौरव बढ़ गया और द्वितीय जफरखाँ जैसे शक्तिशाली सेनानायक की मृत्यु अधिक महत्वपूर्ण थी क्योंकि वह भविष्य में कभी भी सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर सकता था।

(४) **तरगी का आक्रमण (सन् १३०३)**—तरगी के नेतृत्व में मंगोलों ने सन् १३०३ में एक लाख बीस सहस्र अश्वारोहियों के साथ भारत पर आक्रमण किया। वह धावे मारता हुआ दिल्ली के समीप पहुँच गया और यमुना तट पर सैनिक शिविर डाल दिये। इसी समय अलाउद्दीन चित्तौड़ विजय से लौटा था। लौटते समय राजस्थान की मरुभूमि और अधिक वर्षा के कारण उसकी बहुत कुछ सेना नष्ट हो चुकी थी। उसकी एक अन्य सेना भी तेलंगाना में परास्त हो चुकी थी। ऐसे समय चित्तौड़ की विजय से लौटने पर अलाउद्दीन को इतना अवकाश ही नहीं मिला कि दिल्ली की सेना के अश्व और अस्त्र-शस्त्र सुव्यवस्थित कर युद्ध कर पाता। मंगोलों ने पूर्व और पश्चिम से राजधानी दिल्ली के समस्त मार्गों को अवरुद्ध कर रखा था और वे स्वयं सैनिक शिविर डाले पड़े थे। इसलिये सुलतान की सेना का कोई भी सैनिक या अश्वारोही बाहर से आकर दिल्ली में प्रवेश नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त सीमांत क्षेत्र की सेना भी इतनी व्यवस्थित और सुसज्जित नहीं थी कि वह मंगोलों का विनाश कर सकती। मुलतान, समाना और दिपालपुर से कुमुक आने के मार्ग भी मंगोलों ने अवरुद्ध कर दिये थे। सुलतान अलाउद्दीन ने प्रांतीय सूबेदारों को सेना सहित दिल्ली आने का आदेश दिया, पर वह स्वयं सीरी के दुर्ग में घिर गया। इसी बीच मंगोलों ने दिल्ली के पार्श्ववर्ती क्षेत्र पर और नगर के सुमानी, सोरी, होज-ए-अलाई और हुधी के चबूतरों तक धावे मारना प्रारम्भ कर दिये और शाही अनाज भंडारों को लूटने लगे। उन्होंने यमुना के समस्त मार्गों को भी रोक दिया जिससे किसी ओर से सुलतान को बाह्य सहायता न मिल सके। उन्होंने राजधानी दिल्ली को इतनी पूर्णता से घेर लिया था कि उसमें पानी, चारा, ईंधन और जीवन की अन्य आवश्यकताओं का आना बंद हो गया और नगर में खाद्यान्न की अत्यधिक कमी अनुभव होने लगी।

ऐसे संकट के समय अलाउद्दीन ने सुरक्षात्मक नीति अपनाई। उसने दिल्ली के समीप सीरी में अपना सैनिक शिविर स्थापित कर दिया और उसके चतुर्दिक खाई खुदवाकर लकड़ी की ऊंची दीवारें उठादी तथा चौकीदारों और पहरेदारों को सतर्क रहने की आज्ञाएँ दी। इस प्रकार उसने मंगोलों के सहसा आक्रमण करने की आशंका नष्ट करदी। उधर मंगोल सुलतान से खुले मैदान में युद्ध करने के अवसर ढूंढ रहे थे, पर उन्हें निराश होना पड़ता था। अन्त में मंगोलों का धैर्य छूट गया और चालीस दिन के घेरे के बाद तरगी वहां से लौट गया। इसके तीन कारण हैं; प्रथम अलाउद्दीन की शीघ्र सैनिक कार्यवाही और सुरक्षात्मक नीति, जिसने मंगोलों को हतबुद्धि कर दिया। द्वितीय मध्य एशिया में राजनैतिक अस्त-व्यस्तता जिसके कारण वे भारत में अधिक समय तक ठहर नहीं सकते थे। तृतीय कारण ऐसा माना गया है कि दिल्ली की जनता और तत्कालीन मुस्लिम संत निजामुद्दीन ओलिया दिल्ली की सुरक्षा के लिये दिन-रात खुदा से प्रार्थना करते थे और नमाज पढ़ते थे। बर्नी के कथनानुसार निजामुद्दीन औलिया की अनुकंपा तथा सद्व्यवहार के कारण मंगोलों का खतरा दूर होगया। इस मंगोल आक्रमण के समय की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए बर्नी ने लिखा है कि "मंगोलों के आक्रमणों का भय तथा मंगोलों की चिन्ता जितनी उस वर्ष दिल्ली में देखी गयी उतनी किसी वर्ष तथा किसी युग में भी नहीं देखी गयी। यदि तरगी यमुना तट पर

एक मास तक और टिक जाता तो दिल्ली में हाहाकार मच जाता और वह अलाउद्दीन के हाथ से निकल जाती। भय तथा चिन्ता के कारण दिल्ली निवासियों के लिये अन्न, जल तथा ईंधन लाना असंभव हो गया था। बंजारों ने खाद्यान्न लाना पूर्णतया बंद कर दिया था।"

(५) **अलीबेग और ख्वाजा तास का आक्रमण (सन् १३०५)**–मंगोल अपनी पराजय और तरगी, कुतलुग ख्वाजा के पलायन को कभी नहीं भूले थे। उन्होंने इस अपमान का बदला लेने के लिये अलीबेग और ख्वाजा तास के नेतृत्व में सन् १३०५ में पचास सहस्र सेना के साथ भारत पर आक्रमण कर दिया। तरगी भी उनके साथ हो लिया। मंगोल जगत में ये दोनों नेता बड़े प्रतिष्ठित माने जाते थे और अलीबेग को चंगेज का वंशज माना जाता था। मंगोल सिंधु के उत्तर पश्चिम में स्थित पहाड़ी प्रदेश पार करके, सिंधु नदी को पार करके तेजी से पूर्व की ओर बढ़े। मार्ग में वे पाशविक क्रूरता का व्यवहार करते रहे। दिल्ली की दृढ़ सुरक्षा को देखकर उसे उन्होंने छोड़ दिया और सीधे वे उपजाऊ और समृद्ध प्रदेश दोआब की ओर बढ़ गये। इस पर सुलतान ने दिपालपुर में स्थित अमीर नायब तथा गाजी मलिक को लगभग चालीस सहस्र अश्वारोहियों की सेना के साथ मंगोलों का सामना करने के लिये भेजा। अमरोहा के निकट मंगोलों और गाजी मलिक की सेना में ३० दिसम्बर सन् १३०५ में भीषण युद्ध हुआ। मंगोल परास्त हुए और बहुत बड़ी संख्या में वे मौत के घाट उतार दिये गये तथा अनेक मंगोल बन्दी बना लिये और ये बन्दी तथा मृत मंगोल सैनिकों के बीस सहस्र अश्व अलाउद्दीन के दरबार में प्रस्तुत हुए। अलाउद्दीन ने विशाल जन समूह के सामने इन बन्दियों के सिर घड़ से अलग करवा दिये और इन सिरों को दुर्ग के बाहर मिनारों के निर्माण में प्रयुक्त किये। फरिश्ता के अनुसार उस समय निर्मित हो रही सीरी की मीनारों के निर्माण में मंगोलों के आठ सहस्र सिर पत्थर और ईटों के स्थान पर उपयुक्त किये गये। बर्नी के अनुसार मंगोल बन्दियों और उनके नेता अलीबेग और ख्वाजा तास को हाथियों के पैरों के नीचे कुचल दिया, परन्तु खुसरो का कथन है कि इन दोनों नेताओं को क्षमा प्रदान कर दिया गया। इसामी के अनुसार भी इन दोनों को क्षमा कर दिया गया, और उन्हें खिलअतें दीं, परन्तु बाद में सुलतान ने उनके सर धड़ से अलग करवा दिये। इस मंगोल कत्लेआम के समय राजधानी में जनता की इतनी अधिक भीड़ एकत्रित हो गयी थी कि एक गिलास जल का मूल्य बीस जीतल तथा आधे तनके तक पहुँच गया था।

(६) **कुबक और इकबाल मन्द का आक्रमण (सन् १३०६)**—टांस आक्सियाना के मंगोल शासक दाऊदखां या दवाखां (सन् १२७२-१३०६) ने अलीबेग और ख्वाजा तास की हत्या का बदला लेने के लिये सन् १३०६ में कुबक और इकबाल मंद के नेतृत्व में विशाल सेना को भारत पर आक्रमण करने के लिये भेजा। इन दोनों मंगोल सेनानायकों की प्रथक् सेनाएँ थीं और उन्होंने भिन्न-भिन्न मार्गों से पंजाब पर आक्रमण किया। कुबक मार्ग में नगरों को जलाता, लूटता, हत्याएँ करता हुआ सिंध को पार कर पंजाब में रावी नदी की ओर बढ़ा और इकबाल मंद अपनी सेनाओं से प्रलय मचाता हुआ राजस्थान में जोधपुर के उत्तर-पूर्व में लगभग सौ किलोमीटर दूर

नागोर नगर तक पहुँच गया। अलाउद्दीन के आदेशों पर समाना और दिपालपुर का प्रान्तपति गाजी मलिक और अलाउद्दीन के सेनानायक मलिक काफूर ने रावी तट पर कुबक को परास्त कर उसे बन्दी बना लिया और बाद में नागोर की ओर बढ़ कर इकबाल मंद को परास्त कर उसे भी बन्दी बना लिया गया, पर वह भागने में सफल हो सका, फिर भी अनेक मंगोल गाजर-मूली की भांति काट दिये गये। लगभग पचास सहस्त्र मंगोल सैनिकों में तीन सहस्त्र ही जीवित बच सके। मंगोलों के अनेक स्त्री-बच्चे बन्दी बनाकर दिल्ली लाये गये और दिल्ली में वे दास-दासियों और दास बालकों की भांति बेच दिये गये।

जियाउद्दीन बर्नी कुबक और इकबाल मंद के मंगोल आक्रमण के बाद तीन अन्य मंगोल आक्रमणों का उल्लेख करता है। परन्तु उसका वर्णन संदिग्ध, त्रुटिपूर्ण और असंबद्ध है। इन आक्रमणों के समय बर्नी न तो उन शाही सेनानायकों के नाम ही देता है, जिन्होंने इन तीन अवसरों पर मंगोलों से युद्ध किये थे और न वह आक्रमणकारी मंगोल सेना नायकों के नाम और उनके अभियान की तिथि ही देता है। खुसरो जो अलाउद्दीन का समकालीन था। इन आक्रमणों का उल्लेख नहीं करता। खुसरो बर्नी की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है, क्योंकि बर्नी ने अपना वर्णन खुसरो के कई वर्षों बाद लिखा।

गाजी मलिक के मंगोल राज्य में आक्रमण—मंगोल नेता दाऊदखां या दवाखां की सन् १३०६ में मृत्यु हो जाने के कारण, ट्रांस आक्सियाना में गृहयुद्ध छिड़ गया; जो तीन वर्षों तक चलता रहा। मंगोलों की पारस्परिक ईर्षा-द्वेष और गृहयुद्ध से वे भारत पर आक्रमण नहीं कर सके। इस परिवर्तित स्थिति का लाभ सुलतान द्वारा सीमान्त क्षेत्र के नियुक्त प्रान्तपति गाजी मलिक ने उठाया और उसने मंगोल राज्य में गजनी और काबुल तक सैनिक अभियान किये और उन्हें लूटा, उजाड़ा तथा वहाँ के निवासियों से कर वसूल किये। इस समय मंगोलों में इतना भी सैनिक संगठन और साहस नहीं था कि वे गाजी मलिक के विरुद्ध अपनी सीमाओं की सुरक्षा कर सके।

मंगोलों के विरुद्ध अलाउद्दीन की सफलता—अलाउद्दीन ने अपने सफल नेतृत्व विशाल, दृढ़ सेनाओं, अनुभवी वीर सेनानायकों तथा सुधारवादी उपायों से मंगोलों के विरुद्ध पूर्ववर्ती सुलतानों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त की थी। उसने मंगोलों के उस संकट से मुक्ति दिला दी जो अनवरत रूप से दिल्ली सुलतान और उनकी प्रजा पर मंडरा रहा था। सुलतान जलालुद्दीन के शासन काल में पंजाब में रावी नदी मंगोलों और सल्तनत के मध्य की लगभग सीमा रेखा थी। परन्तु अलाउद्दीन ने मंगोलों को सिंधु पार खदेड़ ही नहीं दिया अपितु काबुल और गजनी पर आक्रमण कर मंगोलों को आतंकित भी किया। बर्नी के अनुसार "इसके बाद उन्होंने (मंगोलों ने) न कभी हिन्दुस्तान का नाम अपने ओठों पर आने दिया, और न सीमान्त प्रदेशों में विचरण करने का साहस किया। देश में चारों ओर शान्ति छा गयी तथा जिस मार्ग से मंगोल आक्रमण किया करते थे, उस ओर की प्रजा निश्चिन्त खेती करने लगी और अब सुलतान को अन्य देशों को विजय करने का अवकाश मिल गया।"

सुलतान बलबन और अलाउद्दीन की मंगोल नीति की तुलना

सुलतान अलाउद्दीन ने मंगोलों के प्रति बलबन की नीति को अपनाना श्रेयस्कर समझा और उसने अपनी मंगोल नीति का आधार बलबन की मंगोल नीति बनाया। परन्तु फिर भी दोनों की नीतियों में भेद हैं। बलबन ने दिल्ली सल्तनत को विस्तार करने की नीति की अपेक्षा इस सल्तनत को तथा उसकी प्रजा को खूंखार प्रलयंकारी मंगोलों की नृशंसता से रक्षा करना अधिक महत्वशाली समझा। उसने मंगोलों के अनवरत आक्रमणों को रोकने की नीति को प्राथमिकता दी और साम्राज्य विस्तार के अभियान को त्याग दिया। परन्तु अलाउद्दीन मंगोलों को इतना भयंकर नहीं समझता था कि उन्हें रोकने और परास्त करने के लिये वह साम्राज्य विस्तार की नीति ही त्याग दे। मंगोलों के विरुद्ध आत्मरक्षा, साम्राज्य सुरक्षा और युद्ध करने के लिये वह बलबन की भांति दिल्ली में बैठे रहना नहीं चाहता था। अपितु उत्तरी भारत व दक्षिण भारत की विजय भी करना चाहता था। बलबन ने मंगोलों के आक्रमण के भय के कारण रक्षात्मक नीति का आश्रय लिया, और आक्रमणात्मक नीति को तिलांजली दे दी। किन्तु अलाउद्दीन ही एक ऐसा सुलतान था जिसने सुरक्षात्मक और आक्रमणात्मक दोनों नीतियों को साथ-साथ अपनाया और उसमें सफलता प्राप्त की। अलाउद्दीन दिल्ली सल्तनत का प्रथम शासक था जिसने मंगोलों को प्रत्येक बार परास्त किया और विजय व आक्रमणात्मक नीति को बनाये रखा तथा प्रशासकीय व्यवस्था में भी सुधार किये। उसके सैनिक सुधार, बाजार नियंत्रण, दुर्ग निर्माण, युद्ध-विराम आदि अनेक कार्यों का उद्देश्य सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा थी। सीमांत प्रदेशों में समुचित सुरक्षा स्थापित हो जाने से अलाउद्दीन के सम्मुख राजस्थान और दक्षिण विजय करने के मार्ग में कोई अवरोध नहीं रहा। इससे उसे सफलता प्राप्त हुई और वह मंगोल आक्रमणकारियों के भय से मुक्त सा हो गया। अब उसने अपना समय राज्य विस्तार करने तथा शासन को दृढ़ करने में और उसको उन्नत करने में लगाया।

कुछ विद्वानों का मत है कि अलाउद्दीन की मंगोल नीति कुछ अंशों में दुर्बल थी। बार-बार परास्त होने पर भी मंगोलों ने अपने आक्रमण बन्द करने की अपेक्षा उन्हें बनाये रखा और वे भारत पर सैनिक अभियान करते रहे। निःसंदेह अलाउद्दीन ने पंजाब पर मंगोलों के पैर नहीं जमने दिये और उन्हें सिंधु नदी के पार भगा दिया। परन्तु अलाउद्दीन की सुरक्षा नीति इतनी दुर्बल थी कि मंगोल मध्य एशिया से कूच करते हुए दिल्ली पर दो बार चढ़ आये। वे राजस्थान में नागौर तक प्रविष्ट कर गये तथा दिल्ली को अत्यन्त ही संकटापन्न स्थिति में ला दिया।

मंगोलों की असफलता और अलाउद्दीन की सफलता के कारण

मंगोलों ने अपने बाहुबल से तथा बर्बरतापूर्ण नृशंस कृत्यों से मध्य एशिया में विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया और वे विश्व विजेता बनने के लिये प्रयास करने लगे। एक समय ऐसा आया कि मध्य एशिया में उन्होंने सबको पदाक्रांत कर दिया

और कोई भी शक्ति उनका सामना करने और उनको परास्त करने के लिये समर्थ नहीं थी। शक्ति के मद में उन्होंने निरन्तर भारत पर आक्रमण किये और सुलतान अलाउद्दीन ने उन्हें परास्त कर दिया। मंगोलों की इस पराजय और अलाउद्दीन की सफलता के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **विश्व विजय की भावना का लोप**—अपने प्रारम्भिक उत्कर्ष के समय मंगोलों ने अपने सम्मुख विश्व विजय का उद्देश्य रखा था और उनमें विशाल मंगोल साम्राज्य स्थापित करने की बड़ी महत्वाकांक्षा थी। विश्व विजेता व विश्व शक्ति होने की यह महत्वाकांक्षा इतनी अधिक प्रबल हो गयी थी कि वे शत्रुओं का डटकर सामना करते थे। भारत पर होने वाले मंगोल आक्रमण मध्य एशिया में ट्रांसआक्सियाना व फारस के मंगोल शासकों अथवा उनके सेनापतियों ने किये थे। परन्तु धीरे-धीरे वे मध्य एशिया की गन्दी, दूषित राजनीति में इतने उलझ गये थे कि उन्हें भारतीय प्रदेशों को सम्पूर्ण विजय कर अपने राज्य में सम्मिलित करने का अवसर ही नहीं मिला। इसके अतिरिक्त चंगेजखां की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही मध्य एशिया में मंगोलों में गृहयुद्ध छिड़ गया था, मंगोलों की विभिन्न शाखाओं में पारस्परिक युद्ध होने लगे तथा मध्य एशिया की समस्याएँ सुलझाने में वे अधिक व्यस्त रहने लगे। इससे वे धीरे-धीरे भारत पर आक्रमण करने की नीति के प्रति उदासीन रहने लगे और कालान्तर में उनकी शक्ति का ह्रास हो गया।

प्रो. हबीब के कथनानुसार मगोलों के पारस्परिक द्वेष और विनाशकारी युद्धों ने दिल्ली सल्तनत की रक्षा की, जो मंगोलों के संयुक्त आक्रमण के सामने न ठहर सकती थी।

(२) **सैनिक शक्ति का ह्रास**—धीरे-धीरे मंगोलों के सैनिक स्तर का ह्रास हो गया था। वे स्त्री, बच्चे और वृद्धों सहित रण अभियान करते थे। ऐसी दशा में उन्हें युद्ध सामग्री, खाद्यान्न, सैनिक शिविर लगाने, उखाड़ने आदि में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था और मंगोल स्त्री व बच्चे समस्या बन जाते थे। इससे मंगोलों की सैन्य शक्ति खूब प्रभावित हुई और उनकी सैनिक कुशलता व दक्षता कम हो गयी थी। अनेक बार सुलतान अलाउद्दीन की सेना ने मंगोलों को परास्त करने के बाद उनके अनेकानेक स्त्रियों और बच्चों को बंदी बना लिया था और उनकी हत्या कर दी थी या दास-दासियों के रूप में वे बेच दिये गये थे। इस प्रकार स्त्रियों, बच्चों व वृद्धों से उनकी सैनिक शक्ति ही कम नहीं हुई, अपितु सेना की तीव्र गतिशीलता भी कम हो गयी।

(३) **विलासमय जीवन**—वर्षों की निरन्तर लूट-मार के कारण मंगोलों के पास अत्यधिक धन हो गया था। इस धन सम्पन्नता और राजवैभव से वे विलासमय जीवन व्यतीत करने लगे। इस भोग विलासिता और आमोद-प्रमोद के जीवन ने उनकी सैनिक शक्ति और सामरिक प्रवृत्ति मे शिथिलता ला दी और उनकी पूर्वकालिक शक्ति, साहस और वीरता का ह्रास हो गया।

(४) **मंगोलों की नीति में परिवर्तन और उनके गुणों का ह्रास**—मंगोल सैनिकों में धीरे-धीरे सामरिक गुण कम होने लगे थे। उनमें पहिले किसी प्रतिभा, रण-

कौशल, शौर्य, साहस, वीरता, फुर्ती,गतिशीलता, धैर्य और सहनशीलता नहीं रही थी। इससे उनकी सैनिक शक्ति निर्जीव, अवलम्ब रहित तथा निष्प्रभ बन गयी थी। उनमें परिश्रम शीलता, धीरज, सहिष्णुता और वीरता का प्राय: अभाव हो गया था। इन्हीं अभावों से मंगोल आक्रमणकारियों को दो बार दिल्ली के समीप पहुँच जाने पर पलायन करने के लिये बाध्य होना पड़ा और अलाउद्दीन ने उन्हें अपनी राज्य सीमा के पार खदेड़ दिया।

(५) **मंगोलों की दोष युक्त रण नीति**--घेरा डालकर, सैनिक शिविर में पड़े रहकर शत्रु की शक्ति धीरे-धीरे कम करते जाना और बाद उसे में खुले युद्ध में परास्त कर देना--इस युद्ध नीति को मंगोलों ने नहीं अपनाया था। यह नीति उनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी। वे केवल छापामार युद्ध ही सफलतापूर्वक कर सकते थे। मंगोल नेता राजधानी दिल्ली तक चले आये, परन्तु वे घेरा डाल कर दीर्घकाल तक पड़े रहने की क्षमता नहीं रखते थे। वे उतावली प्रवृत्ति के सैनिक थे।

(६) **दाऊदखां की मृत्यु**—मंगोल शासक दाऊदखां दीर्घकाल तक मंगोलों को भारत पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित करता रहा। क्योंकि वह भारत में मंगोल साम्राज्य स्थापित करने का महत्वाकांक्षी था। परन्तु उसके देहावसान के बाद मंगोलों की शक्ति मध्य एशिया में धीरे-धीरे क्षीण हो गयी। उसके उत्तराधिकारी इतने प्रबल और शक्तिशाली नहीं थे कि वे उसकी साम्राज्यवादी, विस्तारवादी नीति को कार्यान्वित करते। फलत: मध्य एशिया की राजनीति में अनेक समस्याओं का उत्कर्ष हुआ और मंगोल साम्राज्य में अस्त-व्यस्तता व्याप्त होगी। इसमें मंगोल अपनी सम्पूर्ण राजनैतिक और सैनिक शक्ति सहित भारत पर आक्रमण करने में असमर्थ रहे। धीरे-धीरे मंगोल मध्य एशिया और फारस की राजनीति में इतने उलझ गये कि वे भारत पर आक्रमण करने की नीति के प्रति उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे और उन्हें आक्रमण करने के अवसर भी कम मिलने लगे।

(७) **अलाउद्दीन की सुरक्षा नीति**—इस समय मंगोलों को अलाउद्दीन जैसे सुलतान का सामना करना पड़ा, जिसमें स्वयं सैनिक गुण कूट-कूट कर भरे थे। वह स्वयं सच्चा युद्ध ज्ञाता था। उसने यह अनुभव कर लिया था कि जब तक सीमान्त क्षेत्र की रक्षा नहीं होगी, मंगोल आक्रमणों को रोका नहीं जा सकेगा। इसलिये उसने सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा को अपना परम कर्तव्य समझकर उसकी समुचित व्यवस्था की। उसने पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र की रक्षा अपने अधीन समग्र साधनों से की। उसने गाजी मलिक जैसे कर्मठ तथा योग्य सेनापति के हाथ में सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा का भार दे दिया। उसने एक अत्यन्त विशाल, सुदृढ़, सुसंगठित, प्रशिक्षित तथा सशस्त्र सेना बनाई जिससे उसे मंगोल आक्रमणों के भय से मुक्ति मिली। उसने अपनी इस विशाल सेना से दृढ़ निश्चय के साथ मंगोल आक्रमणों को तब तक पीछे धकेला जब तक कि वे पूर्णरूपेण समाप्त नहीं हुए।

(८) **अलाउद्दीन की सैनिक प्रतिभा और आक्रमक नीति**-- अलाउद्दीन स्वयं एक कुशल सैनिक, एक महान सेनानायक और श्रेष्ठ योद्धा था। मंगोलों के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के मूल में अलाउद्दीन का अदम्य उत्साह, वीरता, सैन्य-संचालन,

रण-कुशलता, और उसकी सैनिक शक्ति थी। वह विदेशी मंगोल सेना का डटकर सामना करना और उसे हराकर खदेड़ देना अपना परम कर्तव्य समझता था। सुरक्षानीति के साथ-साथ उसने शत्रु देश पर आक्रमण करने की नीति भी अपनायी। उसने यह अनुभव करलिया था कि जबतक वह मंगोलों के आधार-स्थलों पर भयंकर प्रहार नहीं करेगा, वह उनकी घुसपेठों को पूर्णतः रोकने में सफल नहीं हो सकेगा। इसलिये उसने सुरक्षा की नीति के साथ-साथ आक्रमण की नीति भी अपना ली। जब मंगोल राज्य में अस्त व्यस्ता थी और जब अलाउद्दीन ने स्थिति अनुकुल देखी, तब उसने कावुल, गजनी, कंदहार आदि मंगोलों के सैनिक आधार स्थलों पर आक्रमण करने के लिये पर्वतीय श्रेणियों के पार गाजीमलिक के नेतृत्व में अपनी सेनाएँ भेजीं और मंगोलों को पूर्णरूपेण निस्तेज और निश्चेष्ट कर दिया।

मंगोल आक्रमणों के परिणाम

(१) मंगोलों के भयंकर और बर्बर आक्रमणों के कारण, उनके द्वारा नृशंस लूट और भीषण नर संहार के कारण, अनेक ग्राम और नगर नष्ट हो गये, लाखों व्यक्ति मौत के घाट उतार दिये गये और करोड़ों की धनसंपत्ति नष्ट हो गयी। इससे साधारण लोग अत्यधिक संकट ग्रस्त हो गये।

(२) मंगोलों के नृशंसता से त्रस्त लोग दिल्ली सुलतान की ओर अपनी सुरक्षा के लिये झुके। वे ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि सुलतान की शक्ति इतनी दृढ़ हो जाय कि वह मंगोलों को परास्त कर उन्हें खदेड़ सके। जनसाधारण सुलतान की शक्ति और सत्ता की महत्ता चाहने लगी। जब सुलतान ने मंगोलों को खदेड़ दिया तो सुलतान के प्रति जनता की श्रद्धा और भक्ति में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। वह सुलतान के प्रति अधिक राज्यभक्त हो गयी। इससे एक नवीन वातावरण निर्मित हुआ जिसमें अलाउद्दीन अपने आप को अधिक निरंकुश बना सका। उसके निरकुंश और स्वेच्छाचारी शासन में वृद्धि हुई।

(३) मंगोलों के आक्रमणों के नाश के लिये अलाउद्दीन ने अपने सैनिकों की संख्या खूब बढ़ा ली थी, उसने एक विशाल दृढ़ सेना संगठित कर ली थी। सारे राज्य में सैनिक वातावरण हो गया था। नगर और ग्राम में खूब सैनिक दृष्टि गोचर होते थे। इससे अलाउद्दीन के शासन का आधार उसकी सैन्य शक्ति हो गयी। सल्तनत का सैनिक शासन अलाउद्दीन के राज्य काल में अपनी चरम पराकाष्ठा तक पहुँच गया था।

(४) मंगोलों के विरुद्ध राज्य की सुरक्षा करने के बहाने अलाउद्दीन ने एक विशाल और सुव्यवस्थित सेना संगठित कर ली। जिसमें लगभग पांच लाख सैनिक थे। इस सेना को विधिवत् बनाये रखने और उसके व्यय की पूर्ति के लिये अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत में खूब लूट-पाट की, वहां के राजाओं को विवश कर उनसे प्रचुर धन संपत्ति उपलब्ध की, उत्तर में कर-वृद्धि की, हिन्दुओं का शोषण किया तथा अन्य आर्थिक शोषण के उपाय किये। सुलतान को बाजार नियंत्रण के कार्य तथा आर्थिक सुधार भी करना पड़े। इससे जनसाधारण को एक ओर आर्थिक बोझ उठाना पड़ा तो

दूसरी ओर सैनिकों के लिये जीवन की आवश्यक वस्तुओं के दाम निश्चित और नियंत्रित हो सके।

(५) अलाउद्दीन ने अपने अनेक महत्वाकांक्षी शक्तिशाली सेनानायकों और सामन्तों को, जिनसे उसे कुछ भय था, या जो अधिक शक्तिशाली होने पर उसके विरुद्ध विद्रोह कर सकते थे, मंगोलों के विरुद्ध युद्ध में भेज दिया, जहां अनेकों का नाश हो गया। उसने अपने प्रतिद्वंदी जलाली सामन्तों को उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर मंगोलों के विरुद्ध भेजा और मंगोलों से हुए युद्ध में अनेक सामन्त मारे गये। उसने अपने रणकुशल और अत्यधिक शक्तिशाली सेनापति जफरखां को भी कुमुक न भेजकर मंगोलों से युद्ध करवा कर उसे मौत के घाट उतरवा दिया।

(६) विशाल सेना को कार्य में व्यस्त रखना आवश्यक हो गया, क्योंकि खली मस्तिष्क शैतान का होता है। अतः मंगोल आक्रमणों को रोकने में और मंगोलों को परास्त करने में सफलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् अलाउद्दीन ने भारत के विभिन्न प्रदेशों व राज्यों को जीतने के लिये समय-समय पर इस सेना को भेजा था। इससे अलाउद्दीन भारत का प्रथम एकछत्र मुस्लिम सम्राट बन गया।

(७) अलाउद्दीन की विशाल सेना उसके देहावसान के बाद उसके उत्तराधिकारियों के लिए बड़ी समस्या बन गयी। उस विशाल सेना पर अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियों द्वारा नियंत्रण रखना दुष्कर कार्य हो गया। फलतः ऐसा गृहयुद्ध और संघर्ष प्रारंभ हो गया कि इसमें स्वयं खिलजी सल्तनत समाप्त हो गयी।

आन्तरिक विद्रोह

यदि बाह्य सुरक्षा के लिये अलाउद्दीन को मंगोलों का सामना करना पड़ा, तो आन्तरिक सुरक्षा और व्यवस्था के लिये उसे विद्रोहों का दमन करना पड़ा। ये विद्रोह निम्नलिखित हैं।

(१) अकतखां का विद्रोह (सन् १३०१) – जब सुलतान रणथंभोर दुर्ग को विजय करने के लिये सेना सहित जा रहा था, तब मार्ग में वह तिलपट के स्थान पर विश्राम और आखेट करने के लिये रुक गया। उसी समय उसके भतीजे अकतखां या इकतखां ने सुलतान का वध करके सिंहासनारूढ़ होने का निश्चय किया। इसके लिये उसने कुछ "नव-मुस्लिम" मंगोल धनुर्धारी सवारों, जो कि उसके दास थे, अपने साथ ले लिया। जब अलाउद्दीन अपने थोड़े से सेवकों और अंगरक्षकों सहित, शिकार को घेरे में लेने की प्रतीक्षा कर रहा था, तब अकतखां ने अपने साथियों सहित "शेर, शेर" चिल्लाते हुए सहसा अलाउद्दीन पर आक्रमण कर दिया और उस पर इतने बाणों की वर्षा की कि वह घायल और मूर्छित होकर गिर पड़ा। सुलतान के अंगरक्षकों के साहस और शौर्य के कारण अकतखां सुलतान अलाउद्दीन के समीप जाकर उसका मस्तक न काट सका। उसने सुलतान को गिरा देखकर और अंगरक्षकों के रुदन को सुनकर सुलतान को मृत मान लिया और सैनिक छावनी में आकर अपने आपको सुलतान घोषित कर दिया। सुलतान उसके अंगरक्षकों द्वारा की गयी मलहम पट्टी और सेवा सुश्रुषा से होश में आ गया और सुलतान मलिक हमीदुद्दीन के परामर्श से सैनिक शिविर में लौट

आया और सबके संमुख प्रगट होकर अपने जीवित रहने का प्रमाण दिया। इस पर अनेक अमीर भी उसके साथ हो गये। अकतखां सुलतान को जीवित पाकर अपनी प्राण रक्षा के लिये अफगानपुर की ओर भागा। परन्तु शाही सेना ने उसका पीछा किया और वह पकड़ लिया गया और उसका सिरच्छेद कर दिया गया। उसके भाई की भी हत्या करवा दी गयी तथा उसके परिवार के लोगों को कारागार में डाल दिया गया और उसकी संपत्ति का अपहरण कर लिया गया। उसके समर्थकों को लोहे के कोड़ों द्वारा मार-मार कर हत्या कर दी गयी और इस प्रकार निर्ममता से विद्रोह का दमन कर दिया गया।

(२) **अमीर उमर तथा मंगू खां के विद्रोह**—उमर और मंगूखाँ सुलतान अलाउद्दीन के भानजे थे तथा बदायूँ और अवध के प्रांतपति थे। जब अलाउद्दीन दिल्ली से दूर रणथंभोर की विजय में संलग्न था तब उसकी दीर्घकालीन अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उमर और मंगूखां ने विद्रोह का झंडा खड़ाकर दिया। पर वे विशेष तैयारियाँ न कर सके थे। उन्हें पूर्ण असफलता हाथ लगी। उनके विद्रोह को पूर्णतया कुचल दिया गया और इन दोनों को पकड़कर बन्दी बनाकर सुलतान के पास रणथंभोर भेजदिया। अलाउद्दीन ने खरबूजे की फांक के समान चाकू से उनकी आँखें निकलवालीं और बाद में इन दोनों को बन्दीगृह में डाल दिया गया और इनकी संपत्ति जब्त करली गई। विद्रोह द्वारा दिल्ली का राजसिंहासन प्राप्त करने का यह प्रयत्न भी निष्फल रहा।

(३) **हाजी मौला का विद्रोह**—(सन् १३०१) हाजी मौला दिल्ली के प्रसिद्ध कोतवाल फखरुद्दीन के एक दास का पुत्र था। और दिल्ली के कोतवाल काजी अला-उल् मुल्क के देहाबसान के बाद हाजी मौला स्वयं दिल्ली का कोतवाल बनना चाहता था। परन्तु सुलतान ने इस पद पर तुरमुजी को प्रतिष्ठित किया था। इससे हाजीमौला अत्यन्त ही असन्तुष्ट होगया और सुलतान से इसका प्रतिशोध लेने का इच्छुक था।

परिस्थितियों ने हाजीमौला को प्रोत्साहित किया। भूतपूर्व कोतवाल फखरुद्दीन और उसके परिवार के अच्छे प्रभाव का लाभ उठाकर उसने दिल्ली के अनेक महत्वशाली व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया था। दिल्ली के तत्कालीन कोतवाल तुरमुजी की कठोरता से अनेक नागरिक असन्तुष्ट होगये थे। उसने बदायूँ दरवाजे के समीप एक भवन निर्मित करवाया था और शासकीय व्यापार के लिये सीरी के मैदान में छप्पर डलवा दिये थे। इससे उससे असन्तुष्ट व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होगई। इसी समय सुलतान भी दिल्ली से बाहर था और रणथंभोर से सुलतान की सेना के संकट के समाचार दिल्ली पहुंच रहे थे जो यह प्रगट कर रहे थे कि सैनिकों में तीव्र असन्तोष है। इन सब का लाभ उठा कर हाजी मौला ने अलाउद्दीन का एक जाली फरमान या राजाज्ञा बनाकर दिल्ली के कोतवाल तुरमुजी को उसके निवासस्थान से बाहर बुलाकर उसका वध कर दिया। इसके बाद हाजीमौला ने सिरी के कोतवाल अलाउद्दीन अयाज का भी वध करने का प्रयत्न किया पर वह असफल रहा। अब उसने दिल्ली के समस्त बन्दियों को मुक्त कर दिया जिनमें से कुछ उसके साथ होगये। उसने शाही कोष को लूटकर जनसाधारण में धन वितरित किया। जो भी उसका मित्र होगया उसकी गोद स्वर्ण से परिपूर्ण करदी। इससे उसके साथियों और समर्थकों की संख्या में खूब वृद्धि

होगयी। इसके बाद उसने अलवी सय्यद को लालमहल में सिंहासन पर बिठा कर उसे सुलतान घोषित कर दिया। यह अलवी शाह नजफ के वंश का था। और मां की ओर से सुल्तान इल्तुतमिश से संबन्धित था। नगर के प्रतिष्ठित और गण-मान्य व्यक्तियों को उसके संमुख लाया गया। उन्होंने उसके प्रति राजभक्ति प्रदर्शित की। अब हाजी मौला शासन का सर्वेसर्वा हो गया।

जब अलाउद्दीन को हाजीमौला के विद्रोह के और उसकी कठपुतली सरकार के समाचार रणथंभोर में मिले, तब उसने अपने सौतेले भाई मलिक हमीदुद्दीन को विद्रोह का दमन करने के लिये भेजा। उसने विद्रोहियों को परास्त करदिया और हाजी मौला को मार डाला गया। इसके बाद अलवी का सर धड़ से अलग करके रणथंभोर में सुल-तान के पास भेज दिया। इसी बीच अलाउद्दीन ने अपने भाई उलूगखां को भी रणथंभोर से विद्रोह का दमन करने के लिये भेजा। पर उसके आने के पूर्व ही विद्रोह का अंत हो चुका था। अलाउद्दीन ने विद्रोहियों के संबंधियों, आश्रितों, समर्थकों आदि का निर्दयता-पूर्वक वध करवा दिया। उनकी सम्पत्ति जब्त करली गई और अनेकों को कारागार में डाल दिया।

हाजी मौला का विद्रोह प्रभुसत्ता प्राप्त करने के लिये इलबारी तुर्कों के अनेक प्रयत्नों में से एक था। इस विद्रोह से यह भी प्रगट होता है कि भारत पर मुस्लिम आधिपत्य असुरक्षित और क्षीण आधार पर स्थित था। और संगठित विद्रोह द्वारा सुलतान को अपदस्थ कर उसकी शक्ति को चुनौती दी जा सकती थी।

(४) **नव मुस्लिमों के षड़यंत्र और विद्रोह**— पिछले पृष्ठों में यह वर्णित किया जा चुका है कि जब सुलतान जलालुद्दीन के शासन-काल के समय अब्दुला के नेतृत्व में मंगोल आक्रमण हुए थे और उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया गया था। तब उन मंगोलों में से कुछ भारत में ही रह गये थे। उस समय चंगेजखाँ के एक पौत्र उलुगखां के साथ जलालुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था और उलुगखां अपने अनुयायियों सहित भारत में बस गया था। दिल्ली के समीप इन मंगोलों की बस्ती को मुग़लपुरा कहा जाने लगा था। इन मंगोलों ने भारत के मुसलमानों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध किये। इन मंगोलों को "नव मुस्लिम" कहा जाने लगा। ये शाही सेना में सैनिक बनगये। पर दरिद्रता और अभावों के कारण इन मंगोलों का जीवन अभिशाप बन गया और ये दिल्ली सल्तनत के लिये एक भयंकर खतरा बनगये। ये सुलतान के प्रति स्वामिभक्त भी नहीं थे और सुलतान से तीव्र असंतोष रखते थे। उसकी सत्ता व शक्ति के विरुद्ध षड़यंत्र भी करते थे।

जब शाही सेना गुजरात की लूट का विपुल धन लेकर और विजय करके लौट रही थी, तब इन मुस्लिम कहे जाने वाले मंगोलों ने षडयंत्र कर विद्रोह कर दिया। मंगोल सैनिकों के पास इस लूट का बहुत धन था। शाही सेनानायक नसरत-खाँ ने इन मंगोल सैनिकों से लूट के धन का विवरण और अवशिष्ट धन व राज्य के हिस्से (खुम्स) को माँगा। तत्कालीन प्रचलित नियमों के अनुसार लूट के धन का पाँचवाँ भाग सैनिक रखते थे और शेष चार भाग सुलतान को प्राप्त होता था। शाही सेनानायक उलुगखाँ और नसरतखाँ ने मंगोलों से लूट के माल का समुचित निर्धारण

करने के लिये अनेक प्रश्न पूछे और ⅕ भाग से अधिक भाग उनसे प्राप्त करने के लिये उन पर अनेक अत्याचार किये, उन्हें धोंकनी के भीतर वन्द कर दिया गया, उन्हें नमकीन पानी पीने के लिये बाध्य किया गया और डण्डों व घूंसों से उन्हें मारा भी गया। इस अमानवीय व्यवहार व कठोर दण्ड से वे उत्तेजित हो उठे। इसके अतिरिक्त उन्होंने उनके पास की लूट की सम्पत्ति का जो विवरण दिया, उस पर शाही सेनानायकों ने विश्वास नहीं किया। उन्होंने सैनिकों से अधिक धन माँगा तथा उनसे स्वर्ण,चाँदी,हीरे, जवाहरात एवं अनेकानेक बहुमूल्य वस्तुएँ बलपूर्वक छीन लीं। इससे नवमुस्लिमों में घोर असन्तोष व्याप्त हो गया। उन्होंने एकत्रित होकर विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। इनके नेता मुहम्मदशाह, कहब्रू, यलहक, बुर्राक, तिमुरबुगा, कुतलुगबुगा, तमगान आदि थे। इन्होंने सहसा एकत्रित होकर नसरतखाँ के भाई मलिक अइज्जुद्दीन जो उलुगखाँ का "अमीर हाजिब" (सचिव) था, को मार डाला और फिर उलुगखाँ के शिविर पर आक्रमण किया। पर वह स्नानार्थ बाहर गया था, इसलिये बच गया तथा विद्रोह की सूचना मिलने पर वह शीघ्र ही नसरतखाँ के शिविर में चला गया। अन्त में नसरतखाँ और उलुगखाँ दोनों ने मिलकर विद्रोह को दबा दिया तथा स्थिति पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया। इससे भयभीत होकर विद्रोही नेता और उनके मंगोल समर्थक भाग गये। मुहम्मदशाह और कहब्रू ने रणथम्भोर के राणा हम्मीरदेव के यहाँ शरण ली और यहलक तथा बुर्राक ने गुजरात के परास्त शासक कर्ण के यहाँ आश्रय पाया। इस समय कर्ण देवगिरी राज्य में नन्दुरबार में रह रहा था। जब अलाउद्दीन ने विद्रोह का समाचार सुना तब उसने विद्रोहियों की निर्दोष पत्नियों और बालकों को बन्दी बना लिया। यह प्रथम अवसर था जब अलाउद्दीन ने स्त्रियों तथा बच्चों को उनके पालकों और अभिभावकों के अपराध के लिये दण्डित किया। इसके बाद में यह प्रथा सुलतान ने राजनैतिक स्तर पर अपना ली और अनेक निर्दोषों को दण्डित किया। नसरतखाँ सुलतान के दण्ड से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने अपने भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये उसके भाई के वधिकों व विद्रोहियों के स्त्रियों और बच्चों पर अमानुषिक जघन्य अत्याचार किये। बच्चे माताओं के सम्मुख ही टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। इन स्त्रियों का सतीत्व लूटा गया, उनके साथ घोर अपमानपूर्ण व्यवहार किया गया और उन्हें उन दुराचारियों को सौंप दिया जिन्होंने वैश्याओं के समान उनका उपयोग किया। ऐसे जघन्य दण्ड किसी भी राज्य द्वारा या किसी भी धर्म संहिता द्वारा कभी भी मान्य नहीं किये गये थे।

विद्रोहों के कारण

ऊपर लिखित विद्रोह एक के बाद एक कुछ ही वर्षों की अवधि में हुए। इन विद्रोहों के प्रकोप ने अलाउद्दीन को विद्रोहों के कारण और उनके उन्मूलन की ओर ध्यान देने को प्रेरित किया। अब वह उदासीनता और विस्मरण की निन्द्रा से जाग उठा था और सोचने लगा कि शासन-व्यवस्था में कुछ मौलिक दोष हैं। इसलिये उसने मलिक हमीदुद्दीन, मलिक एइज्जुद्दीन, मलिक ऐनुलमुल्क तथा अन्य विश्वसनीय मित्रों से इस विषय में परामर्श किया। परिस्थितियों का गम्भीर अध्ययन किया और

विद्रोहों के कारणों पर चिन्तन कर उनका विश्लेषण किया। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विद्रोहों के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **गुप्तचर विभाग की अयोग्यता और सुलतान की अनभिज्ञता**—राज्य के गुप्तचर विभाग की अयोग्यता के कारण सुलतान को मलिकों, अधिकारियों तथा प्रजा के कर्तव्यों एवं व्यवहार का पता नहीं चलता। इससे सुलतान लोगों की गतिविधियों से अनभिज्ञ हो जाता है और बाद में वह प्रशासन के प्रति उदासीन हो जाता है। जनता तथा सुलतान में प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने के कारण जन साधारण सुलतान की अवज्ञा कर देती है, और सरलतापूर्वक तत्काल प्रभावशाली, सशक्त व महत्वाकांक्षी स्थानीय नेताओं के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर देती है।

(२) **अत्यधिक मद्यपान**—समाज में, अधिकारियों और सामन्तों में, राजसभा और समारोहों में, मद्यपान का सामान्य प्रचलन रहा। अनेकों बार मद्यपान की बाहुल्यता हो जाती रही। इससे मद्यपान करने वालों में भाई-चारे की भावना प्रेरित होती रही, अटूट मैत्री उत्पन्न होती रही और इससे विद्रोह तथा षडयंत्र करने के लिये उत्तेजना और प्रेरणा प्राप्त होती है।

(३) **सामन्तों की पारस्परिक मैत्री, सम्बन्ध और समारोह**—मलिकों, सरदारों और सामन्तों में परस्पर आना-जाना, मेलजोल, समीप की सम्पर्कता, मैत्री, विवाह सम्बन्ध, रिश्तेदारी, सामाजिक समारोहों में घनिष्टता आदि होती रहती है। इससे वे संकटकाल में एक दूसरे के सहायक बन जाते हैं, और सुलतान के विरुद्ध संगठित होकर षडयंत्र और विद्रोह करते हैं। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली सामन्तों व स्थानीय शासकों व हाकिमों पर सुलतान का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित न होने के कारण वे सदा विद्रोह करने को तत्पर रहते हैं।

(४) **धन सम्पन्नता और सुख-वैभव की प्रचुरता**—अमीरों, सामन्तों, मलिकों तथा कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के पास अनियंत्रित रूप से प्रचुर धन सम्पत्ति होने से, जनता के सुखी और सम्पन्न होने से, उनके मस्तिष्क में सुलतान के विरुद्ध षडयंत्र और विद्रोह करने का दुस्साहस होता है, राजद्रोह की भावना जागृत होती है और षडयंत्र व विद्रोह के चिन्तन के लिये उन्हें अवसर उपलब्ध होते हैं। षडयंत्रों, विद्रोहों और उपद्रवों के कारणों की खोज कर लेने के बाद अलाउद्दीन ने ऐसी नीति अपनाने का प्रयास किया जिससे कि भविष्य में विद्रोहों के युग का अन्त हो जाय। उसने इन कारणों के निराकरण के लिये ठोस कदम उठाये।

अलाउद्दीन के प्रशासकीय सुधार और विद्रोहों का निराकरण

सुलतान अलाउद्दीन ने विद्रोहों के कारणों का उन्मूलन करने के लिये कठोर दमन चक्र की नीति का आश्रय लिया तथा कठोर राज्याज्ञाओं द्वारा सुधार योजनाएँ कार्यान्वित कीं। ये निम्नलिखित हैं—

(१) **गुप्तचर विभाग का संगठन**—प्रजा की भली-बुरी बातों की सूचना प्राप्त करने के लिये, प्रजा-जन व अधिकारियों व मलिकों की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करने और आवश्यकता पड़ने पर उनके विषय में अधिक पूछ-ताछ करने

के लिये अलाउद्दीन ने गुप्तचर विभाग का संगठन किया। उसने गुप्तचरों को एक विशाल सेना के रूप में संगठित किया। उसने मलिकों, सामन्तों, अधिकारियों, भूमिपतियों आदि के निवास स्थानों, कार्यालयों, नगरों, ग्रामों, मोहल्लों आदि में गुप्तचर और संवाददाता नियुक्त किये, सारे राज्य में उनका जाल-सा बिछा दिया। ये गुप्तचर अपने कार्यों में बहुत ही दक्ष थे और सुलतान को निरन्तर सूचनाएँ और संवाद भेजते रहते थे। अमीरों और अधिकारियों की गुप्त गोष्ठियों की खबरें, राज्य की विशिष्ट तथा सामान्य जनता की बातें, उनकी विचारधाराएँ, गतिविधियाँ आदि सुलतान के कानों तक पहुँच जाती थी। कहाँ क्या हो रहा है? कौन अमीर, सरदार या पदाधिकारी सुलतान के विरुद्ध क्या सोच रहा है, क्या कह रहा है और कौनसा कार्य कर रहा है, आदि महत्वपूर्ण बातों की सूचना सुलतान को शीघ्र प्राप्त हो जाती थी और सूचना पाते ही सुलतान कठोर से कठोर दण्ड के द्वारा इन विरोधियों का दमन कर देता था। बर्नी के शब्दों में 'गुप्तचरों का कार्य इस सीमा तक पहुँच गया था कि मलिकों को हजार सतून (राजभवन) के भीतर भी किसी बात के कहने का साहस नहीं होता था। यदि वे कोई बात भी करते तो संकेत द्वारा करते थे।" कोई भी घर में बैठकर भी ऐसी बात या कार्य नहीं करता जिससे दण्ड का भय हो या सजा मिले। इस गुप्तचर संगठन का यह परिणाम हुआ कि सुलतान को बाजार के समस्त समाचार, क्रय-विक्रय के विवरण तथा अन्य बातें मालूम हो जाती थीं और वह शीघ्र ही समुचित व्यवस्था भी करवा देता था। इसी गुप्तचर प्रथा के कारण सुलतान ने शक्तिशाली अमीरों, जलाली सरदारों, हिन्दू भूमिपतियों को सरलता से कुचल दिया और षड्यन्त्रों व विद्रोहों की शंकाओं को निर्मूल कर दिया। पर इस प्रथा के फलस्वरूप कभी-कभी गुप्तचर सुलतान की विशेष कृपा अर्जित करने की आशा में बाजार की निरर्थक गप्प भी सुलतान के कानों तक पहुँचा देते थे।

(२) **मादक द्रव्यों के सेवन और मद्यपान पर नियंत्रण**—अलाउद्दीन ने मादक द्रव्यों के सेवन और मद्यपान पर, सुरा के क्रय-विक्रय पर पूर्णरूपेण रोक लगादी। इनके लिये उसने निषेधात्मक राज आज्ञाएँ प्रसारित कीं। उसने कच्ची शराब व ताड़ी पीने, भांग का सेवन करने तथा जुए खेलने को भी कानून द्वारा अवैध घोषित कर इनका अंत करवा दिया। मदिरा पान करने वाले, जुआरिओं और ताड़ी पीने वालों को शहर से बाहर निकाल दिया जाता था। परन्तु जब शराब का क्रय-विक्रय व पान गुप्त रूप से भी चलने लगा, तब उसने शराबियों को बन्दीगृहों में डालने के आदेश दिये और इसके बाद मदिरा के अभियोग में पकड़े जाने वालों को कुओं में डाल दिया जाता था। इसके लिये कुए खुदवाये गये थे। मादक द्रव्यों और सुरा के क्रय-विक्रय से जो राज्य-कर प्राप्त होते थे वे समाप्त कर दिये गये। मद्यपान के बंद होने से राजधानी दिल्ली और उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्र में मद्य निषेध पूर्णरूपेण हो गया और वह ड्राय एरिया (Dry Area) घोषित कर दिया गया। स्वयं सुलतान अलाउद्दीन ने सर्वसाधारण के संमुख आदर्श प्रस्तुत किया। बर्नी के अनुसार स्वयं सुलतान ने अपनी मद्यपान की महफिलों की सुराहियों को, बोतलों, चांदी, सोने के बर्तनों व सुरा पात्रों को तुड़वा डाला और बदायूं दरवाजे पर इनका विशाल ढेर लग गया। शराब के बर्तन

और मटके लुढ़कवा दिये। इससे इतनी शराब फेंक दी गयी कि धरती पर वर्षा ऋतु के समान कीचड़ हो गयी। सुलतान अलाउद्दीन ने मद्यपान के आयोजनों से संबंधित सामाजिक समारोहों का पूर्ण त्याग कर दिया।

कैद और कुओं के भय से बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने मद्यपान त्याग दिया, पर जो किसी भी प्रकार मद्यपान से नहीं रुक सकते थे, वे बर्नी के अनुसार यमुना पार करके तीस पैंतीस किलोमीटर दूर जाकर मदिरापान करते थे। किन्तु दिल्ली के समीप ग्यासपुर, इन्द्रपत, (इन्द्रप्रस्थ), किलोखड़ी तथा उसके आसपास लगभग १५ किलोमीटर तक के ग्रामों व कस्बों में कोई भी मदिरापान नहीं कर सकता था और न शराब बेच सकता था।

कुछ समय पश्चात् जब सुलतान ने देखा और अनुभव किया कि प्रतिबंध के बावजूद भी चोरी-छिपे शराब पीने और क्रय-विक्रय करने का सिलसिला जारी रहा और निषेधाज्ञाओं से लोगों को बड़ी असुविधाएँ हो रही हैं, तब उसने नियम शिथिल कर दिये, लोगों को घरों में भट्टी से शराब निकालने और पीने की छूट देदी गयी, परन्तु सामाजिक समारोहों और गोष्ठियों में मद्यपान न करने की निषेध आज्ञाएँ बनी रहीं। इनका परिणाम यह हुआ कि, बर्नी के शब्दों में "जिस तिथि से नगर में शराब व ताड़ी की निषेध आज्ञाएँ हो गयीं, उस तिथि से विद्रोह की वार्ता समाप्त हो गयी और विद्रोह का भय न रहा।"

(३) **अमीरों और मलिकों पर नियंत्रण**–अमीरों, सामन्तों, प्रतिष्ठित तथा गणमान्य लोगों पर अलाउद्दीन ने विभिन्न अद्वितीय नियंत्रण लगाये। इनमें निम्नलिखित प्रमुख थे।

(i) **वैवाहिक संबंधों पर नियंत्रण**–विद्रोही प्रवृत्ति के सामन्त और मलिक परस्पर संबंध स्थापित न कर सके, इसलिये अलाउद्दीन ने यह नियम बना दिया था कि बिना सुलतान के आदेश और अनुमति कोई भी अमीर, पदाधिकारी, मलिक या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति परस्पर वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं कर सकते थे। सरदारों व मलिकों को स्वेच्छानुसार वैवाहिक संबंध बनाने की स्वतंत्रता नहीं रही। विवाह के अवसर पर होने वाले नृत्य, संगीत और जुलूसों पर भी प्रतिबंध लगा दिये गये। इस नियंत्रण से मलिकों और सरदारों पर सुलतान का प्रभाव और भी अधिक गुरुतर बन गया।

(ii) **मिलन, सहभोजों और गोष्ठियों पर प्रतिबंध**–अमीर, मलिक, पदाधिकारी तथा अन्य लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्तियों के परस्पर मिलने-जुलने, एक दूसरे के निवास पर एकत्रित होने, आपस में एक दूसरे को प्रीतिभोज देने पर रोक लगा दी, जिससे कि वे सुलतान के विरुद्ध परस्पर किसी प्रकार का गुट न बना सकें। सहभोजों, प्रीतिभोजों, आनन्दोत्सवों, गोष्ठियों आदि का व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्थानों पर निषेध कर दिया गया, जिससे वे पारस्परिक मेल-मिलाप और घनिष्ठ संबंध स्थापित करने से वंचित हो जांय।

(iii) **परिणाम**–इन प्रतिबंधों का यह परिणाम हुआ कि अमीर, मलिक और पदाधिकारी अपने महलों और निवास स्थानों में स्वतंत्रतापूर्वक बातचीत नहीं कर

पाते थे। उनमें अब इतना साहस नहीं था कि वे किसी से कोई बात कहते, या सुनते या क्षण भर के लिये बैठकर अपने दुखों और कष्टों का वर्णन कर पाते। वे सुलतान के प्रशासन की आलोचना भी नहीं कर पाते थे। मलिक व अमीर परस्पर एक दूसरे से संकेत द्वारा वार्ता करने लगे थे। इन कठोर प्रतिबंधों से अलाउद्दीन का आतंक समाज पर छा गया, पर सामाजिक जीवन का आनन्द, उल्लास और आकर्षण समाप्त हो गया और जीवन नीरस और असह्य भार सा बन गया।

(४) **संपत्ति का अपहरण और आर्थिक शोषण**–धन की बाहुल्यता और सुख वैभव की प्रचुरता अलाउद्दीन विद्रोह का कारण समझता था। इसलिये अमीरों, मलिकों, पदाधिकारियों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों आदि की संपत्ति और समृद्धि पर आघात करके, उनका आर्थिक शोषण करके अलाउद्दीन ने उन्हें दरिद्र बनाने की नीति अपनाई। इसके लिये उसने निम्नलिखित ठोस कार्य किये।

(i) सुलतान ने अपने अधीनस्थ प्रदेशों के हाकिमों या प्रांतपतियों के हिसाब की जांच करवायी और उनका प्रचुर धन छीन लिया। उसने उनके पास केवल इतना धन छोड़ दिया कि वे किसी प्रकार जीवन निर्वाह कर सकें। उसने ऐसे सैनिक नियम बनाये जिनसे प्रांतपतियों का उनकी सेना पर कोई अधिकार नहीं रह गया। प्रांतीय सेना में नियुक्ति, नियंत्रण, स्थानान्तर, पदोन्नति,आदि के अधिकार प्रांतपतियों से लेकर सुलतान ने स्वयं अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर लिये। इससे प्रांतपतियों की सैनिक और आर्थिक शक्ति क्षीण हो गयी और वे विद्रोह या षडयंत्र करने में असमर्थ हो गये।

(ii) **धन सम्पत्ति का अपहरण**–अमीरों, मलिकों और धनसपन्न व्यक्तियों की धनसंपत्ति छीन कर उन्हें दरिद्र बना दिया गया। अधिकारियों को यह आदेश दिया गया कि वे हर उपाय और बहाने से धनवानों से अधिकाधिक धन वसूल करें। जिससे किसी के पास अधिक धन न बच सके।

(iii) **भूमि की जब्ती**–अनेक अमीरों, पदाधिकारियों, विद्वानों और धर्म शास्त्रियों के पास राज्य की ओर से भेंट, अनुदान, वजीफा या पुरस्कार के रूप में भूमि दी गयी थी और वे उनका उपयोग करते थे। सुलतान ने यह आदेश दिये कि समस्त भूमि-संपत्ति, ग्राम और अन्य भूमि, जो लोगों के पास मिल्क (संपत्ति), मफरूज (स्वामित्व के अधिकार सहित प्राप्त भूमि), इनाम तथा वक्फ (धार्मिक उपयोग की भूमि) के रूप में है वापिस लेली जाय और उसे खालसा (राज्य की भूमि) में सम्मिलित कर ली जाय। फलत: अमीरों की जागीरें छीन ली गईं। व्यर्थ के लोगों की पेंशनें बंद कर दी गयी और राज्य द्वारा पुरस्कार व उपहार देना बंद कर दिया गया।

(iv) **करों में वृद्धि**–सुलतान ने कर वसूल करने वालों को अत्यधिक धन कर से प्राप्त करने के आदेश दिये जिससे सल्तनत की आय में वृद्धि हुई और राजकोष धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया। भूमि-कर भी बढ़ा दिया गया। किसानों को यह आदेश दिया गया कि वे उपज का आधा भाग भूमि कर के रूप में बिना किसी कमी के दें। अलाउद्दीन ने अहीरों, गड़रियों, और साधारण परिवारों को भी नहीं छोड़ा। भैंस से लेकर बकरी तक पर चराई-कर लगाया गया। जो भी पशु दूध देता था, उस पर भी कर लगाया गया। घर के स्वामी से गृह कर भी वसूल किया गया।

(v) इस नीति का परिणाम यह हुआ कि धनिकों की व्यक्तिगत भूमि और जायदाद तथा अमीरों व मलिकों की जागीरें समाप्त हो गयीं और वे इतने दरिद्र हो-गये कि जीविका-उपार्जन करने के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर सोचने और मनन करने का अवसर ही उनके पास नहीं रहा। दरिद्र होने से लोग जीविका-उपार्जन में इतने अधिक फंस गये कि वे विद्रोह या षड़यंत्र का नाम तक नहीं ले सकते थे। तत्कालीन इतिहास कार बर्नी का कथन है कि, "प्रचुर मात्रा में धन संपत्ति, अधिकतर लोगों के पास शेष न रही, केवल कुछ बड़े पदाधिकारियों, मुल्तानियों (सिंधी व्यापारियों) तथा साधुओं के पास कुछ हजार तनके (स्वर्ण-मुद्राएँ) रह गये।"

(५) **हिन्दुओं के प्रति व्यवहार और उनका दमन**–अलाउद्दीन हिन्दुओं को दिल्ली सल्तनत के लिये एक भयानक खतरा समझता था। इसलिये उसने उनका दमन करने और उनकी कमर तोड़ने का निश्चय किया। हिन्दुओं का उच्चवर्ग अधिक संपन्न था। अधिकांश भूमिपति हिन्दू थे और हिन्दुओं का ही कृषि पर एकाधिकार था। हिन्दू सरदार और भूस्वामी मुस्लिम शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने की कामना निरंतर रखते थे और संपन्नता के कारण व्यवहार में भी वे अहंकारी थे और किसी भी दशा में वे चाटुकारिता प्रदर्शित करने के इच्छुक नहीं थे। प्रत्येक गांव में राजस्व विभाग के कर्मचारी व अधिकारी हिंदू होते थे। खूत (भूमिकर वसूल कर कोषागार में जमा करने वाले अधिकारी), मुकद्दम (ग्राम का मुखिया), चौधरी और बलाहारी (साधारण कृषक) हिंदू होते थे। इनका प्रभाव खूब था। अलाउद्दीन इन्हें विद्रोह के स्रोत समझता था। इसलिये उसने हिन्दुओं का सर्वनाश करने के लिये कार्य किये। बर्नी का कथन है कि सुलतान ने हिन्दुओं को कुचल डालने के लिये कई नियम जारी किये। उसके ये कार्य और नियम निम्नलिखित हैं।

(i) उसने राजाज्ञाओं द्वारा हिन्दुओं की संपत्ति छीन ली। उन्हें शक्तिशाली और संपन्न नहीं रहने दिया, जिससे कि वे राज्य के लिये संकट के स्रोत न हो सकें।

(ii) खूतों और मुकद्दमों के विशेष अधिकार समाप्त कर दिये। खूत तथा बलाहार को यह आदेश दिया कि वह खिराज या भूमिकर को चुकाने के संबंध में निश्चित नियम का पालन करें। मुकद्दम को यह आदेश दिया गया कि जो कुछ भी भूमि-कर की धन राशि वह वसूल करें, उसे सीधे राजकोष में जमा करदें। मुकद्दम स्वयं को कृषि के लिये चार बैल से अधिक और दो भैंस तथा दो गाय और बारह बकरियों से अधिक रखने का अधिकार नहीं दिया गया।

(iii) सुलतान ने भूमि-कर बढ़ाकर उपज का आधा कर दिया और इसका भार हिन्दुओं पर पड़ा। उन्हें यह आदेश दिया गया कि वे उपज का आधा भाग भूमि-कर के रूप में बिना किसी हिचक और कमी के दे दिया करें।

(iv) सुल्तान ने भूमि कर में वृद्धि करने के अतिरिक्त पशुओं, भेड़ों, बकरियों तथा चरगाहों पर भी कर लगा दिये। भेड़ से लेकर बकरी तक पर चराई कर हिंदुओं को देना पड़ता था। दुधारु पशुओं पर उसने कर लगा दिये। उसने हिन्दू अहीर, गडरिये तथा अन्य निर्धन हिन्दुओं को भी आर्थिक शोषण से नहीं छोड़ा। उसने आवास-कर भी लगाया जो घर के स्वामियों को देना पड़ता था।

(v) हिन्दुओं पर जजिया कर विशेष रूप से लगाया जाता था। स्त्रियां, बच्चे और पागल इस कर से मुक्त थे। जो हिन्दू इस्लाम ग्रहण कर लेते थे, वे भी इस कर से मुक्त कर दिये जाते थे। जजिया कर का मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं (काफिरों) को अपमान जनक स्थिति में रखना था। जजिया कर की वसूली के समय, जिम्मी (हिन्दू) का गला पकड़ा जाता था, और उसे जोर से हिलाया जाता तथा झकझोर दिया जाता था, जिससे जिम्मी को अपनी निम्न स्थिति का ज्ञान हो सके।

(vi) हिन्दुओं पर जकात कर की दर दूनी कर दी गयी। मुसलमानों के लिये जकात कर की दर पाँच प्रतिशत तो हिन्दुओं के लिये दस प्रतिशत थी। जकात कर प्रत्यक्ष संम्पत्ति जैसे सोना, चांदी, पशु समूह और व्यापारी वस्तुओं पर लगाया जाता था। उपज का आधा भाग भूमि कर के रूप में राजकोष में जमा करने के बाद शेष आधे में से चराई कर,आवास कर, जजिया कर आदि विभिन्न कर हिन्दुओं को चुकाने पड़ते थे। इससे जीवन निर्वाह के लिये कुछ बच ही नहीं पाता था।

(vii) राजस्व विभाग के कर्मचारी अमीन, मुतसर्रिफ,नवीसिन्दे (पटवारी या लिपिक) हिन्दू होते थे। ये राजस्व (भूमि कर) एकत्र करते थे। अलाउद्दीन इन्हें भ्रष्ट समझता था। इसलिये वह उनकी राजस्व पुस्तकों (बहियों) का निरीक्षण करवाता तथा रिश्वत लेने और झूठा हिसाब देने पर उन्हें निर्दयतापूर्वक दंड दिया जाता था। कोड़ों की मार और यंत्रणाओं से उनका शरीर सूजा दिया जाता था और उनकी सम्पत्ति छीनकर उन्हें भिखारियों की दशा में ला दिया जाता था तथा कई को बंदीगृह में डाल दिया जाता था। इससे ये कर्मचारी सदा कठोर दंड के भय से आतंकित रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ये पद अत्यंत ही हीन और निकृष्ट माने जाने लगे थे। बर्नी का कथन है कि "नवीसिन्दे को कोई अपनी पुत्री विवाह में नहीं देता था और मुतसर्रिफ (अधीक्षक) का कार्य वे ही लोग स्वीकार करते थे जिसे जीवन का मोह नहीं था। क्योंकि ये राजस्व कर्मचारी अपने अधिकांश दिन लात घूँसे खाते हुए कारागार में व्यतीत करते थे।"

दमन नीति के परिणाम

हिन्दुओं के प्रति इस प्रकार कठोर दमन नीति अपनाने का परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं को जो किसी न किसी रूप में भूमि और कृषि के व्यवसाय पर निर्भर थे,भारी आघात पहुँचा और वे घोरतम दरिद्रता से घिर गये। हिन्दुओं पर लगाये हुए करों को अत्यंत ही निर्दयता से वसूल किया जाता था और करों का भुगतान न करने पर उन्हें नृशंसतापूर्वक दंडित किया जाता था।

शासकीय कर्मचारियों और अधिकारियों की विशेष कुदृष्टि हिन्दुओं पर रहती थी। यदि वे किसी कर से बचने का प्रयत्न करते थे तो उनको कठोर दंड दिया जाता था। करों के भार से वे इतने अधिक निर्धन हो गये थे कि बर्नी ने लिखा है कि (हिन्दू) "घोड़े की सवारी करने, अस्त्र-शस्त्र धारण करने, सुन्दर वस्त्र पहिनने, पान खाने (विलासमय जीवन व्यतीत करने में) वे असमर्थ हो गए थे।...वे इतने आज्ञाकारी हो गए थे कि दीवान का एक सरहग (चपरासी) कस्बों के बीसों खूतों, मुकद्दमों

तथा चौधरियों को एक रस्सी में बाँधकर खिराज देने के लिये मारता था। हिंदुओं के लिये सर उठाना असंभव था। उनके घरों में सोने, चांदी, टंके तथा जीतल, धन संपत्ति का, जो षड़यंत्र तथा विद्रोह के कारण थे, चिह्न तक अवशेष नहीं रह गया था। दरिद्रता के कारण खूतों तथा मुकद्दमों (हिन्दुओं) की स्त्रियां और बच्चे मुसलमानों के घर जाकर काम करने लगे और मजदूरी पाने लगे।" सरवुल्जे हेग का कथन है कि "सम्पूर्ण राज्य में हिन्दू अत्यंत निर्धन तथा विपन्न हो गये थे और सबसे अधिक दयनीय दशा तो उन व्यक्तियों की थी जो परम्परा से कर वसूल करते तथा उसको निर्धारित किया करते थे।" अलाउद्दीन की राजसभा के एक प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान मुहद्दिस मौलाना शमसुद्दीन तुर्क ने भी अलाउद्दीन की इस हिन्दू विरोधी दमन नीति की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "सुलतान ने हिन्दुओं को लज्जित, पतित, अपमानित तथा निर्धन बना दिया है। मैंने सुना है कि हिन्दुओं की औरतें तथा बच्चे मुसलमानों के द्वार पर भीख मांगा करते हैं। ऐ बादशा इस्लाम ! तेरी यह धर्म निष्ठा सराहनीय है। तूने मुहम्मद साहब के धर्म की भलिभाँति रक्षा की है।"

अलाउद्दीन की हिन्दू विरोधी नीति की समीक्षा—कतिपय विद्वानों का मत है कि अलाउद्दीन की हिन्दू-विरोधी नीति तत्कालीन राजनैतिक आवश्यकता थी, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं पर कठोर प्रहार करना अनिवार्य हो गया।

हिन्दू लोग अपनी धन सम्पन्नता के कारण उत्पात, षड़यंत्र, विद्रोह, आदि न करें, वे सुलतान के प्रति स्वामिभक्त हों, इसलिये उसने अमीरों और मलिकों के साथ साथ हिन्दुओं को भी कुचला। विद्रोहों को उन्मूलन करने की उसकी यह नीति थी। इसके अतिरिक्त राजस्व में उसने जो सुधार योजनाएं अपनाईं, उससे अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दुओं का दमन हुआ। उसने हिन्दुओं के प्रति जो भी नीति अपनाई वह राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति और सुधारों को कार्यान्वित करने के लिये की गयी थी। यह मत भ्रममूलक है और एकांगी है। यह निर्विवाद है कि सुलतान अलाउद्दीन और उसके अधिकारी व परामर्शदाता कट्टर धर्मान्ध मुसलमान थे। उनमें हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता और अनुदारता की भावना थी। फलतः अलाउद्दीन हिन्दुओं को अपनी प्रजा के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहता था। उन्हें वह कर देने वाला (जिम्मी) समझता था। उसके अनुसार हिन्दुओं को राज्य की आज्ञाएँ पूर्ण रूप से माननीय होना चाहिये। वे किसी भी तरह उनका विरोध नहीं कर सकते थे।अलाउद्दीन में अपनी हिन्दु जनता के प्रति अच्छा व्यवहार करने की भावना और दृढ़ता नहीं थी। उसने अपनी हिन्दु और मुस्लिम प्रजा के साथ भेद-भाव पूर्ण नीति अपनाई। उसने हिन्दुओं को मुसलमानों के समान ऊँचे शासकीय पदों पर नियुक्त नहीं किया, उनमें विश्वास नहीं रखा। उन पर करों का अत्यधिक बोझ लाद कर उन्हें निर्धनता के गड्ढे में ढकेल दिया। उसने हिन्दुओं के जन कल्याण और हित की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। हिन्दुओं के प्रति इस्लाम के अनुसार किस प्रकार की नीति अपनायी जाय, इस विषय में सुलतान ने अपने काजी मुगीश से परामर्श भी किया था। इस पर काजी ने सुलतान को सलाह दी कि, "जब कर वसूल करने वाला उससे (हिन्दू से) चांदी मांगे, तो वह बिना कुछ सोचे-विचारे आगा-पीछा किये सोना दे दें। यदि कर वसूल करने वाला

उसके मुंह में थूकना चाहे, तो वह बिना किसी आपत्ति के मुंह खोल दे जिससे कि वह उसके मुंह में सरलतापूर्वक थूक दे।.........हिन्दुओं को इस प्रकार अपमानित, दंडित और दरिद्र बनाने से इस्लाम का सम्मान बढ़ता है।......हिन्दू को अपमानित करना सर्वश्रेष्ठ है। मुस्तफा अहले इस्लाम (पैगम्बर मुहम्मद) ने हिन्दुओं के संबंध में यह आज्ञा दी है कि उनका वध करवा दिया जाय, उनकी धन-संपत्ति लूट ली जाय, अथवा उन्हें बन्दीगृह में डाल दिया जाय; अथवा धन-द्रव्य का अपहरण कर लिया जाय।" अलाउद्दीन ने अपने अधिकारी और काजी के इस परामर्श को कार्यान्वित किया क्योंकि वह इस्लाम के कुरान की शरा के अनुसार कार्य करना चाहता था। इसके अतिरिक्त अबूहनीफा नामक इस्लाम के एक अन्य धर्माचार्य ने हिन्दुओं से जजिया कर वसूल करने की आज्ञा प्रदान की थी, जबकि अन्य व्यक्तियों ने कहा कि "उनकी हत्या कर दी जाय या उनसे इस्लाम स्वीकार कराया जाय।" इस विचार-विमर्श और परामर्श से स्पष्ट है कि अलाउद्दीन हिन्दुओं के दमन के लिये कृत संकल्प था। इस्लाम का अनुयायी होने के कारण हिन्दू विरोधी नीति अपनाना, अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये, राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये और कुरान की शरा के अनुसार कार्य करने के लिये हिन्दुओं का दमन करना उसने अपना कर्त्तव्य समझा।

सारांश

अलाउद्दीन को सुलतान बनने के शीघ्र ही बाद बाह्य और आन्तरिक सुरक्षा का सामना करना पड़ा। दिल्ली सल्तनत का उत्तर पश्चिमी सीमांत क्षेत्र असुरक्षित था और इससे मंगोल सल्तनत पर निरंतर आक्रमण कर रहे थे। सल्तनत के भीतर षड़यंत्रों, विरोधों, विद्रोहों का उसे सामना करना पड़ रहा था। इनके निवारण के लिए और बाहरी तथा आन्तरिक सुरक्षा स्थापित करने के लिए अलाउद्दीन ने निम्नलिखित कार्य किए।

मंगोल आक्रमण नीति

इस समय मध्य एशिया में मंगोल शासक दाऊदखां ने अफगानिस्तान में गजनी पर अधिकार करके, सीधे दिल्ली पर आक्रमण करके सल्तनत को अपने अधिकार में करने की नीति अपनाई, उसने सीमांत क्षेत्र में आक्रमण करके लूटपाट करने की नीति त्याग दी।

अलाउद्दीन की मंगोल नीति

(१) उसने सीमांत क्षेत्र में प्राचीन दुर्गों का जीर्णोद्धार किया, नवीन दुर्गों का निर्माण किया, उसने दुर्गों को एक शृंखला बना दी। उनमें उसने मंगोलों का सामना करने के लिए रण-कुशल अनुभवी सैनिक और अधिकारी रखे। (२) पर्याप्त युद्ध सामग्री व खाद्यान्न की व्यवस्था की। (३) सेना की संख्या बढ़ाकर लगभग पांच लाख कर दी। (४) सीमांत सुरक्षा का भार अनुभवी सेनानायक गाजी मलिक को सौंपा। (५) आक्रांताओं की गतिविधियों से अवगत होने के लिए संदेश वाहन और गुप्तचर व्यवस्था संगठित की। (६) युद्ध में बंदी बनाये गये मंगोलों के प्रति कड़ी दमन की नीति अपनाई और

कई बंदी मंगोलों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा उन्हें अत्यधिक आतंकित कर दिया गया।

मंगोलों के आक्रमण

(१) कादर और दाऊदखाँ के आक्रमण—जब १२९६ में मंगोलों ने कादरखां के नेतृत्व में आक्रमण किया और लाहौर तक चले आए, तब सुलतान के सेनापति जफरखां ने उन्हें परास्त कर दिया। सन् १२९७ में जब मंगोलों ने दाऊदखां के नेतृत्व में आक्रमण किया, तब जफरखां और उलूगखां ने उन्हें परास्त कर दिया और बीस सहस्र मंगोलों को मार डाला। **(२) साल्दी का आक्रमण**—जब सन् १२९८ में दाऊदखां ने साल्दी के नेतृत्व में मंगोलों को भेजा और वे सिंध तक चले आए, तब सुलतान के सेनापति जफरखां ने उन्हें परास्त कर दिया और साल्दी को उसके अनुयायियों सहित बन्दी बना लिया। **(३) कुतलुग ख्वाजा का आक्रमण**—सन् १२९९ में चिढ़कर दाऊदखां ने अपने पुत्र कुतलुग ख्वाजा के नेतृत्व में मंगोलों को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए भेजा। यह अत्यधिक भयंकर मंगोल आक्रमण था। मंगोलों ने दिल्ली के समीप अपना सैनिक शिविर डालकर घेराबंदी कर दिल्ली के लिए अत्यन्त ही संकटापन्न स्थिति उत्पन्न कर दी। अलाउद्दीन ने भी उलूगखां और जफरखां सहित कीली के मैदान में मोर्चा बंदी की और बाद में युद्ध करके मंगोलों को परास्त कर खदेड़ दिया। पर भागते हुए मंगोलों का पीछा करने में घिर जाने के कारण जफरखां बड़ी वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए मारा गया। **(४) तरगी का आक्रमण**-सन् १३०३ में मंगोलों ने तरगी के नेतृत्व में दिल्ली जीतने के लिए आक्रमण किया और दिल्ली के समीप यमुना तट पर अपने सैनिक शिविर डाल दिये। वे दिल्ली नगर पर धावे करने लगे और शाही राजकोष को लूट लिया। उन्होंने दिल्ली को सहायता और कुमुक प्राप्त होने के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिये। ऐसे समय अलाउद्दीन ने मंगोलों से खुले में युद्ध करने की अपेक्षा अपनी सैनिक छावनी दृढ़ करके सुरक्षात्मक नीति अपनाई। इससे निराश होकर चालीस दिन के घेरे के बाद तरगी लौट गया। **(५) अलीबेग व ख्वाजा तास का आक्रमण**—अपनी पराजय से खीजकर मंगोलों ने सन् १३०५ में अलीबेग और ख्वाजा तास के नेतृत्व में आक्रमण किया। ये उपजाऊ और समृद्ध प्रदेश दोआब तक बढ़ आये। पर सुलतान द्वारा भेजे गये गाजी मलिक की सेना में और मंगोलों में भयंकर युद्ध हुआ। इसमें वे हार गये और बहुसंख्यक मंगोल मारे गए और अनेकानेक बंदी बनाकर अलाउद्दीन के संमुख प्रस्तुत हुए। सुलतान ने इनके सिर कटवा कर सोरी में बन रही मीनारों में ईंटों और पत्थर के स्थान पर उनका उपयोग किया। **(६) कुबक व इकबालमंद का आक्रमण**— सन् १३०६ में कुबक मंगोलों की सेना लेकर मार्ग में लूटता हुआ पंजाब में रावी नदी तक बढ़ आया और इकबालमंद दूसरी मंगोल सेना सहित दिल्ली के दक्षिण पश्चिम में नागौर तक पहुंच गया। सुलतान के सेनानायक मलिक काफूर और गाजी मलिक ने पहिले कुबक को परास्त किया और बाद में इकबाल-मंद को। अनेक मारे गए और बहुसंख्यक मंगोल सैनिक, स्त्री और बच्चे दिल्ली में दास-दासी के रूप में बेच दिए गए।

मंगोलों के विरुद्ध अलाउद्दीन की सफलता—अपनी दृढ़ नीति से और सेना से मंगोलों के विरुद्ध अलाउद्दीन ने अपने पूर्ववर्तीय सुल्तानों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त की। अलाउद्दीन ने मंगोलोंको परास्त कर सिन्धु पार ही नहीं खदेड़ा अपितु मंगोलों के राज्य की सीमा में काबुल और गजनी पर आक्रमण कर उन्हें आतंकित भी किया। सुलतान बलबन ने मंगोल आक्रमणों को रोकने के लिए सुरक्षात्मक नीति अपनायी और साम्राज्य विस्तार के अभियान को त्याग दिया। पर अलाउद्दीन ने सुरक्षात्मक और आक्रमणात्मक दोनों नीतियों को एक साथ अपनाया और उसमें उसे सफलता भी मिली। उसने दृढ़ सुरक्षात्मक नीति से प्रत्येक बार मंगोलों के आक्रमण को पीछे ढकेल दिया और अपनी सेना को आक्रमण व विजय के लिये अन्य प्रदेशों को भी भेजा।

मंगोलों की असफलता और सुलतान अलाउद्दीन की सफलता के कारण

(१) **विश्वविजयी भावना का अन्त**—मंगोलों की विभिन्न शाखाओं में पारस्परिक युद्ध होने से, मध्य एशिया की गंदी राजनीति और गृहयुद्ध में मंगोल इतने उलझ गये थे कि उनमें विश्व विजय की भावना का अन्त हो गया और भारत पर आक्रमण करने के प्रति वे उदासीन हो गये थे। (२) **सैनिक शक्ति का ह्रास**—मंगोलों की सेना में स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों के होने से उनकी सैनिक कुशलता और रण क्षमता का ह्रास होता गया। (३) **विलासमय जीवन**—लूट में प्राप्त धन की बाहुल्यता से, भोगविलास और आमोद-प्रमोद के जीवन से मंगोलों की सैनिक शक्ति, वीरता व युद्ध प्रवृत्ति में शिथिलता आ गयी थी। (४) **मंगोलों की नीति में परिवर्तन और गुणों का ह्रास**—मंगोलों ने अपनी सामरिक नीति में परिवर्तन कर दिया था। उनकी स्फूर्ति, गतिशीलता, वीरता, साहस आदि अन्य सामरिक गुणों का ह्रास हो गया था। (५) **दोषयुक्त रणनीति**—मंगोलों ने छापामार नीति को छोड़कर खुले रणक्षेत्र में युद्ध करने की नीति अपनाई जो उनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल होने से असफल रही। (६) **दाऊदखाँ की मृत्यु**—दाऊदखाँ मंगोल आक्रमणों को निरंतर प्रोत्साहित करता रहा। उसके देहावसान के बाद मंगोल विस्तारवादी आक्रांता की नीति को कार्यान्वित नहीं कर सके और उन्होंने भारत पर आक्रमण करने की नीति की उपेक्षा की। (७) **अलाउद्दीन की सुरक्षा नीति**—सुलतान ने सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा अपने अधीन समस्त साधनों से की, दुर्ग पंक्ति निर्माण कर उसे सैन्य से दृढ़ कर दिया और विशाल सेना संगठित कर मंगोलों को परास्त कर दिया। (८) **अलाउद्दीन की सैनिक प्रतिभा व आक्रामक नीति**—अलाउद्दीन में योद्धा के गुण, श्रेष्ठ सैन्य संचालन की प्रतिभा, रण कुशलता, वीरता आदि गुण थे। इन गुणों के साथ-साथ उसने मंगोलों के विरुद्ध सुरक्षा और आक्रामक की नीति अपनाई। इससे मंगोल परास्त ही नहीं हुए अपितु वे निस्तेज और निश्चेष्ट हो गये।

मंगोलों के आक्रमणों के परिणाम—(१) मंगोलों के आक्रमण, भीषण लूटपाट और नरसंहार से अनेक ग्राम, नगर और करोड़ों की संपत्ति नष्ट हो गई। (२) सुलतान ने मंगोलों को परास्त कर खदेड़ दिया और जनता की रक्षा की, इसलिए साधारण लोग सुलतान के प्रति अधिक राजभक्त हो गए। इससे अलाउद्दीन अधिक निरंकुश हो गया।

(३) आक्रमणों को रोकने के लिए सेनाकी खूब वृद्धि हुई और इससे अलाउद्दीन के शासन का आधार उसकी सैन्य शक्ति हो गयी। (४) बढ़ी हुई सेना के व्यय की पूर्ति के लिए अलाउद्दीन को अनेक करों में वृद्धि करना पड़ी, उसने शोषण की नीति अपनाई। इससे लोगों का आर्थिक बोझ बढ़ गया। (५) अलाउद्दीन ने अपने विरोधी सामन्तों और शक्तिशाली सेनानायकों को मंगोलों के विरुद्ध युद्ध में भेजकर उनका अंत कर दिया। (६) मंगोलों के विरोध में संगठित की गयी विशाल शक्तिशाली सेना को अलाउद्दीन ने विभिन्न प्रदेशों में विजय अभियान के लिए भेजकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

आंतरिक विद्रोह

आन्तरिक सुरक्षा के लिए अलाउद्दीन ने विद्रोहों का दमन किया। ये विद्रोह निम्नलिखित थे—

(१) अकतखाँ का विद्रोह—जब अलाउद्दीन रणथंभोर विजय करने हेतु मार्ग मे आखेट के लिए रुक गया था, तब उसके भतीजे अकतखां ने उस पर शिकार के समय सहसा आक्रमण कर दिया और उसे तीरों से घायल कर दिया। अकतखां ने अलाउद्दीन को मृत समझ अपने आपको सुलतान घोषित कर दिया। पर अलाउद्दीन जीवित रहा और उसने अकतखां को पकड़वाकर मरवा डाला और उसकी संपत्ति छीन ली। **(२) अमीर उमर तथा मंगूखाँ के विद्रोह**—जब अलाउद्दीन रणथंभोर की विजय में उलझा हुआ था, तब बदायूं और अवध के राज्यपाल अमीर उमर और मंगूखां ने सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। परन्तु इस विद्रोह को भी कुचल दिया और इन दोनों नेताओंको अंधा करवा कर अलाउद्दीन ने कारावास में डाल दिया। **(३) हाजीमौला का विद्रोह**—सन् १३०१ में सुलतान के विरुद्ध व्याप्त असन्तोष का लाभ उठाकर हाजीमौला ने सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिल्ली पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। उसने दिल्ली के कोतवाल का वध कर दिया और इसके बाद सिरी के कोतवाल का भी वध करनेका प्रयत्न किया, पर असफल रहा। उसने इल्तुतमिश के वंश से संबंधित एक सैयद को दिल्ली के राजसिंहासन पर आसीन कर दिया और राज्य-सत्ता पर अधिकार कर लिया। परन्तु अलाउद्दीन ने मलिक हमीदुद्दीन और उलूगखां द्वारा इस विद्रोह को कुचल दिया तथा हाजी मौला को मार डाला गया। **(४) नव-मुस्लिमों के षडयंत्र व विद्रोह**— सुलतान जलालुद्दीन की उदार नीति के कारण और मंगोल नेता उलूगखां से वैवाहिक संबंध हो जाने के कारण अनेक मंगोल दिल्ली के पास बस गये थे और इन्होंने इस्लाम अपना लिया था। ये नवमुस्लिम कहलाये। सुलतान की सेना में ये सैनिक हो गए। ये नसरतखां के नेतृत्वमें गुजरात को लूट-कर और विजय कर लौट रहे थे। मार्ग में नसरतखां ने इनसे लूट के माल में से ⅕ भाग राजकोष के लिए मांगा। इसका मंगोलों ने विरोध किया और नसरतखां के भाई का वध कर दिया। नसरतखां और उलूगखां ने इस विद्रोह को दबा दिया। अलाउद्दीन ने इन मंगोल विद्रोहियों और उनके संबंधियोंको कठोर दंड दिये और अनेकों का वध करवा दिया।

विद्रोह के कारण—यद्यपि अलाउद्दीन ने इन विद्रोहों का अंत कर दिया था, पर उसने अपने मलिकों से परामर्श करके इन विद्रोहों के कारण खोज करने का प्रयास किया

और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इन विद्रोहों के प्रमुख चार कारण हैं– (१) गुप्तचर विभाग की अयोग्यता जिससे सुलतान प्रजा, सरदार, **मलिक** तथा राजकर्मचारियों के संबंध में और उनकी गतिविधियों के विषय में पूर्ण अवगत नहीं हो पाता। (२) मद्यपान की अधिकता जिसके कारण पारम्परिक मैत्री एवं बंधुत्व की तीव्रगति से वृद्धि होती है। ये षड्यंत्र और विद्रोह की जनक होती हैं। (३) अमीरों के पारस्परिक वैवाहिक संबंधों, मेल-जोल व सामाजिक समारोहों से उन्हें संगठित होने और विद्रोह करने में सुविधा होती है। (४) धन सम्पन्नता और सुख-वैभव की प्रचुरता जिससे षड्यंत्रों और विद्रोहों का मार्ग प्रशस्त होता है।

विद्रोहों के निराकरण के लिये कार्य और प्रशासकीय सुधार—विद्रोहों का दमन करने और उनके कारणों का अन्त करने के लिए अलाउद्दीन ने निम्नलिखित सुधार कार्य किए— (१) उसने गुप्तचर विभाग का दृढ़ संगठन किया और सारे राज्य में जाल-सा बिछा दिया। इससे सुलतान को गुप्त गोष्ठिओं, सभी महत्वपूर्ण विषयों और आवश्यक बातों की सूचनाएँ प्राप्त हो जाती थीं तथा वह समुचित व्यवस्था करवा लेता था और विरोधियों का दमन कर देता था। (२) मादक द्रव्यों का सेवन, मद्यपान और जुआ कानून द्वारा निषिद्ध कर दिया गया, मदिरा का क्रय-विक्रय करने वालों को और शराबियों को कठोर दंड दिया जाता था। जनता के संमुख आदर्श प्रस्तुत करने के लिए सुलतान ने अपने स्वयं के मद्यपान के बहुमूल्य पात्रों को तुड़वा दिया और शराब बदायूं दरवाजे पर लुढ़कवा दी। (३) अमीरों और मलिकों के क्रियाकलापों, उनके पारम्परिक वैवाहिक संबंधों, मिलने-जुलने, सामाजिक समारोहों और प्रीतिभोजों, गोष्ठियों पर रोक लगा दी। इससे वे किसी प्रकार का गुट बनाकर विद्रोह नहीं कर सकते थे। (४) प्रांतपतियों, अमीरों, मलिकों और धन संपन्न व्यक्तियों की संपत्ति छीनकर उन्हें दरिद्र बना दिया। उसने इनाम या दान और धार्मिक कार्य के लिए दी गई समस्त भूमि जब्त कर ली और अमीरों की जागीरें छीन ली। भूमि कर तथा अन्य करों में वृद्धि करके लोगों से अधिकाधिक धन प्राप्त करने का प्रयास किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग इतने अधिक दरिद्र होगए कि वे अपनी जीविका निर्वाह में ही फंसे रहे और विद्रोह के विषय में सोचने और उपद्रव करने के अवसर उन्हें प्राप्त नहीं होते थे।

हिन्दुओं के प्रति व्यवहार और उनका दमन-अलाउद्दीन हिन्दुओं को राज्य के लिये खतरा समझता था, वह उन्हें विद्रोह का स्रोत मानता था, क्योंकि उनके पास अधिक धन द्रव्य था, कृषि पर उनका एकाधिकार था, राजस्व विभाग के **खूत**, मुकद्दम, चौधरी, नवीसिन्दे आदि कर्मचारी और अधिकारी हिन्दू होते थे। इसलिए उसने हिन्दुओं की संपत्ति छीन ली, खूतों और मुकद्दमों के विशेष अधिकार समाप्त करदिये, हिन्दुओं को अपनी उपज का आधा भाग भूमि कर के रूप में देने के लिए बाध्य किया। उन पर पशु कर, चराई-कर, आवास-कर, जजिया आदि विभिन्न कर लगा दिये। जजिया कर की वसूली बड़ी नृशंसता से हिन्दुओं को अपमानित कर की जाती थी। यदि वे किसी कर से बचने का यत्न करते तो उन्हें अत्यन्त ही कठोर दंड दिया जाता था। राजस्व विभाग के हिन्दू-कर्मचारियों को कर वसूली और हिसाब के विषय में कठोर दंड दिये जाते थे और उन्हें बन्दी बना लिया जाता था।

इस दमन नीति का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू अत्यधिक दरिद्र हो गये। उनमें भली प्रकार खाने-पीने और वस्त्र पहिनने की भी सामर्थ्य नहीं थी। जीवन-निर्वाह के लिए हिन्दू परिवारों की स्त्रियों को मुस्लिम घरों में जाकर मजदूरी करना पड़ती थी।

अलाउद्दीन की हिन्दू विरोधी नीति उसकी धार्मिक असहिष्णुता, पक्षपात की नीति का परिणाम न था हो, पर अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए तथा तत्कालीन राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी उसने हिन्दू विरोधी नीति अपनाई।

मंगोल आक्रमण और निराकरण

	अलाउद्दीन के कार्य
१. कादर और दाऊदखाँ के आक्रमण सन् १२९६, ९७	१. सीमान्त में दुर्गों की पंक्ति, सैन्य व्यवस्था
२. सल्दी का आक्रमण— सन् १२९८–९९	२. सैन्य सामग्री, युद्ध सामग्री की बाहुल्यता व श्रेष्ठता
३. कुतलग ख्वाजा का आक्रमण सन् १२९९	३. पौने पांच लाख शाही सेना
४. तरगी का आक्रमण, सन् १३०३	४. सीमान्त का नवीन प्रदेश, गाजी मलिक हाकिम
५. अलीबेग व ख्वाजा तास का आक्रमण, सन् १३०५	५. सीमान्त में संदेश वाहन और दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था
६. कुबक और इकबालमंद का आक्रमण, सन् १३०६।	६. मंगोलों का नृशंसता से दमन, उनका वध
	७. सुरक्षा नीति व रणनीति, सुरक्षात्मक व आक्रामक नीति
	८. प्रतिशोध के लिये गाजी मलिक के गजनी, काबुल में आक्रमण।

मंगोल आक्रमणों में सफलता व महत्व

मंगोलों के विरुद्ध अलाउद्दीन की सफलता के कारण	आक्रमणों के परिणाम व सुलतान की नीति का महत्व
१. मंगोलों में विश्व विजय की भावना का अन्त	१. भीषण लूट, नर संहार, करोड़ों की संपत्ति नष्ट
२. मंगोलों की सैनिक शक्ति का ह्रास	२. अलाउद्दीन की निरंकुशता में वृद्धि
३. मंगोलों में विलासमय जीवन	३. विशाल सेना की वृद्धि, शासन का आधार सैन्य शक्ति

४. मंगोलों की नीति में परिवर्तन और उनके गुणों का ह्रास

५. मंगोलों की दोष-युक्त रण-नीति

६. मंगोल नरेश दाऊदखाँ की मृत्यु

७. अलाउद्दीन की सीमान्त में सुरक्षा नीति

८. अलाउद्दीन की सैनिक प्रतिभा और आक्रामक नीति

४. विशाल सेना के व्यय-वहन के लिये करोड़ों की वृद्धि व आर्थिक शोषण

५. विरोधी सशक्त सामन्तों का अन्त

६. विशाल सेना से सुलतान द्वारा अन्य प्रदेशों की विजय

आन्तरिक विद्रोह

विद्रोह

१. अकतरखाँ का विद्रोह
२. अमीर उमर मंगूखाँ का विद्रोह
३. हाजी मौला का विद्रोह
४. नव-मुस्लिमों के षड़यन्त्र और विद्रोह

विद्रोह के कारण

१. गुप्तचर विभाग का अभाव व अयोग्यता
२. मद्यपान का बाहुल्य
३. अमीरों के पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध व समारोह
४. धन सम्पन्नता की प्रचुरता

विद्रोहों का दमन

दमन के लिये अलाउद्दीन के कार्य

१. गुप्तचर विभाग का दृढ़ संगठन, गुप्तचरों का जाल

२. मद्यपान व मादक द्रव्यों का निषेध, सुलतान का स्वयं का सुरा-त्याग का आदर्श

३. अमीरों के वैवाहिक सम्बन्धों, समारोहों पर नियन्त्रण

४. प्रान्तपतियों, अमीरों की संपत्ति का हरण

५. जागीरें, दान व इनाम की भूमि की जप्ती

६. करों की वृद्धि, धन की वसूली

दमन नीति का परिणाम

१. जागीरों, भू-स्वामी का ह्रास

२. आर्थिक शोषण

३. दरिद्रता का बाहुल्य

४. हिन्दुओं का दमन व उनकी सपत्ति, वैभव का नाश

५. राजस्व के अधिकारियों पर अत्याचार

६. आंतरिक शांति व सुरक्षा

अध्याय १५

अलाउद्दीन के विभिन्न सुधार

राज्यारोहण के कुछ ही वर्षों बाद सुलतान अलाउद्दीन के संमुख कुछ ऐसी विविध समस्याएँ उत्पन्न हो गयी थीं जिनके निराकरण के लिये उसे अनेक आवश्यक ठोस कदम उठाना पड़े, नवीन नियम-उपनियम और अध्यादेश बनाकर जारी करना पड़े। इतिहासकारों ने इनको अलाउद्दीन के सुधार कहा है। अलाउद्दीन ने ये सुधार राजस्व तथा सेना के लिये एवं आर्थिक समस्या को हल करने के लिये किये थे। अलाउद्दीन के ये समस्त सुधार अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्ति के लिये व राजनैतिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये किये गये थे। उनमें जन-कल्याण का कितना उद्देश्य था, और अलाउद्दीन ने जनहित के लिये कितना ध्यान दिया था, यह तो केवल अलाउद्दीन स्वयं ही जानता था। अलाउद्दीन के इन विभिन्न सुधारों का विश्लेषण निम्नलिखित है।

सुलतान अलाउद्दीन के राजस्व के सुधार

सुलतान अलाउद्दीन के पहिले के दिल्ली सुलतानों ने सल्तनत की भूमि-व्यवस्था और राजस्व संबंधी विभिन्न विषयों में कोई परिवर्तन नहीं किया। उन्होंने कोई समुचित वैज्ञानिक राजस्व नीति निर्धारित करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने अपने पूर्व में हिन्दू काल से चली आ रही भूमि-व्यवस्था और राजस्व के प्रबंध से संतोष कर लिया था। इमके प्रमुख रूप से निम्नलिखित कारण हैं। प्रथम, दिल्ली के इन सुलतानों को युद्ध और विजय से इतना समय नहीं मिल पाया कि वे भूमि-व्यवस्था और कर-व्यवस्था की ओर ध्यान देते। द्वितीय, इन सुलतानों में आदर्श शासन व्यवस्था स्थापित करने, नवीन सुधार कर जनहित के कार्य करने की कोई भावना नहीं थी, ऐसा श्रेष्ठ राज्य स्थापित करना उनका लक्ष्य नहीं था। तृतीय, इन सुलतानों में नवीन सुधार कार्य प्रारंभ करने की प्रवृत्ति (**Power of initiative**) का अभाव था। चतुर्थ, इन सुलतानों में प्रशासन की प्रतिभा और सुधार करने की योग्यता का सर्वथा अभाव था। अलाउद्दीन तुर्की सल्तनत का प्रथम शासक था जिसने भूमि एवं राजस्व व्यवस्था की ओर ध्यान दिया।

राजस्व सुधार के लिये अलाउद्दीन के उद्देश्य

भूमि और राजस्व संबंधी सुधार करने के लिये अलाउद्दीन के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(i) अनवरत रूप से, हो रहे मंगोल आक्रमणों का सामना करने के लिये, उसके हेतु विशाल सेना का संगठन करने के लिये, उसे धन की अत्यधिक आवश्यकता थी। यह धन वह भूमि कर में वृद्धि करके प्राप्त कर सकता था।

(ii) अलाउद्दीन की राज सभा का ठाटबाट, वैभव व विलास धन की आवश्यकता को और भी अधिक तीव्रतर बना रहा था।

(iii) अलाउद्दीन की धारणा थी कि भूमिपति बिना किसी परिश्रम के धन सम्पन्न और शक्तिशाली हो जाते हैं और फिर वे सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। इसलिये सुलतान के हित के लिये ऐसी भूमि व्यवस्था होनी चाहिये जिससे कि भूमिपति शक्तिशाली नहीं होने पावें। वह धन सम्पन्न भूमि-पतियों को जो विलासमय जीवन व्यतीत करते थे सामान्य स्तर पर लाना चाहता था। वह भूमि-पतियों को इतना अधिक निर्धन बनाना चाहता था जिससे उनकी ओर से किसी प्रकार के विद्रोह की आशंका न रह जाय।

(iv) राजस्व विभाग के विभिन्न अधिकारी और कर्मचारी जैसे खूत, चौधरी, मुकद्दम, आदि हिन्दू थे, कृषक और भूमि–पति भी हिन्दू ही थे। कृषि और भूमि पर प्रायः हिन्दुओं का ही एकाधिकार था। इन हिन्दू भूमिपतियों के पास अधिक भूमि, पशु और चरागाह थे। इससे वे खूब धन सम्पन्न हो गये थे। मुसलमानों से भी अधिक शान-शौकत और विलास से वे रहते थे। वे न तो मुसलमानों से दबते थे जैसाकि अलाउद्दीन ने प्रलाप किया था और न वे सुलतान की परवाह करते थे। वे उपद्रव और अशांति भड़काते थे। अलाउद्दीन का लक्ष्य था कि आंतरिक शांतिव्यवस्था स्थापित करने के लिये इनका दमन करना आवश्यक है।

(v) अलाउद्दीन नहीं चाहता था कि भूमि कर संग्रह करने में भूमि कर का अधिकांश भाग प्रजा के हाथ में जाय जिससे कि वह धन-सम्पन्न व शक्तिशाली हो जाय। उसका उद्देश्य राज्य की आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि करने के साथ-साथ जनता को आर्थिक दृष्टि से पंगु बना देना था।

अलाउद्दीन के सुधारों के पूर्व राजस्व व्यवस्था

अलाउद्दीन के सुधारों के पूर्व राजस्व प्रणाली निम्नलिखित थी। **प्रथम,** राज्य में **खालसा भूमि** थी, जो दीवान-ए-वजारत के अंतर्गत थी। इस भूमि का राजस्व आमिल, कारकून, तथा अन्य अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा संग्रहित करवाकर राजकोष में जमा किया जाता था। खालसा भूमि सुलतान की मानी जाती थी। **द्वितीय**, **प्रांतीय भूमि** जो प्रांत-पतियों के अन्तर्गत थी। ये मुक्ता या मुक्ति कहे जाते थे। ये राजस्व एकत्र करके, अपने वेतन और प्रांतीय प्रशासन का व्यय, इस एकत्रित राजस्व की धन राशि में से काटकर, शेष धन राशि केन्द्रीय कोषागार में जमा कर देते थे। यह राजस्व चौधरियों, मुकद्दमों और खूतों के द्वारा एकत्र होता था और उपज का एक तिहाई होता था। **तृतीय, राजस्व के अधिकारी** व भूमिकर की वसूली "बलहार" या "कृषक" खूत को भूमि कर देता था। "खूत" राजस्व का वह कर्मचारी होता था जो शासन के लिये राजस्व एकत्रित करता था। यह राजस्व मुकद्दम और चौधरी (ग्राम के मुखिया)

के द्वारा राजकोष में जमा होता था। भूमि कर अनाज या नगद धन दोनों के रूप में एकत्रित किया जाता था। इस प्रकार भूमि कर को एकत्रित करने की सेवाओं के बदले में खूत, मुकद्दम और चौधरी को कुछ कमीशन प्राप्त होता था। उन्हें भूमि रखने, कृषि करने, पशु-पालने आदि की विशेष सुविधाएँ भी थीं। ये राजस्व अधिकारी अपना वसूली शुल्क (हकूक-ए-खूती) तो अतिरिक्त धन के रूप में कृषकों से वसूल कर लेते थे, किन्तु वे स्वयं अपनी ओर से दिये जाने वाले कर जैसे खराज, जजिया, करी, चराई आदि यथेष्ट रूप से जमा नहीं करते थे। कभी-कभी तो ये नियमित रूप से भी जब कर चुकाते थे तो अपना जमा किया जाने वाला कर भी कृषकों से वसूल कर लेते थे। वे दीवान द्वारा बुलाने की चिंता भी नहीं करते थे और न सुलतान के राजस्व अधिकारियों की बातों पर कान ही देते थे। वे नियमित रूप से राजकोष में राजस्व जमा करने से बचते रहते थे और राज आज्ञाओं की अवहेलना भी करते थे। वे अपने अधिकार के अन्तर्गत भूमि और कृषकों की आन्तरिक स्थिति से अवगत होने से अधिक स्थानीय प्रभाव और शक्ति रखते थे केन्द्रीय सरकार और राजस्व विभाग की दुर्बलताओं का लाभ उठाते थे तथा उनमें से भ्रष्ट व्यक्तियों ने अपनी-अपनी जेब भर कर धन संग्रह कर लिया था। जब कभी विद्रोह या अशांति होती थी, तो ये उसमें सक्रिय योग देते थे, क्योंकि इससे वे राज कर देने से बच जाते थे।

चतुर्थ, भूमिदान और जागीर—अलाउद्दीन के पूर्व के सुलतानों ने मलिकों, अमीरों, शासकीय अधिकारियों, विद्वानों और धर्मशास्त्रियों (मुल्ला-मौलवियों) को भूमि खंड भेंट, उपहार, अनुदान या पुरस्कार में दिये थे। इन भूमि खंडों का राजस्व या भूमि कर उनके वेतन या पुरस्कार के तुल्य माना जाता था। कालान्तर में इस प्रकार भूमि को प्राप्त करने वाले व्यक्ति या जागीरदार संपन्न, आलसी और अहंकारी हो गये, क्योंकि उनकी एक निश्चित आय अपनी भूमि से हो जाती थी। जिससे वे जीवन निर्वाह कर लेते थे। अवसर आने पर ये भू-स्वामी सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करते थे। इसके अतिरिक्त इन व्यक्तियों के स्वामित्व में अधिक भूमि होने से सुलतान इसके भूमि कर से वंचित हो जाता था। अनुदान और जागीर में दिये गये भूमि खंडों का राजस्व राजकोष में जमा नहीं होता था।

पंचम, राजस्व का अस्पष्ट निर्धारण—इस समय कृषि के अन्तर्गत भूमि की न तो पैमाइश की गई थी और न विधिवत् भूमि कर का निर्धारण ही। इससे राजस्व वसूली में अनेक कठिनाइयाँ आती थीं। खूत, मुकद्दम और चौधरी कृषकों से मन-माना कर वसूल कर लेते थे और इस कर में से कुछ भाग राज कर्मचारियों को देकर शेष भाग स्वयं हड़प लेते थे।

अलाउद्दीन के राजस्व संबंधी सुधार और व्यवस्था

(१) भूमि अपहरण—उसने उस समस्त भूमि को जो माफीदारों, धार्मिक व्यक्तियों को या अधिकारियों व अमीरों को मिल्क (स्थायी सम्पत्ति में), पुरस्कार, इद्र-रत (पेंशन) और वक्फ (दान और धर्म) में दी गई थी, जब्त करके खालसा करली

अर्थात् उसे सुलतान के स्वामित्व में ले ली। इस प्रकार एक अच्छा विस्तृत भू-भाग जिससे सरकार को कोई आय नहीं होती थी, राज्य के स्वामित्व में आ गया। इस भूमि-अपहरण से राज्य की आय में वृद्धि हो गई। इस प्रकार बलबन से भिन्न और साम्प्रदायिक विचारों में निर्भय और स्वतंत्र दृष्टिकोण रखने वाले सुलतान अलाउद्दीन ने सभी प्रकार के भूमि के अनुदान और जागीरें समाप्त कर दी। यह विश्वास करना कठिन है कि समस्त राज्यमें इस प्रकार की समस्त भूमि जप्त करली गई हो अधिकतर भूमि छीन लेने के बाद भी कुछ लोगों के लिये यह कर दिया गया कि भूमि पर से तो उनका स्वामित्व हटा दिया गया, पर उन्हें उस भूमि की आय प्राप्त होने दी गई। इससे उस भूमि पर उनके वंश का स्वामित्व व अधिकार तो हट गया और भूमि कर सरकार वसूल करने लगी। अलाउद्दीन ने यह सब कार्य इतनी मुस्तैदी के साथ किया कि किसी भी प्रकार का विद्रोह या अशांति नहीं हुई। इस प्रकार भूमि अपहरण का मूल उद्देश्य विद्रोहात्मक भावना का अंत करना था।

(२) राजस्व के कर्मचारियों की विशेष सुविधाओं का अंत—मुकद्दम, चौधरी, खूत तथा राजस्व के अन्य हिन्दू अधिकारियों की लगान वसूली संबंधी सुविधाओं का अंत कर दिया गया। अलाउद्दीन ने खूत, मुकद्दम, चौधरी को उनकी राजस्व वसूली संबंधी सेवाओं के लिये जो छूट भूमि कर में दी जाती थी, वह बंद कर दी। उनके विशेष अधिकार समाप्त कर दिये। अब वे भूमि कर या राजस्व एकत्र करने के नाम पर कुछ भी कमीशन या शुल्क या पारिश्रमिक प्राप्त नहीं कर सकते थे। उन्हें अन्य सामान्य कृषकों के समान ही खिराज और अन्य कर देना आवश्यक हो गया। इससे कृषकों और खूतों व मुकद्दमों में कोई अन्तर न रहा वे समस्त प्रजा के समान माने जाने लगे। और फरिश्ता के अनुसार गरीब प्रजा और कृषकों पर इनका कोई अधिकार नहीं रहा। भूमि कर संबंधी विशेष अधिकार उसने हिन्दुओं और मुसलमानों किसी के भी पास नहीं रहने दिये। इस प्रकार अलाउद्दीन ने रैयत या कृषकों के साथ सीधा और प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने का प्रयास किया।

सुलतान ने नवीन अध्यादेश जारी कर यह आदेश दिया कि मुकद्दम या चौधरी स्वयं कृषि सम्बन्धी कोई विशेष अधिक सम्पत्ति अपने पास न रखें। मुकद्दम या चौधरी के स्वयं के पास अन्य कृषकों के समान खेती-बाड़ी के लिये चार बैलों से अधिक और दो भैंसों तथा दो गायें एवं बारह बकरियों से अधिक न रखें। उनसे चराई का कर भी गाय, भैंस या बकरियों के अनुसार लिया जाय।

(३) भूमि की पैमाइश और भूमि कर का निर्धारण—दिल्ली के सुलतानों में अलाउद्दीन प्रथम सुलतान था, जिसने कृषि के अन्तर्गत भूमि की पैमाइश करवाई और पैमाइश का पूर्ण विवरण राजस्व विभाग के अन्तर्गत सुरक्षित रखा गया। प्रत्येक बिस्वा के हिसाब से प्रत्येक कृषक की भूमि की पैमाइश करवायी गयी। इस प्रकार मापन या पैमाइश की एकीकृत पद्धति जारी की गयी।

इससे किसी प्रकार की अव्यवस्था और अनुमान से लगान निर्दिष्ट करने की संभावना नहीं रही। भूमि की उपज के अनुसार उसने खिराज या राज्य का भूमि कर

निर्धारित करवाया। उपजाऊ भूमि और उसकी श्रेणी के हिसाब से कृषक को भूमि कर देना पड़ता था। भूमि कर निश्चित करने की तीन विभिन्न प्रणालियाँ अपनायी गयीं—(१) कनकूत, (२) बटाई और (३) लंक बटाई। कनकूत के अनुसार खेत में खड़ी फसल को देख कर ही लगान निश्चित किया जाता था। बटाई में अनाज तैयार होने पर सरकार का अंश निर्धारित होता था। लंक बटाई में फसल के तैयार होने पर बिना कूटे-पीटे ही सरकारी भाग ले लिया जाता था। सम्पन्नों और दरिद्रों सब की भूमि पर एकीकृत दर से उपज का १/२ भाग भूमि-कर के रूप में निर्धारित किया गया। यह लगान या भूमि कर अनाज के रूप में होता था या नगदी भी।

(४) **करों में वृद्धि**—ऊपर वर्णित बढ़ाये हुए भूमि कर के अतिरिक्त अलाउद्दीन ने करों में अत्यधिक वृद्धि कर दी। भूमि कर के अतिरिक्त गृहकर, चरागाह कर, आयात और निर्यात कर, जजिया, करी, खम्स, जकात आदि कर लगाये। बर्नी के अनुसार दूध देने वाले पशु जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि पर भी कर लिया जाने लगा था। फरिश्ता के अनुसार दो जोड़ी बैल, दो भैंस, दो गाय और दस बकरियों पर कोई कर नहीं देना पड़ता था। यदि उसका यह कथन सत्य है तो ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उन्हीं लोगों को अधिक कर देना पड़ता था, जो ग्वाले या अहीर थे, जो दूध का व पशुओं का व्यवसाय करते थे और जिनके पास पशु सम्पत्ति अधिक थी। करी एक गौण कर था, जो समय-समय पर एकत्रित किया जाता था। जजिया कर हिन्दुओं से कठोरता पूर्वक वसूल किया जाता था। गैर-मुसलमानों की इतनी विशाल जनसंख्या से यह जजिया कर वसूल किया जाता था कि उससे पर्याप्त आय राज्य को होती थी। जजिया स्त्रियों, बच्चों और विक्षिप्त व्यक्तियों पर नहीं लगाया जाता था। इस्लाम धर्म अंगीकार करने वाले व्यक्तियों पर से यह कर हटा दिया जाता था। दक्षिण के हिन्दू राज्यों तथा राजपूताने के विजित राज्यों से जजिया "जिम्मी" के रूप में वसूल किया जाता था। खम्स नामक कर युद्ध में लूट के माल पर लिया जाता था। जिहाद (धार्मिक युद्ध) या हिन्दुओं के राज्यों पर आक्रमण और युद्ध में जो लूट का धन सैनिकों को प्राप्त होता था, उसमें से ४/५ राज्य रखता था और शेष १/५ सैनिकों में वितरित किया जाता था। जकात धार्मिक कर था, जो केवल मुसलमानों से लिया जाता था और इसकी आय धार्मिक कार्यों में व्यय की जाती थी। जकात कर निवास गृहों, वस्त्रों, उपकरणों, दास-दासियों, सवारी के पशुओं और जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले साधनों पर नहीं लगाया जाता था। यह सम्पत्ति, सोना, चाँदी, पशुओं के समूहों और व्यापारिक वस्तुओं पर लगाया जाता था तथा सम्पत्ति का १/४० वां भाग होता था।

(५) **कर-वसूली की निर्ममता और कठोर दण्ड-व्यवस्था**—विभिन्न प्रकार के करों को लगाने के अतिरिक्त अलाउद्दीन ने उनकी विधिवत् पूर्णतया वसूली करने और दोषी और अपराधियों को कठोर दण्ड देने की पूर्ण व्यवस्था की। लगान-वसूली प्रथा के दोषों के निवारण के लिये उसने नियम बना दिये। मुतसर्रिफों, पटवारियों और राजस्व विभाग के अन्य निम्न कर्मचारीगण कर वसूली में भ्रष्टाचार करते और बलात्

अधिक धन वसूल करते थे। इसे दूर करने के लिये अलाउद्दीन ने इनके वेतन में वृद्धि कर दी, जिससे कि वे आदर और सम्मानपूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सकें। यदि इस पर भी ये कर्मचारी भ्रष्ट हों और भूमि कर की धन राशि का गबन करें या उसका अपहरण करें तो, उन्हें कठोर दण्ड दिया जाकर अवशिष्ट धन राशि वसूल की जाती थी। भ्रष्ट कर्मचारियों के लिये सुलतान ने दीवान के अधिकारियों (माल या राजस्व विभाग के अधिकारियों)को यह आदेश दे रखे थे कि कर सम्बन्धी जो कुछ भी धन राशि लिपिकों, मुतसर्रिफों, आमिलों, पटवारियों से लेना शेष रह जाय तो उसे कड़े दण्ड, मार-पीट या बंदी बना कर वसूल कर ली जाय।

इस विषय में बर्नी का कथन है कि यह सम्भव नहीं था कि कोई भी एक तनके का भी अपहरण कर सके, कोई किसी हिन्दू या मुसलमान से घूस ले सके। आमिलों, मुतसर्रिफों तथा पदाधिकारियों को इस प्रकार दरिद्र तथा विवश कर दिया था कि मुतसर्रिफों तथा कर्मचारियों को एक हजार या पांचसौ तनकों (टंकों)के लिये कई वर्षों तक कारागार में रहना पड़ता था। राजस्व विभाग की सेवा या नौकरी करना या मुतसर्रिफ (अधीक्षक) तथा पदाधिकारी होना लोग बुखार या प्लेग से भी अधिक बुरा समझते थे। नवी सिन्दगी (पटवारी या राजस्व विभाग के मुन्शी का पद) बहुत बड़ा दोष समझा जाता था। नवीसिन्दे को लोग अपनी पुत्री विवाह में नहीं देते थे। मुतसर्रिफ के पद को वे ही लोग स्वीकार करते थे, जो कि अपने प्राणों से हाथ धो लेते थे। अधिकतर मुतसर्रिफ तथा आमिल शिक या जिले में कैद रहते थे और दण्ड भोगा करते थे। इन उपायों और कठोर दण्ड से रिश्वत बंद हो गई थी, कर वसूली अच्छी और पूर्णरूपेण हो गयी और राजकोष समृद्ध हो गया।

(६) राजस्व की बहियों का निरीक्षण—भूमि कर और उसकी वसूली की पूरी जानकारी पटवारियों और राजस्व की बहियों में लिखी जाती थी। इन पुस्तिकाओं और बहियों के निरीक्षण के द्वारा शरफकाई (नायब वजीर) ने भूमि कर के वसूल करने वालों के नाम वसूली की रकम का पता लगाने की समुचित व्यवस्था कर दी थी। इन पुस्तिकाओं की जाँच की जाती थी और यदि किसी पटवारी मे एक जीतल भी शेष वसूली का निकलता तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था और कारागृह में डाल दिया जाता था। इसी प्रकार रिश्वत लेने का, करों का झूठा हिसाब राजस्व की पुस्तिकाओं में प्रस्तुत करने पर भी निर्ममतापूर्वक दण्ड दिया जाता था।

(७) अन्न भण्डार गृह—दिल्ली के समीप खालसा ग्रामों की भूमि से (जिसकी आय सीधे केन्द्रीय सरकार को जाती थी) तथा दोआब प्रदेश की भूमि से खिराज या लगान अनाज के रूप में लिया जाने लगा। यह अनाज दिल्ली में शासकीय गोदामों और अन्न भण्डार गृहों में रखा जाने लगा। दिल्ली नगर में ऐसा कोई मोहल्ला नहीं था, जहाँ दो या तीन अनाज भण्डार गृह न हों। इन गोदामों से व्यापारियों को अनाज बेच दिया जाता था। किसी को भी अनाज संचय करने की अनुमति नहीं थी।

(८) राजस्व विभाग का पुनर्गठन—विशाल प्रदेशों को खालसा में परिवर्तित कर देने से तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा सीधे राजस्व वसूल करने के कारण

अलाउद्दीन ने राजस्व विभाग का पुनर्गठन किया। उसने शर्फ कायिनी को राजस्व विभाग का उप-वजीर या नायब वजीर नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिये पदाधिकारी और कर्मचारी नियुक्त किये। शर्फ कायिनी ने अलाउद्दीन की राजस्व नीति को कार्यान्वित करने के पूर्ण प्रयास किये। उसने दिल्ली के पार्श्ववर्ती जिलों में जैसे पालम, रेवाड़ी, अफगानपुर, अमरोहा, बदायूं, कोल (अलीगढ़)और पश्चिमोत्तर क्षेत्र में दिपालपुर, लाहौर, समाना, सुमात, कटेहर (रुहेलखण्ड) के उप खण्डों में तथा राजस्थान में बयाना और झाई के भागों की भूमि की पैमाइश या मापन प्रणाली प्रारम्भ कर दी। अवध में उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। इससे स्पष्ट है कि समस्त दिल्ली सल्तनत में भूमि की पैमाइश और राजस्व की नीति और नियम कार्यान्वित नहीं किये जा सके थे। कर-वसूली और उसके हिसाब के लिये खुद मुकद्दम, चौधरी, कारकून, मुतसर्रिफ आमिल, नवी सिन्दगी, आदि विभिन्न कर्मचारी और पदाधिकारी विशाल संख्या में थे। घूस, भ्रष्टाचार और अधिक कर वसूली के दोषों को रोकने के लिये अलाउद्दीन ने प्रथक् से दीवान-ए-मुस्त खराज नामक एक विभाग स्थापित किया था। मुस्त खराज को राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारियों के नाम, अवशेष धन राशि की जाँच करने और उसे वसूल करने का कार्य सौंपा गया था। यदि आमिल और कारकून बकाया धन राशि को पूर्णरूप से वसूल करने में असमर्थ रहते तो उसने उन्हें खुलकर दण्डित किया। बर्नी के अनुसार दस सहस्र आमिल और कारकून दण्डित हुए। रिश्वत और भ्रष्टाचार के प्रलोभन से ऊपर उठने के लिये अलाउद्दीन ने इन कर्मचारियों की वेतन वृद्धि कर दी थी।

राजस्व सुधारों का महत्व—भूमि की प्रति विस्वा के दर से विधिवत् नाप, भूमि की श्रेणी और उर्वरा के अनुसार भूमि कर का निर्धारण तथा भूमि कर व अन्य करों की पूर्ण रूप से वसूली ये ऐसे सिद्धांत थे जिस ओर १३ वीं सदी के मुस्लिम शासकों ने ध्यान नहीं दिया। अलाउद्दीन प्रथम सुलतान था जिसे इनको पुनर्जीवित करने का श्रेय है। उसके राजस्व के कार्यों ने उस दृढ़ नीति की आधार शिला रखी जिसका अनुकरण शेरशाह और अकबर ने किया। अलाउद्दीन पहला शासक था जो पटवारियों तक पहुँचा और राजस्व व्यवस्था के छोटे मामलों की ओर ध्यान दिया व राजस्व प्रशासन को चुस्त और दक्ष किया। वंशानुगत पदाधिकारियों के विशेष अधिकारों का उन्मूलन करके राजस्व प्रशासन की अनुदार शाखा में क्रांति करने वाला वह प्रथम मुस्लिम शासक था।

राजस्व सुधार के परिणाम

(१) राज्य की आय में वृद्धि—भूमि कर की धनराशि उपज की पचास प्रतिशत होने से राज्य की आय की वृद्धि हो गई। माफीदारों और जागीरों की भूमि खालसा हो जाने से और उससे नियमित भूमि कर प्राप्त होने से राज्य की आमदनी पर्याप्त रूप से बढ़ गई। सुलतान की धन लिप्सा की महान कामना पूर्ण हो गई।

(२) खाद्यान्न की बाहुल्यता—भूमि कर को अनाज के रूप में प्राप्त कर उस अनाज को राजकीय गोदामों में संग्रहित कर देने से खाद्यान्न की बाहुल्यता हो गई। खाद्यान्न को निश्चित दर पर इन राजकीय गोदामों से व्यापारियों को बेचा जाता था। दुर्भिक्ष के समय यहां से खाद्यान्न अकाल पीड़ित क्षेत्रों को भेजा जाता था और खाद्यान्न के मूल्य को अधिक होने से रोका जाता था।

(३) भ्रष्टाचार का अन्त—राजस्व विभाग में व्याप्त रिश्वत, भ्रष्टाचार और कर्मचारियों द्वारा कृषकों से अधिक धन की वसूली अलाउद्दीन ने अपने कठोर नियमों और निर्मम दण्ड के द्वारा बन्द करवादी। भूमिपतियों और माल-विभाग के कर्मचारियों पर कठोर अनुशासन और नियंत्रण रखकर सुलतान ने कृषकों को उनके निर्दय चंगुल से बचा लिया।

(४) भूमिपतिओं के विशेषाधिकार की समाप्ति—अलाउद्दीन ने खूतों, चौधरियों, मुकद्दमों और अन्य प्रकार के भूमिपतियों के विशेष अधिकार समाप्त कर दिये, उनकी उदण्डता और अवहेलना कुचल डाली और उन्हें दरिद्रता और मितव्ययता का जीवन व्यतीत करने लिये बाध्य किया।

(५) विभिन्न योजनायों में सफलता—राजस्व के सुधारों और करों की वृद्धि से अलाउद्दीन ने आवश्यकता से अधिक धन और अन्न दोनों प्राप्त कर लिए और अपनी इस नीति से अलाउद्दीन ने अपने विभिन्न कार्यों में सफलता प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त कर लिया। उसने अपनी सैनिक शक्ति को संगठित और सुसज्जित कर लिया, साम्राज्य विस्तार की योजनाओं को कार्यान्वित कर लिया। राज्य को बाह्य आक्रमणों के भय से मुक्त कर दिया और खाद्यान्नों का मूल्य भी कम कर दिया। विद्रोहों का उन्मूलन करने में भी वह सफल हुआ। उसने राजस्व के सुधारों द्वारा प्रशासन को दृढ़ और सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने का प्रयास किया।

(६) प्रजा और कृषकों पर करों का अत्यधिक बोझ और आर्थिक शोषण—साधारण प्रजा व कृपकों पर इन सुधारों का बुरा प्रभाव पड़ा। उपज का पचास प्रतिशत भूमिकर के अतिरिक्त गृह कर, चरागाह, जजिया कर, करी, जकात आदि अनेक करों का बोझ भूमिपतियों, कृपकों और जन साधारण पर आ गया था। भूमिपतियों, और कृषकों को पचास प्रति शत लगान चुकाने पर शेष बचे आधे भाग से जजिया, चराई कर, आवास कर तथा अन्य कर भी देना पड़ते थे। इसके साथ-साथ बाजार नियंत्रण के कारण सुलतान द्वारा निर्मित अन्नागारों की पूर्ति के लिए उन्हें अपनी बचत का अनाज शासन द्वारा नियंत्रित दरों से बेचने के लिये बाध्य किया जाता था। यदि आने वाली फसल तथा कृषकों को किसी कारणवश अनाज की आवश्यकता होती थी तो विवश होकर उन्हें चौगुने और पांच गुने दामों को देकर बाजार से क्रय करना पड़ता था। भूमिपतियों को पशु पालन पर चराई कर और अन्य कर देना पड़ते थे जो अबतक उन्होंने कभी नहीं दिये थे। अलाउद्दीन की इस प्रकार की नीति से भूमिपतियों व कृषकों के हितों पर कुठाराघात हुआ। उनके पास जीवन निर्वाह के लिए धन और अन्न शेष नहीं रहा था। इससे उपज बढ़ाने के लिए या कृषि की प्रणाली में सुधार करने के लिए प्रोत्साहन

का कोई आधार नहीं रहने दिया। सुल्तान ने भूमिपतियों और कृषकों के शोषण की नीति अपनाई। वह उन सबकी सम्पत्ति छीन कर राजकोषों में भर देना श्रेयस्कर समझता था।

स्वयं बर्नी ने अलाउद्दीन की इस शोषण की नीति की आलोचना करते हुए लिखा है कि, "लोगों पर दबाव डाला गया, उन पर दण्ड लगाये गये तथा हर बहाने उनसे धन वसूल किया गया। अनेक लोग पूर्णतया निर्धन हो गये और स्थिति यह हो गई कि अमीरों, मलिकों उच्च पदाधिकारियों, मुल्तानियों (बड़े सिंधी व्यापारियों) और साहूकारों को छोड़कर और कोई किसी के पास नगद धन शेष नहीं रह गया। जब्त करने की यह नीति इस कठोरता से लागू की गई कि कुछ हजार टंकों (तनकों) को छोड़कर सब देश ने, माफी की भूमि और धर्मस्व हड़प लिया।"

अलाउद्दीन की उत्पीड़क राजस्व नीति के कारण ग्रामवासी और कृषक दरिद्र हो गये और अत्यधिक दरिद्र एवं दुखी हो जाने से खेतीबाड़ी से उनका विश्वास हट गया था व कृषि उपज गिर गई थी। इस विश्वास को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए एवं कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए अलाउद्दीन के थोड़े वर्षों बाद ही गयासुद्दीन तुगलक को भूमि कर में कमी करना पड़ी। अलाउद्दीन की इसी नीति की आलोचना करते हुए मजूमदार, राय चौधरी एवं दत्त का कथन है कि, "अधिकांश जनता को अपनी उपज का अर्ध भाग और चरागाहों पर भारी कर देना पड़ता था। सुलतान उनकी ऐसी परिस्थिति कर देना चाहता था कि न वे अस्त्र उठा सकें, न अश्वों पर आरूढ़ हो सकें, न सुन्दर वस्त्र धारण कर सकें और न जीवन में अन्य ऐश्वर्य साधनों का उपयोग कर सकें। वास्तव में उनकी दशा अति दयनीय थी।"

(७) **राजस्व कर्मचारियों पर कुप्रभाव**—अलाउद्दीन की राजस्व नीति और सुधारों का प्रभाव राजस्व विभागों के उच्च कर्मचारियों पर तो नाममात्र का ही पड़ा। किन्तु निम्न कर्मचारी अत्यंत ही दुखी हुए। खूत, मुकद्दम, मुत्सरिफ, नवीसिन्दगी, आदि कर्मचारियों को राजस्व वसूली के लिये और उन नियमों का पालन करने के लिये अनेक बार अत्यन्त ही निर्मम दण्ड भोगना पड़ते थे, और दीर्घकाल तक कारावास में रहना पड़ता था। इससे उनकी आय अत्यन्त ही कम हो गई थी, वे अत्यधिक निर्धन हो गये थे और उनके व्यय को पूरा करने के लिए उनकी स्त्रियों व बच्चों को मजदूरी करना पड़ती थी। जिन परिवारों में लगान निश्चित करने और वसूल करने का कार्य कई पीढ़ियों से होता चला आ रहा था, उनकी दशा अलाउद्दीन के निर्मम व्यवहार और कठोर दण्ड विधान से अत्यन्त दयनीय हो गई थी। समाज में इन कर्मचारियों का पद हेय समझा जाने लगा था और लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे। राजस्व विभाग की नौकरी इतनी घृणित और कष्टप्रद समझी जाने लगी थी कि केवल दुस्साहसी ही इस विभाग में कार्य करते थे।

(८) **हिन्दुओं की दयनीयता**—अलाउद्दीन के राजस्व सुधारों का प्रभाव हिन्दुओं पर भयावह रूप से पड़ा, क्योंकि इनमें से अधिकांश कृषक और भूमिपति थे या कर वसूल करने वाले खूत, मुकद्दम, नवीसिन्दगी नामक राजस्व के कर्मचारीगण थे। ये ही सुलतान के कोपभाजन बने थे। इनमें से अनेकों की भूमि व धन का अपहरण हो

गया था तो अनेकानेक अत्यधिक करों के बोझ से कराह रहे थे। इसलिए प्रोफेसर हेग ने भी कहा है कि "हिन्दू निर्धनता और आपत्ति ग्रस्तता की सीमा तक पहुँच गये थे।" बर्नी के कथनानुसार सुलतान के विरुद्ध हिन्दुओं का सिर उठाना असम्भव था। उनके गृहों में चांदी, स्वर्ण, पीतल तथा धन सम्पत्ति का चिन्ह भी न रह गया था। अति-दरिद्रता के कारण खूतों तथा मुकद्दमों की महिलाओं को जीविकोपार्जन के लिए मुस्लिम घरों में सेविकाओं का कार्य करना पड़ता था। स्वयं अलाउद्दीन ने भी यह घोषणा की थी कि हिन्दू लोग तब तक विनम्र तथा आज्ञाकारी नहीं होंगे जब तक उन्हें पूर्ण रूपेण दरिद्र नहीं बना दिया गया।

राजस्व नीति का आधार—अलाउद्दीन की राजस्व नीति का आधार व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि था। उसने अपने स्वार्थों और राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिए ये सुधार किये। व्यक्तिगत समृद्धि को रोकने के लिए उसने लोगों की सम्पत्ति का अपहरण किया और करों का बोझ उन पर लाद दिया। उसकी सम्पूर्ण राजस्व नीति इस सिद्धांत पर अवलम्बित थी कि उसकी अधिकांश प्रजा को-हिन्दू हो अथवा मुसलमान-धन एकत्र करने नहीं दिया जायगा। अलाउद्दीन ने राजस्व सुधार करते समय न तो इक्ता प्रथा हटाई और न खूती प्रथा। उसने करों के बोझ से कृषक वर्ग को लाभ नहीं पहुँचाया। उसने केवल भूमिपति वर्ग के विशेष अधिकार समाप्त कर दिये।

अलीगढ़ के प्रोफेसर हबीब का मत है कि, "तेरहवीं सदी की क्रांति अपूर्ण थी जिसको पूरा करने के लिए अलाउद्दीन ने इन सुधारों को अपनाया तथा कृषकों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया।" उनका कथन है कि "भारतवर्ष की कृषि समस्या को सुलझाने के लिए उसने एक नीति निर्धारित की—मजबूत का भार कमजोर पर नहीं पड़ना चाहिए"—पर यह मत विवेकपूर्ण और न्यायसंगत नहीं है। कृषकों के हित या जन कल्याण की भावना अलाउद्दीन के मन में थी ही नहीं। यदि कभी इस प्रकार की भावना उसके मन में आ भी गई हो तो वह क्षणिक तरंग की भावना रही होगी। उसका उद्देश्य तो अपनी शक्ति को संगठित करना और प्रजा तथा अमीरों की विद्रोहात्मक भावना को कुचलना था। अपनी स्वार्थ-सिद्धि और शासक वर्ग की भलाई—उसका लक्ष्य था। उसने जन-समृद्धि को नहीं अपितु शक्ति को शासन का स्थायी आधार बनाया। क्योंकि उसके प्रशासन की प्रत्येक वस्तु से शक्ति की गंध आती है।

अलाउद्दीन के सैनिक सुधार

सैनिक सुधारों की आवश्यकता और सैनिक सुधारों के लिये अलाउद्दीन के उद्देश्य

(१) अलाउद्दीन स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासक होने के कारण एक सुदृढ़ एकतन्त्र निरंकुश शासन स्थापित करना चाहता था। सफल निरंकुश शासन के लिये शक्तिशाली संगठित सेना आवश्यक है।

(२) अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी व साम्राज्यवादी सुलतान था जिसे अपनी विस्तारवादी नीति को कार्यान्वित करने के लिये एक महान सशक्त सेना की आवश्यकता थी। सैन्य बल से ही वह अनवरत आक्रमण, विजय अभियान और साम्राज्य

विस्तार कर सकता था। साम्राज्य निर्माण और विस्तार का महत्वाकांक्षी होने से वह सेना की उपेक्षा नहीं कर सकता था।

(३) मंगोलों के आक्रमणों का भय अलाउद्दीन की सैन्य वृद्धि और सैन्य संगठन के मूल में था। मंगोलों के निरन्तर आक्रमणों को रोकने के लिये तथा राज्य की सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा के हेतु उसे एक विशाल सेना की आवश्यकता थी।

(४) आन्तरिक शांति—व्यवस्था के लिये और विद्रोहों तथा षड़यंत्रों के दमन के लिये भी अलाउद्दीन को एक शक्तिशाली, सुसज्जित और संगठित सेना रखने की आवश्यकता अनुभव होने लगी।

इन्हीं उपरोक्त आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर अलाउद्दीन ने सेना का पुनर्गठन कर सैनिक सुधार करने का दृढ़ संकल्प किया। वह प्रथम दिल्ली का सुलतान था जिसने सल्तनत की ऐसी स्थायी सेना की नींव रखी जो राजधानी दिल्ली में साम्राज्य और सुलतान की सेवा के लिये सदैव तत्पर और विद्यमान रहती थी।

अलाउद्दीन के सैनिक सुधार के पूर्व सेना की दशा

अलाउद्दीन के पूर्व दिल्ली के सुलतान अपने पास सुदृढ़ स्थायी सेना नहीं रखते थे। सैनिक अभियान. आक्रमण या सुरक्षा के लिये जब उन्हें सेना की आवश्यकता होती थी, तब वे अपने अधीनस्थ प्रांतपतियों व जागीरदारों से निर्दिष्ट सेना प्राप्त कर लेते थे। प्रांतपतियों, जागीरदारों और विभिन्न अमीरों में सेना का विभाजन हो गया था, उसकी भरती और व्यवस्था का काम उन्हें सौंपा गया था, प्रांतपतियों और अमीरों द्वारा प्राप्त सेना में शीघ्रतापूर्वक किराये या भाड़े के टट्टू के समान सैनिकों की भरती कर अश्वारोहियों और पदातियों की संख्या पूर्ति करने पर बल दिया जाता था। शीघ्रता में भरती किये हुए ऐसे सैनिक प्रायः युद्ध कला से अनभिज्ञ रहते थे। वे अनुशासित और प्रशिक्षित रूप से युद्ध करने की अपेक्षा असंबद्ध रूप से युद्ध करते थे। इसके अतिरिक्त वे सुलतान की अपेक्षा अपने स्थानीय स्वामी या सेनानायक के प्रति ही अधिक स्वामि-भक्ति प्रदर्शित करते थे।

इस समय सेना के संगठन में विभिन्न वर्ग के सैनिक रहते थे। प्रथम, वे सनिक जो सुलतान के अंगरक्षक थे और जिन्हें जांदार कहा जाता था। वे सुलतान द्वारा स्थायी रूप से नियुक्त होते थे और स्वयं सुलतान के ही नियंत्रण में रहते थे। द्वितीय स्थायी सैनिक। इनकी संख्या सीमित होती थी। ये स्थायी रूप से नियुक्त होते थे और इनसे सल्तनत की सेना निर्मित होती थी। तृतीय, वे सैनिक जो प्रांतीय सूबेदार या हाकिम अपने अधीन स्थायी रूप से रखते थे। वे इन सैनिकों को सुलतान की सेवा में आवश्यकता पड़ने पर या सैनिक माँग होने पर प्रस्तुत करते थे। चौथे, वे रंगरूट जो सैनिक अभियानों व युद्ध के समय विशेष रूप से सेना में भरती किये जाते थे। साधारणतया ये मुस्लिम होते थे और जो संभवतः वेतन के लिये नहीं अपितु लूट का एक अंश प्राप्त करने के लिये हिन्दुओं या हिन्दू राज्यों के विरुद्ध जिहाद (धार्मिक युद्ध) में भाग लेते थे। पांचवें, वे पैदल सैनिक थे जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। ये अस्थायी और असंबंधित होते थे तथा लूट में भाग लेने के लिये सेना में सम्मिलित हो जाते थे। इन सैनिकों के वेतन भी अनिश्चित होते थे और सेनानायकों

व उच्चपदाधिकारियों को सैनिक सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप भूमिखण्ड जागीर में उपहार स्वरूप दिये जाते थे। सुलतान अलाउद्दीन ने इस सैनिक व्यवस्था में सुधार किये। उसके ये सुधार निम्नलिखित हैं।

सुधार

(१) **सेना की वृद्धि और सैनिक भरती**–अलाउद्दीन ने अपनी सेना में पदाति और अश्वारोहियों की भरती कर सेना की संख्या बढ़ा कर चार लाख पचहत्तर सहस्र कर ली। अलाउद्दीन ने सैनिक शक्ति को अपने अधिकार में करने के लिये राज्य की संपूर्ण सैनिक शक्ति पर अपना अधिकार कर लिया। वह स्वयं सैनिकों की भरती करता था। वह सेना में उन्हीं मनुष्यों को रखता था जिन्हें शस्त्रों के प्रयोग का, घोड़े की सवारी करना, तथा युद्ध कला आदि का पूर्ण ज्ञान होता था। वह सैनिकों की भरती योग्यतानुसार करने लगा था। सेना में मुख्य रूप से वर्दीधारी अश्वारोही व पदाति होते थे। हाथी भी युद्ध के समय प्रयुक्त किये जाते थे। दीवान-ए-अर्ज (सेना-विभाग) प्रत्येक सैनिक की नामावली, हुलिया आदि का विवरण रखता था। अला-उद्दीन ने सैनिकों का हुलिया आदि लिखवाने का आदेश दे दिया था। इससे युद्ध क्षेत्र में लड़ने के लिये प्रतिनिधि भेजने की व्यवस्था का अंत हो गया था।

(२) **स्थायी सेना–पदाति और अश्वारोही सैनिक**––अलाउद्दीन ने एक स्थायी सेना स्थापित की। उसमें उसने पदाति और अश्वारोही सैनिक भरती किये। इस स्थायी सेना में नीची श्रेणी में पदाति या पैदल सैनिक होते थे, जिन्हें पायक कहा जाता था। इनमें पायक या अस्प नामक ऐसे पैदल सैनिक भी होते थे जिनको वेतन पदाति का प्राप्त होता था किंतु युद्ध के समय उनको सुलतान की ओर से अश्व दिये जाते थे। पदातियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के सैनिक होते थे इनको ७८ टंक वार्षिक वेतन मिलता था। इनसे ऊपर अश्वारोही सैनिक होते थे। इनमें ३ श्रेणियाँ थीं। प्रथम श्रेणी के सैनिक दो से अधिक अश्व रखते थे और दूसरी श्रेणी के अश्वारोही सैनिक दो अश्व तथा तृतीय श्रेणी अश्वारोही सैनिक एक अश्व रख सकते थे। नियमित सैनिक को मुरतब कहा जाता था और दो अश्व वाले सैनिक को "दो अस्पा" कहा जाता था। युद्ध, आक्रमण और सैनिक अभियान के समय भी सैनिक भरती किये जाते थे और इन कार्यों के तुरन्त पश्चात ही सेवामुक्त कर दिये जाते थे। पदातियों और अश्वारोही सैनिकों व हाथियों से अलाउद्दीन ने अपनी स्थायी सेना का गठन किया।

(३) **नकद वेतन**––सैनिकों और सेनानायकों को अलाउद्दीन के पूर्व नकद वेतन देने की प्रथा नहीं थी। उन्हें उनकी सैनिक सेवाओं के फलस्वरूप "अक्ता" प्रदान की जाती थी। अक्ता से अभिप्राय उस जागीर या भूमि से है जो उस सेना के अधिकारियों व सरदारों को सेना रखने और सैनिकों का समुचित प्रबन्ध करने के लिये सुलतान की ओर से दी जाती थी। इस भूमि से जो आय होती थी, उसमें से सेना के व्यय का धन काटकर, शेष धन को इन्हें राजकोष में जमा करना पड़ता था। परन्तु अक्ता के स्वामी सैनिक या सैनिक पदाधिकार अवशिष्ट धन को राजकोष में जमा नहीं करते थे। वे इस प्रथा का अनुचित लाभ उठाकर सुलतान के विरुद्ध षड्यंत्र या विद्रोह करने के अवसर की ताक में रहते थे। धीरे-धीरे इन्होंने अपनी शक्ति और

प्रभाव में भी वृद्धि कर ली। इसलिये सुलतान अलाउद्दीन इन अक्ताओं के स्वामियों की, अमीरों, सरदारों और जागीरदारों की बढ़ती हुई शक्ति का उन्मूलन करना चाहता था। फलतः उसने सैनिक सेवाओं के बदले में भूमिखंड देने की अपेक्षा राजकोष से नकद वेतन देने की प्रथा का प्रारम्भ कर दिया। जागीर प्रथा बंद कर दी गयी और राज्य की ओर से सैनिकों को नगद वेतन, अश्व, अस्त्र-शस्त्र, युद्ध-सामग्री आदि प्राप्त होने लगी। जो सैनिक अपने पास से अश्व लाते थे, उन्हें अधिक वेतन दिया जाता था। जिन सैनिकों के पास दो अश्व होते थे उन्हें और भी अधिक वेतन प्राप्त होता था। एक पदाति को ७८ टंक वार्षिक या ६½ टंक मासिक वेतन दिया जाता था। उन अश्वारोही सैनिकों को, जिनके अश्व सरकार की ओर से दिये जाते और जिन अश्वों का व्यय स्वयं सरकार वहन करती थी, प्रति सैनिक १५६ टंक वार्षिक वेतन मिलता था। एक अश्व रखने वाले सैनिक को "यक अस्पा" कहते थे। वह अपने आप अश्व लाता और उसे रखता था। उसका वेतन २३४ टंक वार्षिक था। दो अश्व रखने वाले सैनिक को २३४ टंक उसका व्यक्तिगत वेतन और ७८ टंक एक अधिक अश्व रखने का भत्ता, इस प्रकार ३१२ टंक वार्षिक वेतन प्राप्त होता था। नगद वेतन देने की व्यवस्था से सैनिक संगठन में अधिक चुस्ती और क्षमता आ गयी।

(४) **श्रेष्ठ अश्वों की प्राप्ति और अश्वों को दागने की प्रथा**—अलाउद्दीन ने अनुभव कर लिया था कि समस्त सेना की श्रेष्ठता और सफलता अश्वों पर निर्भर है। इसलिये उसने सेना के लिये श्रेष्ठ और अच्छी नस्ल के अश्व प्राप्त करने का प्रयास किया और इस ओर उसने विशेष ध्यान दिया। अब तक उच्च कोटि के अश्वों का अभाव सेना में था। अलाउद्दीन ने श्रेष्ठ और ऊंची नस्ल के अश्व बाहर से मंगवाये। मंगोलों से हुए युद्धों मे उसने अच्छी नस्ल के घोड़े प्राप्त कर लिये थे। दक्षिण भारत के युद्धों में भी उसने उच्च कोटि के अश्व और हाथी प्राप्त कर उन्हें सेना में रख लिये। इसके अतिरिक्त उसने घोड़ों की अच्छी नस्ल सुधारने की भी व्यवस्था की। इसके लिये घुड़सालों का प्रबन्ध किया गया।

इस समय अश्वारोही सेना में यह दोष चला आ रहा था कि सैनिक अपने पास उच्चकोटि के या अच्छी नस्ल के अश्व नहीं रखते थे। निरीक्षण के समय या वेतन प्राप्त करने के समय सैनिक किसी भी अश्व को दो बार प्रस्तुत कर देते थे अथवा श्रेष्ठ अश्व के स्थान पर निकृष्ट अश्व रख देते थे और श्रेष्ठ अश्व बेच देते थे। इस दूषित प्रथा को निवारण करने के लिये अलाउद्दीन ने घोड़ों को दागने या उन पर अंक चिह्नित करने की प्रथा प्रारंभ कर दी। अब आवश्यकता पड़ने पर या निरीक्षण के समय सैनिक श्रेष्ठ अश्वों के स्थान पर मरियल टट्टूओं द्वारा संख्या पूर्ति करने में असमर्थ हो गये। इसके लिये "पायगाह" नामक विभाग स्थापित किया गया जो शाही घोड़ों की नस्ल सुधारने का कार्य तथा उच्च कोटि के अश्वों का प्रबन्ध करता था।

(५) **अनुभवी सेनापतियों की नियुक्ति, निरीक्षण और प्रशिक्षण**—सुलतान अलाउद्दीन ने सैनिक प्रवृत्ति रखने वाले, योग्य, अनुभवी और विश्वासपात्र सेनानायकों और सैन्य पदाधिकारियों को नियुक्त किया। इससे सैन्य संगठन, अनुशासन व प्रशिक्षण का स्तर ऊंचा हो गया तथा सैनिकों को युद्ध कला तथा युद्ध विज्ञान का विशिष्ट

ज्ञान उपलब्ध हो गया। अलाउद्दीन ने सैन्य संगठन में एकीकरण और केन्द्रीकरण की नीति अपनाई। उसने सेना में भरती, निरीक्षण, सेनासंगठन, पदाधिकारियों की नियुक्तियाँ, सैनिक अनुशासन, योग्यता, सैनिक सामग्री, रसद, आदि विषयों में विशेष अभिरुचि ली और वह स्वयं इनका निरीक्षण करता। उस समय कवायद, परेड या सैनिक प्रशिक्षण जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। युद्ध में ही सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते थे। इसलिये उसने अनवरत युद्धों को जारी रखा। शांति के समय भी वह सैनिकों को आखेट में लगाये रखता और नकली युद्ध में संलग्न रखता था।

(६) **विविध अस्त्र-शस्त्र उनका निर्माण और शस्त्रागार**—अलाउद्दीन ने सेना को सुसज्जित करने के लिये सैनिक सामग्री और अस्त्र-शस्त्र के निर्माण के लिये अनेक कारखाने खुलवाये। विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिये शस्त्रागारों मे निपुण अधिकारी नियुक्त किये। उसने मंजनीक, अर्रादा और मगरबी यंत्रों का निर्माण करवाया और उनकी संख्या में वृद्धि की। घेरे या युद्ध के समय ये पत्थर और आग फेंकने वाले यंत्रों का कार्य करते थे। अभियान और युद्ध के समय सैनिक और उसके अश्व दोनों की सुरक्षा की व्यवस्था की जाती थी। सेना की रक्षा के लिये उसने खाई खुदवाना, लकड़ी की दीवार खड़ी करना, तथा हाथियों के छोटे-छोटे दस्ते रखना प्रारम्भ कर दिये थे। प्रत्येक सैनिक के पास दो तलवारें, धनुष-बाण, गदा और कुल्हाड़ियाँ रहती थीं। इन दो तलवारों में से एक तलवार सैनिक के अश्व की काठी से लगी रकाब में रहती थी और दूसरी तलवार सैनिक के स्वयं के म्यान में लगी रहती थी। पैदल सैनिक लम्बे धनुष-बाण, तलवार व कटार से सुसज्जित रहते थे और हाथी धातु के पतरों से ढके रहते थे। अश्वारोही सैनिक का अश्व स्पात से और सैनिक कवच व शिरस्त्राण से ढके रहते थे।

(७) **दुर्ग**—साम्राज्य के सीमान्त प्रदेश मंगोलों के आक्रमणों से त्रस्त हो गये थे। मंगोलों के आक्रमणों का दबाव और संख्या पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गयी थी। मंगोल साम्राज्य के भीतरी भागों तक घुस आये थे और राजधानी दिल्ली को भी घेरकर उसे संकटग्रस्त कर दिया था। अलाउद्दीन ने इस भीषण विपत्ति का सामना करने तथा साम्राज्य की सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिये, मंगोलों के मार्ग में स्थित समस्त प्राचीन दुर्गों की मरम्मत करवादी, उनका जीर्णोद्धार किया, तथा सैनिक महत्व के स्थानों पर नवीन दुर्गों का निर्माण किया एवं सैनिक छावनियां स्थापित कीं। समाना और दिपालपुर की सैनिक छावनियों का पूर्णरूपेण सैनिकीकरण किया गया। इन दुर्गों और छावनियों में सर्वाधिक अनुभवी, वीर, साहसी, सुयोग्य और रणकुशल सैनिकों और सेनानायकों को नियुक्त किया गया और उन्हें सदा रक्षार्थ तत्पर रहने का आदेश दिया गया। ये सेनानायक कोतवाल कहे जाते थे। सीमान्त प्रदेश की सुरक्षा और सुव्यवस्था का भार गाजी मलिक को सौंपा गया। इतिहासकार बर्नी के अनुसार "इन सब किलों में मंजनीक और अर्रादा यंत्रों के निर्माण के लिये, कुशल यांत्रिकों की नियुक्ति के लिये, हर प्रकार के शस्त्रों की पूर्ति के लिये और अनाज तथा चारे का भंडार रखने के आदेश दे दिये थे।"

(८) **सैन्य विभाग और सैन्य अधिकारी**—अलाउद्दीन सेना में अत्यधिक रुचि रखता था और सेना पर स्वयं अपना प्रत्यक्ष अनुशासन रखता था। इसलिये उसने स्वयं सेना का निरीक्षण अपने हाथ में ले लिया था और प्रायः वह स्वयं ही सैनिकों की भरती और पदोन्नति करता था। उसने सेना सम्बन्धी सभी कार्यों का केन्द्रीकरण कर दिया था। उसने एक विशाल सेना-विभाग स्थापित किया, जिसे "दीवान-ए-अर्ज" कहा जाता था और इसका सबसे बड़ा अधिकारी "आरिज-ए-ममालिक" कहा जाता था। सेना का समस्त प्रबन्ध उसके अधीन कर्मचारियों द्वारा होता था। युद्ध के समय रणक्षेत्र में सेना की अध्यक्षता करना उसके लिये आवश्यक नहीं था। सेनापति बन कर रण में जाना उसके लिये आवश्यक नहीं था। परन्तु वह अथवा उसके नायब युद्ध के समय सेना के साथ जाते थे। सेना के लिये रसद और कुमुक की व्यवस्था करना अथवा सेना द्वारा लूटे गये माल की देखरेख करना उसका कार्य माना जाता था। कभी-कभी आरज-ए-ममालिक को अन्य प्रमुख सेनापति के अधीन आक्रमण के समय जाना पड़ता था, जैसा अलाउद्दीन ने तत्कालीन आरज-ए-ममालिक को सेनापति मलिक काफूर के नेतृत्व में युद्ध करने के लिये भेजा था। सैनिक अभियान या आक्रमण के समय जब सुलतान अलाउद्दीन स्वयं साथ होता था तब अन्य कोई भी सैन्य अधिकारी सेनापति नहीं होता था। ऐसे समय स्वयं सुलतान सेनाध्यक्ष होता था। आक्रमण या युद्ध के समय अलाउद्दीन जिस सैनिक अधिकारी को सेनापति नियुक्त करता था, वही उस समय सेनापति रहता था। इससे प्रगट होता है कि सेनापति का पद स्थायी नहीं होता था। किसी व्यक्ति को सेना का अधिकारी बनाने में उस व्यक्ति का व्यक्तित्व, उसके अधीन सैनिकों की संख्या, दुर्ग और प्रदेश का महत्व आदि पर विचार किया जाता था।

अलाउद्दीन सैनिकों के कल्याण में भी अभिरुचि रखता था। वह अपने सैनिकों और सेनानायकों को अभियान या आक्रमण व युद्ध में विजय करके लौटने पर पुरस्कार दिया करता था। उनके दैनिक और सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसने अलग ही अर्थनीति अपना कर बाजारों और विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों को नियन्त्रित कर दिया।

सैनिक सुधार का महत्व—अलाउद्दीन के शासन की सफलता सेना पर ही निर्भर थी। सेना की सहायता के बिना न तो वह विद्रोहों व षड़यन्त्रों का ही दमन कर सकता था, न अपने राजस्व की योजनाओं को मूर्त रूप देने के लिये, अपने कठोर आदेशों का पालन करने के लिये जनता को बाध्य ही कर सकता था और न देश की बाह्य आक्रमणकारियों से सुरक्षा कर सकता था। सेना के अभाव में महत्वाकांक्षी अलाउद्दीन अपनी एक भी आकांक्षा व योजना को मूर्त रूप देने में असफल होता।

सैनिक सुधार के परिणाम—प्रशासन, विजय और साम्राज्य विस्तार का दृढ़ आधार होता है—सुव्यवस्थित और संगठित सेना। अलाउद्दीन ने विविध सैनिक सुधार कर सेना को अधिक विशाल, मजबूत, व्यवस्थित और पूर्णरूप से गठित कर दिया। इससे निम्नलिखित लाभ हुए—

(१) सामन्तों की सेना पर सुलतान की निर्भरता का अन्त हो गया और एक

स्थायी सेना राजधानी में सदैव अपने कर्तव्य पालन के लिये तत्पर रहती थी। उसने अपने बाजार और मूल्यों के नियन्त्रण से तथा अन्य सैनिक सुधारों से सल्तनत के इतिहास में प्रथमबार कम व्यय पर एक विशाल स्थायी सेना स्थापित की।

(२) विद्रोह, उपद्रवों और षड़यन्त्रों का अन्त हो गया, तथा राज्य में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो गयी जिससे सुलतान अपने सुधारों की विभिन्न योजनाओं को कार्यान्वित कर सका।

(३) अपनी विशाल दृढ़ सेना से अपने आक्रमणों व युद्धों में सफल हो सका और साम्राज्य का विस्तार कर सका।

(४) मंगोल आक्रमणों का वह सरलता से अन्त कर सका। मंगोलों के विरुद्ध रक्षात्मक नीति के साथ-साथ उसने दृढ़ सेना होने से उनके विरुद्ध प्रत्याक्रमण की नीति भी अपनायी और मंगोलों के प्रदेश में उसने अपनी सेना भेजकर विजय प्राप्त की। सन् १३०७ के बाद इसका जो परिणाम हुआ उसका वर्णन बर्नी के शब्दों में है—"इसके बाद उन्होंने (मंगोलों ने) न कभी हिन्दुस्तान का नाम अपने ओठों पर आने दिया और न सीमान्त प्रदेश में विचरण करने का साहस किया। देश में शान्ति छा गयी और अब सुलतान को अन्य देशों को विजय करने का अवकाश मिल गया।" पर यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि सैनिक सुधार का कार्य सुलतान इल्तुतमिश और बलबन से प्रारम्भ हो चुका था और अलाउद्दीन ने इल्तुतमिश और बलबन की सैनिक योग्यता और सैनिक सुधारों के सिद्धान्तों में अपने को परिवर्तित कर लिया था। अलाउद्दीन ने उनके सैनिक सिद्धान्तों को अपना कर सुधारों को व्यापक पैमाने पर कार्यान्वित किया। सैनिक नीति व सुधारों में बलबन अलाउद्दीन का अग्रणी था।

अलाउद्दीन का बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण

पूर्वकालीन मध्य युग के इतिहास में अलाउद्दीन खिलजी को राजनैतिक अर्थशास्त्रज्ञ कहा गया है। उसकी बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण की नीति की अनेक इतिहासकारों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अतएव अब अगले पृष्ठों में अलाउद्दीन के बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण विषय को समझाया जायगा।

बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण नीति का उद्देश्य और कारण

(१) **प्रशासन में वित्तीय भार को कम करना**—साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ अलाउद्दीन के प्रशासन, उसके मंत्रियों, अधिकारियों और कर्मचारियों तथा दासों की संख्या में भी अधिक वृद्धि हुई। इनके वेतन और प्रशासन के वित्तीय भार को वहन करने के लिये अत्यधिक धन की आवश्यकता थी। पर राजकोष में संचित धन अधिक नहीं था।

(२) **सैनिक वृद्धि और सैनिक प्रशासन**—अलाउद्दीन ने एक विशाल स्थायी सेना स्थापित करली थी जिसकी संख्या ४,७५,००० थी, पर इतिहासकार 'फरिश्ता' के अनुसार इस सेना की संख्या पांच लाख थी। भूमि-कर को पचास प्रतिशत कर देने

से, विभिन्न प्रकार के कर लगा देने से, तथा सोने-चांदी के पेय-पात्रों को ढाल कर मुद्राओं में परिवर्तित कर देने पर इस विशाल सेना का व्यय वहन करना तथा प्रशासन की अन्य आवश्यकताओं को पूरी करना दुर्लभ हो रहा था। इस समय अधिकारियों ने यह अनुमान लगाया कि यदि सुलतान इसी प्रकार विशाल सेना को वेतन देता गया और सेना पर व्यय करता गया तो राजकोष पांच या छै वर्षों में रिक्त हो जायगा। इसलिये सुलतान ने सैनिकों के दैनिक उपयोग व सेना सम्बन्धी वस्तुओं के मूल्य कम करने का निश्चय किया। इससे सैनिकों को हानि भी नहीं होगी और वे अपनी आवश्यकताएँ अपने वेतन में ही पूर्ण कर सकेंगे।

(३) सन् १३०३ के पश्चात् अलाउद्दीन के प्रशासन में अनेक भवनों व राजप्रासादों का निर्माण हुआ था जिससे भी राजकोष पर अधिक भार पड़ रहा था।

(४) **अधिक कर असम्भव-सा था**—सुलतान अलाउद्दीन ने अपनी प्रजा पर बढ़ते हुए व्यय को वहन करने के हेतु इतने अधिक कर लगा दिये कि उनके कर देने की क्षमता का पूर्ण उपयोग हो चुका था। कर के भार से दबी और कराहती हुई प्रजा पर अब अधिक कर लगा कर धन एकत्र करना तथा प्रशासन व सेना का व्यय वहन करना असम्भव-सा था।

(५) **मंगोलों के आक्रमण और आतंक का अन्त**—सुलतान ने यह अनुभव किया था कि मंगोलों के निरन्तर आक्रमणों और उससे उत्पन्न आतंक का अन्त करने के लिये सेना की संख्या में वृद्धि और उस संगठन में दृढ़ता स्थापित करने की आवश्यकता थी। यह तभी सम्भव हो सकता था, जबकि बिना करों में वृद्धि किये सेना के बढ़ते हुए खर्चे के भार की व्यवस्था की जा सके।

(६) **सैनिकों के वेतन में कटौती सम्भव नहीं थी**—विशाल सेना के अत्यधिक व्यय को कम करने के लिये, सैनिकों का वेतन कम कर देना और नगद वेतन के स्थान पर जागीर या भूमि देना सम्भव हो सकता था। परन्तु अलाउद्दीन सैनिकों के वेतन-स्तर को कम करने के पक्ष में नहीं था, क्योंकि इससे योग्य, कुशल, वीर योद्धा व व्यक्ति सेना की ओर आकर्षित नहीं हो सकते थे और वेतन की अपेक्षा जागीर देने के पक्ष में सुलतान था ही नहीं। इसलिये उसने सैनिकों और सर्व साधारण के दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं के भावों को निर्धारित करना उचित समझा। ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक था कि जिससे कम से कम व्यय में सैनिकों को अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो जाय।

(७) **मुद्रा का कम स्तर और मूल्य की अभिवृद्धि**—राजस्थान, गुजरात और दक्षिण भारत की विजयों और लूट-पाट से अलाउद्दीन को जो अपार धन-द्रव्य प्राप्त हुआ था, उसका उसने मुक्त हस्त से वितरण किया। इससे लोगों, अधिकारियों और सैनिकों को अत्यधिक धन प्राप्त हो गया, बाजार में उनकी क्रय-विक्रय करने की शक्ति और साधनों में वृद्धि हुई, दैनिक जीवन की वस्तुओं के भाव अप्रत्याशित रूप से बढ़ गये और सिक्कों का मूल्य गिर गया। इस समस्या के निराकरण के लिये बाजार नियंत्रण और भावों का निर्धारण सुलतान के लिये अनिवार्य-सा हो गया था।

बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण में जन-कल्याण की भावना

कतिपय इतिहासकारों का मत है कि बाजार नियन्त्रण और विभिन्न वस्तुओं के भावों के निर्धारण में अलाउद्दीन जनहित की भावना से प्रेरित था। दैनिक उपयोग की वस्तुओं के भावों को कम करके, इन वस्तुओं की बाहुल्यता उत्पन्न करके, अलाउद्दीन सर्व साधारण के जीवन को और सैनिकों के जीवन को सुखमय बनाना चाहता था। अलाउद्दीन की बाजार-नियन्त्रण नीति परोपकार और लोकहित की भावना से ओत-प्रोत थी। इसके प्रमाण के लिये वे शेख नासिरुद्दीन का मत प्रमाण में प्रस्तुत करते हैं। एक सूफी सन्त शेख नासिरुद्दीन ने अपने ग्रन्थ "खैरुलमजलिस" में एक उपाख्यान का हवाला देते हुए लिखा है कि अलाउद्दीन ने मलिक कीराबेग से कहा कि "यदि मैं जनता को धन भी दूँ तो वह प्रसन्न नहीं होगी। इसलिये मैंने (अलाउद्दीन) खाद्य सामग्री को सस्ती करने का निश्चय किया है और (इस कदम का) लाभ प्रत्येक[illegible] पहुँचेगा। इस प्रकार अनाज सस्ता कर दिया जायगा। मैं नगर में अनाज लाने वाले नैगानों (घुमक्कड़ व्यापारियों) को बुला भेजूँगा। अनाज क्रय करने और (नगर में) लाने हेतु उन्हें कोषागार से धन दूँगा। (उसके बदले में) मैं व्यापारियों को उनके परिवार के भरण-पोषण के लिये वस्त्र और अन्न दूँगा।" इस उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिये अलाउद्दीन ने आदेश दिये और भाव निर्धारण के विविध नियम पारित किये। पर नासिरुद्दीन का प्रमाण मान्य नहीं है, क्योंकि—

(i) शेख नासिरुद्दीन के इस उपाख्यान और सुलतान की लोकहित की नीति का किसी भी अन्य समकालीन तथा बाद के इतिहासकारों ने वर्णन नहीं किया।

(ii) शेख नासिरुद्दीन ने अपने ग्रन्थ "खैरुल मजलिस" जिसमें उपरोक्त उपाख्यान का वर्णन है अलाउद्दीन के बाजार नियन्त्रण के साठ वर्ष बाद लिखा था जबकि इस दीर्घ अवधि में तत्कालीन घटनाओं की स्मृति भी क्षीण हो जाती है।

(iii) बर्नी ने यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि बाजार नियन्त्रण शाही सैनिकों की सुविधा व लाभ के लिये किया गया था।

(iv) मूल्य निर्धारण और बाजार नियन्त्रण केवल दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्र के लिये ही था।

(v) अलाउद्दीन की नीतियों और कार्यों का स्पष्ट उद्देश्य जनता को दरिद्र बनाना था जिससे "विद्रोह शब्द उनके होठों से न निकल सके।"

(vi) शक्ति और सेना अलाउद्दीन के शासन की आत्मा थी और ऐसा प्रशासन जनसाधारण की इच्छा या उनके कल्याण पर आश्रित नहीं था।

(vii) बर्नी के अनुसार अलाउद्दीन के शासनकाल में दिल्ली में एक कहावत प्रचलित हो गई थी कि "एक ऊँट एक दंग में मिल सकता है, पर दंग कहाँ से आये।" इससे स्पष्ट है कि अलाउद्दीन के बाजार नियन्त्रण ने वस्तुओं को तो सस्ता कर दिया था, किन्तु लोगों को दरिद्र।

इससे विदित होता है कि अलाउद्दीन का बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण जन कल्याण की भावना से ओत-प्रोत नहीं था। मूल्य नियन्त्रण अलाउद्दीन की एक प्रशासकीय और राजनैतिक आवश्यकता थी। इसमें अलाउद्दीन की स्वार्थ सिद्धि थी।

मूल्य निर्धारण—सुलतान ने खाद्यान्न के साथ-साथ सैनिकों की दैनिक आवश्यकता की अन्य कई वस्तुओं के भाव निश्चित कर दिये। बाजार और मण्डी में वस्तुओं में सस्ताई लाने के लिये राज्य की ओर से विभिन्न वस्तुओं के भाव निर्धारित कर दिये। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं।

खाद्यान्न	जीतल में निर्धारित भाव
गेहूँ	७½ जीतल प्रति मन
जौ	४ " "
धान	५ " "
चना	५ " "
उड़द और अन्य दालें	५ " "
मोठ	३ " "
शक्कर	१⅓ " "
गुड़	⅓ " "
नमक	५ " "
घी	१ " का २½ सेर
सरसों का तेल	१ " ३ सेर

दैनिक उपयोग के वस्त्र	निर्धारित भाव
दिल्ली का रेशम	१६ टंक
खजकौला (एक प्रकार का रेशम)	६ टंक
मशरु शेरी (उत्तम)	३ टंक
बुरद (उत्तम)	६ जीतल
बुरद (साधारण)	३½ जीतल
अस्तरलाल नागौरी	२४ जीतल
अस्तर साधारण	१२ जीतल
शिरीन वाफ्त (उत्तर)	५ टंक
शिरीन वाफ्त (औसत)	३ टंक
शिरीन वाफ्त (साधारण)	२ टंक
सिलहती (उत्तम)	६ टंक
सिलहती (औसत)	४ टंक

सिलहती (साधारण)	२ टंक
मलमल बारीक	१ टंक प्रति बीस गज
मलमल (साधारण)	१ टंक प्रति चालीस गज
चादर	१० जीतल

पशुओं के प्रकार	निर्धारित भाव
सर्वोत्तम नस्ल का अश्व सैनिक के लिये	१०० टंक से १२० टंक तक
मध्यम नस्ल का अश्व (सैनिक)	८० " ९० "
साधारण नस्ल का अश्व	६५ " ७० "
टट्टू (निकृष्ट घोड़ा)	१० " २५ "
दुधारी गाय	३ " ४ "
मांस के लिये उपयुक्त गाय	१ " २ "
दुधारी भैंस	१० " १२ "
मांस के लिये उपयुक्त भैंस	५ " ६ "
हृष्ट-पुष्ट भेड़	१० जीतल से १२ और १४ जीतल तक

गुलाम या दास-दासी	निर्धारित मूल्य
दास या गुलाम	१०० टंक से २०० टंक तक
रूपवान दासों के पुत्र	२० " ३० "
कार कर्दादास (साधारण काम करने वाला गुलाम)	१० " १५ "
अनुभव शून्य दास पुत्र	७ " ८ "
किनारी कनीज (रूपवान दासी)	२० " ४० "
कारी कनीज (साधारण दासी)	५ " १२ "

दास लड़के अपनी सुन्दरता और कार्य करने की क्षमता के अनुसार वर्गीकृत किये जाते थे।

अलाउद्दीन ने अनेक गौण और प्रमुख वस्तुओं की कीमत निश्चित करदी थी। यह एक ठोस आर्थिक नीति के रूप में था। खाद्यान्न के साथ-साथ उनसे सम्बन्धित अन्य वस्तुओं के भाव भी निश्चित कर दिये गये थे। इस प्रकार अनाज के साथ-साथ मिश्री हलुआ, रेवड़ी, अन्य मिठाइयाँ, तरकारियों, रोटियों आदि के भाव निर्धारित किये गये थे। इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की दैनिक वस्तुओं के भाव भी निश्चित कर दिये थे, जैसे प्यालों, कटोरों, मटकों, जूतों, मोजों, कंघियों, सुइयों और यहाँ तक कि पान और सुपारी की कीमतें भी निर्धारित करदी गई थीं।

बर्नी ने लिखा है कि, "बड़े परिश्रम से टोपी से मौजे, कंघे से सुई, गन्ने से सब्जी,······रोटियाँ, मछली, पान, सुपारी, फल, साग-पात तथा अन्य वस्तुओं का

भाव मुलतान ने अपने सामने निश्चित किया।" इन वस्तुओं से सम्बन्धित व्यापारियों के लाभ की मात्रा भी निर्धारित करदी गयी और निर्धारित मूल्यों की सूची दीवान-ए-रियासत में भेज दी गई।

नियंत्रण और निर्धारण से वस्तुओं के दाम इतने घटा दिये गये कि सैनिक नाम मात्र के वेतन में सरलता से अपना जीवन-निर्वाह कर सकते थे।

उस समय का प्रामाणिक और सर्वाधिक प्रचलित सिक्का टंक या टंका और जीतल था। आधुनिक तौल व सिक्कों में इनका परिवर्तन निम्नलिखित है।

मुस्लिम इतिहासकार फ़रिश्ता के अनुसार जीतल तांबे का एक छोटा सिक्का होता था। कुछ विद्वानों के अनुसार यह एक तोला वजन का और कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार १$\frac{३}{४}$ तोले का होता था। प्रोफेसर रिजवी के अनुसार एक जीतल लगभग आधुनिक २$\frac{१}{१२}$ पैसे के बराबर होता था और वजन में दो रत्ती के बराबर होता था। टंक, टंका या तनका सोने और चाँदी का सिक्का होता था। इसका वजन एक तोला या आधुनिक रुपये के बराबर होता था। टामस के अनुसार ६४ जीतल का और नेलसन राईट के अनुसार ४८ जीतल का एक चाँदी का टंक होता था। फरिश्ता के अनुसार अलाउद्दीन के मन में चालीस सेर होते थे और सेर का भार २४ तोले के बराबर होता था। आधुनिक ११$\frac{१}{४}$ किलोग्राम के बराबर अलाउद्दीन के समय का एक मन होता था।

खाद्यान्न का क्रय-विक्रय—इस समय खाद्यान्न के व्यापार में दो प्रकार के व्यापारी थे—प्रथम, दिल्ली में स्थायी दूकानों वाले व्यापारी जो फुटकर विक्रेता और वितरक थे। द्वितीय, वे घुमक्कड़ या काफिले वाले व्यापारी जो बाहरी गांवों से खाद्यान्न खरीद कर दिल्ली में लाते थे और वहाँ के व्यापारियों को बेचते थे। अलाउद्दीन ने इन घुमक्कड़ व्यापारियों के नाम रजिस्टर में लिख लिये और उन्हें बाध्य किया कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से बाजार में नियमित रूप से अनाज की पूर्ति करेंगे और ग्रामीण क्षेत्रों से नियमित रूप से अनाज ला कर दिल्ली के बाजारों में निर्धारित भावों से बेचेंगे। इन व्यापारियों ने इस प्रकार का इकरारनामा अलाउद्दीन के बाजार के अधीक्षक को लिख कर दे दिया था। अलाउद्दीन ने दिल्ली के निकटवर्ती अधिकारियों को आदेश दिया कि वे कृषकों को बाध्य करें कि वे अपना बचा हुआ अनाज निर्धारित दरों पर घुमक्कड़ व्यापारियों को खेतों में ही बेच दें। इसके अतिरिक्त इन अधिकारियों को यह आदेश भी दिया गया कि वे कृषकों से अधिक से अधिक अनाज प्राप्त करें और कृषकों से उपज का पचास प्रतिशत अनाज भूमि-कर के रूप में कठोरता से वसूल करें। इन अधिकारियों का यह भी कर्तव्य था कि वे कृषकों को अधिक मूल्य पर अनाज बेचने से रोकें और यह भी देखें कि उनके पास केवल जीवन निर्वाह के लिये ही अनाज बच सके। इस प्रकार समस्त उपलब्ध अनाज बाजार में आ जाता था और उसे भण्डार गृहों में संग्रह कर लिया जाता था।

शासकीय अन्नागार—दुर्भिक्ष या अतिवृष्टि के समय हुए खाद्यान्न के अभाव को दूर करने के लिये अलाउद्दीन ने सरकारी अन्न भण्डार गृह स्थापित किये। उसने यह आदेश दिये कि खालसा भूमि (वह भूमि जिसकी आय सीधी राजकीय कोष में जमा

होती थी) और दोआव की भूमि से भूमि कर अनाज के रूप मे वसूल किया जाय और वह अनाज दिल्ली में सरकारी गोदामों में संग्रह किया जाय। फलतः दिल्ली में ऐसा कोई मोहल्ला नहीं बचा जहाँ दो या तीन सरकारी अन्न भण्डार गृह न हों। दुर्भिक्ष या खाद्यान्न के संकट के समय इन सरकारी गोदामों से बाजारों (घुमक्कड़ व्यापारियों) तथा अन्य व्यापारियों को खाद्यान्न बेचा जाता था और वे इसे अनाज के बाजार में ले जाते थे, जहाँ वह निर्धारित भावों पर जनता को बेचा जाता था। दुर्भिक्ष के समय प्रत्येक परिवार को तत्कालीन आधा मन या लगभग पौने छै किलोग्राम अनाज प्रतिदिन दिया जाता था। बर्नी के अनुसार वर्षा न होने पर प्रत्येक मुहल्ले की दैनिक आवश्यकता के अनुसार मोहल्ले के व्यापारियों को शाही मण्डी और अन्नागार से अनाज दे दिया जाता था। फरिश्ता के अनुसार अनावृष्टि के समय प्रत्येक व्यक्ति उतना ही अनाज क्रय कर सकता था, जितनी उसे आवश्यकता रहती थी और यदि कोई अपनी आवश्यकता से अधिक क्रय करता तो उसे कठोरता से दण्डित किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि जो भी बाजार जाता, उसे उचित मात्रा में अनाज दे दिया जाता था। एक प्रकार से यह आधुनिक कन्ट्रोल या राशनिंग प्रणाली सा ही था। इससे राजधानी दिल्ली के निवासी अकाल या अभाव के भय से मुक्त हो गये और उन्होंने खाद्यान्न की प्रचुरता और संतोष में जीवन व्यतीत किया।

अनाज के रूप में भूमि-कर की वसूली में कठोरता और काले बाजार या चोर बाजार का अन्त—जैसा ऊपर लिखा है कि अलाउद्दीन ने अनाज के रूप में भूमि कर वसूल करने के कठोर आदेश दे दिये थे। भूमि कर वसूली इतनी निर्ममता से होती थी कि कृषक बंजारों को अपने खलियानों में ही अनाज बेच देते थे। अलाउद्दीन ने खाद्यान्न के संग्रह को रोकने के लिये यह आदेश दिया था कि कोई भी परिवार अपने पास १० मन या ११८ किलोग्राम से अधिक अनाज का संग्रह नहीं कर सकता था। बड़े-बड़े व्यापारी और बंजारे भी ११ से १३ किलोग्राम से अधिक खाद्यान्न छिपा कर संग्रह करने का साहस नहीं कर सकते थे। यदि कोई चोर बाजारी या काला बाजारी करने के अभिप्राय से अनाज एकत्र करता तो वह अनाज जब्त कर सरकारी अन्नागारों में भेज दिया जाता था और संग्रह करने वाले को निर्ममता से दण्डित किया जाता था। अपराधी व्यक्ति ही दण्डित नहीं होता था, अपितु इससे सम्बन्धित नायब और मुतसरिफ नामक अधिकारी भी अपने कर्तव्यों की अवहेलना के कारण बन्दी बना कर दण्डित किये जाते थे और उनसे स्पष्टीकरण मांगा जाता था। ऐसे आदेशों और नियमों से काले बाजार का अस्तित्व ही समाप्त हो गया था।

वस्त्र बाजार का नियन्त्रण और उसकी व्यवस्था

खाद्यान्न के साथ-साथ दैनिक आवश्यकता के वस्त्रों के भाव भी निर्धारित किये गये और वस्त्र बाजार की व्यवस्था कर उसे पूर्ण रूप से नियन्त्रित किया गया।

वस्त्रों के भावों का निर्धारण—पिछले पृष्ठ पर एक सूची है, जिसमें अलाउद्दीन ने विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के मूल्यों को निश्चित कर दिया था। जब गेहूँ साढ़े सात जीतल प्रति मन के भाव से बिकता था, तब एक चादर की कीमत दस जीतल होती

थी। शेख नासिरुद्दीन चिराग के अनुसार अलाउद्दीन के शासन काल में एक रजाई या लिहाफ एक या दो टंका में बनाया जा सकता था। वह लिखता है कि रजाई की ऊपर की छींट २० जीतल में, मग्जी का कपड़ा १० जीतल में, कपास और अस्तर का कपड़ा १२ जीतल में प्राप्त होता था और पिंजारे की धुनाई और सिलाई के लिये ४ से ६ जीतल पर्याप्त होते थे। रेशमी वस्त्र के भाव मंहगे थे। दिल्ली का रेशम जो १६ टंका में बिकता था, एक सैनिक के पूरे मास के वेतन का धन था। इससे प्रकट होता है कि खाद्यान्न की तुलना में साधारण श्रेणी का वस्त्र और रेशमी वस्त्र उन दिनों भी सस्ते नहीं थे।

वस्त्र बाजार—दिल्ली में बदायूं दरवाजे के भीतर सब्ज रंग के राजप्रसाद की ओर विस्तृत मैदान में वस्त्र-बाजार की व्यवस्था की गयी। इस मैदान का नाम सराय अदल रखा गया। वस्त्रों का समस्त व्यापार सराय-अदल में केन्द्रीभूत कर दिया गया। सराय-अदल में वस्त्र-व्यापारियों की दूकानें थीं। सराय-अदल प्रातःकाल से लेकर रात्रि को अन्तिम नमाज के समय तक खुला रहता था। वस्त्र व्यापारियों को सराय-अदल के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर अपने वस्त्र बेचने की मनाही थी और किसी भी व्यापारी को सुलतान द्वारा निर्धारित भावों से अधिक मूल्य पर वस्त्र बेचने की अनुमति नहीं थी। जो व्यापारी इस आज्ञा का उलंघन करते थे, उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था और उनके वस्त्र व वस्तुएँ जप्त कर ली जाती थीं।

वस्त्र-व्यापारियों का पंजीयन—राजधानी दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों के वस्त्र व्यापारियों के नाम दीवान-ए-रियासत के रजिस्टर में पंजीयन कर लिख दिये गये और उनसे यह लेखी में इकरार नामे पर ले लिया गया कि वे जिस प्रकार पहले वस्त्र और वस्तुएँ नगर में लाते थे, उसी प्रकार और उतना ही माल प्रत्येक वर्ष सराय-अदल में पहुँचा दिया करेंगे और उसे सुलतान द्वारा निर्धारित भावों पर बेचेंगे। इससे बाजार में विक्रय के लिये कपड़ों की बाढ़ सी आ गयी और अनेक बार इतना अधिक माल आ जाता था कि वह दीर्घ काल तक सराय-अदल में बिना बिके पड़ा रहता था।

वस्त्र-व्यापारियों को ऋण—अलाउद्दीन ने वस्त्रों के जो मूल्य निर्धारित किये थे, उससे व्यापारियों को लाभ तो दूर रहा, हानि और घाटे की अधिक आशंका थी। इसलिये व्यापारियों को इन दरों में व्यापार करने के लिये सुलतान ने ऋण दिये। कपड़े के निर्धारित भावों को स्थायी रखने के लिये, सराय-अदल में नियमित रूप से कपड़ों को विक्रय के लिये पहुँचाने के हेतु, अन्यत्र माल खरीद कर सराय-अदल तक पहुँचाने के लिये तथा वहाँ निर्धारित भावों पर बेचने के लिये अलाउद्दीन ने प्रतिष्ठित और समृद्धिशाली मुलतानी (सिंधी) व्यापारियों को राजकोष से धन अग्रिम रूप से दिये जाने की व्यवस्था की। इस प्रकार सुलतान ने २० लाख टंका व्यापारिगें में वितरित किया। इस प्रकार कपड़ों की प्रचुरता होने से और नियमित रूप से कपड़ा उपलब्ध होने से कपड़ा स्थायी रूप से सस्ता रहने लगा।

बहुमूल्य वस्तुओं के लिये आज्ञापत्र या परमिट—कीमती वस्त्रों का भाव स्थायी रखने के लिये और वैभवपूर्ण बहुमूल्य वस्तुअें के उपभोक्ताओं को उनकी प्राप्ति

के लिये रईस (शासकीय अधिकारी से) विशेष आज्ञा-पत्र या परमिट प्राप्त करना पड़ते थे। बहुमूल्य वस्तुओं और वस्त्रों की बिक्री तब तक नहीं होती थी जब तक कि उनके लिये विधिवत् प्रार्थना पत्र न आवे और रईस उनके लिये अनुमतिपत्र न दे दें। इससे यह लाभ हुआ कि श्रेष्ठ, बहुमूल्य तथा अनुपम वस्त्र जैसे तब्रेजी, कमखाब, भीरम और देवगिरी रेशम, सोने के कसीदे के वस्त्र और कीमती सामग्रियों को सराय-अदल से सरकारी निर्धारित भावों पर लेकर अन्य स्थानों पर लेजाकर अधिक भावों पर बेच देने की संभावना नहीं रही। दीवान नायक अधिकारी मलिकों, अमीरों, अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों को, जिनके परिचय-पत्र से वह संतुष्ट था, अनुमतिपत्र देता था। खरीददार को खरीदी हुई वस्तु की प्राप्ति की स्वीकृति के लिये एक लिखित रसीद देना पड़ती थी। इस प्रकार उत्तम ऊँचे वस्त्रों और कीमती वैभवशाली वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर बंधन लगा दिये गये थे। इससे इन वस्तुओं की काला बाजारी का अंत हो गया।

पशुओं तथा दासों के व्यापार पर नियंत्रण

सेना में कम वेतन पर असंख्य लोग कार्य कर सकें और दूध तथा दूध से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं व मांस की सस्ताई हो जाय-इसके लिये अलाउद्दीन ने दास-दासियों, घोड़ों और अन्य पशुओं का मूल्य भी निर्धारित कर दिया। इसके लिये उसने प्रमुख रूप से चार नियम अपनाये। ये निम्नलिखित हैं।

(१) दास-दासियों, और पशुओं का तथा माल का वर्गीकरण और उनका मूल्य निश्चित करना-इससे पशुओं का भाव इतना अधिक गिर गया था कि कोई भी व्यक्ति किसी भी समय दो चार गायें खरीद सकता था।

(२) कीसादार (धनी) तथा व्यापारियों के लिये उनके क्रय करने के विषय में निषेध करना। इससे किसी भी व्यापारी और कीसादार को यह साहस नहीं हो सकता था कि वह बाजार में पहुँच सके या किसी प्रकार किसी दास को देख सके। घोड़ों के बाजार में या दास बाजार में दास लड़कों या दास कन्याओं को बेचने के लिये दिखाते हुए घूमना या उन्हें क्रय करने के लिये व उन्हें देखने के लिये घूमना या उनकी कीमतों को न्यूनाधिक करना, व्यापारियों व संपन्न व्यक्तियों के लिये असंभव था।

(३) दलालों पर सख्ती तथा उनके साथ कठोरता-सुलतान के आदेशों का उल्लंघन करने पर दलालों को अत्यंत कठोर दंड दिया जाता था। कई बार दलालों को इतना निर्ममता से दंड दिया जाता था कि उन्हें जीवन से भी अरुचि हो गई थी और वे मृत्यु की कामना करने लगे थे। घोड़ों के दलालों को तो इतना अधिक कुचल दिया गया था कि वे अब केवल सईस बन गये थे।

(४) प्रत्येक व्यापारी के क्रय-विक्रय के विषय में पूछताछ—सुलतान को व्यापारियों के विषय में जो सूचनाएँ प्राप्त होती थीं उसकी पूछताछ की जाती थी और अभियोगी को पकड़वाकर उसे कठोर दंड दिया जाता था।

कठोर नियंत्रण और दंड व्यवस्था—बाजार नियंत्रण की नीति को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिये अलाउद्दीन ने कुशल अधिकारी नियुक्त किये जो

निर्ममता से नियंत्रण रख सकें। उसने दलालों, काला बाजारियों, व्यापारियों आदि पर नियंत्रण रखने के लिये और उन्हें उचित मार्ग पर लाने के लिये यमदूत के समान क्रूर और निर्मम अधिकारी नियुक्त किये जो अपनी ईमानदारी, योग्यता और कार्य कुशलता के लिये प्रसिद्ध थे। निर्धारित भावों को स्थायी बनाये रखने का उत्तरदायित्व उसने मंडी के अधिकारियों पर डाल दिया था। ये अधिकारीगण गुप्तचरों की सहायता से या स्वयं गुप्त रूप से बाजार में विभिन्न वस्तुओं के भावों की सूचनाएँ प्राप्त करते रहते थे और यदि निर्धारित भावों में कहीं कुछ घट बढ़ या गड़बड़ हुई तो वे शीघ्र ही सुलतान को इसकी सूचना भेज देते थे। सुलतान ने अपराधियों को निर्ममता से कठोर दंड देने की व्यवस्था की थी। अपराधी और आज्ञा का उल्लंघन करने वालों को कठोर दंड देने का आदेश था। सुलतान ने क्रूर, अत्याचारी पर ईमानदार याकूब को बाजार का अध्यक्ष नियुक्त किया था। वह व्यापारियों और दूकानदारों पर बड़ी सख्ती करता था। वह कम तौलने वालों के शरीर से दूगना मांस कटवा लेता था। बेईमानी करने वाले दूकानदारों को ठोकर मारकर दूकानों से नीचे ढकेल दिया जाता था। कई बार थोड़े रुपये कम तौलने पर वह दूकानदारों को कोड़ों से मारता था और उन पर बड़े-बड़े अत्याचार करता था। व्यापारियों के भृष्टाचार का अंत करने और कम तौलने की कुप्रथा को समाप्त करने के लिये सुलतान अलाउद्दीन स्वयं अपने छोटे गुलाम लड़कों को कुछ जीतल देता था और एक को रोटी, दूसरे को हलुआ, तीसरे को रेवड़ी, चौथे को तरबूज, पाँचवें को ककड़ी, छठे तथा अन्य बालकों को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को लाने को बाजार भेजता था और बाजार के अधिकारी के समक्ष इन लड़कों द्वारा क्रय की गई वस्तुओं को पुनः तुलवाता था। यदि सरकारी निर्धारित भाव के अनुसार कोई वस्तु तौल में कम होती तो उससे संबंधित व्यापारी को कठोर दंड दिया जाता था। कभी-कभी व्यापारी बन्दी भी बना लिये जाते थे। इस प्रकार दंड की कठोरता, तथा बंदी बना लिये जाने का दंड, कोड़े लगवाने, लज्जित और अपमानित किये जाने के भय से व्यापारी वर्ग कांपते रहते थे और वे सभी वस्तुएँ निर्धारित दामों पर बेचते थे। कठोर दंड के भय से व्यापारियों ने निर्धारित मूल्य और ठीक–ठीक बांटों का प्रयोग किया। वे इतने डर गये थे कि अनेक बार के निश्चित तौल से भी अधिक दे देते थे। और उन्होंने ग्राहकों को ठगना एक दम छोड़ दिया था। इससे कम तौलने की कुप्रथा क्रय-विक्रय में छल-कपट, तथा अनभिज्ञ खरीददारों एवं बालकों को धोखा देना बिलकुल बन्द हो गया।

अलाउद्दीन सामान्य अपराधियों के समान ही अपने अधिकारियों को उनकी कर्तव्य-अवहेलना और उपेक्षा के लिये कठोर दंड देता था। बाजार नियंत्रण या क्रय-विक्रय में आदेशों का उल्लंघन होने पर या कुछ गड़बड़ी होने पर वह उच्चपदाधिकारियों को भी कठोर दंड देता था। एक बार बाजार नियंत्रण के सर्वोच्च अधिकारी मलिक काबुल ने दुर्भिक्ष के समय अनाज की मंहगाई के कारण सुलतान से आग्रह-पूर्वक निवेदन किया कि वह अनाज की कीमतों में कुछ परिवर्तन कर दे। पर सुलतान इससे अप्रसन्न हो गया और मलिक काबुल को बीस कोड़े लगवाये गये।

बाजार के अधिकारी और कर्मचारी एवं उनके अधिकार—बाजार नियंत्रण और मूल्य निर्धारण की समस्त व्यवस्था को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिये तथा सुलतान के तत्संबंधी कठोर प्रतिबंधों को लागू करने के लिये विशाल, कुशल, सक्षम और ईमानदार कर्मचारियों की अधिक आवश्यकता थी। इसलिये अलाउद्दीन ने एक अलग ही विभाग खोला। इसका सर्वोच्च अधिकारी दीवान-ए-रियासत कहा जाता था। दिल्ली में स्थित तीन बाजार, शहना-ए-मंडी (खाद्यान्न का बाजार) सराय-अदल (कपड़ा बाजार) और अन्य बाजार उसके अधीन और नियंत्रण में थे। दीवान-ए-रियासत के अधीन विभिन्न अधिकारी और कर्मचारीगण थे जो इन तीनों बाजारों में होने वाले विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के क्रय-विक्रय का प्रबंध, निरीक्षण और नियंत्रण करते थे। प्रत्येक बाजार में तीन उच्च अधिकारी नियुक्त किये गये थे, प्रथम बाजार का निरीक्षक या अधीक्षक (शहना-ए-मंडी), द्वितीय बरीद जो बाजार में निरंतर घूम-घूम कर बाजार का निरीक्षण करते रहते और बाजार माल के क्रय-विक्रय संबंधी विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करके उच्च अधिकारी को भेजते थे और तृतीय मुनहियान (गुप्तचर), जो गुप्त एजंट या कारदार होते थे। "बरीद" अपने बाजार का समस्त विवरण वा रिपोर्ट शहना-ए-मंडी के पास और शहना-ए-मंडी अपनी रिपोर्ट और यह विवरण दीवान-ए-रियासत के पास और फिर इन सबको दीवान-ए-रियासत सुलतान के पास भेजता था। "मुनहियान" (गुप्तचर-अधिकारी) को स्वयं सुलतान नियुक्त करता था और वह बाजार संबंधी समस्त सूचनाएँ और अपना विवरण प्रथक रूप से सुलतान को प्रस्तुत करता था। इस प्रकार सुलतान को बाजार, माल, क्रय-विक्रय, तथा तत्संबंधी अन्य सूचनाएँ तीन साधनों से प्राप्त होती थी--शहना-ए-मंडी, बरीद और मुनहियान। यदि इन तीनों साधनों से प्राप्त विवरण या सूचनाओं में कोई अन्तर होता तो सुलतान इसके लिये शहना-ए-मंडी को उत्तरदायी ठहराता और उसे कठोर दंड देता था। ये अधिकारी भी परस्पर एक दूसरे से भयभीत होने के कारण अपना कार्य बड़ी सतर्कता और सावधानी से करते थे।

सुलतान अलाउद्दीन ने दीवान-ए-रियासत या बाजारों के महानिरीक्षक के पद पर मलिक याकूब को नियुक्त किया। "वह बड़ा ही सच्चा, ईमानदार, कठोर, निष्ठुर, क्रूर तथा किसी की रियायत न करने वाला व्यक्ति था।" सुलतान ने मलिक काबुल या काबुल उलूगखानी को मंडी-ए-शहना (बाजार का अधीक्षक) नियुक्त किया था। उसे एक विस्ती या जायदाद और अश्वारोहियों की विशाल टुकड़ी दी गई जिससे वह कार्य को सुचारु रूप से चला सके। वह भी बड़ा योग्य, अनुभवी तथा सुलतान का विश्वासपात्र व्यक्ति था। समस्त प्रधान व्यवसायों के लिये अलग-अलग बाजार बनाये गये थे। विभिन्न प्रकार के बाजारों के लिये शहना (अधीक्षक) नियुक्त किये गये थे। इन्हें मलिक याकूब नियुक्त करता था। शहना को अपने बाजारों और उसके व्यापारियों पर नियंत्रण रखने का पूर्ण अधिकार था। प्रत्येक शहना को उसके अधीनस्थ बाजारों में निर्धारित वस्तुओं की सूची दी जाती थी और उनका यह कर्तव्य था कि वे व्यापारियों से संपर्क साधें और ग्राहकों से जानकारी प्राप्त करें कि किसी ने किसी वस्तु विशेष के लिये निर्धारित दर से अधिक मूल्य तो नहीं लिया है और यदि ऐसा हुआ है तो अप-

राधी को कठोर दंड दें। नाप तौल और बांटों की जांच-पड़ताल और निरीक्षण का कार्य भी शहनों को दिया गया था।

बाजार में व्यापारियों के भृष्टाचार, बेईमानी और काला बाजारी तथा तस्कर व्यापार का अंत करने के लिये अलाउद्दीन ने कठोर प्रतिबंध और नियम बना दिये तथा अधिकारियों एवं कर्मचारियों को व्यापक अधिकार दिये थे। वे व्यापारियों को उनके अपराधों के लिये हर प्रकार से उत्पीड़ित करने, कोड़े मारने, दूकानों से नीचे ढकेल देते, उनके शरीर से मांस काट डालते, बंदी बनाकर कारागृह में डाल देते, उनका माल जब्त कर लेते और विभिन्न प्रकार से उन्हें आतंकित करते थे। इन कठोर, क्रूर, ईमानदार अधिकारियों ने निष्पक्षता और उत्साह से सुलतान के आदेशों का अनुकरण किया और उसके अधिनियमों को कार्यान्वित किया। इसी से सुलतान की बाजार नियंत्रण और मूल्य निर्धारण की नीति सफल हो सकी।

अलाउद्दीन के बाजार नियंत्रण का क्षेत्र—कतिपय इतिहासकारों का मत है कि अलाउद्दीन का बाजार नियंत्रण और मूल्य निर्धारण का क्षेत्र केवल दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्र तक ही सीमित था। इसके विपरीत कतिपय अन्य विद्वानों का मत है कि यह समग्र अलाई साम्राज्य के लिए था। मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता का कथन है कि दिल्ली के बाजारों के लिए जो मूल्य निर्धारित किये गये थे। वे साम्राज्य के अन्य भागों में भी प्रसारित कर दिये गये थे। यह मत सर्व मान्य हो चुका है कि अलाउद्दीन अपना बाजार नियंत्रण केवल राजधानी दिल्ली और उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्र तक ही सीमित कर सका, सारे साम्राज्य में वह उसे कार्यान्वित नहीं कर सका। इसके लिए निम्नलिखित प्रमाण हैं—

(१) "तारीख-ए-फीरोजशाही" नामक ग्रन्थ में बाजार नियंत्रण से संबंधित दीवान-ए-रियासत, शहना-ए-मंडी आदि अधिकारियों का सन्दर्भ आता है पर इस ग्रन्थ में दिल्ली के अतिरिक्त अन्य किसी भी नगर का उल्लेख नहीं है। जहां ये अधिकारी नियुक्त किये गये थे और वहां वे कार्यरत थे।

(२) "दीवान-ए-रियासत" नामक नवीन विभाग में नियंत्रण के लिए जिन व्यापारियों का पंजीयन किया गया था, वे अलाई साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों या नगरों के नहीं थे, अपितु वे बंजारे थे जो व्यापार के लिए घूमते फिरते थे और दिल्ली नगर के व्यापारी ही थे। बंजारों को जो खाद्यान्न दिल्ली में ग्रामीण क्षेत्रों से लाते थे सुलतान ने बाध्य किया कि वे सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से इकरारनामा लिखकर दें कि वे दिल्ली में स्थायी रूप से रहेंगे और खाद्यान्न को निर्धारित मूल्यों पर राजधानी में लावेंगे। इससे प्रतीत होता है कि बंजारों को उन स्थानों पर जाने से रोका गया जहां मूल्य नियंत्रण नहीं था।

(३) दिल्ली में सराय-अदल में वस्त्र-बाजार स्थापित किया गया और उसे अधिकारियों के पूर्ण नियंत्रण में रखा गया। दिल्ली के बाहर किसी भी अन्य प्रदेश या नगर में ऐसे नियंत्रित वस्त्र बाजार की स्थापना का सन्दर्भ या विवरण उपलब्ध नहीं होता है।

(४) रेशमी वस्त्र, अन्य कीमती कपड़े एवं शान-शौकत की अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ अन्य नगरों में इतनी मंहगी थीं कि व्यापारीगण उन्हें वहां से क्रय करके सस्ते दामों पर दिल्ली में बेचने में असमर्थ थे। इसलिए ऐसी बहुमूल्य वस्तुओं को सरलता से सस्ते दामों पर उपलब्ध करने और उन्हें क्रय करने के लिए व्यापारियों को प्रोत्साहन देने के लिए अलाउद्दीन ने राजकोष से मुलतानी व्यापारियों को २० लाख टंक अग्रिम धन दिया था। इससे स्पष्ट है कि कतिपय वस्तुओं के भाव दिल्ली और अन्य नगरों में विभिन्न थे, उन अन्य प्रदेशों में बाजार नियंत्रण नहीं था।

(५) तस्कर व्यापार का अन्त करने के लिए दीवान-ए-रियासत से विशिष्ट व्यक्तियों और मलिकों को बहुमूल्य वस्तुओं के क्रय के लिये अनुमति पत्र दिए जाते थे। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न स्थानों पर वस्तुओं के मूल्य अलग-अलग थे और राजधानी दिल्ली से बाहर बहुमूल्य वस्त्र और वस्तुओं का चोरी-छिपे क्रय-विक्रय होता था। दिल्ली में निर्धारित कम मूल्य पर वस्तुओं को क्रय करके अन्य नगरों में उन्हें ऊंचे भावों पर बेचने के कार्य व्यापारी करते थे। यह तस्कर व्यापार लाभप्रद था। "फतवा-ए-जहादारी" ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से लिखा है कि अलाउद्दीन ने अधिकारियों को यह कठोर आदेश दे दिये थे कि व्यापारियों को निर्धारित कम मूल्य पर वस्तुएँ क्रय कर ऊंचे मूल्य पर विक्रय न करने दें। इससे भी स्पष्ट है कि ऐसे प्रदेश थे जहां वस्तुओं के निर्धारित मूल्य के अनुसार व्यापारिक सामग्री का क्रय-विक्रय नहीं होता था।

(६) मुस्लिम इतिहासकार बर्नी ने अपने ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि बाजार नियंत्रण केवल राजधानी दिल्ली और कुछ कोस की दूरी के उसके आस-पास के क्षेत्र तक ही सीमित था। शासकीय अन्नागारों से खाद्यान्न के वितरण का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है कि अलाउद्दीन की नीति और नियमों से अनेक "वस्तुएँ दिल्ली में सस्ती हो गई थीं और वर्षों तक सस्ती रहीं।" इससे स्पष्ट है कि ऐसा मूल्य नियन्त्रण व इतनी सस्ताई अलाई साम्राज्य के अन्य प्रान्तों में नहीं थी।

(७) अलाउद्दीन की बाजार नियंत्रण नीति और उसके प्रभाव का वर्णन करते हुए बर्नी ने लिखा है कि राजधानी दिल्ली में वस्तुओं की प्रचुरता और सस्ताई के कारण अनेक विद्वान, योग्य और कुशल व्यक्ति दिल्ली में आकर स्थायी रूप से बस गये थे। यदि साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में मूल्य निर्धारित और बाजार नियंत्रित होते तो अन्य स्थानों से लोग दिल्ली में जाकर वहां नहीं निवास करते।

(८) बर्नी अलाउद्दीन के शासन काल में ही था, जबकि फरिश्ता उसके दीर्घ-काल बाद हुआ था, इसलिए बर्नी का विवरण फरिश्ता की अपेक्षा अधिक विश्वस-नीय है।

अलाउद्दीन के अन्य सामाजिक सुधार

ऊपर वर्णित आर्थिक सुधारों के अतिरिक्त अलाउद्दीन ने कतिपय सामाजिक सुधार भी किये। इन सामाजिक सुधारों के पीछे उसकी भावना यह थी कि वह इस्लाम के अनुयायियों को अपने सुधारों से सन्तुष्ट कर उनका अधिक समर्थन प्राप्त

करे। उसकी स्वार्थ सिद्धि और राजनैतिक लक्ष्य की पूर्ति इन सुधारों का उद्देश्य था। इन सुधारों में प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(i) इस्लाम धर्म में मद्य-पान निषिद्ध होने से सुलतान ने इस्लाम के अनुयायियों को प्रसन्न करने के लिए राज्य में मदिरा का क्रय-विक्रय नियंत्रित कर दिया और मदिरा पान निषिद्ध। मद्यपान का निषेध समाज के लिए हित कर हुआ। इसी प्रकार उसने जुआ या द्यूत-क्रीड़ा को भी अवैध घोषित कर दिया। शराबियों व जुवारियों को वह बड़ी निर्ममता से दण्डित करता था। इससे भी समाज का लाभ हुआ।

(ii) सामाजिक जलसे, समारोह, संगीत और नाच-रंग भी उसने निषिद्ध कर दिये। इससे षड़यंत्रों और दुर्व्यवसनों का अन्त होने लगा था।

(iii) व्यभिचार का अन्त करने के लिये उसने यह आदेश दे दिया था कि, "यदि कोई विवाहित व्यक्ति किसी पराई स्त्री से व्यभिचार करे तो उसका वध कर दिया जाय।" इस आदेश का उल्लेख उसने काजी मुगीश से किया है।

(iv) उस समय धार्मिक अन्धविश्वासके कारण साधारण लोग साधुओं, फकीरों, जोगियों पर, उनके जादू-टोने, झाड़-फूंक और तंत्र-मंत्र पर अधिक विश्वास करते थे। अनेक बार साधु व फकीर के वेश में गुंडे और ठग लोग निरीह धर्मभीरु जनता को जादू-टोने व मंत्र-तंत्र के द्वारा ठगते थे। अलाउद्दीन ने ऐसे ढोंगी फकीरों व साधुओं को पत्थरों से मार-मार कर प्राणान्त कर दिया था। उसके इस कार्य के लिये बर्नी ने उसकी खूब प्रशंसा की है।

अलाउद्दीन की बाजार नियंत्रण नीति का प्रभाव

या

अलाउद्दीन के सुधारों का परिणाम

सुलतान अलाउद्दीन ने विभिन्न प्रकार के सुधार—राजस्व सुधार, सैनिक सुधार, आर्थिक सुधार, सामाजिक सुधार—किये। उसे इन सुधारों में सफलता भी प्राप्त हुई तथा इन सुधारों के अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के परिणाम निकले। ये निम्न लिखित हैं—

अच्छे परिणाम या लाभ

(१) **व्यवस्थित स्थायी विशाल सेना और साम्राज्य विस्तार**—विभिन्न वस्तुओं के भाव स्थायी रूप से गिर जाने से अलाउद्दीन अधिक सैनिक भरती कर सका और वह एक व्यवस्थित व सुसंगठित तथा विशाल सेना बिना किसी अतिरिक्त व्यय के स्थायी रूप से रख सका। इस विशाल सेना का उपयोग करके अलाउद्दीन अपने साम्राज्य विस्तार में सफल हुआ।

(२) **मंगोल आक्रमणों से मुक्ति और सीमान्त की सफल सुरक्षा**—विशाल दृढ़ स्थायी सेना के कारण सुलतान मंगोलों को खदेड़ सका, उनके अनवरत आक्रमणों का प्रतिरोध कर सका, सीमांत प्रदेश की सुरक्षा की व्यवस्था कर सका और अन्त में उसे मंगोल आक्रमणों के भय से मुक्ति प्राप्त हो गई। मंगोल आक्रमणों का भय जाता रहा।

(३) **आन्तरिक सुव्यवस्था एवं शांति**—सैनिक सुधारों के कारण तथा अपनी कुशल नीति से सुलतान ने विद्रोहों उपद्रवों और षड़यंत्रों को कुचल दिया। विद्रोही राजाओं, सामन्तों और षड़यंत्रकारियों को उसने भयाक्रांत कर दिया और फलतः साम्राज्य में आन्तरिक सुव्यवस्था और शांति स्थापित हो गयी। सुलतान के कठोर अधिनियमों के भय से अपराधों की संख्या अपने आप घट गई। सुलतान के आदेशों का उल्लंघन या उनकी अवहेलना करने का साहस न तो अधिकारियों में था और न जन साधारण में ही।

(४) **जन-जीवन सुखी**—जीवन की आवश्यक वस्तुएँ सस्ती हो गई, उनकी कीमतें स्थिर और सस्ती कर दी गयीं। इससे वस्तुओं की प्रचुरता हो गई। जीवन की आवश्यक वस्तुओं की प्रचुरता और सस्ताई ने जनता की प्रसन्नता और सन्तोष को बढ़ा दिया। लोगों के रहन-सहन का व्यय कम हो गया तथा जनसाधारण का जीवन सुखी, सन्तोषप्रद और सुगम बन गया। इसके परिणाम स्वरूप जनता ने सुलतान अला-उद्दीन की निरंकुशता को भी स्वीकार कर लिया।

(५) **अकाल या अनावृष्टि के भय से मुक्ति**—दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुएँ और खाद्यान्न अकाल या अनावृष्टि के समय भी बाजार में निर्धारित मूल्यों पर बराबर मिलती रहे। सुलतान ने खाद्यान्न को प्राप्त करके गोदामों में संग्रह करने के अतिरिक्त खाद्यान्न की पूर्ति तथा वितरण की समुचित व्यवस्था भी कर दी थी। इससे खाद्यान्न का अभाव दुर्भिक्ष और अनावृष्टि के समय भी नहीं रहा। जनता इस भय से मुक्त हो गई।

(६) **नियंत्रित विलासमय जीवन**—यदि जनता का जीवन सुखी और प्रसन्न था, तो अमीरों और मलिकों का, जो विलासी जीवन और मद्य-पान में मग्न रहते थे, जीवन व्यवस्थित हो गया। अब विलास और वैभव की हर वस्तुओं के लिए शासन से अनुमति पत्र या परमिट प्राप्त करना पड़ता था। इससे उनका जीवन नियंत्रित हो गया।

(७) **सुलतान की राजसत्ता और सैनिक निरंकुशवादिता में वृद्धि**—धनाभाव और दरिद्रता के कारण जनता में राजकीय शक्ति के विरुद्ध विप्लव व विद्रोह करने की सामर्थ्य न रही। इससे अलाउद्दीन की राजसत्ता और केन्द्रीय शक्ति में अधिक अभि-वृद्धि हुई तथा अलाउद्दीन के सैनिक निरकुशवाद का उत्थान हुआ। सुदूर प्रान्तों के हाकिम और अधिकारी भी सुलतान की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करते थे। सुल-तान के आदेशों और अधिनियमों को उलंघन करने या उनकी अवहेलना करने की शक्ति उनमें नहीं थी, क्योंकि राजाज्ञा का उल्लंघन करने वालों को कठोरतम दण्ड दिये जाते थे। आदेशों की कठोरता थी जिसके कारण सुलतान की राज आज्ञाओं का उल्लंघन करना असम्भव था। सुदृढ़ केन्द्रीय निरंकुश शासन के कारण अपनी राज-सत्ता समस्त देश में फैलाने में वह सफल हो सका।

(८) **निर्माण-कार्य और संरक्षण**—ऐसा माना जाता है कि, यद्यपि अलाउद्दीन को अपनी राजकीय आय का अधिकांश भाग सेना और युद्ध पर ही खर्च करना पड़ा, परन्तु उसने शांति-व्यवस्था हो जाने और वस्तुओं की प्रचुरता हो जाने से सार्वजनिक

हित की ओर भी ध्यान दिया। उसने दिल्ली के समीप सीरी नामक स्थान पर एक दुर्ग और विशाल राजप्रासाद तथा अन्य भवन भी निर्माण किये। विद्वानों और सन्तों को भी उसने राजकीय संरक्षण दिया।

दुष्परिणाम या हानियाँ

अलाउद्दीन के सुधारों से निम्नलिखित दुष्परिणाम और हानियाँ हुई—

(१) व्यापारियों व दलालों को हानियाँ व व्यापार को प्रोत्साहन का अभाव—सुलतान की बाजार नियन्त्रण की दृढ़ नीति से व्यापारियों और विभिन्न प्रकार के दलालों की आय घट गयी, उन्हें हानियाँ हुई। सुलतान के बाजार अधिनियम व्यापारियों और दलालों को पर्याप्त लाभ लेने से वंचित करते थे। इससे उद्योग-व्यवसाय या व्यापार-वाणिज्य को कोई प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता था।

बाजार के अधिकारियों और अधिनियमों के उत्पीड़न, आतंक, और निर्मम-दण्ड से व्यापारियों व दलालों का "जीवन भी उनके लिये बहुत अरुचिपूर्ण हो गया था और वे मृत्यु की कामना करने लगे थे।" इसके अतिरिक्त, "तौल की कमी दूकानदार की देह से उतना ही मांस काटकर पूरी की जाती थी",—ऐसे कठोर दण्डों से व्यापारियों में सुलतान के विरुद्ध घोर असन्तोष व्याप्त हो गया और वे रुष्ट हो गये थे। निश्चय ही वे ऐसे कुशासन की समाप्ति की कामना करते रहे होंगे।

(२) कृषकों के हितों को आघात और कृषि पर कुप्रभाव—सुलतान के राजस्व के नियम और बाजार नियन्त्रण तथा उसके अधिनियम कृषकों के लिये हानिकारक थे। अलाउद्दीन ने भूमिपतियों को तो सेवकों की स्थिति में ला ही दिया था, किन्तु कृषकों की स्थिति भी दयनीय करदी थी। जब कृषकों को अपने पसीने की गाढ़ी कमाई का आधा भाग भूमि कर के रूप में, शेष का कुछ भाग अन्य विभिन्न करों के रूप में दे देना पड़ता था और फिर शेष अनाज को बाजारों व व्यापारियों को निर्धारित सस्ते भावों पर बेच देने के लिये शासन के अधिकारियों द्वारा बाध्य किया जाता था, तो उनकी स्थिति अत्यन्त ही दयनीय हो गयी। प्रतिकूल ऋतुओं में सुरक्षा के लिये अनाज संग्रह करने का अधिकार भी अलाउद्दीन ने उनसे छीन लिया था और उनका सारा अनाज बाजार तथा शासकीय अन्न भंडारों को भेज दिया जाता था। लाभ कमाने का प्रलोभन जो उत्पादन को प्रमुख रूप से प्रोत्साहित करता है, अलाउद्दीन के बाजार के अधिनियमों ने कृषि जगत में पूर्णतया समाप्त कर दिया। इससे कृषक का जीवन विपिन्न और निम्नस्तर का हो गया था। वे राजधानी व सुलतान के हितों की पूर्ति के लिये जीवन की अनेक सुविधाओं से वंचित रहे। इस प्रकार अलाउद्दीन ने व्यापार-व्यवसाय और कृषि के हितों की बलि दे दी।

(३) जनता की दरिद्रता, हिन्दुओं की विपिन्नता—सुलतान के अत्यधिक करों के भार से जनता पिसने लगी थी, वह अत्यधिक दरिद्र हो गयी थी। हिन्दू तो करों के बोझ-तले इतने दब गये थे कि उनके घरों में सोने-चांदी का सर्वथा अभाव था। वे अच्छे वस्त्र धारण करने, अश्व की सवारी करने, पालकी में बैठने, स्वर्ण-चांदी के आभूषण पहिनने के योग्य न रहे। वुल्जे हेग के शब्दों में उसके सुधारों के परिणाम-स्वरूप, "सम्पूर्ण राज्य में हिन्दू दुःख और दरिद्रता में डूब गये थे।" बाजार नियन्त्रण

के नियमों ने तो हिन्दू-व्यापारियों की कमर ही तोड़ डाली। इन व्यापारियों ने शीघ्र ही खिलजी वंश के विनाश में हाथ बटाया।

(४) **स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता तथा आतंक की नीति**—सैनिक सुधार, बाजार-नियन्त्रण और आर्थिक सुधारों में सफलता मिलने के कारण अलाउद्दीन की नीति स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता की ओर बढ़ती गयी। सुलतान ने भयंकर निर्मम दण्ड और कठोर नियमों व आदेशों से शासन करना प्रारम्भ कर दिया। अब उसके शासन का मूल आधार भय और आतंक हो गया था, न कि प्रेम, आदर, श्रद्धा, सद्इच्छा व सहयोग। लोग दण्ड के भय से अपराध करने मे डरते थे। लोगों के हृदय में सुलतान के प्रति आतंक का भाव था। ऐसा शासन दीर्घकालीन या स्थायी नहीं हो सकता।

अलाउद्दीन के सुधारों की सफलता और समीक्षा

सुलतान अलाउद्दीन के सुधारों का मूल आधार उसकी राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति, स्वार्थसिद्धि, धर्मोत्साह, महत्वाकांक्षाएँ और सैनिक लक्ष्य थे। उसने सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति को असैनिक आवश्यकताओं के ऊपर रखा। इसमें उसे सफलता मिली।

अलाउद्दीन के सुधारों व नियंत्रण की सफलता के कारण

(१) अलाउद्दीन ने अपनी योजनाओं और आदेशों का व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण किया तथा उन्हें कार्यान्वित करने में स्वयं ने बड़ा योगदान दिया।

(२) अलाउद्दीन की कठोर बाजार-व्यवस्था, निर्मम नियंत्रण, और व्यापारिक वस्तुओं तथा खाद्यान्न को लाने की समुचित व्यवस्था से उसे सफलता प्राप्त हुई। उसने वस्तुओं का मूल्य निर्धारण और उन पर नियंत्रण ही नहीं किया, अपितु वस्तुओं और अनाज की पूर्ति एवं वितरण का भी समुचित प्रबन्ध किया। ऐसी व्यवस्था की कि निर्धारित दामों पर वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में बाजारों में उपलब्ध होती रहें। यदि उसने एक ओर जीवनोपयोगी खाद्यान्न की पूर्ति की, तो दूसरी ओर बंगाल, सिंध, गुजरात के समुद्र तट से वस्त्र एवं अरब व तुर्कीस्तान से अश्व भी मंगवाने की व्यवस्था की। इनके समुचित वितरण के लिये उसने अनाज बाजार, वस्त्र बाजार तथा अन्य बाजारों की भी व्यवस्था की। बाजार भावों को निर्धारित करने के साथ-साथ उसने आवश्यकता प्रतीत होने पर बहुमूल्य व विलास की वस्तुओं के उपभोग को भी नियंत्रित किया।

(३) उसने कड़े कर लगाये और उनकी पूर्ण वसूली निर्ममता व कठोरता से की गयी।

(४) जनसाधारण में सोने चांदी की मुद्राओं का अभाव होने से उनकी क्रय शक्ति दुर्बल हो गयी थी।

(५) उसके संपूर्ण संगठन, और नियंत्रण में उसके सुसंगठित गुप्तचर विभाग ने भी अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया। गुप्तचरों द्वारा सुलतान को प्रत्येक समय विभिन्न वस्तुओं, बाजारों तथा व्यापारियों के विषय की सूचनाएँ प्राप्त होती रहती थीं।

(६) उसके ईमानदार, उत्साही, योग्य, निष्पक्ष और स्वामिभक्त अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने बिना भ्रष्टाचार के उसके आदेशों का पालन कर उसकी नीति को कार्यान्वित किया। सुलतान के दंड के भय और आंतक से वे बड़ी ईमानदारी, कुशलता व दक्षता से अपना कर्त्तव्य पालन करते थे।

(७) उसकी कठोर दंड नीति ने उसकी सफलता निश्चित कर दी। उसके बाजार नियंत्रण के नियमों या आदेशों को भंग करने वालों को निर्ममता से कठोर दंड दिया जाता था। भूमि कर भी इतनी कठोरता से वसूल किया जाता था कि कृषक अविलम्ब अपना अनाज खलियानों में ही बेच देने के लिये विवश हो गये थे। उसने अपने बाजार नियंत्रण के नियमों का जनता से कठोरता से पालन करवाया।

(८) समय व परिस्थितियों की अनुकूलता ने भी अलाउद्दीन की सफलता में योगदान दिया।

वास्तव में अलाउद्दीन का बाजार नियंत्रण और मूल्य निर्धारण पूर्व-मध्ययुगीन इतिहास की एक आश्चर्यजनक घटना है और अलाउद्दीन की मौलिकता और बौद्धिक शक्ति का परिचायक है। इसमें संदेह नहीं कि उसने अपने सुधारों से बिना अतिरिक्त व्यय के एक विशाल सेना स्थापित कर ली मंगोलों को खदेड़ दिया, जनता व राज्य को उनके आक्रमणों व आंतक से मुक्त किया, अपने साम्राज्य का खूब विस्तार किया, राज्य में शांति व्यवस्था स्थापित कर दी, और वस्तुओं की प्रचुरता से जनसाधारण का जीवन सुखी और सन्तुष्ट बना दिया। धनाभाव के कारण लोगों में वह अनुशासन आ गया था कि अपराध और बुराइयाँ लगभग समाप्त हो गयीं और लोग अपना व्यवसाय सुरक्षा से करने लगे। जीवन की आवश्यकताओं में राज्य के हस्तक्षेपने लोगों को सुलतान की व्यक्तिगत निरंकुशता से संबंध कर दिया। राज्यमें सुलतान अलाउद्दीन का जीवन सुखमय, विलासप्रिय और स्वेच्छाचारी हो गया था। वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि कोई अन्य सम्राट उसको युद्ध के लिये ललकार भी नहीं सकता था। उसके सुधारों से अधिकारी वर्ग प्रसन्न था, क्योंकि उनको जनसाधारण तथा संपन्न व्यक्तियों का शोषण करने के अवसर ही नहीं प्राप्त होते थे, अपितु उन्हें शोषण के पूरे अधिकार भी थे।

अलाउद्दीन के सुधारों में दोष और दुर्बलताएँ

अलाउद्दीन के सुधारों में अनेक दोष, दुर्बलताएँ और अभाव थे जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(१) **हिन्दुओं का तीव्र असन्तोष**—सुलतान के सुधारों और विभिन्न करों से, उनकी निर्मम वसूली और अधिकारियों के अत्याचार से, तथा अपनी धनसंपत्ति और स्वतंत्रता के अपहरण से हिन्दू सुलतान से अत्यन्त ही रुष्ट और क्रुद्ध हो गये थे। वे अपनी सम्मानहीनता और घोर दरिद्रता से अत्यन्त ही दुखी हो गये थे। वे अलाउद्दीन के शासन से ऊब गये थे। शक्तिशाली हिन्दू सामन्तों को भी खिलजी प्रभुत्व का जुआ असह्य हो उठा था और वे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सदैव प्रयत्नशील थे। इन सब दोषों से हिन्दू जनता राजद्रोही बन कर सुलतान की शक्ति का अंत करने के

लिये और अपनी स्वतन्त्रता पुन: लेने के लिये अवसर की प्रतीक्षा में थी । जैसे ही सुलतान का अंत हुआ, हिन्दुओं ने विघटन और विश्रृंखलन में पूरा हाथ बटाया ।

(२) **अमीरों के दमन की प्रतिक्रिया**—सुलतान ने अमीरों व सामन्तों की जागीरें जब्त करके, उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इतना हस्तक्षेप किया कि उनका जीवन दूभर हो गया । विलासी जीवन के अभ्यस्त अमीरों और उच्च वर्ग के लोगों को उनके आमोद-प्रमोद की वस्तुएँ भी सरलता से प्राप्त नहीं होती थीं । साम्राज्य के अमीर, मलिक और सामन्त वर्ग के लोग सुलतान के सुधारों और नियंत्रण से अत्यन्त ही रुष्ट हो गये थे । वे अपनी स्वतंत्रता के अपहरण को नहीं भूले थे और वे चिर अभ्यस्त आनन्द और विलासमय जीवन व्यतीत करना चाहते थे । मलिक काफूर का उच्च पद प्राप्त करना कुलीनवर्गी सामन्तों के लिये घृणापूर्ण था । सुलतान अत्यधिक अनुभवी सामन्तों की सहानुभूति और सद्‌भावना भी खो बैठा था । फलत: अमीर और सामन्त अलाउद्दीन और खिलजी राजवंश के शत्रु हो गये थे और सुलतान के शासनकाल के अन्तिम भाग में उन्होंने फिर अपने विश्रृंखलकारी कार्यों का श्रीगणेश किया ।

(३) **आर्थिक सुधारों से कृषकों व व्यापारियों के हितों की बलि**--सुलतान ने जिस राजस्व, सैनिक और आर्थिक सुधारों व अधिनियमों का सृजन किया, जिस क्रूरता से उनका पालन करवाया गया, उनसे कृषकों व व्यापारियों के हितों को गहरा आघात लगा । व्यापारियों को लाभ की अपेक्षा हानि उठानी पड़ी और कृषकों को अपनी उपज से हाथ धोना पड़ा । इससे व्यापारियों व कृषकों की दशा अत्यन्त दयनीय और दर्दनाक हो गयी । इस प्रकार अलाउद्दीन के सुधारों व नियंत्रण से अमीर, व्यापारी, शिल्पी, कृषक, आदि सभी वर्ग असन्तुष्ट हो गये थे । इससे वे अलाई शासन के परिवर्तन के इच्छुक थे ।

(४) **प्रशासन में अत्यधिक केन्द्रीकरण**—सुधारों से अलाउद्दीन की राजसत्ता में अत्यधिक अभिवृद्धि हुई और शासन का बहुत ही अधिक केन्द्रीयकरण कर दिया गया । गुप्तचर व्यवस्था ने भी इसमें योग दिया । सत्य तो यह है कि अलाउद्दीन के समस्त सुधार उसकी निरंकुशवादिता और दृढ़ केन्द्रीय राजसत्ता पर निर्भर थे । पर वृद्धावस्था में उसकी शक्ति क्षीण हो जाने तथा केन्द्रीय सत्तादुर्बल हो जाने से धीरे-धीरे उसके विरुद्ध असन्तोष और अशांति स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी जो खिलजी साम्राज्य के पतन में सहायक हुई ।

(५) **पारिवारिक उदासीनता**—अलाउद्दीन ने अपने पुत्रों को जो कि उसके उत्तराधिकारी थे, शिक्षित एवं सुयोग्य बनाने का विशेष उल्लेखनीय प्रयास नहीं किया । वह उनके प्रति उदासीन रहा । वह अपने सुधारों और समस्याओं के निराकरण में ही इतना अधिक व्यस्त हो गया था कि उसने अपने उत्तराधिकारी पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा व देखभाल की अवहेलना की । इससे उसकी मृत्यु के बाद शासन को सफलतापूर्वक संचालित करने वाले तथा साम्राज्य को सुस्थिर बनाये रखने वाले योग्य शासक व सुलतान का अभाव रहा ।

(६) **जनसाधारण का विरोध**--उसके व्यापक सुधार, कठोर नीति, निर्मम दंड, और आंतक से जो उसके सुधारों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक थे, उसकी प्रजा उसके विरुद्ध हो गयी थी. क्योंकि वह निरन्तर शोषित हो रही थी, पिसी जा रही थी। वास्तविकता तो यह है कि अलाउद्दीन के समस्त आर्थिक सुधार तर्क-हीन, अविवेकपूर्ण थे और ऐसी कृत्रिम प्रणाली पर आधारित थे जो अर्थशास्त्र के कानून और नियमों के विरुद्ध थी। इसके परिणामस्वरूप उस समस्त जनता को जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन सुधारों के प्रभावों में आयी भयंकर कष्ट, दुख, दरिद्रता और अपमान सहन करना पड़े। इससे उनका रोष, असन्तोष और क्रोध दिन प्रतिदिन बढ़ता गया।

उनके असन्तोष की चिनगारी ने सुलतान अलाउद्दीन के आँख मूंदते ही, आग की लपट का रूप धारण कर लिया। नव-मुसलमानों और उलमा वर्ग ने भी अशांति को प्रोत्साहित किया, क्योंकि उन्हें भी सुलतान के सुधार व नीति असह्य थे। वृद्धा-वस्था के कारण उसका स्वास्थ्य भी क्षीण हो गया था. वह अपने विवेक और निर्णय करने की शक्ति भी खो बैठा था। मलिक काफूर ने इस विषम परिस्थिति का लाभ उठाकर सुलतान के विरुद्ध षड़यन्त्र प्रारम्भ कर दिये। इन सबके परिणामस्वरूप सुल-तान के जीवन के अन्तिम दिनों में ही उसके सुधार और योजनाएँ विफल हो गयीं। तथ्य तो यह है कि उसके सुधार सैनिक शासन और युद्ध-काल के लिये थे। शांति,सुख, सम्पन्नता और प्रजा-कल्याण के लिये नहीं थे। फलतः वे स्थायी नहीं हो सके।

सारांश

अलाउद्दीन ने अपनी सैनिक और राजनैतिक समस्याओं के निराकरण के लिये जो कार्य किये वे उसके सुधार कहलाये। इनका उद्देश्य प्रजा-कल्याण नहीं था। उसके सुधारों में प्रमुख निम्नलिखित हैं—

राजस्व के सुधार

अलाउद्दीन से पूर्व के सुलतानों में राजस्व सुधार के लिये न तो उनमें योग्यता व प्रतिभा थी और निरंतर युद्धों के कारण उन्हें इसके लिये न अवकाश ही था। पर सुलतान अलाउद्दीन ने इस ओर ध्यान दिया।

अलाउद्दीन के राजस्व सुधार के उद्देश्य—(१) मंगोल आक्रमणों को रोकने और सेना संगठित करने के लिये धन की आवश्यकता। (२) राजकीय वैभव-विलास के लिये धन की आवश्यकता, (३) धन-सम्पन्न शक्तिशाली भूमिपतियों को कुचलना, जिससे वे विद्रोह न कर सकें, (४) आंतरिक शांति व्यवस्था के लिये खूत, चौधरी, मुकद्दम आदि राजस्व अधिकारी और कृषक आदि को जो हिन्दू ही थे, शक्ति-हीन करना, (५) भूमि उपज का अधिकांश भाग राजकोष में आ जाय, राज्य को आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि करना और जनता को आर्थिक दृष्टि से पंगु बनाना।

राजस्व सुधारों के पूर्व भूमि-व्यवस्था—(१) सुलतान की खालसा भूमि थी, जिसका भूमि कर सीधा राजकोष में जमा होता था। (२) प्रांतीय भूमि जो

प्रांतीय हाकिमों के अधीन थी। इसका राजस्व एक तिहाई होता था। (३) खूत, चौधरी, मुकद्दम आदि राजस्व के प्रमुख और शक्तिशाली कर्मचारी थे। वे कृषकों से तो भूमि कर व अन्य कर वसूल करते और राजकोष में जमा करते थे, पर वे स्वयं अपने कर को जमा नहीं करते थे। अधिक धन सम्पन्न और प्रभावशाली होने से वे राजकीय आज्ञाओं की अवहेलना करते थे। (४) अधिकांश भूमि उपहार, अनुदान, पुरस्कार, दान और जागीर में दी गयी थी। इसके भूमि कर से सुलतान वंचित था। (५) न तो भूमि की पैमाइश ही की गई थी और न राजस्व का ठीक-ठीक निर्धारण ही। कृषकों से मनमाना भूमि कर वसूल होता था।

अलाउद्दीन के राजस्व-सुधार और व्यवस्था

(१) अलाउद्दीन ने दान, धर्म, पुरस्कार, पेंशन, जागीर आदि में दी हुई भूमि को जप्त करके खालसा भूमि में सम्मिलित कर ली। इससे सुलतान को प्राप्त होने वाले भूमि कर में वृद्धि हो गयी।

(२) खूत, मुकद्दम और चौधरी को भूमि कर वसूल कर राजकोष में जमा करने के पुरस्कार स्वरूप उन्हें कुछ पारिश्रमिक या कमीशन मिलता था। उनके कुछ विशेष अधिकार व सुविधाएँ भी थीं। अलाउद्दीन ने ये सब समाप्त कर दिये और उनसे भी चराई कर, भूमि कर वसूल किया एवं कृषकों के साथ सीधा संपर्क स्थापित कर लिया।

(३) बिस्वा के आधार पर उसने कृषि भूमि की पैमाइश करवाई, उपजाऊ भूमि, उसकी श्रेणी तथा कनकूत, बटाई लंक बटाई प्रणाली के आधार पर भूमि कर निर्धारित किया गया।

(४) करों में अधिक वृद्धि की गयी और भूमि कर के अतिरिक्त गृह कर, चरागाह कर, आयात और निर्यात कर, जजिया, खम्स, जकात आदि विभिन्न कर लगाये गये। जजिया कर हिन्दुओं से वसूल किया जाता था।

(५) विभिन्न प्रकार के करों के पूर्णतया वसूल करने तथा दोषी अपराधी को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था अलाउद्दीन ने की। कर वसूली में अधिक धन की वसूली और भ्रष्टाचार को रोकने के लिये सुलतान ने राजस्व विभाग के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी। जिन कर्मचारियों के पास वसूली का धन शेष रह जाता था, वह धन कठोर दण्ड देकर या बन्दी बना कर वसूल कर लिया जाता था।

(६) भूमि कर और उसकी वसूली की पूर्ण जानकारी राजस्व विभाग की बहियों में लिखी जाती थी और उनकी पूरी जाँच की जाती थी। यदि वसूली में एक जीतल भी शेष रह जाता तो कर्मचारी को कठोर दण्ड या कारावास की सजा देकर उसे वसूल किया जाता था।

(७) खालसा भूमि और दोआब की भूमि से जो अनाज भूमि कर के रूप में वसूल होता था, वह शासकीय गोदामों में रखा जाता था। किसी को भी अधिक अनाज संग्रह करने की अनुमति नहीं थी।

(८) अलाउद्दीन ने राजस्व विभाग का पुनर्गठन किया और शर्फ कायिनी को राजस्व विभाग का नायब या उप वजीर नियुक्त किया। राजस्व कर्मचारियों में घूस, और भ्रष्टाचार को रोकने के लिये अलाउद्दीन ने दीवान-ए-मुस्तखराज नामक पृथक् विभाग खोला। उसका प्रमुख अधिकारी राजस्व विभाग के उन कर्मचारियों को दण्ड देता था, जो कर वसूल नहीं कर पाते थे और जो भ्रष्ट थे। खूत, मुकद्दम, चौधरी, कारकून, मुतसरिफ, आमील,नवी सिंदगी आदि राजस्व विभागके विभिन्न कर्मचारी थे।

राजस्व सुधारों का महत्व—अलाउद्दीन प्रथम सुलतान था, जिसने राजस्व के विभिन्न सुधारों, पैमाइश, भूमि कर आदि की ओर ध्यान दिया और राजस्व प्रशासन को चुस्त और दक्ष किया, जिसका अनुकरण शेरशाह और अकबर ने किया।

राजस्व सुधारों के परिणाम—नियमित भूमि कर में वृद्धि होने से राज्य की आय में वृद्धि हुई। भूमि कर को अनाज के रूप में वसूल करके गोदामों में संग्रह और वितरण करने से खाद्यान्न की बाहुल्यता हो गयी। राजस्व कर्मचारियों के भ्रष्टाचार का अन्त हो गया। खूतों, चौधरियों, मुकद्दमों और भूमिपतियों के विशेष अधिकार समाप्त हो गये। धन और अन्न की सस्ते दामों पर प्रचुरता होने से अलाउद्दीन ने अपनी विशाल सेना संगठित की और राज्य का विस्तार किया। जनसाधारण और कृषकों पर करों का अत्यधिक बोझ पड़ गया और उनका आर्थिक शोषण होने लगा। उनके पास जीवन निर्वाह के लिये भी धन और अन्न शेष नहीं रहा। खूत, मुकद्दम, मुतसर्रिफ, नवी सिन्दगी आदि राजस्व कर्मचारियों को राजस्व वसूली और शेष धन के लिये कठोर दण्ड और कारावास भुगतना पड़ता था। राजस्व सुधारों और करों के बोझ से हिन्दू निर्धनता और संकट की सीमा तक पहुँच गये थे और जीवन निर्वाह के लिये उनकी महिलाओं को मुस्लिम घरों में सेविका का कार्य करना पड़ता था। अलाउद्दीन की राजस्व नीति और सुधार का आधार उसकी स्वार्थ सिद्धि और राजनैतिक हितों की पूर्ति थी, जन-कल्याण और कृषकों का हित नहीं था।

अलाउद्दीन के सैनिक सुधार

सैनिक सुधारों के लिये अलाउद्दीन के मुख्य उद्देश्य थे—निरंकुश शासन की स्थापना करना, साम्राज्य विस्तार और मंगोलों के आक्रमणों को रोकने के लिये स्थायी, दृढ़ संगठित सेना तैयार करना। विद्रोहों का दमनकर शांति स्थापित करना।

सुधारों के पूर्व सेना की दशा—अलाउद्दीन के पूर्व सुलतान के पास स्थाई दृढ़ सेना नहीं थी। उसे भूमिपति, प्रांतपति और सामन्त आवश्यकता होने पर सैनिक भेजते थे,जिसमें प्रायः किराये के अनुशासनहीन अप्रशिक्षित सैनिक होते थे। इस प्रकार की सेना में जांदार (सुलतान के अङ्ग रक्षक),सीमित स्थायी सैनिक,प्रांतीय हकिमों के सैनिक, आवश्यकता होने पर भरती किये रंगरूट और पैदल सैनिक होते थे।

सैनिक सुधार—(१) पैदल और अश्वारोही सैनिकों की भरती कर अलाउद्दीन ने अपनी सेना की संख्या लगभग पांच लाख कर ली थी। सैनिकों के हुलिये दर्ज करने की प्रथा प्रारम्भ की गयी। (२) अलाउद्दीन ने सैनिकों व सेना के अधिकारियों को जागीर देने की अपेक्षा नगद वेतन देना प्रारम्भ किया। एक पदाति को

७८ टंक वार्षिक वेतन और एक अश्व रखने वाले सैनिक को २३४ टंक वार्षिक वेतन और दो अश्व रखने वाले को ३१२ टंक वार्षिक वेतन दिया जाता था। (३) उच्च अश्वों के अभाव को कम करने के लिये अलाउद्दीन ने ऊँची नस्ल के अश्व बाहर से मंगवाये और नस्ल सुधारने के प्रयास किये। अश्वों को दागने की प्रथा भी प्रारम्भ की। अश्वों के लिये 'पायगाह' नामक विभाग भी स्थापित किया। (४) सुलतान ने योग्य, अनुभवी, विश्वासपात्र व्यक्तियों को सैनिक अधिकारियों के पदों पर नियुक्त किया। सैनिक प्रशिक्षण के लिये उसने युद्धों को जारी रखा और शांति के काल में आखेट के समय उन्हें प्रशिक्षण दिया। (५) सैनिक सामग्री और अस्त्र-शस्त्र निर्माण के कारखाने खोले गये तथा मंजनीक, अर्रादा और मगरबी यंत्रों का निर्माण करवाया। प्रत्येक सैनिक के पास दो तलवारें, धनुष-बाण, गदा और कुल्हाड़ियाँ रहती थीं। (६) सीमांत क्षेत्र में प्राचीन दुर्गों की मरम्मत करवाई, नवीन दुर्गों का निर्माण किया और सैनिक छावनियाँ स्थापित कीं। इनमें रण कुशल वीर सैनिकों व सेनानायकों को रखा। सीमांत प्रांत की सुरक्षा और सुव्यवस्था का भार गाजी मलिक को सौंपा गया। (७) अलाउद्दीन स्वयं सेना का निरीक्षण करता था और सैनिक कार्यों का केन्द्रीकरण कर दिया था। उसने दीवान-ए-अर्ज नामक एक सेना विभाग खोला और इसका सर्वोच्च अधिकारी आरिज-ए-ममालिक था। सेनापति का पद स्थायी नहीं था। युद्ध व आक्रमण के समय अलाउद्दीन सेनापति नियुक्त करता था। विजय अभियान से लौटने पर सैनिकों को पुरस्कार दिया जाता था।

सैनिक सुधार के परिणाम—(१) सेना की खूब वृद्धि हुई। कम व्यय पर स्थायी सेना रखी गई। इस सैनिक शक्ति से विद्रोहों और षड्यन्त्रों का अन्त करके शांति व व्यवस्था स्थापित की गई।

(२) विशाल सेना से अलाउद्दीन ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

(३) मंगोल आक्रमणों का अन्त हो गया।

अलाउद्दीन का बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण

अपनी बाजार नियन्त्रण नीति के कारण अलाउद्दीन राजनैतिक अर्थशास्त्रज्ञ कहा गया है।

उद्देश्य—इसी नीति के उद्देश्य थे—प्रशासन के व्यय, कर्मचारियों, अधिकारियों व दासों के खर्च को कम करना, सैनिक प्रशासन और सैनिक वृद्धि में हुए व्यय को कम करने के लिये सैनिकों के दैनिक उपयोग की वस्तुओं के भावों को कम कर उन्हें निर्धारित करना, भवनों व राजप्रासादों के निर्माण में हो रहे व्यय के भार को कम करना, बिना करों में वृद्धि किये सेना के बढ़ते हुए व्यय के भार को सहन करके, मंगोल आक्रमणों का सेना से अंत करना, सैनिकों में लूट के माल व धन की खूब वृद्धि होने से वस्तुओं के जो भाव बढ़ गये थे उन्हें कम और स्थिर करना आदि। यह बात स्पष्ट है कि अलाउद्दीन का बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण जनहित की भावना से प्रेरित नहीं था, अपितु उसकी स्वार्थ सिद्धि और राजनैतिक व प्रशासकीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये था।

मूल्य निर्धारण—सुलतान ने खाद्यान्न के भावों के साथ-साथ दैनिक आवश्यकताओं की अनेक वस्तुओं के भाव निर्धारित कर दिये, जैसे गेहूँ, चना, दाल, घी, तेल, दैनिक उपयोग के कपड़े, रेशम, गाय, भैंस, घोड़ा, टट्टू, प्याले, कंघियाँ, पान-सुपारी, साग-सब्जी, सुइयां, दास-दासी आदि। व्यापारियों के नाम रजिस्टर में लिख दिये गये और उन्हें बाध्य किया गया कि वे ग्रामीण क्षेत्रों से निर्धारित दरों पर खाद्यान्न लाकर बाजार में बेचें। अलाउद्दीन ने अधिकारियों को आदेश भी दिया कि वे अनाज का संग्रह न करें और अपना अनाज खलिहानों में ही व्यापारियों को बेंच दें।

अन्नागार—अनाज जो भूमि कर के रूप में वसूल किया जाता था। सरकारी गोदामों में संग्रहित किया गया और इन गोदामों से वह व्यापारियों को बेचा जाता था। तथा व्यापारीगण इसे निर्धारित भावों पर जनता को बेचते थे। इस प्रकार अनाज को उपलब्ध करने, तथा वितरण करने व बेचने की पूरी व्यवस्था की गयी।

खाद्यान्न के काले बाजार का अन्त—अनाज के रूप में भूमि कर कठोरता से वसूल किया जाता था। कृषकों तथा व्यापारियों को खाद्यान्न संग्रह करने का निषेध था और संग्रह करने वालों को तथा अनाज वसूली में अवहेलना करने वाले अधिकारी को निर्ममता से दंड दिया जाता था। इससे खाद्यान्न के काले बाजारी का अस्तित्व समाप्त हो गया।

वस्त्र-बाजार का नियन्त्रण और उसकी व्यवस्था

अलाउद्दीन ने वस्त्र बाजार को भी नियंत्रित और व्यवस्थित किया।

वस्त्र-बाजार और वस्त्रों के मूल्यों का निर्धारण—दिल्ली में बदायूं दरवाजे के भीतर मैदान में वस्त्र बाजार स्थापित किया गया और उसे सराय-अदल कहा जाता था। इसी बाजार में ही व्यापारी वस्त्र बेच सकते थे। विभिन्न प्रकार के सूती, रेशमी और बहुमूल्य वस्त्रों के भाव निर्धारित कर दिये गये। वस्त्र व्यापारियों के नाम पंजीकृत कर लिये गये और उनसे यह इकरारनामा लिखा लिया गया कि वे सराय-अदल में नियमित रूप से कपड़े लायेंगे और निर्धारित भावों पर उन्हें बेचेंगे।

वस्त्र व्यापारियों को ऋण और बहुमूल्य वस्तुओं को क्रय करने के लिये अनुमति-पत्र—व्यापारियों को विविध प्रकार के वस्त्र क्रय कर सराय-अदल में लाने और निर्धारित दरों पर विक्रय करने के लिये अलाउद्दीन ने प्रतिष्ठित व्यापारियों को बीस लाख टंक धन ऋण में दिया था। कीमती वस्त्रों और वैभवपूर्ण बहुमूल्य वस्तुओं के क्रय करने के लिये रईसों को विशेष आज्ञा-पत्र दिये जाते थे। इससे ऐसी वस्तुओं की काला बाजारी बन्द हो गयी।

पशुओं तथा दासों के व्यापार पर नियन्त्रण

अलाउद्दीन ने दास-दासियों, गायों, भैंसों, बकरियों, घोड़ों, टट्टुओं तथा अन्य पशुओं के भाव भी निर्धारित कर दिये थे। उनकी मूल्यों को न्यूनाधिक करना व्यापारियों व संपन्न व्यक्तियों के लिये असम्भव था। क्रय-विक्रय करने में दलालों की दलाली निषिद्ध कर दी गई थी तथा उनके साथ कठोरता का व्यवहार किया जाता था।

कठोर नियन्त्रण और दण्ड-व्यवस्था—बाजार नीति व नियन्त्रण को कार्यान्वित करने तथा दलालों व व्यापारियों पर नियन्त्रण रखने के लिये अलाउद्दीन ने क्रूर पर ईमानदार और कार्य कुशल अधिकारी नियुक्त किये थे। याकूब को बाजार का अध्यक्ष बनाया गया था। बाजार के नियमों का उल्लंघन करने वालों को और कम तौलने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था, जैसे कम तौलने वालों के शरीर से दूना मांस काट लेना, दूकानदारों को कोड़े मारना, व्यापारियों को बन्दी बनाना, आदि। अधिकारियों को भी उनकी कर्तव्य अवहेलना पर कठोर दण्ड दिया जाता था।

बाजार के अधिकारी और कर्मचारी—बाजार नियन्त्रण के लिये दिवान-ए-रियासत नामक सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त किया गया। उसके अधीन खाद्यान्न का बाजार, वस्त्र बाजार तथा अन्य बाजार रखे गये। उसके अधीन शहना-ए-मंडी, बरीद और मुनहियान (गुप्तचर) नामक अधिकारी थे। सुलतान को इन अधिकारियों के द्वारा बाजार सम्बन्धी सभी सूचनाएँ और विवरण प्रा त होते थे। उसने मलिक काबुल को बाजार का अधीक्षक (शहना-ए-मंडी) नियुक्त किया था। विभिन्न बाजारों के लिये अलग-अलग शहना या अधीक्षक नियुक्त किये गये थे। इन्हें नियन्त्रण के नियमों की अवहेलना करने वालों को कठोर दण्ड देने, तथा निरीक्षण करने के व्यापक अधिकार थे।

यह विशेष उल्लेखनीय है कि अलाउद्दीन का बाजार नियन्त्रण और मूल्य निर्धारण का क्षेत्र राजधानी दिल्ली और उसके आसपास का क्षेत्र ही था, समस्त खिलजी साम्राज्य नहीं।

अलाउद्दीन के अन्य सामाजिक सुधार—मूल्य निर्धारण और बाजार नियन्त्रण के अतिरिक्त अलाउद्दीन ने अन्य सामाजिक सुधार भी किये, जैसे, इस्लाम के कट्टर धर्मनिष्ट अनुयायियों को प्रसन्न करने के लिये उसने मदिरा का क्रय विक्रय नियन्त्रित कर दिया और मदिरा-पान निषिद्ध, दुर्व्यसनों का अन्त करने के लिये सामाजिक जलसे, नाच-रंग, समारोह भी निषिद्ध कर दिये; व्यभिचार का अन्त करने के लिये उसने व्यभिचारी को वध करने का आदेश दिया था, जादू-टोने तथा तंत्र-मंत्र से धर्म भीरु जनता को ठगने वालों को भी उसने मृत्यु दण्ड की व्यवस्था की थी।

अलाउद्दीन के सुधारों के प्रभाव और परिणाम

अलाउद्दीन के सुधारों के अच्छे परिणाम हैं—

(१) वह व्यवस्थित विशाल और स्थायी सेना रख सका और इस शक्ति से वह अपने साम्राज्य का विस्तार कर सका, (२) मंगोल आक्रमणों का अन्त कर वह सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा कर सका, (३) विद्रोहों और षडयन्त्रों का अन्त कर वह राज्य में आंतरिक शांति स्थापित कर सका, (४) वस्तुओं की सस्ताई और बाहुल्यता से जन-जीवन सुखी और सन्तोषप्रद हो गया था, (५) खाद्यान्न की पूर्ति और वितरण की समुचित व्यवस्था होने से अकाल और अनावृष्टि के भय से लोग मुक्त हो गये थे, (६) विलास-वैभव की वस्तुएँ नियंत्रित होने से अमीरों का विलासी जीवन भी नियंत्रित हो गया था, (७) अलाउद्दीन की राजसत्ता और केन्द्रीय शक्ति में वृद्धि हुई और उसका सैनिक निरंकुशवाद दृढ़ हो गया, (८) धन की प्रचुरता होने से वह

अनेक भवनों व राजप्रासादों व दुर्ग का निर्माण कर सका और उसने विद्वानों व संतों को राजकीय संरक्षण भी दिया।

उसके सुधारों के दुष्परिणाम या हानियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) बाजार के नियंत्रण और कठोर दण्ड व्यवस्था से व्यापारियों और दलालों के हितों को अत्यधिक आघात पहुँचा और व्यापार का प्रोत्साहन समाप्त हो गया, (२) बाजार व खाद्यान्न के नियंत्रण तथा भूमि कर की अधिक वृद्धि से कृषकों के हितों पर कुठाराघात हुआ। कृषि पर कुप्रभाव गिरा और कृषकों की दशा अत्यंत ही दयनीय हो गई, (३) अत्यधिक करों के बोझ से जन-साधारण और विशेषकर हिन्दू अत्यधिक दरिद्र हो गये, (४) बाजार नियंत्रण में प्रारम्भिक सफलता मिलने से अलाउद्दीन अधिक स्वेच्छाचारी और निरंकुश हो गया और उसके शासन का मूल आधार भय व आतंक हो गया।

इन दुर्बलताओं व दुष्परिणामों के कारण उसके विरुद्ध अत्यधिक असन्तोष व्याप्त हो गया और उसके जीवन के अन्तिम वर्षों में ही उसकी सब योजनाएँ विफल हो गईं। वास्तव में उसकी योजनाएँ, नियंत्रण और सुधार सैनिक शासन और युद्ध काल के लिये थे। शांति, सुख व प्रजा हित की वृद्धि के लिये नहीं थे।

अलाउद्दीन के राजस्व सुधार

(आधार-व्यक्तिगत स्वार्थों व राजनैतिक हितों की पूर्ति)

↓

सुधारों के उद्देश्य

(१) सैन्य वृद्धि व मंगोलों को खदेड़ने के लिये धन प्राप्त करना।

(२) राजसभा में वैभव के बढ़ते हुए व्यय को वहन करना।

(३) धनाढ्य सशक्त भूमिपतियों का दमन करना।

(४) राजस्व के कर्मचारियों की शक्ति व सुविधाओं का अन्त करना।

(५) राज्य की आर्थिक सम्पन्नता व जनता की दरिद्रता में वृद्धि करना।

सुधार

(१) अनुदा व जागीर, भूमिका अपहरण।

(२) राजस्व कर्मचारियों की सुविधाओं व अधिकारों का अन्त।

(३) भूमि की पैमाइश व भूमि कर का निर्धारण।

(४) विभिन्न करों में वृद्धि।

(५) कर बसूली की निर्ममता और कठोर दण्ड-व्यवस्था।

(६) राजस्व बहियों का निरीक्षण व दण्ड।

(७) राजकीय अन्न भण्डार गृह।

(८) राजस्व विभाग का पुनर्गठन और कर्मचारियों की वृद्धि।

सैनिक सुधार

उद्देश्य	सुधार
(१) सुदृढ़ एकतन्त्र निरंकुश शासन की स्थापन।	(१) सैनिक भरती, सैन्य वृद्धि व हुलिया प्रथा।
(२) साम्राज्य निर्माण और विस्तार।	(२) स्थायी सेना पदाति (अस्य) अश्वारोही (मुरतब, अस्पा)
(३) मंगोल आक्रमणों का अन्त, सीमांत की सुरक्षा।	(३) जागिरों का अन्त, नगद वेतन।
(४) विद्रोहों, षड़यन्त्रों का दमन।	(४) श्रेष्ठ अश्वों की प्राप्ति, अश्वों को दागने की प्रथा, नस्ल सुधार कार्य।
(५) आन्तरिक शान्ति, व्यवस्था की स्थापना।	(५) अनुभवी सेनापति, निरीक्षण, प्रशिक्षण।
	(६) अस्त्र-शस्त्र निर्माण, पदातियों अश्वारोहियों के हथियार।
	(७) सैन्य विभाग (दीवान-ए-अर्ज) सैनिक अधिकारी।

बाजार-नियंत्रण

(राजनैतिक, व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति, प्रजा हित, सुख, सम्पन्नता की भावना का अभाव)

उद्देश्य	कार्य
(१) प्रशासन में वित्तीय भार को कम करना।	(१) दैनिक जीवन की विभिन्न वस्तुओं का निर्धारण।
(२) बढ़ते हुए सैन्य व्यय के भार को वहन करना।	(२) खाद्यान्न की उपलब्धि, खाद्यान्न का क्रय-विक्रय।
(३) निर्माण कार्यों का व्यय।	(३) शासकीय अन्नागार।
(४) अधिक कर लगाना असम्भव।	(४) भूमि कर अनाज में, वसूली में कठोरता।
(५) मंगोल आतंक का अन्त।	
(६) सैनिक वेतन में कटौती असम्भव होने से नियन्त्रण आवश्यक।	(५) वस्त्र मूल्यों का निर्धारण, वस्त्र बाजार (सराय-अदल)।
(७) मूल्य अभिवृद्धि व मुद्रा स्तर में गिरावट।	(६) वस्त्र व्यापारियों का पंजीयन और इकरार नामा।
	(७) वस्त्र-व्यापारियों को ऋण।
	(८) बहु मूल्य वस्तुओं का अनुमति-पत्र

(९) दास-दासियों, पशुओं का वर्गीकरण, मूल्य निर्धारण।
(१०) व्यापारियों, दलालों पर नियंत्रण
(११) निर्मम आदेश, दण्ड-व्यवस्था।
(१२) बाजार के अधिकारी, दीवान-ए-रियासत, शहना-ए-मण्डी, मुनहियान, इसके व्यापक अधिकार।

अलाउद्दीन के सुधारों का परिणाम और प्रभाव

↓

अच्छे परिणाम व प्रभाव

१. व्यवस्थित स्थायी, विशाल सेना, साम्राज्य विस्तार।
२. मंगोल आक्रमणों से मुक्ति, सीमांत की सफल सुरक्षा।
३. आंतरिक व्यवस्था शांति की स्थापना
४. सुखी, संतुष्ट जन-जीवन।
५. अकाल, अनावृष्टि के भय से मुक्ति।
६. नियंत्रित विलासमय जीवन।
७. सैनिक निरंकुशवादिता।
८. निर्माण कार्य, राजकीय संरक्षण।

दुष्परिणाम व कुप्रभाव

१. व्यापारियों, दलालों में असन्तोष, वाणिज्य को प्रोत्साहन नहीं।
२. कृषकों के हितों को आघात, कृषि के हितों की बलि।
३. जनसाधारण की दरिद्रता, हिन्दुओं की तीव्र विपिन्नता।
४. स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता, आतंक की नीति।
५. निर्मम दण्ड और नियंत्रण से तीव्र असन्तोष।

———

अध्याय १६

अलाउद्दीन का शासन-प्रबन्ध

दिल्ली के समस्त सुलतानों में अलाउद्दीन का स्थान अत्यंत महत्वशाली है। उसकी प्रशासन व्यवस्था पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। उसके शासन काल में दिल्ली के सुलतान की राजसत्ता लगभग समस्त भारत पर प्रतिष्ठित हो गई। वास्तव में अलाउद्दीन के शासन काल से दिल्ली सल्तनत के साम्राज्यवादी युग का श्रीगणेश होता है जो लगभग पचास वर्षों की अवधि तक चलता रहा।

खिलजी क्रांति—अलाउद्दीन ने अपने चाचा सुलतान जलालुद्दीन की हत्या करके राज्य सत्ता का अपहरण करके खिलजी वंश की दृढ़ सत्ता स्थापित की। सल्तनत के इतिहास में यह रक्त रंजित परिवर्तन था। यह खिलजी परिवर्तन और क्रांति मध्ययुग के इतिहास में अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस क्रांति के द्वारा दिल्ली में एक नवीन खिलजी राजवंश का अभ्युदय हुआ, दिल्ली सुलतान ने अधिकांश भारत को विजय कर अपने अधिकार में कर लिया और शासन प्रबंध में राजस्व, सैनिक और बाजार नियंत्रण संबंधी नवीन सुधार और प्रयोग किये, विद्रोहों और षड़यंत्रों का निर्ममता से दमन कर शांति व्यवस्था स्थापित की। यही नही मंगोल आक्रमणों का अन्त कर सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा भी की जो अब तक नहीं हो पाई थी। नवीन भवन निर्माण तथा साहित्य को राजकीय संरक्षण की नीति भी अपनाई गई। केन्द्रीय शासन दृढ़ करके विघटन और विशृंखलन की प्रवृत्तियों को अवरुद्ध कर दिया गया। सल्तनत के इतिहास में यह एक आशाजनक बात थी। राग-रंग और मद्यपान का निषेध कर समाज को अधिक श्रेष्ठ और नैतिक बनाने का प्रयास किया जो मध्ययुग में सहसा नवीन नीति थी। इन्हीं कारणों से खिलजी शासन काल क्रांतिकारी युग कहा जाता है।

सैनिक शासन तंत्र या निरंकुश सैनिक तानाशाही—कतिपय इतिहासकारों ने अलाउद्दीन के शासन काल को सैनिक शासन तंत्र या निरंकुश सैनिक तानाशाही कहा है। उसका शासन एक सैनिक शासन था। उसके शासन काल में निरंकुशता अपनी चरम पराकाष्ठा तक पहुँच गई थी। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) दिल्ली सल्तनत का शासन-सूत्र ग्रहण करने के पश्चात् अलाउद्दीन ने अपनी महत्वाकांक्षाओं और राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक विशाल स्थायी सेना संगठित की। इस सुसंगठित सशस्त्र सेना में चार लाख पचहत्तर सहस्त्र सैनिक थे। इस समस्त सेना की व्यवस्था उत्तम थी। सैनिकों को नगद वेतन दिया

गया। उनके अस्त्र-शस्त्रों की तथा रसद आदि की पूर्ण व्यवस्था की। इससे राजधानी दिल्ली में एक स्थायी सेना निरंतर सैनिक कार्यों के लिए सदा तत्पर और विद्यमान रहती थी। सेना और उसके प्रबन्ध में अलाउद्दीन अत्यधिक अभिरुचि रखता था।

(२) वह इस प्रकार स्थायी सेना बना सका और उसका उपयोग कर सका, क्योंकि वह स्वयं एक वीर, साहसी योद्धा और सैनिक प्रतिभा सम्पन्न शासक था। वह जन्म जात सेनानायक था।

(३) इस विशाल स्थायी सेना के आधार पर उसने दो प्रमुख और महत्वपूर्ण कार्य किये—प्रथम दिल्ली सल्तनत के साम्राज्य का निर्माण, और उसका विस्तार और द्वितीय मंगोलों के आक्रमणों का सामना कर, उन्हें परास्त कर खदेड़ देना, और राज्य तथा जनता को मंगोलों के भय और आतंक से मुक्त करना। सैन्यशक्ति के आधार पर ही उसे इन दोनों कार्यों में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। विशाल दृढ़ सेना की सहायता से उसने उत्तरी भारत के एक-एक करके सभी राज्य परास्त कर अपने राज्य में मिला लिए और दक्षिण भारत में देवगिरी, वारंगल, होयसल, मदुरा आदि राज्यों को भी नतमस्तक कर इस्लाम की पताका सुदूर दक्षिण भारत तक फहराई।

(४) उत्तर पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र में दुर्गों की समुचित व्यवस्था की, सैनिक छावनियां स्थापित की और अनुभवी, वीर तथा प्रशिक्षित सैनिक और अधिकारी वहां नियुक्त किये। इससे मंगोलों के अनवरत आक्रमणों का अन्त हो गया और सीमांत क्षेत्र की समुचित सुरक्षा हो सकी।

इस प्रकार दिल्ली राज्य की सीमाओं को विस्तृत रूप प्रदान किया। उसने मंगोल आक्रांताओं के निरंतर प्रहारों से सीमांत प्रदेशों को भय मुक्त किया और उसने एक निश्चित सीमा निर्धारित करके भावी आक्रमणों को रोक दिया।

(५) सेना के बल पर ही उसने नव मुस्लिमों के विद्रोह, अकत खां के विश्वासघातपूर्ण विद्रोह, अवध तथा बदायूं के हाकिम और अलाउद्दीन के भानजे अमीर उमर तथा मंगू खां के विद्रोह, हाजी मौला के विद्रोह को तथा कुचक्री अमीरों के षड़यंत्रों को एवं विद्रोही हिन्दुओं को नृशंसतापूर्वक दमन किया। सेना के आतंक से ही वह देश में शांति व्यवस्था स्थापित कर सका।

(६) जन्मजात योद्धा और सैन्य संचालक के गुण होने के साथ-साथ अलाउद्दीन में एक सफल शासक के पर्याप्त गुण भी थे। उसने सुदृढ़ और सुव्यवस्थित शासन-व्यवस्था का निर्माण किया। उसने अनेक सुधार किये, जैसे राजस्व के सुधार, भूमि की पैमाइश और भूमि कर का निर्धारण, दैनिक जीवन की विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों का निर्धारण,खाद्यान्न की उपलब्धि, क्रय-विक्रय व्यवस्था और वितरण की व्यवस्था, वस्त्र बाजार और दास-दासियों व पशुओंके बाजार तथा अन्य बाजार का निर्माण और उनका नियंत्रण, बाजार के विभिन्न अधिकारी, और उनके अधिकार कठोर दंड व्यवस्था.जुलूसों, समारोहों और मद्यपान का निषेध, आदि। पूर्व मध्ययुग में अलाउद्दीन के पहिले इस प्रकार के सुधार करने और प्रशासन को चुस्त और सक्षम बनाने वाला सुलतान नहीं हुआ। उसने एक निश्चित आर्थिक नीति अपनाई। इस नीति और सुधार योजनाओं

को कार्यान्वित करने में उसने अपूर्व साहस, दृढ़ संकल्प, अशिक्षित होने पर भी मौलिक चिन्तन शक्ति, अद्भुत सूझ-बूझ और व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचय दिया।

परन्तु इन शासन सुधारों का मूल आधार अलाउद्दीन की स्वार्थ सिद्धि, उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति और सामयिक राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति था। उसके शासन का प्रमुख उद्देश्य सुलतान की शक्ति को अत्यधिक निरंकुश और सुदृढ़ बनाना था। प्रांतीय हाकिमों और अधिकारियों की शक्ति क्षीण करके केंद्रीय शक्तिको दृढ़ करना था और स्वेच्छाचारितापूर्वक शासन करना था। उसके प्रशासन और सत्ताकी आस्था सैनिक शक्ति थी। अलाउद्दीन का मूल उद्देश्य जनता का कल्याण लोक मंगल नहीं था। उसने जो सुदृढ़ राज्य व्यवस्था स्थापित की थी, वह सब सैन्य शक्ति के बल पर किया था। शक्ति के अतिरिक्त उसे किसी व्यक्ति पर विश्वास नहीं था। उसने जितने भी सुधार किए और तत्संबंधी आदेशों को मानने के लिए जनता को बाध्य किया, उन सबके मूल में सैन्य-शक्ति थी। सेना के अभाव में वह इन सुधारों और अपनी विजयों को मूर्त रूप नहीं दे सकता था। उसने जितनी भी सफलता प्राप्त की वह सब सेना के बल पर ही की। सेना का हित उसका हित था। सेना के हितों के लिये वह कृषकों, व्यापारियों, अमीरों तथा अन्य सभी के हितों का बलिदान कर सकता था। श्रेष्ठ शासन और राज्य-व्यवस्था के स्थायित्व का आधार भय और आतंक नहीं होता, अपितु जनता की सहानुभूति सद्इच्छा, सहयोग, श्रद्धा और भक्ति होता है। अलाउद्दीन की राज्य-व्यवस्था में इन तत्वों का अभाव था उसकी शासन-व्यवस्था अन्याय, अत्याचार, अनाचार, रक्त और तलवार पर आधारित थी। इससे वह कभी स्थायी नहीं हो सकती थी। जिस शासन का लक्ष्य शासक को निरंकुश व स्वेच्छाचारी बनाते हुए सर्व शक्ति सम्पन्न बनाना होता है, वह शासन बहुत समय तक नहीं चल सकता। अलाउद्दीन का शासन भी ऐसा ही था, अतएव काल के थपेड़ों से उसका अस्त-व्यस्त हो जाना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त जिन साधनों की सहायता से उसने ऐसे निरंकुश सैनिक शासन की स्थापना की थी, वे साधन उसके शासन काल के अन्तिम चरण में ही क्षीण हो गये थे।

उसके सैनिक शासन से हिन्दू अत्यधिक रुष्ट हो गये थे, अमीर और मलिक उसके विरुद्ध विद्रोह करने की प्रतीक्षा में थे, उसके सुधारों और कठोर दण्ड नीति ने सभी वर्ग के लोगों को जर्जरित कर दिया था, गुप्तचर व्यवस्था से जो सैनिक शक्ति का एक प्रमुख आधार थी, लोगों पर अविश्वास की भावना अधिक बढ़ गई थी। अलाउद्दीन में संदेहात्मक प्रवृत्ति बढ़ रही थी जिससे वह बड़े-बड़े अमीरों व अधिकारियों की सहानुभूति खो बैठा था। बड़े-बड़े सामन्तों से लेकर साधारण जनता तक उसने जासूस छोड़ रखे थे जिससे सभी लोग भयभीत रहते थे और वे अलाउद्दीन के शासन से मुक्ति के इच्छुक थे। सैनिक और निरंकुश शासन के कारण अलाउद्दीन में वैयक्तिक दोष भी उत्पन्न हो गये थे। उसमें सन्देहशीलता, असहिष्णुता, हिंसात्मक और अनवस्थित प्रवृत्ति बढ़ रही थी जिससे उसके विश्वस्त अधिकारी और कर्मचारी भी दुखी और अप्रसन्न हो गए। इन्हीं उपरोक्त कारणों और सैनिक शक्ति की दुर्बलताओं से अलाउद्दीन के साम्राज्य व सैनिकवाद का अल्पकाल में ही अन्त हो गया।

अलाउद्दीन का राजत्व का आदर्श

सुलतान अलाउद्दीन सत्ता का अपहरण कर राज्य सिंहासन पर बैठा था। इससे उसकी व्यक्तिगत मर्यादा और सम्मान को खूब आघात लगा था। इसलिये अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने और अपनी नीतियों को कार्यान्वित करने के लिये अलाउद्दीन ने बलबन के राजत्व के सिद्धान्त को अपनाया, उसकी पुर्नस्थापना की। इस सिद्धान्त को दैवी अधिकार का सिद्धान्त कहते हैं।

दैवी अधिकार का सिद्धान्त—सुलतान अलाउद्दीन दैवी अधिकार के सिद्धान्त में विश्वास करता था। उसकी दृढ़ धारणा थी कि पृथ्वी पर राजा या सुलतान ईश्वर का प्रतिनिधि है, बुद्धि और विवेक में वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठतर होता है। उसकी आज्ञा ईश्वर की आज्ञा के समान है। सुलतान के प्रताप और शक्ति में वह अटूट विश्वास करता था। इसलिये सुलतान की इच्छा ही कानून होना चाहिये। वह प्रायः इस सिद्धान्त को मानता था कि राजा का कोई सम्बन्धी नहीं होता है और राज्य के समस्त निवासी या जनसाधारण उसके सेवक और आज्ञाकारी प्रजा होते हैं। इसलिये उनका प्रमुख कर्तव्य है कि वे अपने शासक की प्रत्येक आज्ञा का पालन करके अनुशासन बनाये रखें।

निरंकुशता—सुलतान की इच्छा ही कानून है, कानून का सृजनकर्ता वह स्वयं है। इस सिद्धान्त के मानने के कारण,अलाउद्दीन में स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता की वृद्धि हुई। उसके शासन का आधार असीमित निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता थी।

धर्माचार्यों के हस्तक्षेप का विरोध—राजनीति और प्रशासन में सुलतान अलाउद्दीन इस्लाम धर्म के आचार्यों, मुल्लाओं और उलमाओं का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता था। इससे पूर्व के सुलतानों को ये मुल्ला और उलमा सुलतान को परामर्श देकर उसकी नीति का निर्धारण करते थे। पर अलाउद्दीन ने मुल्लाओं उलमाओं और मौलवियों के इस प्रकार के हस्तक्षेप और उनके विशेष अधिकारों का प्रबल विरोध किया। उसने पूर्ववर्ती सुलतानों की परम्पराओं की उपेक्षा करके मुल्ला-मौलवियों को राज्य की नीति-निर्धारण से पृथक कर दिया। वह यह सहन नहीं कर सकता था कि उसके शासन पर उलमाओं व अन्य धर्माधिकारियों का प्रभाव रहे। वह यह मानता था कि इस्लाम धर्म और प्रशासन दो भिन्न विषय हैं। वह यह नहीं चाहता था कि कोई मुल्ला, उलमा, मौलवी या धर्माधिकारी प्रशासन के किसी कार्य में उसे परामर्श दे, कोई कानून बनवाले या किसी प्रकार का धार्मिक दबाव डालकर कोई कार्य करने के लिये उसे बाध्य करे। यदि एक ओर वह उलमाओं के हस्तक्षेप, प्रभाव और नियंत्रण का घोर विरोधी था, तो दूसरी ओर प्रशासन में भी वह अमीरों के प्रभाव को भी सहन नहीं कर सकता था। वह उलमाओं और अमीरों दोनों वर्गों को अपना सेवक बनाकर रखना चाहता था। अमीरों को तो उसने इतना आतंकित कर दिया था कि उनमें इतना साहस ही नहीं रह गया था कि वे उसे परामर्श दे सकें। सुलतान अलाउद्दीन की यह दृढ़ धारणा थी कि शासन संचालन या विधि-निर्माण सुलतान का कर्तव्य है और यह उसकी इच्छा व समय पर अवलम्बित है। पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा निर्दिष्ट विधि निषेधों, एवं धार्मिक नियमों से सुलतान का कोई सम्बन्ध नहीं है।

सुलतान व प्रशासक का कार्य राज्य बन्ध करना है, जबकि "शरा" विद्वानों, काजियों, और मुफ्तियों की वस्तु थी। प्रशासन में वह धर्माधिकारियों द्वारा निर्देशित शासन-व्यवस्था का समर्थक नहीं था। शासन-व्यवस्था में वह अपने आपको ही सर्वोपरि मानता था। प्रशासन और राजनीति में वह जो कुछ भी उचित समझता था, कर लेता था, फिर चाहे वह शरा के अनुसार हो या उसके प्रतिकूल। इस प्रकार उसने धर्म और राजनीति दोनों को पृथक कर दिया। उसके इस सिद्धान्त का अधिक स्पष्टीकरण उसके तथा काजी मुगीस के साथ हुए वार्तालाप से प्रगट हो जाता है। अलाउद्दीन ने काजी से कहा था कि, "मैंने कोई पुस्तक नहीं पढ़ी है, और न शिक्षित हूँ, किन्तु कई पीढ़ियों से मुसलमान हूँ तथा मुसलमान का पुत्र हूँ। विद्रोह का दमन करने के लिये (कारण कि विद्रोह में सहस्त्रों व्यक्ति मारे जाते हैं) जो कुछ भी राज्य के हित में एवं प्रजाजन के लिये कल्याणकारी समझता हूँ, वही आदेश लोगों को देता हूँ। लोग विवेकहीन विरोध तथा उदंडतासूचक षड़यन्त्र रचते हैं, मेरी आज्ञाओं का पालन नहीं करते, तो मैं इसके लिये बाध्य हो जाता हूँ कि समय की आवश्यकता के अनुकूल, उन्हें आज्ञाकारी बनाने के लिये कठोर से कठोर दण्ड दिये जाने का आदेश दूँ।...... मैं नहीं जानता कि यह वैध है अथवा अवैध, राज्य के हित में जो भी मुझे ठीक एवं उचित जान पड़ता है, अथवा आपत्तिकाल में मुझे देश के लिये जो उचित और अनुकूल जान पड़ता है, मैं उन्हीं की आज्ञा देता हूँ.........कयामत के दिन इसका क्या होगा या इसके लिये ईश्वर मुझे क्या दंड देगा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं।"

अलाउद्दीन के इस कथन से स्पष्ट है कि वह राज्य पर से धर्म का नियन्त्रण समाप्त कर देना चाहता था और स्वयं एक निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक बनने का महत्वाकांक्षी था। निरंकुश शासक के रूप में अलाउद्दीन उन्हीं आज्ञाओं और अधिनियमों को प्रसारित करता था, जो उसकी स्वार्थसिद्धि में सहायक हों, राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करें और जिन्हें वह राज्य के लिये हित कर और परिस्थिति के अनुकूल समझता था। सल्तनत युग में राजत्व का ऐसा सिद्धान्त एक नवीनता थी। यह सिद्धान्त समय की आवश्यकताओं और मांगों की पूर्ति का फल था। जनसाधारण ने इस नवीन सिद्धान्त को शीघ्र ही स्वीकार कर लिया और उन्होंने धर्माधिकारियों और उलमाओं की ओर से अपना ध्यान खींच लिया। अब लोगों ने सुलतान की आज्ञाओं और अधिनियमों का पालन करना शुरू कर दिया था, क्योंकि अब उन्हें सुख, शान्ति की सांस लेने का अवसर प्राप्त हुआ था जिसकी प्रतीक्षा वे दीर्घकाल से कर रहे थे।

खलीफा से सम्बन्ध—तत्कालीन इस्लामी जगत में खलीफा सर्वोच्च नरेश और धार्मिक नेता होता था। इस्लामी जगत के सभी शासक उसके अधीन माने जाते थे। वे प्रायः अपने राज्यों और अधिकारों के लिये खलीफा की स्वीकृति प्राप्त कर लेते थे। पर अलाउद्दीन ने इस प्रकार से स्वीकृति प्राप्त करने के लिये खलीफा से कभी भी प्रार्थना नहीं की, फिर भी वह अपने आपको खलीफा के अधीन नायब ही समझता रहा। यद्यपि अलाउद्दीन एक सम्पन्न और विस्तृत विशाल राज्य का नरेश था, परन्तु फिर भी वह मुस्लिम जगत के अधिष्ठाता खलिफा को, जो उस समय शक्ति विहीन

और श्रीहत् हो गया था, अपना स्वामी समझता था। ऐसा करने में अलाउद्दीन का उद्देश्य खलीफा के प्रति राजनैतिक और धार्मिक प्रमुख के रूप में सम्मान और श्रद्धा प्रदर्शित करना नहीं था, अपितु अलाउद्दीन तो सैद्धान्तिक दृष्टि से खलीफा का नाम प्रतिष्ठित और जीवित रखना चाहता था। उसने परम्पराओं का निर्वाह किया। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर अलाउद्दीन ने अपने आपको "यामीन-उल-खिलाफत नासिर-ए-अमीर-उलमौमिनिन" की उपाधि से विभूषित कर लिया था।

इस्लाम धर्म का अनुयायी—यद्यपि अलाउद्दीन धर्माधिकारियों के हस्तक्षेप का विरोधी था और उल्मा वर्ग को उसने प्रशासन और राजनीति से पृथक कर अपने नियन्त्रण में रखा, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अलाउद्दीन को इस्लाम धर्म में आस्था नहीं थी। वह पक्का मुसलमान था। उसने अपने शासनकाल में इस्लाम धर्म को प्रसारित करने के अनेक कार्य किये, हिन्दुओं का दमन किया और अनेकों को इस्लाम अपनाने के लिये प्रेरित या बाध्य किया. मंगोलों ने तथा अनेक हिन्दुओं ने प्रलोभन और परिस्थितिवश इस्लाम ग्रहण कर लिया। अलाउद्दीन ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जो कि सामान्य रूप से इस्लाम धर्म और कुरान की शरा के विरुद्ध हो अथवा उन इस्लामी परम्पराओं के विपरीत हो जिनका पालन उसके पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों ने किया था। मुस्लिम परम्पराओं और इस्लामी कानूनों में कभी भी उसकी आस्था कम नहीं हुई। देश में हिन्दू नरेशों और हिन्दू जनता के विरुद्ध हुए युद्धों आक्रमणों और लूट में उसने मुसलमानों की धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता का खूब लाभ उठाया। उसने मुसलमानों को इनके विरुद्ध अवसर आने पर जिहाद (धर्म युद्ध) के लिये प्रोत्साहित किया। जब कभी उसे मुस्लिम जनमत का समर्थन प्राप्त करने की अथवा मुस्लिम सैनिकों के सहयोग और सहायता की आवश्यकता होती थी, तब वह उनकी धार्मिक भावनाओं को और साम्प्रदायिक प्रवृत्ति को खूब उभार देता था, उन्हें अत्यधिक उत्तेजित कर देता था। वास्तव में अलाउद्दीन अपने व्यक्तिगत जीवन में और सुलतान के रूप में उतना ही श्रेष्ठ इस्लाम का अनुयायी बना रहा जितना कि पूर्व मध्य युग में दिल्ली के सिंहासन को सुशोभित करने वाले अन्य मुस्लिम शासक। अलाउद्दीन के इन कार्यों और सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप भारत के बाहर उसको इस्लाम धर्म का संरक्षक माना जाता था। वासफ ने उसे "मुजतहिद-दीनदार" कहा है। अमीर खुसरो ने भी उसे इस्लाम धर्म का पोषक और रक्षक माना है।

क्या अलाउद्दीन असाम्प्रदायिक था और क्या उसका राज्य धर्मनिरपेक्ष था ?

अलाउद्दीन ने धर्माधिकारियों और उल्माओं को अपने प्रशासन, नीति-निर्धारण और राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करने दिया और न उसने इस्लामी जगत के सर्वोच्च राजनैतिक और धार्मिक नेता खलीफा से अपने राज्य को स्वीकृत करवा कर उससे कोई प्रमाण-पत्र ही लिया। इसलिये कुछ इतिहासकारों ने कहा कि उसकी राजनीति असाम्प्रदायिक थी और उसका शासन व राज्य धर्म-निरपेक्ष था। यह मत भ्रममूलक है।

जैसा ऊपर वर्णित है वह इस्लाम धर्म का अनुयायी था और उसने कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया जो इस्लाम के विपरीत हो। उल्माओं का राजनीति व प्रशासन में विरोध करने का अर्थ यह नहीं है कि सुलतान अलाउद्दीन असाम्प्रदायिक और धर्म-निरपेक्ष हो गया था। उसका राज्य इस्लामी राज्य ही रहा और भारतमें और भारत की सीमाओं के पार वह इस्लाम का संरक्षक और पोषक ही माना जाता रहा। वह कभी किसी को इस्लाम के विरुद्ध या अधार्मिक बात नहीं कहने देता था और न सुनने देता था। वह इस्लाम धर्म का उतना ही कट्टर अनुयायी था जितने कि दिल्ली के अन्य सुलतान थे।

अलाउद्दीन में धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का सर्वथा अभाव था। यद्यपि उसकी प्रजा का बहुसंख्यक भाग हिन्दू था; पर वह अपने आपको हिन्दुओं का प्रजा-पालक शासक मानने की अपेक्षा धार्मिक विभेद के कारण उन्हें वह अपना शत्रु समझता था। उसने अपने आपको हिन्दुओं का शासक और संरक्षक कभी नही समझा तथा उनके कल्याण की ओर भी उसने ध्यान नहीं दिया। यह कहना भ्रममूलक है कि हिन्दुओं के प्रति उसकी दमन नीति क्षणिक आवेश का परिणाम थी। सत्य तो यह है कि उसकी हिन्दू नीति उसकी निश्चित राजनैतिक और धार्मिक विचारधारा का एक अंग थी। सल्तनत में हिन्दुओं की क्या स्थिति होना चाहिये और उनके साथ किस प्रकार का और क्यों ऐसा दुर्व्यवहार करना चाहिये—इस विषय में उसने बयाना के काजी मुगीसुद्दीन से परामर्श लिया था। काजी ने उसे निम्नलिखित नीति अपनाने का परामर्श दिया।

काजी ने उसे कहा था, "शरा में हिन्दुओं को खराजगुजर (कर देने वाला) कहा गया है। जब कोई राजस्व विभाग का अधिकारी उनसे चांदी मांगे तो उनका कर्तव्य है कि बिना पूछ-ताछ के बड़ी नम्रता के साथ वे उसे सोना दें। यदि अधि-कारी उनके मुँह में थूकें तो उसे लेने के लिये बिना हिचकिचाहट के उन्हें अपना मुँह खोल देना चाहिये। इस प्रकार के अपमानजनक कार्यो से जिम्मी इस्लाम के प्रति अपनी आज्ञापालन की भावना का प्रदर्शन करता है और इससे धर्म का यश बढ़ता है। ईश्वर ने उन्हें स्वयं अपमानित करने की आज्ञा दी है।.........पैगम्बर ने हमें उनका वध करने, उन्हें लूटने तथा बंदी बनाने का आदेश दिया है। महान ईमाम अबू हनीफा जैसे अधिकारी ने जिसके धर्म का हम अनुसरण करते हैं, हिन्दुओं पर जजिया कर लगाने की अनुमति दी है।" अन्य इस्लामी धर्माचार्यों के मतानुसार हिन्दुओं के लिये केवल दो ही मार्ग हैं, प्रथम मृत्यु का आलिंगन और द्वितीय इस्लाम अंगीकार करना—इन दोनों में से वह एक मार्ग अपना लेवे। अलाउद्दीन ने काजी मुगीसुद्दीन के परामर्श का हृदय से स्वागत किया और अपनी राज्य की बहुसंख्यक प्रजा के प्रति जो हिन्दू थी, इसी दमन नीति का अनुकरण किया।

फलतः उसने हिन्दुओं और हिन्दू राज्यों के विरुद्ध धर्म युद्ध किये और उन्हें खूब लूटा, हिन्दुओं की धन संपत्ति का अपहरण किया, उन पर जजिया कर लगाया और निर्ममता से उसे वसूल भी किया। हिन्दुओं के प्रति उसने कठोर दमनीय नीति का अनुकरण किया। हिन्दु अधिकारियों जैसे खूत, मुकद्दम, चौधरी आदि को अत्यंत ही कठोर दंड

दिये और हिन्दुओं को इतना अधिक दरिद्र बना दिया था कि उनके गृहों में स्वर्ण, चांदी, जीतल या टंक या आभूषण का कोई चिह्न ही दृष्टिगोचर नहीं होता था। उनकी विपिन्नता इतनी अधिक भयंकर थी कि उनकी महिलाओं को मुस्लिम परिवारों में जीवन निर्वाह के लिये सेविकाओं का कार्य करना पड़ता था। यह माना कि हिन्दुओं के विरुद्ध इस प्रकार की दमन नीति का एक उद्देश्य राजनैतिक था, परन्तु साथ ही उसका यह अर्थ नहीं है कि उसने अपने राज्य में हिन्दुओं को धार्मिक स्वतंत्रता दी थी और सामाजिक व राजनीतिक अधिकार प्रदान किये थे। सत्य तो यह है कि अलाउद्दीन ने हिन्दुओं और विधर्मी मंगोलों के लिये जिन्होंने बाद में इस्लाम ग्रहण कर लिया था, जनकल्याण के कोई भी कार्य नहीं किये, जनहित की भावना का उसमें अभाव था। अलाउद्दीन के ऐसे शासन को धर्म निरपेक्ष या असाम्प्रदायिक कहना, धर्म निरपेक्ष राज्य के मौलिकतत्व और उसकी आत्मा का ही अंत कर देना है।

असीम शक्ति और स्वेच्छाचारिता—अलाउद्दीन सुलतान की असीम शक्ति और उसकी स्वेच्छाचारिता में विश्वास करता था। वह एक दृढ़ स्वेच्छाचारी और निरंकुश सुलतान था। फ्रांस के राजा लुई चौदहवें के समान अलाउद्दीन भी राज्य की शक्ति-विभाजन का विरोधी था। लुई का कथन कि "मैं ही राज्य हूँ" (I am the State) सुलतान अलाउद्दीन के लिये भी लागू होता है। राज्य का सर्वेसर्वा वही था। उसकी इच्छा और आदेश ही राज्य के कानून थे। वह यह नहीं चाहता था कि उसकी सर्वोच्च स्वेच्छाचारिता को कोई भी सर्व शक्तिमान बनकर चुनौती दे और उसकी असीम अनियंत्रित शक्ति व अधिकारों का विभाजन किसी भी रूप में हो। उसका विरोध करने और उसकी शक्ति को चुनौती देने वाले अमीरों, अधिकारियों और षड़यंत्रकारियों को उसने कठोरता, और बर्बरता से, कूटनीति और छल-कपट से दंडित किया। उसकी यह दृढ़ धारणा थी कि वह स्वेच्छापूर्वक शासन संचालन करने में और नीति-निर्धारण करने में स्वतंत्र है। राज्य व्यवस्था और प्रजा संबंधी कार्यों में जो वह उचित समझता था, करता था। वह वजीरों, अधिकारियों, मुल्ला-मौलवियों, मुफ्तियों और काजियों के दबाव और हस्तक्षेप से अपने आपको और अपने शासन को दूर रखना चाहता था, अपनी राजनीति को उनसे विमुक्त रखना चाहता था। अलाउद्दीन का यह दृढ़ विश्वास था कि "राज्य-व्यवस्था और कानून प्रथक्-प्रथक् हैं। दोनों एक दूसरे से विभिन्न हैं और जिस समय तक उसको अपने आदेश और आज्ञाएँ उचित प्रतीत होती थीं, उनके संबंध में वह यह जानने का प्रयत्न नहीं करना चाहता था कि वे न्यायोचित हैं अथवा नहीं।" इससे विदित होता है कि वह जो कुछ भी परिस्थितियों के अनुकूल और उचित मानता था और राज्य के लिये मंगलकारी समझता था, करता था। समस्त शक्ति व अधिकार उसके हाथों में केन्द्रीभूत थे। उसमें स्वेच्छाचारी शासक के सभी गुण विद्यमान थे। वह अपनी स्वेच्छाचारिता के मार्ग में कोई भी रुकावट या बाधा, विघ्न सहन नहीं कर सकता था।

अमीरों का दमन और सुदृढ़ सुव्यवस्थित शासन तंत्र—अलाउद्दीन को यह श्रेय है कि उसने इंग्लैंड के राजा हेनरी सप्तम के समान विघटनकारी प्रवृतियों के पोषक अमीरों, और विद्रोहियों का नृशंसता से दमन करके, षड़यंत्रकारियों का विनाश करके

एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित शासन तंत्र स्थापित किया। अलाउद्दीन ने शक्तिशाली विद्रोही अमीरों और मलिकों का उन्मूलन करने व उनके प्रभाव को समूल नष्ट करने के लिये, उनकी सम्पत्ति जब्त करली, अनेकों की आँखें निकलवा करके बन्दीगृह में डाल दिया और कुछ को विष देकर मरवा डाला। उसने अमीरों की शक्ति को इतना बढ़ने ही नहीं दिया कि वे राज्य में महत्वपूर्ण प्रभावशाली शक्ति बन जाय और उसकी राजसत्ता को चुनौती दें। जब किसी अमीर का प्रभाव और शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती थी तो वह कठोर निर्मम दंडनीति व कूटनीति से उसका शीघ्र ही अंत कर देता था। अलाउद्दीन की नृशंस दमन नीति के कारण मलिक और अमीर झुलसे हुए सर्प के समान हो गये थे। वे उसके भय से इतने अधिक आतंकित थे, कि वे उसके समुख बोलने तक का साहस नहीं करते थे। अलाउद्दीन इन अमीरों को अपना दास समझता था जिनका प्रमुख कर्तव्य सुलतान के आदेशों का अनवरत रूप से बिना किसी हिचक के पालन करना था। अमीरों के इस प्रकार के दमन से उनकी संपत्ति का अपहरण करने से राजकोष को लगभग एक करोड़ की धन संपदा प्राप्त हुई और शासन दृढ़ और सुव्यवस्थित हो गया। परन्तु इस दमन का दुष्परिणाम यह हुआ कि असैनिक प्रशासन जिसमें अमीरों और अधिकारियों का अधिक योग रहता है, उपेक्षित हो गया। अमीरों, मलिकों और अधिकारियों के अधिकारों और कर्तव्यों की अवहेलना की गई, उनकी श्रद्धा, सम्मान और स्वामिभक्ति की परम्पराओं की उपेक्षा की गई। इससे नागरिक प्रशासन अधिक प्रभावित हुआ और सैनिक शासन तंत्र की खूब वृद्धि हुई, जिससे देहली सल्तनत का मूल आधार ही अस्थायी और शिथिल हो गया।

अलाउद्दीन के राजत्व के सिद्धान्त का महत्व—अलाउद्दीन ने अपने राजत्व संबंधी सिद्धान्तों को प्रशासकीय, राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में पूर्णतया प्रचलित किया और ऐसे कानूनों का निर्माण किया जिन्हें वह परिस्थिति के अनुकूल व राज्य के हित के लिये आवश्यक समझता था। "साध्य से साधन का औचित्य सिद्ध होता है"—इस सिद्धान्त में विश्वास करके उसने इसे कार्यान्वित किया। उचित तथा अनुचित उपायों से अपने लक्ष्य को प्राप्त करना—यही उद्देश्य उसके समक्ष था। पूर्व मध्यकालीन राजत्व के क्षेत्र में अलाउद्दीन ने दो प्रमुख तत्व प्रदान किये प्रथम, उसने यह स्पष्ट कर दिया कि राजत्व किसी वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं है। कोई भी सशक्त, प्रतिभा सम्पन्न, सुयोग्य व्यक्ति राजत्व ग्रहण कर सकता है। द्वितीय, सुलतान अलाउद्दीन ने यह प्रमाणित कर दिया कि राजत्व बिना किसी धर्म विशेष की सहायता व सहयोग के भी सफलता से अपना अस्तित्व रख सकता है। सुलतान और उल्माओं तथा धर्माचार्यों के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर भी रह सकता है।

अलाउद्दीन का शासन प्रबंध

अलाउद्दीन के शासन का स्वरूप—अलाउद्दीन निरकुंश स्वेच्छाचारी सुलतान था। वह सुलतान की असीम अनियंत्रित राज सत्ता में विश्वास करता था, राज्य का सर्वोच्च अधिकारी वही था। राज्य के सभी अधिकार और सत्ता उसमें निहित थे। समस्त शक्तियाँ उसके हाथों में केन्द्रीभूत थीं। वह सभी प्रशासकीय विभागों का अध्यक्ष था। राज्य के न्याय विभाग तथा अन्य विभागों का सर्वाधिकार उसके हाथों

में सुरक्षित था। सैन्य शक्ति उसके राज्य का मूल आधार था। इससे वह इतना निरंकुश और सैनिक तानाशाह बन गया था कि उसके समान आधुनिक युग में कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह "एक असीमित रूप से स्वेच्छाचारी शासक था जो किसी भी कानून या अधिनियम से बंधा हुआ नहीं था, किसी भी भौतिक प्रतिबंध के अधीन नहीं था और अपने सिवाय किसी का भी मार्गदर्शन स्वीकार नहीं करता था।" उसकी प्रजा के पास उसने कोई अधिकार नहीं दिये थे, उनके पास केवल कर्तव्य थे और लोग केवल उसके आदेशों और आज्ञाओं का पालन करने के लिये जीवित रहते थे। वह प्रतिभाशाली, कठोर और दृढ़ शासक था, परन्तु वह सिद्धान्त विहीन होने पर भी राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ के गुणों से परिपूर्ण था। उसमें प्रशासकीय सृजनात्मक वृत्ति थी। उसने अपने व्यक्तिगत और राज्य के लाभार्थ नवीन शासन संस्थाओं का निर्माण किया तथा विभिन्न प्रकार के शासन सुधार किये।

केन्द्रीय शासन

सुलतान और मंत्रि-परिषद्—सुलतान राज्य का सर्वोच्च शासक और अधिकारी था। वह सेना का महासेनापति और सर्वोच्च न्यायिक तथा कार्यकारिणी शक्ति था। शासन संचालन में सहायता और सहयोग के लिये एक मंत्रि-परिषद् थी। परिषद् के मंत्रियों को प्रशासकीय विभाग सौंप रखे थे। इन मंत्रियों के परामर्श को स्वीकार या अस्वीकार करना सुलतान की स्वेच्छा पर निर्भर था। अलाउद्दीन का समस्त केन्द्रीय और प्रांतीय शासन सैनिक शक्ति पर निर्भर था, इसलिये उसने सैन्य संचालन का समस्त कार्य स्वयं अपने हाथों में ले लिया था। प्रधान सेनापति और प्रधान मंत्री भी वह स्वयं ही था। युद्ध के समय वह अपने किसी विश्वासपात्र अनुभवी सेनानायक को सेनापति नियुक्त करता था। मंत्रियों व सेनापति के पदों पर अलाउद्दीन अपने विश्वासपात्र, सुयोग्य, अनुभवी व्यक्ति ही नियुक्त करता था। ये पद उसने वंशानुगत नहीं किये थे और न उन पर किसी वर्ग विशेष का ही अधिकार था। मंत्रियों की नियुक्ति स्वयं सुलतान करता था, वही उन्हें पदच्युत भी कर सकता था। और वे उसके प्रति ही उत्तरदायी रहते थे। इनके कार्य की अवधि स्वयं सुलतान की इच्छा पर निर्भर रहती थी। समय आने पर या विशिष्ट आवश्यकता पड़ने पर अलाउद्दीन अपने प्रशासकीय, असैनिक मंत्रियों को सैनिक कार्यों को करने के आदेश भी दे देता था। उसके केन्द्रीय शासन के प्रमुख विभाग और उसके अधिकारी निम्नलिखित थे।

दीवान-ए-वजारत—सुलतान के प्रमुख वजीर या मंत्री के कार्यालय और विभाग को दीवान-ए-वजारत कहते थे। वजीर सुलतान का प्रधान मंत्री माना जाता था और इसी रूप में वह सुलतान को विभिन्न विषयों में परामर्श प्रदान करता था। सुलतान का प्रमुख परामर्शदाता होने के कारण वह राजस्व विभाग का प्रमुख या अध्यक्ष भी होता था। सर्वोच्च अधिकारी और सुलतान का प्रमुख परामर्शदाता होने से उसे अन्य प्रशासकीय विभागों का निरीक्षण और परीक्षण करने का अधिकार भी था। कृषि, भवन, धार्मिक व दान की संस्थाएँ, गुप्तचर विभाग, कारखाने, टकसाल

आदि विभाग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में दीवान-ए-वजारत के अन्तर्गत माने जाते थे। वजीर का मुख्य कार्य खालसा भूमि से राजस्व और अधीनस्थ राजाओं से कर एकत्र करना, प्रांतपतियों के लेखे-जोखे का निरीक्षण करना, और प्रांतों से बचत का राजस्व भी वसूल करना था। इन सब के लिये वह सुलतान के प्रति उत्तरदायी था। यद्यपि वजीर का मुख्य विभाग वित्त था, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर और युद्धकाल में वह सेनापति भी नियुक्त किया जाता था। शाही सेनाओं का वह नेतृत्व करता था और दूसरे राज्यों पर सैनिक अभियान ले जाता था। इसलिये वजीर प्रायः सैनिक और योद्धा होता था। प्रशासन में उसकी सहायता और सहयोग के लिये अनेक विभिन्न अधिकारी और कर्मचारीगण थे, जैसे मुशरिफ-ए-ममालिक (महालेखा पाल, Accountant General), मुस्तौफी-ए-ममालिक (महालेखा निरीक्षक, Auditor General), वकूफ (व्यय-पदों का निरीक्षक), आमिल, कानकून, मुतसर्रिफ, आदि। अंतिम तीन कर्मचारी लिपिक वर्ग के थे।

दीवान-ए-अर्ज—अलाउद्दीन के राज्य और प्रशासन का आधार सैन्य शक्ति था। इसलिये सेना और युद्ध के विभाग का बड़ा महत्व था। इस विभाग का नाम दीवान-ए-अर्ज था और इसका सर्वोच्च अधिकारी आरिज-ए-मुमालिक या युद्ध मंत्री था। उसके लिये यह आवश्यक नहीं था कि वह युद्ध और सैनिक अभियान के समय महा सेनापति का पद ग्रहण करे। परन्तु ऐसे समय या तो वह स्वयं या उसका अधीनस्थ उपसर्वोच्च अधिकारी, नायब आरिज-ए-मुमालिक, सेना के साथ जाता था। नायब आरिज-ए-मुमालिक और उसके अधीनस्थ अधिकारी बख्शी-ए-फौज रण-क्षेत्र में प्रांत-पतियों द्वारा भेजी गई सेना को लेना, सैनिकों की साज-सज्जा, अस्त्र-शस्त्र, और उनकी सामान्य स्फूर्ति का निरीक्षण करना, सैनिकों और सैन्य अधिकारियों का वेतन वितरित करना, रसद और यातायात का प्रबंध करना, युद्ध की लूट के माल और संपत्ति की देख-रेख करना, आदि कार्य था। राज्य की सेना का समस्त प्रबंध दीवान-ए-अर्ज के द्वारा होता था। सैनिकों की भरती करना, उनके हुलिये के विवरण रखना, सेना के प्रशिक्षण, निरीक्षण, व खाद्य-सामग्री की व्यवस्था करना, लूट के माल को संभालना और उसके वितरण की व्यवस्था करना, अश्वों और उनकी देख-भाल करना, आदि कार्य दीवान-ए-अर्ज द्वारा संपादित होते थे। फलतः इस विभाग में बहुसंख्यक अधिकारी और कर्मचारीगण थे।

दीवान-ए-इंशा—सुलतान और प्रशासन के समस्त पत्र-व्यवहार इस विभाग के द्वारा होते थे। इस विभाग को प्रमुख अधिकारी या मंत्री दवीर-ए-खाम होता था। उसका कार्य सुलतान की उद्घोषणाओं और पत्रों का प्रारूप बनाना, प्रांतपतियों और स्थानीय अधिकारियों से शाही पत्र व्यवहार करना और सरकारी कार्यों व बातों का लेखा-जोखा रखना था। दबीर-ए-खास सुलतान के पत्र-व्यवहार का कार्य देखता था। इसके अतिरिक्त इस विभाग के दवीर-ए-मुमलिकात, और साहिब-ए-दीवान-ए-इंशा नामक अन्य अधिकारी भी होते थे।

दीवान-ए-रसल—यह विभाग विदेशी और कूटनीति के मामलों के लिये था। यह आधुनिक विदेश मंत्रालय के समान था। यह विभाग पड़ोसी दरबारों को भेजे

जाने वाले पत्रों का प्रारूप तैयार करता, विदेशों को भेजे गये व विदेशों से आये हुए राजदूतों व राज प्रतिनिधियों का स्वागत करता और उनसे निकट संपर्क साधता था, और उनकी देखभाल की व्यवस्था करता था। इस विभाग का अध्यक्ष या सर्वोच्च अधिकारी दीवान-ए-रसालत कहा जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सुलतान अलाउद्दीन खिलजी स्वयं इस विभाग का कार्य देखता था।

दीवान-ए-रियासत—अलाउद्दीन के मूल्य निर्धारण, बाजार नियन्त्रण संबंधी कार्यों की देख-भाल, निरीक्षण, व्यापारी वर्ग पर कठोर नियन्त्रण आदि इस विभाग द्वारा होते थे। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार इस मन्त्रालय द्वारा कार्यान्वित होते थे। इसके अध्यक्ष या मन्त्री के अधीन बाजार के अधीक्षक (शहना-ए-मन्त्री), बरीद और मुनाहियान नामक अधिकारी होते थे।

पदाधिकारी, कर्मचारीगण और निरीक्षण कार्य—ऊपर वर्णित विभागों और उनके अध्यक्षों के अतिरिक्त शासन संचालन के लिए विभिन्न अधिकारी और कर्मचारीगण भी होते थे। ये विभिन्न विभागों में कार्य करते थे। इन समस्त विभागों का निरीक्षण स्वयं सुलतान करता था। वह उनके अध्यक्षों और अधिकारियों को नियुक्त करता था तथा विभागों के कार्यों की देख-भाल भी करता था।

सुलतान के राजभवन के अधिकारीगण—सुलतान के राजप्रासाद और गृहस्थी के लिए भी विस्तृत प्रशासन था, जिनमें भी अनेक अधिकारी और कर्मचारीगण थे। इनमें **वकील-ए-दर** (राजप्रासाद के द्वारों की कुन्जियों का रक्षक) सबसे अधिक महत्वशाली अधिकारी था। उसके अधीन राजभवन का रसोई घर, शाही वस्त्रागार, शाही पशु शालाएँ आदि थे। वह सुलतान की गृहस्थी की व्यवस्था करता था, राजप्रासाद के बालक-बालिकाओं की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करता था तथा राजभवन के कर्मचारियों का वेतन वितरित करता था। वकील-ए-दर का सहायक उप अधिकारी, नायब वकील-ए-दर होता था।

अमीर-ए-हाजिब (उत्सव अधिकारी)—दूसरा महत्वपूर्ण अधिकारी था। उसका कार्य था—राजसभा के शिष्टाचारों का पालन करवाना, राजकीय उत्सवों व समारोहों की व्यवस्था करना तथा कर्मचारियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए सुलतान की सहायता और मध्यस्थता करना। उसकी सहायता के लिये अनेक हाजिब और एक नायब होते थे। सुलतान के अंगरक्षकों(जांदार) का अधिकारी **(सर जांदार)** कहा जाता था। अंगरक्षक नंगी तलवार लिए सुलतान के आसपास उसकी सुरक्षा के लिये विद्यमान रहते थे। राजभवन के अन्य उल्लेखनीय अधिकारियों में **अमीर-ए-अखूर** (अश्वाधिपति), **अमीर-ए-शिकार** (शाही आखेट का अधिक्षक), **शहना-ए-पीलां** (हाथियों का अधिकारी), **सर सिलाहदार** (शाही शस्त्र रक्षक), **मुहरदार** (शाही मुद्रा रक्षक), **शराबदार** (सुलतान के पेयों का प्रभारी), **सर चाशनीगीर** (रसोई घर का प्रभारी) आदि प्रमुख थे।

न्याय व्यवस्था—कहा जाता है कि सुलतान अलाउद्दीन न्यायप्रिय शासक था। बलबन के समान वह भी न्याय प्रशासन में कठोर और अविचलित था। सल्तनत में सुलतान न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था। प्रत्येक व्यक्ति न्याय की मांग करने

और न्याय प्राप्त करने के लिए सुलतान के पास जा सकता था। सुलतान राजदरबार में मुकदमे और अपील सुनता था और समस्त दरबारियों के सम्मुख अपना निर्णय सुनाता था। सुलतान के नीचे न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी सदर-ए-जहाँ काजी उल-कुजात था। वह सर्वोच्च न्यायाधीश था। उसके नीचे नायब काजी या अदल नायक न्यायाधीश थे जिनकी सहायता के लिये मुफ्ती थे। मुफ्ती न्यायालयों में कानून की व्याख्या करते, उसे समझाते और उलझे हुए मुकदमों में अपना मत देते थे। राजधानी दिल्ली का अलग न्यायाधीश (हजरत) था जो अमीर-ए-दादबेग-ए-हजारत कहलाता था। उसका कार्य था—ऐसे किसी महत्वशाली व प्रभावशाली व्यक्ति को राजसभा में प्रस्तुत करना जिसके विरुद्ध कोई अभियोग हो, मुकदमा चल रहा हो और जो इतना बलशाली हो कि वह काजियों द्वारा नियंत्रित न किया जा सके। प्रान्तों में प्रान्तपति, काजी और अन्य निम्न अधिकारी न्यायदान की व्यवस्था करते थे। इन न्यायाधीशों के अतिरिक्त राजकुमार, सेनानायक और राज्य के अन्य उच्च अधिकारी भी ऐसे मामलों को सुनते और निर्णय देते थे जिनमें कानून के विशेष दक्ष ज्ञान के अनुभव की आवश्यकता नहीं होती थी। न्याय-व्यवस्था सरल थी और लोगों को बिना पेचीदी कार्यवाहियों के त्वरित न्याय प्राप्त हो जाता था। अलाउद्दीन न्यायाधीशों से अच्छा व्यवहार करने की आकांक्षा रखता था। उसने मदिरा पान करने पर एक न्यायाधीश को भी दण्डित किया था।

दण्ड-विधान—अलाउद्दीन की दण्ड-व्यवस्था कठोर और निर्मम थी। शिरोच्छेद, आँखें निकलवा लेना, शरीर के टुकड़े कर देना, अंग-भंग, संपत्ति-अपहरण, कारावास, मृत्युदण्ड आदि सामान्य दण्ड थे। कोड़े मारना तो सर्वाधिक प्रचलित दण्ड था। एक समय एक व्यक्ति को एक हजार कोड़े लगवाये गये। अपराध स्वीकार करने के लिये विभिन्न प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं। कम तौलने वालों के शरीर से मांस काटकर तौल की कमी को पूरा किया जाता था। पर-स्त्री-गमन के लिये पत्थर मार-मार कर मार डालने का दण्ड था। कारावास तो इतने भयानक रहते थे कि अनेक व्यक्ति तो इनमें मर जाते थे और कदाचित कोई जीवित रह गया तो उसका स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो जाता था। फरिश्ता व वर्नी के अनुसार इस कठोर दण्ड व्यवस्था के कारण लूटपाट तथा चोरी का जिनका पहिले बहुत जोर था, देश में नाम भी सुनने को नहीं मिलता था। यात्री और व्यापारी राजमार्गों पर निर्भय होकर आते-जाते थे।

पुलिस और गुप्तचर-व्यवस्था—अलाउद्दीन ने अपनी सैनिक तानाशाही की दृढ़ता के लिये पुलिस और गुप्तचर प्रथा भी मजबूती से संगठित की। कोतवाल पुलिस विभाग का मुख्य अधिकारी था। उसके अधिकार व्यापक थे और वह कानून व शांति का रक्षक था। वह आवश्यकता पड़ने पर महत्वपूर्ण मामलों में सुलतान को परामर्श देता था। जब सुलतान राजधानी से बाहर जाता तो रनवास की सुरक्षा का भार कोतवाल को सौंपा जाता था। अलाउद्दीन ने पुलिस विभाग में कुछ सुधार कर कतिपय नवीन पद निर्मित किये और उन पर दक्ष और योग्य अधिकारियों को नियुक्त किया।

अलाउद्दीन ने स्वेच्छाचारी शासक होने के कारण गुप्तचर विभाग को समुचित ढंग से गठित किया। गुप्तचर विभाग उसकी सैनिक तानाशाही का आधार था। गुप्तचर विभाग का प्रमुख अधिकारी बरीदे-ए-मुमालिक था। उसके आधीन अनेक बरीद और मुन्ही थे जो गांवों, नगरों, बाजारों आदि में नियुक्त थे। इनके अतिरिक्त सूचना दाता भी थे। अमीरों, उच्च पदाधिकारियों प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा मलिकों व सरदारों के कार्यालयों में सर्वत्र गुप्तचरों का जाल-सा बिछा हुआ था। मुन्शी लोगों के निवास गृहों में भी प्रवेश कर सकते थे। गुप्तचरों द्वारा सुलतान को अमीरों, अधिकारियों तथा प्रजा की गतिविधि और कार्यों की विस्तृत सूचना प्राप्त होती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अमीरों में पारस्परिक गुप्त मंत्रणाओं के लिये साहस नहीं रहा। बर्नी ने लिखा है कि "गुप्तचरों के भय से अमीरों ने हजार सितून में जोर से बोलना बन्द कर दिया था और यदि उन्हें कुछ कहना होता तो वे संकेतों द्वारा या फुसफुसाकर विचार प्रकट करते थे। गुप्तचरों की गतिविधियों के कारण वे रातदिन अपने गृहों में कांपते रहते थे। वे न तो ऐसा कोई कार्य करते थे और न ऐसा एक शब्द बोलते थे, जिससे उन्हें कोई भर्त्सना या दण्ड का भागी होना पड़े। गुप्तचर विभाग और उसकी गतिविधियों से लोग आतंकित हो गये थे। फलत: गुप्तचरों के प्रति उनके हृदयों में घृणा और भय के भाव उत्पन्न हो गये थे।"

डाक प्रशासन—अलाउद्दीन ने डाक व्यवस्था भी की थी। उसने चौकियां स्थापित कीं और प्रत्येक चौकी पर अश्वारोही, अधिकारी और लिपिक नियुक्त किये। ये कर्मचारी सुलतान को निरन्तर समाचार और डाक भेजते रहते थे। इस कुशल डाक व्यवस्था के कारण सैनिक अभियानों व विद्रोहों के समय सुलतान को बराबर समाचार प्राप्त होते रहते थे। उचित डाक व्यवस्था के कारण ही उसे हाजी मौला के विद्रोह की सूचना विद्रोह प्रारम्भ होने के तीन दिन में ही प्राप्त हो गयी थी।

प्रांतीय शासन

अलाउद्दीन ने अपने साम्राज्य को विभिन्न प्रांतों में विभाजित कर दिया था। प्रत्येक प्रांत एक वली या मुक्ती या प्रांतपति के अधीन था। वह अपने प्रांत में सुलतान के समान सर्वोच्च अधिकारी था। वह प्रांत की कार्यपालिका और न्यायपालिका का प्रधान होता था। वह दरबार लगाता और न्यायदान करता था। उसके निर्णय के विरुद्ध अपील सुलतान के न्यायालय में तथा काजी-ए-मुमालिक के सम्मुख प्रस्तुत होती थी। प्रांतपति अपने प्रांत का भूमिकर वसूल करता और अपने प्रांत के व्यय की राशि काट कर अवशिष्ट धन शाही कोषागार में भेज देता था। उसके पास जो सेना रहती थी उसकी संख्या केन्द्रीय सरकार निश्चित करती थी और उसका व्यय भी प्रांतीय राजस्व से पूरा किया जाता था। इस सेना का उपयोग वह भूमि कर वसूल करने या विरोधी प्रजा व विद्रोहों के दमनार्थ कर सकता था। युद्ध के समय उसको नियमानुसार सेना की एक निश्चित संख्या सुलतान की सहायता के लिये भेजना पड़ती थी। वह अपने प्रांतीय राजस्व के लिये दीवान-ए-वजारत (वित्त-मंत्रालय) के प्रति उत्तरदायी तथा रहा, जहां नियमित रूप से उसके लेखे-जोखे का

परीक्षण होता था। प्रशासन के कार्यों के लिये वह सुलतान के प्रति उत्तरदायी था। सुलतान ही उसे नियुक्त करता, स्थानान्तरित करता या पदच्युत भी करता था।

प्रांतपतियों के अतिरिक्त सुलतान के अधीन कुछ राजा या शासक भी थे। प्रांतपतियों की अपेक्षा ये अधिक स्वतंत्र थे। जब तक ये अधीनस्थ शासक वार्षिक कर जिसमें भूराजस्व का एक अंश और जजिया सम्मिलित रहता था, देते रहते थे, सिक्कों पर अपना और सुलतान का नाम अंकित करवाते रहते थे, और सामान्य रूप से उसके अध्यादेशों का सम्मान करते रहते थे, वे अपने प्रदेशों के स्वामी बने रहते थे। देवगिरी का राजा रामचन्द्र देव और दक्षिण भारत के नरेश ऐसे ही अधीनस्थ शासक थे।

अधिकारीगण और अमीर वर्ग—राज्य के समस्त अधिकारी, सामन्त और अमीर वर्गों में ही लिये जाते थे। अमीरगण शासक वर्ग के सदस्य माने जाते थे। इन अमीरों में तुर्की, ईरानी, अफगानी या पठानी, और भारतीय मुसलमान थे। अमीरों में प्राय: तीन श्रेणियां थीं—खान, मलिक और अमीर। ये श्रेणियां सेना सम्बन्धी दर्जे प्रगट करती हैं। खान के अधीन दस सहस्त्र अश्व, मलिक के अधीन एक सहस्त्र और अमीर के अधीन सौ अश्व रहते थे। सत्ता और अधिक अधिकार प्राप्ति के लिये सुलतान और इन अमीरों व मलिकों के बीच परस्पर संघर्ष चलता था। प्राय: शक्तिशाली अमीर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह और षड़यंत्र भी करते थे। इसलिये अलाउद्दीन ने अमीरों और मलिकों के दमन के लिये कठोर नीति अपनाई थी। उनकी शक्ति को कुचलने के लिये उसने विभिन्न उपाय किये और अनेक कदम उठाये जिनका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। इस कठोर दमन नीति से मलिक और अमीर उससे अत्यधिक अप्रसन्न हो गये थे, पर उनके दमन ने सुलतान को दृढ़ स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक बना दिया और शासन में केन्द्रीयकरण अधिक हो गया।

सुधार—प्रशासन में अलाउद्दीन ने सैनिक, राजस्व और आर्थिक सुधार किये। उसने विभिन्न वस्तुओं का मूल्य निर्धारण कर कठोर बाजार नियंत्रण की नीति अपनायी। इन सुधारों में उसकी मौलिक प्रशासकीय प्रतिभा का स्पष्ट आभास मिलता है। इन सुधारों का न्यायिक विवेचन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है।

सारांश

अलाउद्दीन के शासन-काल से दिल्ली सुलतानों का साम्राज्यवादी युग प्रारम्भ होता है। जलालुद्दीन की हत्या कर राज्य सिंहासन प्राप्तकर अलाउद्दीन खिलजी सुलतान बना। इस रक्तरंजित परिवर्तन या क्रान्ति से नये युग और नवीन नीति का प्रारम्भ होता है, जैसे केन्द्रीय शासन की दृढ़ता, बाजार नियन्त्रण, मंगोलों के आक्रमणों से मुक्ति, आदि।

सैनिक शासन और निरंकुश सैनिक तानाशाही

अलाउद्दीन के राज्यकाल को सैनिक शासन तंत्र या निरंकुश सैनिक तानाशाही कहा गया है, क्योंकि अलाउद्दीन ने एक विशाल सुसंगठित स्थायी सेना स्थापित

कर ली थी, इससे उसने साम्राज्य का विस्तार किया, राज्य को मंगोलों के भय से मुक्त किया, सीमान्त क्षेत्र की सुमुचित सुरक्षा की, दक्षिण भारत तक अलाई राज्य फैलाया, नवमुस्लिमों के तथा अमीरों व हिन्दुओं के विद्रोहों और षड़यन्त्रों का दमन किया, राज्य में शान्ति-व्यवस्था स्थापित की, सेना के बल पर ही उसने बाजार-नियंत्रण, राजस्व सुधार आदि कार्य किये और निश्चित आर्थिक नीति अपनायी। परन्तु इन सुधारों और नवीन योजनाओं का आधार उसकी स्वार्थसिद्धि, महत्वाकांक्षाओं की संतुष्टि और राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति था, न कि जनता का कल्याण, अनाचार, अत्याचार, दमन, तलवार, रक्त और निरंकुशता पर उसकी नीति और प्रशासन आधारित था न कि जनता की सद्इच्छा, सहयोग, श्रद्धा और भक्ति पर। ऐसा शासन स्थायी नहीं हो सकता। अलाउद्दीन के सैनिक शासन में पतन के बीज निहित होने से उसका शीघ्र अन्त हो गया।

अलाउद्दीन का राजस्व का आदर्श—इसमें निम्नलिखित तत्व थे :—

अलाउद्दीन दैवी अधिकार के सिद्धान्त में विश्वास करता था। सुलतान ईश्वर का प्रतिनिधि है, इसलिये उसकी इच्छा ही कानून है और सारी प्रजा उसकी सेवक है। इससे वह अत्यधिक निरकुश और स्वेच्छाचारी शासक हो गया। अलाउद्दीन ने मुल्ला-मौलवियों, उल्माओं और धर्माधिकारियों को राज्य प्रशासन में, नीति निर्धारण में या किसी अन्य कार्य में हस्तक्षेप करने या परामर्श देने से वंचित कर दिया था। शासन संचालन में वह अपने आपको सर्वोपरि मानता था। वह उचित और अनुचित की बिना चिन्ता किये, राज्य के लिये उसे जो कुछ ठीक प्रतीत होता था, वह करता था। इससे निरंकुशता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी।

खलीफा से सम्बन्ध—अलाउद्दीन ने खलीफा से अपने मुस्लिम राज्य की स्वीकृति नहीं मांगी। पर सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से वह अपने आप को खलीफा के अधीन नायब समझता था और अपने आपके लिये "आमीन-उल खिलाफत नासिरी अमीर-उलमुमनिन" की पदवी ग्रहण की थी।

इस्लाम का अनुयायी—यद्यपि वह राजनीति में उल्मावर्ग का विरोध करता था, पर वह कट्टर मुसल्मान था और इस्लाम धर्म के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करता था। उसने जिहाद किये और इस्लाम का प्रसार किया। वह इस्लाम धर्म का संरक्षक और पोषक माना जाता था।

अलाउद्दीन की साम्प्रदायिकता और धर्म साक्षेपता—अलाउद्दीन का राज्य इस्लामी राज्य था और वह इस्लाम का संरक्षक व पोषक था। वह इस्लाम का कट्टर अनुयायी था। इसलिए उसने हिन्दुओं के प्रति कठोर दमन नीति अपनाई। उनकी धन सम्पत्ति छीन ली, उन पर जजिया तथा अन्य कर लगाये एवं उनको राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया। अलाउद्दीन में धार्मिक उदारता व सहिष्णुता नहीं थी। इसलिये अलाउद्दीन का राज्य धर्मनिरपेक्ष नहीं था, अपितु पूर्ण साम्प्रदायिक और इस्लामी था।

अलाउद्दीन की असीम शक्ति और स्वेच्छाचारिता—अलाउद्दीन एक दृढ़ स्वेच्छाचारी निरंकुश सुलतान था। उसकी असीम अनियंत्रित शक्ति थी। समस्त शक्ति

और अधिकार उसके हाथों में केन्द्रीभूत थे। उसकी यह धारणा थी कि वह स्वेच्छा-पूर्वक शासन करने और नीति निर्धारण करने में पूर्ण स्वतन्त्र है।

अमीरों का दमन और सुदृढ़ सुव्यवस्थित शासन तंत्र—अलाउद्दीन ने शक्तिशाली षड्यंत्रकारी अमीरों व मलिकों का अन्त करने के लिये उनकी सम्पत्ति छीन ली, अनेकों को बन्दी बना लिया और कुछ को विष देकर मरवा डाला। अलाउद्दीन की इस नृशंसनीति से अमीर और मलिक अत्यधिक आतंकित होगये थे। अमीरों, मलिकों के दमन से असैनिक शासन उनकी प्रतिभाओं व अच्छे शासन से वंचित हो गया और सैनिक शासन तंत्र दृढ़ और सुव्यवस्थित हो गया।

अलाउद्दीन के राजत्व के सिद्धान्त का महत्व—वह इस सिद्धान्त का मानने वाला था कि "साध्य से साधन का औचित्य सिद्ध होता है।" उसने अपने राजत्व के सिद्धान्त से यह प्रमाणित कर दिया कि राजत्व किसी वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं है तथा राजत्व बिना किसी धर्म की सहायता के भी रखा जा सकता है।

अलाउद्दीन का शासन प्रबन्ध

शासन का स्वरूप—अलाउद्दीन निरंकुश स्वेच्छाचारी सुलतान था। असीम अनियंत्रित राजसत्ता में विश्वास करता था। राज्य के समस्त अधिकार व सत्ता उसमें निहित थे। सैन्य शक्ति राज्य का मूल आधार होने से वह सैनिक तानाशाह हो गया। उसमें प्रशासकीय सृजनात्मक प्रवृत्ति थी।

केन्द्रीय शासन

सुलतान व मंत्रि-परिषद्

सुलतान राज्य का सर्वोच्च शासक, महासेनापति, सर्वोच्च न्यायिक तथा कार्यकारिणी शक्ति था। शासन में उसकी सहायता के लिए मन्त्री थे। मंत्रियों की नियुक्ति और उन्हें पदच्युत भी स्वयं सुलतान करता था और वे उसके प्रति उत्तरदायी थे। उनके परामर्श को मानना या न मानना सुलतान की इच्छा पर निर्भर था। उसके प्रमुख विभाग व मंत्री निम्न लिखित थेः—

दीवान-ए-वजारत—यह प्रधान मंत्री का विभाग था और वह इसका अध्यक्ष था। कृषि, भवन, धार्मिक संस्थाएँ, गुप्तचर विभाग, कारखाने, टकसाल आदि विभाग इसके अन्तर्गत थे। वजीर का मुख्य काम राजस्व वसूल करना और एकत्र करना था।

दीवान-ए-अर्ज—यह सेना व युद्ध का विभाग था और इसका अध्यक्ष और मंत्री आरिज-ए-मुमालिक था। राज्य की सेना का समस्त प्रबन्ध इसके द्वारा होता था।

दीवान-ए-रसल—यह विदेशी और कूटनीति के मामलों का विभाग आधुनिक विदेश मंत्रालय के समान था। इसका मंत्री दीवान-ए-रसालत था।

दीवान-ए-इंशा--सुलतान और प्रशासन के समस्त व्यवहार के लिये यह विभाग था।

सुलतान के राजभवन के अधिकारीगण--सुलतान के राजप्रासाद और गृहस्थी की व्यवस्था के लिए कई अधिकारीगण थे। इनमें वकील-ए-दर सबसे अधिक महत्वशाली था। इसके अतिरिक्त अमीर-ए-हाजिब, सरंजादार, अमीर-ए-अखूर, अमीर-ए-शिकार, शहना-ए-पीलां, सरसिलाहदार मुहरदार, आदि अन्य अधिकारी थे।

न्याय-व्यवस्था व दंड-विधान--सुलतान न्याय-विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था। वह मुकदमे और अपील सुनता और अपना निर्णय देता था। उसके बाद सदर-ए-जहां काजी उलकुजात सर्वोच्च न्यायाधीश था। इनकी सहायता और कानून की व्यवस्था करने के लिए मुफ्ती होते थे। अलाउद्दीन का दंड विधान अत्यन्त ही कठोर था। अंगभंग, कारावास, आंखें निकलवाना, कोड़े मारना, मृत्युदण्ड आदि उस समय के साधारण दंड थे।

पुलिस व गुप्तचर व्यवस्था--अलाउद्दीन ने पुलिस व गुप्तचर व्यवस्था को भी पूर्ण रूप से संगठित कर लिया। कानून व शान्ति का रक्षक कोतवाल पुलिस विभाग का मुख्य अधिकारी था। गुप्तचर विभाग का मुख्य अधिकारी बरीद-ए-मुमालिक था और उसके अधीन अनेक बरीद और मुन्ही नामक अनेक गुप्तचर थे। ये सुलतान को विभिन्न विषयों, कार्यों और गतिविधियों की सूचना देते थे।

डाक प्रशासन--उसने डाक लाने ले जाने की भी व्यवस्था की थी और इसके लिये डाक चौकियां स्थापित की थीं। इन चौकियों के अधिकारी और लिपिक सुलतान को डाक भेजते रहते थे।

प्रांतीय शासन

अलाउद्दीन ने सारा साम्राज्य प्रांतों में विभक्त कर दिया था और प्रत्येक प्रान्त का अधिकारी वली या मुक्ती कहा जाता था। वह प्रान्त का भूमिकर वसूल करता था और उसमें से प्रशासन और सेना का व्यय काटकर शेष धन केन्द्रीय कोषागार को भेज दिया जाता था। युद्ध के समय वह निश्चित सेना सुलतान की सहायतार्थ भेजता था।

राज्य के समस्त अधिकारी मलिकों और अमीरों के वर्गों में से लिए जाते थे। प्रायः शक्तिशाली अमीर व मलिक सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र और विद्रोह करते थे। इसलिए अलाउद्दीन ने निर्ममता और कठोर उपायों से अमीरों का दमन कर दिया। प्रशासन में अलाउद्दीन ने राजस्व, सैनिक और आर्थिक सुधार किये।

अध्याय १७

अलाउद्दीन का अवसान और खिलजी साम्राज्य का पतन

सुलतान अलाउद्दीन के अन्तिम दिन—सुलतान अलाउद्दीन के जीवन की संध्या दुखद थी। उसके अंतिम दिन सुख एवं शांति से व्यतीत नहीं हुए। बर्नी का मत है कि, "जब संसार की धन-सम्पत्ति ने सुलतान अलाउद्दीन का विरोध प्रारम्भ कर दिया, और भाग्य ने उसका साथ छोड़ दिया, तथा समय ने उससे विश्वासघात करना प्रारम्भ कर दिया, एवं दुष्ट आकाश उसके पतन के लिए कटिबद्ध हो गया, तो सुलतान अलाउद्दीन ने कुछ ऐसे कार्य प्रारम्भ कर दिये जिनके द्वारा उसके राज्य तथा वंश का अन्त हो गया।"

अलाउद्दीन अपनी वृद्धावस्था के कारण अपनी विवेक शक्ति खो बैठा, उसकी प्रतिभा और योग्यता लुप्त हो गई तथा वह अधिक संदेहशील और क्रोधी हो गया। अपनी शक्ति क्षीण होने से वह अपने प्रशासन के कार्यों को भी समुचित रूप से नहीं देख सकता था। इसी बीच सुलतान जलंधर नामक घातक रोग से पीड़ित हो गया और दिन प्रतिदिन इस रोग की वृद्धि होने लगी। उसके विश्वासपात्र नायब मलिक काफूर ने स्थिति का लाभ उठाया और स्वयं सुलतान बनने का स्वप्न देखने लगा।

काफूर का षड़यंत्र--मलिक काफूर ने सुलतान अलाउद्दीन को उसकी पत्नियों, पुत्रों तथा सम्बन्धियो से पृथक करने और समस्त राज्य सत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत करने के लिए षड़यन्त्र रचा। उसने सुलतान को झूठे रूप में यह विश्वास दिलाया कि उसकी पत्नि, ज्येष्ठ पुत्र और उसका साला अलप खां षड़यंत्र करके उसका वध करना चाहते हैं। इसलिए अलाउद्दीन ने काफूर के परामर्श से अपने दोनों पुत्रों खिज्रखां और शादीखां को बन्दी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया और उनकी माता को पुरानी दिल्ली में लाल राजभवन में बन्दी बना लिया। इससे खिज्रखां के मामा और ससुर अलपखां तथा मलिक काफूर में घोर शत्रुता उत्पन्न हो गयी। परन्तु अलाउद्दीन ने मलिक काफूर के परामर्श से अलपखां का वध करवा दिया। इसके बाद मलिक काफूर ने अलाउद्दीन को अपने अल्पवयस्क पुत्र शहाबुद्दीन को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के लिये प्रेरित किया और अलाउद्दीन ने काफूर के प्रभाव से ऐसा कर दिया। काफूर की इस प्रकार की कुमंत्रणाओं व षड़यन्त्रों के कारण अलाउद्दीन के विश्वसनीय तथा शुभेच्छु अधिकारी और सम्बन्धी उससे पृथक हो चुके थे।

अलाउद्दीन की मृत्यु—अलाउद्दीन की रुग्णावस्था, बढ़ती हुई अशक्तता तथा दुर्बल नीति के कारण साम्राज्य विघटित हो रहा था। उत्तरी पश्चिमी सीमांत क्षेत्र

में विद्रोह भड़क रहे थे, गुजरात विद्रोही हो चुका था और चितौड़ के राजपूतों ने पुन: अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी और अलाई सेना व अधिकारियों को चितौड़ से खदेड़ दिया था। दक्षिण में देवगिरी में रामचन्द्र के दामाद हरपालदेव ने भी सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। अलाउद्दीन के पास इस प्रकार की खबरें आती रहती थीं। साम्राज्य विश्रृंखलित हो रहा था और उसके नियंत्रण और अधिनियम अस्त-व्यस्त हो रहे थे। अलाउद्दीन स्वयं अपने जीवन काल में ही अपनी आंखों से अपने साम्राज्य और व्यवस्था को अस्त-व्यस्त होते देख रहा था। 'अपने जीवन भर के कार्य को अपनी आंखों के सामने समाप्त होते देखकर वह शक्तिशाली शासक क्रोध में अपना ही मांस नोचने लगा।" एक महान सुलतान और सैनिक तानाशाह की इससे अधिक और क्या विडम्बना हो सकती है! अन्त में २ जनवरी सन् १३१६ को अलाउद्दीन का देहावसान हो गया। ऐसा कहा जाता है कि मलिक काफूर ने विष देकर उसे मरवा डाला।

सुलतान अलाउदीन का मूल्यांकन

अलाउद्दीन की सफलता, सिद्धियों, और कार्यों के मूल्यांकन के विषय में प्रसिद्ध इतिहासकारों में मत-विभिन्नता है। डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद ने अलाउद्दीन को निर्मम निरंकुश शासक माना है और उनके अनुसार अलाउद्दीन के शासन काल में मुस्लिम निरंकुशवादिता अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गयी थी। (The reign of Alauddin represents the highest water mark of Mohammadan despotism" —Dr. Ishwariprasad) इसके विपरीत एलफिस्टन का मत है कि "उसका शासन काल गौरवपूर्ण था। अनेकों क्रूर तथा मूर्खतापूर्ण नियमों के होते हुए भी वह एक सफल तथा महान शासक था।" "Alauddin's reign was glorious and inspite of many absurd and oppressive measures he was, on the whole, a successful monarch and exhibited a just exercise of his power"—Elphinston) विंस्टेंट स्मिथ का कथन है कि, 'वास्तव में अलाउद्दीन बर्बर अत्याचारी था, उसके हृदय में न्याय के लिये तनिक स्थान नहीं था और यद्यपि उसके राज्य काल मे गुजरात की विजय हुई तथा अनेक सफल आक्रमण किये गये, तथापि उसका शासन लज्जापूर्ण था।" ('Facts do not warrant the assertion that he exhibited a just exercise of his power and that his reign was glorious......in reality he was a particularly savage tyrant with very little regard for justice and reign... ..was exceedingly disgraceful in may respects." V. Smith) लेनपूल के शब्दों में, "एक रक्त पिपासु और विवेकहीन निरंकुश शासन होते हुए भी उसके एक सुदृढ़ तथा योग्य शासक होने से इनकार नहीं किया जा सकता।" ('A bloody and unscrupulous tyrant yet none may refuse him the title of a strong and a capable ruler."—Lanepole) श्री आर. सी. मजूमदार ने अलाउद्दीन के सफल शासक होने के विषय में लिखा है कि, "As an administrator Alauddin

showed remarkable vigour in the early part of his reign. To him belongs the credit of Governing the State for the first time, independent of the authority and guidance of the priestly heirarchy.")

अलाउद्दीन के चरित्र, गुणों तथा उपलब्धियों का सिंहावलोकन निम्नलिखित रूप से है—

(१) **एक जन्मजात सेनानायक तथा विजेता**—अलाउद्दीन एक महान सेनानायक तथा विजेता था। उसमें जन्म से ही सैनिक के गुण और लक्षण विद्यमान थे। उसमें प्रखर सैनिक प्रतिभा व योद्धा के गुण थे। इससे वह शीघ्र ही उच्चकोटि का सेनापति बन गया। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह दिल्ली का प्रथम शासक था जिसने विंध्याचल पर्वत के दक्षिण की ओर अपने पैर फैलाये। उसने उत्तरी भारत ही विजय नहीं किया, अपितु दक्षिण भारत को भी विजित करके वहां के नरेशों को नतमस्तक किया। उसने अपनी विजयों से सम्पूर्ण भारत को राजनैतिक एकता प्रदान की। इस प्रकार अलाउद्दीन भारत का प्रथम तुर्की साम्राज्य निर्माता था जिसके सैनिक नेतृत्व में तुर्की साम्राज्यवाद अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था।

कतिपय विद्वानों का मत है कि अलाउद्दीन वैसा सेनापति, योद्धा और जन्मजात सेनानायक नहीं था, जैसा कि उसका मूल्यांकन किया गया है। उनका तर्क है कि उसकी विजयों का श्रेय उसके वीर सेनापतियों को है, उसे नहीं, जैसे मुलतान और गुजरात को सेनानायक उलूग खां और नसरत खां ने विजय किया और दक्षिण विजय का सारा श्रेय मलिक काफूर को है। परन्तु यह तर्क भ्रममूलक है। अलाउद्दीन स्वयं एक वीर, साहसी योद्धा और रणकुशल सेनानायक था। इसी से वह विजयों के लिये अपने सेनापतियों का समुचित मार्ग-दर्शन कर सका और वे विजयश्री प्राप्त कर सके। स्वयं अलाउद्दीन ने सुलतान बनने के पूर्व युद्ध में मलिक छज्जू को परास्त किया था, देवगिरी के अभियान में सफलता प्राप्त की थी, सुलतान बनने के बाद उसने अपनी रण-कुशलता से रणथंभोर, झाइन और चित्तौड़ जीता, विद्रोहों को दबाया और वीर मुगल नेता कुतलग ख्वाजा और तरगी को परास्त किया। मुगलों के निरंतर आक्रमणों के कारण और अपने राजस्व तथा सैनिक व आर्थिक सुधारों को कार्यान्वित करने से वह विजयों के लिये दिल्ली से दूर नहीं गया और अपने सैनिक प्रतिनिधि भेज दिये। उसके सेनापति उसकी सैनिक योग्यता और गुणों के कारण ही उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। वास्तव में वह एक वीर, कुशल एवं उत्साही सेनापति था। उसने अत्यंत ही नाजुक परिस्थितियों में राज-शासन सम्भाला था। चारों ओर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह हो रहे थे, मंगोलों ने अपने निरंतर आक्रमणों से देश की उत्तर-पश्चिमी सीमा को खोखला कर दिया था और अब समस्त उत्तरी भारत को रौंदने की तैयारी कर रहे थे। राज्य में विघटनकारी प्रवृत्तियां अधिक गतिशील हो गयी थीं। परन्तु अलाउद्दीन ने अपनी सैनिक प्रतिभा, योग्यता, वीरता, तथा कुशल सेनानायकत्व से विषम परिस्थितियों को नियंत्रित कर लिया और खूँखार मंगोलों को भी खदेड़ दिया। बर्नी भी उसके सैनिक गुणों की प्रशंसा करता है। उसने लिखा है कि, "राज्य के डाकुओं और विरोधियों पर जिस प्रकार सुलतान

अलाउद्दीन ने विजय प्राप्त की तथा उन्हें अपने अधिकार में किया, उस प्रकार की सफलता तथा विजय किसी युद्ध में किसी अन्य को प्राप्त न हो सकी ।......जिस प्रदेश या किले पर उसकी सेना आक्रमण करती, वे जैसे पहिले से ही मरे हुए या विजित लगते ।"

(२) **महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी**—अलाउद्दीन अत्यधिक महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी था । मुहम्मद पैगम्बर के समान धर्म प्रवर्तक और सिकन्दर महान के समान विश्वविजेता बनने का वह बड़ा महत्वाकांक्षी था । उसने अपने चाचा जलालुद्दीन की हत्या अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिये की थी । सुलतान बनने के पश्चात् भी उसने अपनी विभिन्न विचित्र योजनाओं के द्वारा अपनी महत्वाकांक्षा प्रदर्शित की । परन्तु यह उल्लेखनीय है कि वह महत्वाकांक्षी होने पर भी मुहम्मद तुगलक के समान अव्यावहारिक नहीं था । वह साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था । उसने विभिन्न प्रदेशों को जीतकर एक ऐसा विशाल साम्राज्य निर्मित किया जो सल्तनत काल में सबसे अधिक विशाल, विस्तृत और दृढ़ था । उस युग में यातायात के साधनों का अभाव होने पर भी सघन वनों और उपत्यकाओं को पार करने की कठिनाइयों को झेलते हुए भी उसने दक्षिण भारत की विजय की, दक्षिण के राज्यों को परास्त कर उसने उन्हें अपने करद राज्य बना लिये । इस तरह सम्पूर्ण भारत में उसका साम्राज्य फैला हुआ था । उसने एक छोटे से राज्य को विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया । उसके शासन काल में तुर्की साम्राज्यवाद अपनी पराकाष्ठा की सीमा पर था ।

(३) **कुशल प्रशासक**—अलाउद्दीन एक महान् विजेता और साम्राज्यवादी होने के साथ-साथ, एक कुशल प्रशासक भी था । उसने सल्तनत के प्रशासन को अपने ढग से सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया और राज्य-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किये । उसने प्रांतो पर केन्द्रीय सरकार का पहले से अधिक कठोर नियंत्रण स्थापित करके सल्तनत में कुछ सीमा तक शासन सम्बन्धी एकरूपता स्थापित की । उसने शासन में कई मौलिक सुधार किये उसमें प्रशासकीय सृजनात्मक वृत्ति थी । वह प्रथम सुलतान था जिसने दृढ़ स्थायी सेना स्थापित की और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर किया । मूल्य निर्धारण, बाजार नियंत्रण, राजस्व-सुधार, सैनिक सुधार व व्यवस्था, उसकी सृजनात्मक प्रवृत्ति तथा उसके कुशल शासकत्व के ज्वलंत उदाहरण हैं । अलाउद्दीन को यह गौरव प्राप्त है कि वह दिल्ली सुलतानों में प्रथम शासक था जिसने राजस्व के नियमो व कानूनो मे सुधार किया राजस्व की समुचित व्यवस्था के लिये पटवारियों तक के अभिलेखों और बहियों की छान-बीन की, भूमि की पैमाइश करवाई, उसका वर्गीकरण कर भूमि-कर निश्चित करवाया । इसके अतिरिक्त मध्ययुगीन इतिहास में उसके पूर्व और उसके बाद में अन्य किसी भी ऐसे शासक का उदाहरण नहीं मिलता जिसने मौलिक रूप से मूल्य निर्धारण किये हों, सफलतापूर्वक बाजार नियंत्रण किया हो और कर-व्यवस्था को सुसंगठित किया हो । सैन्य-व्यवस्था में भी उसने सुधार किये ।

यदि उसने एक ओर सुधार कर प्रशासन में दृढ़ता लाने का प्रयास किया तो, दूसरी ओर उसने अनेक विद्रोहों, उपद्रवों व षड़यन्त्रों का दमन करके सारे राज्य में आन्तरिक शांति-व्यवस्था भी स्थापित की ; मंगोलों को परास्त कर सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा की। अब उसके राज्य पर किसी को आक्रमण करने का साहस नहीं होता था। इस प्रकार उसने आन्तरिक और बाह्य शांति स्थापित कर ली थी तथा साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास किया।

अपनी सुदृढ गुप्तचर व्यवस्था से उसने शासन को नियंत्रित किया और उसमें चुस्ती व दृढ़ता ला दी। न्यायदान में भी वह सफल हुआ। वह न्यायदान में निष्पक्ष और अविचलित होता था। उसका न्याय और दंडविधान इतना कठोर था कि चोरी, लूटपाट और डकैती जिनका पहले बोलबाला था, अलाउद्दीन के शासनकाल में सुनने को भी नहीं मिलती थी। यात्री और व्यापारीगण राज मार्गों पर सुरक्षापूर्वक निश्चित होकर आते-जाते थे। पर यह तथ्य विस्मरण नहीं किया जा सकता कि शासक के रूप में सुलतान ने प्रजा-कल्याण के अनेकानेक कार्य नहीं किये, परन्तु अपनी स्वार्थ-पूर्ण नीति के लिये सेना संगठित की तथा कृषि व व्यापार के हितों का बलिदान कर दिया।

(४) **क्रूर, निरंकुश सैनिक तानाशाह**—अलाउद्दीन बर्बर, निरंकुश तानाशाह था जिसकी शक्ति का मूल आधार सेना थी। वह स्वेच्छाचारी सुलतान था। उसकी इच्छा ही कानून और नियम थी। उसका निर्णय अंतिम निर्णय होता था। वह अपने प्रशासन व नीति में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता था। उसका मत था कि राजा का कोई भी संबंधी नहीं है। वह Kingship knows no kinship के सिद्धान्त में विश्वास करता था। राज्य की समस्त जनता उसकी सेवक है और उसे राज्य के आदेशों का पालन करना ही चाहिये। उसकी निरंकुशता और बर्बरता विस्मरण नहीं होती। वह अपनी राजाज्ञा की अवहेलना या उसका उल्लंघन होते देख बड़ा से बड़ा क्रूर कार्य कर देता था। हत्या व रक्तपात उसके लिये साधारण सहज कार्य थे। अनेक निर्दोष स्त्री और बच्चे उसकी निरंकुशता, बर्बरता और क्रूरता के शिकार हुए। नवमुस्लिमों (मंगोलों), तथा अन्य विद्रोहियों के उपद्रवों को कुचलने और उनके निर्दोष सम्बन्धियों से प्रतिशोध लेने में अलाउद्दीन नृशंसता और भीषण रक्तपात की सीमाएँ पार कर गया। बीस सहस्त्र नव मुस्लिमों की हत्या कर दी गयी, उनके स्त्री-बच्चे काट डाले गये और उनके घर-बार विध्वंस कर दिये गये। उसकी क्रूरता नृशंसता और प्रतिशोध का फल उसके अनेक शुभ-चिन्तकों और कृपापात्रों को भी भोगना पड़ा। अपने योग्य सेनापति जफरखाँ का अन्त करने में उसका ही हाथ था। अपनी निरंकुशता व स्वेच्छाचारिता के सम्मुख वह किसी को भी महत्व नहीं देता था।

परन्तु उसकी इस बर्बर निरंकुश सैनिक तानाशाही के कारण उसकी प्रजा-अत्यन्त ही आतंकित व भयभीत हो गयी थी। तलवार और शक्ति, रक्तपात और आतंक पर उसकी तानाशाही आधारित होने से साधारण जनता उसके प्रति श्रद्धा व भक्ति नहीं रखती थी, उसकी प्रतिष्ठा करने की अपेक्षा वह उससे भयभीत होती थी।

उसकी गुप्तचर और सन्देहात्मक नीति के कारण जनता दुखी हो गयी थी। वह रक्तपात तथा युद्ध के सिद्धान्त का उपासक था। "साध्य से साधन का औचित्य सिद्ध होता है"—इस सिद्धान्त में वह दृढ़ विश्वास करता था। उचित तथा अनुचित उपायों से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के अतिरिक्त उसका अन्य कोई सिद्धान्त नहीं था। इसलिये वह तानाशाह हो गया पर उसकी यह सैनिक तानाशाही अस्थायी रही।

(५) **यथार्थवादी, बुद्धिमान और दृढ़ निश्चयी सुलतान**—सुलतान अलाउद्दीन यथार्थवादी और व्यावहारिक शासक था। उसके दैनिक प्रशासन और जीवन में रचनात्मक मौलिक प्रतिभा, बुद्धि-विवेक, और दृढ़निश्चय की प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है। इन्हीं विशेषताओं और गुणों से उसने अलाई राज्य को विशाल बनाया और उसके प्रशासन को सुव्यवस्थित और सुसंगठित रूप प्रदान किया। वह बुद्धिमान और विवेकशील व्यक्ति था जो भले बुरे की पहिचान कर अपना निश्चय दृढ़ कर लेता था। सुलतान ने नवीन धर्म प्रचलित करने और विश्व विजय करने का विचार किया था। पर काजी अला-उल-मुल्क के समझाने-बुझाने पर उसने ये दोषपूर्ण निर्णय त्याग दिये और विवेक से काम लिया। इसी प्रकार उसने काजी मुगीसुद्दीन का सुझाव कि शासन पर इस्लाम का, मुल्ला-मौलवियों का नियंत्रण रहना चाहिये—त्याग दिया और अपनी बुद्धि-विवेक का परिचय दिया। प्रशासन और युद्ध में वह दृढ़ निश्चय और कृतसंकल्प होकर कार्य करता था। मंगोल आक्रमणों से भयभीत सेनानायकों और अमीरों से उसने दृढ़तापूर्वक कहा था कि, "चाहे कुछ भी हो, मैं रणभूमि में अवश्य उतरूँगा।" उसके इस दृढ़ निश्चय से उसे मंगोलों पर सफलता मिली। रणथंभौर और देवगिरि विजय में भी वह दृढ़ निश्चयी रहा। सत्य तो यह है कि कोई भी कार्य करने के पूर्व वह उस पर भली-भांति सोच लेता था, फिर उसके लिये क्रमबद्ध योजना बनाता था और दृढ़ता से शीघ्र ही उसे कार्यान्वित करता था। यदि दुर्भाग्यवश उसे असफलता हाथ लगती तो वह अवसर और परिस्थितियों के अनुकुल समझौता कर लेता था। यह उसकी व्यवहार कुशलता थी। उसमें व्यक्तियों और प्रतिभाओं को परखने की अपूर्व शक्ति थी। उसमें अपने अधीनस्थ अधिकारियों से अत्यन्त स्वामी भक्ति के साथ सेवा तथा अपने हितों की रक्षा करवाने एवं राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करवाने की महान योग्यता थी।

(६) **धर्मपरायण सुलतान**—अलाउद्दीन अशिक्षित होने से कुरान का नियमित अध्ययन करने में असमर्थ था और इस्लाम के अनुसार नमाज पढ़ना और रोजे रखना भी वह नहीं कर सकता था। वह दण्ड देने में इस्लाम की आज्ञाओं की अवहेलना भी कर देता था। राज्य के हित में और अपनी स्वार्थ पूर्ति में वह मुसलमानी धर्म और कुरान की शराओं का भी ध्यान नहीं रखता था। वह धार्मिक कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं रखता था। उल्मावर्ग को भी उसने राजनीति में हस्तक्षेप करने से वंचित कर दिया था। उसने राजनीति में धर्म को स्थान नहीं दिया। इससे कतिपय विद्वानों का मत है कि अलाउद्दीन धर्म विहीन, बर्बर सुलतान था। परन्तु यह भ्रममूलक है। अलाउद्दीन ने स्वयं कहा है कि वह सच्चा मुसलमान है और उसके हृदय में इस्लाम मजहब और खुदा के प्रति निष्ठा व भक्ति थी। उसका विश्वास इस्लाम धर्म के वास्त-

विक पक्ष पर था। वह तकनीदी इस्लाम में विश्वास करता था, अर्थात् वह पूर्णतया उसी प्रकार आचरण करता था जिस प्रकार अन्य मुसलमान इस्लाम की बातों व सिद्धान्तों पर आचरण करते हैं और नवीन परिस्थितियों में किसी भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझते। इस्लाम के प्रति वह अटूट विश्वास रखता था और न वह किसी को अधार्मिक बात कहने देता था और न सुनने देता था। वह फकीरों, सन्तों और मुल्ला मौलवियों का आदर करता था। उसके हृदय में शेख निजामुद्दीन औलिया के प्रति असीम श्रद्धा थी और उसके परिवार के सदस्य इस शेख के मुरीद बन गये थे।

परन्तु धर्मपरायण होने पर भी उसमें हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता थी। उसने हिन्दुओं को विधर्मी होने से अपना शत्रु समझा और उनका नृशंसतापूर्वक दमन किया और उनसे जजिया कर बलपूर्वक वसूल किया। हिन्दुओं के प्रति उसका दुर्व्यवहार, दमन और संघर्ष जीवन भर चलता रहा। हिन्दुओं के कल्याण के लिए कार्य करने की अपेक्षा उसने उन्हें घोरतम दरिद्र बना दिया। ऐसी दशा में यह कहना कि अलाउद्दीन में धर्मान्धता और संकीर्णता नहीं थी, तथ्य को मरोड़ना है तथा वास्तविकता से मुँह मोड़ लेना है।

(७) **कला और साहित्य का पोषक**—बर्नी के कथनानुसार अलाउद्दीन निरक्षर था और फरिश्ता का कथन है कि सिंहासनारोहण के बाद अलाउद्दीन ने अथक परिश्रम से फारसी भाषा का अध्ययन किया था। तथ्य कुछ भी हो, सुलतान अधिक शिक्षित न होने पर भी प्रतिभाशाली, चतुर और बुद्धि-विवेक पूर्ण था। उसे विद्यानुराग था और वह विद्वानों का आश्रयदाता था। वह उन्हें आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित करता था। प्रसिद्ध विद्वान, कवि और इतिहासकार अमीर खुसरो सुलतान की राजसभा का रत्न था। मुगलों के नृशंस आतंक से भयभीत होकर मध्य एशिया के अनेक विद्वान और लेखक भागकर आये और उन्होंने उसके दरबार में आश्रय प्राप्त किया। फलतः उसके दरबार को अनेक उद्भट विद्वान, विचारक, मुल्ला, मौलवी, उल्मा, अमीर, इतिहासकार, कवि आदि अलंकृत कर रहे थे। शेखुल-इस्लाम रुकनुद्दीन जैसे विद्वान धर्म-शास्त्री, काजी अला-उलमुल्क व मुगीसुद्दीन जैसे प्रख्यात उल्मा, अर्सलान कुलाही जैसे इतिहासकार, हसनदेहलवी जैसे साहित्यिक, खुसरो जैसे कवि उसकी राजसभा में विद्यमान थे। मलिक काफूर, अलप खाँ, नसरत खाँ, उलुग खाँ, तथा जफर खां जैसे वीर योद्धा और सेनापति उसके परामर्शदाता थे। इससे अलाउद्दीन का दरबार और उसका वैभव बगदाद, कुस्तुन्तुनिया और काहिरा के दरबारों की समानता करता था और इस्लामी जगत में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

स्थापत्य कला में भी उसे अभिरुचि थी। उसने अनेक दुर्ग, मसजिदें, भवन और तालाब बनवाये। उसके राज्य काल की श्रेष्ठतम कलाकृतियाँ हैं—सीरी का दुर्ग, अलाई दरवाजा, हजार सितून (स्तम्भ) महल, आदि। उसने प्राचीन मसजिदों का भी जीर्णोद्धार करवाया।

(८) **अलाउद्दीन की चारित्रिक दुर्बलताएँ**—यद्यपि अलाउद्दीन वीर, साहसी, कुशल सेनापति योग्य शासक और मौलिक प्रतिभावाला सुलतान था, पर उसमें

चारित्रिक दोष और दुर्बलताएँ भी थीं। उसका व्यक्तिगत जीवन बड़ा दूषित था। वह गहन व्यभिचार और भोगविलास में निलिप्त रहता था। वह बड़ा स्वार्थी था और अपने स्वार्थों व व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिये वह बड़े से बड़ा अन्याय और अत्याचार करने में भी संकोच नहीं करता था। वह दुश्चरित्र और मानवी गुणों से हीन था। वह अपनी स्वार्थलोलुपता और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने सम्बन्धियों की भी बलि दे देता था। उसने स्वयं अपने चाचा और ससुर जलालुद्दीन का विश्वासघात से वध कर दिया, अपने बधु-बांधवों, पुत्रों तथा बेगमों तक को भी कारावास में डाल दिया, उनमें से कुछ को अन्धा बना दिया और कुछ को कत्ल करवा दिया गया। अपने परिवार से उसे कोई प्रेम नहीं था। करुणा, स्नेह और वात्सल्य का उसमें अभाव था। वह अन्याय और अत्याचार करने में भी संकोच नहीं करता था। वह विद्रोहियों और विरोधियों का अमानुषिक वध करता था। अलाउद्दीन से पूर्व स्त्रियों और बच्चों को दास बना लिया जाता था पर उसने तो अपने शासन काल में उनका नृशंसता से वध करवाकर उनकी नस्ल ही समाप्त करने का प्रयास किया। बर्नी का तो कथन है कि अलाउद्दीन ने मिस्र के नरेश फरोहा से भी अधिक निर्दोष व्यक्तियों की हत्याएँ की थी। उसमें अविश्वास और सन्देह की प्रवृत्ति बढ़ गयी थी। उसकी सन्देहशीलता और दुष्ट व्यवहार के कारण उसकी राजसभा षड़यन्त्रों और संघर्षों का केन्द्र बन गई। कुछ इतिहासकारों का मत है कि अलाउद्दीन की ये दुर्बलताएँ और दोष उसके युग की दुर्बलताएँ थी, जो क्षम्य हैं। दुर्बल और अयोग्य सुलतान होने पर और उत्तराधिकारी के नियम का अभाव होने से शक्तिशाली अमीर स्वतंत्र होने के लिए या सुलतान बनने के लिए अनुकूल परिस्थिति में विरोध विद्रोह एव षड़यन्त्र का सहारा लेते थे। अलाउद्दीन ने उनका निर्ममता से दमन किया और सफलता प्राप्त की एवं विघटनकारी प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया। अतः उसकी कठोर दमन चक्र की, क्रूरता व रक्त-पात की नीति पूर्वी मध्ययुगके समयानुकूल सिद्ध हुई। उस युगमें तलवार, युद्ध और रक्तपात की नीति के बिना राज्य करना दुष्कर था। यही कारण है कि इस नीति के परिवर्तन के कारण उसके अयोग्य और शक्तिहीन उत्तराधिकारियों के शासन काल में, उसकी प्रशासकीय व सैनिक व्यवस्था निर्जीव, प्रभावहीन और आधारविहीन बन गई और अलाई राज्य धराशायी हो गया।

इन अवगुणों और अक्षम्य दोषों के होते हुए भी, अलाउद्दीन के कार्यों और उपलब्धियों का निष्पक्ष सिंहावलोकन करने के पश्चात यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अलाउद्दीन एक महान विजेता, सुयोग्य सशक्त प्रशासक सफल राजनीतिज्ञ, व्यावहारिक कूटनीतिज्ञ श्रेष्ठ सेनापति, मौलिक रचनात्मक प्रतिभासम्पन्न सुलतान था। वह वास्तव में तुर्क साम्राज्य का संस्थापक और प्रसारक था। उसकी निरंतर विजयों और साम्राज्य प्रसार के कारण उसकी तुलना समुद्रगुप्त और नेपोलियन से की जा सकती है तथा मौलिक रचनात्मक प्रतिभा व विचारों की विशालता को ध्यान में रखकर मुहम्मद तुगलक से उसकी समानता की जा सकती है। पूर्व मध्ययुगीन सुलतानों में वह निरसन्देह श्रेष्ठतम है और भारत के प्रथम श्रेणी के शासकों में उसका उच्च स्थान है।

अलाउदीन के शासन के दोष और उसके पतन के कारण

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी मध्ययुगीन नरेशों में महत्वपूर्ण, महान और गौरवशाली स्थान रखता है। उसने प्रशासन में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। सम्पूर्ण भारत को विजय करने, षड़यन्त्रों व विद्रोहों को कुचलने, हिन्दुओं का दमन करने, जागीरदारों की कमर तोड़ने और शांति-व्यवस्था स्थापित करने में अलाउद्दीन सफल हुआ। परन्तु उसका साम्राज्य और शासन प्रबन्ध स्थायी न हो सका। उसकी सारी राज्य-व्यवस्था उसके देहावसान के कुछ ही वर्षों बाद छिन्न-भिन्न हो गई। इससे स्पष्ट है कि उसके द्वारा निर्मित प्रशासन और सुधार दोषपूर्ण थे, उनकी स्थायी नींव नहीं थी। उसकी राज्य-व्यवस्था में मूलभूत त्रुटियां और अभाव थे। खिलजी राज्य के विनाश के कारण अलाउद्दीन के शासन की ये दुर्बलताएँ, दोष और अभाव हैं। इनमे से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(१) **सैनिक तानाशाही**—अलाउद्दीन निरंकुश स्वेच्छाचारी सुलतान था, वह सैनिक तानाशाह था। उसका सारा राज्य और शासन प्रबंध सैन्य शक्ति पर अवलंबित था, पाशविक बल पर निर्भर था। उसका साम्राज्य विस्तार युद्ध और रक्तपात की नीति पर हुआ, उसने शांति व्यवस्था और राज्य प्रबंध अपनी दृढ़ सैन्य शक्ति के बल पर स्थापित किया, अमीरों और जागीरदारों को निर्ममता से सैनिकों की सहायता से कुचल दिया, बाजार नियंत्रण और सुधार-योजनायें पाशविक शक्ति और आतंक से कार्यान्वित की गयीं। उसकी उपलब्धियां उसकी प्रबल सैन्य शक्ति का प्रताप था। उसका राज्य जो उसकी व्यक्तिगत सैन्यशक्ति पर निर्भर था, दीर्घकाल तक न रह सका। दीर्घकालीन राज्य का आधार प्रजा की सद्भावना, सहायता, सहयोग, त्याग, प्रेम, भक्ति और श्रद्धा होता है। राज्य-व्यवस्था के स्थायित्व का आधार भय, आतंक, पाशविक बल जोर जबरदस्ती अनाचार और अत्याचार नहीं होते हैं। अलाउद्दीनने जिस साम्राज्य और शासन प्रबन्धका निर्माण किया वह इस सिद्धान्त के प्रतिकूल था। उसकी प्रजा में उसके प्रति स्वामि-भक्ति, प्रेम, सहानुभूति, प्रतिष्ठा, सदइच्छा नहीं थी। सत्य तो यह है कि दिल्ली के सुलतान विदेशी शासक माने जाते थे, इसलिये साधारण जनता का प्रेम, भक्ति सद्भावना और सम्मान प्राप्त करना उनका उद्देश्य कभी नहीं रहा। इसलिये उसका पतन अवश्यम्भावी था। अलाउद्दीन का राज्य भी इसी श्रेणी में था।

(२) **हिन्दुओं का दमन**—अलाउद्दीन के साम्राज्य की बहुसंख्यक प्रजा हिंदू थी। गैर मुसलमान ही उसके राज्य की अधिकांश प्रजा थी। हिन्दू हो या मुसलमान राज्य ने सभी के कल्याण के लिये निष्पक्षभाव से कार्य करना चाहिये। पर अलाउद्दीन ने हिन्दू प्रजा, हिन्दू अधिकारी, कर्मचारी के हित-संवर्धन की अपेक्षा उनका अहित अधिक किया। उन पर विशेष रूप से अधिक कर लगाये गये और जजिया तो उनसे नृशंसता से वसूल किया जाता था। उनके व्यापार-व्यवसाय और कृषि को अत्यधिक गहन आघात लगे। इससे वे इतने दरिद्र और शक्तिहीन हो गये थे कि वे अच्छे वस्त्र धारण करने, आभूषण पहिनने या अश्व की सवारी करने के लिये भी

असमर्थ हो गये थे। उनमें जीवन निर्वाह के भी लाले पड़ गये और अनेक उच्च परिवारों की हिन्दू स्त्रियों को मुस्लिम परिवारों में परिचायिका और सेविका का कार्य कर अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता था। इस प्रकार अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये अलाउद्दीन ने अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा को अत्यन्त ही असंतुष्ट कर दिया। हिन्दू राजा और सामन्त भी जिन्हें अलाउद्दीन नतमस्तक कर कुचल चुका था, पुनः अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के इच्छुक थे और वे अवसर की प्रतीक्षा में थे। इससे अलाउद्दीन का राज्य एक ऐसा राज्य बन गया था जिसमें उसकी अधिकांश प्रजा उससे अत्यधिक रुष्ट थी, उसमें सुलतान के प्रति तीव्र असन्तोष था। ऐसा राज्य स्थायी नहीं हो सकता।

(३) **अमीरों, मलिकों व सामन्तों का दमन**—अपने निरंकुश शासन की स्थापना के लिये तथा शक्तिशाली अमीरों को कुचलने के लिये अलाउद्दीन ने बड़े-बड़े प्रभावशाली सरदारों, अमीरों, मलिकों, जागीरदारों आदि के विरुद्ध अनेक अधिनियम बना दिये और कठोरता से उनका पालन करवाया गया। अलाउद्दीन ने उनकी जागीरें अपहरण कर लीं, उनके पारस्परिक विवाह संबंध, उत्सव-समारोह, मिलना-जुलना, मद्यपान, मनोरंजन, आदि निषिद्ध कर दिये। इससे कुलीन वर्ग और सामन्त लोग अत्यन्त ही पीड़ित व दुखी हो गये थे और वे उसकी मृत्यु के लिये दुआएँ मांगा करते थे। वे स्वभावतः अपनी लुप्त शक्ति और अधिकारों को पुनः प्राप्त करने का अवसर देख रहे थे। मलिकों-अमीरों के वर्ग में से ही राज्य के सैनिक और असैनिक अधिकारीगण लिये जाते थे। ऐसा राज्य जिसके सामन्त और अधिकारी रुष्ट हों दीर्घकाल तक नहीं चल सकता।

(४) **गुप्तचर-व्यवस्था**—दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था अलाउद्दीन के निरंकुश शासन का एक प्रमुख अंग थी। सारे साम्राज्य में गुप्तचरों का जाल-सा बिछा दिया गया था। बड़े-बड़े सामन्तों और अधिकारियों से लेकर साधारण जनता तक गुप्तचर फैले हुए थे। वे लोगों के दैनिक जीवन में भी हस्तक्षेप करते थे और निवासगृहों में भी प्रविष्ट हो जाते थे तथा तुच्छ महत्वहीन बातों की सूचना भी सुलतान को भेजते थे। इनके आधार पर अलाउद्दीन कठोर दंड भी देता था। इससे लोग अत्यन्त ही आतंकित और भयभीत हो गये थे। वे ऐसे राज्य से मुक्ति पाने के इच्छुक थे।

(५) **राजस्व और आर्थिक सुधार**—अलाउद्दीन ने अपने राजस्व सुधारों से लोगों को असन्तुष्ट कर लिया। भूमि और संपत्ति के अपहरण से, विभिन्न करों के लगाने से, भूमिकर और नवीन करों की कठोर वसूली से राजस्व विभाग के अधिकारियों व कर्मचारियों को, कृषकों को और विशेषकर हिन्दुओं को खूब क्षति उठानी पड़ी। कृषि को प्रोत्साहन न मिलने से उसे गहरा आघात लगा। दैनिक जीवन की विभिन्न वस्तुओं पशुओं, दास-दासियों आदि के मूल्य निर्धारण में और बाजार का नियंत्रण करने में अलाउद्दीन का निरा स्वार्थ था। बाजार के कठोर अधिनियमों के कारण व्यापारी, दलाल और दूकानदार थर्राते रहते थे, उन्हें कम तौलने या बेईमानी करने पर कठोर दंड भुगतना पड़ता था। विलासी जीवन के अभ्यस्त अमीरों को भोग-विलास व सुख आनन्द की वस्तुएं सीमित मात्रा में अनुमति पत्र से उपलब्ध होती

थीं। बाजार नियंत्रण से व्यापारी व दलाल वर्ग पीड़ित था। क्योंकि उसके सुधार और बाजार नीति सभी वर्गों के लिये किसी न किसी रूप में अहितकर थीं। फलतः वे उसका अन्त चाहते थे।

(६) **केन्द्रीयकरण**—अलाउद्दीन ने राज्य के समस्त अधिकार और सत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर लिये थे। प्रांतपतियों को भी कोई विशेष उल्लेखनीय अधिकार नहीं थे। उसके मंत्री या वजीर और परामर्शदाता केवल ऊँचे सचिव या श्रेष्ठ लिपिक व निरीक्षक के समान थे। सुलतान स्वयं ही अपना प्रधान मंत्री था। उसके सैनिक और असैनिक अधिकारी भी मार्गदर्शन के लिये सुलतान पर निर्भर रहते थे। जब तक अलाउद्दीन की समस्त शक्तियां और इन्द्रियां दृढ़ रहीं, वह सशक्त और स्फूर्तिवान रहा, उसका केन्द्रीयकरण से ओतप्रोत शासन सफल रहा। केन्द्रीयकरण का शासन शासक की प्रतिभा और व्यक्तित्व पर ही निर्भर रहता है। अलाउद्दीन खिलजी जब अशक्त और अकेला रह गया, तब उसके दृढ़ शासन सूत्र शिथिल हो गये और वे अल्पावधि में बिखर गये।

(७) **अलाउद्दीन की दुर्बलताएँ**—यौवनकाल में अत्यधिक इंद्रिय-सुखों और भोग विलास के कारण वृद्धावस्था में अलाउद्दीन का शरीर रुग्ण हो गया। वृद्धावस्था और रोगग्रस्त होने से अलाउद्दीन की मानसिक और शारीरिक शक्ति क्षीण हो गयी। त्वरित निर्णय करने की उसकी शक्ति लुप्त हो गयी, बुद्धि विवेक ने भी उसका साथ छोड़ दिया। अब वह चापलूसी सुनते-सुनते अधिक जिद्दी, चिड़चिड़ा और अस्थिर बुद्धि का हो गया था। दुर्भाग्यवश उसके श्रेष्ठ परामर्शदाताओं का देहावसान हो गया था और जो अवशेष थे वे भी वजीर मलिक काफूर के प्रभाव व शक्ति के कारण सुलतान तक स्वयं ही नहीं पहुँच पाते थे। उसने बिना सोचे समझे निम्न कोटि के व्यक्तियों, अयोग्य, ख्वाजासराहों को उत्तरदायित्वपूर्ण ऊँचे पदों पर पदोन्नत कर दिया था। मलिक काफूर जो स्वयं एक दास था, सुलतान द्वारा ताज-उल-मुल्क की उपाधि से सम्मानित होकर वजीर के पद पर पदोन्नत कर दिया गया था। अलाउद्दीन उसे अपना प्राणप्रिय समझता था। फलतः मलिक काफूर राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। अमीरों को सुलतान का यह पक्षपात समुचित नहीं लगा और वे काफूर के विरुद्ध विद्रोह और षडयन्त्र कर उसका विनाश करने पर तुल गये। इसके अतिरिक्त रोग और शोक के कारण अलाउद्दीन के हृदय में संदेह और क्रोध उत्पन्न हो गये थे। वह अपने स्वामिभक्तों को भी शत्रु समझने लगा था। अपनी संदेहास्पद प्रवृत्ति के कारण उसने अपने पुत्रों और बेगमों को भी कारागार में डाल दिया था। उसे यह संदेह हो गया था कि वे उसके विरुद्ध षड़यंत्र कर उसका वध करना चाहते थे। उसकी बेगम के दूसरे पुत्र शादी खां का विवाह उसके (बेगम के) भाई अलपखाँ की पुत्री से ही हो—बेगम की इस जिद्द से अलाउद्दीन का संदेह और भी पुष्ट हो गया। मलिक काफूर ने अपनी षड़यंत्री प्रवृत्ति और कुपरामर्श से इसमें अग्नि में घी के समान काम किया। अलाउद्दीन का पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया। इन सब दोषों से अलाई राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(८) पुत्रों की शिक्षा का अभाव और अयोग्य उत्तराधिकारी—अलाउद्दीन ने अपने पुत्रों की श्रेष्ठ शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं की। उसने अपने पुत्रों और उत्तराधिकारियों को सुयोग्य, कार्यकुशल और शिक्षित नहीं बनाया। इस कार्य की उसने अवहेलना की। इसलिये उसके अंतिम बुरे दिनों के समय और उसकी मृत्यु के बाद कोई भी योग्य उत्तराधिकारी ही न रहा जो उसकी लड़खड़ाती हुई प्रशासकीय व्यवस्था और छिन्न-भिन्न होते हुए साम्राज्य को संभालता। उसके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुबारिक और नासिरुद्दीन खुसरो अत्यंत ही निकम्मे, शक्तिहीन और सर्वथा अयोग्य सुलतान थे। ऐसी दशा में साम्राज्य का विशृंखलित होना स्वाभाविक था।

वास्तव में अलाउद्दीन ने जिस साम्राज्य और राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण किया था, उसकी नींव ही कमजोर थी, उसमें स्थायित्व के तत्वों का अभाव था। उसके विघटन और गिरने के आसार उसके जीवन के अन्तिम दिनों में प्रगट होने लगे थे और उसकी मृत्यु के कुछ ही समय बाद वह सारा ढांचा लड़खड़ाकर गिर पड़ा और नष्ट हो गया।

मलिक काफूर का षडयन्त्र और सुलतान शहाबुद्दीन उमर (सन् १३१६)

मुस्लिम इतिहासकार बर्नी ने लिखा है कि, "अलाउद्दीन ने फरोहा से भी अधिक रक्तपात किया और अनेक निरपराध व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा। अन्त में भाग्य ने उसके लिये एक विश्वासघाती शत्रु को उत्पन्न कर दिया जिसने शीघ्र ही उसके वंश को विनाश के गर्त में डाल दिया।" अलाउद्दीन ने अपने राजस्व के सुधारों और बाजार नियंत्रण की नीति को कार्यान्वित करने के लिये अत्यन्त ही नृशंसता से काम लिया। उसने अपने कठोर अधिनियमों और आदेशों को लागू करने के लिये प्रजा को बहुत पीड़ित किया और अमीरों, मलिकों, कर्मचारियों, व्यापारियों, दूकानदारों और कृषकों को अत्यधिक निर्मम दंड दिये। उसने विद्रोही मंगोलों को हाथी के नीचे कुचलवा दिये और उनके निर्दोष स्त्री-बच्चों को कत्ल करवा दिया। नवमुसलमानों (मंगोलों) के साथ जघन्यता का बर्ताव किया गया। उसने मिस्र के फरोहा जैसे अत्यंत निरंकुश और निर्दय नरेश से भी अधिक रक्त बहाया। वह हृदयहीनता और भीषण नर-संहार की सीमाओं को पार कर गया। पर भाग्य ने भी उसके रक्तपात का और चाचा जलालुद्दीन की हत्या का प्रतिशोध ले लिया। इसके लिये मलिक काफूर का उत्थान हुआ।

मलिक काफूर हिन्दू धर्म से परिवर्तित एक अत्यन्त ही गुणवान और रूपवान दास था जो गुजरात अभियान और विजय के समय सन् १२९७ में एक हजार दीनार में क्रय किया गया था और अलाउद्दीन को भेंट किया गया था। धीरे-धीरे मलिक काफूर अपनी प्रतिभा, गुणों व स्वामिभक्ति से उन्नति करते-करते नायब-ए-सुलतान के पद पर पहुँच गया था और अलाउद्दीन का सबसे अधिक कृपापात्र और विश्वासपात्र बन गया था। सन् १३०८ से १३१३ तक वह दक्षिण के सैनिक अभियानों का सेनापति रहा और देवगिरी, वारंगल, होयसल और मदुरा राज्यों को उसने जीता और दक्षिण भारत से विपुल धन-सम्पत्ति दिल्ली लाया। उसकी सफलताएँ इतनी

देदीप्यमान हो गयी थीं कि उनसे अत्यधिक प्रभावित होकर अलाउद्दीन ने उसे देवगिरी में उसका मुख्यालय बनाने के साथ-साथ दक्षिण भारत का अपना प्रतिनिधि व राज्यपाल नियुक्त किया। परन्तु वह अत्यंत महत्वाकांक्षी हो गया था और सुलतान के अधिक रोगग्रस्त हो जाने से वह दिल्ली आ गया और स्वयं सुलतान बनने के स्वप्न देखने लगा। उसने अपने मार्ग के प्रतिद्वंद्वियों का अन्त करने के लिये षड़यन्त्र रचा। उसने मलिके जहां के भाई शक्तिशाली अमीर अलपखां जो खिज्रखां का ससुर भी था व जिसका प्रभाव भी अधिक था, सुलतान की आज्ञा से मरवा डाला तथा सुलतान के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी खिज्रखां को ग्वालियर के दुर्ग में कैद कर भेज दिया। अब उसने अलाउद्दीन से ऐसा वसीयतनामा लिखवा लिया जिसमें खिज्रखां को उत्तराधिकार से वंचित किया गया था और सुलतान के अवयस्क पुत्र शहाबुद्दीन को सुलतान बनाने का वर्णन था।

सुलतान अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद अपने समर्थक अमीरों और मलिकों की सहायता से काफूर ने जनवरी सन् १३१६ में शहाबुद्दीन उमर को जिसकी आयु इस समय छः वर्ष की थी, सुलतान घोषित कर दिया और सत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर ली। वह हजार सतून (स्तम्भ) वाले राजभवन में दरबार लगाता और राज्य कार्य करता था। सुलतान शहाबुद्दीन उमर उसके हाथों में कठपुतली था। अब काफूर ने खिज्रखां के छोटे भाई शादीखां को भी सीरी के राजभवन में बन्दी बनाकर अंधा करवा दिया। अलाउद्दीन के तीसरे राजकुमार मुबारकखाँ को भी एक कोठरी में कैद कर दिया। अलाउद्दीन की विधवा पत्नि मलिका-ए-जहां से भी उसकी धन-सम्पत्ति और हीरे-जवाहरात छीनकर उसे भी बन्दी बना दिया। इस प्रकार उसने धीरे-धीरे अपने मार्ग को निष्कंटक बना लिया था। परन्तु अधिकार और सत्ता सम्पन्न हो जाने से काफूर असावधान और उन्मत्त हो गया था। अब उसने मुबारक को अंधा बनाने और शक्तिशाली अलाई अमीरों को राजसभा में पकड़वाकर कत्ल कर देने का षड़यन्त्र रचा। पर इस षड़यंत्र को कार्यान्वित होने से पूर्ण ही उसका वध कर दिया गया। काफूर की दुष्ट दमनीय रक्तपात की नीति से खिलजी वंश के समर्थक उससे असंतुष्ट हो गये थे। उन्होंने काफूर की हत्या का षड़यंत्र रचा और मुबारक का साथ दिया। जब काफूर ने मुबारक को अंधा बनाने के लिए कुछ व्यक्तियों को भेजा तब उन्हें मुबारक ने अपनी वक्तृत्व शक्ति से और धन के प्रलोभन से प्रभावित कर अपनी मुक्ति प्राप्त कर ली और मलिक काफूर का वध करने के लिये उन्हें प्रोत्साहित किया। अन्त में उन अलाई मलिकों ने जो हजार सतून राजप्रासाद की रक्षा करते थे, मलिक काफूर का वध कर दिया। इस प्रकार अलाउद्दीन की मृत्यु के ३५ दिन बाद मलिक काफूर का अन्त हो गया। अब मुबारक को अमीरों ने शहाबुद्दीन का संरक्षक स्वीकार कर लिया। पर दो माह बाद मुबारकशाह ने शहाबुद्दीन को बन्दी बनाकर ग्वालियरके दुर्गमे भेज दिया और वहां उसे अंधा बना दिया गया। इसके बाद वह स्वयं सुलतान बन गया।

सुलतान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह (सन् १३१६–१३२०)—मुबारक ने अमीरों और प्रजा की सद्भावना प्राप्त कर राज्य करना प्रारम्भ किया।

अलाई नियन्त्रण और कठोरता में शिथिलता—मुबारक ने जनता में लोकप्रिय बनने के लिए सुलतान अलाउद्दीन द्वारा निर्मित और प्रचलित नियंत्रण और कठोर राजनैतिक तथा आर्थिक प्रतिबंध समाप्त कर दिये, उसके अध्यादेशों को रद्द कर दिया और नये वजीफे तथा बिना लगान की भूमि दान में देना प्रारम्भ कर दिया। उसने बाजार नियंत्रण के नियम हटा लिये तथा लोगों पर से करों का भार हटा दिया। मुबारक ने —"क्षमा करो और भूल जाओ" की नीति का अनुसरण किया। परन्तु अलाई नियंत्रणों और अध्यादेशों के सहसा हट जानेसे उच्छृङ्खलता फूट पड़ी, अनैतिकता और कामुकता का बोलबाला हो गया तथा लोगों को बड़ा आराम हो गया।

मुबारक की अत्यधिक विलासिता—सुलतान बनने पर मुबारक इन्द्रिय सुखों में लिप्त हो गया। वह नवयुवतियों और लौंडों की संगतियों में रहने लगा। रमणियाँ अधिक संख्या में दुराचारियों की वासना पूर्ति का साधन बन गयीं। कहा जाता है कि वह नारी वेश में अपनी राजसभा में उपस्थित होता था और भांडों तथा वेश्याओं द्वारा बड़े-बड़े अमीरों को भी अपमानित कराया करता था। उसने रोजा और नमाज पूर्णतया त्याग दिया था। स्वयं सुलतान के इंद्रियलोलुपता और भोग-विलास में लिप्त होने से, अधिकारियों, अमीरों और सर्वसाधारण जनता पर भी इसका दुष्परिणाम हुआ। जनता में भी दुराचार, मदिरापान, व्यभिचार, विलास आदि दुर्गुण व्याप्त हो गये और इससे प्रशासन में अव्यवस्था और अस्वस्थता आ गयी।

खुसरोखाँ का उत्कर्ष—खुसरो गुजरात की एक नीच जाति का व्यक्ति था। उनका नाम हसन था। कोई उसे मेहतर मानते हैं तो अन्य उसे बखार राजपूत जाति का। उसने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। उसका हृदय जितना ही दूषित था, मस्तिष्क उतना ही स्पष्ट और कुशाग्र था। उसका पालन-पोषण मलिकशादी नामन खास हाजिब अलाई ने किया था। यह मुबारक के अधिक सम्पर्क में आने से अपनी प्रतिभा व गुणों के कारण सुलतान का प्रिय और विश्वासपात्र बन गया। सुलतान मुबारक ने उसे कई अधिकार दे दिये और वजारत का कार्य भी उसे सौंप दिया। शीघ्र ही वह सुलतान का नायब हो गया।

गुजरात और देवगिरी के विद्रोहों का अन्त—प्रशासन की शिथिलता और सुलतान मुबारक की भोग विलासिता से प्रेरित होकर गुजरात में अलपखां के समर्थकों ने विद्रोह कर दिया। पर मुबारक ने निर्दयता से उसका दमन कर दिया। इसी बीच देवगिरी के राजा हरपालदेव ने भी सल्तनत से अलग हो स्वतंत्रतापूर्वक राज्य करना प्राम्रभ कर दिया। इस पर मुबारक ने एक विशाल सेना लेकर देवगिरी पर आक्रमण किया। हरपालदेव परास्त हुआ। पकड़ा गया, उसका वध कर दिया गया और उसका सिर काट कर देवगिरी के प्रवेश द्वारपर लटका दिया गया। देवगिरी में सुलतानने अनेक मन्दिरों को लूटा और विध्वंस कर उनके स्थान पर मसजिदों का निर्माण किया। उसने मलिक यकलखी को देवगिरी का सूबेदार नियुक्त किया। इस विजय के बाद मुबारक ने खुसरोखां को सुदूर दक्षिण भारत में मदुरा जीतने के लिए भेजा और वह स्वयं दिल्ली लौट आया।

शासन में अव्यवस्था—मुबारक के स्वयं के अत्यधिक विलासी जीवन से वातावरण दूषित हो गया। वह इतना दुश्चरित्र हो गया था कि बर्नी के कथनानुसार वह कभी-कभी नग्न होकर अपने दरबारियों के बीच दौडा करता था और उनके वस्त्रों पर मलमूत्र कर देता था। इस विलासमय दूषित वातावरण का परिणाम यह हुआ कि प्रजा के हृदय से सुलतान और उसके ताज व पद (Kingship) की प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी। राज्य में अव्यवस्था और विद्रोह की अग्नि जलने लगी। देवगिरी के सूबेदार यकलखी ने विद्रोह कर अपने को स्वतन्त्र नरेश घोषित कर दिया। पर वह परास्त हुआ और उसे मुबारक ने अंग-भंग का दण्ड दिया। खुसरो के सौतेले भाई ने गुजरात में विद्रोह किया पर वह भी पराजित हुआ। दक्षिण में खुसरोखाँ ने भी अपने स्वतंत्र राज्य को स्थापित करने के लिये प्रयत्न किये पर सुलतान ने उसे दिल्ली बुला लिया।

मुबारक का पतन, षड़यन्त्र और हत्या—अपने विलास और दुश्चरित्र से मुबारक अधिक अलोकप्रिय हो गया था। इसलिये अलाउद्दीन के चाचा युगरशखाँ के पुत्र असदुद्दीन ने मुबारक की हत्या करने का षड़यंत्र रचा। उसने योजना बनाई कि जब मुबारक अपनी स्त्रियों सहित मदिरापान में उन्मत्त हो निकले, तब उसकी हत्या कर दी जाय तथा खिज्रखां के दस वर्षीय पुत्र शमसुद्दीन महमूदखां को सुलतान बना दिया जाय। पर यह षड़यंत्र विफल हुआ और असदुद्दीन और उसके सम्बन्धियों और समर्थकों की शाही-शिविर के सामने हत्या कर दी गयी।

अब मुबारक और भी अधिक कठोर, अत्याचारी, निरंकुश, व्यभिचारी, विलासी और दुराचारी हो गया। नीच कुलोत्पन्न कृपापात्र खुसरोखां के प्रभाव में आकर सुलतान ने निर्दोषों की हत्या करना प्रारम्भ कर दी और उसने अपने तीनों भाइयों का वध करवा दिया। धीरे-धीरे खुसरोखाँ राजसत्ता हथियाने और स्वयं सुलतान बनने का महत्वाकांक्षी हो गया। उसने मुबारक के कामाग्नि में ग्रस्त और असावधान रहने का लाभ उठाया। खुसरोखाँ ने सुलतान से राजभवन के द्वारों की कुंजियां अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को दिलवा दी। तब सुलतान की हत्या का षड़यंत्र रचा गया जिसमें खुसरोखाँ का मामा रन्धोल तथा जहरिया बरार प्रमुख थे। १४ अप्रेल सन् १३२० को खुसरो के षड़यंत्रकारी सैनिक मुबारक के राजभवन में द्वारपालों की हत्या करके प्रवेश कर गये। इनका शोरगुल सुनकर सुलतान मुबारक ने खुसरोखां से इसका कारण पूछा। तब खुसरोखां ने उत्तर दिया कि "खासे के अश्व छूट गये हैं। वे हजार सतून (राजभवन) में दौड़ रहे हैं और लोग उन्हें पकड़ना चाहते हैं।" इतने में ही खुसरो के सैनिक सुलतान के कक्ष की ओर लपक पड़े; आतंकित होकर सुलतान रनवास की ओर भागा। किन्तु खुसरोखां ने उसके बाल पकड़ कर रोक लिया और सैनिकों ने शीघ्र ही उसका सिर काटकर राजभवन के चौक में डाल दिया, मुबारक की हत्या से खिलजी वंश का अन्त हो गया।

सुलतान नासिरुद्दीन खुसरो (१३२०)—सुलतान मुबारक की हत्या करने के बाद खुसरोखां ने अपने-आपको सुलतान नासिरुद्दीन के नाम से अमीरों के सम्मुख प्रतिष्ठित कर लिया। मुस्लिम इतिहासकारों ने नासिरुद्दीन खुसरो के राज्य काल को आतंक का शासन कहा है क्योंकि उसने निर्मम अत्याचार किए। उसने सभी प्रमुख

अमीरों को राजप्रासाद में आमंत्रित किया और वहां उन्हें रात्रि भर बन्द रखा और इस अवधि में खुसरो के समर्थकों ने राजप्रासाद में प्रवेश कर अवशेष अलाई राजकुमारों, रानियों और सम्बन्धियों की हत्या कर दी। "तारीख-ए-फीरोजशाही" ग्रंथ के अनुसार खुसरो के अनुयायियों और दरबारियों ने अलाई और कुतुबीकाल के प्रतिष्ठित अमीरों की स्त्रियों एवं मुसलमान दासियों पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने अपने अधिकार के उन्माद में कुरान का उपयोग कुर्सी के रूप में किया। मसजिद के ताखों में मूर्तियाँ रखकर उनकी पूजा प्रारम्भ कर दी। अनेक मुस्लिम अमीरों की हत्या कर दी गई और उनकी दास-दासियां, सम्पत्ति, बखारों और हिन्दुओं में वितरित कर दी गयी।

खुसरो के इन अत्याचारों से अधिकांश लोग दुखी हो गये। इसके विरोधी अमीरों, मलिकों व लोगों का नेतृत्व फखरुद्दीन जूना खां (मुहम्मद तुगलक) ने किया। उपरोक्त घटनाओं की समस्त सूचनाएँ जूना खां अपने पिता गाजी मलिक को सीमांत क्षेत्र में दिपालपुर भेजता रहा और बाद में वह स्वयं भी यहां पहुँच गया। अब गाजी मलिक स्वयं दिल्ली सल्तनत को अधिकृत करने के लिए अवसर ढूंढ़ने लगा। अब गाजी मलिक ने जो पंजाब में सीमान्त क्षेत्र का शासक और अलाउद्दीन का स्वामिभक्त अधिकारी था, अनेक सरदारों को सहायता के लिये सन्देश भेजे और स्वयं एक विशाल सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। सितम्बर सन् १३२० मे सुलतान खुसरो और गाजी मलिक की सेनाओं में इन्द्र पट नामक स्थान में युद्ध हुआ। खुसरो की अशिक्षित, असंगठित, और अव्यवस्थित सेना मे भगदड़ मच गयी। खुसरो परास्त हुआ, वह पकड़ लिया गया और उसका वध कर दिया गया। अब सारी सत्ता गाजी मलिक के हाथों में आ गयी। अलाई वंश में सुलतान बनने के लिए कोई भी जीवित न रहने से खिलजी वंश और राज्य का पतन हो गया और गाजी मलिक अमीरों के अनुरोध से दिल्ली के सिंहासन पर सुलतान गयासुद्दीन तुगलक के नाम से बैठा। इसलिए अब तुगलक वंश का प्रारम्भ होता है।

खिलजी साम्राज्य के पतन के कारण

दिल्ली का खिलजी साम्राज्य जिसे जलालुद्दीन खिलजी ने स्थापित और पोषित किया और जिसे अलाउद्दीन ने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया. शीघ्र ही खोखला हो गया और तीस वर्ष की अवधि में ही उसका पतन हो गया। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) **लोकप्रिय शासन का अभाव**—खिलजी सुलतान लोकप्रिय नहीं थे। जलालुद्दीन अपनी असीम उदारता, दयालुता और युद्ध व रक्तपात की अप्रियता के कारण खिलजी और बलवनी अमीरों व युवक सेनापतियों में अप्रिय हो गया था। इसकी दब्बू नीति से उसकी उपेक्षा की जाने लगी थी। उसके उत्तराधिकारी अलाउद्दीन खिलजी ने समस्त उत्तरी व दक्षिणी भारत को जीतकर साम्राज्य का विस्तार किया, शत्रुओं का वध एवं दमन किया, देश में शांति स्थापित की और एक निरंकुश राजतंत्र की नींव डाली। परन्तु अलाउद्दीन भी अपनी निरंकुशता, नृशंसता, कठोरता और

निर्मम दमन की पाशविक नीति के कारण जनसाधारण का हृदय सम्राट न बन सका। उसका शासन भय, आतंक, पाशविक शक्ति, सैन्य बल, युद्ध और रक्तपात पर आधारित था। जनता की सद्इच्छा, सद्भावना, सहयोग, श्रद्धा, भक्ति और स्नेह पर अवलम्बित नहीं था। उसका साम्राज्य और प्रशासन दुर्बल नींव पर अवलंबित था, उसमें स्थायी तत्वों का अभाव था। अलाउद्दीन का उत्तराधिकारी सुलतान मुबारकशाह अपनी इन्द्रिय लोलुपता, भोगविलास, मद्यपान, दुराचार, अनाचार, अनैतिकता, दुश्चरित्रता और दुर्बल शासन के कारण जनसाधारण और अमीरों की दृष्टि में बहुत गिर गया था। उसका अन्त जनहित में आवश्यक था।

(२) **सुलतान अलाउद्दीन की सैनिक तानाशाही और असफल योजनाएँ**—निस्सन्देह अलाउद्दीन ने राज्य व देश की बाह्य सुरक्षा की, आंतरिक विद्रोहों व विरोध का दमन कर शांति और व्यवस्था स्थापित की और संपूर्ण देश को समान प्रशासन के अन्तर्गत लाने का प्रयास किया। पर जिन राजस्व, और आर्थिक सुधार योजनाओं को उसने कार्यान्वित किया, उनसे जनता, अमीर, मलिक, व्यापारी सभी वर्गों के लोग असन्तुष्ट हो गये। अमीरों के पारस्परिक मिलन, आनन्द, उत्सव, समारोह, वैवाहिक सम्बन्ध, सुरापान, विलासी जीवन आदि पर उसके निषेध और नियंत्रण से अमीर मलिक व अधिकारी वर्ग अत्यंत ही रुष्ट हो गया था। अमीरों और दरबारियों व जनता की स्वतंत्रता गुप्तचर विभाग ने समाप्त करदी थी। राजस्व सुधारों से कृषकों और हिन्दुओं को अत्यधिक क्षति उठाना पड़ी थी। हिन्दू-दमन नीति से हिन्दू घोर दरिद्रता में दब गये थे। व्यापारी और व्यवसायी बाजार नियंत्रण और राज करों के भार से कराह रहे थे। अलाउद्दीन के निरंकुश शासन और सैनिक तानाशाही से जो अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे, जनता पिसती जा रही थी। सुलतानके सुधार, उनकी योजनाएँ और बाजार नियंत्रण व सैन्य विस्तार युद्ध और संकट काल में बनाये गये थे। ये युद्ध काल और संकटग्रस्त स्थितियों का सामना करने के लिये थीं, पर अलाउद्दीन ने इन्हें शान्तिकाल में भी जबरन लोगों पर लादे रखा। समाज का प्रत्येक वर्ग अलाउद्दीन की इस सैनिक तानाशाही और सुधारों से असन्तुष्ट था। इस तीव्र असन्तोष की आग इतनी व्याप्त हो गयी कि वह खिलजी साम्राज्य को भस्म कर गयी।

(३) **मंगोल आक्रमण**—मंगोल भारत पर निरंतर आक्रमण करके, तुर्क सल्तनत को विध्वंस करने पर तुले हुए थे। बार-बार होने वाले मंगोल आक्रमणों ने खिलजी साम्राज्य को दुर्बल कर दिया तथा दिल्ली सल्तनत के भाग्य व नीति पर गहन प्रभाव डाला। यद्यपि अलाउद्दीन ने सीमान्त रक्षा की नीति अपनाकर तथा दृढ़ स्थायी सेना स्थापित करके मंगोलों के आक्रमणों को अवरुद्ध कर दिया था, फिर भी ये यत्र-तत्र आक्रमण करते ही गये। खिलजी साम्राज्य की आय का अधिकांश भाग सेना, सीमा सुरक्षा और मंगोलों से होने वाले युद्धों पर व्यय होता था। इससे जन-कल्याण, उद्योग-व्यवसाय की ओर खिलजी सुलतानों का ध्यान आकर्षित न हो सका।

(४) **अयोग्य, दुर्बल और लोभी अधिकारी**—खिलजी सुलतानों ने शक्ति और साधन सम्पन्न होने पर भी अधिकारी वर्ग के प्रशिक्षण, योग्यता, कार्य क्षमता और स्वामि-भक्ति की ओर किंचित भी ध्यान नहीं दिया। उन्होंने सुदृढ़, दक्ष, स्वामि-भक्त पदाधिकारियों को नियुक्त नहीं किया, अपितु चापलूस, लोभी और अयोग्य व्यक्तियों को पदाधिकारी नियुक्त किया। उन्होंने अपने चाटुकार कृपापात्र अमीरों को ही ऊँचे पदों पर नियुक्त किया तथा अनुपयुक्त व्यक्तियों पर अपरिमित विश्वास किया। इससे सुलतानों की हत्या सहज में हो सकी। जलालुद्दीन ने अलाउद्दीन और उसके कृपापात्र अधिकारियों पर विश्वास कर लिया और स्वयं अपनी मृत्यु को आमंत्रित किया, उसकी हत्या हो गई। सुलतान अलाउद्दीन ने बुद्धिमान, शुभचिंतक और हितैषी पदाधिकारियों को पृथक कर दिया और गुलाम बच्चें, तुच्छ कमीने व्यक्तियों व अयोग्य ख्वाजासराओं को ऊंचे पद दिये। इन लोगों में शासकीय प्रतिभा का अभाव था। यही नहीं, अलाउद्दीन ने अपने चापलूस महत्वाकांक्षी मंत्री मलिक काफूर को न समझकर उसे शासन के सभी सर्वोच्च अधिकार और सत्ता दे दी। काफूर की कुमंत्रणाओं से अलाउद्दीन ने अपने पुत्रों तथा पत्नि तक को बन्दी बना दिया। परिणाम यह हुआ कि मलिक काफूर ने विष देकर अलाउद्दीन की हत्या-करवा दी। इसी प्रकार खिलजी साम्राज्य के अन्तिम सुलतान मुबारकशाह ने भी अपनी कामुकता, अनैतिकता, अयोग्यता और मानवीय दुर्बलताओं के कारण अपने श्रेष्ठ पदाधिकारियों में परिवर्तन कर अपने कृपापात्र खुसरोखां को सर्वोच्च पद दे दिया और उस पर विश्वास कर बैठा। खुसरोखां ने जो कुत्सित भावनाओं का षड़यन्त्रकारी था, इससे लाभ उठाया और मुबारक की जीवन-लीला समाप्त कर दी।

(५) **अलाउद्दीन के बाद शक्तिशाली सुदृढ़ सेना का अभाव**—अलाउद्दीन ने दृढ़ सशक्त स्थायी सेना स्थापित की और उसके लिये अनेक सैनिक प्रशासकीय और आर्थिक सुधार किये और भ्रष्टाचार का उन्मूलन किया। इस शक्तिशाली सेना के बल पर वह शासन भी कर सका। परन्तु उसके देहावसान के बाद उसके अयोग्य उत्तराधिकारी इस स्थायी सेना को बनाये नहीं रख सके, उन्होंने उसकी शक्ति, तत्परता और सतर्कता को नष्ट कर दिया। सुलतान की सैनिक शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी और इसके साथ ही केन्द्रीय शक्ति भी क्षीण हो गयी। इससे अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी अन्य सुलतानों की भाँति प्रान्तपतियों की सेनाओं पर निर्भर रहने लगे और शक्तिशाली सेना वाले अमीरों के हाथ की कठपुतली बन गये। इससे उनके पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(६) **दासों का पतन**—दिल्ली के तुर्क सुलतानों के शासन काल में दासों का बोलबाला रहा था। सुलतानों के स्वामिभक्त, योग्य, प्रतिभाशाली दासों ने राज्य की सर्वोच्च शक्ति को अपने अधिकार में कर लिया और वे सुलतान बन गये। उन्होंने सभी प्रकार से सल्तनत की सेवाएँ कीं इन दासों में कुतुबुद्दीन ऐबक इल्तुतमिश, बलबन आदि विशेष प्रशंसनीय और उल्लेखनीय हैं। ऐसे हितैषी, शुभचिंतक, प्रतिभा-सम्पन्न और सुयोग्य दासों की प्रथा क्षीण हो गयी। इनके स्थान पर सुलतान के दास चापलूस, निकम्मे, विश्वासघाती, अनैतिक, अयोग्य और षड़यन्त्रकारी हो गये। मलिक

काफूर और खुसरो जैसे महत्वाकांक्षी, विश्वासघाती षड़यन्त्री दासों ने अपने स्वामियों की सुरक्षा करने और उनकी शक्ति को अधिक स्थायी और सुदृढ़ करने की अपेक्षा उनके प्राण ही ले लिए। काफूर और खुसरो अलाई राजकुमारों और राजपरिवार के सदस्यों की हत्या के मूल में थे। दास प्रथा और उसकी दुर्बलता अलाई साम्राज्य के पतन का कारण हो गयी।

(७) **निश्चित उत्तराधिकार के नियम का अभाव**—तुर्क सुलतानों में निश्चित उत्तराधिकार का कोई लिखित तथा निर्दिष्ट अधिनियम या अध्यादेश नहीं था। ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकारी होने की परम्परा नहीं थी। रक्तपात, युद्ध और तलवार के बल पर उत्तराधिकार का प्रश्न हल किया जाता था। Survival of the fittest के सिद्धान्त का बोलवाला था। इसके अनुसार जिस व्यक्ति में शक्ति हो वह सुलतान हो सकता था। इससे अनेक शक्तिशाली सैन्यबल वाले अमीर, मलिक और प्रान्तपति विद्रोह, उपद्रव, षड़यन्त्र और हत्याएँ करके शासन हस्तगत करने का प्रयत्न करते थे। इनमें जो भी व्यक्ति सफलता प्राप्त करता था, वह सुलतान बन जाता था, खिलजी राजवंश में भी यही हुआ और अन्तिम खिलजी सुलतान के वध के साथ ही साथ अवशिष्ट उत्तराधिकारियों का भी अन्त हो गया और उस समय सबसे शक्तिशाली अमीर और अधिकारी गाजी मलिक ने सिंहासन अपने अधिकार में कर लिया।

(८) **दुर्बल एवं अयोग्य उत्तराधिकारी**—सुलतान अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी अयोग्य, शक्तिहीन और प्रतिभाहीन हुए। यह आवश्यक नहीं कि एक योग्य कुशल शासक का उत्तराधिकारी भी योग्य हो। यदि अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद दृढ़, योग्य, सशक्त, अनुभवी, और कार्यदक्ष राजकुमार सुलतान बनता, तो खिलजी राज्य का पतन इतना शीघ्र नहीं हो पाता। इसके लिये स्वयं अलाउद्दीन भी उत्तरदायी है। अलाउद्दीन ने अपने राजकुमारों और उत्तराधिकारियों को समुचित राजसी शिक्षा नहीं दी। उसने अपने पुत्रों को शिक्षित कर योग्य शासक और प्रजापालक सुलतान बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया। वे उपेक्षित हो गये। फलतः जब वे स्वयं सुलतान हुए तब अशिक्षित, अज्ञानी, अनुभवहीन, अयोग्य और अदूरदर्शी होने से वे कपटी, विश्वासघाती, चापलूस, अनुपयुक्त पदाधिकारियों पर निर्भर रहे। अलाउद्दीन का ज्येष्ठ पुत्र खिज्रखां तथा उसके बंधुगण दुर्बल और अयोग्य निकले तथा इन्द्रिय सुखों व भोग-विलास में लिप्त रहने से वे अपने पिता द्वारा स्थापित साम्राज्य की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ रहे। राजकुमारों के अज्ञान के कारण मलिक काफूर ने राज परिवार के सदस्यों में द्वन्द्व उत्पन्न कर दिया और राजवंश में फूट डाल दी। इससे अलाई राजवंश की शक्ति क्षीण हो गयी। सुलतान मुबारकशाह भी अपने वजीर खुसरोखां के वास्तविक स्वरूप को राजकीय शिक्षा के अभाव में पहिचान न सका और उसी के हाथों उसका वध हुआ। समुचित राजकीय शिक्षा, अनुभव और प्रशासन संबंधी क्षमता, योग्यता और कार्यकुशलता के अभाव में अलाउद्दीन के शक्तिहीन उत्तराधिकारी अपने पिता द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य को न तो संभाल सके न विद्रोहियों, षड़यंत्रकारियों और विरोधी प्रांतपतियों का दमन ही कर साम्राज्य और

केन्द्रीय सत्ता को सुरक्षित रख सके। ऐसी दशा में अलाई राज्य का पतन अवश्यं-भावी था।

(९) **अनैतिकता और दुराचार**—अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी अयोग्य ही नहीं थे, अपितु वे अनैतिक और दुश्चरित्र भी थे। जब सुलतान रोगग्रस्त था और शासन की समस्या विकट हो रही थी तब उसके उत्तराधिकारी पुत्र खिज्रखां और शादीखां भोगविलास में मग्न थे और अलाउद्दीन की बेगमों को अपनी दावतों और समारोहों से ही अवसर नहीं मिल पाता था। अपने यौवनकाल में अलाउद्दीन स्वयं भी इन्द्रिय-लोलुप और विलासी रहा था। सुलतान मुबारकशाह तो अपनी कामुकता, इन्द्रिय-लोलुपता, दुराचार, व्यभिचार, मदिरापान, अनैतिकता, आदि दुर्गणों के लिये प्रख्यात था। उसका प्रभाव समस्त प्रशासन और प्रजा पर भी आया। पवित्रता और सदाचार के जीवन का अन्त हो गया। राज्य में सुरा और सुन्दरी ही सब कुछ थी। दरबारियों और अमीरों व मलिकों का भी चारित्रिक पतन हो गया। रूप-वान गायक और यौवनांगनाओं का गली-गली में बाहुल्य हो गया। इमरद गुलाम, रूपवान ख्वाजासरा, और लावण्यमय सुन्दर कनीजों या दासियों का मूल्य बढ़कर पांच सौ, हजार और दो हजार तनका या टंक हो गया। नासिरुद्दीन व खुसरोखां के शासन काल में भी ऐसे निकृष्ट और विलासी जीवन में कोई सुधार नहीं हुआ। अनेक व्यक्ति तो ऐसे घृणास्पद; निकम्मे शासन के अधीन रहना अपने आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते थे। ऐसे अनैतिक और नीतिविहीन शासन का पतन अवश्यंभावी था। जब गाजी मलिक ने उसका उन्मूलन किया तो उसे कोई विशिष्ट कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा।

(१०) **हिन्दुओं की खिलाफत**—दिल्ली के सुलतानों ने अपने साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ धर्मान्धता के कारण हिन्दुओं की स्वतन्त्रता का अपहरण किया। हिन्दू इन सुलतानों की प्रजा के बहुसंख्यक बहुमत वाले लोग थे। अलाउद्दीन ने तो अपनी इस बहुसंख्यक प्रजा की स्वतन्त्रता का अपहरण ही नहीं किया, अपितु उसे अनेकानेक यातनाएँ और कष्ट भी दिये। उसने उन पर विभिन्न करों का बोझ लाद दिया, जजिया लगाया और इन करों को निर्ममता से वसूल किया गया। बाजार नियंत्रण और राजस्व के परिवर्तनों ने भी हिन्दुओं के हितों की बलि दे दी। अलाउद्दीन ने तो हिन्दुओं को आर्थिक दृष्टि से इतना अधिक पंगु बना दिया था कि उनकी स्त्रियों को मुस्लिम परिवारों में जीविका उपार्जन के लिये निम्नतर कार्य करना पड़ते थे। इस-लिये हिन्दुओं में अलाई शासन के प्रति अत्यंत ही रोष था। वे तुर्की शासन के जूड़े को उतार फेंकने को तत्पर थे और तुर्कों के विरोध में विद्रोह व षड़यंत्र करने की सदा प्रतीक्षा करते रहते थे।

(११) **आन्तरिक विद्रोह, षड़यंत्र और हत्याएँ**—खिलजी राज्य की तीस वर्ष की अवधि का इतिहास आन्तरिक उपद्रवों, विद्रोहों, षड़यन्त्रों और हत्याओं का इतिहास है। खिलजी राज्य की स्थापना आन्तरिक विद्रोह, रक्तपात और हत्या से हुई और इसका अन्त भी इसी प्रकार हुआ। यदि कैकुबाद की हत्या के फलस्वरूप जला-लुद्दीन सुलतान बना, तो अलालुद्दीन खिलजी जो खिलजी साम्राज्य और दिल्ली सल्त-

नत का प्रमुख सुल्तान था, अपने चाचा और ससुर सुलतान जलालुद्दीन की हत्या करके सुलतान बना। छल, कपट, संघर्ष, षड़यंत्र और रक्तपात पर अलाई राज्य स्थापित हुआ और इसका विकास व उत्थान भी ऐसे ही वातावरण में होता रहा। अलाउद्दीन भी आन्तरिक विद्रोहों, फूट और विश्वासघात का शिकार हुआ। उसके नायब वजीर और सेनाध्यक्ष तथा कृपापात्र मलिक काफूर ने विष देकर उसका अन्त कर दिया और अलाई राजकुमारों को बन्दी बना लिया। मलिक काफूर भी षणयंत्रों से बच न सका और पैंतीस दिन के नृशंस शासन के पश्चात उसकी भी हत्या कर दी गयी। उसके बाद सुलतान मुबारकशाह हुआ। उसने भी अपने भाई खिज्रखां, शादीखां व शहाबुद्दीन उमर का निर्दयता से वध करवा दिया और अपनी राजनैतिक स्थिति दृढ़ कर ली। उसने अपने ससुर जफरखां और चचेरे भाई असदुद्दीन की भी हत्या करवा दी थी। अलाउद्दीन के समान उसने भी विद्रोहियों को नृशंसता से मौत के घाट उतार दिया और निरपराध स्त्रियों व बच्चों को कत्ल करवा दिया। देवगिरी नरेश हरपालदेव का मस्तक काट कर उसे देवगिरी के सिंह द्वार पर लटका दिया। खुसरोखां ने षड़यन्त्र करके ऐसे रक्तरंजित सुलतान मुबारक की हत्या कर उसका अंत कर दिया। इस प्रकार रक्तपात का प्रतिशोध, रक्तपात से लिया जाता रहा और सारे शासन में उपद्रवों, विद्रोहों, षड़यन्त्रों और हत्याओं की शृङ्खला-सी बँध गयी। राजप्रासाद वैमनस्य, प्रतिशोध, षड़यंत्र, हत्याओं व रक्तपात के क्रीड़ास्थल बन गये थे। राजसत्ता शिथिल हो गयी थी और प्रशासन अस्त-व्यस्त। केन्द्रीय सत्ता और राज्य की सुरक्षा करने वाला कोई दृढ़, सशक्त व्यक्ति नहीं था। उपरोक्त तत्वों और दुर्बलताओं से खिलजी साम्राज्य क्षीण होकर लड़खड़ाने लगा था। अंत में खुसरोखां और गाजी मलिक के तीव्र आघातों ने उसे धराशायी कर दिया।

सारांश

सुलतान अलाउद्दीन के अन्तिम दिन और उसकी मृत्यु—अलाउद्दीन के अन्तिम दिन सुख व शान्ति में व्यतीत नहीं हुए। वृद्धावस्था व रोगग्रस्त दशा के कारण वह क्रोधी, संदेहशील और विवेकहीन हो गया था। मलिक काफूर ने इसका लाभ उठाकर राजसत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत करने के लिए षड़यन्त्र रचा और अलाउद्दीन के पुत्रों को कारागृह में डलवा दिया और अलाउद्दीन के हितैषी, सम्बन्धियों व अधिकारियों को पृथक करवा दिया। इसी बीच अलाउद्दीन के शक्तिहीन और रुग्ण होने से गुजरात, चितौड़ और देवगिरी में विद्रोह हुए और साम्राज्य विघटित हो गया। अन्त में दुःख और निराशा में अलाउद्दीन का देहान्त हो गया।

अलाउद्दीन का मूल्यांकन—अलाउद्दीन के चरित्र, गुणों और उपलब्धियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है :—

(१) **जन्मजात सेनानायक और विजेता**—अलाउद्दीन में जन्म से ही सैनिक प्रतिभा और योद्धा के गुण थे। उसने अपने बाहुबल से और इन गुणों से लगभग समस्त भारत को जीत कर दिल्ली साम्राज्य का खूब विस्तार किया था। वह प्रथम सुलतान था जिसने विंध्या पार दक्षिण में मुस्लिम राज्य फैलाया और उसके

सैनिक नेतृत्व में तुर्की साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। उसने अपनी वीरता, रणकुशलता से मंगोलों को खदेड़ दिया, आन्तरिक विद्रोहों को कुचल दिया और राज्यों में विघटनकारी प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया।

(२) महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी—वह विश्व-विजय का और विभिन्न योजनाओं का महत्वाकांक्षी था। उसने एक छोटे-से राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया और यह साम्राज्य दिल्ली सल्तनत का सबसे अधिक विस्तृत और दृढ़ साम्राज्य था।

(३) कुशल प्रशासक—कुशल प्रशासक के नाते अलाउद्दीन ने प्रशासन सुदृढ़ व चुस्त बनाया और राजव्यवस्था में आमूल परिवर्तन और मौलिक सुधार किये। दृढ़ स्थायी सेना, मूल्य निर्धारण, बाजार नियंत्रण, भ्रष्टाचार उन्मूलन, राजस्व सुधार, सैनिक सुधार, संगठित कर व्यवस्था, सफल दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था, निष्पक्ष न्याय और कठोर दण्ड विधान आदि उसकी प्रशासकीय प्रतिभा और सृजनात्मक प्रवृत्ति के ज्वलंत उदाहरण हैं।

(४) क्रूर, निरंकुश सैनिक तानाशाह—अलाउद्दीन बर्बर, स्वेच्छाचारी सैनिक तानाशाह था जिसकी इच्छा ही कानून था और जिसका निर्णय ही अन्तिम निर्णय था। वह राजाज्ञाओं का उल्लंघन करने वालों को क्रूरता से दण्ड देता था। तलवार, शक्ति, सेना, आतंक और रक्तपात पर उसकी सत्ता अवलंबित थी। साध्य से साधन का औचित्य सिद्ध होता है—इसमें वह विश्वास करता था।

(५) यथार्थवादी, बुद्धिमान और दृढ़ निश्चयी सुलतान—अलाउद्दीन अपने जीवन और प्रशासन में यथार्थवादी, व्यावहारिक, बुद्धि विवेकयुक्त, प्रतिभावान और शीघ्र दृढ़ निश्चय करने वाला सुलतान था। प्रशासन परामर्श और युद्ध में वह दृढ़ निश्चय और कृतसंकल्प होकर कार्य करता था। उसमें व्यक्तियों और प्रतिभाओं को परखने की और उनसे अपनी राजनैतिक व प्रशासकीय आवश्यकताओं की पूर्ति करवाने की अपूर्व शक्ति थी। इन्हीं गुणों से उसने प्रशासन को सुव्यवस्थित और सुसंगठित कर दिया।

(६) धर्मपरायण सुलतान—यद्यपि अलाउद्दीन नमाज पढ़ना, रोजा रखना और कुरान की शराओं के अनुसार कार्य करने में अभिरुचि नहीं रखता था, पर वह सच्चा मुसलमान था। वह इस्लाम और खुदा के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखता था तथा संतों, पीरों, मुल्ला-मौलवियों का आदर करता था। परन्तु उसने उलमाओं को राज्य प्रशासन में हस्तक्षेप करने से वंचित कर दिया था। हिन्दुओं के प्रति उसमें असहिष्णुता थी और उसने उनके लिये निर्मम दमन की नीति अपनाई।

(७) कला और साहित्य का पोषक—अशिक्षित होने पर भी सुलतान विद्यानुरागी और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसका दरबार विद्वानों, कवियों, विचारकों, मुल्ला-मौलवियों, आदि से सुशोभित था और उनमें खुसरो, शेखुल-इस्लाम, रुक्नुद्दीन, अलाउल मुल्क, मुगीसुद्दीन, अर्सलान कुलाही, हसन देहलवी आदि प्रमुख थे। अलाउद्दीन ने स्थापत्य कला को भी प्रोत्साहन दिया और सीरी का दुर्ग, अलाई दरवाजा, हजारसितून महल, कई दुर्ग और मसजिदें बनवायीं।

(८) **चारित्रिक दुर्बलताएँ**—अलाउद्दीन में चारित्रिक दोष और दुर्बलताएँ थीं, उसका व्यक्तिगत जीवन दूषित था। वह भोगविलास में लिप्त रहता था तथा स्वार्थ-लोलुप और महत्वाकांक्षी था। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये वह अनाचार, अत्याचार, निर्दोषों की निर्मम हत्याएं करने में किंचित भी नहीं हिचकता था। उसने तलवार, युद्ध, रक्तपात, क्रूरता, निर्मम दमन की नीति अपनाई।

इन दोषों के होते हुए भी अलाउद्दीन एक महान विजेता, सुयोग्य शासक, सफल राजनीतिज्ञ, व्यावहारिक कूटनीतिज्ञ, श्रेष्ठ जन्मजात सेनानायक व योद्धा और प्रतिभावान सुलतान था। भारत के प्रथम श्रेणी के शासकों में उसका उच्च-स्थान है।

अलाउद्दीन के शासन के दोष और उसके पतन के कारण

अलाउद्दीन के प्रशासन और सुधारों में मूलभूत दोष थे। इससे उसके साम्राज्य में स्थायित्व नहीं आ पाया। अलाउद्दीन के वे दोष और पतन के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) अलाउद्दीन निरंकुश स्वेच्छाचारी सैनिक तानाशाह था। उसने सैनिक शक्ति व आतंक से अमीरों को दबाया, विद्रोहों को कुचला, सुधारों व अध्यादेशों को कार्यान्वित किया। उसका सारा शासन सैनिक शक्ति पर आधारित था, न कि प्रजा की सद्भावना, श्रद्धा, भक्ति और सहानुभूति पर।

(२) अलाउद्दीन ने हिन्दुओं का जो उसकी बहुसंख्यक प्रजा थी, निर्ममता से दमन किया, उन पर जजिया और अनेक कर लगाये और उन्हें कठोरता से वसूल किये। हिन्दुओं को अत्यधिक दरिद्र बना दिया गया। इससे वे सुलतान के विरोध में हो गये।

(३) **अमीरों व मलिकों का दमन**—अलाउद्दीन ने प्रभावशाली अमीरों और मलिकों की जागीरें जप्त कर लीं, उनके उत्सव, समारोह, विवाह, मद्यपान, मनोरंजन आदि निषेध कर दिये। इससे वे भी अलाई राज्य के शत्रु हो गये।

(४) **गुप्तचर व्यवस्था**—सारे साम्राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा था। वे लोगों और अमीरों के जीवन में हस्तक्षेप करते थे। इससे लोग दुखी और आतंकित हो गये थे।

(५) **राजस्व और आर्थिक सुधार**—सुलतान के भूमि कर सम्बन्धी सुधारों से, मूल्य निर्धारण व बाजार नियन्त्रण से तथा अन्य धार्मिक सुधारों से, उन्हें कार्यान्वित करने के कठोर नियमों और दंड-विधान से सभी वर्गों के हितों को आघात लगा। वे ऐसे शासन का अन्त चाहते थे।

(६) **केन्द्रीयकरण**—अलाउद्दीन ने राज्य के समस्त अधिकार और सत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर लिये थे। उसके प्रांतपति और अधिकारी भी उसके मार्ग-दर्शन पर निर्भर रहते थे। ऐसे केन्द्रीयकरण का शासन योग्य और सशक्त सुलतान पर निर्भर रहता था। अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी दुर्बल थे, इसलिये इसका पतन हो गया।

(७) **अलाउद्दीन की दुर्बलताएँ**—वृद्धावस्था और रोगग्रस्त अवस्था होने से अलाउद्दीन की मानसिक और शारीरिक शक्ति क्षीण हो गयी थी, बुद्धि-विवेक नष्ट हो गया था, वह जिद्दी और चिड़चिड़ा हो गया था। उसने बिना सोचे समझे निम्न कोटि के व्यक्तियों को ऊँचे पद दिये। मलिक काफूर उसका विश्वासपात्र और राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। उसने अलाउद्दीन के पुत्रों व बेगमों को कारागृह में डाल दिया और उसका पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न कर दिया।

(८) **पुत्रों की शिक्षा का अभाव और अयोग्य उत्तराधिकारी**—अलाउद्दीन ने अपने पुत्रों को समुचित शिक्षा नहीं दी। उन्हें योग्य और कार्यकुशल नहीं बनाया। इसलिये उसके उत्तराधिकारी उसके विशाल राज्य को संभालने के लिये असमर्थ और दुर्बल रहे।

वास्तव में अलाउद्दीन के साम्राज्य और राजनैतिक व्यवस्था की नींव दुर्बल थी। इससे उसकी मृत्यु के बाद ही उसका साम्राज्य नष्ट हो गया।

सुलतान शहाबुद्दीन उमर—मलिक काफूर राज्य की सर्वोच्च सत्ता अपने हाथों रखने और सुलतान बनने का महत्वाकांक्षी था। इसलिये उसने षडयंत्र रचा और अपने विरोधियों और प्रतिद्वंद्वियों की हत्या करवा दी और अलाउद्दीन के ज्येष्ठ पुत्र खिज्रखां को कारावास में डाल दिया। सुलतान की मृत्यु के बाद काफूर ने उसके सबसे छोटे पुत्र को शहाबुद्दीन उमर के नाम से सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं उसका संरक्षक बन गया। अब उसने सुलतान के एक पुत्र मुबारक का वध करना चाहा, पर वह असफल रहा। उसकी हत्याओं और षड़यन्त्रों से लोग उससे असन्तुष्ट हो गये थे और अन्त में मुबारक की प्रेरणा से उसकी हत्या कर दी गयी। इसके बाद मुबारक ने शहाबुद्दीन को गद्दी से उतारकर बन्दी बनाकर ग्वालियर भेज दिया और स्वयं सुलतान हो गया।

सुलतान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह (१३१६-१३२०)—सुलतान मुबारकशाह ने प्रारम्भ में जनता की सद्भावना प्राप्त करने के लिये सुलतान अलाउद्दीन के कठोर राजनैतिक और आर्थिक प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया व करों का भार हटा दिया। मुबारक इन्द्रियलोलुपता, कामुकता व भोगविलासिता में लिप्त हो गया तथा दुराचार, मदिरापान और अनैतिकता में फंस गया। उसने अपने एक दास नीच कुलोत्पन्न खुसरोखां को पदोन्नत करके उसे अपना नायब वजीर और सेनाध्यक्ष बना दिया। मुबारक की भोगविलासिता और प्रशासन की शिथिलता से गुजरात और देवगिरी में विद्रोह हो गये। पर वे कुचल दिये गये। देवगिरी के राजा हरपालदेव का वध करके यकलखी को देवगिरी का सूबेदार नियुक्त किया गया। सुलतान अपनी विलासिता, अनैतिकता और दुश्चरित्रता के कारण अधिक अलोकप्रिय हो गया। इसी बीच उसके सम्बन्धी असदुद्दीन ने उसकी हत्या करके खिज्रखां के पुत्र को सुलतान बनाने का षड़यंत्र रचा पर वह असफल रहा। अब मुबारक और भी अधिक कठोर और अत्याचारी हो गया था और उसने अपने तीनों भाइयों का वध करवा दिया। उसका प्रमुख परामर्शदाता खुसरोखां स्वयं सुलतान बनने का महत्वाकांक्षी था। इस-

लिये उसने एक षड़यंत्र करके मुबारक का वध करवा दिया और स्वयं नासिरुद्दीन खुसरो के नाम से सुलतान बन बैठा।

सुलतान नासिरुद्दीन खुसरो (१३२०)—खुसरो ने अमीरों व उनके परिवारों को बहुत ही पीड़ित किया और अलाउद्दीन के परिवार के शेष व्यक्तियों की हत्या करवा दी गयी। उसके निरंकुश कार्यों व हत्याओं को रोकने के लिये अलाउद्दीन के सीमान्त क्षेत्र के सैनिक अधिकारी गाजी मलिक ने एक विशाल सेना लेकर खुसरो पर आक्रमण किया। युद्ध में खुसरो परास्त हुआ और उसका वध कर दिया गया। अलाई वंश में सुलतान पद के लिये कोई भी जीवित न रहने से गाजी मलिक गयासुद्दीन तुगलक के नाम से सुलतान बन गया।

खिलजी साम्राज्य के पतन के कारण—लोकप्रिय शासन का अभाव, अलाउद्दीन की सैनिक तानाशाही और असफल योजनाएँ, मंगोल आक्रमण व उसके दुष्परिणाम, अयोग्य, दुर्बल और लोभी अधिकारी, अलाउद्दीन के बाद सशक्त दृढ़ सेना का अभाव, दासों का पतन, निश्चित उत्तराधिकार के नियमका अभाव, दुर्बल अयोग्य उत्तराधिकारी, अनैतिकता व दुराचार, हिन्दुओं की खिलाफत, आन्तरिक विद्रोह, षड़यंत्र और हत्याएँ मुख्य कारण थे।

———

अध्याय १८

तुगलक साम्राज्य

तुगलक वंश की उत्पत्ति—विद्वानों ने तुगलक वंश की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत प्रगट किये हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में तीन प्रमुख तत्व हैं। प्रथम तुगलक मंगोल थे, द्वितीय तुर्क थे और तृतीय वे मिश्रित जाति के थे। इनका विश्लेषण निम्नलिखित है:—

(१) **तुगलक मंगोल थे**—इस मत के प्रवर्तक मिर्जा हैदर हैं। मिर्जा हैदर ने अपने ग्रन्थ "तारीख-ए-रशीदी" में तुगलकों को चगताई मंगोल बतलाया है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि मंगोल दो प्रमुख श्रेणियों में विभक्त थे, प्रथम मंगोल और द्वितीय चगताई मंगोल। दोनों में परस्पर वैमनस्य था और संघर्ष चलता रहता था। दोनों ही एक दूसरे को हेय समझते थे। इसलिये घृणा भी करते थे। इसी भावना के कारण मंगोल श्रेणी के लोग चगताई मंगोलों को "करावना" कहते थे और चगताई मंगोल अन्य मंगोलों को "जाटव" कहते थे। "करावना" और "करौना" में समता है। "करावना" शब्द परिवर्तित होकर "करौना" बन गया। तुगलक वंश जिस कबीले से था, उसका नाम "करौना" था। इसलिये तुगलक करौना, करावना, या चगताई मंगोल जाति के हैं। मार्कोपोलो ने भी इन्हें करौना वंश से माना है।

परन्तु अनेक विद्वान इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि उनका मत है कि गयासुद्दीन तुगलक मगोलों से अनेक बार युद्ध कर चुका था और उसने उन्हें २९ बार परास्त किया था। इस विजय पर उसे बड़ा गर्व था। इन्हीं विजयों के परिणाम-स्वरूप उसे "अल-मलिक-अल-गाजी" की पदवी से विभूषित किया गया था। यदि वह स्वयं मंगोल होता तो, मंगोलों के विरुद्ध नहीं, अपितु उनके पक्ष में युद्ध करता और उनकी सहायता करता। इसलिये तुगलकों की मंगोल उत्पति का मत अग्राह्य है। अतः तुगलकों को मंगोल मानना उचित नहीं। उस युग में युद्ध और संघर्ष में अनेक मंगोल स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष बन्दी बना लिये जाते थे और संभव है कि इनमें से कुछ तुगलकों के "करौना" कबीले में सम्मिलित हो गये हों और करौना व मंगोलों में रक्त का सम्मिश्रण हो गया हो।

(२) **तुगलक तुर्क थे**—इब्नबतूता का मत है कि तुगलक करौना तुर्क जाति के थे। शेख रुकनुदीन मुलतानी ने भी तुगलकों को तुर्क माना है। यह शेख तुगलक सुलतान के अधिक निकट रहता था। उसके सान्निध्य से उसका कथन अधिक प्रमाणित होता है। फरिश्ता का भी कथन है कि गयासुद्दीन का पिता तुर्क था। जब खुसरोखां की हत्या गाजी मलिक (गयासुद्दीन तुगलक) ने की तो तुर्क सरदारों, अमीरों, और

मलिकों ने उसके तुर्क होने के नाते सुलतान बनने के लिये अनुरोध किया । यदि वह मंगोल या अन्य जाति का होता तो, स्वाभिमानी तुर्क अमीर और मलिक उससे दिल्ली के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होने का आग्रह नहीं करते । इतिहासकार फरिश्ता का भी मत है कि गयासुद्दीन का पिता तुर्क था । अधिकांश विद्वान इस मत को मानते हैं कि गयासुद्दीन तुर्क था ।

(३) **तीसरा मत है कि गयासुद्दीन मिश्रित जाति का था**—वह वर्णसंकर था । उसका पिता तुर्क था और माता भारतीय जाट जाति की हिन्दू स्त्री थी । वह पंजाब निवासी थी । इस कथन की पुष्टि "खुलासन-उन्-तवारीख" से भी होती है । इस समय विदेशी तुर्क सैनिक और अमीर भारतीय स्त्रियों से विवाह करते थे । गयासुद्दीन के भाई रजब ने भी जो सुलतान फीरोजशाह का पिता था. पंजाब की एक भाटी राजपूत स्त्री से बिवाह किया था। उस समय अनेक विदेशी तुर्क जाति के सैनिक जो भारत में युद्ध करने, धन प्राप्त करने और इस्लाम का प्रसार करने के लिये आये थे, कालांतर में सीमांत क्षेत्र और पंजाब में स्थायी रूप से बस गये और दिल्ली सुलतान की सेनाओं में सैनिक और पदाधिकारी बन गये । इनमे से कुछ तुर्क करौना कबीले के थे । इन्होंने भारतीय जाटों और राजपूतों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिये थे । इससे करौना तुर्क कबीले की संतानें मिश्रित जाति की हो गयीं । इनमें तुर्की रक्त की प्रधानता थी । संभव है कालान्तर में इन तुर्कों और मंगोलों में परस्पर वैवाहिक संबंध हो गये हों और मंगोल रक्त का भी उनमें सम्मिश्रण हो गया हो । इस प्रकार गयासुद्दीन मिश्रित जाति का था । डाक्टर ईश्वरीप्रसाद ने भी अपने ग्रंथ "ए हिस्ट्री आफ दी करौना टर्क्स" में इसी मत का प्रतिपादन किया है ।

जहां तक 'तुगलक" शब्द से तात्पर्य है वह करौना तुर्कों का नाम नहीं था । "तुगलक" शब्द गयासुद्दीन के नाम का अन्तिम भाग था । फलतः गयासुद्दीन के उत्तराधिकारियों ने अपने नामों के पीछे "तुगलक" शब्द का उपयोग किया है । इससे तुगलक सुलतान और तुगलक साम्राज्य नाम प्रसारित हो गया ।

तुगलक साम्राज्य

तुगलक सुलतान दिल्ली में सन् १३२० से १४१२ ईस्वी तक शासन करते रहे । इससे इनके समय के राज्य को तुगलक साम्राज्य कहते हैं । तुगलक सुलतानों के समय दिल्ली सल्तनत दृढ़, स्थायी और वैभवपूर्ण बनी रही । इन तुगलक सुलतानों में गयासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद बिन तुगलक और फीरोजशाह तुगलक अधिक प्रसिद्ध हैं। फीरोजशाह के निर्बल उत्तराधिकारियों के समय में तुगलक साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और दिल्ली सल्तनत भी पतन की ओर बढ़ने लगा था ।

तुगलक साम्राज्य का संस्थापक गयासुद्दीन तुगलक था । अब अगले पृष्ठों में गयासुद्दीन तुगलक का वर्णन किया जायगा ।

गयासुदीन तुगलक (सन् १३२० से १३२५)

गयासुद्दीन तुगलक का प्रारंभिक जीवन—गाजीमलिक का पिता सुलतान बलबन के समय में भारतवर्ष आया था और उसने पंजाब में एक जाट स्त्री से विवाह कर लिया था। इसी जाट स्त्री से गाजीमलिक उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उसमें हिन्दू और तुर्क दो जातियों के रक्त का सम्मिश्रण था। इससे उसे सच्चरित्रता और सरलता के साथ-साथ उत्साह और शक्ति की भी प्राप्ति हुई थी। सुलतान जलालुद्दीन के शासन काल में रणथम्भोर दुर्ग के घेरे के समय गयासुद्दीन ने अपूर्व वीरता व साहस प्रदर्शित किया था। गाजीमलिक में प्रतिभा, योग्यता और साहस था। इन्हीं गुणों के आधार पर सेना में भरती होने पर पदोन्नति करते-करते वह सुलतान अलाउद्दीन के समय में उत्तरी पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में दीपालपुर की सैनिक चौकी का संरक्षक बन गया। वहाँ रहकर उसे मंगोलों के आक्रमण के समय अनेक बार युद्ध करना पड़ा। इसमें उसे विजय श्री प्राप्त होती रही। उसने अलीबेग ख्वाजा, ताश तथा इकबाल मंदा जैसे मंगोल नेताओं को परास्त किया था। अलाउद्दीन के शासन के अंतिम चरण में तो गाजीमलिक ने मंगोलों के राज्य में प्रवेश कर उनकी सेनाओं को परास्त किया। उसकी इस वीरता और सफलता से सुलतान अलाउद्दीन अत्यधिक प्रभावित हुआ और गाजीमलिक का सम्मान और पद दोनों बढ़े। अब उसकी गणना सल्तनत के प्रमुख अमीरों में की जाने लगी। अलाउद्दीन के बाद सुलतान मुबारकशाह के शासन काल में भी गाजीमलिक ने अपना पूर्व पद बड़ी कुशलता से संभाले रखा। इस समय पंजाब क्षेत्र की शासन-व्यवस्था का भार उसे सौंपा गया।

जब सुल्तान मुबारकशाह की हत्या करके एक गुजराती सैनिक अधिकारी नासिरुद्दीन खुसरो नाम से सुलतान बना, तब तुर्की सरदार उससे असन्तुष्ट हो गये। गाजीमलिक भी नासिरुद्दीन खुसरो से रुष्ट हो गया था। जब खुसरो ने सुलतान बनने पर गाजीमलिक के पास सम्मानसूचक वेशभूषा व उपाधियाँ भेजीं, तब गाजी-मलिक ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया। सल्तनत के तुर्की सरदार भी नहीं चाहते थे कि एक भारतीय मुसलमान सिंहासनारूढ़ होकर उन पर शासन करे। इसलिये उन्होंने खुसरो के विरुद्ध विद्रोह किया, और उसे पदच्युत करने तथा गाजीमलिक को सिंहासन संभालने के लिये निमंत्रण दिया। गाजीमलिक का पुत्र जूनाखां जो इस समय दिल्ली में रहता था, स्वयं गाजीमलिक को तय्यार करने और उसे लेने के लिये दिपालपुर गया। खुसरो द्वारा हिन्दू प्रभुत्व के पुनः स्थापना के प्रयत्नों ने गाजी-मलिक को भी अत्यंत क्रुद्ध कर दिया था और वह अब एक बड़ी सेना लेकर खुसरो के विरुद्ध युद्ध और जिहाद करने के लिये चल पड़ा। यद्यपि खुसरो ने अपनी सेना से गाजीमलिक का युद्ध में सामना किया पर शत्रु गाजीमलिक के पक्ष में सभी तुर्की सरदारों के होने से खुसरो इन्द्रप्रस्थ के युद्ध में परास्त हुआ और रण-क्षेत्र में मारा गया।

कहा जाता है कि गाजीमलिक चाहता था कि दिल्ली में तुर्की सल्तनत ही स्थापित हो जाय, इसलिये उसने खुसरो के विरुद्ध युद्ध किया, न कि स्वयं सिंहासना-

रूढ़ होने के लिये। वह वृद्ध था और स्वयं सुलतान बनने का इच्छुक नहीं था। अतः उसने दिल्ली विजय के बाद इस बात की जांच करवायी कि सुल्तान अलाउद्दीन के वंश में कोई व्यक्ति जीवित है या नहीं, ताकि उसे सुल्तान के सिंहासन पर आरूढ़ किया जा सके। पर जब अलाउद्दीन के वंश का कोई उत्तराधिकारी नहीं मिला, क्योंकि उसमें कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं बचा था, तब तुर्की अमीरों ने गाजीमलिक से अनुरोध किया कि वह स्वयं सिंहासन पर बैठ जाय। तुर्की अमीरों ने गाजीमलिक को अपना सुलतान चुन लिया और चुनते समय कहा, "अब तूने स्वामिभक्ति का कार्य किया जिसका वर्णन इतिहास में होगा, तूने मुसलमानों को हिन्दुओं और फरीहों के जूड़े से मुक्ति दिलवायी है, और हमारे हितचिन्तकों का बदला लिया है तथा गरीबों और अमीरों की कृतज्ञता प्राप्त की है। हमारे सुलतान बनो।" (Now thou hast done a faithful work which will be recorded in history, thou hast delivered the Muslims from the yoke of Hindus and Pariah's hast avenged our benefactors and earned the gratitude of rich and poor. Be our King

इस प्रकार सार्वजनिक समर्थन और स्वीकृति के कारण गाजीमलिक को राजमहल की कुंजियाँ प्राप्त हो गयीं, और वह दिल्ली का सुलतान चुन लिया गया। अमीरों के अनुरोध पर ८ सितम्बर सन् १३२० से गाजीमलिक सिंहासनारूढ़ हुआ और सुलतान गयासुद्दीन तुगलकशाह गाजी की उपाधि धारण की। एक सामान्य व्यक्ति और अधिकारी का सुलतान के पद के लिये निर्वाचन होना इस्लाम की प्रजातंत्रीय भावना का द्योतक है और गाजीमलिक ने पूर्वकालीन मध्ययुग में एक बार फिर इस सिद्धान्त की स्थापना कर दी कि जिसके हाथ में सैन्यशक्ति हो वही राजसत्ता धारण कर सकता है।

गयासुद्दीन तुगलक की प्रारम्भिक समस्याएं और उनका निराकरण

सुलतान बनने के पश्चात् ही गयासुद्दीन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। ये निम्नलिखित थीं :—

(१) **साम्राज्य का विघटन**—अलाउद्दीन के अयोग्य और शक्तिहीन उत्तराधिकारियों के समय में विशाल खिलजी साम्राज्य विघटित हो चुका था। सल्तनत छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। एक शक्तिशाली केन्द्र के अभाव में सारा साम्राज्य छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो गया था। अनेक प्रांत या सूबे स्वतन्त्र हो गये थे। दोआब में हिन्दू राजाओं ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी।

(२) **अस्त-व्यस्त शासन व्यवस्था**—मुबारकशाह की अन्धेरगर्दी और खुसरोखां के अमानवीय आचरण से सल्तनत का प्रशासन निम्न स्तर पर आ गया था। प्रशासन व्यवस्था बिलकुल अस्त-व्यस्त हो गयी थी। साम्राज्य में अराजकता थी।

(३) **स्वतन्त्र राज्य**—सिन्ध, गुजरात, बंगाल और दक्षिण के राज्यों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित करके उन्होंने वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था और उन्होंने अपने को दिल्ली साम्राज्य से पृथक कर लिया था।

(४) विद्रोह—साम्राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह की आग भड़क रही थी ; बंगाल दिल्ली के विरुद्ध विद्रोह की तैयारी कर रहा था। खुसरो के चार माह के आतंक के शासन ने और उसके कुव्यवहार ने अमीर तथा प्रांतपतियों को अधिक विद्रोह करने के लिये उभाड़ा।

(५) नवीन मुसलमान—वे मंगोल जिन्होंने इस्लाम ग्रहण कर लिया था और दिल्ली के आसपास बसा दिये गये थे, नवीन मुसलमान कहलाये। इस समय ये षडयन्त्र रच रहे थे तथा उपद्रव मचा रहे थे एवं सुलतान के लिये परेशानियाँ उत्पन्न कर रहे थे।

(६) दयनीय आर्थिक दशा—मुबारकशाह तथा खुसरोखां के अपव्यय से राज्य की आर्थिक दशा बड़ी डांवाडोल हो गयी थी। करों की वसूली स्थगित-सी हो गयी थी। राज्य की आय कम हो गयी। मुबारकशाह और खुसरो ने अपने समर्थकों पर तथा अयोग्य सरदारों और अनाधिकार व्यक्तियों में अत्यधिक धन वितरित कर दिया था। इससे राज-कोष रिक्त हो गया था। कृषि की दशा ठीक नहीं थी। खिलजी कर व्यवस्था की कठोरता से अनेक कृषक खेत छोड़ चुके थे और ये खेत अनबोये पड़े हुए थे।

(७) खोखरों के उपद्रव—पंजाब की लड़ाकू और युद्धप्रिय खोखर जाति पुनः उपद्रव करने लगी थी और शासक के लिये सिरदर्द बन रही थी। उसके उपद्रव शांति-व्यवस्था भंग कर रहे थ।

(८) मंगोल आक्रमणों का भय—अलाउद्दीन ने मंगोलों को परास्त कर खदेड़ दिया था, पर उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों के शासन-काल में वे पुनः प्रति वर्ष सीमांत क्षेत्र में आक्रमण कर पंजाब में घुसने लगे थे।

(९) इस्लाम खतरे में—मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार इस समय धार्मिक दशा शोचनीय हो गयी थी और खुसरोखां के शासन-काल में "इस्लाम खतरे में" आ गया था। हिन्दू प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था और हिन्दू नरेश स्वतन्त्र होते जा रहे थे। इस्लाम के पीर और संत भी राज परिवार से रुष्ट हो गये थे।

गयासुद्दीन ने बड़ी कुशलता, दूरदर्शिता और दृढ़ता के साथ इन समस्याओं और कठिनाइयों का सामना किया और उनका समाधान किया।

गयासुद्दीन तुगलक द्वारा समस्याओं का निराकरण और शांति-व्यवस्था के कार्य

(१) खिलजी वंश के संबंधियों और तुर्क सरदारों के साथ उदारता का व्यवहार—गयासुद्दीन ने सुलतान बनने पर अलाउद्दीन खिलजी के सम्बन्धियों तथा अन्य तुर्की अमीरों के साथ बड़ा नम्र और उदारता का व्यवहार किया। उसने उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। गयासुद्दीन ने न तो उनकी किसी उचित मांग की उपेक्षा ही की और न उनकी किसी भूतकालीन सेवा को ही विस्मरण किया। तुर्की अमीरों के उन वंशों को जो नष्ट कर दिये गये थे, उनको पुनः उनके पुराने महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उसने राजकीय कर्मचारियों और पदा-

धिकारियों के प्रति भी अलाउद्दीन की अपेक्षा अधिक उदारता प्रदर्शित की। गयासुद्दीन ने उन्हें सम्मानित किया, उनकी सेवाओं की प्रशंसा की और उन्हें शांति व सुखमय जीवन व्यतीत करने के अवसर दिये। इससे वे सुलतान के प्रति अधिक राजभक्त हो गये।

(२) **पदों और उपाधियों का वितरण**—गयासुद्दीन ने प्रतिभाशाली, सुयोग्य और कार्यकुशल अधिकारियों व अमीरों को उपाधियों से सम्मानित किया। उसने अपने पुत्र जूनाखां को जिसने दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने में गयासुद्दीन को अधिक योग दिया था, उलूगखां की पदवी दी और उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया। उसने अपने अन्य पुत्र बहराम खाँ को किशलूखाँ की पदवी दी और उसे सिंध एवं मुलतान प्रदेश का सर्वोच्च अधिकारी बना दिया। मलिक नासिरुद्दीन को नायब बारबक, अपने भानजे बहाउद्दीन को अर्जे-ममालिक और समाना की अक्ता का हाकिम नियुक्त किया तथा अपने जमाई मलिक शादी को प्रधान मंत्री बनाया। तातारखां को जफराबाद की अक्ता का हाकिम बनाकर उसे तातार मलिक की उपाधि दी। मलिक बुरहानुद्दीन को दिल्ली का कोतवाल नियुक्त किया और उसे आलिम मलिक की उपाधि प्रदान की तथा काजी समाउद्दीन को दिल्ली का काजी बनाया। मलिक अली हैदर को नायब वकीलवार, काजी कमालुद्दीन को सदर-ऐ-जहाँ बनाया तथा कुतलुगखां को देवगिरी का नायब वजीर और मलिक ताजुद्दीन जफर को गुजरात का राज्यपाल बनाया। इस प्रकार पदों और उपाधियों के वितरण से गयासुद्दीन को अमीरों, सामान्तों, और पदाधिकारियों का समर्थन और सहानुभूति प्राप्त हो गयी और उसे राज्य में शांति-व्यवस्था स्थापित करने में इनसे अधिक योगदान प्राप्त हुआ।

(३) **विद्रोहों का दमन और शांति स्थापना**—दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेशों में शांति स्थापना और विद्रोहों का दमन करने के लिये उसने सेना भेजी। इसमें उसे सफलता प्राप्त हुई।

(४) **शासन-सुधार**—राज्य में शांति-व्यवस्था स्थापित करने तथा विघटनकारी प्रवृत्तियों को नष्ट करने के लिये गयासुद्दीन ने शासन-व्यवस्था की ओर अधिक ध्यान दिया। राज्य के महत्वपूर्ण विषयों व नीति निर्धारण में वह अपने परामर्शदाताओं से मंत्रणा कर लेने के बाद ही कार्य करता था। गयासुद्दीन के राज्यकाल में प्रशासन का ढाँचा वही बना रहा जो खिलजी शासन-काल में था; उसने सल्तनत की शासन प्रणाली को पूर्णवत् बनाये रखा। परन्तु राज्य की विभिन्न समस्याओं के निराकरण के लिये तथा शांति-व्यवस्था स्थापित करने के लिये गयासुद्दीन ने शासन प्रणाली में निम्नलिखित परिवर्तन और सुधार किये:—

(i) **आर्थिक सुधार**—सुलतान मुबारकशाह और खुसरोखां ने अपनी अविवेकशीलता और पक्षपात की नीति से बड़ी-बड़ी जागीरें व अपार धन अपने समर्थकों में वितरित कर दिया और राजकोष को रिक्त कर दिया था। कुछ जागीरें कानून के विरुद्ध दी और कुछ लोगों ने अव्यवस्था देख हड़प ली थीं। गयासुद्दीन ने इस प्रकार दी हुई जागीरों को जप्त कर लिया। उसने यह भी आदेश दिया कि वे सभी व्यक्ति जिन्होंने अवैधानिक रूप से मुबारक और खुसरो के शासन-काल में राज-कोष से अपार धन

प्राप्त कर लिया है, शीघ्र ही वह धन लौटा दें और उसे राजकोष में जमा कर दें। बंदी बनाकर, कठोर यातनाएँ देकर तथा भय और आतंक दिखाकर अंत में उसने इन लोगों से वह धन प्राप्त कर लिया। मुस्लिम संतों और पीरों के साथ भी दमन व कठोरता का व्यवहार किया गया और उन्हें भी अनुचित रूप से प्राप्त हुए धन को लौटाने के लिये बाध्य किया गया। मुस्लिम संत निजामुद्दीन औलिया को भी इसी प्रकार बाध्य किया गया। इस प्रकार जप्त की जागीरों से सुलतान की आय में वृद्धि हुई और अवैधानिक रूप से दिये गये धन को पुनः प्राप्त करके रिक्त कोष को भर दिया।

(ii) **भूमि और कृषि संबंधी सुधार**—अलाउद्दीन की कठोर नीति के कारण कृषि अस्त-व्यस्त तथा कृषकों की दशा दयनीय हो गयी थी। अब प्रथम बार दिल्ली सुलतान ने कृषकों का महत्व अनुभव किया। फलतः गयासुद्दीन ने कृषकों के साथ उदार नीति अपनायी; उनके साथ सद्व्यवहार किया और उन्हें आवश्यक सहायता प्रदान की गयी। अलाउद्दीन के कृषि करों को समाप्त कर दिया गया। सिंचाई के लिये नहरें और कुएँ खोदे गये। भूमि-कर समान रूप से निर्धारित कर दिया गया। और वह उपज का सातवां व दसवां भाग रखा गया। राज कर्मचारियों को उसने यह आदेश दिया कि वे कृषकों का किसी प्रकार शोषण न करें, भूमि कर वसूली में कृषकों को तंग न करें और न भूमि कर में अधिक वृद्धि ही करें। भूमिकर के बड़े अधिकारियों को चरागाह कर से मुक्त कर दिया था और अब वे अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार पशु पाल सकते थे। राजस्व के कर्मचारियों को भी वेतन के अतिरिक्त कृषकों से अपने लिये एक प्रतिशत कर वसूल करने की छूट दी गयी। दुर्भिक्ष तथा सूखा के समय कृषकों को भूमि कर में छूट दी जाती थी। किसी भी जागीरदार को कृषकों से निश्चित भूमि कर से अधिक लेने की आज्ञा नहीं थी।

(iii) **न्याय-व्यवस्था**—गयासुद्दीन ने न्यायप्रिय शासक होने से न्याय-व्यवस्था में अधिक रुचि ली। कहा जाता है कि न्याय तथा समानता उसके शासन का मेरुदंड था। गयासुद्दीन कट्टर सुन्नी मुसलमान था तथा कुरान के सिद्धान्तों के आधार पर राज्य करता था। कुरान के सिद्धान्तों के आधार पर उसने राजनियमों का एक संग्रह तथा एक न्याय-विधान (Code) की रचना करवाई। अपराधियों को समान रूप से दंड दिया जाने लगा। पुलिस व न्याय के समुचित प्रबन्ध से राज्य में शांति और व्यवस्था स्थापित हो सकी। इस पर मुस्लिम इतिहासकार बर्नी लिखता है कि "किसी को भी मेमने पकड़ने का साहस नहीं होता था तथा शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे।"

(iv) **यातायात के साधनों की व्यवस्था**—सेना के आवागमन के लिये तथा जनहित के लिये सुलतान ने यातायात के साधनों की भी समुचित व्यवस्था की। सड़कों और जनमार्गों पर डाक चौकियों की व्यवस्था की गयी। वहां पत्र वाहक रहते थे। समाचार और पत्र अश्वारोहियों और कर्मचारियों द्वारा तत्परता से भेजे जाते थे। दिल्ली से देवगिरी तक डाक चार दिनों में पहुँच जाती थी। डाक व्यवस्था के लिये सड़कों, दुर्गों और पुलों की मरम्मत भी करवायी गयी।

(v) **सैन्य-सुधार**—गयासुद्दीन का राज्य भी सेना और शक्ति पर आश्रित था। गयासुद्दीन स्वयं एक वीर योद्धा और रणकुशल सेना अधिकारी था। इसलिये वह सेना के दोषों और उसके महत्व को भली-भांति समझता था। उसने सैनिक व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया और श्रेष्ठ सैन्य-व्यवस्था की। सेना की वृद्धि की गयी और बड़ी संख्या में अश्वारोही सैनिक भरती किये। अश्वों को दागने की या चिन्हित करने की प्रथा का पुनः प्रचलन किया गया और सैनिकों की परिचय सूची या हुलिया लिखवाने के लिये रजिस्टर रखे गये। सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया गया। अपव्यय, भ्रष्टाचार रोकने के लिये सुलतान स्वयं अपने सामने सैनिकों को वेतन वितरित करवाता था। अनुशासन बनाये रखने के लिये वह स्वयं सेना का निरीक्षण करता था तथा सैनिकों में धनुपविद्या का परीक्षण निश्चित नियमों के अनुकूल करवाता था। कायर और युद्ध की अवहेलना करने वाले सैनिकों को तथा अनुशासन भंग करने वालों को वह कठोर दंड देता था। वह सेना की चिन्ता पिता की भांति करता था और युद्ध कार्यालय के हिसाब-किताब का निरीक्षण वह स्वयं करता था। सैन्य-व्यवस्था को स्थायी और विधिवत बनाये रखने के लिये उसने योग्य और अनुभवी सेना अधिकारी नियुक्त किये तथा अस्त्र-शस्त्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध किये। उसने सैनिकों को सब प्रकार की सुविधाएँ देकर उन्हें राज्य के प्रति निष्ठावान बना दिया। सुलतान की सैन्य-व्यवस्था और दृढ़ता की प्रशंसा में बर्नी "तारीख-ए-फिरोजशाही" में लिखता है कि "विश्व-विनाश की क्षमता रखने वाली तुगलक शाह की तलवार की धाक काफिरों तथा कृतघ्नों पर इस सीमा तक जम चुकी थी कि किसी मंगोल के हृदय में कभी भी उसके राज्य की सीमा को पार करने का विचार नहीं हुआ और न कभी हिन्दू विद्रोहियों के हृदय में विद्रोह या षड़यंत्र का विचार ही उत्पन्न हुआ हो।"

(vi) **दान-व्यवस्था**—सुलतान गयासुद्दीन में दानशीलता की प्रवृत्ति का बाहुल्य था। वह दीन-दुखियों को, फकीरों, मुरादों और पीरों को, आलिमों, अध्यापकों, धर्मोपदेशकों तथा विद्यार्थियों को उनकी श्रेणियों और योग्यता के अनुसार दान देता था। दरिद्रों के लिये दानशालाएँ निर्मित करवायीं तथा विद्वानों को राज्याश्रय प्रदान किया। यद्यपि वह दान थोड़ी मात्रा में देता था, किन्तु वह अनेकानेक लोगों को दान देता था और कई बार देता था। दरिद्र और आवश्यकता वाले व्यक्ति के लिये सुलतान के हृदय में कोमल भावनाएँ थीं और वह उन्हें दान देता था। उसके शासन-काल में दिल्ली सुलतानों के इतिहास में प्रथम बार निर्धन-सहायता का आयोजन किया गया।

(vii) **शासकीय कर्मचारियों और अधिकारियों के प्रति उदारता**—सुलतान अलाउद्दीन की अपेक्षा उसने राज्य के विभिन्न अधिकारियों और शासकीय कर्मचारियों के प्रति अधिक नम्रता, सहिष्णुता और उदारता का व्यवहार किया। भ्रष्टाचार, गबन तथा धन का अपहरण रोकने के लिये वह वेतन देने में उदारता का व्यवहार करता था। राजस्व के कर्मचारी अपने हित व सुविधा के लिये कुछ अधिक कर वसूल कर सकते थे। उसने अमीरों को भी अपने सेवकों के साथ उचित कर देने के आदेश दिये।

प्रांतों में ईमानदार और न्यायप्रिय शासक नियुक्त किये। इससे राजकीय कर्मचारी और अधिकारी सुलतान के प्रति अधिक राजभक्ति और श्रद्धा प्रदर्शित करने लगे।

(viii) **धार्मिक नीति और धर्मपरायणता**—सुलतान गयासुद्दीन तुगलक सुन्नी मुसलमान था। वह अल्ला का भक्त, धर्मपरायण और धर्मभीरु सुलतान था। इस्लाम और कुरान के सिद्धान्तों में वह विश्वास करता था। वह दिन में पांचों समय की नमाज पढ़ता था, ईद और जुमे की नमाज पढ़ता था, ईद और जुमे की नमाज में उपस्थित रहता था, रमजान के महीने में भी नमाज पढ़कर कुरान का पूरा पाठ करता था और रोजा रखता था। धर्मपरायणता और इसलाम का सही अनुकरण करने वाला होने से उसके जीवन में पवित्रता और शुभ्र दृष्टि थी, मदिरापान, व्यभिचार और द्यूत क्रीड़ा से वह दूर रहा, संगीत और नृत्य का वह घोर विरोधी था। पर सुलतान के अनेक दुर्गणों व दुर्व्यसनों से वह मुक्त रहा।

(ix) **जन-कल्याण के कार्य**—गयासुद्दीन तुगलक में प्रजा-हित की भावना थी। सर्वसाधारण में सुलतान के प्रति जो भय, आतंक की भावना थी, गयासुद्दीन ने उसे अपनी लोक-कल्याण की भावना, उदारता तथा जनहित के कार्यों से दूर कर दिया। वह लोगों को राज कर कम देने या न देने के अपराध में बन्दीगृह में रखने के पक्ष में नहीं था। वह यह नहीं चाहता था कि उसके राजकीय कर्मचारियों द्वारा जनता का अहित या शोषण हो। उसने जन-कल्याण के लिये नहरें बनवाई, कुएँ खुदवाये, कृषि की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकृष्ट कर उन्हें उसमें लगाकर बेकारी दूर की। उसने व्यभिचार, मद्यपान तथा द्यूत क्रीड़ा का अन्त करने का प्रयास किया। लोगों को सच्चरित्र बनाने के लिये उसने मुहतसिब नियुक्त किये। भेद-भाव विस्मरण कर उसने लोगों को प्रगति करने के अवसर दिये। न्याय की दृष्टि में सभी व्यक्ति समान समझे जाने लगे थे। इससे जनता में शाही-न्याय का बड़ा सम्मान और भय था। दुष्टों को समुचित दंड दिया जाता था। खिलजी राजवंश की अवशिष्ट बेगमों और स्त्रियों के साथ उचित और उदारता का व्यवहार किया गया। उनके साथ दुर्व्यवहार करने वालों को कठोर दंड दिया गया। जिन व्यक्तियों द्वारा सुलतान मुबारकशाह के देहावसान के पश्चात खुसरो के साथ उसकी बेगम का निकाह करवाया गया था, उन्हें निर्ममतापूर्वक दंड दिया। विवाह के योग्य स्त्रियों का सुयोग्य व्यक्तियों के साथ विवाह कर दिया गया और प्रौढ़ स्त्रियों को पेंशन के रूप में अनुदान दिये गये। ऐसे जनहित के उदार कार्यों से गयासुद्दीन की लोकप्रियता अधिकाधिक बढ़ गयी थी।

हिन्दुओं के प्रति नीति—गयासुद्दीन अपनी इस्लामप्रियता के कारण हिन्दुओं के प्रति उदार व सहिष्णु नहीं हो सका। व्यक्तिगत रूप से वह हिन्दुओं का विरोधी था। उसने अपने पदाधिकारियों को निम्नलिखित आदेश दिया था, "हिन्दू कृषकों से भूमि कर वसूल करते समय यह ध्यान रखा जाय कि वे लोग धन की अधिकता से मदांध न हो जायँ और षड़यन्त्रकारी एवं राज्य विरोधी कार्य न करने लगें।" हिन्दुओं को जिन सुविधाओं से अलाउद्दीन ने वंचित कर दिया था, वे लगभग पूर्ववत ही बनी रहीं। गयासुद्दीन ने हिन्दुओं पर हलके कर भी लगाये। उसने उनके मंदिरों

एवं मूर्तियों का विध्वंस करवाया। राज्य की ओर से उन पर अत्याचार किया जाता था। हिन्दुओं को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता था। परन्तु उसने शक्ति के बल से हिन्दुओं पर इस्लाम नहीं लादा। उसने हिन्दू धर्म पर निरन्तर आघात किये बिना इस्लाम का प्रचार करने का पूर्ण प्रयास किया।

परिणाम—इस प्रकार सुलतान गयासुद्दीन ने अपने शासन सम्बन्धी सुधारों से, उदारता व नम्रता की नीति से सल्तनत का सफलतापूर्वक पुनर्संगठन किया जो निष्क्रिय और निर्वीर्य मुबारक तथा नापाक खुसरो के शासन-काल में अव्यवस्थित हो गयी थी। राज्य में अराजकता का अन्त हो गया तथा शांति व व्यवस्था स्थापित हो गयी।

गयासुद्दीन तुगलक के आक्रमण और विजय

अन्य सुलतानों के समान गयासुद्दीन भी विस्तारवादी और साम्राज्यवादी नीति में विश्वास करता था। इसलिये उसने दक्षिण में दिल्ली सल्तनत के विस्तार के लिये अन्य देशों को विजय करने के लिये सेनाएँ भेजी। उसके आक्रमणों का विवरण निम्नलिखित है।

(१) **वारंगल पर आक्रमण और विजय** (सन् १३२१)—दक्षिणी भारत में दक्षिणी-पूर्वी-क्षेत्र में देवगिरी राज्य से लगा हुआ वारंगल का हिन्दू राज्य था जहां काकातीय वंशी राजा प्रताप रुद्रदेव शासन करता था। सुल्तान अलाउद्दीन के समय में मलिक काफूर ने वारंगल पर विजय प्राप्त करके राजा प्रताप रुद्रदेव को सुलतान को अधिपति मानने व वार्षिक कर देने के लिये बाध्य किया था। परन्तु दिल्ली की राजनैतिक अशांति और उथल-पुथल का लाभ उठाकर राजा प्रताप रुद्रदेव ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और कर देना बन्द कर दिया।

(i) **प्रथम आक्रमण**—ऐसी दशा में सुलतान गयासुद्दीन ने अपने पुत्र जूनाखां (उलूगखां, जो बाद में मुहम्मद तुगलक के नाम से सुलतान बना) के नेतृत्व में एक विशाल सेना वारंगल विजय के लिये भेजी। सन् १३२१ में जूनाखां ने वारंगल का घेरा डाल दिया। राजा प्रताप रुद्रदेव ने बड़ी वीरता और साहस से इस्लामी सेना का कड़ा प्रतिरोध किया। पर विशेष सफलता न मिलने पर उसने सन्धिवार्ता प्रारम्भ की। जूनाखां रुद्रदेव को बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाना चाहता था और उसकी समस्त सम्पत्ति और राजकोष पर अपना अधिकार जमा लेना चाहता था एवं वारंगल राज्य को दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। इसलिये उसने सन्धि की शर्तें ठुकरा दीं। इसी बीच एक माह से अधिक की अवधि हो गई थी और दिल्ली से सुलतान की ओर से कोई भी सन्देश या फरमान नहीं आ रहे थे, जबकि इससे पूर्व सप्ताह में दो बार दिल्ली से डाक आ जाती थी। इस स्थिति का लाभ उठाकर उबैद कवि और शेखजादा दमिश्की ने सुलतान गयासुद्दीन की मृत्यु की और दिल्ली में किसी अनाधिकारी व्यक्ति के सिंहासनारूढ़ होने की अफवाह फैला दी तथा सेना के प्रमुख अधिकारियों एवं अलाई मलिकों को जूनाखां के विरुद्ध भड़का दिया। फलत: इन्होंने अपने सैनिकों सहित उलूगखां के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस स्थिति का लाभ

उठाकर राजा प्रताप रुद्रदेव ने इस्लामी सेना को परास्त कर वारंगल राज्य से खदेड़ दिया और जूनाखां ने भागकर देवगिरी में शरण ली। देवगिरी में उसे सुलतान के सन्देशवाहक मिले और उसे पता चला कि सुलतान के देहावसान की खबर झूठी थी।

(ii) **विद्रोहियों का दमन** मृत्यु की अफवाह फैलाने और जूनाखां के विरुद्ध विद्रोह करने वालों को पकड़ लिया गया और सुलतान गयासुद्दीन ने उन्हें सीरी के सेरगाह मैदान में जन-साधारण के समक्ष मृत्युदण्ड दिया और उनके परिवार के सदस्यों को हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया। यहाँ सुलतान ने अपनी निर्ममता और आतंक की नीति का परिचय दिया। अपने तुर्की रक्त का प्रमाण दिया। यह व्यवहार उसके सहज व कोमल स्वभाव के विरुद्ध था। पर सम्भवतः उसने ऐसा अपनी स्वतः की रक्षा करने के लिये किया। उसके आतंक से उपद्रवी और विद्रोही भयाक्रान्त हो गये।

(iii) **द्वितीय आक्रमण और विजय**—चार माह बाद सुलतान गयासुद्दीन ने वारंगल विजय के लिये पुनः जूनाखां के नेतृत्व में एक सेना भेजी। जूनाखां ने वारंगल का घेरा डाल दिया। राजा रुद्रदेव परास्त हुआ और वह बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया। वारंगल राज्य दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। सारे राज्य को कई प्रदेशों में विभक्त कर वहाँ मुस्लिम प्रशासक नियुक्त किये गये। वारंगल का नाम परिवर्तित कर उसे सुलतानपुर कर दिया।

(२) **उड़ीसा विजय (सन् १३२४)**— वारंगल विजय करने के बाद उलूगखां ने उड़ीसा के शासक भानुदेव द्वितीय की राजधानी जाजनगर पर आक्रमण किया, क्योंकि भानुदेन द्वितीय ने सुलतान के विरुद्ध राजा प्रताप रुद्रदेव को सहायता दी थी। इस आक्रमण में जूनाखां को सफलता प्राप्त हुई। भानुदेव से सन्धि हो गयी और उससे अपार धन-सम्पत्ति एवं चालीस श्रेष्ठ हाथी प्राप्त किये।

इस विजय के पश्चात उलूगखां दिल्ली लौट आया, जहाँ सुलतान ने उसके विजय अभियानों के उपलक्ष में उसका बड़ा सम्मान किया और स्वागत समारोह आयोजित किये गये।

(३) **बंगाल पर आक्रमण और विजय**-(i) **प्रथम आक्रमण**—बंगाल में सुलतान बलवन के पुत्र बुगराखां का पुत्र शम्सुद्दीन फिरोजशाह (सन् १३०२–१३२२) शासन कर रहा था। वह विशेष शक्तिशाली नहीं था। इसी के शासनकाल में बंगाल को विजय करने के लिये जूनाखां को भेजा गया था। परन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई।

(ii) **द्वितीय आक्रमण और विजय**—शम्सुद्दीन फिरोजशाह के देहावसान के बाद उसके पुत्र गयासुद्दीन बहादुर अपने भाइयों शहाबुद्दीन तथा नासिरुद्दीन को परास्त कर बंगाल का शासक बन गया। उसने शीघ्र ही अत्याचार, दमन, अन्याय व शोषण की नीति अपनाई। गयासुद्दीन बहादुर के भाई नासिरुद्दीन ने इस नीति का अन्त करने के हेतु बंगाल में हस्तक्षेप करने तथा उसे बंगाल का राज्य प्राप्त करने में सहायता करने के लिये सुलतान गयासुद्दीन से याचना की। सुलतान ने इस अवसर का लाभ उठाया और नासिरुद्दीन की सहायता करने व बंगाल में हस्तक्षेप करने का निर्णय

किया। अतः अपने पुत्र जूनाखां पर दिल्ली में शासन व्यवस्था का भार छोड़कर वह एक विशाल सेना लेकर बंगाल पहुँचा। गयासुद्दीन बहादुर ने बड़ी वीरता से युद्ध में उसका सामना किया, पर परास्त हुआ और बाद में सुलतान द्वारा सपरिवार दिल्ली भेज दिया गया जहाँ उसके साथ उदारता का व्यवहार किया गया। अब बंगाल सुलतान के प्रभाव क्षेत्र में आ गया। उसने नासिरुद्दीन को लखनौती का शासक नियुक्त किया। बंगाल के इस विजय अभियान में सुलतान को अपार धन-सम्पत्ति और बड़ी संख्या में श्रेष्ठ हाथी भी प्राप्त हुए।

(४) तिरहुत (मिथिला) विजय—बंगाल से दिल्ली लौटते समय गयासुद्दीन ने तिरहुत के शासक राजा हरीसिंह देव को युद्ध में परास्त कर दिया और उसकी राजधानी में अहमदखाँ को तिरहुत का शासक नियुक्त किया तथा तिरहुत को दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

मगोलों के आक्रमण—सन् १३२४ में मंगोलों ने सीमान्त क्षेत्र में आक्रमण किया। इसका सामना करने के लिये सुलतान ने सीमांत क्षेत्र के शासक हाकिम बहाउद्दीन गुर्शस्प की सहायता के लिये सेना भेजी। मंगोलों को युद्ध में परास्त कर दिया गया और उनके दो नेताओं को अनेक मंगोलों के साथ बंदी बना लिया गया और दिल्ली में उन्हें कठोर दंड दिया गया।

सुलतान गयासुद्दीन की हत्या (१३२५)—जब सुलतान गयासुद्दीन तुगलक बंगाल और तिरहुत विजय करके दिल्ली लौटा तब उसके पुत्र शाहजादा जूनाखाँ ने उसके स्वागत और प्रीतिभोज के लिये दिल्ली के समीप अफगानापुर में लकड़ी का एक राजमहल और मंडप तैयार करवाया। इस भवन में स्वागत के बाद भोजन के पश्चात सभी आमंत्रित अतिथि मडप या शामियाने से बाहर आ गये और सुलतान व उसका छोटा पुत्र महमूद उसमें रह गये और इसी समय अकस्मात मंडप गिर पड़ा और सुलतान अपने पुत्र सहित उसमें दबकर मर गया। सुलतान के इस निधन के विषय में दो धारणाएँ हैं—कुछ इतिहासकार इसके लिये जूनाखाँ को अभियुक्त ठहराते हैं तो अन्य विद्वान इसे आकस्मिक घटना कहते हैं। बर्नी ने लिखा है कि "बिजली गिरी जिससे सुलतान की मृत्यु हो गयी", पर वास्तविक सत्य ईश्वर ही जानता है।

सुलतान गयासुद्दीन का मूल्यांकन

(१) योग्य बुद्धिमान शासक—गयासुद्दीन तुगलक में प्रशासन की योग्यता, गुण और प्रतिभा थी। अपनी इन विशेषताओं और योग्यता के बल पर ही वह सैनिक से सुलतान के पद पर पहुँच गया था। उसने अपनी प्रशासकीय योग्यता, बुद्धिमानी और नीति से वर्षों से व्याप्त अराजकता और अस्त-व्यस्तता को दूर करके, विद्रोहों का दमन करके शांति-व्यवस्था स्थापित कर दी। उसने अपने शासन काल में एक अत्यंत सुयोग्य डाक विभाग का पुनः निर्माण किया। प्राचीन निर्णयों तथा कुरान के आधार पर न्याय विधान बनवाया और उसी के आधार पर न्याय की व्यवस्था की। न्याय

की दृष्टि से सभी व्यक्ति समान समझे जाने लगे। वह उदार और न्यायप्रिय शासक था।

वह अपनी नीति और सद्गुणों से पदाधिकारियों का स्नेहभाजन बन गया। उसने प्रांतीय शासकों को भी अपने आदर्शपूर्ण व्यवहार से, कुशल प्रशासन के लिये प्रेरित किया। वह प्रजावत्सल सुल्तान था जिसने अपने राज्य को प्रजाहित पर आधारित किया। उसकी शासन-व्यवस्था का आधार भय व आतंक नहीं था, अपितु प्रेम और उदारता थी। वह प्रजा की सुख शांति की कामना करता था तथा प्रजा के साथ उसका व्यवहार अच्छा था। वह अपनी उदार एवं धैर्यपरक शासन नीति के कारण तथा जन-कल्याणकारी कार्यों से शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया था। सुलतान खुसरो खाँ के समय अस्त-व्यस्त एवं लुप्त प्राय: राजस्व की शक्ति व सत्ता को उसने पुन: स्थापित किया। उसने अपनी न्याय तथा पुलिस विभाग की सुव्यवस्था से सुदूर सीमांत क्षेत्र में शांति स्थापित कर दी। सुल्तान अलाउद्दीन ने अपार मानव रक्त बहाकर, विद्रोहों के दमन और शांति स्थापना में, बड़ी कठिनता से विजय प्राप्त की, पर उसी कार्य में गयासुद्दीन बिना रक्त एवं शस्त्र की नीति अपनाये ही, सफल हो गया।

(२) **इस्लामी शासन**—गयासुद्दीन का प्रशासकीय दृष्टिकोण इस्लामी था। इस्लाम के कुरान के आधार पर उसने नियम और विधान बनवाये। वह अच्छा मुस्लिम शासक था। वह कुरान के अनुसार धर्मपरायण, नेक, पवित्र और दानशील तो था, परन्तु वह धर्मान्धता का परित्याग नहीं कर सका। उसने तुगलक शाह गाजी की उपाधि धारण की थी। गाजी का शाब्दिक अर्थ है हिन्दुओं का वध करने वाला। गयासुद्दीन ही दिल्ली का प्रथम सुलतान था जिसने अपने नाम के साथ गाजी शब्द का प्रयोग किया। उसने भी इस्लाम के प्रसार के लिये अपने पूर्व शासकों के समान धार्मिक पक्षपातपूर्ण नीति का अवलम्बन किया। उसके शासन-काल में भी हिन्दुओं के सुख, शांति और वैभव के दिन नहीं फिरे। उन्हें उसी प्रकार कष्ट मिलता रहा, उनका उसी प्रकार शोषण होता रहा, उनके मंदिर उसी प्रकार विध्वंस किये जाते रहे जैसे कि पहिले के सुलतानों के शासन काल में होता रहा था। क्योंकि हिन्दुओं का दमन इस्लाम की उन्नति के लिये आवश्यक समझा जाता था।

(३) **कुशल सेनानायक तथा वीर योद्धा**—गयासुद्दीन एक साहसी वीर योद्धा तथा कुशल सेनापति भी था। अपने जीवन-काल में वह अनेक युद्ध देख चुका था। उसने अपनी वीरता, साहस, रण-निपुणता और कुशल सैनिक नेतृत्व से मंगोलों को अनेक बार परास्त किया। सुलतान होने के बाद भी वह बंगाल और तिरहुत के अपने विजय अभियानों में सफल हुआ। बर्नी ने गयासुद्दीन के शौर्य और युद्ध कौशल के विषय में लिखा है कि, "वह भारत तथा खुरासान के समस्त सेनानायकों और सरदारों मे अद्वितीय था।"

(४) **कला प्रेमी**—भवन निर्माण कला में उसे अभिरुचि थी। दिल्ली में कुतुबमीनार से लगभग ६ किलोमीटर की दूरी पर उसने तुगलकाबाद नामक विशाल और दृढ़ दुर्ग व नगर का निर्माण किया। उसने सार्वजनिक भवनों का निर्माण प्रारम्भ

करने के प्रति अभिरुचि प्रदर्शित की। तुगलकाबाद का दुर्ग और उसके भवन उसकी कीर्ति के मूक प्रशंसक हैं। इब्नबतूता के अनुसार "तुगलकाबाद के एक राजप्रासाद की ईंटों पर स्वर्ण का एक पतरा चढ़ा हुआ था। सूर्योदय के समय इसकी चमक-दमक से कोई भी व्यक्ति महल की ओर दृष्टिपात नहीं कर सकता था। कहा जाता है कि सुलतान ने इसमें एक हौज बनवाया था जिसे सोना पिघलवाकर भरवा दिया गया था।" वह विद्वानों का भी आश्रयदाता था। प्रसिद्ध विद्वान और कवि अमीर खुसरो उसकी राजसभा की शोभा बढ़ाता था।

सच्चरित्रता और सद्‌गुणसम्पन्नता—गयासुद्दीन तुगलक में अनेक गुण थे। उसका व्यक्तित्व बहुमुखी गुणों से परिपूर्ण था। भारतीय मां से उत्पन्न होने के कारण उसमें हिन्दुओं की कोमलता, नम्रता और सरलता थी एवं तुर्क पिता से उत्पन्न होने के कारण उसमें तुर्की शक्ति दृढ़ता और पौरुष था। उसके हृदय में दया, स्नेह और वात्सल्य था। वह अपने दासों और सेवकों के प्रति उतना ही प्रेम दया और वात्सल्य रखता था जितना एक पिता अपने श्रेष्ठ और आज्ञाकारी पुत्र के लिए रखता है। इस विषय में बर्नी ने लिखा है कि "वह अपने नौकरों का पालन-पोषण अपने भाइयों और पुत्रों की भांति करता था। वह उनके परिवार को अपना परिवार समझता था और उन पर तथा उनके दास-दासियों पर भी अत्याचार नहीं होने देता था।" सुलतान में उदारता, दयालुता, मानवता, सद्‌व्यवहार और शिष्टाचार आदि श्रेष्ठ गुण थे। वह न्याय-प्रियता, दानशीलता, सौजन्य एवं सादगी के लिये प्रसिद्ध था। शक्ति, अधिकार और सत्ता ने उसे उन्मत्त और मदान्ध नहीं बनाया था। धर्मनिष्ठ सच्चे मुसलमान के समान रहकर वह सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करता था। वह खुदा से डरने वाला नेक मुसलमान था तथा सदा पांच बार नमाज पढ़ता था और रमजान में व्रत रखता था। उस काल के अमीरों, सरदारों और नरेशों में पाये जाने वाले दुर्गणों से वह सर्वथा दूर था। मदिरापान से वह दूर रहता था। उसका पारिवारिक जीवन निष्कलुष था तथा संयम उसके जीवन का सिद्धान्त था। उसका व्यक्तिगत जीवन निर्दोष था। अमीर खुसरो के शब्दों में, "सुलतान के प्रत्येक क्रिया-कलाप से उसकी बुद्धिमत्ता एवं पटुता झलकती है मानो उसके राजमुकुट के नीचे संसार के सभी गुणों का निवास स्थान हो।"

वह अच्छे सुधार करने तथा सार्वजनिक उपयोगिता के तथा जनहित के कार्यों एवं भवन निर्माण के कार्यके लिए और अधिक काल तक जीवित न रह सका। उसकी आकस्मिक मृत्यु हो गई। परन्तु वह अपने पूर्ववर्ती सुल्तानों के शासन के काल में न्यूनतम रह जाने वाली शक्ति को पुनः प्रतिष्ठित करने में अवश्य सफल हुआ। उसने दिल्ली सल्तनत की टूटती और बिखरती हुई जड़ों को दृढ़ किया। पाश्चात्य इतिहास-कार लेनपूल के शब्दों में, गयासुद्दीन, विश्वसनीय, सीमारक्षक, न्यायप्रिय व्यक्ति, उच्चा-शय मानव एवं शक्तिसम्पन्न शासक सिद्ध हुआ। डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद का कथन है कि गयासुद्दीन का "शासन न्याय एवं उदारता के सिद्धान्तों पर आधारित था और नियमों को कार्यान्वित करते समय वह सार्वजनिक हित का सदा ध्यान रखता था।" विलासी मुबारकशाह और कलुषित खुसरोखां के शासन काल में अस्त-व्यस्त प्रशास-

कीय तन्त्र को सुव्यवस्थित बना देना तथा सल्तनत की लुप्त प्राय: सत्ता और शक्ति को पुन: प्रतिष्ठित कर देना गयासुद्दीन तुगलकशाह की प्रमुख देन है।

सारांश

दिल्ली में खिलजी वंश के पतन के बाद तुगलक वंश का राज्य प्रारंभ हुआ। कुछ लोगों का मत है कि तुगलक मंगोल थे, पर यह मत भ्रममूलक है। वास्तव में तुगलक करौना तुर्क थे जिन्होंने पंजाब में स्थायी रूप से बस जाने के कारण भारतीयों से अपने वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिये थे। इस प्रकार कुछ विद्वान कहते हैं कि तुर्क मिश्रित जाति के थे। तुगलक सुलतान दिल्ली में सन् १३२० से १४१२ तक शासन करते रहे और इस युग की दिल्ली सल्तनत को तुगलक साम्राज्य कहते हैं।

गयासुद्दीन तुगलक (सन् १३२०–१३२५)

गयासुद्दीन एक सैनिक था और वह अपनी प्रतिभा व गुणोंसे पदोन्नति करते-करते सीमांत क्षेत्र में दीपालपुर की चौकी का संरक्षक बन गया था। जब खुसरोखाँ सुलतान मुबारकशाह की हत्या करके स्वयं सुलतान बन गया तो गयासुद्दीन खुसरो से रुष्ट हो गया और दिल्ली के समीप उसे युद्ध में परास्त कर दिया। सुलतान बनने के लिये खिलजी राजवंश में कोई भी व्यक्ति जीवित न होने के कारण और अमीरों के अनुरोध करने पर गयासुद्दीन दिल्ली का सुलतान बन गया।

गयासुद्दीन तुगलक की समस्याएं और उनका निराकरण—सुलतान बनने के बाद गयासुद्दीन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, जैसे दिल्ली सल्तनत विघटित होकर छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो चुकी थी, शासन-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो चुकी थी, सर्वत्र अराजकता थी, सिंध, बंगाल, गुजरात व दक्षिण के राज्य स्वतंत्र हो चुके थे, साम्राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह भड़क रहे थे, दिल्ली के पास बसाये मंगोल जो नवीन मुसलमान कहलाते थे, षड्यंत्र और उपद्रव कर रहे थे. हिन्दुओं का प्रभुत्व बढ़ जाने से इस्लाम खतरे में आ गया था, राजकीय अपव्यय व कृषि तथा उद्योगों के अस्त-व्यस्त हो जाने से आर्थिक दशा दयनीय हो गयी थी और राजकोष रिक्त हो गया था, पंजाब में खोखर उपद्रव कर रहे थे और सीमांत क्षेत्र में मंगोल आक्रमण कर रहे थे।

गयासुद्दीन ने दृढ़ता से इन समस्याओं का निराकरण किया और राज्यमें शांति व्यवस्था स्थापित की। उसने खिलजी वंश के अवशिष्ट संबंधियों और तुर्क सरदारों के साथ नम्रता और उदारता का व्यवहार किया और उन्हें उनके पदों पर ही रहने दिया। सुयोग्य और कार्यकुशल अमीरों और अधिकारियों में उसने विभिन्न पदों और पदवियों का उदारता से वितरण किया और इससे उनका समर्थन प्राप्त किया। उसने दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों में विद्रोहों का दमन करके शांति व्यवस्था स्थापित की। आर्थिक दशा सुधारनेके लिये उसने अवैधानिक रूपसे हड़पी हुई जागीरों व राजकोष से प्राप्त किये धन को आतक व दंड-नीति से पुन: प्राप्त कर लिया। कृषकों के साथ उदार नीति अपनायी गयी, उन्हें आवश्यक सहायता दी गयी। सिंचाई के लिये नहरें व कुए खोदे गये। भूमि-कर उपज का सातवां और दसवां भाग रखा

गया। न्याय-व्यवस्था के लिये उसने एक न्याय विधान और नियमों की रचना करवायी और न्याय के लिये सभी को समान समझा जाने लगा। यातायात के साधनों की भी समुचित व्यवस्था की गयी और जनमार्गों पर डाक चौकियों की व्यवस्था की गयी। घुड़सवारों द्वारा डाक भेजने की व्यवस्था की गयी।

सैनिक व्यवस्था को अधिक संयत तथा सूक्ष्म रूप से संगठित किया गया और कई सैनिक सुधार किये। सेना में वृद्धि की गयी, अश्वों को चिह्नित करने और सैनिकों की परिचय सूचियां बनाने की प्रथा पुनः प्रचलित की गयी। सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया गया। सेना में कायर और अनुशासन भंग करने वालों को कठोर दंड दिया जाता था। अस्त्र-शस्त्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध किये गये।

सुलतान दीन-दुखियों, फकीरों, विद्वानों, धर्मोपदेशकों आदि को उदारता से दान देता था। शासकीय कर्मचारियों और अधिकारियों के प्रति उसने अधिक नम्रता, सहिष्णुता और उदारता का व्यवहार किया और भ्रष्टाचार रोकने के लिये उनके वेतन में वृद्धि कर दी। उसने सार्वजनिक कल्याण के अनेक कार्य किये। उसने मदिरापान, व्यभिचार, द्यूतक्रीड़ा और अनाचार को दूर करने का प्रयास किया और दुष्टों को समुचित दंड दिया। वह धर्मनिष्ठ नेक मुसलमान नियमित रूप से नमाज पढ़ता था और रोजे रखता था। पर हिन्दुओं के प्रति उसकी नीति अनुदारता, असहिष्णुता और शोषण की थी। उनकी मूर्तियों व मंदिरों को विध्वंस किया गया। गयासुद्दीन के उपरोक्त वर्णित सुधारों व कार्यों से सल्तनत का पुनर्संगठन हो गया, वह व्यवस्थित हो गयी और राज्य में शांति व्यवस्था स्थापित हो गयी।

गयासुद्दीन तुग़लक के आक्रमण और विजय—अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिये गयासुद्दीन तुगलक ने अन्य प्रदेशों पर विजय अभियान किये। उसने अपने पुत्र जूनाखां के नेतृत्व में दक्षिण में वारंगल विजय के लिये एक सेना भेजी, क्योंकि वहाँ के राजा ने दिल्ली से अपना संबंध विच्छेद कर वार्षिक कर देना बंद कर दिया था। जूनाखां ने वारंगल को घेर लिया। पर उसकी विजय के पूर्व ही यह अफवाह फैला दी गई कि दिल्ली में सुलतान की मृत्यु हो गयी। जूनाखां दिल्ली लौटने के लिये वारंगल का घेरा उठा कर देवगिरी तक चला आया यहाँ उसे सुलतान के संदेशवाहक मिले और यह समाचार मिला कि सुलतान जीवित है। चार माह पश्चात जूनाखां को पुनः वारंगल-विजय के लिये भेजा गया। युद्ध में वारंगल का राजा परास्त हो गया और उसे बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया। वारंगल राजकोष की सारी संपत्ति और हाथी जूनाखां के हाथ लगे और वारंगल को दिल्ली राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार तेलंगाना से काकातीय वंश का शासन समाप्त हो गया।

वारंगल विजय के बाद जूनाखां ने उड़ीसा के राजा भानुदेव द्वितीय पर आक्रमण किया। भानुदेव से संधि हो गयी और जूनाखां को अपार धन और ४० हाथी प्राप्त हुए।

बंगाल में वहाँ के शासक फिरोजशाह की मृत्यु क बाद उसके पुत्रों में उत्तराधिकार का संघर्ष हुआ जिसमें गयासुद्दीन बहादुर विजयी हुआ और वह बंगाल का शासक हो गया। पर उसकी अनाचार की नीति के विरुद्ध और स्वयं शासक बनने के लिये गयासुद्दीन बहादुर के भाई नासिरुद्दीन ने सुलतान से सहायता मांगी। फलत: सुलतान विशाल सेना लेकर बगाल पहुँचा और गयासुद्दीन को परास्त करके नासिरुद्दीन को बंगाल का शासक बना दिया। बंगाल से लौटते समय गयासुद्दीन ने तिरहुत को भी विजय किया।

गयासुद्दीन की हत्या—बंगाल और तिरहुत विजय से लौटने पर गयासुद्दीन के स्वागत के लिये जूनाखां ने तुगलकाबाद से कुछ दूर लकड़ी का एक भवन बनवाया। स्वागत समारोह और प्रीतिभोज के बाद यह भवन और मंडप गिर पड़ा और गयासुद्दीन अपने छोटे पुत्र सहित दब कर मर गया। इस हत्या के लिये कुछ विद्वानों ने जूनाखां को दोषी ठहराया है और किसी ने उसे दोष-मुक्त।

गयासुद्दीन का मूल्यांकन—गयासुद्दीन योग्य, बुद्धिमान शासक था। उसने वर्षों से व्याप्त अराजकता और अस्त-व्यस्तता को दूर कर शांति-व्यवस्था स्थापित की। उसने न्याय, डाक और पुलिस की भी समुचित व्यवस्था की। वह प्रजा की सुख-शांति चाहता था और जन-कल्याण के कार्य करता था। वह इस्लाम के कुरान के आधार पर शासन करता था। हिन्दुओं के प्रति उसने अहिष्णुता और अनुदारता की नीति अपनायी।

गयासुद्दीन कुशल सेनानायक तथा वीर योद्धा था। उसने मंगोलों को अनेक बार परास्त किया और बंगाल व तिरहुत जीते। वह भवन-कला प्रेमी था और उसने तुगलकाबाद का नगर व दुर्ग तथा भवन निर्माण किये।

गयासुद्दीन सद्‌गुणसंपन्न सुलतान था। उसमें नम्रता, उदारता, सरलता, सद्‌व्यवहार, शिष्टाचार, न्यायप्रियता, दानशीलता, सौजन्य, संयम आदि गुण थे। उसका जीवन सादा था। उसने दिल्ली सल्तनत की विश्रृंखलित और टूटती हुई जड़ों को दृढ़ किया और विलुप्त राजस्व को पुन: स्थापित किया।

अध्याय १९

सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक (सन् १३२५-१३५१)

सुलतान गयासुद्दीन की हत्या—तुगलक काल के इतिहास में सुलतान गयासुद्दीन की मृत्यु बड़ी विवादास्पद और जटिल है। उसकी मृत्यु या हत्या किन परिस्थितियों में हुई और उसमें सुलतान मुहम्मद (जूनाखां) का कितना हाथ था, इसका विवरण अगले पृष्ठों में किया जा रहा है।

(i) **गयासुद्दीन को संदेश और उसका आदेश** - जब सुलतान गयासुद्दीन तुगलक शाह बंगाल और तिरहुत विजय कर दिल्ली लौट रहा था, तब मार्ग में उसे यह संदेश प्राप्त हुआ कि शाहजादा फकरुद्दीन जूनाखां ने निजामुद्दीन औलिया से मिलकर उसके विरुद्ध षड़यंत्र रचा है। इसको कार्यान्वित करने के लिये जूनाखां ने अनेक गुलाम क्रय कर लिये हैं और उन्हें अपार सम्पत्ति देकर अपने विश्वासपात्र सेवक बना लिये हैं। यही नहीं जूनाखां ने शेख निजामुद्दीन औलिया से दीक्षा ग्रहण कर उसे अपना धर्म गुरु भी बना लिया है।

इन खबरों से गयासुद्दीन चिंतित हो गया। गयासुद्दीन और निजामुद्दीन औलिया के सम्बन्ध पहिले से ही बिगड़ चुके थे। क्योंकि निजामुद्दीन को मुबारकशाह और खुसरो खां के समय अपार धन राजकोष से प्राप्त हुआ था। गयासुद्दीन ने इस प्रकार अवैधानिक और अनुचित रूप से प्राप्त धन को लौटाने के लिये निजामुद्दीन को आदेश दिये थे। पर निजामुद्दीन ने यह धन लौटाने में अपनी असमर्थता यह कहकर प्रगट की थी कि उसने यह समस्त धन दीन-दुखियों व गरीबों में वितरित कर दिया है। इस बात से गयासुद्दीन निजामुद्दीन से रुष्ट था।

फलत: जब गयासुद्दीन को जूनाखां और निजामुद्दीन औलिया के नवीन पारस्परिक सम्बन्धों और षड़यंत्र की सूचना प्राप्त हुई, तब वह शंकित हो गया और उसने शीघ्र ही दिल्ली में जूनाखां के पास यह संदेश भेजा कि वह शेख निजामुद्दीन से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर ले, अन्यथा उसे सुलतान के उत्तराधिकार के पद से पृथक कर दिया जायगा तथा उसे एवं निजामुद्दीन को समुचित दंड दिया जायगा। जूनाखां बड़ा विवेकशील और दूरदर्शी था। उसने परिस्थिति का निरीक्षण कर प्रत्यक्ष रूप से सुलतान के आदेश मान लिये पर अप्रत्यक्ष रूप से उसने शेख से सम्बन्ध विच्छेद नहीं किये थे और षड़यंत्र का कार्य चलता ही रहा।

इसी बीच गयासुद्दीन ने जूनाखां को यह भी संदेश भेजा कि उसके दिल्ली पहुंचने के पूर्व ही शेख निजामुद्दीन दिल्ली नगर की सीमा से बाहर अन्यत्र चला जाए। यह आदेश गयासुद्दीन के संदेह और मनोमालिन्य को स्पष्ट प्रगट करता है।

परन्तु न तो जूनाखां और न निजामुद्दीन ने इस आदेश को कार्यान्वित करने के प्रयास ही किये। यही नहीं निजामुद्दीन ने इस आदेश के उत्तर में कहा—"हिनूज दिल्ली दूर अस्त", अर्थात् अभी दिल्ली दूर है। इससे यह स्पष्ट झलकता है कि निजामुद्दीन के मन में यह दृढ़ धारणा और विश्वास था कि गयासुद्दीन दिल्ली पहुँच ही नहीं पायगा और न उसे दिल्ली से बहिर्गमन करना पड़ेगा। इब्नबतूता के कथनानुसार गयासुद्दीन ने जूनाखां को यह भी आदेश भेजा कि अफगानपुर में उसके लिये एक राजभवन का निर्माण किया जाय जहां ठहर कर वह बाद में सजधज के साथ दिल्ली में प्रवेश करेगा। अफगानपुर तुगलकाबाद से लगभग छै या सात किलोमीटर दूर था।

(ii) **महल और मंडप का निर्माण**—सुलतान के आदेशानुसार जूनाखां ने शहनये इमारत (भवन निर्माण विभाग का प्रमुख अधिकारी) अहमद बिन आयज की सहायता से तीन दिन में काष्ठ का एक राजप्रसाद निर्मित करवाया। इसकी नींव लकड़ी के स्तंभों पर रखी गयी थी और इस महल की यह विशेषता थी कि यदि इसके एक ओर हाथी चलें तो उनकी हलहल से समस्त महल धराशायी हो जाय। यह भवन इस प्रकार बनाया गया था कि यदि उसे एक विशिष्ट निश्चित स्थान पर हाथी छू जाय तो वह गिर पड़ेगा। इसी उद्देश्य से लकड़ी का एक लट्ठा भवन के बाहर निकला हुआ था। ऐसी ही युक्ति से यह महल निर्मित किया गया था।

(iii) **सुलतान का दब जाना और उसका देहावसान**—जूनाखां ने यह योजना बनाई थी कि इस नवनिर्मित राजभवन में प्रमुख अमीरों व सरदारों के सामने सुलतान का उसकी विजयों के उपलक्ष में स्वागत सम्मान हो और बाद में प्रीतिभोज हो। इसके लिये अमीर व अधिकारीगण आमंत्रित किये गए थे। सुलतान गयासुद्दीन अफगानपुर में मध्यान्होत्तर की नमाज के बाद पहुँच पाया। जूनाखां ने राजभवन में उसका अभिनंदन और स्वागत किया तथा उसका चरण स्पर्श भी किया। समारोह के बाद एक प्रीतिभोज हुआ। इसमें प्रमुख अमीर, सरदार और अधिकारीगण थे। जैसे ही भोजन समाप्त हुआ सभी मंडप से बाहर आ गये। सुलतान अपने सबसे छोटे पुत्र महमूद तथा चार-पांच विश्वासपात्र सेवकों व व्यक्तियों के साथ मंडप में हाथ धोने लगा। इसी समय जूनाखां ने सुलतान से यह निवेदन किया कि बंगाल से जो हाथी विजय में प्राप्त हुए हैं उनका सबके सामने प्रदर्शन हो और वे महल के चारों ओर घुमाये जायँ तथा सुलतान स्वयं भी उन्हें देखे और निरीक्षण करे। सुलतान ने अपनी स्वीकृति दे दी। फलतः हाथियों का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। इस समय सुलतान हाथ धो रहा था। ज्योंही हाथियों की गतिविधि प्रारम्भ हुई और उनकी एक कतार इस नवीन भवन को स्पर्श करती हुई निकली, भवन हिलाडुला तथा लड़खड़ाते हुए शीघ्र ही धराशायी हो गया। जूनाखां ने इस पर यह आदेश दिया कि शीघ्र ही रस्सियां और फावड़े लाये जायँ जिससे कि मलबे को खोदकर सुलतान को शीघ्र ही निकाला जाय। इसी समय यह गुप्त संकेत भी कर दिया गया था कि रस्सियां व फावड़े अत्यधिक विलम्ब से लाये जायँ और वे सूर्यास्त के पूर्व न प्राप्त

हो सकें। जब मलबे को खोदकर सुलतान को निकाला गया तब वह अपने पुत्र महमूद के शरीर पर पड़ा था। संभव है कि अंतिम क्षणों में भी सुलतान ने अपने पुत्र की मृत्यु का क्रूर आघातों से रक्षा करने का प्रयास किया हो। खोदने पर सुलतान का शव ही मिला। कतिपय व्यक्तियों का मत है कि वह जीवित था पर उसकी हत्या कर दी गयी। इस घटना के कुछ समय पश्चात् तुगलकाबाद मे गयासुद्दीन और महमूद दोनों को दफना दिया गया।

क्या फखरुद्दीन जूनाखां या मुहम्मद तुगलक पितृहन्ता था ?

राजमहल में सुलतान गयासुद्दीन के दब कर मर जाने की दुर्घटना ने तुगलक काल के इतिहास में एक जटिल विवाद उत्पन्न कर दिया। इससे दो विचारधाराएँ प्रसारित हुईं—

(अ) राजमहल आकस्मिक रूप से गिर गया था और सुलतान उसमें दबकर मर गया था। आकस्मिक रूप से आकाश से बिजली गिरने के कारण राजमहल धराशायी हो गया था और सुलतान मर गया। मुहम्मद तुगलक निर्दोष है।

(आ) गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु जूनाखां के षड्यन्त्र का परिणाम थी। राजकुमार जूनाखां सुलतान बनने का महत्वाकांक्षी था। इसलिये उसने अन्य व्यक्तियों के साथ षडयन्त्र रचा और युक्तिपूर्वक राजमहल गिरवाकर सुलतान को मरवा दिया। अतः मुहम्मद तुगलक पितृहन्ता था।

जो विद्वान जूनाखाँ या मुहम्मद तुगलक को गयासुद्दीन की हत्या का दोषी मानते हैं, उनका आधार राजमहल के धराशायी होने की तत्कालीन घटना का इब्नबतूता द्वारा विस्तृत विवरण है। जो विद्वान मुहम्मद को निर्दोष प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं उनका आधार प्रमुख रूप से जियाउद्दीन बर्नी का मत है। इन दोनों परस्पर विरोधी मतों का विश्लेषण अधोलिखित है:—

मुहम्मद तुगलक निर्दोष था—इस मत के लिये निम्नलिखित विद्वानों के कथन और उनकी धारणाएँ व निष्कर्ष हैं—

(१) **बर्नी का मत**—बर्नी ने अपने ग्रंथ "तारीख-ए-फिरोजशाही" में लिखा है कि एक दिन "आकाश से वज्रपात हुआ और सुलतान सदा के लिये इस संसार से उठ गया" (सायकः बला अज आसमां जमीं नाजिल शुद)। बर्नी के इस कथन को ग्राह्य करने वाले विद्वानों की धारणा है कि नभमंडल से बिजली गिरी जिससे गयासुद्दीन का देहावसान हो गया। वज्रपात और महल का गिरना दैवी-प्रकोप था। उसमें मुहम्मद तुगलक का कोई दोष नहीं है।

(२) **मतलू-बुल-तालिबीन**—शेख निजामुद्दीन औलिया की जीवनी मतलू-बुल-तालिबीन में भी जो घटना के लगभग पौने चार सौ वर्ष बाद सन् १६९८में लिखी गयी थी, लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि गयासुद्दीन की मृत्यु रबी-उल-अव्वल माह में बिजली गिरने से हुई; (बरक अज आसमान उफ़ताद अर्थात् आसमान से बिजली गिरी)। रबी उल-अव्वल माह जून-जुलाई में आता है। उस समय वर्षा ऋतु होने से नभमंडल से बिजली गिरना संभव है।

(३) **फरिश्ता का कथन**—मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि हाजी मुहम्मद कंधारी का मत है कि गयासुद्दीन की मृत्यु बिजली गिरने से हुई और यह संभव भी है। फरिश्ता ने लिखा है, "यह सत्य है कि राजकुमार कुछ समय तक सुलतान के साथ रहा और जैसे ही उसने महल और मंडप को छोड़ा, वह गिर पड़ा। यह केवल एक आकस्मिक घटना थी।"

(४) **ऐन मुल्क मुलतानी की धारणा**—इस विद्वान ने अपने एक पत्र में स्वीकार किया है कि अफगानपुर मे निर्मित राजमहल दृढ़ था। ऐसी दशा में उसके गिरने और सुलतान के मर जाने की कल्पना भ्रममूलक और निराधार है। सुलतान की मृत्यु आकस्मिक दैवी-प्रकोप से हुई।

(५) **इलियट का कथन**—प्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासकार इलियट का कथन है कि बिजली गिरी और तमाम ढांचा एक कड़क के साथ गिर गया (Lightening fell upon the roof and the whole structure came down with a crash)।

(६) **आगा मेंहदी हुसेन का मत**—इन्हीं मतों के आधार पर डाक्टर आगा मेंहदी हुसेन ने अपने ग्रंथ (Rise and fall of Muhammad Tughlaq) में मुहम्मद तुगलक को उसके पिता की हत्या से निर्दोष प्रमाणित किया है।

(७) **मुहम्मद तुगलक की अप्रकाशित जीवनी**—कतिपय विद्वानों का मत है कि मुहम्मद तुगलक की अप्रकाशित जीवनी के अनुसार बिजली गिरने से सुलतान की मृत्यु हुई। बिजली गिरने की यह घटना जुलाई माह में घटी थी। इस माह में प्रायः वर्षा होती है और बिजली गिरती है। इस समय वज्रपात होना काफी संभव है।

(८) **सीरत-ए-फिरोजशाही और फिरोजशाह का मत**—मुहम्मद तुगलक के चचेरे भाई और उसके उत्तराधिकारी फिरोजशाह तुगलक ने अपने ग्रंथ 'सीरत-ए-फिरोजशाही" में ऐसा कहीं उल्लेख नहीं किया है कि मुहम्मद तुगलक ने षड़यन्त्र रचकर, महल गिरवाकर, गयासुद्दीन की हत्या करवायी। फिरोजशाह ने अपने ग्रंथ में अनेक स्थलों पर मुहम्मद की कटु आलोचना की है। अतएव यदि मुहम्मद तुगलक पिता की हत्या करता तो फिरोज मुहम्मद का ऐसा अंधा भक्त नहीं था कि उसके इस कुकृत्य का वह उल्लेख नहीं करे। इससे भी मुहम्मद निर्दोष प्रतीत होता है।

(९) **बर्नी द्वारा मुहम्मद की आलोचना**—बर्नी ने अपने ग्रंथ में अनेक स्थलों पर मुहम्मद तुगलक की कटु आलोचना और तीव्र निंदा की है। यदि मुहम्मद पितृहंता होता तो बर्नी अवश्य ही इस जघन्य कृत्य का वर्णन करता और मुहम्मद को दोषी ठहराता। पर बर्नी का ऐसा न करना, इसका प्रमाण है कि मुहम्मद तुगलक सुलतान की हत्या में निर्दोष है।

(१०) **मुहम्मद तुगलक की सच्चरित्रता और आचरण**—मुहम्मद तुगलक स्वयं सच्चरित्र वाला और उदारहृदयी व्यक्ति था। वह अपने पिता की हत्या जैसा पाप कभी नहीं कर सकता था। जिस हत्या के लिये वह सुलतान अलाउद्दीन की तीव्र भर्त्सना व आलोचना किया करता था, वैसी ही हत्या वह स्वयं कैसे कर सकता था। इसके अतिरिक्त मुहम्मद ने पिता की मृत्यु का शोक काले वस्त्र धारण करके चालीस

दिन तक मनाया। सारे साम्राज्य में चतुर्दिक शोक मनाया गया। मुहम्मद के इस शोकाचरण से भी उसकी निर्दोषता प्रकट होती है।

(११) **इब्नबतूता के मत की आलोचना**—इब्नबतूता ही एक ऐसा समकालीन लेखक है जिसने मुहम्मद तुगलक को सुलतान की हत्या का दोषी माना है। उसके इस मत के पीछे कुछ पृष्ठ-भूमि है। वह सुलतान मुहम्मद से चिढ़ा हुआ था। वह उस उलमा वर्ग का सदस्य था जो सुलतान मुहम्मद से उलमाओं के प्रति उसकी नीति के कारण बहुत ही रुष्ट था। इब्नबतूता का वैवाहिक सम्बन्ध माबर शासक परिवार से हुआ था जो मुहम्मद तुगलक का शत्रु था। फलत: उसने मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध अनेक अनर्गल मनगढ़न्त बातों की कल्पना कर ली और उनका वर्णन अपने ग्रंथ में कर दिया। सुलतान के विरुद्ध मुहम्मद का षड्यंत्र और उसकी हत्या की घटना भी ऐसी ही कपोल कल्पित और उसकी बुद्धि व मस्तिष्क की उपज है। अतएव इब्नबतूता के मत को स्वीकार करने में हिचक है।

मुहम्मद तुगलक पितृहन्ता था—इब्नबतूता के मत तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर अर्वाचीन इतिहासकार और विद्वान यह मानते हैं कि मुहम्मद तुगलक पितृहन्ता था, उसने सुलतान की हत्या करवाई थी। निजामुद्दीन अहमद, बदायूँनी, अबुलफजल जैसे मध्यकालीन विद्वान तथा डाक्टर वुल्जेहेग और डाक्टर ईश्वरी-प्रसाद जैसे आधुनिक विद्वान मुहम्मद तुगलक को दोषी मानते हैं। इस मत की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क दिये गये हैं :—

(१) **इब्नबतूता का प्रामाणिक विवरण**—इब्नबतूता ने गयासुद्दीन के निधन की घटनाओं का जो विवरण दिया है, उसे अधिक प्रमाणित मानने और मुहम्मद तुगलक के पितृहन्ता होने के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(अ) प्रसिद्ध इतिहासकार इब्नबतूता सुलतान मुहम्मद का समकालीन था और गयासुद्दीन के निधन के आठ वर्ष पश्चात ही वह दिल्ली आया था। इस समय तक सुलतान के निधन की घटनाओं की स्मृति ताजी रही होगी और इब्नबतूता ने पूर्ण जानकारी से अपना विवरण लिखा होगा।

(ब) इब्नबतूता ने स्वयं लिखा है कि गयासुद्दीन के देहावसान की घटनाओं का विवरण उसे शेख रुकनुद्दीन से प्राप्त हुआ है। शेख रुकनुद्दीन ने स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित होनेसे सभी हाल अपनी आँखों से देखा था। इसके अतिरिक्त वह साधु-प्रकृति का धार्मिक व्यक्ति था। उसने इब्नबतूता को सही घटनाओं की जानकारी ही दी। शेख रुकनुद्दीन का झूठी गाथा बनाने में कोई उद्देश्य नहीं हो सकता। उसकी सन्त प्रकृति व विद्वत्ता के कारण मुहम्मद तुगलक ने उसे सौ ग्राम जागीर में दिये थे।

(स) इब्नबतूता जैसे विद्वान ने महल के धराशायी होने और सुलतान के देहावसान होने की घटना की विशद जानकारी शेख रुकनुद्दीन के अतिरिक्त अन्य लोगों से भी ली होगी। सत्य की पुष्टि किये बिना वह अपने ग्रथ मे मुहम्मद को दोषी बताने की बात नहीं लिखता।

(द) इब्नबतूता ने अपना ग्रन्थ स्वदेश लौटने पर लिखा था। ऐसे समय में उसे सुलतान मुहम्मद का कोई भय भी नहीं था। अतः उसने सत्य घटनाओं का ही

विवरण दिया है । काल्पनिक कहानी लिखना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था।

(य) इब्नबतूता का और मुहम्मद तुगलक का कोई पारस्परिक झगड़ा, द्वेष और मनोमालिन्य नहीं था जिससे कि जानबूझकर वह मुहम्मद को बदनाम और कलंकित करे और उसे पितृहंता बतलाए। ऐसी परिस्थिति में डाक्टर मेंहदी हुसैन का यह मत कि इब्नबतूता और मुहम्मद तुगलक दोनों में द्वेष था, और मुहम्मद को बदनाम करने के लिये ही उसने हत्या की घटना की कल्पना की, मान्य नहीं होता है। इसके अतिरिक्त अभी तक ऐसे कोई विश्वसनीय प्रमाण भी उपलब्ध नहीं हुए हैं। जिनसे यह प्रकट हो कि इब्नबतूता और मुहम्मद में शत्रुता व द्वेष था और उसने हत्या की घटना मनगढ़न्त ढंग से लिखी है।

उपरोक्त तर्कों से प्रमाणित होता है कि इब्नबतूता के विवरण को संदेह की दृष्टि से देखना, न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता है। इन तर्कों से मुहम्मद अपने पिता का प्राणहंता प्रतीत होता है।

(२) **बर्नी का हत्या पर अलंकारिक परिधान**—बर्नी का कथन है कि सुलतान की मृत्यु बिजली गिरने से हुई। वह मुहम्मद पर हत्या का दोषारोपण नहीं करता, अपितु उसे बड़े अलंकारिक आवरण में वर्णन करता है। इसके लिये निम्नलिखित तर्क है :—

(अ) मुहम्मद का उत्तराधिकारी फिरोजशाह तुगलक था। मुहम्मद के प्रति फिरोज को विशेष श्रद्धा और भक्ति थी। यह बात बर्नी अच्छी तरह जानता था। फिरोजशाह बर्नी का आश्रयदाता और संरक्षक था। बर्नी फिरोज का बड़ा आदर-सम्मान करता था। वह नहीं चाहता था कि मुहम्मद को पितृहन्ता लिखकर अपने आश्रयदाता और अन्नदाता फिरोज की कोमल भावनाओं पर मार्मिक आघात पहुंचाए और इससे उसे दुःख हो। इससे वह सत्य को स्पष्ट रूप से कहने में शांत रहा।

(ब) फिरोजशाह को वेदना न हो, इसलिए बर्नी ने गयासुद्दीन की हत्या व निधन का वर्णन काव्यमय भाषा और अलंकारिक रूप में कर दिया। उसने मुहम्मद तुगलक के घृण्य कृत्य को 'सायकः बला अज आसमाँ जमीं नाजि शुद' लिखकर अलंकारिक परिधान में ढक लिया। इस वाक्य में उसका कथन है कि 'आपत्ति की बिजली आसमान से पृथ्वी पर पड़ी, और सुलतान दबकर मर गया।'' Elliot and Downson ने अपने ग्रंथ में उपरोक्त वाक्य अंग्रेजी में अनुवाद करते हुए लिखा है—"A thunderbolt from the sky descended upon the earth" लंदन में India office में बर्नी के ग्रंथ की अंग्रेजी में अनूदित हस्तलिखित एक प्रति है। उसमें भी सायकः बला अज आसमां जजीं नाजिल शुद'' का शाब्दिक परिवर्तन लिखा है—"Lightening of a calamity from heaven fell upon the earth" इसका अर्थ यह है कि "आपत्ति की बिजली नभमंडल से पृथ्वी पर गिरी।"

(स) "सायकः बला अज आसमाँ जमीं नाजिल शुद" का शाब्दिक अर्थ नहीं लेना चाहिये। बर्नी ने इस वाक्य में काव्यात्मक भाषा के माध्यम से यह उल्लेख

किया है कि सुलतान गयासुद्दीन की मृत्यु आकस्मिक और वज्रपात से भी अधिक भयावह घटना द्वारा हुई।

(द) यदि बर्नी को यह स्पष्ट लिखना था कि सुलतान की मृत्यु बिजली गिरने से हुई तो, वह अलंकारिक काव्यमय भाषा का उपयोग न करके, सरल भाषा में लिखता कि "बिजली की आपत्ति आसमान से गिरी और उसमे सुलतान दबकर मर गया।" यदि सुलतान बिजली के गिरने से मरा होता तो बर्नी ने "सायक: बला आसमां" (बला की बिजली) के स्थान पर "बलाय सायक: आसमां" (बिजली की बला) लिखा होता। बर्नी का सीधे प्रकार से सुलतान के निधन का वर्णन न करना और शेखनिजामुद्दीन औलिया के प्रसंग को घटनाओं के क्रमों में से छोड़ देना, इस बात का प्रमाण है कि बर्नी ने सत्य को छिपाया है। इसलिये उसका मत अग्राह्य है।

(३) **मतलू-बुल-तालिबीन**—यह शेख निजामुद्दीन औलिया की जीवनी है जिसे शेख के परिवार के संबंधी ने लिखा था। बर्नी के समान इस ग्रंथ में भी यही लिखा है कि नभ से बिजली गिरी और सुलतान दबकर मर गया। इस ग्रंथ के रचयिता ने भी सत्य को छिपाया है। उसने मुहम्मद तुगलक और शेख के सम्बन्धों और षड्यंत्र का वर्णन नहीं किया है। वह नहीं चाहता था कि शेख औलिया जैसे संत का चरित्र जघन्य कार्य की कालिमा से कलंकित हो।

(४) **निजामुद्दीन अहमद, बदायूंनी, अबुलफजल, फरिश्ता तथा हुसाम खाँ के मत**— निजामुद्दीन अहमद ने "तबकात–ए–अकबरी", बदायूनी ने "मुन्तखब–उत–तवारीख" और अबुलफजल ने "आइने अकबरी" तथा "अकबरनामा" ग्रंथ लिखे हैं। इन परवर्ती मुस्लिम इतिहासकारों ने बिजली गिरने की गाथा को कपोल-कल्पित माना है। वे जूनाखां को पितृघाती मानते हैं। यद्यपि फरिश्ता लिखता है कि निधन की घटना बिजली गिरने से हुई और यह असम्भव भी नहीं है, परन्तु फरिश्ता इस विषय में कोई स्थिर दृढ़ मत नहीं रखता और अंत में वह कह देता है कि वास्तविक सत्य ईश्वर ही जाने। एक अन्य इतिहासकार हुसामखाँ के अनुसार, "जब सुलतान राजमहल में था, तो हाथियों को लाने की आज्ञा दी गयी और जैसे ही हाथी आये, इमारत गिर पड़ी और सुलतान मर गया।"

(५) **रबीउल–अव्वल माह और वज्रपात**—महाविन अहमद ने तारीख ए-मुबारकशाही ग्रंथ लिखा है। उसने दिल्ली सुलतानों का वर्णन विभिन्न पुस्तकों व ग्रंथों की सहायता से लिखा है। इस इतिहासकार ने घटनाओं की तिथियाँ दी हैं। इसके अनुसार सुलतान गयासुद्दीन का निधन सन् १३२५ में रबीउल–अव्वल माह में हुआ था। अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह माह फरवरी मार्च के समय आता है। फरवरी–मार्च में ग्रीष्म ऋतु प्रारंभ हो जाती है। नभमंडल स्वच्छ और निरभ्र रहता है। ऐसी दशा में सघन बादलों में बिजली चमकने और गिरने की कोई भी सम्भावना नहीं रहती है। यदि गयासुद्दीन का देहावसान मार्च में बिजली गिरने से हुआ तो यह मिथ्या और भ्रममूलक है। मृत्यु का कारण कुछ अन्य होना चाहिये।

(६) **निजामुद्दीन औलिया और गयासुद्दीन के खराब सम्बन्ध**—फरिश्ता तथा हाजी-अद-दबीर ने अपने ग्रंथों में यह प्रगट किया है कि शेख निजामुद्दीन औलिया और सुलतान गयासुद्दीन के सम्बन्ध ठीक नहीं थे। मतलू-बुल–तालिबीन

में भी इसी बात का उल्लेख है। इन दोनो में परस्पर द्वेष, वैमनस्य और मनोमालिन्य था। इसके निम्नलिखित कारण हैं।

मुबारकशाह की हत्या के बाद सुलतान खुसरोखां ने अन्य शेखों के साथ शेख-निजामुद्दीन औलिया को अपने कुकृत्यों के हेतु उसका समर्थन प्राप्त करने के लिये पाँच-लाख टंका दिया था। यह अवैधानिक और अनुचित था। जब गयासुद्दीन सुलतान हुआ तो उसने शेख से यह धन राजकोष में जमा करने को कहा तथा इसके लिये उसे बाध्य किया। इस पर शेख ने उत्तर दिया कि वे टंका प्रजा कोष (बेत-अल-मल) के थे अतएव प्रजा को दे दिये गये, प्रजा में वितरित कर दिये गये। गयासुद्दीन इससे रुष्ट हो गया।

शेख निजामुद्दीन संगीत-प्रिय था और संगीतज्ञों का आश्रयदाता था। उलमाओं ने शेख के इस गुण को अबूहनीफ के नियमों, इस्लाम के कानूनों के विरुद्ध ठहराया। गयासुद्दीन इस मत से सहमत था। इसलिये निजामुद्दीन से घृणा करता था।

इसी बीच जूनाखां (उलूगखाँ) ने शेख निजामुद्दीन को अपना गुरू बना लिया और शेख जूनाखां का अधिक विश्वासपात्र व्यक्ति बन गया। सुलतान ने जब यह सब सुना तो वह शेख से अत्यधिक चिढ़ गया और यह आदेश दिया कि उसके (गयासुद्दीन के) दिल्ली में प्रवेश करने के पूर्व शेख दिल्ली की सीमा के बाहर चला जाय। इससे शेख भी रुष्ट हो गया और उसने सुलतान से प्रतिशोध लेना चाहा और इसके लिये जूनाखाँ के साथ षड़यंत्र रचा। जूनाखां की कलुषित योजना में शेख का हाथ अवश्य था। क्योंकि गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद जूनाखाँ ने मुहम्मद तुगलक के नाम से सुलतान बन जाने के बाद शेख को बारह परगने दान में देकर सम्मानित किया। यही नहीं जब तक निजामुद्दीन जीवित रहा मुहम्मद तुगलक उसका अत्यधिक आदर और सम्मान करता रहा। निजामुद्दीन की मृत्यु हो जाने पर मुहम्मद तुगलक शेख का जनाजा अपने कंधों पर ले गया था। इन तथ्यों से भी विदित होता है कि जूनाखाँ ने शेख के सहयोग से सुलतान की हत्या का षड़यंत्र रचा था।

(७) शेख रुकनुद्दीन मुल्तानी का वर्णन—"गुलजार-ए-अबरार" ग्रंथ में जो सन् १६११ और १६१३ के बीच लिखा गया था, यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि जब बंगाल विजय के बाद सुलतान गयासुद्दीन हिजरी सन् ७२५ में शाही खेमे में गया तो शेख रुकनुद्दीन मुल्तानी भी उसके साथ था। इस शेख को जूनाखाँ के षड़यंत्र के विषय में ज्ञान था। उसने शब्दों और संकेतों से यह कई बार सुझाव दिया कि वे सब उस राजमहल को छोड़कर बाहर आ जायें, परन्तु किसीने भी उसके परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। जब प्रीतिभोज प्रारंभ हुआ तब शेख ने शीघ्रता से भोजन समाप्त कर लिया और अन्य प्रौढ़ व्यक्तियों के साथ महल से बाहर आ गया। राजमहल गिर पड़ा और सुलतान कतिपय अन्य व्यक्तियों के साथ दबकर मर गया। गुलजार-ए-अबरार के इस वर्णन से स्पष्ट है कि जूनाखाँ ने सुलतान की हत्या के लिये एक षड़यंत्र रचा था जिसकी जानकारी शेख रुकनुद्दीन को थी और राजमहल के गिरने व सुलतान के मरने का सारा हाल उसने आखों देखा था। इसी शेख ने इब्नबतूता को इस सारी घटना का विवरण बताया था।

यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि शेख रुकनुद्दीन को षडयन्त्र के विषय में ज्ञात था तो उसने अपने संरक्षक और आश्रयदाता सुलतान गयासुद्दीन को इसकी खबर क्यों नहीं दी। इसका यह उत्तर है कि शेख को यह आशा थी कि यदि वह षडयन्त्र के विषय में मौन रहेगा और जूनाखां का साथ देगा तो निश्चित ही उसके शासन-काल में उसे अधिक आदर-सम्मान प्राप्त होगा तथा वह अच्छे प्रकार से जीवन व्यतीत करेगा। हुआ भी ऐसा ही। मुहम्मद तुगलक शेख रुकनुद्दीन से अत्यधिक प्रसन्न था और उसे बाद में सौ ग्राम जागीर में दे दिये। इन तथ्यों से यह स्पष्ट प्रमाणित है कि जूनाखां ने अपने पिता की हत्या की थी।

(८) जूनाखां का षडयंत्र—यदि जूनाखाँ के मन में षड़यत्र करके सुलतान के वध करने की भावना नहीं होती, तो फिर वह—

(i) राजधानी दिल्ली के समीप ही नया राजप्रासाद क्यों निर्माण करवाता;

(ii) तीन दिन की अवधि में ही यह निर्माण कार्य क्यो समाप्त करवाता;

(iii) प्रीतिभोज के पश्चात् वह स्वयं और अन्य पदाधिकारी व अमीर शीघ्रातिशीघ्र राजप्रासाद के बाहर क्यों आ गये;

(iv) उसने उसी समय हाथियों के प्रदर्शन का सुझाव क्यों दिया ?

जूनाखाँ के इन कार्यों से स्पष्ट है कि वह राजमहल का एक भाग हाथियों के स्पर्श से गिराकर सुलतान को सदा के लिए सुलाना चाहता था।

(९) अहमद आयाज की पदोन्नति—यदि जूनाखाँ ने पिता की हत्या नहीं की और राजमहल को गिरवाने में उसका हाथ नहीं था, तो उसने सुलतान के निधन के बाद ही राजमहल के निर्माता अधिकारी अहमद आयाज को दंड क्यों नहीं दिया। अपने पिता की निर्मम हत्या को उसने कैसे सहन कर लिया। उसके द्वारा निर्मित राजभवन इतने शीघ्र कैसे गिर पड़ा। अहमद आयाज को भवन निर्माण की त्रुटि व अवहेलना के कारण तथा इस हत्या के लिये दंड देने की अपेक्षा मुहम्मद तुगलक ने उसकी पदोन्नति की। उसे "ख्वाजा जहाँ" की पदवी दी तथा वजीर का पद देकर सम्मानित किया। अहमद आयाज को उसकी सेवाओं के लिये पुरस्कृत किया जाना यह भी प्रमाणित करता है कि निस्संदेह जूनाखां ने हत्या का षड़यन्त्र रचा था।

(१०) जूनाखां की महत्वाकांक्षा—राजकुमार जूनाखाँ (उलूगखाँ) बड़ा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसमें सुलतान बनने की तीव्र लालसा थी। इस लालसा और महत्वाकांक्षा ने उसे मत-अमत और भले-बुरे के प्रति अंधा बना दिया था। सुलतान बनने की महत्वाकाँक्षा के कारण भी वारंगल अभियान के समय जूनाखां ने प्रताप रुद्रदेव की संधि ठुकरा दी थी, क्योंकि वह प्रताप रुद्रदेव को परास्त कर उसे सपरिवार समाप्त कर वारंगल का सुलतान स्वयं बनना चाहता था।

जूनाखां यह भी जानता था कि सुलतान गयासुद्दीन अपने छोटे पुत्र महमूद पर विशेष कृपा रखता था। सुलतान ने जूनाखां को यह धमकी भी दी थी कि वह शेख-निजामुद्दीन से अपने सम्बन्ध विच्छेद नहीं करेगा और अपने आपको नहीं सुधारेगा तो वह जूनाखाँ को उत्तराधिकारी के पद से वंचित कर देगा। ऐसी दशा में यह भी बहुत कुछ संभव था कि जूनाखाँ का सबसे छोटा भाई महमूद सुलतान बन जाता,

और सुलतान बनने की जूनाखां की तीव्र लालसा पर पानी फिर जाता। अतः सुलतान बनने की अपनी महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर जूनाखां ने अपने पिता की हत्या कर दी।

(११) **मुस्लिम राजनीति में षड़यन्त्र और हत्या**— मध्ययुग में मुस्लिम राजनीति में षड़यंत्र और हत्या कर राजसिंहासन प्राप्त कर लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जूनाखां के चार और अन्य भाई थे—मुबारकखां ममूदखां, नसरतखां तथा महमूदखां। यद्यपि इन सब में जूनाखां सबसे अधिक योग्य था, पर मुबारकखां में भी सुलतानी प्रतिभा थी। महमूद को गयासुद्दीन अधिक प्यार करता था। मुबारक या महमूद सुलतान न बन जायँ इसलिये उसने पिता की स्वयं सुलतान बनने के लिये हत्या कर दी और मुबारक खां को मीर दाद का पद देकर अपने पक्ष में कर लिया। यदि राजसिंहासन और शक्ति के प्रलोभन में अलाउद्दीन ने जलालुद्दीन की, मलिक काफूर ने अलाउद्दीन की, कुतुबुद्दीन मुबारकशाह ने अपने भाइयों और माता की, खुसरोखां ने मुबारकशाह की सुलतान बनने के लिये हत्या की, तो जूनाखाँ ने भी अपने स्वार्थ साधन और महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये अपने पिता की हत्या कर दी। अधिकारियों, अमीरों और जनता में अपार धन, पदवियां और मुद्राएँ वितरित कर मुहम्मद तुगलक ने आलोचना करने वाले लोगों का मुंह बंद कर दिया। लोगों में उस पर पितृ हत्या का दोष लगाने का साहस नहीं रहा। सर्वसाधारण की स्मृति भी थोड़ी होती है। लोग शीघ्र ही गयासुद्दीन की हत्या को विस्मरण कर गये और मुहम्मद तुगलक का सुलतान के नाते अभिनंदन किया। राजनीति में जो विजय प्राप्त करता है, मुक्त हस्त से धन वितरित करता है, उसका उसके दुर्गुणों के होने पर भी स्वागत किया जाता है। अलाउद्दीन खिलजी और औरंगजेब के समय भी ऐसा हुआ। मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में भी यही पुनरावृत्ति हुई।

निष्कर्ष—उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सुल्तान गयासुद्दीन का निधन किसी दैवी-प्रकोप से नहीं हुआ था, वह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, अपितु पूर्व रूप से नियोजित षड़यंत्र का परिणाम था, जिसमें युवराज फखरुद्दीन जूनाखां का प्रमुख हाथ था।

मुहम्मद तुगलक का निर्विरोध सिंहासनारोहण—सुलतान गयासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् राजकुमार जूनाखाँ को सुल्तान घोषित किया गया। उसने स्वयं और अपने साम्राज्य में चालीस दिन तक सुलतान की मृत्यु का शोक मनाया। इसके बाद दिल्ली में उसका राजकीय वैभव और शान-शौकत से निर्विरोध रूप से राज्याभिषेक हुआ। सन् १३२५ में वह सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने सुलतान मुहम्मद तुगलकशाह की उपाधि धारण की। उसके भाई अपेक्षाकृत अयोग्य और दुर्बल थे और अधिक प्रतिभावान भाई मुबारक को उसने मीर दाद का पद देकर सम्मानित कर अपनी ओर मिला लिया। इसलिये उसके भाइयों ने उसका विरोध नहीं किया। खिलजी-शासन काल में वह उत्तरदायी ऊँचे पदों पर रह चुका था तथा सुलतान मुबारकशाह के शासन-काल में वह अमीर आखूर तथा वकील के पद पर रहा था। खुसरोखां के अत्याचारी शासन का उसने अंत करवाया था और इसके लिये अपने पिता को निरंतर

सूचनाएँ भेजकर सेना से सहयोग लिया था। पिता के शासन-काल में उसने विजय अभियान किये थे और प्रशासन भी संभाला था। इस प्रकार उसने अपनी वीरता, साहस, योग्यता, प्रतिभा, कार्य-कुशलता और अनुभव का परिचय दे दिया था। इससे सभी अधिकारी, अमीर, सरदार, और जनता उससे प्रसन्न थे। सुलतान गयासुद्दीन ने भी उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। तत्कालीन मुसलमान संतों का भी उसे पूर्ण सहयोग और मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त थे। शेख निजामुद्दीन औलिया और शेख रुकनुद्दीन मुल्तानी उसके विश्वसनीय परामर्शदाता थे। शेख औलिया का तो वह शिष्य ही था। ये सब तत्व उसके सिंहासनारोहण में अधिक सहायक हुए। पितृहन्ता होने पर भी किसी ने उसका विरोध नहीं किया, क्योंकि उसने राजकोष से अपार धन अमीरों, अधिकारियों और जनता में वितरित किया था। उसने लोगों के हृदयों से उसके पितृघाती होने के संदेह की भावना को धन तथा दान द्वारा दूर कर दिया। उसके राज्याभिषेक के दिन स्वर्ण के दीनार तथा चांदी के दिरहम हाथियों के हौदे पर से दिल्ली की सड़कों और गलियों में लोगों पर न्यौछावर किये गये। राजधानी दिल्ली सोने चांदी की मुद्राओं के बाहुल्य से उद्यान के समान रक्ताभ पुष्पों एवं अनेक पंखुड़ियों वाले पुष्पों से परिपूर्ण हो गयी था। लोग मालामाल हो गये थे और उन्होंने आत्मविभोर हो सुलतान के लिये मंगल कामनाएँ कीं।

जनता की स्मरण शक्ति क्षीण होती है। अतः नये सुलतान द्वारा प्रदर्शित उदारता तथा धन व उच्च पदों के वितरण से लोग भूतपूर्व सुलतान की निर्मम हत्या भूल गये और सुलतान मुहम्मद ने अपने को जनता की दृष्टि में निर्दोष सिद्ध कर दिया।

पदों और उपाधियों का वितरण—राज्याभिषेक के पश्चात् सुलतान मुहम्मद ने अनेक अमीरों को उपाधियाँ और धन दिया। उसने बंगाल में सोनारगांव के शासक तातारखाँ को बहरामखाँ की उपाधि दी और एक करोड़ तनके उपहार में दिये। मलिक मकबूल को इमादुलमुल्क की पदवी तथा वजीर-ए-मुमालिक का पद दिया। भवन-निर्माण अधिकारी अहमद अयाज को ख्वाजा जहां की पदवी देकर वजीर नियुक्त किया। मलिक फिरोज को जो उसके चाचा का पुत्र था, नायक बारबक के पद पर नियुक्त किया। बेदार खिलजी को कद्रखाँ की उपाधि दी। उसे बंगाल में लखनौती का शासक नियुक्त किया। सुलतान मुहम्मदशाह ने अपने गुरु सैयदअजुद्दौला को चालीस लाख तनके देकर सम्मानित किया और एक अन्य शिक्षक मौलाना कियामुद्दीन को कुतलुगखां की पदवी देकर "वकील-ए-दर" के पद पर नियुक्त किया। उसने मलिक संजर बदखशानी को अस्सी लाख तनके तथा इमामुद्दीन को सत्तर लाख तनके देकर सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त उसने अनेक विद्वानों, कवियों तथा निस्सहाय व्यक्तियों को पुरस्कार, दान और राज्याश्रय दिया। इस प्रकार पदों, उपाधियों, पुरस्कारों उपहारों, दान आदि के वितरण से सुलतान मुहम्मदशाह ने अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी।

सुलतान मुहम्मद तुगलकशाह की विशेष दृढ़ परिस्थिति—जैसा ऊपर वर्णित है, सुलतान मुहम्मद के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि उसका राज्याभिषेक निर्विरोध हुआ। उसके विरुद्ध किसी ने भी सुलतान बनने का प्रयास नहीं किया। अमीरों, और अधिकारियों ने भी उसे निर्विरोध रूप से सुलतान निर्वाचित कर लिया व मान लिया। दान, पुरस्कार, उपहार, उपाधियां एवं उच्च पदों का वितरण करके उसने सभी अमीरों, सरदारों, गणमान्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया और लोकमत का समर्थन भी प्राप्त कर लिया। उसके राज्याभिषेक के समय राजकोष धन से परिपूर्ण था। इससे उसके सम्मुख आर्थिक समस्याएँ नहीं थीं। उसके पिता ने प्रशासन भी सुसंगठित और सुव्यवस्थित कर दिया था। प्रशासकीय कठिनाई का भी उसे सामना नहीं करना पड़ा। इसके अतिरिक्त उसे न तो किसी प्रकार के आन्तरिक विद्रोह और न सीमान्त क्षेत्र पर बाहरी आक्रमण का भय था। उसके सिंहासन पर बैठने के समय किसी प्रकार की क्रान्ति, पारिवारिक षड्यन्त्र या जन-विप्लव नहीं हुआ। साम्राज्य में शान्ति-व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त उसे एक विस्तृत साम्राज्य अपने पिता गयासुद्दीन से पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। यह साम्राज्य पश्चिम में पंजाब में लाहौर से पूर्व में बंगाल तक, तथा उत्तर में गंगा नदी की घाटी से दक्षिण में तेलंगाना और मद्रास के पूर्वी समुद्र तट तक फैला हुआ था। ऐसी सुदृढ़ परिस्थितियां, विशेषताएँ और सुविधाएँ अभी तक दिल्ली के किसी भी सुलतान को प्राप्त नहीं हुई थीं। पर यह विडम्बना ही है कि इन अनुकूल परिस्थितियों में भी सुलतान मुहम्मद तुगलक गुणवान, योग्य व प्रतिभावान होने पर भी एक अव्यावहारिक और असफल सुलतान हो गया।

सुलतान मुहम्मद की योजनाएं

सुलतान मुहम्मद इस बात का महत्वाकांक्षी था कि वह शासन मे अनेक सुधार करे और जन-कल्याण की अनेक योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्यान्वित करे। उसके मस्तिष्क में अनेक बड़ी-बड़ी योजनाएँ घूम रही थीं और वह सुलतान होने पर उन्हें लागू करना चाहता था। उसने शासन-काल के प्रारंभिक दस वर्षों में प्रशासकीय सुधार और जन-कल्याण कार्यों को ही अधिक किया तथा इनसे संबंधी योजनाओं को कार्यान्वित किया। इन विभिन्न महत्वशाली योजनाओं का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है :

(१) दोआब में कर-वृद्धि, सन् १३२६-२७—सुलतान मुहम्मद तुगलक ने सिंहासनारूढ़ होते ही दोआब में अधिक कर लगाये। ऐसा करने के निम्नलिखित कारण थे : –

(अ) कारण (i) उसने अपने साम्राज्य के समस्त प्रांतीय सूबेदारों से अपने-अपने क्षेत्र के आय-व्यय का विवरण मंगाया। इससे उसे शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि उसके साम्राज्य की आय पर्याप्त नहीं है, अतएव दोआब में कर बढ़ाये जायँ।

(ii) दान, पुरस्कार, उपाधि आदि के वितरण में तथा राज्यारोहण के समय जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये सुलतान मुहम्मद तुगलक ने मुक्तहस्त से धन

वितरित किया था, धन को पानी की भांति बहाया था। राजकोष रिक्त हो गया। अब उसे शासन के सुप्रबन्ध के लिये तथा राजकोष की पूर्ति के लिये धन की अधिक आवश्यकता थी जो दोआब में अधिक कर लगाकर पूरी की जा सकती थी। मुहम्मद तुगलक से पूर्व अलाउद्दीन खिलजी ने भी दोआब से पचास प्रतिशत कर वसूल किया था

(iii) **दोआब क्षेत्र** (गंगा यमुना के बीच का प्रदेश) साम्राज्य का सबसे अधिक उर्वर, धनी, तथा समृद्धिशाली प्रदेश था। मुहम्मद की धारणा थी कि दोआब की जनता सरलता से अधिक कर दे देगी। अलाउद्दीन ने भी यहां ५० प्रतिशत कर वसूल किया था।

(iv) उसकी अनेक महत्त्वपूर्ण योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए भी अपार धनराशि आवश्यक थी। दोआब में यह सरलता से प्राप्त हो सकती थी। वह अपनी समस्त योजनाओं को कार्य रूप में परिणित करना चाहता था। इसके लिये दोआब उपयुक्त स्थान था, क्योंकि वह दिल्ली के समीप ही था और वहां सुलतान स्वयं अपनी योजनाओं का निरीक्षण कर सकता था, उन पर उचित नियंत्रण रख सकता था।

(v) दोआब की हिन्दू प्रजा सदा विद्रोही रही थी, वह सुलतानों का विरोध करती थी। पूर्ववर्ती सुलतानों के शासन-काल में दोआब में अनेक बार उपद्रव और विद्रोहों की आग भड़क उठी थी। इस समस्या को हल करने के लिये, हिन्दुओं का दमन करने के लिये, उनसे अधिक कर वसूल करना और उन्हें निर्धन बनाना आवश्यक था।

(vi) उस समय यह दृढ़ धारणा थी कि जो कोई सुलतान दोआब को अपने अधिकार में कर लेता था और वहां के निवासियों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेता था, न उसे केवल पर्याप्त साधन ही प्राप्त हो जाते थे, अपितु समस्त उत्तरी भारत पर उसका नियंत्रण सरलता से स्थापित हो जाता था।

(ब) कर-वृद्धि की योजना—सुलतान ने वैज्ञानिक ढंग से कर-वृद्धि की योजनाएँ बनाई—(i) एक नवीन विभाग, "दीवान-ए-मुस्तखरिज" स्थापित किया गया। यह विभाग प्रांतीय सूबेदारों और कोषाध्यक्षों से नियमित रूप से आय-व्यय का विवरण प्राप्त करता था और इस बात की जांच करता था कि कौनसे प्रांत से धन राजकोष में जमा हुआ या नहीं। जो प्रांतीय अधिकारी समय पर राजकोष में धन जमा नहीं करवाते थे, उन्हें दण्डित किया जाता था। इससे उसे भूमि-कर से प्राप्त होने वाले धन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया।

(ii) उसने "दीवान-ए-कोहा" नामक एक कृषि विभाग स्थापित किया। भूमि-कर का एक रजिस्टर बनाया गया। भूमि-कर सम्बन्धी जानकारी इसमें संग्रहित की गयी। भूमि-कर विभाग से आवश्यक सूचनाएँ एकत्रित कर रजिस्टर में लिपिबद्ध कर ली गयीं। जब पर्याप्त मात्रा में आवश्यक सामग्री संग्रहित हो गयी, तब इस सामग्री के आधार पर सुलतान ने भूमि-सुधार और कर-वृद्धि की एक योजना बनाई। दोआब में कर-वृद्धि इसी योजना का एक अंग था।

(iii) **कर वृद्धि की दर** —विद्वानों में दोआब में कर-वृद्धि के संबंध में बड़ा मतभेद है। क्योंकि बर्नी के ग्रंथ "तारीखे फिरोजशाही" में, "तारीख-ए-मुबारकशाही" में तथा "तबकाते अकबरी" में कर-वृद्धि अलग-अलग रूप से दी गयी है। बर्नी ने कर-वृद्धि के विषय में "यकेव देह" तथा, "यके व विस्त" शब्दों का प्रयोग किया है। इनके अर्थ में बड़ा मतभेद उत्पन्न हो गया। कुछ विद्वानों ने इसका यह अर्थ लगाया कि भूमि-कर १ से १० तथा १ से २० अर्थात् दस गुना और बीस गुना बढ़ा दिया गया। कतिपय अन्य इतिहासकारोंने इन शब्दोंका अर्थ $\frac{1}{10}$ तथा $\frac{1}{20}$ लगाया अर्थात् भूमिकर १० प्रतिशत और ५ प्रतिशत बढ़ा दिया गया। पहिले मत मे भूमिकर की इतनी अधिक वृद्धि होती है कि वह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है और दूसरे मत में वह इतनी कम होती है कि वृद्धि नगण्य है और जनता द्वारा विद्रोह की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। यह सम्भव है कि बर्नी ने अतिरंजित अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया हो। इसका तात्पर्य यह है कि भूमिकर वृद्धि अनुपात से बढ़-चढ़कर थी। इसी कर-वृद्धि के विषय में फरिश्ता ने लिखा है कि "दोआब में सुलतान ने दस से बीस और चालीस तक कर बढ़ा दिये।" हाजी-उद-दवीर ने लिखा है कि, "इस्लाम की विजयके पश्चात् जिस भूमि से एक टंका प्राप्त होता था उससे अब दस और बीस टंका प्राप्त होने लगे।" मतों की विभिन्नता और बर्नी के अस्पष्ट संदिग्ध **वर्णन से** अनेक विद्वान यह मानते हैं कि सुलतान मुहम्मद ने भूमिकर दस गुना और बीस गुना बढ़ा दिया था। उनका निष्कर्ष है कि अलाउद्दीन के समय जो ५० प्रतिशत भूमि-कर था वह मुबारकशाह और गयासुद्दीन के समय कम होकर प्राय: ४० प्रतिशत हो गया था। मुहम्मद तुगलग ने इसे और भी बढ़ा दिया और सभव है यह पचास प्रतिशत के आसपास बढ़ गया हो।

(iv) अनुपात से अधिक की गयी कर-वृद्धि को कार्यान्वित करने के लिए सुलतान ने भूमिकर वसूली की विशेष व्यवस्था की। प्रत्येक गांव के पीछे एक-एक शताधिकारी नियुक्त किया गया। वह गांवों के हिन्दू खोतों, मुकद्दमों चौधरियों, मुनसरिफों, मुस्लिम आमीलों तथा राजस्व संबंधी अन्य अधिकारियों का निरीक्षण करता था और उन पर नियंत्रण रखता था। तारीख-ए-मुबारकशाही में उल्लेख है कि इस नवीन बढ़ाये गये भूमि-कर के अतिरिक्त जनतापर निवास-गृह कर और चराई-कर भी थे। इन करों की वसूली कठोरता से की जाने लगी।

(स) **दोआब में कर-वृद्धि के परिणाम**—सुलतान द्वारा दोआब में कर-वृद्धि के विषम परिणाम हुए जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:—

(i) बढ़ाये हुए भूमि-कर, गृह-कर और चराई-कर से कृषकों को अत्यधिक हानि पहुँची और अब वे अधिक कर देने को उद्यत नहीं थे। फलत: जनता और कृषकों ने इसका विरोध किया।

(ii) इब्नबतूता के वर्णन से प्रतीत होता है कि राजस्व अधिकारी और कर्मचारी भ्रष्ट थे। इसलिये उन्होंने अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिये वृद्धि किये हुए करों से भी अधिक कर और धन वसूल किये। इससे जनता में विद्रोह की भावना अधिक प्रचलित हुई।

(iii) राज कर्मचारियों और अधिकारियों ने कर वसूली में कठोरता और निर्ममता से व्यवहार किया। उन्होंने कृषकों और जनता की कठिनाइयों और अकाल से निर्मित दयनीय दशा की ओर किंचित् भी ध्यान नहीं दिया। जनता की आय का बिना ध्यान रखे हुए कर वसूल किये गये। कर न देने वालों पर कष्टदायक दण्ड-कर लगाये गये और अनेक यातनाएँ दी गयीं।

(iv) अत्यधिक कठोरतापूर्वक वसूल किये जाने वाले जीवनोपयोगी वस्तुओं पर लगाये कर इतने अधिक थे कि वे व्यवसायों और कृषि पर भारस्वरूप हो गये। इससे उद्योग-व्यवसायों और कृषि को भारी आघात लगा।

(v) सुलतान ने जिस वर्ष दोआब में कर-वृद्धि की, दुर्भाग्यवश उसी वर्ष दोआब मे भीषण अकाल पड़ गया। सात वर्षों से निरन्तर वर्षा का अभाव था। इससे कृषकों और जनता की दशा दयनीय हो गयी थी। पर सुलतान के कर्मचारियों ने दुर्भिक्ष की सूचना सुलतान को नहीं दी तथा पीड़ित प्रजा पर भयंकर अत्याचार करके बर्बरतापूर्वक कर व धन वसूल किया। इसका परिणाम यह हुआ कि कृषक भय के मारे अपने गांव छोड़कर भाग गये। व्यवसाय व धन्धे न होने से लोग चोर डाकू बन गये और लूट-मार करने लगे। सुलतान ने इससे चिढ़ कर भागे हुए लोगों को पकड़कर वध करने का आदेश दे दिया। सहस्त्रों व्यक्ति वनों में से पकड़कर मार डाले गये। एक इतिहासकार के शब्दों मे, "कर लगाने की असफलता से रुष्ट होकर सुलतान गरीब हिन्दुओं को जंगली जानवरों की भांति चुन-चुनकर मारने लगा, उन्हें वनों में सिहों की भांति घेर लिया गया।" एक अन्य इतिहासकार ने लिखा है कि "इस कर से कृषकों की कमर टूट गयी। जो धनी थे, वे बागी हो गये। भूमि बंजर हो गयी, खेती रुक गयी और लाखों व्यक्ति मारे गये।" बर्नी ने लिखा है कि, इस कर-वृद्धि ने देश के विध्वंस और जनता के विनाश का कार्य किया संभव है कि कर-वृद्धि के इन परिणामों के वर्णन में अतिशयोक्ति हो, पर यह तो निर्विवाद है कि इस कर-वृद्धि मे जनता को अत्यधिक कष्ट हुआ तथा उद्योग-व्यापार और कृषि के हितों को गहरा आघात लगा।

(vi) जब सुलतान को दोआब के दुर्भिक्ष और जनता की दयनीय दशा का हाल प्राप्त हुआ तब उसने पीड़ित प्रजा की सहायतार्थ धन तथा खाद्य समग्री भेजी। दुर्भिक्षग्रस्त क्षेत्रों में उसने नि:शुल्क भोजन और घास वितरित करवाने की व्यवस्था की। प्रजा की रक्षार्थ उसने अपना दरबार दिल्ली मे हटाकर फर्रुखाबाद जिले में 'सरगद्वारी" स्थान पर रख लिया। वहां उसने अवध के जिलों से लगभग सत्तर-अस्सी लाख रुपयों का घास और अनाज मंगवाकर लोगों में वितरित किया। कृषि की व्यवस्था को सुधारने के लिये तथा सिंचाई हेतु कुए, तालाब तथा नहरें खुदवायी गयीं एवं कृषकों को राजकोष से ऋण दिया गया। कृषि सुधार के लिये उसने एक अधिकारी भी नियुक्त किया। पर यह उपचार बहुत विलंब से हुआ। कष्टों से पीड़ित लाखों मनुष्य काल कवलित हो गये। फलत: जनता में सुलतान के प्रति भीषण असंतोष और विद्रोह की भावनाएं फैल गयीं। बर्नी ने तो यहां तक लिखा है कि दोआब की जनता की विध्वस लीला का वर्णन सुनकर अन्य प्रान्तों के लोगों ने विद्रोह कर दिये और सुलतान की अधीनता छोड़ दी।

(ब) कर-वृद्धि की आलोचना—(i) बर्नी ने सुलतान की कर वृद्धि की कटु आलोचना और तीव्र निंदा की है। उसने अकाल व कर-वृद्धि से उत्पन्न कष्टों और दयनीय दशा का विवरण अतिरंजित रूप से किया है। इसके दो कारण हैं—प्रथम, बर्नी बरन आधुनिक बुलन्द शहर का निवासी था और यह नगर दोआब में था। इस नगर को भी दोआब की कर-वृद्धि का शिकार होना पड़ा। अतएव बर्नी अपने ही क्षेत्र में कर-वृद्धि होने और अकाल की गहरी छाया से स्वाभाविक रूप से सुलतान से असन्तुष्ट हो गया था। द्वितीय, वह उलमाओं के ऐसे वर्ग से सम्बन्धित तथा जिसके साथ सुलतान की बिलकुल सहानुभूति नहीं थी। अतएव सुलतान की तीव्र निंदा करने में उसे तनिक भी संकोच नहीं हुआ। बर्नी के विपक्ष में इतना कहने पर भी यह मानना पड़ेगा कि बर्नी समकालीन इतिहासकार था। इसलिये उसके विवरण व कथन में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा सत्य का बाहुल्य अधिक है।

(ii) दुर्भिक्षग्रस्त क्षेत्रों में कृषकों की सहायता के लिये और जनसाधारण के दुःखों के निवारण के लिये उसने जो प्रयास किये, वे इस बात के सबल प्रमाण हैं कि मुहम्मद के हृदय में जनता को कष्ट देने की भावना कदापि नहीं थी। उसने अपनी प्रजा के साथ पूरी सहानुभूति प्रदर्शित की। पर दुर्भाग्य से, चिरकालव्यापी दुर्भिक्ष से जनता अपना धैर्य खो चुकी थी और सुलतान की सुधार योजनाओं और राहत कार्यों से कोई लाभ उठा नहीं सकी। हताश जनता का सुलतान के प्रति अविश्वास और असन्तोष हो गया था।

(iii) कतिपय विद्वानों का मत है कि सुलतान ने दोआब में इतने अधिक कर नहीं लगाये थे कि जनता उनको दे ही न सके। दोआब की धन सम्पन्न जनता और समृद्ध कृषकों ने सुलतान अलाउद्दीन के शासन-काल में इससे भी अधिक धन करों के रूप में निरन्तर दिया था। अलाउद्दीन के समय में करों का बाहुल्य, अनुपात में उनकी ऊंची दर और वसूली में निर्ममता मुहम्मद के शासन-काल से अपेक्षाकृत अधिक थी। परन्तु यह सुलतान मुहम्मद का दुर्भाग्य था कि उसके कर-वृद्धि करते ही दोआब दुर्भिक्ष के गहन अंधकार से आच्छादित हो गया जिससे प्रजा को भीषण अनिवर्चनीय संकटों का सामना करना पड़ा। सुलतान की योजना में कोई अभाव या त्रुटि नहीं थी। उसके द्वारा लगाये गये कर दोआब के लिये कोई नवीन कर नहीं थे। पर उसकी कर-वृद्धि की योजना असफल हुई क्योंकि समय ने उससे मुँह मोड़ लिया था। दुर्दैव द्वारा उसकी योजना विफल बना दी गयी। इस दृष्टि से सुलतान मुहम्मद कर-वृद्धि की योजना से उत्पन्न कष्टों के लिये तथा उसकी असफलता के लिये निर्दोष है।

(iv) अन्य दृष्टिकोणों से योजना की विफलता के लिये और जनता के कष्टों के लिये सुलतान दोषी है। यदि सुलतान दुर्भिक्ष का समाचार प्राप्त होते ही करों की वसूली स्थगित कर देता, करों को माफ कर देता तो भीषण कांड और नर-संहार नहीं होता। यदि दोआब की उर्वरता और धन-सम्पन्नता को देखते हुए, कर कम थे, और सुलतान को उन्हें बढ़ाने का अधिकार था, तो उसका यह भी कर्तव्य था कि अकाल प्रारंभ होते ही वह उन करों को हटा देता और पीड़ित प्रजा की सहायता की शीघ्रातिशीघ्र व्यवस्था करता। यह एक विचित्र और आश्चर्यजनक बात है कि दिल्ली के समीप के क्षेत्र दोआब के भयंकर अकाल से और करों के बोझसे जनता कराह रही थी

और सुलतान मुहम्मद को सूचना ही नहीं मिली। वह क्षेत्र सुलतान द्वारा अकालग्रस्त घोषित ही नहीं हुवा और न लोगों को उसके कष्टों से बचाने के लिये राहत कार्यों की शीघ्र व्यवस्था ही की गयी। ऐसे समय में यह बात संभव हो सकती है कि सुलतान के क्रोधी और हठी स्वाभाव के कारण शासकीय अधिकारियों को यह साहस नहीं हुआ कि वे उसे अकाल की सूचना दें। जब उन्होंने सूचनाएँ भेजीं तो तथ्यों को इस प्रकार तोड़-मरोड़ दिया और जनता को इस प्रकार उपद्रवी और विद्रोही बतलाया गया कि उससे प्रजा के प्रति सहानुभूति प्रगट करने की अपेक्षा उसके विरुद्ध सुलतान की क्रोधाग्नि भड़क उठी और उसने अपनी कर वसूली और अत्याचारों में और भी वृद्धि कर दी। यदि वह ऐसा न करता और शीघ्र ही अकाल पीड़ितों के लिये राहत कार्य प्रारंभ कर देता तो दोआब की जनता कभी विद्रोह नहीं करती। पर सुलतान ने इस ओर भी पूर्ण नियंत्रण नहीं रखा और साम्राज्य को संगठित करने की भावना और शांति स्थापित करने की धारणा से उसने दोआब के विद्रोह को निर्ममता से दबाया। ऐसी परिस्थितियों में सुलतान मुहम्मद दोआब में प्रजा पर होने वाले अत्याचारों के लिये अवश्य उत्तरदायी है। कर-वृद्धि की योजना से उत्पन्न होने वाली दुर्व्यवस्था और कष्टों के लिये वह निर्विवाद रूप से दोषी है।

(v) जो विद्वान सुलतान मुहम्मद द्वारा अकालग्रस्त क्षेत्र में किये गये राहत कार्यों की प्रशंसा करते हैं और उसके दोष की गहनता को कम करने का प्रयास करते हैं, वे इस तथ्य को विस्मरण कर जाते हैं कि अकाल की निरंतर पीड़ाओं और कर वसूली की निर्ममता से उत्पन्न कष्टों के झेलने के दीर्घ काल बाद सुलतान द्वारा दी गयी राहत सहायता से दोआब के क्षेत्र में पहिले जैसी समृद्धि और धन-सम्पन्नता नहीं आ सकी। क्योंकि जनता तो इतनी अधिक दरिद्र और भूखी-नंगी हो गयी थी कि जो भी राजकीय ऋण उन्हें प्राप्त हुआ वह उन्होंने नित्य के खाने-पीने में व्यय कर दिया। कृषि या व्यवसायों की पुनः स्थापना में उसका लाभ नहीं हुआ। इस प्रकार यदि एक ओर सुलतान दोआब में अधिक कर वसूल करने में असमर्थ रहा तो दूसरी ओर राजकोष का अपार धन ऋण देने और राहत कार्यों में खर्च हो गया। इतना करने के बाद भी दोआब में पहिले जैसी सम्पन्नता और समृद्धि नहीं लायी जा सकी। फलतः दोआब के कृषक और अन्य लोग भविष्य में कर अदायगी में हिचकिचाहट प्रदर्शित करते रहे और दिल्ली के सुलतान के प्रति सदैव शंकित, रुष्ट और उपद्रवी रहे।

राजधानी परिवर्तन

सुलतान मुहम्मद की दूसरी योजना राजधानी परिवर्तन की थी। इसका विवेचन इस प्रकार है—

(१) **राजधानी स्थानान्तरित करने का समय**—राजधानी परिवर्तन कब हुआ, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। ये मत अधोलिखित हैं :—

(i) **बर्नी** का कथन है कि राजधानी परिवर्तन दोआब में कर-वृद्धि के पश्चात ही हुआ, अर्थात् सन् १३२६-२७ ईस्वी।

(ii) यहा-बिन-अहमद सर्रहिंदी ने अपने ग्रंथ "तारीख-ए मुबारिकशाही" में लिखा है कि दो बार राजधानी स्थानान्तरित हुई, प्रथम हिजरी सन् ७२७ (सन् १३२७) और द्वितीय हिजरी सन् ७२९ अर्थात् १३२९ में।

(iii) **फरिश्ता**—वह भी उपरोक्त मत से सहमत है। पर उसने तारीख–ए–फरिश्ता में परिवर्तन की तिथि सन् १३३९ दी है जो असत्य है। क्योंकि यात्री इब्नबतूता सन् १३३३ में भारत में आया था और उसके अनुसार उस समय सुलतान-मुहम्मद उजड़ी हुई राजधानी दिल्ली को फिर से बसा रहा था। इससे स्पष्ट है कि इब्नबतूता के आने के पूर्व राजधानी परिवर्तित हो चुकी थी।

(iv) **दौलताबाद की मुद्राएँ**—सुलतान मुहम्मद की ऐसी मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं जो सन् १३२७ में दौलताबाद से प्रसारित की गयी थीं। इससे स्पष्ट है कि इस समय दौलताबाद साम्राज्य की राजधानी हो गया था। इन तथ्यों से विदित होता है की राजधानी परिवर्तन सन् १३२६-२७ में हो गया था।

(२) **राजधानी के दो परिवर्तन**—कुछ विद्वानों का मत है कि सुलतान ने राजधानी का परिवर्तन दो प्रयासों में किया। "तारीख-ए-मुबारकशाही" के लेखक यहा बिन अहमद सरहिंदी के अनुसार प्रथम परिवर्तन सन् १३२७ में हुआ, जबकि सुलतान मुहम्मद अपनी माता माखदूमजहाँ, अमीरों, मलिकों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों के साथ राजकोष को लेकर दिल्ली से दौलताबाद गया था। इसके बाद सन् १३२९ में सुलतान ने दिल्ली निवासियों के निवासगृहों को क्रय कर लिया और उन्हें अपने निवास गृहों को खाली करके दिल्ली से दौलताबाद जाने के कठोर आदेश दे दिये थे। लोग विवश होकर दौलताबाद चले गये और दिल्ली खाली हो गयी।

फरिश्ता ने भी राजधानी के दो परिवर्तनों का अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है। उसका कथन है कि प्रथम परिवर्तन उस समय हुआ जबकि दक्षिण के शासक बहाउद्दीन गुर्शस्प के विद्रोह के दमन के बाद सुलतान ने दिल्लीवासियों के मकानों को क्रय कर लिया, उन्हें मार्ग व्यय दिया और दिल्ली से दौलताबाद जाने के लिये बाध्य किया। दूसरा परिवर्तन उस समय हुआ, जब सुलतान गुर्शस्प के विद्रोहों का दमन कर दिल्ली लौटा। उस समय उसने अपनी माता, बेगमों, अमीरों तथा दिल्लीवासियों को दौलताबाद भेजा। फरिश्ता के इस वर्णन में तथ्यों का सम्मिश्रण हो गया है।

बदाऊँनी के वर्णन में भी दो परिवर्तनों का आभास मिलता है।

परन्तु अहमद सरहिन्दी, फरिश्ता और बदाऊँनी बर्नी के बाद के इतिहासकार हैं। बर्नी मुहम्मद तुगलक का समकालीन लेखक था। वह उस समय अमीरों, मलिकों, उच्च अधिकारियों, व्यापारियों तथा जनता के अधिक सम्पर्क में अवश्य ही रहा होगा। इसलिये उसका कथन अधिक सत्य प्रतीत होता है। यदि राजधानी के दो परिवर्तन हुए होते तो वह निश्चित ही उनका उल्लेख करता। उनके छिपाने से वह लाभान्वित नहीं हो सकता था। उसने एक ही बार राजधानी परिवर्तन का लिखा है। इसके अतिरिक्त एक प्रमुख तथ्य और भी है। मध्य युग में राजधानी दिल्ली में अनेक अमीर, सरदार, राजसभा के सदस्य, उच्च-पदाधिकारी, शासकीय कर्मचारी, उनके सेवक तथा आश्रित लोग रह रहे होंगे।

इन्हीं से संबंधित अनेक व्यापारी और व्यवसायी भी रहे होंगे। इनका व्यापार इन्हीं व्यक्तियों पर आश्रित भी हो सकता था। ऐसी दशा में मलिकों, अमीरों, पदाधिकारियों, सेवकों, और व्यापारियों का एक साथ चला जाना स्वाभाविक था। जनसाधारण तो ऐसे व्यक्तियों का अनुकरण करता है। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि राजधानी का परिवर्तन एक ही बार हुआ होगा।

(३) राजधानी परिवर्तन के कारण और उद्देश्य—विभिन्न इतिहासकारों और विद्वानों ने राजधानी परिवर्तन के निम्नलिखित कारण दिये हैं :—

(i) **राजधानी परिवर्तन की कल्पना**—सुलतान बनने के पश्चात जब शीघ्र ही सन् १३२६ में मुहम्मद दक्षिण भारत में वहाँ के शासक बहाउद्दीन गुर्शस्प का विद्रोह दमन करने के लिये गया था, तभी उसने देवगिरीके महत्व का अनुभव कर लिया था। वह देवगिरी की भौगोलिक स्थिति से अधिक आकृष्ट और प्रभावित हुआ। देवगिरी का दुर्ग दृढ़ और अभेद्य होने से बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था। देवगिरीका राजनैतिक और सामरिक महत्व भी स्पष्ट था। देवगिरी साम्राज्य के केन्द्र में होने से वहाँ से संपूर्ण साम्राज्य का संचालन समुचित रूप से हो सकता था तथा राज्यके विभिन्न प्रांतों का प्रशासन और निरीक्षण सरलता और दक्षतासे हो सकता था। सामरिक दृष्टिकोण से देवगिरी मंगोलों और राजपूतों तथा खोखरों के उपद्रवों व आक्रमणों से बहुत दूर थी। इसीलिये मुहम्मद ने सन् १३२६ में देवगिरी को अपनी राजधानी बनाने का निर्णय किया।

(ii) **बर्नी का मत**—देवगिरी के महत्व को स्पष्ट करते हुए बर्नी ने लिखा है कि "यह स्थान (देवगिरी) केन्द्र में स्थित है। दिल्ली, गुजरात, लखनौती, सतगांव, सोनारगांव, तेलंग, माबर, द्वारसमुद्र और कपिल यहाँ से बराबर दूरी पर हैं। इनकी दूरी में थोड़ा बहुत अन्तर है।" बर्नी ने राजधानी के स्थानान्तरण का कारण बतलाते हुए लिखा है कि दो साल में दुर्भिक्ष हो जाने से अमीरों तथा संभ्रांत व्यक्तियों के कष्टों के निवारण के लिये ही सुलतान ने अपनी राजधानी देवगिरी में स्थापित की।

(iii) **इब्नबतूता का मत**—इब्नबतूता का कथन है कि दिल्ली निवासियों ने रात्रि के समय ऐसे गुप्त पत्र सभा-भवन में डाले थे जिनमें सुलतान की तीव्र भर्त्सना की गयी थी। इसलिये सुलतान चिढ़ गया था और उसने दिल्ली निवासियों को अपने निवासगृहों को छोड़कर देवगिरी जाने के लिये बाध्य किया एवं दिल्ली को निर्जन कर देने का निश्चय किया। इसी कारण उसने अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरी स्थानान्तरित कर दी। यह कारण तर्क-हीन-सा प्रतीत होता है।

इब्नबतूता का कथन विवादग्रस्त है। अभी तक सुलतान ने ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया था जिससे कि दिल्ली की जनता उससे रुष्ट हो जाय और लिखित रूप में उसकी तीव्र आलोचना करे। इसके विपरीत उसने दिल्लीवासियों में उपहार, दान, पद आदि मुक्तहस्त से वितरित किये थे। इसके अतिरिक्त अल्पसंख्यक विरोधियों और आलोचकों के अपराध के लिये, जिनका पता सुलतान सरलता से लगा सकता था, निरपराध जनसाधारण को दंडित करना न्यायसंगत और तर्कपूर्ण नहीं प्रतीत होता है। यदि वह दिल्ली में कुख्यात हो गया था, तो फिर दक्षिण में जहाँ हिन्दू अधिक विरोधी थे, वह कैसे अधिक प्रसिद्ध व लोकप्रिय हो सकता था।

(iv) **यहा बिन-अहमद का मत**—तारीख-ए-मुबारकशाही के लेखक यहा-बिन-अहमद का मत है कि दोआब में की गयी कर-वृद्धि से वहाँ की जनता विद्रोही हो गयी थी। अतएव सुलतान ने क्रुद्ध होकर उसे दंड देने के लिये दिल्ली से देवगिरी जाने के हेतु बाध्य किया और उसने राजधानी परिवर्तित की। यह मत भी तथ्यहीन है, क्योंकि दंड देने की और भी विधियाँ व साधन थे। यदि राजधानी परिवर्तन करके सुलतान दोआबवासियों को दंड ही देना चाहता था, तो उसने दिल्ली निवासियों के निवासगृहों को क्रय क्यों किया और मार्ग में सुविधाएँ क्यों दीं ?

(v) **गार्डीनर ब्राउन (Gardiner Brown) का मत**—इनका कहना है कि राजधानी परिवर्तित करने का कारण यह था कि मंगोलों के आक्रमण तथा भयानक बाढ़ों के आ जाने से पंजाब का महत्व घट गया था—यह भी सारहीन तर्क है। बाढ़ व आक्रमण ऐसी अलौकिक घटनाएँ नहीं थीं जिनके कारण राजधानी परिवर्तित की जाय।

(vi) **मंगोल आक्रमणों से सुरक्षा की भावना**—प्राय: यह भी कहा गया है कि सुलतान मुहम्मद ने राजधानी को मंगोल आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिये उत्तर भारत से दक्षिण भारत में स्थानान्तरित कर दी। दिल्ली पंजाब के निकट होने के कारण मंगलों से जो अब पंजाब तक बढ़ आये थे, असुरक्षित थी। दिल्ली राजधानी पर सदा मंगोलों का भय बना रहता था, उसकी सुरक्षा के लिये सुलतान को निरन्तर प्रयास करना पड़ता था। देवगिरी मंगोलों के मार्ग से दूर था, जहाँ वे सुगमता व सरलता से नहीं पहुँच सकते थे। यह मत भी कोई विशिष्ट तर्कपूर्ण नहीं प्रतीत होता है। सुलतान बलबन और अलाउद्दीन मंगोल आक्रमणों का सामना कर, उन्हें युद्ध में परास्त कर, खदेड़कर अपने राज्य की सुरक्षा कर सके, क्योंकि उनकी राजधानी उत्तर में थी। राजधानी सीमांत प्रान्त के समीप रहने के कारण ही ये दोनों सुलतान सीमा सुरक्षा की व्यवस्था में संलग्न रहे और उसमें सफलता प्राप्त की। साम्राज्य की राजधानी यदि दक्षिण में होती, तो वह अत्यधिक दूर होने से भले ही मंगोलों से बच जाती, परन्तु इसका यह बड़ा भारी खतरा था कि समस्त उत्तरी भारत का साम्राज्य मंगलों की आधीनता में हो जाता।

(vii) **दक्षिण में मुस्लिम विजय और शासन को दृढ़ करने की भावना**—सन् १२९६ के पूर्व दक्षिण भारत में दिल्ली के किसी भी सुलतान ने विजय अभियान नहीं किया था। यद्यपि सुलतान अलाउद्दीन ने अपने निरन्तर सैनिक अभियानों व विजयों से और बाद में गयासुद्दीन के अभियान से दक्षिण भारत दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था, परन्तु वहाँ के स्थानीय हिन्दू राजाओं का शासन समाप्त नहीं हुआ था। सुलतान द्वारा वहां के हिन्दू नरेश कर देने वाले शासक स्वीकार कर लिये गये थे। बाद में वारंगल के काकातीय राजवंश की पराजय और पतन के बाद तथा बहाउद्दीन गुर्शस्प के विद्रोह के दमन के बाद, सुलतान मुहम्मद ने यह अनुभव किया कि दिल्ली से दक्षिण को दृढ़तापूर्वक मुस्लिम आधिपत्य में रखना दुष्कर कार्य था। क्योंकि करद हिन्दू राजा अपना वार्षिक कर न देने और स्वतंत्र होने के लिये निरन्तर अवसर की ताक में रहते थे। यदि उनके स्थान पर मुस्लिम शासक नियुक्त करते तो वे दिल्ली से दूर होने के कारण सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र और विद्रोह करके, स्वतंत्र मुस्लिम राज्य स्थापित करने के प्रयत्न करते। अतएव सुलतान मुहम्मद ऐसा केन्द्रीय स्थान चाहता था जहा से दक्षिण और उत्तरी भारत में प्रशासन ठीक

रूप से व दृढ़ता से किया जा सके। देवगिरी इसके लिये उपयुक्त स्थान था। दक्षिण में मुस्लिम विजय स्थायी हो सके और वहाँ का प्रशासन दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत दृढ़ हो सके—इसलिये मुहम्मद ने देवगिरी को अपनी राजधानी के लिये चुना।

(viii) **दो राजधानियाँ**—कतिपय विद्वानों का मत है कि सुलतान मुहम्मद ने "द्वि राजधानी" के सिद्धान्त को अपनाया। इस मत का आधार "मसालिक उल-अबसार" नामक ग्रंथ है जिसमें यह उल्लेख है कि दिल्ली उत्तरी भारत की राजधानी और देवगिरी सल्तनत के दक्षिण प्रदेशों की राजधानी थी। मुहम्मद ने दिल्ली को अपने साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्र की राजधानी बनाये रखा और दक्षिण क्षेत्र के समुचित प्रशासन और सुव्यवस्था के लिये देवगिरी को नवीन राजधानी बना लिया और उसका नाम दौलताबाद रखा। आगा मेंहदीहुसैन ने अपने ग्रंथ "Rise and fall of Muhammad Bin Tughlaq" में भी इसी मत की पुष्टि करते हुए दौलताबाद को द्वितीय राजधानी बतलाया है। मुद्रा-साक्ष्य भी इस मत को सबल बनाते हैं। ऐसी मुद्राएँ या सिक्के उपलब्ध हुए हैं जो सन् १३२८, १३२८ तथा १३२९ में दिल्ली की शासकीय टकसाल में ढाले गये थे। इसी अवधि में राजधानी दौलताबाद स्थानान्तरित कर दी गयी थी। इन मुद्राओं के दिल्ली में ढलने से प्रमाणित होता है कि राजधानी परिवर्तित करने के बावजूद भी दिल्ली निर्जन नहीं हुई थी। उसमें प्रशासकीय कार्य चलते रहते थे। वह साम्राज्य की राजधानी तब भी रही होगी। यह संभव है कि सुलतान और अमीरों के दक्षिण में चले जाने और दौलताबाद के प्रमुख राजधानी हो जाने से दिल्ली गौण राजधानी हो गयी हो।

उपरोक्त कारणों और तत्थों से यह स्पष्ट है कि राजधानी का स्थानान्तरण क्रूर निरंकुश सुलतान के मन की मौज नहीं थी, उसका आकस्मिक निर्णय नहीं था, अपितु सुरक्षा, सुव्यवस्था और दृढ़ शासन की भावना इसमें निहित थी। इसमे पागलपन की भावना नहीं थी।

(४) **राजधानी स्थानान्तरण की योजना और उसका स्वरूप**—दिल्ली से दौलताबाद राजधानी स्थानान्तरित करने का निर्णय लेने के बाद सुलतान ने इसके लिये एक योजना बनाई।

(i) ऐसा कहा जाता है कि उसने दिल्ली निवासियों को देवगिरी जाने के लिये बाध्य किया और लोगों के लिये सपरिवार दौलताबाद जाने के आदेश प्रसारित कर दिये। उसने दिल्ली के समस्त नर-नारियों और बच्चों को अपनी समस्त संपत्ति सहित दौलताबाद चलने की आज्ञा दे दी।

(ii) जो व्यक्ति दौलताबाद जाने को उद्यत हो गये, उनके गृहों को सुलतान ने क्रय करके राजकोष से उन्हें धन दे दिया जिससे कि उन्हें मार्ग में और दौलताबाद में रहने के लिये आर्थिक संकट का सामना न करना पड़े।

(iii) दिल्ली से दौलताबाद के लगभग ९५० किलोमीटर के मार्ग के लिये पक्की सड़क निर्मित करवा दी जिसके दोनों ओर सुविधा के लिये छायादार वृक्ष लगाये गये जिन्हें तारीख-ए-मुबारकशाही के लेखक ने स्वयं पंद्रहवीं सदी में देखे थे। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर यात्रियों के हेतु सरायें और विश्राम-स्थल स्थापित किये गये।

यहाँ निस्सहाय यात्रियों के लिये ठहरने और निःशुल्क भोजन प्राप्त करने की व्यवस्था की गयी।

(iv) निर्धन व्यक्तियों को मार्ग-व्यय के लिये राजकोष से अनुदान दिये गये और अन्य सुविधाएँ प्रस्तुत की गयीं।

(v) दिल्ली से दौलताबाद के मध्य डाक-व्यवस्था स्थापित की।

(vi) दौलताबाद को खूब अलंकृत किया गया और वहाँ पहुँचने पर निष्क्रमणार्थियों को हर प्रकार की सुविधा देने का प्रयास किया गया। उन्हें उदारता और मुक्तहस्त से अनुदान दिये गये। कृपाओं और सुविधाओं को देने में सुलतान बड़ा ही उदार रहा।

(vii) पीढ़ियों से दिल्ली में निवास करने वाले व्यक्तियों को दिल्ली से इतना मोह हो गया था कि वे उसे स्वेच्छा से छोड़ने को उद्यत नहीं हुए। अतः सुलतान को कठोरतापूर्ण व्यवहार करना पड़ा और निर्मम आदेश निकालना पड़े। शक्ति के बल पर लोगों को दिल्ली से दौलताबाद भेजा जाने लगा।

(viii) मार्ग में अनेक सुविधाओं के होने पर भी, और लोगों को आर्थिक सहायता देने पर भी ९५० किलोमीटर की दूरी पार करने में अनेक व्यक्ति काल के ग्रास बन गये। इस लम्बी यात्रा की थकान से, मार्ग के अनेक कष्टों से, और घरों की मधुर स्मृतियों में अनेक व्यक्तियों ने मार्ग में ही दम तोड़ दिये, कुछ लोग दौलताबाद पहुँचने पर मर गये और जो शेष बचे वे दिल्ली लौटने के लिये व्यग्र हो गये।

(ix) अनेक पीढ़ियों से दिल्ली में बसे हुए निवासियों ने, भग्न हृदय से दिल्ली से प्रस्थान किया क्योंकि दिल्ली उनकी मातृभूमि थी, उसके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था तथा इस नगर से उन्हें अत्यधिक श्रद्धा और प्रेम था। ऐसे व्यक्ति मार्ग में अनेक सुविधाओं के होते हुए भी दौलताबाद पहुँचे तो उन लोगों का मन दौलताबाद में नहीं लगा। उन्हें अपनी मातृभूमि की पीड़ा सताने लगी। दौलताबाद उनके लिये विदेश-सा था। इस अपरिचित क्षेत्र और नगर में निष्कासन असह्य होने लगा और वे नितांत हताश और अशांत हो गये। दौलताबाद की जलवायु भी उन्हें रुचिकर व सुखप्रद प्रतीत नहीं हुई एवं उन्हें दौलताबाद में निवास और खाद्य सामग्री के गहरे अभाव का सामना करना पड़ा। बर्नी लिखता है कि इस विधर्मियों के देश में निराशाविभूत मुसलमानों ने धरती पर मस्तक टेक दिये और दौलताबाद के आगन्तुकों के समूह में कुछ थोड़े ही व्यक्ति अपने घर लौट जाने के लिये बच पाये थे। इमामी ने भी राजधानी परिवर्तन से होने वाले घोर कष्टों का वर्णन किया है और सुलतान पर गालियों की बौछार की है।

(x) प्रायः यह कहा गया है कि राजधानी परिवर्तन की योजना को मूर्त रूप देने के लिये सुलतान ने दिल्ली निवासियों को दौलताबाद जाने के लिये कठोर आदेश दिये थे और वे निर्ममता से कार्यान्वित किये गये। इब्नबतूता ने लिखा है कि खाली की गयी दिल्ली का दृश्य सुलतान ने स्वयं अपने राजमहल के ऊपर से देखा था, क्योंकि वह यह देखना चाहता था कि किसी निवासगृह के चूल्हे से धुंआ तो नहीं

निकल रहा है। उसने दिल्ली के प्रत्येक गृह की तलाशी लेने का आदेश दिया, इस तलाशी में दो व्यक्ति मिले, एक लँगड़ा और दूसरा अंधा जो दौलताबाद नहीं जा सके थे। लँगड़े को तो मरवा डाला गया और अन्धे को गाड़ी से बांध कर घसीटते हुए दौलताबाद ले जाने का आदेश दिया और अंत में मार्ग में उसका प्राणान्त हो गया और उसकी बंधी हुई टांग ही दौलताबाद पहुँची। यह कथन और कहानी अग्राह्य है। इस प्रकार की मनगढ़ंत कथाएँ सुलतान की नीति से असन्तुष्ट और रुष्ट लोगों ने गढ़ ली होंगी जिनकी धारणा थी कि सुलतान को अपनी प्रजा को अनावश्यक कष्ट और यातनाएँ देने में प्रसन्नता होती थी। ऐसी कहानियां ऐतिहासिक होने की अपेक्षा बाजारू गप्प अधिक हैं। यदि यह कथन सत्य होता और सुलतान इतना निर्मम होता तो वह अपनी प्रजा को पुनः दौलताबाद से दिल्ली वापिस नहीं ले जाता। इस प्रकार वापिस ले जाने में उसने बड़ी उदारता प्रदर्शित की, अत्याचार और कठोरता से काम नहीं लिया।

(५) **दौलताबाद से दिल्ली परिवर्तन**—जब सुलतान को दौलताबाद में दिल्ली निवासियों की कठिनाइयों और कष्टों का हाल मालूम हुआ और वे उसकी तीव्र आलोचना करने लगे, तब सुलतान ने अपनी प्रजा को पुनः दिल्ली वापिस लौटने की आज्ञा दे दी। उसने लोकमत का विरोध नहीं किया। उसने लोगों को दिल्ली आने की आज्ञा ही नहीं दी, अपितु उनके साथ और भी अधिक उदारता का व्यवहार किया और सभी सुख-सुविधाओं की व्यवस्था थी। उसने उदारतापूर्वक जनता की क्षति पूर्ति की और सहायता दी।

(६) **राजधानी स्थानान्तरण के परिणाम**—राजधानी परिवर्तन की योजना सुलतान के लिये विनाशकारिणी प्रमाणित हुई। इसके निम्नलिखित दुष्परिणाम हुए:-

(i) **दिल्ली का निर्जन होना**—इब्नबतूता की ऊपर वर्णित लँगड़े व अन्धे की कहानी तथा "तारीख-ए-मुबारकशाही" के लेखक के अनुसार सुलतान के राजधानी स्थानान्तरण से दिल्ली निर्जन हो गयी थी, वह बिल्कुल उजड़ गयी थी। तारीख-ए-मुबारकशाही के लेखक यहाबिन अहमद ने लिखा है कि गृहों के दरवाजों पर कुली तक नहीं मिलते थे, और कुत्तों और बिल्लियों की आवाजें भी नगर में सुनाई नहीं पड़ती थीं। बर्नी ने लिखा है कि बगदाद और काहिरा की प्रतिस्पर्धा करने वाली दिल्ली में कुत्ते और बिल्ली भी शेष नहीं रह गये थे। परन्तु ये कथन सत्य, न्यायसंगत और उपयुक्त नहीं हैं। दिल्ली पूर्ण रूप से कभी खाली नहीं हुई थी। इसके निम्नलिखित कारण हैं:—

इब्नबतूता ने स्वयं राजधानी का स्थानान्तरण आंखों से नहीं देखा था। वह स्थानान्तरण के छः वर्ष पश्चात दिल्ली आया था और उस समय तक उपरोक्त कहानियों तथा राजधानी परिवर्तन सम्बंधी गाथाओं में अत्यधिक झूठ का सम्मिश्रण हो गया होगा। इसके अतिरिक्त उसने यह नहीं लिखा है कि इस कहानी का स्रोत क्या है, किस व्यक्ति के द्वारा उसे इस प्रकार की सूचना प्राप्त हुई।

यहाबिन अहमद भी अपने ग्रन्थ में दो मत प्रगट करता है। एक स्थान पर वह लिखता है कि दिल्ली में कुली तक नहीं मिलते थे तथा कुत्ते बिल्लियों की आवाजें भी

नहीं सुनाई देती थीं। एक अन्य स्थान पर उसने लिखा है कि साधारणतया दुष्ट लोग जो दिल्ली मे रह गये थे, लोगों के सामान और वस्तुओं को उठा लाये और उन्हें सड़कों पर नष्ट कर दिया। इससे स्पष्ट है कि दिल्ली में कुछ लोग अवश्य ही रह गये थे।

कुछ इतिहासकारों ने यह भी उल्लेख किया है कि मुल्तान के हाकिम बहराम किशलूखां के विद्रोह के दमन के पूर्व व पश्चात सुलतान मुहम्मद अपने सैनिक अधिकारियों के साथ दिल्ली आया और वहाँ दो वर्ष तक रहा। विद्रोह दमन के लिये दिल्ली में सुलतान ने सैनिकों की भरती भी की थी। यहाँ यह प्रश्न है कि यदि दिल्ली निर्जन हो चुकी थी तो फिर सुलतान वहाँ दो वर्ष तक कैसे रहा। इससे भी ऐसा आभास होता है कि दिल्ली पूर्ण रूप से खाली नहीं हुई थी। वहाँ अब भी आवास की व्यवस्था थी और कुछ लोग निवास कर रहे थे।

मुहम्मद तुगलक के शासन-काल के कुछ ऐसे सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जो हिजरी सन् ७२७, ७२८, ७२९, में दिल्ली की राजकीय टकसाल में ढाले गये थे और दिल्ली से प्रसारित किये गये थे। इससे विदित होता है कि राजधानी दौलताबाद स्थानान्तरित होने पर भी राजकोष का एक अंग दिल्ली में था और कुछ अधिकारी व व्यक्ति वहाँ रह रहे थे।

(ii) अपार धन का व्यय—राजधानी परिवर्तन में, नवीन मार्ग व विश्रामगृहों के निर्माण में दान, अनुदान देने में, तथा जनता के लिये विभिन्न प्रकार की सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करने में सुलतान ने अपार धन व्यय किया। इससे सुलतान का राजकोष रिक्त हो गया और बाद में उसे अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

(iii) प्रजा को अत्यधिक कष्ट और असुविधाएँ—दिल्ली से दौलताबाद जाने और पुन: वहाँ से दिल्ली लौटने में जनता को अत्यधिक कष्ट हुए, उसे अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ा। अनेक लोग थकान और कष्टों के कारण मार्ग में ही मर गये और अनेक दौलताबाद पहुँचकर मर गये। दिल्ली से दौलताबाद का मार्ग अधिकांश दिल्लीवासियों का श्मशान बन गया। बर्नी के अनुसार दौलताबाद भी दिल्लीवासियों का कब्रिस्तान बन गया। दिल्ली की मुसलमान जनता दक्षिण भारत के हिंदू वातावरण में जाकर घबरा गयी थी। हिंदू वातावरण में रहने में वह असमर्थ थी।

(iv) समृद्धिविहीन दिल्ली—दिल्ली से राजधानी के और अनेक लोगों के चले जाने से दिल्ली की समृद्धि और पुरानी शान-शौकत नष्ट हो गयी। दिल्ली एक प्रकार से नष्ट हो चुकी थी। दौलताबाद से लौटने पर सुलतान ने दूर-दूर के अनेक भूमिपतियों, व्यापारियों, धनवानों, विद्वानों तथा संभ्रांत व्यक्तियों को उजड़ी दिल्ली में आकर स्थायी रूप से निवास करने के लिये प्रोत्साहित किया और उन्हें सुविधाएँ भी दीं। परन्तु उसका प्रोत्साहन परिवर्तित परिस्थितियों के प्रति सहिष्णु न बन सका और दिल्ली का वह प्राचीन गौरव, वैभव और समृद्धि पुन: लौट न सकी। सन्

१३३४ में मूर यात्री इब्नबतूता ने दिल्ली को अनेक स्थानों में उजड़ा हुआ देखा था और अनेक घरों में उसने घास उगती हुई पायी थी।

(v) **जनता का तीव्र असन्तोष और कटु आलोचना तथा असहयोग**—दिल्ली से दौलताबाद आने-जाने में और योजनाओं को पूर्ण करने के लिये अनेक लोगों को अपन प्राणों की बलि देना पड़ी एवं अनेक परिवार निस्महाय और घोर दरिद्र हो गये। इससे जनता सुलतान से अत्यधिक असन्तुष्ट हो गयी और उसकी तीव्र आलोचना करने लगी। इस असन्तोष और आलोचना से सुलतान को उसकी अन्य योजनाओं को कार्यान्वित करने में जनता का पूर्ण सहयोग व सहायता प्राप्त नहीं हो सकी।

(७) **आलोचना**—मुहम्मद की राजधानी स्थानान्तरण की योजना की विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से आलोचना की गयी है।

(i) **राजधानी के लिये दौलताबाद अनुपयुक्त था**—अपार धन राशि और समय की बरबादी तथा योजना को असफलता के कारण लेनपूल ने कहा है कि दौलताबाद सुलतान की गलत मार्ग पर लगायी गयी शक्ति का केवल स्मारक मात्र रह गया (Daultabad was a monument of misdirected energy)। लेनपूल का मत है कि यदि यह योजना सफल भी हो जाती तब भी देवगिरी या दौलताबाद से संपूर्ण साम्राज्य पर नियंत्रण करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। साम्राज्य की उत्तरी सीमा असुरक्षित थी। वहाँ से सदा मंगोलों के आक्रमणों का भय बना रहता था। दौलताबाद इतना दूर था कि वहाँ से उत्तरी पश्चिमी प्राँतों में पहुँचकर मंगोलों का प्रतिरोध करना दुष्कर था, सीमा की सुरक्षा नितांत असंभव थी। उसने इन अनुभवों को विस्मरण कर दिया कि हिंदुओं के विद्रोह तथा मंगोलों के आक्रमण किसी भी समय उसके साम्राज्य की उत्तरी सीमा को खतरे में डाल सकते हैं। इस दृष्टि से दौलताबाद साम्राज्य की राजधानी बनने के योग्य नहीं था। राजधानी के लिये दिल्ली ही अधिक उपयुक्त स्थान था।

फरिश्ता का कथन है कि सुलतान ने राजधानी परिवर्तन में सबसे बड़ी भूल यह की कि उसने अपने दो भयानक शत्रुओं अर्थात् ईरान तथा तूरान के शासकों का ध्यान नहीं रखा। ये मंगोल थे। राजधानी उत्तरी भारत से हट जाने से उन्हें आक्रमण में सरलता हो गयी थी। इसके अतिरिक्त देवगिरी पंजाब तथा बगाल से बहुत दूर था। यदि मगोल उत्तरी भारत पर आक्रमण करते तो दक्षिण से भारत की रक्षा करना कठिन था।

(ii) **जनता के कष्ट और असुविधाओं का उत्तरदायित्व**—राजधानी परिवर्तन के विषय में जितनी भी आलोचनाएँ हुई हैं उनका प्रमुख आधार जनता का अपार कष्ट और दुःख था जो उन्हें राजधानी परिवर्तन में भोगना पड़ा। लगभग ६५० किलोमीटर की लम्बी यात्रा में अपार कठिनाइयाँ कष्ट और असुविधाएँ होना स्वाभाविक था। परन्तु इब्नबतूता और बर्नी ने इन कष्टों के वर्णन में अतिशयोक्ति और अनिरंजन प्रदर्शित किया है। यह कहना भी भ्रममूलक है कि सुलतान ने जनता को कष्ट देने के लिए राजधानी परिवर्तित की। यदि उसका यह उद्देश्य होता तो वह मार्ग में

अनेक सुविधाओं और निःशुल्क भोजन व आवास की व्यवस्था न करता। उसने लोगों को दिल्ली लौट जाने की अनुमति भी दे दी; उनके साथ उदारता का व्यवहार भी किया और उनकी क्षतिपूर्ति भी कर दी। पर यह स्पष्ट है कि जनता के कष्टों का कुछ उत्तरदायित्व उस पर आता है। जब उसने इस उत्तरदायित्व को निबाहने और भूलको सुधारने का प्रयत्न किया तो उसका कोई लाभ नहीं हुआ। दिल्ली उजड़ चुकी थी और जनता निराश और रुष्ट थी।

इसके अतिरिक्त इस आलोचना में भी सत्यता नहीं है कि वह दिल्ली की समस्त जनता को देवगिरी जबरदस्ती ले गया। तत्कालीन इतिहासकारों ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है।

(iii) **जनता को देवगिरी ले जाने की भूल**—राजधानी परिवर्तन अनेक शासकों ने किया है। ब्रिटिश शासन काल में भी राजधानियां कलकत्ता, दिल्ली, शिमला आदि स्थानों में स्थानान्तरित होती रहीं। राजधानी परिवर्तन की योजना में स्वतः कोई दोष नहीं था। उसे कार्यान्वित करने में भूल थी। राजधानी परिवर्तन में दिल्ली की समस्त जनता को देवगिरी ले जाना आवश्यक नहीं था। सुलतान को अपने साथ अपने शासकीय कार्यालय तथा आवश्यक कर्मचारी ले जाना चाहिये थे। शिल्पी, दूकानदार, व्यापारी, व्यवसायी आदि तो धीरे-धीरे स्वयं नवीन राजधानी पहुँच जाते; क्योंकि राजधानी में स्वभावतया उन्हें लाभ होता। पर सभी निवासियों को एक साथ राजकीय व्यय पर ले जाना बुद्धिमत्तापूर्ण न था। यदि समस्त जनता के स्थान पर वह केवल शासन प्रबन्ध के यन्त्र को दौलताबाद ले जाता, प्रशासकीय अधिकारियों और कर्मचारियों को ही ले जाता तो न तो, इतना अपार धन ही व्यय होता, न जनता असन्तुष्ट होती और न दिल्ली के वैभव और समृद्धि में ही कमी आती।

(iv) **राजधानी परिवर्तन की योजना निर्दोष और विवेकपूर्ण**—उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजधानी परिवर्तन की योजना दोषपूर्ण, अबुद्धिपूर्ण नहीं थी अपितु वह सुलतान के मस्तिष्क की एक अद्भुत उपज थी। इस योजना मे प्रशासन सुधार की भावना व दूरदर्शिता निहित थी। वास्तव में राजधानी परिवर्तन में सुलतान का मुख्य लक्ष्य यह था कि उसके साम्राज्य के दक्षिणी प्रदेशों पर उसका पूर्ण नियंत्रण रहे और वहां इस्लामी सभ्यता तथा संस्कृति का प्रचार उसी प्रकार हो जिस प्रकार उत्तरी भारत में हो चुका था। इसी लक्ष्य की पूर्ति के हेतु उसने विद्वानों, धर्माचार्यों, प्रमुख अमीरों व सरदारों को भी देवगिरी जाने के आदेश दिये।

योजना की असफलता—सुलतान की राजधानी परिवर्तन की योजना असफल हो गयी। यह इसलिये नहीं हुआ कि यह योजना तर्कहीन और मूर्खतापूर्ण थी, बल्कि इसलिये कि परिवर्तन का ढंग गलत था। जैसा ऊपर उल्लिखित है, योजना को कार्यान्वित करने का ढंग ठीक न था। सुलतान की जल्दबाजी, उतावलापन, क्रुद्ध और हठी स्वभाव भी इस योजना की असफलता का कारण है। यदि सुलतान थोड़े पैमाने पर इस परिवर्तन का प्रयोग करता और धीरे-धीरे समयानुकूल अन्य व्यक्तियों को दिल्ली से दौलताबाद बुलवाता तो योजना भीषण रूप से असफल नहीं होती।

मुद्रा-नीति और सांकेतिक मुद्रा-प्रचलन

मुहम्मद तुगलक अपनी मुद्रा नीति और उसमें किये गये परिवर्तनों के लिए भी इतिहास प्रसिद्ध रहा है। उसने मुद्राओं के निर्माण, मूल्य, अंकन आदि में विशेष सुधार किये। वह बुद्धिमान, प्रतिभासम्पन मौलिक विचारों वाला सुलतान था। इसलिए उसने मुद्रा प्रचलन में आमूल परिवर्तन और सुधार किये। बहुमूल्य धातुओं के आपेक्षिक मूल्य निर्धारित किये और विभिन्न प्रकार के नवीन सिक्के प्रचलित किये।

मुद्रा सम्बन्धी सुधार— सुलतान के मुद्रा संबंधी सुधार निम्न-लिखित हैं:—

(i) **दोकानी सिक्का**—उसने दोकानी नामक नवीन सिक्का प्रचलित किया। यह अपनी नवीनता और अंकन में सुन्दर था।

(ii) **दीनार और अदली सिक्के**—उसने दीनार नामक नवीन स्वर्ण मुद्राएं प्रचलित कीं। इनका वजन १७५ ग्रेन से २०० ग्रेन तक रखा गया। इसके साथ में चांदी का अदली नामक सिक्का भी प्रसारित किया गया। इसका वजन १४४ ग्रेन था।

(iii) **टंक मुद्राएँ**-- विनिमय की सुविधाओं के लिये और जनता के कष्ट निवारणार्थ उसने छोटी मुद्राएँ भी प्रचुर मात्रा में ढलवायीं और उन्हें प्रसारित किया गया। टंक नामक मुद्रा विनिमय में अधिक प्रचलित रखी गयी। उसने सन् १३३२ ई. से १७५ ग्रेन के भार के सोने चांदी के टंक प्रचलित किये।

(iv) उसने प्रचलित मुद्राओं का रूप और आकार सुन्दर और आकर्षक कर दिया तथा उन पर खोदी जाने वाली आयतों व शब्दों का चयन अधिक सुरुचि के साथ किया गया। उसकी मुद्राएँ अपनी कलापूर्ण आकृति व डिजाइन (Design) के लिये प्रसिद्ध रही हैं।

(v) मुद्रा प्रचलन में उसकी सबसे महत्वपूर्ण क्रांतिकारी योजना सांकेतिक सिक्कों को प्रचलित करना था। उसने सोने चांदी के स्थान पर पीतल और तांबे के सिक्के प्रचलित किये। ये प्रतीक मुद्राएँ कहलायी और इनके प्रचलन के लिए सुलतान की अत्यधिक आलोचना की गयी। सांकेतिक मुद्रा का अभिप्राय, सांकेतिक मुद्राओं के प्रचलन के कारण, उनके प्रचलन की अवधि और उसके परिणामों पर अब प्रकाश डाला जायगा।

सांकेतिक मुद्रा-प्रचलन

(१) **सांकेतिक मुद्रा का अर्थ**—सांकेतिक सिक्के हल्की धातु जैसे तांबा, गिलट, निकिल, आदि के बनाये जाते हैं। ये अल्प परिणाम के लेन-देन में आते हैं। इसका अंकित मूल्य आन्तरिक या धातु-मूल्य से अधिक होता है। चूंकि सांकेतिक सिक्कों का धातु-मूल्य उनके मुद्रा-मूल्य से बहुत कम होता है, इसलिये जनता द्वारा इन सिक्कों को गलाया नहीं जाता। क्योंकि ऐसा करने में उन्हें हानि होती है। सांकेतिक सिक्के कानूनी रूप से ग्राह्य माने जाते हैं। इनकी बाहुल्यता और चलन उन परिस्थितियों मे प्रारम्भ होता है जब कि सरकार के पास बहुमूल्य धातुओं की कमी होती है और सरकार को मुद्राओं के बढ़ाने की आवश्यकता होती है।

(२) **सांकेतिक मुद्रा प्रचलन के कारण**—ये निम्नलिखित हैं—

(i) **राजकोष की रिक्तता और आर्थिक कठिनाइयां**—सिंहासनारूढ़ होने के समय सुलतान ने उपहार, पुरस्कार, अनुदान, दान आदि मुक्त हस्त से वितरित किये। इनमें तथा राजधानी परिवर्तन की योजना में भी उसका बहुत धन व्यय हो गया। इस अपव्यय से राजकोष रिक्त हो गया। इसके अतिरिक्त उसने दोआब में भूमि-सुधार

करने और कर-वृद्धि करने में, शासन के प्रारंभिक काल में विद्रोहों के दमन करने में, मंगोल नेता तरमशरींनखां से संघर्ष करने में एवं शासन सम्बन्धी व्ययशील प्रयोगों के करने से, सुलतान को अत्यधिक धन व्यय करना पड़ा। इसी समय निरंतर दुर्भिक्षों के कारण कृषि को गहरा आघात लगा और राजकीय आय प्रभावित हो गयी। दोआब में कठोर कर नीति से सुलतान की आय में बहुत कमी हो गयी थी। इन कारणों से राज कोष रिक्त हो गया था और उसे आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। साम्राज्य की बिगड़ती हुई आर्थिक दशा को सुधारना आवश्यक था। इसके निराकरण के लिये उसने सांकेतिक मुद्राएँ प्रचलित की।

बर्नी, यहाबिन अहमद सरहिन्दी, बदाऊँनी, और फरिश्ता ने भी यही मत व्यक्त किया है कि अपव्यय और राजकोष की रिक्तता से बाध्य होकर सुलतान ने सांकेतिक मुद्राएँ प्रचलित कीं। परन्तु डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद ने अपने ग्रंथ (History of the Qaraunah Turks) में इस मत का खंडन किया है। उनका कथन है कि सुलतान को दक्षिण भारत की विजय में और वहाँ के प्रशासन में अपार स्वर्ण, चांदी और बहुमूल्य रत्न आदि प्राप्त हुए थे। धन की इस प्रचुरता से राजकोष रिक्त नहीं था। धन का अभाव या सोने चांदी का अभाव नहीं था। क्योंकि यदि राजकोष सोने-चाँदी की मुद्राओं से रिक्त हो गया था तो फिर बाद में किस प्रकार और क्यों तांबें व पीतल की मुद्राओं के बदले में जनता को सोने चाँदी की मुद्राएँ दी गयीं। इस प्रकार मुद्राओं के परिवर्तन के बाद भी आर्थिक नीति का संचालन कुशलता से सम्पन्न किया गया। सांकेतिक मुद्रा प्रचलन की नीति की असफलता के बाद भी सुलतान पूर्ववत् कृषि की उन्नति, दुर्भिक्षग्रस्त क्षेत्रोंकी सहायता, तथा विद्रोहों के दमन में धन व्यय करता रहा। इससे स्पष्ट है कि राजकोष की रिक्तता या सुलतान की अपव्ययता सांकेतिक मुद्रा चलाने का कारण नहीं हो सकते।

(ii) **विजयअभियान**--बर्नी ने लिखा है कि सुलतान मुहम्मद महत्वाकांक्षी था। विश्वविजय की महत्वाकांक्षा को कार्यान्वित करने के लिए उसे अपार धन की आवश्यकता थी। मुहम्मद तुगलक विश्वविजेता बनना चाहता था। इस विश्वविजय के हेतु विशाल सेना तैयार करने के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता थी। करों से पर्याप्त धन प्राप्त नहीं हो रहा था। विश्वविजय की आकांक्षा की पूर्ति के लिये दूरस्थ भागों एवं बाह्य देशों को जीतने के लिए सुलतान ने सांकेतिक मुद्राएँ प्रचलित कीं। तबकात-ए-अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद ने भी इस मत का प्रतिपादन किया है।

(iii) **विभिन्न योजनाओं और विद्रोहों का दमन**– सुलतान ने अपने मस्तिष्क की उर्वरा शक्ति के कारण विभिन्न योजनाएं बनायी थीं। उन्हें कार्यान्वित करने के लिये तथा विस्तृत साम्राज्य में हो रहे विद्रोहों के दमन के लिये भी उसे अपार धन की आवश्यकता थी जिसे सांकेतिक मुद्राओं से पूरा किया जा सकता था।

(iv) **जनता से धन प्राप्त करना**—हाजी उद-दबीर का मत है कि सुलतान का मुख्य उद्देश्य था कि सांकेतिक मुद्राओं द्वारा जनता से धन एकत्रित करले। सांकेतिक मुद्राएं चलाकर जनता के पास संग्रहित स्वर्ण और रजत के टंक लेकर राजकोष

परिपूर्ण कर लेना। इस प्रकार सांकेतिक मुद्रा प्रचलन एक "शाही चाल" थी। पर यह मत भ्रममूलक और और निराधार है। मुहम्मद जैसा प्रजा हितैषी उदार सुलतान ऐसी "शाही चाल" नहीं चलेगा।

(v) **विलास और वैभव की पूर्ति**—कुछ विद्वानों का कथन है कि सुलतान भोग विलासी, व्यसनी, अतिव्ययी, सनकी और लोभी था और उसे अपने विलास और राजकीय वैभव व शान के लिये तथा अपने व्यय की मदों को पूरा करने के लिये प्रचुर धन की आवश्यकता होने लगी जिसकी पूर्ति के लिये उसने प्रतीक मुद्राएं चलायीं। उपरोक्त दुर्गुण और आकांक्षाएं मुहम्मद तुगलक में नहीं थीं, उसमें ये दोष नहीं थे। अतएव यह कारण अग्राह्य है। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद ने भी इसे नहीं माना है।

(vi) **चीनी और ईरानी शासकों का अनुकरण**—चीन में कुबलाई खाँ के शासन काल में कागज की प्रतीक मुद्राएं प्रचलित की गयीं और उसमें सफलता मिली। ईरान में भी सांकेतिक मुद्राएँ प्रचलित की गयीं। कतिपय विचारकों का मत है कि सुलतान ने चीन और ईरान के अनुकरण में सांकेतिक मुद्राएँ प्रचलित कीं। परन्तु यह मत भी अग्राह्य है, क्योंकि सुलतान मुहम्मद जैसा प्रतिभाशाली, विवेकशील सुलतान नवीन योजना के गुणदोषों को बिना सोचे समझे सांकेतिक मुद्राओं के प्रचलन का अनुकरण नहीं करेगा।

(vii) **चांदी का अभाव**—पाश्चात्य विद्वानों का और विशेष रूप से गार्डनर-ब्राउन का मत है कि सुलतान मुहम्मद के शासन काल में चाँदी का उत्पादन कम हो गया था। भारत में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में चाँदी का अभाव था। इससे भारत में चाँदी का आयात ही कम हो गया था। चांदी का टंक ही ऐसा छोटा सिक्का था जो वस्तु-विनिमय व क्रय-विक्रय में और दैनिक जीवन में अधिक प्रयुक्त होता था। चांदी के अभाव में चांदी के टंक प्रचुर मात्रा में प्रसारित नहीं किये जा सके। यही कारण है कि तुगलक काल से लेकर लोदी राज्य काल तक की अवधि के चाँदी के सिक्के बहुत ही अल्प संख्या में उपलब्ध हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि चाँदी के गहरे अभाव के कारण सुलतान ताँबे के सांकेतिक सिक्के चलाने के लिये बाध्य हो गया।

(viii) **मेधावी सुलतान की मौलिकता**—सुलतान मुहम्मद बड़ा मेधावी, प्रतिभासम्पन्न मौलिक विचारों वाला व्यक्ति था। उसका उर्वर मस्तिष्क बड़ा कल्पनाशील था। वह नवीन प्रयोगों व योजनाओं को बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने में बड़ी अभिरुचि रखता था। मुद्रा प्रचलन में वैज्ञानिक ढंग से एक नवीन प्रयोग करने का उसने निर्णय किया और सांकेतिक मुद्रा उसका परिणाम हुआ। सांकेतिक मुद्राएं उसकी उर्वर बुद्धि और कल्पना का प्रतीक हैं।

(३) **सांकेतिक मुद्रा का स्वरूप**—सुल्तान मुहम्मद ने चीन की भाँति भारत में कागज की सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन नहीं किया, क्योंकि कागज शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और उसका कोई यथार्थ मूल्य भी नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त सुलतान को यह भी अनुभव हुआ होगा कि भारत एक प्राचीन रूढ़िवादी देश है। यहां दीर्घकाल से धातु मुद्राओं का प्रचलन रहा है और जनसाधारण भी उन्हीं के अभ्यस्त हैं। ऐसी दशा में यहां कागज की सांकेतिक मुद्रा का घोर विरोध हो जाने की संभावना

थी। इसलिये सुलतान ने तांबे की सांकेतिक मुद्राओं का प्रसार किया। फरिश्ता का कथन है कि उसने तांबे और पीतल दोनों की सांकेतिक मुद्राएं प्रचलित कीं।

(४) **सांकेतिक मुद्राओं के प्रचलन का समय**—हिजरी सन् ७३० से ७३२ अर्थात् सन् १३३० से १३३२ तक की सांकेतिक तांबे की मुद्राएं उपलब्ध हुई हैं, इसके बाद की नहीं। इसके अतिरिक्त मूरयात्री इब्नबतूता जब १२ सितंबर सन्-१३३३ में सिंध पहुँचा, तब उसने वहां और उसके बाद अन्य स्थानों पर सांकेतिक मुद्राओं को नहीं देखा और न उसने इस विषय पर कुछ वर्णन ही किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १३३३ तक तांबे के सांकेतिक सिक्के चलना बंद हो गये होंगे या वे अवैध घोषित कर दिये गये होंगे। इन तथ्यों से प्रगट होता है कि तांबे के सांकेतिक सिक्के सन् १३२९–३० से १३३१–३२ की अवधि में प्रचलित रहे।

(५) सांकेतिक मुद्राओं का प्रचलन, प्रसारण और परिणाम

(i) **तांबे के सिक्कों का चलन और सोने-चांदी के सिक्कों का लोप**—सुलतान ने नवीन तांबे के सिक्कों को कानूनी मुद्रा घोषित कर दिया और उन्हें सोने चाँदी के सिक्कों के समकक्ष मानने और दैनिक व्यवहार में उन्हें सोने चांदी के सिक्कों के समान प्रयोग करने के आदेश दिये गये। थोड़े ही समय में बाजार से चांदी सोने के सिक्के बिलकुल लुप्त हो गये, अदृश्य हो गये और चतुर्दिक तांबे के सिक्के दृष्टिगोचर होने लगे। जाली सिक्कों ने बाजार से अच्छे सिक्कों को निकाल दिया। लोग देते समय तो तांबे के सिक्के देते थे और लेते समय सोने चांदी के सिक्के। लोगों ने चांदी सोने के सिक्कों को छिपाकर घरों में रख लिया। राजकरों का भुगतान भी नये तांबे के सिक्कों में होने लगा। विदेशी व्यापारी माल क्रय करने में नवीन तांबे के सिक्कों का उपयोग करते थे और अपना माल बेचने में पुराने सोने चांदी के सिक्कों को लेते थे। वे सांकेतिक मुद्रा लेने से इनकार करते थे। इससे राजकार्य और व्यापार में बड़ी असुविधा हो गयी।

(ii) **तांबे के जाली सिक्कों का बाहुल्य और कीमतें प्रभावित**—बर्नी के अनुसार घर-घर टकसाल हो गयी। उसका कथन है कि प्रत्येक हिन्दू का घर टकसाल बन गया था। तांबे के बर्तनों के सिक्के बना ढाले गये और प्रसारित किये गये। बर्नी का यह कथन जातिवाद का और धार्मिक विचारों की संकीर्णता का द्योतक है। जाली सिक्के बनाने में मुसलमान भी पीछे नहीं रहे होंगे। यह संभव है कि सिक्के बनाने वाले सुनार या अन्य शिल्पी हिन्दू ही रहे होंगे। इसके अतिरिक्त संपन्नता के कारण हिन्दू घरों में ही तांबे के बर्तनों व वस्तुओं का बाहुल्य था और इन वस्तुओं के उन्होंने सिक्के बना लिये। तांबे के इतने अधिक जाली सिक्के हो गये कि सोने के सिक्कों का भाव गिर गया था। एक सोने के सिक्के की कीमत १२० तांबे के सिक्कों से भी अधिक थी। तांबे के सिक्कों का भाव इतना अधिक गिर गया था कि उन्हें कंकड़ियों और कौड़ियों के भाव भी कोई नहीं पूछता था। तांबे के सिक्कों के बाहुल्य से राजकोष भी भर गया था। बर्नी के अनुसार सुलतान के महल के बाहर तांबे के सिक्कों का ढेर लग गया था जिनमें से अधिकांश उसकी प्रजा द्वारा निर्मित किये गये थे। इससे स्पष्ट है कि सोने-चांदी के अभाव में मुद्रा संतुलन न रहा और सरकार भारी ऋण से दब गयी।

(iii) **उद्योग-व्यवसाय और कृषि को आघात** – तांबे के सिक्कों के बाहुल्य से और सोने चांदी के सिक्कों को घरों में छिपाकर संग्रहित कर लेने की प्रवृत्ति से कृषि, उद्योग, व्यापार और व्यवसायों को भारी आघात लगा। आर्थिक अराजकता उत्पन्न हो गयी। कृषि और व्यापार चौपट हो गये। विदेशी व्यापार लगभग बंद सा हो गया।

(iv) **जनता को कष्ट**—सोने-चांदी के सिक्कों के अदृश्य होने से जनसाधारण को अनेक कष्ट होने लगे। कई तांबे व पीतल के सिक्के लेने से इनकार करने लगे। इससे वस्तु-विनिमय और दैनिक व्यवहारों में अत्यधिक बाधाएं पड़ने लगीं। जो लोग तांबे के सिक्के स्वीकार नहीं करते थे, उन्हें कठोर दंड दिया जाता था। इससे जनता में सुलतान के प्रति तीव्र असन्तोष बढ़ा जिसने धीरे-धीरे विद्रोह का रूप ले लिया।

(v) **तांबे के सिक्कों का सोने-चांदी के सिक्कों में परिवर्तन**—सुलतान ने अपनी इस योजना को विफल होते देखकर तांबे के सिक्कों को अवैध घोषित कर दिया और सांकेतिक मुद्राओं को वापिस लेने का निर्णय किया। उसने यह आदेश दिया कि लोग तांबे के सिक्के राजकोष में जमा करा जायं और वहां से तांबे के सिक्कों के बदले में चांदी सोने के सिक्के ले जायं। सहस्त्रों व्यक्ति तांबे के सिक्के लाकर राजकोष से सोने चांदी के सिक्के बदले में ले गये। इस प्रकार सुलतान स्वयं अपनी प्रजा द्वारा ठगा गया और अपने राजकोष से बहुत-सा धन तांबे के सिक्कों के बदले में देने से राजकोष भी रिक्त हो गया था। एक लेखक ने ठीक ही कहा है कि "तुर्की शासन ने अब तक प्रजा से जो धन चूसा था, उसका बदला, इस समय प्रजा ने ले लिया और प्रत्येक घर सोने चांदी से भर गया और सरकारी कोष खाली हो गया"।

फ़रिश्ता ने सुलतान पर दोषारोपण किया कि राजकोष रिक्त हो जाने पर भी सोने चांदी के सिक्कों के लिये जनता की भारी मांग बनी रही तथा सुलतान ने अंत में ऋण को चुकाने से इनकार कर दिया। इससे सहस्त्रों व्यक्तियों को गहरी आर्थिक क्षति उठाना पड़ी और वे नष्ट हो गये। परन्तु यह दोषारोपण मिथ्या है। बर्नी ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि सुलतान ने सभी की माँगों को पूर्ण किया। यहाबिन अहमद, बदाऊंनी और हाजी उद्-दबीर भी लिखते हैं कि जो भी तांबे के सिक्के परिवर्तन के लिये लाये उन सबको स्वर्ण के सिक्के दिये गये।

(६) **सांकेतिक मुद्रा योजना की असफलता और उसके कारण**—विद्वानों और इतिहासकारों ने इस योजना की आलोचना करते हुए उसकी असफलता पर प्रकाश डाला। इसकी असफलता के कारण अधोलिखित हैं—

(i) **मुद्रालय या टकसाल पर राज्य के एकाधिकार का अभाव**–इस आयोजना में सुलतान ने यह भूल की कि उसने सिक्के बनाने का काम राज्य के एकाधिकार में नहीं रखा। उसने मुद्रालय या टकसाल पर राज्य का एकाधिकार स्थापित नहीं रखा जिससे लोगों ने अपने घरों में तांबे के सिक्के बनाना प्रारम्भ कर दिये। तांबे की जाली और असली मुद्राओं में भेद करना दुर्लभ हो गया। यदि जाली सिक्कों के ढालने वालों और उनके प्रसारण करने वालोंके लिये कठोर दंडके लिए व्यवस्था होती,तो योजना इतनी शीघ्र

असफल नहीं होती। सुलतान ने ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की और न ऐसी कोई सतर्कता ही बरती जिससे कि तांबे के सिक्कों की वास्तविकता की जांच की जा सके और जन साधारण द्वारा उनके निर्माण की शक्ति सीमित की जा सके। यह एक बड़ी अवैज्ञानिक भूल थी।

(ii) **अस्थायी शासन और दिवालियापन**—Elphinstonका कथन है कि इस योजना की विफलता का कारण सुलतान की अस्थायी सरकार और उसका दिवालियापन था। इससे जनता का सरकार में विश्वास नष्ट हो गया था और योजना असफल हुई। पर यह मत सर्वमान्य नहीं है क्योंकि यदि सुलतान की सरकार अस्थायी और दिवालिया होती तो सुलतान तांबे की मुद्राओं के बदले में स्वर्ण मुद्राएं नहीं दे सकता था, और न वह अकाल पीड़ितों की सहायता ही कर सकता था और न अन्य विजय योजनाओं को ही कार्यान्वित कर सकता था। सच तो यह है कि आर्थिक समस्याओं के होने पर भी और सांकेतिक मुद्रा योजना के असफल होने पर भी सुलतान किसी भी मूल्य पर राज्य की साख को नष्ट नहीं होने देना चाहता था।

(iii) **जनता का पिछड़ापन और अज्ञान**—मध्ययुग में चौदहवीं सदी में साधारण जनता अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों से अपरिचित थी, मुद्रा और विनिमय संबंधी बातों के लिये उसमें पिछड़ापन और अज्ञान था। वह सांकेतिक मुद्रा के द्वारा विनिमय के महत्व को नहीं समझ सकती थी। रूढ़िवादी भारतीय जनता के लिये तांबा तांबा ही था और सोना सोना ही। तत्कालीन भारतीय जनता उसकी योजना के महत्व को समझने की क्षमता नहीं रखती थी। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि सुलतान की सांकेतिक मुद्रा की योजना समय से बहुत आगे थी।

(iv) **आकस्मिक दुर्भाग्य**—यह सुलतान का दुर्भाग्य ही था कि उसकी एक अच्छी योजना असफल हो गई। उसमें सामान्य बुद्धि का अभाव था। इससे वह प्रतिभासंपन्न सुलतान अक्षम्य भूलें कर बैठा जो एक साधारण बुद्धि वाला विवेकशील मनुष्य नहीं करता।

(७) **आलोचना**—कतिपय विद्वानों ने कहा है कि सांकेतिक मुद्रा प्रचलन में वह जनता से सोना चांदी लेना चाहता था। वह जनता को ठगना चाहता था। यह मत निराधार और तर्कहीन है। सुलतान का उद्देश्य जनता से स्वर्ण या रजत लेना नहीं था। उसकी मनोवृत्ति जनता को लूटने और ठगने की नहीं थी। यह निर्विवाद है कि संकटकालीन परिस्थितियों में भी सुलतान ने प्रजा के हितों का ध्यान रखा, उसने सदा जनता के कल्याण-कार्य करने के प्रयास किये, उसे ठगने के नहीं। यह उसका दुर्भाग्य था कि जनता उसकी योजना के वास्तविक स्वरूप और लक्ष्य को समझ नहीं सकी। वह अपने युग से खूब आगे था।

वास्तविकता तो यह है कि वह प्रशासन में नवीन प्रयोग करने में, मौलिक बातों को कार्यान्वित करने में विशेष अभिरुचि रखता था। उस युग में उसने चांदी के तीव्र अभाव में सांकेतिक मुद्राओं का प्रचलन किया। यह एक प्रशंसनीय प्रशासकीय प्रयोग था। परन्तु चौदहवीं सदी सांकेतिक मुद्राओं के प्रचलन के लिये उपयुक्त नहीं थी, क्योंकि वह युग विज्ञानवादी आर्थिक विचारधाराओं से बहुत दूर था।

सत्य तो यह है कि सुलतान की यह सांकेतिक मुद्रा प्रसारण की नीति पागलपन या सनक की उपज नहीं थी अपितु उसके विवेकशील मौलिक चिंतन का परिणाम थी। योजना निर्दोष थी, पर उसको कार्यान्वित करने की पद्धति दोषपूर्ण थी।

सुलतान मुहम्मद के मुद्रा सुधार व प्रयोग के विषय में पाश्चात्य इतिहासकार टामस ने लिखा है कि "मुद्रा ढालने वालों के सिरताज के रूप में मुहम्मद तुगलक सदा स्मरण किया जायेगा। नवीनता और विभिन्नता की दृष्टि से उसके सिक्के शिक्षाप्रद हैं। रूप तथा बनावट की दृष्टि से भी वे कलात्मक तथा श्रेष्ठ हैं। उनका महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक बढ़ जाता है कि वे स्वयं सुलतान के व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करते हैं।" मुद्राओं के सुधार एवं नवीन योजनाओं के कारण पाश्चात्य विद्वान टामस ने मुहम्मद तुगलक को अर्थोपजीवियों के सम्राट (prince of Moneyers) की उपाधि से विभूषित किया है। J. C. Brown के शब्दों में "Muhammad Tughlaq has not unjustly been called by Thomas." The prince of Moneyerrs." Not only did his coins surpass those of his predecessors in execution and especially in caligrapahy, but his large output of gold the number of his issues of all denominations, the interest of the inscripions reflecting his character and activities, his experiment with the coinage particularly his forced currency, entitle him to a place among the greatest moneyers of history."

मुहम्मद तुगलक की विजय योजनाएं और युद्ध

सुलतान मुहम्मद तुगलक अलाउद्दीन के समान बड़ा महत्वाकांक्षी था। उसमें विशाल साम्राज्य निर्माण करने की महत्वाकांक्षा थी। वह भारत में ही नहीं अपितु भारत के बाहर भी अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था। वह साम्राज्यवादी और विस्तारवादी भावनाओं और महत्वाकांक्षाओं से ओत-प्रोत था जो मध्यकालीन सुलतानों का एक विशेष गुण था। इसलिये उसने विजय अभियान की योजनाएँ बनाईं। शिहाबुद्दीन अल-उमरी ने सुलतान की विजय योजनाओं के सम्बन्ध में लिखा है कि, "यह सुलतान उस समय तक नहीं थकता, जब तक कि वह विजय कार्य पूरा नहीं कर लेता और जो कुछ शेष रह जाता है उसे तलवार से साफ नहीं कर लेता। सुलतान की विजय-योजनाएँ हिन्दुस्थान भर में उसकी प्रसिद्धि की सुगन्धी बिखेर रही हैं जो उस देश की अन्य सुगन्धियों से कहीं अधिक मधुर हैं।" इसी प्रकार मुहम्मद की विजय योजना के विषय में फरिश्ता ने लिखा है कि, "वह युद्ध क्षेत्र में अपनी वीरता के लिये उससे कम प्रसिद्ध नहीं था जितना कि वह उन गुणों के लिये था जो किसी पुरुष को व्यक्तिगत रूप से समाज का भूषण बना देते हैं। अपने साम्राज्य को विस्तृत करने की अनवरत अभिलाषा के कारण उसके जीवन का अधिकांश समय शिविर में ही व्यतीत हुआ।" युद्ध और विजय अभियान मुहम्मद की साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा और सैनिक प्रतिभा के द्योतक हैं। इन अभियानों का वर्णन निम्नलिखित है।—

(i) **राजस्थान विजय**—कर्नल टाड, एर्सकीन तथा पंडित गौरीशंकर ओझा का मत है कि सुलतान ने अपने शासन के प्रारम्भिक काल में संभवत: चितौड़ पर आक्रमण किया था। सुलतान और चित्तौड़ नरेश हम्मीर के बीच युद्ध हुआ था जैसा कि राजपूत गाथाओं में वर्णित है। इसमें हम्मीर की विजय हुई। दोनों में संधि हो गई जिसके अनुसार सुलतान ने राणा को पच्चीण लाख टंक, सौ हाथी और अजमेर, रणथंभोर, नागौर, व सुइसपुर के क्षेत्र दिये। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद और आगा मेंहदीहुसैन इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका तर्क है कि किसी भी मुस्लिम ऐतिहासिक ग्रन्थ में सुलतान और राणा हम्मीर के युद्ध व संधि का वर्णन नहीं है। बर्नी, यहा-बिन-अहमद, फरिश्ता, इब्नबतूता, आदि किसी भी मुस्लिम इतिहासकार ने इसका वर्णन नहीं किया है। आगा मेंहदीहुसेन ने तो यहाँ तक लिखा है कि सुलतान मुहम्मद ने हिन्दुओं के प्रति उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनायी। इसलिये उसने हिन्दू राजाओं पर आक्रमण नहीं किये। यह बात भावना-पूर्ण और तर्क विहीन है। सुलतान ने नगरकोट, हिमाचल तथा अनागोंडी के हिन्दू-नरेशों पर आक्रमण किये और उन्हें जीतने में वह किंचित भी नहीं हिचका।

यह बहुत संभव है कि प्रथम, शक्तिशाली राजपूत नरेश हम्मीर से परास्त होने पर सुलतान ने अन्य राज्यों पर आक्रमण करना और अपने अभियान और यश को खतरे में डालना उचित नहीं समझा। द्वितीय, वह अपने साम्राज्य में व्याप्त विद्रोहों का दमन करने में इतना अधिक व्यस्त रहा कि उसे राजपूत राज्यों पर विजय-अभियान ले जाने का अवसर ही नहीं मिला। तृतीय, वह यह समझ चुका था कि उसके पूर्ववर्ती सुलतान राजपूत नरेशों को रणक्षेत्र में परास्त तो कर सके, परन्तु उनके राज्यों को स्थायी रूप से दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित नहीं कर सके। राजस्थान में उनकी विजय क्षणिक और अस्थायी थी, वे असफल रहे। इसलिये सुलतान ने राजपूतों की वीरता, युद्धप्रियता और संगठन शक्ति से भयभीत होकर राजस्थान में अभियान ले जाने से हाथ खींच लिया।

(ii) **खुरासान विजय**—खुरासान फारस या ईरान साम्राज्य का एक प्राचीन महत्वशाली प्रदेश रहा है। दिल्ली सुलतानों के वंश के अनेक व्यक्ति, अमीर और अधिकारी इस क्षेत्र से आये थे। इसलिये इस क्षेत्र के प्रति सुलतान की विशेष अभिरुचि थी। इस समय खुरासान का शासक अल्पवयस्क, अनुभवहीन इब्नसईद था। उसके दुराचार से खुरासान राज्य में अराजकता और अस्तव्यस्तता थी तथा विघटनकारी प्रवृत्तियां बलवती थीं। इस समय खुरासान के कुछ अमीर, सरदार और अधिकारी भारत भाग आये थे और सुलतान मुहम्मद ने उन्हें अपनी राजसभा में संरक्षण दिया था। वे सुलतान को खुरासान की दयनीय दशा बतलाकर उसे विजय करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे थे। इसी बीच इब्नसईद के शत्रु मिस्र के शासक और सुलतान मुहम्मद में मैत्री सम्बन्ध हो गये और उसने सुलतान को खुरासान आक्रमण के समय सहयोग देने का वचन दिया। सुलताम सुन्नी था और खुरासान का शासन शिया था। मंगोल शासक तरमशीरीं भी खुरासान पर आक्रमण करना चाहता था। इस प्रकार खुराशानी अमीरों के स्वार्थपूर्ण प्रोत्साहन से, मिश्र के शासक

के सहयोग के वचन से, सुन्नी धर्म की रक्षा करने की भावना से, तथा मंगोल नेता तरमशीरीं के आग्रह से प्रेरित होकर सुलतान ने खुरासान विजय की एक योजना बनायी। उसने तीन लाख सैंतीस सहस्र सैनिकों की एक विशाल सेना संगठित की और सैनिकों को एक वर्ष का अग्रिम वेतन भी दे दिया। सैन्य-संगठन और विजय अभियान की तैयारी में अधिक समय लग गया। इसी अवधि में खुरासान की स्थिति सुधर गयी। ईब्नसईद और मिश्र के शासक में मित्रता हो गयी। मंगोल नेता तरमशीरीं परास्त हो गया। फलतः सुलतान ने खुरासान विजय की योजना त्याग दी और भारत पर ही अपना ध्यान केन्द्रीभूत किया। इस व्ययशील असंभव योजना का त्यागना सुलतान की विवेकशीलता और दूरदर्शिता का द्योतक है। वह उससे लाभान्वित ही हुआ।

खुरासान विजय की योजना में सुलतान को सैन्य-संगठन, अभियान-तैयारी और खुरासानी अमीरों पर बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ा। इससे राज का मूल आधार राजकोष रिक्त हो गया। इस योजना और सुलतान की नीति की कुछ विद्वानों ने कटु आलोचना की है और इस योजना की असफलता पर सुलतान को विवेकहीन और विक्षिप्त कहा है तथा इस योजना को उसकी मूर्खता व सनकीपन की उपज माना है। आलोचकों की दृष्टि में यह योजना मूर्खतापूर्ण थी तथा इतने दूरस्थ प्रदेशों पर यातायात के समुचित साधनों व धन के अभाव में विजय प्राप्त करना अत्यंत दुष्कर और मूर्खतापूर्ण कार्य था। पर यह उचित नहीं है। सुलतान यह जानता था कि खुरासान जैसे दूरस्थ प्रदेशों में सेना ले जाना और लाना, उसके लिये युद्ध व खाद्य सामग्री की व्यवस्था करना, अभियान के समय हिन्दुकुश पर्वत को पार करना, तथा विदेशों में युद्ध करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर था और खतरे से खाली नहीं था। इसी बीच उसे अपने राज्य में विद्रोहों का दमन कर शांति व्यवस्था भी स्थापित करना थी। ऐसी दशा में राज्य से बाहर जाना भी खतरनाक और अवांछनीय था। मिश्र के शासक ने भी ईब्नसईद से मैत्री कर सुलतान से विश्वासघात किया था और अब उससे किसी भी प्रकार की सहायता व सहयोग की आशा नहीं थी। मंगोल नेता तरमशीरीं भी अपदस्थ व शक्तिहीन हो गया था। इन परिस्थितियों का विश्लेषण कर अपने हित के लिये सुलतान ने खुरासान विजय की योजना स्वयं त्याग दी। इस प्रकार उसकी नीति और निर्णय तर्कहीन और विवेकहीन नहीं थे। मुहम्मद के पूर्व भी अलाउद्दीन खिलजी के समान महत्वाकांक्षी सुलतानों ने भी इस प्रकार की योजनाएँ बनायी थीं। यह निर्विवाद है कि खुरासान पर विजय अभियान ले जाने की योजना जिन परिस्थितियों में बनायी गयी थीं, वे सर्वथा उपयुक्त थीं।

(iii) **हिमाचल प्रदेश के राज्यों पर विजय-अभियान**—सन् १३३७ में सुलतान ने हिमाचल प्रदेश में स्थिति पर्वतीय राज्यों को विजय करने की योजना बनायी। ये पर्वतीय राज्य चीन के निकट सीमा पर थे। ये राज्य चीन के अधीन न हो जायँ और वे चीन के प्रभाव में न आ जायँ, इसलिये उसने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया। भारत तथा चीन की सीमा के क्षेत्र को विजय करके सुलतान अपनी उत्तरी

सीमा को सुरक्षित बनाना चाहता था । इसलिये उसने निम्नलिखित राज्यों पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की:—

(अ) नगरकोट विजय – नगरकोट का हिन्दू राज्य पंजाब के कांगड़ा जिले में था। यहाँ का अभेद्य दुर्ग प्रसिद्ध था। सुलतान ने एक लाख सैनिकों सहित नगरकोट पर आक्रमण कर दिया, राजा को परास्त कर नगरकोट पर अपना अधिकार कर लिया। राजा द्वारा सुलतान की अधीनता स्वीकार कर लेने पर सुलतान दिल्ली लौट आया। अब नगरकोट का राज्य दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया गया।

(ब) कराचिल या कराजिल की विजय—यह राज्य आधुनिक कुमायूं गढ़वाल के पर्वतीय क्षेत्रों में था और यहां का राजा हिन्दू था। इस राज्य पर आक्रमण करने के निम्नलिखित कारण बताये गये हैं—

कराजिल राज्य और उसके पार्श्ववर्ती अन्य पर्वतीय राज्य भारत और चीन की सीमा पर थे। चीन जाने और उसे जीतने के लिये इन सीमा के पर्वतीन राज्यों को जीतना और मार्ग सुलभ करना आवश्यक था। इसलिये उसने कराजिल राज्य पर आक्रमण किया, पर यह मत मान्य नहीं है, क्योंकि इस कारण का अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने उल्लेख नहीं किया।

सर वुल्जे हेग का मत है कि सुलतान ने पश्चिमी तिब्बत को अपने अधीन करने के लिये कराजिल पर आक्रमण किया। पर किसी भी मुस्लिम इतिहासकार ने इस मत का समर्थन नहीं किया।

हाजी उद्दबीर की धारणा है कि कराजिल की स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य-सौष्ठव और रूप-लावण्य के लिये प्रख्यात थीं और सुलतान मुहम्मद उन्हें अपने अन्तःपुर में लाने का उत्सुक था। इसलिये उसने इन स्त्रियों को प्राप्त करने के लिये आक्रमण किया। यह मत निराधार और हास्यास्पद है। मुहम्मद जैसा चरित्रवान सुलतान ऐसा नहीं करेगा।

सुलतान का आक्रमण करने का उद्देश्य साम्राज्य विस्तार की भावना थी। सुलतान में कराजिल के हिन्दू नरेश को तुर्की झंडे के नीचे लाने की और हिमाचल प्रदेश जीतने की महत्वाकांक्षा थी। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में सुलतान के विरोधी अमीर भी थे जिन्होंने विद्रोह कर दिया था। इनके दमन के लिये उसने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया।

सुलतान ने खुसरो मलिक के सेनापतित्व में एक लाख अश्वारोहियों और पदातियों की एक विशाल सेना भेजी। पर्वतीय मार्गों की कठिनाइयों से, खाद्य-सामग्री के अभाव मे तथा वर्षा-ऋतु के कारण सेना को अत्यधिक कठिनाइयां हुईं। पर्वतीय जलवायु के प्रकोप से भी वे दुर्बल व क्षीण हो गये और सेना के अनेक अश्व मारे गये। भीषण वर्षा और अन्य प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण शाही सेना को युद्ध सामग्री व भोज्य सामग्री केन्द्रीय स्थल से प्राप्त न हो सकी। यद्यपि आक्रमण में प्रारम्भ में सेना को सफलता मिली, परन्तु उपरोक्त कठिनाइयों का लाभ उठाकर कराजिल के हिन्दू राजा ने शाही सेना पर आक्रमण कर उसको बड़ी क्षति पहुँचायी। अनेक

सैनिकों की हत्या कर दी गयी। सेना के अनेक अस्त्र-शस्त्र और धन हिन्दू राजा और पर्वत निवासियों के हाथ लगा। इन विपत्तियों के कारण समस्त शाही सेना नष्ट हो गयी और केवल दस सैनिक इस भयंकर दुर्घटना और असफलता का समाचार देने के लिये दिल्ली तक पहुँच सके। कहा जाता है कि सुलतान ने रुष्ट होकर उन्हें भी मरवा दिया पर, अन्त में यह आक्रमण सफल रहा। कराजिल के हिन्दू नरेश ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर लीं, क्योंकि उसने यह अनुभव कर लिया था कि दिल्ली सम्राट से शत्रुता और वैमनस्य रख कर शासन करना असम्भव था।

कुछ विद्वानों ने कराजिल अभियान की आलोचना की है, क्योंकि इसमें विशाल सेना नष्ट हो गयी, शेष सेना में अव्यवस्था फैल गयी, राजकोष अधिक रिक्त हो गया, सेना में तीव्र असन्तोष व्याप्त हो गया और साम्राज्य को भारी क्षति पहुँची और आक्रमण भी असफल रहा। इसके कारण भी सुलतान को मूर्ख, पागल व सनकी कहा गया है। पर इस प्रकार की आलोचना उचित नहीं प्रतीत होती है। इस योजना में न तो कोई मूर्खता की बात थी और न कोई पागलपन ही। यह तो केवल संयोग और दुर्भाग्य की बात थी कि पर्वतीय मार्गों की समस्याओं, प्राकृतिक प्रकोप और अतिवृष्टि के कारण सुलतान को पूर्ण सफलता नहीं मिली। बीहड़ निर्जन और बर्फीले मार्गों में यातायात के साधनों के अभाव में, सेना ले जाना और पर्वतीय क्षेत्र को विजय करना आज भी दुष्कर कार्य है। ऐसे पर्वतीय अभियान में धन, जन और समय की हानि स्वाभाविक है। परन्तु इस अभियान के परिणाम, पर्वतीय राजा द्वारा सुलतान की अधीनता स्वीवार कर लेना इन दोनों तथ्यों को देखते हुए यह अभियान सफल कहा जाता है।

(iv) **क्या सुलतान ने चीन विजय की योजना बनाई थी?**—सुलतान द्वारा कराजिल के आक्रमण को कतिपय विद्वानों ने उसकी चीन विजय की योजना बतलाया है। इसका आधार फरिश्ता का कथन है। फरिश्ता ने लिखा है कि सुलतान ने सेनापति खुसरो मलिक को यह "आदेश दिया कि हिमालय प्रदेश जीत कर वह चीन की सीमा पर पहुँचने का प्रयास करे। वहाँ एक सुदृढ़ तथा विशाल किले का निर्माण कराये ...धीरे-धीरे आगे बढ़ कर चीन पर अधिकार जमाने का प्रयास करे।" इससे प्रतीत होता है कि सुलतान ने चीन विजय करना चाहा था और इस कार्य को सुगम बनाने के लिये कराजिल के राज्य पर आक्रमण किया। वह राज्य भारत व चीन के मध्य में था। चीन की ओर आगे बढ़ने और उसे जीतने के लिये इस राज्य को परास्त कर अपने अधीन करना सुलतान के लिये आवश्यक था।

बर्नी और इब्नबतूता ने अपने ग्रंथों में उपरोक्त मत की कहीं भी पुष्टि नहीं की है। बर्नी और इब्नबतूता का मौन इस बात का द्योतक है कि सुलतान ने चीन विजय की भावना से कराजिल पर आक्रमण नहीं किया। बर्नी ने लिखा है, "सुलतान का विचार हिन्द तथा चीन के मध्यवर्ती सीमा के बीच कराचिल अथवा कराजिल नामक पहाड़ी प्रदेश को विजय करना था।" इब्नबतूता ने स्पष्ट लिखा है कि "यह अभियान कराजिल पर्वत पर किया गया, जो दिल्ली से दस पड़ावों की दूरी पर है।" फरिश्ता कराजिल पर्वतीय क्षेत्र और उसके आगे चीन राज्य के क्षेत्र के भेद को समझ

नहीं सका और उसने भ्रमवश कराजिल अभियान को चीन विजय का अभियान समझ लिया।

इसके अतिरिक्त सुलतान ने इस समय खुरासान विजय योजना भी त्याग दी थी, राज्य में प्रबल विद्रोह हो रहे थे, वह अपना ध्यान और शक्ति उनके दमन और आंतरिक शान्ति-व्यवस्था में केन्द्रीभूत करना चाहता था। इस समय अधिक व्यय और महँगे प्रशासकीय प्रयोगों के कारण राजकोष भी रिक्त हो गया था। ऐसी सकटकालीन दशा में सुलतान मुहम्मद तुगलक जैसा विवेकशील और दूरदर्शी सुलतान चीन जैसे दूर और शक्तिशाली देश पर आक्रमण करने की योजना नहीं बनावेगा।

(v) **दक्षिण भारत के प्रदेशों की विजय**—साम्राज्य विस्तार की भावना से प्रेरित होकर सुलतान मुहम्मद ने दक्षिण भारत के द्वारसमुद्र, माबर तथा अनागोंडी राज्यों पर विजय अभियान किये। इनमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई और दक्षिण का पूरा पश्चिमी तट उसके साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। परन्तु ये विजय अल्पकालीन रहीं और शीघ्र ही इन क्षेत्रों में सुलतान के विरुद्ध विद्रोह हुए और अन्त में ये क्षेत्र स्वतन्त्र हो गये।

मुहम्मद तुगलक के शासन-काल के विद्रोह और उनका दमन

विद्रोह व अराजकता का काल—सन् १३३५ से १३५१ की अवधि विद्रोहों का युग था। मुहम्मद तुगलक के इन सोलह वर्षों के शासन में उत्तर से दक्षिण तक अनेक विद्रोह हुए, इससे अराजकता खूब फैल गयी। इनके दमन करने में तथा शांति व्यवस्था स्थापित करने में वह अत्यधिक व्यस्त रहा। पर उसे विशेष सफलता नहीं मिली। उसके लिये यह भी कठिन था कि वह २६ वर्ष के शासन-काल में २२ से भी अधिक विद्रोहों का सामना करे। फलतः सुलतान के शासन काल के अन्तिम चरण तक अनेक प्रदेश उसके साम्राज्य से पृथक होकर स्वतन्त्र हो गये थे।

विद्रोहों के कारण—इन विद्रोहों के प्रमुख कारण अधोलिखित हैं :—

(१) **नवीन क्रांतिकारी योजनाएँ**--सुलतान की तीव्र परिवर्तनकारी योजनाओं से लोगों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा और इससे लोगों में घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया। दोआब में भूमिकर की वृद्धि व सुधारों से कृषि को गहरा आघात लगा और कृषकों की रीढ़ टूट गयी। राजधानी परिवर्तन से दिल्ली निवासी अधिक रुष्ट हो गये; मुद्रा नीति से आर्थिक समस्याएँ बढ़ गयीं; प्रशासन में सुलतान की धर्म निरपेक्ष नीति से धर्मान्ध मुसलमान सुलतान के कट्टर शत्रु हो गये। विजय अभियानों से आर्थिक दुर्व्यवस्था आ गयी तथा सेना अव्यवस्थित हो गयी और सैनिक असन्तुष्ट हो गये। उसकी कठोर न्याय व्यवस्था से हिन्दू चिढ़ गये थे। ज्यों-ज्यों दण्ड विधान और व्यवस्था में निर्ममता आती गयी, विद्रोह ज्वालामुखी की भाँति फटने लगे। इन कारणों से जनता सुलतान से असन्तुष्ट हो गयी थी। वह उसके प्रति उदासीन हो गयी थी और सुलतान उससे घृणा करने लगा था। इससे विद्रोह की भावनाएँ प्रज्वलित हुईं।

(२) **प्राकृतिक प्रकोप**—दीर्घकालीन अकाल, अनावृष्टि और प्राकृतिक प्रकोपों से जनता में सुलतान के प्रति घोर निराशा उत्पन्न हो गयी। प्रजा में राजभक्ति की भावना लुप्त हो गयी और विद्रोह की भावना दृढ़ हो गयी।

(३) **विशाल साम्राज्य**—सुलतान मुहम्मद तुगलक का साम्राज्य उत्तर और दक्षिण भारत में इतनी दूर तक फैला हुआ था कि उसके सभी प्रांतों पर दिल्ली राजधानी से सफलतापूर्वक शासन संचालन करना असम्भव था। यातायात के साधनों के अभाव में दूरस्थ प्रांत पूर्णतया नियन्त्रित नहीं किये जा सकते थे।

(४) **सैनिक असन्तोष**—सुलतान ने अपनी सेना में विजय अभियानों के लिये बहुसंख्यक अश्वारोही और पदाति भरती कर लिये थे। परन्तु राजकोष की रिक्तता के कारण न तो सेना के वेतन का नियमित रूप से भुगतान ही हो पाता था और न सेना के लिये युद्ध सामग्री और खाद्य सामग्री की समुचित व्यवस्था ही हो पाती थी। इससे सैनिकों में तीव्र असन्तोष घर करने लगा।

(५) **विदेशी अमीरों और पदाधिकारियों की स्वार्थपरता और धनलोलुपता**—सुलतान ने अनेकों विदेशी अमीरों और सरदारों को अपनी राजसभा में संरक्षण दिया था तथा उन्हें ऊँचे पदों पर भी नियुक्त किया था। वे अपनी स्वार्थता की स्थिति तथा धन लोलुपता की प्रवृत्ति के कारण प्रशासन में उपयोगी नहीं हुए और वे प्रशासन की समस्याओं को और जनता की आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से समझने और उनका निराकरण करने में असमर्थ रहे। सुलतान और जनता उनसे असन्तुष्ट हो गये। उनमें से कई पदच्युत कर दिये गये। इससे वे सुलतान के विरोधी बन कर विद्रोहों को प्रज्वलित और प्रसारित करने में सहायता देते रहे।

प्रमुख विद्रोह—मुहम्मद के शासन-काल में निम्नलिखित प्रमुख विद्रोह हुए। ये दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं, प्रथम वे विद्रोह जो उसके शासन के प्रारम्भिक काल में हुए, द्वितीय वे विद्रोह जो उसके शासन के अन्तिम काल में हुए।

(१) **बहराम ऐबा किशलूखां का विद्रोह** (सन् १३२८)—किशलूखां सुलतान का प्रांतपति था। उसने सुलतान की बिना आज्ञा विद्रोही बहादुरराय तथा बहाउद्दीन गुर्शस्प की खालें दफना दीं। इसके अतिरिक्त जब सुलतान ने राजधानी दिल्ली से दौलताबाद परिवर्तित की तो सुलतान ने उसे दौलताबाद में सपरिवार बसने के लिये आज्ञा दी और खताती नामक दूत भी इसके लिये भेजा। किशलूखां ने दौलताबाद जाना पसन्द नहीं किया और खताती की हत्या करवा दी तथा विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। सुलतान किशलूखां को दण्ड देने और उसकी बढ़ती हुई शक्ति का दमन करने के लिये दौलताबाद से दिल्ली होता हुआ मुलतान पहुँचा। अबूहर के रणक्षेत्र में सुलतान तथा किशलूखां की सेना में युद्ध हुआ। किशलूखां सुलतान द्वारा मारा गया और सुलतान विजयी हुआ। अन्त में वह अपने प्रधानमन्त्री ख्वाजाजहाँ को मुलतान का शासन-भार सौंप कर दिल्ली लौट गया।

(२) **गयासुद्दीन बहादुर का विद्रोह (सन् १३३०)**—सन् १३२५ में गयासुद्दीन बहादुर को मुहम्मद तुगलक ने कारावास से मुक्त कर बगाल में सुनारगाँव का शासक नियुक्त किया था। गयासुद्दीन ने सुलतान की अधीनता स्वीकार करली थी।

परन्तु शीघ्र ही उसने अपनी शक्ति खूब बढ़ा ली, सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और स्वतन्त्र शासक बन गया। इस पर सुलतान ने उसके दमन के लिये सेना भेजी। गयासुद्दीन संघर्ष में मारा गया। सुलतान ने उसकी खाल खिंचवाकर उसमें भूसा भरवाकर उसके सारे राज्य में उसे घुमाया जिससे कि लोग व शासक आतंकित हो जायें और सुलतान के विरुद्ध विद्रोह न करें।

(३) **सिन्ध में तीन विद्रोह**—सन् १३२८ में कमालपुर (सम्भवत: आधुनिक करांची) के काजी करीमुद्दीन और खतीब ने प्रथम विद्रोह भड़काया। सुलतान ने सेना द्वारा उनका दमन कर दिया, उन्हें बन्दी बनाकर उनकी खाल खिंचवाली और उनमें भूसा भरवाकर राज्य में घुमवा दी।

सुलतान ने रतन नामक एक उच्च हिन्दू अधिकारी को सिन्ध का शासक नियुक्त किया और उसे "अजीमउस्सिन्ध" की पदवी से अलंकृत किया। पर सिन्ध के मुसलमान रतन से ईर्ष्या और द्वेष करते थे। उन्होंने षडयन्त्र करके उसकी हत्या कर दी और सेहबान में सन् १३३३ में सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सुलतान ने विद्रोह दमन के लिये सेना भेजी। विद्रोही पकड़कर बन्दी बना लिये गये और उनकी खाल खिंचवाकर उसमें भूसा भरकर दुर्ग के प्रवेश द्वार पर लटका दी गई। मूरयात्री इब्नबतूता जब यहाँ आया तो उसने इन खालों को लटकते हुए देखा था और इनसे उसे भूत का भ्रम हो गया था।

सिंध में तीसरा विद्रोह लगभग दस वर्ष बाद सन् १३४२ में सिंध के हिन्दुओं ने किया। सुल्तान की शक्ति क्षीण होते देख उन्होंने लूटमार प्रारंभ कर दी और उसकी सत्ता को चुनौती दे दी। इस पर सुल्तान स्वयं इनका दमन करने के लिये सिंध गया। विद्रोही परास्त कर बिखेर दिये गये और उनके नेताओं को पकड़कर उन्हें बल तथा सत्ता के आधार पर मुसलमान बना लिया गया।

उपरोक्त सभी विद्रोह सुलतान के शासन-काल के प्रारंभिक युग मे हुए थे। उनकी संख्या भी कम थी। पर सन् १३३५ के बाद लगभग १६ वर्ष निरन्तर विद्रोह होते रहे। ये उसके शासन के दूसरे और अंतिम भाग में हुए। ये सभी विद्रोह सुलतान के लिये विनाशकारी प्रमाणित हुए। इन विद्रोहों का प्रारंभ जलालुद्दीन ऐहसानशाह के विद्रोह से हुआ।

(४) **मदुरा (माबर) के शासक जलालुद्दीन ऐहसानशाह का विद्रोह (सन् १३३५)**—दक्षिण भारत में मदुरा में सुलतान द्वारा नियुक्त जलालुद्दीन ऐहसानशाह शासक था। दोआब में दुर्भिक्ष होने से जनता ने विद्रोह कर दिया था। सुलतान उसका दमन करने में संलग्न था। उसकी व्यस्तता का लाभ उठाकर सन् १३३५ में ऐहसानशाह ने सुलतान के विरुद्ध विद्रोह का झंडा फहरा दिया। उसने अपने नाम के नवीन दीनार सिक्के प्रसारित करवाए तथा अपने को ऐहसानशाह सुलतान घोषित कर दिया। इस पर सुलतान ने अपने वजीर या प्रधान ख्वाजाजहाँ को सेना सहित विद्रोहदमनार्थ भेजा। पर सेना में षडयंत्र के कारण वह मालवा में धार नगर से ही वापिस लौट आया। अब सुलतान ने स्वयं सेना सहित दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। परन्तु वारंगल पहुँचने पर उसकी सेना में भयंकर महामारी का प्रकोप हुआ

और अनेक सैनिक हैजे के शिकार हो गये। स्वयं सुलतान भी रोगग्रस्त हो गया। विवश होकर सुलतान को विद्रोह का दमन किये बिना ही दिल्ली वापिस लौटना पड़ा और जलालुद्दीन ऐहसान ने मदुरा में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इस विद्रोह के दमन न होने से विद्रोहों की अग्नि और भी अधिक प्रज्ज्वलित होती गयी और तुगलक साम्राज्य का विघटन प्रारंभ हो गया।

(५) **दौलताबाद के शासक मलिक हुशंग का विद्रोह** (सन् १३३५)—जलालुद्दीन ऐहसान के विद्रोह की सफलता से अन्य अमीरों व प्रांतीय शासकों को विद्रोह करने की प्रेरणा मिली। इस समय सुलतान का कृपापात्र मलिक हुशंगशाह दौलताबाद में सुलतान का राज्यपाल या शासक था। जब उसे यह सूचना मिली कि वारंगल की महामारी में सुलतान का देहावसान हो गया है (यह झूठी अफवाह थी), तब उसने विद्रोह करके अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। सुलतान ने उसकी शक्ति का दमन कर दिया। पर उसके साथ उदारता का व्यवहार किया गया। उसे पदच्युत कर क्षमा कर दिया गया।

(६) **सैयद इब्राहिम का विद्रोह** (सन् १३३५)—सैयद इब्राहिम, ऐहसानशाह का पुत्र था और दिल्ली में "खरीतादार" (शाही फरमानों को भेजने वाला अधिकारी) था और बाद में हांसी का शासक नियुक्त कर दिया गया था। जब उसने वारंगल में सुलतान की मृत्यु का संदेश सुना, तब उसने विद्रोह की भावना प्रदर्शित की और दिल्ली जाते हुए शाही कोष को लूटने और अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। इससे सुलतान उससे अत्यधिक रुष्ट हो गया और इब्राहीम को राजसभा में बुलवाकर उसे बंदी बनाकर उसकी हत्या कर दी गयी। सुलतान ने इब्राहीम के दो टुकड़े करवाकर उसके पिता ऐहसानशाह के विद्रोह का बदला भी ले लिया।

(७) **लाहौर में हुलाजू और गुलचन्द्र का विद्रोह**—सुलतान की शक्ति क्षीण होते देख कर पंजाब में मंगोल नेता हुलाजू और खोखर नेता गुलचन्द्र ने लाहौर के शासक की हत्या कर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस पर सुलतान ने अपने वजीर ख्वाजाजहाँ को विद्रोह का दमन करने के लिये भेजा। उसने इसमें सफलता प्राप्त की और पंजाब का विद्रोह दबा दिया गया।

(८) **बंगाल में फखरुद्दीन मुबारकशाह का विद्रोह और उसकी स्वतन्त्रता** (सन् १३३७)—बंगाल में गयासुद्दीन बहादुर के विद्रोह और हत्या के बाद बहराम खाँ सुनारगांव का शासक नियुक्त किया गया। परन्तु सन् १३३७ में उसका अंगरक्षक फखरुद्दीन उसकी हत्या कर स्वयं सुनारगांव का शासक बन गया। सुलतान मुहम्मद की असहाय स्थिति को देखकर सन् १३३७ में फखरुद्दीन ने अपने को फखरुद्दीन मुबारकशाह के नाम से स्वतन्त्र शासक होने की घोषणा कर दी। उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और सिक्के प्रचलित कर दिये। सुलतान के अधीन लखनौती के शासक कद्रखाँ ने फखरुद्दीन को कुचलने का प्रयास किया और उस पर आक्रमण किया। युद्ध में कद्रखां मारा गया। इससे फखरुद्दीन और भी प्रोत्साहित हो गया। इस समय सुलतान अन्य विद्रोहों के दमन करने में इतना व्यस्त और चिंताग्रस्त था कि उसे दिल्ली से बहुत लंबी दूरी पार करके बंगाल जाना और विद्रोह का दमन

करना असंभव-सा दिखा फलतः बंगाल में लखनौती, सुनारगांव और सतगाँव दिल्ली से स्वतंत्र हो गये।

(९) **बीदर के प्रांतपति नसरतखां का विद्रोह (सन् १३३७)**—राजकोष की रिक्तता को दूर करने के लिये सुलतान ने नसरतखां को दक्षिण में बीदर का प्रांतपति इसलिये नियुक्त किया था कि वह बीदर से पहिले की अपेक्षा अधिक कर देगा। नसरतखां ने सुलतान को एक करोड़ टंके प्रतिवर्ष कर देने का वचन दिया था। पर जब वह देने में असमर्थ रहा तो उसने अपनी सुरक्षा के लिये सन् १३३७ में विद्रोह कर दिया। पर वह शीघ्र ही बंदी बना लिया गया और दिल्ली में दंडित किया गया। इस प्रकार नसरतखां का विद्रोह असफल रहा।

(१०) **कड़ा के शासक निजामभाई का विद्रोह**—कड़ा के प्रांतपति निज म ने भी बढ़े हुए कर देने में असमर्थ होने पर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। पर अवध के शासक ऐनुलमुल्क ने सुलतान की ओर से इस विद्रोह को कुचल दिया। निजाम को बंदी बना लिया गया और इसकी खाल खिचवाकर सुलतान को दिल्ली भेज दी।

(११) **ऐनुल्मुल्क का विद्रोह** (सन् १३४०-४१)—ऐनुलमुल्क अवध तथा जफराबाद (जौनपुर के समीप) का प्रांतपति था। वह अत्यन्त विश्वासपात्र और स्वामिभक्त शासक था। उसने दोआब में दुर्भिक्षके समय सुलतान के पास ७०-८० लाख तनकों की कीमत का खाद्यान्न अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये भेजा था। कड़ा के विद्रोह का दमन करके उसने सुलतान की सहायता की थी। इसलिये सुलतान ने दक्षिण में कुतलुगखां के विद्रोह करने पर उसे पदच्युत करके ऐनुलमुल्क को दक्षिण का शासक नियुक्त किया। पर ऐनुलमुल्क को यह भ्रम हो गया कि सुलतान उसकी बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव कुचलनेके लिये उसे अवध से दक्षिण भारत भेज रहा है। इसलिये ऐनुलमुल्क ने असन्तुष्ट होकर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सुलतान ने उसके विद्रोह के दमनार्थ स्वयं सेना लेकर प्रस्थान किया। युद्ध में ऐनुलमुल्क परास्त हुआ और बन्दी बना कर दयनीय दशा में सुलतान के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। पर सुलतान ने उसका पर्याप्त अपमान कर, उसकी पहिले की सेवाओं को ध्यान में रख कर मुक्त कर दिया और पदच्युत कर राजकीय उद्यानों का रक्षक नियुक्त किया।

(१२) **मलिकशाह लोदी का विद्रोह**—मुलतान के शासक मलिकशाह लोदी ने भी सुलतान के कष्टों और साम्राज्य में व्याप्त अराजकता से लाभ उठा कर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इस पर स्वयं सुलतान ने सेनासहित मुलतान की ओर प्रस्थान किया। इससे घबड़ाकर मलिकशाह ने सुलतान से लिखित रूप में क्षमा याचना की। फलतः सुलतान ने उसे क्षमा कर दिया और आगे बढ़ने की अपेक्षा वह दिपालपुर से दिल्ली लौट आया।

दक्षिण भारत के विद्रोह

सुलतान के विरुद्ध उत्तरी भारत में फैले विद्रोहों की आग दक्षिण भारत तक पहुँच गयी और उसने तुगलग साम्राज्य को भस्मीभूत कर दिया। यद्यपि सुलतान ने उत्तरी भारत के विद्रोहों को कुचल दिया था, और विद्रोही नेता स्वतंत्र शासक नहीं

हो सके, पर दक्षिण भारत के विद्रोहों का दमन सुलतान नहीं कर सका और वहां के विद्रोही शासक और नेता दिल्ली से पृथक होकर स्वतंत्र हो गये। इससे तुगलक साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस प्रकार दक्षिण में मदुरा, वारंगल, द्वारसमुद्र दिल्ली सल्तनत से पृथक होकर स्वतंत्र राज्य हो गये। विजयनगर राज्य की स्थापना हुई और बहमनी राज्य ने स्वतंत्र सत्ता का रूप धारण कर लिया।

दक्षिण में हिन्दू राजाओं का संगठन और वारंगल का विद्रोह (सन् १३४४)—दक्षिण में वारंगल के नरेश प्रताप रुद्रदेव के पुत्र कृष्णनायक ने हिन्दू राजवशों को पुनरुज्जीवित करने के लिये और इस्लामी सत्ता का दक्षिण में उन्मूलन करने के लिये हिन्दू राजाओं का एक दृढ़ संगठन निर्माण किया। इसमें तेलंगाना के शासक (विजयनगर के संस्थापक) हरिहर, द्वारसमुद्र के होयसल राजा वीर बल्लाल तृतीय और कोंड हिन्दू के राजा प्रलयवेग सम्मिलित थे। सुलतान के विरुद्ध हिन्दुओं का यह संयुक्त मोर्चा था। फलत: काकातीय नरेश कृष्णनायक ने सन् १३४४ में विद्रोह कर अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। वीर बल्लाल तृतीय (सन् १२९२—१३४२) ने मदुरा के सुलतानों से संघर्ष करके उसके राज्य का विस्तृत क्षेत्र छीन कर अपने अधिकार में कर लिया था।

विजय नगर राज्य की स्थापना (सन् १३३६)—सुलतान मुहम्मद ने मलिक मक्बूल नामक शासक को तेलंगाना में हिन्दुओं के विद्रोह के कारण पृथक कर वहां हरिहर को शासक नियुक्त किया। करद शासक की भाति वह तेलंगाना में राज्य करता रहा। पर दक्षिण में उसने हिन्दू धर्म और हिन्दू राज्य को पुनरुज्जीवित करने की प्रेरणा से सन् १३३६ में विजयनगर की स्थापना की। सुलतान के शक्तिहीन होने पर हरिहर ने कोंकण और मलाबार का कुछ क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया और सुलतान की मृत्यु के बाद वह स्वतंत्र शासक बन गया। सन १३४६ में होयसल राज्य के पतन के बाद विजयनगर राज्य और भी दृढ़ और विस्तृत हो गया।

होयसल नरेश वीर बल्लाल का दमन (१३४२)—दक्षिण भारतमें द्वारसमुद्र के होयसल नरेश वीर बल्लाल तृतीय ने तुगलक सत्ता के नाश के लिये कई प्रयत्न किये थे। उसने मदुरा के मुस्लिम शासकों से बहुत-सा क्षेत्र छीन लिया था। सुलतान मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध दक्षिण में हुए विद्रोहों को उसने प्रेरणा और सहायता दी। फलत: सुलतान ने उसके दमन का प्रयत्न किया। संघर्ष में वह बन्दी बना लिया गया और सन् १३४२ में सुलतान ने उसकी खाल खिचवाकर उसका अन्त कर दिया। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि दक्षिण में कृष्णनायक, हरिहर और उसके भाई बुक्का, वीर बल्लाल तृतीय और विरुपाक्ष बल्लाल के संगठित प्रयासों से दक्षिण भारत में दिल्ली सल्तनत का राज्य और प्रभाव छिन्न-भिन्न हो गया।

दक्षिण भारत में शताधिकारियों के विद्रोह और दमन—दक्षिण भारत में अनेक विदेशी मुसलमान आ गये थे और सुलतान ने उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया था। इन मुसलमानों में मंगोल, अफगान, तुर्क आदि थे। ये विदेशी मुसलमान "अमीरान-ए- सादा" कहे जाते थे। ये पद और धन संग्रह की इच्छा से भारत आये थे और दिल्ली सल्तनत में राज्याश्रय पाने के कारण भारत में ही बस गये थे। प्रत्येक

"अमीरन-ए-सादा" के अधीन सौ सैनिक रहते थे। इसलिए उन्हें 'शताधिकारी" भी कहा जाता है। "शताधिकारी" पद का प्रारंभ खिजली सुलतानों के समय से हुआ। जो मगोल भारत में बस गये थे, उनके नेताओं को सुलतान ने सौ-सौ गांवों की इकाई में कर वसूल करने और वहाँ शांति व्यवस्था स्थापित करने के लिये नियुक्त किये थे। सुलतान मुहम्मद तुगलक के समय में ये शताधिकारी गुजरात, मालवा, दौलताबाद, बिहार, आदि दक्षिण भारत के राज्यों में नियुक्त थे। वे स्वार्थलोलुप और धनलोलुप होने से कर वसूली में सरकारी रुपये का गबन करते, प्रशासन में भ्रष्टाचार करते, राजकोष में जाते-आते धन को छीनने का प्रयास करते, सल्तनत के शासकों और प्रांतपतियों के विरुद्ध विद्रोह करते, क्योंकि विदेशी होने से उनमें सुलतान के प्रति किसी प्रकार की श्रद्धा एवं निष्ठा की भावना नहीं थी। सुलतान ने इन शताधिकारियों के विद्रोहों और उद्दंडता को रोकने के लिये दक्षिण भारत में खूब प्रयास किये। इन शताधिकारियों के प्रमुख विद्रोहों का वर्णन निम्नलिखित है:—

(i) **मालवा में शताधिकारियों का विद्रोह एवं दमन**—मालवा में शताधिकारियों ने उद्दंडता प्रदर्शित की और राज कर देना बन्द कर दिया। उन्हें कुचलने के लिये सुलतान ने अजीज खुम्मार को नियुक्त किया। उसे यह आदेश भी दिया गया कि वह उनसे राजकर भी वसूल करे। अजीज खुम्मार ने आतंकवादी नीति अपनायी और ८९ शताधिकारियों को बुलाकर, उन्हें डांटा डपटा और रात्रि में भोजन व मद्य पान के बाद उनकी हत्या करवादी। उसकी इस अमानुषिक निर्ममता से शताधिकारी वर्गने चिढ़कर विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। अब उन्होंने लूट-पाट प्रारम्भ की और जन-साधारण को भी वे राजकीय कर न देने के लिये प्रोत्साहित करने लगे। उनके विद्रोह और लूट पाट से जनता से प्राप्त राज-कर को दिल्ली पहुँचाना दुष्कर कार्य हो गया। इसलिए सुलतान ने इस प्रकार से एकत्रित कर को धारागढ़ में संग्रह करने का आदेश दिया।

(ii) **देवगिरी में विद्रोह**—सुलतान ने अपने गुरु कुतलुग खां को देवगिरी का शासक नियुक्त किया था। उसकी उदारता, विद्वत्ता और सहिष्णुता का लाभ उठाकर देवगिरी राज्य के पदाधिकारियों, कर्मचारियों और शताधिकारियों ने धनलोलुपता से राज कर ठीक रूप से जमा नहीं करवाया। इससे शासन में भ्रष्टाचार और गबन फैल गया और राजकोष रिक्त हो गया। फलतः सुलतान ने कुतलुगखां के भाई आलिम-उल-मुल्क निजामुद्दीन को देवगिरी का शासक नियुक्त किया। पर निजामुद्दीन दृढ़ और कठोर शासक नहीं था। इस समय सुलतान ने जो गुजरात में विद्रोह का दमन कर रहा था, दक्षिण के रायचूर, बीदर, मुन्दल, गुलबर्गा देवगिरी आदिके शताधिकारियों और अमीरों को अपनी सहायता के लिये सेना सहित गुजरात बुलाया। इसी बीच यह अफवाह फैल गयी कि मालवा के समान इन शताधिकारियों को भी गुजरात बुला कर सुल्तान उनकी हत्या करना चाहता है। इसलिये उन्होने देवगिरी में एकत्रित होकर विद्रोह कर दिया, देवगिरी के शासक निजामुद्दीन को बन्दी बनाकर दुर्ग को अपने अधिकार में करके राजकोष को लूट लिया तथा देवगिरी और महाराष्ट्र के क्षेत्र को स्वतंत्र शासन के लिये परस्पर बांट लिया। जब सुलतान को इन घटनाओं की सूचना गुजतात

में मिली, तब वह वहां से सेना सहित देवगिरी आ गया और दुर्ग को घेर लिया। तीन माह के घेरे और संगर्ष के बाद उसने दुर्ग व नगर पर अपना अधिकार कर लिया। इसी बीच उसे गुजरात के विद्रोह की भयंकरता का संदेश मिला और वह देवगिरी से गुजरात चला गया। उसके पीठ मोड़ते ही विद्रोहियों और शताधिकारियों के नेता हसनकांगू ने देवगिरी को पुनः अपने अधिकार में कर लिया। अब देवगिरी दिल्ली साम्राज्य से पृथक-सा हो गया।

(iii) **गुजरात का विद्रोह**—गुजरात में अफगान, तुर्क और राजपूत शताधिकारियों और हिन्दू शासकों ने सम्मिलित होकर सुलतान के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा खड़ा किया और विद्रोह किया। इस समय गुजरात का शासक मलिक मकबूल था। जब वह राजकोष लेकर दिल्ली जा रहा था तो शताधिकारी विद्रोहियों ने उस पर आक्रमण कर दिया और राजकोष लूट लिया तथा शाही घोड़े छीन लिये। इस लूटे हुए धन से विद्रोहियों ने सेना का संगठन किया। इस पर सुलतान गुजरात पहुँचा। इसी बीच मलिक मकबूल ने विद्रोहियों के एक दल को परास्त कर, उन्हें बन्दी बनाकर सुलतान की आज्ञा से उन सब का वध करवा दिया। इसके बाद ही सुलतान को देवगिरी के विद्रोह को कुचलने के लिये गुजरात छोड़कर देवगिरी जाना पड़ा। उसकी अनुपस्थिति मे तगी नामक एक मोची ने हिन्दू मुस्लिम विद्रोहियों को अपनी ओर मिला करके अपनी सैन्यशक्ति से नेहरवाला, खंभात, भड़ौंच, आदि अन्य कई स्थानों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। तगी को कुचलने के लिये सुलतान देवगिरी से पुनः गुजरात आया और बड़ी वीरता व साहस से उसने तगी को परास्त कर गुजरात से खदेड़ दिया। तगी प्राणरक्षा के लिये गुजरात से सिंध भाग गया और थट्टा में आश्रय प्राप्त किया। सुलतान उसको दमन करने और दंड देने के लिये सेना सहित थट्टा की ओर बढ़ा। परन्तु मार्ग में ज्वर से पीड़ित होने के कारण २० मार्च सन् १३५१ को थट्टा के निकट गोंडाल में उसका देहावसान हो गया।

सुलतान मुहम्मद की दक्षिण नीति की समीक्षा

सुलतान विवेकशील और दूरदर्शी शासक था। उसका साम्राज्य उत्तर और दक्षिण भारत दोनों में विस्तृत था। यह साम्राज्य पश्चिम दिशा में पंजाब और लाहौर से लेकर पूर्व में लखनौती और सोनारगांव तक फैला था। उत्तर में गंगा नदी की घाटी से दक्षिण में मद्रास राज्य के पूर्वी समुद्रतट और तेलंगाना तक विस्तृत या। ऐसे विशाल साम्राज्य में सुव्यवस्थित प्रशासन और समुचित नियंत्रण के लिये उसने अपनी राजधानी उत्तर में दिल्ली से दक्षिण में देवगिरी स्थानान्तरित की। पर अनेक कारणों व समस्याओं से उसे पुनः राजधानी देवगिरी से दिल्ली ले जाना पड़ी। इसमें उसकी योजना व नीति दोषपूर्ण व तर्कहीन नहीं थी, अपितु उसे कार्यान्वित करने का ढंग दूषित था, अनुपयुक्त था। इससे उसकी राजधानी स्थानान्तरण की योजना विफल हुई।

देवगिरी राजधानी नहीं होने से सुलतान को अनेक दुष्परिणाम भोगना पड़े। दक्षिण भारत में देवगिरी, माबर, वारंगल, आदिके शासकों तथा करद हिन्दू नरेशों पर

वह पूर्णरूपेण नियंत्रण रखने मे असमर्थ रहा। इससे दक्षिण की समस्याएं अधिकाधिक जटिल हो गयीं। वहां के हिन्दू शासकों, सामन्तों और शताधिकारियों (अमीरान-ए-सादा) ने इन समस्याओं को अधिक विकराल रूप धारण करने में सहयोग दिया।

दक्षिण भारत के प्रदेशों में नियुक्त शताधिकारियों ने सुलतान की नीति से अधिक रुष्ट होकर संगठित रूप से विद्रोह कर दिये और देवगिरी इन विद्रोहियो का गढ़ बन गया। फलतः सुलतान जल्दी-जल्दी देवगिरी में अपने प्रतिनिधि शासक को परिवर्तित करता रहा और उसकी सहायता के लिये अन्य चार प्रादेशिक पदाधिकारी भी नियुक्त किये। पर शासकों के शीघ्र परिवर्तन से देवगिरी व दक्षिण में असन्तोष व्याप्त हो गया। राजस्व में गहरी कमी आ गयी और राजकर्मचारी व अधिकारी प्रजा से बल-पूर्वक धन लेने व भ्रष्टाचार करने लगे। प्रशासन शिथिल और अव्यवस्थित हो गया और इसका लाभ उठा कर अनेक विद्रोह बल पकड़ते गये और सुलतान उन्हें कुचलने में असमर्थ रहा। फलतः दक्षिण के प्रदेश दिल्ली से स्वतंत्र हो गये।

दक्षिण में अधिकांश नरेश और सामन्त हिन्दू थे। वे दक्षिण में मुस्लिम शासकों, व उलमाओं की धर्मसापेक्ष नीति व कठोर दंड व्यवस्था से ऊब गये थे। साथ ही अपनी विलुप्त स्वतंत्रता व खोये राज्यको पुनः प्राप्त करनेके लिये वे उत्सुक और प्रयत्न-शील थे। वे दक्षिण भारत में से मुस्लिम सत्ता को अस्वीकार कर उसका मूलोच्छेदन करना चाहते थे। इसके लिये कृष्ण नायक, वीर वल्लाल, वीरुपाक्ष बल्लाल, प्रलयवेग, हरिहर, बुक्का, आदि नरेशों व शासकों ने हिन्दू राज्यों को संगठित कर संघ-सा बनाया। सुलतान इनका दमन नहीं कर सका और उसकी दक्षिण नीति अन्ततोगत्वा असफल रही। उससे सल्तनत को महती आर्थिक क्षति हुई, राजकोष रिक्त हो गया, तुगलक साम्राज्य विघटित हो गया और सुलतान के सम्मान और प्रतिष्ठा पर गहरा आघात लगा। अन्त में दक्षिण भारत में माबर(मदुरा), वारंगल (तेलंगाना), कम्पिल, द्वारसमुद्र, गुलबर्गा, बीदर, विजयनगर आदि में स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये।

उत्पातों व विद्रोहों का प्रभाव

यद्यपि सुलतान मुहम्मद के शासन काल में समस्त राज्य में विद्रोह हुए, पर उनकी प्रबलता और बाहुल्यता साम्राज्य के सीमांत क्षेत्रों में रही। इस सुलतान के शासन-काल में शायद ही कोई ऐसा वर्ष व्यतीत हुआ हो जब उसके विरुद्ध विद्रोह नहीं हुए। इन विद्रोहों के परिणाम विनाशकारी हुए।

(१) इन विद्रोहों से तुगलक सल्तनत की रीढ़ ही टूट गयी और विघटनकारी प्रवृत्तियां बलवती होती गयीं। सीमांत क्षेत्र के प्रदेश स्वतंत्र हो गये। बहमनी और विजयनगर राज्यों का अभ्युदय हुआ। इससे तुगलक साम्राज्य कटकर लगभग आधा रह गया।

(२) सुलतान विद्रोहों के दमनार्थ सीमांत क्षेत्र के विभिन्न प्रांतों में इधर से उधर घूमता रहा। देवगिरी और गुजरात में विद्रोहियों को कुचलने के लिये वह बार-बार सेना सहित जाता आता रहा। इससे वह प्रशासन की ओर ध्यान न दे सका।

प्रशासन अस्त-व्यस्त और शिथिल हो गया। गबन और भ्रष्टाचार, जनता का शोषण और दमन साधारण बात हो गयी थी।

(३) विद्रोहों के दमन और सैन्य संचालन तथा संगठन में अत्याधिक धन व्यय हो गया। शनाधिकारियों के उत्पातों और विद्रोहों के कारण राज-कर भी बराबर वसूल नहीं होता था। इससे राज-कोष रिक्त होता चला गया।

(४) विद्रोहों की व्यापकता, भयानकता और बाहुल्यता से ऊब कर सुलतान ने उनके दमन के लिये निर्मम अमानुनिक नीति अपनायी और उसने रक्तपात तथा नर-संहार का सहारा लिया। इस सम्बन्धमें सुलतान ने स्वयं बर्नीसे कहा था,..."विद्रोहियों के लिये मेरा उपचार तलवार है। मैं इसलिये खड्ग का प्रयोग करता हूँ और दंड देता हूँ कि कष्ट सहन द्वारा रोग दूर हो जायँ। विद्रोही जितना ही अधिक प्रतिरोध करते हैं, उतना ही अधिक मैं उन्हें दंड देता हूँ।" वह विद्रोहियों और जनता से इतना खिन्न हो गया था कि उसके लिये तलवार के अतिरिक्त कोई साधन शेप नहीं रहा था।

अपनी इस रक्तपात की नीति पर प्रकाश डालते हुए स्वयं सुलतान ने कहा था कि "इस युग में आज्ञा का उल्लंघन करने वाले बड़ी संख्या में उत्पन्न हो गये हैं। मैं नित्य षड़यन्त्र, उपद्रव तथा छल की आशंका पर लोगों को मृत्यु दंड देता हूँ...... मैं उन्हें इसी प्रकार उस समय तक दंड देता रहूँगा, जब तक या तो मेरा देहावसान न हो जाय या लोग ठीक न हो जायँ और विद्रोह तथा अज्ञा उल्लंघन करना बंद न कर दें। .. मैं लोगों की हत्या इस कारण करता हूँ कि लोग एकदम मेरे विरोधी तथा शत्रु बन गये हैं।"... ..इसी अमानुषिक व्यवहार तथा रक्तपिपासु प्रवृत्ति के कारण इब्नबतूता ने सुलतान पर रक्त पिपासा का दोषारोपण किया है। पर इस नीति के कारण सुलतान इतना अधिक दोषी नहीं है जितना कि चौदहवीं सदी की परिस्थितियां। सुलतान इन परिस्थितियों को नियंत्रित नहीं कर सका और विद्रोहों के दमन में वह असमर्थ रहा।

(५) सुलतान के शासन-काल का अन्तिम काल विद्रोहों के दमन करने मे व्यतीत हुआ और वह भी दक्षिण भारत में। इससे वह अपनी राजधानी दिल्ली से पृथक होता गया। इसका प्रभाव प्रशासन और नियंत्रण पर पड़ा। केन्द्रीय शासन शिथिल हो गया। केन्द्र में उसके पास ऐसे कोई वजीर या उच्चाधिकारी नहीं थे जो सारे साम्राज्य को संभालते। इस प्रकार दक्षिण भारत और उसके विद्रोह मुहम्मद तुगलक के विनाश और पतन का एक प्रमुख कारण बन गया।

मंगोल आक्रमण

सुलतान मुहम्मद के शासन-काल में सन् १३२८–२९ में मंगोलों ने भारत पर आक्रमण किया। इसका वर्णन यहा बिन अहमद, फरिश्ता, एसामीर और बदाऊंनी ने किया है। दोआब के दुर्भिक्ष से तथा राजधानी परिवर्तन से उत्पन्न अशांति, अव्यवस्था, अराजकता और जनता में व्याप्त तीव्र असन्तोष से प्रोत्साहित होकर मंगोल नेता तरमशीरीं ने भारत पर आक्रमण किया। उसका पिता दाऊदखां अलाउद्दीन के शासन काल में अनेक बार भारत पर आक्रमण कर चुका था। मंगोल आक्रमणकारी सिंध और मुलतान से होते हुए मेरठ तक पहुँच गये। यहा बिन अहमद और बदाऊंनी के अनुसार

मंगोलों ने लाहोर, सयाना, इन्दरी और बदायूं तक की सीमा के अनेक किले जीत लिये और अनेकानेक व्यक्तियों को बन्दी बना लिया। सुलतान स्वयं सेना लेकर उनका सामना करने आगे बढ़ा। उसकी ओर बुगरा के पुत्र यूसुफ की सेनाओं ने मिलकर मंगोलों से युद्ध किया और उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया। इस युद्ध में तरमशीरीं का भानजा तथा अन्य मंगोल सैनिक बंदी बना लिये गये। कुछ अन्य इतिहासकारों का मत है कि सुलतान मंगोलों के आक्रमण और शक्ति से भयभीत हो गया था। अतएव मंगोल नेता तरमशीरीं को पांच सहस्त्र दीनार देकर संतुष्ट किया और बिदा दी। इसकी कटु आलोचना की गयी और कहा गया कि सुलतान ने आक्रमणकारी मंगोलों को धन देकर अपनी दुर्बलता और कायरता प्रकट की तथा लालची मंगोलों ने धन के लोभ से भारत पर बार-बार आक्रमण किये किंतु सुलतान के सामने उस समय कोई अन्य मार्ग नहीं था। उन दिनों देश में अशांति और अव्यवस्था व्याप्त थी। अतः धन देकर ही उसने कुछ अवधि के लिये मंगोलों के बर्बर आक्रमणों से देश को नष्ट-भ्रष्ट होने से रक्षा की।

कुछ विद्वान ऊपर वर्णित मंगोल आक्रमणों संबंधी इन दोनों कथनों को नहीं मानते हैं। क्योंकि बर्नी और इब्नबतूता जो मुहम्मद के समकालीन थे, मंगोल आक्रमणों का उल्लेख नहीं करते। उनका मौन इस बात का प्रमाण है कि मंगोल नेता तरमशीरीं ने भारत पर आक्रमण नहीं किया। वह तो सुलतान का मित्र और प्रशंसक था।

मंगोल नेता तरमशीरीं मध्य एशिया में आक्सस नदीके पार के क्षेत्र का शासक था। वह फारस में उत्पन्न अशांति और अव्यवस्था का लाभ उठाकर फारस और खुरासान पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधिकार में करना चाहता था। इस हेतु सैन्य संगठन के लिये वह गजनी तक आ गया था तथा सुलतान मुहम्मद को खुरासान पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया परन्तु फारस के एक शक्तिशाली सरदार अमीर हसन ने सन् १३२६-२७ में उसे परास्त कर दिया। फलतः तरमशीरीं भारत में आ गया। खुरासान विजय की योजना के लिये दोनों में मैत्री संबन्ध हो गये और सुलतान ने उसका स्वागत किया। परन्तु सुलतान के वजीर ख्वाजाजहां और उच्च पदाधिकारी तथा उसके गुरू कुतलुगखाँ ने सुलतान को परामर्श दिया कि मंगोल नेता का भारत में रहना उचित नहीं है। इसी बीच फारस और खुरासान में भी स्थिति बदल गयी। फलतः सुलतान ने तरमशीरीं को भारत से बिदा कर दिया एवं बिदाई के समय पांच सहस्त्र दीनार उपहार में दिये। सुलतान की मैत्री और सहृदयता से तरमशीरीं प्रभावित हुआ और उसने पत्रों द्वारा सुलतान के प्रति अपना आभार प्रदर्शित किया। परवर्ती फारसी इतिहासकारों के इस वर्णन के आधार पर कुछ इतिहासकारों का मत है कि मंगोल नेता तरमशीरीं आक्रांता नहीं अपितु वह सुलतान का मित्र था। ऐसी दशा में वह भारत पर ससैन्य आकमण नहीं कर सकता था। फलतः न तो मंगोलों ने आक्रमण किये और न सुलतान ने मंगोलों को कायरतावश पांच सहस्त्र दीनार ही भेंट किये। यदि मंगोल नेता दीनार लेने ही भारत आया था तो वह और भी धन प्राप्त करने के लिये बाद में भी अनेक आक्रमण करता और सुलतान से अपार धन प्राप्त करता। परन्तु मुहम्मद के शासन काल के बाद के वर्षों में कहीं भी मंगोल आक्रमणों

का वर्णन नहीं प्राप्त होता है । इससे स्पष्ट है कि मंगोलों और सुलतान में अच्छे सम्बंध थे। सुलतान के राज्याश्रय में अनेक मंगोल अमीर शताधिकारी थे।

सुलतान मुहम्मद की विदेशी नीति

सुलतान मुहम्मद की वैदेशिक नीति का आधार सद्भावना व मैत्री था। उसने विदेशों से आने वाले अमीरों, अधिकारियों और विद्वानों को राज्याश्रय दिया और विदेशी नरेशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। इनका विवेचन अधोलिखित है:—

(१) **विदेशियों को राज्याश्रय**—फारस, खुरसान, गजनी, ईरान, बुखारा, समरकंद, तथा मध्य एशिया के अन्य प्रदेशों में आन्तरिक अशांति, अव्यवस्था और संघर्ष का वातावरण था। अतएव वहां से अनेक विद्वान, सामन्त, और पदाधिकारी ऊबकर भारत में ऊच्च पद प्राप्त करने एवं धन संग्रह करने की लालसा से आ गये थे। सुलतान ने इन्हें अपनी राज सभा में आश्रय दिया तथा उनकी योग्यतानुसार उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त किया।

इब्नबतूता ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि, "वह (मुहम्मद तुगलक) विदेशियों का बड़ा सम्मान करता था। उसने एक राजाज्ञा द्वारा भारत में आने वाले समस्त विदेशियों को अजीज की उपाधि दे रक्खी थी। इसी नाम से वे प्रसिद्ध हो गये हैं।" इन 'अजीज' अमीरों में खुरासान के अमीर प्रसिद्ध थे। ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि इन खुरासानी अमीरों ने महत्वाकांक्षी सुलतान मुहम्मद को खुरासान विजय करने के लिये उकसा दिया था। खुरासान की भौगोलिक स्थिति, सुलतान की राजनैतिक दुर्बलता, मिस्र के शासक का विश्वासघात, खुरासानी अमीरों की इस योजना में निहित स्वार्थ भावना के परिणामस्वरूप इस विजय योजना से सुलतान मुहम्मद तुगलक को अत्यधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी और उसकी सैनिक असफलता उसके सामने आ गयी।

मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजसभा में इन विदेशी अमीरों का एक दल भी तुर्की अमीरों के प्रतिद्वन्द्वी स्वरूप स्थापित किया था। परन्तु कालान्तर में ये षड़यन्त्रकारी बन गये। अनेक अमीरों को उपहार और जागीरें भी दी गयी और कुछ गांव भी दिये गये जिनसे कर वसूल करके ये उसे राज कोष में जमा करते थे। इनको 'अमीरन-ए-सादा" या शताधिकारी भी कहते थे। धीरे-धीरे ये अमीरन-ए-सादा राज्य के विभिन्न प्रदेशों में फैल गये और अपनी स्वार्थपरता और धनलोलुपता की तीव्र भावना से शासन में गबन और भ्रष्टाचार करने लगे तथा जनता से बलपूर्वक अधिक धन वसूल कर उनका शोषण करने लगे। वे अनेक बार राजकरों को वसूल कर नियमित रूप से राजकोष में जमा नहीं करते थे। विदेशी होने के कारण वे सुलतान के प्रति अधिक श्रद्धा-भक्ति नहीं रखते थे। इसी बीच अनेक कारणों से सुलतान की समस्याएँ अधिकाधिक जटिल होती गयीं, प्रशासन शिथिल हो गया तथा प्रांतीय शासकों ने विद्रोह कर दिये। इन विदेशी सामांतों, अजीजों, तथा अमीरन-ए-सादा लोगों ने सुलतान के प्रतिकूल परिस्थिति का लाभ उठाकर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह किये और अन्य विद्रोहियों को अत्यधिक योगदान दिया। इस प्रकार सुलतान की विदेशियों को राज्याश्रय प्रदान करने की नीति असफल ही नहीं रही, विनाशकारी भी सिद्ध हुई।

(२) **मैत्री संबंध**—सुलतान मुहम्मद तुगलक भारत के बाहर विदेशी राज्यों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक था। इसलिये उसने ईराक के शासक मूसा, मिश्र के शासक व खलीफा से, ख्वारिजम की रानी तुराबक, आक्सस नदी के प्रदेश के मंगोल शासक तरमशीरीं, आदि से मैत्री और सद्भावपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। मिस्र के शासक से तो उसने खुरासान पर आक्रमण करने के लिये सहायता भी प्राप्त करने का वचन प्राप्त कर लिया था। मिस्र में काहिरा में रह रहे खलीफा अब्बासी के पास भी सुलतान ने अपने दूत भेजे और सन् १३४०-४१ में नियुक्ति पत्र के लिये प्रार्थना पत्र भेजा। फलतः सन् १३४५ व १३४६ में, सुलतान इल्तुतमिश के समान, उसने भी खलीफा से नियुक्ति पत्र प्राप्त कर लिया जिससे कि उसके विरुद्ध हो रहे इस्लाम के कट्टर अनुयायियों, मुल्ला और मौलवियों के विद्रोह शांत हो जावें। उसे आशा थी कि ये धर्मजन्य विद्रोह नष्ट हो जावेंगे और इस्लाम के अनुयायी उसे विधिवत् अपना सुलतान मानने लगेंगे। परन्तु सुलतान इस परिणाम के न होने पर निराश हुआ। यद्यपि उसने मलिक कबीर को कुबूल खलीफती की पदवी देकर खलीफा बना दिया था और खलीफा का नाम मुद्राओं और महत्वपूर्ण भवनों पर उत्कीर्ण करा दिया था; परन्तु उसकी यह नीति विफल हुई। न तो मुल्लाओं का उसके प्रति सम्मान ही बढ़ा और न कट्टर इस्लाम पंथी ही इससे प्रभावित हुए। उन्होंने इसे खलीफा के प्रति सुलतान की चाटुकारिता समझा। इसलिये सुलतान को जनता की सहानुभूति और विश्वास प्राप्त नहीं हुआ और खलीफा की मान्यता प्रभावहीन रही।

सुलतान ने चीन के शासक तोगन तैमूर से अपने कूटनीतिक और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। इब्नबतूता के अनुसार "चीन के बादशाह ने सुलतान के पास १०० दास व दासियां, पांच सौ मखमल के थान, ५ मन कस्तूरी, पांच रत्न जड़ित खिलअतें, ५ जड़ाऊ निसंग, और पांच खड्ग भेजकर यह प्रार्थना की कि सुलतान उसे कराजिल (हिमालय) पर्वत के आंचल में समहल नामक स्थान पर (बौद्ध) मंदिरों को पुनः निर्मित कराने की अनुमति प्रदान करे। समहल में चीनी लोग धर्म यात्रा करने के लिये आते-जाते थे। सुलतान की इस्लामी सेना ने इस पर अधिकार प्राप्त कर लिया था और उसे लूट कर विध्वंस कर दिया था। सुलतान ने चीनी नरेश की इस प्रार्थना को स्वीकार करते हुए उत्तर दिया कि "इस्लामी नियमानुसार मुसलमानों के राज्य में मन्दिर बनाने की अनुमति केवल उन्हें दी जा सकती है जो जजिया (धार्मिक कर) देना स्वीकार कर लें। यदि आप समहल के मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराना चाहते हैं तो जजिया देना स्वीकार कीजिये।" चीन नरेश ने यह कर देना मान लिया और चीनी बादशाह तोगन तैमूर और सुलतान मुहम्मद दोनों में मैत्री सम्बन्ध हो गये। इस सम्बन्ध को स्थायी और दृढ़ बनाने के लिये सुलतान ने २२ जुलाई सन् ११४२ को मूर यात्री इब्नबतूता को अपना राजदूत बनाकर चीन भेजा और उसके साथ चीनी बादशाह के लिये पन्द्रह दूत, कई सैनिक और बहुसंख्यक उपहार भेजे। कहा जाता है कि जिस जहाज से इब्नबतूता चीन जा रहा था, वह समुद्र में डूब गया, उसके कुछ साथी डूब गये और कुछ बचे हुए लोगों को समुद्री डाकुओं ने

मार डाला। यदि इब्नबतूता के कथन को माना जाय तो ऐसा विदित होता है कि वह अनेक आपत्तियों का सामना करता हुआ चीन पहुँच गया था, किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उसे लौट आना पड़ा। वह वापिस दिल्ली नहीं आया, अपितु उसने मलाबार तट से अरब की यात्रा प्रारम्भ की और नवम्बर १३४९ में वह अपने देश की राजधानी पहुँच गया।

मुहम्मद तुगलक का शासन-प्रबन्ध

अपनी कार्यकुशलता, योग्यता, प्रतिभा तथा मौलिकता से सुलतान मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली सल्तनत का प्रशासन चलाया। इस प्रशासन और इसमें सुलतान द्वारा किये गये सुधारों व परिवर्तनों का विवरण अधोलिखित है:—

(१) **निरंकुश शासन**—सुलतान मुहम्मद असीमित अनियन्त्रित निरंकुश शासक था। पर उसमें प्रजा के लिये कल्याण कार्य करने तथा उसके हित संवर्धन की भावना थी। उसने अपनी योजनाओं के समय प्रजा को पहुँचे कष्टों का उदारता से निराकरण किया। प्रशासन कार्य संचालन में अमीरों की एक समिति-सी होती थी जिससे सुलतान परामर्श लेता था। पर वह उस परामर्श को मानने या कार्यान्वित करने को बाध्य नहीं था।

(२) **धर्म निरपेक्षता की नीति**—सुलतान मुहम्मद ने कुरान, हदीस तथा इस्लाम के अन्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया था, उसके सिद्धान्तों पर मनन एवं चिन्तन किया था। फलतः अपने अध्ययन, अनुभव और चिन्तन के आधार पर उसने प्रशासन में धर्म निरपेक्षता की नीति अपनाई। इस नीति के अनुसार उसने धर्म को राजनीति से पृथक कर दिया। इस क्षेत्र में उसने सुलतान बलबन और अलाउद्दीन की नीति का अनुकरण किया। अब तक इस्लाम के मुल्ला और मौलवी न्याय और धर्म विभाग में हस्तक्षेप करते थे। न्यायदान मे वे इस्लाम के नियमों को मानते थे तथा सुलतान और अधिकारी उनके परामर्श तथा आदेशानुसार प्रशासकीय कार्य करते थे। इससे उलमाओं, मौलवियों और सैयदों का आचरण स्वार्थमय और जनता के लिये अहितकर हो गया था। वे प्रशासन में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप करते थे और न्याय विभाग में अपने विशेष अधिकारों व पद का उपयोग करते थे। इससे जनता को कष्ट होते थे। सुलतान मुहम्मद विद्वान होने के कारण, इस्लाम के सिद्धांतों के अध्ययन और मनन के कारण, राज्य में उलमा वर्ग का हस्तक्षेप नहीं चाहता था। फलतः वह मुल्लाओं और मौलवियों से परामर्श तो लेता था पर जो बात या सलाह उसे उचित जान पड़ती थी, उसे ही करता था। वह उनकी चिन्ता नहीं करता था। प्रशासन में उसने उलमा वर्ग के विशेष अधिकार समाप्त कर दिये थे; क्योंकि वह उनसे प्रभावित नहीं था। वह राजद्रोह तथा धन के गबन के अपराध या अन्य अपराधों में मुल्ला और मौलवियों को साधारण व्यक्ति के समान दण्ड देता था। काजी और मुफ्ती के अधिकारों में भी वह हस्तक्षेप करता था जिससे कि वे न्यायदान में पक्षपात न कर सकें। उसने कुरान पर आधारित प्रशासकीय नियमों व न्याय के नियमों का संग्रह भी तैयार करवाया था। सुलतान की इस धर्म निरपेक्ष नीति के कारण उलमाओं

ने उसके कार्यों की कटु आलोचना की, उस पर मिथ्या दोषारोपण लगाये और उसके चरित्र को कलंकित करने का प्रयास किया।

(३) हिन्दुओं के प्रति उदार नीति—सुलतान मुहम्मद ने हिन्दुओं के प्रति उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनायी। प्रशासन में उन्हें पद प्रदान किये गये। ऊँचे पदों पर नियुक्ति का आधार धर्म, जाति और वर्ग न रखकर अनुभव, प्रतिभा और योग्यता रखा। इससे हिन्दुओं को भी शासकीय सेवाओं में नियुक्त किया गया। इब्नबतूता रतन नामक हिन्दू का उल्लेख करता है जो सुलतान की सेवा में ऊँचे पद पर नियुक्त था। उसे "अजिमुस्सिन्ध" की पदवी से विभूषित किया गया था। दक्षिण भारत में गुलबर्गा में भैरव नामक हिन्दू शासक नियुक्त किया गया था। देवगिरी में कुतलगखां के बाद धराधर नामक हिन्दू को अर्थ विभाग का प्रमुख अधिकारी नियुक्त किया था और तैलंगाना क्षेत्र में हरिहर को शासक नियुक्त किया था। उसने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचायी। यद्यपि वह कट्टर और नेक मुसलमान था, परन्तु धर्मांध और असहिष्णु नहीं था। हिन्दुओं के प्रति वह असहिष्णु नहीं था। उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता थी। उसने हिन्दुओं को बलपूर्वक इस्लाम ग्रहण करने को बाध्य नहीं किया और न उनके देवालयों और मन्दिरों को विध्वंस ही किया और न उसने उनको इसलिये दण्डित किया कि वे हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। हिमाचल प्रदेश में नगरकोट दुर्ग को जीतकर अपने अधीन करने के बाद भी उसने वहाँ के ज्वालामुखी देवी के मन्दिर को विध्वंस नहीं किया। हिन्दुओं के प्रति उदार नीति के कारण सुलतान हिन्दुओं के सन्तों, योगियों और संन्यासियों का सम्मान करता था और उनके साथ सत्संग करने की तीव्र लालसा रखता था। कहा जाता है कि उसने हिन्दुओं की सती प्रथा को निषिद्ध या नियन्त्रित करने का प्रयास किया। यद्यपि उसने हिन्दुओं के नगरकोट, कराजिल और अनागोंडी राज्यों पर आक्रमण करके उन्हें बिना किसी संकोच के अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया, पर राजनैतिक आवश्यकता होने पर वह हिन्दुओं के प्रति उदार हो गया। हिन्दुओं के प्रति उसकी ऐसी उदारता और सहिष्णुता की नीति तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों के कारण थी। प्रथम, वह अपनी विभिन्न योजनाओं और विद्रोहों के दमन में इतना अधिक व्यस्त हो गया था कि उसे हिन्दुओं के प्रति अलाउद्दीन के समान निर्ममता से सोचने और बर्बरता से व्यवहार करने का अवसर ही नहीं मिला। द्वितीय, उसने हिन्दू राज्यों और जनता के प्रति विध्वंस की नीति नहीं अपनायी, क्योंकि वह इनको अपना घोर शत्रु नहीं बनाना चाहता था। उसके अनेक अमीर, प्रांतपति और उल्मा वर्ग के लोग पहिले ही उसके कट्टर विरोधी और शत्रु थे और उसके विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। तृतीय, चित्तौड़ और रणथम्भौर के समान अभेद्य हिन्दू दुर्गों पर अधिकार करना और हिन्दू नरेशों को परास्त करना उसके लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य था। एक बार चित्तौड़ के राणा हमीर द्वारा परास्त हो जाने पर मुहम्मद ने राजपूत और हिन्दू राज्यों में हस्तक्षेप नहीं किया और न उन पर आक्रमण ही किये। इसीलिये सुलतान की हिन्दुओं के प्रति उदारता व सहिष्णुता की नीति का मूल कारण धार्मिक नहीं राजनैतिक था। समय की परिस्थितियों व राजनैतिक आवश्यकताओं के कारण उसने उदार नीति अपनायी।

(४) **कर सम्बन्धी व्यवस्था**—मुहम्मद तुगलक ने इस्लाम के नियमों के अनुसार मान्य चार कर खिराज, जजिया, खाम और जकात के अतिरिक्त कुछ अन्य कर भी लगाये। वह विजय अभियान और लूट के माल का ४/५ धन राजकोष को तथा १/५ भाग सैनिकों में वितरण किया करता था।

(५) **दासों की व्यवस्था**—मुहम्मद तुगलक के शासन-काल मे गुलामों का बाहुल्य था। अनेक पुरुष और स्त्रियाँ सुलतान के गुलाम थे। इनकी संख्या सहस्रों से थी। ये गुलाम प्रायः युद्धबन्दी होते थे। इन गुलामों में अच्छे, सुयोग्य, प्रतिभावान व्यक्तियों को शासकीय सेवाओं में रखा जाता था और उन्हें ऊँचे पद पर भी नियुक्त किया जाता था। सुलतान के अंगरक्षक प्रायः गुलाम ही होते थे। कई बार गुलाम स्त्रियाँ गुप्तचर सेवाओं में कार्य करती थीं।

(६) **न्याय व्यवस्था**—मुहम्मद तुगलक न्यायप्रिय सुलतान था। वह निष्पक्ष न्याय में विश्वास करता था। उसने न्याय-व्यवस्था को बनाये रखकर उसे उन्नत करने का पूर्ण प्रयास किया। न्याय-दान के लिये विभिन्न श्रेणी व वर्ग के अधिकारी थे। सुलतान स्वयं न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। वह स्वय सर्वोच्च न्यायाधीश का कार्य करता था तथा नीचे के न्यायालयों की अपीलें सुनता था और निर्णय देता था। न्याय-दान के लिये वह सप्ताह में दो बार सोमवार तथा गुरुवार को राजसभा में बैठता था। उसके नीचे न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी या प्रधान न्यायाधीश सद्रे जहाँ काजी-उल-कुजात होता था। उसके अधीन अनेक काजी और नायब काजी होते थे। इनके अतिरिक्त मीरदाद नामक एक अन्य अधिकारी भी होता था जिसका कार्य अभियुक्तों को काजी के सम्मुख प्रस्तुत करना होता था। यदि कोई बड़ा अमीर व अधिकारी दोषी ठहराया जाता तो मीरदाद उसे न्यायालय में प्रस्तुत करता था। योग्य और अनुभवी व्यक्तियो को ही न्याय विभाग के अधिकारियों के पदों पर नियुक्त किया जाता था।

दीवानखाने के चारों प्रवेश द्वारों पर सुलतान ने एक-एक अमीर अधिकारी नियुक्त किया था जो वहाँ प्रजा के कष्टों को सुनता था। यदि ऐसा नहीं होता तो फरियादी प्रधान न्यायाधीश के पास जाता था। और यदि वहाँ भी उसे समुचित न्याय प्राप्त नहीं हुआ तो वह राजसभा में सुलतान को अपील कर सकता था।

सुलतान का दण्ड विधान कठोर था। न्याय के सम्मुख सभी को समान माना जाता था। धर्म, कुल, पद, सम्मान व धन के आधार पर कोई भी न्याय से या दण्ड से बच नहीं सकता था। सुलतान का आदेश था कि अपराध करने पर अमीर, उल्मा, शेख, मौलवी, अधिकारी आदि को भी दण्ड दिया जाय। सुलतान ने स्वयं को भी दण्ड विधान से मुक्त नहीं रखा था। अंग-भंग, मृत्यु-दण्ड और खाल खिंचवा लेना प्रायः साधारण दण्ड थे। मामूली अपराध पर कोड़े लगाये जाते थे और अपराधियों को कठोर यातनाएँ दी जाती थीं।

किसी मृत्युदंड पाये हुए अभियुक्त को जल्लाद तक भेजने के पूर्व सुलतान मृत्युदंड के अपने निर्णय पर पुनः विचार करता था और मुफ्तियों से परामर्श लेता था। यदि मुफ्तियों के तर्क व परामर्श से उसे अभियुक्त के निर्दोष होने का विश्वास

हो जाता तो वह अभियुक्त को मुक्त कर देता था । इब्नबतूता ने सुलतान की न्याय-परायणता के विषय में लिखा है कि, "अभी तक के सुलतानों में मुहम्मद तुगलक सबसे अधिक विनम्र एवं सर्वाधिक न्याय प्रेमी है।"

(७) **पुलिस तथा जेल विभाग**—सुलतान मुहम्मद तुगलक ने पुलिस तथा जेल विभाग को उन्नत बनाया जिससे कि साम्राज्य में शांति-व्यवस्था भली-भांति रखी जा सके। पुलिस विभाग का प्रधान अधिकारी कोतवाल कहा जाता था। उसकी सहायता के लिये अन्य कर्मचारी पुलिस विभाग में थे। प्रत्येक बड़े नगर में पुलिस के अधिकारी रहते थे। पुलिस विभाग में मुहातसिब नामक अधिकारी भी होते थे जो व्यापार तथा बाजार पर पूर्ण नियन्त्रण रखते थे। उस समय जेलों की संख्या अधिक न थी। प्राय: दुर्ग का उपयोग कारागार के लिये किया जाता था। वहां बन्दियों व अपराधियों को रखा जाता था। अनेक अपराधियों को तो अंग-भंग या मृत्युदण्ड देकर अलग कर दिया जाता था।

एक सुव्यवस्थित गुप्तचर विभाग भी संगठित किया गया था जो समस्त साम्राज्य में घटित होने वाली घटनाओं की सूचना सुलतान को देता था। गुप्तचरों में महिलाएँ भी कार्य करती थीं।

(८) **सैन्य व्यवस्था**—सुलतान की शक्ति और प्रशासन का मुख्य आधार सेना थी। इसलिये मुहम्मद तुगलक ने सैन्य-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने अपनी सेना की संख्या में वृद्धि करके उसमें नौ लाख अश्वारोही, तीन हजार हाथी, बीस सहस्र ममलुक, दस सहस्र हीजड़े, एक सहस्र बल्लमदार, एक सहस्र बशमक-दार, और दो लाख गुलाम कर लिये थे। सेना में पदाधिकारियों की श्रेणियां और ओहदे निश्चित कर दिये गये थे। सेना में खान, मलिक, अमीर, सिपहसालार, जुन्द आदि अधिकारी होते थे। दस सहस्र अश्वारोहियों के ऊपर एक "खान" होता था। इसे जागीर दी जाती थी जिसकी वार्षिक आय दो लाख टके होती थी। खान के नीचे "मलिक" नामक अधिकारी होता था। उसके अधीन एक सहस्र अश्वारोही होते थे। प्रत्येक मलिक को जागीर दी जाती थी जिसकी वार्षिक आय पचास सहस्र टंक होती थी। मलिक के नीचे "अमीर" नामक अधिकारी होता था जिसके अधीन सौ अश्वा-रोही रहते थे। प्रत्येक अमीर को ऐसी जागीर दी जाती थी जिसकी वार्षिक आय तीस या चालीस सहस्र टंक होती थी। अमीर के नीचे सिपहसालार नामक अधिकारी होता था जिसके अधीन सौ से कम अश्वारोही सैनिक होते थे। सिपहसालार को बीस सहस्र टंक वार्षिक आय देने वाली भूमि जागीर में दी जाती थी। सिपहसालार के नीचे "जुन्द" अधिकारी होता था। उसका वेतन दस सहस्र टंक होता था। सुलतान ने सैनिकों के लिये नगद वेतन की व्यवस्था की थी। प्रत्येक सैनिक को पाँच सौ टंक वेतन दिया जाता था। सैनिकों को भोजन, वस्त्र तथा अश्वों के लिये चारा राज्य की ओर से दिया जाता था। सुलतान सैनिकों को सन्तुष्ट रखना चाहता था।

(९) **राजस्व व्यवस्था**—भूमि-कर राज्य की आय का प्रमुख साधन था। भूमि-कर वसूली के लिये राज्य की भूमि शिकों में विभक्त थी। प्रत्येक शिक पर

शिकदार नामक अधिकारी होता था जो भूमिकर वसूली के लिये उत्तरदायी था। दोआब की भूमि राजस्व के लिये हजार ग्रामों में विभक्त थी और यह "हजारह" कही जाती थी। प्रान्तों में भी राजस्व के लिये भूमि को सौ-सौ गांवों की इकाई में विभक्त कर दिया गया था। सौ गाँव की प्रत्येक इकाई को "सदी" कहते थे। भूमि-कर नियमित रूप से वसूल किया जाता था। दुर्भिक्ष या सूखे के समय राज्य की ओर से कृषकों को आर्थिक सहायता के रूप में तकावी दी जाती थी। ऐसी धारणा है कि सुलतान ने ७० लाख टंके कृषकों में तकावी के लिये वितरित करवाये थे। विभिन्न प्रांतों से भूमि-कर वसूल करके प्रांतीय शासक उसे दिल्ली में राजकोष में भेजते थे।

(१०) **डाक-व्यवस्था**—सुलतान ने डाक लाने-ले जाने की भी समुचित व्यवस्था की थी। प्रत्येक चौकी पर दस व्यक्ति डाक लाने ले जाने के लिये रहते थे। ये एक स्थान से दूसरे स्थान को पत्र अथवा सूचनायें व संदेश लाते और ले जाते थे। डाक अश्व पर जाती थी, पैदल हरकारे भी डाक ले जाते थे। डाक-व्यवस्था को उन्नत बना देने से समाचार शीघ्रतापूर्वक और सुविधा से पहुँचाये जा सकते थे।

(११) **प्रशासकीय कर्मचारी और अधिकारी**—सुलतान ने प्रशासन को दृढ़ और सक्षम बनाने के लिये राज्य को प्रांतों में विभक्त कर रखा था। प्रत्येक प्रांत का सर्वोच्च शासक सुलतान द्वारा नियुक्त होता था और वह उसके प्रति उत्तरदायी माना जाता था। प्रायः प्रांतीय अधिपति या प्रांतपति अपने क्षेत्र में लगभग स्वतंत्र होते थे। उन्हें प्रशासन और सेना सम्बन्धी अनेक अधिकार दिये जाते थे। प्रांतीय प्रशासन का व्यय निकालने के बाद शेष धन को केन्द्रीय राजकोष में जमा करना पड़ता था। प्रशासन में प्रांतपति को "नायब वजीर" या "नायब सुलतान" कहा जाता था। वह अपने प्रांत का सर्वोच्च शासक, सेनापति और प्रधान न्यायाधीश होता था। प्रांतपति प्रायः अनियंत्रित शासक होते थे। उनके अधिकार अधिक होते थे। इससे वे प्रायः विद्रोह ही किया करते थे। इन विद्रोहियों का दमन करने के लिये सुलतान को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

केन्द्रीय शासन में सुलतान ही सर्वोच्च अधिकारी था। साम्राज्य की सभी सत्ता और अधिकार उसके हाथों में केन्द्रीभूत थे। शासन में सुलतान की सहायता के लिये एक नायब होता था जो राजधानी मे उसकी अनुपस्थिति में शासन-व्यवस्था का कार्य संभालता था। सुलतान का एक प्रधानमंत्री होता था जिसे वजीर कहा जाता था। प्रशासन में वजीर को सहायता व सहयोग देने के लिये चार शिक-दार होते थे। अन्य विभागों के भी प्रमुख दो मन्त्री होते थे। उनकी सहायता के लिये चार-चार दबीर या सचिव होते थे। प्रत्येक दबीर के अधीन प्रशासन का सफल संचालन करने के लिये लगभग तीन-सौ लिपिक होते थे। कर्मचारियों और अधिकारियों को जाति, वर्ग या श्रेणी के आधार पर नहीं अपितु योग्यता और प्रतिभा तथा कार्यकुशलता के आधार पर नियुक्त किया जाता था। मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में नीच कुलोत्पन्न पर योग्य और प्रतिभावान व्यक्ति ऊँचे पदों पर नियुक्त थे। मालवा प्रान्त में शताधिकारियों के विद्रोह का दमन करने वाला अधिकारी खुम्मार

मद्य विक्रेताओं की जाति का था। इसी प्रकार सुलतान के कुछ अन्य अधिकारी जैसे फिरोज नाई जाति का था, मनका बबर्ची था, लधा माली जाति का था और मकबूल गायक था। मकबूल बड़ा ही योग्य, कार्यकुशल, सक्षम अधिकारी था। उच्च कुलोत्पन्न अनेक अधिकारी भी उसके प्रशासन में थे।

सुलतान मुहम्मद की नीति के परिणाम और उसकी असफलता के कारण

मध्यकालीन युग में सुलतान मुहम्मद तुगलक एक अत्यन्त आकर्षक सुलतान है। यद्यपि वह विद्वान, बुद्धिमान, प्रतिभाशील सुलतान था और वह मौलिक योजनाएँ और विचार प्रस्तुत करता था, परन्तु इन योजनाओं में उसे असफलता मिली। इसलिये इनके परिणाम उसके व दिल्ली सलतनत के लिये अहितकर हुए।

नीति के परिणाम

(१) **साम्राज्य का विघटन**—उसके पिता से उत्तराधिकार में एक विशाल साम्राज्य उसे प्राप्त हुआ था। इस साम्राज्य में समस्त उत्तरी भारत तथा दक्षिण भारत का एक विशाल क्षेत्र सम्मिलित था। परन्तु उसकी नीति के दुखद परिणामों से उसका विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। उसके देहावसान के पूर्व ही दिल्ली सल्तनत क्षेत्र और स्वरूप में सिकुड़ गयी थी। जो शेष क्षेत्र दिल्ली सल्तनत में थे, उनमें भी उत्पात, विद्रोह और अन्तर्द्वन्द्व चल रहे थे।

(२) **प्रजा में तीव्र असन्तोष और कष्ट**—सुलतान की योजनाओं और नीति से उसकी प्रजा को अत्यधिक कष्ट पहुँचे। दोआब में कर-वृद्धि करने से राज्य की आय की वृद्धि तो नहीं हुई अपितु जनता में असन्तोष, घबराहट और बेचैनी फैल गयी। प्राकृतिक प्रकोप दुर्भिक्ष और सुलतान की कठोर दंड-नीति से प्रजा के अनेक व्यक्ति मारे गये। दोआब की समृद्धि नष्ट हो गयी। इसी प्रकार राजधानी परिवर्तन में भी अनेक लोग मर गये, अपार धन-जन की हानि हुई और दिल्ली का वैभव और समृद्धि विलुप्त हो गये। खुरासान योजना में भी धन का अपव्यय हुआ और सैनिकों को अपार कष्ट हुए। सांकेतिक मुद्रा प्रचलन में भी धन की हानि हुई, राजकोष रिक्त हो गया और साम्राज्य में आर्थिक और व्यावसायिक अव्यवस्था फैल गयी। इन सब योजनाओं से प्रजा को अपार कष्ट पहुँचे और प्रजा में तीव्र असन्तोष फैल गया। इस विषय में विन्सेन्ट स्मिथ का कथन है कि "मुहम्मद तुगलक की हवाई योजनाओं का अन्तिम परिणाम उसके लिये बड़ा विनाशकारी सिद्ध हुआ। उनसे उसकी प्रजा को बड़े कष्ट पहुँचे, जो साथ-साथ अकाल की मार भी खाये हुए थे। अन्त में उसके धैर्य का बांध टूट गया और जनता का असन्तोष खुले विद्रोहों के रूप में प्रगट हो गया।"

(३) **अपार धन का व्यय**—सुलतान की विभिन्न योजनाओं में अपार धन का व्यय हुआ। इससे राजकोष रिक्त हो गया। कर-वसूली में भी अनेक विघ्न उत्पन्न हो गये। भूमि-कर के अधिकारी शताधिकारियों ने भी भूमि-कर सम्बन्धी वसूल धन का गबन प्रारम्भ कर दिया और सुलतान के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिये।

(४) **विद्रोह**—उसकी नीति के विरोध के परिणामस्वरूप प्रांतीय शासकों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिये। प्रांतों में एक-एक करके विद्रोह होने लगे जिन्हें कुचलना कठिन हो गया। स्वयं मुहम्मद तुगलक ने इन विद्रोहों से उत्पन्न दशा का वर्णन करते हुए कहा है कि "मेरी सल्तनत को रोग लग गया है और वह किसी उपचार से अच्छा नहीं होता है। हकीम सिर दर्द का उपचार करता है तो बुखार प्रारम्भ हो जाता है, बुखार की रोकथाम करता है तो कुछ और रोग प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार मेरी सल्तनत में चारों ओर उपद्रव फैल गये हैं और मैं यदि एक क्षेत्र में उन्हें दबाता हूँ तो वे दूसरे में शुरू हो जाते हैं।"

इस प्रकार धीरे-धीरे माबर (मदुरा), दौलताबाद, अवध, सिंध, मुल्तान, गुजरात, बंगाल आदि प्रांतों में एक-एक करके विद्रोह हुए। उसकी नीति के परिणामस्वरूप विद्रोहों का एक तांता-सा बन गया। इतने अधिक विद्रोह किसी अन्य सुलतान के शासन-काल में नहीं हुए। सन् १३३५ से १३५१ तक, अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक वह अहर्निश विद्रोहों का सामना करता रहा। पर उसे असफलता प्राप्त हुई। अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने में भी वह जीवन भर संघर्ष करता रहा। इसमें भी उसे अनेक बार असफलता हाथ लगी। इस असफलता के कारण निम्नलिखित हैं:—

मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारण

मुहम्मद तुगलक का जीवन और उसका शासन-प्रबंध विफलताओं की एक करुण कहानी है। उसके जीवन की सभी आकांक्षाएँ असफल सिद्ध हुईं और उसका जीवन विफलताओं का एक क्रमबद्ध इतिहास बन गया है। इन विफलताओं के लिये वह स्वयं भी और अन्य परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं:—

(अ) **अपनी विफलताओं के लिये मुहम्मद तुगलक का उत्तरदायित्व**—यद्यपि मुहम्मद तुगलक एक योग्य शासक, मँजा हुआ कूटनीतिज्ञ तथा कुशल राजनीतिज्ञ था, परन्तु वह विफल मनोरथ रहा। इसके लिये वह स्वयं भी उत्तरदायी है।

(i) **हठी और उतावला सुलतान**—वह हठी और उतावली प्रकृति का सुलतान था। अपने हठी स्वभाव और उतावलेपन के कारण वह किसी भी योजना पर गम्भीरता से सोच विचार नहीं कर पाता था। अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये वह शीघ्र ही कदम उठाने लग जाता था। वह यह नहीं सोचता था कि उन्हें कार्यान्वित करने का समय, उपयुक्त है या नहीं। बिना पूरी तैयारी के योजनाओं को लागू कर देने से वे असफल रहीं।

(ii) **उग्र और क्रोधी**—वह बड़ी उग्र प्रकृति का सुलतान था। वह क्रोधी था और शीघ्र ही रुष्ट हो जाता था। जब लोग उसके आदेशों का उल्लंघन करते या उसको सहयोग नहीं देते थे, तब वह बहुत ही उग्र और क्रोधी हो जाता था। उसके क्रोध की कोई सीमा नहीं रह जाती थी। क्रोधावेश में वह लोगों को कठोर दंड देता था। इससे लोगों में उसके प्रति तीव्र असन्तोष बढ़ जाता था।

(iii) **व्यक्ति-परख का अभाव**—वह व्यक्तियों और अधिकारियों की परख नहीं कर सकता था। व्यक्तियों को परखने और उनकी प्रतिभा का सदुपयोग करने की

विशिष्टता उसमें नहीं थी। इसलिये जिन लोगों पर उसने विश्वास किया, उन्हीं व्यक्तियों ने उसे धोखा दिया।

(iv) **उदार धर्म निरपेक्ष धार्मिक नीति**—मुहम्मद तुगलक उदार स्वभाव वाला विद्वान मुसलमान था, अतः उसमें धार्मिक कट्टरता, संकीर्णता और धर्मान्धता नहीं थी। फलतः उसने धार्मिक सहिष्णुता, उदारता और धर्म निरपेक्षता की नीति अपनायी तथा उसने उल्मा वर्ग के लोगों के विशेष अधिकार समाप्त कर दिये और धर्म को राजनीति से पृथक कर दिया। इससे कट्टरपंथी मुसलमान उससे रुष्ट हो गये। उल्मा, मौलवी और शेख सुलतानके विरुद्ध जनता में प्रचार करने लगे और लोगों को विद्रोह के लिये प्रोत्साहित करते रहे।

(ब) अन्य कारण—उसकी विफलताओं के लिये अन्य कारण भी हैं—

(i) **प्रतिभासम्पन्न अनुभवी स्वामिभक्त पदाधिकारियों व परामर्शदाताओं का अभाव**—अलाउद्दीन खिलजी की भांति मुहम्मद तुगलक के पास योग्य, प्रतिभावान और अनुभवी पदाधिकारी नहीं थे जो उसको अपने अमुभव से अवगत रखते हुए, भूलों और गलतियों से दूर रखते हुए, उसका योजनाओं को सबल बनाने में योग देते। यदि उसे योग्य सेनापतियों और कुशल शासकों की तथा अनुभवी परामर्शदाताओं की सेवाएँ प्राप्त हो जातीं तो वह सफल हो जाता।

(ii) **प्रजा का असहयोग**—यह मुहम्मद का बड़ा दुर्भाग्य था कि उसकी प्रजा ने उसकी योजनाओं को ठीक से नहीं समझा। इससे कुछ योजनाओं के कारण प्रजा असन्तुष्ट हो गयी। यद्यपि उसकी अधिकांश योजनाओं का उद्देश्य प्रजा-कल्याण ही था, फिर भी सुलतान को प्रजा से किंचित मात्र भी सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। प्रजा ने इन योजनाओं को सफल बनाने के स्थान पर उनमें बाधा उत्पन्न करना प्रारंभ कर दिया। सहयोग तो दूर रहा, उल्टे वह सुलतान का संकट बढ़ाने के लिये तत्पर रहती थी। उसकी राजधानी परिवर्तन और सांकेतिक मुद्रा की योजनाओं के विफल होने का कारण प्रजा ही थी।

(iii) **योजनाओं का समय से आगे होना**—सुलतान की योजनाएं उस युग से बहुत आगे थीं और इससे लोग उसकी योजनाओं को भली-भांति समझ नहीं पाये। इससे लोग सुलतान को योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहायता नहीं देते थे। इससे योजनाएं नष्ट हो जाती थीं। सांकेतिक मुद्रा की योजना ऐसे ही विफल हो गयी।

(iv) **प्रकृति का प्रकोप**—मनुष्य ही नहीं, अपितु प्रकृति भी मुहम्मद से असन्तुष्ट रही। प्रकृति की प्रतिकूलता के कारण उसकी योजयाएं विफल होगयीं। उसके शासन काल में निरन्तर वर्षा के अभाव और दुर्भिक्ष के कारण सुलतान द्वारा जन-कल्याण के लिये किये गये सभी कार्य विफल हो गये। दोआब की कर-वृद्धि योजना में दुर्भिक्ष और उसके दुष्परिणामों ने बाधा पहुँचाई। कराजिल विजय की योजना में वर्षा और बर्फ से अधिक विघ्न उत्पन्न हुए। प्राकृतिक प्रकोपों से देश की आर्थिक समृद्धि नष्ट हो गयी एवं लोगों में असन्तोष बढ़ गया।

(v) **विदेशी अमीरों की स्वार्थपरता, धनलोलुपता, और कृतघ्नता**—जब सुलतान को देशी अमीरों का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ और वे निकम्मे और स्वार्थी

पाये गये, तब सुलतान विदेशी अमीरों की ओर झुका । विदेशी अमीरों और अधिकारियों को उसने राज्याश्रय दिया, उनमें अपार धन वितरित किया और उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त कर उन पर विश्वास किया । पर सुलतान ने जिन अमीरों को विश्वासपात्र बनाया, उन्होंने उसे धोखा दिया । वे सुलतान के प्रति स्वामिभक्त और राजभक्त न बन सके । वे कृतघ्न निकले । उन्होंने सुलतान की असफलतासे लाभ उठाकर अवसर पाकर विद्रोह किये और सुलतान को हानि पहुँचाने में कोई कसर नहीं रखी ।

(vi) **प्रांतीय शासकों के विद्रोह**— सुलतान द्वारा नियुक्त प्रांतीय शासकों ने भी उसका साथ नहीं दिया । जब साम्राज्य में चतुर्दिक असन्तोष और विद्रोह की अग्नि भड़की, तब स्वार्थवश प्रांतपतियों ने प्रजा के सहयोग तथा सुलतान की असमर्थता से लाभ उठाकर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिये और एक के बाद एक वे स्वतंत्र होते गये ।

(vii) **साम्राज्य की विशालता**—साम्राज्य की विशालता भी उसकी असफलता में सहायक हुई । मुहम्मद तुगलक जैसा सीधा-सादा विद्वान सुलतान इतने विस्तृत राज्य को अपने नियंत्रण में नहीं रख सका । यदि उसका राज्य केवल उत्तरी भारत में ही फैला होता तो वह इतना असफल नहीं होता । परन्तु वह उत्तर और दक्षिण में दूर तक फैला होने से सुलतान दूर-दूर के विद्रोहों को कुचलने में असमर्थ रहा । यदि वह एक स्थान के विद्रोह को दमन करने के लिये राज्य के एक छोर पर चला जाता तो दूसरे छोर के विद्रोहियों का साहस बढ़ जाता था । इसलिये विद्रोहियों के कुचक्रों का अन्त नहीं हो पाया और वह असफल हो गया ।

इस प्रकार मुहम्मद तुगलक की असफलता में स्वयं उसका, उसकी प्रजा, उसके भाग्य तथा उसके कर्मचारियों व प्रकृति का हाथ रहा है । सुलतान मुहम्मद को ही अकेले इसका उत्तरदायी ठहराना युक्ति-युक्त नहीं है ।

मुहम्मद तुगलक की विफलता के कारण

मुहम्मद का स्वयं का उत्तरदायित्व	अन्य परिस्थितियों का उत्तरदायित्व
(i) हठी और उतावली प्रकृति,	(i) अनुभवी पदाधिकारियों व परामर्शदाताओं का अभाव,
(ii) उग्र और क्रोधी,	(ii) प्रजा का असन्तोष व असहयोग,
(iii) व्यक्ति - परख का अभाव,	(iii) योजनाएं समय से आगे
(iv) उदार धर्म-निरपेक्ष नीति,	(iv) प्रकृति के प्रकोप,
	(v) विदेशी अमीरों की कृतघ्नता,
	(vi) प्रांतीय शासकों के विद्रोह,
	(vii) साम्राज्य की विशालता,

मुहम्मद तुगलक और उलमा वर्ग

विद्वानों का मत है कि सुलतान मुहम्मद का शासन-काल सुलतान और उलमा वर्ग के पारस्परिक संघर्ष की कहानी है। उसके समय में दार्शनिक तर्क और धार्मिक कट्टरता में परस्पर संघर्ष हुआ।

साम्प्रदायिक मुस्लिम राज्य—मुहम्मद तुगलक के सुलतान बनने तक भारत में स्थापित दिल्ली सल्तनत एक साम्प्रदायिक मुस्लिम राज्य था। इस साम्प्रदायिक राज्य का लक्ष्य खुदा की सेवा करना और इस्लाम का प्रसार करना था। राज्य पर धर्म का अनिर्वचनीय प्रभाव था। उलमा लोग न्यायाधीश होते थे और वे इस्लाम धर्म और कुरान के अनुसार कानून की व्याख्या करते थे और मुकदमों को सुनकर निर्णय देते थे। इससे गैर मुस्लिमों के प्रति घोर अन्याय होता था तथा दण्ड पक्षपातपूर्ण होता था एवं अनेक निरपराध व्यक्तियों के खून की होली होती थी।

उलमा वर्ग के अनुसार आदर्श मुस्लिम राज्य वह होता था जो हिन्दू राज्यों से युद्ध करे, और उन्हें परास्त कर मुस्लिम राज्य में सम्मिलित करले, हिन्दू प्रजा की विभिन्न स्वतन्त्रताओं का अपहरण करे, उन पर धार्मिक प्रतिबन्ध और कठोर नियन्त्रण लगाये तथा उन्हें कर देने वाला जिम्मी बनावे। जिम्मियों को निर्ममता से कुचलना और हिन्दुओं के विरुद्ध जिहाद या धर्मयुद्ध करना मस्लिम राज्य का एक प्रमुख कर्तव्य माना जाता था। इस्लामी राज्य का यह लक्ष्य समझा जाता था कि वह दार-उल-हर्व (गैर मुस्लिम देश) को दार-उल-इस्लाम (इस्लामी देश में) परिवर्तित कर दे। यह एक ऐसा कार्य माना जाता था जिससे कि खुदा की सेवा की जा सकती थी। सुलतान अपने जीवन में ऐसे कार्य करना अपना परम कर्तव्य समझता था। वह इस्लाम धर्म और कुरान के अनुसार उलमाओं के परामर्श से ऐसे कार्य करता था।

ऐसी इस्लामी धार्मिक नीति का परिणाम यह हुआ कि सल्तनत की हिन्दू प्रजा को अन्य करों के साथ-साथ जजिया भी देना पड़ता था। उनके ऊपर अनेक राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। उन्हें हर प्रकार से यातनाएँ देकर, नीचा दिखाकर, दासता का जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य किया जाता था।

मुहम्मद तुगलक ने इस्लामी राज्य की इस नीति में थोड़ा परिवर्तन किया। उसने धर्म और राजनीति को पृथक करने का प्रयास किया और राजनीति एवं प्रशासन में उलमाओं के प्रभाव को कम करने के प्रयत्न किये। उसने शासन-व्यवस्था को धर्म से दूर रखकर सुधारा। उसने उलमाओं के प्रति निम्नलिखित नीति अपनायी:—

(१) मुल्ला, मौलवी या शेख योग्यता और दक्षता रखने पर ही प्रशासन में ऊँचे पदों पर नियुक्त किये जा सकते थे। प्रशासन में उनके विशेष अधिकार समाप्त कर दिये।

(२) उसने उलमा वर्ग के विद्वानों के परामर्श को स्वीकार नहीं किया। परामर्श लेने पर वह उसे कार्यान्वित करने या उसे मानने को बाध्य नहीं था।

(३) उसने उलमाओं के न्याय सम्बन्धी अधिकार को भी समाप्त कर दिया। न्यायदान में उलमाओं का निर्णय अन्तिम माना जाता था तथा शेख, मुल्ला और

मौलवियों को अपराध करने पर दण्ड नहीं दिया जाता था। मुहम्मद तुगलक ने इस प्रथा को समाप्त कर दिया। उसने उल्माओं के निर्णय के विरुद्ध अपील करने का अधिकार दिया। वह स्वयं राज्य सभा में अपीलें सुनता था और काजियों के निर्णयों को दोहरा सकता था, उनमें परिवर्तन एवं संशोधन कर सकता था। इसके अतिरिक्त उसने जब कभी भी काजियों, मुफ्तियों, मुल्लाओं, शेखों आदि को अपराधी या दोषी पाया, तो उन्हें दण्डित किया। मूरयात्री इब्नबतूता ने अनेक स्थलों पर यह वर्णन किया है कि सुलतान द्वारा उल्मा वर्ग के लोग गम्भीरता से दण्डित किये गये और उन पर बड़े-बड़े आर्थिक दण्ड लगाये गये।

(४) मौलवियों और शेखों को जो भूमि अनुदान में दी जाती थी, उस पर कठोर नियन्त्रण रखा गया और ऐसी भूमि के उपभोक्ताओं (मुतवलिसों) पर राजकीय कर लगाये गये।

(५) इस्लामी कानून के अनुसार चार कर खिराज, जकात, जजिया और खम्स लगाये जाते थे। परन्तु मुहम्मद की आर्थिक कठिनाइयों के निवारणार्थ एवं रिक्त राजकोष की पूर्ति के लिये उसने इन करों के अतिरिक्त और भी अन्य कर लगाये। इन करों का विशद् विवरण "फतुहाते फिरोजशाही" में है। नवीन कर लगाना इस्लामी परम्पराओं के प्रतिकूल था, पर मुहम्मद तुगलक ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इसकी अवहेलना की। जब इस प्रकार सुलतान ने चार करों के अतिरिक्त अन्य कर लगाये तो मुस्लिम प्रजा के मन में यह धारणा हो गयी कि सुलतान कुरान मे निहित कार्य नहीं करता। इसलिये धार्मिक और उल्मा लोग उसके विरोधी हो गये।

(६) इस्लामी कानून के अनुसार युद्ध के समय और बाद में लूटे हुए माल (खम्स) में से $\frac{4}{5}$ भाग सैनिकों को वितरित कर दिया जाता था और शेष $\frac{1}{5}$ भाग राजकोष में जमा कर दिया जाता था। मुहम्मद तुगलक ने अलाउद्दीन के समान इसे बदल दिया अर्थात् राजकोष में $\frac{4}{5}$ भाग जमा किया जाता था और $\frac{1}{5}$ भाग सैनिकों में वितरित किया जाता था।

(७) इस्लामी राज्य की यह परम्परा थी कि उल्मा वर्ग के जिन व्यक्तियों के पास भूमि होती थी, उस भूमि पर उन्हें किसी भी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था। परन्तु मुहम्मद तुगलक ने इसकी अवहेलना की। उसने उल्माओं की भूमि पर कर लगाये और उनसे कर वसूल किये तथा उन्हें दण्ड भी दिये।

(८) इस्लामी राज्य में हिन्दुओं के प्रति जो नीति उल्माओं के परामर्श से अपनायी जाती थी, मुहम्मद तुगलक ने उसमें भी परिवर्तन किया। वह हिन्दुओं के प्रति उतना धर्मान्ध और कट्टर नहीं था, जैसा कि अलाउद्दीन खिलजी था। उसने हिन्दुओं के प्रति उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनायी। उसने मन्दिरों और मूर्तियों को विध्वंस नहीं किया। हिन्दुओं के प्रति इस उदार नीति को देखकर धर्मान्ध उल्मा वर्ग सुलतान से असन्तुष्ट हो गया और परोक्ष रूप में उसका विरोधी हो गया।

मुहम्मद तुगलक की ऐसी नीति के कारण उसमें और उलमाओं में पारस्परिक वैमनस्य और संघर्ष अवश्यम्भावी था। उलमा वर्ग के लोग मुहम्मद के कार्यों की कटु आलोचना करते थे, उस पर अनेक मिथ्या दोषारोपण करते थे और उसकी विभिन्न योजनाओं के कारण उसे रक्तपिपासु, सनकी और पागल भी कहते थे। परन्तु उनका ऐसा प्रलाप व्यर्थ था। मुहम्मद ने उलमा वर्ग के विरुद्ध जो भी कदम उठाये वे राज्य की तत्कालीन आवश्यकताओं तथा समुचित न्यायोचित प्रशासन के लिये आवश्यक थे।

सुलतान मुहम्मद तुगलक का मूल्यांकन

मध्यकालीन इतिहास में मुहम्मद तुगलक एक अत्यन्त आकर्षक, विचित्र व्यक्तित्व रखने वाला सुलतान है। उसके चरित्र और कार्यों का मूल्यांकन निम्नलिखित है। इसके दो पक्ष हैं—प्रथम उज्ज्वल पक्ष या सद्गुणसम्पन्नता और द्वितीय उसकी दुर्बलताएँ या दुर्गुण या अन्धकारमय पक्ष। इनका विवेचन अधोलिखित है:—

उज्ज्वल पक्ष

(१) **सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न सुलतान**—सम्भवतः मध्ययुग का सबसे अधिक प्रतिभासम्पन्न और विचित्र व्यक्तित्व वाला सुलतान मुहम्मद तुगलक था। वह उच्चकोटि का विद्वान, फारसी साहित्य का प्रकांड पण्डित, सुरुचिपूर्ण साहित्यकार, मार्मिक आलोचक तथा ओजस्वी वक्ता था। दर्शन, नीति, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, तर्क शास्त्र आदि में उसे विशेष अभिरुचि थी। धार्मिक साहित्य का उसने गम्भीर अनुशीलन किया था। कुरान और हदीस का उसे अच्छा अध्ययन था। उसकी चतुर्मुखी प्रतिभा और तर्कशास्त्र की योग्यता के कारण अनेक विद्वान उसे अपने युग का अरस्तू कहते हैं। उसने धर्म तथा दर्शन के ग्रंथों का एक सत्य आलोचक की स्वतन्त्र बुद्धि से अनुशीलन किया था। उसकी स्मरण शक्ति अद्भुत और बुद्धि कुशाग्र थी। असंख्य कविताएँ उसे कण्ठस्थ थीं। बर्नी के अनुसार "सिकन्दरनामे" का एक बहुत बड़ा अंश उसे कंठस्थ था। "अबु मुस्लिमनामा" तथा "तारीख-ए-मुहम्मदी" उसे सम्पूर्ण याद थे। शाहनामे और अमीर हमजा की अनेक कहानियां और प्रसंग उसे कण्ठस्थ थे। उसने अपनी विद्वत्ता, प्रगल्भता, ओजस्विता, प्रतिभा, वाक्पटुता, नैतिक आचरण और गुण सम्पन्नता से समकालीन व्यक्तियों को आश्चर्यचकित कर दिया था। लिखने तथा भाषण देने की दोनों कलाओं में वह निपुण था। उसकी वाक्शक्ति अत्यन्त प्रभावोत्पादक, लेखन कला अत्यन्त आकर्षक तथा काव्य रचना अत्यन्त मनमोहक थी। समकालीन इतिहासकारों ने उसके निबन्ध चातुर्य तथा सुलेखन कला की खूब प्रशंसा की है। लेखन शैली पर उसे पूर्ण अधिकार था। अधिकांश राज-घोषणाएँ और आदेश उसने स्वयं लिखे थे।

वह एक भावुक कवि और विचारशील लेखक था। वह अरबी और फारसी अच्छी तरह लिख पढ़ सकता था। ललित कलाओं और संगीत में उसे अधिक रुचि थी। इन्हीं गुणों के कारण वह विद्वानों और कवियों का संरक्षक और आश्रयदाता था। उसकी राजसभामें शरा के आलिम (कुरान के विद्वान) पवित्र चरित्रवान व्यक्ति, सूफी,

कवि और लेखक बहुसंख्या में विद्यमान थे। बर्नी और इब्नबतूता उसकी राजसभा के प्रसिद्ध विद्वान थे। कवियों को वह अनुदान और पुरस्कार देता था। वह कसीदे (प्रशस्ति) के छन्दों को गिनवाकर प्रत्येक छन्द के लिये दस सहस्र मनके प्रदान करता था।

महान विद्वान, अध्ययनशील और कल्पना वाला सुलतान होने के कारण ही उसमें शासन में नवीन मौलिक परिवर्तन करने की तीव्र लालसा थी और इन परिवर्तनों के लिये वह उतावला हो उठता था। उसकी समस्त योजनाएँ मौलिकतापूर्ण थीं जो उसके शास्त्रीय और विज्ञान सम्बन्धी अपार ज्ञान की द्योतक हैं। उसके नवीन सिक्के कला की दृष्टि से श्रेष्ठ थे और उसकी सांकेतिक मुद्रा उस युग के लिये एक सर्वथा नवीन प्रयोग था। वास्तव में वह इतना विद्वान और अध्ययनशील सुलतान था कि शासन में पुरानापन उसे बिल्कुल पसन्द नहीं था। विभिन्न ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन, और कल्पनाशक्ति के कारण उसके मस्तिष्क में नवीन-नवीन सूझें व योजनाएँ निकलती थीं। ऐसा विद्वान और योजनाओं का धनी सुलतान दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठा था।

(२) **सहृदय, उदार और दानशील सुलतान**—एक विद्वान और कवि होने से मुहम्मद तुगलक एक भावुक और सहृदय व्यक्ति था। उसे अपने परिवार के सदस्यों और सम्बन्धियों से अनुराग था और वह सहृदय मित्र था। वह एक नम्र, स्नेही और भावुक व्यक्ति था जो दूसरों के सम्मुख अपना हृदय खोल कर रख देता था। उसकी भावुकता का परिचय इस बात से मिलता है कि वह अपनी असफलताओं से दुखी व निराश होकर अपनी विवशता का वर्णन अपने सहयोगियों के सामने करता था। उसने स्वयं कहा है, "वहो लोग मेरे विरुद्ध होते जा रहे हैं, जिन्हें मैंने खुले हाथों से धन बाँटा है, गले से लगाया है। आज उन्हीं का व्यवहार मेरे प्रति मित्रता और वफादारी का नहीं रहा।" इस कथन से उसके दुखी हृदय का अनुमान होता है।

सुलतान मुहम्मद तुगलक एक अत्यन्त उदार और दानी व्यक्ति था जो विद्वानों, कवियों, लेखकों, कलाकारों, संतों, और निर्धनों को अपार धन दान में वितरित करता था और दान देते समय वह यह नहीं सोचता था कि उसका राजकोष समाप्त हो जायगा। मुहम्मद की दानशीलता की चर्चा अनेक इतिहासकारों ने की है। वे उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इब्नबतूता ने कहा है कि, "उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशिष्टता उसकी दानशीलता तथा दयालुता थी।" राजसिंहासन पर बैठते ही उसने अपना प्रजा में सोने के दीनार तथा चांदी के दिरहम मुक्तहस्त से वितरित किये। अलाउद्दीन ने जिन अमीरों और मलिकों को शक्तिहीन करने के लिये उनकी जागीरें और सम्पत्ति छीन ली थी, मुहम्मद ने उन्हें धन बांटकर पुनः धन-सम्पन्न कर दिया। उसने दुर्भिक्ष से पीड़ित कृषकों और प्रजाजनों को ऋण, धन, बीज, बैल, अन्य विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता उदारता से दी। इब्नबतूता ने स्वयं लिखा है कि, जब भारत में ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा कि एक मन अन्न का मूल्य छै दीनार हो गया तो उसने (मुहम्मद ने) राजकीय भंडारों से दिल्ली के सब निवासियों

को छै माह का भोजन बँटवा दिया। "सम्राट के आदेशानुसार न्यायाधीशों, मंत्रियों, तथा कर्मचारियों ने गलियों तथा बाजारों का निरीक्षण किया और सारे पीड़ित तथा भूखे व्यक्तियों को एक व्यक्ति को डेढ़ पौंड (मगरबी तौल) की दर से छै मास के लिये खाद्य सामग्री दे दी।" (इब्नबतूता)। उसने अपनी योजनाओं द्वारा प्रजा की क्षति होने पर, उसे पूरा किया और लोगों को मुआवजा दिया। राजधानी परिवर्तन से जिन लोगों की हानि हुई थी, उनकी क्षति पूर्ति की गयी। इसी प्रकार सांकेतिक मुद्रा योजना के विफल होने पर उसने अपनी प्रजा को ताँबे के सिक्कों के बदले में सोने के सिक्के दिये। ये उसकी उदारता के द्योतक हैं।

बर्नी ने मुहम्मद की दानशीलता के विषय में लिखा है, "वह दान-पुण्य करते समय योग्यता तथा अयोग्यता, परिचित या अपरिचित, देशी तथा विदेशी, धनी तथा निर्धन में कोई भेदभाव नहीं रखता था। सभी को एक समान समझता था। वह माँगने तथा प्रार्थना करने के पूर्व ही दान कर देता था।.... हातिम (अरब के कबीले का एक दानी सरदार), बरामिका (खुरासान में बल्ख का राजवंश), मअन जाइदा (एक महान दानी) तथा अन्य प्रसिद्ध दानियों ने जो धन-सम्पत्ति वर्षों में दान करके यश प्राप्त किया था, वह सब सुलतान मुहम्मद एक क्षण में ही प्रदान कर देता था।... वह विदेशियों को भी खुलकर दान देता था। उसकी दानशीलता की कहानी खुरासान, ईराक, सीस्तान, हिरात, मिश्र, दश्मिक तथा दुनिया के हर देश में प्रसिद्ध हो चुकी थी।"

इब्नबतूता ने भी सुलतान द्वारा दिये गये विभिन्न दानों और उपहारों का विशद् वर्णन किया है। सुलतान की दानशीलता और उदारता की कहानी कभी न समाप्त होने वाली अनुपम गाथा है।

(३) **श्रेष्ठ मानवीय गुण**—सुलतान मुहम्मद तुगलक में अनेक श्रेष्ठ मानवीय गुण भी थे। वह सदाचारी और पवित्र व्यक्ति था। उसमें उच्चकोटि का नैतिक बल, साहस और सद्व्यवहार तथा विनयशीलता थी। उसने घोषणा की थी कि, "मेरे राज्य का प्रत्येक वृद्ध मेरे पिता के स्थान पर है। प्रत्येक युवक भाई के समान है तथा प्रत्येक बालक पुत्रवत् है।" नारियों के लिये उसके हृदय में श्रद्धा और सम्मान था। अन्तःपुर में प्रवेश करने के पूर्व वह वहाँ सूचना भिजवा देता था, जिससे कि उससे पर्दा करने वाली राजभवन की महिलाएँ छिप जायँ और सुलतान की दृष्टि उन पर न पड़ सके। उसमें अटूट मातृभक्ति थी। वह अपनी माता मखदूम-ए-जहाँ के प्रति खूब श्रद्धा, भक्ति और सम्मान रखता था और उसकी आज्ञाओं व आदेशों का पालन करने में वह अपना गौरव समझता था। मुहम्मद अपने गुरुओं के प्रति भी अधिक श्रद्धालु था। उसने अपने गुरु कुतलुगखाँ का सम्मान करके उसे ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। अपने स्नेही मलिकों के साथ भी उसने अच्छा व्यवहार किया। व्यवहार और शिष्टता में वह मानवोचित और कुशल था।

(४) **धर्मपरायणता, धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता**—सुलतान मुहम्मद व्यक्तिगत रूप से कट्टर मुसलमान था। वह इस्लाम धर्म में पूर्ण विश्वास करता था। कुरान तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों का उसने अच्छा अध्ययन किया था।

वह इस्लाम के नियमों का दृढ़ता से पालन करता था । वह इबादत के नियमों को मानता था और पाँचों समय की नमाज पढ़ता था तथा नियमपूर्वक रोजे रखता था। वह धर्मपरायण, नेक, पवित्र, जीवन वाला मुसलमान था। इस्लामी जगत के धार्मिक नेता खलीफा के प्रति वह अपार श्रद्धा रखता था और उसका अत्यधिक सम्मान करता था। उसने दिल्ली में खलीफा के प्रतिनिधि का स्वागत नंगे पैरों से किया तथा राजभवन के प्रवेश द्वारों पर उसने खलीफा का नाम अंकित करवा दिया। अपने दैनिक जीवन में वह धार्मिक और पुण्यात्मा था तथा उसका व्यक्तिगत जीवन संयत ही नहीं अपितु कठोर भी था। उसका व्यक्तित्व आचरण पावन व नैतिकतापूर्ण था। अनैतिकता और दुराचार उसमें नहीं था। अपने युग के सामान्य दुर्गुणों और राजकीय व्यसनों से वह मुक्त था।

इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी होते हुए भी उसमें धर्मान्धता, संकीर्णता और साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं थी। इस्लाम के प्रति दृढ़ आस्था रखने पर भी वह अन्य धर्मों के प्रति उदार और सहिष्णु था। हिन्दुओं के प्रति उसमें धार्मिक उदारता और सहिष्णुता थी। उसने हिन्दुओं पर कोई धार्मिक अत्याचार नहीं किये। व्यक्तिगत रूप से उसने हिन्दुओं को कोई कष्ट नहीं पहुँचाया। विद्वान होने से उसमें धार्मिक संकीर्णता व कट्टरता नहीं थी। इस्लामी शासक होने पर भी वह प्रशासन और राजनीति में धर्मनिरपेक्ष था। उसने मुल्ला, मौलवियों, काजियों, और शेखों को प्रशासन और राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करने दिया। बर्नी का कथन है कि "वह मुसलमानों को दंड देने तथा सैयदों, सूफियों, उलमाओं, आलिमों, सुन्नियों, शरीफों को भी दंड देने में नहीं हिचकता था।"

(५) **सुलतान की श्रेष्ठ न्यायपरायणता**—सुलतान मुहम्मद अपनी श्रेष्ठ न्यायपरायणता और निष्पक्षता के लिये प्रसिद्ध था। वह न्यायप्रिय होने से चाहता था कि प्रजा के साथ ठीक रूप से न्याय हो। उसकी न्यायप्रियता और हिन्दू-मुसलमानों, शिया-सुन्नियों, सूफी-सैयदों के साथ उसका पक्षपात रहित व्यवहार विशेष उल्लेखनीय है। उसके न्याय का द्वार सबके लिये खुला था और वह न्याय के सम्मुख सबको समान समझता था। न्याय करना वह शासक का प्रमुख कर्त्तव्य मानता था और वह सर्वोच्च न्यायाधिकारी था। उलमा वर्ग के व्यक्तियों के विरुद्ध शिकायत आने पर वह उन्हें भी न्यायालय में खड़ा कर अपराधी होने पर कठोर दंड देता था। इब्नबतूता के अनुसार सुलतान मुहम्मद छोटे-छोटे दोषों के लिये भी भयंकर अपराधों के अनुरूप दंड देता था। इस प्रकार दंड देने का साहस उससे पूर्व किसी भी सुलतान ने नहीं किया। इब्नबतूता ने उसकी कठोर निर्मम दंड-व्यवस्था की आलोचना की है। परन्तु साथ ही उसकी न्यायपरायणता के अनेक उदाहरण भी दिये हैं। कभी-कभी तो सुलतान न्यायालय में उपस्थित होकर, कटघरों में खड़ा होकर न्याय की मांग करता था। वह साधारण नागरिक के समान न्यायाधीश के हाथों दंड स्वीकार करता था। इब्नबतूता के अनुसार एक बार एक हिन्दू ने सुलतान के विरुद्ध न्यायालय में काजी से यह शिकायत की कि सुलतान ने उसके निर्दोष भाई को दंड दिया है। इस पर सुलतान स्वयं काजी के न्यायालय में उपस्थित हुआ और निवेदन किया कि

यदि उसने निर्दोष व्यक्ति को दंडित किया है तो उसे अपराध की गरिमा के अनुरूप दंड दिया जाय। काजी ने सुलतान के विरुद्ध निर्णय दिया। सुलतान ने उस हिन्दू को समुचित धन देकर अपने अपराध का प्रायश्चित किया। एक समय एक मुसलमान ने न्यायालय में यह शिकायत की कि सुलतान ने उसकी सम्पत्ति अन्याय से बलपूर्वक छीन ली। इसे सत्य प्रमाणित होने पर सुलतान ने शीघ्र ही उसकी सम्पत्ति लौटा दी। एक अन्य अवसर पर अपराध के दंड स्वरूप उसने इक्कीस कोड़े खाये।

(६) **महत्वाकांक्षी सुलतान**—सुलतान मुहम्मद तुगलक अपने युग का एक बड़ा महत्वाकांक्षी सुलतान था। वह शारीरिक और मानसिक दृष्टि से वीर तथा साहसी था। युद्ध में विजय के सभी साधन उसके पास उपलब्ध थे। इसलिये वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी हो गया था। बर्नी के अनुसार, "उसकी हार्दिक आकांक्षा थी कि वह समस्त जिन्नातों और मानव जाति पर राज्य करे। शैशवकाल से ही उसके हृदय में सुलेमान तथा सिकन्दर बनने की उत्कट महत्वाकांक्षा थी। बाल्यकाल से ही उसके हृदय में महमूद, संजर, कैकुबाद, तथा खुसरो की परम्परा पर चलने की इच्छा उत्पन्न हो गयी थी। अपने साम्राज्य विस्तार के लिये उसने विजय अभियान आयोजित किये और शत्रुओं के दमन के लिये भरसक प्रयत्न किये। अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के हेतु उसने सेना और धन दोनों ही उपलब्ध कर लिये थे। यह बात अलग है कि उसे अपने विजय अभियानों में अच्छी सफलताएँ नहीं प्राप्त हुईं। प्रबल उत्कट महत्वाकांक्षा के कारण सुलतान में कतिपय दुर्गुण भी उत्पन्न हो गये थे, जैसे स्वभाव की उग्रता, उतावलापन, हठी प्रकृति, अहंकार आदि। वह अपने आदेशों को सर्वोपरि मानता था और जो कोई उसका विरोध या अवहेलना करता था, उसे वह कठोर दंड देता था।

(७) **कुशल राजनीतिज्ञ**—यद्यपि सुलतान मुहम्मद अपनी सभी योजनाओं में असफल रहा, परन्तु उसकी इन योजनाओं से उसके एक कुशल राजनीतिज्ञ होने का परिचय मिलता है। निस्संदेह वह अपनी योजनाओं में विफल-मनोरथ रहा, परन्तु इसका उत्तरदायित्व उन परिस्थितियों और पदाधिकारियों पर भी है जिन पर उन योजनाओं को कार्यान्वित करने का भार सौंपा गया था। यदि सुलतान मुहम्मद तुगलक को मलिक काफूरखाँ, गयासुद्दीन तुगलक गाजी तथा काजी अला-उलमुल्क जैसे सहयोगी और अधिकारी मिल जाते तो उसे निश्चित ही सफलता प्राप्त होती।

(८) **अच्छा निर्माता**—सुलतान मुहम्मद में निर्माण करने की प्रवृत्ति थी और भवन निर्माण में उसे अधिक रुचि भी थी। यद्यपि उत्पातों और विद्रोहों के दमन में वह अत्यधिक संलग्न रहा, फिर भी उसने समय निकाल कर अनेक निर्माण कार्य किये। उसने दिल्ली में "दारे सरा" नामक राजभवन बनवाया था और इसके प्रवेश द्वारों पर कई शहनाई वादक नियुक्त किये थे। राजभवन में लकड़ी के चमकीली पालिश वाले स्तम्भ थे तथा लकड़ी की छतें थीं जिन पर आकर्षक पच्चीकारी और सुन्दर चित्रकारी थी। इब्नबतूता ने इस राजमहल का वर्णन किया है।

दिल्ली में उसने नवीन भवनों का निर्माण किया। संभल में उसने एक बहुत बड़ी मसजिद बनवायी थी। बदायूँ में इल्तुतमिश के पुत्र रुकनुद्दीन ने एक बड़ी मसजिद

बनवायी थी, इसे शम्सी मसजिद कहते थे। मुहम्मद ने इस शम्सी मसजिद का जीर्णोद्धार भी करवाया था।

मुहम्मद तुगलक ने "जहांपनाह" नामक एक नयी राजधानी दिल्ली में बसायी। यहां उसने अनेक भवन निर्मित करवाये। इन भवनों के निर्माण में उसे अपने भवन विशेषज्ञ अहमद अयाजसे खूब सहायता प्राप्त हुई। अब इस समय दिल्ली में चार प्रमुख नगर और राजधानियां थीं प्रथम, पृथ्वीराज चौहान के समय की दिल्ली और उसके आस-पास दास सुलतानों द्वारा निर्मित भवन व मसजिद। द्वितीय, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा बसाया गया "शहर ने"। तृतीय, गयासुद्दीन तुगलक द्वारा बसाया हुआ तुगलकाबाद और चतुर्थ, मुहम्मद तुगलक द्वारा बसाया हुआ "जहांपनाह" नगर। मुहम्मद ने इन नगरों को मंगोलों और खोखरों के आक्रमणों से बचाने के लिये इनके चारों ओर एक विशाल लम्बी दीवार बनवाने की योजना बनायी और इसका कार्य प्रारम्भ कर दिया। पर विद्रोहों के दमन में तथा अन्य योजनाओं में अत्यधिक व्यस्त रहने से वह इस कार्य को पूर्ण नहीं कर सका।

(९) **सुयोग्य सेनापति**–सुलतान मुहम्मद एक सुयोग्य सेनानायक था। वह युद्धकला से भली-भांति परिचित था। उसने अपने जीवनके पन्द्रह वर्ष केवल युद्धोंमें व्यतीत किये और जीवन के अन्तिम वर्षों में विद्रोहियों से संघर्ष और युद्ध करने में बिताये और अपनी सामरिक प्रतिभा का परिचय दिया। उसने बड़े साहस, वीरता और रणकुशलता से शत्रुओं का सामना किया और उसका देहावसान भी युद्ध अभियान में ही हुआ। जब कभी वह रणक्षेत्र में स्वयं उपस्थित हुआ और सेना का संचालन किया, शत्रु और विद्रोही परास्त हुए, चाहे उसके लौट जाने पर वे फिर उसके विरुद्ध हो गये। वह एक वीर और साहसी सेनानायक था जो विपरीत परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता था। इतिहासकारों ने उसके सनिक गुणों की प्रशंसा की है।

(१०) **प्रजा हितैषी सुलतान**—मुहम्मद तुगलक प्रजा का शुभचिंतक सुलतान था। उसने राज्य और प्रजा हित में अपनी मौलिक योजनाएँ निर्मित कीं। यह बात अलग है कि वह अनेक परिस्थितियों के कारण विफल मनोरथ रहा। उसने दुर्भिक्ष काल में और उसके बाद भी कृषि की उन्नति के लिये प्रयत्न किये। कृषकों को आर्थिक सहायता दी। कृषि के निरीक्षण के लिए "अमीर कोही" नामक विशेष अधिकारी नियुक्त किये। ये कृषकों को तकावी व ऋण देने के कार्य भी करते थे। वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योगों की ओर भी सुलतान ने ध्यान दिया। वस्तुओं के निर्माण और उनके क्रयविक्रय के लिये निर्माणशाला स्थापित की गयी इसमें सुल्तान, अमीरों, मलिकों व अन्य पदाधिकारियों के लिये रेश्मी वस्त्र बुनने के लिये चार सहस्त्र बुनकर कार्य करते थे। राजमहल की महिलाओं तथा सामन्त परिवार की स्त्रियों के लिये भी स्वर्ण और चांदी के तारों के कसीदे और जरी बूटे के काम करने वाले सहस्त्रों शिल्पी भी नियुक्त किये गये थे। राजकीय पुरुषों और महिलाओं के लिये बेशकीमती परिधान बनाने तथा अन्य वस्तुओं के बनाने के लिये भी शिल्पी थे।

सुलतान आलिमों तथा उलमा वर्ग के लोगों व निस्सहाय व्यक्तियों को पुरस्कार, दान, अनुदान और उपहार देता था और उसके लिए एक उपहार विभाग स्थापित

किया गया था। सुलतान जिस पर प्रसन्न होकर पुरस्कार या उपहार देना चाहता था, उसे "खत-ए-खुर्द" दे दिया जाता था जिसे दिखाकर वह व्यक्ति राजकोष से उपहार या पुरस्कार ले सकता था।

समाज की बुराइयों को भी उसने दूर करने का प्रयास किया। और हिन्दुओं में प्रचलित सती-प्रथा को बन्द करवाने का प्रयत्न किया। न्याय के लिये वह जनता की फरियादों को सुनता था और निर्णय देता था। राजधानी परिवर्तन और सांकेतिक मुद्रा प्रचलन में तथा दोआब में कर-वृद्धि के समय हुए जनता के कष्टों के निवारण के लिये उसने भरसक प्रयत्न किये। उनकी हानि के लिए उसने उन्हें मुआवजा भी दिया। यह बात अलग है कि जनता अपनी अविवेकशीलता और पिछड़ेपन के कारण सुलतान की मौलिक योजनाओं से लाभान्वित नहीं हो सकी।

अंधकार पक्ष (दुर्गुण और दुर्बलतायें)

पिछले पृष्ठों में सुलतान मुहम्मद की विशिष्टताओं का, उसके सद्‌गुणों का, तथा उज्ज्वल पक्ष का विवेचन किया गया है। अब उसके व्यक्तित्व व चरित्र के दूसरे पहलू का वर्णन होगा। इसमें उसके अभावों, दुर्गुणों, दुर्बलताओं विफलताओं, आदि का विवेचन है।

(११) योग्य पर असफल शासक – इसमें संदेह नहीं कि सुलतान मुहम्मद तुगलक एक योग्य शासक था। उसने बलबन तथा अलाउद्दीन जैसे सफल और योग्य शासकों की भाँति शासन करने का प्रयास किया और प्रशासन व राजनीति को धर्म से पृथक रखा। शासन को धर्म के प्रभाव से अछूता रखकर उसे सुसंगठित करने का प्रयास किया। प्रशासकीय सुविधाओं की दृष्टि से उसने समस्त साम्राज्य को विभिन्न प्रदेशों या प्रान्तों में विभक्त किया और वहां योग्य शासकों को नियुक्त कर प्रांतीय प्रशासन को भी सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। प्रांतीय प्रशासन को चुस्त और दक्ष बनाने के लिए वह प्रांतीय शासकों का स्थानान्तर भी करता था और योग्य व सफल प्रशासकों व अधिकारियों को नियुक्त करता था। नियुक्ति व पदोन्नति में वह जाति, धर्म, वंश और सम्मान की अपेक्षा योग्यता दक्षता और प्रतिभा को अधिक महत्व देता था। उसमें जन-कल्याण की उत्कट इच्छा थी और वह अपनी प्रजा तथा राज्य को सुधारना चाहता था। खैराती अस्पताल का निर्माण, विद्यालयों को दान व अनुदान, निस्सहायों की आर्थिक सहायता, राजकीय कारखाने, शिल्पियों की व्यवस्था, व्यापारियों को संरक्षण, कृषि विकास के कार्य, हिन्दू-मुसलमानों, शिया-सुन्नियों, सूफियों और सैयदों के साथ उसका निष्पक्ष व्यवहार, उसकी निष्पक्ष न्याय-दान की व्यवस्था, सांकेतिक मुद्रा प्रचलन, राजधानी स्थानान्तरण तथा कतिपय अन्य सुधार उसकी प्रशासनिक प्रतिभा के परिचायक हैं। इब्नबतूता ने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिससे सुलतान की न्याय तथा कानून के प्रति श्रद्धा प्रकट होती है। वह अपनी न्यायप्रियता, उदारता, दानशीलता तथा निष्पक्षता के लिए विदेशों में भी प्रसिद्ध था।

सुलतान प्रशासन में स्वयं बड़ा परिश्रमी और अध्यवसायी था। प्रशासन की बारीकियों पर वह पूर्ण रूप से मनोयोगपूर्वक ध्यान देता था। प्रशासकीय कार्यों में सुलतान होने के पूर्व ही उसने अपनी विलक्षण योग्यता व प्रतिभा का परिचय दिया था।

सुलतान बनने के बाद उसने शासन में बड़े धैर्य, तत्परता, साहस और उत्साह से कार्य किये जिससे उसकी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का सहज ही परिचय प्राप्त हो सकता है। प्रशासन संबंधी ब्यौरे के मामलों में उसकी लगन तथा अध्यवसाय एक कहावत बन गयी थी। बर्नी के अनुसार "जहांदारी" (प्रशासकीय व्यवस्था) तथा "जहांगिरी" (दिग्विजय) में इस सुलतान की समान रूप से पहुंच थी। कुछ अन्य पूर्ववर्ती शासकों की भांति सुलतान मुहम्मद भी प्रजा-पालक और रक्षक बनना चाहता था, किंतु नियति ने उसे इस यश से वंचित कर दिया। योग्य शासक के सभी गुण उसमें विद्यमान होने पर भी वह असफल रहा। योग्य और प्रतिभावान होने पर भी वह सफल शासक नहीं था। उसका शासन विफलताओं की एक क्रमबद्ध गाथा है। उसकी सभी आकांक्षाए और योजनाएं निष्फल ही सिद्ध नहीं हुयी, अपितु उनके उलटे परिणाम हुए। यद्यपि शासक के रूप में उसकी विफलताओं के लिये प्रतिकूल परिस्थितियां, अविवेकी तथा पिछड़ी हुई प्रजा उत्तरदायी थी, परन्तु वह स्वयं भी अपनी दुर्बलताओं और दुर्गुणों के कारण असफलता के लिये उत्तरदायी है। यह कहना निरर्थक होगा कि सुलतान की भाग्यहीनता और प्रतिकूल परिस्थितियों ने उसकी योजनाओं को असफल कर दिया। सफल शासक के लिये आवश्यक व्यावहारिक अनुभव का उसमें नितांत अभाव था। निस्संदेह उसके कुछ सुधारों में उच्च राजनीतिक दूरदर्शिता और प्रशासकीय प्रतिभा की झलक अवश्य मिलती है, परन्तु उसमें सामान्य स्थिर बुद्धि, व्यावहारिक निर्णय, साधारण ज्ञान, धीरज और सन्तुलन का अभाव था। मुद्रा, राजस्व, कृषि आदि से सम्बन्धित सुधार और योजनाएं कागज पर तो रचनात्मक और ठोस थे, परन्तु व्यवहार में वे असफल थे। उन्हें कार्यान्वित करने में वे निष्फल सिद्ध हुयीं। उसकी योजनाएँ कल्पनाप्रसूत होती थीं जो सिद्धांत में तर्कपूर्ण तथा आकर्षक होती थीं, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से सर्वथा अनुपयुक्त होती थीं। यदि वह अपने मन का सन्तुलन बनाये रखता, साहस, परिश्रम और धैर्य से, व्यावहारिक बुद्धि से योजनाओं को कार्यान्वित करता, तो वह विषम परिस्थितियों पर विजय पाकर सफल हो जाता। यदि उसकी प्रजा विवेकहीन तथा पिछड़ी हुई थी और उसमे उसकी रचनात्मक योजनाओं को समझने की क्षमता नहीं थी तो सुलतान को एक चतुर तथा व्यवहार-कुशल शासक की भांति उसे अपने साथ लेकर चलना चाहिये था। योजनाओं को पूर्ण होने के पूर्व ही उन्हें नहीं छोड़ना चाहिये था।

इसके अतिरिक्त उसने समय तथा परिस्थिति की गति-विधि पर ध्यान नहीं दिया। उसे यह नहीं समझ पा रहा था कि उसकी योजनाओं की विफलता से जनता में तीव्र असन्तोष बढ़ रहा था। उसकी कठोर दंड नीति से, उल्मा वर्ग की उपेक्षा और तिरस्कार की नीति से उसके प्रति विरोध अधिकाधिक बढ़ रहा था तथा राज्य का संतुलन अव्यवस्थित हो गया था। इन दोषों के निराकरण के लिये यदि वह अपनी नीति में समयानुकूल परिवर्तन कर देता और परिस्थितियों के अनुसार कार्य करता तो उसे विफलता हाथ नहीं लगती और वह असफल शासक नहीं होता।

(१२) **उतावला और अभिमानी सुलतान**—अनेक सद् गुणों के साथ सुलतान मुहम्मद में दुर्बलताएँ और दुर्गुण भी थे। विनयशीलता का उसमें सर्वथा अभाव था और

प्रमाद तथा अहंकार का उसमें बाहुल्य था, उसे अपनी विद्वत्ता, पांडित्य, बुद्धि और तर्कशीलता पर इतना घमंड था कि वह अपने आगे दूसरे अनुभवी व्यक्तियों व अधिकारियों का परामर्श भी नहीं लेता था, दूसरों की सलाह और बात उसे जँचती ही नहीं थी। उसके विस्तृत गहन अध्ययन और ज्ञानकोष ने उसे आवश्यकता से भी अधिक आदर्शवादी व अभिमानी बना दिया था। वह अपनी योजनाओं को बिना पूर्ण तैयारी के जल्दबाजी से लागू कर देता था। प्रत्येक कार्य करने के लिये वह बड़ा आतुर हो जाता था। उसे बिना संपूर्ण किये ही छोड़ देता था। योजना कार्यान्वित करने में वह जितना आतुर होता था, योजना समाप्त करने में भी वह उतना ही आतुर होता था। जल्दबाजी, उतावलापन और आतुरता उसके दुर्गुण थे। जल्दबाजी में योजना को कार्यान्वित करते समय उत्पन्न कठिनाइयों से और विफलता से घबराकर वह पूरा परिणाम निकलने के पूर्व ही योजना को जल्दबाजी में समाप्त कर डालता था। इससे वह असफल शासक रहा।

(१३) **हठी और निर्मम**—मुहम्मद तुगलक हठी और अपनी धुन का पक्का था। जो धुन उसे आती उसे पूर्ण करता था, चाहे उसमें उसे कितनी ही कठिनाई आवे और प्रजा को कितना ही कष्ट क्यों न हो। दोआब में कर-वृद्धि और राजधानी परिवर्तन की योजनाएँ उसने हठपूर्वक पूर्ण कीं। विरोध करने पर दोआब में उसने भीषण नर-संहार किया और राजधानी के साथ दौलताबाद न जाने वालों को उसने निर्ममता से दंड दिया। राजधानी परिवर्तन में सारी प्रजा को दौलताबाद ले जाने की उसकी हठधर्मी थी। उसे अपनी भूलों का ज्ञान हो जाने पर भी वह उनके सुधारों का शीघ्र ही प्रयत्न नहीं करता था और हठवश अपने दृढ़ निश्चय पर ही चलता रहता था। दंड देने में भी वह हठी और कठोर हृदयी सुलतान था। इब्नबतूता के अनुसार उसके राजभवन के सामने सदा उसके द्वारा दंडित व्यक्तियों की लाशें पड़ी रहती थीं। क्रोधावेश में आने पर वह अपने मन का संतुलन खो बैठता था और निर्ममता से अपराधियों को कठोर दंड देता था। दंड देते समय वह विवेकहीन हो जाता था। खाल खिचवा लेना, हाथियों के पैरों तले कुचल देना, और तलवार से टुकड़े-टुकड़े करवा देना, आदि भयंकर दंड वह देता था। इब्नबतूता का कथन है कि इस प्रकार के भीषण दंड और यातनाओं को देखने वालों का भी रक्त ठंडा हो जाता था। राज्य तथा प्रजा को इससे बहुत कष्ट उठाने पड़े। बदायूंनी ने इसीलिये कहा है कि मुहम्मद तुगलक की मृत्यु से—"सुलतान को उसकी प्रजा से तथा प्रजा को सुलतान से मुक्ति मिल गयी"।

मुहम्मद तुगलक के सम्बन्ध में विभिन्न मत

भारत के इतिहास के विद्वानों ने सुलतान मुहम्मद की योजनाओं और सुधारों को दृष्टि में रखते हुए भिन्न-भिन्न प्रकार से उसके चरित्र एवं कार्यों का सिंहावलोकन किया है। मुहम्मद का जीवन, शासन व चरित्र विद्वानों के लिये चिंतन और विवाद का विषय बन गया है। इतिहासकारों के लिये वह एक जटिल पहेली, कठिन विवाद-ग्रस्त समस्या बन गया है और अध्ययनशील इतिहासकार भी एकमत नहीं हो सके।

कुछ इतिहासकारों की दृष्टि में मुहम्मद तुगलक विद्वान तथा दयालु था, परन्तु कुछ ने उसे पागल, सनकी, शैतान का अवतार, महामूर्ख, अन्यायी, राक्षस, और रक्तपिपासु बतलाया है। यदि एक ओर कुछ ने उसे दुर्भाग्यशाली आदर्शवादी, इस्लाम जगत का सबसे अधिक विद्वान मूर्ख सम्राट, नृशंस सुलतान और कट्टर मुसलमान बतलाया है, तो दूसरी ओर कुछ अन्य विद्वानों ने उसे धर्मपरायण, प्रजावत्सल, प्रतिभाशाली शासक, सुयोग्य व्यक्ति और अपने युग का अरस्तू बतलाया है। तत्कालीन इतिहासकार बर्नी और इब्नबतूता ने भी परस्पर विरोधी बातें लिखी हैं। वे अपने वर्णन में उसे नृशंस और धर्मनिष्ठ, प्रजाहितैषी और नृशंस बतलाते हैं। आज के यूरोपीय इतिहासकार भी मुहम्मद तुगलक के मूल्यांकन के विषय में एकमत नहीं हैं। यदि एलफिस्टन ने उसे पागल और सनकी कहा है तो हैवेल, टामस, एडवर्ड, स्मिथ आदि ने इस मत को मान लिया है, परन्तु गार्डिनर ब्राउन तथा अन्य इतिहासकार इस मत से असहमत हैं। उन्होंने मुहम्मद तुगलक के चरित्र को उज्ज्वल और प्रतिभापूर्ण बतलाया है। क्या वह असाधारण विद्वान अथवा मूर्ख व पागल सुलतान था, आदर्शवादी अथवा कल्पनावादी था, रक्त पिपासु नृशंस सुलतान था या प्रजाहितकारी शासक था, क्या वह अपने युग से आगे था, क्या वह मुद्रा निर्माताओं का सिरताज था, आदि परस्पर विरोधी मत हैं। मुहम्मद तुगलक के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व विभिन्न मतों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस सुलतान के विषय में प्रसिद्ध विद्वानों व इतिहासकारों के मत अधोलिखित हैं :—

इब्नबतूता का मत—"सब लोगों में सुलतान एक ऐसा व्यक्ति है जिसे सबसे अधिक दान देने और सबसे अधिक रक्त बहाने में आनन्द आता है। उसका द्वार कभी ऐसे भिखारी से जिसका उसने कष्ट निवारण कर दिया है और कभी ऐसे व्यक्ति के शव से जिसको वह प्रेम करता था और अब मार डाला है, खाली नहीं रहता था। लोगों में जिस प्रकार उसकी दया, साहस और दानशीलता की कहानियां प्रचलित हैं, वैसे ही उसके रक्तपात और प्रतिशोध की कहानियां भी सुनने को मिली हैं। इतना सब कुछ होने पर भी वह सर्वाधिक नम्र व्यक्ति था और न्याय तथा सच्चाई की रक्षार्थ सदैव लालायित रहता है। धार्मिक कृत्यों का वह भली-भांति पालन करता है। नमाज के सम्बन्ध में वह बड़ा कठोर है और उसकी उपेक्षा करने वालों को वह दंड देता है।"

बर्नी का मत—बर्नी ने भी सुलतान के चरित्र और कृत्यों की कटु आलोचना की है। इस का मत है कि, "मुहम्मद तुगलक अविवेकपूर्ण तथा निर्दयी सुलतान था जो मुसलमानों तक का रक्त बहाने में आनन्द प्राप्त करता था। उसकी यह घोषणा थी कि, "विद्रोहियों के लिये मेरा उपचार तलवार में है। मैं इसलिये तलवार का प्रयोग करता और दंड देता हूँ कि कष्ट सहन द्वारा रोग दूर हो जाय।"

एलफिन्सटन का मत—"यह सभी स्वीकार करते हैं कि मुहम्मद तुगलक अपने युग का एक योग्य शासक था, किंतु उसके सभी शासनोचित गुण व्यर्थ थे, क्योंकि उसमें कुछ ऐसी बातों का सम्मिश्रण था जिनके आधार पर सलतान ने ऐसे कार्य किये जिनसे यह प्रतीत होता है कि सुलतान मुहम्मद में पागलपन का अंश था।"

"It is admitted on all hands that he was most eloquent and accomplished prince of his age...yet the whole of these splendid talents and accomplishments were given to him in vain, they were accompanied by a perversion of judgement which after every allowance for intoxication of absolute power leaves us in doubt whether he was not affected by some degree of insanity."

—Elfinston.

विन्सेण्ट स्मिथ—"इस बात का ध्यान न करते हुए कि मुहम्मद तुगलक ऐसे कार्य करने का दोषी था जिनका लेखनी वर्णन नहीं कर सकती।...यह कहना पड़ेगा कि वह पूर्ण रूप से बुरा नहीं था। उसमें विरोधी गुणों का उसी प्रकार सम्मिश्रण था, जिस प्रकार अपने शासन के अंतिम काल में जहांगीर था।"

Not withstanding that Muhammad Tughlak was guilty of acts, which the pen shrinks from recording...He was not wholly evil. He was a mixture of opposites, as Jahangir was in his later years."

—V. Smith.

लेनपूल—इस इतिहासकार का भी मत है कि सुलतान मुहम्मद एक उच्च भावना वाला, श्रेष्ठ विचार वाला सुल्तान था जिसमें संतुलन, धैर्य और अनुपात का अभाव था और इसी कारण वह असफल भी रहा।[१]

सेवेल—"वह साधारण व्यक्तियों से बहुत ही ऊंचा था, पाशविक, राक्षस तथा मित्र का हृदय रखता हुआ एक साधु था।"

("He was something super human, monstrous, a saint with a heart of a devil or a friend with a saint." — Seville.)

गा. ब्राउन—इनका मत है कि वह पागल था और कल्पना-जगत में ही रहता था। वह अव्यावहारिक था ("That he was mad in a view of which contemp raries give no hint. He was visionary, his many sided practical and vigorous character forbids us to believe" —G. Brown.)

इरविन—इनका कथन है कि "सुलतान अपने प्रत्येक कार्य में अत्याचारी था तथा वृद्धावस्था में उसका संतुलन बिगड़ गया था।"

१—"He had brought exceptional abilities and a highly cultivated mind to the task of governing the greatest Indian empire that had so far been known and he had failed stupendously. Hence with high intentions, excellent ideals, but no balance or patience, no sense of proportion, Muhammad Tughlak was a trancsendant failure."

—Lanpoole.

डाक्टर मेंहदी हुसैन—"एक अक्षम सर्जन की भाँति उसने अपने साम्राज्यवादी शरीर से दूषित रक्त निकालने के लिये एक खतरनाक या क्रमबद्ध अनेक आपरेशन किये, परन्तु प्रत्येक आपरेशन में उसे असफलता मिली और शिकायतें आईं।"

("Like an in efficient surgeon, he performed a serious operation or a series of operations in the hope of letting the bad blood out of the body of his empire, but every operation brought forth complaints." —Dr. Mehdi Hussain.)

डाक्टर ईश्वरीप्रसाद—"मध्य युगके शासकों में मुहम्मद तुगलक निर्विवाद रूपसे सबसे अधिक योग्य शासक था। निस्संदेह वह सबसे अधिक विद्वान और गुणसम्पन्न था। ईश्वर ने उसे विलक्षण स्मृति, तीव्र बुद्धि दी थी और उसमें सभी प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करने की अत्यधिक शक्ति व योग्यता थी...वह एक सुसंस्कृत विद्वान, उच्च-कोटि का कवि था और वह तर्कशास्त्र, ज्योतिष, गणित, दर्शन, और भौतिक विज्ञानों में भी धुरंधर विद्वान था।"

"Muhammad Tughlaq was unequestionably the ablest man among the crowned heads of the middle ages......He was undoubtedly the most learned and accomplished. Nature had endowed him with a marvellous memory, a keen and penetrating intellect, and enormous capacity for assimilating knowledge of all kinds...... a cultured scholar and an accomplished poet, he was equally at home in logic, astronomy, mathematics, philosophy and physical sciences."

उपरोक्त विभिन्न मतों के विवेचन से सुलतान मुहम्मद के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है—

(१) मुहम्मद तुगलक में विभिन्नताओं का मिश्रण था, उसमें विरोधाभास था।
(२) वह पागल और मूर्ख सुल्तान था।
(३) वह रक्तपिपासु सुलतान था।
(४) वह अपने समय से आगे था।
(५) वह भाग्यहीन आदर्शवादी सुलतान था।

अब इन विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जायगा।

क्या सुलतान मुहम्मद में विरोधी गुणों व विभिन्नताओं का सम्मिश्रण था ?

विन्सेंट स्मिथ और डाक्टर ईश्वरीप्रसाद का मत है कि सुलतान मुहम्मद में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था, उसके कार्यों और विचारों में विरोधाभास था। उन्होंने सुलतान के कुछ गुणों और अवगुणों के आधार पर अपना ऐसा मत प्रगट किया है। इनके अनुसार सुलतान मुहम्मद विद्वान भी था और मूर्ख भी, उसमें उदारता और कठोरता थी, वह क्रूर भी था और दयालु भी था। एक ओर यदि वह नृशंसता से रक्तपात करता था तो दूसरी ओर वह अपार दान, उपहार और पुरस्कार देता था, यदि वह नृशंसता से कठोर दंड देता था और खालें खिचवा लेता था, तो दूसरी ओर

वह नम्र था, यदि वह न्यायप्रिय शासक था तो दूसरी ओर उसने प्रजा पर अनेक कर लगाकर उन्हें कष्ट पहुंचाये, यदि उसमें कुशाग्र बुद्धि और तर्क शक्ति थी, तो दूसरी ओर वह क्रोधी व आतुर स्वभाव का था। उसमें आदर्शवादी के साथ-साथ नृशंसता थी, आस्तिकता के साथ-साथ नास्तिकता थी।

बर्नी और इब्नबतूता ने भी अपने विवरणों में मुहम्मद तुगलक के चरित्र के विरोधाभास का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि कभी तो वह इतना दयालु हो जाता था कि लोग उसकी उदारता और दयालुता की प्रशंसा करते थे और कभी वह इतना निर्मम और नृशंस हो जाता था कि लोग उसका अमानुषिक दंड देखकर कांप उठते और उनका रक्त ठंडा पड़ जाता था। जब वह साधारण-से अपराध के लिये भी कठोर मृत्यु-दंड देता था तो उसकी न्यायपरायणता पर शंका होने लगती थी। दूसरी ओर छोटे से अपराध के लिये अपने आपको काजी के सम्मुख अपराधी के कटघरे में खड़े करके सजा प्राप्त करना, या कोड़े लगवाना देखकर उसकी न्यायप्रियता की दुहाई देना पड़ती है। धर्मनिष्ठ और इस्लाम का कट्टर अनुयायी होने पर भी, एक ओर उसने मुसलमानों की हत्याएं करवायी हैं, तो दूसरी ओर धर्मनिरपेक्ष नीति का अनुकरण कर गैर मुस्लिमों के प्रति उदारता और सहानुभूति की नीति अपनायी है। इससे विद्वानों का मत है कि मुहम्मद तुगलक के चरित्र में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था।

इस कथन के विरोध में डाक्टर मेंहदी हुसैन का मत है कि यद्यपि सुलतान में विरोधी गुण विद्यमान थे, परन्तु वे उसके जीवन के विभिन्न कालों में, समय की आवश्यकताओं के अनुसार प्रगट हुए थे। इनके प्रगट होने के लिये विशेष कारण और परिस्थितियां थीं। उसकी श्रेष्ठ योजनाओं में विफलता आ जाने पर उसके स्वभाव में विभिन्नता और विषमता आ गयी थी। इस दृष्टि से हम सुलतान को विभिन्नताओं का सम्मिश्रण नहीं कह सकते हैं।

यदि किसी भी महान व्यक्ति की दिनचर्या का विश्लेषण किया जाय तो उसमें विरोधी तत्व स्पष्ट दिखाई देंगे। मुहम्मदके चरित्र और दिनचर्या में परिस्थितियोंवश ऐसे विरोधाभास के गुण और असमानता के तत्व अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि मुहम्मद तुगलक एक ही समय में विरोधी बातें नहीं करता था। वह न्यायदान करते समय पूर्ण रूपसे निष्पक्ष होने का प्रयास करता था। दंड देते समय वह निर्मम हो जाता था क्योंकि उस युग में निष्ठुर दंड देने की प्रथा और आतंक से राज्य करने की नीति ही थी। इसी प्रकार वह धर्म-पालन में धर्मनिष्ठ और नेक था, परन्तु राजहित में उल्मा वर्ग के अपराधों की उपेक्षा नहीं करता था। सुलतान के ये कार्य वास्तविक विरोधाभास के, विभिन्नताओं के सम्मिश्रण के उदाहरण नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिये कि विरोधाभास के कार्य करने में प्रजा के प्रति और राज्य के हित में उसकी भावनाएं और उद्देश्य क्या थे। यह नितांत स्पष्ट है कि उसकी कर वृद्धि, राजधानी परिवर्तन या प्रतीक मुद्रा प्रचलन में जन-कल्याण और राजहित के उद्देश्य निहित थे। इन योजनाओं की असफलता में जब प्रजा को कष्ट पहुंचा, तब उसने उसकी क्षतिपूर्ति की। यदि वह प्रजा पर अत्याचार, अनाचार

और लोगों का शोषण करना चाहता तो वह दुर्भिक्ष में आर्थिक सहायता क्यों देता, राजधानी स्थानान्तरण में पुनः दिल्ली आने के लिये सुविधाएँ और धन क्यों देता, और प्रतीक मुद्राओं के बदले स्वर्ण के सिक्के क्यों देता ? इससे स्पष्ट है कि वह जनता को कष्ट देना नहीं चाहता था, अपितु उसमें जन-कल्याण की उत्कट इच्छा थी।

यहां यह भी विशेष उल्लेखनीय है कि उसकी समस्त योजनाएँ और सुधार उसकी बुद्धिमत्ता और अध्ययनशीलता के द्योतक हैं। वह कोरा काल्पनिक ही नहीं था। उसके आदर्श श्रेष्ठ थे और विचारधाराएँ उच्च थीं। किन्तु उसके कर्मचारियों की अयोग्यता, अक्षमता तथा प्रजा के असहयोग और असन्तोष से उसकी समस्त योजनाएँ असफल रहीं। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी थीं, जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था। ऐसी दशा में वह अपनी असफलताओं पर बहुत दुःखी हो गया था, और क्रोध के आवेश में लोगों के कृतघ्न होने पर उसने अपराधियों को कठोर दंड दिये। कठोरता और दयालुता तो एक महान शासक के गुण हैं। इतिहास में ऐसे अनेक राजाओं और शासकों का वर्णन है जो जीवन में नम्र, उदार हृदयी और दयालु थे, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे अत्यन्त ही निष्ठुर और निर्मम हो जाते थे। अतएव उपरोक्त तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुलतान मुहम्मद तुगलक में विभिन्न गुणावगुणों का सम्मिश्रण नहीं था, विरोधाभास नहीं था।

क्या सुलतान मुहम्मद तुगलक पागल और मूर्ख था ?

सुलतान मुहम्मद की विभिन्न सुधार योजनाओं के असफल होने के कारण कतिपय विद्वानों ने उसे पागल और मूर्ख तथा सनकी कहा है। यूरोपीय इतिहासकार एलफिस्टन ने उसे स्पष्ट शब्दों में पागल कहा है। कतिपय अन्य विद्वानों ने इसका समर्थन किया। मुहम्मद को पागल कहने के निम्नलिखित आधार हैं:—

(१) **सुलतान की निर्मम दंड व रक्तरंजन की प्रवृत्ति**—बर्नी और इब्नबतूता ने निर्मम नृशंस दंड और हत्याओं का वर्णन किया है। सुलतान के महल के सामने सदा कुछ लाशें पड़ी रहती थीं। ये सुलतान द्वारा मृत्यु-दंड पाये हुए व्यक्तियों की होती थीं। ऐसे नृशंस मृत्यु-दंड पर सुलतान को विक्षिप्त और सनकी कहना अनुचित है। मुहम्मद साधारण अपराधों के लिये मृत्युदंड इसलिये नहीं देता था कि वह पागल या सनकी था, परन्तु वह कठोर दंड इसलिये देता था कि वे उसका विरोध करते थे और मुहम्मद आतुर व क्रोधी स्वभाव का होने के कारण वह विरोध सहन नहीं कर सकता था। सुलतान मुहम्मद के प्रति न्याय करने की दृष्टि से भी यह स्मरण रखना होगा कि मध्ययुग में यूरोप व एशिया के समस्त देशों में मृत्युदंड खूब प्रचलित था। विरोधियों और अपराधियों को अंगभंग का दंड या मृत्युदंड देना उस युग में कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। यह कहना भी असत्य है कि मुहम्मद को रक्तपात में अधिक अभिरुचि थी और मनुष्यों का रक्त बहाने में उसे आनन्द आता था।

(२) **दोआब में करवृद्धि**—उसके पागल होने या सीड़ीपन के समर्थन में कहा जाता है कि उसने पागल की भाँति दोआब में दस-बीस गुना अधिक कर बढ़ा दिया और अत्यधिक निर्ममता से इन बढ़े हुए करों को वसूल किया गया। कर से पीछा छुड़ाने के लिये भागे हुए व्यक्तियों को जंगल में घेर कर पशुओं के समान उनका

शिकार किया। ये बातें उसके पागलपन को प्रगट करती हैं। पर यह आरोप भी निराधार है। मुहम्मद ने न तो दस-बीस गुनी कर-वृद्धि ही की थी और न जंगल में मनुष्यों का शिकार ही। दोआब सम्पन्न और समृद्धिशाली क्षेत्र था। बलबन और अलाउद्दीन ने भी वहाँ अनेक कर लगाये थे और इसी सम्पन्नता को ध्यान मे रखकर मुहम्मद ने भी कुछ प्रतिशत कर बढ़ा दिये। पर इतनी वृद्धि नहीं की गयी थी कि जनता उन बढ़े हुए करों को न दे सके। करों को न देने का और जनता को कष्ट होने का कारण कर वृद्धि नहीं थी, अपितु दोआब में दुर्भिक्ष का प्रसार होना था। जब सुलतान को वहां के निरंतर दुर्भिक्ष और जनता के कष्टों का पता लगा, तब उसने करों से लोगों को मुक्त किया, कृषकों को और पीड़ित जनता को आर्थिक सहायता दी, ऋण और तकाबी वितरित करवायी। ऐसा सुलतान पागल, मूर्ख और सनकी नहीं हो सकता।

बर्नी ने सुलतान की कटु आलोचना की है और इसी के आधार पर उसे पागल कह दिया गया। बर्नी ने सुलतान की तीव्र आलोचना की है, क्योंकि बर्नी उल्मा वर्ग में से था और सुलतान ने उल्मावर्ग का तिरस्कार किया था। इससे बर्नी सुलतान के प्रति द्वेष और वैमनस्य रखता था। इसके अतिरिक्त बर्नी बरान (आधुनिक बुलन्दशहर) का निवासी था। यह नगर दोआब में था इसलिये करवृद्धि के कारण बरान क्षेत्र के लोगों को और बर्नी को भी दुर्भिक्ष से अनेक कष्ट उठाने पड़े।

(३) **राजधानी का स्थानांतरण**—सुलतान ने पागल और मूर्ख शासक के समान कार्य करके अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित कर दी और एक लंगड़े को घसीट कर चालीस दिन में दिल्ली से दौलताबाद पहुंचाया गया। इब्नबतूता ने तो यहां तक कहा है कि सुलतान के निर्मम आदेश के परिणामस्वरूप दिल्ली में कुत्ते और बिल्ली भी नहीं रह गये थे। सुलतान पर दोषारोपण का यह आधार भी मिथ्या है। उसकी राजधानी परिवर्तन की योजना तर्कपूर्ण और लाभप्रद थी। विस्तृत साम्राज्य के लिये केन्द्रीय राजधानी आवश्यक थी। राजधानी परिवर्तन में उसने प्रजा को सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कीं और उनकी क्षतिपूर्ति भी की। विक्षिप्त और मूर्ख सुलतान कभी ऐसा नहीं करता है। यह योजना असफल रही और प्रजा को कष्ट हुए, इसका कारण सुलतान का सनकीपन और पागलपन नहीं था, अपितु योजना को कार्यान्वित करने का दूषित ढंग था। राजधानियाँ तो बीसवीं सदी में भी परिवर्तित हुई हैं। ऐसा करना कोई अनुचित नहीं है।

(४) **सांकेतिक मुद्रा प्रचलन**—सनकी और मूर्ख के समान उसने लोगों को कष्ट देने के लिये तांबे की सांकेतिक मुद्राएँ प्रचलित कीं। न तो उसने उन पर राज्य का एकाधिकार रखा और न उनकी कोई सीमा ही। पर इस आरोप को लगाने वाले यह विस्मरण कर जाते हैं कि इससे पूर्व चीन और ईरान में सांकेतिक मुद्राएँ प्रचलितकर दी गयी थीं और आज तो सांकेतिक मुद्रा-प्रचलन अर्थ-नीति का प्रमुख अंग बन गया है। सांकेतिक मुद्रा-योजना इसलिये असफल नहीं हुई कि पागल और मूर्ख नरेश ने उसे बिना सोचे-समझे प्रचलित किया था; अपितु उसकी विफलता का कारण प्रजा की विवेक-शून्यता, असहयोग और पिछड़ापन था।

(५) **खुरासान और हिमालय विजय योजना**—आवागमन की और पर्वतीय क्षेत्र की असुविधाओं की ओर ध्यान दिये बिना एक विक्षिप्त शासक की भांति उसने दूरस्थ देश खुरासान और हिमाचल तथा चीन को जीतने के लिये सैनिक तैयारी की और हिमाचल के लिये विशाल सेना भेजी जिसमें धन, जन और समय की अत्यधिक हानि हुई। यह आरोप भी तर्कहीन है। क्योंकि उसकी विजय अभियान की ये योजनाएँ इसलिये बनायी गयी थीं कि वह एक महत्वाकांक्षी सुलतान था, विजय से वह यश प्राप्त करना चाहता था, वह लगभग भारत के समस्त प्रमुख क्षेत्रों को अपने अधीन कर चुका था, अब भारत से बाहर वह विजय करने को उत्सुक था। खुरासान पर अभियान के लिये परिस्थिति भी अनुकूल थी। चीन विजय की उसकी कोई योजना नहीं थी, अपितु चीन से उसने अपने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। उसकी विजय योजना और अभियान में विक्षिप्तपन, मूर्खता या सनकीपन की कोई बात नहीं थी।

(६) **सुलतान की काल्पनिकता**—सुलतान मुहम्मद अत्यन्त ही भावुक और कल्पनाशील व्यक्ति था और एक विक्षिप्त के समान कल्पना जगत में रहकर काल्पनिक योजनाएँ बनाया करता था। वह कल्पना क्षेत्र में सुन्दर योजनाओं का सृजन करता रहता था और ये योजनाएँ व्यवहार के कर्मठ क्षेत्र में आते ही कुंठित, संकुचित तथा अनुपयुक्त हो जाती थीं। वह अपनी नवीनता और काल्पनिक योजना में व्यावहारिकता की उपेक्षा कर देता था। इससे वह विफल मनोरथ हुआ। परन्तु यह विशेष उल्लेखनीय है कि उसकी समस्त योजनाएँ उसके उर्वर मस्तिष्क, प्रखर बुद्धि और अलौकिक प्रतिभा की उपज थीं। उसकी सब योजनाएँ मूर्खता, पागलपन या सनक की प्रतीक न होकर उसकी अपूर्व बुद्धिमत्ता, महत्वाकांक्षा, और प्रतिभासम्पन्नता की प्रतीक हैं। उसके व्यापक दृष्टिकोण व प्रजावत्सलता की परिचायक हैं। उसकी ये योजनाएँ इसलिये असफल हुईं कि वे समय से आगे थीं और उन्हें उसकी पिछड़ी अविवेकशील जनता समझ न पायी और इसलिये वह उसे पूर्ण सहयोग और सहायता न दे सकी। और उसके कर्मचारी भी अयोग्य थे। यदि वह पागल और मूर्ख होता तो शासन-सुधार के लिये नवीन मौलिक योजनाएँ नहीं बना सकता था और न प्रजाहित की भावना उसके मन में रहती।

(७) **सुलतान की नास्तिकता और अधर्मीपन**—कतिपय विद्वानों ने मुहम्मद को काफिर, नास्तिक, तथा अधर्मी कहकर विक्षिप्त और मूर्ख प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उलमा वर्ग के लोगों ने वैमनस्यवश उसके विरुद्ध विष-वमन कर उसकी कटु आलोचना की। इससे विद्वानों ने उसे अधर्मी, नास्तिक, मुसलमानों का हत्यारा और पागल कह दिया।

नास्तिक होने की अपेक्षा वह बड़ा धार्मिक और आस्तिक था। वह पांचों समय नमाज पढ़ता था, उसने कुरान का अच्छा अध्ययन और मनन किया था। कुरान के अनुसार वह मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करता था। वह खलीफा को बड़े आदर और श्रद्धा से देखता था और अपने आप को खलीफा का दास समझता था। ये बातें उसकी धर्मपरायणता और आस्तिकता की परिचायक हैं। यदि वह नास्तिक, काफिर

और मूर्ख होता, तो जनता से ऐसी प्रार्थना नहीं करवाता कि, "प्रत्येक मुसलमान का यह कर्त्तव्य है कि वह इस सुलतान के लिये धर्मयुद्ध में विजय कामना के हेतु हृदय से प्रार्थना करे।" इसी प्रकार वह नमाज न पढ़ने वाले मुसलमानों को भी कठोर दंड देता था। एक बार नमाज न पढ़ने वाले नौ मुसलमानों की उसने हत्या करवा दी थी। सईस भी जो राजसभा के प्रवेश द्वार पर अश्व लिये खड़े रहते थे, नमाज के समय नमाज न पढ़ने पर दंडित किये गये थे। इसलिये मुहम्मद को नास्तिक और विक्षिप्त कहना उचित नहीं है।

(८) **समकालीन इतिहासकारों का मत**—बर्नी, इब्नबतूता और इसामी सुलतान के समकालीन थे। बर्नी सत्रह वर्षों तक सुलतान के सम्पर्क में रहा और सुलतान ने उससे अनेक बार परामर्श लिया। बर्नी उल्मा वर्ग का होने से वह सुलतान की सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता की नीति को सहन नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त सुलतान की नीति और आदेश के कारण उसकी जन्मभूमि भस्म करवा दी गयी थी। इब्नबतूता पर भी राजद्रोह का संदेह किया गया था। इसामी, उसके पिता और परिवार को राजधानी परिवर्तन में अत्यन्त ही कष्ट हुआ था। इसामी के पिता को तो सुलतान ने तलवार के आधार पर दिल्ली त्यागने के लिये बाध्य किया था। ये तीनों ही समकालीन इतिहासकार विभिन्न कारणों से सुलतान से असन्तुष्ट थे और इसलिये वे उसकी घोर निंदा करते और उसके कार्यों की कटु आलोचना करते थे। इन्हीं आलोचनाओं के आधार पर बाद के इतिहासकारों ने सुलतान मुहम्मद पर पागल और मूर्ख होने का दोषारोपण कर दिया। यद्यपि बर्नी और इब्नबतूता का वर्णन पक्षपात रहित नहीं है, परन्तु उन्होंने अपने विवरण में कहीं भी सुलतान को विक्षिप्त, सनकी या मूर्ख नहीं कहा है। उन्होंने सुलतान पर ऐसा लांछन नहीं लगाया है।

निष्कर्ष—उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि सुलतान मुहम्मद पागल, सनकी, झक्की या मूर्ख नहीं था, अपितु वह योग्यतम बुद्धिमान शासक था। दोआब में कर-वृद्धि, राजधानी परिवर्तन, प्रतीक मुद्रा प्रचलन और विदेश विजय ऐसे कार्य नहीं हैं जिससे कि उसे पागल या मूर्ख कहा जाय। वास्तव में वह प्रतिभासम्पन्न सम्राट था जिसने लौकिक राज्य प्रतिष्ठित करके धार्मिक, सहिष्णुता व उदारता की नीति का अनुकरण किया। धर्मान्धता और असहिष्णुता के उस युग में उसने धर्मनिरपेक्ष राज्य स्थापित करके अपनी महानता का परिचय दिया। इसी से वह शेरशाह और अकबर का अग्रणी भी कहा जा सकता है। निरंकुश होते हुए भी वह प्रजावत्सल सम्राट था। उसका शासन प्रबन्ध भी कई दशाओं में स्तुत्य रहा है। ऐसी दशा में मुहम्मद तुगलक को पागल या मूर्ख कहना निराधार और भ्रममूलक ही नहीं है, वरन् सुलतान मुहम्मद के साथ अन्याय करना है।

क्या सुलतान मुहम्मद रक्त-पिपासु था ?

बर्नी ने सुलतान के विषय में लिखा है कि उसे मानव रक्त बहाने में बहुत अधिक आनन्द आता था। इब्नबतूता का भी कथन है कि रक्त पिपासुता सुलतान के चरित्र की विशेषता थी। बर्नी ने लिखा है कि, "सुलतान अनेक आलिमों, सैयदों, सूफियों, कलन्दरों, नसीवन्दों तथा सैनिकों की हत्या कराया करता था। कोई दिन

ऐसा नहीं जाता जबकि किसी की हत्या न कराई जाती हो और राजमहल के सिंह द्वार पर रक्त की सरिता प्रवाहित न हुई हो।" ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु दंड दिये हुए व्यक्तियों का लाशें महल द्वार पर तीन दिन तक पड़ी रहती थीं। अपराधियों को अंगभंग का दंड देना, खाल खिचवा लेना, जल्लाद से टुकड़े-टुकड़े करवा देना, हाथियों के पैरों से कुचलवा देना, आदि साधारण दंड थे। कई बार निरपराध व्यक्तियों की भी हत्या करवा दी जाती थी। सुलतान ने अपने पिता गयासुद्दीन और भाई मसऊदखाँ की भी हत्या करवा दी थी। विद्रोहियों और विरोधियों को तो वह नृशंमता से दंड देता था। मृत व्यक्तियों के मुंह स्थान-स्थान पर लटकवा दिये जाते थे। एक बार मलिक यूसुफ बुगरा नामक सेनानायक के लगभग साढ़े तीन सौ सैनिकों ने उसकी आज्ञा की अवहेलना की, इस पर सुलतान ने इन सबको दंड देकर उनका वध करवा दिया। वह अपराध करने पर या क्रुद्ध हो जाने पर भी उल्मावर्ग के लोगों का बिना हिचक के दंड देता था। शेख, मुल्ला, काजी, सैयद आदि को उसने दंडित किया था। शेख शिहाबुद्दीन, शेखहूद हैदरी, फकीर मुदर्रिस, तुगान और उसके भ्राता मल-ए-कुत्तुज्जार के पुत्रों को मरवा डाला गया। बहाउद्दीन, किशलूखाँ गयासुद्दीन बहादुर, अलीशाह आदि विद्रोहियों को नृशंसता से दंड देना, उनकी खालें खिंचवा लेना, सुलतान के लिये साधारण बात थी। विद्रोहियों के साथ-साथ अनेक बार निरपराध नागरिकों की भी हत्या करवा दी जाती थी। ऐसे ही उदाहरणों को लेकर, उसकी इस जघन्य नीति की कटु आलोचना करके कतिपय इतिहासकारों ने सुल-तान मुहम्मद तुगलक पर रक्तपिपासु होने का दोषारोपण किया है। इस आरोप के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क हैं:—

(१) मुहम्मद तुगलक का शासनकाल मध्ययुग में था और इस युग में यूरोप तथा एशिया में मृत्युदंड और अंग-भंग का दंड एक सामान्य बात थी। अराजकता, अशांति, अस्तव्यस्तता और विद्रोहों को दबाने में उस युग में कठोर रक्तरंजित नीति का अनुकरण करने वाला सुलतान ही सफल होता था। मुहम्मद तुगलक ने अपने युग के अनुसार ही नीति अपनाई।

(२) सुलतान पर रक्तपिपासु होने का दोषारोपण करने वाला बर्नी है। बर्नी सुलतान से द्वेष भाव रखता था, क्योंकि वह उल्मावर्ग का था और सुलतान मुहम्मद ने उल्माओं को उनके विशेष अधिकारों से वंचित कर दिया था और उनमें से किसी के अपराध करने पर सुलतान ने उसे दंड भी दिया। इसके अतिरिक्त बर्नी दोआब में आधुनिक बुलन्दशहर के क्षेत्र का निवासी था। दोआब में करवृद्धि और निरन्तर दुर्भिक्ष के कारण बर्नी को भी सुलतान की नीति के परिणामस्वरूप कष्ट भुगतना पड़े। ऐसे वैमनस्य की पृष्ठभूमि में बर्नी ने सुलतान पर रक्त पिपासु होने का दोष लगाया जो सर्वथा ग्राह्य नहीं है।

(३) रक्तपिपासा का जो दोषारोपण किया गया है, वह परिस्थितिजन्य है चतुर्दिक अशांति और अव्यवस्था फैलने से विद्रोहों को कुचलने के लिये सुलतान ने कठोर दंड व रक्तपात की नीति अपनाई। जब राज्य में चारों ओर अशांति व्याप्त थी, तब कठोरता से विरोधियों, विद्रोहियों, और आज्ञाओं का उल्लंघन करने वालों

को कठोर दंड देना, सुलतान की रक्तरंजन नीति का द्योतक नहीं है। सुलतान की जैसी परिस्थितियां थीं और जिस युग में वह हुआ था उसमें सुलतान ने जैसा व्यवहार किया, वैसा करना स्वाभाविक व उचित था। विरोधियों और विद्रोहियों को निर्ममता से दंड देने की नीति के विषय में स्वयं सुलतान ने कहा है कि, 'मैं उन्हें इसी प्रकार उस समय तक दंड देता रहूँगा जब तक या तो मेरी मृत्यु न हो जाय, या लोग ठीक न हो जायँ और विद्रोह तथा आज्ञा उल्लंघन करना बन्द न कर दें। मेरे पास ऐसा कोई वजीर नहीं है जो मेरे राज्य के लिये अधिनियम बनाये और मुझे किसी रक्तपात से अपने हाथ न रँगने पड़ें। इसके अतिरिक्त मैं लोगों की हत्या इस कारण करता हूँ कि लोग एकदम मेरे विरोधी तथा शत्रु बन गये हैं। मैंने लोगों को इतनी धन सम्पत्ति क्या इसलिये दी कि वे मेरे विरुद्ध विद्रोह करें! मैं भली भांति जानता हूँ कि मेरा कोई भी विश्वासपात्र और हितैषी नहीं है। सभी मेरे शत्रु और विरोधी हैं।" इससे स्पष्ट है कि वह नृशंस दंड देने और रक्तपात करने के लिये परिस्थितियों द्वारा बाध्य कर दिया गया था। स्वभाव से वह नम्र और दयालु था। इस पृष्ठभूमि में रक्तपिपासु होने का दोष भी सर्वमान्य नहीं है।

क्या सुलतान मुहम्मद अपने युग से आगे था ?

सुलतान मुहम्मद की जितनी सुधार योजनाएँ थीं, वे उसके समय के अनुकूल नहीं थीं। जनता और अधिकारियों ने उसकी योजनाओं का महत्व नहीं समझा और इसलिये उन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये अधिकारियों व कर्मचारियों और जनता ने अपना सहयोग और सहायता नहीं दी। अधिकारियों ने अपना उत्तरदायित्व नहीं समझा। इसलिये मुहम्मद की सभी योजनाएँ असफल रहीं।

(१) मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तिन की, पर वह विफल मनोरथ रहा। राजधानी परिवर्तन की नीति बीसवीं सदी में भी अपनायी गयी और कलकत्ता से दिल्ली राजधानी बदली तथा ग्रीष्म काल में ब्रिटिश शासनकाल मे राजधानियां परिवर्तित होती रहीं। आवागमन की सुविधाएँ तथा योजनाओं को कार्यान्वित करने का समुचित व्यावहारिक ढंग होने से सफलता प्राप्त हुई। यदि मुहम्मद बीसवीं सदी में यह कार्य करता तो अवश्य उसे सफलता प्राप्त होती। इसलिये वह अपने समय से आगे था।

(२) तांबे की प्रतीक मुद्रा का प्रचलन भी जनताकी रूढ़िवादिता के कारण असफल रहा। जबकि आज तांबे के अतिरिक्त पत्र मुद्रा (कागज के नोट) का प्रचलन और प्रसार सफल हो गया है।

(३) करवृद्धि की योजना चौदहवीं सदी में असफल रही, क्योंकि उस समय सिंचाई के व कृषि की उन्नति करने के प्रचुर साधन नहीं थे। परन्तु आज बीसवीं सदी में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों की बाहुल्यता से वृद्धि की जा रही है। यदि सुलतान उस युग में सुविधाओं सहित करवृद्धि करता तो उसे निराश और विफल नहीं होना पड़ता। इन्हीं बातों से कहा जाता है कि सुलतान अपने युग से आगे था।

मुहम्मद तुगलक भाग्यहीन आदर्शवादी सुलतान था—मुहम्मद तुगलक की योजनाएँ श्रेष्ठ आदर्श विचारों की थीं, जन-कल्याण व सुधारों की थीं, इसलिये वह आदर्शवादी था। इन योजनाओं में कोई दोष न होने पर भी वे असफल रहीं, क्योंकि दैवी प्रकोप था और परिस्थितियाँ प्रतिकूल थीं। इसलिये उसे भाग्यहीन कहा है। परन्तु विश्व में जो भी कोई महान् हुआ है, उसने प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करके, नियति के विरुद्ध युद्ध करके भाग्यचक्र को या परिस्थिति को अपने पक्ष में मोड़कर विजयश्री प्राप्त की। पर मुहम्मद तुगलक ऐसा करने में सर्वथा असमर्थ रहा। इसलिये वह श्रेष्ठ उच्चकोटि का महान सुलतान नहीं है।

इतिहास में मुहम्मद तुगलक का स्थान

सुल्तान मुहम्मद का शासन काल एक पूर्ण दुःखान्त नाटक था। उसका युग उसकी उच्च श्रेष्ठ विचारधाराओं और उसकी प्रजा की रूढ़िवादिता के बीच एक दीर्घकालीन संघर्ष था, क्योंकि जनता अपनी विवेकशून्यता व पिछड़ेपन से उसकी योजनाओं को समझ नहीं सकी जिससे उसका शासन असफल रहा। वास्तव में उसका राज्य-काल सद्भावनाओं का स्वयं पराजित करुणाजनक काल था। उसका शासन-काल विफलताओं की क्रमबद्ध करुणाजनक गाथा है। जिस विशाल साम्राज्य को और विपुल राजकोष को उसने उत्तराधिकार में प्राप्त किया था वह उसके शासन-काल के अन्तिम चरण में विद्रोहों के कारण विश्रृंखलित और पतनोन्मुख हो गया था। प्रांतों के स्वतन्त्र और पृथक हो जाने से और राजकोष के रिक्त हो जाने से उसके साम्राज्य की जड़ें हिल गयीं। इस प्रकार साम्राज्य विघटन से राजनैतिक क्षेत्र में वह असफल रहा। परन्तु यह विस्मरण नहीं किया जा सकता कि मुहम्मद प्रथम सुलतान था जिसके शासन-काल मे लगभग सम्पूर्ण भारत राजनैतिक एकता के सूत्र में बँध गया था। दक्षिण भारत का अधिकांश भाग दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत था। पहिले दक्षिण भारत में सामन्तों व करद नरेशों का राज्य था, पर मुहम्मद ने वहां प्रत्यक्ष शासन स्थापित किया जिसमें केन्द्रीय शासन का पूर्ण अधिकार था। उसने प्रशासन के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा और अध्ययन व कल्पना-शक्ति से अनेक नवीन, मौलिक आयोजनों का सृजन किया। ये उसकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और व्यापक दृष्टिकोण के द्योतक हैं। पर व्यवहार की कसौटी पर उसकी योजनाएं खरी न उतर सकीं और सुलतान को विफलता ही हाथ लगी। इसके कारण कर्मचारियों की अयोग्यता, तथा प्रजा के असहयोग व दैवी प्रकोप हैं। वह कुछ सीमा तक आदर्शवादी भाग्यहीन भी रहा। परन्तु जहां दोष उसकी परिस्थितियों तथा सहयोगियों को है, वहां कुछ अंशों में उसे भी है। उसमें स्थिर बुद्धि, व्यावहारिक निर्णय, धैर्य, सन्तुलन और सामान्य ज्ञान का अभाव था। उसके ज्ञानोपार्जन और नवीनता व मौलिकता का प्रधान आधार ग्रंथ थे, न कि व्यावहारिक जीवन। यही कारण है कि वह अपनी योजनाओं के कार्यान्वय में असमर्थ रहा। उसका कभी-कभी अत्यधिक कठोर व नृशंस हो जाना भी उसकी लोकप्रियता का अन्त करने में और उसे विफल मनोरथ करने में सहायक सिद्ध हुआ।

सुलतान मुहम्मद की इन असफलताओं को देखकर ही परवर्ती इतिकासकारों ने उसे आश्चर्यजनक विरोधाभास का पुतला कहा है, रक्तपिपासा, मूर्खता और पागलपन के आरोप उस पर लगाये हैं। पर ये सर्वथा असत्य हैं। किसी भी सम-सामयिक लेखक ने इन आरोपों की पुष्टि नहीं की है। बर्नी और इब्नबतूता ने सुलतान का अप्रिय और विरोधी चित्र खींचा है। दोनों में सुलतान के प्रति तीव्र असन्तोष, और व्यक्तिगत द्वेष था। सुलतान के द्वारा उनके व्यक्तिगत हितों को ठेस पहुँची थी। इस पृष्ठभूमि में उनका विवरण निष्पक्ष नहीं रहा।

सुलतान और प्रशासक के रूप में, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में मुहम्मद अवश्य असफल रहा, फिर भी उसकी त्रुटियों के संबंध में जो धारणाएँ प्रचलित हैं, उनमें संशोधन करने की आवश्यकता है। उसकी प्रत्यक्षतः अनियंत्रित एवं असंयत व व्यापक योजनाओं पर जो नवीन प्रकाश पड़ा है, और जो नवीन व्याख्याएँ की गयी हैं, उनके अनुसार इतिहासकारों को अपनी धारणाओं और मान्यताओं में संशोधन करने की आवश्यकता है। यदि हम निष्पक्ष रूप से नवीन तथ्यों के प्रकाश में उसके कार्यों का सविस्तार सिंहावलोकन करें तो एक दूसरे ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सुलतान में अवगुणों की अपेक्षा गुण अत्यधिक थे। वह चहुँमुखी प्रतिभासम्पन्न सम्राट था जो अपनी विलक्षण बुद्धि, विद्वत्ता, योग्यता, वीरता, दानशीलता, धर्मनिष्ठा, न्याय-प्रियता, सक्रिय एवं शक्तिसम्पन्न प्रवृत्तियों के तथा मौलिक विचारों के कारण मध्ययुग के इतिहास में ऊंचा स्थान रखता है। वास्तव में उससे अधिक प्रतिभासम्पन्न, दक्ष, निर्मल चरित्रवान, नवीनता वाला, योग्य सम्राट उससे पूर्व दिल्ली के सिंहासन पर आसीन नहीं हुआ था। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक योग्य शासक में होना चाहिये। उसका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक और विशाल था। उस धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता के युग में भी उसने धार्मिक उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाई तथा प्रशासन में धर्म निरपेक्ष विचारधाराओं का पोषक बना। वह वास्तव में लौकिक राजतंत्र की स्थापना करना चाहता था और राजनीति को धर्म के प्रभाव से मुक्त करना चाहता था जो उस युग की धारणा के विरुद्ध था। स्वेच्छाचारी व निरंकुश होने पर भी वह बड़ा ही उदार था जो उसके हृदय की गंभीरता तथा उसके व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। गैर मुस्लिमों के साथ उसका व्यवहार श्रेष्ठ था। हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों को विध्वंस नहीं किया गया। उसकी सुधार योजनाओं, धर्मनिरपेक्षता, तथा उत्कट जन-कल्याण की भावनाओं व कार्यों से उसे शेरशाह व अकबर का अग्रणी भी कहा गया है। मुहम्मद के शासन-काल में धर्म-निरपेक्ष लौकिक राज्य की स्थापना की गयी। उसमें उल्मा वर्ग को नगण्य स्थान प्राप्त था। जिस लौकिक राज्य का सूत्रपात बलवन ने किया और अलाउद्दीन ने उसे संवर्द्धित किया, सुलतान मुहम्मद ने उसे प्रगति के शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया।

सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उसे सफलता प्राप्त हुई थी। वह स्वयं उच्चकोटि का विद्वान, लेखक, वक्ता, कवि और विद्यानुरागी सम्राट था। वह विद्वानों को राज्याश्रय देकर, उनकी सहायता कर उन्हें प्रोत्साहित करता था। शिक्षण संस्थाओं और उनके

शिक्षकों व आचार्यों को वह दान और अनुदान देता था। यद्यपि दक्ष और योग्य होने पर भी वह असफल रहा और उसका शासन-काल सफलताओं और विफलताओं का एक सम्मिश्रण है, फिर भी दिल्ली के सम्राटों ने उसकी नीति का अनुकरण कर विशिष्ट उपलब्धियां और प्रशंसा प्राप्त की।

इब्नबतूता—आबू अब्दुल मुहम्मद अथवा इब्नबतूता अफ्रिका निवासी था। इसका जन्म २४ फरवरी, सन् १३०४ को टेंजियर में हुआ था। इब्नबतूतामें भ्रमण के लिये जन्मजात अभिरुचि थी। प्रारंभ से ही इस भ्रमणशील प्रवृत्ति का होने के कारण, इब्नबतूता ने २१ वर्ष की आयु में अपना घर त्याग भ्रमण प्रारंभ कर दिया। सन् १३२५ में उसने अपनी भ्रमण यात्रा प्रारंभ की। अफ्रीका के विभिन्न प्रदेश, अरब, ईराक, लेबनान, और कुस्तुन्तुनिया की यात्रा की। हिन्दुकुश पर्वत श्रेणियों को पार करके वह १२ सितंबर सन् १३३३ को भारत के सिंध प्रदेश में प्रविष्ट हुआ। वह भारत में सन् १३४२ तक रहा। सिंध से लाहोर होते हुए वह दिल्ली आ गया। यहाँ सुलतान मुहम्मद ने उसका अत्यधिक आदर सत्कार किया। मुहम्मद तुगलक इब्नबतूता की विद्वत्ता और सद्गुणों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने इब्नबतूता को दिल्ली का काजी और अपनी राजसभा का सदस्य नियुक्त कर दिया। वहा रहकर उसे मुहम्मद तुगलक की असाधारण बुद्धि एवं स्वभाव तथा उसकी योजनाओं और कार्यों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का असुवसर प्राप्त हुआ। उसने सुलतान के चरित्र का सूक्ष्म अध्ययन किया तथा उसके गुण-दोषों को परखा। उसने मुहम्मद तुगलक के शासन के विषय में अपने यात्रा विवरण में मनोरंजक वर्णन किया है। उसने सुलतान मुहम्मद की उदारता, न्यायप्रियता, दानशीलता, धर्मपरायणता, विद्वत्ता, विनम्रता, विदेशों से आये यात्रियों के प्रति उसकी श्रद्धा उसकी अपार धन सम्पत्ति, विद्वानों के प्रति उसकी आदर सत्कार की भावना, इस्लाम धर्म के नियमों के पालन करने में उसकी तत्परता, आदि तथा अन्य सद्गुणों का वर्णन करते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

मुहम्मद तुगलक के विभिन्न गुणों की प्रशंसा करने के साथ-साथ, इब्नबतूता ने सुल्तान के अवगुणों तथा अत्याचारपूर्ण कार्यों का उल्लेख भी किया है। इन अवगुणों व कार्यों को देखकर वह उन्हें "उस युग के आश्चर्य" कहता है। इब्नबतूता सुलतान मुहम्मद की सेवा में आठ वर्ष तक रहा। इस अवधि में उसने उस युग की भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक दशाओं का अध्ययन किया, हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सहन-सहन, खानदान, सामाजिक रीति-रिवाजों का वर्णन किया है। वह शासकीय सुधारों, युद्धों का विवरण विस्तृत रूप से करता है। इससे बर्नी के द्वारा किये गये उस युग के विवरण में जो न्यूनता थी वह पूर्ण हो जाती है।

मुहम्मद तुगलक के इतिहास के लिये वह बहुत महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। उसने उन घटनाओं का भी वर्णन किया है जो उसके काल में नहीं घटी थीं, परन्तु उसने अनेक प्रत्यक्षदर्शी मनुष्यों से उन घटनाओं का वर्णन सुनकर लिखा था। इसलिये वह एक विश्वसनीय लेखक माना जाता है। उसने घटनाओं का तिथियों के अनुसार वर्णन किया है तथा बाद के लेखक अपने ग्रंथों की सामग्री के लिये उस पर

आश्रित हुए हैं। उसने गयासुद्दीन की मृत्यु और उसके कारण, बहाउद्दीन का विद्रोह, राजसभा, प्रशासन का संचालन, न्याय-प्रबंध का वर्णन विस्तृत रूप से किया है। इन बातों का वर्णन बर्नी ने बहुत कम किया है।

इब्नबतूता सुलतान द्वारा दिल्ली का न्यायाधीश नियुक्त किया गया था। पर इब्नबतूता से कुछ अनबन हो जाने के कारण सुलतान ने उसे बंदी बनाकर कारावास में डाल दिया था। कुछ समय बाद वह जेल में से मुक्त कर दिया गया। सन् १३४२ में सुलतान ने इब्नबतूता को चीन के सम्राट के पास राजनैतिक कार्यों के लिये अपना राजदूत बना कर भेजा था। जिस समुद्री जहाज से वह यात्रा कर रहा था, वह समुद्र में डूब गया और उसके कुछ साथी डूब गये और कुछ बचे खुचे लोगों को समुद्री डाकुओं ने मार डाला। यदि इब्नबतूता के कथन को सत्य माना जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अनेक कष्टों को झेलता हुआ चीन पहुँच गया था। परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उसे वापिस दिल्ली लौटना पड़ा। इसके बाद वह मालद्वीव द्वीप गया। यहां वह एक वर्ष तक ठहरा और न्यायाधीश बना रहा। सन् १३४५ में उसने लंका की यात्रा प्रारम्भ की और फिर वहां से वह दक्षिण भारत लौट आया और मदुरा में वहां के मुस्लिम शासक के राज्याश्रय में ठहरा। अन्त में उसने दक्षिण भारत के मलाबार तट से जहाज में मक्का के लिये प्रस्थान करके अरब देश की यात्रा प्रारम्भ की और भ्रमण करता हुआ नवंबर सन् १३४९ को वह अपने देश की राजधानी में पहुँचा। यहां उसने इष्टमित्रों तथा राज्याधिकारियों और लोगों को अपनी लंबी यात्रा का मनोरंजक वर्णन सुनाया। कुछ ने उसके इस वृत्तान्त को सत्य माना और कुछ ने केवल उसे एक कल्पना माना।

स्वदेश पहुँचने पर उसने अपने यात्रा संस्मरणों और अनुभवों को लिपिबद्ध कर एक विस्तृत ग्रन्थ लिख डाला जो १३ दिसंबर सन् १३५५ को समाप्त हो गया था। इस ग्रन्थ को "किताब-उल-रहला" कहा जाता है। यह ग्रन्थ मुहम्मद तुगलक के शासन काल, भारत के रीति-रिवाज तथा तत्कालीन परिस्थितियों को जानने का प्रामाणिक साधन है, एक प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत है। इस ग्रन्थ के फ्रांसीसी अनुवादक इसको "Truthful recorder of events" कहते हैं। Prof. Dozy Leydon इसको "A work of the first order" कहते हैं। यद्यपि इस ग्रन्थ में कुछ दोष और त्रुटियां हैं, क्योंकि कभी-कभी इब्नबतूता ने इसमें गप्पें लिखी हैं, फिर भी यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ है जो उस युग के अनेक तथ्यों पर प्रकाश डालता है।

सन् १३७७-७८ में ७३ वर्ष की आयु में इब्नबतूता का देहावसान हो गया। इब्नबतूता की भारत यात्रा का विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से रोचक एवं महत्वपूर्ण है। उसके वृत्तांत की सत्यता में कोई विशेष संदेह नहीं है। क्योंकि अन्य इतिहासकारों के विवरण से भी उसके विवरण को मिलाने से उसकी सत्यता स्पष्ट रूप से प्रगट हो जाती है। उसने सुलतान मुहम्मद के प्रभाव में होने से या उसकी चापलूसी करने के लिये कुछ नहीं लिखा है। उसने सुलतान के गुणदोषों, उसकी दयालुता व कठोरता, न्याय और दंडविधान तथा प्रशासन व अन्य बातों का बड़ी ही निष्पक्षता से वर्णन किया है। निष्पक्ष होने के कारण उसके द्वारा लिखी गयी बातें सत्य मानी जाती हैं।

मुहम्मद तुगलक के चरित्र के विषय में उसके विवरण का समर्थन अन्य समकालीन लेखक बर्नी के विवरण से हो जाता है। बर्नी सुलतान की चापलूसी में अति कुशल पर उसकी निन्दा व आलोचना करने में असन्तुलित था। इब्नबतूता बड़ा विद्वान और विद्यानुरागी था। वह स्वभाव से हँसमुख व आकर्षक था। नवोल्लास, साहस, धैर्य, रूढ़िग्रस्त धार्मिकता, सरसता आदि उसके चरित्र की विशेषताएं थीं। परन्तु आनन्द और सुख का जीवन व्यतीत करने के कारण वह अपव्ययी था। इससे वह अनेक बार आर्थिक संकट में उलझ जाता था परन्तु उसके दयालु, उदार आश्रयदाता मुहम्मद ने उसे कई बार ऐसे संकटों से मुक्त किया। इब्नबतूता का ग्रन्थ अपने आश्रय-दाता संरक्षक सुलतान मुहम्मद तुगलक के जीवन और शासन-काल की अनेकानेक घटनाओं पर अत्यधिक प्रकाश डालता है। इस युग के इतिहास का यह एक प्रमुख महत्वपूर्ण साधन है।

सारांश

सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक (सन् १३२५–१३५१)

सुलतान ग़यासुद्दीन की हत्या—बंगाल और तिरहुत विजय के बाद जब सुलतान गयासुद्दीन दिल्ली लौट रहा था तो उसने अपने पुत्र जूनाखां को यह सन्देश भेजा कि वह दिल्ली के समीप अफगानपुर राजभवन में कुछ समय तक ठहर कर बाद में सज-धज के साथ दिल्ली में प्रवेश करेगा। फलतः जूनाखां ने अफगानपुर में लकड़ी का एक महल बनवाया और इसमें सुलतान का स्वागत किया गया। प्रीतिभोज के बाद समस्त आमन्त्रित व्यक्ति राजभवन के मंडप से बाहर आ गये, पर सुलतान गयासुद्दीन अपने छोटे पुत्र महमूद के साथ मंडप में हाथ धोने लगा। इसी बीच सुलतान के आदेश से जूनाखां ने बंगाल से प्राप्त हाथियों का महल के सामने प्रदर्शन करवाया। हाथियों द्वारा राजभवन का स्पर्श होने से महल गिर पड़ा और सुलतान तथा उसका पुत्र महमूद उसमें दबकर मर गये। सुलतान का मृत शरीर तुगलकाबाद के मक-बरे में दफना दिया गया।

क्या मुहम्मद तुगलक पितृहन्ता था—सुलतान गयासुद्दीन की मृत्यु ने इतिहासकारों के सामने एक जटिल विवाद उत्पन्न कर दिया है। कुछ विद्वानों का मत है कि सुलतान की मृत्यु संयोगवश हुई और कुछ अन्य इतिहाकारों का मत है कि सुलतान की मृत्यु में जूनाखां या मुहम्मद तुगलक का हाथ था। उसने षड़यंत्र रचकर राजमहल गिरवा दिया। अतः वह पितृहन्ता था। जो विद्वान मुहम्मद को निर्दोष बतलाते हैं, उनका कथन है कि बर्नी, फरिश्ता, ऐन-मुल्क मुल्तानी तथा मतलू बुल-तालिबीन, व सीरत-ए-फिरोजशाही ग्रंथ के लेखकों ने मुहम्मद को हत्यारा नहीं बतलाया है, अपितु लिखा है कि सुलतान की मृत्यु आकस्मिक ढंग से दैवी प्रकोप से हुई थी। बर्नी ने लिखा कि आसमान से बिजली गिरने से सुलतान का देहावसान हो गया। मुहम्मद तुगलक जैसा सच्चरित्र और उदारहृदयी सुलतान अपने पिता की हत्या नहीं कर सकता। आगा मेंहदीहुसैन ने भी इसी मत को माना है।

परन्तु इब्नबतूता, निजामुद्दीन अहमद, बदायूंनी, अबुलफजल, वुल्जेहेग और डा. ईश्वरीप्रसाद मुहम्मद तुगलकको दोषी मानते हैं। शेख रुकनुद्दीन नामक व्यक्तिने मुहम्मद के षड़यंत्र और महल के गिरने की सारी घटना आंखों देखी थी और इसीने गयासुद्दीन की मृत्यु का हाल इब्नबतूता को बतलाया था। इसलिये इब्नबतूता का वर्णन और मत अधिक विश्वसनीय है। मुहम्मद तुगलक और फिरोजशाह बर्नी के संरक्षक थे। इसलिये बर्नी न तो फ़िरोजशाह को अप्रसन्न करना चाहता था और न मुहम्मद को कलंकित। इसलिये उसने अलंकारिक काव्यमय भाषा में लिखा है कि आपत्ति की बिजली आसमान से पृथ्वी पर पड़ी और सुलतान दब कर मर गया। सरल भाषा में इसका यह अर्थ है कि सुलतान गयासुद्दीन की मृत्यु आकस्मिक और वज्रपात से भी अधिक भयावह घटना द्वारा हुई। शेख निजामुद्दीन औलिया और गयासुद्दीन के बीच परस्पर मतभेद और वैमनस्य हो गया था। वह सुलतान का अंत चाहता था। इसलिये मुहम्मद तुगलक व औलिया ने सुलतान की हत्या का षड़यंत्र रचा। इस षड़यंत्र की सफलता और गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद सुलतान मुहम्मद ने शेख निजामुद्दीन औलिया को बारह परगने दान में देकर सम्मानित किया। इसी प्रकार महल बनवाने वाले,अधिकारी अहमद आयाज को पदोन्नत करके मुहम्मद ने उसे वजीर का पद दे दिया। मध्ययुग की मुस्लिम राजनीति में सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र और सुलतान की हत्या साधारण बात थी। मुहम्मद तुगलक सुलतान बनने का महत्वाकांक्षी था। इसलिये अपने स्वार्थ साधन और महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये उसने षड़यंत्र करके, गयासुद्दीन की हत्या करवा दी।

मुहम्मद तुगलक का सिंहासनारोहण और पदों तथा उपाधियों का विवरण—सुलतान गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद मुहम्मद तुगलक चालिस दिन का पितृ शोक मना कर सुल्तान बना। सिंहासनारोहण के बाद उसने अमीरों, अधिकारियों और जनता में अपार धन मुक्त हस्त से वितरित किया और सड़कों व गलियों में सोने-चांदी के सिक्के लोगों पर न्योछावर किये जिससे कि लोग उसे पितृघाती न मानें। राज्याभिषेक के बाद उसने प्रांतीय शासकों व अमीरों को ऊंचे पद और पदवियां तथा जागीरें प्रदान कीं; विद्वानों, कवियों और निस्सहाय व्यक्तियों को पुरस्कार, उपहार और दान दिये।

सुलतान मुहम्मद की योजनाएँ—महत्वाकांक्षी और जनहितैषी होने से सुलतान ने प्रशासकीय सुधार की निम्नलिखित योजनाएँ बनायीं :—

(१) दोआब में कर-वृद्धि—राज्य की अपर्याप्त आय की वृद्धि के लिये मुक्त हस्त से धन के वितरण होने से रिक्त राजकोष की पूर्ति के लिये, दोआब उर्वर, धनी और समृद्ध प्रदेश होने से, दोआब के विद्रोही हिन्दुओं को निर्धन बनाने के लिये, तथा अपनी विभिन्न योजनाओं के हेतु अधिक धन प्राप्त करने के लिये मुहम्मद ने दोआब में दस और बीस गुना भूमि-कर की वृद्धि कर दी। वृद्धि किये गये भूमि-कर वसूली के लिये उसने सौ-सौ गांवों की इकाई के पीछे शताधिकारी नामक अधिकारी नियुक्त किये। इसके लिये दीवान-ए-कोहा नामक एक अलग विभाग स्थापित किया गया। भूमि-कर के अतिरिक्त निवास-गृह कर और चराई कर भी थे। इन करों की वसूली

कठोरता से की जाने लगी। इसके परिणाम यह हुए कि कृषक अधिक बढ़ हुए कर देने को तैयार नहीं थे। भ्रष्ट अधिकारियों ने वृद्धि किये हुए करों से भी अधिक कर व धन वसूल किये, कर न देने वालों को अनेक यातनाएं दी गयीं। इसी अवधि में दुर्भाग्य से दोआब में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। दुर्भिक्ष पीड़ित प्रजा से भयंकर अत्याचार करके निर्ममता से कर वसूल किये गये और कर न देने वाले अनेक व्यक्तियों को मार डाला गया। इस प्रकार इस कर-वृद्धि से जनता को अत्यधिक कष्ट हुए, उद्योग, व्यापार और कृषि के हितों को गहरा आघात लगा। पर जब सुलतान को दोआब के दुर्भिक्ष और जनता की दयनीय दशा का हाल विदित हुआ, तब उसने पीड़ितों की सहायतार्थ धन, खाद्य-सामग्री, तकावी, और सिंचाई के साधनों की व्यवस्था की। इस कर-वृद्धि के कारण जनता में सुलतान के प्रति असन्तोष और विद्रोह की भावनाएं फैल गयीं। कर वृद्धि की योजना से उत्पन्न होने वाली दुर्व्यवस्था और प्रजा पर होने वाले कष्टों और अत्याचारों के लिये सुलतान दोषी है। यद्यपि अकालग्रस्त क्षेत्र के लिये उसके द्वारा किये गये राहत कार्य प्रशंसनीय हैं, पर इससे राजकोष की रिक्तता बढ़ गयी और दोआब में पहिले जैसी सम्पन्नता और समृद्धि नहीं लायी जा सकी।

(२) **राजधानी परिवर्तन**—दक्षिण में देवगिरी के अभेद्य दुर्ग और उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण उसका राजनैतिक और सामरिक महत्व था। राज्य के केन्द्र में होने से देवगिरी से साम्राज्य का समुचित संचालन, प्रांतों का प्रशासन और निरीक्षण सरलता से हो सकता था। इसके अतिरिक्त देवगिरी राजपूतों के उपद्रवों और मंगोलों के आक्रमणों से दूर थी। दक्षिण में मुस्लिम विजय स्थायी हो सके और प्रशासन दृढ़ हो सके—इन सब कारणों से सुलतान मुहम्मद ने दिल्ली से दौलताबाद राजधानी स्थानान्तरित कर दी। यह कहना तर्कहीन और असत्य है कि दोआब में कर-वृद्धि के कारण विद्रोही जनता को दंड देने के लिये सुलतान ने राजधानी परिवर्तित की। कतिपय प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि राजधानी परिवर्तन करने के बावजूद भी दिल्ली, साम्राज्य की गौण राजधानी रही होगी और वहां से प्रशासकीय कार्य चलते रहे होंगे। राजधानी परिवर्तन के निर्णय में सुरक्षा, सुव्यवस्था और दृढ़ शासन की भावना निहित थी।

दिल्ली से दौलताबाद जाने के लिये लोगों के हेतु पक्की सड़क बनवायी गयी, सरायें व विश्राम स्थल स्थापित किये गये, निःशुल्क भोजन व ठहरने की तथा डाक की व्यवस्था की गयी। दौलताबाद पहुँचने पर लोगों को अनेक सुविधाएं दी गयीं, अनुदान और आर्थिक सहायता भी दी गयी। पर मार्ग की कठिनाइयों और थकान के कारण लोग रास्ते ही में मर गये। दौलताबाद में जलवायु की विभिन्नता, निवास और खाद्य सामग्री के अभाव के कारण जो लोग वहां पहुँचे, उनमें भी निराशा और तीव्र असन्तोष हो गया और वे दिल्ली लौटने के लिये व्यग्र हो गये। इस पर सुलतान ने लोगों को दिल्ली आने की आज्ञा दे दी और मार्ग में सभी सुख-सुविधाओं की व्यवस्था की। इस प्रकार राजधानी परिवर्तन से अपार धन का व्यय हुआ, प्रजा को दिल्ली और दौलताबाद में अत्यधिक कष्ट और असुविधाएं हुईं। दौलताबाद दिल्ली-वासियों का कब्रिस्तान बन गया। दिल्ली की समृद्धि और पुरानी शान-शौकत नष्ट हो

गयीं, तथा अनेक परिवार निःस्सहाय और दरिद्र हो गये। लोग इतने अधिक असन्तुष्ट और विद्रोही हो गये कि उन्होंने सुलतान के साथ असहयोग किया। यद्यपि राजधानी स्थानान्तरण में जनता के कष्टों और असुविधाओं का उत्तरदायित्व सुलतान पर आता है, परन्तु उसने अनेक सुविधाएँ दीं और भूल सुधारने का प्रयत्न किया। राजधानी परिवर्तन की योजना निर्दोष और विवेकपूर्ण थी, इस योजना में स्वतः कोई दोष नहीं था, परन्तु उसे कार्यान्वित करने में भूल की गयी. परिवर्तन का ढंग गलत था। समस्त जनता के स्थान पर यदि वह केवल अधिकारियों और कर्मचारियों को ले जाता, तो अच्छा होता। इस योजना की असफलता का कारण सुलतान की जल्दबाजी, उतावलापन, क्रुद्ध और हठी स्वभाव था।

(३) **मुद्रा नीति और सांकेतिक मुद्रा प्रचलन**— सुलतान ने मुद्रा सम्बन्धी सुधार किये। उसने दोकानी सिक्के, दीनार और अदली सिक्के, तथा टक नामक छोटी मुद्राएँ प्रसारित कीं। ये मुद्राएँ अपने आकार और स्वरूप में अधिक कलापूर्ण, सुन्दर और आकर्षक थीं। परन्तु उसका सबसे अधिक क्रांतिकारी कदम तांबे के सांकेतिक सिक्के प्रचलित करना था। उपहार, पुरस्कार, दान और अनुदान को मुक्त हस्त से देने से, राजधानी परिवर्तन, और प्रारम्भिक विद्रोहों के दमन करने से दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता करने से, महत्वाकांक्षी विजय अभियानों से, राजकोष रिक्त हो गया था, आर्थिक कठिनाइयां थीं। इसके अतिरिक्त चांदी के उत्पादन और उपलब्धि में अभाव होने से, सिक्कों की पूर्ति करने के लिये सुलतान ने चीनी और ईरानी शासकों के समान सांकेतिक मुद्रा प्रसारित कीं। इसके लिये उसने तांबे के छोटे सांकेतिक सिक्के प्रचलित किये। दैनिक विनिमय में, राजकरों के भुगतान में, इन सिक्कों का उपयोग होने लगा। लोगों ने सोने-चांदी के सिक्कों को छिपाकर घर में रख लिया, और इनके स्थान पर तांबे के असली और जाली सिक्के खूब प्रचलित हो गये तथा उनसे राजकोष खूब भर गया। भावों में गिरावट आ गयी, कृषि व्यापार और उद्योगों को भारी आघात लगा, विदेशी व्यापार बंद-सा हो गया। वस्तु-विनिमय और दैनिक व्यवहार में लोगों को अत्यधिक बाधाएँ पड़ने लगीं। इस पर सुलतान ने यह आदेश दिया कि लोग तांबे के सिक्के राजकोष में जमा कर जायें और उनके बदले में सोने-चांदी के सिक्के ले जायें। इससे राजकोष रिक्त हो गया और सांकेतिक मुद्रा-योजना असफल हो गयी। इस असफलता का कारण यह था कि टकसाल पर राज्य का एकाधिकार नहीं था. तांबे के सिक्कों की वास्तविकता की जांच की कोई व्यवस्था नहीं थी, तत्कालीन जनता रूढ़िवादी, पिछड़ी हुई और अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों से अपरिचित थी। सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन, प्रशंसनीय प्रशासकीय प्रयोग था, जो सुलतान के विवेकशील मौलिक चिंतन का परिणाम था।

विजय योजनाएं और युद्ध—मुहम्मद तुगलक महत्वाकांक्षी, साम्राज्यवादी और विस्तारवादी था। इसलिये उसने भारतके बाहर और भारत में देशों को विजय करने की योजनाएँ बनाईं। कहा जाता है कि उसने राजस्थानमें चित्तौड़ पर विजय अभियान किया पर चित्तौड़के राजपूत नरेश हम्मीरदेव से परास्त होनेपर उसने राजस्थानमें अन्य सैनिक और विजय अभियान ले जाने से हाथ खींच लिया। दिल्ली सुलतानों के वंश के

अनेक व्यक्ति और अधिकारी मध्य एशिया में खुरासान से आये थे, इसलिये मुहम्मद ने खुरासान को विजय करने का प्रयास किया। खुरासान के अमीर, अधिकारी और सरदार उसकी राजसभा में थे उन्होंने भी उसे इस विजय के लिये प्रोत्साहित किया और खुरासान में भी अराजकता, अस्त-व्यस्तता थी। खुरासान विजय करने के लिये सुलतान ने एक विशाल सेना संगठित की और अत्यधिक धन उस पर व्यय किया। पर खुरासान में परिस्थितियां बदल जाने से सुलतान ने खुरासान-विजय की योजना त्याग दी।

हिमाचल क्षेत्र में कांगड़ा जिले में सुलतान ने नगरकोट पर आक्रमण किया। वहां के राजा को परास्त कर नगरकोट को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया। इसके बाद उसने कुमायूं गढ़वाल के पर्वतीय क्षेत्र में स्थित कराजिल राज्य पर आक्रमण किया। यह राज्य भारत व चीन की सीमा पर था। साम्राज्य विस्तार की भावना और विरोधी, विद्रोही अमीरों के दमन के लिये उसने कराजिल पर आक्रमण किया। पर्वतीय मार्गों की कठिनाइयों, पर्वतीय जलवायु के प्रकोप और रोग, वर्षा ऋतु, खाद्य सामग्री के अभाव आदि के कारण सुलतान की सेना की खूब क्षति हो गयी, पर अंत में विजय उसके हाथ लगी और कराजिल के हिन्दू राजा ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली। कराजिल पर हुए आमक्रण को फरिश्ता तथा कुछ अन्य इतिहासकारों ने सुलतान की चीन विजय की योजना बतलाया है। चीन की ओर आगे बढ़ने, सीमा पर दुर्ग निर्माण करने और चीन को जीतने के लिये कराजिल को परास्त कर उसे अधीन करना आवश्यक था। पर यह मत भ्रम मूलक है। आंतरिक विषम परिस्थितियों, विद्रोहों और राजकोष की रिक्तता व सेना के असन्तोष को देखते हुए मुहम्मद तुगलक जैसा विवेकशील दूरदर्शी सुलतान चीन जैसे सशक्त और दूरस्थ देश पर आक्रमण करने की योजना नहीं बनावेगा।

दक्षिण भारत के प्रदेशों की विजय—सुलतान ने दक्षिण भारत के द्वार-समुद्र, माबर तथा अनागोंडी राज्यों पर विजय अभियान करके उनमें सफलता प्राप्त की और दक्षिण का पूरा पश्चिमी तट उसने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

मुहम्मद तुगलक के शासन-काल के विद्रोह—मुहम्मद तुगलक को अपने २६ वर्ष के शासन-काल में लगभग २२ विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इन विद्रोहों के प्रमुख कारण थे—मुहम्मद तुग़लक की नवीन क्रांतिकारी योजनाएँ, और उसके विजय-अभियान तथा उनसे जनता को हुए अपार कष्ट, दीर्घकालीन अकाल और प्राकृतिक प्रकोप और उनसे उत्पन्न कष्ट, विशाल साम्राज्य और दूरस्थ प्रांतों पर नियत्रंण का अभाव, सैन्य अव्यवस्था और सैनिक असन्तोष, विदेशी अमीरों और पदाधिकारियों की स्वार्थपरता और धनलोलुपता और उनके द्वारा विद्रोहों को प्रोत्साहन, आदि।

प्रमुख विद्रोह—मुलतान में बहराम ऐबा किशलूखां का विद्रोह (सन् १३२८), बंगाल में गयासुद्दीन बहादुर का विद्रोह (१३३०), सिंघ में १३२८ में काजी कमीमुद्दीन और खमीब का विद्रोह, सन् १३३३में रतन नामक हिन्दू अधिकारी के कारण विद्रोह, और सन् १३४२ में सिंध में हिन्दुओं का विद्रोह, मदुरा के शासक जलालुद्दीन ऐहसान-शाह का विद्रोह (१३३२), दौलताबाद के शासक मलिक हुशंग का विद्रोह (१३३५),

हांसी के शासक सैयद इब्राहीम का विद्रोह (१३३५), लाहौर में हुलाजू और गुलचंद के विद्रोह, बंगाल में फखरुद्दीन मुबारकशाह का विद्रोह और उसकी स्वतंत्रता (१३३७), बीदर के प्रांतपति नसरतखाँ का विद्रोह (१३३७), कड़ा के शासक निजाम का विद्रोह (१३४१), अवध के प्रांतपति ऐनुल्मुल्क का विद्रोह (१३४१), मुलतान के शासक मलिकशाह लोदी का विद्रोह, दक्षिण भारत में हिन्दू राजाओं का संगठन और वारंगल का विद्रोह (१३४४), विजयनगर राज्य की स्थापना (१३३६) और होयसल नरेश वीर बल्लाल का दमन (१३४२), मालवा में शताधिकारियों का विद्रोह और उनका दमन, देवगिरी में शताधिकारियों और अमीरों का विद्रोह, और गुजरात का विद्रोह प्रमुख विद्रोह हुए।

सुलतान इनमें से अनेक विद्रोहों का दमन करने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सका। इन विद्रोहों का प्रभाव और परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य का विघटन हो गया, सुलतान के विद्रोहों के दमनार्थ इधर-उधर घूमते रहने से शासन अस्त-व्यस्त, शिथिल और भ्रष्ट हो गया। दमन व सेना पर अत्यधिक धन व्यय हो गया, दमन के लिये रक्तपात व नरसंहार की नीति अपनाने से सुलतान अलोकप्रिय हो गया।

मंगोल आक्रमण—कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में दुर्भिक्ष, अशांति, अव्यवस्था और असन्तोष देखकर मंगोलों ने तरमशीरीं के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया, पर सुलतान की सेना ने उसे परास्त कर खदेड़ दिया, कुछ का मत है कि सुलतान ने भयभीत होकर मंगोलों को धन देकर बिदा कर दिया। अन्य विद्वान इन दोनों मतों को नहीं मानते हैं। उनका मत है कि मंगोल नेता तरमशीरीं मुहम्मद का मित्र था वह आक्रांता नहीं हो सकता।

सुलतान मुहम्मद की विदेश नीति—मुहम्मद तुगलक फारस, खुरासान, ईराक, बुखारा, ग़जनी, समरकंद आदि देशों से आने वाले अमीरों को राज्याश्रय देता था, और उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त करता था। इन्हें उपहार और जागीरें दी जाती थीं। इन्हें अमीरन-ए-सादा कहा जाता था। अपनी स्वार्थपरता और धनलोलुपता के कारण इन्होंने अनेक बार सुलतानके विरुद्ध षड़यंत्र करके विद्रोहकिये। सुलताननेे ईराक के शासक मूसा, मिश्र के शासक व खलीफा से, ख्वारीजम की रानी तुराबक से, मंगोल शासक तरमशीरीं से तथा चीन के शासक तोग़न तैमूर से अपने मैत्री संबंध स्थापित किये। चीन से उसने राजदूतों का आदान-प्रदान भी किया था और इब्नबतूता को अपना दूत बनाकर उसने चीन भेजा था। खलीफा के पास भी उसने अपने राजदूत भेज कर अपने राज्य के लिये खलीफा की स्वीकृति तथा अपने लिए नियुक्ति पत्र भी प्राप्त कर लिया था।

मुहम्मद तुगलक का शासन प्रबन्ध—सुलतान मुहम्मद निरंकुश और अनियंत्रित शासक था। उसने प्रशासन में धर्मनिरपेक्षता की नीति अपनायी और उसने मुल्ला, मौलवी, शेख, सैयद, और काजी को न्याय व धर्म विभाग में हस्तक्षेप नहीं करने दिया तथा उनके विशेष अधिकारों को समाप्त कर दिया। अपराध करने पर उन्हें दंड भी दिया जाता था। हिन्दुओं के प्रति वह उदार और सहिष्णु था और उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त किया गया था। हिन्दुओं को धार्मिक स्वतंत्रता थी। उसने खिराज,

जजिया, खाम और जकात के अतिरिक्त और भी अन्य कर लगाये। उसने गुलामों की भी व्यवस्था की और योग्य गुलामों को शासकीय सेवाओं में और सुलतान के अंगरक्षकों में नियुक्त किये।

न्यायप्रिय सुलतान होने से मुहम्मद तुगलक ने न्याय-दान के लिये विभिन्न श्रेणी के न्यायाधीश नियुक्त किये। वह स्वयं सर्वोच्च न्यायाधीश बनकर अपीलें सुनता और निर्णय देता था। उसके नीचे प्रधान न्यायाधीश, अनेक काजी, नायब काजी, और मीरदाद नाम अधिकारी होते थे। दंड विधान कठोर था। कठोर यातनाएं, कोड़े मारना, अंगभग, मृत्युदंड और खाल खिंचवा लेना साधारण दंड थे। पुलिस तथा जेल विभाग की भी समुचित व्यवस्था की गयी थी। कोतवाल पुलिस का प्रमुख अधिकारी होता था और मुहातसिब नामक अन्य अधिकारी भी होते थे। सुव्यवस्थित गुप्तचर विभाग भी था।

सुलतान की शक्ति और प्रशासन का मुख्य आधार सेना होने से, सैनिकों की संख्या में वृद्धि करके एक विशाल सेना संगठित करली गयी जिसमें नौ लाख अश्वारोही और अन्य सैनिक व हाथी थे। सैनिक अधिकारियों को जागीरें थीं पर सैनिकों को नगद वेतन दिया जाता था। भूमि-कर राज्य की मुख्य आय का साधन था जिसकी नियमित वसूली के लिये विभिन्न अधिकारी थे। दुर्भिक्ष के समय कृषकों को आर्थिक सहायता दी जाती थी। डाक लाने ले जाने की भी पूर्ण व्यवस्था थी। डाक अश्व पर या पैदल हरकारों द्वारा ले जायी जाती थी।

दृढ़ और सक्षम प्रशासन के लिये राज्य को प्रांतों में विभक्त कर दिया गया था। प्रांत का सर्वोच्च शासक प्रांतपति होता था। उसके व्यापक अधिकार होते थे। केन्द्रीय शासन में सुलतान सर्वोच्च अधिकारी था। प्रशासन में उसकी सहायता के लिये वजीर और अन्य विभागीय प्रमुख होते थे, जिनके नीचे दबीर और अन्य कर्मचारी होते थे। कर्मचारियों व अधिकारियों को योग्यता, प्रतिभा और कार्य कुशलता के आधार पर नियुक्त किया जाता था, न कि जन्म, कुल या श्रेणी व वर्ग के आधार पर।

सुलतान मुहम्मद की नीति के परिणाम और उसकी असफलता के कारण—सुलतान मुहम्मद की नीति और योजनाओं के परिणामस्वरूप दिल्ली साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, अपार धन-जन की हानि हुई, प्रजा को अपार कष्ट हुए और उसमें तीव्र असन्तोष फैल गया। शताधिकारियों और अन्य अधिकारियों द्वारा राजकीय धन का गबन व भ्रष्टाचार करने से, अपार धन व्यय हो गया व राजकोष रिक्त हो गया। एक-एक करके प्रांतीय शासकों व अधिकारियों ने सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिये। इससे सुलतान असफल रहा। उसका जीवन विफलताओं का क्रमबद्ध इतिहास बन गया। उसकी असफलता के लिये वह स्वयं भी उत्तरदायी है। वह हठी और उतावला, उग्र और क्रोधी होने से उसकी योजनाएं और नीति ठीक रूप से कार्यान्वित न हो सकीं। व्यक्तियों और अधिकारियों की परख करने के गुण का भी उसमें अभाव था। कुछ अन्य कारण भी उसकी असफलता के लिये हैं। उसके पास प्रतिभासम्पन्न, अनुभवी और स्वामिभक्त पदाधिकारी और परामर्शदाता नहीं थे। प्रजा ने उसको सहायता और सहयोग नहीं दिया। प्राकृतिक प्रकोपों से भी उसे अनेक

बाधाएं पहुँची। उसका योजनाएं उसके युग से आगे थीं। विदेशी अमीरों की स्वार्थ-परता, धनलोलुपता और कृतघ्नता से भी उसे सफलता नहीं मिली। प्रांतीय शासकों ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिये। कट्टर धर्मान्ध उलमा वर्ग के लोगों ने उसकी धर्मनिरपेक्षता की नीति की आलोचना करके उसके विरुद्ध विद्रोह प्रोत्साहित किये। साम्राज्य की विशालता और दूरी के कारण वह विद्रोहों और कुचक्रों का अन्त करने में असफल रहा।

मुहम्मद तुगलक और उलमा वर्ग—मुहम्मद तुगलक और उलमा वर्ग के लोगों के बीच खूब संघर्ष रहा। मुहम्मद तुगलक के सुलतान बनने तक दिल्ली सल्तनत साम्प्रदायिक मुस्लिम राज्य था। उलमा वर्ग के लोग न्यायाधीश होते थे। न्याय इस्लामी कानूनों के अनुसार होता था। राज्य का उद्देश्य इस्लाम का प्रसार करना होता था। इससे हिन्दुओं की विभिन्न स्वतंत्रताएं छीन ली जाती थीं और उन्हें अनेक कष्ट दिये जाते थे। मुहम्मद तुगलक ने इस्लामी राज्य की नीति में परिवर्तन किया। उसने उल्मा वर्ग के लोगों को दक्षता और योग्यता के आधार पर ही ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। उनके न्याय सबंधी तथा अन्य विशेष अधिकार समाप्त कर दिये। अपराध करने पर वह उन्हें दंड देता था। उन पर कर भी लगाये गये। न्याय-दान में उल्माओं के निर्णयों के विरुद्ध वह अपीलें सुनकर निर्णय भी देता था। अपना इस्लामी राज्य होने पर भी उसने हिन्दुओं के प्रति उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनायी। मुहम्मद तुगलक की ऐसी नीति के कारण उलमा वर्ग के लोग उससे असन्तुष्ट हो गये और उस पर अनेक मिथ्या दोषारोपण किये।

मुहम्मद तुगलक का मूल्यांकन

मुहम्मत तुगलक एक अत्यन्त आकर्षक, विचित्र व्यक्तित्व वाला सुलतान था। उसके व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं—उज्ज्वल और अंधकारमय पक्ष।

उज्ज्वल पक्ष—मध्य-युग के सुलतानों में वह सबसे अधिक सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न, उच्चकोटि का विद्वान, साहित्यकार, आलोचक, वक्ता था। दर्शन, नीति, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, तर्क शास्त्र, अरबी व फारसी का वह अच्छा ज्ञाता था। धार्मिक ग्रंथों का उसने खूब अध्ययन किया था। उसकी स्मरण शक्ति अद्भुत् और बुद्धि कुशाग्र थी और उसे असंख्य कविताएं कंठस्थ थीं। उसकी लेखन कला और काव्य रचना मनमोहक थी। वह भावुक कवि और विचारशील लेखक था। वह विद्वानों व कवियों का संरक्षक था। उसमें शासन में नवीन मौलिक परिवर्तन करने की तीव्र लालसा थी। उसकी योजनाएं मौलिकता-पूर्ण थीं। ऐसा विद्वान, प्रतिभावान और योजनाओं का धनी सुलतान दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठा था।

वह एक भावुक, सहृदय, उदार और दानशील सुलतान था। वह विद्वानों, कवियों, लेखकों, कलाकारों, संतों, और निर्धनों को अपार धन पुरस्कार, दान और अनुदान में देता था। वह विदेशियों को भी मुक्त हस्त से दान देता था। उसने अपनी विभिन्न योजनाओं द्वारा प्रजा की क्षति होने पर उसे मुआवजा दिया और क्षतिपूर्ति

की। यह उसकी उदारता का द्योतक है। उसकी दानशीलता और उदारता की कहानी कभी न समाप्त होने वाली अनुपम गाथा थी।

मुहम्मद तुगलक में श्रेष्ठ मानवी गुण थे। वह सदाचारी, नैतिक, सद्व्यवहारी, साहसी तथा विनयशील व्यक्ति था। नारियों के लिये उसके हृदय में श्रद्धा और सम्मान था। वह अपने गुरुओं के प्रति भी अधिक स्नेही और श्रद्धालु था। व्यवहार और शिष्टता में वह मानवोचित और कुशल था। उसमें धर्मपरायणता, धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता थी। व्यक्तिगत रूप से वह कट्टर नेक मुसलमान था। नियमित रूप से नमाज पढ़ता और रोजे रखता था तथा इस्लाम के नियमों का पालन करता था। वह धार्मिक व पुण्यात्मा था और सामान्य दुर्गुणों व व्यसनों से वह मुक्त था। इस्लाम का कट्टर अनुयायी होने पर भी उसमें धर्मान्धता, संकीर्णता, साम्प्रदायिकता और कट्टरता नहीं थी। अन्य धर्मों के प्रति वह उदार और सहिष्णु था। उसने राजनीति व प्रशासन को उल्मावर्ग के लोगों से मुक्त रखा था। वह अपनी न्यायपरायणता और निष्पक्षता के लिये प्रसिद्ध था। वह सबको न्याय के सम्मुख समान समझता था और उल्मा, अमीर वर्ग के लोगों को भी अपराध करने पर दंड देता था।

मुहम्मद तुगलक बड़ा महत्वाकांक्षी सुलतान था। अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये तथा अपने साम्राज्य के विस्तार के लिये उसने अनेक विजय अभियान आयोजित किये और शत्रुओं का दमन किया। यद्यपि मुहम्मद तुगलक अपनी समस्त योजनाओं में असफल रहा, परन्तु उसकी इन योजनाओं से उसके एक कुशल राजनीतिज्ञ होने का परिचय मिलता है। भवन निर्माण में उसे अभिरुचि थी और उसने दिल्ली में "दारे सरा" नामक महल बनाया और 'जहांपनाह" नामक नयी राजधानी बसायी और नवीन भवनों का निर्माण करवाया।

मुहम्मद तुगलक एक योग्य सेनानायक था जो युद्ध-कला से भली-भांति परिचित था। उसने बड़े साहस, वीरता और रणकुशलता से शत्रुओं का सामना किया और उसकी मृत्यु भी युद्ध अभियान में ही हुई। वह प्रजाहितैषी सुलतान था और उसने प्रजाहित में अपनी योजनाएं बनायीं। उसने दुर्भिक्ष-काल में और उसके बाद भी कृषि की उन्नति और कृषकों की आर्थिक सहायता के लिये प्रयत्न किये। वस्तुओं के निर्माण के लिये उसने कारखाने बनवाये और अनेकों शिल्पियों को नियुक्त किया। उसने समाज की बुराइयों को दूर करने तथा सती-प्रथा को बंद करने के प्रयत्न किये। उसने योजनाओं के समय जनता के कष्टों के निवारण के लिये भरसक प्रयत्न किये और उनकी हानि के लिये उसने मुआवजा भी दिया।

अंधकारमय पक्ष—मुहम्मद तुगलक के व्यक्तित्व और चरित्र के उज्ज्वल पक्ष और सद्गुण सम्पन्नता के साथ उसका अंधकारमय पक्ष भी है। इसमें उसके दुर्गुण और दुर्बलताएं हैं। मुहम्मद तुगलक ने प्रशासन में परिवर्तन कर उसे व्यवस्थित और सुधारने के प्रयास किये और जन-कल्याण के लिये उसने अनेक योजनाएँ बनायीं। प्रशासन में वह बड़ा परिश्रमी और अध्यवसायी था। वह प्रजा का पालक और रक्षक बनना चाहता था। उसमें योग्य शासक के सभी गुण विद्यमान थे परन्तु वह अपने दुर्गुणों

और दुर्बलताओं के कारण असफल रहा। उसका शासन-काल विफलताओं की एक क्रमबद्ध गाथा है। उसमें सामान्य स्थिर बुद्धि, व्यावहारिक निर्णय, धीरज और संतुलन का अभाव था। उसकी योजनाएं कल्पना प्रसूत होती थीं। जब उन्हें कार्यान्वित किया गया तो वे निष्फल हुईं। वह अपनी अनुदार और पिछड़ी हुई प्रजा को एक व्यवहार कुशल शासक के समान अपने साथ लेकर नहीं चला। जनता के तीव्र असन्तोष और अपनी योजनाओं की विफलताओं को देखकर समय तथा परिस्थिति की गतिविधि पर ध्यान रख कर अपनी नीति में समयानुकूल परिवर्तन नहीं किया।

अनेक गुणों के साथ-साथ सुलतान में दुर्गुण भी थे। प्रमाद और अहंकार का उसमें बाहुल्य था। वह दूसरे अनुभवी व्यक्तियों व अधिकारियों का परामर्श भी नहीं लेता था। उसके विस्तृत अध्ययन और ज्ञान-कोष ने उसे आवश्यकता से भी अधिक आदर्शवादी और अभिमानी बना दिया था। योजना बनाने और कार्यान्वित करने में वह जितना व्यग्र और आतुर होता था, योजना समाप्त करने में भी वह उतना ही उतावला होता था। जल्दबाजी, उतावलापन और आतुरता उसके दुर्गुण थे। वह हठी और अपनी धुन का पक्का भी था। हठवश वह अपने दृढ़ निश्चय पर ही चलता रहता था। दंड देने में भी वह हठी और कठोर हृदयी सुलतान था।

क्या मुहम्मद तुगलक में विरोधी गुणों व विभिन्नताओं का सम्मिश्रण था—स्मिथ और ईश्वरीप्रसाद के अनुसार मुहम्मद तुगलक में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था, उसके कार्यों और विचारों में विरोधाभास था। उनके अनुसार मुहम्मद तुगलक विद्वान भी था और मूर्ख भी, क्रूर भी और दयालु भी, उदार और कठोर भी, यदि वह नृशंसता से रक्तपात करता था, तो अपार दान और पुरस्कार भी देता था, वह नृशंस और नम्र दोनों ही था, यदि वह कुशाग्र बुद्धि और तर्कशक्ति वाला था, तो वह क्रोधी और आतुर भी था। उसमें आस्तिकता के साथ-साथ नास्तिकता भी थी। धर्मनिष्ठ मुसलमान होने पर भी वह मुसलमानों की हत्याएं करवाता था। यद्यपि मुहम्मद तुगलक में इस प्रकार के विरोधी गुण विद्यमान थे, परन्तु वे उसके जीवन में विभिन्न-काल में समय की आवश्यकताओं के अनुसार प्रगट हुए थे और इसके लिये विशेष परिस्थितियां उत्तरदायी थीं। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि मुहम्मद तुगलक एक ही समय में विरोधी बातें नहीं करता था। यह भी उल्लेखनीय है कि विरोधाभास के कार्य करने में उसकी प्रजाहित और राजहित की भावनाएं निहित थीं। जब उसकी योजनाओं की असफलता से लोगों को कष्ट पहुँचा तब उसने उनकी क्षति पूर्ति की, उन्हें सुविधाएं और धन दिया। उसकी योजनाएं सुधार, उसकी बुद्धि और अध्ययनशीलता के द्योतक हैं। इनमें उसके आदर्श श्रेष्ठ थे और विचारधाराएं उच्च थीं। कुछ ऐसी परिस्थितियां थीं कि जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था। इससे वह असफल, दुखी और निराश हो गया। ऐसी मनःस्थिति में, क्रोध व आवेश में, कठोरता व दयालुता के, बुद्धि व अविवेक के कुछ विरोधाभास के कार्य किये। पर इससे उसे विभिन्न गुण-अवगुणों का सम्मिश्रण नहीं कहा जा सकता।

क्या सुल्तान मुहम्मद तुगलक पागल और मूर्ख था—कतिपय मूर्ख इतिहासकारों ने मुहम्मद तुगलक को पागल, मूर्ख और सनकी कहा है। सुलतान की

निर्मम दंड व रक्त-रंजन की प्रवृत्ति से उसे पागल व सनकी कहा गया है। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि उस मध्य युग में यूरोप व एशिया में अंग-भंग का दंड या मृत्यु दंड देने की प्रथा प्रचलित थी। वह कठोर निर्मम दंड इसलिये देता था कि वह क्रोधी व आतुर स्वभाव का होने से लोगों का विरोध सहन नहीं कर सकता था। दोआब में कर-वृद्धि और वहां निर्ममता से कर की वसूली उसका पागलपन नहीं प्रगट करती। दोआब की समृद्धि के कारण मुहम्मद तुगलक ने कुछ कर बढ़ा दिये थे। करों को न देने और जनता को कष्ट होने का कारण कर-वृद्धि नहीं था, अपितु वहां का दुर्भिक्ष था जिससे उत्पन्न कष्टों का निवारण सुलतान ने स्वयं कर दिया था। ऐसा सुलतान पागल या मूर्ख नहीं हो सकता। राजधानी परिवर्तन और सांकेतिक मुद्रा प्रचलन का भी विशेष उद्देश्य था। इन योजनाओं के विफल होने का कारण उसका पागलपन नहीं था, अपितु योजनाओं को कार्यान्वित करने का दूषित ढंग और प्रजा की विवेक-शून्यता, असहयोग, अनुदारता और पिछड़ापन था। उसकी खुरासान और हिमाचल विजय योजना उसकी साम्राज्य विस्तार और महत्वाकांक्षा की भावना प्रकट करती है, न कि कोई पागलपन या मूर्खता। उसकी समस्त योजनाएं उसके उर्वर मस्तिष्क, प्रखर बुद्धि. अलौकिक प्रतिभा और महत्वाकांक्षा की उपज हैं तथा उसके व्यापक प्रशासकीय दृष्टिकोण व प्रजावत्सलता की भावना की द्योतक हैं। बर्नी, इब्नबतूता और इसामी ने सुलतान के कार्यों की कटु आलोचना की और उसके विरुद्ध विषवमन किया। इसके पीछे उनके व्यक्तिगत कारण, द्वेष और वैमनस्य थे। उनके कथनों पर बाद के इतिहासकारों ने मुहम्मद तुगलक को मूर्ख और पागल कहा है जो सर्वथा भ्रममूलक है। वास्तव में वह प्रतिभासम्पन्न सम्राट था जिसने लौकिक राज्य स्थापित करके धार्मिक सहिष्णुता, उदारता और धर्मनिरपेक्षता की नीति का अनुकरण किया।

इतिहास में मुहम्मद तुगलक का स्थान—यद्यपि सुलतान मुहम्मद तुगलक असफल रहा और उसका शासन-काल विफलताओं की क्रमबद्ध करुणाजनक गाथा है, परन्तु इतिहास में उसका अपना विशिष्ट स्थान है। वह प्रथम सुलतान था जिसके शासन-काल में उत्तरी और दक्षिण भारत दूरस्थ क्षेत्रों तक राजनैतिक एकता में बंध गया था तथा वहां उसने प्रत्यक्ष शासन स्थापित किया था। प्रशासन में भी उसने नवीन मौलिक योजनाओं का सृजन किया। परन्तु कर्मचारियों की अयोग्यता, प्रजा के असहयोग व विवेकहीनता से, दैवी प्रकोप व प्रतिकूल परिस्थितियों से तथा उसके उतावलेपन से ये योजनाएं निष्फल हो गयीं। सुलतान और प्रशासक के रूप में, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में मुहम्मद अवश्य असफल रहा। परन्तु उसकी योजनाओं की नवीन व्याख्याओं और अनुसंधानों के प्रकाश में, उसके कार्यों का सिंहावलोकन करें तो प्रतीत होता है कि मुहम्मद में अवगुणों की अपेक्षा गुण अत्यधिक थे। वह बड़ा चतुर्मुखी प्रतिभासम्पन्न सम्राट था जो अपनी विलक्षण बुद्धि, विद्वत्ता योग्यता, वीरता, दानशीलता, धर्मपरायणता, न्यायप्रियता, प्रतिभासम्पन्नता, निर्मल-चरित्र, तथा नवीन मौलिक विचारों के कारण मध्ययुग के इतिहास में ऊंचा स्थान रखता है। उस धर्मान्धता के युग में भी वह सहिष्णुता, उदारता और धर्मनिरपेक्ष

विचारधाराओं का पोषक बना रहा। उत्कट जन-कल्याण की भावनाओं से वह लौकिक राजतंत्र की स्थापना करना चाहता था और इसी से वह शेरशाह और अकबर का अग्रणी माना जाता है। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उसे सफलता प्राप्त हुई। उच्च-कोटि का विद्वान और विद्यानुरागी होने से वह विद्वानों का संरक्षक था। उसने शिक्षण संस्थाओं, विद्वानों और उलमा वर्ग के लोगों को अपार अनुदान दिये। भवन निर्माण में भी उसने राज महल और भवन तथा "जहांपना" नामक राजधानी बसा-कर सफलता प्राप्त की।

सुलतान मुहम्मद का मूल्यांकन

गुण, विशिष्टताएं	अवगुण, दुर्बलताएं
१. सर्वतोन्मुखी प्रतिभासम्पन्न विचित्र व्यक्तित्व।	१. असफल शासक।
२. सहृदय, उदार, दानशील सुल्तान।	२. सामान्य स्थिर बुद्धि, व्यावहारिक निर्णय, साधारण ज्ञान, धैर्य और संतुलन का अभाव।
३. श्रेष्ठ मानवी गुणों का सम्मिश्रण, सदाचारिता, पवित्रता, नैतिकता, शिष्टता, श्रद्धा आदि।	३. उतावलापन, और प्रमाद।
४. धर्मपरायणता, धार्मिक सहिष्णुता, धर्म निरपेक्षता।	४. आवश्यकता से अधिक आदर्शवादी।
५. श्रेष्ठ न्यायपरायणता, निष्पक्षता।	५. हठी, धुनी और निर्मम।
६. साम्राज्य-विस्तार, विजय और नवीन योजनाओं का महत्वाकांक्षी।	६. कठोर और दृढ़ निश्चयी।
७. कुशल राजनीतिज्ञ।	
८. अच्छा निर्माता।	
९. सुयोग्य कुशल सेनानायक।	
१०. प्रजाचिंतक और राज्यहितैषी।	
११. योग्य, परिश्रमी, अध्यवसायी प्रशासक।	

अध्याय २०

सुलतान फिरोजशाह तुगलक (सन् १३५१-१३८८)

फिरोजशाह तुगलक का प्रारम्भिक जीवन—अलाउद्दीन के शासन-काल में तीन बंधु गयासुद्दीन तुगलक, रजब और अबूबकर जीविकोपार्जन की खोज में भ्रमण करते हुए दिल्ली आये थे। अलाउद्दीन ने तीनों को शासकीय सेवाओं में ले लिया। गयासुद्दीन तुगलक को सीमांत क्षेत्र में सैनिक पद पर नियुक्त कर दीपालपुर की जागीर दे दी। इसी जागीर क्षेत्र में अबूहर भट्टी राजपूत सामन्त रणमल भी रहता था। उस समय तुर्की अधिकारियों व अमीरों में यह फेशन था कि कुलीनवंशीय हिन्दू कन्या से या हिन्दू सामन्त परिवार की कन्या से बलपूर्वक विवाह किया जाय। गयासुद्दीन तुगलक ने जब यह सुना कि सामन्त रणमल की कन्या अत्यन्त ही रूप और लावण्यमयी है, तब उसने अपने छोटे भाई रजब का विवाह उसके साथ करने का संकल्प किया और रणमल के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। राजपूत वंश की शान और मान का ध्यान रखकर रणमल ने इसे ठुकरा दिया। क्रुद्ध होकर तुगलक ने रणमल को पूर्ण भूमि-कर शीघ्र अदा करने के आदेश दिये और साथ ही रणमल के अधिकारियों व कर्मचारियों को पददलित कर जनता को अनेक यातनाएं और कष्ट दिये गये। ये अनाचार व अत्याचार अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच गये थे। एक दिन जब संध्या को रणमल और उसकी वृद्धा माता इन यातनाओं और तुगलक के घृणित प्रस्ताव पर संवेदनात्मक ढंग से विचार विनियम कर रहे थे, तब रणमल की कन्या ने सब बातें सुन लीं। उसने अपनी वृद्धा दादी के क्रन्दन को और बातों को सुनकर कहा, "यदि मेरे समर्पण से जनता को कष्ट से मुक्ति मिले तो तुगलकशाह की मांग पूर्ण कर दो और मुझे उनके पास भेज दो और यह सोच लो कि मंगोल तुम्हारी पुत्रियों में से एक को उठा ले गये।" इस प्रकार इस राजपूत राजकुमारी ने प्रजा को तुर्की यातनाओं से मुक्ति दिलाने तथा पिता के कष्ट के निवारणार्थ अपने आपको उत्सर्ग कर दिया और रजब का विवाह इसके साथ हो गया। तुर्की हरम में इसे बिबी नैला के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इस समय रजब सेना में सिपहसालार था। सन् १३०९ में इसी सिपहसालार रजब और बीबी नेला से फिरोज का जन्म हुआ था। सैनिक वातावरण में फिरोज का शैशवकाल व्यतीत हुआ।

जब गयासुद्दीन तुगलक सुलतान बना, तब फिरोज चौदह वर्ष का था। गयासुद्दीन उससे अच्छा स्नेह करता था और उसे अपने साथ रखता था। गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के बाद जब मुहम्मद तुगलक सुलतान हुआ, तब उसने भी फिरोज

से पूर्ववत स्नेह बनाये रखा और उस पर अपना वरद हस्त रखा। सुलतान बनने के शीघ्र बाद ही सन् १३२७ में मुहम्मद ने फिरोज को नायब-ए-अमीन नियुक्त कर दिया और उसे बारह सहस्र सैनिक अपने अधीन रखने का अधिकार दिया। बाद में उसने फिरोज को प्रांतीय शासक नियुक्त किया। धीरे-धीरे उसने फिरोज को अनेक ऊंचे पदों पर आसीन किया। उसका उद्देश्य था कि फिरोज प्रशासकीय कार्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करले। सन् १३४५ में जब सुलतान मुहम्मद तुगलक दक्षिण भारत के विद्रोहों का दमन करने के लिये गया, तब उसने दिल्ली और केन्दीय शसन का भार एक समिति को सौंपा था और फिरोज को उसका संरक्षक नियुक्त किया था।

फिरोज तुगलक का सिंहासनारोहण—राजधानी दिल्ली से दूर सिंध में थट्टा नामक स्थान पर रोगग्रस्त सुलतान मुहम्मद तुगलक २० मार्च १३५१ को परलोक सिधारा। उसकी मृत्यु के बाद ही उसकी सेना और शिविर में अव्यवस्था और अराजकता फैल गयी। सुलतान के मंगोल सैनिकों ने सुलतान के प्रति अपनी राजभक्ति को छोड़ कर शिविर को लूटना प्रारंभ कर दिया। वे लूटकर दास-दासियां, घोड़े, ऊंट, और स्त्रियां ले गये। सेना और अधिकारियों की दशा इतनी त्रस्त और दयनीय हो गयी थी कि उनका दिल्ली तक सकुशल पहुँच जाना असंभव-सा प्रतीत होने लगा। सुलतान मुहम्मद के कोई पुत्र नहीं था। पुरुष उत्तराधिकारी के अभाव ने तत्कालीन परिस्थिति को और भी अधिक गंभीर और जटिल बना दिया। ऐसी दशा में बर्नी के मतानुसार सुलतान मुहम्मद द्वारा मनोनीत उत्तराधिकारी फिरोज से उपस्थित अमीरों और अधिकारियों ने निवेदन किया कि वह सुलतान का पद ग्रहण कर ले। फिरोज साधु, प्रकृति का व्यक्ति था। वह दरवेश के रूप में जीवन व्यतीत करना चाहता था। मक्का हज (तीर्थयात्रा) करने की उसकी प्रबल इच्छा थी। पर सरदारों और अमीरों ने उसे परिस्थितियों की विषमताएं समझायीं और उससे बार-बार अनुरोध किया कि वह राजसिंहासन पर बैठ जाय, उनकी आपत्तियों को दूर करे और सल्तनत को विनाश से बचाये। शम्स-ए-सिराज अफीफ ने भी अपने ग्रंथ में लिखा है कि, "तब सारे राजकुमारों, न्यायाधीशों, विद्वानों, शेखों, तथा धार्मिक पुरुषों ने एक स्वर से यह घोषित किया कि अब फिरोज उनका सुलतान बने, किन्तु उसने इस काम को एक कठिन उत्तरदायित्व समझ कर आरंभ में सुलतान बनने से इनकार कर दिया। अंत में फिरोज ने सुलतान बनना अंगीकार कर लिया। जब यह सूचना प्रसारित हुई तो सुलतान मुहम्मद की बहिन खुदा बन्द जादा ने अपने पुत्र दावर मलिक को मुहम्मद तुगलक का उत्तराधिकारी होने का दावा किया। उसने यह चाहा कि फिरोज के स्थान पर उसका पुत्र सुलतान बने। इस पर अमीरों ने मलिक सइफुद्दीन खोजू नामक एक योग्य अमीर को खुदाबन्द जादा के पास यह समझाने के लिये भेजा कि उसका पुत्र अयोग्य, निकम्मा और लंपट है, वह सुलतान बनने के योग्य नहीं है। वह अपनी स्वयं की सुरक्षा के लिये अमीरों के निर्णय से सहमत हो जाय। खुदाबन्द जादा ने इसे मान लिया। इसके बाद सरदारों द्वारा एकमत से सुलतान बनने के लिये फिरोज को निर्वाचित कर देने से फिरोज राज्य के हितों को ध्यान में रख कर २३ मार्च सन् १३५१ को सिंहासन पर आसीन हो गया। तातार खां ने जो उस समय प्रमुख अमीर

और सेनानायक था, फिरोज की भुजा पकड़कर उसे सिंहासन पर बिठा दिया। फिरोज ने सिंहासन पर बैठने के बाद सिजदा करते हुए ईश्वर से प्रार्थना की और कहा, "ऐ खुदा ! राज्य का स्थायित्व, शांति, अनुशासन एवं राजकाल आदि मनुष्य पर आधारित नहीं हैं। राज्य का स्थायित्व तेरी कृपा पर आश्रित है। ऐ खुदा ! तू ही मेरी शरणस्थली और तू ही शक्ति है।" इसके बाद फिरोज रनवास में खुदाबन्द जादा के पास पहुँचा और उसके चरणों पर नतमस्तक हो गया। खुदाबन्द जादा आनन्द विभोर हो उठी और उसने अपने हाथों से एक लाख तनके का बहुमूल्य राजमुकुट फिरोज के मस्तक पर रख दिया।

फिरोज के सुलतान बनते ही सेना की अव्यवस्था समाप्त हो गयी और चतुर्दिक शांति स्थापित हो गयी। अब फिरोज ने सेनासहित सिंध से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और वह सेना को योग्यता, कुशलता और सफलता से दिल्ली ले आया।

जब फिरोज सेना सहित दिल्ली की ओर आ रहा था और दिल्ली की सीमा तक पहुँचा ही था कि मुहम्मद तुगलक के मंत्री ख्वाजाजहां द्वारा भेजा हुआ एक पत्र उसे मिला जिसमें लिखा था कि ख्वाजाजहां ने मुहम्मद की मृत्यु का सन्देश पाकर उसके पुत्र को राजसिंहासन पर बिठा दिया है और फिरोज उसका संरक्षक बन कर सल्तनत की स्थिति संभाले। जब फिरोज ने यह पत्र अमीरों को बतलाया तो उन्होंने कहा कि मुहम्मद तुगलक के कोई पुत्र था ही नहीं। उन्होंने इस्लामी सिद्धांतों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिया कि ख्वाजाजहां ने जिस लड़के को गद्दी पर बिठाया है, वह अल्पायु होने से राजसिंहासन पर बैठ ही नहीं सकता। राजसिंहासन पर उसे बिठाया जा सकता है जो शासन सत्ता सम्भालने के योग्य हो। नाबालिग या अयोग्य व्यक्ति सिंहासन का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता। फिरोज को निर्वाचित कर सुलतान बनाने का जो निर्णय हो चुका है, उसे बदला नहीं जा सकता। उसमें परिवर्तन करने की जिन दशाओं का वर्णन उलमाओं ने किया है उनका भी अभाव है।

ख्वाजाजहां को यह खबर मिली थी कि सिंध में फिरोज और तातारखां दोनों ही सैनिक शिविर से लापता हैं और युद्ध में काम आये हैं। इसलिये सुलतान मुहम्मद की मृत्यु के बाद दिल्ली में स्थिति को संभालने के लिये ख्वाजाजहां ने एक नाबालिग लड़के को गद्दी पर बिठा दिया। जब फिरोज दिल्ली पहुँचा और ख्वाजाजहां ने उसे स्थिति समझायी, और अपनी भूल का प्रायश्चित कर फिरोज शाह से क्षमा याचना की, तब फिरोज ने उसकी दलीलों को सत्य समझ कर उसकी पूर्व की राजकीय सेवाओं को ध्यान में रखकर उसे क्षमा कर दिया। परन्तु मलिकों व अमीरों ने उसे अक्षम्य विश्वासघात और राजद्रोह का अपराधी ठहराकर फिरोज को बाध्य किया कि वह ख्वाजाजहां को उसकी जागीर समाना में भेज दे। इस विषय में शम्स-ए-सिराज अफीफ ने लिखा है कि, "अतः उन्होंने (अमीरों ने) निश्चय किया कि ख्वाजा वृद्ध होने के कारण समाना भेज दिया जाय जहां की जागीर उसे इनाम के रूप में प्रदान की जाय। ख्वाजा को सम्राट ने आदेश दिया कि वह वहीं जाकर अपने जीवन के शेष दिन ईश्वर की इबादत में व्यतीत करे।" विवश हो ख्वाजाजहां ने समाना के लिये प्रस्थान किया। पर मार्ग में ही शेरखां अमीर के संकेत व आदेश से उसका वध कर

दिया गया। दुर्बल हृदय सुलतान फिरोजशाह ख्वाजा को न बचा सका। उसमें इतनी शक्ति ही नहीं थी कि वह अमीरों के विरुद्ध कुछ बोल सके। फिरोजशाह के शासन-काल का प्रारंभ शक्तिहीनता, दुर्बलता और हत्या से हुआ और अंत तक सुलतान की यह शक्ति-क्षीणता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी जिससे तुगलक सल्तनत का विघटन हो गया।

क्या फिरोज तुगलक राज्य का अपहरणकर्ता था ?

कुछ इतिहासकारों की धारणा है कि फिरोज का तुगलक राज्य पर कोई अधिकार नहीं था। उसने राज सिंहासन छीन लिया। उसकी यह अनाधिकार चेष्टा थी। इस प्रकार फिरोज तुगलक राज्य का अपहरणकर्ता था। सर वुल्जे हेग ने सन् १९२२ में रायल एशियाटिक सोसायटी के जनरल में इस आशय का एक लेख लिखा था कि सुलतान मुहम्मद का पुत्र था। फिरोज ने मुहम्मद के पुत्र के उत्तराधिकार के दावे को तिरस्कृत कर दिया और स्वयं सुलतान बन गया। फिरोज इस प्रकार अपहरणकर्ता था। वुल्जे हेग ने इस प्रश्न के दोनों पहलुओं पर विचार किया है। परन्तु हेग का मत मान्य नहीं है। फिरोज अपहरणकर्ता था यह मानने के पहिले यह देखना चाहिये कि क्या मुहम्मद तुगलक के कोई पुत्र था ?

क्या सुलतान मुहम्मद तुगलक के कोई पुत्र था ?

(१) **बदायूंनी का मत**—बदायूँनी के अनुसार मुहम्मद तुगलक का एक पुत्र था। यह निष्कर्ष उसके द्वारा वर्णित एक घटना से निकलता है। उसने लिखा है कि जब मुहम्मद तुगलक गुजरात में था, तब दो शेखों ने मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध और फिरोज के पक्ष में एक षड़यंत्र रचा। पर उसका भेद शीघ्र ही खुल गया। इस पर मुहम्मद ने दोनों शेखों और फिरोज को अपने शिविर में बुलाया। शेखों को मृत्यु दंड दिया और फिरोज को बंदी बना लिया गया। परन्तु जब मुहम्मद मद्यपान करके नशे में था और उसका पुत्र आखेट के लिये चला गया था, तब पहरेदारों ने तीनों बन्दियों को मुक्त कर दिया। फिरोज मुहम्मद के पुत्र के साथ प्राण बचाकर भाग निकला। फिरोज क्यों और किस प्रकार भाग निकला इसका कोई उल्लेख नहीं है।

(२) **बर्नी का मत**—जिस अल्पायु बालक को ख्वाजाजहां ने राजसिंहासन पर बिठाया था, बर्नी ने उसे "अज्ञात वर्णशंकर" कहा है। बदायूँनी, फरिश्ता तथा यहाबिन अहमद ने बर्नी के कथन को मान लिया। वे उसे अज्ञात परिवार का बालक मानते हैं।

(३) **ख्वाजाजहां का कार्य**—ख्वाजाजहां सल्तनत का स्वामिभक्त वजीर था। वह शांति और व्यवस्था चाहता था। उसे विश्वास हो जाने पर ही कि अल्पायु बालक मुहम्मद तुगलक का पुत्र है, उसे गद्दी पर बिठा दिया। उसने ऐसा विश्वस्त सूचना के आधार पर साम्राज्य के हित के लिये किया। उसने उस बालक को राज्य का उत्तराधिकारी मानकर उचित कार्य किया। इससे प्रतीत होता है कि मुहम्मद के कोई पुत्र था।

(४) **फरिश्ता का मत**—जब फिरोज ने मौलाना कमालुद्दीन, शेख मुहम्मद नासिरुद्दीन तथा मौलाना शमसुद्दीन से भूतपूर्व सुलतान के पुत्र के संबंध में पूछा तो

उन्होंने उत्तर दिया कि यदि उसके पुत्र हो भी तो ऐसी परिस्थिति में जो हो गया उसी को स्वीकार करना उचित होगा। उल्मा ने कहा कि जिस लड़के को ख्वाजाजहां ने राजसिंहासन पर बिठाया है वह अल्पायु होने के कारण राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता। इससे फरिश्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुहम्मद के पुत्र होने की कथा बनावटी नहीं थी।

(५) **डॉ० त्रिपाठी का कथन**—डॉक्टर त्रिपाठी का कथन है कि ख्वाजाजहां द्वारा गद्दी पर बैठाया हुआ अल्पायु व्यक्ति मुहम्मद तुगलक का पुत्र था। खुदाबन्द जादा, मुहम्मद तुगलक की भुआ ने इस बालक की अवहेलना करके अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने की वकालत की थी। यह उसका व्यक्तिगत स्वार्थ और हित था। यह उसने तब किया जबकि मुहम्मद का पुत्र बनावटी घोषित हो चुका था, उसे मुहम्मद के पुत्र न होने का विश्वास-सा हो गया था। यह कहना भी कठिन है कि जब खुदाबन्द जादा ने अपने पुत्र को सुलतान बनाने का षड़यंत्र रचा तब मुहम्मद तुगलक का पुत्र जीवित रहा या नहीं।

इन मतों के विपरीत कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जो यह संकेत करते हैं और यह प्रमाणित करते हैं कि मुहम्मद तुगलक के कोई पुत्र नहीं था। ये निम्नलिखित हैं :—

(१) यदि मुहम्मद तुगलक का कोई पुत्र होता तो अमीर और सामन्त यह नहीं कहते कि सुलतान के कोई पुत्र नहीं है।

(२) यदि सुलतान के कोई भी वैध पुत्र होता तो समकालीन इतिहासकार उसके जन्म और शैशव काल की चर्चा करते। परन्तु ऐसा किसी ने नहीं किया; इसके विपरीत बर्नी ने ख्वाजाजहां द्वारा राजगद्दी पर प्रतिष्ठित मुहम्मद के तथाकथित उत्तराधिकारी बालक को "अज्ञात वर्णशंकर" कहा है। यहाबिन अहमद, फरिश्ता, निजामुद्दीन अहमद और बदायूंनी ने उसे "अपरिचित परिवार" का कहा है। इससे भी स्पष्ट है कि सुलतान का कोई भी वैध पुत्र नहीं था।

(३) सुलतान मुहम्मद तुगलक की बहिन खुदाबन्द जादा ने मुहम्मद तुगलक के वैध या अवैध पुत्र का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। यदि उसका कोई पुत्र होता तो वह अपने पुत्र के सिंहासनारोहण और उत्तराधिकार के दावे के अस्वीकृत हो जाने पर अवश्य ही उसका समर्थन करती। पर ऐसा कहीं भी नहीं हुआ।

(४) लेखक अफीफ ने अपने ग्रंथ में सुलतान के बालक उत्तराधिकारी को अवैध तो नहीं कहा है, परन्तु यह भी लिखा है कि सेना के अधिकारियों ने यह कहा कि सुलतान के कोई भी पुत्र नहीं था।

(५) यदि सुलतान मुहम्मद के कोई पुत्र होता तो फिरोज जो मुहम्मद के प्रति इतना राजभक्त, कृतज्ञ और श्रद्धालु था, कभी भी उस पुत्र के उत्तरधिकार और राज्यारोहण के दावे को अस्वीकार नहीं करता। वह कभी भी उसके अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करता। यदि वह सैनिक आवश्यकता और राजनैतिक परिस्थितियों तथा अमीरों के दबाव के कारण ऐसा करता भी तो वह अवश्य ही उस पुत्र के लालन-पालन का ध्यान रखता। जैसा वह खुदाबन्द जादा और उसके पुत्र दावर मलिक के प्रति उदार व सहिष्णु था तथा खुदाबन्दजादा से वह नियमित

मिलता था, उसी प्रकार की व्यवस्था वह मुहम्मद के पुत्र के प्रति भी करता। पर फिरोज के ऐसे कार्य का कहीं भी उल्लेख नहीं है, इससे स्पष्ट है कि सुल्तान मुहम्मद के कोई पुत्र था ही नहीं।

(६) जब खुदाबन्द जादा ने अपने पुत्र के उत्तराधिकार पर बल दिया तब सरदारों ने उसे अयोग्य, लम्पट और अक्षम बतलाकर उसके उत्तराधिकार के दावे पर अधिक जोर न देने के लिये प्रार्थना की और वह शान्त हो गयी। ऐसी दशा में यदि मुहम्मद के कोई पुत्र होता तो वे उसके भी अवयस्क या अयोग्य, अक्षम या दुर्बल होने की बात कहते। खुदाबन्द जादा द्वारा उस पुत्र के दावे पर बल देने पर वे उससे भी वैसी प्रार्थना करते और फिरोज का समर्थन करते। पर घटना चक्र के वर्णन में ऐसा होने का कहीं भी उल्लेख नहीं आया है।

(७) सुलतान मुहम्मद ने जब मक्का की तीर्थयात्रा का विचार किया था और अपने राज्य को फिरोज, मलिक कबीर तथा ख्वाजाजहाँ के हाथों में सौंपने का निर्णय किया था, उस समय भी सुलतान ने अपने पुत्र का कोई भी वर्णन नहीं किया है।

(८) इसामी ने अपने ग्रंथ "फुतह-उस-सलानीन" में सन् १३४९ में लिखा है कि मुहम्मद तुगलक के कोई पुत्र नहीं था। तब सन् १३५१ में ख्वाजाजहाँ को मुहम्मद का पुत्र कैसे प्राप्त हो सकता है।

इन तर्कों से स्पष्ट है कि सुलतान मुहम्मद के कोई पुत्र था ही नहीं। अतएव फिरोज द्वारा उससे राज्य छीनने या अपहरण करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

सुलतान मुहम्मद के भानजे का बाबर मलिक के उत्तराधिकारी होने का दावा—अब उत्तराधिकार का दावा दो व्यक्तियों में था, प्रथम फिरोज जो सुलतान मुहम्मद के सगे चाचा या काका का पुत्र था और द्वितीय सुलतान की बहिन खुदाबन्द जादा का पुत्र अर्थात् मुहम्मद तुगलक का भानजा। मुहम्मद तुगलक के भानजे के दावे और उसके सुलतान बनने का प्रश्न है, उसमें निम्नलिखित दोष थे:—

(१) वह थट्टा में समय पर उपस्थित भी नहीं था।

(२) वह अयोग्य, आलसी, विलासी और लंपट था। उसमें सुलतान बनने की क्षमता और गुणों का अभाव था। राज्य के समस्त अमीर और अधिकारीगण इसे जानते थे। वे सैनिक और राजनैतिक स्थिति को सम्भालने वाला सुलतान चाहते थे।

(३) वह अत्यधिक प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त हो चुका था।

(४) मुहम्मद की बहिन खुदाबन्द जादा ने सइफुद्दीन खोजू के समझाने-बुझाने पर अपने पुत्र के दावे को त्याग दिया था और वह फिरोज को सुलतान बनाने के लिये सहमत हो भी गयी थी। ऐसी दशा में सुलतान के भानजे का उत्तराधिकार का दावा महत्वहीन था।

फिरोज के उत्तराधिकारी होने का दावा–जो विद्वान यह कहते हैं कि फिरोज अपहरणकर्ता है, दिल्ली के सिंहासन पर उसका कोई अधिकार नहीं है, उनके तर्क निम्नलिखित हैं—

(१) सुलतान मुहम्मद का एक पुत्र था और ख्वाजाजहां ने उसे सुलतान बना दिया था।

(२) अमीरों और उल्माओं ने ख्वाजाजहां द्वारा राजसिंहासन पर बिठाये गये और सुलतान घोषित किये गये बालक का अपने स्वार्थ और हितों की सिद्धि के लिये विरोध किया और फिरोज का समर्थन।

(३) सुलतान मुहम्मद ने फिरोज के पक्ष में अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिये कोई पक्का वसीयतनामा नहीं लिखा था। खुदावन्द जादा और ख्वाजाजहाँ को कभी भी ऐसा वसीयतनामा नहीं बतलाया गया था। इतिहासकार अफीफ ने जो फिरोज का समकालीन था, अपने ग्रंथ में ऐसे वसीयतनामे का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

(४) सुलतान मुहम्मद ने अपनी मृत्युशय्या पर, कम से कम तब तक जब तक कि वह होश में था, ऐसा कुछ भी नहीं कहा जिससे कि फिरोज के उत्तराधिकारी होने की स्वीकृति मानी जा सके। यह बहुत कुछ सम्भव है कि उसने फिरोज को संरक्षता सौंपी हो और उसे तथा अपनी सेना को अव्यवस्थित भयंकर परिस्थिति में से सुगमता से निकालने के लिये प्रयत्न करने को प्रोत्साहित किया हो।

(५) यह मान भी लिया जाय कि सुलतान मुहम्मद ने फिरोज को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था, और इसलिये वह राजसिंहासन पर बैठा पर यह तर्कयुक्त प्रतीत नहीं होता। मध्ययुग में सरदार, अमीर और अधिकारी प्राय: मरने वाले सुलतान के मनोनयन की अवहेलना करते थे, वे मनोनीत व्यक्ति की अपेक्षा अपना ही व्यक्ति राजसिंहासन पर बिठाते थे; उदाहरणार्थ सामन्तों और अमीरों ने सुलतान इल्तुतमिश द्वारा रजिया का और बलबन द्वारा खुसरो का मनोनीत होना अस्वीकार कर दिया।

(६) फिरोज स्वयं सुलतान बनना नहीं चाहता था; अमीरों के अत्यधिक दबाव के कारण ही उसने राजमुकुट स्वीकार किया।

(७) फिरोज स्वयं भी अपने को सुलतान का उत्तराधिकारी नहीं मानता था। उसने स्वयं हज पर जाने की इच्छा प्रगट की थी। उसे बलपूर्वक सुलतान बनाया गया।

इसके विपरीत निम्नलिखित तर्क हैं—

(१) **विभिन्न इतिहासकारों के मत—**

(अ) **बर्नी का मत**—बर्नी का कथन है कि फिरोज का राज्यारोहण न्याययुक्त है। क्योंकि, "मुहम्मद तुगलक सदैव उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने की सोचा करता था। अतएव उसने अपनी मृत्युशय्या पर उसे उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया, क्योंकि फिरोज ने रुग्णावस्था में उसकी खूब सेवा सुश्रूषा की थी।" परवर्ती इतिहासकारों ने बर्नी के इस मत का समर्थन किया है।

(ब) **फरिश्ता** ने लिखा है कि, "मलिक फिरोज बर्बक सुलतान गयासुद्दीन तुगलक का भतीजा था, जिसे मुहम्मद तुगलक अपने उत्तराधिकारी की दृष्टि से देखता

था। जब फिरोज ने उसकी बीमारी में सेवा की, उस समय उसने फिरोज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।''

(स) निजामुद्दीन अहमद ने अपने ग्रंथ "तबकात-ए-अकबरी" में लिखा है कि, "जब सुलतान मुहम्मदशाह की दशा सेवान में बिगड़ गयी और उसका अन्त निकट आया, तब उसने अपने चाचा के लड़के मलिक फिरोज को उत्तराधिकारी नियुक्त किया।"

(द) बदायूंनी ने अपने ग्रंथ "मुन्तखब-उल-तवारीख" में लिखा है कि ''सुलतान फिरोजशाह सुलतान मुहम्मद का चचेरा भाई मुहम्मद तुगलक की आज्ञा तथा शेख, अमीर और वजीरों के परामर्श से गद्दी पर बैठा।"

इससे यह स्पष्ट है कि सुलतान मुहम्मद ने फिरोज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

(२) सुलतान मुहम्मद के कोई भी वैध या अवैध पुत्र नहीं था। यह तथ्य उपरोक्त प्रमाणों से (पिछले पृष्ठों में) सिद्ध कर दिया गया है। यदि मान भी लिया जाय कि सुलतान मुहम्मद का कोई पुत्र था भी, तो भी तत्कालीन दयनीय सैनिक और संकटापन्न राजनैतिक दशा को देखते हुए, समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, किसी सामंत की संरक्षता में किसी बालक सुलतान के स्थान पर सुयोग्य, बालिग, और अनुभवी शासक अधिक अच्छा था। इसी आधार पर फिरोज के राज्यारोहण का औचित्य है। वह अनुभवी प्रशासक था जिसे सामन्तों का समर्थन प्राप्त था। फिरोज ही उस समय ऐसा व्यक्ति था जिसके कन्धों पर शासन का गुरुतर भार रखा जा सकता था।

(३) मुहम्मद का पुत्र, यदि वह वास्तविक भी रहा हो तो भी वह अल्पवयस्क था और उसकी सफलता की कोई आशा नहीं थी। इसके विपरीत अनुभवी और वयस्क फिरोज अधिक योग्य और उपयुक्त था। सिंध में ही फिरोज ने मंगोल सैनिकों से युद्ध करके अपने सब युद्धबंदी छुड़ा लिये और सेना को सफलतापूर्वक दिल्ली ले आया। यह उसके शासन की प्रथम विजय और सफलता थी।

(४) संकटकालीन परिस्थिति को देखकर मखदूमजादा अब्बासी, शेख नासिरुद्दीन महमूद अवधी, चिराग देहली, आदि मलिकों, अमीरों, और उलमाओं ने फिरोज को मुहम्मद का उत्तराधिकारी होने के लिये निर्वाचन किया था। उसे सामन्तवर्ग और उलमावर्ग दोनों का समर्थन प्राप्त था। सिंहासन के लिये फिरोज का दावा योग्यता के उस आधिक्य पर आधारित था, जो सामन्तों, मलिकों और धर्मवादियों की दृष्टि से उसके पास थी।

(५) ख्वाजाजहां ने दिल्ली में अल्पायु बालक को इसलिये सुलतान बनाया था कि शासन संभालने वाला कोई भी नहीं था, और शाही सेना के प्रमुख सेनानायकों, तातारखाँ तथा फिरोज के अदृश्य होने का समाचार उसने सुना था। जब उसे फिरोज की उपस्थिति का और उसके दिल्ली आगमन का संदेश मिला, तब उसने फिरोज से अपने कृत्य के लिये क्षमा मांगी, पश्चाताप किया और फिरोज को अपना सुलतान मान लिया। इससे स्पष्ट है कि ख्वाजाजहां ने न तो मुहम्मद के पुत्र

को ही सुलतान बनाया, न वह विद्रोही ही था और न उसने फिरोज के प्रति विश्वास-घात ही किया। वह तो सैनिक अधिकारियों की शत्रुता और प्रतिहिंसा का शिकार बन गया।

(६) इस्लामी सिद्धान्त में वंशानुगत उत्तराधिकार का कोई भी नियम नहीं है। मृत सुलतान के पुत्र, पौत्र या सम्बन्धी को राजसिंहासन से, सामन्तों, मलिकों, या दासों द्वारा हटाया जाना मध्ययुग में साधारण बात थी। इसे हेय या अन्याय नहीं माना जाता था। शासन करने की योग्यता और हाथ में दृढ़ शक्ति व तलवार ही निर्णयात्मक सिद्धान्त माना जाता था। फिरोज में ये बातें थीं। उसे मलिकों ने निर्वाचित किया था, उसमें अनुभव और शक्ति थी। इसलिये वह राज्य की प्रभुसत्ता प्राप्त कर सकता था।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों तथा तर्कों के आधार पर फिरोज तुगलक पर राज्य के अनाधिकारपूर्ण अपहरण करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता था।

फिरोजशाह तुगलक का लक्ष्य—तुगलक राज्य को संकटापन्न स्थिति से निकालने तथा विघटन और विनाश से बचाने के लिये फिरोज ने राजमुकुट ग्रहण किया और वह सुलतान बना था। इसलिये उसने अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया था--राज्य की सुरक्षा करना और प्रजा हित के कार्य करना। धर्मनिष्ठ कट्टर मुसलमान होने के कारण, हदीस तथा कुरान के नियमों का पालन करने वाला होने से वह अपने आपको खुदा के बन्दों का संरक्षक समझता था तथा शेख, मुल्ला और मौलवियों में अधिक विश्वास करता था। वह उनके परामर्श को मानता था। फलतः उसने दिल्ली सल्तनत को इस्लाम धर्म प्रधान राज्य बना दिया। इस इस्लामी राज्य में सुख, समृद्धि रहे और देश में शांति-व्यवस्था स्थापित हो जाय। पिछले सुलतानों के समान अशांति और अराजकता राज्य में व्याप्त न हो जाय। परन्तु इस्लामी राज्य स्थापित करने पर भी वह गैर मुसलमानों के विरुद्ध पूर्णतया जिहाद छेड़ने में और उनसे संघर्ष करने में असमर्थ था। उसमें इसके लिये क्षमता नहीं थी। वह शांति का इच्छुक था, संघर्ष और युद्ध का नहीं।

फिरोजशाह की प्रारम्भिक समस्याएँ—राज्यारोहण के बाद सुलतान फिरोज-शाह को निम्नलिखित समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ाः—

(१) **राज्य के अन्य दावेदार**—फिरोजशाह का सिंहासन खतरे से खाली न था। उसका राजपद सुदृढ़ नहीं था। ख्वाजाजहाँ द्वारा समर्थित मुहम्मद के तथा-कथित अल्पायु पुत्र एवं खुदाबन्द जादा के पुत्र दाबर मलिक के उत्तराधिकार का दावा था। सौभाग्य से ख्वाजाजहां ने फिरोज की विशाल सेना और अमीरों का समर्थन देख कर बालक को राजसिंहासन से पदच्युत कर अपनी भूल की क्षमा-याचना की। दाबर मलिक अत्यन्त विलासी और अयोग्य होने से अमीरों का और स्वयं अपनी माता का सुलतान बनने के लिये समर्थन प्राप्त नहीं कर सका। इससे फिरोज की एक जटिल प्रारंभिक समस्या हल हो गयी।

(२) **कानून, शांति और कुव्यवस्था**—केन्द्रीय शासन की शिथिलता और विद्रोहों के बाहुल्य से राज्य में कानून और व्यवस्था जर्जरित हो गयी थी एवं शांति नष्ट हो चुकी थी।

(३) **विद्रोही प्रान्त**—सल्तनत की सीमा पर स्थित प्रांतों में तथा अन्य प्रदेशों में केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध विद्रोह हो रहे थे। अनेक प्रांतपतियों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। इन्हें दिल्ली के अधीन करना फिरोज की बड़ी विकट समस्या थी।

(४) **अमीरों और उलमाओं का असन्तोष**—सुल्तान मुहम्मद की नीति व कार्यों से अनेक अमीर और उलमा असन्तुष्ट थे। इन्हें सन्तुष्ट कर अपना समर्थक बनाना फिरोज की एक बड़ी समस्या थी।

(५) **गिरी हुई आर्थिक दशा और राजकोष की रिक्तता**—निरन्तर संघर्षों, अपव्यय, दुर्भिक्ष, और विभिन्न योजनाओं के कारण राज्य की आर्थिक दशा अस्त-व्यस्त हो गयी थी। कृषि और उद्योग नष्ट हो गये थे। ख्वाजाजहाँ द्वारा सुलतान मुहम्मद के बालक पुत्र के राज्यारोहण के समय सामन्तों, अधिकारियों व जनता में अधिक धन लुटाने से राजकोष रिक्त हो गया था।

समस्याओं के निराकरण के लिये फिरोज के कार्य

(१) **नये पद और अधिकारी**—अपने लिये अमीरों और अधिकारियों का समर्थन तथा राज्यभक्ति प्राप्त करने के लिये फिरोज ने मुक्तहस्त से पदों का व उपाधियों का वितरण किया। उसने अपने समर्थक सरदारों, सामन्तों और सहायकों को ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। उसने मलिक मकबूल को नायब-ए-वजीर नियुक्त किया और उसे खान-ए-जहाँ की उपाधि दी तथा उसके लिये १३ लाख टंक वार्षिक वेतन नियत किया। मलिक राजी को नायब आरिज का पद दिया और उसे सैन्य-संगठन के कार्य के लिये नियुक्त किया। हिसामुद्दीन जुनेद को राजस्व विभाग का उच्च अधिकारी नियुक्त किया और उसे भूमिकर व्यवस्था को ठीक करने का भार सौंपा। एक अन्य मलिक गाजी शहना को फिरोज ने निर्माण विभाग के संचालन का भार सौंपा। इन व्यक्तियों की सहायता व सहयोग से फिरोज ने प्रशासन को ठीक किया और आवश्यक शासकीय सुधार किये।

(२) **उत्तराधिकारियों का अन्त**—अपने राज्य-अधिकार को निष्कंटक बनाने के लिये फिरोज ने अपने विरोधी अमीर ख्वाजाजहाँ को प्रत्यक्ष रूप से क्षमा करके दिल्ली से दूर स्थानान्तरित कर दिया और अप्रत्यक्ष रूप से उसका वध करवा दिया तथा मुहम्मद के अल्पवयस्क पुत्र को भी या तो मार डाला या मरवा दिया और अपने मार्ग से हटा दिया। खुदाबन्द जादा के आलसी और प्रौढ़ पुत्र को भी शक्तिहीन कर दिया।

(३) **धन वितरण और ऋणमुक्ति**—वजीर ख्वाजाजहाँ ने अनेक समर्थक व्यक्तियों को राजकोष का धन दान व ऋण में वितरित किया था। ऐसी आशंका थी कि फिरोज सुलतान बनने पर उनसे वह धन सुलतान गयासुद्दीन की भाँति वापिस

मांगेगा। परन्तु फिरोज ने उन्हें राज-ऋण के भार से मुक्त कर दिया और वह धन उनके पास ही रहने दिया। इससे उसने लोगों को संतुष्ट कर लिया, उनकी कृतज्ञता और राज-भक्ति प्राप्त कर ली।

इसके अतिरिक्त उसने उन सभी लोगों को जिन्हें मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में किसी प्रकार से कोई क्षति पहुँची थी, वांछनीय धन देकर सन्तुष्ट कर लिया और उनसे संतुष्टि पत्र लिखवा लिये एवं इन पत्रों को सुलतान मुहम्मद की कब्र में गाड़ दिये। इससे उसे दो लाभ हुए, प्रथम उसने यह प्रमाणित किया कि वह सुल-तान मुहम्मद की अपेक्षा अधिक उदार, न्यायप्रिय और प्रजापालक और धर्मात्मा सुलतान है। इससे उसने सुलतान मुहम्मद से रुष्ट व्यक्तियों की सद्भावनाएँ प्राप्त कर लीं। द्वितीय, उसने यह बताने का प्रयास किया कि वह मृत सुलतान मुहम्मद की आत्मा को शांति देना चाहता है तथा उसके अत्याचारों की भर्त्सना करके उसका उत्तराधिकारी होने के नाते स्वयं उसका दंड भोगने को प्रस्तुत है। इन कार्यों से फिरोज की लोकप्रियता में वृद्धि हुई एवं उसे प्रजा का समर्थन प्राप्त हुआ।

(४) खलीफा का समर्थन—अपने राजसिंहासन के अधिकार को सुदृढ़ करने के लिये फिरोज ने मुस्लिम जगत के धार्मिक और राजनैतिक नेता खलीफा से नियुक्ति पत्र प्राप्त कर लिया और अपने आपको खलीफा का नायब घोषित कर, खुतबों और राजकीय मुद्राओं में खलीफा का नाम अपने नाम के साथ कर दिया।

(५) उल्माओं की सहायता व समर्थन—धर्मभीरु प्रजा को अधिक प्रभावित करने और उल्मा वर्ग की सहायता और समर्थन प्राप्त करने के लिये, फिरोज ने शेखों, मुल्लाओं, और मौलवियों का परामर्श लेना और उनके आदेशों का पालन करना प्रारंभ कर दिया एवं उनकी सुख-सुविधाओं की पूर्ण व्यवस्था की। उसने उल्मा वर्ग के अनेक व्यक्तियों को जागीरें भी दीं। इससे उल्माओं का प्राधान्य बढ़ गया और दिल्ली सल्तनत धर्म-प्रधान राज्य हो गया।

(६) सार्वजनिक हित के कार्य— जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये फिरोज ने प्रजा पर करों का बोझ हलका कर दिया, दंड-विधान की कठोरता कम कर दी, अनाथों और दीन-दुखियों के लिये दीवान-ए-खैरात विभाग की व्यवस्था की, रोगियों की सहायता के लिये चिकित्सालय स्थापित किये, शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये छात्रवृत्तियां और अनुदान दिये, मदरसे और मकतब स्थापित किये, कृषि तथा सिंचाई की उन्नति के लिये अनेक कार्य किये तथा सार्वजनिक हित के अन्य अनेक कार्य किये। इनका विस्तृत विवेचन अगले पृष्ठों में किया जायगा।

(७) विद्रोहों और संघर्षों का सामना—साम्राज्य में विघटनकारी प्रवृत्तियों को कुचलने, विद्रोहों, संघर्षों और उत्पातों का सामना करने के लिये तथा मुस्लिम अनाधिकृत प्रदेशों को इस्लामी सल्तनत के अन्तर्गत लाने के लिये फिरोज को सैनिक अभियान ले जाना और युद्ध करना अनिवार्य हो गया था। परन्तु इनके लिये फिरोज में उपयुक्त क्षमता व योग्यता नहीं थी। इसलिये उसने साम्राज्य के विस्तार और विजय अभियान करने की अपेक्षा ऐसी नीति का अनुकरण किया जिससे प्रजा की दशा सुधारने के साथ-साथ राज्य की श्रीवृद्धि भी हो।

फिरोज की वैदेशिक नीति और विजय अभियान

फिरोज की चारित्रिक दुर्बलता और विदेशी नीति—सुलतान फिरोजशाह स्वभाव से दयालु, शान्त प्रकृति का, सीधा-सादा पाक मुसलमान था जो संतों के सत्संग में और मक्का की तीर्थ यात्रा कर वहां अपना जीवन व्यतीत करना चाहता था। युद्ध करने का न तो उसे शौक ही था और न सामरिक अभियान और विजय करने के लिये साहस, वीरता और प्रतिभा ही। वह एक दृढ़ निश्चय वाला व्यक्ति नहीं था। न तो वह सामरिक प्रवृत्ति का सुलतान था और न वह वीर सैनिक और साहसी योद्धा ही था। उसमें धीरज का अभाव था। वह अस्थिर था तथा डटकर प्रयत्न करने में असमर्थ था। सैन्य संचालन और सैन्य संगठन करने की उसमें कोई क्षमता नहीं थी। उसमें साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा भी नहीं थी। युद्ध से वह घृणा करता था। रक्तपात को देखकर उसका हृदय द्रवित हो जाता था, वह युद्ध क्षेत्र से पीछे हटकर युद्ध बंद कर देता था एवं शत्रुओं को क्षमा कर देता था तथा संधि करने को इच्छुक हो जाता था। उसकी यह धारणा थी कि अपनी महत्वाकांक्षाओं को संतुष्ट करने के लिये सहस्रों मुसलमानों को युद्ध में कटवा देना अनैतिक और अधार्मिक है जिसके लिये उसे कयामत के दिन उत्तर देना होगा। उसकी इस कायर, दब्बू और दुर्बल नीति के कारण, वह सैनिक अभियानों और विदेशी नीति में असफल रहा। वह कभी आक्रमणात्मक नीति नहीं अपना सका और न युद्धों और विद्रोहों का सफल प्रतिरोध ही कर सका। उसने साम्राज्य के खोये हुए प्रांतों को पुनः प्राप्त करने की कोई वास्तविक चेष्टा नहीं की और यदि कभी विद्रोही प्रांतों पर आक्रमण करने के लिये बाध्य या विवश हुआ भी, तो वह अपने सैनिक गुणों के अभाव के कारण तथा दब्बू व कायर नीति से अपने सैनिक अभियानों में असफल ही रहा। इसीलिये उसकी वैदेशिक नीति दुर्बल और असफल रही।

उसके सैन्य अभियानों और युद्धों का विवरण निम्नलिखित है:—

(१) **बंगाल पर आक्रमण**—बंगाल मुहम्मद तुगलक के समय सन् १३३८ में स्वतंत्र हो गया था। उसे प्राप्त करने के लिये फिरोज ने बंगाल पर दो बार आक्रमण किये।

(अ) प्रथम आक्रमण (सन् १३५३-५४)—दिल्ली से दूर स्थित होने के कारण बंगाल का शासक हाजी इलियास स्वतंत्र हो गया और वह शमसुद्दीन इलियास-शाह की उपाधि धारण करके बंगाल पर शासन करने लगा। अब उसने दिल्ली सल्तनत के अधीनस्थ तिरहुत प्रदेश पर भी आक्रमण करने प्रारंभ कर दिये। इससे उसे कुचलने तथा बंगाल पर पुनः अपना अधिकार स्थापित करने के लिये फिरोज ने एक विशाल सेना लेकर बंगाल पर आक्रमण कर दिया। जब सुलतान बंगाल पहुंच गया, तब उसने एक घोषणा की, जिसमें उसने अपने आक्रमणों के कारणों पर प्रकाश डाला, इलियासशाह के दुर्व्यवहारों और अत्याचारों का उल्लेख किया और प्रजा को आशा बँधाई कि यदि बंगाल पर सुलतान का अधिकार हो जायगा, तो बंगाल में सुव्यवस्था स्थापित की जायगी और प्रजा के साथ सद्व्यवहार होगा। जब इलियास-

शाह ने सुलतान फिरोज का आगमन सुना तो वह सुरक्षा के लिये एकदला के दुर्ग में जाकर छिप गया और वहीं मोर्चा बांध लिया। सुलतान ने बड़ी कुशलता और योग्यता से सैन्य संचालन किया और इलिहासशाह को दुर्ग में से बाहर निकालने के लिये एक चाल चली। उसने अपनी सेना को कुछ किलोमीटर पीछे हटा लिया। इससे इलियास दस सहस्र सैनिकों सहित दुर्ग से बाहर निकल पड़ा और उसने सुलतान की सेना का पीछा किया। शाही सेना तो सावधान थी। वह लौट पड़ी और भयंकर युद्ध हुआ। सुलतान विजयी हुआ, पर इलियासशाह भागकर फिर दुर्ग में छिपने में सफल हो गया। दुर्ग घेर लिया गया। किंतु ठीक उस समय जबकि दुर्ग पर विजय प्राप्त होने वाली थी, किले में से कुछ स्त्रियों की चीखें, क्रंदन, रुदन की आवाजें सुनते ही फिरोज ने युद्ध बंद कर देने का आदेश दे दिया। स्त्रियों के रुदन और चीत्कार की भयंकर आंधी में फिरोज की विजय लालसा बह गयी और वह अपनी सेना सहित वापिस लौट गया। उसने अपने अमीरों से कहा, "दुर्ग को घेरना, मुसलमानों को तलवार के घाट उतारना और प्रतिष्ठित स्त्रियों को अपमानित करना, आदि ऐसे अपराध होंगे, जिनका कयामत के समय जवाब देना मेरे लिये कठिन हो जायगा। इस तरह तो मुझमें और मंगोलों में कोई अंतर नहीं होगा।" सुलतान की इस दब्बू नीति को देख-कर उसके सेनानायक तातारखां ने उससे अनुरोध किया कि बंगाल को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया जाय। फिरोज ने उत्तर दिया, "यह दलदलों का प्रदेश है। इसे अधिकार में रखने से क्या होगा।" इस प्रकार फिरोज बिना पूर्ण विजय किये ही दिल्ली लौट आया। कुछ विद्वानों का मत है कि अधिक वर्षा के कारण घबराकर सुलतान ने वापिस लौटने का निश्चय किया जिससे उसकी सेना वर्षा में नष्ट न हो जाय। इस प्रकार फिरोज ने प्राप्त की हुई विजय को भी खो दिया।

(ब) द्वितीय आक्रमण (सन् १३५९)—फिरोज ने सन् १३५९ में बंगाल पर द्वितीय आक्रमण किया। इसका कारण यह था कि, बंगाल के प्रथम स्वतंत्र सुलतान स्वर्गीय फखरुद्दीन के दामाद जफरखां ने सुल्तान फिरोज से शिकायत की, कि शमसुद्दीन इलियासशाह मुसलमानों पर बहुत अत्याचार कर रहा है और उसने उसकी (जफरखां की) जागीर भी छीन ली है। जफरखां की इस शिकायत से तथा अमीरों के दबाव के कारण सुलतान ने ७०,००० अश्वारोहियों, असंख्य पदातियों तथा नावों के एक बेड़े का संगठन किया और सेना सहित उसने बंगाल की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में उसने अपने स्वर्गीय बंधु जूनाखां (सुलतान मुहम्मद) की स्मृति में उसके नाम पर जौनपुर नामक नगर बसाया। इसी अवधि मे बंगाल में शमसुद्दीन इलियासशाह की मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र सिकन्दर बंगाल का स्वतंत्र शासक बन गया। फिरोज के आगमन पर उसने भी अपने पिता के समान स्वयं को सेना सहित इकदला के दुर्ग मे बन्द कर लिया। फिरोज ने दुर्ग को घेर लिया और कई स्थानों पर दुर्ग की दीवारें विध्वंस कर दीं। पर सिकन्दर ने धैर्य और साहस से शाही आक्रमणकारी सेना का सामना किया। अंत में दोनों दल युद्ध से तंग आने पर शिथिल पड़ गये और संधि चर्चा प्रारंभ हुई। सिकन्दर ने अपने दूत हैबतखां के साथ सुलतान को भेंटस्वरूप चालीस हाथी तथा अनेक बहुमूल्य वस्तुएं भेजीं। दोनों में संधि हो गयी जिसके अनुसार

सिकन्दर ने सोनार गांव की जागीर जफरखां को दे दी और सुलतान से मैत्री संबंध दृढ़ कर लिये। परन्तु जफरखां ने दिल्ली में ही रहना पसन्द किया। फिरोज ने बंगाल की स्वतंत्रता मान ली। इस प्रकार दूसरी बार भी बंगाल दिल्ली सल्तनत की अधीनता से मुक्त रह गया और फिरोज की दुर्बल नीति के कारण उसका द्वितीय अभियान भी असफल और निरर्थक रहा।

(२) **जाजनगर की विजय (सन् १३६०)**—बंगाल में मुसलमान शासक के विरुद्ध युद्ध करने और मुसलमानों का रक्त बहाने में फिरोज बहुत कतराया। इसके विपरीत उसने उड़ीसा के हिन्दू राजा और जमींदारों के दमन करने में अपूर्व उत्साह और स्फूर्ति प्रदर्शित की। बंगाल से लौटते समय वह आधुनिक उड़ीसा में से गुजरा और वहां जाजनगर के राजा राय आद्या पर आक्रमण किया। राय सुलतान के आक्रमण का संदेश सुनकर एक द्वीप में सुरक्षा के लिये भाग गया। सुलतान ने अब जगन्नाथपुरी के प्रसिद्ध मंदिर को विध्वंस किया, उसकी प्रतिमाओं को समुद्र में फिंकवा दिया और लोगों पर धार्मिक अत्याचार किये। संवकटापन्न स्थिति को देख कर राय ने फिरोज से विवश होकर संधि करली। इसके अनुसार राय ने प्रति वर्ष करके स्वरूप कुछ हाथी फिरोज को भेजने का वचन दिया। संतुष्ट होकर सुलतान ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में फिरोज वीरभूमि राज्य के अनेक जमींदारों और सामन्तों को दबाता हुआ, उन पर विजय प्राप्त करता हुआ दिल्ली लौट गया। पर, इस अवधि में मार्ग भूल जाने के कारण उसकी सेना लगभग छः माह तक सघन वनों और पर्वतीय उपत्यकाओं में भूलती-भटकती रही। इससे सेना को खूब क्षति पहुँची।

(३) **नगरकोट की विजय (सन् १३६०)**—कांगड़ा प्रदेश में नगरकोट का हिन्दू राज्य था। यहाँ ज्वालामुखी देवी का मंदिर अत्यधिक प्रसिद्ध रहा है। यद्यपि सुलतान मुहम्मद ने सन् १३३७ में इस नगरकोट राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था, परन्तु उसके शासन के उत्तरार्द्ध में नगरकोट राज्य स्वतंत्र हो गया था। इस हिन्दू राज्य और प्रदेश को जीतने का फिरोज ने निर्णय किया। इस समय फिरोज की दुर्बलता, कायरता और रक्तपात न करने का सिद्धान्त लुप्त हो गया और सन् १३६० में उसने नगरकोट पर आक्रमण कर दिया। नगरकोट में ज्वालामुखी देवी के मंदिर की पवित्रता ने धर्मांध फिरोज को आक्रमण के लिये प्रोत्साहित किया। फिरोज ने मंदिर के पास एकत्रित राय, राना और जमींदारों से कहा, "ऐ हठबुद्धियों और मूर्खो ! तुम इस पत्थर की पूजा-अर्चना कैसे कर सकते हो ? क्योंकि हमारे पवित्र विधान में कहा गया है कि जो इसके विरुद्ध कार्य करते हैं वे नरक के भागी होते हैं।"

नगरकोट के हिन्दू राय ने छः माह तक वीरता और साहस से दुर्ग की रक्षा की। पर विजय की कोई आशा न रहने पर उसने दुर्ग से बाहर निकलकर सुलतान से भेंट कर क्षमा मांग ली और उससे संधि कर ली तथा कर देने का वचन दिया। नगरकोट के इस अभियान के समय ज्वालामुखी देवी का मंदिर लूट लिया गया, और उसकी मूर्तियां विध्वंस कर दी गयीं। इस मंदिर की लूट में फिरोज को एक श्रेष्ठ पुस्तकालय उपलब्ध हुआ जिसमें संस्कृत के १३०० श्रेष्ठ ग्रंथ संग्रहित थे। फिरोज

इन्हें अपने साथ दिल्ली ले गया और उनमें से अनेक ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया गया।

(४) **थट्टा विजय (१३६२-६३)**—कहा जाता है कि फिरोज के समस्त सैनिक अभियानों में सिंध में थट्टा का अभियान सर्वाधिक मनोरंजक और मूर्खतापूर्ण अभियान है। सुलतान मुहम्मद तुगलक की मृत्यु सिंध में थट्टा में विद्रोह का दमन करते हुए हुई थी। अतः फिरोज ने उसकी मृत्यु का बदला लेने के लिये सिंध की ओर एक विशाल सेना सहित प्रस्थान किया। उसकी सेना में ९०,००० अश्वारोही, पांच सौ हाथी तथा असंख्य पैदल सैनिक थे। पाँच हजार नावों का एक जल बेड़ा भी था। सिंध के शासक जाम लाबीनिया ने बीस सहस्र अश्वारोहियों तथा चार लाख पैदल सैनिकों के साथ सुलतान की सेना का सामना किया तथा वह स्वयं सुरक्षा के लिये एक दुर्ग में चला गया और मोर्चाबंदी कर ली। इसी बीच शाही सेना में दुर्भिक्ष तथा महामारी का प्रकोप प्रारम्भ हो गया जिससे चौथाई सैनिकों का अन्त हो गया। फलतः शाही सेना परास्त हो गयी और उसे पीछे हटना पड़ा। सुरक्षा के लिये और सेना में अधिक वृद्धि करने के लिये फिरोज अपनी सेना को गुजरात की ओर हटा ले गया। किंतु पथ-प्रदर्शकों की मक्कारी और क्रूरता से उसकी सेना गुजरात पहुँचने की अपेक्षा कच्छ की खाड़ी पर जा पहुँची। सुलतान स्वयं भी मार्ग की खोज में भटकता रहा। इसी अवधि में महामारी और दुर्भिक्ष का प्रकोप और उग्रता बढ़ती गयी। खाद्यान्न के भाव अत्यधिक बढ़ गये। फिरोज के सैनिक और साथी भूखों मरने लगे। भूख से व्याकुल होकर उन्होंने मड़ा मांस और पशुओं को मार कर उनकी खालें उबालकर खायीं। सेना के घोड़ों में भी ऐसा रोग फैल गया कि असंख्य घोड़े मर गये। कच्छ की मरुभूमि में पानी के अभाव में सेना व्याकुल हो उठी तथा निराशा और मृत्यु के स्वप्न देखने लगी। अन्त में बड़ी कठिनाई से सुलतान सेना सहित गुजरात पहुँचा। वहां से सैनिक संकटों से व्याकुल होकर, दिल्ली की ओर भागने लगे परन्तु उन्हें रोकने के लिये पहरे लगवा दिये और दिल्ली में वजीर को यह आदेश भेज दिया कि भगोड़े सैनिकों को दंड दे। गुजरात में असंख्य धन व्यय करके फिरोज ने अपनी सेना का पुनः संगठन किया, सैनिकों को पेशगी वेतन दिलवाया और दो करोड़ रुपये की नयी युद्ध सामग्री क्रय की। इस नवीन संगठित सेना सहित उसने थट्टा पर पुनः आक्रमण किया। इसी बीच दिल्ली में यह अफवाह फैल गयी थी कि सुलतान लुप्त हो गया है या मर गया है। ऐसे समय सुलतान के स्वामिभक्त वजीर खान-जहां मकबूल ने परिस्थिति को बिगड़ने से रोके रखा और घोषणा करता रहा कि उसका सुलतान से निरन्तर संपर्क बना हुआ है और सुलतान कुशल है। उसने सुलतान की सहायता के लिये कुमुक भी भेजी। सुसज्जित विशाल सेना से फिरोज ने सिंध पार करके थट्टा पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध हुआ। सिंधियों ने वीरता व साहस से शाही सेना का सामना किया। इसी बीच फिरोज के संदेश पर खान-जहां मकबूल द्वारा दिल्ली से भेजी गयी सेना भी सिंध में आ पहुंची। इसके आगमन के समाचार पर सिंध के शासक जामा ने आत्म समर्पण कर संधि की चर्चा प्रारम्भ कर दी। सुलतान ने संधि करली। जामा ने सुलतान की अधीनता स्वीकार करली और वार्षिक कर देने का वचन दिया।

सुलतान ने जामा के साथ सद्व्यवहार किया और उसे अपने साथ ससम्मान दिल्ली ले आया। उसे पेंशन देकर दिल्ली में ही रख लिया और सिंध का राज्य उसके भाई को सौंप दिया। घोर संकट और विपत्तियों का सामना करके, सेनापतियों की वीरता व साहस से तथा खानजहां द्वारा भेजी गयी सेना से फिरोज को सिंध विजय प्राप्त हुई। फिरोज का यह सिंध अभियान उसकी मूर्खता तथा राजनैतिक एवं सामरिक अनभिज्ञता व सैनिक अयोग्यता का उदाहरण माना गया है। इसमें ढाई वर्ष का समय नष्ट हुआ और अपार धन और जन की गहरी क्षति हुई पर परिणाम कुछ नहीं निकला।

दक्षिण भारत के प्रति नीति—फिरोज के पूर्व के सुलतानों ने अथक परिश्रम और दृढ़ता से उत्तरी और दक्षिणी भारत दोनों को जीतकर सल्तनत का एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। फिरोज ने ऐसा कोई अभियान इस साम्राज्य के विस्तार के लिये नहीं किया और न इस साम्राज्य की अखण्डता के पुनः स्थापित करने का कोई प्रयत्न ही किया। दिल्ली सल्तनत से स्वतन्त्र हुए दक्षिण के विजयनगर और बहमनी राज्यों को पुनः जीतकर दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लेना, फिरोज के लिये दुष्कर कार्य था। इसके लिये वह सर्वथा अयोग्य और अक्षम था। एक बार बहमनी राज्य के कुछ असन्तुष्ट सरदारों ने सुलतान फिरोज को बहमनी राज्य पर आक्रमण करने का परामर्श दिया, कुछ ने उसे इसके लिये आमन्त्रित भी किया, परन्तु फिरोज ने उसे अस्वीकार कर दिया। यदि फिरोज के कोई सामन्त या सैनिक अधिकारी दक्षिण पर सैनिक अभियान ले जाते और विजय करने का परामर्श देते तो भी वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से कह देता, "मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं अपने स्वधर्मियों के साथ युद्ध करके, कभी उनका रक्तपात नहीं करूँगा।" उसने अपने इस निर्णय का जीवन भर पालन किया। सन् १३७७ में इटावा में और सन् १३८० में कटेहर में हुए हिन्दुओं के विद्रोहों को कुचलने के लिये उसे युद्ध करना पड़े। इन विद्रोहों के दमन में उसने निर्ममता से सहस्रों हिन्दुओं की हत्या करवा दी तथा लगभग २३००० व्यक्तियों को दास बना लिया गया।

फिरोज की वैदेशिक नीति के परिणाम—जैसा कि ऊपर वर्णित है, फिरोज की वैदेशिक नीति भीरु, दुर्बल और निकम्मी थी। उसकी कायरता व दुर्बलताओं के कारण उसमें वे शाही महत्वाकांक्षाएँ नहीं थीं जो किसी दृढ़ साम्राज्यवादी और विस्तारवादी सुलतान में होती हैं। उसमें साम्राज्य विस्तार की शक्ति भी नहीं थी।

फिरोज में नीति की दृढ़ता नाम को भी नहीं थी। वह अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रहता था। उसमें सैन्य संचालन करने की न तो योग्यता थी और न साहस ही। इससे उसके सैनिकों का उत्साह उत्तरोत्तर कम होता जाता था। बहुत उत्साह के साथ वह आक्रमण करता, परन्तु थोड़ा-बहुत रक्तपात देखकर वह पीछे लौट जाता था। इससे विजय लाभ का उपयोग उसके सैनिक नहीं कर पाते थे। उपलब्ध विजय को भी फिरोज अपनी धर्म-भीरुता तथा चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण खो देता था।

इस प्रकार की भीरु और दुर्बल नीति से साम्राज्य तथा सुलतान की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा। देश की सुरक्षा, व्यवस्था एवं शान्ति को ठेस पहुँचा। सम्पूर्ण

सल्तनत के छिन्न-भिन्न होने के आसार दृष्टिगोचर होने लगे। सल्तनत का ऐश्वर्य, उसका दबदबा और विस्तार संकुचित हो गये। सुलतान की राजसभा भी इससे प्रभावित हुई।

सल्तनत की सीमा भी दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक सीमित हो गयी।

इस प्रकार फिरोज की वैदेशिक नीति सर्वथा असफल रही।

फिरोज का शासन-प्रबन्ध—सुलतान फिरोजशाह मध्य युग में अपने शासन-प्रबन्ध और सुधार के लिये प्रसिद्ध है।

शासन-प्रबन्ध का उद्देश्य—फिरोज एक शान्तिप्रिय शासक था। इसलिये उसने युद्धों से अधिक प्रशासन की ओर ध्यान दिया। मुहम्मद तुगलक के शासन-प्रबन्ध में विभिन्न पदों पर कार्य करने से उसने प्रचुर शासकीय अनुभव भी प्राप्त कर लिया और प्रजा व राज्य की आवश्यकताओं को भी भली-भाँति समझ लिया। इससे वह इनकी पूर्ति एवं जन-कल्याण की ओर झुका। उसके प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य जनता का हित करना तथा प्रजा के सुख एवं समृद्धि के लिये कार्य करना हो गया। प्रजा कल्याण के लिये वह सदा तत्पर रहा। इन सुधारों से गरीब जनता, हिन्दू और मुसलमान दोनो को लाभ पहुँचा।

उसके शासन-प्रबन्ध की एक विशेषता यह थी कि प्रशासन में उलमा वर्ग का प्राधान्य हो गया था। कोई भी कार्य फिरोज उलमाओं के परामर्श के बिना नहीं करता था। शासन-तन्त्र इस्लाम धर्मानुकूल हो गया। इसलिये जो भी सुधार या प्रशासकीय कार्य फिरोज ने किये, वे अल्पसंख्यक मुसलमानों के लिये हितकर हुए, बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिये वे हानिकारक व कष्टदायक हुए। फिरोज ने जो भी सुधार किये, उनमे उसने यह ध्यान रखा कि उन सुधारों से उसकी मुस्लिम प्रजा ही लाभान्वित हो सके। उसका व्यवहार हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता का तथा अत्याचारपूर्ण रहा। इस्लाम धर्म के विरुद्ध चलने वालों पर उसने कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये, इसलिये उसके सुधार स्थायी नहीं हो सके। इससे न तो सल्तनत का शासन-तन्त्र ही दृढ़ हो सका और न उसे हिन्दुओं की राजभक्ति और विश्वास ही प्राप्त हो सका।

मलिक मकबूल खानजहां का योगदान—सुलतान फिरोज के शासन-कार्यों में उसका प्रमुख सहायक और सहयोगी उसका वजीर मलिक मकबूल खानजहाँ था। वह जन्म से हिन्दू ब्राह्मण था और दक्षिण भारत मे तैलंगाना राज्य का निवासी था। वहाँ वह तैलगाना के हिन्दू राय का स्वामिभक्त सेवक था। अपने स्वामी के देहावसान के बाद उसने इस्लाम अंगीकार कर लिया था और उसका इस्लामी नाम मकबूल रखा गया। दिल्ली में उसने सुलतान को अपने गुणों और प्रतिभा से अत्यधिक प्रभावित कर दिया था। फलतः प्रगति और पदोन्नति करते-करते वह वजीर के ऊँचे पद तक पहुँच गया। वह अधिक शिक्षित नहीं था, पर उसमें योग्यता, प्रशासकीय प्रतिभा और कार्यक्षमता अधिक थी। उसके इन गुणों से फिरोज उससे अत्यधिक प्रभावित हुआ और मलिक मकबूल ने भी आजीवन फिरोज की सेवाएँ कीं और उसकी अनुपस्थिति में भी दिल्ली प्रशासन यथाविधि सँभाले रखा। सुलतान फिरोज को मध्य युग में प्रशासन में जो सफलता प्राप्त हुई, उसका श्रेय मलिक मकबूल को है। मलिक मकबूल

उस युग के प्रसिद्ध सामन्तों में प्रमुख था। वह विलासी भी था। उसे एक विशाल रनवास रखने का शौक था। उसके रनवास में विविध जातियों और प्रदेशों की लगभग दो सहस्र महिलाएँ विद्यमान थीं।

फिरोज के शासन का उज्ज्वल पक्ष—फिरोज के शासन के दो अङ्ग हो सकते हैं, प्रथम उज्वल पक्ष, जिसमें जनता व राज्य का हित हुआ और द्वितीय अन्धकार पक्ष, जिसमें प्रशासकीय त्रुटियाँ व अभाव हुए और जिनके कारण प्रजा को कष्ट पहुँचे और राज्य में विघटनकारी प्रवृत्तियों को अधिक प्रोत्साहन मिला और तुगलक साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर होने लगा। हम नीचे के पृष्ठों में उसके शासन के उज्ज्वल पक्ष का विवेचन पहिले करेंगे।

(१) पीड़ितों और दुखियों की सहायता व क्षतिपूर्ति—यह पिछले पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है कि सुलतान फिरोज अपने चचेरे भाई सुलतान मुहम्मदशाह के कार्यों का प्रायश्चित करना चाहता था। इसलिये उसने सुलतान मुहम्मद द्वारा मृत्यु-दण्ड दिये गये लोगों के वारिसों तथा अङ्ग-भङ्ग का दण्ड दिये गये लोगों को पर्याप्त उपहार दिये और उन्हें सन्तुष्ट किया। मुहम्मद तुगलक ने जिनके गाँव, भूमि या किसी अन्य प्रकार की पैतृक सम्पत्ति छीन ली थी, उन्हें फिरोजने वे छीनी हुई समस्त वस्तुएँ लौटा दीं। उसने ऐसे लोगों की एक लम्बी सूची बनायी जो दुखी, सन्तप्त और पीड़ित थे और जिन्हें सुलतान मुहम्मद की नीति व कार्यों से पीड़ित होना पड़ा। उसने उन सभी दुखी जनों की क्षतिपूर्ति कर दी और उन्हें उनके राजकीय ऋण से मुक्त कर दिया। जिन्होंने कोई तकावी या राजकीय ऋण नहीं ले रखा था, पर पीड़ित हुए थे, उन्हें राजकोष से अतिरिक्त सहायता दी गयी। इन सभी लोगों से उसने लिखित रूप से सन्तुष्टि-पत्र ले लिये और उन्हें सुलतान मुहम्मद के मकबरे पर "दारुल-अमन" में एक सन्दूक में रख दिया। फिरोज ने इन सन्तुष्टि-पत्रों में यह भी लिखवाया कि उन्हें सुलतान के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है। सुलतान के इस कार्य से उसकी मानवी क्षमा की, सहानुभूति व कोमलता की भावना प्रदर्शित होती है। सुलतान की जन-कल्याण की भावना विदित होती है। इससे सुलतान ने जनताके घावों को भर दिया, प्रजा का विश्वास और समर्थन प्राप्त किया।

आर्थिक नीति—सुलतान ने जनहित में उदार आर्थिक नीति अपनायी। उसने कर-व्यवस्था, कृषि, सिंचाई आदि में परिवर्तन और सुधार किये।

कर-व्यवस्था—भूमि-कर तथा अन्य करों से सल्तनत के राजकोष को आमदनी होती थी। ये विभिन्न कर राककीय आय के स्रोत थे। फिरोज ने इन करों में परिवर्तन किया। उसने कर-प्रणाली में सुधार किया और उन्हें इस्लाम के धार्मिक नियमों के अनुसार बनाया गया। भूतपूर्व सुलतानों के शासन-काल के कष्टदायक कर बन्द कर दिये गये। कर-व्यवस्था के विषय में सुलतान फिरोज का मुख्य ध्येय यह था कि "अपरिमित कोष से जनता की समृद्धि अधिक लाभकारी है।" इसलिये "फतूहात-ए-फिरोजशाही" ग्रन्थ के अनुसार फिरोज ने २३ अवांछनीय करों को समाप्त कर दिया। इन करों में निम्नलिखित कर विशेष उल्लेखनीय हैं—दलालत-ए-बाजारहा, गुलफरोशी, चुङ्गी गल्ला, नीलकरी, माही फरोशी, साबुनकरी, रेशमान फरोशी,

रोगनकरी, घरी या करही और चराई। उसने इस्लाम धर्म अनुमोदित केवल चार कर ही लागू किये। ये चार कर हैं—जकात, खिराज, जजिया और खम्स।

जकात कर केवल मुसलमानों पर लगाया जाता था। यह २½ प्रतिशत का कर था और इसकी आय कुछ विशिष्ट धार्मिक कार्यों पर व्यय होती थी। खिराज भूमि-कर होता था। फिरोज ने इस भूमि-कर में पहिले से कमी कर दी। उसने कृषि-भूमि और भूमि-कर-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया तथा समुचित व्यवस्था की। उसने ख्वाजा हिसामुद्दीन जुनैदी नामक उच्च अधिकारी को राज्य की भूमि कर से प्राप्त आमदनी की जांच पड़ताल करने, उसका ठीक-ठीक हिसाब रखने का, तथा भूमि-कर निर्दिष्ट करने का कार्य-भार सौंपा। हिसामुद्दीन ने साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों और प्रदेशों का दौरा करके छः वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात भूमि-कर की व्यवस्था की। भूमि का निरीक्षण करके भूमि-कर निश्चित किया गया। भूमि-कर से राज्य की आय प्रति वर्ष ६ करोड़ ८५ लाख निश्चित की गयी। अकेले दोआब क्षेत्र से प्रतिवर्ष ८० लाख टंक भूमि-कर निर्दिष्ट किया गया। इस भूमि-कर की व्यवस्था और उसका विवरण शासकीय कार्यालयों में सुरक्षित रख दिया गया तथा अधिकारियों को आदेश दिये गये कि वे इसी के अनुसार भूमि-कर वसूल करें। कृषि-भूमि पर भूसत्वों की जांच की गयी और जिनके भूसत्व पिछले शासकों के समय में छीन लिये गये थे, उनसे कहा गया कि वे न्याय के आधार पर भूमि पर अपना अधिकार पुनः प्राप्त करें। प्रांतीय शासकों को उनकी नियुक्ति के समय एवं प्रतिवर्ष कृषक उपहार और भेंट देते थे। भेंटों की इस प्रथा को फिरोज ने समाप्त कर दिया। इससे कृषकों पर कर का भार हलका हो गया। इस प्रकार भूमि-कर में सुधार करने और भूमि-कर निश्चित करने से भूमि-कर में कोई गड़बड़ी या धोखाधड़ी नहीं हो सकती थी। प्रतिवर्ष भूमि कर से प्राप्त होने वाली आय निश्चित हो जाने पर, प्रत्येक प्रांतीय सूबेदार या प्रांतपति की भूमि-कर की धनराशि निश्चित हो गयी और भूमि-कर का हिसाब देते समय उसके द्वारा की जाने वाली गड़बड़ी या धोखे की संभावना नहीं रही। भूमि-कर से राज्य की आय निश्चित कर लेना फिरोज की एक बड़ी सफलता है।

जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया जाता था। जो हिन्दू अपना धर्म परिवर्तन कर इस्लाम धर्म ग्रहण नहीं करते थे, उन्हें यह जजिया कर देना पड़ता था। फिरोज ने ब्राह्मणों तथा अन्य हिन्दुओं से जजिया कर निर्ममता से वसूल किया।

खम्स कोई कर नहीं था, अपितु, युद्ध, संघर्ष आदि के अवसर पर लूटे हुए धन को खम्स कहते थे। फिरोज ने मुसलमान परम्पराओं के अनुसार तथा शरियत में निर्दिष्ट अनुपात के अनुसार खम्स या युद्ध में लूटे हुए माल को सैनिकों व राजकोष में वितरित करना प्रारंभ किया। फिरोज के पूर्व लूट का ४/५ भाग माल सुलतान ले लेता था और शेष १/५ भाग सैनिकों में वितरित किया जाता था। पर अब फिरोज ने इसमें परिवर्तन कर दिया। अब इस लूटे हुए धन व माल का वितरण सुलतान और राजकोष के लिये १/५ और सैनिकों के लिये ४/५ भाग निर्दिष्ट कर दिया गया। इस परिवर्तन में उसने राजकोष की अपेक्षा सैनिकों के हितों का ध्यान रखा।

इन करों के अतिरिक्त सिंचाई-कर भी लगा दिया गया था जो भूमि की उपज का दस प्रतिशत होता था। फिरोज ने यह सिंचाई कर भी उल्माओं के परामर्श और निर्देशन पर लगाया था। इन करों के अतिरिक्त प्रजा से किसी अन्य प्रकार के कर वसूल करना अपराध घोषित कर दिया गया था। फिरोज ने पदाधिकारियों और कर्मचारियों को यह आदेश दे दिया था कि कर वसूली में प्रजा को पीड़ित करने वाला व्यक्ति निर्ममता से दंडित होगा। इस प्रकार राजकरों की वसूली के समय में होने वाले दुराचारों और कष्टों का कठोरतापूर्वक दमन किया गया। इतिहासकार शम्स-ए-सिराज अफीफ ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि "निश्चित राज्य-कर के अतिरिक्त लोगों से किसी अन्य चीज की मांग नहीं की जाती थी और यदि कोई पदाधिकारी कुछ ले लेता, तो उसे उसका पूरा मूल्य चुकाना पड़ता था। जनता की सुख-सुविधा के लिये सुलतान ने अधिकारियों पर दबाव डालकर लोगों से कम मूल्य में वस्तुएँ क्रय करने की मनाही कर दी थी।

कृषि को प्रोत्साहन—सुलतान मुहम्मद की नीति और प्राकृतिक प्रकोपों के कारण सल्तनत का सबसे अधिक समृद्ध प्रदेश दोआब ऊजड़ हो गया था और कृषि के हितों की बलि दे दी गयी थी। इसलिये फिरोज ने कृषि को प्रोत्साहित किया और उसकी उन्नति के लिये उसने प्रयास किया। उसने कृषकों को अच्छी श्रेष्ठ किस्म की फसलें बोने के लिये प्रोत्साहित किया। कृषि उत्पादन में सिंचाई की वृद्धि करने के लिये फिरोज ने नहरों का निर्माण किया। अफीफ के अनुसार फिरोज ने निम्न नहरें बनाईं प्रथम यमुनासे 'रजवाह' नामक नहर और द्वितीय सतलजसे 'उलूगखानी' नहर। परन्तु "तारीख-ए-मुबारिकशाही" में फिरोज द्वारा निर्मित चार नहरों का वर्णन है। प्रथम लगभग १४४ किलोमीटर लम्बी नहर सतलज नदी से घग्गर तक, द्वितीय नहर मांडवी तथा सिरमौर प्रदेश के पास से निकल कर अरसनी तक थी जहां फिरोज ने हिसार फिरोजा का दुर्ग निर्मित करवाया था। तृतीय नहर घग्गर से निकाल कर हिरनी या भरनी खेड़ा तक जाती थी जहां सुलतान ने फिरोजाबाद नगर बसाया था। चतुर्थ नहर यमुना से निकलकर फिरोजाबाद तक आकर एक तालाब को भरती थी। ये चारों नहरें सतलज और यमुना नदी से निकाली गयी थीं। इन नहरों में यमुना नहर अभी भी पंजाब को सींचती है।

सिंचाई की योजनाओं को अधिक विस्तृत और लाभकारी करने के लिये सन् १३६० में सुलतान ने सरस्वती तथा सलीमा दोनों नदियों के पानी को मिलाने के लिये एवं उससे सरहिन्द मंसूरपुर और सुभ्रम तक के क्षेत्र को सिंचाई करने के लिये एक बहुत बड़े पहाड़ी टीले की खुदायी करवायी थी और इसके लिये पचास सहस्त्र श्रमिक काम पर लगाये थे।

इन नहरों की देखभाल के लिये योग्य और दक्ष अधिकारी नियुक्त किये गये जो वर्षा तथा बाढ़ के दिनों में नहरों का निरीक्षण कर उन पर नियन्त्रण रखते थे। इन नहरों के निर्माण होने के पहिले फिरोजाबाद के क्षेत्र में पानी का इतना अभाव था कि ईराक तथा खुरासान से आने वाले यात्रियों को एक घड़ा पानी के लिये चार जीतल कीमत देना पड़ती थी। सिंचाई तथा यात्रियों की सुविधा के लिये

१५० कुए खुदवाए गये। कुओं व नहरों के निर्माण से कृषि को ही प्रोत्साहन नहीं मिला अपितु जल के बाहुल्य से जन-सुविधाओं में भी अधिक वृद्धि हुई। सुधरी सिंचाई की व्यवस्था से किसान एक से अधिक फसलें काटने लगे। बहुत-सी बंजर भूमि में कृषि होने लगी। जोती जाने वाली भूमि का अधिक विस्तार हो गया। इससे जनता की अकाल से रक्षा की सम्भावना अधिक हो गयी, कृषि उपज में वृद्धि हुई, भूमि-कर भी बढ़ा और राज्य की आय बढ़ी।

राजकोष में इतना अधिक धन बचने और संग्रहित होने लगा कि वह सार्वजनिक कल्याण के कार्यों पर व्यय किया जा सका। सिंचाई की सुविधा देने के अतिरिक्त फिरोज ने कृषकों को राजकोष से आर्थिक सहायता भी दी। पिछले सुलतान के समय कृषकों को जो ऋण दिये गये थे वे भी माफ कर दिये गये। फिरोज की राजस्व-नीति दृढ़ थी और राजस्व विभाग को व्यवस्थित करने के लिये उसने अधिकारियों के वेतनों में वृद्धि कर दी।

उद्यान—फिरोज ने न केवल कृषि को प्रोत्साहन दिया, अपितु बहुसंख्यक उद्यान लगवाकर, फलों के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि कर राज्य की आय बढ़ाई। उसने दिल्ली के समीप के क्षेत्र में ही लगभग १२०० उद्यान लगवाये तथा सुलतान अलाउद्दीन के समय के जो तीस उद्यान थे, उन्हें पुनः व्यवस्थित किया गया। सलौरा के समीप अस्सी उद्यान और चितुर में भी चालीस उद्यान लगवाये गये। इन बागों में अनेकानेक प्रकार के फलों के अतिरिक्त सात विभिन्न प्रकार के अंगूरों का उत्पादन होता था। इन फलों की बिक्री से राज्य को प्रति वर्ष एक लाख अस्सी हजार की वार्षिक आय होने लगी थी।

कारखाने और उद्योग-व्यवसाय—कृषि और सिंचाई को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ फिरोज ने कारखानों और उद्योग व्यवसाय की ओर भी ध्यान दिया। उसने ३६ नवीन कारखाने स्थापित किये जिनमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण होता था। प्रत्येक कारखाना एक उच्च श्रेणी के मलिक के अधीन था। जहाँ राज्य की वेशभूषाएं बनती थीं वह कारखाना व विभाग मलिक अली और मलिक इस्माइल के निरीक्षण में था। इन कारखानों में अधिकांश वस्तुएँ और सामग्री राजभवनों, महलों और राजकीय उपयोग के लिये निर्मित होती थीं। इनके बाद जो अतिरिक्त सामान बनता था उसकी जनता में बिक्री करा दी जाती थी जिससे राज्य की अच्छी आमदनी होती थी। इन कारखानों में दरियों, गलीचों के बनाने का कारखाना विशेष प्रगतिशील था। इस पर दो लाख टंक या टांका प्रतिवर्ष व्यय होता था। इन विभिन्न कारखानों में श्रमिकों और शिल्पियों के लिये प्रतिमास एक लाख साठ सहस्र टंक वेतन दिया जाता था। फर्नीचर तथा कच्चे माल का व्यय अलग होता था। अधिकारियों और हिसाब-किताब रखने वाले गणकों को प्रतिमास एक लाख साठ हजार चांदी के टंक वेतन में दिये जाते थे।

राज्य की आय की वृद्धि—फिरोज ने जो विभिन्न कर कम कर दिये थे और उससे राज्य की जो आय कम हो गयी थी, उसकी पूर्ति के लिये तथा राज्य की आय की वृद्धि के लिये उसने निम्नलिखित कार्य किये :—

(i) भूमिकर का ठेका देना प्रारम्भ कर दिया। भूमि-कर वसूली का कार्य उन लोगों को दिया जाने लगा जो राज्य को सबसे अधिक रुपया देने का वचन देते थे। इससे राज्य को निश्चित आय से अधिक धन मिलने लगा। (ii) कृषि की उपज तथा फलों के उत्पादन में वृद्धि की। (iii) नवीन नहरों का निर्माण किया और उनसे विस्तृत क्षेत्र को सींचा जाने लगा एवं सिंचाई-कर लगाया जाने लगा। (iv) नहरों के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में कृषकों की नवीन बस्तियां बसायी जाने लगीं। (v) कारखानों में उत्पन्न अतिरिक्त सामान को बेचा जाने लगा। (vi) जजिया कर कठोरता से वसूल किया जाने लगा। ब्राह्मणों से भी जजिया निर्ममता से वसूल किया जाता था।

नवीन सिक्के—समकालीन इतिहासकारों ने अनेक प्रकार के सिक्कों का उल्लेख किया है जो फिरोज तुगलक ने प्रसारित किये थे। परन्तु सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करने पर यह प्रतीत होता है कि फिरोज के शासन-काल में मुहम्मद तुगलक के ही सिक्के चलते रहे। आधुनिक इतिहासकारों का भी यही मत है। कहा जाता है कि फिरोज तुगलक ने छै जीतल का शशगनी (शाह गिन्नी) नामक एक नवीन सिक्का प्रचलित किया था पर यह मत सर्वमान्य नहीं है; क्योंकि इब्नबतूता ने इस सिक्के का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में यह सिक्का प्रचलित था। फिरोज ने तो निर्धन व्यक्तियों के हेतु विनिमय की सुविधा के लिये आधे और चौथाई जीतल के छोटे सिक्कों का प्रचलन किया। इन्हें क्रमशः अद्धा और बिरव कहा जाता था। सभी प्रकार के सिक्के टकसाल में ढलते थे परन्तु टकसाल सुव्यवस्थित नहीं थी। उसमें श्रेष्ठ प्रबन्ध का अभाव था। वहाँ का प्रबन्धक मुद्राओं की समुचित व्यवस्था न कर सका। भ्रष्टाचार, धोखेबाजी और चोरी का बाहुल्य था। यद्यपि सुलतान ने सिक्कों के मुद्रण में धातु की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया परन्तु बेईमान व भ्रष्ट कर्मचारियों व अधिकारियों के कारण उसे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

फिरोज की आर्थिक नीति के परिणाम

(i) कृषि और फलों की उपज में अधिक वृद्धि हो गयी। तदनुसार राज्य और जनता की आय में पर्याप्त वृद्धि हुई।

(ii) अनावश्यक करों के समाप्त किये जाने से वस्तुओं और सामग्री के व्यापार विनिमय पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा। इससे उद्योग-व्यापार व व्यवसाय में प्रगति हुई। वस्तुओं के मूल्य कम हो गये।

(iii) उत्पादन, व्यापार और आय में वृद्धि होने से, खाद्यान्न एवं दैनिक उपयोग की वस्तुएँ सस्ती और सुलभ हो गयीं तथा प्रजा सुखी व समृद्ध हो गयी। शम्स-ए-सिराज अफीफ ने लिखा है कि "फिरोज के पूरे शासन-काल में अनाज के भाव सुलतान के बिना किसी प्रयत्न के सस्ते रहे।" तत्कालीन समृद्धि का वर्णन करते हुए अफीफ ने लिखा है कि, "लोगों के घर अन्न, सम्पत्ति, घोड़े तथा फर्नीचर से भर गये। प्रत्येक के पास खूब सोना एवं चांदी था। कोई भी स्त्री आभूषणविहीन नहीं थी और न कोई ऐसा निवासगृह था जिसमें उत्तम पलङ्ग और बिस्तर न हों। धन का

बाहुल्य था और सभी को सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं।" यद्यपि अफीफ के इस कथन में अतिशयोक्ति हो सकती है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि फिरोज के शासन-काल में कृषि को प्रोत्साहन मिला और कृषि-उपज में वृद्धि हुई।

(iv) भूमि-कर वसूली में फिरोज ने ठेके देने की जिस प्रथा का प्रारम्भ किया था वह दोषपूर्ण थी। इससे कृषकों और राज्य दोनों का अहित होता था। उदाहरण के लिये, फिरोज ने गुजरात प्रदेश के भूमि-कर को वसूल करने का ठेका शमसी दमगानी को दे दिया था। इस समय गुजरात का भूमि-कर दो करोड़ टंक प्रति वर्ष था। शमसी दमगानी ने भूमि-कर की इस धनराशि के अतिरिक्त फिरोज को ५४० लाख टंक, सौ हाथी, दो सौ अरबी अश्व तथा चार सौ हिन्दू और हब्सी गुलाम अधिक देने का वचन दिया था। फलतः फिरोज ने गुजरात का शासन उसे सौंप दिया। पर जब शमसी दमगानी ने अपने वचन और ठेके को पूरा करने के लिये बढ़ा हुआ भूमि-कर और धन जनता से वसूल करना प्रारम्भ किया, तो लोग विद्रोही हो गये और उसका वध कर दिया।

(v) फिरोज द्वारा जजिया कर के निर्ममता से वसूल करने से हिन्दुओं में उसके प्रति तीव्र असन्तोष की भावना बलवती हो गयी और दिल्ली सल्तनत संकीर्ण और साम्प्रदायिक हो गयी।

सार्वजनिक हित के लोकोपकारी कार्य—फिरोज में जन-कल्याण की भावना अधिक थी। सार्वजनिक हित के कार्यों में वह विशेष अभिरुचि रखता था। उसकी धर्मनिष्ठा, उदारता और दयालुता ने सार्वजनिक कल्याण के अनेकानेक कार्य करने के लिये उसे प्रोत्साहित किया। उसने अनेक ऐसे जन-कल्याण के लोकोपकारी कार्य किये जिनका उदाहरण उसके पूर्व के मुस्लिम सुलतानों और शासकों के शासन-काल में नहीं मिलता। अगले पृष्ठों में फिरोज के ऐसे लोक-कल्याणकारी कार्यों का उल्लेख किया जावेगा।

रोजगार की समस्या का निराकरण—फिरोज ने व्यवसायहीन मध्यम श्रेणी वाले मुसलमानों की समस्या हल की। सफेदपोश बेरोजगार मुसलमानों की रोटी-रोजी का प्रश्न उसने हल किया। उसने बेरोजगारों को रोजगार देने के लिये एक विभाग स्थापित किया जो आधुनिक इम्लायमेंट एक्सचेंज या रोजगार कार्यालय के समान था। इस विभाग के अन्तर्गत फिरोज ने बेरोजगारों की एक सूची बनवायी और उन सबको योग्यतानुसार काम दिया गया। उसके आदेश के अनुसार जिले के बेरोजगार व्यक्तियों को जिले के अधिकारी कोतवाल के पास भेजते थे और कोतवाल जांच पड़ताल करने के बाद उन्हें फिरोज के पास भेज देता था। फिरोज इन व्यक्तियों में से शिक्षित लोगों को कारखानों में भेज देता था, व्यापार में अभिरुचि रखने वाले और कुशाग्र बुद्धि के व्यक्तियों को फिरोज खान-ए-जहां की अधीनता में भेज देता था। यदि कोई व्यक्ति किसी सामन्त या मलिक का गुलाम बनना चाहता था तो सुलतान स्वयं ही एक सिफारिशी पत्र लिखकर उस व्यक्ति को सामन्त के पास भेज देता था। इतने पर भी यदि सबको काम नहीं मिल पाता था तब सुलतान अपने अमीरों से ऐसे व्यक्तियों को दास रखने या काम देने को कहता था जो उसकी नीति का अनुकरण

करते थे या उसके इस कार्य में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित करते थे उन पर फिरोज विशेष कृपा रखता था। सुलतान की इस उदारता की नीति से अनेकानेक व्यक्तियों को अपने जीवन-निर्वाह की सुविधा हो गयी।

दीवान-ए-खैरात—दरिद्र और निस्सहाय मुसलमानों की वयस्क कन्याओं के विवाह के लिये फिरोज ने दीवान-ए-खैरात विभाग खोला। जिस किसी मुसलमान के विवाह के योग्य कन्या हो और अपनी निर्धनता से वह उसका विवाह न कर सके तो वह दीवान-ए-खैरात विभाग में अपना पूरा विवरण देकर अनुदान के लिये प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करता था। विभाग के अधिकारी उसकी जांच-पड़ताल करके प्रार्थी की दशा पर विचार करके उसकी आर्थिक सहायता के लिये धन देते थे। प्रथम श्रेणी के प्रार्थी को ५० टंक, द्वितीय श्रेणी के प्रार्थी को ३० एवं तृतीय श्रेणी के प्रार्थी को २६ टंक अनुदान में दिये जाते थे। लोगों ने इस अनुदान का लाभ उठाया और अफीफ के शब्दों में "अमीर व गरीब देश के कोने-कोने से दौड़ पड़े और अपनी कन्याओं के लिये अनुदान लेने लगे।"

चिकित्सालय—सुलतान ने राजधानी दिल्ली में एक विशाल शफाखाना या सेहतखाना या चिकित्सालय स्थापित किया। यहां रोगियों को मुफ्त औषधियां ही नहीं दी जाती थीं, अपितु उन्हें राज्य की ओर से मुफ्त भोजन भी दिया जाता था। रोगियों के निदान तथा देखभाल के लिये योग्य व अनुभवी हकीम और चिकित्सक रखे गये। इस चिकित्सालय में निर्धन रोगियों व यात्रियों की चाहे वे विदेशी हों, या स्वदेशी, निःशुल्क चिकित्सा होती थी। इस विशाल चिकित्सालय के व्यय के लिये सुलतान ने कुछ समृद्ध और उपजाऊ गांव अलग कर दिये थे जिनकी आय से इस चिकित्सालय का खर्च चलता था।

यात्रियों व पर्यटकों को आर्थिक सहायता—जो तीर्थ यात्री और पर्यटक दूर-दूर स्थानों से आकर बड़े प्रसिद्ध राजाओं, और प्रख्यात संतों व पीरों की समाधियों और कब्रों के दर्शनार्थ जाते थे, उन्हें राज्य की ओर से बड़ी उदारता से दान और आर्थिक सहायता दी जाती थी। उन्हें सुख सुविधाएँ पहुँचाने के लिये धन व्यय किया जाता था। इन तीर्थयात्रियों और पर्यटकों के लिये उसने दो सौ सरायें निर्मित करवायीं और डेढ़ सौ कुए खुदवाये। इन सबके लिये आवश्यक धन के हेतु फिरोज ने कतिपय ग्रामों और भूमि की मालगुजारी (भूमि कर) देने की व्यवस्था करदी थी।

न्याय व्यवस्था व दंड विधान—इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी और धर्मनिष्ठ मुसलमान होने से फिरोज ने राज्य की न्याय-व्यवस्था इस्लाम धर्म पर आश्रित कर दी। उसने अपनी न्याय प्रणाली को इस्लामी शरियत पर आधारित किया। न्याय-व्यवस्था और दंड विधान में उलमाओं के परामर्श को अक्षरशः कार्यान्वित किया जाने लगा और कुरान तथा शरियत का कठोरता से पालन किया जाने लगा। न्याय विभाग तथा धर्म विभाग के समस्त पद उलमा-वर्ग के व्यक्तियों के लिये सुरक्षित रखे गये। शेख, सैयद और मौलवी ही इस विभाग के पदों पर नियुक्त होते थे। विभिन्न प्रकार के न्यायालय थे जिनमें मुफ्ती कानून की व्याख्या करते थे और उसके अनुसार काजी अपराधियों को दंड देते थे। फिरोज ने दंड विधान में परिवर्तन किये। फिरोज

के पहिले दंड विधान अत्यन्त कठोर था। अपराधी से सच्ची बात कहलाने के लिये उसको दंड देना सफलतम उपाय माना जाता था तथा दंड विधान में अपराधी के सुधार की भावना न होकर प्रतिरोध की भावना ही रहती थी। अपराधी से अपराध को कबूल करवाने या सत्य बात कहलाने के लिये ही अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं। परन्तु उदार और दयालु फिरोज ने इस कठोर दंड विधान में सुधार कर दिये। इस्लाम में अंगभंग के दंड या मृत्यु दंड पर प्रतिबंध है। इसलिये फिरोज ने मुसलमानों को कठोर दंड देना, उन्हें अंगभंग या मृत्यु दंड देना बंद करवा दिया। उसकी धारणा थी कि खुदा के बंदों को अंग विकृत करना उसके अधिकार के परे है। परन्तु हिन्दुओं को विधिवत कठोर अंगभंग के दंड या मृत्यु दंड दिये जाते थे, क्योंकि काफिरों के साथ निर्ममता का व्यवहार करना इस्लाम में उचित और मान्य है—ऐसा फिरोज का मत था। नृशंस यातनाओं और दंड को समाप्त करने के विषय में स्वयं फिरोज ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि, "पूर्व सुलतान (मुहम्मद तुगलक) के समय हाथ-पांव, नाक-कान काटना, आंखें निकालना, पिघला हुआ शीशा पिलाना, हथौड़ों से हाथ-पैर की अस्थियां तोड़ देना, शरीर को अग्नि में जलाना, पांव और छाती में कीलें ठोकना, मांसपेशियों को काटना, आरे से चिरवाना, या इसी प्रकार की अन्य यंत्रणाएँ दी जाती थीं। पर परवरदिगार मेहरबान अल्लाह ने मुझे अपने खादिम को, इस बात की प्रेरणा दी कि मैं मुसलमानों की अधार्मिक मौत को रोककर और उन्हें तथा दूसरी प्रजा को किसी भी प्रकार की यंत्रणा से बचाकर, उनके रहम को पाऊँ।" इस धारणा से प्रेरित होकर फिरोज ने अपराधियों को दंड देना बंद करवा दिया था। वह इतना दयावान और उदार था कि उसके शासन-काल में अनेक दंडनीय अपराधियों को बिना दंड दिये ही छोड़ दिया जाता था। यही नहीं, फिरोज की दयालुता चरम सीमा पर पहुँची। जिन्हें सुलतान मुहम्मद के शासन-काल में प्राण-दंड या अंग-भंग का दंड मिला था, फिरोज ने उनके उत्तराधिकारियों को धन देकर शांत और संतुष्ट किया तथा जिनकी भूमि का मुहम्मद ने अपहरण कर लिया था, उनकी भूमि फिरोज ने पुनः वापिस लौटा दी। सुलतान की इस उदार दंड-नीतिके कारण उसकी लोकप्रियता में अवश्य वृद्धि हुई, परन्तु अपराधियोंमें राजकीय भय व दंड का आतंक न होने से उनकी संख्या उत्तोरोत्तर बढ़ती गयी।

सार्वजनिक निर्माण-कार्य—सुलतान फिरोज तुगलक को प्राचीन भवनों, राज-प्रासादों व मसजिदों से विशेष प्रेम था। वह इन कलापूर्ण स्थानों को सुरक्षित रखना चाहता था। वह कलाप्रिय सुलतान था और भवन निर्माण कला में उसकी विशेष अभिरुचि थी। प्राचीन भवनों, मसजिदों और मकबरों के जिर्णोद्धार करने तथा नवीन भवनों और नगरों के निर्माण के लिये फिरोज ने अनेक चतुर व योग्य शिल्पी और परिश्रमी श्रमिक नियुक्त किये थे। उनके कार्यों के समुचित निरीक्षण के लिये सुयोग्य निरीक्षक रखे गये थे। इनके ऊपर राज्य के उच्च अधिकारी थे। मलिक गाजी शहना राज्य का प्रधान शिल्पी और अधिकारी था तथा उसकी सहायता के लिये अब्दुल हक उर्फ जहीर सुनधर नामक अन्य अधिकारी था। प्रत्येक भवन के निर्माण के पूर्व उसकी आकृति, रूपरेखा तैयार की जाती थी और उसकी जांच-पड़ताल दीवान-ए-वजारत

(अर्थ विभाग) द्वारा होती थी। इस विभाग की सन्तुष्टि और स्वीकृति पर आवश्यक धन स्वीकृत होता था और इसके बाद ही निर्माण कार्य प्रारम्भ किया जाता था।

अपने भवन-निर्माण के शौक के विषय में स्वयं फिरोज ने "फतूहात-ए-फिरोज-शाही" में लिखा है कि, "अल्लाह ने मुझे जितने वरदान दिये हैं, इनमें सार्वजनिक भवन बनाने की प्रेरणा भी एक है। इसलिये मैंने अनेक मसजिदें, मकतब, दरगाहें और सरायें बनवायीं ताकि वृद्ध, धर्मात्मा और विद्वान लोग उनमें खुदा की इबादत (प्रार्थना) कर सकें और उनके निर्माता (फिरोज) को अपनी दुआएं दे सकें।" इसी भावना से प्रेरित होकर उसने सुलतान मुइज्जुद्दीन की मसजिद की, इल्तुतमिश द्वारा निर्मित तालाब (हौज-ए-शम्सी) और अलाउद्दीन द्वारा निर्मित तालाब (हौज-ए-अलाई) की मरम्मत करवायी, उसने दिल्ली के सुलतानों के जर्जर मकबरों का जीर्णोद्धार भी किया। बर्नी के अनुसार फिरोज तुगलक ने ५० बांध, ४० मसजिदें, ३० मदरसे व मकतब (विद्यालय), २० राजप्रासाद, १०० सरायें, २०० नगर, ३० झीलें, १०० औषधालय, १०० स्नानागार, ५ मकबरे, १० स्तंभ तथा १५० कुओं का निर्माण करवाया। यद्यपि इस विवरण में अतिशयोक्ति हो सकती है, पर यह निर्विवाद है कि फिरोज ने अनेकानेक भवनों, मकबरों और धार्मिक स्थानों का निर्माण किया। भले ही उसने दो सौ नगर नहीं बसाये हों, पर उसने कुछ बड़े नगर निश्चित ही बसाये थे। इनमें से आज भी कुछ विद्यमान हैं, जैसे फिरोजाबाद (दिल्ली के समीप फिरोज कोटला), फतेहाबाद, जौनपुर, हिसार (पंजाब), फिरोजपुर (बदायूं के समीप), आदि। सुलतान फिरोज को बाग-बगीचों का बहुत शौक था। उसने अलाउद्दीन के शासन-काल के तीस बगीचों का जीर्णोद्धार किया तथा दिल्ली के चतुर्दिक १२०० बाग लगवाये। इनसे प्राकृतिक सौन्दर्य की वृद्धि के साथ-साथ राज्य की आय में भी वृद्धि हुई। शिल्प-कलाओं के प्राचीन स्मारकों व वस्तुओं की रक्षा करने में फिरोज की विशेष अभिरुचि थी। उसने मौर्य सम्राट अशोक के प्राचीन कलापूर्ण स्तंभों को देखा और उन्हें महत्व प्रदान कर अपने बसाये हुए नवीन नगरों में स्थापित किया। अशोक का एक स्तंभ "मीनार-ए-जरीं" के नाम से प्रसिद्ध था। यह फिरोज द्वारा खिज्राबाद के समीप एक ग्राम से राजधानी दिल्ली लाया गया और फिरोजाबाद में बड़ी मसजिद के समीप स्थापित किया गया। अशोक का दूसरा स्तंभ मेरठ से दिल्ली लाया गया और वहां "कुश्क-ए-शिकार" के समीप एक पहाड़ी पर खड़ा किया गया। फिरोज ने इन स्तंभों पर लिखी लिपि को पढ़वाने के लिये अनेक ब्राह्मणों को आमंत्रित किया, पर वे असफल रहे। कतिपय ब्राह्मणों ने फिरोज की चापलूसी करने एवं उसे प्रसन्न करने के हेतु उससे कहा कि इन अभिलेखों में यह लिखा है कि फिरोज के आगमन के पूर्व कोई भी इन स्तंभों को न हटा सकेगा।

फिरोज ने स्थापत्य कला और भवनों के जीर्णोद्धार की ओर विशेष ध्यान दिया, इसका कारण यह है कि, फिरोज के पहिले के सुलतानों का अधिकांश समय भारत में अनवरत युद्धों, संघर्षों और विद्रोहों के दमन में व्यतीत हुआ। इससे वे सार्वजनिक लोकोपकारी कार्य और भवन-निर्माण की ओर ध्यान नहीं दे पाये। इसके विपरीत फिरोज स्वभाव से ही युद्ध, विद्रोह और रक्तपात से घृणा करता था। वह शांति

से शासन करना चाहता था। उसके शासन-काल में व्यापक दीर्घकालीन युद्धों व विद्रोहों का सर्वथा अभाव रहा। फिरोज सर्वप्रथम मुस्लिम सुलतान था, जिसको पूर्व शासकों की अपेक्षा कहीं अधिक शांतिपूर्ण स्थिति में शासन करने का अवसर मिला। इससे उसने भवन निर्माण कार्यों में विशेष रुचि और उत्साह प्रदर्शित किया और निर्माण कार्यों में सफलता भी प्राप्त की।

शिक्षा और साहित्य की उन्नति—फिरोज को शिक्षा और साहित्य से विशेष अनुराग था। वह धर्मपरायण, उदार और परोपकारी शासक होने से शिक्षा की प्रगति और प्रचार में अधिक प्रयत्नशील रहा। उसने कई मकतब (प्राथमिक और माध्यमिक शालाएं) और मदरसे (ऊंची शिक्षा के विद्यालय) स्थापित किये। मकतब प्रायः मसजिद से संबंधित होते थे। "मासिर-ए-रहीमी" के लेखक अब्दुल बाकी ने लिखा है कि फिरोज ने पचास मदरसे निर्मित किये, पर निजामुद्दीन और फरिश्ता ने यह संख्या तीस बतलायी है। वास्तविक संख्या कुछ भी हो, पर यह निर्विवाद है कि फिरोज ने विद्यानुरागी होने से अनेक शालाएं स्थापित कीं। उसने पहिले की अपेक्षा मकतबों और मदरसों की संख्या बहुत बढ़ा दी। वह उन्हें नियमित रूप से अनुदान देता था। इन शिक्षण संस्थाओं में विद्वान लोग अध्ययन, मनन, चिंतन में संलग्न रहते थे। प्रत्येक मदरसे के समीप एक मसजिद बनायी जाती थी जिसमें पांच बार नमाज पढ़ने का आदेश था। इन मकतबों के दैनिक व्यय के लिये राज्य से भूमि दी जाती थी। मकतबों और मदरसों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति तथा अध्यापकों को वेतन राज्य की ओर से दिया जाता था। फिरोज द्वारा निर्मित मकतबों में सर्वश्रेष्ठ मकतब फिरोजाबाद में था जहाँ राजपरिवार के बालक-बालिकाएं शिक्षा ग्रहण करते थे। इन मकतबों के प्रधान आचार्य प्रसिद्ध विद्वान होते थे जिनका समाज और धार्मिक क्षेत्र में विशेष आदर, सम्मान और यश होता था। ये विद्वान आचार्य और उनके अधीनस्थ शिक्षक इस्लाम धर्म के गूढ़ रहस्यों के विषयों पर मनन एवं अध्ययन करते थे और दिन-रात धार्मिक चर्चाओं में संलग्न रहते थे। इसलिये इनका दृष्टिकोण संकीर्ण, साम्प्रदायिक और सीमित हो गया था, फलतः ये धर्मांध होकर कट्टर इस्लाम के पोषक बन गये थे। तत्कालीन मकतबों के विद्वान आचार्यों में दो विशेष प्रसिद्ध थे, प्रथम, मौलाना जलालुद्दीन रूमी थे जो इस्लाम धर्म और विधि पर प्रवचन देते थे। ये बड़े धर्मात्मा और नीति विशारद माने जाते थे और इन्हें फिरोज का राज्याश्रय प्राप्त था। द्वितीय, समरकंद के एक प्रसिद्ध धर्म प्रचारक थे।

यद्यपि फिरोज मुहम्मद तुगलक के समान विद्वान और लेखक या कवि नहीं था, पर विद्वानों को वह राज्याश्रय प्रदान करता था। वह विद्वानों, लेखकों और कवियों को भेंट, उपहार, दान और अनुदान देता था, वह उन्हें पुरस्कार और वृत्तियां भी प्रदान करता था। वह अंगूरी महल में इन सबका हृदय से स्वागत करता था। वह उन्हें प्रोत्साहन और राज्याश्रय देना, राजनीति और प्रशासन का एक विशेष अंग मानता था। इससे उसके शासन-काल मे विद्वान सम्पन्न हो गये और सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे। उसकी राजसभा में अनेक विद्वान थे। इतिहास से फिरोज को विशेष रुचि थी। यद्यपि वह प्रकांड विद्वान नहीं था, परन्तु उसने

"फतूहाते-ए-फिरोजशाही" नामक ग्रंथ अपनी आत्मकथा के रूप में लिखा है। जिया-उद्दीन बर्नी तथा शम्स-ए-सिराज अफीफ ने अपने गौरवपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ फिरोज के राजकीय संरक्षण में ही लिखे। फिरोज के राज्याश्रय में अनेक विद्वानों ने धार्मिक ग्रंथ भी लिखे। फिरोज के प्रोत्साहन से अनेक संस्कृत ग्रंथों का फारसी भाषाओं में अनुवाद किया गया। इनमें एक का नाम "दलायल फिरोजशाही" है।

राजसभा एवं राज परिवार—फिरोज धर्मनिष्ठ एवं कट्टर सुन्नी मुसलमान होने से व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से वैभव और शान-शौकत से घृणा करता था। वह सादगी पसन्द सुलतान था। राजप्रासाद में भी वह सादगी का जीवन व्यतीत करता था। इसलाम धर्म के अनुसार वह चित्र कला से घृणा करता था। वह अपने दैनिक जीवन में निवास कक्षों में किसी भी प्रकार के चित्र या अलंकरण पसन्द नहीं करता था। अन्य सुलतानों की भांति वह बहुमूल्य राजसी वेशभूषा और आभूषण धारण नहीं करता था। उसके दैनिक उपयोग की सामग्री भी सादी रहती थी। यद्यपि अपने जीवन में वह सादगीप्रिय था, परन्तु वह अपनी राजसभा और राजमहलों के वभव की मर्यादा को बनाये रखता था। उसकी राजसभा तड़क-भड़क और शान-शौकत में भूतपूर्व सुलतानों की राजसभा से कम नहीं थी। मुस्लिम जगत के विभिन्न प्रदेशों के प्रमुख व्यक्ति उसकी राजसभा में आते-जाते थे। मुस्लिम त्योहारों पर राजदरबार शान-शौकत से सजधज के साथ होता था। ईद और शबरात के अवसरों पर राज-दरबार जगमगा उठता था। फिरोजाबाद में जहाँ सुलतान रहता और जाया-आया करता था, इन त्योहारों के अवसर पर नगर और राजप्रासाद महत्त्वपूर्ण ढंग से सजाया जाता था। राजदरबारी भी भड़कीली जरी के काम वाली वेषभूषाओं से अलंकृत और सजे हुए होते थे। सुलतान उदारता से विभिन्न आयोजन करता था और लोग उसका लाभ उठाते थे। इन आयोजनों, उत्सवों और समारोहों में सम्मि-लित होने और उनका आनन्द उठाने के लिये उच्च एवं निम्न श्रेणी के लोग दूर-दूर से आते थे। इस वैभव, सजधज और समारोहों का वर्णन अफीफ ने अपने ग्रंथ में किया है। इससे प्रतीत होता है कि सुलतान फिरोज को सामान्य सजधज और समारोह से कोई घृणा नहीं थी, अपितु वह विशेष तड़क-भड़क पसन्द नहीं करता था।

विद्यानुरागी होने से फिरोज की राजसभा में अनेक विद्वान, लेखक और कला-कार विद्यमान रहते थे। उन्हें राज्याश्रय प्राप्त था। संगीतज्ञों को भी राजसभा में संरक्षण प्राप्त था। प्रति सप्ताह में शुक्रवार को कलाकारों, संगीतज्ञों, किस्सागो (किस्सा कहानी कहने वाले) बहुसंख्या में राजप्रासाद में एकत्रित होते थे। अफीफ ने इनकी संख्या तीन सहस्र बतलायी है।

सामन्त-वर्ग–फिरोज सामन्त वर्ग के प्रति भी बड़ा उदार और दयालु था। मलिकों और अमीरों पर सुलतान अलाउद्दीन के शासन-काल में जो प्रतिबंध लगाये गये थे, फिरोज ने उन्हें समाप्त कर दिया। सामन्त वर्ग का समर्थन व सहयोग प्राप्त करने के लिये फिरोज ने मलिकों और अमीरों को बन्धन मुक्त कर दिया था। सामन्त वर्ग की अनुकम्पा से ही फिरोज सिंहासनारूढ़ हुआ था। इसलिये उसने सामन्तों को सामाजिक,

आर्थिक, और राजनैतिक—सभी क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया था। मलिकों और अमीरों की प्रत्येक सांस पर जो प्रतिबन्ध और नियन्त्रण भूतपूर्व सुलतानों ने लगाये थे, वे तोड़ दिये गये। उन्हें गुप्तचरों की कठोरता से भी मुक्त कर दिया गया। अब उनके पीछे सुलतान का कोई भी गुप्तचर नहीं रहता था। फिरोज का यह आदेश था कि गुप्तचर व्यर्थ में किसी अमीर या मलिक को कष्ट न दें। उनके लिये यह भी सुविधा कर दी गयी कि बिना किसी विशिष्ट कारण के उनका स्थानान्तर नहीं किया जाय। जब तक वे निश्चित राजकीय कर देते रहें, राजाज्ञाओं का पालन करते रहें, तब तक उनका स्थानान्तर न किया जाय। इस सुविधा के अतिरिक्त फिरोज ने इन अमीरों व मलिकों को आर्थिक सहायता भी दी। पूर्ववर्ती सुलतानोंने आर्थिक दृष्टिसे उन्हें खोखला कर दिया था, उस क्षति को फिरोज ने पूरा कर दिया। उसने उन्हें धन देकर सन्तुष्ट कर दिया। प्रत्येक अमीर और मलिक को उसकी स्थिति और पद के अनुसार जागीर और अच्छा वेतन दिया जाने लगा। कुछ मलिकों को तो आठ लाख और छै लाख टंक प्रति वर्ष दिया जाता था। इस प्रकार सम्पूर्ण स्वतन्त्रता, पर्याप्त धन तथा सुलतान की अपार अनुकम्पा प्राप्त हो जाने से खान, मलिक और अमीर अत्यधिक धन-सम्पन्न हो गये थे। अफीफ के वर्णन के अनुसार तो इनके निवास गृह तो हीरों जवाहरातों के अपार भंडार थे। इससे सामन्त वर्ग की परिस्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। यदि यह कहा जाय कि फिरोज का शासन काल अमीरों, मलिकों और खानों के भाग्योदय का काल है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अंधकार पक्ष—यदि फिरोज के शासनकाल और उसकी नीतियों व कार्यों का उज्ज्वल पक्ष है, तो उनका अन्धकार पक्ष भी है, उसकी नीति की दुर्बलताएँ भी हैं. उसके कार्यों के दोष भी हैं। अब इनका वर्णन सक्षेप में किया जायगा।

जागीर प्रथा का पुनः प्रचलन—अलाउद्दीन खिलजी ने बड़ी कठिनाई से प्रचलित जागीर प्रथा को बंद कर दिया था। उसने अमीरों और मलिकों की बड़ी-बड़ी जागीरें छीन लीं, और जागीर के स्थान पर उनको नगद वेतन दिया। मुहम्मद तुगलक ने भी इस नीति का अनुकरण किया। परन्तु सुलतान फिरोज तुगलक ने जागीर प्रथा को पुनः प्रचलित कर दिया। उसने अपने सारे राज्य को जागीरों में विभाजित कर दिया और उन जागीरों को जिलों में बाँटा गया था। ये जागीरें मलिको और अमीरों और उच्च पदाधिकारियों को राज्य की ओर से दी जाती थीं। जिले अधिकारियों और कर्मचारियों में जागीर के रूप में विभक्त थे। ये जागीरदार राज्य के सामन्त होते थे। इस प्रकार फिरोज ने सैनिक तथा असैनिक पदाधिकारियों को जागीर के साथ-साथ वेतन भी देना प्रारम्भ कर दिया था। जागीरदारी प्रथा के पुनः प्रचलन का परिणाम राज्य के लिये हानिकारक हुआ। प्रथम जागीर वाले बड़े-बड़े सामन्त, अमीर और मलिक, सूबेदार और प्रान्तपति अधिक धनसम्पन्न और शक्तिशाली हो गये। वे इतने बलशाली हो गये थे, कि वे धीरे-धीरे सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र रचने और विद्रोह करने में तत्पर रहने लगे। वे अधिकाधिक शक्तिशाली बनने लगे और सुलतान पर अपना अंकुश रखने में पुनः शक्ति पकड़ने लगे। द्वितीय, अधिक स्वतन्त्र होने के कारण उन्होंने प्रजा पर घोर अत्याचार करना

प्रारम्भ कर दिया इससे उनकी प्रजा में भी उत्पात और विद्रोह की भावनाएं बलवती हो गयीं। तृतीय, दिल्ली से दूरस्थ प्रान्तों के शासक इतने धनसम्पन्न और सशक्त हो गये थे कि वे दिल्ली से स्वतंत्र होकर अपना स्वयं का राज्य स्थापित करने में संलग्न थे। चतुर्थ, सामन्त वर्ग के लोग अत्यधिक धनराशि संग्रह करने में सफल हो गये थे। इन सब बातों ने तुगलक साम्राज्य के विघटन में बड़ा योग दिया।

दास-प्रथा—फिरोज के शासन-काल की एक बड़ी दुर्बलता और दोष फिरोज द्वारा दासों का संरक्षण था। उसके शासन-काल में दासों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी। फिरोज ने स्वयं इसमें अभिरुचि प्रदर्शित की और दासों के पालन-पोषण पर उसने इतना अधिक व्यय किया कि किसी अन्य सुलतान ने उतना नहीं किया। कुल एक लाख अस्सी सहस्र दास उसके शासन-काल में थे। इनमें अधिकांश युद्ध के बंदी थे जो अशिक्षित तथा असभ्य थे। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रत्येक भाग से शासक, अधिकारी और अमीर फिरोज के पास दास भेजते थे। उसने अमीरों, सरदारों, प्रांतपतियों और अधिकारियों को यह आदेश दिया था कि जो भी सुन्दर और योग्य गुलाम मिल सके, उसके पास भेज दिया जाय। जो अमीर या अधिकारी जितने अधिक दास भेजता था, उसका उतना ही अधिक महत्व और सम्मान होता था। इससे उसकी राजसभा में देश-विदेश के दासों की एक बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। चालीस सहस्र दास तो केवल उसके राजभवन और राजसभा में अंग-रक्षक के रूप में थे। योग्य दासों को सुलतान ने विभिन्न पदों पर नियुक्त किया था। कुछ शिक्षित दास धर्म तथा साहित्यिक अध्ययन में लगा दिये गये थे, कुछ धार्मिक ग्रंथों की प्रतिलिपियां तैयार करते थे। बारह सहस्र दासों को व्यावसायिक और व्यापारिक शिक्षा देकर अच्छा शिल्पी बनाया गया। अनेक दास मुल्तान, दिपालपुर, हिसार, फिरोजाबाद, समाना, गुजरात तथा अन्य प्रदेशों के सामन्तों के पास भेज दिये गये और उनके संरक्षण में उन्हें रखा गया। वे इन्हें अपने बच्चों के समान रखते थे। प्रत्येक वर्ष वे अपने दासों को राज दरबार में ले जाते थे तथा उनके गुण वर्णन करते थे। जो अमीर इन दासों में अभिरुचि दिखाते थे, उन पर सुलतान विशेष कृपा रखता था। फिरोज ने आदेश दिया था कि इन दासों के साथ अच्छा, दयालुता और उदारता का व्यवहार किया जाय, उनकी सुख-सुविधा, आराम और शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जाय। इतने अधिक दासों की देखभाल के लिये सुलतान ने एक पृथक विभाग स्थापित किया। इसमें जोशुबरी तथा सहायक जोशुबरी व अन्य स्थायी अधिकारी थे। दासों को भत्ते व वेतन देने के लिये भी इस विभाग का अपना पृथक कोष था। दासों को राज्य की ओर से वृत्तियां दी जाती थीं।

फिरोज की यह दासप्रियता और उनके भरण-पोषण व उन्नति करने के प्रयास सल्तनत के लिये घातक सिद्ध हुए। राज्य का अत्यधिक धन दासों पर व्यय हुआ। दासों की संख्या इतनी अधिक हो गयी थी कि शायद ही कोई ऐसा विभाग या व्यवसाय शेष रहा हो जिसमें फिरोज के दास नहीं लगे हों। इससे इन दासों ने शासन व राजनीति में हस्तक्षेप किया। राजसभा में ये निरंतर षड़यंत्रों और कुचक्रों में संलग्न रहते थे। ये दास इल्तुतमिश के दासों के समान न तो योग्य ही थे और न स्वामिभक्त

ही। फ़िरोज के उत्तराधिकारिकों के शासन-काल में दास स्वामिविधायक (King-makers) बन गये। इन सबका परिणाम यह हुआ कि सल्तनत के छिन्न-भिन्न होने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

दोषपूर्ण सैन्य व्यवस्था और संगठन—मुहम्मद तुगलक ने स्वयं एक वीर योद्धा और साहसी कुशल सेनानी होने के कारण अपनी सेना की अच्छी व्यवस्था की थी। परन्तु उसके उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक में सैन्य व्यवस्था और संगठन करने की क्षमता और योग्यता नहीं थी। वह अत्यन्त दयालु और उदार प्रकृति का था और युद्ध व रक्तपात से घृणा करता था। इसलिये वह सेना को समुचित ढंग से संगठित नहीं कर सका। उसमें सैन्य सुधार की क्षमता भी नहीं थी। उसने अलाउद्दीन और सुलतान मुहम्मद द्वारा लगाये गये सैनिक नियम और अनुशासन, व प्रतिबंध भी ढीले कर दिये थे। उसने अपना सैनिक संगठन सामन्ती प्रथा पर आश्रित किया। उसकी सेना के अधिकांश सैनिक अमीरों व प्रांतपतियों द्वारा भेजे जाते थे। उसकी सेना में उच्च पदाधिकारियों, अमीरों व सामन्तों के लगभग दो लाख अनुचर और सैनिक थे। जागीरदारों व अमीरों के पास लगभग २० लाख सैनिक थे और सुलतान के पास लगभग ८ या ९ लाख सैनिक थे। इनमें अस्सी या नब्बे हजार अश्वारोही सैनिक स्थायी थे। इन अश्वारोही सैनिकों को प्रतिवर्ष अपने कार्यक्षम अश्वों को, वेतन और भत्ते लेने के लिये, सैनिक कार्यालय के सामने उपस्थित करना पड़ते थे। सेना के स्थायी सैनिकों को नगद वेतन के स्थान पर राज्य की ओर से जागीरें प्रदान कर दी गयी थीं। अस्थायी सैनिकों को राजकोष से वेतन दिया जाता था। जिन सैनिकों को वेतन तथा भूमि कुछ भी नहीं दिया गया था, उन्हें यह आदेश था कि वे अपने लिये निश्चित मात्रा में भूमि-कर वसूल कर लें। इसके लिये इन सैनिकों को राजस्व के पट्टे दिये जाते थे। भूमि-कर के इन पट्टों को कुछ व्यवसायी लोग सैनिकों से खरीद कर नगर में ही सैनिकों को उसका धन दे देते थे और बाद में ग्रामों और जिले के भीतरी क्षेत्रों में जाकर उन पट्टों का भूमि-कर स्वयं कृषकों से अधिक मात्रा में वसूल करते थे और कृषकों को सताते थे। स्थायी, अस्थायी सैनिकों और राजस्व वसूल कर सैनिक बने रहने वालों के अतिरिक्त शाही सेना में भाड़े के सैनिक भी अवसर पड़ने पर रखे जाते थे।

फिरोज के शासन में मलिक राजी नायब अरिज (नायब अर्ज-ए-मुमालिक) अधिकारी था। वह सेना का उच्च अधिकारी होने से सैनिक संगठन में उसने बड़े उत्साह, परिश्रम और लगन से प्रशंसनीय कार्य किया। उसने अश्वारोही सैनिकों को अच्छे अश्व रखने के लिये बाध्य किया। उसने सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र, वरदी आदि की भी जांच की और कमियों को पूरा किया। उसने सैनिकों के प्रति आदर व सद्-व्यवहार किया और उनके आराम व सुख सुविधा की पूरी व्यवस्था की। उसने सेना और सैनिक कार्यालय में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया। उसने सेना में अनुशासन और व्यवस्था बनाये रखने के प्रयत्न किये। परन्तु सुलतान फिरोज की दब्बू नीति, जागीर प्रथा और उल्माओं के प्रति उदारता ने उसके प्रयत्नों को विफल कर दिया और सेना को दुर्बल और शिथिल कर दिया। फिरोज ने सेना में

एवजी (Substitute) का नया आदेश प्रसारित किया। जब सैनिक शारीरिक जर्जरता या वृद्धावस्था के कारण सैनिक कार्य नहीं कर सकता था, तो उसका पुत्र उसकी एवज में और उसके पुत्र के अभाव में उसका दामाद और दामाद के अभाव में उसका गुलाम सैनिक कार्य करता था और वह वृद्ध सैनिक आराम व सुख से घर में रहकर वेतन या जागीर का लाभ प्राप्त करता था। इस प्रकार जो वेतन पाता था, वह कार्य नहीं करता था, और कार्य करने वाला वेतन नहीं पाता था। सेना के किसी पद पर आसीन अमीर के देहावसान के बाद उसके पुत्र, दामाद या दास को भी उसी पद पर नियुक्त कर दिया जाता था। जो वृद्ध व्यक्ति सेना में थे या रुग्ण सैनिक थे, उन्हें भी फिरोज दयालुता व उदारतावश सेना में से निकालता नहीं था। इससे सेना सुव्यवस्थित और संगठित न होकर दान और अनुकम्पा की एक विशाल संस्था बन गयी थी। फिरोज की इस दोषयुक्त सैनिक नीति के कारण निम्नलिखित दुष्परिणाम निकले:—

(१) वृद्ध सैनिकों, उनके पुत्रों या दामादों के उनके स्थान या पदों पर आ जाने से सैनिक सेवा वंश परम्परागत बन गयी थी। यह आवश्यक नहीं कि एक सैनिक का पुत्र या दामाद भी उसी की भांति वीर, साहसी योद्धा व कुशल सैनिक हो। पर स्थायी रूप से भूमि व जागीर प्राप्त कर लेने से वे सैनिक सेवा में आ जाते थे। इससे सेना दुर्बल हो गयी, उसमें सैनिक कुशलता और क्षमता का अभाव हो गया।

(२) सैनिकों द्वारा भूमि-कर के अपने पट्टे बेच देने से भूमि-कर वसूली में कृषकों पर अधिक अत्याचार होता था, इन पट्टों का भूमि-कर वसूल करने वाले कृषकों से अधिक धन वसूल करते थे, उनका शोषण करते थे और अफीफ के अनुसार "उनमें से अनेक बहुत धनी हो गये और उन्होंने संपत्ति जोड़ ली।"

(३) सेना में एवजियों से, राजभक्ति, अनुशासन और दृढ़ता का पर्याप्त अभाव था। सेना पौरुषहीन हो गयी थी। अनुशासन भंग करने वाले सैनिकों के लिये कोई निर्मम दंड की व्यवस्था फिरोज ने नहीं की थी। इससे सैनिकों में अनुशासन और उत्तरदायित्व की भावना लेश मात्र भी नहीं थी।

(४) दिल्ली में रहने वाली स्थायी सेना के अतिरिक्त राज्य की शेष सेना राज्य के विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले अमीरों, अधिकारियों और शासकों के अधीन रहती थी। ये अमीर और अधिकारी युद्ध के समय अपने-अपने सैनिक लेकर सुलतान की सहायता के लिये आते थे। इन बहुसंख्यक सैनिकों के आधार पर कई बार अमीर और प्रांतीय शासक विरोधी बनकर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करते थे। सेना के अधिकांश भाग पर अमीरों का नियंत्रण और संरक्षण होने से सुलतान प्रायः अमीरों की कठपुतली हो गया था। वह अमीरों को संतुष्ट ही रखने का प्रयत्न करता था जो राज्य के लिये अहितकर था।

(५) फिरोज युद्ध और रक्तपात से घृणा करता था। इसलिये सन् १३६३ के बाद तो उसकी सेना के अस्त्र-शस्त्रों ने सूर्य की किरणें भी नहीं देखीं। सैनिक शिक्षा प्राप्त करना, युद्ध का अभ्यास करने या अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग करने के अवसर सेना को उपलब्ध नहीं हुए।

इन सब कारणों से फिरोज की सेना अत्यधिक दुर्बल, अयोग्य, अस्त-व्यस्त, अनुशासनविहीन और पौरुषहीन हो गयी। विशाल सेना होते हुए भी फिरोज किसी युद्ध में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सका। सैन्य संगठन की यह दूषित नीति तुगलक साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बन गयी।

संकीर्ण धार्मिक नीति—सुलतान फिरोज तुगलक की धार्मिक नीति संकीर्ण और साम्प्रदायिक थी। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के समान फिरोज भी धर्म को राजनीति से पृथक नहीं कर सका। उसके शासन का आधार धार्मिक और साम्प्रदायिक था। आर्थिक, धार्मिक तथा सैनिक व्यवस्था में वह राज्य के हितों की अवहेलना कर कट्टर धार्मिक विधियों का आश्रय लेता था। हर कार्य में शरियत का अनुकरण करता था। धार्मिक पुरुषों के स्थानों की यात्रा करता था और कहीं जाने के पूर्व कुरान को स्पर्श कर लेता था।

(अ) फिरोज और उलमा वर्ग—फिरोज तुगलक शेखों, मौलवियों, मुल्लाओं का विशेष आदर करता था। वह उनसे प्रत्येक शासकीय, राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों में परामर्श लेता था और उनके आदेशों का अक्षरशः पालन करता था। वह उनकी सुख-सुविधाओं का पूरा ध्यान रखता था। उन्हें दान, अनुदान, पुरस्कार, भेंट, उपहार और जागीरें देकर प्रसन्न और सन्तुष्ट करता था। उसने उलमाओं की प्रतिष्ठा और महत्व को बहुत बढ़ा दिया। इससे उलमा वर्ग के लोग फिरोज की प्रशंसा करने लगे, वे उसे एक महान सफल शासक मानने लगे तथा उसके प्रबल समर्थक हो गये एवं इस्लामी राजशक्ति के पोषक बन गये।

उलमाओं के इस प्राधान्य का फिरोज के शासन और राजनीति में कुप्रभाव पड़ा। उलमा वर्ग के लोग धर्मान्ध और कट्टर मुसलमान थे। राजनीति, प्रशासन और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण इस्लामी और संकीर्ण था। इसलिये जब उन्होंने अपने प्राधान्य और प्रतिष्ठा के कारण प्रशासन और राजनीति में हस्तक्षेप किया, तो उसका बुरा प्रभाव गिरा। उलमाओं के प्रभाव के अन्तर्गत फिरोज ने कुरान के नियमों और इस्लाम के अनुसार ही कार्य किये। इससे उसमें धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता अधिक आ गयी। उसने शिया और सुन्नी मुसलमानों में, हिन्दू और मुसलमानों में तीव्र भेदभाव किया। उसने उन सब को समान दृष्टि से नहीं देखा। जो शासक या सुलतान अपनी समस्त प्रजा को एक समान दृष्टि से नहीं देख सका, वह सही अर्थों में सुलतान या शासक नहीं हो सकता।

(ब) हिन्दुओं के प्रति कट्टरता और असहिष्णुता की नीति—उलमाओं के दूषित प्रभाव के अन्तर्गत ही, फिरोज तुगलक ने हिन्दुओं के साथ इस्लामी शरियत के अनुसार हिन्दुओं के प्रति व्यवहार किया और अपनी धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता प्रदर्शित की। उलमाओं के कुप्रभाव के कारण ही फिरोज इस्लाम धर्म का पोषण और प्रचार करना, हिन्दुओं व हिन्दू धर्म का दमन करना तथा मूर्ति पूजा का नाश करना अपना परम पावन कर्तव्य समझता था।

उसने बलपूर्वक अनेकानेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। वह विविध प्रकार के प्रलोभनों तथा दंडों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिये प्रेरित करता था।

उन्हें जजिया कर से मुक्ति तथा उच्च पद का प्रलोभन दिया जाता था। इस नियम के विपरीत यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमान को हिन्दू बनाने के लिये प्रेरित करता, तो फिरोज उसे मृत्यु दंड देता था। एक ब्राह्मण जो किसी मुसलमान को हिन्दू बनाने के लिये प्रलोभन दे रहा था, फिरोज ने बंदी बनाकर कत्ल करवा दिया।

सुलतान ने अपनी धार्मिक कट्टरता और धर्मान्धता का परिचय हिन्दुओं के राज्यों पर आक्रमण करके, उनके भवनों, मंदिरों और मूर्तियों को विध्वंस करके, तथा हिन्दुओं का कत्ल करके दिया। जियाउद्दीन बर्नी ने फिरोज की इस धार्मिक संकुचित नीति के विषय में लिखा है कि, "यदि यह चिंता जो कि मुझे व्याकुल करती है कि मैं मुसलमानों का संरक्षक और पोषक हूँ, हट जाय, तो मैं एक भी दिन राजधानी में न रहूँगा, परन्तु अश्वों और हाथियों को, धन के भंडारों और बहुमूल्य सामग्रियों को लूटने के लिये सेना से आक्रमण करूंगा और (हिन्दू) रायों और राणाओं को दूरस्थ प्रदेशों में भी शांति से कभी रहने नहीं दूंगा।" हिन्दुओं के लिये ऐसी ही दमन और विध्वंस की भावनाओं से प्रेरित होकर फिरोज ने नगरकोट और जाजनगर पर आक्रमण किये। नगरकोट में ज्वालामुखी देवी के मंदिर को और उड़ीसा में जगन्नाथपुरी के मंदिर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और मूर्तियों को तोड़-फोड़ डाला। हिन्दू मदिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने, मूर्तियों को तोड़ने-फोड़ने, हिन्दुओं के धार्मिक मेलों और समारोहों पर प्रतिबन्ध लगाने, नवीन मंदिरों के निर्माण करने पर नियंत्रण रखने, आदि में फिरोज ने अत्यधिक उत्सुकता बतलाई और अपनी हिन्दू विरोधी नीति के प्रमाण दिये। मलूहगांव में हिन्दुओं के एक मंदिर और उसके आस-पास के भाग में एक मेला लगता था। मेले के दिन फिरोज ने हिन्दुओं को और मेला के नेताओं को कत्ल करवा दिया और वहां मंदिरों के स्थान पर मसजिदें निर्मित कर दीं जो सरअलपुर और तुगलकपुर की मसजिदों के नाम से प्रसिद्ध हुई। हिन्दुओं के दमन के इन कार्यों में वह विशेष गर्व का अनुभव करता था। अपनी आत्मकथा "फतूहात-ए-फिरोजशाही" में स्वयं फिरोज ने लिखा है कि—'मुझे (सुलतान फिरोज को) यह सूचना मिली कि कुछ हिन्दुओं ने सालिहपुर गांव में एक नया मंदिर बनवा लिया और वहां मूर्ति पूजा किया करते हैं, तो मैंने कुछ व्यक्तियों को मंदिर के विनाश के लिये भेज दिया.........।"

"कुछ हिन्दुओं ने कोहना गाँव में एक नया मंदिर बनवाया था और वहां मूर्ति-पूजक एकत्रित होकर पूजा किया करते थे। इन लोगों को पकड़ा गया और मेरे पास लाया गया। मैंने आदेश दिया कि......उनके नेताओं को महल के द्वार पर फांसी दे दी जाय। मैंने यह भी आदेश दे दिया कि नापाक पुस्तकें, मूर्तियां, पूजा के बर्तन, जो उनके पास थे खुले आम जला दिये जायें। अन्य लोगों को धमकी और दंड देकर दबा दिया गया जिससे कि दूसरों को चेतावनी मिल जाय कि कोई भी जिम्मी, मुसलमान राज्य में ऐसे घृणित कार्य नहीं कर सकता।"

फिरोज की धार्मिक असहिष्णुता और पक्षपात एवं घृणित कार्य का एक अन्य उदाहरण अधोलिखित है। दिल्ली में एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने घर में मूर्ति पूजा करता था। अनेक लोग एक निश्चित दिवस पर उसके घर आकर तख्त पर रखी मूर्तियों की

पूजा करते थे। ब्राह्मण की पवित्रता, सच्चरित्रता और धार्मिकता से प्रभावित होकर अनेक मुसलमान महिलाओं ने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया था। फिरोज को जब इसकी सूचना मिली तब उसने ब्राह्मण को बन्दी बनाकर बुलाया और उल्माओं के परामर्श से यह आदेश दिया कि या तो वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर अपनी मुक्ति प्राप्त करले, अथवा जीवित जला देने का दंड भुगते। प्रत्यक्षदर्शी अफीफ ने लिखा है कि इस ब्राह्मण ने इस्लाम अस्वीकार कर दिया और तब राजसभा के सिंहद्वार के सम्मुख लकड़ी की चिता जलाकर ब्राह्मण के हाथ-पैर बांधकर उसे चिता में फेंक दिया गया और आग लगा दी। सुलतानों में श्रेष्ठ कहे जाने वाले फिरोज के शासन-काल में यह थी हिन्दुओं की विडंबना और विभीषिकाएँ।

फिरोज हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु ही नहीं था, अपितु उनके लिये प्रतिहिंसा की भावना रखता था, वह अवसर आने पर उनसे प्रतिशोध भी लेता था। एक समय अपराध के कारणवश कटेहर के हिन्दू नरेश ने तीन सैयदों को मृत्यु दंड देकर उनका वध करवा दिया। इसका प्रतिशोध लेने के लिये फिरोज ने पांच वर्ष तक कटेहर का जो भी व्यक्ति उसके हाथ आ जाता उसका निर्ममता से वध किया।

फिरोज ने हिन्दुओं पर राजकीय करों के अतिरिक्त जजिया कर भी लगाया और उनका आर्थिक शोषण किया। उसने ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगाया। अब तक ब्राह्मण जजिया कर से मुक्त थे। दिल्ली के ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया और उन्होंने राजभवन के सम्मुख अनशन प्रारम्भ कर दिया। इस पर फिरोज ने उल्माओं के परामर्श से यह घोषणा की कि यदि वे राजभवन में एक साथ अपने आपको जला कर नष्ट भी कर दें, तो भी फिरोज ब्राह्मणों को जजिया कर से मुक्त करने वाला नहीं है। इसके बावजूद भी ब्राह्मणों ने कई दिनों तक अनशन रखा। पर जब फिरोज ने उनकी स्थिति पर किंचित भी ध्यान नहीं दिया, तब अन्य वर्णों के लोगों ने भूखे ब्राह्मणों की दयनीय दशा को देखकर ब्राह्मणों की ओर से जजिया कर देना स्वीकार किया। फिरोज ने यह जजिया कर ब्राह्मणों के लिये दस तनका (टंक) और पचास जीतल प्रति ब्राह्मण प्रति वर्ष के हिसाब से कर दिया। अफीफ के अनुसार हिन्दुओं पर लगाये गये जजिया कर की तीन श्रेणियां थीं। प्रथम श्रेणी के हिन्दुओं से चालीस टंक या तनके प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष वसूल किया जाता था, द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों से २० तनके और तृतीय श्रेणी के व्यक्तियों से १० तनके वसूल किये जाते थे। फिरोज के प्रोत्साहित करने पर जो हिन्दू मुसलमान बन जाते थे, उन्हें वह जजिया कर से मुक्त कर देता था।

(स) हिन्दुओं के अतिरिक्त फिरोज ने गैर सुन्नी मुसलमानों पर भी अत्याचार किये। वह शिया मुसलमानों के प्रति भी अत्यन्त कठोर ही था। शियाओं की कुछ धार्मिक क्रियाएं फिरोज को वीभत्स, अश्लील और गैर इस्लामी प्रतीत होती थीं। इस लिये उसने शियाओं को ऐसे अधार्मिक कार्य करने के आदेश दिये। महदवियों, मुलाहिदों तथा सूफियों के साथ भी फिरोज ने धार्मिक कठोरता का व्यवहार किया और उन पर अत्याचार किये। शियाओं के धार्मिक ग्रन्थों को उसने जला डाला और महदवी नेता नुकरुद्दीन को प्राणदंड देकर वध करवा दिया।

फिरोज तुगलक मुस्लिम स्त्रियों के प्रति भी असहिष्णु था। उसने मुस्लिम स्त्रियों के घर से बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध लगा दिये। वे पीरों की मजारों पर भी दर्शनार्थ नहीं जा सकती थीं।

फिरोज की नीतियों की आलोचना—कुछ विद्वानों का मत है कि फिरोज की धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता और पक्षपात उस युग की परिस्थितियों के अनुसार ही थी। वह न तो अलाउद्दीन के समान कूटनीतिज्ञ था और न मुहम्मद तुगलक के समान उदार, सहिष्णु और विवेकशील विद्वान ही था। वह तो एक साधारण सुलतान था, जिसने मुसलमानों की तथा उलमा वर्ग की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये धार्मिक पक्षपात, भेद-भाव और असहिष्णुता की नीति अपनायी। इससे वह शांति से शासन कर सका। परन्तु उसकी इस दूषित धार्मिक नीति से उसका शासन सभी वर्गों की सद्भावना और सहयोग प्राप्त नहीं कर सका। इसका दुष्परिणाम उसके उत्तराधिकारियों को भोगना पड़ा। यह निर्विवाद है कि मध्ययुग में भारत में औरंगजेब से पूर्व सिकन्दर लोदी के राज्यकाल को छोड़कर अन्य किसी भी सुलतान के शासन-काल में इस्लाम धर्म और उलमाओं का इतना प्राधान्य नहीं रहा जितना कि फिरोज के समय था। फिरोज इस्लाम धर्म का मुख्य शासक था। उसने अपनी धार्मिक कट्टरता की भावना और साम्प्रदायिक सकीर्णता से प्रेरित होकर घृणित और विध्वंसक कार्य किये और गैर मुस्लिम प्रजा पर अत्याचार किये। उसकी धार्मिक पक्षपात व दयालुता के कारण मुसलमान जनता प्रसन्न पर हिन्दू असन्तुष्ट हो गये थे और प्रसाशन में शिथिलता आ गयी थी।

उसकी आर्थिक नीति तथा प्रजा हित के कार्यों को देखते हुए, यह कहा जा सकता है कि उसे आर्थिक योजनाओं में सफलता मिली। उसकी योजनाओं से प्रजा को लाभ पहुँचा। उसके द्वारा करों का भार कम हो जाने से कृषि तथा व्यापार में वृद्धि हुई, प्रगति हुई जिससे जनसाधारण की आर्थिक दशा ठीक हो गयी। राजकोष की रिक्तता दूर होकर उसमें सम्पन्नता आ गयी। उसके दान, अनुदान से चिकित्सालय और भवन निर्माण से भी जनसाधारण का हित हुआ। राज्याश्रय से विद्वानों, और लेखकों को लाभ हुआ और अनेक धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रंथ रचे गये।

प्रशासन व्यवस्था में फिरोज असफल रहा। उसमें शासक की प्रतिभा का अभाव था। राज्य के अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रसन्न रखने के लिये वह उचित-अनुचित सभी साधन और तरीके अपनाता था। वह ईमानदार, सदाचारी और अनैतिक भ्रष्टाचारी कर्मचारियों में भेदभाव नहीं करता था, अपितु सबको आदर देता था। उसने सरकारी कर्मचारियों पर गुप्तचरों का नियन्त्रण भी हटा दिया। इससे सरकारी अधिकारी और कर्मचारी मनमानी करते थे, शासकीय नियमों की अवहेलना करते थे, सरकारी धन का गबन करते थे और प्रजा पर अत्याचार करते थे। सुलतान ने पदों को पैतृक बना दिया था। किसी पदाधिकारी की मृत्यु हो जाने पर वही पद उसके पुत्र को प्रदान कर दिया जाता था, चाहे उसमें उस पद के लिये योग्यता या दक्षता हो या न हो। फिरोज ने स्वयं फतूहात-ए-फिरोजशाही में लिखा है, "जब कभी कोई कर्मचारी मृत्यु को प्राप्त होता तो मैं उसके पुत्र को उसका पद दे

देता, जिससे कि उसको वही प्रतिष्ठा और पद मिल सके जो उसके पिता को प्राप्त था।"

सेना में भी वृद्ध और अशक्त सैनिक काम करते थे, उन्हें पृथक नहीं किया जाता था। इस नवीन नियम से प्रशासन में योग्य और अनुभवी अधिकारियों का अभाव बढ़ने लगा और शासन शिथिल होने लगा। एक बार इमादुल मुल्क के पुत्र मलिक इशहाक ने इस घातक नियम का विरोध करते हुए फिरोज से निवेदन किया था कि वह ऐसी परम्पराओं को समाप्त कर दे जो राज्य के स्थायित्व के लिये घातक थीं। फिरोज ने उसके इस निवेदन को अस्वीकार करते हुए कहा था कि, "अब तुम्हारा पिता वृद्ध हो गया है, अत: पहले उसे पद से हटा दो। तब मैं सारे वृद्ध पुरुषों को राज्य की सेवा से मुक्त कर दूंगा।" अर्थात् फिरोज अपने सेवकों को वृद्ध और अशक्त हो जाने पर भी पद से पृथक या सेवानिवृत्त नहीं करता था। फिरोज की इस उदारता और दयालुता का कर्मचारियों ने पूरा लाभ उठाया। वे राज्य के नियमों व कानूनों की अधिकाधिक अवहेलना करने लगे। फिरोज शासन के विभागों का और कर्मचारियों के कार्यों का कभी भी निरीक्षण नहीं करता था। वह प्रशासन के सभी कार्यों का उत्तरदायित्व कर्मचारियों व मंत्रियों पर डाल देता था। यदि इन कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, अनैतिकता और कर्त्तव्यहीनता की कोई शिकायत भी करता था, तो फिरोज उसे सुनता नहीं था। वह शिकायतों में विश्वास नहीं करता था। इससे कर्मचारी निरंकुश, स्वेच्छाचारी, बेईमानी और भ्रष्ट तथा अत्याचारी हो गये। निम्नलिखित उदाहरण इसको स्पष्ट करेंगे:—

जब सुलतान फिरोज ने जनता की सुविधा के लिये शशगनी नामक छोटा सिक्का प्रसारित किया, तब टकसाल के भ्रष्ट अधिकारी इस सिक्के में से चांदी निकालकर खोट मिलाने लगे। जब टकसाल के सर्वोच्च अधिकारी कजरशाह के विरुद्ध सुलतान को यह शिकायत प्राप्त हुई कि प्रत्येक शशगनी के सिक्के में कम चांदी है, और कजरशाह इसके लिये उत्तरदायी है, तब फिरोज ने सिक्कों की जांच के लिये स्वर्णकारों को बुलाया। कजरशाह स्वर्णकारों से मिल गया। जब स्वर्णकारों ने सिक्का गलाया, तब उन्होंने गुप्त रूप से थोड़ी चाँदी गलते हुए सिक्के में डाल दी जिससे चांदी की कमी पूरी हो जाय। सिक्का सही निकला। दूसरी बार स्वर्णकारों के वस्त्र उतरा लिये जिससे कि वे अपने पास चांदी न रख सकें। पर उन्होंने कजरशाह से मिलकर चांदी के टुकड़े कोयलों के बीच रख लिये और उन्होंने सिक्के की शुद्धता प्रमाणित कर दी। वजीर मकबूल को यह धोखाधड़ी की बात मालूम थी और फिरोज को भी यह आभास था कि टकसाल का अधिकारी चोरी कर रहा है। पर फिरोज ने धोखेबाजी और चोरी में मिले हुए कजरशाह को राजकीय वेश-भूषा पुरस्कार में देकर सुसज्जित अश्व पर बिठाकर नगर में घुमाया और उसका आदर किया। उसके विरुद्ध शिकायत करने वाले दो व्यक्तियों को मिथ्यारोपण करने के अपराध में दंड दिया। इससे स्पष्ट है कि फिरोज की नीति के कारण कर्मचारी न तो नैतिक थे और न निपुण और दक्ष ही।

सेना में भी पदों को पैतृक कर देने से सैनिक दक्षता समाप्त हो गयी थी। निकम्मे और वृद्ध सैनिक सेना में होते थे। सैनिक व्यवस्था में भी घूस व भ्रष्टाचार

व्याप्त था। एक बार, जब फिरोज को यह विदित हुआ कि एक गरीब सैनिक सैनिक-कार्यालय में अधिकारी के सम्मुख अपना भत्ता और वेतन प्राप्त करने के लिये अपना अश्व उपस्थित करने में असमर्थ है, तब सुलतान ने स्वयं उसे सोने का एक सिक्का दिया जिससे कि वह अधिकारी को घूंस देकर मनचाहा प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर अपना वेतन और भत्ता ले सके। इससे अधिक निन्दनीय और हास्यास्पद क्या होगा कि स्वयं सुलतान रिश्वत और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करे। सेना में भी जागीर देने व वंशानुगत नियुक्ति करने व एवजी का नियम था। किसी भी सैनिक या अधिकारी को अपना स्थान भरने के लिये किसी भी व्यक्ति को ले आने की अनुमति थी। इससे सेना पतित, दुर्बल, अनुशासनहीन हो गयी और उसमें साम्राज्य की रक्षा करने की क्षमता नहीं रही। सैनिकों व अधिकारियों को जागीरें देने से सैनिक आलसी, विलासी हो गये और सैनिकों की गतिशीलता तथा राजभक्ति नष्ट हो गयी। सैनिक क्षमता व कुशलता की रीढ़ तोड़ दी गयी। सेना व्यवस्थाहीन व पंगु हो गयी। इन सबका कुप्रभाव साम्राज्य के विघटन पर पड़ा।

फिरोज तुगलक के अन्तिम दिन और उत्तराधिकारी की समस्या—उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के लिये युद्ध न छिड़े इसलिये उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र फतेहखां को युवराज और उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। परन्तु फिरोज के जीवन-काल में ही उसकी मृत्यु हो जाने के कारण उसने अपने द्वितीय पुत्र जफरखां को उत्तराधिकारी घोषित किया, पर फिरोज के जीवन-काल में ही वह भी काल कवलित हो गया। तब फिरोज ने अपने तृतीय पुत्र मुहम्मदखां को उत्तराधिकारी न बनाते हुए अपने ज्येष्ठ पुत्र फतेहखां के पुत्र तुगलकशाह को अपना युवराज घोषित कर दिया। इससे मुहम्मदखां और उसके समर्थक असन्तुष्ट हो गये। इसी अवधि में सुलतान ने वृद्ध होने के कारण प्रशासन का सारा भार अपने प्रधानमन्त्री खान-ए-जहां मकबूल को सौंप दिया। मकबूल मुहम्मद का विरोधी था। इसलिये राजसभा में अब दो दल होगये, एक प्रधानमन्त्री मकबूल का और द्वितीय मुहम्मदखां का। मुहम्मदखां ने फिरोज की वृद्धावस्था और दुर्बलताओं का लाभ उठाकर शासन कार्य अपने हाथ में ले लिया। तब मकबूल ने सुलतान के कान भर दिये और कहा कि शाहजादा मुहम्मद सुलतान की हत्या करके सिंहासन प्राप्त करने के लिये षड़यंत्र कर रहा है। इस पर फिरोज ने मुहम्मद और उसके सहयोगियों को बंदी बनाने की आज्ञा दे दी। परन्तु मुहम्मद किसी प्रकार मुस्लिम महिलाओं की पालकी में बैठकर राजमहल से बच निकला और राजसभा में उपस्थित होकर अपने पिता फिरोज के चरण पकड़कर उसे सानुरोध विश्वास दिलाया कि वह निर्दोष है, षड़यंत्रकारी तो खान-ए-जहां मकबूल है। इस पर विश्वास करके फिरोज ने खान-ए-जहां मकबूल को बंदी बनाने की आज्ञा प्रदान करदी। मकबूल इसे सुनकर मेवात की ओर अपनी प्राण-रक्षा के लिये भाग गया। इसके पूर्व मुहम्मद ने खान-ए-जहां के महल पर आक्रमण कर उसकी समस्त संपत्ति लूट ली थी। उसके भाग जाने के वाद मुहम्मदखां ने अपने समर्थकों द्वारा उसका वध करवा दिया। अब मुहम्मदखां ने निश्चित होकर फिरोज के जीवन-काल में ही प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। अपने नाम का खुतबा पढ़वाना प्रारम्भ कर दिया और

सिक्के प्रसारित कर दिये। पर वह आमोद-प्रमोद में अधिक समय व्यतीत करने लगा। उसके कुव्यवहार से भी अमीर असंतुष्ट हो गये और उलमावर्ग भी उसके विरुद्ध हो गया। सुलतान फिरोज ने अमीरों और उलमाओं का पक्ष लिया और उनके मतानुसार उसने तुगलकशाह का समर्थन किया। इससे मुहम्मदशाह का साहस भंग हो गया और वह अपनी सुरक्षा के लिये सिरमूर पर्वत श्रेणियों की ओर भाग गया। ऐसी दशा में अन्त में फिरोज ने अपने पौत्र तुगलकशाह को शासन का भार सौंप दिया। इसके कुछ ही समय पश्चात् अस्सी वर्ष की आयु में अक्टूबर सन् १३८८ में फिरोज मर गया।

सुलतान फिरोज का मूल्यांकन

फिरोज के चरित्र और व्यक्तित्व तथा उसके कार्यों के मूल्यांकन में इतिहासकारों में विभिन्न मत हैं।। समकालीन इतिहास लेखक बर्नी और अफीफ फिरोज की बड़ी प्रशंसा करते हैं। वे फिरोज तुगलक को एक श्रेष्ठ और आदर्श सुलतान मानते हैं। उनका मत है कि नासिरुद्दीन महमूद के बाद किसी भी शासक ने प्रजा का इतना प्रेम नहीं पाया, कोई इतना दयालु, उदार, धर्मप्रिय तथा निर्माता नहीं हुआ जितना फिरोज। इनके मत में फिरोज के समान उदार, दयालु, धर्मनिष्ठ, ईश्वरभीरु, तथा न्यायप्रिय सुलतान अन्य कोई नहीं हुआ। परन्तु इन इतिहासकारों का यह कथन पक्षपातपूर्ण है। कट्टर मुसलमान होने से इन इतिहासकारों ने अपने संरक्षक फिरोज की दुर्बलताओं और दोषों की अवहेलना की तथा उसके गुणों और कार्यों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

क्या फिरोज सल्तनत युग का अकबर है?—हेनरी इलियट और एलफिन्स्टन ने फिरोज की प्रशंसा की है। एलफिन्स्टन ने तो फिरोज को सल्तनत काल का अकबर कहा है। यह बात निर्विवाद है कि उसके पूर्व किसी भी सुलतान ने अपनी प्रजा की भौतिक समृद्धि के लिये इतना परिश्रम नहीं किया, जितना फिरोज तुगलक ने किया। कृषि की प्रगति, शिक्षा की उन्नति, साहित्य का विकास, भवन-निमार्ण के कार्य, दान-विभाग, राजस्व में सुधार, सिंचाई के साधनों में वृद्धि, रोजगार में वृद्धि आदि ऐसे अनेक कार्य फिरोज ने किये, जिनसे प्रजा का बहुत हित हुआ। पहिले तुर्की सुलतानों ने जनता के कल्याण के लिये ऐसे कार्य नहीं किये थे। फिरोज के पूर्व तक सुलतान के कार्य नवीन विजयें प्राप्त कर लेना, कानून, व्यवस्था और शांति स्थापित कर लेना और भूमिकर वसूल करने तक ही सीमित थे। परन्तु फिरोज ने जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर राज्य और जनता के हित के कार्यों में वृद्धि की। पर इन सब गुणों और कार्यों से फिरोज को अपने युग का अकबर कहना मूर्खतापूर्ण है। विन्सेन्ट स्मिथ और डा. ईश्वरीप्रसाद दोनों ही इस मत को नहीं मानते हैं। उनके अनुसार फिरोज की तुलना अकबर से करना, अकबर के साथ अन्याय करना है। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद का कहना है कि, "फिरोज में उस विशाल हृदय तथा विस्तीर्ण मस्तिष्क वाले सम्राट (अकबर) की प्रतिभा का शतांश भी नहीं था, जिसने सार्वजनिक हितों के उच्च मंच से सभी सम्प्रदायों और धर्मों के प्रति शांति, सद्भावना तथा सहिष्णुता

का सन्देश दिया ।" सर वुल्जे हेग का भी मत है कि "अकबर से पहिले भारत में मुस्लिम शासन के इतिहास में फिरोज के राज्यकाल के साथ एक अत्यन्त उज्ज्वल युग का अवसान होता है ।" पर वुल्जे हेग फिरोज को अकबर के समान श्रेष्ठ और महान मानने को तैयार नहीं है ।

आधुनिक इतिहासकारों के मत में सुलतान फिरोज तुगलक एक दुर्बल चरित्र, अयोग्य, भीरु तथा धर्मान्ध प्रकृति वाला शासक था जिसके कार्यों ने तुगलक साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया । अकबर के समान उसने सामाजिक समन्वय और धार्मिक उदारता की नीति नहीं अपनायी । उसका धार्मिक दृष्टिकोण संकीर्ण एवं अनुदार था तथा उसने धर्म को राजनीति का आधार बना दिया जिससे हिन्दुओं के साथ उसका व्यवहार अनुचित रहा । फिरोज ने अपनी धर्मान्धतापूर्ण नीति से जनता को निरर्थक कष्ट दिया तथा अद्भुत् विजय योजनाओं से राज्य का अपार धन नष्ट किया, जिससे उसके साम्राज्य की कोई वृद्धि नहीं हो सकी । उसका सैन्य संगठन, जागीरदारी प्रथा, वंशानुगत पद की दूषित नीति पर आधारित था जिससे तुगलक वंश का पतन हुआ । इसके विपरीत अकबर की सैन्य व्यवस्था दृढ़ थी और उसकी योग्य मनसबदारी प्रथा ने मुगल साम्राज्य का विस्तार किया । अकबर के सुधारों से मुगल साम्राज्य में स्थायित्व आया, परंतु फिरोज ने जो सुधार किये वे दूरदर्शिता और स्थायित्व से परे होने के कारण तुगलक राज्य के लिये घातक सिद्ध हुए । रक्त-पात और युद्ध से घबराने के कारण वह राज्य का कुशल रक्षक नहीं था । शासक के रूप में भी उसमें दोष थे । उसकी उदार, दयालु और क्षमाशीलता की नीति से लाभ उठाकर उसके अधीनस्थ पदाधिकारी भ्रष्टाचारी और बेईमान हो गये, सर्वत्र प्रशासकी प्रतिभा और योग्यता का अभाव हो गया । षड्यंत्रों का बाहुल्य हो गया, अपराधों की वृद्धि हो गयी, प्रशासन शिथिल हो गया और तुगलक साम्राज्य पतन की ओर अग्र-सर हो गया । ऐसी दशा में फिरोज को सल्तनत-काल का अकबर मानना तर्कहीन होगा ।

फिरोज के चरित्र, व्यक्तित्व एवं कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन निम्न-लिखित है:—

(१) **उदार, दयालु, क्षमाशील सुलतान**—फिरोजशाह एक बड़ा ही सहृदय, उदार और दयालु प्रकृति का, ईमानदार और सत्यप्रिय सुलतान था । वह अपने अमीरों, मलिकों और कर्मचारियों के साथ बड़ी ही उदारता और दयालुता का व्यवहार करता था । बर्नी के कथनानुसार दिल्ली के सिंहासन पर उसके समान उदार और दयालु सुलतान नहीं बैठा । छात्रवृत्तियों का प्रबंध, यात्रियों के लिये विभिन्न सुविधाओं का आयोजन, विद्वानों और धार्मिक व्यक्तियों लिये भोजन व्यवस्था, दान की व्यवस्था आदि से उसकी उदारता व दानशीलता का ज्ञान होता है । वह अत्यन्त ही क्षमाशील सुलतान भी था । वह किसी की पीड़ा और दुःख को सहन नहीं कर सकता था । फिरोज इतना अधिक क्षमाशील था कि वह अपराधियों और कुपात्रों को भी क्षमा कर देता था । उसकी इस क्षमाशीलता का कुप्रभाव पड़ा । अनेकों ने उसकी कृपा, दयालुता और उदारता का दुरुपयोग किया और अपने स्वार्थ सिद्धि में संलग्न हो गये । यहां यह

भी स्मरण रखना होगा कि उसकी उदारता, दया, कृपा और क्षमाशीलता सीमित थे। हिन्दुओं और गैर सुन्नी मुसलमानों के साथ उसने संकीर्णता, असहिष्णुता, अनुदारता, निर्ममता व कठोरता का व्यवहार किया। जहां धार्मिक बात हो जाती वहां उसकी अनुकम्पा, क्षमाशीलता, उदारता, दयालुता और नैतिकता विलुप्त हो जाती थी। वह भगोड़े कायर सैनिकों, राजद्रोहियों, अभियुक्तों, बेईमान और भ्रष्ट कर्मचारियों को क्षमा कर सकता था, परन्तु हिन्दुओं और महदवियों का वध करने में संकोच नहीं करता था। लोगों के भारी से भारी अपराध क्षमा कर देने से, उनके दोषों (रिश्वत लेने) को प्रोत्साहित करने से, भ्रष्टाचार और अनैतिकता को पी जाने से फिरोज ने प्रशासन को भ्रष्ट और शिथिल बना दिया। उसकी उदारता व क्षमाशीलता इतनी अधिक बढ़ जाती थी कि उसका व्यक्तित्व प्रभाव शून्य हो जाता था।

प्रजाहितैषी शासक—सुलतान फिरोज ने प्रशासकीय सुधार किये। इससे उसे प्रजा-पालक सुलतान कहा गया है। उसने प्रजा को अनेक करों से मुक्त कर उसे संतुष्ट किया। सिंचाई के साधनों में वृद्धि, कृषि को प्रोत्साहन व उसमें उन्नति के प्रयत्न, दुर्भिक्षों से रक्षा, मदरसों व मकतबों की स्थापना, विद्वानों को राज्याश्रय, शिक्षा की प्रगति और साहित्य के विकास के लिये प्रशंसनीय प्रयास, निःशुल्क औषधालय की स्थापना, दान विभाग की व्यवस्था, बेरोजगारों को काम दिलाने के प्रयत्न आदि फिरोज के प्रजा कल्याण के कार्य हैं। उसके इन कार्यों से कृषि, वाणिज्य और उद्योगों में प्रगति हुई, वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होने से, उनकी बाहुल्यता से भावों में कमी आ गयी, सस्ताई हो गयी और जनता पहिले की अपेक्षा अधिक सुखी हो गयी। उसकी योजनाओं तथा सुधारों से प्रजा सुखी हो गयी और वह शांतिपूर्वक रहने लगी। सर्वत्र धन-धान्य की प्रचुरता हो गयी।

अपनी दीन-हीन दरिद्र जनता के लिये सुलतान ने श्लाघनीय कार्य किये। उसने सभी वर्गों के लोगों को संतुष्ट करने का प्रयास किया। उसने राजकर्मचारी, सैनिक, ऊँचे अधिकारी, अमीर, मलिक, व्यापारी, उलमा सभी को प्रसन्न और सन्तुष्ट करने के प्रयास किये। उसने ऐसी नीति अपनायी जिससे सभी वर्ग संतुष्ट रहें। इससे वह शांतिपूर्वक राज्य कर सका। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि उसकी प्रजाहित की भावना धर्मांधता के कारण संकीर्ण होती थी। उसने मुस्लिम जनता के लिये जितने अधिक हित के काम किये, उतने किसी अन्य सुलतान ने नहीं किये। उपरोक्त कार्यों से ही उसे प्रजा पालक और अच्छा महान शासक नहीं माना जा सकता। उसके शासन की दुर्व्यवस्थाओं से, अदूरदर्शिता से साम्राज्य का विघटन हुआ। उसके शासन में कई बड़े दोष थे, जैसे जागीर प्रथा दासप्रथा, धार्मिक असहिष्णुता, अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार आदि।

महान निर्माता और साहित्यानुरागी—सुलतान फिरोजशाह एक बड़ा निर्माता था। उसने अनेक उपवन, नगर, मसजिद, भवन, चिकित्सालय, पाठशालाएँ, सरायें, नहरें आदि का निर्माण किया। प्राचीन भवनों और मसजिदों का जीर्णोद्धार किया। उसके बसाये हुए नगर फिरोजाबाद, जौनपुर, फतेहाबाद आदि आज भी विद्यमान हैं। दिल्ली सुलतानों में फिरोज सार्वजनिक निर्माण कार्य के क्षेत्र में अग्रणी

माना जाता है। फिरोज शिक्षा और साहित्य में भी विशेष अभिरुचि रखता था। उसने अनेक मकतबों और मदरसों (महाविद्यालयों) की स्थापना की। वहां के विद्यार्थियों और विद्वान प्राचार्यों को वृत्तियां दीं, आर्थिक सहायता दी। उसने विद्वानों और साहित्यकारों को अपने यहां राज्याश्रय दिया। फिरोज के राजकीय संरक्षण में अनेक ग्रंथों की रचना हुई और कई ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद हुआ।

धर्मनिष्ठ सुलतान—फिरोज पवित्र और नेक मुसलमान था। वह कुरान और शरियत के अनुसार धार्मिक विद्वानों का परामर्श लेकर कार्य करता था। वह प्राय: वही कार्य करता था जिससे उलमा-वर्ग संतुष्ट हो जाय। परन्तु वह हिन्दुओं और शिया मुसलमानों तथा सूफियों के प्रति असहिष्णु और अनुदार था। उसने अपनी अन्यायपूर्ण और विवेकहीन धार्मिक नीति से बहुसंख्यक हिंदू जनता के धार्मिक विश्वासों, कर्मकांड और कार्यों में अधिक हस्तक्षेप किया। उसने अन्य धर्मावलम्बियों को मुसलमान बनाने के लिये राज्य को साधन बनाया। उसने अपने ग्रंथ में स्वयं लिखा है कि—

"मैंने अपनी काफिर प्रजा को पैगम्बर का धर्म अंगीकार करने के लिये प्रोत्साहित किया और घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति को, जो अपना धर्म छोड़कर मुसलमान हो जायगा, जजिया से मुक्त कर दिया जायगा। यह सूचना साधारण लोगों के कानों तक पहुँचा दी और बड़ी संख्या में हिन्दू उपस्थित हुए और उन्हें इस्लाम का सम्मान प्रदान किया गया।"

यद्यपि इस इस्लामी नीति से और संकीर्ण धर्मांधतापूर्ण विचारों से मुसलमानों और उलमा-वर्ग में फिरोजशाह की लोकप्रियता अत्यधिक बढ़ गयी, परन्तु उसके लिये सर्वसाधारण की सहानुभूति और सद्भावना समाप्त हो गयी और यह सल्तनत के लिये घातक सिद्ध हुआ। यह विडम्बना है कि जिन गुणों ने फिरोज को लोकप्रिय बनाया उन्हीं ने दिल्ली सल्तनत की दुर्बलताओं में वृद्धि कर उसके पतन के मार्ग को प्रशस्त किया।

क्या सुलतान फिरोजशाह तुग़लक श्रेष्ठ और आदर्श शासक था?

एक श्रेष्ठ और आदर्श शासक जन-हितैषी होता है। जनता के सभी वर्गों की समृद्धि और कल्याण के लिये वह कार्य करता है। वह न्यायप्रिय, निष्पक्ष, धर्मनिरपेक्ष, पवित्र, नेक शासक होता है जो अपनी प्रजा की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि विविध प्रकार की प्रगति व सम्पन्नता के लिये सतत प्रयत्न करता है। देश में आंतरिक शांति, कानून और व्यवस्था स्थापित करता है और विदेशी शत्रुओं व बाह्य आक्रमणों से देश की सुरक्षा करता है। यदि इन सिद्धान्तों की कसौटी पर फिरोजशाह को परखा जाय तो वह आदर्श और श्रेष्ठ सुलतान प्रतीत नहीं होगा। उसके कार्यों और चरित्र पर एक विहंगम आलोचनात्मक दृष्टि डालकर इस कथन की पुष्टि की जा सकती है।

(१) संकीर्ण सीमित प्रजाहित की भावना—मुस्लिम इतिहासकारों ने फिरोज को उदार, दयालु, दानी, क्षमाशील, ईमानदार, नेक, धर्मनिष्ठ एवं प्रजा का हितचिंतक सुलतान कहा है। उसके समकालीन इतिहास लेखक बर्नी तथा अफीफ ने उसे श्रेष्ठ

शासक कहा है। मुसलमान जनता उससे प्रसन्न थी और वह उसे एक धार्मिक तथा सदाचारी सुलतान समझती थी। फिरोज के समकालीन धर्मतंत्रवादी इतिहास लेखक बर्नी तथा अफीफ ने उसे आदर्श शासक कहा है। फिरोज के विषय में बर्नी ने लिखा है कि, "मुइजुद्दीन मुहम्मद-बिन-साम के समय से दिल्ली का कोई भी शासक इतना नम्र, दयालु, सत्यनिष्ठ और पवित्र आत्मा वाला नहीं हुआ।" शम्स-ए-सिराज अफीफ ने फिरोजशाह पर एक विस्तृत प्रशस्ति लिखी है और उसके गुणों व कार्यों का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा में किया है। तारीख-ए-मुबारकशाही के लेखक ने भी फिरोज की इस प्रशंसा की पुष्टि की है और लिखा है कि, "नो शेरखां के समय से दिल्ली का कोई बादशाह इतना न्यायप्रिय, कृपालु, उदार, धार्मिक तथा शानदार भवनों का प्रेमी नहीं हुआ।" परवर्ती इतिहासकारों ने फिरोज की इसी प्रशंसा को अपने-अपने ग्रंथों में दोहराया है और फलतः इतिहास मे फिरोज एक आदर्श मुस्लिम शासक के रूप में मान लिया गया।

इस उपरोक्त मत के प्रतिपादन का कारण यह है कि प्रथम बर्नी और अफीफ दोनों ही मुस्लिम इतिहासकार उल्मा वर्ग में से थे और फिरोज उल्मा वर्ग के लोगों को बड़े आदर और श्रद्धा से देखता था तथा वह उनके परामर्श से सब कार्य करता था। दूसरा कारण यह है कि फिरोज बड़ा धर्मनिष्ठ और शांत प्रकृति का व्यक्ति था तथा कुरान के नियमों का अक्षरशः पालन करता था। हिन्दुओं के प्रति वह असहिष्णु और अत्याचारी था। तत्कालीन उल्मा वर्ग के लोग और प्रबुद्ध मुस्लिम लोग इसी नीति के प्रशंसक और समर्थक थे। इसलिये वे फिरोज को श्रेष्ठ शासक मानते थे। तीसरा कारण यह है कि उसने प्रजा हित के कतिपय कार्य किये तथा जनता को सुख-शांति दी। उसने कृषि की उन्नति, सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि, राजस्व में सुधार, करों में कमी, मक्तबों व मदरसों का निर्माण, यातनाओं की समाप्ति, न्याय प्रणाली का सरलीकरण, गुप्तचर प्रथा की समाप्ति, अनेक उपवनों व नगरों की रचना कर, विद्वानों को अनुदान व विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर, दान-विभाग व रोजगार कार्यालय स्थापित कर जन-कल्याण के कार्य किये। उसने दहेज न दे सकने में असमर्थ मुसलमानों की पुत्रियों के विवाह का प्रबंध किया, निर्धनों की सहायता की, लोगों को दान दिये और एक विशाल चिकित्सालय स्थापित किया जिसमें रोगियों का निःशुल्क उपचार होता था। प्रजा की भौतिक समृद्धि के लिये उसने खूब परिश्रम और प्रयास किये। प्रशासन में वह अत्यधिक क्षमाशील, दानशील, उदार और दयालु था। इन सब बातों के कारण कुछ इतिहासकारों ने फिरोज को आदर्श सुलतान कहा है। पर यह मत पक्षपातपूर्ण है।

यदि फिरोज के अन्य कार्यों की ओर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उसकी प्रजाहित की भावना संकीर्ण और सीमित थी। उस पर धार्मिक पक्षपात, धर्मान्धता और कट्टरता का आवरण था। उसकी धर्मान्धता बहुधा आक्रमण का रूप धारण कर लेती थी। इससे गैर मुसलमानों पर अनेकानेक अत्याचार हुए। निर्धन व बेकारों के प्रति उसके किये गये प्रयत्न तथा उसके दान, अनुदान, वृत्तियां आदि मुसलमानों तक ही सीमित थे। उसकी उदारता और दानशीलता विवेकहीन थी,

उसकी दयालुता विचारहीन थी। उसके इन गुणों और कार्यों से जनता के सभी वर्गों का हित नहीं हुआ। वह केवल मुसलमान प्रजा और राज कर्मचारियों के लिये ही वरदान रहा। उसने मुस्लिम जनता का जितना हित और उपकार किया, उतना किसी अन्य सुलतान ने नहीं किया।

(२) **अयोग्य और असफल शासक**—शासक के रूप में फिरोज असफल रहा। फिरोज के द्वारा प्रचलित जागीर प्रथा, दासों की संख्या में वृद्धि और उनके लिये अलग विभाग, भ्रष्ट राज कर्मचारियों को प्रोत्साहन, राज पदों को वंशानुगत बनाने की नीति, आदि कार्यों ने तुगलक राज्य की जड़ें खोखली कर दीं। फिरोज में पूर्ववर्ती सुलतानों की अपेक्षा बहुत कम प्रशासकीय योग्यता और रचनात्मक प्रतिभा थी। उसे कतिपय सुधारों का श्रेय देने पर भी, उसमें ऐसी कोई भी प्रशंसनीय विशिष्टताएँ दृष्टिगोचर नहीं होती हैं जिससे कि वह श्रेष्ठ शासक प्रमाणित किया जा सके। उसने ऊंचे-ऊंचे पदों पर ऐसे ही व्यक्ति पदोन्नत किये जिनमें दृढ़ता, योग्यता व दक्षता का नितांत अभाव था। पैतृक नियुक्ति का सिद्धान्त लागू कर फिरोज ने प्रशासकीय दक्षता की अवहेलना कर दी। उसने दंड व्यवस्था को सरल बनाकर तथा अपराधियों को क्षमा करके अपराधों को प्रोत्साहित किया। राज कर्मचारी पालक के रूप में फिरोज अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती समस्त शासकों से आगे बढ़ जाता है। राज कर्मचारियों को उनके जघन्य अपराधों के लिये क्षमा कर देना, उनके साथ अत्यधिक दयालुता का व्यवहार करना, उनके दोषों और उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करना, (सैनिक अधिकारी को घूस दिलवाने का प्रयास और चांदी के शाह गिन्नी नामक सिक्कों में खोट को प्रोत्साहित करने के प्रयास), प्रशासन पर नियंत्रण कम कर देना, आदि फिरोज के कार्यों से राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। गबन, भ्रष्टाचार और बेईमानी में वृद्धि हुई और प्रशासन शिथिल हो गया, उनकी दक्षता क्षीण हो गयी। शासकीय दक्षता की उपेक्षा से तथा अविवेकपूर्ण उदारता और क्षमाशीलता से शासन का उत्साह, सम्मान तथा भय नष्ट हो गया। गुप्तचर प्रथा का अन्त कर फिरोज ने अमीरों और मलिकों को इतना उद्दंड बना दिया था कि वे राजाज्ञा की भी उपेक्षा करने लगे थे। उसके द्वारा प्रचलित जागीर प्रथा ने राज-शक्ति के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ राज्य के अन्तर्गत राज्य स्थापित कर दिया। महत्वाकांक्षी मलिकों और राजद्रोही सरदारों व अमीरों ने विद्रोह के झंडे खड़े कर दिये और अपनी शक्ति के प्रदर्शन में असमर्थ केन्द्रीय सत्ता की उपेक्षा प्रारम्भ कर दी। इससे तुगलक राज्य के पतन में शीघ्रता आ गयी। अपने उत्तराधिकारी के प्रश्न को भी फिरोज समुचित रूप से हल नहीं कर सका। वह एक अकुशल शासक था। उसके सुधार मुस्लिम राजनीति को सुदृढ़ बनाने तथा हिन्दुओं का विश्वास प्राप्त करने में असफल रहे। जो कुछ भी सफलता व लोकप्रियता उसे प्राप्त हुई थी, वह उसके विश्वस्त अधिकारियों की राजभक्ति, जागरूकता तथा चतुरता के कारण हुई थी। फिरोज ने तो अपने कार्यों से सुल्तान की शक्ति को खोखला कर दिया। उसकी नीति व कार्य दिल्ली सल्तनत के लिये घातक सिद्ध हुए।

(३) **सैनिक प्रतिभा का अभाव और दूषित सैनिक संगठन**—फिरोज में सैनिक प्रतिभा, योग्यता, साहस और वीरता का नितान्त अभाव था। वह तो आन्तरिक विद्रोहों को कुचलने में भी असमर्थ था। यह उसके सौभाग्य की बात थी कि उसके शासन-काल में कोई विशेष उल्लेखनीय आन्तरिक विद्रोह नहीं हुए और न विदेशी आक्रमण। अपने पूर्ववर्ती शासक के समय स्वतंत्र हुए प्रांतोय राज्यों को पुनः दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत लेने के लिये उसने युद्ध-स्तर पर प्रयास किये, पर वह उनमें पूर्णतया असफल रहा। राजभक्ति से विमुख प्रांतीय स्वतंत्र शासकों और अमीरों पर वह केन्द्रीय सत्ता का प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सका। उस समय उत्तरी भारत के समस्त प्रदेश मुस्लिम अमीरों और मलिकों के अधीन थे। ये फिरोज की इस्लाम-प्रिय नीति से बहुत ही संतुष्ट थे। इसलिये उन्होंने फिरोज के विरुद्ध प्रांतीय विद्रोह नहीं किये। राजस्थान तथा दक्षिण भारत में विस्तृत सशक्त हिन्दू राज्य थे जिनके विरुद्ध आक्रमण करने का साहस और शक्ति फिरोज में नहीं थी।

फिरोज के दोषपूर्ण सैनिक अभियान, युद्ध और रक्तपात से घृणा की नीति उसकी मानसिक और सैनिक दुर्बलता के बड़े द्योतक हैं। मुसलमानों के रक्तपात के भय से बंगाल में उपलब्ध विजय को ठुकरा देना उसकी महान मूर्खता है। संकट-कालीन क्षणों में विजय के सन्निकट होने पर भी उसकी कायरतापूर्ण हिचक ने उसे असम्मानपूर्वक पीछे हटने और शत्रु से स्थायी संधि करने के लिये विवश कर दिया। उसने दक्षिण को भी स्वतंत्र हो जाने दिया और दो असफल अभियानों के बाद उसने बंगाल पर भी केन्द्रीय अधिपत्य स्थापित करने का विचार त्याग दिया। सिंध में थट्टा के आक्रमण के समय उसकी सेना का छै माह तक लावारिस बालक की भांति कच्छ में भटकते रहना, उसकी अदूरदर्शिता और कुशल व्यवस्था के अभाव को प्रगट करता है। प्रशासकीय व्यवस्था करने की और देश की सुरक्षा करने की—दोनों प्रकार की योग्यता का अभाव फिरोज में था। सेना पर आश्रित सल्तनत का संचालन करने की प्रतिभा फिरोज में नहीं थी। शांति-काल में वह अवश्य सफल हो गया और मुहम्मद तुगलक से त्रस्त राज्य में उसने शांति स्थापित कर दी, पर युद्धकाल में वह नितान्त असफल रहा। उसमें सैनिक कुशलता व दक्षता नहीं थी।

फिरोज का सैनिक प्रबंध भी दोषपूर्ण था। सैनिक सेवाओं को पैतृकता के आधार पर या वंशानुगत नियम पर संगठित कर देने से सैनिकों और उनके अधिकारियों में जागीर प्रथा और भ्रष्टाचार प्रारंभ कर देने से सेना दुर्बल, पंगु, अयोग्य, और व्यवस्थाहीन हो गयी, वह अकर्मण्य बन गयी। सैनिक सेवा से वंचित लोग राज्य के प्रति असहानुभूति और विद्रोह के भाव प्रदर्शित करने लगे। इस प्रकार सेनापति के रूप में फिरोज का स्थान अत्यन्त निम्न स्तर पर है। न तो उसने अपनी सल्तनत की सीमाओं में कोई वृद्धि की और न वह अपने साम्राज्य को संगठित और व्यवस्थित रख सका। यदि उसके प्रधान मंत्री खान-ए-जहां मकबूल में सैन्य प्रतिभा और प्रशासकीय योग्यता नहीं होती तो उसका परिणाम सुलतान के लिये विनाशात्मक होता।

धर्मांध अनुदार और असहिष्णु सुलतान—फिरोज तुगलक धर्मनिरपेक्ष, पक्षपात विहीन सुलतान नहीं था। उसने इस्लाम धर्म को शासन व्यवस्था और राजनीति का मुख्य आधार बनाया। राज्य के इस धर्मतंत्रवादी रूप से राज्य की दक्षता पर कुप्रभाव डाला। फिरोज शासन में कुरान के धार्मिक सिद्धांतों का प्रयोग करता था। वह धार्मिक प्रवृत्ति का शासक होने से राजकार्य में उलमाओं से परामर्श और सहायता लेता था। वह उलमाओं के हाथ की कठपुतली था। इससे राजनीति कौर प्रशासन में उलमाओं का प्रभाव बढ़ गया। उलमाओं ने धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओं पर अत्याचार करवाने मे कोई कसर नहीं रखी। फिरोज ने इस्लाम के प्रचार के लिये राजकीय साधन अपनाये। खुल्लमखुल्ला हिन्दुओं को इस्लाम अंगीकार करने के लिये दबाया गया, उन्हें प्रलोभन दिये गये। इस्लाम अपनाने वालों को अनेक राजकीय पद और सुविधाएँ दी गयीं। इस्लाम ग्रहण न करने वालों को मौत के घाट उतार दिया जाता था। सुलतान फिरोज के जगन्नाथपुरी, नगरकोट और जाजनगर के आक्रमणों का उद्देश्य हिन्दुओं का विनाश और इस्लाम का प्रचार था। वहाँ के मंदिरों को लूटा गया व तोड़ा गया और मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा गया; एवं मन्दिरों के स्थानों पर मसजिदें बनायी गयीं। मन्दिर में पूजा के लिये एकत्रित हिन्दुओं का वध करवा दिया गया और इस्लाम अंगीकार न करने पर राजमहल के सामने एक ब्राह्मण को जीवित जला दिया गया। हिन्दुओं पर जजिया लगाया गया और फ़िरोज ही प्रथम सुलतान था जिसने ब्राह्मणों पर भी जजिया लगाया। हिन्दुओं के साथ-साथ शिया मुसलमानों और सूफियों के साथ भी फिरोज का व्यवहार अनुदार और असहिष्णु था। वह धार्मिक भेदभाव कर उनको भी दंडित करता था। इस प्रकार फिरोज धार्मिक पक्षपाती, अनुदार, असहिष्णु और अत्याचारी था। फिरोज की नीति में धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता के विष के बीज निहित थे। आर्थिक, धार्मिक तथा सैनिक नीति में भी उसने राज्य के हितों की अवहेलना कर कट्टरपंथी धार्मिक नीति का अनुकरण किया। यह दिल्ली सल्तनत के लिये घातक हो गया।

फिरोज की इस धार्मिक और साम्प्रदायिक नीति के समर्थन में यह कहा जाता है कि मध्य युग में धार्मिक असहिष्णुता और धर्मांधता का बाहुल्य था। उस युग में फिरोज के लिये यह संभव नहीं था कि वह अकबर के समान ऊँचा उठकर हिन्दुओं और मुसलमानों में समन्वय स्थापित करे। यदि फिरोज में वास्तविक सच्चे रूप में प्रजा-कल्याण और निष्पक्षता की भावना होती, तो वह धर्मनिरपेक्ष राज्य स्थापित कर अकबर का अग्रणी बन सकता था।

(५) **दुर्बल चरित्र**—फिरोज नेक, धर्मनिष्ठ, दयालु, उदार और ईश्वर से डरने वाला शासक अवश्य था। परन्तु उसमें चारित्रिक दुर्बलताएं भी थीं। उसमें अनुशासन और दृढ़ निश्चय की भावना का अभाव था। अनिश्चित इच्छाशक्ति और कायरता उसके स्वभाव की विशेषता थी। वह उलमाओं का इतना अधिक अंधानुकरण करता था कि उसे उचित और अनुचित का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था, धर्म-अधर्म का भास नहीं होता था। वह इतना अधिक क्षमाशील और उदार हो गया था कि उसका व्यक्तित्व प्रभावहीन व शून्य हो गया था। अन्य सुलतानो के समान वह भी

विलासी और व्यसनी था और अपनी निम्न वासनाओं की पूर्ति में संलग्न रहता था। मद्यपान का व्यसन उसमें इतना अधिक था कि इस व्यसन से उसका मानस तथा हृदय अत्यधिक दुर्बल हो गया था। एक बार तो फिरोज के प्रधानमंत्री खान-ए-जहां मकबूल ने एक सैनिक अभियान के मध्य में उसे बिस्तर पर सुरापान के प्याले छिपाये हुए, सुरा के नशे में अर्द्ध-नग्न अवस्था में देखा था।

फिरोज की ऊपर वर्णित नीतिओं और कार्यों से तुगलक सल्तनत को गहरा आघात लगा और उससे सल्तनत का पतन अवश्यम्भावी हो गया। उसकी दुर्बल नीतियों के कारण सल्तनत के पतन के लिये वह भी उत्तरदायी है। इसी पृष्ठभूमि में वह आदर्श और श्रेष्ठ सुलतान नहीं माना जा सकता। वह न तो योग्य सेनानायक था और न ही कठोर तथा दूरदर्शी प्रबंधक।

यह सत्य है कि मुहम्मद तुगलक की नीति से संतप्त जनता को फिरोज के शासनकाल में समृद्धि प्राप्त हुई, मितव्ययता, व्यापार की वृद्धि तथा कृषि की उन्नति से राज्य की आय में वृद्धि हुई, सुधारों से देश में शांति और व्यवस्था आ गयी, पर यह शांति और व्यवस्था क्षणिक थी, स्थायी नहीं। थोड़े समय पश्चात् ही फिरोज की नीति और कार्यों ने ऐसी अव्यवस्था उत्पन्न की, जिससे तुगलक राज्य विशृंखलित हो गया। तुगलक साम्राज्य के विनाश के बीज फिरोजके शासन-कालमें बोये जाचुके थे और उसके निकम्मे तथा अयोग्य उत्तराधिकारियों के शासन में यह साम्राज्य विघटित हो गया।

सारांश

फिरोजशाह तुगलक का प्रारंभिक जीवन—सुलतान अलाउद्दीन ने भारत में बाहर से आये तीन भाइयों—गयासुद्दीन तुगलक, रजब और अबूबकर को अपनी सेना में नौकर रख लिया। गयासुद्दीन तुगलक ने आतङ्क और सैनिक अभियान के बल पर भट्टी राजपूत रणमल की लावण्यमयी कन्या का विवाह अपने भाई सिपह-सालार रजब से करवा दिया। फिरोज इसी राजपूत कन्या और रजब का पुत्र था। गयासुद्दीन और मुहम्मद तुगलक के शासन काल में फिरोज को ऊंचे राजकीय पदों पर रहकर सुलतान की सेवा करने के अवसर प्राप्त हुए। अनेक शासकीय पदों पर रहकर फिरोज ने प्रशासन का अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था।

फिरोज का सिंहासनारोहण—मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद सरदारों, अमीरों और अधिकारियों ने परिस्थितियों की विषमताओं को देखकर फिरोज से सुलतान बनने का निवेदन किया। मुहम्मद तुगलक की बहिन खुदाबन्द जादा का पुत्र सुलतान पद के लिये अयोग्य और अक्षम था। सुलतान मुहम्मद के कोई पुत्र भी नहीं था। इसलिये फिरोज अमीरों के अनुरोध पर सुलतान बन गया। मुहम्मद के वजीर ख्वाजाजहां ने एक अवयस्क बालक को मुहम्मद का पुत्र घोषित कर उसे सुलतान बना दिया। पर फिरोज के दिल्ली पहुँचने पर उसे सिंहासनाच्युत कर दिया गया और ख्वाजाजहां को उसकी जागीर समाना में भेज दिया, पर मार्ग में ही उसका वध कर दिया गया। कुछ इतिहासकारों का यह मत कि फिरोज ने वास्तविक उत्तराधिकारी को अलग कर तुगलक राज्य का अपहरण किया, मिथ्या और भ्रम-मूलक है।

फिरोजशाह तुगलक का लक्ष्य—सुलतान बनने पर फिरोज ने अपना लक्ष्य निर्धारित किया—राज्य की सुरक्षा करना और प्रजाहित के कार्य करना। वह अपने आप को खुदा के बन्दों का संरक्षक मानता था। वह उलमा वर्ग के परामर्श से कुरान के अनुसार कार्य करता था, इसलिये उसने दिल्ली सल्तनत को इस्लामप्रधान राज्य बना दिया। वह युद्ध नहीं, शांति का समर्थक था।

फिरोजशाह की प्रारंभिक समस्याएं और उनका निराकरण—सुलतान बनने के बाद ही फिरोज को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा जैसे, राज्य में कानून और शांति व्यवस्था जर्जरित हो गयी थी राज्य में और सीमांत क्षेत्रों में विद्रोह हो रहे थे, प्रान्तपति स्वतंत्र शासक हो गये थे। अमीरों और उलमाओं में घोर असन्तोष था। निरन्तर अपव्यव और विभिन्न योजनाओं के कारण आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी और राजकोष रिक्त हो गया था।

फिरोज ने समस्याओं के निराकरण के लिये अनेक कार्य किये, जैसे उसने अमीरों और अधिकारियों का समर्थन और राजभक्ति प्राप्त करने के लिये अपने सहायकों व समर्थक अमीरों को ऊंचे पदों पर नियुक्त किया और मलिक मकबूल को अपना नायब वजीर नियुक्त किया। मुहम्मद तुगलक के अन्य उत्तराधिकारियों का अंत करने के लिये उसने मुहम्मद तुगलक के तथाकथित पुत्र को मरवा दिया और खुदाबन्द जादा के आलसी अयोग्य पुत्र को शक्तिहीन कर दिया। उसने अनेकों को राजकोष से प्राप्त धन के ऋण से मुक्त कर दिया। उसने उन सभी लोगों को, जिन्हें मुहम्मद तुगलक के शासन काल में किसी प्रकार से क्षति पहुँची थी या जो असन्तुष्ट हो गये थे, धन देकर फिरोज ने अपने पक्ष में कर लिया। सल्तनत पर अपने अधिकार को सुदृढ़ करने के लिये खलीफा से नियुक्ति पत्र प्राप्त कर लिया और मुद्राओं पर अपना और खलीफा का नाम साथ-साथ अंकित कर दिया। उसने शेखों, मुल्ला और मौलवियों का समर्थन प्राप्त करने के लिये उन्हें जागीरें दीं और उनके परामर्श व आदेशों का पालन करना प्रारंभ कर दिया। उसने सर्वसाधारण को अपने पक्ष में करने के लिये सार्वजनिक हित के अनेक कार्य प्रारंभ कर दिये, जैसे दीन-दुखियों के लिये खैरात की व्यवस्था, करों की कमी, निःशुल्क चिकित्सालय, मदरसों व मकतबों की स्थापना, अनुदान आदि।

फिरोज की वैदेशिक नीति और विजय अभियान—फिरोज तुगलक साहसी सैनिक और वीर योद्धा नहीं था, उसमें न तो सामरिक प्रतिभा थी और न साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा ही। वह युद्ध व रक्तपात से घृणा करता था। वह शांति व संधि का इच्छुक था। इसलिये उसकी वैदेशिक नीति कायर, दब्बू, दुर्बल और असफल रही और उसके सैनिक अभियान व युद्ध भी असफल रहे। फिरोज के अभियान और आक्रमण निम्नलिखित थे:—

बंगाल पर आक्रमण—बंगाल के स्वतंत्र होने पर पुनः उसे दिल्ली के अधिपत्य में करने के लिये फिरोज ने बंगाल पर दो बार आक्रमण किये। उसने प्रथम आक्रमण बंगाल के स्वतंत्र शासक इलियासशाह पर सन् १३५३-५४ में किया और इलियासशाह को दुर्ग में घेर लिया। फिरोज को विजय प्राप्त होने वाली ही थी कि,

किले में घिरी सेना की पराजय की संभावना से किले की स्त्रियां चीखने और रोने लगीं। इन्हें सुनते ही फिरोज ने युद्ध बद करवा दिया और बंगाल को पूर्ण विजय किये बिना ही वह दिल्ली लौट आया। दूसरा आक्रमण उसने सन् १३५९ में किया और बंगाल के तत्कालीन स्वतंत्र शासक सिकन्दर को दुर्ग में घेर लिया। विजय की आशा न रहने पर सिकन्दर ने फिरोज से भेंट देकर मैत्री संधि कर ली और फिरोज ने बंगाल की स्वतंत्रता मान ली। फिरोज की दुर्बल नीति के कारण बंगाल सल्तनत की अधीनता से मुक्त रहा।

जाजनगर की विजय (सन् १३६०)—बंगाल से लौटते समय फिरोज ने उड़ीसा में जाजनगर के राय पर आक्रमण किया और जगन्नाथपुरी के प्रसिद्ध मंदिर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, और धार्मिक अत्याचार किये। अन्त में राय और फिरोज में संधि हो गयी जिसके अनुसार राय ने प्रति वर्ष कर के रूप में कुछ हाथी फिरोज को भेजने का वचन दिया।

नगरकोट की विजय (सन् १३६०)—मुहम्मद तुगलक के शासन के उत्तरार्द्ध में कांगड़ा क्षेत्र का नगरकोट राज्य स्वतंत्र हो गया था। उसे पुनः अधीन करने के लिये और नगरकोट के ज्वालामुखी देवी के मंदिर को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये फिरोज ने नगरकोट पर आक्रमण किया। छै माह दुर्ग में घिरे रहने पर वहां के राजा ने अन्त में फिरोज से संधि कर ली और कर देने का वचन दिया। इस अभियान व दुर्ग के घेरे के समय ज्वालामुखी देवी का मंदिर लूट लिया गया था और उसकी मूर्तियां विध्वंस कर दी गयी थीं।

थट्टा विजय (१३६२-६३)—थट्टा विजय फिरोज का मूर्खतापूर्ण अभियान माना गया है। मुहम्मद तुगलक की मृत्यु थट्टा में विद्रोह का दमन करते हुई थी। इसका बदला लेने के लिये फिरोज ने सिंध पर आक्रमण किया। सिंध के शासक ने सुरक्षा के लिये दुर्ग में जाकर मोर्चाबंदी कर ली। सुलतान ने उसे घेर लिया। दुर्भिक्ष और महामारी के कारण फिरोज अपनी सेना को सिंध से हटाकर गुजरात ले गया। कच्छ की मरुभूमि में उसे अधिक हानि उठानी पड़ी। खाद्यान्न के अभाव में और महामारी के प्रकोप की तीव्रता से उसके अनेक सैनिक मर गये। अन्त में गुजरात में पुनः सेना का संगठन करके और दिल्ली से कुमुक मँगवाकर उसने फिर थट्टा पर आक्रमण कर दिया। दिल्ली से आई सेना ने भी उसकी सहायता की। भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में फिरोज ने सिंध के शासक जामा के साथ संधि कर ली और ढाई वर्ष के अभियान के बाद दिल्ली लौट आया।

दक्षिण भारत के प्रति फिरोज की नीति—दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र हुए दक्षिण के विजयनगर और बहमनी राज्यों को पुनः जीतकर दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित करने के लिये फिरोज ने कोई अभियान नहीं किये। इनके लिये वह अयोग्य और अक्षम था।

विद्रोह का दमन—फिरोज ने सन् १३७७ में इटावा में और सन् १३८० में कटहर में हुए हिन्दुओं के विद्रोहों को निर्ममता से कुचल दिया। सहस्रों हिन्दुओं की हत्या करवा दी गयी और २३००० व्यक्तियों को दास बना लिया गया।

फिरोज की विदेशी नीति के परिणाम—फिरोज की विदेशी नीति भीरु, दुर्बल और निकम्मी थी। कायरता, धर्मभीरुता और चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण उसने अपनी उपलब्ध विजयों को भी खो दिया, इससे साम्राज्य और सुलतान की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। सल्तनत छिन्न-भिन्न होने लगी और दक्षिण में उसकी सीमा विंध्य पर्वत तक ही सीमित हो गयी।

फिरोज का शासन प्रबन्ध

फिरोज के शासन प्रबन्ध के लक्ष्य—फिरोज के प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता का हित करना, तथा प्रजा के सुख एवं समृद्धि के लिये कार्य करना था। पर फिरोज प्रशासन के कार्य उल्माओं के परामर्श से इस्लाम के अनुसार करता था। उसके प्रशासकीय सुधार अल्पसंख्यक मुसलमानों के लिये हितकर हुए, बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिये वे हानिकारक और कष्टदायक हुए। गैर मुसलमानों पर उसने कठोर प्रतिबन्ध लगाये। इससे उसके सुधार स्थायी नहीं हो सके और उसका प्रशासन भी दृढ़ नहीं हो सका। फिरोज के शासन प्रबन्ध में उसके नायब वजीर मलिक मकबूल खानजहां ने अपने अनुभव और प्रशासकीय प्रतिभा से फिरोज को खूब योगदान दिया। फिरोज की प्रशासकीय सफलता का श्रेय मकबूल को है। फिरोज के प्रशासकीय सुधार निम्नलिखित थेः—

(१) पीड़ितों व दुखियों की सहायता और क्षति पूर्ति—मुहम्मद तुगलक के शासन में प्रपीड़ित व्यक्तियों की उसने क्षति-पूर्ति की, अंग-भंग का दंड पाने वालों को उसने उपहार दिये। मुहम्मद द्वारा जिनकी भूमि या संपत्ति छीन ली गयी थी, उन्हें वह लौटा दी गयी। अनेकों को उसने राजकीय ऋण से मुक्त कर दिया। इससे फिरोज को प्रजा का विश्वास और समर्थन प्राप्त हो गया।

(२) कर व्यवस्था में सुधार—फिरोज ने कर प्रणाली में सुधार किये। उसने २३ अवांछनीय कष्टदायक करों को समाप्त कर दिया। उसने इस्लाम धर्म द्वारा अनुमोदित चार कर—जकात, खिराज, जजिया और खम्स ही लगाये। जकात मुसलमानों पर लगाया जाता था और इसकी आय धार्मिक कार्यों पर व्यय होती थी। उसने खिराज (भूमिकर) के निर्धारण और वसूली पर विशेष ध्यान दिया। विभिन्न क्षेत्रों में भूमि का निरीक्षण करके भूमि-कर निश्चित किया गया। कृषि भूमि पर भूसत्वों की जांच की गयी। प्रांतपतियों को भूमि-कर की धन राशि भी निश्चित कर दी गयी। इस प्रकार से राज्य को भूमि-कर से प्राप्त होने वाली आय निर्दिष्ट और स्पष्ट हो गयी। जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया गया और यह निर्ममता से वसूल किया जाता था। युद्ध के समय लूटे हुए धन को खम्स कहते थे। इस लूटे हुए धन का वितरण फ़िरोज ने इस्लाम के नियमों के अनुसार कर दिया। उसने इस धन का $\frac{1}{5}$ भाग राजकोष के लिये और $\frac{4}{5}$ भाग सैनिकों के लिये निर्दिष्ट कर दिया। इन करों के अतिरिक्त उसने सिंचाई कर भी लगाया जो उपज का दस प्रतिशत होता था। कर वसूली में प्रजा को पीड़ित करने वाले अधिकारी को दंडित किये जाने के आदेश दे दिये गये थे।

कृषि को प्रोत्साहन—फिरोज ने कृषकों को श्रेष्ठ बीज बोने के लिये प्रोत्साहित किया। सिंचाई की वृद्धि के लिये अनेक नहरों का निर्माण किया। उसने सतलज और यमुना नदी से नहरें निकालीं और इनकी देखभाल के लिये अधिकारी नियुक्त किये। इन नहरों से अधिक फसलें होने लगीं, उपज में वृद्धि हुई और राज्य की आय बढ़ी। कृषकों को आर्थिक सहायता दी गयी। राजस्व विभाग को व्यवस्थित करने के लिये उसने सक्षम अधिकारियों को नियुक्त किया।

उद्यान—फिरोज ने लगभग १२०० उद्यान लगवाये और अलाउद्दीन के समय के तीस उद्यानों को पुनः व्यवस्थित किया। इनमें कई प्रकार के फलों व अंगूरों की उपज होती थी जिससे राज्य की आय में वृद्धि हुई।

कारखाने और उद्योग-व्यवसाय—फिरोज ने ३६ नवीन कारखाने स्थापित किये जिनमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण होता था। इन कारखानों में राजमहलों और राजकीय उपयोग में आने वाली वस्तुओं का, दरियों व गलीचों का निर्माण होता था। प्रत्येक कारखाना एक उच्च श्रेणी के मलिक के अधीन था। प्रत्येक कारखाने में अनेक श्रमिक, शिल्पी और हिसाब किताब के लिये गणक होते थे।

नवीन सिक्के—फिरोज ने निर्धन व्यक्तियों के लिये विनिमय की सुविधा के लिये अद्धा और लिख नामक छोटे सिक्के प्रसारित किये। पर उसके शासन काल में राजकीय टकसाल में समुचित व्यवस्था नहीं थी। उसमें भ्रष्टाचार, धोखेबाजी और चोरी का बाहुल्य था।

फिरोज की आर्थिक नीति और उसके परिणाम—फिरोज ने जनहित में आर्थिक नीति अपनाई। करों में कमी, कृषि को प्रोत्साहन, सिंचाई में वृद्धि, नहरों का निर्माण, कल कारखानों और उद्योग व्यवसायों में वृद्धि आदि से राज्य और जनता की आय में वृद्धि हुई। उद्योग-व्यापार और व्यवसायों में उन्नति हुई। वस्तुओं के मूल्य कम हो गये। दैनिक उपयोग की वस्तुएँ अधिक सस्ती और सुलभ हो गयीं। इससे प्रजा सुखी व समृद्ध हो गयी। जजिया कर से राज्य की आय में वृद्धि अवश्य हो गयी परन्तु इससे दिल्ली सल्तनत संकीर्ण और साम्प्रदायिक अधिक बन गयी।

सार्वजनिक हित तथा जन-कल्याण के कार्य—फिरोज की धर्मनिष्ठा, उदारता और दयालुता ने सार्वजनिक कल्याण के अनेक कार्य करने के लिये उसे प्रोत्साहित किया। उसने व्यवसायहीन बेरोजगारों को रोजगार दिलाने के लिये आधुनिक रोजगार कार्यालय के समान एक अलग विभाग स्थापित किया। शिक्षित लोगों को कारखानोंमें लगाया जाता था। अनेकों को अमीरों और सामन्तोंके यहां दास रखा गया और उन्हें विभिन्न प्रकार के काम दिये गये। दरिद्र निस्सहाय मुसलमानों की सहायता के लिये और उनकी वयस्क कन्याओं के विवाह के लिये दीवान-ए-खैरात विभाग स्थापित किया गया जहां से आर्थिक सहायता के लिये अनुदान मिलता था। राजधानी दिल्ली में एक विशाल शफाखाना स्थापित किया गया जहां रोगियों को मुफ्त औषधियां और भोजन भी मिलता था। तीर्थयात्रियों और पर्यटकों के लिये दो सौ सरायें बनवायी गयीं और डेढ़ सौ कुए खुदवाये गये।

न्याय व्यवस्था और दंड विधान—फिरोज ने न्याय-व्यवस्था इस्लाम धर्म पर आश्रित की। न्याय में कुरान और शरियत का कठोरता से पालन किया जाने लगा। न्याय विभाग और धर्म विभाग के सभी पद शेखों, सैयदों, मौलवियों और मुल्लाओं को ही दिये गये। न्यायालयों में मुफ्ती कानून की व्याख्या करते थे और उसके अनुसार काजी अपराधियों को दंड देते थे। फिरोज ने कठोर दंड, अंग भंग या मृत्यु दंड या नृशंस यातनाएं बन्द करवा दीं। इस उदार दंड नीति से राजकीय भय व आतंक जाता रहा और अपराधों में वृद्धि हो गयी।

सार्वजनिक निर्माण कार्य—फिरोज को भवन निर्माण कला में विशेष अभिरुचि थी। प्राचीन भवनों, मसजिदों और मकबरों के जीर्णोद्धार करने तथा नवीन भवनों और नगरों के निर्माण के लिये फिरोज ने अनेक शिल्पी, श्रमिक और उनके ऊपर योग्य अधिकारी नियुक्त किये। उसने सुलतान मुइजुद्दीन की मसजिद तथा इल्तुतमिश और अलाउद्दीन द्वारा निर्मित तालाबों की एवं सुलतानों के जर्जर मकबरों की मरम्मत करवायी। उसने अनेक कुएँ, बांध, मदरसे, राजप्रासाद, सरायें, मसजिदें, औषधालय, मकबरे आदि निर्माण किये तथा फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर, हिसार, फिरोजपुर आदि नगर बसाये। उसने पुराने बीस बगीचों का जीर्णोद्धार किया और १२०० नये उद्यान लगवाये।

शिक्षा और साहित्य की उन्नति— फिरोज ने विद्यानुरागी होने से कई मकतब और मदरसे स्थापित किये तथा इनके लिये अनुदान दिये। मकतब व मदरसों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति और अध्यापकों को वेतन राज्य की ओर से दिया जाता था। फिरोज ने अपनी राजसभा में विद्वानों कवियों लेखकों को राज्याश्रय दिया। वह उन्हें भेंट, उपहार, पुरस्कार, दान, वृत्तियाँ आदि देता था। फ़िरोज के राज्याश्रय में अनेक विद्वानों ने धार्मिक ग्रंथ लिखे। बर्नी और अफीफ ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथ उसके संरक्षण में ही लिखे। संगीतज्ञों को भी राजसभा में संरक्षण प्राप्त था।

राजसभा—यद्यपि फिरोज सादगी पसन्द सुलतान था, पर उसने अपने राजमहलों और राजसभा के वैभव को बनाये रखा। उसकी राजसभा तड़क-भड़क और शान-शौकत के लिये प्रसिद्ध थी। वह राजसभा में ईद और शबरात जैसे अनेक त्योहारों को बड़े धूमधाम से मनाता था।

सामन्तों के प्रति उदार नीति—अमीरों और मलिकों को फिरोज ने कई प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया था। उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। उन्हें गुप्तचरों की कठोरता से भी मुक्त कर दिया। अनेक सामन्तों को उसने जागीरें और भत्ते दिये। पूर्ववर्ती सुलतानों के समय उन्हें जो क्षति पहुँचाई गयी थी, उसे धन देकर पूरा कर दिया गया। फिरोज द्वारा जागीर प्रथा का पुनः प्रचलन करना हानिकारक हुआ। अमीर और मलिक इतने अधिक बलशाली हो गये कि वे बाद में सुलतान के विरुद्ध विद्रोह और षड़यंत्र करने लगे और प्रजा पर अत्याचार भी। कुछ तो दिल्ली से स्वतंत्र होकर अपने स्वयं का राज्य स्थापित करने लगे।

दास प्रथा—फिरोज के शासन-काल में दासों की संख्या बढ़कर एक लाख अस्सी हजार हो गयी। इनमें से अनेक युद्ध के बंदी थे। राज्य के प्रत्येक भाग से फिरोज के पास सुन्दर और योग्य गुलाम भेजे जाते थे। सुलतान के राजभवन में ही चालीस सहस्र दास थे। अनेक दासों को वह मलिकों व अमीरों के पास भेज देता था। कई दासों के योग्य होने पर अनेक पदों पर भी नियुक्त किया गया था। इनके भरण-पोषण का भार राज्य शासन पर था। इसलिये राज्य का अत्यधिक धन इन दासों पर व्यय होता था। ये दास षड़यंत्रों व कुचक्रों में संलग्न रहते थे। दिल्ली सल्तनत पर इसका कुप्रभाव गिरा।

दूषित सैन्य व्यवस्था—फिरोज में सैन्य संगठन और सुधार की क्षमता नहीं थी। इसलिये उसने सैनिक नियम, अनुशासन और प्रतिबंध ढीले कर दिये और अपना सैनिक संगठन सामन्ती प्रथा पर बनाया। उसके अधिकांश सैनिक अमीरों व प्रान्तपतियों द्वारा भेजे जाते थे। सेना में स्थायी, अस्थायी और भाड़े के सैनिक रहते थे। स्थायी सैनिकों को जागरें थीं, और अस्थायी को वेतन दिया जाता था। उसने सेना में एवजी का नियम लागू कर दिया। इसके अनुसार वृद्ध, अक्षम सैनिक अपनी एवजी में पुत्र दामाद या दास किसी को भी भेज सकता था। इससे सैनिक सेवा वंश परम्परागत बन गयी, सेना दुर्बल हो गयी। सैनिकों में उत्तरदायित्व और अनुशासन की भावना नहीं रही। सेना का अधिकांश भाग प्रांतपतियों और सामन्तों का होने से सेना पर अमीरों का नियंत्रण व संरक्षण था। इससे सुलतान अमीरों की कठपुतली हो गया था। फिरोज युद्ध व रक्तपात से घृणा करता था। इससे सेना में सैनिक शिक्षा और युद्ध के अभ्यास का अभाव हो गया था।

संकीर्ण धार्मिक नीति—फिरोज के शासन का आधार इस्लामी, धार्मिक और साम्प्रदायिक था। वह प्रशासकीय कार्यों में शेखों, मौलवियों और मुल्लाओं का परामर्श लेता था और उनके आदेशों का पालन करता था। इससे उल्मा वर्ग के इन लोगों ने प्रशासन और राजनीति में गहरा हस्तक्षेप किया। इसका प्रभाव बुरा हुआ। फिरोज में धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता आ गयी।

हिन्दुओं के प्रति कट्टरता और असहिष्णुता की नीति—उल्माओं के कुप्रभाव से फिरोज ने हिन्दुओं व हिन्दू धर्म का दमन करना और मूर्ति पूजा का नाश करना अपना कर्तव्य समझा। उसने प्रलोभन, दण्ड और बल के द्वारा अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बना डाला। हिन्दुओं के राज्यों पर भी उसने आक्रमण किये, हिन्दुओं को कत्ल कर दिया, उनके भवनों, मन्दिरों और मूर्तियों को विध्वंस कर दिया। उसने हिन्दुओं के धार्मिक मेलों और समारोहों पर, नये मन्दिरों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगा दिये। उसने हिन्दुओं पर विशेषकर ब्राह्मणों पर भी जजिया लगाया और उसे निर्ममता से वसूल किया। फिरोज अपनी इस धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता और पक्षपात की नीति से राज्य में सभी वर्गों की सद्भावना और सहयोग प्राप्त नहीं कर सका। इससे उसके प्रशासन में शिथिलता आ गई।

फिरोज का देहावसान—वृद्धावस्था में फिरोज के अंतिम दिनों में उसके उत्तराधिकार के लिये षड़यन्त्र, संघर्ष और खींचतान हुई। पर अन्त में उसने अपने पुत्र तुगलक शाह को शासन का भार सौंप दिया। इसके कुछ ही समय पश्चात् अस्सी वर्ष की आयु में सन् १३८८ में उसका देहावसान हो गया।

फिरोज का मूल्यांकन

बर्नी, अफीफ, एल्फिस्टन ने फिरोज की बहुत प्रशंसा की है। एल्फिस्टन ने फिरोज को सल्तनत काल का अकबर कहा है। फिरोज ने कृषि, शिक्षा साहित्य की प्रगति की, राजस्व में सुधार किये, दान व रोजगार में वृद्धि की, कई भवन व उद्यान लगवाये तथा राज्य व जनता के हित में अनेक कार्य किये। परन्तु इन्हीं कार्यों से उसे अकबर सा श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। क्योंकि फिरोज में सभी धर्मों व संप्रदायों के प्रति सद्भावना नहीं थी और न उसमें अकबर सा विशाल उदार हृदय और न समन्वय की भावना थी। उसने धर्म को राजनीति का आधार बना दिया था। उसका सैन्य संगठन भी जागीरदारी प्रथा और वंशानुगत पद की दूषित नीति पर आधारित था। उसने साम्राज्य विस्तार भी नहीं किया। अकबर के सुधारों से मुगल साम्राज्य में स्थायित्व आया, पर फिरोज के प्रशासकीय सुधार तुगलक राज्य के लिए घातक हुए। फिरोज का प्रशासन भ्रष्ट व शिथिल था।

फिरोज उदार, दयालु व क्षमाशील सुलतान था—बर्नी के अनुसार दिल्लीके सिंहासन पर उसके समान उदार, दयालु और क्षमाशील सुल्तान नहीं बैठा। वह किसी की पीड़ा और दुःखों को सहन नहीं कर सकता था। पर हिन्दुओं के लिये उसकी क्षमाशीलता, उदारता, नैतिकता नहीं थी।

वह प्रजा हितैषी शासक था—उसने प्रजा को अनेक करों से मुक्त किया, सिंचाई की वृद्धि की, कृषि को प्रोत्साहित किया, कई मदरसे और मकतब स्थापित किये, शिक्षा और साहित्य का विकास किया, औषधालय, दान विभाग और रोजगार विभाग भी स्थापित किये। उसके इन सुधारों से कृषि व व्यापार की उन्नति हुई। वस्तुएँ सस्ती हो गईं, उनका बाहुल्य हो गया और जनता अधिक सुखी हो गई। पर उसके प्रशासन में कई बड़े दोष भी थे, जैसे जागीर प्रथा, दास प्रथा, धार्मिक असहिष्णुता, सेना में अनुशासनहीनता, प्रशासकीय भ्रष्टाचार आदि।

फिरोज महान निर्माता और साहित्य अनुरागी सुलतान भी था। उसने अनेक प्राचीन भवनों व मसजिदों का जीर्णोद्धार किया और अनेक नई मसजिदें, औषधालय, भवन, सरायें, पाठशालाएं, नहरें आदि निर्माण किये। उसने फिरोजाबाद, जौनपुर, फतेहाबाद, हिसार आदि नगर बसाये। उसने अनेक विद्यार्थियों और आचार्यों को आर्थिक सहायता दी तथा अनेक विद्वानों और साहित्यकारों को राज्याश्रय दिया।

फिरोज नेक, पवित्र और धर्मनिष्ठ सुलतान था। वह कुरान और शरियत के अनुसार उल्माओं के परामर्श से कार्य करता था। पर हिन्दुओं, शिया मुसलमानों और सूफियोंके प्रति वह धर्मान्ध, असहिष्णु और अनुदार था। उसने अनेकों हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने के लिये राज्य के साधनों का उपयोग किया। इसलिये फिरोज सर्वसाधारण की सद्भावना और सहानुभूति खो चुका था।

क्या फिरोज तुगलक श्रेष्ठ और आदर्श शासक था ? फिरोज के अनेक प्रजाहित के कार्यों से उसके द्वारा स्थापित आन्तरिक कानून व शान्ति व्यवस्था से कुछ विद्वानों ने फिरोज को श्रेष्ठ और आदर्श सुलतान कहा है। पर यह भ्रममूलक है। क्योंकि फिरोज में संकीर्ण सीमित प्रजाहित की भावना थी। उस पर धार्मिक पक्षपात, धर्मांधता और कट्टरता का आवरण था। उसकी उदारता और दानशीलता-व क्षमाशीलता मुसलमानों तक ही सीमित थी। उसने सभी वर्गों का हित नहीं किया। वह सुयोग्य और सफल शासक भी नहीं था। क्योंकि उसकी जागीरदारी प्रथा, दासों की वृद्धि, भ्रष्ट कर्मचारियों को प्रोत्साहन, राजपदों व सैनिक पदों को वंशानुगत बनाने की नीति, सेना के दूषित संगठन, दण्ड-व्यवस्था में शिथिलता, अपराधियों को क्षमा-नीति, गबन, भ्रष्टाचार व बेईमानी को प्रोत्साहन आदि ने तुगलक राज्य की नींव खोखली कर दी। इसके अतिरिक्त फिरोज में सैनिक प्रतिभा, योग्यता, साहस और वीरता का नितांत अभाव था। न तो उसने सफल सैनिक अभियान और आक्रमण ही किये और न साम्राज्य का विस्तार ही। प्रशासकीय व्यवस्था और देश की सुरक्षा करने की योग्यता का अभाव फिरोज में था। उसका चरित्र भी दुर्बल था। उसमें अनुशासन और दृढ़ निश्चय की भावना का अभाव था। अनिश्चित इच्छा शक्ति और कायरता उसके स्वभाव की विशेषता थी। उसका व्यक्तित्व प्रभावशून्य था। निम्न वासनाओं की पूर्ति और मद्यपान में भी वह संलग्न रहता था। इसलिए फिरोज न तो एक श्रेष्ठ आदर्श सुल्तान था और न एक सुयोग्य सफल शासक ही।

फिरोज का शासन प्रबंध

प्रशासन के उद्देश्य—(१) जनहित, सुख समृद्धि की वृद्धि, (२) उल्माओं का प्राधान्य, (३) हिन्दू विरोधी नीति, (४) वजीर मकबूल का सहयोग।

प्रशासन का उज्ज्वल पक्ष	प्रशासन का अंधकार पक्ष
१. पीड़ितों, दुखियों की क्षति पूर्ति।	१. जागीर प्रथा का प्रचलन, कुप्रभाव।
२. कर-व्यवस्था। जकात, खिराज, जजिया, खम्स, सिचाई कर।	२. दास प्रथा, बुरे परिणाम।
३. कृषि को प्रोत्साहन, नहरों का निर्माण, उपज व आय की वृद्धि।	३. दूषित सैन्य व्यवस्था, वंशानुगत प्रथा।
४. उद्यानों का निर्माण, आय-वृद्धि।	४. संकीर्ण धार्मिक नीति, उल्माओं की प्रधानता, हिन्दू विरोधी नीति।
५. कारखाने, उद्योग-व्यवसाय।	५. उसकी नीतियों व कार्यों के दुष्परिणाम।
६. नवीन सिक्के अद्धा, बिख।	६. भ्रष्टाचार, घूसखोरी को प्रोत्साहन।
७. जन-कल्याण के कार्य, रोजगार व्यवस्था, दीवान-ए-खैरात, निःशुल्क चिकित्सालय, यात्रियों को सहायता सुविधाएँ।	
८. न्याय-व्यवस्था, दंड विधान।	
९. निर्माण कार्य, भवन, नगर।	
१०. शिक्षा व साहित्य को प्रोत्साहन।	

अध्याय २१

तुगलक साम्राज्य का विघटन और तैमूर का आक्रमण

फिरोज तुगलक के उत्तराधिकारी इतने निर्बल और अयोग्य थे कि वे जर्जरित तुगलक साम्राज्य को दृढ़ न कर सके और उसका शीघ्र ही पतन हो गया। तैमूर के आक्रमण ने उसके पतन का कार्य और भी प्रशस्त कर दिया।

तुगलकशाह द्वितीय (सन् १३८८ से १३८९)—फिरोज के देहावसान के बाद उसके पुत्र फतेहखां का पुत्र तुगलकशाह, जिस पर सुलतान ने अपने अन्तिम समय में राज्य का भार सौंपा था, सुलतान बना। उसने गयासुद्दीन तुगलकशाह द्वितीय की उपाधि धारण की। वह अल्पवयस्क और अनुभवहीन था तथा विलासी प्रकृति का होने से उसका जीवन सुरा और सुन्दरी के हास-विलास का क्रीड़ास्थल बन गया। इससे वह प्रजा और अमीरों की श्रद्धा एवं आदर का पात्र न रहा। उसने शासन कार्यों की भी उपेक्षा कर दी। उसने फिरोज के द्वितीय पुत्र जफरखां के बेटे अबूबक्र को भी बन्दी बना लिया और अन्य अमीरों के प्रति भी दुर्व्यवहार किया। इससे असन्तुष्ट होकर १९ फरवरी सन् १३८९ को अमीरों ने उसकी हत्या करके अबूबक्र को सुलतान बनाया।

अबूबक्र (सन् १३८९-१३९०)—अबूबक्र ने सिंहासन प्राप्त करने के पश्चात् राज्य की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने का प्रयास किया। पर वह आन्तरिक षड्यंत्रों और गृहयुद्ध में अधिक फंस गया। फिरोज तुगलक के छोटे पुत्र मुहम्मद ने नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह की उपाधि धारण करके सुलतान बनना चाहा। इसलिये अबूबक्र और नासिरुद्दीन में गृहयुद्ध छिड़ गया। षड़यन्त्रों और गृहयुद्ध से अबूबक्र घबरा गया और अन्त में नासिरुद्दीन ने उसे परास्त कर बन्दी बना लिया और मेरठ में कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी।

नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह (१३९०-९४)—सुलतान बनते ही उसने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये प्रयत्न किये। उसने जफरखां को गुजरात पर अधिकार करने के लिये भेजा, तथा उसने स्वयं दोआब के हिन्दुओं के विद्रोहों का दमन किया। परन्तु वह भी अमीरों के आन्तरिक झगड़ों व षड़यन्त्रों से चैन की सांस न ले सका। हिन्दुओं के विरुद्ध भी लगातार युद्ध चलते रहे। अंत में सन् १३९४ में उसकी मृत्यु हो गयी।

मुहम्मदशाह (सन् १३९४-१४१२)—नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूं सुलतान बना पर वह अधिक समय तक जीवित न रह सका और उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई मुहम्मदशाह नासिरुद्दीन सुलतान बना। इसके शासन-काल में राजसभा षड़यन्त्रों और दलबन्दी का बड़ा अड्डा बन गया था। अमीरों और मलिकों के

चरित्र भ्रष्ट हो गये थे और राज्यभक्ति की भावना उनमें से विलुप्त हो गयी थी। सल्तनत के विभिन्न प्रांतों के प्रांतपति या सूबेदार स्वतन्त्र हो गये थे। ख्वाजाजहां ने जौनपुर जाकर अपना स्वतन्त्र शर्की राज्य स्थापित कर लिया। वह दिल्ली के पूर्वी क्षेत्रों का अधीश्वर बन गया। पश्चिमोत्तर क्षेत्र में भी दिपालपुर के हाकिम सारंगखां ने अपनी स्वतंत्र शक्ति स्थापित कर ली। गुजरात, खानदेश और मालवा के सूबेदार भी स्वतंत्र हो गये। पंजाब में खोखरों ने विद्रोह और उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। इसी बीच फिरोज के एक पौत्र नसरतखां (तुगलकशाह द्वितीय का छोटा बंधु) ने भी सुलतान बनने के लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिये। कुछ अमीरों ने उसे मेवात से फिरोजाबाद में बुलाकर सुलतान घोषित कर दिया। इस प्रकार तुगलक साम्राज्य के दो दावेदार एक ही साथ हुए और दोनों राज्य करने का दावा करने लगे। वास्तव में ये नाममात्र के सुलतान थे। वे तो मलिकों व अमीरों के हाथों की कठपुतली बने हुए थे और अमीर कुचक्रों और षड़यन्त्रों में संलग्न थे। ऐसी दशा में दिल्ली पर कभी मुहम्मदशाह के अमीरों का अधिकार हो जाता तो कभी नसरतखां के समर्थक अमीरों का अधिकार हो जाता था। इसी बीच तैमूर ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

तैमूर का आक्रमण सन् १३९८

तैमूर का प्रारम्भिक जीवन—तैमूर का जन्म सन् १३३६ में मध्य एशिया में ट्रांस आक्सियाना के केश नामक नगर में हुआ था। उसका पिता सरदार अमीर तुर्ग बारलस कबीले की गुरकन शाखा का प्रधान था। तैमूर प्रसिद्ध हाजी बरलस का भतीजा था। वह बाल्यकाल से ही बड़ा योग्य और प्रतिभाशाली था तथा उसमें सैनिक गुण विद्यमान थे। उसके पिता ने तैमूर की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की। शिक्षाकाल से ही उसकी रुचि अस्त-शस्त्र विद्या की ओर अधिक थी। चौदह वर्ष की आयु में वह घुड़सवारी तथा शस्त्र संचालन में निपुण हो गया था। पिता की मृत्यु के बाद वह कबीले का प्रधान बन गया। प्रारम्भ में वह एक छोटे से प्रदेश का शासक था परन्तु अपने अधिपति से अनबन हो जाने के कारण उसे अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। अपने स्वामी के क्रोध एवं सैनिकों से आत्मरक्षा के हेतु उसे स्थान-स्थान पर भटकना पड़ा। इसी समय जब शत्रु उसका पीछा कर रहे थे, तब भगदड़ और संघर्ष में उसकी एक टांग टूट गयी और वह लगड़ा हो गया। तभी से वह तैमूर लंग कहलाने लगा।

तैमूर की विजय और राज्य विस्तार—तैमूर बड़ा साहसी, वीर और महत्वाकांक्षी था। धीरे-धीरे उसने सन् १३६९ तक अपने शत्रुओं पर पूर्णविजय प्राप्त कर ली। इससे प्रभावित होकर सन् १३७० में तुर्क सरदारों ने उसे अपना नेता चुन लिया। इसके बाद उसे समरकन्द का सिंहासन प्राप्त हो गया और वह वहां का सुलतान बन गया। अब तैमूर के विशाल साम्राज्य का प्रारम्भ होता है। राज्यलोलुप महत्वाकांक्षी तैमूर ने मध्य एशिया के अनेक प्रदेशों को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसने ख्वारिज्म, मेसापोटामिया और ईरान (फारस) पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। वह अपनी कूटनीति, शौर्य और योग्यता से फारस और उसके

अधीन प्रदेशों का स्वामी बन बैठा। फारस के साम्राज्य से भारत दूर नहीं था। इसलिये उसने भारत पर विजय के लिये अपनी दृष्टि डाली। अब उसने भारत पर आक्रमण कर उसे विजय करने की योजना बनाई।

भारत पर तैमूर के आक्रमण के कारण—तैमूर ने अपनी आत्मकथा 'मलफू-जात-ए-तैमूरी, में भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है। उसने लिखा है कि, "भारत पर आक्रमण करने का मेरा उद्देश्य है पैगम्बर मुहम्मद साहित्र के काफिरों के विरुद्ध युद्ध करना (मुहम्मद साहब और उसके परिवार पर ईश्वर का आशीर्वाद और शांति रहे), (मेरा उद्देश्य है) देश (भारत) को बहुदेववाद और अंधविश्वास से मुक्त कर पवित्र करना तथा मंदिरों व मूर्तियों को विध्वंस करना, जिससे कि हम इस्लाम धर्म के बड़े समर्थक और सैनिक बन कर गाजी तथा मुजाहिद का पद प्राप्त करेंगे।" उसके आक्रमण के उद्देश्यों का समुचित विश्लेषण अधोलिखित है:—

(१) भारत की धन-सम्पन्नता और सुख-समृद्धि तथा तुगलककालीन अराजकता और अव्यवस्था की खबरें तैमूर तक पहुँच गयी थीं। वह अपने हित और साम्राज्य विस्तार में इस परिस्थिति का लाभ उठाना चाहता था। भारत की संपत्ति ने उसे आकर्षित किया और उसकी लूट में उसने अपना आर्थिक हित देखा। भारत की लूट के अपार धन से वह अपना रिक्त राजकोष भरना चाहता था जिससे कि वह सरलता से युद्ध कर अन्य राज्यों को अपने अधिकार में कर सके। तुगलक सल्तनत की लड़खड़ाती दुर्बल स्थिति ने उसे आक्रमण करने का अवसर दिया। उसकी धारणा थी कि उत्तरी भारत में व्याप्त अराजकता से उसको कोई कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा।

(२) तत्कालीन दुर्बल राजनैतिक स्थिति से लाभ उठा कर वह भारत को विजय कर अपने साम्राज्यका विस्तार करना चाहता था। वह अपनी साम्राज्य विस्तार वादी नीति का अनुसरण करना चाहता था।

(३) वह भारत में हिन्दुओं के विरुद्ध जिहाद कर, उनके मंदिरों व मूर्तियों को ध्वंस करक, इस्लाम का बलपूर्वक विस्तार करना चाहता था। इस प्रकार धार्मिक कार्य से वह गाजी और मुजाहिद का पद प्राप्त करना चाहता था।

(४) भारत को स्थायी रूप से अपने साम्राज्य में मिलाकर उस पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दीर्घकाल तक शासन करने का लक्ष्य तैमूर का नहीं था। राज्य निर्माण की अपेक्षा विधर्मियों का विनाश उसका एक प्रमुख लक्ष्य था।

(५) **तात्कालिक कारण**—तैमूर का पौत्र पीर मुहम्मद काबुल का सूबेदार था। भारत में (सिंध में) मुलतान के सूबेदार सारंगखाँ से उसका संघर्ष था। पीर मुहम्मद ने सारंगखाँ से वार्षिक कर की मांग की थी, जिसे सारंगखां ने ठुकरा दी थी। इस पर पीर मुहम्मद ने मुलतान पर आक्रमण किया और उसे घेर लिया। इस अभियान और युद्ध की सूचना पाकर तैमूर ९२,००० सैनिकों की एक विशाल सेना लेकर पीर मुहम्मद की सहायता के लिये भारत की ओर बढ़ गया।

तैमूर का भारत पर आक्रमण

लाहौर पर आक्रमण और विजय—तैमूर ने एक विशाल सेना लेकर हिन्दुकुश पर्वत श्रेणियों को पार करके, २४ सितम्बर सन् १३९८ को सिंध नदी पार की। अब उसने लाहौर पर आक्रमण कर दिया और वहां के सूबेदार मुबारकखां को परास्त कर दिया। उसके बाद वह चिनाब नदी तट पर पहुँचा जहां उसे पीर मुहम्मद की सेना मिल गयी। अब तैमूर अपनी और पीर मुहम्मद की संयुक्त सेना लेकर मार्ग के प्रदेशों को रौंदता और लूटता हुआ आगे बढ़ा।

तुलुम्बा, दिपालपुर और भटनेर की विजय और लूट—चिनाब नदी पार करके वह पास ही बसे खोखरों के नगर तुलुम्बा पहुँचा। यहां का नरेश यशरथ था। तैमूर ने उसे परास्त कर दिया और उससे दो लाख रुपये की मांग की। इस विजय के बाद तैमूर की सेना ने तुलुम्बा नगर को खूब लूटा।

तुलुम्बा से तैमूर दिपालपुर पहुँचा। यहां पहिले पीर मुहम्मद ने मुसाफिर काबुली नामक अपना एक अधिकारी नियुक्त कर दिया था। परन्तु दिपालपुर के लोगों ने उसका वध कर दिया। जब तैमूर वहां पहुँचा और इस प्रकार वध की खबर उसे प्राप्त हुई तो उसने वध करने वालों को दंड देना चाहा। पर वे सुरक्षा के लिये भाग कर भटनेर दुर्ग में चले गये थे। इससे तैमूर अत्यधिक आग बबूला हो गया और वह भटनेर पहुँचा।

भटनेर के राजपूत राय दुलचन्द ने तैमूर की विशाल सेनाका सामना किया पर वह परास्त कर दिया गया। राय ने तैमूर की अधीनता स्वीकार कर ली और उससे मैत्री-संधि की। इस पर तैमूर ने राय को स्वर्ण-जरी की वेशभूषा, जरीदार टोपी तथा स्वर्ण के मियान की एक तलवार भेंट की। इस बीच दिपालपुर की हत्या के अपराधियों को पकड़कर निर्ममता से दंडित किया गया। इससे भटनेर में युद्ध छिड़ गया। तैमूर के स्वयं के कथनानुसार भटनेर में हिन्दुओं का भयंकर कत्ले आम हुआ। दस सहस्र मनुष्य तलवारों से मौत के घाट उतार दिये गये और अनेक मंदिरों, मूर्तियों और भवनोंको लूटकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। इसमें तैमूरको अपार सम्पत्ति हाथ लगी।[1]

दिल्ली की ओर प्रस्थान—भटनेर विजय के बाद तैमूर सिरसुनीया सरस्वती नगर की ओर बढ़ा। उस पर सरलता से अधिकार करके उसे लूट लिया। इसके बाद वह समाना के समीप कैथल पहुँचा और उसे भी लूटा। अब वह पानीपत के मार्ग से दिल्ली की ओर बढ़ा और राजधानी से छै मील दूर फिरोजशाह द्वारा निर्मित जहनुमा

---

१. तैमूर ने भटनेर की जिहाद और लूट के विषय में अपनी आत्मकथा "मलफूजात-ए-तैमूरी" में लिखा है कि, "इस्लाम की तलवार काफिरों के रक्त से धोयी गयी और वह समस्त सामग्री एवं संग्रह, कोष, एवं अन्न, जो अनेक वर्षों से दुर्ग में जुटाये गये थे, मेरे सैनिकों की लूट का माल बन गया, उन्होंने मकानों में आग लगा दी और उनको भस्म कर दिया तथा भवनों एवं दुर्गों को उन्होंने भूमिसात कर दिया।"

नामक भव्य राजप्रासाद पर जा पहुँचा। यहां उसने एक लाख हिन्दुओं को जो विगत युद्धों में बन्दी बनाये गये थे, निर्ममता से कत्ल कर दिये। क्योंकि उसे यह भय था कि युद्ध के समय कहीं वे भागकर शत्रु से न जा मिलें। जिहाद के नाम पर की गयी इन नृशंस हत्याओं में एक मौलाना ने जिसने अपने जीवन में एक भेड़ तक नहीं मारी थी, पन्द्रह हिन्दुओं का वध कर दिया। तैमूर ने यह भी आदेश दिया था कि जो व्यक्ति इन बन्दी हिन्दुओं को मारने की आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, उन्हें भी कत्ल कर दिया जाय।

सुलतान मुहम्मद और तैमूर का युद्ध—तैमूर के आक्रमण पर दिल्ली के सुलतान मुहम्मदशाह ने दस सहस्र अश्वारोहियों, चालीस सहस्र पदाति और १२५ हाथियों की एक विशाल सेना संगठित की। तैमूर ने भी बड़ी कुशलता और सावधानी से अपनी सेना संगठित की। पीर मुहम्मद, जहांगीर, यादगार बरलस और अमीर जानशाह को युद्ध के लिये सेनाके विशेष अंग सौंपे गये। स्वयं तैमूर ने भी सेना का एक पार्श्व संभाला। दिल्ली के बाहर समीप ही तैमूर और मुहम्मद की सेना मे भयंकर युद्ध हुआ। तैमूर की सगठित सेना के आगे सुलतान की सेना ठहर न सकी और उसकी पराजय हुई। अपनी सुरक्षा के लिये मुहम्मद रणक्षेत्र से गुजरात की ओर भाग गया और उसका वजीर मल्लू इकबालबक्श बुलन्दशहर की ओर भाग गया। विजयी तैमूर ने दिल्ली नगर में बड़ी शान और धूमधाम से प्रवेश किया और दिल्ली दुर्ग पर अपना झडा लहरा दिया। स्वयं तैमूर ने फिरोज के मकबरे के पास अपना सैनिक शिविर लगाया और वहां हर्ष के आँसुओं से ईश्वर से प्रार्थना कर विजय के लिये ईश्वर को धन्यवाद दिया। दिल्ली के लब्ध प्रतिष्ठित नागरिकों, प्रसिद्ध उलमाओं और मौलवियों ने दिल्ली को न लूटने और दिल्ली निवासियों के साथ सद्व्यवहार करने की प्रार्थना की। तैमूर ने इसे प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया और अपनी सेना को खुलकर विजयोत्सव मनाने के आदेश दिये। परन्तु कुछ समय के पश्चात् व्यापारियों से धन वसूली के प्रश्न पर तैमूर के सैनिकों में और दिल्ली के व्यापारियों व निवासियों में संघर्ष हो गया और कुछ सैनिकों की हत्या कर दी गयी। इससे क्रुद्ध होकर तैमूर ने दिल्ली में कत्लेआम करवा दिया।

दिल्ली की लूट और कत्लेआम—विजय के बाद तैमूर पंद्रह दिन तक दिल्ली में रहा। इस अवधि में उसने दिल्लीवासियों पर अकथनीय बर्बर अत्याचार करके अपनी नृशंसता का परिचय दिया। उसने असंख्य निर्दोष दिल्लीवासियों के रक्त मे अपने हाथ रँगे। तैमूर ने स्वयं अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि, "मेरी समस्त सेना आवेश में आकर नगर पर टूट पड़ी और मारने तथा दास बनाने के अतिरिक्त उसने और कुछ नहीं किया।" तैमूर के सैनिकों ने दिल्ली में असीम कत्लेआम करके नगर में खून की होली खेलना प्रारंभ कर दिया। उनके नृशम नरसंहार और निर्मम लूट दुर्दैवग्रस्त दिल्ली के रक्तरंजित इतिहास की एक अत्यंत ही करुण और लोमहर्षक गाथा है। ऐसी विपत्ति दिल्ली में पहिले कभी नहीं आयी थी। तीन दिन तक तैमूर के सैनिक दिल्लीवासियों पर बर्बरतापूर्ण अत्याचार करते रहे। उन्होंने अनेक मकानों, भवनों और राजप्रासादों को लूटा और उन्हें जला दिया। इस लूट का वर्णन करते

हुए शर्फुद्दीन ने अपने ग्रंथ जफरनामा में लिखा है कि अनेक विधर्मी हिन्दू कत्ल कर दिये गये। हिन्दुओं के मुंडों से ऊँचे-ऊँचे टीले बना दिये गये जो मांसाहारी पशुओं के लिये आहार बन गये। सारे नगर को लूट कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। लूट की वस्तुओं में सब प्रकार के रत्नाभरण, लाल, हीरे, सभी प्रकार के पदार्थ एवं वस्त्र, सोने-चांदी के बर्तन, अलाई टंकों के रूप में अपार धनराशि, तथा अन्य अगणित मुद्राएँ थीं। अनेक स्त्री-पुरुष दास बना लिये गये। प्रत्येक सैनिक को बीस से अधिक आदमी दास रूप में मिले और बहुत से तो नगर में ५० और १०० तक पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों को दास बनाकर ले आये। बंदी बनायी गयी स्त्रियों में अधिकांश सोने-चांदी की पट्टियाँ, और आभूषण पहिने हुए थीं तथा पैरों में बहुमूल्य छल्ले धारण किये हुए थीं। तैमूर ने दिल्ली से अनेक चतुर कुशल शिल्पियों और कारीगरों को भी अपने शिविर में बन्दी बना कर रख लिया।

तैमूर का लौटना--दिल्ली की विजय और लूट के बाद तैमूर मेरठ और हरिद्वार की ओर बढ़ा। उसने मार्ग के गांवों को लूटा और कत्ले आम दुहराया। मेरठ के सूबेदार इलियास ने तैमूर का सामना किया। पर वह परास्त हो गया। तैमूर की आज्ञा से मेरठ नगर लूटकर, जलाकर श्मशान बना दिया गया। मेरठ से तैमूर हरिद्वार गया। यह हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान था। हरिद्वार में हिंदुओं ने डटकर तैमूर का प्रतिरोध किया और उसके विरुद्ध जेहाद-सा छेड़ दिया। पर सीमित संख्या में होने से अन्त में वे परास्त हो गये। पर हरिद्वार में भीषण संग्राम के बाद तैमूर को विजय प्राप्त हुई। अब हरिद्वार में तैमूर ने कत्लेआम का नग्न तांडव किया। हिंदुओं को चुन-चुन कर मारा गया, हरिद्वार के पवित्र गंगा के घाट पर गौ-हत्याएँ की गयीं, मन्दिरों और मूर्तियों को लूटकर विध्वंस किया गया और सहस्रों स्त्री-पुरुषों को दास बना लिया गया।

हरिद्वार के बाद तैमूर शिवालिक प्रदेश को जीतता हुआ जम्मू की ओर बढ़ा। वहाँ के हिन्दू शासक को परास्त कर उसे इस्लाम ग्रहण करने के लिये बाध्य किया। परिस्थितियों की भयावहता को देखकर काश्मीर के राजा ने तैमूर की अधीनता स्वीकार कर ली। पर खोखरों के एक सरदार शेखा ने लाहौर से आये हुए तैमूर के अधिकारी मौलाना अब्दुल सादुर और हिन्दू शाह खल्यानी के साथ कठोरता का व्यवहार किया। इससे तैमूर क्रुद्ध हो गया और शेखा को तैमूर का कोप-भाजन बनना पड़ा। इसके बाद तैमूर अपनी राजधानी समरकन्द लौट गया। जाते समय वह दिपालपुर, लाहौर और मुलतान को जागीर के रूप में खिज्रखां सैयद को दे गया। तैमूर ने खिज्रखां को अपने साम्राज्य के पंजाब क्षेत्र में अपना प्रतिनिधि शासक नियुक्त किया। खिज्रखां जीवन भर तैमूर को अपना अधीश्वर मानता रहा और भारत के सीमान्त क्षेत्र तथा पंजाब से वह तैमूर को प्रति वर्ष कर भेजता रहा।

आक्रमण से तैमूर को लाभ—तैमूर ने भारत पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की और अपने समरकन्द के साम्राज्य का पंजाब तक विस्तार कर दिया। इससे तैमूर की गणना विश्व के महान महत्वाकांक्षी विजेताओं में होने लगी। उसने इस्लाम का प्रचार

काफिरों के देश में किया। इससे तैमूर का राजनैतिक और धार्मिक महत्व अत्यधिक बढ़ गया।

उत्तरी भारत की, और विशेषकर दिल्ली की लूट से तैमूर को अपार धन, रत्न, बहुमूल्य सामग्री और दासों के रूप में सहस्रों स्त्री-पुरुष प्राप्त हुए। इससे तैमूर की आर्थिक समृद्धि अत्यधिक बढ़ गयी। भारत से तैमूर अनेक कुशल शिल्पियों को अपने साथ ले गया। समरकन्द पहुँचने पर तैमूर ने इन भारतीय शिल्पियों से अनेक भवन और प्रसिद्ध "मसजिद-ए-जामी" बनवायी। भारतीय शिल्पियों की भवन-निर्माण कला के ये उत्कृष्ट नमूने थे। उन्होंने अपनी कला, परिश्रम और स्वेद से समरकन्द को अधिक सुन्दर और आकर्षक बना दिया।

खिज्रखां द्वारा दिल्ली पर अधिकार—तैमूर के लौटने के बाद ही तुगलक सुलतान मुहम्मदशाह के प्रतिद्वन्द्वी नसरतखां ने दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। पर मल्लू इकबालखां ने शीघ्र ही उसे परास्त कर दिल्ली पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और गुजरात से अपने स्वामी सुलतान मुहम्मदशाह को बुला लिया। पर सारी शक्ति इकबालखां के हाथों में थी। सन् १४०५ में खिज्रखा ने मल्लू इकबालखाँ को परास्त कर दिया और युद्ध में वह मारा गया। अब मुहम्मद ने राज्यसत्ता पूर्ण रूप से अपने हाथों में ले ली। पर उसके विलासप्रिय और अस्थिर स्वभाव के होने से सल्तनत में अराजकता बढ़ती गयी। सन् १४१२ में मुहम्मद की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के साथ ही तुगलक वंश का सितारा डूब गया। इसके बाद दौलतखां दिल्ली का शासक बन गया, पर खिज्रखां ने उसे परास्त कर दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया और वहां नये सैयद राज्य की स्थापना की।

तैमूर के आक्रमण के प्रभाव

तैमूर के आक्रमण का भारत पर अधिक प्रभाव पड़ा। भारत के राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन हुए। तैमूर के आक्रमण के प्रभाव और उसका महत्व अधोलिखित है :—

राजनैतिक प्रभाव—भारत की राजनीति पर तैमूर के आक्रमण का प्रभाव तात्कालिक और दूरगामी भी पड़ा।

(१) तैमूर के वंशजों का उत्तरी भारत पर दावा और बाबर को प्रेरणा—तैमूर जाते समय खिज्रखां सैयद को भारत में अपने जीते हुए राज्यों का सर्वोच्च अधिकारी और प्रतिनिधि नियुक्त कर गया था। खिज्रखां तैमूर की समरकन्द की सत्ता को मानता रहा और पंजाब से वार्षिक कर देता रहा। तैमूर की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और खिज्रखां के उत्तराधिकारी ने तैमूर वंश के आधिपत्य से स्वतन्त्र होकर भारत में अपना अलग राज्य स्थापित कर लिया तथा समरकन्द से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। पर तैमूर के वंशज इसे नहीं मानते थे। वे यह नहीं भूले थे कि पंजाब उनके वंश के राज्य का एक प्रान्त था और उसे वे अपने अधिकार में रखने का दावा करते थे। उनकी दृष्टि पंजाब पर बनी रही। इसी से तैमूर के वंश वालों और खिज्रखां के उत्तराधिकारी सैयद वंश वालो और

लोदी वंश वालों में निरन्तर संघर्ष होता रहा। इससे पंजाब के विद्रोहियों को प्रोत्साहन मिलता था। लगभग सवा सौ वर्षों बाद बाबर ने पंजाब पर तैमूर वंश के दावे को दोहराकर भारत पर आक्रमण कर दिया। बाबर अपने को तैमूर वंश का मानता था और पंजाब उसी की विरासत समझता था। इसलिये उसने तैमूर के आक्रमण से प्रेरणा लेकर पंजाब को अपनी जायदाद समझकर भारत पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त कर मुगल साम्राज्य स्थापित किया।

(२) **तुगलक साम्राज्य का अन्त**—तैमूर के आक्रमण से लड़खड़ाता हुआ तुगलक साम्राज्य गिर पड़ा। तैमूर की चोट से उसकी अन्तिम सांस भी ठण्डी हो गयी। तैमूर ने ही तुगलक सुलतान को युद्ध में परास्त कर दिया था और बाद में तैमूर के प्रतिनिधि खिज्रखां ने मल्लूखां और दौलतखां को सन् १४१४ में परास्त कर तुगलक राज्य को सदा के लिये समाप्त कर अपने सैयद राज्य की नींव डाली। तैमूर के आक्रमण से तुगलक राज्य की सेना नष्ट हो गयी और लूट से राजकोष रिक्त हो गया।

(३) **स्वतन्त्र प्रान्तीय राज्यों का प्रादुर्भाव**—तुगलक सुलतान मुहम्मदशाह की अत्यधिक दुर्बलता, तैमूर के आक्रमण से व्याप्त अराजकता और अव्यवस्था का लाभ उठाकर अनेक प्रान्तीय सूबेदार और प्रतिनिधि शासक स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। तैमूर की मृत्यु ने भी इस विघटनकारी वृत्ति को प्रोत्साहन दिया। पंजाब और सिन्ध में खिज्रखां का स्वतन्त्र प्रभुत्व स्थापित हो गया। बयाना में शम्सखाँ ने अपनी स्वतन्त्र शक्ति स्थापित करली। ख्वाजाजहाँ ने जौनपुर में, दिलावरखां ने मालवा में और मुजफ्फर ने गुजरात में अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। दक्षिण भारत के बहमनी शासक ने भी सीधे तैमूर के साथ और बाद में शहरुख के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

(४) **केन्द्रीय सत्ता का अभाव तथा अराजकता**--भारत की राजनैतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गयी। सारा उत्तरी भारत छोटे-छोटे स्वतन्त्र प्रान्तीय राज्यों में विभक्त हो गया। इससे दृढ़ केन्द्रीय सत्ता नष्ट हो गयी और अशान्ति, अराजकता और कुव्यवस्था फैल गयी।

आर्थिक प्रभाव

तैमूर का आक्रमण भारत के लिये एक महान अभिशाप था जिसने भारत की अर्थ-व्यवस्था को झकझोर दिया।

(१) **निर्मम लूट और नृशंस हत्यायें तथा अपार जन-धन की हानि**—तैमूर के मार्ग में जो भी गांव व नगर पड़े वे निर्ममता से लूट लिये गये और वहाँ के निवासियों की नृशंसता से हत्याएँ कर दी गयीं तथा वहाँ के भवनों को जला दिया गया। मार्ग के लहलहाते खेतों की फसलों को नष्ट कर दिया। गांवों व समृद्धिशाली नगरों को लूटते, कत्ल करते हुए, जलाते और उजाड़ते हुए तैमूर द्रुतगति से आगे बढ़ता ही गया। दिल्ली में उसकी विध्वंस लीला ने सर्वत्र त्राहि-त्राहि कर दी। तैमूर ने दिल्ली को लूटा और विध्वंस ही नहीं किया, अपितु जो वह न ले जा सका उसे समाप्त कर

दिया। दिल्ली की गौरव-गरिमा और शान-शौकत नष्ट हो गयी। दिल्ली की दुर्दशा के विषय में कहा जाता है कि तैमूर की लूट और हत्याओं के बाद वहाँ कोई पक्षी भी अपना पङ्ख नहीं हिला सकता था। जन और धन की अत्यधिक हानि हुई।

(२) **कृषि और व्यापार की क्षति**—लूट, आगजनी और हत्याओं से, खड़ी फसलों को नष्ट कर देने से भारत में कृषि, व्यापार और उद्योग-व्यवसाय चौपट हो गये। इससे बहुत अधिक आर्थिक क्षति पहुँची, विशेषकर पंजाब को जो कि उसके आक्रमण का प्रमुख क्षेत्र था।

(३) **भयंकर दुर्भिक्ष, महामारी, दरिद्रता और कष्ट**—लूट, आगजनी से, कृषि व व्यापार के चौपट हो जाने से तैमूर के लौटने के बाद भयङ्कर दुर्भिक्ष और महामारी का तांडव नृत्य प्रारम्भ हो गया। अनेक रोगों और दुर्भिक्ष से सहस्रों पशु और मनुष्य काल कवलित हो गये। असंख्य व्यक्तियों ने क्षुधा से पीड़ित होकर अपने प्राण त्याग दिये। भयङ्कर दरिद्रता और कष्टों से लाखों व्यक्ति मर गये। बर्नी के शब्दों में "दिल्ली का सारा शहर उजड़ गया और जो लोग बच गये थे वे दुर्भिक्ष तथा महामारी से मर गये।" इन सब कारणों से आर्थिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी और इससे लोगों का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन अत्यधिक प्रभावित हुआ।

सामाजिक प्रभाव

तैमूर के आक्रमण से भारतीय समाज भी गहरे रूप से प्रभावित हुआ। लूट और हत्याओं से घर के घर वीरान और जन-शून्य हो गये, यहाँ तक कि अनेक घरों में कोई दीप जलाने वाला भी नहीं रहा। समाज में भय और आतङ्क छा गया। सामाजिक सुरक्षा, शान्ति और व्यवस्था नष्ट हो गयी। समाज में गहरा असन्तोष फैल गया। इनके निराकरण के लिये दिल्ली सुलतान और प्रान्तपति असमर्थ थे। इससे विद्रोहियों, उपद्रवियों और लुटेरों को प्रोत्साहन मिला।

समाज में तैमूर के आक्रमण का भय इतना अधिक फैल गया था कि भारतीय माताएँ अपने शिशुओं को तैमूर के नाम से डराने लगीं। सामाजिक सुरक्षा का अभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि हिन्दुओं ने अपनी कन्याओं के विवाह अल्पायु में ही करने प्रारम्भ कर दिये।

सांस्कृतिक प्रभाव

(१) **साहित्य व कला को प्रोत्साहन**—अप्रत्यक्ष रूप से भारत के विभिन्न प्रांतों में तैमूर के आक्रमण का अच्छा सांस्कृतिक प्रभाव गिरा। विभिन्न प्रांतों में जो स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये थे वे कला और साहित्य के केन्द्र बन गये। वहां के शासकों ने विभिन्न प्रकार की कलाकृतियों का निर्माण कराया। बहमनी राज्य, गुजरात, मालवा, खानदेश, जौनपुर, बंगाल आदि प्रांतों और राज्यों में ललित कलाओं की, विशेषकर भवन निर्माण कला की उन्नति हुई। इससे कला में नवीन प्रांतीय शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। स्थापत्य कला के साथ-साथ साहित्य की भी उन्नति हुई। बहमनी राज्य और जौनपुर साहित्य और कला के प्रमुख केन्द्र बन गये।

(२) **विदेशों में भारतीय कला और साहित्य** भारत के उच्च कोटि के कुशल कलाकार और शिल्पी समरकन्द ले जाये गये और वहां उन्होंने भारतीय कला के ढंग पर अनेक भवनों का निर्माण किया। इससे भारतीय कलाकारों का सम्मान विदेशों में बढ़ गया। तैमूर के आक्रमण और लूट के परिणामस्वरूप उच्च कोटि के भारतीय ग्रन्थ मध्य एशिया के देशों में, विशेषकर समरकन्द पहुँच गये। इन ग्रंथों का और भारतीय शिल्प-कला तथा चित्रकला का प्रभाव मध्य एशिया की ललित कलाओं पर पड़ा।

(३) **सांस्कृतिक आदान-प्रदान**—मध्य एशिया और भारत के लोगों में धीरे-धीरे आवागमन प्रारम्भ हुआ जो मुगल काल में अधिक बढ़ गया। इससे लोगों के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा कुछ अंशों तक प्रभावित हुए और कालान्तर में सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ।

(४) **हिन्दू मुस्लिम विद्वेष**—तैमूर ने अपने आक्रमण के समय महमूद गजनवी के काल के इतिहास की पुनरावृत्ति की। उसने पंजाब, भटनेर, दिल्ली, मेरठ, हरिद्वार आदि नगरों में लाखों हिन्दुओं को नृशंसता से मौत के घाट उतार दिया। अनेकानेक हिन्दुओं को तलवार और शक्ति के बल पर मुसलमान बनाया गया तथा असंख्य स्त्री-पुरुष और बच्चों को दास बना लिया गया। इससे हिन्दुओं में एक भयानक आन्तक फैल गया और वे इस्लाम और उसके अनुयायियों से अधिक घृणा करने लगे। फिरोज के कृत्यों से और उसकी धर्मांधता तथा धार्मिक असहिष्णुता की नीति से हिन्दुओं में इस्लाम के प्रति बड़ा क्षोभ था। तैमूर के बर्बर अत्याचारों और कुकृत्यों ने इसमें और भी अधिक वृद्धि कर दी। इससे हिन्दू-मुसलमानों में घटता हुआ विरोध पुनः उग्र हो गया और उनमें अधिक विद्वेष फैल गया।

तुगलक साम्राज्य के पतन के कारण

उत्थान और पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है। पर किसी साम्राज्य और राजवंश का उत्थान और पतन किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों और कारणों से होता है। तुगलक साम्राज्य और तुगलक राजवंश के पतन के विशिष्ट कारण थे।

तुगलक वंश ने सन् १३२० से १४१२ तक ९२ वर्ष तक राज्य किया। इसकी स्थापना गयासुद्दीन तुगलक ने की थी। मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में यह साम्राज्य चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया। पर मुहम्मद तुगलक के काल से ही इसका पतन भी प्रारंभ हो जाता है। फिरोज के शासन-काल में साम्राज्य की दशा और भी बिगड़ जाती है। फिरोज की दुर्बल नीति ने साम्राज्य को गहरा आघात पहुँचाया। फिरोज के उत्तराधिकारियों के शासन-काल में तो इस साम्राज्य का अन्त ही हो गया। इस प्रकार तुगलक साम्राज्य के पतन के दो प्रकार के कारण हैं, प्रथम विशिष्ट परिस्थितियां और कार्य, द्वितीय मुहम्मद तुगलक और फिरोज की नीतियां और उनका उत्तरदायित्व। अब इन कारणों का विश्लेषण किया जायगा।

विशिष्ट परिस्थितियां और कार्य

(१) **तुगलक साम्राज्य की विशालता**—तुगलक साम्राज्य अत्यंत विशाल हो गया था जो उत्तर में पंजाब और उत्तरी पश्चिमी सीमांत क्षेत्र से लेकर दक्षिण में

देवगिरी और और आधुनिक आंध्र प्रदेश तक, पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में गुजरात तक फैला हुआ था। ऐसे विशाल साम्राज्य के संचालन और नियंत्रण के लिये विशिष्ट प्रतिभा और योग्यता वाले सुलतान चाहिये थे, जो तुगलक वंश में नहीं थे। प्रतिभाशाली मुहम्मद तुगलक भी उसे पूर्ण रूप से संगठित बनाये रखने में असफल हुआ!

यदि मुहम्मद तुगलक अपनी विभिन्न योजनाओं से असफल रहा, तो फिरोज अपनी दुर्बल और कायर नीति व दयालुता से असफल रहा। उसके उत्तराधिकारी तो अत्यंत ही अयोग्य और निकम्मे थे।

उस युग में आवागमन के समुचित साधनों, द्रुतगामी वाहनों और सुरक्षित राजमार्गों का नितान्त अभाव था। इससे प्रांतपति स्वतंत्र होकर सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करते रहते थे और सुलतान इनको कुचलने में असमर्थ रहे। जब सुलतान दक्षिण में विद्रोह का दमन करने जाता था, तो उत्तर में विद्रोह होने लगते थे और जब वह उत्तर में आता था, तो दक्षिण के अधीनस्थ प्रांत विद्रोह कर स्वतंत्र हो जाते थे। राजधानी दिल्ली भी साम्राज्य के केन्द्र में स्थित न होने से साम्राज्य की सेना भी शीघ्र पैतरेबाजी से परेशान और क्लांत हो गयी थी। साम्राज्य की विशालता लाभ की अपेक्षा अधिक हानिकारक प्रमाणित हुई।

(२) **प्रजा की सद्‌भावना व सहयोग, श्रद्धा व राजभक्ति का अभाव**—तुगलक राजवंश ने राष्ट्रीय संगठन पर साम्राज्य निर्मित और संचालित नहीं किया। राज्य की बहुसंख्यक जनता के साथ जो हिन्दू थी, भेदभाव व पक्षपात का व्यवहार किया जाता था। उनके साथ न्याय नहीं हो पाता था। फिरोज की असहिष्णुता और धर्मान्धता से हिन्दू रुष्ट हो गये। फिरोज के प्रजा-हित के कार्यों का लाभ मुसलमानों को ही प्राप्त होता था, हिन्दुओं को नहीं। हिन्दुओं के साथ तो अत्याचार और अनाचार ही होते रहे। यही नहीं हिन्दुओं को शासन कार्यों में भाग लेने से सर्वथा वंचित रखा गया। प्रशासन में हिन्दुओं का बहिष्कार कर हिन्दुओं की उस प्रतिभा की उपेक्षा की गयी जिसका बाद में अकबर ने उपयोग किया। प्रशासन में हिन्दुओं को सम्मिलित न करने से तुगलक सुलतानों ने भारतीय जनता के एक बहुत बड़े अंश की सहानुभूति, सहयोग और राजभक्ति खो दी। फलतः तुगलक साम्राज्य प्रजा की सद्‌भावना, सहयोग, सहानुभूति, श्रद्धा और भक्ति पर आधारित नहीं था। ऐसा साम्राज्य दीर्घकाल तक स्थायी नहीं रह सकता था।

(३) **स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन**—तुगलक सुलतान निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक थे। ऐसा निरंकुश शासन दीर्घ काल तक नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन की सफलता और स्थायित्व के लिये निम्नलिखित बातों की आवश्यकता होती है—

(अ) उच्च कोटि के शासकों व नरेशों का होना जो प्रजा पर समुचित नियंत्रण रख सकें।

(ब) सम्यक रूप से शासन संचालन के लिये अत्यंत ही प्रतिभाशाली, प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला व सैनिक योग्यता सम्पन्न शासक का होना।

(स) कुशल, चतुर, अनुभवी और राजभक्त कर्मचारियों और पदाधिकारियों का होना।

(द) प्रजा का असीम सहयोग और सद्भावना, उसकी गहरी श्रद्धा और राजभक्ति का होना।

दुर्भाग्य से ये चारों तत्व तुगलकों के निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन में विद्यमान नहीं थे। तुगलक सुलतानों में इन गुणों का अभाव था, इसलिये उनके साम्राज्य में स्थायित्व नहीं आ सका। फिरोज के उत्तराधिकारी तो इतने निकम्मे, अयोग्य और शक्ति क्षीण हुए कि उन्होंने शासन को अत्यंत ही शिथिल और क्षतविक्षत कर पतन की ओर ढकेल दिया।

(४) **प्रांतीय सूबेदारों की कृतघ्नता**—तुगलक सम्राटों ने अपने समर्थक संबंधियों, अमीरों और सरदारों को अपार धन से पुरस्कृत कर, जागीरें देकर विभिन्न प्रांतों का सूबेदार नियुक्त किया था। पर ये प्रांतपति और सूबेदार तुगलक सुलतानों के प्रति न तो राजभक्त रहे और न उन्हें निरंतर सक्रिय सहयोग और सहायता ही दी। वे सुलतान की दुर्बलताओं और विषम परिस्थितियों का लाभ उठाकर सल्तनत के विरुद्ध ही विद्रोह करने में सक्रिय होते रहते थे। इससे साम्राज्य के विघटन को खूब प्रोत्साहन मिला।

(५) **अमीरों की स्वार्थलोलुपता**—तुगलक राजसभा और साम्राज्य में अनेक तुर्की, ईरानी, मध्य एशियाई विदेशी अमीर और सरदार थे। इन्हें बड़ी विस्तृत जागीरें दी गयी थीं और इन्हें राज्य के अनेक ऊंचे पदों पर नियुक्त किया गया था। सल्तनत के शासन-संचालन में इनका बहुत बड़ा अधिकार था। दिल्ली सल्तनत के प्रारंभ में ये इतने रणकुशल, कर्मठ, साहसी, वीर और शक्तिशाली थे कि वे बहुसंख्यक हिन्दू जनता को भी अपने नियंत्रण में रखते थे और सुलतान को भी सदा सहायता और सहयोग देते थे और राज्य की सुरक्षा के लिये सदा तत्पर रहते थे। परन्तु अब इन अमीरों और सरदारों में जातीय दंभ और विजेता का दर्प अधिक था। इससे वे अपनी जागीरों में जन साधारण के प्रति और सल्तनत की प्रजा के साथ, पराजित दासों के समान व्यवहार करते थे। प्रजा का शोषण, अत्याचार और अनाचार उनके शासन और व्यवहार की विशेषता थी। इससे शोषित प्रजा में सल्तनत के प्रति निरंतर तीव्र असन्तोष और विद्रोह की भावनाएँ वृद्धि पाती रहीं। इसके अतिरिक्त ये अमीर और सरदार इतने अधिक स्वार्थपरायण, धनलोलुप और महत्वाकांक्षी थे कि उन्होंने राजभक्ति और कर्तव्यपरायणता की ओर से आंखें मूंद ली थीं। यही नहीं, धीरे-धीरे वे पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, प्रतिद्वंद्विता के शिकार हो गये और राज्य विरोधी कार्यों में सक्रिय हो गये। वे धन की प्रचुरता और वैभव से इतने अधिक विलासी हो गये थे कि उनके पूर्व के गुण समाप्त हो गये और वे अधिक स्वार्थी और विश्वासघाती हो गये थे। राजसभा में वे सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र करते और प्रांतीय सूबेदार बनने पर वे स्वतंत्र होने का प्रयास करते थे।

(६) **दृढ़, संगठित और सुव्यवस्थित शासन का अभाव**—साम्राज्य की विशालता से, प्रांतपतियों के विद्रोह कर स्वतंत्र होने के प्रयत्नों से तथा महत्वाकांक्षी स्वार्थी

अमीरों और उच्च पदाधिकारियों की राजभक्ति की उपेक्षा से तुगलक साम्राज्य दृढ़ रूप से संगठित और सुव्यवस्थित न हो सका। उसमें दृढ़ केन्द्रीय शासन व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी। शासन यंत्र व्यवस्थित, लोकप्रिय और चुस्त न हो सका। क्योंकि बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा के प्रतिनिधियों की प्रतिभा का शासन में उपयोग नहीं किया गया। प्रशासन में उनका बहिष्कार किया गया। फलतः प्रशासन थोड़े से विदेशी अमीरों और सीमित मुसलमानों के कंधों पर आ गया। यह प्रशासन व साम्राज्य के लिये अहितकर हुआ। यद्यपि बाह्य रूप से प्रांतपति केन्द्र और सुलतान से संबंधित और उस पर आश्रित थे, पर व्यवहार में आन्तरिक शासन में प्रांतपति या सूबेदार पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे। साम्राज्य में प्रांत या सूबे लगभग स्वतंत्र इकाई के समान थे जहाँ सूबेदारों को व्यापक अधिकार थे और केन्द्रीय सरकार का उन पर कोई दृढ़ नियंत्रण नहीं था। सूबेदारों की उनके प्रांतों में सर्वोपरि सत्ता थी। इस प्रकार तुग-लक साम्राज्य अर्द्ध स्वतंत्र राज्यों का एक असंबद्ध संघ था। इसमें केन्द्रीय सरकार का शासन शिथिल और दुर्बल था। वह साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में और दूरस्थ प्रांतों में कठोर नियंत्रण नहीं रख सकता था। इससे साम्राज्य का पतन अवश्यंभावी था। ऐसी प्रशासन व्यवस्था में फिरोज के निकम्मे उत्तराधिकारियों के काल में महत्वाकांक्षी सूबेदार अधिक शक्तिशाली और स्वतंत्र हो गये।

(७) **धन का अभाव और रिक्त राजकोष**—सुलतान मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक ने अत्यधिक धन व्यय किया। मुहम्मद ने अपनी विभिन्न योजनाओं पर और फिरोज ने दयालुता और उदारता के कारण बहुत ही धन खर्च कर दिया। मुहम्मद तुगलक ने राज्यारोहण होते ही अमीरों और अधिकारियों में मुक्त हस्त से धन वितरित किया जिससे अलाउद्दीन के समय उनकी जो सम्पत्ति अपहरण कर ली गयी थी, उससे भी अधिक धन सम्पदा उन्हें उपलब्ध हो गयी। इससे और योजनाओं पर हुए व्यय से राजकोष पर कुप्रभाव गिरा। राजकोष रिक्त होता चला गया। देश में शांति व्यवस्था स्थापित करने के लिये, सुव्यवस्थित प्रशासन के लिये धन की बाहुल्यता और परिपूर्ण राजकोष आवश्यक है। पर तुगलक सम्राटों को इसका अभाव रहा। इससे साम्राज्य में शिथिलता आ गयी।

(८) **सेना पर आश्रित राज्य**—तुगलक साम्राज्य जनता की राजभक्ति, सह-योग और सहायता पर आधारित नहीं था, अपितु वह सुलतान की निरंकुश स्वेच्छा-चारिता और दृढ़ सैन्य शक्ति पर आधारित था। सेना के भय, बल और आतंक से सुलतान शासन करते थे। जब सेना निर्बल हो गयी, उसका साहस और रण-कौशल क्षीण हो गया और जब सेना पर नियंत्रण रखने वाले सुलतान निकम्मे और शक्तिक्षीण हो गये तब साम्राज्य पतन की ओर बढ़ने लगा।

(९) **सेना का पतन और योग्य सेनापतियों का अभाव**—दिल्ली सल्तनत के प्रारंभ में सेना में जो रण-कौशल, योग्यता, साहस, अनुशासन और राजभक्ति थी, वह तुगलक सुलतानों के समय में लुप्त हो गयी थी। सेना की शक्ति नष्ट प्रायः हो गयी थी। सेना में ऐवजी और वंशानुगत की जो परम्परा चल पड़ी थी, उससे सैन्य शक्ति की जड़ें खोखली हो गयी थीं, सेना की योग्यता और दक्षता नष्ट हो गयी थी। फिरोज

के समय में तो योग्य सेनापतियों का अभाव आ गया था। सैन्य शक्ति और सुयोग्य दक्ष सैन्य अधिकारी जो साम्राज्य के मूल आधार थे, दिन प्रतिदिन क्षीण होने से, साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

(१०) **उत्तराधिकार के नियमों का अभाव**—तुर्की सुलतानों में उत्तराधिकार का कोई सुनिश्चित नियम या विधान नहीं था। प्राय: उत्तराधिकार निर्वाचन पर आधारित था। अमीर और सरदार सुलतान की मृत्यु होने पर किसी योग्य व्यक्ति को निर्वाचित कर सुलतान बना देते थे। अमीरों की सहायता से सिंहासन पर बैठा सुलतान, उन अमीरों के हाथों की कठपुतली बन जाता और प्रशासन स्वार्थलोलुप अमीरों के हाथों मे हो जाता था। इससे साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती थी। अनेक बार सुलतान की मृत्यु के बाद शक्तिशाली दावेदार सिंहासन हड़पने की कोशिश करते थे। थोड़े समय के लिये विद्रोहों, षड़यंत्रों और कूटनीति और हत्याओं का बाहुल्य होता था। अराजकता और अव्यवस्था हो जाती थी और अमीरों में दल-बन्दियाँ हो जाती थीं। इससे साम्राज्य में पतन की प्रवृत्तियां बढ़ती थीं।

(११) **मुसलमानों का पतन**—राजसभा और राजप्रासादों में आमोद-प्रमोद और विलासी जीवन व्यतीत करने से मुसलमानों का नैतिक पतन हो गया था। उनमें अपने पूर्वजों के समान पौरूष तथा साहस नहीं रहा था। फिरोज का शासन और असफल युद्ध इसके प्रमाण हैं। तुर्क, खिलजी और मंगोल अमीर और मुसलमानों मे भी पारस्परिक संघर्ष वृद्धि पा रहा था। उनमें एकता और दृढ़ता की भावना का अभाव हो गया था।

(१२) **हिन्दुओं के विद्रोह**—सुलतानों और उनके अधिकारियों की पाशविक कठोरता, नृशंसता, दमन, धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता और विनाश की नीति से हिन्दू प्रजा अत्यधिक पीड़ित थी और सल्तनत के प्रति असन्तुष्ट थी। शासन में भी वे वंचित किये गये थे। उनकी विभिन्न स्वतंत्रताओं का अपहरण कर लिया गया था। इससे उनके तीव्र असन्तोष की चिनगारियां विद्रोह की ज्वालाएँ बनकर धधक उठीं। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता और धर्म की सुरक्षा के लिये उपद्रव और विद्रोह किये तथा स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिये। विजयनगर राज्य इसका उदाहरण है।

तुगलक सुलतानों का उत्तरदायित्व

(अ) **सुलतान मुहम्मद तुगलक का उत्तरदायित्व**—मुहम्मद तुगलक की विशद् व्ययशील योजनाओं से राजकोष रिक्त हो गया। उसे पदाधिकारियों, कर्मचारियों और जनता का सहयोग नहीं मिला। उसके हठी, जिद्दी, अभिमानी स्वभाव और अनुचित कठोरताओं ने भी तुगलक साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने में सहायता दी। मुहम्मद तुगलक यह नहीं समझ पाया कि प्रशासन कल्पनात्मक योजनाओं से नहीं, अपितु वास्तविक योजनाओं और प्रजा के सहयोग से चलाया जाता है। उसकी असफल योजनाओं और सर्वसाधारण की बिगड़ती दशा, दरिद्रता और पीड़ाओं ने शासक और शासितों के बीच एक ऐसी गहरी खाई डाल दी जो भरी नहीं जा सकी। इसके अतिरिक्त मुहम्मद ने जिस कठोर दंड, नीति और निरंकुशता को अपनाया, उससे जनता और अमीर उसके विरोधी हो गये। उसने पुराने तुर्की अमीरों की उपेक्षा करके नये

विदेशी अमीरों को राज्याश्रय देकर राजसभा और प्रशासन में ऊंचे पद दिये। इससे अमीरों में पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष और वैमनस्य फैल गया और शासन को गहरा आघात लगा। इससे साम्राज्य विघटित होने लगा।

(ब) फिरोज तुगलक का उत्तरदायित्व—सुलतान फिरोज तुगलक अपनी दुर्बलताओं और नीतियों के कारण तुगलक साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी है।

(i) **व्यक्तिगत चरित्रिक दुर्बलताएं**—फिरोज स्वभाव से दयालु, दब्बू, उदार और क्षमाशील था। न तो उसमें राजकीय महत्वाकांक्षाएँ थीं और न सामरिक प्रवृत्ति ही। लोगों और कर्मचारियों ने उसकी उदारता, दयालुता और क्षमाशीलता का अनुचित लाभ उठाया। इससे प्रशासन शिथिल हो गया। शासकीय कर्मचारियों में दुराचरण, भ्रष्टाचार और घूसखोरी फैल गयी और फिरोज इनका उन्मूलन करने की अपेक्षा, इनके प्रति उदासीन रहा। उसने शासकीय भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित किया। इससे शासन-व्यवस्था खोखली हो गयी। वह व्यसनी था। उसमें चारित्रिक दुर्बलताएं थीं। इससे उसका व्यक्तित्व शून्य तथा प्रभावहीन था।

(ii) **धार्मिक असहिष्णुता और धर्म सापेक्ष राज्य**—फिरोज ने इस्लाम धर्म को राज्य का आधार बना दिया, उल्माओं को प्रधानता दी और हिन्दू विरोधी नीति अपनायी। उसकी धार्मिक असहिष्णुता, धर्मान्धता और धर्म सापेक्ष राज्य से वह समस्त प्रजा की श्रद्धा और सद्भावना, सहयोग और राजभक्ति नहीं प्राप्त कर सका। उसके धार्मिक अत्याचारों और विध्वंस के कार्यों से हिन्दुओं में तीव्र असन्तोष और विद्रोही भावनाएं फैल गयीं।

(iii) **जागीर प्रथा**—फिरोज ने नगद वेतन देने की अपेक्षा जागीर देने की प्रथा प्रचलित और प्रसारित की। केन्द्रीय सत्ता के क्षीण होने पर इन राजभक्तिहीन जागीरदारों ने विद्रोह कर अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये। इससे साम्राज्य विघटित हो गया।

(iv) **दास प्रथा**—फिरोज ने दास प्रथा को प्रोत्साहित कर दासों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि कर दी। उसके शासन-काल में एक लाख अस्सी हजार दास थे। अधिकांश उनमें असभ्य और अशिक्षित थे। वे राज्य के लिये एक बहुत बड़ा भार थे। बलात् दास बनाये जाने के कारण इन दासों में उत्तरदायित्व और राजभक्ति की भावना का अभाव था। उनमें प्रायः असन्तोष और विद्रोह की भावनाएं होती थीं। उनके भरण-पोषण के दुर्वह भार से राजकोष को भी अधिक क्षति पहुँची थी।

(v) **दूषित सैन्य व्यवस्था**—फिरोज ने सेना में नगद वेतन के स्थान पर जागीर प्रथा प्रारम्भ कर, वंशानुगत पद और एवजी की प्रथा प्रारम्भ करके सेना को शक्तिहीन बना दिया। सेना जो साम्राज्य का आधार थी, वह अयोग्य अक्षम, वृद्धों और रोगियों का समूह बनकर जर्जर हो गयी और फिरोज ने उसे अपनी दूषित सैन्य व्यवस्था द्वारा पतन की ओर ढकेल दिया।

(vi) **दृढ़ शासन नीति का अभाव**—फिरोज ने दृढ़ शासन नीति अपनाने की अपेक्षा, क्षमाशीलता, करुणा, दयालुता, भ्रष्टाचार, बेईमानी और घूसखोरी को

प्रोत्साहित किया। इससे उच्च पदाधिकारी भ्रष्ट, चरित्रहीन, विलासी और स्वार्थ-लोलुप बन गये और उन्होंने राज्य-हित-चिंतन परित्याग दिया।

(स) अयोग्य उत्तराधिकारी—फिरोज के देहावसान के बाद २४ वर्षों में गयासुद्दीन तुगलक द्वितीय, अबूबक्र, मुहम्मद द्वितीय, सिकन्दर प्रथम, नसरतशाह, मुहम्मदशाह, छः अयोग्य और निकम्मे सुलतान हुए। वे केन्द्रीय शक्ति को संगठित करके शक्तिशाली राज्य स्थापित करने में सर्वथा असमर्थ थे। वे पारस्परिक द्वेष, वैमनस्य, षड़यंत्रों और गृहकलह में ही संलग्न रहे। इससे वे जागीरदारों और अमीरों व सरदारों को भी नियंत्रित नहीं कर सके और न वे उनके विद्रोहों का दमन कर सके। इन सब बातों से उन्होंने साम्राज्य विघटन की वृत्तियों को अवरुद्ध करने की अपेक्षा उन्हें शक्ति और गति ही प्रदान की। फलतः तुगलक साम्राज्य दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश तक ही सीमित रह गया।

तैमूर का आक्रमण—तैमूर के आक्रमण, लूट, आगजनी और विध्वंस-लीला ने जर्जरित तुगलक साम्राज्य को भूमिसात कर दिया। उसने अपने नृशंस कत्लेआम और निर्मम लूट से साम्राज्य की राजधानी दिल्ली को श्रीविहीन कर दिया। फलतः भारत का राजनैतिक रंगमंच अव्यवस्थाओं और अराजकताओं का क्रीड़ास्थल बन गया। आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। अन्त में तुगलक साम्राज्य पूर्ण रूप से समाधिस्थ हो गया।

सारांश

फिरोज के उत्तराधिकारी—फिरोज की मृत्यु के बाद उसका पौत्र तुगलकशाह सुलतान बना। परन्तु उसकी विलासप्रियता और बुरे व्यवहार से अमीरों ने उसकी हत्या करदी और अबूबक्र को सुलतान बनाया। **अबूबक्र**—वह आन्तरिक षड़यंत्रों और गृहयुद्ध में अधिक उलझ गया और अन्त में फिरोज के छोटे पुत्र मुहम्मद ने उसे परास्त कर बन्दी बना लिया। उसकी मृत्यु के बाद नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह सुलतान बना। उसने सुलतान की शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूं सुलतान बना और उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई मुहम्मदशाह नासिरुद्दीन सुलतान बना। इसके शासन काल में अनेक प्रांतपति स्वतंत्र हो गये और नवीन राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। सुलतान मुहम्मदशाह की शक्ति इतनी क्षीण हो गयी थी कि कुछ विरोधी अमीरों ने फिरोज के एक पुत्र नसरतखां को भी सुलतान बना दिया। इस प्रकार तुगलक राज्य के दो दावेदार राजधानी दिल्ली से कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर राज्य कर रहे थे। ऐसे समय में तैमूर ने आक्रमण किया।

तैमूर का आक्रमण, सन् १३९८

तैमूर का प्रारंभिक जीवन—सन् १३३६ में मध्य एशिया में केरानगर में तैमूर का जन्म हुआ था। उसका पिता बारलस कबीले का प्रधान था। उसे बाल्यकाल में अस्त्र-शस्त्र चलाने की और घुड़सवारी की अच्छी शिक्षा प्राप्त हो गयी थी। पिता

की मृत्यु के बाद वह एक छोटे-से प्रदेश का शासक बन गया। धीरे-धीरे उसने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। सन् १३७० में तुर्क सरदारों ने उसे अपना नेता चुन-लिया और वह समरकंद का सुलतान बन गया। उसने अपने युद्धों, विजयों, वीरता और कूटनीति से ख्वारिज्म, मेसापोटामिया और फारस पर अधिकार कर लिया। महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी होने से अब उसने भारत विजय करने की योजना बनाई।

भारत पर तैमूर के आक्रमण के कारण—भारत की धन-सम्पन्नता और सुख-समृद्धि की खबरें सुनकर तैमूर भारत के अपार धन को लूटकर अपना राजकोष भरना चाहता था और इस धन से वह अन्य देशों को जीतना चाहता था। तुगलक-कालीन अराजकता और अव्यवस्था का लाभ उठाकर वह भारत को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। वह भारत में हिन्दुओं के विरुद्ध धर्म युद्ध कर, बलपूर्वक इस्लाम का प्रसार करना चाहता था। पर तैमूर भारत में दीर्घकाल तक स्थायी रूप से शासन नहीं करना चाहता था।

लाहौर पर आक्रमण और विजय—तैमूर ने एक विशाल सेना लेकर २४ सितम्बर, १३९८ को सिंध नदी पार करके लाहौर पर आक्रमण कर वहां के सूबेदार मुबारकखां को परास्त कर दिया। अब वह मार्ग के प्रदेशों को लूटता और रौंदता हुआ आगे बढ़ा।

तुलुम्बा, दिपालपुर और भटनेर की विजय व लूट—तैमूर ने खोखरों के नगर तुलुम्बा को लूटा और वहां से दिपालपुर गया। यहां उसके एक अधिकारी की हत्या कर दी गयी। इन हत्यारों का पीछा करते हुए वह भटनेर पहुँचा। यहां के राजपूत राय दुलचन्द ने पहिले तो तैमूर से संधि कर ली पर बाद में राय और तैमूर में भयंकर युद्ध हुआ। राय परास्त हुआ और भटनेर में हिन्दुओं का कत्ले-आम कर दिया गया और नगर को खूब लूटा गया।

सुलतान मुहम्मद और तैमूर का युद्ध—भटनेर की लूट और कत्ले-आम के बाद तैमूर दिल्ली की ओर बढ़ा तथा राजधानी से छः मील दूर ठहर गया। सुलतान मुहम्मद ने तैमूर का सामना करने के लिये एक विशाल सेना संगठित की। तैमूर और मुहम्मद की सेना में भयंकर युद्ध हुआ। मुहम्मदशाह परास्त हुआ और अपनी सुरक्षा के लिये रणक्षेत्र से भाग गया।

दिल्ली की लूट और कत्ले-आम—विजय के बाद तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया और पन्द्रह दिन ठहरा। इस अवधि में उसने दिल्ली नगर को खूब लूटा, लोगों की नृशंसता से हत्याएं कर दी गयीं। उनके भवनों और राजप्रासादों को लूटकर उन्हें जला दिया। दिल्लीवासियों पर बर्बरता से अनेकानेक अत्याचार और अनाचार किये गये। सहस्रों हिन्दुओं को कत्ल कर दिया गया, स्त्रियों और बच्चों को दास बना लिया गया।

तैमूर का लौटना—दिल्ली को लूटकर तैमूर मेरठ और हरिद्वार की ओर बढ़ा। उसने मार्ग के गांवों को लूटा और कत्ले-आम दुहराया। मेरठ को लूटकर-जलाकर श्मशान बना दिया। हरिद्वार में भी हिन्दुओं को कत्ल किया गया और

उनके मंदिरों व मूर्तियों को विध्वंस कर दिया। हरिद्वार की लूट के बाद तैमूर शिवालिक प्रदेश को जीतता हुआ, जम्मू के राजा को परास्त करता हुआ अपनी राजधानी समरकद लौट गया। जाते समय खिज्रखां सैयद को तैमूर अपने भारत में जीते हुए साम्राज्य के पंजाब क्षेत्र में अपना प्रतिनिधि शासक नियुक्त कर गया।

आक्रमण से तैमूर को लाभ—(१) इस आक्रमण और विजय से तैमूर का सरमकंद साम्राज्य भारत में पंजाब तक फैल गया। इससे तैमूर विश्व के महान विजेताओं में माना जाने लगा। (२) लूट में तैमूर को अपार धन, सम्पत्ति प्राप्त हुई जिससे उसकी आर्थिक समृद्धि अधिक बढ़ गयी। (३) तैमूर भारत से अपने साथ अनेक शिल्पी ले गया और उनसे उसने समरकंद में एक विशाल मसजिद और भवन बनवाये। सन् १४१२ में सुलतान मुहम्मद की मृत्यु हो जाने पर तैमूर के प्रतिनिधि खिज्रखां ने दिल्ली पर अपना अधिकार करके सैयद राजवंश की नींव डाली।

तैमूर के आक्रमण के प्रभाव

राजनैतिक प्रभाव—इस आक्रमण से निम्नलिखित राजनैतिक प्रभाव हुए:—

(१) तैमूर के वंशजों का उत्तरी भारत पर दावा और बाबर को प्रेरणा—तैमूर के वंश के शासक यह दावा करते थे कि पंजाब उनके वंश के राज्य का एक भाग था। बाबर ने जो अपने को तैमूर वंश का मानता था, इसी दावे के आधार पर भारत पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त कर मुगल राज्य स्थापित किया।

(२) **तुगलक राज्य का अंत**—तैमूर के आक्रमण से लड़खड़ाता तुगलक साम्राज्य गिर पड़ा और खिज्रखां ने १४१४ में दौलतखां को परास्त करके तुगलक राज्य को समाप्त कर दिया और सैयद राजवंश स्थापित किया।

(३) **स्वतंत्र प्रांतीय राज्यों का प्रादुर्भाव**—तैमूर के आक्रमण से व्याप्त अराजकता से लाभ उठाकर अनेक प्रांतीय सूबेदारों ने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये, जैसे जौनपुर, मालवा, गुजरात, बहमनी राज्य आदि।

(४) **दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव**--प्रान्तीय राज्यों के प्रादुर्भाव से भारत की राजनैतिक एकता नष्ट हो गयी और दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव हो गया।

आर्थिक प्रभाव

(१) **अपार जन-धन की हानि**—तैमूर ने अनेक गांवों को भस्मीभूत कर दिया, लोगों की नृशंसता से हत्याएं कर दीं और फसलों को चौपट कर दिया और दिल्ली की शान-शौकत नष्ट हो गयी। इससे अपार धन की हानि हुई।

(२) **कृषि और व्यापार की क्षति**—लूट और हत्याओं से कृषि, व्यापार और उद्योग-व्यवसाय नष्ट हो गये।

(३) **दुर्भिक्ष, महामारी और दरिद्रता**—लूट व आगजनी के बाद भयंकर दुर्भिक्ष और महामारी फैल गये, इससे सहस्रों पशु व मनुष्य मर गये। भयंकर दरिद्रता और कष्टों से लाखों व्यक्तियों ने अपने प्राण त्याग दिये।

इन सब कुप्रभावों से आर्थिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी।

सामाजिक प्रभाव—लूट और हत्याओं से अनेक घर शून्य हो गये। सामाजिक शांति, व्यवस्था और सुरक्षा नष्ट हो गयी। इससे विद्रोहियों उपद्रवियों और लुटेरों को प्रोत्साहन मिला।

सांस्कृतिक प्रभाव

(१) **साहित्य व कला को प्रोत्साहन**—तैमूर के आक्रमण से प्रांतों में स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये। वहां के सुलतानों और शासकों ने अनेक भवन निर्मित किये और विद्वानों को राज्याश्रय दिया। इससे स्थापत्य कला और साहित्य की उन्नति हुई।

(२) **विदेशों में भारतीय कला और साहित्य**—अनेक उच्च कोटि के कुशल कलाकार तैमूर के साथ विदेशों में गये और उन्होंने वहां अनेक भवन बनाये। उनके साथ अनेक ग्रन्थ और चित्रकला भी मध्य-एशिया के देशों में पहुँचे।

(३) **सांस्कृतिक आदान-प्रदान**—मध्य एशिया और भारत के लोगों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। इससे उनके रहन-सहन, खान-पान वेशभूषा कुछ सीमा तक प्रभावित हुए।

(४) **हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष**—फिरोज के कुकृत्यों, उसकी धर्मान्धता, और तैमूर द्वारा हिन्दुओं की नृशंस हत्याए, लूट और बलात् दास बनाये जाने से हिन्दुओं में इस्लाम के प्रति पुनः क्षोभ और घृणा उत्पन्न हो गयी।

तुगलक साम्राज्य के पतन के कारण

(१) **तुगलक साम्राज्य की विशालता**—तुगलक साम्राज्य इतना विशाल और विस्तृत हो गया था कि उसके संचालन और नियत्रण के लिये विशेष प्रतिभा, दक्षता और योग्यता वाले सुल्तान चाहिये थे, जो तुगलक वंश में नहीं थे। सुरक्षित राजमार्गों और द्रुतगामी वाहनों के अभावों में विशाल साम्राज्य में हुए विद्रोहों को नहीं कुचला जा सका।

(२) **प्रजा की सद्भावना, सहयोग और राजभक्ति का अभाव**—राज्य की बहुसंख्यक जनता जो हिन्दू थी, अत्याचार, अनाचार, धर्मांधता और भेदभाव से शासन में उनका बहिष्कार होने से अत्यन्त रुष्ट थी। इसलिये सुल्तानों ने उनकी प्रजा के एक बहुत बड़े भाग की सहानुभूति, सहयोग, श्रद्धा और राजभक्ति खो दी।

(३) **स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन**—तुगलक शासन निरंकुश व स्वेच्छाचारी था और ऐसे शासन के संचालन के लिये जिस प्रतिभा, अनुभव, सैनिक योग्यता और राजभक्त कर्मचारियों की आवश्यकता होती थी, वह इन सुलतानों में नहीं थी।

(४) **प्रान्तीय सूबेदारों की कृतघ्नता**—जागीरों और धन से पुरस्कृत प्रान्तपति कृतघ्न होकर सुलतानों के विरुद्ध विद्रोह कर साम्राज्य को विघटित करते थे।

(५) **अमीरों की स्वार्थलोलुपता**—अमीर और सरदार जो ऊंचे पदों पर भी थे, इतने अधिक स्वार्थपरायण, धनलोलुप, महत्वाकांक्षी और वैभव से विलासी हो गये थे कि उनमें राजभक्ति और कर्तव्यपरायणता नहीं थी। विश्वासघात कर सुलतान के विरुद्ध षड़यन्त्र करते थे।

(६) **दृढ़, संगठित और सुव्यवस्थित शासन का अभाव**—तुगलक सुलतानों ने न तो दृढ़ केन्द्रीय शासन स्थापित किया और न उनका शासनतंत्र व्यवस्थित, लोकप्रिय और चुस्त हो सका। प्रशासन थोड़े से विदेशी अमीरों और मुसलमानों के कन्धों पर था। प्रांतों पर भी केन्द्रीय सरकार का पूर्ण स्थायी नियंत्रण नहीं था। तुगलक साम्राज्य अर्द्ध स्वतंत्र राज्यों का एक असंबद्ध संघ था। इसका पतन अवश्यंभावी था।

(७) **धन का अभाव और रिक्त राजकोष**--विभिन्न योजनाओं, पुरस्कार, क्षतिपूर्ति, दान आदि में तुगलक सुलतानों ने इतना अधिक धन व्यय कर दिया कि राजकोष रिक्त हो गया और सुव्यवस्थित प्रशासन के लिये धन का अभाव हो गया।

(८) **सेना पर आश्रित राज्य**—निरंकुश तुगलक सुलतान सेना के बल और आतंक से राज्य करते थे। पर जब सेना निर्बल और नियंत्रणविहीन हो गयी तो उनका पतन हो गया।

(९) **सेना का पतन और योग्य सेनापतियों का अभाव**—सेना में जागीर प्रथा, एवजी और वंशानुगत की परम्परा से उसकी शक्ति खोखली हो गयी और योग्य तम सेनापतियों का अभाव हो गया।

(१०) **उत्तराधिकार के नियमों का अभाव**— उत्तराधिकार के निश्चित नियम और विधान के अभाव में किसी सुलतान के देहावसान के बाद विद्रोहों. षड्यंत्रों, हत्याओं. अराजकता और अव्यवस्था का बाहुल्य होता था। इससे साम्राज्य में पतन-प्रवृत्तियां बढ़ती थीं।

(११) **मुसलमानों का पतन**—विलासी जीवन होने से मुसलमानों में नैतिक पतन और पारस्परिक संघर्ष बढ़ रहा था। उनमें एकता व दृढ़ता नहीं थी।

(१२) **हिन्दुओं के विद्रोह**—सुलतानों की नृशंसता, दमन, विनाश, और धार्मिक अत्याचार की नीति से हिन्दुओं ने अपनी स्वतंत्रता और धर्म की सुरक्षा के लिये अनेक बार विद्रोह किये और स्वतंत्र राज्य स्थापित किये। जिससे साम्राज्य विघटित हुआ।

तुगलक सुलतानों का उत्तरदायित्व—मुहम्मद तुगलक की व्ययशील योजनाओं, उसकी कर प्रणाणी, रिक्त राजकोष, जिद्दी, अभिमानी स्वभाव, कठोर दण्ड नीति, निरंकुश शासन, विदेशी अमीरों पर प्रशासन का मार, कर्मचारियों और जनता के सहयोग के अभाव ने साम्राज्य को विघटन के गर्त में ढकेला। पर फिरोज साम्राज्य के पतन और विनाश के लिये अधिक उत्तरदायी है। उसकी व्यक्तिगत चारित्रिक दुर्बलताएं, उसकी उदारता व क्षमाशीलता, उसमें सामरिक प्रवृत्ति का अभाव, भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन, उसके शून्य प्रभावहीन व्यक्तित्व, धार्मिक असहिष्णुता और हिन्दू विरोधी नीति, उसकी जागीर प्रथा और दासों की बाहुल्यता, सेना में वंशानुगत और ऐवजी की प्रथा का प्रचलन, दूषित सैन्य व्यवस्था, आदि ने प्रशासन को शिथिल कर दिया, और साम्राज्य को विनाश की ओर द्रुतगति से बढ़ाया।

अयोग्य उत्तराधिकारी—फिरोज के बाद निकम्मे और अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गयी, गृह-कलह और विद्रोह बढ़ गये।

तैमूर का आक्रमण—तैमूर के आक्रमण, लूट, आगजनी, विध्वंस लीला और नृशंस कत्लेआम ने जर्जरित तुगलक साम्राज्य को भूमिसात कर दिया।

तैमूर के आक्रमण के प्रभाव

राजनैतिक प्रभाव	आर्थिक प्रभाव	सामाजिक प्रभाव	सांस्कृतिक प्रभाव
१—तैमूर के वंशजों का भारत पर दावा, बाबर को प्रेरणा।	१—धन-जन की हानि।	१—निर्जनता।	१—साहित्य, कला को प्रोत्साहन।
२—तुगलक राज्य का विनाश।	२—कृषि, व्यापार की क्षति।	२—शांति, व्यवस्था, सुरक्षा का विनाश।	२—विदेशों में भारतीय कला व साहित्य।
३—स्वतंत्र प्रांतीय राज्यों का प्रादुर्भाव।	३—दुर्भिक्ष, महामारी, दरिद्रता।		३—सांस्कृतिक आदान-प्रदान।
४—दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव।	४—आर्थिक अस्त-व्यस्तता।		४—हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष।

तुगलक साम्राज्य के पतन के कारण

विशिष्ट परिस्थितियां व कार्य	तुगलक सुलतानों का उत्तरदायित्व	तैमूर का आक्रमण और उसके प्रभाव
१. तुगलक साम्राज्य की विशालता।	१—मुहम्मद तुगलक के कार्य।	
२. प्रजा की सद्भावना, सहयोग राजभक्ति का अभाव।	२—फिरोज के कार्य व नीति।	
३. स्वेच्छाचारी निरकुंश शासन।	३—अयोग्य उत्तराधिकारी।	
४. प्रांतीय सूबेदारों की कृतघ्नता।	८. सेना पर आश्रित राज्य।	
५. अमीरों की स्वार्थपरायणता, विश्वासघात।	९. सेना की दूषित व्यवस्था व पतन।	
६. दृढ़, संगठित शासन का अभाव।	१० उत्तराधिकार के नियमों का अभाव।	
७. धन का अभाव।	११. मुसलमानों का पतन।	
	१२. हिन्दुओं के विद्रोह।	

——

अध्याय २२

सैयद और लोदी सुलतान

खिज्रखां सैयद—खिज्रखां के प्रतिभाशाली जीवन का प्रारंभ सिंध में हुआ। वह सिंध में मुलतान के राज्यपाल मलिक नासिरुमुल्क मरदान दौलत की सेवा में था। अपनी प्रतिभा, दक्षता और सैनिक गुणों से वह बाद में मुलतान का राज्यपाल बन गया। जब तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण किया था तब खिज्रखां ने तैमूर का प्रभुत्व मान कर उसकी सैनिक सहायता की। इससे प्रसन्न होकर तैमूर ने खिज्रखां को भारत से लौटते समय अपने विजित प्रदेश पंजाब का शासक नियुक्त किया। खिज्रखां तैमूर का प्रतिनिधि बनकर पंजाब पर शासन करता रहा। वह तैमूर के प्रति विश्वास पात्र और स्वामिभक्त रहा।

खिज्रखां का दिल्ली पर अधिकार—जब सन् १४१३ में तुगलक वंश के अंतिम सुलतान महमूद का देहावसान हो गया, तब विद्रोह और कलह की भावनाएं जागृत हो गई तथा अमीरों और सरदारों के विभिन्न दल बन गए। सुलतान बनने के के लिये इनमें पारस्परिक संघर्ष प्रारंभ हो गया। इसमें दौलतखां नामक अमीर ने कुछ सफलता प्राप्त कर पंद्रह मास तक अपना प्रभुत्व बनाये रखा। पर अव्यवस्था और पारस्परिक संघर्ष व द्वेष बना रहा। इसका लाभ उठाकर खिज्रखां ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और चार माह तक दिल्ली को घेरे रहने के बाद उसे सफलता मिली, इसके बाद २३ मई सन् १४१४ को वह दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ और सैयद वंश के राज्य की स्थापना की।

सैयद—अरब में मुस्लिम समाज में पैगम्बर मुहम्मद साहब के अनुयायियों को सैयद कहा जाता है और इन लोगों में वे ही गुण माने जाते थे जो मुहम्मद साहब में थे। ऐसी धारणा है कि सैयद लोग स्वभाव से ही उदार तथा विनयशील होते हैं। उनका आचरण शुद्ध और पवित्र होता है। भारत में मुस्लिम समाज में सैयद एक वर्ण के समान हो गया। जिस प्रकार हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र वर्ण हैं उसी प्रकार मुसलमानों में भी शेख, सैयद, मुगल, पठान, वर्ण बन गए और इनके अन्तर्गत मुसलमानों के विभिन्न समूह जातियों के समान बन गए। इन सभी वर्णों में सैयदों का ब्राह्मण के समान ऊंचा महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। सैयदों के गुणों की बाहुल्यता और चरित्र की शुद्धता से वे बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। खिज्रखां भी सैयद वर्ण में होने के कारण अपने आपको सैयद कहता था और राज्य प्राप्त करने पर उसने सैयद राजवंश स्थापित किया।

सुलतान खिज्रखाँ सैयद (सन् १४१४ से १४२१)

खिज्रखां की कठिनाइयां—दौलतखाँ नामक अमीर का वध करके खिज्रखा सुलतान बन गया। पर उसने सुलतान की उपाधि धारण नहीं की। जिस समय खिज्र-खां सुलतान बना उस समय सल्तनत की दशा बड़ी शौचनीय थी। सारे राज्य में

अराजकता और अव्यवस्था व्याप्त थी। सल्तनत के अमीर विभिन्न दलों में विभक्त होकर शक्ति प्राप्त करने और स्वार्थ सिद्धि में संलग्न थे। दोआब में हिन्दू नरेशों ने विद्रोह करके अपनी स्वतंत्र सत्ता पुनः स्थापित कर सुलतान को कर देना बन्द कर दिया था। मालवा, गुजरात, जोनपुर के शासक स्वतंत्र सुलतान हो गए। मेवातियों ने भी विद्रोह करके सुलतान को कर देना बंद कर दिया था। राज्य की उत्तर पश्चिमी सीमा असुरक्षित थी। वहां खोखरों ने उत्पात प्रारंभ कर दिए थे और वे सुलतान व लाहौर पर छोटी-छोटी टुकड़ियों के रूप में आक्रमण करते थे। ऐसी विषम तथा अराजकतापूर्ण स्थिति में खिज्रखां ने राज्य प्राप्त किया था। इस परिस्थीति के निवारणार्थ उसने निम्नलिखित कार्य किये:—

(१) **विद्रोहों का दमन**—सर्वप्रथम खिज्रखां ने कटेहर के विद्रोह का सफलतापूर्वक सामना किया। उसने विद्रोहियों को सेना से घेर लिया तथा कठोरता से उनका दमन किया। उसने कटेहर के हरीसिंह तथा बदायूँ, इटावा और कंपिल के हिन्दू राजाओं को परास्त कर दिल्ली सुलतान की आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इसके बाद फिर विद्रोह हुए और सन् १४१९ में बदायूँ के शासक महावतखां के नेतृत्व में कटेहरवासियों के विद्रोह का दमन किया और इटावा में राजपूत सरदारों के विद्रोह को कुचल दिया।

दोआब में शांति स्थापित करने के बाद खिज्रखां ने अन्य विद्रोहों की ओर ध्यान दिया। उसने पंजाब में हुए मलिक तुगलक के विद्रोह को कुचल दिया। सन् १४१६ में सरगखां ने सरहिंद को घेर लिया। खिज्रखां ने उसे भी परास्त कर दिया। इसके बाद मेवाड़ और ग्वालियर के विद्रोहों का भी खिज्रखां ने दमन किया।

खिज्रखां की विजय—सन १४१६ में खिज्रखां ने सयाना तथा ग्वालियर के समीपस्थ प्रदेशों पर आक्रमण करके, वहां के शासकों को परास्त करके, उनके राज्य पर अधिकार कर लिया। सन् १४२१ में उसने गुजरात पर आक्रमण किया और वहां के नरेश को परास्त कर दिया। गुजरात विजय से लौटते हुए ग्वालियर और जौनपुर के सरदारों को अपनी अधीनता स्वीकार कराने में सफल हुआ।

खिज्रखां का अन्त—जब वह ग्वालियर के सरदारों को अधीन कर दिल्ली लौट रहा था, तब मार्ग मे वह रोग ग्रस्त हो गया और २० मई, १४२१ को उसका देहावसान हो गया।

खिज्रखां का चरित्र—सुलतान खिज्रखाँ एक सच्चा नेक सैयद था। वह उदार तथा दयालु व्यक्ति था। वह एक कुशल सेनापति तथा वीर योद्धा था। उसने अपनी वीरता, साहस और रणकुशलता से अनेक विद्रोहों का दमन किया, स्वतंत्र शासकों व हिन्दू नरेशों को परास्त कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। यद्यपि उसने विद्रोहों का दमन करने में कठोरनीति का अवलंबन किया, पर वह बलबन या अलाउद्दीन खिलजी के समान क्रूर एवं अत्याचारी नहीं था। वह शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दे सका, क्योंकि उसके जीवन का अधिकांश समय विद्रोहों का दमन करने में ही व्यतीत हो गया। फिर भी वह अपनी प्रतिभा और योग्यता के बल पर छोटे पद से प्रगति करते हुए दिल्ली का सुलतान बन गया। यह उन्नति उसके गुणों की द्योतक

है। खिज्रखां कला प्रेमी भी था। स्थापत्य कला में उसे विशेष अभिरुचि थी। संक्षेप में कह सकते हैं कि सल्तनत में शांति स्थापित कर उसने उसकी रक्षा की। खिज्रखां स्वामिभक्त था। जब तक वह जीवित रहा, वह तैमूर को अपना अधिपति मानता रहा।

मुबारकशाह (सन् १४२१–१४३४)—मुबारक की शिक्षा और लालन-पालन समुचित ढंग से होने से उसमें अनेक गुण आ गये थे। वह राजनीति के दाव-पेंचों को भी समझता था। सुलतान खिज्रखां की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मुबारकशाह सुलतान बना। उसने समरकंद से तैमूर वंश से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके, अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। अब उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और अपनी मुद्रायें प्रसारित कीं। उसने सुलतान की शक्ति की वृद्धि करने के लिए अमीरों की शक्ति कम करने के प्रयास किये। उसने राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर स्थित खोखरों के उपद्रव को दमन करने का प्रयत्न किया। इस समय इनका नेता जसरथ था। वह अत्यन्त वीर तथा साहसी था। उसने सतलज तथा ब्यास नदियों को पार करके तालबंदा नामक स्थान पर कमालुद्दीन पर आक्रमण किया। कमालुद्दीन परास्त होकर भाग गया। अब जसरथ ने लुधियाना और उसके समीपस्थ प्रदेशों को लूटा। इसी बीच काबुल के शासक शेखअली ने भी सन् १४३३ में पंजाब पर आक्रमण किया और लाहौर तथा दिपालपुर तक के प्रदेश को लूटा। इसी अवधि मे कटेहर, मेवात, इटावा, ग्वालियर और कालपी में भी विद्रोह भड़क उठे। पर मुबारक ने इनका दमन कर दिया। लेकिन जब वह खोखरों के विद्रोह और शेखअली के आक्रमण का सामना करने की तैयारी में था, तब उसके प्रधानमंत्री सरवर उल्मुल्क ने षड़यंत्र करके सन् १४३४ में मुबारकशाह की हत्या कर दी। मुबारकशाह न्यायप्रिय, उदार हृदय तथा गुणसम्पन्न सुलतान था।

मुहम्मदबिन फरीद (सन् १४३४ से १४४५)—सुलतान मुबारक की मृत्यु के बाद उसका गोद लिया हुआ पुत्र मुहम्मद बिन फरीद के नाम से सुलतान हुआ। परंतु वास्तविक सत्ता उसके वजीर सरवर के हाथ में थी। सरवर ने राजकोष पर अपना अधिकार कर लिया और अपने समर्थक अमीरों को शाही पद प्रदान किए। उसने स्वयं भी खान-ए-जहां की उपाधि धारण कर ली। इससे उसके प्रतिद्वंद्वी अमीरों ने कमालुद्दीन के नेतृत्व में विद्रोह किया और उन्होंने मीरी दुर्ग को घेर लिया जहां वजीर सरवर स्वयं अपनी सुरक्षा के लिए चला गया था। सुलतान मुहम्मद-बिन फरीद ने कमालुद्दीन का साथ दिया। इस पर सरवर ने सुलतान की हत्या का प्रयास किया। पर उसके षड़यंत्र का भेद खुल गया। तब सुलतान ने सरवर और उसके साथियों की हत्या करवा दी और कमालुद्दीन को अपना प्रधानमंत्री बनाया। इसी बीच चारों ओर उपद्रव भड़क उठे। जौनपुर, मालवा और ग्वालियर के स्वतंत्र शासक भी सल्तनत के प्रदेशों को हड़पने का प्रयास करने लगे। सुलतान की दुर्बल स्थिति और अव्यवस्था को देखकर खोखर नेता जसरथ ने लाहौर तथा सरहिन्द के शासक बहलोल लोदी को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। बहलोल खोखरों की सहायता से ससैन्य दिल्ली की ओर आक्रमण के लिए बढ़ा पर वह असफल रहा। इसके बाद सन् १४४५ में सुलतान की मृत्यु हो गई।

अलाउद्दीन आलमशाह (सन् १४४५ से १४५१)—**मुहम्मद बिन फरीद की मृत्यु** के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन आलमशाह के नाम से सुलतान बना। वह बड़ा ही अकर्मण्य, अयोग्य और विलासी था। राज्य का सारा भार उसने अपने मंत्री हमीदखां पर छोड़ दिया था और वह स्वयं दिल्ली छोड़कर बदायूँ में रहने लगा था। हमीदखाँ की बढ़ती हुई शक्ति के कारण आलमशाह ने हमीद का वध करना चाहा। इससे अधिक रुष्ट होकर हमीदखां ने बहलोल लोदी को सुलतान बनने के लिये आमंत्रित किया। बहलोल तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में ही था। वह सैन्य सहित दिल्ली गया और उसने निर्विरोध सिंहासन प्राप्त कर लिया और कुछ समय पश्चात् सन् १४५१ में उसने अपने आपको दिल्ली का सुलतान घोषित कर लिया। सुलतान अलाउद्दीन आलमशाह एक साधारण अमीर के समान बदायूँ में निवास करता रहा। सन् १४७८ में उसके देहावसान के बाद सैयद वंश समाप्त हो गया।

लोदो सुलतान

लोदी कौन थे ? बहलोल लोदी के सुलतान बन जाने पर दिल्ली में लोदी वंश का राज्य प्रारंभ होता है। लोदी पठान जाति के थे। ये अफगानिस्तान के निवासी होने सेअफगान भी कहलाते थे। दिल्ली सुलतानों के शासन-काल में इनके पूर्वज भारत में आकर निवास करने लगे थे। अपने सैनिक गुणों और प्रतिभाओं के कारण इन्होंने तुगलक और सैयद सुलतानों के शासन-काल में विशेष उन्नति की। सैयद सुलतान के अंत करने में लोदियों का अत्यधिक हाथ रहा।

सुलतान बहलोल लोदी (सन् १४५१ से १४८९)

प्रारंभिक जीवन—बहलोल सरहिंद के शासक सुलतानशाह लोदी का भतीजा था। सुलतानशाह ने बड़े लाड़-प्यार से बहलोल का पालन-पोषण किया था। उसे अरबी और फारसी के साथ-साथ सनिक शिक्षा दी गयी थी। उसमें अन्य गुणों और प्रतिभा के साथ-साथ पर्याप्त सैनिक गुण भी थे। इससे प्रभावित होकर सुलतानशाह ने इसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर लिया था। जब सुलतानशाह की मृत्यु हो गयी, तब बहलोल सरहिंद का शासक बन गया। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। दिल्ली सुलतान की क्षीण शक्ति और सल्तनत की अराजकता देखकर बहलोल ने अपने आपको दिल्ली से स्वतंत्र घोषित कर लिया। इस पर उसे अपने अधीन करने के लिये दिल्ली सुलतान ने सेना भेजी, जिसे बहलोल ने परास्त कर दिया। एक बार जब बहलोल ने दिल्ली सुलतान मुहम्मद बिन फरीद को विजय के लिये सैनिक सहायता दी थी, तब सुलतान ने प्रसन्न होकर बहलोल को खान-ए-जहां की उपाधि से अलंकृत किया था। इससे बहलोल के प्रभाव व महत्व में वृद्धि हुई। दिल्ली सुलतान मोहम्मद-बिन-फरीद की शक्तिहीनता को देखकर खोखर नेता जसरथ की सहायता से बहलोल ने दिल्ली पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं मिली। जब सुलतान बदायूँ में निवास कर रहा था, तब बहलोल उसके वजीर हमीदखां के निमंत्रण पर ससैन्य दिल्ली गया और वहां १९ अप्रेल सन् १४५१ में निर्विरोध रूप से सुलतान बन गया। बहलोल भा वजीर हमीदखां

की बढ़ी हुई शक्ति से आतंकित था। फलतः उसने हमीद खां को कारागार में बंद कर दिया।

बहलोल की समस्याएँ और विषम परिस्थिति—राज्यारोहण के बाद ही बहलोल को अनेक समस्याओं और भयावह परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। वह चतुर्दिक संकटों से घिर गया था। दिल्ली सल्तनत का अस्तित्व क्षीण हो गया था। सुलतान शक्तिहीन और प्रभाविहीन था। उसका सम्मान और प्रतिष्ठा का अधिक ह्रास हो चुका था। सीमा क्षेत्र और पंजाब में अशान्ति थी। पंजाब विद्रोहियों का अड्डा बन गया था। दोआब में विद्रोह पुनः भड़क उठे थे। जौनपुर के शर्की शासक अपनी शक्ति और राज्य बढ़ा रहे थे और वे दिल्ली को अपने अधिकार में करना चाहते थे। बहलोल लोदी के सबसे भयंकर शत्रु जौनपुर के शासक थे। दिल्ली दरबार के अमीर भी दलबन्दियों में विभक्त थे।

समस्याओं का निराकरण और जौनपुर विजय—बहलोल ने सर्वप्रथम पंजाब में विद्रोहों का दमन कर शांति स्थापित करने का प्रयास किया। वह शीघ्र ही सेना सहित सरहिंद की ओर वहां के अमीरों के दमनार्थ गया। ये अमीर उसे सुलतान के रूप में अपना अधिपति मानने को तैयार नहीं थे। दिल्ली से सुलतान की अनुपस्थिति का लाभ उठाने का अवसर देखकर राजसभा के कतिपय रुष्ट अमीरों ने जौनपुर के शासक महमूदशाह शर्की को दिल्ली पर अधिकार करने के लिये आमंत्रित किया। इस पर महमूदशाह ने सेना सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। पर जैसे ही बहलोल लोदी को इसकी सूचना प्राप्त हुई, वह दिल्ली लौट आया। बहलोल के आगमन पर महमूदशाह अपनी राजधानी जौनपुर बिना युद्ध किये ही भाग गया। इस घटना से बहलोल की शक्ति और प्रतिष्ठा में अधिक वृद्धि हुई और रुष्ट विद्रोही अमीर भी उससे आतंकित हो गये। इसके बाद बहलोल ने मेवात और संभल के अमीरों के विद्रोहों का दमन किया और उन्हें दंड देने के स्वरूप उनके सातसात परगने उनसे छीनकर ईसाखां नामक एक विश्वस्त अमीर को ये परगने दे दिये गये। इसके बाद उसने इटावा, मैनपुरी, चन्दावर आदि क्षेत्रों में शांति और व्यवस्था स्थापित की।

बहलोल लोदी और जौनपुर के स्वतंत्र शासन महामूदशाह शर्की के बीच कुछ अमीरों की मध्यस्थता से संधि हो गई थी। महमूदशाह के देहावसान के बाद हुसेनशाह शर्की जौनपुर का शासक बना। हुसेनशाह महत्वाकांक्षी सुलतान था। उसने सुलतान बहलोल लोदी पर आक्रमण करके उसे युद्ध में परास्त करके, संधि करने के लिये बाध्य किया। अंत में दोनों में मैत्री संधि हो गयी और गंगा नदी को दोनों राज्यों की सीमा स्वीकार कर ली गयी। पर बहलोल ने इसे अपना अपमान समझा। फलतः जब हुसेनशाह शर्की जौनपुर लौट रहा था, तब बहलोल लोदी ने उसकी लौटती हुई सेना पर अकस्मात् भयानक आक्रमण कर दिया और उसे परास्त कर दिया। इसके बाद उसने जौनपुर पर भी आक्रमण किया और उसे जीत कर वहां अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया एवं हुसेनशाह को जौनपुर से निकाल कर अपने पुत्र बारबकशाह को जौनपुर का राज्यपाल नियुक्त किया।

जौनपुर विजय से बहलोल की शक्ति खूब बढ़ गयी। अब उसने धौलपुर, कालपी के प्रदेशों पर भी विजय करके अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके बाद उसने ग्वालियर के विद्रोही राजा को परास्त किया। इस विजय से लौटते समय सन् १४८९ में रोग-ग्रस्त होने से उसकी मृत्यु हो गयी।

सुलतान बहलोल लोदी का मूल्यांकन—सुलतान बहलोल ने अपने परिश्रम, साहस, वीरता और विजय से लोदी राज्य की स्थापना की। उसने अपने युद्धों और विजयों से सुलतान की शक्ति व सत्ता के प्रति आदर तथा भय की भावना पुनः स्थापित कर दी। उसने सल्तनत को सुसंगठित बनाने का प्रयास किया और विरोधियों तथा विद्रोहियों का दमन करके राज्य में शांति तथा सुव्यवस्था स्थापित की। जौनपुर के शासकों की बढ़ती हुई शक्ति कम करके, उन्हें परास्त कर, जौनपुर को अपने अधिकार में कर लिया। यह उसके राजनीतिक ज्ञान का द्योतक है। बहलोल लोदी वीर, साहसी, उदार, दयालु और परिश्रमी सुलतान था। वह अपने इस्लाम धर्म के प्रति श्रद्धा रखता था और दृढ़तापूर्वक धार्मिक नियमों का पालन करता था। विद्वान न होने पर भी वह विद्वानों का आदर करता था और उन्हें राज्याश्रय देता था। वह प्रशासन में न्यायप्रिय सुलतान था। दम्भ और आडंबर से वह दूर रहता था तथा वैभवशाली प्रदर्शनों से मुक्त था।

सुलतान सिकन्दरशाह लोदी (सन् १४८९ से १५१७)

सिकंदर लोदी का राज्यारोहण—सिकन्दर लोदी बहलोल लोदी का पुत्र था जो हिन्दू सुनारबीबी से उत्पन्न हुआ था। वह बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली था। राजकीय शिक्षा प्राप्त होने से वह अपने अन्य भाइयों की अपेक्षा अधिक योग्य हो गया। इसका बचपन का नाम निजामखां था। बहलोल लोदी की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी के लिये राजसभा में दो दल हो गये। एक दल बहलोल लोदी के ज्येष्ठ पुत्र बारबक शाह को दिल्ली का सुलतान बनाना चाहता था और दूसरा दल बहलोल लोदी के तृतीय पुत्र निजामखां को सुलतान के राज्य सिंहासन पर आसीन करना चाहता था। अधिकांश अमीर बारबकशाह के पक्ष में थे। परन्तु इस समय बारबकशाह राजधानी दिल्ली में उपस्थित नहीं था। इसका लाभ निजामखां के समर्थक अमीरों ने उठाया। अंत में अमीरों के सहयोग से निजामखां सिकन्दर लोदी के नाम से १७ जुलाई सन् १४८९ में दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठा। जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ तब उसे पश्चिम में सीमांत प्रदेश से लेकर पूर्व में जौनपुर तक का क्षेत्र अपने पिता बहलोल लोदी से वसीयत के रूप में प्राप्त हुआ था। बहलोल ने पंजाब और सिंध तो पहिले ही अपने अधीन कर लिये थे और बाद में मेवात, संभल, इटावा, चन्दावर, कोल, रेवाड़ी आदि भी जीत लिये थे।

सिकन्दर लोदी के उद्देश्य—सुलतान बनने के पश्चात् सिकन्दर ने अपने सम्मुख निम्नलिखित उद्देश्य रखे—

(१) सल्तनत की अव्यवस्थित, बिगड़ी आन्तरिक दशा सुधारना तथा प्रशासन को व्यवस्थित करना।

(२) निरकुंश स्वेच्छाचारी शासक बनकर समस्त सत्ता और अधिकार अपने हाथों में केन्द्रीभूत करना;

(३) स्वतंत्र और विद्रोही अमीरों का दमन कर उन्हें आतंकित कर अपने नियंत्रण में रखना;

(४) सल्तनत की सीमाओं का अन्य राज्यों की विजय कर विस्तार करना।

सिकन्दर लोदी की समस्याएँ

सुलतान बनते ही सिकन्दर के सम्मुख निम्नलिखित समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं—

(१) **प्रतिद्वंद्वी उत्तराधिकारी**—बहलोल लोदी का ज्येष्ठ पुत्र बारबकशाह था। सिकन्दर इससे छोटा था। सल्तनत का वास्तविक उत्तराधिकारी बारबकशाह था। वह हुसेनशाह शर्की के प्रोत्साहन से सुलतान बनना चाहता था। सिकन्दर का चाचा आलमखां भी सुलतान बनने का इच्छुक था। वह चन्दावर तथा रोपड़ी में अपनी स्वाधीन सत्ता स्थापित करने के पक्ष में था। इसके अतिरिक्त सिकन्दर का चचेरा भाई आजम हुमायूं भी सल्तनत के सिंहासन का उत्तराधिकारी था।

(२) **विरोधी अमीर और सरदार**—अनेक अमीरों और सरदारों ने सिकन्दर के प्रतिद्वंद्वियों का समर्थन किया और वे उसके विरोध में हो गये। राजसभा में अमीरों और सरदारों के शक्तिशाली दल हो गये। कतिपय अमीर और सरदार अधिक बलवान और समृद्ध होने से सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। इनमें ईसाखां प्रमुख था। सिकन्दर को इन विद्रोही अमीरों की शक्ति का अन्त करना था।

(३) **स्वतंत्र शासक**—नरवर, चन्देरी, ग्वालियर आदि स्थानों के स्वतंत्र शासक थे, जो सल्तनत से पृथक हो गये थे। इन्हें परास्त करके, उन्हें सुल्तान के अधीन करना व इससे वह साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था।

(४) **शासन की शिथिलता**—प्रशासन में शिथिलता और अस्तव्यस्तता आ गयी थी। सुलतान का दबदबा कम हो गया था, उसके आदर व सम्मान में कमी हो गयी थी।

समस्याओं का निराकरण—सिकन्दर लोदी ने निम्नलिखित रूप से इन समस्याओं का निराकरण किया।

(१) **बारबकशाह का दमन**—सिकन्दर ने अपने प्रतिद्वंद्वी और ज्येष्ठ भ्राता बारबकशाह को समझा-बुझाकर अपने आधीन करना चाहा और अपना एक दूत फरमान सहित बारबकशाह के पास भेजा। इस फरमान में यह आदेश था कि बारबकशाह सिकन्दर लोदी को अपना सुलतान स्वीकार करले और दोनों में परस्पर संधि हो जाय। इस समय बारबक शाह जौनपुर का शासक था। परन्तु हुसेनशाह शर्की ने बारबकशाह को इस फरमान को अस्वीकार करने के लिये भड़का दिया। हुसेनशाह जो पूर्व में जौनपुर का सुलतान था, दोनों भाइयों में गृह-युद्ध करवाकर जौनपुर पर पुनः अपना अधिकार स्थापित करने के प्रयत्न में था। पर बारबक इस चाल को समझ नहीं सका। वह अपनी सेना लेकर सिकन्दर से युद्ध करने के लिये कन्नौज तक जा पहुँचा। यहां सिकन्दर और बारबक की सेनाओं में युद्ध हुआ और इसमें सिकन्दर लोदी विजयी

हुआ। बारबक परास्त होकर बदायूं की ओर भाग गया। वहां तक सिकन्दर ने उसका पीछा कर, उसे घेर लिया तथा आत्म-समर्पण करने के लिये बाध्य किया। उसे बंदी बना लिया गया। परन्तु कुछ अफगान अमीरों की सिफारिश पर सिकन्दरशाह ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया और उसे कारावास से मुक्त कर अपने अधीन जौनपुर का सूबेदार नियुक्त कर दिया और कुछ विश्वसनीय अमीरों को वहां भेज कर सुरक्षा व्यवस्था दृढ़ कर दी जिससे कि वह पुनः विद्रोह कर न सके।

(२) आलमखां, आजम हुमायूं और तातारखां का दमन—सिकन्दर का चाचा आलमखां भी सल्तनत के सिंहासन के लिये सिकन्दर का एक प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवार था। सिकन्दर ने उसे रापड़ी में परास्त किया। इस पर आलमखां ने भागकर सिकन्दर के चचेरे भाई ईसाखां के यहां शरण ली और उससे सिकन्दर के विरुद्ध साँठ-गाँठ कर ली। ईसाखां सिकन्दर के राज्यारोहण के विरोधियों का नेता था। इस समय सिकन्दर ने दोनों की सम्मिलित सेना का सामना करने की अपेक्षा दूरदर्शिता और कूटनीति से काम लिया और आलमखां को इटावा का सूबेदार नियुक्त करने का प्रलोभन दिया। आलमखां ने इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सिकन्दर ने आलमखां को ईसाखां से पृथक कर, ईसाखां को परास्त कर दिया। इसके पश्चात् सिकन्दर ने अपने एक अन्य चचेरे भाई आजम हुमायूं को जो सिंहासन का उम्मीदवार था, परास्त किया और उससे कालपी का क्षेत्र छीन लिया।

(३) विद्रोहों का दमन—अपने सुलतान बनने के बाद ही उसे विद्रोही अमीरों और सरदारों का सामना करना पड़ा। उसने एक शक्तिशाली अमीर तातारखाँ के विद्रोह का दमन कर उसे परास्त कर दिया। परन्तु तातारखाँ के साथ उसने उदारता का व्यवहार किया और उसे अपने पक्ष में करने के लिये उसे झातरा की जागीर दे दी। उसने बयाना के विद्रोह का भी दमन किया। इसके बाद उसने जौनपुर के अमीरों के विद्रोह का कठोरता से दमन कर दिया।

(४) अमीरों और सरदारों का दमन और उन पर नियंत्रण—सल्तनत मे अनेक शक्तिशाली सरदार और अमीर थे। इनके अपने सशक्त दल थे। सुलतान की शक्ति क्षीण होने और अवसर आने पर ये सुलतान का विरोध भी करते थे। इस स्थिति को देखकर सिकन्दर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सल्तनत की प्रगति के लिये तथा निरंकुश शासन के हेतु सरदारों व अमीरों की शक्ति का दमन और उन पर नियंत्रण आवश्यक है। सिकन्दर अमीरों की विद्रोही, अनुशासनहीन प्रवृत्ति को कभी सहन नहीं कर सकता था। वह विद्रोही अमीरों से घृणा करता था और उनकी स्वतंत्रता की प्रवृत्ति का प्रबल विरोधी था। वह उनकी बढ़ती हुई शक्ति को कुचल कर उन पर पूर्ण नियंत्रण रखना और आतंकपूर्ण प्रभाव जमाना चाहता था। वह यह भी चाहता था कि सरदार और अमीर उसके आदेशों को बिना किसी शिकायत के, सम्मान कर तत्काल स्वीकार करें और सुलतान की प्रतिष्ठा को मानें। इसके लिये उसने निम्नलिखित कदम उठाये।

(i) सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की भांति उसने भी अपनी गुप्तचर व्यवस्था दृढ़ बनायी। अमीरों और सरदारों के घरों और कार्य क्षेत्रों तक गुप्तचरों का व्यापक

जाल बिछा दिया । इससे वह अमीरों की हलचल, विचार-विनिमय आदि की सूचना शीघ्र ही उपलब्ध कर लेता था । इस दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था से सरदार आतंकित हो गये और उसके प्रभुत्व को मानने लगे ।

(ii) उसने अमीरों, सरदारों व सूबेदारों को बाध्य किया कि वे राजसभा के भीतर और बाहर सुलतान का सभी प्रकार से सम्मान करें, उसके पद की प्रतिष्ठा को मानें । वह अमीरों और सरदारों को अपनी राजसभा में अपने कालीनों पर बैठने देने की अपेक्षा उन्हें खड़ा रखता था और उनसे अपनी आज्ञाओं और आदेशों का पालन करवाता था । उसकी अनुपस्थिति में भी उसकी आज्ञाओं का पालन करना उनके लिये अनिवार्य था । जब सुलतान सिकन्दर कोई फरमान जारी करता था, तो अमीर लगभग ६ किलोमीटर की दूरी तक चलकर उसका स्वागत करता था ।

(iii) उसने उन अमीरों व सरदारों के हिसाब की कठोरता से जांच करवायी जो सूबेदार या प्रांतीय शासक या अन्य पदाधिकारी नियुक्त किये गये थे । जिनके हिसाब में गड़बड़ी पायी गयी या जिन्होंने शासकीय धन का गबन किया, उन्हें कठोरता से दंड दिया गया । जौनपुर के मुख्य अमीर मुबारकखां लोदी को इसलिये कठोर दंड दिया गया कि उसने राजस्व की धनराशि राजकोष में जमा नहीं की थी ।

(iv) उसने अमीरों को सुलतान के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करने और अनुशासन बनाये रखने के लिए बाध्य किया । जिन्होंने इसकी अवहेलना की उन्हें कठोर दंड भी दिया । एक बार सुलतान के सामने ही कुछ अमीर चौगान नामक खेल खेलते समय परस्पर लड़ पड़े । उन्होंने सुलतान की उपस्थिति और उसकी प्रतिष्ठा की अवहेलना की । इस पर सुलतान ने इन अमीरों को सबके सामने कोड़े लगवाये ।

(v) सिकन्दर लोदी ने आगरा के निकट सिकन्दरा नगर में एक सैनिक-गृह बनाने की योजना बनाई जिससे कि धौलपुर, बयाना, कौल, ग्वालियर, जौनपुर आदि स्थानों के अमीरों पर नियंत्रण रखा जा सके ।

सिकन्दर लोदी के इन कार्यों से अमीर और सरदार अधिक रुष्ट हो गये और उन्होंने सुलतान के भाई फतेहखां के पक्ष में सुलतान के विरुद्ध विद्रोह करने का षड़यत्र रचा । वे फतेहखां को सुलतान बनाना चाहते थे । समय से पूर्व ही सिकन्दर को इसका पता लग गया । फलतः उसने षड़यंत्रकारी अमीरों का बड़ी निर्भयता से दमन किया तथा षड़यंत्र में सम्मिलित बीस अमीरों को राजसभा से सदा के लिये निकाल दिया ।

सिकन्दर के इन प्रयत्नों व कार्यों से अमीरों को उसके विरुद्ध षड़यंत्र या विद्रोह करने का साहस नहीं रहा और वे पूर्णरूपेण सिकन्दर के आतंक व प्रभुत्व में आ गये ।

सिकन्दर की विजय—सिकन्दर साम्राज्यवादी और विस्तारवादी नीति में विश्वास करता था । इसलिये उसने विजय करके दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का विस्तार किया ।

(१) **जौनपुर विजय**—यद्यपि सिकन्दर ने बारबकशाह को जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया था, पर वह अयोग्य शासक निकला। उसकी दुर्बलता और अयोग्यता का लाभ उठाकर जौनपुर के अमीरों और वहां के भूतपूर्व शासक हुसैनशाह शर्की ने विद्रोह कर दिया। हुसेनशाह ने इस विद्रोह का नेता बनकर जौनपुर को हस्तगत करना चाहा। उसने अमीरों की सहायता से दिल्ली पर भी आक्रमण करने का निश्चय किया। वह एक विशाल सेना लेकर आगे बढ़ा। वाराणसी के समीप हुसेनशाह और सिकन्दर लोदी की सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें सिकन्दर ने हुसेनशाह को परास्त कर दिया। हुसेनशाह रणक्षेत्र से बंगाल में लखनौती भाग गया और वहां उसने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। अब सिकन्दर ने पूर्ण रूप से जौनपुर को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया और वहां सुयोग्य कर्मचारियों की नियुक्ति की जिन्होंने वहां पूर्णतया शांति-व्यवस्था स्थापित कर दी।

(२) **बिहार और तिरहुत विजय**—हुसेनशाह शर्की का पीछा करते हुए सिकन्दर बिहार तक पहुंच गया और उसे जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इसके बाद उसने तिरहुत के राजा को भी परास्त कर दिया और उसे अपने अधीन कर लिया।

(३) **बंगाल के अलाउद्दीन हुसेनशाह से संधि**—इस समय अलाउद्दीन हुसेनशाह बंगाल का स्वतंत्र शासक था। बिहार उसी के अधीन था। जब उसे विदित हुआ कि सिकन्दर लोदी ने बिहार पर आक्रमण किया, तो वह एक विशाल सेना लेकर उससे युद्ध करने के लिये आगे बढ़ा। सिकन्दर दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ था। वह अलाउद्दीन से शत्रुता और युद्ध नहीं चाहता था। इसीलिये युद्ध होने से पूर्व ही अलाउद्दीन और सिकन्दर में परस्पर मैत्री संधि हो गयी। इसके अनुसार कोई भी शासक एक दूसरे के राज्य पर आक्रमण नहीं करेगा, एक दूसरे के शत्रुओं को शरण नहीं देगा और दोनों पक्ष भविष्य में मित्रतापूर्वक रहेंगे। इस संधि से दिल्ली सल्तनत की सीमाएँ बंगाल तक विस्तृत हो गयीं।

(४) **धौलपुर, ग्वालियर, चन्देरी, कालपी और रणथंभौर विजय**—साम्राज्य विस्तार की भावना से प्रेरित होकर उसने सन् १५०२ में धौलपुर, ग्वालियर और कालपी राज्यों पर आक्रमण किया। इसमें उसे सफलता मिली। इसके बाद उसने चन्देरी और नरवर के स्वतंत्र राजपूत नरेशों को भी परास्त कर अपने आधीन कर लिया। रणथंभौर दुर्ग भी उसने जीत लिया। इन राज्यों से उसने वार्षिक कर वसूल किया।

विजयों का परिणाम—इन विजयों से दिल्ली सल्तनत की सीमाएँ और क्षेत्र बढ़ गये, सल्तनत के सम्मान और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और इन राज्यों से प्राप्त होने वाले वार्षिक कर से दिल्ली का राज्य-कोष समृद्ध हो गया।

सिकन्दर लोदी की मृत्यु—जीवन भर युद्ध और संघर्ष करते रहने से सिकन्दर लोदी का स्वास्थ्य गिर गया था और जब वह मालवा प्रदेश पर आक्रमण कर विजय करने की योजना बना रहा था, तब वह विषम ज्वर से ग्रस्त हो गया और नवंबर माह में सन् १५१७ में उसकी मृत्यु हो गयी।

सिकन्दर लोदी का शासन प्रबध

सिकन्दर लोदी का संपूर्ण जीवन विद्रोहों का दमन करने तथा दिल्ली सल्तनत को संगठित करने में व्यतीत हो गया, इसलिये वह प्रशासन की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सका। फिर भी उसने कतिपय महत्वपूर्ण प्रशासकीय कार्य किये। इनका विवरण अधोलिखित है—

(१) **निरंकुश दृढ़ केन्द्रीय शासन**—सिकन्दर लोदी ने केन्द्रीय सत्ता को दृढ़ और शक्तिशाली बना दिया। राज्य की सारी सत्ता और अधिकार उसने अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर लिये थे। वह समस्त उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था और उन्हें अपने प्रभुत्व और नियंत्रण में रखता था। वह निरंकुश शासन स्थापित करना चाहता था और स्वयं स्वेच्छाचारी सुलतान था। उसकी सत्ता, शक्ति और अधिकार असीमित थे। उन पर किसी का नियंत्रण नहीं था।

(२) **सुलतान के सम्मान और प्रतिष्ठा में वृद्धि**—वह चाहता था कि सभी उसका सम्मान करें। लोग सुलतान के सम्मान और गौरव को नहीं भूलें। इसीलिये उसने अमीरों को यह आदेश दिया था कि वे प्रत्येक स्थान पर सुलतान का सम्मान करें और उसके आदेशों व फरमानों को विधिवत् मानें। उसने अमीरों व सरदारों से अपने फरमानों का स्वागत करवाया और इनकी अवहेलना करने वालों को उसने कठोर दंड दिये।

(३) **द्वैध शासन प्रणाली**—उसने राज परिवार के राजकुमारो को तथा अपने भाइयों को शासकीय अधिकारियों के साथ कार्य करने के लिये बाध्य किया। इससे वे प्रशासन में परस्पर एक दूसरे पर नियंत्रण-सा रख सकें और राज्य प्रबन्ध में द्वैध शासन प्रणाली प्रारंभ हो गयी। इससे सुलतान ने लाभ उठाया। वह विद्रोही प्रवृत्ति को सरलता से कुचल सका और निरंकुश सुलतान बन सका।

(४) **अमीरों पर नियन्त्रण**—सिकन्दर ने अमीरों के प्रति परम्परागत नीति को परिवर्तित कर दिया। उसने अमीरों, सरदारों और उनमें से नियुक्त शासकों व पदाधिकारियों के हिसाब की पूरी-पूरी जांच करवायी, उनका समुचित निरीक्षण किया। राजकीय धन का गबन या दुरुपयोग करने वालों को, हिसाब में गड़बड़ी करने वालों को उसने कठोर दंड दिये। उसने दृढ़ गुप्तचर प्रथा संगठित करके अमीरों और सरदारों के दैनिक जीवन में.उनके निवास स्थानों में गुप्तचरों का जाल-सा बिछा दिया। इससे वह अमीरों और पदाधिकारियों की हलचलों को और सूक्ष्मबातों व कार्यों को भी जान सकता था। इससे उन्हें वह सरलता से दंडित कर सका और उन पर कठोर नियंत्रण भी रख सका। उनके विद्रोहों व षडयन्त्रों का सामना भी वह कर सका। उसने विद्रोहियों को कठोर दंड देकर अपने अधीन रखने का प्रयास किया। जो अमीर और जमींदार अपने अत्याचारों के लिये प्रसिद्ध हो गये थे, वे बड़ी कठोरता से दबा दिये गये। उसने अमीरों के सेवकों को भी स्वयं नियुक्त किया जिससे कि वे अप्रत्यक्ष रूप से उसके ही अधीन रहें और अमीर संगठित होकर विद्रोह न कर सकें। अमीरों की बढ़ती हुई शक्ति का दमन करने के लिये और उन पर दृढ़ नियंत्रण रखने के लिये उसने कतिपय महत्वशाली स्थानों पर सैनिक छावनियां स्थापित कीं। सन्

१५०४ में ऐसी ही छावनी के रूप में उसने आगरा नगर की नींव डालकर उसे बसा लिया था। इसने आगरा को अपनी दूसरी राजधानी बनाया था।

(५) **न्याय-व्यवस्था**—सिकन्दर न्याय-प्रिय सुलतान था। वह शरियत के अनुसार न्याय-दान की व्यवस्था चाहता था। उसने विभिन्न श्रेणी के न्यायालय और न्यायाधीश नियुक्त किये। उसने केन्द्रीय काजी, प्रान्तीय काजी और नगर काजी क मुकदमों की छान-बीन करवाकर समुचित न्याय देने की व्यवस्था की। अपराधियों और चोर-डाकुओं को समुचित दंड दिया जाता था। उसकी दंड व्यवस्था कठोर थी।

(६) **राजस्व प्रबन्ध**--सिकन्दर ने राजस्व प्रबन्ध की ओर विशेष ध्यान दिया। वह यह सिद्धान्त समझ चुका था कि अच्छे दृढ़ प्रशासन के लिये राजकोष नियमित रूप से राजस्व से परिपूर्ण होना चाहिये। भूमि कर ठीक रूप से वसूल होना चाहिये। इसलिये उसने राजस्व विभाग को सुदृढ़ किया। करों की वसूली की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने अनाज पर से कर हटा दिये। इससे कृषकों को लाभ हुआ, कृषि में सुधार हुआ और खाद्यान्न में वृद्धि हो गयी। व्यापारिक प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया। इससे व्यापार व्यापक हो गया और आर्थिक जीवन प्रभावित हुआ। दरिद्र लोग भी सुखी और संतोष का जीवन व्यतीत करने लगे।

(७) **अन्य व्यवस्था**—जैसा ऊपर वर्णित है, उसने प्रशासन में दृढ़ गुप्तचर व्यवस्था स्थापित की। अमीरों व अधिकारियों के निवासगृहों तथा अन्य स्थानों पर गुप्तचरों का ऐसा जाल था कि प्रत्येक कार्य की सूचना सुलतान को प्राप्त हो जाती थी। उसने शांति व व्यवस्था भी स्थापित की जिससे सड़कें डाकुओं से मुक्त हो गयीं। अब्दुल्ला ने अपने ग्रंथ तारीख-ए-दाऊदी में सिकन्दर लोदी के विषय में लिखा है कि, "सुलतान नित्य सभी वस्तुओं के मूल्य का हिसाब मांगता था। यदि कोई थोड़ी-सी भी अनुचित बात, उसे मालूम होती तो वह उसकी जांच करता। उसके राज्य में सब काम ईमानदारी, शांति और निष्कपटता से होता था। उसने उत्कृष्ट साहित्य की भी कभी उपेक्षा नहीं की। उसने कारखानों की स्थापना को भी प्रोत्साहन दिया।"

धार्मिक नीति—सिकन्दर कट्टर धर्मांध सुलतान था। उसका राज्य इस्लामी था और प्रशासन इस्लामी धर्म नीति से प्रभावित था। फिरोज तुगलक की भांति उसने भी हिन्दुओं के प्रति दमन और असहिष्णुता की नीति अपनायी। सुलतान बनने के पूर्व जब वह राजकुमार था, तभी उसने थानेश्वर के पवित्र तालाब में हिन्दुओं के स्नान आदि पर प्रतिबंध लगा दिये थे। सुलतान बनने पर वह हिन्दुओं को बल-पूर्वक मुसलमान बनाने का प्रयास करता रहा। उसने बोधन नामक एक ब्राह्मण को, जो कबीर का अनुयायी था, इसलिये मृत्यु दंड दे दिया कि उसने इस्लाम धर्म को न अपनाते हुए कहा था कि, "हिन्दू धर्म उतना ही सच्चा है, जितना कि इस्लाम।" बोधन के समर्थकों को भी उसने कठोर दंड दिये। उसने हिन्दुओं के मंदिरों को विध्वंस करने में बड़ा प्रोत्साहन प्रदर्शित किया। उसने नगरकोट में ज्वालामुखीदेवी की प्रतिमा को तोड़-फोड़कर उसके टुकड़े कसाइयों की दुकानों पर इसलिये वितरित कर दिये कि वे उनका उपयोग मांस तौलने के लिये बांटों के रूप में कर सकें। उसने

हिन्दुओं की पवित्र नदी यमुना तट पर बने घाटों पर हिन्दुओं की हजामत नाइयों द्वारा बनाने और वहां हिन्दुओं के स्नान करने पर कठोर प्रतिबंध लगा दिये। पवित्र तीर्थस्थान मथुरा तथा अन्य अनेक प्रसिद्ध नगर जैसे उतगिर, नरवर, चंदेरी, मंदेल आदि में मन्दिरों को विध्वंस कर उनके स्थान पर उसने मसजिदें निर्माण करवायीं जिससे वहां हिन्दुओं का प्रभाव नगण्य हो जाय। हिन्दू विरोधी नीति में सिकंदर अन्य सुलतानों की अपेक्षा अधिक आगे था।

सिकन्दर का चरित्र और उसका मूल्यांकन

व्यक्तित्व और चरित्र—सुलतान सिकन्दरशाह का व्यक्तित्व श्रेष्ठ और प्रभावशाली था। उसका स्वरूप और आकृति बादशाहों जैसी थी। वह कद में लम्बा, अत्यंत रूपवान और आकर्षक व्यक्ति था। वह सुन्दर और सजीव था। तारीख-ए-दाऊदी में लिखा है कि वह इतना सुन्दर था कि बाल्यकाल में प्रसिद्ध मौलवी शेख हसन उस पर आसक्त हो गया था और उससे प्रेम करने लगा था। जिससे अत्यंत कठिनाई से सिकन्दर अपना पीछा छुड़ा सका था और उसने मौलवी की दाढ़ी जला दी थी। सिकन्दर की चाल-ढाल और रहन-सहन स्वाभाविक रूप से प्रभावशाली थे।

उसमें सुलतानोचित सभी गुण विद्यमान थे। राजपद के लिये जिन सद्‌गुणों की आवश्यकता होती है, वे सभी उसमें प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। उसमें वीरता, साहस, शौर्य, धैर्य, न्यायप्रियता राजनीतिज्ञता आदि गुणों का अभाव नहीं था। वह सुसंस्कृत, साहित्य प्रेमी और कलामर्मज्ञ सुलतान था। वह स्वभाव से धर्मभीरु था। इससे मौलवियों और उल्माओं को उसके राज्य में प्रमुख स्थान प्राप्त था। वह इनसे अपने राजकार्यों में परामर्श भी लेता था। वह धर्मनिष्ठ सुलतान था। पर रोजा और नमाज में वह कभी कभी नागा भी कर देता था। वह पांचों बार नियमित विधिवत् प्रतिदिन नमाज नहीं पढ़ता था।

सिकन्दर दयालु, उदार और दानी प्रवृत्ति का सुलतान था। वह प्रतिवर्ष राजकोष से एक विशाल धनराशि दान करता था। वह चाहता था कि अन्य लोग उसके इस गुण का अनुकरण करें। फलत: राज्य में दानियों की संख्या में वृद्धि हो गयी और साधुसंतों, विद्वानों, दीन-दुखियों और दरिद्रों को प्रचुर मात्रा में दान दिया जाता था। वह मुस्लिम त्यौहारों पर निर्धनों को भोजन वितरित करता था। वह मुस्लिम विधवाओं को उनकी कन्याओं के विवाह के लिये भी धन देता था। वह विद्वानों, विद्यार्थियों और उल्माओं को पुरस्कार एवं जीवन भत्ते देता था। मुस्लिम इतिहासकारों ने उसकी दानशीलता की विशद् गाथाएँ प्रस्तुत की हैं। कार्य संपादन में वह कुशल था। वह प्रत्येक कार्य का समय निश्चित कर देता था और एक बार स्थापित की गयी रूढ़ियों और परम्पराओं में परिवर्तन नहीं करता था। उसकी स्मरण शक्ति तीव्र थी। वह जिस व्यक्ति से एक बार जिस ढंग से मिलता था, उसे स्मरण कर वह उससे उसी ढंग से मिलता था।

धर्मानुरागी होने के कारण सिकन्दर दुराचारिता और विलासिता से घृणा करता था। आखेट में उसकी बड़ी अभिरुचि थी। मद्यपान का वह बहुत शौकीन था, परन्तु वह अत्यन्त फुर्तीला, चुस्त, उद्यमी और कर्मठ सुलतान था।

योग्य शासक—सिकन्दर लोदी एक योग्य शासक था। उसमें वीरता, साहस, कुशलता, राजनीतिज्ञता आदि गुण विद्यमान थे। उसमें प्रशासक के गुण थे। वह अपने पिता के शासन-काल में अनेक पदों पर कार्य कर चुका था। वह सरहिंद का राज्यपाल भी रह चुका था और अपने पिता बहलोल लोदी की अनुपस्थिति में उसने दिल्ली में शासन कार्य को भी संभाला था। इसलिए उसमें प्रशासन का अच्छा प्रचुर अनुभव था। अपने इस अनुभव और गुणों के कारण ही वह लोदी वंश का श्रेष्ठ और सफल सुलतान बन सका। फिरोज के दुर्बल और निकम्मे उत्तराधिकारियों तथा सैयद-वंशीय सुलतानों के ६५ वर्ष के शासन-काल में अराजकता और अव्यवस्था फैल गयी थी। इसे दूर करने का और सही रूप में शांति व्यवस्था पुनः स्थापित करने का श्रेय सिकन्दर लोदी को है। उसमें स्वेच्छाचारिता कूट-कूट कर भरी थी।

उसने दृढ़ केन्द्रीय शासन व्यवस्था स्थापित की। सुलतान के पद के सम्मान और प्रतिष्ठा में उसने वृद्धि की। विद्रोह और अशांति उत्पन्न करने वाले सभी तत्वों को उसने कठोरता से कुचल दिया। उसने अमीरों और सरदारों के बढ़ते हुए अधिकारों और शक्ति को कम कर दिया और उन्हें राज्य के स्वामिभक्त और आज्ञाकारी सेवक बना दिया। अपराधी अमीरों को कठोर दंड देकर उसने उनके उपद्रवों और विद्रोहों का दमन किया। धैर्य, साहस और वीरता से उसने सभी विद्रोहों का दमन कर अमीरों को अपने नियंत्रण में रखा। उसने उद्दंड अफगान अमीरों को अपने वश में करके एक बार पुनः बलवन के समय जैसी ताज की प्रतिष्ठा और गौरव को स्थापित कर दिखाया। उसने अमीरों को सुलतान के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने और उसकी आज्ञाओं और फरमानों को मानने के लिये बाध्य किया। यद्यपि सिकन्दर जीवन भर अमीरों से संघर्ष करता रहा और उन्हें नियंत्रित करने में सफल भी हो गया था, परन्तु इस समय अमीरों का इतना अधिक चारित्रिक पतन हो चुका था कि उन्हें उचित मार्ग पर लाना दुष्कर कार्य था। अमीर इतने अयोग्य और पतित हो गये थे कि वे राज्य पर भारस्वरूप थे और उन्हें पूर्णरूपेण अधीन करना असंभव था। इस दृष्टि से सिकन्दर को पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी और उसके उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी को इन अमीरों से कड़ा सामना करना पड़ा।

प्रशासन में उसने कर-व्यवस्था दृढ़ की। अधिकारियों और राज्यपालों के हिसाब की जांच करवाकर आय-व्यय निश्चित कर दिया। राजकोष के धन की वृद्धि की। कृषि और व्यापार में भी उन्नति की गयी। प्रशासन में वह परम्परागत रीति-रिवाजों का उल्लंघन नहीं करता था नौकरी देने में वह वंश और योग्यता का ध्यान रखता था। उसने शासन व्यवस्था में शक्ति, स्फूर्ति और जीवन फूंकने का प्रयास किया। ये सब बातें उसके सफल प्रशासक होने के प्रमाण हैं।

न्यायप्रिय सुलतान—सिकन्दर न्यायप्रिय सुलतान था। न्याय के लिये उसके हृदय में अगाध प्रेम था। न्याय के हेतु दीन-दुखियों की प्रार्थनाएँ वह स्वयं सुनता था और उनका निर्णय देता था। न्यायदान में परामर्श के लिये वह उल्मा को सदैव अपने निकट रखता था। वह इस बात का प्रयत्न करता था कि न्याय शीघ्र और निष्पक्ष हो। उसका दंड-विधान कठोर था।

कुशल सेनापति—वह एक वीर योद्धा और कुशल सेनानायक था। वह जीवन भर विद्रोहों का दमन, संघर्ष और युद्ध करता रहा। उसने अपनी रण कुशलता और आक्रमण के ढंग से अमीरों और अपने विरोधी, प्रतिद्वन्द्वियों के विद्रोहों और उपद्रवों को कुचल दिया। यदि उसने अपनी रण कुशलता से एक ओर जौनपुर और बिहार विजय करके दिल्ली सल्तनत की सीमा बंगाल तक फैला दी, तो दूसरी ओर चन्देरी, धौलपुर और रणथंभोर को विजय करके राजस्थान में सल्तनत की सीमाओं को फैलाने का प्रयास किया। ग्वालियर के राजा मानसिंह को पूर्ण रूप से परास्त करने में उसे सफलता नहीं मिली। ग्वालियर को छोड़कर और किसी युद्ध में उसे असफलता का मुंह नहीं देखना पड़ा। उसने अपनी विजयों से एक बार पुनः दिल्ली की सल्तनत की सीमाओं को बढ़ाया। कुछ विद्वानों का मत है कि उसमें सैनिक योग्यता का अभाव था। ग्वालियर और भाटा के राजाओं को परास्त करने में उसे असफलता मिली। दोषपूर्ण सैन्य संचालन और रसद के अभाव में उसे इन अभियानों में क्षति उठाना पड़ी। पर इस असफलता से यह नहीं कहा जा सकता कि वह कुशल सेनापति और विजयी योद्धा नहीं था।

विद्या और कला का अनुरागी और संरक्षक—सिकन्दरशाह साहित्य-प्रेमी और कलमर्मज्ञ था। वह साहित्य का अनुरागी और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसकी राजसभा में श्रेष्ठ विद्वान थे। अनेक विद्याओं और कलाओं में निपुण मियांताहिर संभवतः उसकी राजसभा के विद्वान थे। उसके वजीर मियां भुजा फारसी और संस्कृत भाषा में विशेष अभिरुचि रखते थे। उसकी प्रेरणा से सिकन्दर ने संस्कृत का एक आयुर्वेद का ग्रंथ तिब्ब-ए-सिकन्दरी (महाआयुर्वेदक) ग्रंथ के नाम से फारसी में अनूदित करवाया। इस ग्रंथ को "फरहंगे सिकन्दरी" भी कहा जाता है। सिकन्दर स्वयं शिक्षित, विद्वान और कवि था। उसकी बुद्धि कुशाग्र थी और स्मरण शक्ति अद्भुत जिसके आधार पर उसने अनेक उपयोगी बातें संग्रहित कर ली थीं। वह स्वयं फारसी में कविता करता था और उसका उपनाम "गुलरुख" था। वह संगीत का भी प्रेमी था और संगीत कला के प्रोत्साहन के लिये उसने प्रयास किये। स्थापत्य कला के प्रति उसे अनुराग था। उसने हिन्दू मन्दिरों की पाषाण सामग्री से अनेक मसजिदों व भवनों का निर्माण करवाया। उसने आगरा नगर बसाया और वहाँ कई भवनों, मसजिदों और सरायों का निर्माण कर उसे अधिक सुन्दर बनाया। यद्यपि आगरा नगर बसाने के दूसरे वर्ष ही जुलाई माह में आये भयंकर भूचाल ने आगरा के अनेक भवनों और मकानों को धूल में मिला दिया था परन्तु बाद में सिकन्दरशाह ने आगरा को अपनी राजधानी बना लिया और वहीं स्थायी रूप से निवास करने लगा। आगरा के अतिरिक्त उसने अन्य स्थानों पर भी मकबरे बनवाये जिनमें दिल्ली में सिकन्दर लोदी का मकबरा ऐतिहासिक और महत्वशाली है।

सुलतान पद के गौरव और प्रतिष्ठा का पोषक—सिकन्दर लोदी की यह विशेषता रही है कि उसने सुलतान के गिरते हुए सम्मान को ऊँचा उठाकर उसके गौरव और प्रतिष्ठा की रक्षा की। उसके लिये अनेक प्रयास किये। उसने अमीरों, पदाधिकारियों और शासकों को बाध्य किया कि वे सुलतान का सम्मान करें, उसके फरमानों

और आदेशों को बिना किसी संकोच व अवहेलना के स्वीकार करें। वह सुलतान की प्रतिष्ठा को उन्नत करने के लिये, राजसभा में अमीरों को अपने आसनों पर बैठने नहीं देता था। अपना गौरव बढ़ाने के लिये वह रात्रि के समय भोजन के पूर्व सत्रह विद्वानों को अपने पास आमंत्रित करता था और ये विद्वान उसके सम्मुख पालथी मारकर बैठ जाते थे। इनके सामने भोजन परोसा जाता था। परन्तु जब तक सुलतान अपना भोजन समाप्त नहीं कर लेता था, तब तक वे अपना परोसा हुआ भोजन छू नहीं सकते थे। सुलतान के भोजन के बाद वे अपना भोजन परोसा हुआ थाल घर ले जाते थे और वहां उसे ग्रहण करते थे।

धार्मिक संकीर्णता और पक्षपात—सिकन्दर हिन्दुओं का परम विरोधी था। उसकी उदारता, न्याय, दान, प्रशासन और प्रजावत्सलता मुस्लिम प्रजा के लिये ही थे। उसने हिन्दुओं के प्रति भेदभाव और पक्षपात की नीति अपनायी। वह हिन्दुओं और मुसलमानों को समान दृष्टि से नहीं देखता था। उसके शासन काल में हिन्दुओं को न तो कोई अधिकार थे और न वे उससे समुचित न्याय ही प्राप्तकर सकते थे। यथार्थ में तो वह मुस्लिम प्रजा का प्रिय शासक था। उसके शासन के आधार कुरान और इस्लाम धर्म था। तलवार और शक्ति के बल पर उसने इस्लाम का प्रसार किया और हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। हिन्दुओं पर अत्याचार करने में उसे किसी प्रकार का संकोच नहीं था। उसने हिन्दुओं के अनेक मन्दिरों को विध्वंस कर, इस्लाम के प्रसार के लिये मसजिदें बनवायीं। वह प्रशासन में मुल्ला, मौलवियों के परामर्श से कार्य करता था और इससे वह धर्मान्ध, संकीर्ण और असहिष्णु हो गया था। उसकी धर्मान्धता और असहिष्णुता से राज्य का अहित हुआ। वह प्रजा के सभी वर्गों की श्रद्धा, भक्ति और सद्भावना प्राप्त नहीं करसका और उसके राज्यमें स्थायित्व का अभाव रहा। इसीलिए उसकी धार्मिक नीति संकीर्ण और मूर्खतापूर्ण थी। परन्तु धार्मिक असहिष्णु, पक्षपात और धर्मान्धता उस युग के सुलतानों की नीति ही थी और सिकन्दर इस परम्परागत दूषित नीति को त्याग कर ऊँचा नहीं उठ सका।

निष्कर्ष—यदि सिकन्दर लोदी की दूषित धार्मिक नीति की अवहेलना कर उसके अन्य कार्यों के मूल्यांकन का अवलोकन किया जाय और लोदी वंश के अन्य सुलतानों से उसकी तुलना की जाय तो सिकन्दर लोदी का स्थान श्रेष्ठ और ऊँचा प्रतीत होगा। वह लोदी वंश का महान शासक था। उसके समान लोदी सुलतानों ने यश और सफलता प्राप्त नहीं की।

सुलतान इब्राहीम लोदी (सन् १५१७ से १५२६)

इब्राहीम लोदी सिकन्दर का ज्येष्ठ पुत्र था। उसे राजकुमार होने से उचित शिक्षा दी गयी। उसने अरबी और फारसी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। उसने सैनिक शिक्षा भी भली प्रकार प्राप्त की थी। इससे वह एक अच्छा सैनिक हो सका।

इब्राहीम लोदी का राज्यारोहण—सिकन्दर की मृत्यु के बाद अमीरों ने गृह युद्ध को टालने और अपनी शक्ति में वृद्धि करने के लिए, दिल्ली सल्तनत को सिकन्दर के दो पुत्रों इब्राहीम और जलाल में विभाजित कर दिया। इब्राहीम को दिल्ली-आगरे का क्षेत्र और जलाल को जौनपुर व कालपी का क्षेत्र प्राप्त हुआ। पहिले तो इब्राहीम

लोदी ने इस विभाजन को स्वीकार कर लिया, पर बाद में उसके अमीरों और खाने-जहां नुहानी के परामर्श से इस विभाजन को खतरनाक मानकर इसे अस्वीकार करदिया : उसने जलाल के कुछ अमीरों को अपने पक्ष में करके, अपना अधिकार क्षेत्र विस्तृत कर दिसम्बर १५१७ में अपना राज्याभिषेक कर लिया। जलालखां ने भी कालपी में अपना राज्याभिषेक कर जलालुद्दीन की उपाधि ग्रहण कर ली।

गृह युद्ध और जलालखां का दमन—इब्राहीम लोदी जलालखाँ को अपना प्रतिद्वंद्वी और विरोधी मानता था। इसलिये वह उसका अन्त करना चाहता था। जब इब्राहीम ने आजम हुमायूँ को ग्वालियर पर आक्रमण के लिये भेजा, तब आजम हुमायूँ इब्राहीम से रुष्ट होने के कारण जलाल के प्रार्थना करने पर उससे मिल गया और उसने इब्राहीम का साथ छोड़ दिया। अब आजम हुमायूँ और जलाल ने अवध के सूबेदार मुबारक के पुत्र सईदखां पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। इस पर सईदखां ने इब्राहीम से सैनिक सहायता माँगी। इस पर एक विशाल सेना लेकर इब्राहीम जलाल और आजम हुमायूँ के विरुद्ध चल पड़ा। इस प्रस्थान की सूचना पर आजम हुमायूँ ने जलाल का पक्ष त्याग दिया और इब्राहीम की ओर आ मिला। इससे जलाल जौनपुर और बाद में कालपी चला गया जहां इब्राहीम की सेना ने उसका पीछा कर कालपी दुर्ग घेर लिया और जलाल को परास्त कर दिया। आगरे के सूबेदार की मध्यस्थता से जलाल जौनपुर छोड़ने और केवल कालपी का हाकिम बना रहने को तैयार हो गया। पर इब्राहीम लोदी ने अपनी विवेकहीनता और क्रोध के कारण इसे अस्वीकार दिया और जलाल का पीछा किया। जलाल अपनी सुरक्षा के लिये पहिले ग्वालियर, फिर मालवा और बाद में गोंडवाना की ओर भागा। पर गढ़ कंटक के गोंड नरेश ने उसे बंदी बनाकर इब्राहीम के पास भेज दिया। इब्राहीम ने उसे हांसी के दुर्ग में भेज दिया। परन्तु मार्ग में इब्राहीम के आदेश से चुपचाप जलाल की हत्या कर दी गयी। इससे गृहयुद्ध समाप्त हो गया। जलाल के समर्थक अमीरों ने इब्राहीम की अधीनता स्वीकार कर ली। इससे इब्राहीम की शक्ति और सम्मान खूब बढ़ गया।

ग्वालियर पर आक्रमण और विजय—विद्रोही जलालखां ने ग्वालियर नरेश के यहाँ आश्रय प्राप्त किया था। इसकी सूचना पर इब्राहीम ने ग्वालियर पर सन् १५१७-१८ में आक्रमण कर दिया। इस समय ग्वालियर के शक्तिशाली नरेश मानसिंह की मृत्यु हो गयी थी और उसका उत्तराधिकारी विक्रमादित्य दुर्बल था। इब्राहीम की सेना द्वारा ग्वालियर दुर्ग घेरा जाने पर विक्रमादित्य ने सुलतान से संधि कर ली। उसने ग्वालियर का दुर्ग और राज्य सुलतान को सौंप दिया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस पर सुलतान ने उसे शम्साबाद का शासक नियुक्त किया। विक्रमादित्य ने सुलतान को वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। ग्वालियर विजय से इब्राहीम की सत्ता और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और उसका राज्य भी बढ़ गया।

मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह पर आक्रमण—इब्राहीम लोदी महत्वाकांक्षी सुलतान था। ग्वालियर विजय करने के बाद उसने राजस्थान के प्रसिद्ध मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह पर आक्रमण किया। उसकी इस विशालसेना का नेतृत्व मियांमाखनने किया। शाही सेना मेवाड़ की सीमा में प्रवेश कर गयी। इस पर संग्रामसिंह की सेना और

सुलतान की सेना में भयंकर युद्ध हुआ। संग्रामसिंह इसमें विजयी हुआ। इस युद्ध के बाद विश्वासघात करके अर्द्ध रात्रि को सुलतान के सेनानायकों, मियां मारूफ, मियां हुसेन खां और मियां माखन ने, राणा की सेना पर आक्रमण किया। राणा और उसके राजपूत सैनिकों ने इस आकस्मिक हमले का बड़ी वीरता से सामना किया। युद्ध में राणा स्वयं अधिक घायल हो गया और बहुसंख्यक राजपूत सैनिक भी युद्ध में काम आए। शाही सेना भी अस्त-व्यस्त हो गयी। दोनों सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। इब्राहीम ने इस युद्ध के बाद हुसेनखां को चन्देरी का शासक नियुक्त किया। राणा संग्रामसिंह ने बदला लेने के लिए शीघ्र ही चन्देरी पर आक्रमण किया और हुसेनखां को परास्त कर चन्देरी को अपने अधिकार में कर लिया। इब्राहीम राणा संग्रामसिंह का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका।

आजम हुमायूं, मियां हुसेन फर्मूली और मियां मुआ का दमन और उनका अन्त—सुलतान इब्राहीम लोदी अपने सशक्त अमीरों और शासकों व सूबेदारों की शक्ति क्षीण करना चाहता था। उसने अपने विश्वसनीय सेनानायक आजम हुमायूं और उसके पुत्र फतहखां को कारागार में डाल दिया, क्योंकि इब्राहीम यह नहीं भूला था कि आजमखां हुमायूं विश्वासघात करके जलालखां से मिल गया था। इसके बाद इब्राहीम ने आजम के दूसरे पुत्र इस्लामखां को जो कड़ा और मानिकपुर का सूबेदार था, पदच्युत कर दिया। इस कुव्यवहार से इस्लामखां ने अन्य अफगान अमीरों की सहायता से बड़ा विद्रोह कर दिया और आगरा पर आक्रमण कर दिया। इब्राहीम लोदी की सेना और विद्रोहियों में भयंकर युद्ध हुआ। जिसका विशद् वर्णन अहमद याद आर ने अपने ग्रंथ "मखजने अफगाना" में किया है। उसने लिखा है कि ऐसा भयानक युद्ध पहिले कभी नहीं हुआ। सैनिकों ने धनुष बाण फेंककर भालों, तलवारों, चाकुओं और बर्छों से युद्ध किया और असंख्य लाशों के ढेरों से सारा युद्ध क्षेत्र भर गया। विजय इब्राहीम की हुई। इसी बीच आजम हुमायूं कारावास में मर गया। पर ऐसी अफवाह फैली कि इब्राहीम ने आजमखां का वध करवा दिया।

जब इब्राहीम ने राणा सांगा पर आक्रमण किया तब मियां हुसेन फर्मूली अपने कुछ अश्वारोहियों सहित राणा सांगा से जा मिला था। इस विश्वासघात के कारण बाद में इब्राहीम ने मियां हुसेन को चन्देरी का शासक बनाकर उसका वध करवा दिया। इससे इब्राहीम को अमीर अविश्वासी और नीच समझने लगे। इसके बाद इब्राहीम ने अपने बूढ़े वजीर मियां मुआ को कारावास में डाल दिया, क्योंकि वह कभी-कभी उसके आदेशों की उपेक्षा करता था। शीघ्र ही कारावास में मियां मुआ की मृत्यु हो गयी और लोगों ने यह मान लिया कि इब्राहीम ने उसका वध करवा दिया। इब्राहीम के इन कार्यों से अमीरों और जनता में अधिक असंतोष फैल गया। वे इब्राहीम से भयभीत हो गये।

अफगान अमीरों और सरदारों का दमन—इस समय अफगान अमीर, सरदार और शासक अधिक शक्तिशाली हो गये थे। सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद अमीरों ने अपने प्राचीन अधिकार तथा पद पुनः प्राप्त करने के प्रयास किये। वे अब अधिक अहंकारी और स्वार्थी हो गये थे और सुलतान की अवहेलना कर अपनी स्वार्थ सिद्धि

के लिये षड़यन्त्र और विद्रोह में जुट जाते थे। अफगान अमीर अपने बादशाह को अपना साथी समझते थे, स्वामी नहीं। वे सब अपनी इच्छा से ही उसे अपने में से एक बड़ा सरदार मानकर उसका आदर करते थे। सिकन्दर लोदी तो उनके साथ अच्छा व्यवहार करके कभी-कभी उनके पास एक कालीन पर भी बैठ जाता था। पर इब्राहीम अभिमानी, हठी और दुराग्रही था। उसने अपने कुव्यवहार से उन्हें अप्रसन्न कर उनकी सहानुभूति खो दी। अमीरों, सरदारों और शासकों के साथ इब्राहीम का व्यवहार भी उद्दंड और कठोर था। इब्राहीम ने अमीरों को राजसभा के शिष्टाचार एवं सभ्यता संबंधी सिद्धान्तों और नियमों का अनुकरण करने के लिये बाध्य किया। उसने यह फरमान निकाला कि "सुलतान का कोई सम्बन्धी या जाति नहीं होती और समस्त व्यक्ति उसके अधीन होते हैं।" इब्राहीम सुलतान का पद सबसे श्रेष्ठ समझता था और अमीरों व सरदारों को राजसभा में हाथ जोड़े खड़ा रखता था। वे सुलतान के समक्ष दरबार में कोई आसन ग्रहण नहीं कर सकते थे। इब्राहीम ने अपने आदेशों की अवहेलना करने वाले अमीरों और शासकों को कठोर से कठोर दंड दिया। आजम हुमायूं, मियाँ हुसेन और मियां मुआ के दंड और मृत्यु से इब्राहीम ने अपनी नृशंसता प्रदर्शित की। इससे अफगान अमीरों में सुलतान के प्रति अविश्वास और तीव्र असंतोष हो गया। वे अपने जीवन के लिए भी उससे भयभीत रहने लगे। इब्राहीम ने अपने पुराने अमीरों से चिढ़कर नवयुवकों को अपना विश्वासपात्र अधिकारी बनाया और उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त किया तथा अपने प्रति द्वेष रखने वालों के विरुद्ध एक नये दल का सृजन किया। फलतः अमीर उसके घोर शत्रु हो गये और वे इब्राहीम के विनाश का प्रयास करने लगे। सुलतान के सम्बन्धी भी विद्रोही अमीरों से जा मिले और उसके विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे। इससे इब्राहीम का शासन काल सुलतान तथा अमीरों के मध्य भयंकर संघर्ष का काल है जिसका अन्त बाबर के बाह्य आक्रमण के द्वारा हुआ। इससे सुलतान और अमीर दोनों का ही विनाश हो गया।

अमीरों के विद्रोह—उपरोक्त कारणों से अमीरों ने इब्राहीम लोदी के विरुद्ध विद्रोह कर दिये। हुसेनखां फार्मूली और उसके बाद प्रसिद्ध अमीर दरियाखां नूहानी ने इब्राहीम के विरुद्ध शस्त्र उठाये। दरियाखां की शीघ्र मृत्यु के बाद उसके पुत्र बहादुरखां ने मुहम्मदशाह की उपाधि धारण करके बिहार का स्वतंत्र शासक हो गया। गाजीपुर के हाकिम नसीरखां नूहानी और पूर्व के सभी अफगान सरदारों को उसने अपने पक्ष मे कर लिया और एक विशाल दृढ़ सेना संग्रहित की तथा संभल तक के क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया। इब्राहीम लोदी बहादुरखां के विद्रोह का दमन करने में असमर्थ रहा।

अपनी स्थिति को संभालने और दृढ़ करने के लिये इब्राहीम ने अपने सम्बन्धी और पंजाब के राज्यपाल दौलतखां लोदी को राजसभा में बुला भेजा। परन्तु इब्राहीम से शंकित दौलतखां ने स्वयं न आकर अपने पुत्र दिलावरखां को दिल्ली भेज दिया। सुलतान ने दिलावरखां से कठोर दुर्व्यवहार किया और कारागार में घुमाकर विद्रोही अमीरों के दीवार पर लटके मस्तक दिखलाये और कहा, "देख लो, मेरी आज्ञा की अवहेलना करने वालों की दशा।" दिलावरखां भयभीत हो गया और अपने पिता के

पास पहुँचकर राजसभा की समस्त बातें बतलाईं। दौलतखां ने अपनी स्थिति संकट-पूर्ण देखकर काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने और बर्बर सुलतान इब्राहीम का अन्त करने के लिये आमंत्रित किया। इब्राहीम के भाई अलाउद्दीन या आलमखां ने भी इब्राहीम पर आक्रमण करने के लिये बाबर से पत्र-व्यवहार किया।

बाबर का आक्रमण और पानीपत का प्रथम युद्ध—दौलतखां और आलमखां में निमंत्रण पाकर बाबर सन् १५२४ में काबुल से पंजाब की ओर बढ़ा और लाहोर में उसने सुलतान के सैनिकों को परास्त कर लाहोर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। जब दौलतखां उससे मिलने आया तो बाबर ने उसे जालंधर और सुलतानपुर के सूबे सौंप दिये। इससे असन्तुष्ट होकर बाद में दौलतखां ने विद्रोह कर दिया। इस पर बाबर ने उसे कारावास में डाल दिया तथा उसके पुत्र दिलावरखां को जालन्धर और सुलतानपुर का हाकिम तथा आलमखां को दिपालपुर का शासक नियुक्त किया। दौलतखां को ऐसी आशा नहीं थी। दौलतखां का बाबर को निमन्त्रण देने का उद्देश्य यह था कि वह बाबर की सैनिक सहायता से अत्याचारी इब्राहीम को पदच्युत कर देगा और आलमखां को सुलतान बनाकर वह स्वयं पंजाब का स्वतन्त्र शासक हो जायगा। बाबर सेना सहित आवेगा और लूटपाट कर या धन लेकर लौट जावेगा। पर ऐसा हुआ नहीं। बाबर तो भारत में अपना राज्य स्थापित करना चाहता था।

लाहोर विजय करने के बाद बाबर काबुल लौट गया। दूसरे वर्ष नवम्बर सन् १५२५ में पंजाब और दिल्ली को विजय करने के लिये बाबर ने काबुल से प्रस्थान किया। बाबर के पंजाब में आ जाने के बाद दौलतखां और उसके पुत्र दिलावरखां ने बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली। अब बाबर दिल्ली की ओर बढ़ा और पानीपत के मैदान में सैन्य व्यूह की रचना कर युद्ध के लिए तैयार हो गया। इस समय बाबर के पास कुल बारह सहस्त्र अश्वारोही थे। पर उसके पास नवीन ढंग का तोपखाना था। इब्राहीम भी अपने एक लाख सैनिक लेकर पानीपत की ओर बढ़ा। २१ अप्रेल सन् १५२६ को दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। इब्राहीम रणक्षेत्र में मारा गया और उसकी सेना परास्त हो गयी। इस युद्ध में लगभग बीस सहस्त्र अफगान मारे गये। विजयश्री बाबर के हाथ लगी। उसने शीघ्र ही दिल्ली और आगरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

इब्राहीम लोदी की पराजय के कारण—पानीपत के युद्ध में इब्राहीम की पराजय स्वयं उसके दोषों के कारण और बाबर के सफल नेतृत्व के कारण हुई। इन कारणों का विश्लेषण निम्नलिखित है:—

(अ) इब्राहीम लोदी के दोष और भूलें

(१) इब्राहीम लोदी की अलोकप्रियता और निस्सहायता—इब्राहीम लोदी अपनी विवेकहीनता, कठोरता और उद्दण्ड नीति से अलोकप्रिय हो गया था और इससे अमीर और सरदार उसके शत्रु हो गये थे। उसके सभी साथी और समर्थक उसके विरुद्ध हो चुके थे। सेना में भी उसका विश्वास समाप्त हो गया था। अतः किसी ने भी सच्चे दिल से उसकी कोई सहायता नहीं की। एक ओर प्रजा रुष्ट थी, तो दूसरी ओर अमीर तथा सूबेदार उसकी कठोर नीति और दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट होकर

विद्रोही हो गये थे। विद्रोहों ने उसकी स्थिति संकटमय और शक्ति क्षीण कर दी। बाबर से युद्ध करने के लिये वह निस्सहाय और दुर्बल था।

(२) **विद्रोह और विघटन**—इब्राहीम की दूषित नीति और कठोर दमन के कारण सारे राज्य में विद्रोह हो रहे थे और शक्तिशाली अमीर स्वतंत्र हो रहे थे। दौलतखां लोदी के नेतृत्व में पंजाब स्वतंत्र हो चुका था और बिहार में भी बहादुरखां ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करली थी। राज्य के अन्य भागों में हिन्दू और मुस्लिम प्रांतीय शासक भी स्वतंत्र होने के प्रयास कर रहे थे। राजसभा में भी अमीरों में दलबंदी थी। इब्राहीम तो केवल दिल्ली का सुलतान मात्र रह गया था। विद्रोहों और विघटन की प्रवृत्ति से दिल्ली सल्तनत जर्जरित हो चुकी थी, उसके पतन को रोका नहीं जा सकता था। बाबर के आक्रमण ने लड़खड़ाते सल्तनत राज्य को धराशायी कर दिया।

(३) **इब्राहीम में सैनिक गुणों का अभाव और उसका दूषित सैन्य संगठन**—इब्राहीम स्वयं एक कुशल सेनापति नहीं था। उसमें सैनिक गुणों का तथा रण-क्षेत्र के अनुभव का अभाव था। उसका सैन्य संगठन भी दूषित था। उसकी सेना प्रशिक्षित और अनुशासित नहीं थी। वह तो एक अनियंत्रित भीड़ के समान थी। युद्ध के लिये इधर-उधर से अनेक सैनिक एकत्रित किये गये थे। उसके सेनानायक भी उसकी नीति से असंतुष्ट थे। इससे इब्राहीम उन पर नियंत्रण नहीं रख सका। उसके सेना-नायकों ने बाबर से युद्ध करने के लिये रणक्षेत्र में न तो कोई विशिष्ट योजना बनायी और न किसी प्रकार की व्यूह-रचना ही की। इब्राहीम के सैनिक गुप्तचर भी इतने अयोग्य और निकम्मे थे कि वे इब्राहीम को बाबर की सेना की व्यूह-रचना की सूचना भी न दे सके। इसलिये वह बाबर पर ठीक ढंग से आक्रमण नही कर सका।

(४) **सैनिकों में वीरता और निष्ठा का अभाव**—इब्राहीम के सैनिक भाड़े के टट्टू थे। उनमें इब्राहीम के प्रति श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा नहीं थी। उनमें वीरता और प्राणपण से युद्ध करने का साहस और जोश नहीं था। वे प्रशिक्षणहीन, अनुशासनहीन, अनियंत्रित और सुस्त थे। वे बाबर के तोपखाने की टक्कर लेने वाले सैनिक नहीं थे। बाबर की सेना की गोलेबारी, तीरंदाजी और तुलगमा आक्रमण से सुलतान की सेना का साहस छूट गया। वे परास्त हो गये।

(५) **इब्राहीम में कूटनीति व मित्रता का अभाव**—इब्राहीम में न तो वांछनीय कूटनीति थी और न मैत्री संधियाँ करने की क्षमता ही। बाबर के आक्रमण के समय उसने दौलतखां, आलमखां, राणा सांगा और बहादुरखां (मुहम्मदशाह) से किसी भी प्रकार की मैत्री-संधि नहीं की और न उनकी सैनिक सहायता ही प्राप्त की। उसने अकेले ही बाबर के विरुद्ध युद्ध किया। यदि वह अन्य नरेशों की सहायता से संगठन कर बाबर से युद्ध करता तो संभव है कि उसकी विजय होती। इसके अतिरिक्त उसने यह भी भूल की कि, बाबर को पानीपत तक आने दिया। उसे चाहिये था कि वह बाबर को पंजाब में ही परास्त कर खदेड़ देता। पर उसने बाबर पर उस समय आक्रमण किया, जबकि उसने अपनी स्थिति पंजाब और पानीपत में सुदृढ़ करली थी और उसे परास्त करना दुष्कर कार्य था।

(ब) बाबर का सैनिक नेतृत्व और उसकी सेना की श्रेष्ठता

(१) बाबर का कुशल सैनिक नेतृत्व—बाबर जन्मजात कुशल सेनापति था। बाल्यकाल से ही संघर्षों और युद्धों में भाग लेते रहने से उसे रणक्षेत्र का और युद्ध-कला का अच्छा अनुभव हो गया था। रणक्षेत्र की बाधाएं, कठिनाइयां और समस्याएं उसके लिये खेल थीं। वह अपने अनुभव से उन्हें हल कर लेता था और शत्रु से घबराता नहीं था। उसने अपने अनुभव से रणक्षेत्र में सेना के लिये ऐसी व्यूह-रचना की, कि सुलतान के सैनिक उसे भेदने और तोड़ने के लिये असमर्थ थे। उसकी विजय निश्चित-सी थी।

(२) बाबर के सैनिकों की श्रेष्ठता और निष्ठा—बाबर के सैनिक प्रशिक्षित, अनुशासनबद्ध और श्रेष्ठ अश्वारोही थे। वे चुने-चुनाये और तपे-तपाये थे। बाबर के प्रति उनमें निष्ठा, श्रद्धा और सहानुभूति थी। उन्हें अपने स्वामी बाबर पर पूर्ण भरोसा था। अपने स्वामी के लिये तथा नवीन देश जीतने के लिये वे जी-जान से लड़ते थे। वे त्याग और निष्ठा से मुँह नहीं मोड़ते थे। इब्राहीम के सैनिकों में इन गुणों का अभाव था।

(३) बाबर का तोपखाना—बाबर ने पानीपत के युद्ध में तोपखाने का उपयोग किया और शत्रुओं पर आग के गोले बरसाए। आग उगलने वाला यह तोपखाना शाही सेना के लिये नवीन वस्तु थी। इस तोपखाने के सामने सुलतान की सेना के पांव उखड़ गये और वे परास्त हो गये। पानीपत के युद्ध में बाबर की विजय का एक प्रमुख कारण उसका तोपखाना भी था।

इब्राहीम लोदी का मूल्यांकन और लोदी वंश के पतन में उसका उत्तरदायित्व

(१) व्यक्तित्व और चरित्र—सुलतान इब्राहीम लोदी रूपवान, बुद्धिमान, और अध्यवसायी सुलतान था। जो कार्य वह प्रारम्भ करता था, उसे पूर्ण करने का प्रयास करता था। उसमें प्रजाहित की भावना थी। वह विद्वानों, निस्सहायों को दान देता था, विद्वानों का आश्रयदाता था। संगीत से उसे प्रेम था।

(२) असफल शासक—इब्राहीम में शासक के गुणों का अभाव था। विरोध और तीव्र असन्तोष होने पर भी वह अपनी शासकीय नीतियों में परिवर्तन नहीं करता था। जनमत की उपेक्षा करने में वह संकोच नहीं करता था। वह स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक था। अपने प्रतिद्वंद्वियों और विरोधियों पर निर्ममता से वह अत्याचार करता था। वह महत्वाकांक्षी विस्तारवादी सुलतान था जिसने राज्य विस्तार के लिये मेवाड़, ग्वालियर आदि राज्यों पर आक्रमण किये पर उसे सफलता नहीं मिली। वह बलबन और अलाउद्दीन के राजस्व के सिद्धान्तों के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास रखता था। उसने सुलतान के पद की प्रतिष्ठा और गौरव की वृद्धि करने के लिये अनेक प्रयास किये।

(३) दूषित नीति—उसने अमीरों, सरदारों और सूबेदारों के प्रति दूषित कठोर नीति अपनायी। वह हठी व निर्मम था और उसका व्यवहार कठोरथा। उसकी दमनपूर्ण नीति, दुर्व्यवहार और कठोरता से अमीरों और सूबेदारों ने उसका घोर विरोध किया

और वे उसके शत्रु हो गये। इसके परिणामस्वरूप अनेक विद्रोह हुए। इब्राहीम जीवनपर्यन्त इन विद्रोहों का सामना करता रहा और लड़ता रहा। इससे लोदी वंश की शक्ति क्षीण हो गयी। अपने अत्याचारपूर्ण व्यवहारों और त्रुटिपूर्ण नीति से उसने सेना की सहानुभूति भी खो दी। सैनिकों और सेनानायकों में उसके प्रति निष्ठा नहीं थी। पानीपत के युद्ध के पूर्व उसके कई असन्तुष्ट अमीर विरोधी पक्ष में मिल गये थे। इब्राहीम में अपनी शक्ति को संगठित करने की क्षमता भी नहीं थी। परिस्थितियों के अनुसार या कूटनीति से उसने अपनी नीतियों में परिवर्तन नहीं किया और शत्रुओं और विरोधियों को अपने पक्ष में करने के प्रयत्न नहीं किये। संकटकालीन परिस्थिति में भी उसने कुशलता और नीतिज्ञतापूर्वक अपने सहायकों और समर्थकों की संख्या में भी वृद्धि करने के प्रयत्न नहीं किये। हिन्दू विरोधी नीति अपनाकर अपनी धर्मान्धता और असहिष्णुता से उसने अपनी प्रजा के एक बड़े भाग की सहानुभूति खो दी। अपनी इन नीतियों और कार्यों के कारण इब्राहीम लोदी ने लोदी सल्तनत के पतन का मार्ग प्रशस्त किया। वह इस पतन के लिये अधिक उत्तरदायी है।

लोदी सल्तनत के पतन का पूर्ण उत्तरदायित्व इब्राहीम लोदी पर नहीं आ सकता। सरदारों, अमीरों और प्रांतीय सूबेदारों तथा विघटनकारी प्रवृत्तियों से सल्तनत इतनी अधिक जीर्ण-शीर्ण हो गई थी कि उसका पतन निकट भविष्य में ही हो जाता। अमीर और सूबेदार छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य बना रहे थे और इब्राहीम केवल नाममात्र का ही सुलतान रह जाता।। तत्कालीन परिस्थितियों और विघटनकारी प्रवृत्ति से दिल्ली सल्तनत का पतन अवश्यम्भावी था, चाहे वह कुछ वर्षों बाद ही होता।

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

उत्थान और पतन का सिद्धान्त शाश्वत और नैसर्गिक है। जिसकी उन्नति होती है, उसका पतन भी होता है। दिल्ली सल्तनत का प्रारंभ सन् १२०६ में सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक से हुआ और सन् १५२६ में बाबर ने उसे अपने आक्रमणों से धराशायी कर दिया। तीन सदियों तक दिल्ली के सुलतानों ने शासन किया। इनमें अनेक शक्तिशाली और सुयोग्य शासक भी हुए। उन्होंने अपने कार्यों से दिल्ली सल्तनत को प्रथम कोटि का राज्य बना दिया। परन्तु कालान्तर में इन सुलतानों में उनके पूर्वजों के चारित्रिक गुणों का अभाव होने लगा और उनमें ऐश्वर्यप्रियता, विलासिता, स्वार्थपरता, अयोग्यता, क्षीणता आदि दुर्गुण आ गये जिससे सल्तनत का पतन आवश्यक हो गया। ध्यान से देखा जाय तो दिल्ली सल्तनत का पतन तुगलग वंश से प्रारंभ हो गया था। सैयद और लोदी वंश के समय तो उसका जर्जरित शरीर ही रह गया था। उसके अवशिष्ट अस्थिपंजर का अन्त इब्राहीम लोदी के शासन काल में हो गया। इसके अतिरिक्त दिल्ली सल्तनत के स्वरूप (nature) और विकास में, उसके प्रशासन के मूल आधार में ऐसे दोष निहित थे (जैसे उत्तराधिकार के नियम का अभाव, विद्रोह व विघटनकारी प्रवृत्ति, सैन्य बल का आधार) जिनके कारण दिल्ली सल्तनत का विनाश अवश्यंभावी था। सल्तनत के शासन में व्याप्त कुप्रवृत्तियों से सल्तनत जर्जरित होकर समाप्त हो गयी। इन कारणों का विश्लेषण अधोलिखित है—

(अ) राजनीतिक कारण --

(१) **निरंकुश स्वेच्छाचारी सुलतान**— दिल्ली के सुलतान निरंकुश और स्वेच्छाचारी थे। राज्य की समस्त सत्ता और अधिकार सुलतान के हाथ में केन्द्रित थे। शासन की बागडोर अमीरों के हाथों में थी। प्रजा को शासन में कोई अधिकार नहीं थे। जनता और सुलतान के बीच एक गहरी खाई थी। इससे प्रजा निरंकुश शासन से घृणा करती थी, उसके प्रति उपेक्षित थी। इससे सल्तनत प्रजा के सहयोग से वंचित रही। इसके अतिरिक्त निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन सुलतान की प्रतिभा और योग्यता पर निर्भर था। किसी सुलतान के अयोग्य, दुर्बल और शक्तिक्षीण होने पर शासन अस्त-व्यस्त हो जाता और स्वार्थलोलुप अमीर, सरदार और सूबेदार अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर लेते थे। योग्य और सफल सुलतानों के समय सल्तनत विशाल और सुव्यवस्थित रहती थी और अयोग्य सुलतानों के समय विभिन्न भाग और प्रान्तपति स्वतन्त्र होने का प्रयास करते थे। इससे पतन प्रारम्भ हो जाता था।

(२) **अराष्ट्रीय शासन**--दिल्ली सल्तनत में एक अराष्ट्रीय शासन (Anti-national type of Government) प्रतीत होता है। दिल्ली के सुलतान राज्य के सभी निवासियों को अपनी प्रजा नहीं मानते थे। वे अपनी प्रजा के बहुसंख्यक हिन्दुओं को निष्कृष्ट समझते थे, उनकी उपेक्षा करते थे और उनके प्रति पक्षपात और भेदभाव की नीति अपनाते थे। वे अल्पसंख्यक मुसलमानों को ही अपनी प्रजा मानते थे और उनके उत्थान और विकास के प्रयत्न करते थे। इसके विपरीत हिंदुओं को न तो कोई अधिकार थे न उन्हें जीवन यापन के समस्त साधन प्राप्त थे और न उन्हें शासन से निष्पक्ष न्याय ही प्राप्त होता था। हिन्दू सुल्तानों को विदेशी मानते थे। हिन्दुओं का मूलोच्छेदन करने में, हिन्दू जाति का संपूर्ण विध्वंस करने में सुलतानों ने कसर नहीं रखी। ऐसी सल्तनत अराष्ट्रीय रही और वह सफल न हो सकी।

(३) **सुलतानों में प्रशासकीय गुणों का अभाव**— दिल्ली के सुलतानों को उनके राजकुमार के जीवन में समुचित शिक्षा और प्रशासकीय व सैनिक प्रशिक्षण नहीं प्राप्त होता था। इससे उनमें प्रशासकीय गुणों, प्रतिभा और अनुभव का अभाव सदा दृष्टिगोचर होता था। ये गुण और राजनीतिज्ञता व कूटनीति प्रशासन के लिये आवश्यक थे। इनके अभावों में प्रशासन शिथिल और अस्त-व्यस्त रहा।

(४) **उत्तराधिकार के नियम का अभाव**—दिल्ली सल्तनत मे निर्दिष्ट उत्तराधिकार की व्यवस्था नहीं थी। सुलतान के देहावसान के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी होगा, ऐसी व्यवस्था नहीं थी। सिंहासन का अधिकार वंशानुगत अधिकार नहीं माना गया था। उत्तराधिकार का निश्चित नियम न होने से सुलतान के देहावसान पर उसके पुत्र और अन्य सशक्त सरदार अपने को सुलतान बनने योग्य समझकर राज्य सिंहासन प्राप्त करने का प्रयास करते थे। इससे गद्दी के दावेदारों में गृह युद्ध छिड़ जाता था। इससे अशान्ति और अव्यवस्था फैलती थी और सल्तनत दुर्बल होती थी।

(५) **अमीरों और सूबेदारों का पतन**—सुलतान के प्रमुख सहायक तथा राज्य के स्तंभ राजसभा के अमीर और सूबेदार थे। इनके समर्थन व सहयोग से

सुलतान विभिन्न राज्यों को जीतने, उन पर अधिकार बनाये रखने और सल्तनत का शासन चलाने में सफल हो गये थे। सल्तनत के प्रारंभिक युग में ये अमीर जो बाहर से आए थे बडे साहसी, वीर, परिश्रमी, त्यागी, स्वामिभक्त और निष्ठावान थे। परन्तु कालान्तर में भारत में प्राप्त अपार सम्पत्ति, समृद्धि और ग्रीष्म जलवायु ने इन्हें विलासी, अयोग्य और स्वार्थलोलुप बना दिया था। वे अपने सद्‌गुणों को विस्मरण कर चुके थे उनका पारस्परिक संगठन नष्ट हो गया था। वे अत्यधिक लालची, स्वार्थी और ईर्ष्यालु होकर राजसभा में कई दलों में विभक्त हो गये थे और परस्पर वैमनस्य से लड़ते रहते थे तथा एक दूसरे के पतन के इच्छुक थे। इससे सल्तनत का पतन स्वाभाविक था।

(६) **दलबंदियां और विद्रोह**—राज्य के अमीर और सरदार विभिन्न जातियों के थे, जैसे पठान, अफगान, खिलजी, तुर्क आदि। ये सब अपनी जाति या वर्ग का पक्ष लेते थे और चाहते थे कि उनके ही पक्ष और जाति का राजकुमार या अमीर सुलतान बने। इसके लिये वे परस्पर संघर्ष और युद्ध करते थे। इससे राजसभा में अमीरों के अनेक परस्पर विरोधी दल बन गये थे और राजसभा षड़यंत्रों का केन्द्र बन जाती थी। राज्य के अमीर और सरदार दिल्ली सुलतान को अपने में से ही एक व्यक्ति समझते थे, क्योंकि उनके किसी न किसी एक दल का ही व्यक्ति सुलतान बनता था। सुलतानों के समस्त राजवंश किसी न किसी अमीर के राजसिंहासन पर बैठ जाने से स्थापित हुए थे। इसलिये राजसभा के अमीर सुलतान को अपने से ऊंचा नहीं समझते थे। उनमें सुलतान के प्रति स्वामिभक्ति और निष्ठा नहीं थी। सुलतान के देहावसान के बाद उत्तराधिकार के लिये ये अमीर दलबन्दियां बनाकर युद्ध करते थे और इस गृहयुद्ध में सल्तनत की शक्ति क्षीण हो जाती थी। दरबार की दलबन्दियों ने दिल्ली सल्तनत पर दुर्बल सुलतानों को प्रतिष्ठित किया जिससे संघर्ष और विद्रोह बढ़ गये। सुलतान के अयोग्य, दुर्बल और निकम्मे होने पर शक्तिशाली अमीर और प्रांतपति या सूबेदार विद्रोह करके अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लेते थे। ये षड़यंत्र, संघर्ष और विद्रोह इतने अधिक बढ़ गये थे कि सल्तनत की जड़ें खोखली हो गयी थीं।

(७) **सैन्यशक्ति पर आधारित राज्य**—दिल्ली सल्तनत शक्ति और सेना पर आश्रित था। प्रजा की सद्‌भावना, सहयोग और समर्थन पर नहीं। ऐसा राज्य तभी तक रह सकता है जब तक कि सुलतान कुशल सैनिक, वीर योद्धा और योग्य सफल सेनापति हो। जिनकी तलवार और सेना में शक्ति और दृढ़ता होती थी, वे ही सुलतान बन कर सुचारु रूप से शासन कर पाते थे। तलवार ही उस समय सब से बड़ी निर्णायक थी और राज्य तलवार के बल पर ही होता था। परन्तु सभी सुलतान वीर योद्धा, कुशल सेनापति और तलवार के धनी नहीं होते थे। फलतः दुर्बल और निकम्मे सुलतानों के समय विभिन्न सरदार और सैनिक विद्रोह करते, लूटपाट मचाते और राज्य में अराजकता फैलाते थे। इससे सल्तनत क्षीण हो गयी और पतन की ओर बढ़ने लगी।

(८) **दूषित और दुर्बल सैन्य-व्यवस्था**—सुलतानों के पास स्थायी दृढ़ सेना नहीं रहती थी। विभिन्न प्रांतपति और अमीर अपने-अपने सैनिक सुलतान को युद्ध और विजय करने के लिये भेजते थे। इस प्रकार विभिन्न केन्द्रों से प्राप्त व संगठित सेना में विभिन्न जातियों के सैनिक होते थे। जैसे ईरानी, तुर्क, अफगान, पठान, भारतीय, आदि। इनमें एकता, संगठन, सहयोग, और अनुशासन का अभाव रहता था। इन विभिन्न जातियों के सैनिकों पर आक्रमण और युद्ध के समय सुलतान का कोई नियंत्रण नहीं रहता था। क्योंकि वे अपने स्वामी अमीर या सूबेदार के अधीन रहते थे तथा इससे वे सुलतान के प्रति स्वामिभक्त कभी नहीं रहते थे। इसके अतिरिक्त ये सैनिक इस्लाम धर्म के प्रसार में और लूटपाट, हत्या और विध्वंस करने में अधिक व्यस्त रहते थे। इस्लाम के नियमों के अनुसार इन्हें लूट के धन का अंश भी दिया जाता था। ऐसे सैनिकों से शांति व्यवस्था बनाये रखने और निरन्तर साम्राज्य की आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा करने की आशा नहीं की जा सकती। शक्तिशाली सुल्तान ही उन पर नियंत्रण रख पाता था। शक्तिहीन अयोग्य सुलतान के समय बलवान सूबेदार और उनकी सेनाएं समस्या बन जाती थीं और वे विद्रोह और युद्ध करके सुलतान को परास्त करने और सल्तनत को क्षतविक्षत करने का प्रयत्न करते थे।

(९) **जागीर प्रथा**—अमीरों, सूबेदारों, सेनानायकों और पदाधिकारियों को राज्य की ओर से नगद मासिक वेतन देने की अपेक्षा विस्तृत जागीरें दी जाती थीं। इससे वे अधिक समृद्ध होते थे और सुलतान व राज्य पर निर्भर नहीं रहते थे। उनमें स्वतंत्रता की प्रवृत्ति बलवती होती थी। फिर इन जागीर प्राप्त अमीरों, सूबेदारों और शासकों के पास अपने सहस्त्रों सैनिक रहते थे। इस सैन्य बल के आधार पर वे सुलतान पर हावी होते रहते थे और सुलतान से असन्तुष्ट होने पर उसके विरुद्ध षड़यंत्र या विद्रोह करके उसे पदच्युत करते थे और सल्तनत की शक्ति को गहरा आघात लगता था। जागीर प्रथा सल्तनत के पतन का एक प्रमुख कारण है।

(१०) **विस्तृत साम्राज्य**—अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली सल्तनत का खूब विस्तार करके उत्तरी और दक्षिणी भारत तक अपना शासन स्थापित कर लिया था। मध्ययुग में आवागमन के सुलभ तीव्रगामी साधनों के तथा सीधे मार्गों के अभाव में घने वनों व पर्वत श्रेणियों के कारण ऐसे विशाल साम्राज्य पर सीधा शासन करना अत्यंत ही दुष्कर कार्य था। उत्तर में दिल्ली में बैठ कर दक्षिण भारत, गुजरात और बंगाल के दूरस्थ प्रदेशों पर सुचारु रूप से शासन करना असंभव था। साम्राज्य की अत्यधिक विशालता से शासन में शिथिलता आ गयी और दूरस्थ प्रांतों और सीमा क्षेत्रों में निरन्तर विद्रोह होते रहते थे। जिनका दमन करना सुलतान के लिये असंभव था। इससे सल्तनत को बहुत ही क्षति पहुँची।

(११) **दृढ़ सीमान्त नीति का अभाव**—दिल्ली सुलतानों ने अपने साम्राज्य की विभिन्न सीमाओं और विशेषकर उत्तरी-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की। उन्होंने सीमा क्षेत्र से होने वाले बाह्य आक्रमणों को और वहां के सूबेदारों के विद्रोहों को रोकने के लिये कोई ठोस प्रयत्न नहीं किये। सुलतान अपनी सीमाओं की सुरक्षा के लिये सदैव उदासीन रहे। परिणामस्वरूप बाहरी तूफानी

आक्रमणों ने उन्हें धराशायी कर दिया।

(१२) **तुगलक सुलतानों की दूषित नीति**—मुहम्मद तुगलक की विभिन्न योजनाओं ने राजकोष ही रिक्त नहीं किया, अपितु अपने पदाधिकारियों, सूबेदारों और प्रजा को परेशान कर विद्रोही बना दिया। सबसे अधिक विद्रोह और अस्त-व्यस्तता उसके शासन काल में फैली। उसके जीवन-काल में ही दक्षिण भारत, बंगाल और राजस्थान का कुछ भाग सल्तनत से स्वतंत्र हो गये थे। फिरोज की दोषपूर्ण प्रशासकीय नीति, जिससे अयोग्य भ्रष्ट कर्मचारियों के हाथों में शासन आ गया, उसकी जागीर प्रथा और दास प्रथा, उसकी कायर और दब्बू नीति, दोषपूर्ण सैन्य-संगठन, उसकी धर्मान्धता और असहिष्णुता आदि सल्तनत के लिये घातक सिद्ध हुए। उसके निकम्मे दुर्बल उत्तराधिकारी, अमीरों के हाथों की कठपुतली बन गये, राजसभा षड़यंत्रों और कुचक्रों का अड्डा बन गया और गृहयुद्ध साधारण बात हो गयी। इससे सल्तनत पतनोन्मुख हो गयी और वह छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में निभक्त हो गयी जिन्हें पुनः संगठित कर सुलतान के अधीन लाना असंभव था। दिल्ली सल्तनत का विस्तार दिल्ली के चतुर्दिक केवल डेढ़ सौ-दो सौ किलो मीटर तक ही सीमित हो गया।

(१३) **लोदी सुलतानों की नीति**—लोदी सुलतानों ने सामन्तशाही प्रथा का अनुकरण किया जो सल्तनत के लिये अनिष्टकारी हुई। इस समय सामन्त, अमीर, सरदार इतने अधिक बलशाली हो गये थे कि उन्हें अधीन और नियंत्रित रखना असंभव था। जब सिकन्दर लोदी और इब्राहीम लोदी ने इन सामन्तों का दमन किया, तो वे सल्तनत को उखाड़ने के लिये प्रयत्नशील हो गये। सिकन्दर ने मरणासन्न सल्तनत में प्राण फूंकने का प्रयत्न किया और अपने कार्यों से उसे पुनः जीवित और सगठित करने का प्रयत्न किया, पर वह अधिक सफल नहीं हुआ और उसका शासन पंजाब और दोआब तक ही सीमित रह गया। इसके अतिरिक्त उसकी धर्मांधता और असहिष्णुता से बहुसंख्यक प्रजा उससे रुष्ट हो गयी। उसकी कठोर नीति से अमीर भी विद्रोही हो गये। इब्राहीम लोदी की नीति और कार्यों ने आग में घी का कार्य किया। उसके हठी, क्रोधी स्वभाव से, कठोर दमन नीति और दुर्व्यवहार से अमीर और प्रजा दोनों ही रुष्ट हो गये और चारों ओर विद्रोह भड़क उठे और विद्रोहियों ने इब्राहीम का विनाश करने के लिये बाबर को निमंत्रण दे दिया। बाबर ने अपनी विजय से सल्तनत समाप्त कर दी।

(१४) **तैमूर का आक्रमण**—तैमूर लंग के आक्रमण ने लड़खड़ाते दिल्ली साम्राज्य को भारी आघात पहुँचाया। उसने जो भीषण नर-संहार और लूटमार की उसकी क्षति कभी पूरी नहीं हुई। उसकी लूट और विध्वंस से सल्तनत की आर्थिक दशा अत्यंत ही दयनीय हो गयी और भयंकर आक्रमण तथा विजय से सल्तनत की सत्ता पूर्णरूपेण लड़खड़ा गयी और उसका पतन अवश्यंभावी हो गया।

धार्मिक कारण

(१) **धर्मसापेक्ष राज्य**—दिल्ली सल्तनत इस्लाम धर्म पर आधारित थी और सुलतानों की शासन-व्यवस्था शरीयत के अनुसार चलती थी। प्रशासन में उलमाओं का विशेष स्थान था। मुल्ला और मौलवी ऊंचे पदों पर नियुक्त थे। राज्य कार्यों

में वे सुलतानों को परामर्श देते थे और इस्लाम के नियमों के अनुसार उनके परामर्श से सुलतान शासन-प्रबंध करते थे। इसलिये सल्तनत धर्म-सापेक्ष राज्य था। इसमें गैर मुसलमानों को कोई भी अधिकार नहीं थे। सल्तनत की बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू थी। वह प्रशासन से पृथक थी और सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित थी। अलाउद्दीन ने तो अपनी दमन नीति और कठोर कर-प्रणाली से हिन्दुओं को अत्यधिक दरिद्र कर दिया। इससे हिन्दू सुल्तानों से असन्तुष्ट होकर सदा विद्रोह करने और सल्तनत को समाप्त करने को तत्पर रहते थे।

(२) **धर्मांधता और असहिष्णुता** सुलतान कट्टर मुसलमान होने से धर्मांध थे और उन्होंने हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता की नीति अपनायी। उन्होंने हिन्दुओं पर अनेकानेक अत्याचार किये। उन्हें प्रलोभन देकर और तलवार के बल पर मुसलमान बनाया गया। मुसलमान न बनने वाले हिन्दुओं से जबरन जजिया कर वसूल किया गया। हिन्दुओं पर अनेक प्रतिबंध लगाये और उन्हें यातनाएं दी गयीं, मृत्यु दंड दिये गये। हिन्दुओं के भवनों को लूटा गया, उनके मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा गया और उनके स्थानों पर मस्जिदों का निर्माण किया। इससे सुल्तानों ने अपनी बहुसंख्यक प्रजा, हिन्दू जनता का विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा और सहानुभूति खो दी। इससे सल्तनत में स्थायित्व न आ पाया। हिन्दू शंकित होकर सुलतानों से घृणा करने लगे और विद्रोहों, उपद्रवों आदि से सल्तनत को नष्ट करने की सोचने लगे।

(स) सामाजिक कारण

(१) **सामाजिक भेदभाव**—सुलतानों की धर्मांधता और धार्मिक असहिष्णुता की नीति से भारतीय समाज में हिन्दू और मुसलमानों के दो विभिन्न वर्ग बन गये जो परस्पर विरोधी हो गये। सुलतानों ने मुसलमानों का ही हित किया। उनके दान, न्याय, लोक-कल्याण के कार्यों आदि से मुसलमानों का ही हित होता था। सर्वसाधारण के लिये सुलतानों में लोक-कल्याण की भावना नहीं थी। वे अपनी नीति और कार्यों में हिन्दुओं और मुसलमानों में सामाजिक भेद-भाव और पक्षपात करते थे। इससे हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से द्वेष-भाव रखते थे। उनका संघष और विद्वेष सुलतानों के पतन में सहायक हुआ।

(२) **सामाजिक दुर्व्यवस्था**—सुलतानों के आक्रमणों और युद्धों से संघर्षों और विद्रोहों से सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो चुका था। लोगों में भय और अविश्वास की भावना बलवती होती जा रही थी। समाज शासकों को घृणा और अनिष्ठा की दृष्टि से देखने लगा था। ये विरोधात्मक भावनाएँ भी सल्तनत के लिये घातक हुईं।

(द) आर्थिक कारण

(१) **राजकोष की रिक्तता**—सुलतानों के सैनिक अभियानों, संघर्षों और निरन्तर युद्धों से राजकोष रिक्त ही रहता था। दास प्रथा के कारण भी व्यय अधिक बढ़ गया था। लगभग दो लाख दास राज्य पर भारस्वरूप थे। प्रांतीय सूबेदारों के गबन, भ्रष्टाचार और राजस्व की ढीली नीति से राज्य की आर्थिक दशा खराब होती चली गयी और राजकोष रिक्त रहा।

(२) **दृढ़ आर्थिक नीति का अभाव** - सुलतानों ने अपने शासन काल में कोई दृढ़ आर्थिक नीति नहीं अपनायी। उन्होंने कृषि की उन्नति और सिंचाई की समुचित व्यवस्था के लिये कोई निर्दिष्ट योजनापूर्वक कार्य नहीं किया। उन्होंने उद्योग-धंधों और व्यवसायों की प्रगति के लिये भी कोई ठोस कदम नहीं उठाये। आन्तरिक और बाह्य व्यापार की उन्नति की ओर भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इससे सल्तनत का आर्थिक ढांचा जर्जरित हो गया और वह भी पतन का एक कारण बन गया।

(य) तात्कालिक कारण

बाबर का आक्रमण--बाबर ने इब्राहीम लोदी पर आक्रमण करके उसे युद्ध में परास्त करके लड़खड़ाते दिल्ली साम्राज्य को, जो कि अब नाम मात्र का ही साम्राज्य रह गया था, सर्वथा नष्ट कर दिया। पानीपत के प्रथम युद्ध ने दिल्ली सल्तनत को धराशायी कर दिया और एक नवीन मुगल राज्य को प्रतिष्ठित किया।

सारांश

सैयद और लोदी सुलतान

खिज्रखाँ सैयद और दिल्ली पर उसका अधिकार—खिज्रखां सैयद अपनी प्रतिभा और सैनिक गुणों के कारण मुलतान का राज्यपाल बन गया और तैमूर को सैनिक सहायता देने के पुरस्कारस्वरूप तैमूर ने खिज्रखां को उसके विजित पंजाब प्रदेश का शासक नियुक्त किया। अंतिम तुगलक सुलतान मेहमूद के देहावसान के बाद उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और सन् १४१४ में सुलतान बन गया। इस प्रकार उसने सैयद राजवंश की नींव डाली। उसमें सैयदों के गुणों का बाहुल्य और चरित्र की शुद्धता थी।

सुलतान खिज्रखां (सन् १४१४-१४२१)—जिस समय खिज्रखां सुलतान बना, सारे राज्य में अराजकता और अव्यवस्था थी। दोआब के हिन्दू नरेश स्वतंत्र हो गये थे। मालवा, गुजरात और जौनपुर के करद शासक भी स्वतंत्र हो गये थे। मेवाती और खोखर निरंतर विद्रोह कर रहे थे। खिज्रखाँ ने कटेहर, बदायूं, इटावा, कपिल पंजाब आदि के विद्रोहों का दमन किया और शांति स्थापित की। सन् १४१६ में उसने बयाना, ग्वालियर के प्रदेशों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। सन् १४२१ में उसने गुजरात नरेश को भी परास्त कर दिया। २० मई सन् १४२१ को उसका देहान्त हो गया।

खिज्रखां सच्चा सैयद था। वह उदार, दयालु सुलतान, कुशल सेनापति और वीर योद्धा था। उसने सल्तनत में शांति स्थापित करके उसकी रक्षा की।

मुबारकशाह— खिज्रखां के बाद उसका गुणवान और योग्य पुत्र मुबारक शाह के नाम से सुलतान बना। उसने तैमूर के वंश से संबंध तोड़कर अपने को स्वतंत्र सुलतान घोषित कर दिया और अपने नाम की मुद्राएं प्रसारित कीं। उसके शासनकाल में खोखरों के नेता जसरथ ने विद्रोह कर सल्तनत की सीमा क्षेत्र पर आक्रमण किया। मेवात, कटेहर, ग्वालियर, इटावा कालपी में भी विद्रोह भड़क उठे। पर मुबारकशाह ने

इनका दमन कर दिया। सन् १४३४ में उसके प्रधान मंत्री सरवर ने उसकी हत्या कर दी।

मुहम्मद बिन फरीद (सन् १४३४-१४४५)—मुबारकशाह की मृत्यु के बाद उसका दत्तक पुत्र मुहम्मद बिन फरीद के नाम से सुलतान बना। इस समय उसका वजीर सरवर अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था। इसलिये सरवर और उसके साथियों की हत्या कर दी गयी और कमालुद्दीन को वजीर बनाया गया। सुलतान की दुर्बलता और क्षीण शक्ति का लाभ उठाकर अनेक स्थानों पर विद्रोह होने लगे और सरहिंद का शासक बहलोल लोदी भी दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ा पर असफल रहा। सन् १४४५ में सुलतान मोहम्मद की मृत्यु हो गयी।

अलाउद्दीन आलमशाह (सन् १४४५-१४५१)—मुहम्मद बिन फरीद की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन आलमशाह के नाम से सुलतान बना। वह इतना अकर्मण्य और विलासी था कि शासन का भार अपने वजीर हमीदखां पर छोड़कर बदायूं चला गया और वहीं निवास करने लगा। ऐसी दशा में बहलोल लोदी ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने अधीन कर सन् १४५१ में सुलतान बन गया।

लोदी सुलतान

बहलोद लोदी के सुलतान बन जाने पर दिल्ली में लोदी वंश का राज्य प्रारंभ हो गया। लोदी पठान थे, अफगानिस्तान के निवासी थे।

सुलतान बहलोल लोदी—बहलोल सरहिंद के शासक सुलतानशाह लोदी का भतीजा था। वह अपनी प्रतिभा और सैनिक गुणों के कारण सरहिंद का शासक बन गया। उसने दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन आलमशाह की क्षीण शक्ति और राज्य की अराजकता को देखकर तथा वजीर हमीदखां के निमंत्रण पर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने अधिकार में करके स्वयं सुलतान बन गया। सुलतान बनते ही उसने पंजाब के अमीरों का विद्रोह कुचल दिया और महमूद शर्की को दिल्ली आक्रमण करने पर आतंकित कर भगा दिया तथा मेवात व संभल के विद्रोही अमीरों का दमन किया एवं इटावा, मैनपुरी, चन्दावर क्षेत्रों में शांति स्थापित की। उसने जौनपुर के शासक हुसेनशाह शर्की को परास्त कर, जौनपुर को अपने अधीन कर लिया। और अपने भाई को वहां का शासक नियुक्त किया। बहलोल ने अपने युद्धों और विजयों से सुलतान की शक्ति व सत्ता पुनः स्थापित कर दी। वह वीर, साहसी, उदार और न्यायप्रिय दयालु सुलतान था।

सिकन्दर लोदी (सन् १४८९ से १५१७)—बहलोल लोदी के बाद उसका पुत्र सिकन्दर लोदी सुलतान बना। सिकन्दर का बड़ा भाई बारबक जो जौनपुर का स्वतंत्र शासक था, सुलतान बनना चाहता था। पर सिकन्दर ने उसे युद्ध में परास्त कर दिया और उसके क्षमायाचना करने पर उसे जौनपुर का सूबेदार नियुक्त कर दिया। इसके बाद उसने राजसिंहासन के अन्य उम्मीदवार आलमखां और आजमखां हूमायूं को भी परास्त कर दिया। उसने तातारखां तथा बयाना और जौनपुर के अमीरों के विद्रोहों का भी दमन किया। अब उसने सल्तनत की प्रगति के लिये निरंकुश शासन

के हेतु अमीरों की शक्ति का दमन और उन पर नियंत्रण रखना आवश्यक समझा। इसके लिये उसने गुप्तचर व्यवस्था दृढ़ कर दी। अमीरों को सुलतान का सम्मान करने और उसके फरमानों को मानने के लिये बाध्य किया, राजकीय धन का गबन करने वाले अमीरों को कठोर दंड दिया। इससे अमीर पूर्ण रूप से उसके आतंक व प्रभुत्व में आ गये।

सिकन्दर ने जौनपुर के विद्रोही अमीरों और हुसेनशाह शर्की को परास्त कर जौनपुर विजय कर उसे दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया। इसके बाद उसने बिहार और तिरहुत विजय की और बंगाल के शासक अलाउद्दीन हुसेनशाह से मैत्री सन्धि कर ली। फिर उसने धौलपुर, ग्वालियर, चन्देरी, कालपी और रणथंभौर पर आक्रमण करके उन्हें जीत लिया और इन राज्यों से उसने वार्षिक कर वसूल किया। इन विजयों से दिल्ली सल्तनत की सीमाएं और क्षेत्र बढ़ गये।

सिकन्दर लोदी ने केन्द्रीय सत्ता को दृढ़ और शक्तिशाली बनाया। वह निरंकुश, स्वेच्छाचारी शासक था। उसने ऐसे फरमान प्रसारित किये जिससे सुलतान के सम्मान और प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी। उसने राजपरिवार के व्यक्तियों और अपने भाइयों को अधिकारियों के साथ विभिन्न पदों पर नियुक्त किया जिससे उन पर नियन्त्रण रह सके। उसने गुप्तचर प्रथा से, कठोर दंड नीति से, सैनिक छावनियाँ स्थापित करके, विद्रोहों को कुचल करके अमीरों पर पूर्ण नियंत्रण रखा। उसने आगरा नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसने शरियत के अनुसार न्याय की व्यवस्था की। उसका दंड विधान कठोर था। उसने भू-राजस्व विभाग को दृढ़ किया और करों की वसूली की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने करों में कमी की। उसने राज्य में शांति व्यवस्था स्थापित कर दी जिससे सड़कें डाकुओं से मुक्त हो गयीं। वह विद्वानों का आदर करता था और स्थापत्य कला में रुचि रखता था। हिन्दुओं के प्रति वह असहिष्णु और धर्मांध था। उसने हिन्दुओं के कई मन्दिरों व मूर्तियों को विध्वस किया और उनके स्थान पर मसजिदें निर्मित कीं। हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया और उन पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये।

लोदी सुलतानों में सिकन्दर श्रेष्ठ, प्रभावशाली, सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व वाला सुलतान था। उसमें वीरता, साहस, शौर्य, धैर्य, न्यायप्रियता, राजनीतिज्ञता आदि सुल्तानोचित गुण विद्यमान थे। वह दयालु, दानी, सुसंस्कृत, साहित्य प्रेमी, कलामर्मज्ञ और धर्मनिष्ठ सुलतान था। वह दुराचारिता और विलासिता से घृणा करता था। वह योग्य शासक था जिसने अराजकता और अव्यवस्था को दूर कर पुनः शांति व्यवस्था स्थापित की। वह एक वीर योद्धा और कुशल सेनानायक भी था जो जीवन भर विद्रोहों का दमन, संघर्ष और युद्ध करता रहा। उसने अपनी विजयों से सल्तनत की सीमाएं बढ़ाईं। वह स्वयं विद्वान था और फारसी में कविता करता था। वह विद्वानों को राज्याश्रय और अनुदान देता था। उसने संगीत कला को भी प्रोत्साहन दिया। वह सुलतान पद के गौरव और प्रतिष्ठा का पोषक था। लोदी सुलतानों में सिकन्दर का स्थान श्रेष्ठ और ऊंचा है।

इब्राहीम लोदी (सन् १५१७-१५२६)—सिकन्दर लोदी के बाद उसका

पुत्र इब्राहीम लोदी सुलतान बना। उसका भाई जलालखां जौनपुर व कालपी क्षेत्र का स्वतंत्र शासक बना। इब्राहीम ने जलालखां को अपना प्रतिद्वंद्वी मान कर उस पर आक्रमण किया और कालपी में उसे परास्त कर दिया और बाद में उसे कैद कर उसकी हत्या कर दी। ग्वालियर नरेश द्वारा जलालखां को आश्रय देने के कारण, इब्राहीम ने ग्वालियर पर आक्रमण किया और वहां के राजा को परास्त कर उसे जीत लिया। इसके बाद उसने मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध हुआ। पर विजय किसी की नहीं हुई। इसके बाद राणा ने चन्देरी पर आक्रमण कर इब्राहीम से उसे छीन लिया था। आजमखां हूमायूं और मियां हुसेन फार्मूली दो प्रसिद्ध शक्तिशाली सेनानायक और अमीर थे। इब्राहीम ने इन्हें बन्दी बनाकर उनका वध करवा दिया और अपने बूढ़े वजीर मियां मुआ को भी कारावास में डाल दिया जहां उसकी मृत्यु हो गयी। इन कार्यों से अमीर इब्राहीम से भयभीत हो गये और उसे नीच और विश्वासघाती मानने लगे। इस समय अमीर लालची, स्वार्थी, षड़यंत्री और विद्रोही थे। इब्राहीम ने कठोर दंड नीति अपनाकर इन्हें दंडित किया। इससे वे इब्राहीम के घोर शत्रु हो गये और उनके नेताओं ने विद्रोह कर दिये। इनमें हुसेनखां फार्मूली, दरियाखां नूहानी और उसके पुत्र नसीरखां नूहानी के विद्रोह प्रसिद्ध रहे। इब्राहीम की अविश्वसनीयता और कठोर नीति व दुर्व्यवहार से पंजाब का राज्यपाल दौलतखां लोदी भी उससे रुष्ट हो गया। इसलिये दौलतखां और इब्राहीम के भाई आलमखां ने काबुल के शासक बाबर को इब्राहीम पर आक्रमण करने के लिये निमंत्रण भेजा। दौलतखां का उद्देश्य था कि वह बाबर की सैनिक सहायता से इब्राहीम को पदच्युत कर आलमखाँ को सुलतान बना देगा और स्वयं पंजाब का स्वतंत्र शासक हो जायेगा। पर बाबर ने ऐसा नहीं होने दिया। उसने पहिले पंजाब पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया और बाद में २१ अप्रेल सन् १५२६ को इब्राहीम को पानीपत के युद्ध में परास्त कर दिल्ली और आगरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। बाबर की इस विजय से दिल्ली सल्तनत का अन्त हो गया और दिल्ली में मुगल राज्य प्रतिष्ठित हो गया।

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

दिल्ली सल्तनत का प्रारम्भ सन् १२०६ में कुतुबुद्दीन ऐबक से हुआ और कुछ सुयोग्य शक्तिशाली सुलतानों ने इसे प्रथम श्रेणी का राज्य बनाया। परन्तु इब्राहीम लोदी की पराजय से इसका पतन हो गया। इसके विनाश और पतन के निम्नलिखित कारण हैं:—

राजनैतिक कारण—

(१) **निरंकुश स्वेच्छाचारी सुलतान**—दिल्ली के सुलतान निरंकुश व स्वेच्छाचारी थे। निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन सुलतान की प्रतिभा व योग्यता पर निर्भर रहता है। जब सुलतान अयोग्य, दुर्बल और निकम्मे हो गये तब ऐसे शासन का पतन हो गया।

(२) **अराष्ट्रीय शासन**—सुलतान अपनी प्रजा के बहुसंख्यक हिन्दुओं को निकृष्ट समझकर भेदभाव की नीति अपनाकर उनका विध्वंस करते थे। इससे सल्तनत अराष्ट्रीय और असफल रही।

(३) सुल्तानों में प्रशासकीय गुणों की कमी—सुलतानों में प्रशासकीय प्रशिक्षण, गुण और अनुभव की कमी रहती थी जिससे शासन अस्त-व्यस्त रहता था।

(४) उत्तराधिकार के नियम का अभाव—सुलतानों में उत्तराधिकार का निश्चित नियम न होने से सुलतान की मृत्यु के बाद सिंहासन के दावेदारों और उनके समर्थक अमीरों में षड़यंत्र होते और गृहयुद्ध छिड़ जाता था जिससे सल्तनत दुर्बल हो गयी।

(५) अमीरों और सूबेदारों का पतन—अमीर और सूबेदार जो सल्तनत के स्तंभ थे, कालान्तर में लालची, स्वार्थी, विलासी, अयोग्य और ईर्ष्यालु होकर परस्पर लड़ते रहे।

(६) दलबन्दियाँ और विद्रोह—अमीर और सरदार पठान, अफगान, तुर्क आदि विभिन्न जाति के थे और उनमें सुलतान के लिये स्वामिभक्ति व निष्ठा नहीं थी। वे दलबंदियाँ बनाकर विद्रोह करते और स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करते थे जिससे सल्तनत की जड़ें खोखली हो गयीं।

(७) सैन्य-शक्ति पर आधारित राज्य—दिल्ली सल्तनत शक्ति और सेना पर आधारित था और ऐसा राज्य दीर्घकाल तक तभी रह सकता है जबकि सुलतान वीर योद्धा और कुशल सेनापति हो। दुर्बल और निकम्मे सुलतानों के समय सल्तनत क्षीण हो गयी।

(८) दूषित और दुर्बल सैन्य व्यवस्था—सुलतान की सेना प्रांतपतियों व अमीरों की सेनाओं से बनने के कारण उसमें एकता, संगठन, सहयोग, प्रशिक्षण और अनुशासन नहीं था। शक्तिहीन सुलतान के समय ऐसी सेना शांति-व्यवस्था व राज्य की सुरक्षा बनाये रखने की अपेक्षा अपने विद्रोहों से सल्तनत को क्षीण करती थी।

(९) जागीर प्रथा—नगद वेतन की अपेक्षा जागीरें दी जाती थीं और सम्पन्न व शक्तिशाली जागीरदार सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर उसे पदच्युत कर देते थे।

(१०) विस्तृत साम्राज्य—उत्तर और दक्षिण भारत में फैले विशाल दिल्ली सल्तनत पर मध्ययुग में सुचारु रूप से शासन करना असंभव था। इससे शासन शिथिल हो गया और निरंतर विद्रोह होते रहे।

(११) दृढ़ सीमान्त नीति का अभाव—सुलतानों ने राज्य की सीमाओं की सुरक्षा नहीं की। इससे तूफानी आक्रमणों ने उन्हें धराशायी कर दिया।

(१२) तुगलक सुलतानों की दूषित नीति—मुहम्मद तुगलक की विभिन्न योजनाएँ, फिरोज की कायर और दब्बू नीति, उसकी जागीर प्रथा व दास प्रथा, दूषित सैन्य संगठन, धर्मांधता, आदि सल्तनत के लिये घातक प्रमाणित हुए।

(१३) लोदी सुलतानों की नीति—लोदी सुलतानों की सामन्तशाही, इब्राहीम लोदी के हठी, क्रोधी स्वभाव व कठोर दमन नीति और दुर्व्यवहार से बाबर को निमंत्रण दिया गया और बाबर ने आक्रमण करके इब्राहीम को युद्ध में परास्त कर सल्तनत का अन्त कर दिया।

(१४) तैमूर का आक्रमण—तैमूर के आक्रमण, नरसंहार और लूट ने जर्जरित सल्तनत को पतन की ओर ढकेल दिया।

धार्मिक कारण—

(१) धर्मसापेक्ष राज्य—दिल्ली सल्तनत इस्लाम पर आधारित थी। इससे सल्तनत की बहुसंख्यक प्रजा प्रशासन से पृथक और अधिकारों से वंचित थी। इस धर्मसापेक्षता से वह असन्तुष्ट और विद्रोही हो गयी थी।

धर्मांधता और असहिष्णुता—**सुलतान धर्मांध होने से हिन्दुओं पर अत्याचार करते थे, उनके मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ते थे। इससे हिन्दू विद्रोही हो गये और सल्तनत में स्थायित्व न आ सका।**

सामाजिक कारण—

(१) सामाजिक भेदभाव—सुलतानों ने अपनी दूषित नीति और धर्मांधता से हिन्दुओं में सामाजिक भेदभाव उत्पन्न कर दिया और उनका संघर्ष और विद्वेष सुलतानों के पतन में सहायक हुआ।

(२) सामाजिक दुर्व्यवस्था—षड़यंत्रों, संघर्षों, विद्रोहों, आक्रमणों व युद्धों से सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था और इससे समाज में उपेक्षा और विरोध की भावना उत्पन्न हो गयी।

आर्थिक कारण—**सुलतानों के आक्रमणों और युद्धों से, गबन व भ्रष्टाचार से, व्ययशील दास प्रथा से राजकोष रिक्त हो गया था। सुलतानों ने कोई दृढ़ आर्थिक नीति नहीं अपनायी। कृषि, व्यापार, उद्योग, व्यवसाय आदि के लिये कोई ठोस कदम नहीं उठाये।**

तात्कालिक कारण—**बाबर के आक्रमण और उसकी विजय ने दिल्ली सल्तनत का अन्त कर दिया।**

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

राजनैतिक कारण	**धार्मिक कारण**	**सामाजिक कारण**	**आर्थिक कारण**	**तात्कालिक कारण**
१. निरंकुशसुलतान।	१. धर्मसापेक्ष राज्य।	१. सामाजिक भेदभाव।	१. राजकोष की रिक्तता।	बाबर का आक्रमण और विजय।
२. अराष्ट्रीय शासन।	२. धर्मांधता, असहिष्णुता।	२. सामाजिक दुर्व्यवस्था।	२. दृढ़ आर्थिक नीति का अभाव।	
३. प्रशासकीयगुणों का अभाव।				
४. उत्तराधिकार के नियम का अभाव।				
५. अमीरों व सूबेदारों का पतन।				
६. दलबंदियाँ, विद्रोह।				
७. सैन्य शक्ति का राज्य।				
८. दूषित सैन्य व्यवस्था।				
९. जागीर प्रथा।				
१०. विस्तृत साम्राज्य।				
११. सीमान्त नीति।				
१२. तुगलकों की नीति				
१३. इब्राहीम लोदी की नीति।				
१४. तैमूर का आक्रमण।				

अध्याय २३

भारत के नवीन प्रांतीय राज्य

चौदहवीं सदी के मध्य से दिल्ली सल्तनत का पतन प्रारम्भ हुआ। जैसे-जैसे केन्द्रीय सत्ता क्षीण होती गयी, वैसे ही वैसे प्रांतीय सूबेदार स्वतन्त्र होकर अपने राज्य स्थापित करने लगे। उन्होंने दिल्ली सुलतान से अपने सम्बन्ध विच्छेद करके अपने नवीन राज्य स्थापित कर लिये। मुहम्मद तुगलक के शासन काल से भारत की राजनैतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गयी और उसकी योजनाओं से असन्तुष्ट सूबेदारों ने दिल्ली से दूर होने का लाभ उठाकर अपने स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण कर लिया। उसके शासन के अन्तिम दिनों में समस्त दक्षिणी भारत, दिल्ली साम्राज्य से पृथक हो गया और वहां विजयनगर और बहमनी राज्यों का उदय हुआ। कुछ समय बाद बंगाल ने भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। अंतिम तुगलक सुलतानों के शासनकाल में गुजरात तथा जौनपुर ने भी दिल्ली से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इसी प्रकार खानदेश और मालवा भी दिल्ली साम्राज्य से पृथक हो गये। तैमूर के आक्रमण ने भी दिल्ली सल्तनत को इतना दुर्बल बना दिया था कि वह अपनी रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हो गया। सैयद और लोदी सुल्तानों का राज्य छोटा सा था। पंजाब और दोआब तक ही उसका राज्य सीमित रहा। पंद्रहवीं शताब्दी राजनैतिक विघटन की सदी थी। सुलतान अपने अमीरों के विद्रोहों और षड्यंत्रों का दमन करने में इतने संलग्न थे कि वे भारत को संगठित करने में पूर्णतया असमर्थ थे इससे छोटे-छोटे राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ और वे अपना राज्य विस्तार करने के लिये संघर्ष करने लगे। इन राज्यों की न तो कोई प्राकृतिक सीमाएँ निर्धारित थी और न दिल्ली के सुलतान इनकी स्वतन्त्रता, महत्वाकांक्षा और राज्य विस्तार को रोकने में समर्थ ही थे। ये राज्य शक्ति पर आश्रित थे, इसलिये जो बलशाली होता था, वही अपने पड़ौसी राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लेता था। इससे देश में राज्यों का पारस्परिक संघर्ष, अराजकता और अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी।

इन नवीन प्रांतीय राज्यों के अभ्युदय के समय दो ऐतिहासिक तथ्यों को विस्मरण नहीं करना चाहिये। प्रथम, दिल्ली सल्तनत के पतन से मुसलमानों की शक्ति का ह्रास नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि प्रांतीय सूबेदारों ने जो सभी मुसलमान थे अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये और अपनी अपनी शक्ति संगठित कर ली। उन्होंने प्रशासन और साम्राज्य विस्तार में सुलतानों की नीति अपनायी। इसलिये उनके कार्यों और नीति से मुसलमानों की शक्ति किसी भी प्रकार से कम नहीं हुई, अपितु वह बढ़कर और भी अधिक दृढ़ हो गयी। द्वितीय, विभिन्न प्रांतों में स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य स्थापित हो गये, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उस समय भी

हिन्दुओं के स्वतंत्र शक्तिशाली राज्य नहीं थे। यह सोचना कि हिन्दुओं की राजसत्ता क्षीण और लुप्त हो गई थी, भ्रममूलक है। उत्तर में हिमालय की तराई के प्रदेश, काँगड़ा, नेपाल तथा आसाम हिन्दुसत्ता, प्रभुत्व और संस्कृति के केन्द्र थे। मध्यप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा आदि क्षेत्रों में हिन्दुओं का ही प्रभुत्व था। वहां स्वतंत्र मुसलमानी राज्य स्थापित नहीं हो पाये थे। दक्षिण भारत में विजयनगर राज्य ने हिन्दू राजसत्ता, हिन्दू धर्म और संस्कृति को बनाये रखा। इन हिन्दू राज्यों की एक दुर्बलता यह थी कि वे भी राजपूत युग के राज्यों की भांति पारस्परिक संघर्ष और युद्धों में संलग्न रहते थे। अब इन स्वतंत्र राज्यों का वर्णन किया जाएगा।

उत्तरी भारत के स्वतंत्र राज्य

बंगाल—प्रान्तों में सबसे प्रथम मुहम्मद बिनबख्तियार खिलजी ने जो मुहम्मद गौरी का सेनापति था, बंगाल पर आक्रमण करके वहां के राजा लक्ष्मणसेन को परास्त करके वहां स्वतंत्र मुस्लिम राज्य स्थापित किया। उसने लखनौती को अपनी राजधानी बनाया और पूर्व में नदिया तथा उत्तर में बिहार के कुछ क्षेत्रों को अपने राज्य में मिला लिया। उसके वंशजों ने बंगाल पर दीर्घकाल तक राज्य किया। दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश ने बंगाल को अपने राज्य में मिलाने के लिए उस पर आक्रमण किया और वहां का विद्रोह शांत कर दिया। बलबन के समय बंगाल पुनः स्वतंत्र हो गया और वहां के शासक तुगरिल बेग का दमन करने के लिए बलबन ने दो बार सेना भेजी, पर उसे सफलता नहीं मिली और अन्त में वह स्वयं बंगाल गया और वहां के विद्रोही शासक तुगरिल बेग और उसके साथियों को निर्ममता से कठोर दंड दिये और अपने पुत्र बुगराखां को वहां का अपने अधीन राज्यपाल नियुक्त किया। सन् १३५८ तक बुगराखां के वंशज बंगाल में शासन करते रहे।

गयासुद्दीन तुगलक के शासनकाल में बंगाल में गृहयुद्ध हो गया। इसमें गयासुद्दीन ने हस्तक्षेप करके नासिरुद्दीन को बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया परन्तु उसके एक सेवक फखरुद्दीन ने उसकी हत्या करके बंगाल में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में बंगाल पुनः स्वतंत्र हो गया और सन् १३५० में **इलियासशाह** यहां का स्वतंत्र शासक बन गया और फीरोज तुगलक ने बंगाल में अपने आक्रमण में असफल होने पर सन् १३५६ में इसे पूरे बंगाल का स्वतंत्र शासक मान लिया। इलियासशाह योग्य शासक था। उसके बाद उसका बेटा **सिकन्दरशाह** बंगाल का शासक बना। उसने सन् १३५८–८९ तक राज्य किया। उसका शासन अच्छा था। वह कलाप्रिय था। उसने पंडुआ में अदीना मस्जिद बनवाई जो बंगाल में मुसलमान शासकों की वास्तु कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। सिकन्दरशाह के बाद उसका पुत्र **गयासुद्दीन आजम** बंगाल का शासक बना। वह भी बड़ा योग्य शासक था। उसने चीन को अपना राजदूत भेजा था। सन् १४१० में इसकी मृत्यु हो जाने पर **सैफुद्दीन हम्जाशाह** शासक बना। पर वह शक्तिहीन, अयोग्य और निकम्मा था। इसलिए मूनूरिया और दीनाजपुर के प्रभावशाली जमींदार **गणेश** ने बंगाल के राजसिंहासन पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसने

इस्लाम धर्म अपना लिया और **जलालुद्दीन मुहम्मदशाह** के नाम से गद्दी पर बैठा। सन् १४४२ तक उसके वंशज बंगाल पर राज्य करते रहे। इसके बाद इलियास के वंशज इस्लामशाह ने बंगाल पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस्लामशाह भी साहसी, शक्तिशाली और योग्य शासक था। उसने अनेक मस्जिदें निर्माण की जिनमें सनग्राम की मस्जिद अधिक प्रसिद्ध है। वह साहित्य का भी अनुरागी था। इस्लामशाह के वंशज बंगाल में सन् १४८७ तक राज्य करते रहे। इसके बाद कुछ समय तक हब्शी शासक रहे।

सन् १४९२ में हुसैनशाह ने बंगाल पर अधिकार करके वहाँ हुसैनशाही वंश की नींव डाली।

हुसैन शाह—बंगाल का श्रेष्ठ शासक माना गया है। वह योग्य प्रतिभाशाली शासक था। वह साहित्य और कला का अनुरागी था। उसने अनेक मसजिदों का निर्माण करवाया जिनमें सोना मसजिद तथा कदम्ब वसूल मसजिद अधिक प्रसिद्ध हैं। उसने हिन्दुओं के प्रति उदार धार्मिक नीति अपनायी। वह हिन्दुओं के बसन्त और होली उत्सवों पर सम्मिलित होकर उन्हें धूमधाम से मनाता था। उसने आसाम और तिरहुत के क्षेत्र को अपने आधीन कर लिया था और दिल्ली के सुलतान सिकन्दर लोदी से मैत्री संधि कर ली थी। सन् १५१९ में हुसैनशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र नसरतशाह शासक बना। वह भी शक्तिशाली और उदार शासक था। वह विद्वानों का आश्रयदाता था। उसने बंगाली साहित्य में अभिरुचि ली। सन् १५३२ में उसकी मृत्यु हो गयी।

गयासुद्दीन महमूदशाह—बंगाल का अंतिम स्वतंत्र शासक था। हुमायूं तथा शेरशाह दोनों ने बंगाल को जीता पर उनकी विजयें अल्पकालीन रहीं। सन् १५७६ में मुगल सम्राट अकबर ने बंगाल को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

बंगाल के मुस्लिम शासकों ने बंगाल की खूब उन्नति की। वहां की कला और साहित्य में उन्होंने अपना योगदान दिया और बंगाल की विभिन्न वास्तुकला शैली का प्रादुर्भाव हुआ। कतिपय शासकों की उदार सहिष्णु धार्मिक नीति के कारण बंगाल में सत्यपीर नामक सम्प्रदाय का विकास हुआ। इस धर्म के अनुयायी सभी धर्मों में विश्वास करते थे। राजनैतिक दृष्टि से बंगाल का प्रांत दिल्ली से अत्यधिक दूर होने के कारण दिल्ली सुलतानों के नियंत्रण में बहुत कम समय तक रहा। यद्यपि दिल्ली सुलतानों ने कभी-कभी बंगाल को जीतकर अपने अधीन कर लिया, पर शक्तिहीन और अयोग्य सुलतानों के समय दिल्ली से बंगाल पृथक होकर स्वतंत्र होता गया। इससे बंगाल का सूबा दिल्ली सुलतानों के लिये चिंता का विषय बना रहा।

जौनपुर—फिरोज तुगलक ने अपने चचेरे भाई सुलतान मुहम्मद तुगलक के मूलनाम जूनाखां के आधार पर जौनपुर नगर की नींव डाली और उसे विस्तृत किया। यहां का सर्वप्रथम शासक ख्वाजाजहां था जो अंतिम तुगलक सुलतान महमूद नासिरुद्दीन द्वारा नियुक्त किया गया था। उसे सुलतान से मलिक-उल-शर्की (पूर्वी प्रदेशों का मालिक) की उपाधि प्राप्त हुई थी। तुगलक सुलतान के शक्तिहीन होने और तैमूर के आक्रमण से व्याप्त विघटनकारी प्रवृत्ति का लाभ उठाकर उसने अपने आपको

जौनपुर का स्वतंत्र सुलतान घोषित कर दिया। उसकी उपाधि के कारण ही उसका राजवंश शर्की वंश कहलाया। उसने अवध पर ही अपना राज्य स्थापित नहीं किया अपितु पूर्व में बिहार और तिरहुत तक और पश्चिम में कोल (अलीगढ़) का प्रदेश भी उसने अपने अधिकार में कर लिया था तथा उसने लखनौती और जाजनगर के शासकों से कर भी वसूल किया। उसने अपनी शक्ति सुदृढ़ करके अतावक-ए-आजम की उपाधि धारण की। सन् १३९९ में उसका दत्तक पुत्र व उत्तराधिकारी **मुबारकशाह** जौनपुर का शासक बना। वह जौनपुर का प्रथम स्वतंत्र सुलतान था। जिसने अपने सिक्के प्रचलित किये।

इब्राहीमशाह—मुबारक की मृत्यु के बाद उसका भाई इब्राहीम **शम्सुद्दीन इब्राहीमशाह शर्की** के नाम से जौनपुर का सुलतान बना। वह शर्की वंश का प्रतिभाशाली, योग्य और श्रेष्ठ सुलतान था। उसने चालीस वर्ष तक राज्य करके जौनपुर राज्य को विशाल एवं उन्नत बनाया। उसने साहित्य और कला को राज्य का संरक्षण दिया। उसने अनेक ग्रंथों का अनुवाद फारसी में करवाया। उसकी राजसभा में उच्चकोटि के विद्वान थे। दिल्ली का प्रसिद्ध काजी शहाबुद्दीन उसकी राज्यसभा में था। उसके शासन काल में जौनपुर मुस्लिम शिक्षा तथा संस्कृति का एक केन्द्र बन गया। उसने अनेक भवनों का निर्माण कर जौनपुर को अधिक आकर्षक, सुन्दर और वैभवशाली ननाया। उसके द्वारा निर्मित मसजिदों में जौनपुर की अटाला मसजिद सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस मसजिद का निर्माण अटाला देवी के मंदिर को विध्वंस करके उसके भग्नावशेषों पर किया गया। वह योग्य होने पर भी धर्मांध और असहिष्णु सुलतान था। वह विस्तारवादी नीति का समर्थक था। इसलिए उसने दिल्ली पर आक्रमण किया पर गुजरात के शासक मुजफ्फरखां के कारण इसे वापिस लौटना पड़ा। उसने मालवा के शासक की सहायता से कालपी को अपने अधिकार में करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं मिली।

महमूदशाह—इब्राहीम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महमूदशाह जौनपुर का सुलतान बना और उसने सन् १४०० से १४५७ तक राज्य किया। उसने कईबार दिल्ली पर आक्रमण किये और उसे विजय करने का प्रयास किया। पर सुलतान बहलोललोदी ने उसे युद्ध में परास्त कर उसके प्रयत्नों को विफल कर दिया। महमूदशाह योग्य शासक था और कला व साहित्य का पोषक था। उसके शासन काल में साहित्य की विशेष उन्नति हुई। उसने भी कई मसजिदों का निर्माण करवाया। उसके बाद उसका पुत्र **मुहम्मदशाह** के नाम से जौनपुर का सुलतान बना। पर वह बड़ा निर्दयी, क्रूर और अत्याचारी था। उसने लोगों के साथ समुचित सद्व्यवहार नहीं किया। उसने अपने भाई का वध भी करवा दिया था। उसकी कठोर दमन नीति और अत्याचारों से असन्तुष्ट होकर अमीरों और सरादरों ने उसके भाइयों के साथ षड़यंत्र करके उसका वध करवा दिया।

हुसैनशाह शर्की—मुहम्मदशाह का उत्तराधिकारी उसका भाई हुसैनशाह शर्की था। हुसैनशाह ने बिहार के जमींदारों का दमन किया तथा उड़ीसा के राजा से कर वसूल किया। उसने एक बार ग्वालियर राज्य पर भी आक्रमण किया, पर असफल रहा। उसने भी दिल्ली पर आक्रमण कर उसे जीतने का प्रयास किया पर

सन् १४८६ में सुलतान बहलोल लोदी ने उसे परास्त कर और पदच्युत करके बारबकशाह को जौनपुर का शासक नियुक्त किया। हुसनशाह की पराजय से जौनपुर की स्वतंत्र सत्ता नष्ट हो गयी। हुसैनशाह ने बंगाल के शासक के यहां शरण ली और अपने अंतिम दिन तक वहीं रहा।

लगभग अस्सी वर्षों तक जौनपुर का स्वतंत्र राज्य रहा। इस काल में जौनपुर राज्य ने बड़ी उन्नति की। वहां के सुलतान साहित्य और कला के उदार संरक्षक माने गये थे। उन्होंने अनेक भवनों और मसजिदों का निर्माण करवाया। उनकी भवन निर्माण कला दिल्ली से भिन्न थी। उसमें हिन्दुओं की कला का बाहुल्य था। इससे जौनपुर की पृथक प्रांतीय भवन निर्माण शैली विकसित हुई। इन सुलतानों के समय में मुस्लिम शिक्षा की खूब प्रगति हुई और जौनपुर उत्तरी भारत का सीराज कहा जाने लगा था तथा वहां दूर-दूर के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिये आया-जाया करते थे। संगीत प्रेमी हुसैनशाह के शासन काल में जौनपुर में संगीत की भी खूब उन्नति हुई।

काश्मीर—मुसलमान आक्रमणकारी और शासक दीर्घकाल तक काश्मीर पर अपना आधिपत्य स्थापित नहीं कर सके। दिल्ली सल्तनत के पूर्व जयसिंह नामक एक शक्तिशाली हिन्दू राजा ने सन् ११२८ से ११५५ तक काश्मीर में राज्य किया। उसके बाद लगभग दो सदी तक काश्मीर में कोई शक्ति संपन्न राजा नहीं हुआ और वहां अव्यवस्था रही। काश्मीर ऐसी अस्तव्यस्तता में भी स्वतंत्र बना रहा क्योंकि वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों और आवागमन की कठिनाइयों के कारण काश्मीर सुरक्षित रहा। चौदहवीं सदी के प्रारंभ तक वहां हिन्दू नरेशों का शासन रहा। इसी समय कंधार के शाह ने काश्मीर पर आक्रमण करके उसे लूटा। सन् १३४६ के लगभग शाहमिर्जा नामक एक फारसी सरदार ने काश्मीर पर आक्रमण करके वहां के हिन्दू नरेश को पदच्युत करके अपना राज्य स्थापित कर लिया। शाहमिर्जा के बारह उत्तराधिकारियों ने काश्मीर पर शासन किया और वहां इस्लाम का जोरों से प्रचार किया और अनेकानेक हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया।

शाहमिर्जा के उत्तराधिकारियों में सिकन्दर निरंकुश, स्वेच्छाचारी, धर्मांध शासक था। उसने हिन्दुओं के मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा और मुसलमान न बनने वाले हिन्दुओं को देश से निर्वासित कर दिया। उसके शासन काल मे कला और साहित्य की उन्नति हुई। उसने तैमूर की अधीनता स्वीकार करके तैमूर के आक्रमण से काश्मीर की रक्षा की। सन् १४१० में इसके देहावसान के बाद इसका पुत्र अलीशाह काश्मीर का शासक बना। उसके उत्तराधिकारियों में जैनुल अल्दीन जो सन् १४१७ में शासक बना, प्रसिद्ध है। वह उदार और सहिष्णु था। उसने निर्वासित हिन्दुओं को पुनः काश्मीर में बुलाया, उन्हें हिन्दू धर्म मानने की आज्ञा दी और नष्ट मंदिरों का पुनर्निर्माण करवाया। उसने जजिया हटाया और गोवध का निषेध करवाया। साहित्य और कला को भी उसने खूब प्रोत्साहन दिया। संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद करवाया। उसने कृषि और उद्योगों को भी उन्नत किया। उसकी उदार और प्रगतिशील नीति के कारण वह "काश्मीर का अकबर" कहा जाता है।

उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और निकम्मे निकले। इससे राज्य में अव्यवस्था और अराजकता फैल गयी। ऐसी दशा में बाबर के एक चचेरे भाई मिर्जाहैदर दौलत ने काश्मीर पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। उसके बाद पुराने राजवंश के और चक्कवंशी शासक काश्मीर पर राज्य करते रहे। उनकी शक्ति निर्बल होने पर सन् १५८९ में अकबर ने काश्मीर को जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

मालवा—देश के मध्य में स्थित मालवा अत्यधिक उपजाऊ और धनसम्पन्न प्रदेश रहा है। तेरहवीं सदी के प्रथम चरण तक मालवा में प्रसिद्ध परमार राजवंशीय नरेश राज्य करते रहे। धार उनकी राजधानी थी। सन् १२३४-३५ में दिल्ली के सुलतान इल्तुतमिश ने मालवा पर आक्रमण किया और उज्जैन नगर को लूटकर वहां के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। पर मालवा पर उसका आधिपत्य क्षणिक था। इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा पर आक्रमण किया और उसे जीतकर सन् १३१० में इसे दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया।

दिलावरखाँ गोरी—फिरोज तुगलक ने अपने शासन काल में दिलावरखां गोरी को, जो मुहम्मद गोरी का वंशज था, मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। तैमूर के आक्रमण के बाद सन् १३९८ में दिल्ली सुलतान की निर्बलता और अराजकता का लाभ उठाकर दिलावरखां मालवा का स्वतंत्र शासक बन बैठा और उसने धार को अपनी राजधानी बनाया। उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और सिक्के प्रचलित किये। दिलावरखां ने मालवा में मुस्लिम राज्य की स्थापना की।

होशंगशाह—सन् १४०६ में दिलावरखां के पुत्र होशंगशाह ने उसे विष देकर मार डाला और स्वयं होशंगशाह के नाम से मालवा का सुलतान बन बैठा और धार के पास प्रसिद्ध मांडू नगर व दुर्ग को अपनी राजधानी बनाया। उसने मांडू में अनेक भवन बनवाये और राजधानी के सौन्दर्य में वृद्धि की। उसने नर्मदा तट पर होशंगाबाद नामक नगर बसाया। इस समय मालवा चारों ओर से बड़े-बड़े शक्तिशाली राज्यों से घिरा हुआ था। पश्चिम में गुजरात का राज्य, उत्तर में मेवाड़ का सिसोदिया राज्य, और दक्षिण में बहमनी राज्य था। इन सबसे मालवा के सुलतान का संघर्ष चलता रहता था। होशंगशाह का अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ। गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह ने सन् १४०७ में मालवा पर आक्रमण करके होशंगशाह को परास्त कर बन्दी बना लिया था तथा अपने भाई नसरतखां को मालवा का शासक नियुक्त कर दिया। लेकिन अमीरों और सरदारों ने नसरत के अत्याचारों से रुष्ट होकर होशंगशाह के भाई को अपना शासक निर्वाचित कर लिया। इस पर मुजफ्फरशाह ने अपने पौत्र अहमदखां को अपने मान की रक्षार्थ मांडू भेजा। पर इससे कोई विशेष उल्लेखनीय काम नहीं हुआ। सन् १४३५ में होशंगशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र गाजीखां सुलतान बना। वह निकम्मा और अयोग्य था। इसलिए उसके मंत्री महमूद खिलजी ने उसका वध कर दिया और वह स्वयं सुलतान बन बैठा। इस प्रकार दिलावरखां के गोरी राजवंश का अंत हो गया और खिलजी वंश का राज्य प्रारंभ हुआ।

महमूद खिलजी—सुलतान महमूद खिलजी ने मालवा पर सन् १४३६ से

१४६९ तक राज्य किया। वह वीर योद्धा, साहसी सैनिक और कट्टर सुलतान था। वह महत्वाकांक्षी और विस्तारवादी सुलतान था। उसके शासन काल मे मालवा राज्य का सबसे अधिक विस्तार हुआ। यह राज्य दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत तक पश्चिम में गुजरात की सीमा तक, उत्तर में मेवाड़ तक और पूर्व में बुन्देलखंड तक फैला हुआ था। महमूद खिलजी ने गुजरात, जौनपुर और दिल्ली राज्यों से संघर्ष किया। सन् १४४० में मेवाड़ के राणा कुम्भा ने महमूद खिलजी को युद्ध म परास्त कर दिया था। कहा जाता है कि उसे बंदी बनाकर चितौड़ दुर्ग में रखा था। इस विजय को चिर स्मरणीय करने के लिये राणा कुम्भा ने चित्तौड़ में विशाल और बहुत ऊंचा विजय स्तंभ निर्मित करवाया।

गयासुद्दीन व नासिरुद्दीन—महमूद खिलजी के देहावसान के बाद उसका पुत्र गयासुद्दीन सुलतान बना और उसने सन् १४६९ से १५०० तक राज्य किया। उसके पुत्र ने उसे विष देकर मार डाला और स्वयं नासिरुद्दीन के नाम से सुलतान बन गया। वह बड़ा नीच प्रकृति का निर्दयी शासक था। वह विलासी और पतित भी था। सन् १५१० में वह मांडू में जल-क्रीड़ा करते समय झील में डूबकर मर गया।

महमूद खिलजी—द्वितीय—नासिरुद्दीन के बाद महमूद खिलजी द्वितीय मालवा का सुलतान बना। उसने १५१० से १५३१ तक शासन किया। वह शक्तिहीन और निकम्मा था। इसलिये प्रशासन के लिये उसने चंदेरी नरेश मेदिनीराय को अपना प्रमुख परामर्शदाता बनाया। और अपने विरोधी अमीरों का दमन मेदिनीराय के द्वारा कराना चाहा। उसने अपनी अयोग्यता और दुर्व्यवहार से अमीरों को भी अपने विरुद्ध कर लिया था। ऐसी दशा में मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह ने मालवा पर आक्रमण किया और महमूद खिलजी को युद्ध में परास्त कर दिया और उसे बंदी बना लिया, पर थोड़े समय बाद उसे मुक्त कर दिया और मालवा उसे लौटा दिया। इसके बाद सन् १५३१ में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मांडू पर आक्रमण किया और महमूद खिलजी द्वितीय को परास्त कर, सपरिवार उसका कत्ल कर दिया और मालवा को गुजरात में सम्मिलित कर लिया।

बहादुरशाह और शुजानखां—सन् १५३५ में मुगल सम्राट हुमायूं ने बहादुरशाह को मालवा से खदेड़ दिया और मालवा पर थोड़े समय के लिये अपना अधिकार जमा लिया। पर हुमायूं के उत्तर की ओर जाते ही कादिरखाँ अमीर ने मालवा में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सन् १५४२ में सुलतान शेरशाह सूरी ने उसे परास्त कर शुजानखाँ को मालवा का शासक नियुक्त किया। जब सन् १५५५ में पुनः हुमायूं भारत का सम्राट बना, तब उसने शुजानखाँ को अपनी ओर से मालवा का शासक नियुक्त कर दिया। शुजानखां ने भी हुमायूं की अधीनता स्वीकार करली।

बाजबहादुर—शुजानखां का पुत्र और उत्तराधिकारी बाजबहादुर था। वह विशेष शक्तिशाली नहीं था। उसे अकबर ने परास्त करके मालवा जीतकर उसे मुगल राज्य में सम्मिलित कर लिया।

मालवा के सुलतान कलाप्रिय रहे। उन्होंने अपनी राजधानी मांडू को विभिन्न प्रकार के भवनों, राजप्रासादों और मसजिदों से अधिक सुन्दर और आकर्षक बनाया।

उनके निर्मित भवनों में होशंगशाह का मकबरा,उसकी मसजिद, जहाजमहल, बाजबहादुर का महल, आदि विशेष प्रसिद्ध हैं । इन सुलतानों की कलाप्रियता से मालवा की प्रांतीय भवन निर्माण शैली का विकास हुआ जिसमें प्रारम्भ में विदेशी इस्लामी प्रभाव अधिक रहा, पर बाद में इसका हिन्दू शैली से समन्वय हो गया था।

खानदेश—विंध्याचल पर्वत और मालवा के दक्षिण में खानदेश प्रदेश है । यह ताप्ती नदी की घाटी में स्थित है और बड़ा उपजाऊ तथा समृद्ध क्षेत्र रहा है । तुगलक साम्राज्य के अन्तर्गत आ जाने पर फिरोज तुगलक ने मलिक अहमद को, मलिक फरुखी की उपाधि प्रदान कर खानदेश का राज्यपाल नियुक्त कर दिया। मलिक फरुखी प्रतिभावान, योग्य और महत्वाकांक्षी शासक था । दिल्ली सुलतान की दुर्बलता और दिल्ली से खानदेश की दूरी का लाभ उठाकर उसने अपने आपको खानदेश का स्वतंत्र सुलतान घोषित कर दिया। मालवा के सुलतान की पुत्री से विवाह करके उसने मैत्री से अपनी स्थिति दृढ़ करली। वह खानदेश का प्रथम सुलतान था और फरुखी पदवी होने से उसका वंश, फरुखी राजवंश कहलाया। सन् १३९९ में उसके देहावसान के बाद उसका पुत्र और उत्तराधिकारी नसीर खानदेश का सुलतान बना। इसने खानदेश के प्रसिद्ध दुर्ग असीरगढ़ को जीत लिया। सन् १४३७ में उसकी मृत्यु हो गयी। इसके उत्तराधिकारियों में आदिलशाह (सन् १४५७ से १५०३) अधिक सुयोग्य और प्रतिभावान सुलतान था। इसके शासन काल में खानदेश अधिक उन्नतिशील और समृद्ध राज्य बन गया। बुरहानपुर इस राज्य की राजधानी रहा। उसके उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य होने से सन् १६०१ में अकबर ने असीरगढ़ दुर्ग जीतकर खानदेश को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। खानदेश के सुलतानों ने असीरगढ़ और बुरहानपुर को अनेक भवनों, इमारतों और मसजिदों से अलंकृत किया।

गुजरात—दीर्घ काल तक गुजरात में राजपूत नरेशों का लोक-प्रिय शासन रहा। सीमा पर राजस्थान की मरु भूमि,विंध्याचल और अरावली की पर्वतमालाओं और सघन वनों के कारण तथा आवागमन के सुलभ साधनों के अभाव में गुजरात तेरहवीं सदी तक मुसलमानों के आधिपत्य से मुक्त रहा। उपजाऊ और समुद्रतट का प्रदेश होने से यहां का विदेशों से अधिक व्यापारिक सम्पर्क होने के कारण गुजरात समृद्धिशाली प्रदेश रहा और धनसंपन्न व्यापारियों का क्षेत्र रहा। इसकी समृद्धि और यहाँ के सोमनाथ मंदिर की संपन्नता ने महमूद गजनवी को यहां आक्रमण करने और मन्दिर को लूटने के लिये आकर्षित किया था। सन् ११२४ में महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण कर उसे खूब-लूटा। इसके साथ-साथ यहां इस्लाम का भी प्रचार बढ़ा। सन् १२९७ मे दिल्ली सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण किया और वहां के बघेल राजपूत नरेश को परास्त कर गुजरात विजय कर उसे दिल्ली साम्राज्य में मिला लिया। मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक के प्रतिनिधि शासक यहां राज्य करते रहे और तैमूर के आक्रमण तक गुजरात दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत रहा।

सुलतान मुजफ्फरशाह—तैमूर के आक्रमण के पश्चात् गुजरात के सूबेदार जफरखां ने सन् १३९६ में दिल्ली साम्राज्य से अपना संबंध विच्छेद कर लिया और अपने पुत्र तातारखां को गुजरात का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और उसके नाम का

खुतबा पढ़वाया। तातारखां नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह के नाम से गुजरात का शासक बना। पर कुछ कारणों से उसके पिता जफरखां ने उसका वध कर दिया और मुजफ्फर-शाह के नाम से शासक बन गया। उसने प्रारम्भ में अपने प्रबल विरोधियों का सामना करके धीरे-धीरे अपनी शक्ति दृढ़ करली। उसने युद्धों और विजयों से गुजरात राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। उसने ईदर को जीता और मालवा पर भी आक्रमण किया और वहां के सुलतान को परास्त कर दिया। वह योग्य, वीर और कर्मठ सुलतान था।

अहमदशाह (१४११–१४४२)—सन् १४११ में मुजफ्फरशाह को उसके नाती ने विष देकर मार डाला और स्वयं अहमदशाह के नाम से गुजरात का सुलतान बन गया। उसकी गणना गुजरात के योग्य और प्रमुख शासकों में की जाती है। वह बड़ा वीर,साहसी और महत्वाकांक्षी सुलतान था जिसने गुजरात की सीमाओं का विस्तार किया और उसे सुव्यवस्थित राज्य बनाया। वह गुजरात के मुस्लिम राज्य का वास्त-विक संस्थापक था। उसने प्राचीन नगर कर्णावती के स्थान पर साबरमती नदी के बायें तटपर अपने नाम से अहमदाबाद नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। कालान्तर में यह नगर व्यापार-उद्योग का केन्द्र बन गया। गुजरात के मुस्लिम शासकों ने इसे अपने सुन्दर भवनों, राजप्रासादों और मसजिदों से अलंकृत किया। साम्राज्य-वादी और महत्वाकांक्षी होने से अहमदशाह ने पार्श्ववर्ती राज्यों से युद्ध किये। उसने सन् १४१४ में गिरनार के हिन्दू नरेश को परास्त कर उससे जूनागढ़ छीन लिया तथा मालवा पर अनेक आक्रमण कर वहां के सशक्त सुलतान होशंगशाह को परास्त किया। सन् १४२४ में उसने ईदर के राय को परास्त करके, उसकी हत्या करके ईदर को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। सन् १४३७ में उसने मालवा पर पुनः आक्रमण किया परन्तु सेना में संक्रामक रोग हो जाने से वह लौट आया। उसने बहमनी सुलतान और खानदेश के शासकों से भी युद्ध किये। अहमदशाह धर्मांध और असहिष्णु था। उसने इस्लाम का खूब प्रचार किया और हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। उसने हिन्दुओं के अनेकानेक मन्दिर और मूर्तियां विध्वंस कर दीं। उसने हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किये। वह न्यायप्रिय और दानी सुलतान था। गुरुतर अपराध के कारण उसने अपने दामाद को भी फांसी दे दी थी। उसने अपने राज्य में पूर्ण शांति व्यवस्था रखी। अहमदशाह की मृत्यु के बाद शाह जरबख्श ने सन् १४५१ तक और उसकी मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ने सन् १४५८ तक गुजरात में राज्य किया। उसके बाद उसका चाचा दाऊद एक सप्ताह के लिये सिंहासन पर बैठा। वह अत्यधिक विलासी होने से अपदस्थ कर दिया गया और अहमदशाह प्रथम के एक पौत्र फतहखां को सिंहासन पर बिठाया गया। उसने अपने को महमूदशाह बीगड़ नाम से प्रसिद्ध किया।

महमूदशाह बीगड़—महमूद बीगड़ अल्पायु में ही राजसिंहासन पर बैठा था, पर शीघ्र ही वह अपने संरक्षकों से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से राज करने लगा। उसकी मूंछें और दाढ़ी इतनी बढ़ी हुई थी कि वह उनको सिर से लपेट कर बांधे रखता था। आहार में वह असाधारण था। "मीरात-ए-सिकन्दरी" ग्रंथ के अनुसार वह प्रतिदिन लगभग बीस सेर अन्न खाता था। इसके अतिरिक्त वह पांच सेर चांवलों का हलुवा बना

कर आधा शय्या के बायीं ओर तथा आधा दाहिनी ओर रख लेता था, ताकि जिस ओर आँख खुल जाय, उधर से ही शीघ्र खाने लगे। प्रातःकाल जलपान के लिये वह एक कटोरे मे पाव भर शहद, लगभग डेढ़ सौ केले और एक पाव मक्खन लेता था। उस पर विष का असर नहीं होता था। महमूदशाह वीर योद्धा और विस्तारवादी सुलतान था। उसने सन् १४६१ में मालवा के सुलतान महमूद खिलजी की सहायता निजामशाह बहमनी के विरुद्ध की थी। सन् १४६७ में उसने जूनागढ़ पर आक्रमण किया और बाद में सूरत और कच्छ को विजय करके उन्हें अपने राज्य से मिला लिया। सन् १४८४ में उसने चांपानेर के राय को परास्त कर चांपानेर को अपने राज्य में मिला लिया। उसने जगात के जल दस्युओं का भी दमन किया। पुर्तगालियों ने गुजरात के समुद्रतट पर अधिकार करके गुजरात के व्यापार को हानि पहुँचायी थी। इससे महमूद ने एक विशाल जल सेना तैयार करके सन् १५०७ में पुर्तगालियों पर आक्रमण कर दिया। ड्यू द्वीप के समीप सामुद्रिक युद्ध हुआ जिसमें पुर्तगालियों की पराजय हुई और उनका एक जहाज डुबो दिया गया। दो वर्ष बाद पुर्तगाली अधिकारी अलबुकर्क के नेतृत्व में पुर्तगालियों ने महमूद से ड्यू का द्वीप छीन लिया। सन् १५११ में महमूद की मृत्यु हो गयी।

महमूद बीगड़ योग्य, वीर, महत्वाकांक्षी, न्यायप्रिय सुलतान था। उसने गुजरात के गौरव और ऐश्वर्य में अभिवृद्धि की और वह गुजरात के मुस्लिम शासकों में सर्वश्रेष्ठ था। पर हिन्दुओं के प्रति वह असहिष्णु था। उसने बलपूर्वक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और शक्ति के बल पर इस्लाम का प्रचार किया।

बहादुरशाह—महमूद बीगड़ के उत्तराधिकारी निर्बल थे। इनमें तीन सुलतान हुए। इनके बाद सन् १५२६ में बहादुरशाह सिंहासनारूढ़ हुआ। वह गुजरात का तीसरा महान शासक था। उसने मालवा में मांडू और चन्देरी पर आक्रमण करके, उन्हें जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। उसने चित्तौड़ पर भी आक्रमण किया, पर विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। उसके समकालीन मुगल सम्राट हुमायूं को उसने परेशान किया। हुमायूं ने मंदसौर के समीप बहादुरशाह को परास्त किया और उसका पीछा किया। विवश होकर बहादुरशाह को मांडू, अहमदाबाद और चांपानेर के दुर्गों में शरण लेना पड़ी। परन्तु वहां हुमायूं द्वारा निरंतर पीछा किये जाने से बहादुरशाह पुर्तगालियों की शरण में चला गया। वहां ड्यू द्वीप के समीप पुर्तगालियों ने उसे जहाज से समुद्र में ढकेल दिया और ३१ वर्ष की अवस्था में बहादुरशाह परलोक सिधारा।

बहादुरशाह की मृत्यु के बाद गुजरात में अशांति, अराजकता और अव्यवस्था छा गयी तथा बहादुरशाह के उत्तराधिकारी नाममात्र के शासक बने रहे। सारी सत्ता अमीरों के हाथों में थी। सन् १५७२ में अकबर ने गुजरात पर आक्रमण किया और वहां के अंतिम शासक मुजफ्फरखां को परास्त करके गुजरात को जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

सिंध—आठवीं सदी के प्रारम्भ तक सिंध में हिन्दुओं का राज्य था। सन् ७११–१२ में अरबों ने मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में सिंध पर आक्रमण कर

उसे अपने अधिकार में कर लिया था। परन्तु कुछ समय बाद वहां पुनः हिन्दुओं की सत्ता स्थापित हो गयी।

सन् १०१० में महमूद गजनवी ने सिंध को अपने राज्य में मिला लिया। लगभग पचास वर्षों तक सिंध गजनी के अंतर्गत रहा। सन् १०५३ में सिंध में वहां के सुमेर राजपूतों ने मुस्लिम सत्ता को परास्त कर वहां अपना राज्य स्थापित कर लिया। सुमेर राजपूतों ने सिंध पर लगभग तीन सौ वर्षों तक राज्य किया। उन्होंने समय-समय पर दिल्ली के सुलतानों और मंगोलों के आक्रमणों से सिंध की रक्षा की। सन् १२१० में नासिरुद्दीन कुबाचा ने सुमेरों को परास्त कर सिंध को अपने अधीन कर लिया, पर दिल्ली सुलतान का सिंध पर स्थायी प्रभुत्व स्थापित नहीं हुआ था। मुहम्मद तुगलक ने सिंध विजय की थी और फिरोज तुगलक ने सिंध में थट्टा के जामसाहब को परास्त कर दिया था। सन् १३५१ में सुमेर राजपूतों की एक दूसरी शाखा सम्भार ने सिंध के मुस्लिम शासक को परास्त कर वहाँ पुनः राजपूत सत्ता स्थापित कर ली थी। इन राजपूतों ने बाद में इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। ये जाम कहलाते थे। कंधार के अगुन जाति के शासक ने जो चंगेज का वंशज था. सिंध की जामसत्ता को परास्त कर वहां अपना राज्य स्थापित कर लिया। ये शासक सिंध में तरखान शासक कहलाये और सन् १५९२ तक वहाँ शासन करते रहे। इसी वर्ष अकबर ने सिंध को जीतकर उसे मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

मेवाड़—राजस्थान में मेवाड़ राज्य सबसे अधिक प्राचीन और गौरवशाली माना जाता है। इसकी राजधानी चित्तौड़ थी और वहां राजपूतों का सिसोदिया राजवंश राज्य करता रहा। सर्वप्रथम सुल्तान अलाउद्दीन ने राज्य विस्तार एवं रानी पद्मनी की प्राप्ति हेतु सन् १३०३ में चित्तौड़ पर आक्रमण किया। यद्यपि उसे विजय प्राप्त हो गयी पर आत्मरक्षा में रानी पद्मनी तथा अन्य राजपूत स्त्रियों के जौहर कर देने से अलाउद्दीन को चित्तौड़ में राख के ढेरों के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ में मुस्लिम शासक नियुक्त किया, परन्तु कुछ वर्ष बाद राणा हम्मीर ने चित्तौड़ से खिलजी वंश के शासक की सत्ता समाप्त करके चित्तौड़ पर पुनः राजपूत आधिपत्य स्थापित कर दिया। मेवाड़ के शासकों में हम्मीर बुद्धिमान, वीर योद्धा माना जाता है। हम्मीर के उत्तराधिकारियों ने भी मेवाड़ की शक्ति और समृद्धि में वृद्धि की। उनकी दृढ़ता से मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक ने मेवाड़ के स्वतंत्र राज्य की ओर सैनिक अभियान भेजने का साहस नहीं किया। पन्द्रहवीं सदी में कुंभा मेवाड़ का राणा बना।

राणा कुंभा सन् (१४३३ से १४६८)—राणा कुंभा मेवाड़ के इतिहास में विशेष प्रसिद्ध है। उसने मालवा के सुलतान महमूद खिलजी को युद्ध में परास्त कर दिया और इस विजय के उपलक्ष में उसने चित्तौड़ दुर्ग में विशाल जयस्तम्भ निर्मित किया। राणा कुंभा ने मालवा और गुजरात के मुसलमान शासकों की विस्तारवादी नीति का विरोध किया, उनसे युद्ध करके उनकी महत्वाकांक्षाओं को बढ़ने से रोका। मेवाड़ की सुरक्षा के लिये उसने ३२ दुर्ग निर्मित किये। उसने चित्तौड़ में कई राज-भवन भी बनवाये। वह एक कवि, विद्वान्, और अच्छा संगीतज्ञ भी था। उसके

देहावसान के बाद उसके उत्तराधिकारियों में परस्पर युद्ध हुआ। जिसमें संग्रामसिंह विजयी हुआ।

राणा संग्रामसिंह—सन् १५०९ में संग्रामसिंह मेवाड़ का राणा बना और उसने सन् १५२७ तक राज्य किया। वह मेवाड़ का अन्य प्रसिद्ध महान राजा था। वह बड़ा वीर, कुशल योद्धा और सफल सेनापति था। उसने अपने जीवन भर अनेक युद्ध किये और विजय प्राप्त की। इन युद्धों में उसको अस्सी घाव लगे थे और एक आंख, एक हाथ व एक पैर नष्ट हो गये थे। उसने मालवा के सुल्तान को युद्ध में परास्त किया था। वह दिल्ली सल्तनत के छिन्न-भिन्न होने पर दिल्ली में राजपूत सत्ता स्थापित करना चाहता था। पर बाबर के आक्रमण से उसके इस विचार और योजना में बाधा उत्पन्न हो गई। इसलिए उसने बाबर को युद्ध में परास्त करना चाहा। इसके लिए उसने एक राजपूत संघ का निर्माण किया और स्वयं उसका नेतृत्व किया। अब वह एक विशाल सेना से बाबर के साथ युद्ध के लिए आगे बढ़ा। बाबर की सेना, राणा की सेना और उसकी युद्ध की तैयारी देख कर हतोत्साह होकर भागने को प्रस्तुत हो गई। पर बाबर ने बड़े धैर्य और साहस से उन्हें प्रोत्साहित किया और सैन्यव्यूह की रचना कर खनवाह के युद्ध में राणा संग्रामसिंह को परास्त कर दिया। इस पराजय के कुछ समय पश्चात् राणा संग्रामसिंह की मृत्यु हो गई।

संग्रामसिंह का उत्तराधिकारी राणा उदयसिंह और उसका उत्तराधिकारी इतिहास प्रसिद्ध राणा प्रतापसिंह थे। जिसने अपनी स्वतंत्रता के लिए पच्चीस वर्षों तक मुगल सम्राट अकबर से निरन्तर युद्ध किया और अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। प्रतापसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी राणा अमरसिंह ने मुगल सम्राट जहांगीर से मैत्री-संधि कर ली।

दक्षिण भारत में स्वतंत्र नवीन राज्य

ज्यों-ज्यों दिल्ली सुलतानों की शक्ति क्षीण होती गई, त्यों ही त्यों उत्तरी भारत में नवीन राजवंशों का प्रादुर्भाव हुआ और उनकी शक्ति दृढ़ हो गई। उन्होंने अपनी प्रथक-प्रथक स्वतंत्र राजसत्ता स्थापित कर ली। दक्षिण भारत के शासकों ने भी दिल्ली सुलतानों की दुर्बलता का लाभ उठाया। सुलतान अलाउद्दीन के शासन काल में सल्तनत का प्रभाव दक्षिण में बढ़ गया। पर यह प्रभाव और सत्ता अलाउद्दीन की तलवार और सैनिक प्रबन्ध के बल पर आश्रित था और यह सब उसके व्यक्तित्व पर निर्भर था। उसकी मृत्यु के बाद दक्षिण के शासक स्वतंत्र हो गये। मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण के राज्यों को अपने प्रभाव में ले लिया। और वहां अधीनस्थ शासकों को हटा कर उसने अपना सीधा शासन स्थापित किया। पर यह अधीनता सामयिक थी। उसमें स्थायित्व नहीं था और उसके जीवन काल में ही दक्षिण भारत के विभिन्न प्रान्तों में विद्रोह हो गये जिनके दमन में वह असफल रहा। इन विद्रोहों और अराजकता के कारण दक्षिण भारत में दो नवीन राज्यों का अभ्युदय हुआ, एक बहमनी राज्य और दूसरा विजयनगर राज्य। इन दोनों राज्यों के अभ्युदय की विशिष्ट परिस्थितियां रहीं। दक्षिण भारत में दिल्ली सल्तनत का प्रशासन और

अधिपत्य न तो दृढ़ ही रहा और न स्थायी ही। वहाँ के हिन्दू राज्यों को सुलतान पूर्णरूप से नष्ट नहीं कर पाये थे। अपदस्थ हिन्दू नरेश और उनके संबंधी अपने राज्य पुनः प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। दक्षिण की हिन्दू जनता में राष्ट्रीयता की भावना अधिक बलवती हो गई थी। वे इस्लाम की प्रभुता के विरोधी हो गये थे और अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हो रहे थे। दक्षिण भारत में मुस्लिम शासकों के यहां जो अमीर सरदार और अधिकारी थे, उनमें अधिकांश फारस निवासी विदेशी अमीर थे। वे अधिक सभ्य, सुसंस्कृत, चतुर, बुद्धिमान और शिया थे। वे स्वतंत्रता प्रिय थे। और अन्याय तथा धार्मिक भेदभाव को सहन नहीं कर सकते थे। ये दक्षिणी अमीर और पदाधिकारी दिल्ली के सुलतानों और उनके प्रतिनिधि शासकों से घृणा करते थे। दिल्ली के सुलतान सुन्नी थे और दक्षिणी अमीरों से वे विद्वेष रखते थे। इस प्रकार दक्षिण भारत में मुसलमान शासक, अमीर और पदाधिकारी तथा हिन्दू जनता दिल्ली सुलतानों के विरुद्ध थे। ऐसे क्षुब्ध और प्रतिकूल वातावरण में सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह हुए और बहमनी तथा विजयनगर राज्यों का उदय हुआ। इनका विस्तृत विवेचन अधोलिखित है।

बहमनी राज्य

बहमनी राज्य की स्थापना—मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण भारत के राज्यों की निगरानी के लिए दौलताबाद (देवगिरी) में अपनी ओर से निजामुद्दीन को सूबेदार नियुक्त किया था। परन्तु जब सुलतान की शक्ति निर्बल हो गई और साम्राज्य में विद्रोहों से अराजकता उत्पन्न हो गई, तब इस परिस्थिति का लाभ उठाकर देवगिरी में विदेशी अमीरों ने सुलतान के विरुद्ध बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। इस बगावत के दो नेता थे, वृद्ध अमीर इस्माइलमख और हसनगंगू। इनके विद्रोह समाचार पाकर मुहम्मद तुगलक देवगिरी पहुंचा और वहाँ विद्रोहियों को परास्त किया और इस्माइलमख और हसनगंगू सुरक्षा के लिए भाग गए। इसी बीच गुजरात का विद्रोह कुचलने के लिए मुहम्मद तुगलक को देवगिरी से गुजरात जाना पड़ा। उसके चले जाने पर देवगिरी के विद्रोहियों ने पुनः उपद्रव कर दिया और मुहम्मद तुगलक के देवगिरी में छोड़े सेनानायक इमादुलमुल्क और उसकी सेना को परास्त कर दिया और देवगिरी के दुर्ग पर विद्रोही नेताओं ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उन्होंने इस्माइलमख को स्वतंत्र सुलतान बनाया। इस्माइल की अवस्था अधिक थी और वह विलासी भी था। इसलिए उसने अपने को असमर्थ समझकर अमीर हसनगंगू को राज्य का भार सौंप दिया। सन् १३४७ में हसन अब्दुल मुजफ्फर अलाउद्दीन के नाम से राजसिंहासन पर बैठा। इसे अलाउद्दीन बहमनशाह भी कहते हैं।

हसनगंगू—इसका जन्म १२९० में हुआ था। दिल्ली में हसन, गंगू नामक ब्राह्मण के यहां खेतिहर मजदूर का कार्य करता था। गंगू ने हसन की स्वामिभक्ति, ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर मुहम्मद तुगलक की सेना में भरती करवा दिया था। धीरे-धीरे प्रगति करते-करते वह सुलतान की सेना में सौ अश्वारोहियों का नायक बन गया। दिल्ली से देवगिरी राजधानी परिवर्तन के समय

मुहम्मद तुगलक के आदेशों के अनुसार वह भी दक्षिण में देवगिरी को चला गया था। देवगिरी में हसन ने जनता का विश्वास प्राप्त कर लिया और वह वहां धनसम्पन्न व्यक्ति हो गया। उसने वहां विदेशी अमीरों का साथ दिया और उनके समर्थन व सहयोग से उसने इस्माइलमख के साथ सुलतान मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सफलता प्राप्त होने पर वह ५७ वर्ष की आयु में सुलतान बन गया।

हसन अपने आप को बहमनी कहता था। इसलिए जिस राज्य की उसने स्थापना की वह बहमनी कहलाया। बहमनी वंश की इस उत्पत्ति के विषय में फरिश्ता ने लिखा है कि हसन दिल्ली में जिस ज्योतिषी ब्राह्मण गंगू के यहां खेत में काम करता था, उसे वहां स्वर्ण मुद्राओं से भरा घड़ा प्राप्त हुआ। उसने वह समस्त धन अपने स्वामी ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण सुलतान मुहम्मद तुगलक का विश्वास-पात्र था। उसने सुल्तान से हसन की ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा की प्रशंसा करके सैनिक पद पर नियुक्त करवा दिया। इस ब्राह्मण ज्योतिषी ने हसन के विषय में यह भविष्यवाणी भी की थी कि वह सुलतान बनेगा। हसन जब दक्षिण में सुलतान बना तब उसने अपने ब्राह्मण स्वामी गंगू के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए गंगू बहमनी नाम धारण किया और ब्राह्मण को अपना मंत्री बनाया। परन्तु आधुनिक इतिहासकार फरिश्ता के इस कथन को कपोल-कल्पित मानते हैं। बुरहान-ए-मासिर के लेखक ने हसन को फारस के बादशाह बहमन-बिन-इस्फन्दियार का वंशज माना है। इसलिए उसने सुलतान बनने पर बहमनशाह की उपाधि धारण की थी। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद और बुल्जेहेग भी इसी मत का समर्थन करते हैं। यह संभव है कि फरिश्ता के बाद के अन्य इतिहासकारों ने बहमनी अभिलेखों और मुद्राओं पर अंकित "कंकू" नाम से गंगू ब्राह्मण का संबंध स्थापित कर दिया। सत्य कुछ भी हो, हसन बहमनी राज्य का संस्थापक था।

सुल्तान अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी—सन् (१३४७–१३५८) हसन १२ अगस्त सन् १३४७ को सुलतान बना और उसने अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी का विरुद्ध धारण किया। उसने दौलताबाद से दक्षिण में गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। इस समय गुलबर्गा दक्षिण के प्रसिद्ध संत गेसूदराज का निवास स्थान होने से अत्यन्त पवित्र माना जाता था। हसन योग्य और महत्वाकाँक्षी शासक था। उसने दक्षिण के हिन्दू और मुस्लिम राज्यों को परास्त करके दौलताबाद के पूर्व में भोंगीर (आँध्र प्रदेश) तक, तथा उत्तर में बेनगंगा से दक्षिण में कृष्णा नदी तक और पश्चिम में दौलताबाद के क्षेत्र तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। उसका राज्य चार प्रांतों में विभक्त था— दौलताबाद, गुलबर्गा, बरार और बीदर। इन प्रांतों में उसने दृढ़ प्रशासकीय व्यवस्था स्थापित की और योग्य प्रांतीय शासक नियुक्त किये। निरंतर युद्धों तथा प्रशासन में अहर्निश परिश्रम करते रहने से हसन का स्वास्थ्य गिर गया और १० फरवरी १३५८ को उसका देहान्त हो गया। वह न्यायप्रिय और इस्लाम का कट्टर अनुयायी था। वह हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु और अत्याचारी रहा।

मुहम्मदशाह प्रथम (सन् १३५८–७३) बहमनशाह के देहान्त के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मदशाह प्रथम के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता की विजय

और विस्तार की नीति को जारी रखा और तेलगांना तथा विजयनगर के राज्यों से निरन्तर संघर्ष करता रहा। बारंगल या तेलगांना के हिन्दू नरेश को उसने अपने अधीन कर लिया। वहां के मुसलमानों ने हिन्दू राजा का वध कर दिया था। इसलिए वारंगल के हिन्दुओं ने फिर युद्ध छेड़ दिया। मुहम्मदशाह ने इसका वीरता से सामना किया। दो वर्ष तक निरन्तर युद्ध के बाद वारंगल (तेलंगाना) के नरेश ने मुहम्मदशाह से संधि कर ली। गोलकुण्डा का दुर्ग मुहम्मदशाह को दिया गया और ३३ लाख रुपये युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए दिये। बारंगल विजय करने के बाद मुहम्मदशाह ने विजयनगर के हिन्दू राज्य पर आक्रमण किया। भीषण नरसहार हुआ और युद्ध में विजयनगर नरेश बुक्का परास्त हो गया। उसने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। इस युद्ध और विजय के बाद मुहम्मदशाह ने विजयनगर राज्य के पांच लाख हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। वहां के मन्दिरों और भवनों को विध्वंश कर उन्हें खूब लूटा। सन् १३६१ में मिश्र के खलीफा ने मुहम्मदशाह को मान्यता प्रदान की और उसे दक्षिण भारत का बादशाह स्वीकार कर लिया। मुहम्मदशाह ने प्रशासन की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने आठ मंत्रियों की एक केन्द्रीय परिषद् बनाई जिसमें प्रधानमंत्री, निरीक्षणमंत्री, अर्थमंत्री, परराष्ट्रमंत्री, उपअर्थमंत्री, पेशवा (प्रधानमंत्री का सहायक), कोतवाल (पुलिश विभाग का अध्यक्ष) और न्यायमंत्री (न्याय विभाग और धर्म विभाग का अध्यक्ष) थे। सन् १३७३ में मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गयी। वह कठोर, निर्दयी और वीर सुलतान था और उसने समस्त राज्य मे शांति व्यवस्था स्थापित की।

मुजाहिदशाह तथा दाऊदखां (सन् १३७३-.८)—मुहम्मदशाह प्रथम के बाद उसका पुत्र मुजाहिदशाह सुलतान बना। उसने विदेशी ईरानी और तुर्क अमीरों को ऊंचे पद प्रदान किये और उनके प्रति पक्षपात किया। इससे अमीर और उच्चअधिकारी उससे रुष्ट हो गये। विजयनगर से उसने दो बार युद्ध किये, पर विजयी नहीं हुआ। सन् १३७७ में उसके चचेरे भाई दाऊद ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं राज सिंहासन पर बैठ गया। पर उसके अयोग्य और निर्वल होने से मुजाहिदशाह की बहिन के षड़यंत्र से उसका वध कर दिया गया।

मुहम्मदशाह द्वितीय (सन् १३७८-९७)—दाऊदखां के बाद मुहम्मदशाह द्वितीय सुलतान बना। यह शांतिप्रिय सुलतान होने से, उसके शासन काल में किसी भी प्रकार का संघर्ष नहीं हुआ। उसके गुणों से प्रजा उसे चाहती थी। वह पीड़ितों व दुखियों को मुक्तहस्त से सहायता देता था। वह काव्य और दर्शन का प्रेमी था। वह स्वयं कविता करता था और विद्वानों को आश्रय देता था। उसने अनेक मसजिदों का निर्माण करवाया पर वह धर्मांध और असहिष्णु था। मुहम्मदशाह द्वितीय की मृत्यु के बाद गयासुद्दीन और शम्सुद्दीन क्रमशः सुलतान बने। पर दोनों ही निर्बल थे। इसका लाभ उठाकर हसनगंगू के एक पौत्र ताजुद्दीन फिरोजशाह ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

फिरोजशाह (सन् १३९७-१४२२)—अपने पूर्वजों की नीति के अनुसार दो बार उसने विजयनगर राज्य से युद्ध किये और हरिहर बुक्का को परास्त कर संधि

करने पर बाध्य किया। परन्तु जब सन् १४१९ में विजयनगर के नरेश से पुनः युद्ध हुआ तो फिरोज बुरी तरह परास्त कर दिया गया। बहमनी राज्य में विजयनगर राज्य की हिन्दू सेना ने खूब लूट मचाई और उनकी मसजिदों को विध्वंस कर दिया और बहमनी राज्य के पूर्वी और दक्षिणी जिलों पर हिन्दुओं का अधिकार हो गया। फिरोज की ऐसी भयानक पराजय के कारण उसके भाई अहमदखां ने उसे सिंहासन त्यागने के लिये बाध्य किया। फिरोजशाह मद्यपान और विलासिता में अधिक रुचि रखता था। उसके रनवास में आठ सौ विभिन्न जातियों की रमणियां थीं। उसका हरम नित-नई मंगाई गई स्त्रियों से भरा रहता था। फिरोज ने प्रशासन को संगठित किया। वह विद्वानों से प्रेम करता था। उसे भवन निर्माण कला में रुचि थी। उसने गुलबर्गा में कई भवन बनाकर उसके सौंदर्य की वृद्धि की। उसने गुलबर्गा से थोड़ी दूर पर फिरोजाबाद नगर बसाया। अपने पूर्वजों की भांति वह भी धर्मांध था।

अहमदशाह (सन् १४२२-३५)—फिरोजशाह के बाद उसका भाई अहमदशाह सुलतान बना और अमीरों ने इसे निर्वाचित किया था। सुलतान बनने पर उसने अपनी राजधानी गुलबर्गा से हटाकर बीदर कर ली, क्योंकि बीदर की जलवायु अच्छी थी और किले बंदी तथा युद्ध नीति की दृष्टि से इसका महत्व अधिक था। उसने भी विजयनगर से युद्ध किया और वहां के नरेश देवराय को परास्त कर दिया। उसने अहमदशाह को वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। इस युद्ध में मुसलमान सेनाओं ने विजयनगर को घेर लिया था और सारे राज्य को रौंदकर हजारों स्त्रियों और पुरुषों को कत्ल कर दिया था। उसने वारंगल पर आक्रमण करके उसे जीत लिया। उसने मालवा पर भी चढ़ाई करके होशंगशाह को हरा दिया। उसने गुजरात पर भी सैनिक अभियान किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। सन् १४२९ में उसने कोकण विजय कर लिया। अहमदशाह क्रूर, अत्याचारी, अंधविश्वासी और कट्टर शासक था। उसके शासन काल में भारतीय और विदेशी मुसलमानों में एक-दूसरे के विरुद्ध कटु दलबन्दियां हो गयी थीं, जिससे शासन शिथिल हो गया।

अलाउद्दीन द्वितीय (सन् १४३५-५७)—अहमदशाह की मृत्यु के बाद उसका लड़का जफरखां अलाउद्दीन द्वितीय के नाम से सुलतान बना। उसके भाई मुहम्मद ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और बीजापुर तथा रायचुर के प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा दिया, पर सुलतान अलाउद्दीन ने उसे परास्त करके क्षमा कर दिया और उसे रायचुर के प्रदेश का सूबेदार बना दिया। विजयनगर के राजा देवराय द्वितीय ने अपनी सेना को पूर्णरूप से संगठित करके सन् १४४३ में बहमनी राज्य के रायचूर दोआब पर आक्रमण किया। पर अलाउद्दीन ने उसे परास्त कर दिया और कड़ी शर्तों पर राजा को संधि करना पड़ी और वार्षिक कर देना स्वीकार किया। अलाउद्दीन धार्मिक प्रवृत्ति का सुलतान था। विलासी होने पर भी वह प्रजा वत्सल था। उसने अनेक पाठशालाएं, दानशालाएँ और मसजिदें बनवाईं। उसे वास्तुकला से प्रेम था और उसने राजधानी को मसजिदों, मदरसों व अस्पतालों से अलंकृत किया।

हुमायूं (सन् १४५७-६१)—अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र हुमायूं शासक बना। वह अपनी दुष्टता और नृशंसता के लिए अधिक प्रसिद्ध रहा है।

उसने अपने भाई को शेर के सम्मुख डलवा दिया था और बड़ी प्रसन्नता से उसे शेर द्वारा मारे जाते हुए देखा। इतिहास में वह "जालिम हुमायूँ" के नाम से प्रख्यात है। उसका जालिम क्रोध किसी को नहीं छोड़ता था; अपराधी और निर्दोष दोनों ही उसकी चक्की में पिसते थे और एक के अपराध करने पर वह उसके समस्त परिवार को कत्ल कर देता था। वह निर्दयता और नृशंसता का अवतार था। उसकी मृत्यु पर राज्यभर के लोग हर्षित हुए। उसका शासन व्यवस्थित चला क्योंकि उसे महमूद गवां जैसे सुयोग्य और प्रतिभावान मंत्री की सेवाएं प्राप्त हो गयी थीं।

निजामशाह (सन् १४६१-६३)—हुमायूँ की मृत्यु के बाद उसका पुत्र निजामशाह गद्दी पर बैठा। उसकी आयु लगभग दस वर्ष की होने से उसकी माता ने संरक्षिका रहकर राज्य-कार्य संभाला। सुलतान को अल्पायु समझ उड़ीसा और तेलंगाना के शासकों ने बहमनी राज्य पर आक्रमण किये, पर महमूदगवां ने उन्हें परास्त कर दिया। मालवा के शासक ने भी बहमनी सुलतान पर आक्रमण किया, पर असफल रहा। सन् १४६३ में सहसा बालक सुलतान की मृत्यु हो गयी।

मुहम्मदशाह तृतीय (सन् १४६३-८२)—निजामशाह के बाद उसका छोटा भाई मुहम्मदशाह तृतीय के नाम से सिंहासन पर बैठा। उसके शासन-काल में बहमनी राज्य ने खूब प्रगति की। इसका श्रेय उसके मन्त्री महमूद गवां को है। इससे मुहम्मदशाह भोग विलास और मदिरा सेवन में व्यस्त रहा। मुहम्मदशाह ने कोंकण और विजयनगर से युद्ध करके बेलगांव और गोआ फिर से अपने अधिकार में कर लिये। उसने कांचीवरम् पर भी आक्रमण कर उसे लूटा तथा कोन्दपल्ली के हिन्दू मंदिर को नष्ट कर हिन्दू पुजारियों का वध करके उसने गाजी की उपाधि धारण की। मुहम्मदशाह तृतीय के शासन काल की प्रशासकीय व्यवस्था उचित एवं दृढ़ थी और इसका श्रेय सुलतान के मन्त्री महमूद गवां को है।

महमूदशाह और निर्बल बहमनी सुलतान—मुहम्मदशाह तृतीय की मृत्यु के बाद उसका छोटा पुत्र महमूहशाह सुलतान बना, पर वह अयोग्य, विलासी और निकम्मा सुलतान था। इसलिये शासन की वास्तविक सत्ता उसके वजीर बरीद के हाथों में थी। उसकी दुर्बलता, विलासिता से लाभ उठाकर अमीर विद्रोह करने लगे और प्रांतपति स्वतंत्र होने लगे। उसका राज्य सिकुड़कर केवल बीदर और उसके पार्श्ववर्ती प्रदेशों तक ही सीमित रह गया। सन् १५१८ में महमूदशाह का देहांत हो गया।

महमूदशाह का उत्तराधिकारी कलीम-उल्लाह था। वह इतना शक्तिहीन था कि सन् १५२६ में उसके वजीर अमीर बरीद ने उसे सिंहासन-च्युत कर दिया और राजसत्ता अपने हाथों में केन्द्रीभूत कर ली। महमूद के बाद दो और सुलतान हुए, पर वे भी वजीर के हाथों की कठपुतली बने रहे।

बहमनी राज्य का विभाजन

बहमनी राज्य के अंतिम शासक निरन्तर पतित और निर्बल होते जा रहे थे और इससे प्रांतीय सूबेदार और अमीर दिनों-दिन प्रबल होते जा रहे थे। महमूद-शाह के शासन काल में उसकी शक्तिहीनता, विलासिता और अयोग्यता के कारण निरंतर हत्याओं और षड़यंत्रों का दौर चल रहा था। फलतः विभिन्न प्रांतीय

शासक स्वतंत्र हो गये। बहमनी राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। प्रारंभ में वह तीन राज्यों में विभाजित हुआ और बाद में उसके पांच भाग हो गये। ये निम्नलिखित हैं-

(१) **बरार**—सन् १४८४ में बरार राज्य की स्थापना सूबेदार फतेह-उल्लाह ने, बहमनी राज्य से स्वतंत्र होकर की थी। इसके राज्य को इमादशाही राज्य कहा जाता है। इसके शासक स्वतंत्र होने पर भी बहमनी सुलतानों के प्रति अपनी राजभक्ति और निष्ठा प्रदर्शित करते रहे। सन् १५७५ तक इमादशाही शासकों ने बरार में राज्य किया और उनका अंत अहमदनगर के सुलतान ने कर दिया।

(२) **अहमदनगर**—इस राज्य की स्थापना सन् १४९८ में निजाम उलमुल्क के पुत्र मलिक अहमद ने स्वतंत्र होकर की थी। निजाम उल-मुल्क ने मरते समय अपने पुत्र को यह आदेश दिया था कि वह उसके नाम पर एक राज्य स्थापित करे और हुआ भी ऐसा ही। इसीलिये अहमदनगर के राज्य को निजामशाही राज्य कहा जाता है। वह राज्य लगभग सौ वर्षों तक फलता-फूलता रहा। जब मुगल सम्राट अकबर ने इस पर आक्रमण किया, तब वहां की वीरांगना चाँदबीबी ने बड़ी वीरता और साहस से मुगलो का सामना कर उन्हें पीछे ढकेल दिया। पर सन् १६०० में असन्तुष्ट सरदारों ने इसका वध करवा दिया। मुगल सम्राट जहांगीर ने भी अहमद-नगर पर अपना अधिकार करना चाहा। पर वहां के सुयोग्य मंत्री मलिक अंबर ने उसे असफल कर दिया। पर अंत में शाहजहां ने अहमदनगर को जीत कर उसे मुगल साम्राज्य का अंग बना लिया और निजामशाही राज्य का अंत कर दिया।

(३) **बीजापुर**—सन् १४८९ में यूसुफ आदिलशाह ने बीजापुर राज्य की नींव डाली और इसी से इस राज्य को आदिलशाही राज्य कहते हैं। आदिलशाह के उत्ताराधिकारी साम्राज्यवादी थे और वे अपने पड़ौसी राज्यों और विजयनगर से निरन्तर युद्ध करते रहे और अपने राज्य की सीमाओं की वृद्धि करते रहे। अंत में सन् १६८५ में औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण करके, उसे जीत कर मुगल साम्राज्य का एक दक्षिण का अंग बना लिया।

(४) **गोलकुंडा**— इस राज्य की स्थापना तेलगांना के सूबेदार कुतुबशाह ने सन् १५१६ में की। मुगल सम्राट औरंगजेब ने सन् १६८७ में गोलकुंडा पर आक्रमण कर उसे अपने राज्य में मिला लिया।

(५) **बीदर**—सन् १४९२ में बीदरके प्रांतीय शासक कासीम बरीद ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। बीदर बहमनी राज्य की राजधानी था। कासिम बरीद के एक वंशज वजीर अमीर बरीदशाह ने बहमनी राज्य के निर्बल सुलतान कलीम-उल्लाह को बीदर में सन् १५२६ में सिंहासनाच्युत कर स्वयं सुलतान बन गया। कलीम-उल्लाह ने बाबर से सहायता भी मांगी थी, पर बाबर स्वयं ही अपनी विषम परिस्थितियों में उलझा हुआ था। सन् १६०९ तक इस राज्य का अस्तित्व रहा और बाद में बीजापुर के सुलतान ने इसे परास्त कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

इस प्रकार सन् १३४७ में सुलतान अलाउद्दीन बहमनशाह द्वारा संस्थापित

विशाल बहमनी राज्य, सन् १५२६ तक विद्यमान रहा और वह पांच छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। इन राज्यों में बीजापुर और गोलकुंडा के राज्य अधिक शक्तिशाली और समृद्ध थे। मुगल सम्राट औरंगजेब ने क्रमशः सन् १६८५ और सन् १६८७ में इन राज्यों का अंत करके बहमनी राज्य के अवशिष्ट अंगों को पूर्णतया नष्ट कर दिया।

महमूद गवां

प्रारंभिक जीवन—महमूद गवां का जन्म फारस देश में गावां नामक स्थान में गिलनशाह के मंत्री के यहां हुआ था। इसके बाल्यकाल का नाम महमूद था, गिलनशाह का मंत्री उच्च कुल और सम्पन्न परिवार का था। इसलिये इसका पालन-पोषण और शिक्षा समुचित ढंग से हुई। समृद्ध परिवार होने से इसका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ और इसे अरबी तथा फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान कराया गया। इसे पढ़ने-लिखने और ज्ञानार्जन करने में विशेष अभिरुचि थी। युवा होने पर उसने व्यापार की ओर विशेष ध्यान दिया। परिस्थितियों ने इसे व्यापार करने की ओर प्रोत्साहित किया। इसका कुछ समय एक व्यापारी के समान व्यतीत हुआ।

भारत आगमन और बहमनी राज्य की सेवाओं में प्रवेश—महमूद गवां व्यापारी के रूप में भारत आया। उसका उद्देश्य भारत में व्यापार करना था। वह फारस से बहुमूल्य व्यापारिक सामग्री भी लाया था। जब वह दक्षिण भारत में व्यापार के लिये गया तो वहां बहमनी सुलतान हुमायूँ उसके सद्व्यवहार, सद्गुणसम्पन्नता, विनयशील स्वभाव, योग्यता और कार्य-दक्षता से अधिक प्रभावित हुआ। फलतः हुमायूं ने महमूद गवां को अपनी शासकीय सेवा में नियुक्त कर लिया। धीरे-धीरे वह अपनी प्रतिभा, योग्यता और विभिन्न गुणों के कारण उन्नति करते-करते ऊंचे पद पर पहुँच गया।

वजीर महमूद गवां—बहमनी सुलतान हुमायूं की मृत्यु के बाद जब उसका आठवर्षीय पुत्र सुलतान बना और उसकी माता संरक्षिका बनी तब महमूद गवां को अपनी योग्यता और दक्षता प्रदर्शित करने एवं अत्यधिक उन्नति करने के अवसर प्राप्त हुए। अपनी योग्यता, प्रतिभा, कार्य-क्षमता और स्वामिभक्ति के कारण वह संपूर्ण राज्य का भार संभालने लगा। उसने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। इसके इन्हीं गुणों के कारण बहमनी सुलतान मुहम्मदशाह तृतीय ने उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। धीरे-धीरे वह राज्य का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गया और बहमनी राज्य की पच्चीस वर्ष तक सेवाएँ कीं।

महमूद गवां के युद्ध और विजय—महमूद गवां एक वीर, साहसी सैनिक और कुशल सेनापति था। वह अपने स्वामी बहमनी सुलतान के राज्य की सीमा-वृद्धि करना चाहता था और इसके लिये उसने पार्श्ववर्ती राज्यों पर आक्रमण किये। उसने बीजापुर के बेलगांव दुर्ग पर आक्रमण करके उसे सुलतान के अधिकार में दिया। उसका महत्वपूर्ण आक्रमण और विजय, विजयनगर के राजा नरसिंह पर थी। इस विजय के परिणामस्वरूप बहमनी राज्य को कोंकण और गोआ के प्रदेश प्राप्त हुए। उसने दक्षिण

भारत में मंदिरों के प्रसिद्ध नगर कांची को भी अभियान के समय लूटा और वहाँ से असंख्य हीरे, जवाहरात, सोना-चांदी प्राप्त किये। उसने उड़ीसा पर आक्रमण किया और संगमेश्वर के नरेश को भी परास्त किया। उसने तेलंगाना के विद्रोह का दमन कर शांति स्थापित की।

महमूद गवां के प्रशासकीय सुधार--महमूद गवां में प्रशासन के प्रति विशेष अभिरुचि थी और वह राजा तथा प्रजा के हित का सदैव ध्यान रखता था। उसके प्रमुख प्रशासकीय सुधार निम्नलिखित हैं—

(i) **केन्द्रीय दृढ़ता और प्रांतीय संगठन**—प्रशासन को अधिक चुस्त और सुव्यवस्थित करने के लिये उसने सारे बहमनी राज्य को आठ प्रांतों में विभाजित कर दिया और प्रत्येक प्रांत में एक प्रांतपति नियुक्त किया। उसने इन प्रांताध्यक्षों के कर्तव्य निर्दिष्ट कर दिये और अधिकार सीमित कर दिये। उसने इन सूबेदारों को केन्द्रीय सत्ता के अधीन रखा जिससे न तो उनकी शक्ति बढ़े और न वे प्रशासन में किसी प्रकार की गड़बड़ी कर विद्रोह कर सकें। उसने प्रांतपति को केवल एक ही दुर्ग का नियंत्रण सौंपा और प्रांत के अन्य दुर्गों को सीधे सुलतान द्वारा नियुक्त अमीरों के अधिकार में दे दिये। ये अमीर सैनिक अधिकारी होते थे और प्रांतीय सूबेदार के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे, अपितु वे सुलतान के अधीन होते थे तथा उसके आदेशों के अनुसार कार्य करते थे। इस प्रकार उसने प्रांत के दुर्गों पर सूबेदारों के बजाय सैनिक अधिकारियों का नियंत्रण रखा जिससे सुलतान की शक्ति क्षीण होने की संभावना नहीं रही। उसने प्रशासकीय सुधारों से केन्द्रीय शक्ति को अधिक दृढ़ करने का प्रयास किया।

(ii) **विद्रोहों का दमन और जागीर प्रथा का अंत**—उसने अमीरों के विद्रोहों का दमन कर शांति स्थापित की। उसने अमीरों को नियंत्रित किया। एक भी सैनिक कम रखने वाले अमीर से उस सैनिक का पूरा वेतन दंडस्वरूप वसूल कर लिया जाता था। उसने जागीर प्रथा बंद करने और राजकोष से नगद वेतन देने का प्रयत्न किया।

(iii) **सैन्य सुधार**—उस समय सेना राज्य का आधार थी, इसलिये उसने सेना के सुधार और संगठन की ओर भी ध्यान दिया। उसने सैनिकों की सुविधाओं में सुधार किये, उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की, उनके वेतन में वृद्धि की। उसने सैनिकों को जागीर देने की अपेक्षा वेतन देना प्रारम्भ किया और उनके उत्साह तथा दक्षता में वृद्धि की। इससे सेना सुधर गयी, उसका अनुशासन ठीक हो गया तथा सेना पर केन्द्र का नियंत्रण दृढ़ हो गया।

(iv) **राजस्व सुधार**—उसने राजस्व और कृषि में सुधार किये। उसने भूमि का सर्वेक्षण कर नपवाया और भूमि की उर्वरा शक्ति और उपज के अनुसार भूमि-कर निश्चित किया। यदि भूमि अधिक उपजाऊ होती थी, तो भूमि कर अधिक लिया जाता था, यदि भूमि कम उपजाऊ होती थी, तो भूमि कर कम लिया जाता था। भूमिकर अनाज या नगद के रूप में वसूल करने की व्यवस्था की गयी। कृषकों का शोषण और दमन न हो, इसलिए उसने भूमि कर की वसूली के लिये कठोर नियम नहीं अपनाये।

(v) **न्याय व्यवस्था**—महमूद गवां न्यायप्रिय होने से न्याय-व्यवस्था

में भी सुधार किये गये। उसने बेईमानी, घूंस, भ्रष्टता आदि का कठोरता से दमन किया।

(vi) शिक्षा—वह स्वयं विद्यानुरागी और शिक्षाविद् तथा विद्वान था। इसलिये उसने सार्वजनिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया और विद्वानों के समुचित संरक्षण और सम्मान की व्यवस्था की। उसने विद्या-प्रसार के लिये बीदर में एक महाविद्यालय और एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया। इसमें तीन सहस्र पुस्तकों का संग्रह किया गया था। वह दिन भर शासन कार्य करने के पश्चात् संध्या को इस पुस्तकालय में जाता और विद्वानों को सगति में बैठता था और उनसे वार्ता करता था। छात्रों और विद्वानों को छात्रवृत्ति और आर्थिक अनुदान दिये जाते थे।

(vii) **दुर्भिक्ष से रक्षा**—सन् १४७४-७५ में अनावृष्टि के कारण बहमनी राज्य में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे राज्य को भयंकर संकटों का सामना करना पड़ा। पर इस संकटकालीन स्थिति में दरिद्र दुखी प्रजा की महमूदगवां ने रक्षा की।

महमूदगवां की हत्या—इस समय बहमनी राज्य में दक्षिण के मुसलमानों और विदेशी मुसलमानों और उनके अमीरों में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता हो रही थी। वे एक दूसरे के परस्पर शत्रु हो गये थे। उनके दो परस्पर विरोधी दल थे। महमूद गवां फारस का निवासी होने से विदेशी था। दक्षिणी अमीर उसकी बढ़ती हुई शक्ति, प्रभाव और निरंकुशता सहन नहीं कर सके, इसलिए उन्होंने उसके वध के लिए एक षड्यन्त्र रचा। दक्षिणी अमीरों ने मंत्री गवां की मुहर रखने वाले सेवक को अपनी ओर मिला लिया और एक कोरे कागज पर यह मुहर लगवा ली। इसमें मंत्री गवां के फरजी दस्तखत थे। अब षड्यन्त्रकारियों ने इस कोरे कागज पर विजयनगर के राजा नरसिंह को पत्र लिखा जिसमें गवां की ओर से यह लिखा गया कि वह सुलतान के अत्याचारों से पीड़ित है और उससे मुक्ति पाना चाहता है तथा नरसिंह से मिलकर सुलतान को नष्ट करके स्वयं बहमनी राज्य पर अधिकार करके सुलतान बनना चाहता है। इस जाली पत्र को सुलतान के सम्मुख प्रस्तुत किया गया और षड्यन्त्रकारियों ने सुलतान को विश्वास दिला दिया कि महमूद गवां देशद्रोही है। सुरा के नशे में बेहाल सुलतान ने इस पत्र की सत्यता पर विश्वास कर लिया और महमूद गवां को उसने अपने निजी कक्ष में तत्काल बुलाया। गवां के आने पर सुलतान ने उससे पूछा कि, "यदि मेरा कोई दास अपने उपकारी के प्रति विद्रोह करे और उसका अपराध सिद्ध हो जाय, तो उसको क्या दंड मिलना चाहिये ?" महमूद गवां ने निर्भीकता से उत्तर दिया कि, "वह अभागा जो श्रीमान् के प्रति विश्वासघात करे, तलवार का ही भागी है।" इसके बाद सुलतान ने गवां को वह जाली पत्र दिखाया और नशे में चूर सुलतान ने गवां का वध करने की आज्ञा दे दी। गवां ने अपनी निर्दोषता और अनभिज्ञता प्रगट की। पर सुलतान ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और अपने हब्शी दास जौहर को संकेत किया जिसने शीघ्र ही महमूद गवां का सिर धड़ से अलग कर दिया और वहीं उपस्थित गवां के एक मित्र अमूदखां गिलानी का भी वध कर दिया। यह हत्या ५ अप्रेल सन् १४८१ को की गई थी। इस समय गवां की आयु ७४ वर्ष की थी। कुछ समय

बाद राजकीय कोषाध्यक्ष से सुलतान को इस ऊपर वर्णित षड़यन्त्र का पता चला। उसे वास्तविकता का ज्ञान होने पर अत्यन्त आत्मग्लानि और मार्मिक दुःख व पश्चात्ताप हुआ जिसके फलस्वरूप एक वर्ष बाद उसका भी देहान्त हो गया। महमूद गवां के वध से बहमनी राज्य और सुलतान को क्षति उठानी पड़ी उसकी पूर्ति नहीं हो सकी। कहा जाता है कि मृत्यु से पूर्व महमद गवां ने कहा था कि वह स्वयं वृद्ध होने के कारण अपनी मृत्यु से भयभीत नहीं है, परन्तु उसे भय है कि एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या करके कहीं सुलतान अपने राज्य को ही नष्ट न कर दे। उसकी यह चेतावनी सत्य हो गयी। क्योंकि उसकी मृत्यु के पश्चात् बहमनी राज्य का पतन हो गया। बहमनी राज्य का सारा संगठन, दृढ़ता तथा व्यवस्था सब ढीले पड़ गये, बहमनी राज्य की जड़ें हिल गईं और शीघ्र हीं प्रांतीय सूबेदार स्वतंत्र हो गये। वास्तव में महमूद गवां की मृत्यु ने बहमनी राज्य का अन्त ही कर दिया। विदेशी यात्री मीडोज टेलर ने लिखा है कि महमूद गवां के साथ बहमनी राज्य की एकता तथा शक्ति चली गयी।

महमूद गवां का व्यक्तित्व, चरित्र और उसका मूल्यांकन—महमूद गवां एक उच्चकोटि का प्रतिभा-सम्पन्न, गुणवान व्यक्ति था। उसका व्यक्तिगत जीवन पवित्र, श्रेष्ठ और सादगीपूर्ण था। वह सादगी को बहुत महत्व देता था और स्वयं भी सादगी का पालन करता था। उसकी निजी आवश्यकताएं तत्कालीन अमीरों के रहन-सहन की अपेक्षा नगण्य थीं। सादा, परोपकारी जीवन उसका ध्येय था। वह अपने ऊपर प्रतिदिन केवल दो रुपये व्यय करता था। वह चटाई पर सोता था तथा मिट्टी के बर्तनों में भोजन करता था। मध्य युग की विलासिता और चारित्रिक दोषों से वह सर्वथा मुक्त था। वह स्वभाव से उदार, दयालु, साहसी तथा न्यायप्रिय था। दीन-दुखियों और पीड़ितों के प्रति वह सहानुभूति रखता था और यथाशक्ति उनकी सहायता करता था। यह अपनी आय का एक भाग निर्धन व्यक्तियों और विद्वानों में वितरित कर देता था। शुक्रवार की रात्रि को वह भेष बदलकर नगर के विभिन्न मुहल्लों में दरिद्रों व निस्सहायों की सहायता करता हुआ घूमता था।

वह विद्या-व्यसनी था और विद्वानों का आश्रयदाता था। वह स्वयं बड़ा विद्वान और साहित्यकार था और विद्वानों के समाज में वह अपना समय व्यतीत करता था। खुरासान, ईराक आदि देशों के अनेक विद्वानों को वह अमूल्य उपहार भेजता था। बीदर के महाविद्यालय के निर्माण करवाने में उसने अपनी अधिकांश संपत्ति को लगा दिया था। फरिश्ता के अनुसार उसने दो काव्य ग्रन्थों, "रौजत-उल-इनश" तथा "दीवान-ए-अश्र" की रचना की थी। ये दो ग्रंथ उसकी अद्भुत काव्य-प्रतिभा के द्योतक हैं। वह गणित और चिकित्साशास्त्र का भी अच्छा जानकार था। वह एक श्रेष्ठ वैद्य भी था। सुन्दर लेखन-कला में वह अद्वितीय समझा जाता था।

महमूद गवां एक अच्छा राजनीतिज्ञ और सफल शासक भी था। मध्ययुग के राजनीतिज्ञों में उसका स्थान ऊंचा है। बहमनी राज्य में एकता, संगठन, व्यवस्था और दृढ़ शक्ति स्थापित करने का श्रेय महमूद गवां को ही है। बहमनी राजवंश के प्रति उसकी अटट श्रद्धा और भक्ति थी। राज्य-सेवा और प्रशासकीय सुधारों की उत्कृष्ट भावनाओं से उसका हृदय ओत-प्रोत था। उसने राज्य की शक्ति दृढ़ बनायी और

उसकी सीमाओं का विस्तार किया तथा राज्य के सर्वोच्च पद पर उन्नति करते-करते पहुंच गया। वह अल्पवयस्क सुलतान का संरक्षक भी बना। ऐसी शक्तिशाली दशा में वह चाहता तो राजसिंहासन को स्वयं हस्तगत कर लेता। परंतु उसने विश्वासघात और षडयन्त्र का ऐसा कोई कार्य नहीं किया। वह अपने जीवन भर अपने स्वामी सुलतान के प्रति निष्ठावान रहा। श्रद्धा, सम्मान, और भक्ति प्रदर्शित करता रहा। राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होने पर भी न तो वह निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक ही था और न विलासी, अभिमानी, दुराचारी अमीर ही। वह उदार और न्यायप्रिय शासक था उसने अपने प्रशासकीय और राजस्व के सुधारों से शासकीय प्रतिभा प्रदर्शित की। परंतु वह विद्वान, उदार, पवित्र और सदाचारी होते हुए भी धार्मिक कार्यों में हिंदुओं के प्रति असहिष्णु और अनुदार था। उसमें धर्मांधता थी और इस्लाम के प्रचार के लिये तीव्र लालसा थी। उसने हिन्दुओं के मंदिरों और मूर्तियों को विध्वंस किया, उनके भवनों, गांवों, नगरों को लूटा और सहस्रों असहाय निर्दोष हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। पर मध्ययुग की यह दूषित धार्मिक नीति थी और महमूद गवां इसका अपवाद नहीं है। उसके पवित्र एवं संयमित जीवन, कार्य-निष्ठा, राज्य की सेवाओं और शासकीय सुधारों से इतिहास में वह चिरस्मरणीय है।

बहमनी राज्य के पतन के कारण

लगभग पौने दो सौ वर्षों तक बहमनी राज्य का अस्तित्व रहा और इसके बाद इस राज्य का पतन हो गया। इसके पतन के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) **अमीरों का पारस्परिक वैमनस्य और संघर्ष**— राज्य में तुर्क, मंगोल, अफगान, ईरानी और भारतीय मुसलमान थे। इनके वर्गों के अमीर और पदाधिकारी भी थे। इनके दो विरोधी दल हो गये थे, प्रथम दक्षिण भारतीय मुसलमान अमीरों का दल और द्वितीय विदेशी मुसलमान अमीरों का दल। ये परस्पर एक दूसरे से घृणा और ईर्ष्या करते थे और शत्रु के समान लड़ते थे। वे राज्य के हित से अपने दल का हित सर्वोपरि समझते थे। उनके पारम्परिक ईर्ष्या, द्वेष. कलह, शत्रुता और संघर्षों मे अनेक बार षड़यंत्र रचे गये, गृहयुद्ध हुए जिनमे राजधानी बीदर की निर्दोष एवं निस्सहाय प्रजा पर दक्षिणियों और विदेशी अमीरों ने पारस्परिक विरोध के कारण अनेक अत्याचार किये। इससे सामन्त और राजवंश प्रजा की सहानुभूति और सहयोग खो बैठे, अमीरों की शक्ति क्षीण होती चली गयी और प्रशासन को भीषण आघात पहुँचा। विभिन्न दलों के पारस्परिक संघर्षों के कारण संभवत: महमूद गवां के मंत्रिकाल को छोड़कर अन्य किसी भी राज्य-काल में प्रशासकीय व्यवस्था सुचारु और सुव्यवस्थित न बन सकी।

(२) **अराजकता और अव्यवस्था**—अमीरों की पारस्परिक शत्रुता, वैमनस्य, और संघर्षों मे तथा बहमनी सुलतानों की विलासप्रियता, अयोग्यता और प्रतिभाहीनता से जनता और प्रशासन पर बुरा प्रभाव पड़ा। सुलतान शक्तिहीन होने से स्वयं राज्य की और अपनी स्थिति संभालने के योग्य नहीं थे, और अमीर व मंत्री और सूबेदार अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने में संलग्न रहते थे। ऐसे समय में राज्य में अराजकता और अव्यवस्था व्याप्त हो गयी। एक इतिहासकार ने लिखा है कि "इस समय,

सम्मानित संत मदिरा पात्रों मे अपने वस्त्रों तक को डुबोने लगे और धर्माचार्य विद्यालयों को छोड़कर मदिरालयों में जा बिराजे तथा पान गोष्ठियों का सभापतित्व ग्रहण करने लगे ।" ऐसी परिस्थिति में बहमनी राज्य का पतन निश्चित था ।

(३) **निरंतर संघर्ष और युद्ध**—बहमनी राज्य और विजयनगर राज्य में वंशपरम्परागत वैमनस्य और शत्रुता थी । राज्य विस्तार के लिये, प्रतिहिंसा की पूर्ति और शत्रुता के कारण दोनों राज्य परस्पर युद्ध करते रहे । लगभग प्रत्येक बहमनी सुलतान को अपने शासन काल में विजयनगर के राजाओं से भीषण युद्ध करना पड़े । इन संघर्षों, अभियानों और युद्धों के कारण सुलतानों की सैन्य शक्ति क्षीण होने लगी । निरन्तर युद्धों, भीषण नरसंहार और लूट में व्यस्त रहने के कारण सुलतान अपनी प्रशासकीय व्यवस्था और आन्तरिक सुरक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं दे सके । इससे राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया ।

(४) **दूषित हिन्दू विरोधी नीति**—बहमनी सुलतानों में प्रशासकीय गुणों और रचनात्मक प्रतिभा का तो अभाव था ही, इसके साथ-साथ वे धर्मान्ध थे । वे हिन्दुओं के प्रति अनुदार और असहिष्णु थे, उनकी नीति कठोर, दमनीय और अत्याचारपूर्ण थी । इस दूषित नीति के परिणामस्वरूप हिन्दू प्रजा सुलतानों के प्रति श्रद्धा, सम्मान, भक्ति और निष्ठा नहीं रख सकी । अधिकांश प्रजा हिन्दू होने से सुलतानों को उनके विरोध और विद्रोह का सामना करना पड़ा जो राज्य के पतन में सहायक हुआ ।

(५) **निकम्मे, विलासी और अयोग्य उत्तराधिकारी**—कुछ विशिष्ट सुलतानों को छोड़कर अधिकांश सुलतान शक्तिहीन, प्रतिभाहीन थे । मुहम्मदशाह तृतीय के उत्तराधिकारी तो अत्यंत ही विलासी, निकम्मे, दुर्बल और अयोग्य थे । उनमें इतनी शक्ति और क्षमता नहीं थी कि वे सशक्त शत्रुओं से घिरे हुए, संघर्षों और गृहकलहयुक्त विशाल राज्य को संभाल सकते । मुहम्मदशाह का उत्तराधिकारी महमूदशाह अत्यंत भ्रष्ट, दुराचारी, व्यभिचारी और विलासी था । वह मूर्खों और नायकों की संगति में विशेष अभिरुचि रखता था । इसका कुप्रभाव शासन व्यवस्था पर पड़ा । प्रांतीय अमीरों ने स्वतंत्र होकर बहमनी राज्य से पृथक होकर अपने नवीन राज्यों का निर्माण कर लिया ।

(६) **मंत्री महमूद गवां की हत्या**—मंत्री महमूद गवां बहमनी राज्य का योग्य, प्रतिभासंपन्न, कुशल राजनीतिज्ञ और सफल शासक था । उसने न केवल बहमनी राज्य की सीमाओं का विस्तार ही किया, अपितु बहमनी राज्य के प्रशासन और केन्द्रीय शक्ति को भी सुदृढ़ बनाया । उसने राजसभा को अमीरों की दूषित दलबन्दियों से मुक्त रख कर बहमनी राज्य को छिन्न-भिन्न होने से बचाया । ऐसे सुयोग्य निष्ठावान मंत्री का वध होते ही बहमनी राज्य के विघटन का युग प्रारंभ हो गया । गवां की हत्या बहमनी राज्य के लिये घातक प्रमाणित हुई । राज्य की दृढ़ता, शक्ति और शासन महमूद गवां की मृत्यु के साथ विलुप्त हो गये और फलतः अंतिम बहमनी सुलतान कलीम उल्लाह को उसके मंत्री अमीर बरीद ने सिंहासन-च्युत कर दिया और स्वयं सुलतान हो गया । इस घटना से बहमनी वंश का टिमटिमाता दीप भी अस्त हो गया ।

बहमनी राज्य में प्रशासन और जन-जीवन

बहमनी राज्य का अस्तित्व सन् १३४७ से सन् १५२६ तक रहा। इस अवधि में बहमनी सुलतानों ने निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक के रूप में राज्य किया। इनके शासन और सफलताओं के विषयों में कुछ विद्वानों का मत है कि बहमनी राज्य का इतिहास हत्याओं, नरसंहारों, धार्मिक अनाचारों, अत्याचारों, देवालयों के विध्वंस, निःकृष्ट भोग-विलास, दुराचार, तथा स्वामी-द्रोह के घृणित कार्यो, आंतरिक कलह, षड़यंत्रों और संघर्षों से भरा पड़ा है। कुछ विशिष्ट सुलतानों को छोड़कर अधिकांश सुलतान क्रूरकर्मी, रक्तपिपासु, नीच और विलासी रहे। इनमें कुछ का वध कर दिया गया, कुछ अत्यधिक विलासिता से मर गये और कुछ को सिंहासन च्युत कर दिया गया। ऐसे सुलतानों का शासन प्रबंध सुचारु नहीं बन सका। इसलिये कुछ इतिहासकारों ने बहमनी सुलतानों के शासन की कठोर शब्दों में निंदा की है। इसके विपरीत मीडोज टेलर और रूसी यात्री निकिटीन ने बहमनी राज्य का वर्णन करते हुए उसके विषय में कुछ अच्छी बातें भी लिखी हैं।

सामाजिक दशा—इस समय समाज में हिन्दू और मुसलमान दो प्रमुख वर्ग थे, परन्तु हिन्दू बहुसंख्यक थे। अधिकांश हिन्दू कृषि कार्य में संलग्न थे। वे राजनीति में अभिरुचि नहीं रखते थे। हिन्दुओं को मुसलमान प्रजा के समकक्ष नहीं समझा जाता था। सुलतानों ने हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति, सहिष्णुता और उदारता का व्यवहार नहीं किया। उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त नहीं किया। कभी-कभी छोटे-छोटे पदों पर हिन्दू नियुक्त किये गये थे। इसका कारण धार्मिक सहिष्णुता न होकर एक राजनैतिक और आर्थिक आवश्यकता थी। हिन्दुओं की नियुक्तियां बहमनी शासकों की निष्पक्षता और न्यायप्रियता नहीं थी, अपितु विवशता ही थी क्योंकि, हिन्दुओं के स्थानीय ज्ञान और प्रशासकीय अनुभव के बिना प्रशासन व्यवस्थित ढग से चलाना असम्भव था।

समाज में विधर्मियों की हत्याएं की जाती थीं। प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावनाओं से प्रेरित युद्धों में निरीह जनता को सामूहिक रूप से कत्ल कर दिया जाता था। विरोधी धर्मावलंबियों के निस्सहाय बच्चों, स्त्रियों और निर्दोष पुरुषों को भी आक्रमणकारियों की धर्मांधता और असहिष्णुता की तलवार की प्यास बुझाने के लिये अपने प्राणों की बलि देना पड़ती थी। हिन्दुओं पर जजिया कर था जो इससे बचना चाहते थे उन्हें इस्लाम ग्रहण करना पड़ता था। युद्धों में धन और जन का सर्वनाश होता था। यदि बहमनी सुलतान पड़ौसी राज्यों के साथ संघर्षों में न फंसते तो उनका राज्य अधिक शक्तिशाली और समृद्ध हो जाता।

साधारण जनता का जीवन कष्टमय था। श्रमिकों का जीवन भी दुखी था। पर राज्य के अमीरों और पदाधिकारियों का जीवन अतिशय विलासी था। वे अपरिमित धनराशि के स्वामी थे। अपने वैभव के प्रदर्शन में वे अपार धन व्यय करते थे। सेना मे प्रशिक्षण, अनुशासन और नियंत्रण का अभाव था जिससे सुलतान साधारण जनता को सेना के अत्याचारों से बचाने का प्रयास नहीं करते थे।

कुछ सुलतानों ने और विशेषकर मंत्री महमूद गवाँ ने सुधारों की ओर ध्यान

दिया। भूराजस्व में सुधार किये गये। कृषकों को सुविधाएँ दी गयीं। सिंचाई की व्यवस्था की गयी। जलाशय बनाये गये। तेलंगाना में सिंचाई के लिये बड़े पैमाने पर व्यवस्था की गयी। इससे राज्य की आय में वृद्धि हुई। अकाल के समय अनाज का प्रबंध किया गया। शांति व्यवस्था बनाये रखने का प्रयास किया गया और पर्यटक एथेनेसियस निकिटन के अनुसार सड़कों पर डाकुओं का भय नहीं था। राजधानी बीदर नगर अच्छा सजा हुआ था। उसमें सुन्दर उद्यान, भवन आदि बने हुए थे।

बहमनी शासकों ने शिक्षा की खूब प्रगति की। गाँवों में मसजिदें निर्मित की गयीं और हर मसजिद में एक मुल्ला नियुक्त किया जाता था जो उस क्षेत्र में शिक्षक का कार्य करता था। प्रमुख नगरों में मकतब (उच्च विद्यालय) स्थापित किये गये। उन्हें राज्य की ओर से अनुदान की व्यवस्था की गयी। बीदर में एक महाविद्यालय और एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किये गये। मकतबों में अरबी और फारसी के अध्ययन की सुविधाएं उपलब्ध की गयीं। साधारणतया वहां इस्लाम की धार्मिक शिक्षा दी जाती थी।

यद्यपि बहमनी सुलतानों ने प्रशासकीय सुधार किये और शिक्षा का प्रसार किया, परन्तु उन्होंने जनता की आर्थिक दशा सुधारने के लिये तथा उद्योग-व्यवसायों के लिये किसी भी प्रकार की दृढ़ आर्थिक नीति नहीं अपनायी।

स्थापत्य कला—बहमनी शासकों को भवन निर्माण कला से विशेष अभिरुचि थी। उन्होंने गांवों, मंडियों और नगरों में अनेकानेक मसजिदें बनवायीं। राजधानी बीदर को भव्य एवं विशाल भवनों से सुन्दर और आकर्षक बनाया। उन्होंने सुरक्षा के लिये कई दुर्गों का निर्माण किया। इनमें ग्वालीगढ़ और नारनुल्ल दुर्ग कलात्मक दृष्टिकोण से प्रसिद्ध थे। मीडोज टेलर ने बहमनी सुलतानों द्वारा निर्मित दुर्गों की दृढ़ता और सुन्दरता की प्रशंसा की है। बहमनी राज्य से स्वतंत्र हुए बीजापुर गोलकुंडा के सुलतानों ने भी भवन निर्माण में अधिक योग दिया। उन्होंने भी मसजिदें, मकबरे और राजप्रासाद बनवाये। बीजापुर में सुन्दर स्थापत्य शैली का विकास हुआ। जिसमें तुर्की प्रभाव की प्रधानता रही। गुलबर्गा और बीदर की मसजिदें, दक्षिण की स्थापत्य कला के अच्छे नमूने हैं। गुलबर्गा की जामा मसजिद व मकबरे दौलताबाद दुर्ग की चांदमीनार, बीजापुर का गोलगुंबद, बीदर की सोला मसजिद और अहमदशाह वली का मकबरा सुलतानों की श्रेष्ठ कलाप्रियता के परिचायक हैं।

विजयनगर राज्य

विजयनगर राज्य का अभ्युदय—सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में मलिक काफूर के सैनिक अभियानों और युद्धों के परिणामस्वरूप दक्षिण भारत में मदुरा तक का क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गया था। इसके बाद मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण भारत के इस क्षेत्र पर सीधा शासन स्थापित करने का प्रयास किया। उत्तरी भारत में दिल्ली सुलतानों के दीर्घकालीन प्रशासन और धार्मिक अत्याचारों से हिन्दू धर्म और संस्कृति नाम-मात्र को ही अवशेष थी। दक्षिण भारत में जहाँ हिन्दू-धर्म और संस्कृति सुरक्षित थी, अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक के साम्राज्य विस्तार से,

हिन्दुओं को अपने धर्म और संस्कृति विलुप्त होने की आशंका होने लगी। उन्होंने दक्षिण भारत में मुसलमानों के युद्धों से हिन्दू राज्यों का लोप, प्राचीन हिन्दू राजवंशों का विनाश, हिन्दुओं के मंदिरों और नगरों की लूट और उन नगरों का विध्वंस, हिन्दू-धर्म का नाश होते देखा। इसलिये उन्होंने इनकी रक्षा के लिये संगठित प्रयास किये। अपनी आत्मरक्षा, धर्म, संस्कृति की रक्षा के लिये आन्दोलन प्रारंभ किया। सुलतान मुहम्मद तुगलक के समय व्याप्त अराजकता और विद्रोहों ने इस आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान की। विजयनगर के हिन्दू राज्य का अभ्युदय इसी धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन का सुफल था। विजयनगर राज्य का निर्माण इस्लाम धर्म के अनुयायियों और सुलतानों से असन्तुष्ट हिन्दुओं के संगठित प्रयास का परिणाम था। इस राज्य के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य था हिन्दुओं को आत्मरक्षा के लिये एक झंडे के नीचे संगठित करना, मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से पीड़ित हिन्दुओं के लिये एक ऐसे शरणस्थल का निर्माण करना, जहाँ मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों से पीड़ित तथा मुस्लिम शासकों की धर्मान्धता से शोषित हिन्दू जनता शांति व सुख से जीवन व्यतीत कर सके।

सुलतान मुहम्मद तुगलक के शासन के अंतिम चरण में दक्षिण में विद्रोहों के फलस्वरूप अराजकता और अस्तव्यस्तता फैल गयी थी एवं प्रशासन भी शिथिल हो गया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर होयसल नरेश वीरबल्लाल तृतीय, तैलंगाना के कृष्ण नायक, विरुपाक्ष बल्लाल और हरिहर तथा बुक्का ने अपने संगठित प्रयासों से दक्षिण में इस्लाम विरोधी आन्दोलन को प्रेरणा दी तथा दक्षिण भारत के, गुजरात और देवगिरी को छोड़कर अधिकांश भाग को दिल्ली सुलतान के अधिकार से मुक्त करा लिया था। इन नरेशों ने दक्षिण के हिन्दुओं में एक ऐसी ज्योति जगा दी थी जो विजयनगर के पतन के पहिले कभी नहीं बुझ सकी।

विजयनगर की स्थापना—हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने सन् १३३६ में दक्षिण भारत में तुगभद्रा नदी के तट पर विजयनगर राज्य की स्थापना की। प्रारंभ में हरिहर और बुक्काराय वारंगल (तैलंगाना) के काकातीय नरेश प्रताप रुद्रदेव के यहां कोषागार में नियुक्त थे। ये दोनों भाई संगम नामक व्यक्ति के पुत्र थे। जब सुलतान मुहम्मद ने सन् १३२३ में वारंगल को जीतकर अपने अधीन कर लिया, तब ये दोनों भाई रायचूर प्रदेश के अनागोंडी के हिन्दू शासक की सेवा में चले गये। जब वहां मुसलमानों ने आक्रमण किया तब इन दोनों भाइयों को बन्दी बनाकर सुलतान मुहम्मद तुगलक के पास दिल्ली भेज दिया गया। इन दोनों भाइयों के गुणों और प्रशासकीय प्रतिभा से मुहम्मद तुगलक अधिक प्रभावित हुआ था। जब रायचूर में विद्रोह होने लगे और मुस्लिम शासकों द्वारा वहां शांति स्थापित नहीं हो सकी, तब मुहम्मद तुगलक ने इन दोनों भाइयों को स्थानीय व्यक्ति होने के कारण अपना प्रतिनिधि और सामन्त बनाकर दक्षिण में रायचूर में शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिये भेजा। उस समय दक्षिण का प्रकांड पंडित "माधव," जिसका उपनाम विद्यारण्य था, इनका गुरू था। इन दोनों भाइयों ने अपने गुरू की प्रेरणा और सहायता से, मुस्लिम शासन में व्याप्त अराजकता का लाभ उठाकर, मुस्लिम विरोधी हिन्दू आन्दोलन को मूर्त रूप देने के लिये सन् १३३६ में तुंगभद्रा नदी के तट पर विजयनगर की स्थापना की। विद्वानों

की धारणा है कि अपने गुरू के स्मारक स्वरूप इन दोनों भाइयों ने इस नगर का नाम विद्यानगर अथवा विजयनगर रखा। विद्यारण्य के छोटे भाई और वेदों का प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने भी इन भाइयों को यह नगर निर्माण करने के लिये प्रोत्साहन दिया था। इस समय विद्यारण्य दक्षिण में हिन्दू-धर्म के नेता माने जाते थे। वे इस्लाम के प्रचार के विरुद्ध हिन्दू-धर्म को सुरक्षित करने के प्रयत्न कर रहे थे। इससे विजयनगर की स्थापना दक्षिण में हिन्दू जाति और धर्म के उद्धार की प्रतीक बन गयी। नगर की सुरक्षा के लिये एक विशाल दृढ़ दुर्ग का भी निर्माण किया गया। इस दुर्ग के सात प्राचीर थे। "इस दुर्ग का प्रयोजन अधर्म की उन शक्तियों का अवरोधन करना था, जिन्हें म्लेच्छों ने समस्त देश में बिखेर दिया था।" विजयनगर की भौगोलिक स्थिति अच्छी थी। एक अभिलेख के अनुसार "हेमकूट इसके लिये परकोटे का काम करता था, तुंगभद्रा खाई का काम देती थी, इसका रक्षक विश्व रक्षक विरुपाक्ष और शासक राजाओं का राजा हरिहर था।" कुछ विद्वानों का मत है कि होयसल वंश के नरेश वीर बल्लाल तृतीय ने विजयनगर का श्रीगणेश कराया था और बाद में हरिहर व बुक्का ने इसे सन् १३३६ में पूर्ण किया था। परन्तु अधिकांश विद्वान हरिहर और बुक्का को ही इस नगर के संस्थापक मानते हैं। विजयनगर राज्य के प्रमुख नरेश निम्नलिखित थे।

हरिहर—(सन् १३३६-५३) विजयनगर का प्रथम नरेश हरिहर था। उसने अपने भाई बुक्का की सहायता से विजयनगर राज्य का प्रशासन किया और उसकी सीमाओं में वृद्धि की। इनके पिता का नाम संगम था। इसलिये इस वंश का नाम संगम पड़ा। सन् १३४० में हरिहर ने कोंकण का कुछ प्रदेश और मलाबार का समुद्र-तट अपने अधिकार में कर लिया। सन् १३४६ में होयसल नरेश विरुपाक्ष बल्लाल की मदुरा के मुस्लिम शासक से युद्ध करते हुए मृत्यु हो जाने से, हरिहर ने होयसल राज्य को भी अपने अधिकार में कर लिया। जब सन् १३५३ में हरिहर की मृत्यु हुई तब विजयनगर राज्य की सीमाएं उत्तर में कृष्णा नदी से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी तक तथा पूर्व में समुद्र-तट से लेकर पश्चिम में समुद्र-तट तक थीं। हरिहर एक विजेता और कुशल शासक था। उसने अपने विशाल राज्य को प्रांतों में विभक्त कर वहां कुशल और अनुभवी शासक नियुक्त कर दिये थे।

बुक्का—(सन् १३५३-७९) हरिहर की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई और सहायक बुक्का विजयनगर का नरेश हुआ। बुक्का बड़ा योग्य, उदार और प्रभावशाली नरेश था। दक्षिण के अनेक हिन्दू नरेशों ने उसके प्रभाव से बिना युद्ध किये ही विजयनगर की अधीनता स्वीकार करली। बुक्काराय ने अपने पुत्र काम्पन की सहायता से कांजीवरम् के पार्श्ववर्ती क्षेत्र के सामन्तों को अपने अधिकार में कर लिया और मदुरा के मुस्लिम शासक को भी परास्त कर मदुरा राज्य को विजयनगर का अंग बना लिया। उत्तर में बुक्काराय को बहमनी राज्य से निरन्तर युद्ध करना पड़े। विजयनगर और बहमनी राज्य की सीमाएं अत्यंत समीप होने से साम्राज्य विस्तार की दौड़ में वे एक दूसरे का घोर प्रतिद्वंद्वी मानने लगे और निरन्तर युद्ध करने लगे। रायचूर दोआब और अन्य क्षेत्र में प्रभुत्व स्थापित करना इन युद्धों का कारण था।

इससे दोनों राज्यों में लगभग दो सौ वर्षों तक अविच्छिन्न युद्ध परम्परा स्थापित हो गयी।

बुक्काराय में धार्मिक सहिष्णुता और उदारता थी। यद्यपि विजयनगर राज्य हिन्दुओं की रक्षा के लिए स्थापित किया गया था, किन्तु बुक्का ने अपनी प्रजा के साथ समानता का व्यवहार किया। उसने मुसलमानों को भी अपने शासन में योग्यतानुसार पद प्रदान किये। बुक्काराय हिन्दू धर्म तथा हिन्दू कलाप्रिय था। उसने तामिल देश में हिन्दू धर्म को पुनः स्थापित किया। श्री रंगम् और मदुरा के महान पवित्र मंदिरों की प्रतिष्ठा पुनः निर्मित की। सन् १३७४ में बुक्काराय ने चीन सम्राट को अपना एक दूत मंडल भी भेजा था। वह बड़ा वीर, निर्भीक और साहसी नरेश था।

हरिहर द्वितीय—(सन् १३७९–१४०४)—बुक्काराय के देहान्त के बाद उसका पुत्र हरिहर द्वितीय उसका उत्तराधिकारी बना। विजयनगर का यह प्रथम शासक था जिसने सिंहासनारूढ़ होने पर महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। इस समय बहमनी राज्य के सुल्तान मुहम्मदशाह द्वितीय से जो शांतिप्रिय था, मैत्री-संबंध हो जाने से, उसे अपने राज्य को संगठित करने और सुदूर दक्षिण में उसका विस्तार करने के अवसर मिले। फलतः उसने दक्षिण में मैसूर, कांजीवरम्, चिंगलपुर, त्रिचनापल्ली आदि नगरों और प्रदेशों को जीत कर उन्हें अपने आधिपत्य में कर लिया। उसने गोआ के मुसलमानों को भी खदेड़ दिया। परन्तु जब फीरोजशाह बहमनी राज्य का सुल्तान बना, तब बहमनी और विजयनगर राज्यों में परस्पर युद्ध छिड़ गया। इसमें विजयनगर की पराजय हुई और हरिहर द्वितीय को अपमानजनक संधि करना पड़ी। हरिहर द्वितीय स्वभाव से शांतिप्रिय शासक था। उसने अपना अधिकांश समय राज्य को संगठित और व्यवस्थित करने में व्यतीत किया। वह शैव-मत का अनुयायी और शिव के विरुपाक्ष रूप की उपासना करता था। उसने अपने राज्य में अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया और दानशील वृत्ति का होने से उसने अनेकों को उदारतापूर्वक दान दिये। प्रसिद्ध विद्वान सायण उसका प्रधानमंत्री था। अन्य धर्मों के प्रति उसका दृष्टिकोण उदार और सहिष्णु था। मुसलमानों के प्रति वह सहिष्णु था और उन्हें अपनी प्रजा समझता था।

देवराय प्रथम (सन् १४०४ से १४१०) **और वीरविजय** (सन् १४१० से १४१९)—हरिहर द्वितीय की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए परस्पर गृह-युद्ध हुआ और देवराय विजयी होने से राजा बन गया। वह सफल शासक नहीं था। देवराय प्रथम बहमनी राज्य के अन्तर्गत मुद्गल स्थान की निहाल नामक एक सुनार स्त्री से प्रेम करता था और उससे विवाह करना चाहता था। इसलिये उसने मुद्गल स्थान पर आक्रमण किया, जिससे बहमनी सुल्तान फिरोजशाह और देवराय प्रथम में भयंकर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में देवराय परास्त हुआ और उसे आत्म-सम्मान बेचकर अपने राज्य के कुछ प्रदेश बहमनी सुल्तान को देने के लिए बाध्य होना पड़ा। सन् १४१० में उसकी मृत्यु हो जाने पर वीरविजय उसका उत्तराधिकारी बना। इसने नौ वर्षों तक राज्य किया।

देवराय द्वितीय (सन् १४१६ से १४४९)—वीरविजय के बाद देवराय विजयनगर का राजा बना। उसके शासन के प्रारम्भिक काल में बहमनी सुल्तान फीरोजशाह ने विजयनगर राज्य पर अकारण ही आक्रमण किया। यह आक्रमण दोनों राज्यों के परंपरागत संघर्ष का एक अंग था। पर देवराय ने फीरोजशाह को बुरी तरह परास्त कर दिया और उसके कई दुर्ग भी छीन लिये और बहमनी राज्य के भागों को रौंद डाला। इस युद्ध में देवराय ने अनुभव किया कि बहमनी राज्य की अश्वारोही सेनाएँ विजयनगर की सेनाओं से अधिक योग्य और सशक्त हैं। उनके सैनिक भी अधिक अच्छे तीरन्दाज हैं। इसलिए उसने अपनी अश्वारोही सेना में मुसलमानों को भरती किया, उन्हें अच्छे वेतन और जागीरें प्रदान की, उनके लिए मसजिदें बनवायीं और इस प्रकार उसने अपनी सेना को अच्छी व्यवस्थित और संगठित की। पर जब फिरोजशाह के उत्तराधिकारी अहमदशाह ने २४ वर्ष तक तैयारी करने के बाद सन् १४४३ में विजयनगर पर आक्रमण किया, तब देवराय इस नव-संगठित सेना से भी हार गया और उसका बड़ा पुत्र युद्ध में मारा गया। इस विजय पर बहमनी सेनाओं ने विजयनगर राज्य के निरीह स्त्री-पुरुषों, वृद्धों और बालकों की क्रूरता से हत्याएं करके, नगरों व गांवों को निर्ममता से लूट कर भयंकर तांडव लीला की। देवराय ने विवश होकर संधि कर ली।

देवराय कुशाग्र बुद्धि का शासक था। उसने शासन व्यवस्था में अनेक परिवर्तन और सुधार करके उसे सुदृढ़ बनाया। उसने राज्य के सामुद्रिक व्यापार को उन्नत और व्यापक बनाने के लिए ठोस कदम उठाये। देवराय साहित्यानुरागी शासक था। उसके शासन काल में कन्नड़ साहित्य की विशेष उन्नति हुई। कन्नड़ भाषा के ग्रंथ "भारथ" के रचियता कुमार व्यास तथा अनेक कवि और लेखक इस काल में फले-फूले। देवराय शैव मत के लिंगायत सम्प्रदाय का अनुयायी होने से इस सम्प्रदाय को राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। परन्तु अन्य धर्मों को भी स्वतंत्रता थी। देवराय के शासन काल में इटली निवासी निकोलो कौंटी और फारस निवासी अब्दुर्रजाक नामक पर्यटक विजयनगर आये थे। उन्होंने उस काल का विशद् रुचिकर वर्णन किया है।

मल्लिकार्जुन और विरुपाक्ष—देवराय के बाद उसके दो निर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारी मल्लिकार्जुन और विरुपाक्ष हुए। इससे राजनैतिक अव्यवस्था और असन्तोष उत्पन्न हो गया, राज्यों में अराजकता व्याप्त हो गयी। इस अराजकता का और विजयनगर के शासकों की दुर्बलता का लाभ उठाकर बहमनी सुल्तान और उड़ीसा के हिन्दू राजाओं ने विजयनगर राज्य पर आक्रमण किये। बहमनी सुल्तानों ने विजयनगर का बहुत-सा प्रदेश हस्तगत कर लिया। इस अशांत वातावरण में अवसर पाकर विरुपाक्ष के एक मंत्री नरसिंह सलुव ने जो तैलगांना में चन्द्रगिरी का एक शक्तिशाली सामन्त था, सन् १४८६ में विरुपाक्ष को सिंहासना-च्युत कर दिया और स्वयं विजयनगर पर अपना अधिकार कर लिया। इससे विजयनगर में सलुव राजवंश का प्रारम्भ हुआ।

सलुव राजवंश—इस राजवंश के शासकों ने सन् १४८६ से १५०५ तक विजयनगर में राज्य किया। इनमें प्रमुख निम्नलिखित थे—

नरसिंह सलुव—यह एक शक्तिशाली, वीर और योग्य शासक था। उसने बहमनी सुल्तानों और उड़ीसा के राजाओं द्वारा विजयनगर के छीने हुए प्रदेशों का अधिकांश भाग पुनः जीत कर प्राप्त कर लिया। उसने राज्य विस्तार ही नहीं किया अपितु शासन व्यवस्था भी दृढ़ कर दी। वह साहित्यानुरागी था। "जेमिनीभारतम्" ग्रन्थ उसी को समर्पित किया गया। उसने छः वर्षों तक शासन किया।

इमादी नरसिंह—नरसिंह सलुव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इमादी नरसिंह विजयनगर का राजा बना। पर वह दुर्बल और अयोग्य होने से राज्य की सारी शक्ति उसके सेनानायक नरसानायक या नरेश नायक के हाथों में केन्द्रीभूत थी। नरसा नायक की मृत्यु हो जाने के बाद उसके पुत्र वीर नरसिंह तुलुब ने शक्तिहीन इमादी नरसिंह को पृथक कर दिया और स्वयं राजसिंहासन पर बैठ गया। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद का मत है कि राज्यापहरण स्वयं नरेश नायक ने किया था, उसके पुत्र ने नहीं।

तुलुब वंश—तुलुब वंश के नरेशों का राज्य सन् १५०९ से प्रारम्भ होता है और सन् १५७० तक उनका शासन रहा। इस वंश के प्रमुख नरेश अधोलिखित थे—

कृष्णदेव राय (१५०९–३०)—तुलुब वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक कृष्णदेव था। राज्यारोहण के पश्चात् ही उसने शांति व्यवस्था स्थापित करने की ओर ध्यान दिया और राज्य की आर्थिक स्थिति को सुधारा। उसने विद्रोही सामन्तों का दमन किया। सन् १५१२ में उसने रायचूर के दोआब को जीत लिया। सन् १५१३–१४ में उड़ीसा के राजा को दो बार परास्त कर उसे संधि करने और अपनी पुत्री का विवाह कृष्णदेव राय के साथ करने के लिए बाध्य किया। सन् १५२७ में उसने बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह को परास्त किया और बीजापुर को बुरी तरह रौंद कर उसे खूब लूटा। मुसलमानों से सफलतापूर्वक युद्ध करने के लिए उसने पुर्तगालियों से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किये और पुर्तगालियों के दूत का सम्मान कर कृष्णदेवराय ने पुर्तगालियों को भटकल में एक दुर्ग निर्माण करने की अनुमति दे दी। उसने विजयनगर राज्य की सीमाओं में विस्तार किया। उसके शासन काल में राज्य की सीमा पश्चिम में कोंकण, पूर्व में विजगापट्टम व कटक, दक्षिण में कन्याकुमारी और उत्तर में बहमनी राज्य की सीमा तक फैली हुई थी। हिन्द महासागर के कई द्वीपों पर उसका अधिकार था। कृष्णदेवराय विद्या और कला का अनन्य प्रेमी था। वह विद्वानों और कलाकारों का उदार आश्रयदाता था। वह विदेशियों का भी आदर सम्मान और स्वागत करता था। उसकी राज सभा में आठ श्रेष्ठ कवि और कलाकार थे जो "अष्ट दिग्गज" के नाम से प्रसिद्ध थे। उसे स्थापत्य कला से भी अनुराग था और उसने अनेकों मंदिरों का निर्माण करवाया। उसने शासन व्यवस्था भी दृढ़ कर ली थी। उसने कर कम कर दिये थे और कृषि में उन्नति करने के प्रयास किये थे। वह वैष्णव सम्प्रदाय का अनुयायी था, परन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी वह उदार और सहिष्णु था। अपने सफल प्रशासन और विजयों से कृष्णदेवराय ने विजयनगर राज्य को उन्नति और समृद्धि के शिखर तक पहुँचा दिया था। वह एक सफल, न्यायप्रिय शासक, महान विजेता और निर्माता भी था। उसकी गणना भारत के महानविजेताओं,

असाधारण कुशल शासकों तथा कला, साहित्य और धर्म के संरक्षकों में होती है। पुर्तगाली पर्यटक पेइज ने उसके शासन व गुणों की खूब प्रशंसा की है। सन् १५३० में उसकी मृत्यु हो गई।

अच्युतराय (सन् १५३०–१५४२)—कृष्णदेवराय के बाद उसका भाई अच्युत देवराय राजसिंहासन पर बैठा। वह बड़ा ही दुर्बल और अयोग्य शासक था। उसकी दुर्बलता के कारण बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने विजयनगर राज्य के रायचूर दोआब पर आक्रमण करके उस पर अपना अधिकार जमा लिया। उसके दुर्व्यवहार से भी साम्राज्य में अनेक दल बन गये जिससे केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गई। सन् १५४२ में अच्युतदेवराय की मृत्यु हो गई।

सदाशिव—अच्युतदेव के बाद उसका भतीजा सदाशिव सन् १५४२ में राजा बना। वह भी सर्वथा अयोग्य और निर्बल शासक था। इसलिए साम्राज्य की सारी शक्ति उसके मंत्री रामराय के हाथों में थी। रामराय योग्य, महत्वाकांक्षी और दम्भी व्यक्ति था। वह साम्राज्य का विस्तार चाहता था। इस समय तक बहमनी साम्राज्य विघटित होकर बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर, और बीदर में विभाजित हो चुका था। उनमें परस्पर फूट और वैमनस्य था। रामराय ने इसका लाभ उठाकर कूटनीति से अहमदनगर और गोलकुण्डा को अपनी ओर मिलाकर बीजापुर पर सन् १५४३ में आक्रमण कर दिया, पर बीजापुर सुल्तान ने संधि करके यह आक्रमण रुकवा दिया। इसके बाद सन् १५५७ में रामराय ने बीजापुर और गोलकुण्डा से मिलकर अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया। सुल्तान बुरी तरह परास्त हुआ। हिन्दू सेनाओं ने अहमदनगर को लूट कर नष्ट कर दिया। उन्होंने मुसलमानों पर अत्याचार किये, मस्जिदों को धूल में मिला दिया और कुरान की अवहेलना की।

तालीकोट का निर्णायक युद्ध (सन् १५६५)—मुसलमान अहमदनगर की लूट और अत्याचार से आतंकित हो गये और उन्होंने अपनी पारस्परिक फूट को विस्मरण कर अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा और बीदर ने विजयनगर के विरुद्ध एक संघ बनाया और प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने बीजापुर के सुल्तान हुसेन निजामशाह के नेतृत्व में विजयनगर पर अपनी संगठित सेनाओं से आक्रमण कर दिया।

रामराय अभिमानवश चुप बैठा रहा और उसने कोई सैनिक तैयारी नहीं की। जब शत्रु सेना समीप आ गई तब उसने अपने दो भाइयों को दो विशाल सेनाएँ देकर सीमाओं की रक्षा के लिए भेजा और स्वयं भी एक विशाल सेना लेकर आगे बढ़ा। सन् १५६५ में कृष्णा नदी के तट पर तालीकोट नामक स्थान पर रामराय की सेना और मुस्लिम राज्यों की संगठित सेना में भयंकर युद्ध हुआ। मुसलमानी सेना का नेतृत्व और संचालन अनुभवी और वयोवृद्ध सुल्तान हुसेन कर रहा था। उसने सेना के केन्द्र का भाग अपने अधीन रखा और बांये तथा दाहिने भागों के संचालन का भार कुतुबशाह तथा आदिलशाह को सौंपा गया। विजयनगर की सेनाओं का नेतृत्व ९० वर्षीय रामराय (रामराजा) स्वयं कर रहा था। उसकी सेना एक लाख से अधिक थी। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। हिन्दुओं के प्रारम्भिक भयंकर आक्रमण से

मुसलमानों के बांये तथा दांये पक्ष तितर-बितर हो गये। इसी बीच रामराय ने यह आदेश दिया कि वीरता से डट कर युद्ध करने वाले सैनिकों को राजकोष से बहुमूल्य पुरस्कार वितरित किये जायेंगे। इससे प्रोत्साहित होकर हिन्दू सैनिकों ने रणोन्मत्त होकर यवन सेना पर पुनः प्रचंड आक्रमण किया। इससे मुसलमान सेना विवश होकर पीछे हट गई। विजयनगर सेना की विजय निश्चित हो चली थी, पर मुस्लिम तोपखाने ने पासा पलट दिया। इस तोपखाने ने बारूद और तांबे के सिक्कों से भरे थैलों से आक्रमण किया। इससे विजय करती हिन्दू सेनाओं के पैर उखड़ गए। वह अस्त-व्यस्त हो गई और भागते हुए सैनिकों पर मुसलमानों ने प्रहार किये और उन्हें मौत के घाट उतार दिया। रणक्षेत्र में मुस्लिम सेना को अत्यधिक शस्त्रास्त्र, तंबू, अश्व, हीरे-जवाहरात आदि उपलब्ध हुए। अनेकों सैनिक बंदी बना लिए गए। रामराय भी बंदी बनाकर हुसेन निजामशाह के सामने लाया गया और उसने तत्काल निर्दयता से अपनी तलवार से वृद्ध मंत्री रामराय का सिर उड़ा दिया। इतनी विसाल सेनाओं का ऐसा भीषण युद्ध दक्षिण भारत में पहिले कभी नहीं हुआ था।

विजयनगर की लूट—सैनिकों के विनाश और रामराय के कत्ल से ही मुस्लिम सेनानायक संतुष्ट नहीं हुए। विनाश, बर्बरता, नरसंहार और विध्वंस की विभीषिका वे विजयनगर तक ले गये। मुसलमान सेनाओं ने विजयनगर राज्य और राजधानी में प्रवेश करके भीषण नर-हत्याएं कीं और निर्दयता से लूट मचाई। विजयनगर के वैभव-संपन्न प्रासादों. गगनचुंबी अट्टालिकाओं, विशाल देव मंदिरों और प्रशस्त राजमार्गों के भवनों को क्रूरता से जलाया, लूटा और विध्वंस कर दिया। मंदिरों, प्रासादों और भवनों को ऐसा ध्वंस कर दिया कि थोड़े से पाषाणों से बने मंदिरों तथा दीवारों को छोड़कर समृद्ध ऐश्वर्यशाली विजयनगर का कोई चिन्ह भी अवशिष्ट न रहा। मुस्लिम सैनिक आग और तलवार से, दंडों और फरसों से पांच माह तक यह विनाश लीला निरंतर करते रहे। एक लाख से अधिक निरपराध हिन्दुओं का नृशंसता से वध कर दिया गया। उनकी समस्त सम्पत्ति लूट ली गयी। फरिश्ता के अनुसार इतनी भारी लूट हुई कि साधारण सैनिक भी सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात पाकर अमीर हो गये। अकस्मात् रूप से विश्व के इतिहास में ऐसे भव्य, ऐश्वर्यशाली समृद्ध नगर का अल्प समय में ऐसा विनाश शायद कभी नहीं हुआ। ढाई सौ वर्षों के अथक परिश्रम और अपार धन से निर्मित विजयनगर और विशाल साम्राज्य कुछ ही दिनों में धूलिधूसरित हो गया और वे केवल इतिहास के पृष्ठों में रह गये।

तालीकोट युद्ध के परिणाम—तालीकोट का युद्ध निर्णायक और अत्यंत महत्वशाली है। (१) इस युद्ध से दृढ़ और समृद्ध विजयनगर साम्राज्य का पतन हो गया। (२) इससे दक्षिण भारत में मुसलमानों के व्यापक आक्रमण और साम्राज्य विस्तार के लिये द्वार खुल गये। बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों को अपनी सीमा वृद्धि करने के अवसर उपलब्ध हो गये। विजयनगर राज्य के विस्तृत प्रदेशों को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। (३) विजयनगर के दूरस्थ सूबों के प्रांतपतियों ने अपने स्वतंत्र राज्यों की घोषणा कर दी। इनमें मदुरा के नायकों का राज्य विशेष उल्लेखनीय है। (४) मैसूर क्षेत्र में विजयनगर के भग्नावशेषों पर एक नवीन राज्य का अभ्युदय हुआ। (५) विजय-

नगर के पतन के साथ-साथ पुर्तगालियों के व्यापार को गहरा आघात लगा और दक्षिण भारत में उनकी शक्ति क्षीण हो गयी।

विजयनगर राज्य का जर्जरित अंग और अंतिम अरविदु राजवंश—यद्यपि मुसलमान नरेशों को तालीकोट के युद्ध में विजय प्राप्त हुई थी, परन्तु कुछ ही समय बाद उनमे फूट उत्पन्न हो गयी और वे परस्पर संघर्ष में संलग्न हो गये। इधर विजयनगर का शक्तिहीन नरेश सदाशिव शासन करता रहा। अवसर पर रामराय के छोटे भाई तिरुपल ने जो सदाशिव के नाम से शासन कर रहा था, सन् १५७० में सदाशिव को पदच्युत कर दिया और स्वयं सिंहासन पर बैठ गया तथा वेनुगुण्डा को अपनी राजधानी बनाया। इसके राज्यारोहण से अरविदु राजवंश की स्थापना हुई। इसने विजयनगर राज्य को पुनः संगठित करने का प्रयास किया। उसकी मृत्यु के बाद रंग द्वितीय नरेश हुआ। पर वह दीर्घकाल तक शासन नहीं कर सका और सन् १५८६ में उसके देहावसान के बाद उसका लघु भ्राता बैंकट द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। यह इस वंश का सबसे योग्य और सफल शासक था। विद्यानुरागी होने से उसने कवियों और लेखकों को राज्याश्रय दिया था। सन् १६१४ में उसके देहान्त हो जाने के बाद रंग तृतीय राजा बना। पर वह स्वयं दुर्बल शासक था। इससे इसके शासनकाल में लगभग सभी प्रांतपतियों ने इससे पृकथ होकर अपने-अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये थे। तंजोर और मदुरा के नायकों ने भी अपने स्वतंत्र राज्य घोषित कर लिये थे। इससे विजयनगर राज्य छिन्न-भिन्न होकर समाप्त हो गया।

विजयनगर के पतन के कारण—लगभग तीन सौ वर्षों के दीर्घकालीन अस्तित्व के बाद विजयनगर राज्य का पतन हो गया। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) **दक्षिण के मुसलमानी राज्यों से निरंतर युद्ध**—विजयनगर के नरेशों और बहमनी सुलतानों में परम्परागत शत्रुता और प्रतिहिंसा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। इससे विजयनगर को अविश्रांत रूप से मुसलमानों से भीषण युद्ध करना पड़े जिसमें अधिकांश बार उसकी पराजय हुई और इससे धन, जन, मान-प्रतिष्ठा की अत्यधिक क्षति उठानी पड़ी।

(२) **दूषित सैन्य संगठन**—बहमनी राज्य की सेना के अश्वारोही, उनके तीरंदाज और सेनानायक अपनी वीरता, साहस और अनुशासन में विजयनगर की सेना की अपेक्षा अधिक अच्छे थे। विजयनगर राज्य की सेनाएं उतनी विशाल, संगठित तथा युद्ध कुशल नहीं थीं, जितनी उनके प्रतिनिधियों की थीं। विजयनगर के अश्वारोही श्रेष्ठ नहीं थे। विजयनगर की सेना भी पूर्णरूपेण प्रशिक्षित नहीं थी। उसकी सेना के हाथी प्रायः युद्ध में अपने ही सैनिकों को रौंद डालते थे। बहमनी सुलतानों के पास श्रेष्ठ तोपखाना था। तालीकोट के युद्ध में तो इसी तोपखाने से विजयनगर की सेना क्षत-विक्षत, अव्यवस्थित और निरुत्साह हो गयी थी। दोषपूर्ण सैन्य व्यवस्था विजयनगर के पतन का एक प्रमुख कारण है।

(३) **सीमा सुरक्षा की अवहेलना**—विजयनगर और बहमनी राज्य की सीमाएं परस्पर मिली हुई थीं और बहमनी सुलतान इन सीमाओं पर आक्रमण कर राज्य के आन्तरिक प्रदेशों में चले आते थे। विजयनगर के नरेशों ने सीमा सुरक्षा की अवहेलना की।

उन्होंने सुरक्षा के लिये कोई दृढ़ दुर्ग पंक्ति नहीं निर्माण की और न सैनिक छावनियां ही स्थापित कीं जिससे कि शत्रुओं को सीमा पर ही रोका जा सके।

(४) **प्रांतपतियों को अधिक स्वतन्त्रता**—विजयनगर में प्रांतीय शासकों को अत्यधिक स्वतंत्रता और सुविधाएं थीं जिससे केन्द्रीय शक्ति में निर्बलता आ गयी। अवसर पाकर इन प्रांतपतियों ने केन्द्र से अलग होकर अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये जैसे मदुरा और तंजौर के नायक शासकों ने किया।

(५) **स्थायी आर्थिक प्रगति का प्रभाव**—विजयनगर के नरेशों ने राज्य की आर्थिक प्रगति और दीर्घकालीन आर्थिक योजनाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। उन्होंने स्थायी व्यापारिक कार्यशीलता नहीं उत्पन्न की। उन्होंने क्षणिक लाभों के लिये पुर्तगालियों को पश्चिमी तट पर बसने दिया और उन्हें राज्य में व्यापार के लिये अधिक सुविधाएँ प्रदान की गयीं। इससे राज्य का समस्त विदेशी व्यापार उनके हाथों में चला गया। इससे राज्य को आर्थिक स्थायित्व नहीं प्राप्त हो पाया।

(६) **मुसलमानों की जातीय भावना** विजयनगर राज्य दक्षिण भारत में बढ़ते हुए मुस्लिम आक्रमणों के विरुद्ध हिन्दू प्रतिक्रिया का परिणाम था। स्वतंत्रतापूर्वक अपनी आत्म-रक्षा करने के लिये हिन्दुओं की यह क्रियात्मक योजना थी। फलत: बहमनी सुलतानों ने इसका विरोध किया। उन्होंने इस्लामी भावनाओं से प्रेरित होकर विजयनगर पर निरंतर आक्रमण किये। विजयनगर के नरेशों ने भी बहमनी राज्य के पांच घटकों, बिजापुर, गोलकुंडा, बीदर, बरार और अहमदनगर के आंतरिक संघर्ष, नीति और कार्यों में हस्तक्षेप किया। पहले बीजापुर के विरुद्ध संघ बनाया गया और बाद में अहमदनगर के विरुद्ध संघ बनाकर रामराय ने उस पर आक्रमण किया। अहमदनगर सुलतान को परास्त करके हिन्दुओं ने राजधानी अहमदनगर को लूटा, मसजिदों को विध्वंस किया, कुरान का अपमान किया और अनेकों की हत्या कर दी। इससे मुसलमानों की जातीय और धार्मिक भावनाएँ जागृत हो गयीं और बीजापुर के सुलतान के नेतृत्व में उन्होंने संघ बनाकर विजयनगर के उन्मूलन के लिये आक्रमण कर दिया। तालीकोट का युद्ध और विजयनगर का अंत इसका परिणाम था।

(७) **अयोग्य और निर्बल उत्तराधिकारी**—कृष्णदेवराय के बाद अधिकांश विजयनगर नरेश शक्तिहीन, कायर, अयोग्य और प्रतिभाहीन थे। इससे वे विशाल राज्य को संभाल नहीं सके और न बाहरी आक्रमणों का ठीक ढंग से सामना कर सके। सदाशिवराय के हठी और अभिमानी मंत्री रामराय से असन्तुष्ट होकर गुटबंदी प्रारंभ कर दी गयी थी। फलत: प्रशासन शिथिल हो गया, राज्य में अराजकता और अव्यवस्था आ गयी तथा राज्य में कुचक्रों और षड़यंत्रों की वृद्धि हुई जो विजयनगर के लिये घातक हुई।

(८) **राज्य सुरक्षा के लिये जनसाधारण की अवहेलना**—विजयनगर राज्य समृद्धिशाली था। प्रजा संतुष्ट और सुखी थी। इस व्यापक सुख-समृद्धि, सम्पन्नता और ऐश्वर्यशीलता से लोग विलासी हो गये थे। राज्य की सुरक्षा के प्रति वे अधिक चिंतित नहीं थे। इस अवहेलना ने विजयनगर राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त किया।

(९) **तालीकोट का युद्ध और विजयनगर की लूट**—तालीकोट के निर्णायक

युद्ध ने विजयनगर की सेना को परास्त कर दिया। उन्मत्त विजयी मुसलमानों ने विजयनगर राज्य को पांच महिनों तक लूटा और विध्वंस किया और लाखों व्यक्तियों को कत्ल कर दिया। ये घटनाएँ विजयनगर के पतन के लिये पर्याप्त थीं।

विजयनगर राज्य की शासन-व्यवस्था और जन-जीवन

विजयनगर राज्य के प्रशासन, उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन के विषय में १४वीं से १६वीं सदी में आये हुए विदेशी यात्रियों ने लिखा है। उनका वर्णन विश्वसनीय और प्रामाणिक है, क्योंकि उन्होंने विजयनगर का अपनी आंखों देखा वर्णन किया है। इन विदेशी यात्रियों में इटली निवासी निकोलो कौंटी, हिरात निवासी अब्दुर्रजाक, और पुर्तगाल निवासी पेइज प्रमुख हैं। उन्होंने विजयनगर राज्य की तात्कालिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनके तथा अन्य स्रोतों के आधार पर विजयनगर राज्य का वर्णन निम्नलिखित है—

शासन का स्वरूप—विजयनगर राज्य के प्रशासन का स्वरूप निरंकुश, असीमित राजतंत्र था। राजा के अधिकार अनियंत्रित और असीमित थे। विजयनगर राज्य के निर्माण का कारण धार्मिक था। इसलिये धर्म राज्य का प्रमुख आधार था।

केन्द्रीय प्रशासन—राज्य की सर्वोच्च सत्ता राज्य में निहित थी। राजा निरंकुश और स्वेच्छाचारी था। वह स्वयं राज्य के प्रशासन का संचालन करता था। उसे सहायता और सहयोग देने के लिये उच्च कुलोत्पन्न व्यक्तियों की एक मंत्रि-परिषद् होती थी जिसमें छै से लेकर आठ तक मंत्री होते थे। इसमे प्रधान मंत्री, कोषाध्यक्ष, पुलिस या सुरक्षा विभाग का प्रधान, राजकीय रत्न भंडार का रक्षक आदि होते थे। इन मंत्रियों की नियुक्ति या उन्हें पदच्युत करने का अधिकार राजा को था। आंतरिक प्रशासन से यह मंत्रि-परिषद् राजा को परामर्श और सहयोग देती थी। परन्तु राजकार्य में सहयोग देने के लिये एक अन्य बड़ी समिति भी थी जिसमें मंत्रिगण, प्रांतपति, सेनानायक, पुरोहित, विद्वान, कवि, कुशल और योग्य ब्राह्मण होते थे। इस समिति का निर्णय मानने के लिये राजा बाध्य नहीं था। यद्यपि राजा निरंकुश और स्वेच्छाचारी होते थे, परन्तु वे अधिकतर योग्य और चतुर राजनीतिज्ञ होते थे तथा प्रजा के हित व कल्याण का सदा ध्यान रखते थे। वे प्रजापालक होते थे।

राजसभा—विजयनगर की राजसभा में राजा अपने ऐश्वर्य और वैभव का प्रदर्शन करते थे। उसमें सामन्त, विद्वान, पुरोहित, ज्योतिषी, कवि, संगीतज्ञ, आदि होते थे। राजसभा के निर्माण पर अत्यधिक व्यय किया गया था। राजसभा में नववर्ष-दीपावाली, होली और महालक्ष्मी त्यौहार बड़े ही शानशौकत व धूम-धाम से मनाये जाते थे। महानवमी त्यौहार सर्वप्रमुख माना जाता था। राजसभा विदेशियों और दर्शकों के लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र थी।

राजस्व—विजयनगर राज्य की आय प्रचुर थी। भूमिकर तथा अन्य करों से राज्य की आय होती थी। भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। राज्य की समस्त भूमि पर राजा का अधिकार माना जाता था। राजा ने यह भूमि अपने सामन्तों में विभाजित करदी थी और सामन्तों ने इस भूमि को कृषकों में वितरित करदी थी। सामन्त कृषकों से उपज का $\frac{६}{१०}$ भाग भूमि कर के रूप में वसूल करते थे और इसमें

से आधा भाग वे स्वयं रखकर शेष आधा भाग राजकोष में जमा करते थे। भूमि को चार वर्गों में विभाजित किया गया था, उपजाऊ भूमि, बंजर भूमि, उद्यानों की भूमि और वन भूमि। उपजाऊ भूमि और उद्यानों की भूमि पर ही भूमि कर होता था। अन्य राज्यों की अपेक्षा विजयनगर-राज्य में भूमि-कर अत्यधिक था, क्योंकि विजय नगर के राजाओं को बहमनी सुलतानों से निरंतर युद्ध करने के लिये तथा राज्य की सुरक्षा के लिये एक विशाल सेना रखनी पड़ती थी।

भूमि-कर के अतिरिक्त और भी अन्य कर थे जिनसे राज्य की आमदनी होती थी। इन करों में पशु-कर, चरागाह-कर, विवाह-कर, उद्यान-कर, शिल्प-कला की वस्तुओं पर उत्पादन-कर, खाद्यान्न-कर आदि प्रमुख थे। वैश्याओं पर भी कर था और इनकी संख्या तीन सहस्र थी। कर से शायद ही कोई मुक्त रहा हो। विविध प्रकार के करों का विषम भार जनता पर रहा होगा और इन करों की वसूली के नियम भी कठोर थे। परन्तु फिर भी जनता सुखी, संतुष्ट और समृद्धिशाली थी। विजयनगर साम्राज्य की राजधानी, राजसभा, राजप्रासाद, भवन, देव मंदिर, राज-मार्ग, उद्यान आदि राज्य की समृद्धि, वैभव, सम्पन्नता तथा ऐश्वर्यशीलता के द्योतक हैं।

न्याय व्यवस्था—राजा राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश था और अधीनस्थ न्यायाधीशों की नियुक्तियां भी वह स्वयं करता था। प्रांतों में प्रांतपतियों और ग्रामों में स्थानीय पंचायतों द्वारा न्याय होता था। न्याय के लिये अंतिम अपील राजसभा में राजा के पास होती थी। न्याय करने में विलंब नहीं होने दिया जाता था। हिन्दू न्याय-विधान प्रचलित था। हिन्दू-धर्म-शास्त्रों, रीति-रिवाजों और परम्पराओं के अनु-सार न्याय होता था। दंड विधान कठोर था। चोरी, व्यभिचार, विश्वासघात का दंड, अंग-भंग अथवा प्राण दंड था। छोटे-छोटे अपराधों पर भी कठोर दंड दिये जाते थे, पर ब्राह्मणों को प्राणदंड नहीं दिया जाता था। फौजदारी के कानून अत्यंत कठोर थे।

सैन्य व्यवस्था—विजयनगर साम्राज्य का आधार सेना थी। अपने पड़ौसी राज्यों और बहमनी सुलतानों से निरंतर संघर्ष और युद्ध करने के कारण, तथा बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा करने के लिये राजाओं के लिये विशाल सेना रखना अनिवार्य हो गया था। परन्तु उन्होंने सेना के संगठन, एकता, दृढ़ता, प्रशिक्षण और अनुशासन की अपेक्षा सेना की विशालता पर अधिक ध्यान दिया। उनकी सेना उत्तर की मुस्लिम सेनाओं से शक्ति, धैर्य, सैन्यशिक्षा एवं सहनशीलता में पीछे थी। विजयनगर के महान सम्राट कृष्णदेवराय की सेना में ३२,६०० अश्वारोही; ७,०३,६६० पदाति और ६५१ हाथी थे। सेना के पास एक तोपखाना भी था जो साधारण और अविकसित था। सेना का स्वरूप सामन्तशाही था। राजा की व्यक्तिगत सेना के अतिरिक्त, प्रांतीय शासकों और सामन्तों की भी निर्धारित सेनाएं होती थीं। युद्ध के समय ये पृथक-पृथक सेनाएँ राजा के पास भेजी जाती थीं। सेना में इस प्रकार विविधता और विभिन्नता होने से सेना में एकता, दृढ़ता, और संगठन का अभाव था। सेना का प्रबंध महासेना-पति के अधीन रहता था। युद्ध के समय राजा स्वयं सैन्य संचालन करता था।

प्रांतीय प्रशासन—सम्यक प्रशासन के हेतु विजयनगर का विशाल साम्राज्य दो सौ प्रांतों में विभाजित था। कुछ इतिहासकार इस मत को नहीं मानते हैं। उनके

अनुसार सारा साम्राज्य छः विशाल प्रांतों में विभाजित था। संभव है ये दो सौ प्रांत जिले हों। प्रत्येक प्रांत नाडू या कोट्टम में विभक्त था और नाडू नगरों और ग्रामों के छोटे-छोटे घटकों में विभाजित था। ग्राम राज्य की सब से छोटी इकाई या घटक थी जिसमें स्वशासन की पंचायत प्रणाली थी। प्रत्येक प्रांत प्रांतपति या शासक के अधीन होता था और उसकी नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। ये प्रांतपति राजकुमार या शक्तिशाली सामन्त होते थे। ये अपने प्रांत में निरंकुश शासक के समान प्रशासन करते थे; अपनी स्वयं की सेना रखते थे, अपनी स्वयं की राजसभा करते थे पर युद्ध-काल में उन्हें राजा के पास निर्धारित सेना भेजना पड़ती थी और स्वयं को सैनिक सेवा के लिये उपस्थित होना पड़ता था। उन्हें सैनिक और न्याय सम्बंधी अधिकार होते थे। उनके अधीन अनेक कर्मचारी और पदाधिकारी होते थे। प्रांतों में ये भूमिकर व अन्य कर वसूल करते थे और उस धनराशि में से एक तिहाई केन्द्रीय राजकोष में जमा करते थे और शेष दो तिहाई से प्रांत का प्रशासन चलाते थे। ये प्रांतीय प्रशासन के लिये राजा के प्रति उत्तरदायी थे। प्रति वर्ष नवरात्रि में महानवमी के उत्सव व समारोह पर विभिन्न प्रांतपति राजसभा में एकत्रित होते थे, राजा को वे अपना कर भेंट करते थे और राजा उन्हें उपहार आदि वितरित करता था।

स्थानीय शासन—प्रशासन में ग्राम सबसे लघुतम इकाई थी। ग्रामों को स्वायत्त शासन के अधिकार थे। ग्राम में पंचायत प्रशासन करती थी। ग्राम पंचायत के परंप-रागत प्रधान को आयंगर कहा जाता था। यह ग्राम का प्रमुख अधिकारी था और इसे वेतन के लिये कुछ भूमि या उपज का कुछ अंश दिया जाता था। उसके अधीन कर्म-चारी होते थे। इन कर्मचारियों के कार्यों के निरीक्षण के लिये केन्द्रीय सरकार की ओर से निरीक्षक नियुक्त थे। आयंगर को न्याय करने और दंड देने के कुछ सीमित अधिकार थे। वह राजकर वसूल करता था और अपने क्षेत्र में शांति-व्यवस्था बनाये रखता था। ग्राम पंचायत ग्रामीण जनता के लिये कल्याण के कार्य करती थी।

सामाजिक जीवन—विदेशी यात्रियों के विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विजयनगर साम्राज्य में सामाजिक जीवन अत्यंत समृद्ध, सुखी और शांतिमय था और समाज-व्यवस्था सुसंगठित थी। समाज में ब्राह्मण वर्ग सर्वश्रेष्ठ माना जाता था उसे अधिक सम्मान और श्रद्धा से देखा जाता था। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र के अतिरिक्त राजनैतिक क्षेत्र में भी उनका विशिष्ट महत्व था। नुनीज ने लिखा है कि ब्राह्मण बड़े सत्यनिष्ठ, गुणी और सुन्दर होते थे। गणित में वे बहुत कुशल होते थे। वे प्रशासन में अधिक भाग लेते थे और विभिन्न पदों पर नियुक्त किये जाते थे। ब्राह्मणों का वध करना निषिद्ध था और ब्राह्मण स्वयं प्राण-दंड से मुक्त थे। समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। स्त्रियाँ पहलवान होती थीं, वे मल्लयुद्ध में, ज्योतिष और भविष्यवाणी करने में प्रवीण होती थीं। नुनिज के अनुसार स्त्रियां आय-व्यय का लेखा-जोखा रखती थीं वे राजा के पास लिपिक का कार्य करने तथा अंग-रक्षक के कार्य करने में कुशल होती थीं। वे प्रायः स्त्रियाँ सुशिक्षित होती थीं। वे संगीत और स्त्रियोचित अन्य कलाओं में निपुण होती थीं। स्त्रियों की अनेक कुप्रथाएँ प्रच-लित थीं। सती प्रथा, बाल विवाह, तथा बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। धनी लोगों

में दहेज प्रथा अधिक प्रचलित थी वैश्यावृत्ति थी और वैश्यागमन एक सामान्य प्रथा-सी हो गयी थी। वैश्याएँ भी सार्वजनिक उत्सवों और समारोहों में भाग लेती थीं।

भोजन और आहार में शिथिलता थी। शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजन प्रचलित थे। राजा स्वयं गाय और बैल के मांस को छोड़कर सभी प्रकार के मांस खाते थे। नुनिज के अनुसार बाजार में भेड़, सुअर, मृग, खरगोश, तीतर, बटेर आदि का मांस बिकता था; चिड़ियाँ चूहे, बिल्लियाँ आदि भी मांसाहारी भोजन के लिये बिकती थीं। केवल ब्राह्मणों को छोड़कर शेष अन्य जातियों और वर्गों मे खानपान और आहार-विहार का कठोर नियंत्रण नहीं था।

धार्मिक जीवन—विजयनगर के राजाओं की उदारता, सहिष्णुता, सहायता एवं संरक्षण की नीति से वैष्णव धर्म का पुनर्जागरण हुआ। ये राजा हिन्दू धर्म के विशेषकर शैव मत के अनुयायी थे। परन्तु वे अन्य धर्मावलंबियों के साथ उदार और सहिष्णु थे। धर्मांधता और धार्मिक अत्याचार राज्य में नहीं थे। समाज में वैष्णव, शैव, जैन, और इस्लाम धर्म के अनुयायी थे। सभी धर्मों के अनुयायी स्वतंत्रतापूर्वक रहते थे। विजयनगर के राजाओं ने धार्मिक भेदभाव की नीति नहीं अपनायी। यदि उन्होंने हिन्दुओं के लिये देव मंदिरों का निर्माण किया तो मुसलमानों के लिये मसजिदें भी बनवायीं। परन्तु मुसलमानी राज्यों में युद्धों के समय वे मुसलमानों के साथ कठोरता का व्यवहार करते थे। साम्राज्य में पूजन-अर्चन, भजन आदि की सभी विधियां मान्य थीं। रक्तिम बलि की प्रथा थी। नवरात्रि में महानवमी तथा अन्य उत्सवों पर सैकड़ों पशुओं की बलि दी जाती थी। इसमें भैंसों तथा भेड़ों की प्रधानता थी।

आर्थिक दशा—विदेशी यात्रियों के विवरणों से विदित होता है कि विश्व के सर्वाधिक धनसंपन्न राज्यों में विजयनगर साम्राज्य की गणना होती थी। पुर्तगाली यात्री पेइज ने लिखा है कि "विजयनगर में तुम्हें प्रत्येक राष्ट्र और जाति के लोग मिलेंगे, क्योंकि यहां व्यापार अधिक होता है और हीरे आदि बहुमूल्य रत्न प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। संसार में यह सबसे अधिक सम्पन्न नगर है।" ईरानी पर्यटक अब्दुर्रज्जाक ने लिखा है कि राजकोष में सोने की अनेकानेक ठोस शिलाएँ हैं। छोटे से बड़े सभी लोग, यहां तक कि बाजार के शिल्पी भी कानों, कंठों, बाहुओं, कलाइयों और अंगुलियों में जवाहरात और स्वर्ण आभूषण पहिनते हैं। ये सब विजयनगर राज्य की धनसम्पन्नता, स्वस्थ आर्थिक दशा, वैभव तथा ऐश्वर्य के परिचायक हैं।

विजयनगर राज्य में विभिन्न उद्योग-व्यवसाय प्रचलित थे। कृषि और पशुपालन प्रमुख और समृद्ध व्यवसाय था। वस्त्र उद्योग और धातु उद्योग भी महत्वपूर्ण और प्रगतिशील था। विनिमय के लिये सोने-चांदी के विविध सिक्के प्रचलित थे। साम्राज्य के तीन ओर समुद्रतट होने और बन्दरगाहों का बाहुल्य होने से विदेशी सामुद्रिक व्यापार उन्नत दशा में था। पुर्तगाल, अफ्रिका, ईरान, अरब, ब्रह्मा, लंका, मलाया, चीन आदि देशों से विशाल पैमाने पर व्यापक सामुद्रिक व्यापार होता था। इससे देश में धन, स्वर्ण, हीरे-जवाहरात अविरल गति से आते थे। इससे राज्य की आर्थिक दशा अच्छी हो गयी थी। लोगों में किसी बात का अभाव नहीं था। उनका जीवन सुखी, शांत, संतुष्ट और समृद्ध था।

साहित्य—विजयनगर के अधिकांश नरेश साहित्य प्रेमी थे। वे विद्यानुरागी और साहित्य के विशेष संरक्षक थे। वे संस्कृत और तेलगू साहित्य के विशेष रूप से पोषक थे। अनेक महान विद्वान और कवि उनके राज्य में निवास करते थे। इन राजाओं ने संस्कृत, तेलगू तथा कन्नड़ भाषाओं और उनके साहित्य को खूब प्रोत्साहन दिया। संस्कृत में माधवाचार्य या विद्यारण्य और सायणाचार्य नामक प्रसिद्ध विद्वान इन्हीं राजाओं के संरक्षण में थे। माधवाचार्य दर्शन का प्रकांड विद्वान था और सायणाचार्य ने वेदों और उनकी संहिताओं व उपनिषदों पर विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखे हैं। विजयनगर का सम्राट कृष्णदेवराय स्वयं उच्चकोटि का विद्वान और प्रतिभासंपन्न कवि था। उसे आंध्र का भोज कहा गया है। तैलगू साहित्य में उसका वही स्थान है जो कि संस्कृत साहित्य में भोज का है। कृष्णदेवराय के शासन-काल में बहुसंख्यक कवि, साहित्यकार, दार्शनिक, संत और धर्मोपदेश हुए। कृष्णदेवराय विद्वानों को अनुदान, जागीर आदि देकर प्रोत्साहित करता था। तेलगू साहित्य का महान कवि अलसनी कृष्णदेवराय के शासनकाल का राष्ट्रकवि था। उसकी राजसभा में अष्ट-दिग्गज या आठ धुरंधर विद्वान रहते थे।

ललित कलाएं—विजयनगर के नरेश ललित कलाओं के भी पोषक थे। वे महान निर्माता थे और स्थापत्य कला को उन्होंने खूब प्रोत्साहित किया। उन्होंने सार्वजनिक कल्याण कार्यों के लिये विशाल तालाबों, झीलों, बांधों, जल संग्रहालयों नहरों, पुलों, वैभवशाली राजप्रासादों, भव्य मन्दिरों और सार्वजनिक भवनों का निर्माण किया। इनके लिये उन्होंने अत्यधिक धनराशि व्यय की। उन्होंने अपनी राजधानी विजयनगर को गगनचुंबी अट्टालिकाओं, ऐश्वर्यशाली राजप्रासादों, कलापूर्ण मन्दिरों, प्रशस्त राजमार्गों, विशाल सुन्दर राजसभा भवन, आदि से अलंकृत कर उसे आकर्षक नगर बना दिया था। इससे विदेशी यात्रियों के लिये विजयनगर दर्शनीय स्थान बन गया। इस युग की मन्दिरों की कला अपने वैभव और विचित्रता के लिये विशिष्ट रूप से प्रसिद्ध थी। कृष्णदेवराय के शासनकाल मे निर्मित सहस्र स्तंभों वाला मन्दिर, स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार विट्ठल स्वामी का मन्दिर भी प्रख्यात रहा है। पर दुर्भाग्यवश राज्य के स्थापत्य कला के ये सुंदर अलौकिक नमूने मुसलमानों ने अपनी प्रतिहिंसा और नृशंसता की अग्नि में पूर्णरूपेण विध्वंस कर दिये। फिर भी विजयनगर राज्य की विशिष्ट परिष्कृत और विकसित स्थापत्य कला शैली से बने अद्वितीय भवन मदुरा प्रांत में आज भी विद्यमान हैं। विजयनगर के नरेशों ने स्थापत्य कला के अतिरिक्त नाट्य-कला, अभिनय कला, चित्र-कला, संगीत-कला आदि को भी उदारता से प्रोत्साहित किया। उनके राज्याश्रय में अनेक चित्रकार और संगीतज्ञ भी थे।

विजयनगर का महत्व—विजयनगर राज्य का विशिष्ट महत्व यह है कि इसने मध्ययुग में लगभग तीन सौ वर्षों तक दक्षिण में हिन्दू धर्म, संस्कृति, और कला की रक्षा कर उसे पोषित किया। मध्य काल का यह एक श्रेष्ठ भारतीय राज्य था जिसकी गणना विश्व के महानतम राज्यों में होती है। यदि यह बहमनी राज्य के उन्मूलन में उलझने की अपेक्षा उससे मैत्री-संधि कर अपना ही विकास करता तो इसके ऐश्वर्य,

समृद्धि, सम्पन्नता और विशालता पर विश्व के अन्य राज्य ईर्ष्या और आश्चर्य करते ।

विदेशी यात्री निकोलो कोन्टी– यह यात्री इटली का निवासी था जो सन् १४२१ में विजयनगर आया था। इस समय देवराय द्वितीय विजयनगर का राजा था, इस यात्री ने विजयनगर में भ्रमण कर स्वयं वहां की परिस्थिति देखकर उसका वर्णन किया है। वह लिखता है कि—

"विजयनगर का अति विशाल नगर ढालू पहाड़ियों के बीच स्थित है। नगर की परिधि लगभग ६ किलोमीटर है। इस नगर में ९० सहस्र मनुष्य ऐसे हैं जो शस्त्र चला सकते हैं। इस देश के निवासी स्वेच्छानुसार कई विवाह कर सकते हैं। स्त्रियां उनके मृत पति के साथ जला दी जाती हैं। यहाँ का राजा भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा है।"

इस यात्री ने उस समय की सामाजिक दशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि "यहाँ के राजा के अन्त:पुर में बारह सहस्र स्त्रियां रहती हैं।' इनमें से चार सहस्र स्त्रियां पाकशाला का कार्य करती हैं और राजा के साथ आती-जाती हैं। चार सहस्र स्त्रियां उसकी अंगरक्षिका हैं और जहां राजा जाता है, उसके पीछे-पीछे अश्व पर सवार होकर चलती थीं। दो-तीन सहस्र स्त्रियां पालकियों में चलती थीं जिन्हें राजा की मृत्यु के बाद सती होना पड़ता था, क्योंकि वे राजा की पत्नियाँ चुनी जाती थीं।"

इस यात्री ने धार्मिक उत्सवों व त्योहारों का वर्णन करते हुए लिखा है कि, "वर्ष में एक बार यहां के निवासी अपने देवताओं को रथ में रखकर नगर में अत्यंत समारोह के साथ घुमाते हैं। इस रथ यात्रा में बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित युवतियाँ देवता को प्रसन्न करने के लिये स्तुति-गायन करती हैं। अनेक लोग धार्मिक उत्साह के उमंग में आकर रथ चक्रों के नीचे गिरकर दबकर अपने प्राण दे देते हैं। इसे वे देवता को प्रसन्न करने की विधि मानते हैं।"

"विशेष महत्वपूर्ण उत्सव वर्ष में तीन बार मनाये जाते हैं। इनमें एक अवसर पर वे सुसज्जित वस्त्राभरणों में तीन दिन नृत्य, गीत और सहभोज में व्यतीत करते हैं। अन्य अवसर पर वे मन्दिरों और अपने निवासगृहों की छतों पर सरसों के तेल के दीपक जलाते हैं। तीसरे उत्सव पर वे परस्पर एक दूसरे पर केसर का रंग फेंकते हैं।"

निकोलो कोन्टी ने गोलकुंडा की हीरों की खानों तत्कालीन मुद्राओं और युद्ध में प्रयुक्त होने वाले युद्ध-शस्त्रों का भी वर्णन किया है। उसके अनुसार समाज में पुरुषों में बहुविवाह की प्रथा थी। दास-प्रथा का भी प्रचलन था। उस समय जो लोग ऋण नहीं चुका पाते थे, वे दास बना लिये जाते थे।

अब्दुर्रज्जाक—निकोलो कोंटी (Nicoloconti) के २२ वर्ष बाद सन् १४४३ में अब्दुर्रज्जाक नामक यात्री फारस से आया था। उसने भी विजयनगर राज्य का भ्रमण कर उसका विस्तृत और रुचिकर वर्णन किया है। उसने लिखा है कि, "राजा सुसज्जित होकर चालीस स्तंभों वाले सभा भवन में साटन (रेशम) के वस्त्र पहिनकर बैठता है। उसके कंठ में सच्चे मोतियों की एक माला है जिसका मूल्यांकन करना कठिन है।" इस यात्री ने राजा की देह, उस के वस्त्रभरण, धन-संपत्ति, ऐश्वर्य, राज-

सभा का वर्णन, स्वागत, अभिनन्दन, भोजन की व्यवस्था आदि का रोचक वर्णन किया है। विजयनगर राज्य को स्वयं देखने पर उसने लिखा है कि, "देश का अधिकांश भाग कृषि के योग्य और उपजाऊ है। इस राज्य में लगभग तीन सौ अच्छे बंदरगाह हैं। एक सहस्त्र दैत्याकार हाथी तथा ग्यारह लाख पदाति सेना है। भारत में वह सर्वाधिक सर्वाधिकार संपन्न राज्य है।"

विजयनगर के विषय में वह लिखता है कि, "विजयनगर इस प्रकार का है कि विश्व में ऐसा नगर न कभी देखा गया है और न सुना गया है। उसके चतुर्दिक सात प्राचीर हैं। बाहरी दीवार से लगभग ४३ मीटर आगे तक आदमी की ऊंचाई तक पत्थर गड़े हैं, जिससे कोई भी पैदल चलने वाला व्यक्ति या अश्वारोही बाहरी प्राचीर तक नहीं पहुँच सकता। राजप्रासाद के निकट चार बाजार आमने-सामने स्थित हैं। नगर में हर व्यवसाय वालों का बाजार है। प्रत्येक विभिन्न व्यापारी मंडल, और शिल्पियों की दूकानें परस्पर समीप हैं। जौहरी लोग स्वतंत्रतापूर्वक अपने हीरे, मोती, माणिक, आदि रत्न बाजार में खुले रूप से बेचते हैं। राजप्रासाद और उसके समीप के बाजारों के निकट पानी की छोटी-छोटी नहरें बनी हुई हैं। इस नगर में ताजे तोड़े हुए फूल किसी भी समय प्राप्त हो सकते हैं, ऐसा भास होता है कि यहां फूल जीवन की आवश्यक सामग्री है। इस देश में तीन प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ, एक रजत मुद्रा और एक तांबे की मुद्रा का प्रचलन है।"

सारांश

चौदहवीं सदी के मध्य से दिल्ली सल्तनत का पतन प्रारम्भ हो गया। मुहम्मद तुगलक, फिरोज तुगलक की दोषपूर्ण नीतियों, तैमूर के आक्रमण, केन्द्रीय सत्ता की क्षीणता से, निकम्मे और दुर्बल उत्तराधिकारियों के कारण प्रांतीय सूबेदारों ने स्वतंत्र होकर नवीन राज्य स्थापित कर लिये। ये निम्नलिखित थे—

उत्तरी भारत के स्वतंत्र राज्य

बंगाल—सर्वप्रथम मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने वहां के राजा लक्ष्मण सेन को परास्त कर स्वतंत्र मुस्लिम राज्य स्थापित कर लिया था। इल्तुतमिश ने जीतकर उसे दिल्ली में मिला लिया और बलबन ने वहां के विद्रोही शासक तुगरिल बेग और उसके साथियों का वध करके बंगाल को पुनः दिल्ली के अधीन कर लिया और अपने पुत्र बुगराखाँ को वहां का शासक बना दिया। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में बंगाल पुनः स्वतंत्र हो गया। बंगाल के शासकों में इलियासशाह, सिकन्दरशाह, गयासुद्दीन आजम, सैफुद्दीन हम्जाशाह, जलालुद्दीन मुहम्मदशाह, इस्लामशाह, हुसैनशाह, नसरतशाह आदि प्रसिद्ध शासक हुए। इनमें हुसैनशाह बंगाल का सर्वश्रेष्ठ शासक माना गया है। उसने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया, मसजिदों व भवनों का निर्माण किया और हिन्दुओं के साथ उदार सहिष्णुता की नीति अपनायी। बंगाल की कला और साहित्य की उन्नति में इन मुस्लिम शासकों ने बड़ा योगदान दिया।

जौनपुर—फ़िरोज तुगलक ने अपने भाई जूनाखां के नाम पर जौनपुर बसाया था। सुलतान महमूद नासिरुद्दीन तुगलक द्वारा नियुक्त शासक ख्वाजाजहां ने यहां के स्व-

तंत्र शासक होने की घोषणा कर दी और जौनपुर राज्य का विस्तार किया। मुबारकशाह इब्राहीमशाह शर्की, महमूदशाह, हुसैनशाह शर्की आदि जौनपुर के प्रसिद्ध सुलतान हुए जिन्होंने अस्सी वर्षों तक राज्य किया। इन शर्की सुलतानों के समय जौनपुर मुस्लिम शिक्षा और संस्कृति का केन्द्र बन गया। इन सुलतानों ने अनेक भवनों व मस्जिदों का निर्माण किया जिसमें जौनपुर की अटाला मस्जिद प्रसिद्ध है।

काश्मीर—बारहवीं सदी से चौदहवीं सदी तक अपनी भौगोलिक दशाओं के कारण काश्मीर हिन्दू नरेशों के शासन में स्वतंत्र बना रहा। सन् १३४६ में फारसी सामन्त शाह मिर्जा ने काश्मीर पर अधिकार कर लिया। उसके बाद उत्तराधिकारियों ने यहां इस्लामी राज्य बनाये रखा और इस्लाम का खूब प्रचार किया। इन मुस्लिम शासकों में जेनुलअब्दीन प्रसिद्ध था। बाद में शासन में अराजकता होने से अकबर ने काश्मीर को जीत लिया और मुगल साम्राज्य में मिला लिया था।

मालवा—सर्वप्रथम सुलतान इल्तुतमिश ने मालवा पर आक्रमण किया था। बाद में अलाउद्दीन ने इसे जीत कर अपने अधीन कर लिया था। फिरोज तुगलक ने दिलावरखां गोरी को यहाँ का शासक बनाया। यह मालवा का स्वतंत्र सुलतान हो गया। इसके उत्तराधिकारियों में होशंगशाह प्रसिद्ध था। बाद में महमूद खिलजी, गयासुद्दीन, नासिरुद्दीन, महमूद खिलजी द्वितीय, शुजातखाँ और बाजबहादुर यहां के प्रसिद्ध शासक हुए। इन्होंने मेवाड़ के राणा और गुजरात के शासकों से कई युद्ध किये और मालवा को शक्तिशाली राज्य बनाया। मालवा के सुलतानों ने राजधानी माँडू और अन्य स्थानों में भव्य प्रासाद, मस्जिदें, भवन, जलाशय आदि निर्माण किये।

खानदेश—फिरोज तुगलक द्वारा नियुक्त खानदेश के शासक मलिक अहमद फरूखी ने स्वतंत्र होकर खानदेश में मुस्लिम राज्य स्थापित किया। यहां बसीरखां और आदिलशाह प्रसिद्ध सुलतान हुए। इनके उत्तराधिकारी निर्बल होने से अकबर ने खानदेश जीत लिया था।

गुजरात—गुजरात उपजाऊ, समृद्ध और धनसम्पन्न देश होने से, महमूद गजनवी ने यहां के सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण कर लूटा था। इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात को जीत कर दिल्ली राज्य में मिला लिया। तैमूर के आक्रमण के बाद वहां के शासक जफरखाँ ने गुजरात का स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। यहां प्रमुख सुलतानों मे अहमदशाह, महमूदशाह बीगड़, बहादुरशाह आदि थे। अहमदशाह ने अहमदाबाद नगर बसाया और युद्धों से गुजरात राज्य का विस्तार किया। महमूदशाह बीगड़ ने भी सूरत, कच्छ, चांपानेर आदि जीतकर गुजरात के राज्य की सीमाओं और गौरव व ऐश्वर्य की वृद्धि की। बहादुरशाह के बाद अराजकता होने से अकबर ने गुजरात को जीतकर मुगल राज्य में मिला लिया था।

सिंध—यद्यपि सिंध को महमूद गजनवी ने जीत लिया था, पर सुमेर राजपूतों ने इसे हराकर अपना स्वतंत्र राज्य बना लिया था जो ३०० वर्षों तक रहा। नासिरुद्दीन कुबाचा ने सुमेरों को हराकर सिंध में अपना राज्य जमा लिया था। मुहम्मद तुगलक और फिरोजतुगलक ने सिंध विजय की थी। बाद में तरखान शासकों ने यहां स्वतंत्र रूप से राज्य किया। ये चंगेज के वंशज थे। अकबरने तरखान शासक से सिंध जीत लिया था।

मेवाड़—यहां सिसौदिया राजपूत वंश का राज्य था। सुलतान अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण करके उसे जीत लिया था। पर राणा हम्मीर ने पुनः वहां राजपूत सत्ता स्थापित कर ली। पंद्रहवीं सदी में यहां का राणा कुम्भा प्रसिद्ध था। वह कवि, विद्वान, संगीतज्ञ और वीर योद्धा था। उसके उत्तराधिकारियों में राणा संग्रामसिंह और राणा प्रताप अधिक प्रसिद्ध हैं। संग्रामसिंह ने मालवा के सुलतान को परास्त किया था और वह दिल्ली पर हिन्दू सत्ता स्थापित करना चाहता था। पर बाबर ने उसे परास्त कर दिया। उसके पौत्र राणाप्रताप ने अपने स्वतन्त्र राज्य के लिये अकबर से दीर्घकालीन युद्ध किया पर उसके पुत्रअमरसिंह ने जहाँगीरसे मित्रता की संधि करली थी।

दक्षिण भारत के स्वतंत्र नवीन राज्य

दक्षिण भारत में भी उत्तर की भांति दिल्ली सुलतानों की शक्ति और प्रभुत्व कम होने पर उनके प्रांतीय सूबेदारों ने विद्रोह करके अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य बना लिये। इनमें बहमनी और विजयनगर राज्य प्रमुख हैं।

बहमनी राज्य—मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में देवगिरी में उसके विरुद्ध विद्रोह हुआ जिसका नेतृत्व हसन गंगू और इस्माइल मख ने किया। बाद में सन् १३४७ में हसन गंगू ने स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य की स्थापना की और गुलबर्गा को उसकी राजधानी बनाया और स्वयं हसन अब्दुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनी के नाम से सुलतान बन गया। उसने विजयों से उत्तर में बेनगंगा से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक अपने बहमनी राज्य का विस्तार कर लिया। उसके बाद मुहम्मदशाह प्रथम, (सन् १३५८-७३), मुजाहिदशाह तथा दाउदखां, मुहम्मदशाह द्वितीय, फिरोजशाह (सन् १३९७-१४२२), अहमदशाह (सन् १४२२-३५), अलाउद्दीन द्वितीय, हुमायूं निजामशाह, मुहम्मदशाह तृतीय, महमूदशाह आदि प्रसिद्ध सुलतान हुए। इन सुलतानों ने वारंगल के हिन्दू राजाओं और विजयनगर के हिन्दू नरेशों से निरंतर युद्ध किये और अपनी सीमाओं का विस्तार किया। मुहम्मदशाह प्रथम, फिरोजशाह और अलाउद्दीन द्वितीय के शासनकाल में मुसलमान सेनाओं ने विजयनगर पर आक्रमण कर उसके राजाओं को परास्त कर दिया। बहमनी राज्य और विजयनगर में परस्पर युद्ध परंपरागत हो गये थे। इन युद्धों में मुस्लिम सेनाएँ विजयनगर राज्य को खूब रौंदती और लूटती थीं और वहां के लाखों निर्दोष हिंदुओं को मौत के घाट उतार देती थीं। बहमनी राज्य के अंतिम शासक पतित और निर्बल होने से प्रांतीय शासक स्वतंत्र हो गये और धीरे-धीरे बहमनी राज्य पाँच भागों में विभक्त हो गया—(१) बरार का इमादशाही राज्य, (२) अहमदनगर का निजामशाही राज्य, (३) बीजापुर का आदिलशाही राज्य (४)गोलकुंडा का कुतुबशाही राज्य और बीदर का बरीदशाही राज्य। इनमें बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्य अधिक शक्तिशाली और समृद्ध थे। मुगल सम्राट औरंगजेब ने इन राज्यों को परास्त करके मुगल राज्य में उन्हें मिला लिया।

महमूद गवाँ—बहमनी राज्य में महमूद गवाँ नाम का प्रसिद्ध मंत्री था। वह फारस का एक व्यापारी था जो बहमनी सुलतान की सेनाओं में रहकर प्रगति करते-करते प्रधान मंत्री बन गया था। उसने कोंकण, गोआ, कांची, उड़ीसा आदि राज्यों

को जीतकर बहमनी राज्य की सीमा का विस्तार किया था। प्रशासन को दृढ़ और व्यवस्थित करने के लिये तथा केन्द्रीय शक्ति को मजबूत करने के लिये उसने प्रांतपतियों के अधिकार सीमित कर दिये, प्रांतों में सीधे सुलतान द्वारा नियुक्त अधिकारी रखे, सैनिकों के नगद वेतन, प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था कर सेना को सुलतान के नियंत्रण में रखा और अमीरों के विद्रोहों को दमन कर उसने राज्य में शांति स्थापित की। उसने न्याय व्यवस्था और भूमि-कर सम्बन्धी सुधार किये। वह विद्या का अनुरागी होने से उसने बीदर में महाविद्यालय और पुस्तकालय बनवाये और स्वयं दो काव्यग्रंथ लिखे। वह विद्वानों से सत्संग करता था। बहमनी सुलतान की राजसभा के अमीरों को महमूद गवाँ की बढ़ती हुई शक्ति, प्रभाव और लोकप्रियता सहन नहीं हुई और उन्होंने एक षड़यंत्र करके सुलतान से, गवाँ को देशद्रोही बताकर वध करवा दिया। महमूद गवां के वध से बहमनी राज्य और सुलतान की अत्यधिक क्षति हुई और बहमनी राज्य की व्यवस्था, संगठन, एकता, दृढ़ता, और शक्ति शिथिल हो गये और राज्य की जड़ें हिल गयीं। महमूद गवां उच्च कोटि का प्रतिभासम्पन्न, सादगीप्रिय, पवित्र जीवन वाला, मितव्ययी, सदाचारी संयमी व्यक्ति व विद्यानुरागी, अच्छा राजनीतिज्ञ, सफल शासक और निष्ठावान मंत्री था।

बहमनी राज्य के पतन के कारण—लगभग दो सौ वर्षों तक बहमनी राज्य रहा और उसके बाद उसका पतन हो गया। राज्य में अमीरों के विभिन्न दलों से उनके पारस्परिक वैमनस्य, शत्रुता और संघर्ष होने से, षड़यंत्र, गृहकलह और गृह-युद्ध होने से, सुलतानों के निकम्मे और अयोग्य होने से, राज्य में अराजकता और अव्यवस्था फैलने से, विजयनगर और बहमनी राज्य में घोर शत्रुता और प्रतिहिंसा के कारण निरंतर संघर्ष और युद्ध होते रहने से, सुलतानों की दूषित अनुदार हिन्दू विरोधी नीति होने से तथा योग्य और कुशल शासक महमूद गवाँ की हत्या हो जाने से बहमनी राज्य का पतन हो गया।

विजयनगर राज्य

विजयनगर राज्य की स्थापना—दक्षिण भारत में दिल्ली सुलतानों के सैनिक अभियानों, युद्धों और राज्य विस्तार से वहां के हिन्दुओं के राज्य, धर्म और संस्कृति का जो विनाश हुआ, उससे क्षुब्ध होकर हिन्दुओं ने इस्लाम विरोधी आन्दोलन किये। विजयनगर के हिन्दू राज्य का अभ्युदय इसी धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन का सुफल था। इस राज्य निर्माण का लक्ष्य था, हिन्दुओं के लिये एक ऐसा शरण-स्थल निर्माण करना, जहां मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों और शोषण से पीड़ित हिन्दू जनता शांति व सुख से रह सके। सुलतान मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में जब दक्षिण में उसके विरुद्ध विद्रोह हुए और अराजकता फैली, उस समय हरिहर और बुक्का दो भाइयों ने मुस्लिम विरोधी हिन्दू आन्दोलन को मूर्त रूप देने के लिये सन् १३३६ में विजयनगर की स्थापना की। इन दोनों भाइयों के गुरू का नाम माधवसर विद्यारण्य था, और उन्होंने इस आन्दोलन को अधिक प्रोत्साहित किया था, इसलिये

हरिहर और बुक्का ने इस नये नगर का नाम विद्यानगर या विजयनगर रख लिया। इसकी सुरक्षा के लिये एक विशाल दुर्ग भी बनाया गया।

प्रमुख नरेश—विजयनगर राज्य के प्रमुख नरेश थे हरिहरराय बुक्का, हरिहर द्वितीय, देवराय प्रथम, देवराय द्वितीय, मल्लिकार्जुन, विरुपाक्ष, नरसिंह सलुव, इमादी नरसिंह, कृष्णदेवराय, अच्युतराय, सदाशिव आदि। हरिहर द्वितीय ने सुदूर दक्षिण में मैसूर, कांचीवरम्, चिंगलपुर, त्रिचनापल्ली आदि नगरों व प्रदेशों को जीतकर राज्य का विस्तार किया और शासन को सुसंगठित किया था। उसने अनेक प्रसिद्ध शिव मंदिरों का निर्माण भी करवाया। देवराय द्वितीय यद्यपि बहमनी सुल्तान से युद्ध में बुरी तरह परास्त हुआ था, पर उसने शासन में अनेक परिवर्तन और सुधार करके उसे दृढ़ बनाया और सामुद्रिक व्यापार को खूब उन्नत और व्यापक किया। इसके समय में कन्नड़ साहित्य की विशेष उन्नति हुई। कृष्णदेवराय (सन् १५०९-३०) सबसे अधिक प्रसिद्ध नरेश था। उसने राज्य की आर्थिक स्थिति को सुधारा, उड़ीसा के राजा और बीजापुर के सुलतान को बुरी तरह परास्त किया, पुर्तगालियों को राज्य में अधिक सुविधाएँ दीं और अनेक विद्वानों व कलाकारों को राज्य में आश्रय दिया। उसने अनेक मंदिरों का निर्माण किया। उसकी गणना भारत के महान् विजेताओं और शासकों में है। उसने विजयनगर राज्य को उन्नति और समृद्धि के शिखर तक पहुँचा दिया था।

तालीकोट का युद्ध—इस राज्य के एक नरेश सदाशिव (सन् १५४५-७०) के शासनकाल में उसके महत्वाकांक्षी और दंभी मंत्री रामराय के द्वारा अहमदनगर पर किये गये भयंकर आक्रमण व लूट के फलस्वरूप मुसलमान नरेशों ने संगठित होकर विजयनगर राज्य पर आक्रमण किया और तालीकोट के युद्ध में सन् १५६५ में रामराय के नेतृत्व में युद्धरत विजयनगर की सेना को परास्त कर दिया। इस विजय के बाद मुसलमानों ने विजयनगर को पांच माह तक निर्दयता से लूटा, उसके प्रासादों, मंदिरों, भवनों को लूटा और विध्वंस कर दिया तथा लाखों हिन्दुओं का नृशंसता से वध कर दिया। इससे विजयनगर राज्य का पतन हो गया। परन्तु यह राज्य सीमित और छोटे रूप में लड़खड़ाते हुए सन् १६१४ तक बना रहा। इस राज्य का अंतिम नरेश रंग तृतीय राजा हुआ और उसके अत्यधिक दुर्बल और अयोग्य होने पर तंजौर और मदुरा के प्रांतपति स्वतंत्र हो गये और राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

इस राज्य के पतन के कारण हैं—दक्षिण के बहमनी राज्य और बाद में उसके घटकों से निरंतर संघर्ष और युद्ध, विजयनगर राज्य का दोषपूर्ण सैनिक संगठन और तोपखाने का अभाव, राजाओं द्वारा सीमा सुरक्षा की अवहेलना, प्रांतपतियों को अधिक स्वतंत्रता और सुविधाएं, राज्य की स्थायी आर्थिक प्रगति का अभाव, मुसलमानों की हिन्दू विरोधी जातीय और धार्मिक भावनाएं, विजयनगर राज्य के अयोग्य और निर्बल उत्तराधिकारी, तालीकोट का निर्णायक युद्ध और विजयनगर की लूट एवं विध्वंस।

विजयनगर राज्य का प्रशासन—इटली निवासी निकोलो कोंटी, फारस निवासी अब्दुर्रजाक और पुर्तगाल निवासी पेइज नामक यात्री भारत में आये। इन्होंने विजयनगर राज्य का आँखों देखा वर्णन किया है। उनके विवरणों तथा अन्य स्रोतों से इस साम्राज्य के विविध अंगों का वर्णन निम्नलिखित हैं—

राजा निरंकुश और स्वेच्छाचारी था। उसे प्रशासन में परामर्श देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् थी जिसमें ६ से ८ मंत्री होते थे। राज्य कार्य में सहयोग देने के लिये एक बड़ी समिति भी होती थी जिसमें मंत्रिगण, प्रांतीय शासक, सेनानायक पुरोहित, विद्वान, कवि, योग्य ब्राह्मण आदि होते थे। निरंकुश होने पर भी राजा प्रजाहितैषी थे। राजसभा में सामन्त, विद्वान, पुरोहित, ज्योतिषी, कवि, संगीतज्ञ आदि होते थे। राजसभा अपने वैभव और ऐश्वर्य के लिये प्रसिद्ध थी।

भूमिकर व अन्य करों से राज्य की आय होती थी। उपज का $\frac{1}{10}$ भाग भूमिकर होता था। अन्य करों में पशु-कर, चरागाह कर, विवाह-कर, उद्यान कर, वस्तुओं के उत्पादन पर कर, खाद्यान्न कर, वेश्या-कर आदि थे। करों की वसूली के नियम भी कठोर थे। करों का अधिक बोझ होने पर भी जनता सुखी, संतुष्ट और समृद्ध थी। राजा राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश था और उसके अधीन अन्य न्यायाधीश थे। ग्रामों में पंचायतों द्वारा न्याय होता था। दंड विधान कठोर था। छोटे-छोटे अपराधों पर भी कठोर दंड दिये जाते थे।

साम्राज्य का आधार सेना थी। परन्तु मुस्लिम सेनाओं की अपेक्षा इस सेना में उसकी संख्या और विशालता पर ध्यान दिया जाता था, उसके संगठन, एकता, दृढ़ता, प्रशिक्षण आदि पर नहीं। सेना में अश्वारोही, पदाति, हाथी होते थे। अविकसित तोपखाना भी था। सेना का स्वरूप सामन्तशाही था। सेना में राजा की व्यक्तिगत सेना और प्रांतपतियों और सामन्तों द्वारा भेजी गयी निर्धारित सेना होती थी।

समुचित प्रशासन के लिये विजयनगर साम्राज्य छः प्रांतों में विभक्त था और प्रत्येक प्रांत नाडू या कोट्टम में विभाजित था और नाडू नगरों व गांवों के छोटे भागों में विभक्त थे। स्वशासन की पंचायत प्रणाली ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित थी। प्रत्येक प्रांत राजा द्वारा नियुक्त प्रांतीय शासक के अधीन होता था। प्रांतीय शासक कर वसूल करते थे, शांति व्यवस्था बनाये रखकर शासन करते थे और युद्ध के समय सेना भेजते थे। ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय शासन था जिसमें प्रमुख आयंगर और उसके कर्मचारी होते थे।

सामाजिक जीवन— सामाजिक जीवन सुखी, समृद्ध और शांतिमय था। समाज में ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों में ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान और महत्व था। वे प्रशासन में भी रहते थे। समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। वे शिक्षित होती थीं और संगीत तथा स्त्रियोचित अन्य कलाओं में निपुण होती थीं। राजा के वहाँ वे लिपिक और अंगरक्षक का कार्य करती थीं। सती प्रथा, बाल-विवाह, बहुविवाह, दास, प्रथा वेश्यावृत्ति आदि कुप्रथाएँ समाज में थीं। शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के लोग थे। गाय और बैल को छोड़कर विभिन्न पशु-पक्षियों के मांस का उपयोग होता था। वैष्णव और शैवमत का अधिक प्रचार था। पर राजा में धार्मिक उदारता और सहिष्णुता होने से सभी धर्मों के लोग स्वतंत्रतापूर्वक रहते थे। रक्तिम बलि की प्रथा थी। आर्थिक दृष्टि से विजयनगर राज्य सम्पन्न था। लोग विभिन्न प्रकार के स्वर्ण और रत्नजटित आभूषण पहिनते थे और राज्य में हीरे-जवाहरात प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते थे। साम्राज्य

में विभिन्न उद्योग और व्यवसाय प्रचलित थे। वस्त्र उद्योग और धातु उद्योग अधिक उन्नतिशील था। राज्य का विदेशी सामुद्रिक व्यापार व्यापक और उन्नत था।

साहित्य और कला—विजयनगर के अधिकांश नरेश विद्यानुरागी, साहित्य और कला प्रेमी थे। इन राजाओं ने संस्कृत, तेलगू, तमिल, और कन्नड़ भाषाओं और उनके साहित्य के विद्वानों, लेखकों व काव्यों को खूब प्रोत्साहन दिया। माधवाचार्य, सायण और तेलुगू के महान कवि अलसनी को राज्याश्रय प्राप्त था। राजा कृष्णदेवराय स्वयं उच्च कोटि का विद्वान और प्रतिभासम्पन्न कवि था और इसलिये उसे आंध्र का भोज कहा गया है। विजयनगर के राजा बड़े निर्माता थे और उन्होंने स्थापत्य कला को भी खूब प्रोत्साहित किया। उन्होंने अनेक तालाबों, झीलों, बाँधों, जलाशयों, नहरों, पुलों, वैभवशाली राजप्रासादों, भव्य मंदिरों और सार्वजनिक भवनों का निर्माण किया। उनके शासन-काल के मंदिरों की कला अपने वैभव और विचित्रता के लिये विशिष्ट रूप से प्रसिद्ध थी। स्थापत्य-कला के अतिरिक्त इन राजाओं ने नाट्यकला, अभिनयकला, चित्रकला, संगीतकला आदि को भी राज्याश्रय देकर प्रोत्साहित किया।

विजयनगर राज्य का यह महत्व है कि इसने मध्ययुग में लगभग तीन सौ वर्षों तक दक्षिण में हिन्दू धर्म, संस्कृति और ललित कलाओं की रक्षा कर उन्हें पोषित किया।

अध्याय २४

सल्तनत-काल की प्रशासन प्रणाली

सल्तनत-काल की प्रमुख विशेषताएं—यद्यपि अरबों ने सिंध पर आक्रमण कर भारत में इस्लामी राज्य प्रारंभ कर दिया था, पर वह राज्य अस्थायी और अल्पायु रहा। भारत में मुस्लिम राज्य का वास्तविक प्रारंभ दासवंश से होता है। तुर्कों ने भारत पर विजय कर सन् १२०६ से दिल्ली में शासन करना प्रारंभ किया और ये दिल्ली सुलतान कहलाये। सन् १५२६ तक (बाबर की भारत विजय तक) दिल्ली के ये सुलतान शासन करते रहे। लगभग तीन शताब्दियों तक पांच राजवंशों का आधिपत्य दिल्ली पर रहा। ये पांच राजवंश गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद और लोदी वंश थे। यद्यपि ये समस्त राजवंश अल्पायु थे और उनमें से किसी एक का भी प्रशासन एक सदी तक नहीं रहा, फिर भी इस सल्तनत काल की अपनी विशेषताएं हैं। ये निम्नलिखित हैं।

(१) **मुस्लिम शासन व संस्कृति का अभ्युदय**—बारहवीं सदी की राजनैतिक उथल-पुथल में भविष्य-निर्माण के बीज निहित थे। इस सदी के बाद दिल्ली सल्तनत स्थापित हुई। दिल्ली सल्तनत में मुस्लिम शासन व संस्कृति का अभ्युदय हुआ। दिल्ली सुलतानों का शासन-काल भारत में मुस्लिम शासन और संस्कृति का शैशव-काल है और मुगल शासन का युग इसकी प्रौढ़ता का समय है। दिल्ली सल्तनत की प्रारंभिक राजनैतिक उथल-पुथलों के साथ इस देश में मुसलमानी शासन-सत्ता और संस्कृति की नींव पड़ गई और धीरे-धीरे उसका विकास होता गया और इससे भारतीय जीवन प्रभावित हुआ।

(२) **राष्ट्रीय विकास का अभाव**—इस युग का इतिहास राष्ट्रीय विकास का, जन-जीवन का इतिहास नहीं है, अपितु सुलतानों, उनकी राजसभाओं, उसकी दलबंदियों और षडयंत्रों, दैनिक अभियानों व विजय का इतिहास है। तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों ने सुलतानों की विजयों और राज्य-विस्तार पर पृष्ठ के बाद पृष्ठ लिखे हैं।

(३) **इस्लामी राज्य और धर्मतन्त्र**—दिल्ली सल्तनत इस्लामी राज्य था, वह धर्मतन्त्र था। दिल्ली सल्तनत का वास्तविक शासक अल्लाह था और पार्थिव सुलतान या शासक अल्लाह के प्रतिनिधि थे। वे इस्लाम धर्म के नियमों के पूर्ण रूप से आधीन थे। सुलतानों का शासन इस्लाम धर्म पर आधारित होने से, और शासन व्यवस्था इस्लामी कानूनों पर आश्रित होने से यह धर्मतंत्र था। इस्लाम धर्म का प्रचार और प्रसार करना सुलतानों का एक प्रमुख लक्ष्य हो गया था। इसके लिए सभी प्रकार के साधन और उपाय न्यायसंगत माने जाते थे। राज्य के संपूर्ण साधन

और राजनैतिक सत्ता इस्लाम के प्रचारार्थ प्रयुक्त की जाती थीं। सैनिक अभियान व विजय के समय विधर्मियों को उनके स्त्रियों, बच्चों सहित या तो मौत के घाट उतार दिया जाता था, या दास बना कर बेच दिया जाता था या उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता था। मुस्लिम शासन स्थापित हो जाने पर हिन्दुओं या विधर्मियों पर धार्मिक अत्याचार होते थे, उन पर धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रतिबन्ध लादे जाते थे। उनका अस्तित्व इस शर्त पर रहता था कि वे अपने शरीर और धन-संपत्ति को इस्लाम के अधीन रखें। न तो वे अच्छे वस्त्राभरण ही धारण कर सकते थे और न घोड़े, हाथी, पालकी की सवारी ही कर सकते थे। मुसलमानों के प्रति उन्हें अत्यन्त सम्मान एवं अधीनता का व्यवहार करना पड़ता था। उनके राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक अधिकार नहीं थे। अपने धर्मपालन के लिए उन्हें जजियाकर और भूमि के लिए खिराज नामक कर देना पड़ता था। अलाउद्दीन के समय तो काजी ने यह घोषित कर दिया था, कि जब राजस्व अधिकारी हिन्दुओं से चांदी की मांग करे तो उन्हें अत्यन्त नम्रता और सम्मान के साथ स्वर्ण प्रदान करना चाहिए। यदि अधिकारी उनके मुंह में थूकना भी चाहे तो उन्हें बिना किसी हिचक के अपने मुंह खोल देना चाहिये।

हिन्दुओं (काफिरों) की हत्या मुसलमानों का एक सत्कार्य माना जाता था और लाखों निर्दोष हिन्दू मौत के घाट उतार दिये जाते थे। उनकी संपत्ति की खुली लूट और उनकी निर्मम हत्या धार्मिक कर्त्तव्य और सत्कर्म माना जाता था। हिन्दुओं की मूर्तियों और मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करना और उनके भग्नावशेषों पर मस्जिदों का निर्माण करना मुस्लिम शासन की अपरिवर्तनशील घटना थी। धन, सम्मान या पद के प्रलोभन देकर या शक्ति और दमन से अनेक हिन्दुओं को इस्लाम धर्म का अनुयायी बना लेना राज्य का कर्त्तव्य था। हिन्दुओं की भूमि का अपहरण कर मुसलमानों को उसका अनुदान राज्य की ओर से दिया जाता था। ऐसे धर्मतंत्र या धर्मसापेक्ष राज्य में जहां प्रजा के बहुसंख्यक हिन्दुओं को निर्दयता से लूटने व निर्ममता से हत्या करने के कार्य को धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता हो, समस्त प्रजा के कल्याण की, उसकी बहु-मुखी उन्नति की और स्थायी शांति व्यवस्था की आशा नहीं की जा सकती।

(४) **उल्माओं की प्रधानता**—सुलतान उल्माओं अर्थात् मुल्ला, मौलवियों, शेखों और सैयदों की सहायता से प्रशासन करता था। ये शिक्षित और सभ्य होने से समाज, राजनीति और धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित स्थान पर थे। प्रशासन में इनका पर्याप्त हाथ था। राज्य में अनेक ऊंचे पद और विशेषकर न्याय विभाग के पद उल्माओं को ही प्राप्त होते थे। न्याय और धर्म के मामलों में इनका निर्णय अंतिम निर्णय माना जाता था। सुलतान और प्रशासक इन उल्माओं के आदेशों का पालन करते थे। सुलतानों पर इन उल्माओं का खूब प्रभाव रहता था। वे उनके परामर्श और सहयोग से शासन संचालन करते थे। उल्मा हिन्दू विरोधी होते थे, और हिन्दुओं पर अत्याचार करने का परामर्श देते थे। इसलिए सुलतान प्रायः हिन्दू विरोधी नीति अपनाते थे। उनका प्रशासन धर्मतंत्र हो गया था।

(५) **सेना और शक्ति का आधार**—सल्तनत राज्य सेना, तलवार और शक्ति

पर आधारित था। सुलतानों की अपनी सेना, सामन्तों की सेना और प्रांतपतियों की सेना से विजय और राज्य विस्तार होता था और इस सेना से भय और आतंक का वातावरण उत्पन्न कर सुलतान प्रशासन करते थे। सैन्य शक्ति के द्वारा शांति और व्यवस्था बनायी जाती थी। सुलतान अपने को विदेशी समझकर सैन्य शक्ति के आधार पर भारत में राज्य करते थे। दिल्ली सल्तनत एक सैनिक राज्य था। शासक वर्ग देश में सशस्त्र समुदाय के समान रहता था और उनके प्रशासन में प्रजा को सभी प्रकार के अधिकार नहीं थे। इससे सुलतानों का राज्य प्रजा की सहायता, सहयोग, सद्भावना, श्रद्धा और भक्ति पर कभी भी आधारित नहीं हो सका।

(६) **अमीर सरदार और सामन्तशाही**—दिल्ली सल्तनत सामन्तवादी प्रथा पर आश्रित थी। सुलतान अपने मलिकों, अमीरों और सरदारों के सहयोग, सहायता और परामर्श से राज्य विस्तार करता था और प्रशासन संचालित करता था। सुलतान के प्रमुख सहायक अमीर होते थे क्योंकि उन्हें प्रजा का समर्थन और सहयोग प्राप्त नहीं होता था। इसलिए प्रशासन में अमीरों का प्रभाव और महत्व अत्यधिक बढ़ गया। उन्हें विस्तृत जागीरें और व्यापक प्रशासकीय सुविधायें प्राप्त होने से वे अत्यधिक शक्तिशाली हो गये थे। वे अपने महत्व और प्रभाव के कारण "सतून-ए-सल्तनत" अथवा राज्य के स्तंभ कहे जाते थे। इससे राज्य का स्वरूप सामन्तवादी बन गया था और यह सामन्तवाद सैनिक और शक्ति के तत्वों पर आधारित था।

(७) **नैतिकता का अभाव और विलासप्रियता व अकर्मण्यता की वृद्धि**—इस्लामी राजनैतिक आदर्शों का प्रभाव मुस्लिम सामन्तों और वर्गों पर अधिक पड़ा। राज्य का लक्ष्य मुस्लिमों के हित की वृद्धि और इस्लाम का प्रचार होने से, मुस्लिम वर्ग खूब फला-फूला, उसकी उत्तरोत्तर उन्नति हुई और उसके द्वारा विशिष्ट कलाओं को प्रोत्साहन मिला। पर राज्य का कोई आर्थिक आधार नहीं था। मुसलमानों का प्रमुख व्यवसाय युद्ध और लूट-पाट था, उन्होंने कोई प्रगतिशील उद्योग-व्यवसाय नहीं अपनाये। वे युद्धों की लूट पर पले, राजनैतिक और धार्मिक अनुदानों के आधार पर पोषित हुए। मुस्लिम वर्ग के लोग शांति-काल में अकर्मण्य हो गये और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वयं अपने पैरों पर दृढ़ता से स्थाई रूप से खड़े रहने में वे असमर्थ हो गये।

प्रशासन में भी मुस्लिम वर्ग ही था। प्रशासकीय पदों पर उनका ही अधिकार था। राज्य को की गई प्रशासकीय और धार्मिक सेवाओं के परिणामस्वरूप, सहस्रों मुसलिम परिवारों को विस्तृत भूभाग जागीर में दिये जाते थे। इससे इन परिवारों और उनके उत्तराधिकारियों को आलस्यपूर्ण, विलासमय, सुखी जीवन व्यतीत करने की सुविधाएं प्राप्त हो जाती थीं। इससे वे ग्रामीण क्षेत्र में किसी कृषक, व्यापारी या शिल्पी का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा राजधानी में साधारण मुस्लिम सैनिक या फकीर का जीवन व्यतीत करना ही अधिक लाभप्रद और सुखद समझते थे। इससे सल्तनत में विलासप्रिय, वैभवशाली, अकर्मण्य वर्ग का उदय हुआ। उनकी विलासिता और लिप्साप्रियता ने उन्हें अनैतिक बना दिया, उनमें उन दुर्गुणों का प्रादुर्भाव हुआ जिनसे उनकी शक्ति खोखली हो गई और सल्तनत का विनाश हो गया।

(८) **दूषित और शिथिल प्रशासन तथा सृजनात्मक प्रवृत्ति का अभाव**—दिल्ली सल्तनत में प्रशासकीय पद व्यक्ति की योग्यता, दक्षता और अनुभव के आधार पर नहीं दिये जाते थे, अपितु जन्म, वंश और इस्लाम धर्म के आधार पर पद वितरित किये जाते थे। सार्वजनिक पद लूट की सामग्री माने जाने लगे थे, सुलतान के समर्थकों और सहायकों में इनका वितरण होता था। अनेक बार पद वंशानुगत हो गये थे। बहुसंख्यक हिन्दुओं का प्रशासन में कोई भाग अथवा भाग्य नहीं था। इससे सल्तनत का प्रशासन हिन्दुओं के प्रशासकीय अनुभव और दक्षता से वंचित रह गया। मुस्लिम पदाधिकारी प्रायः सैनिक या सेनानायक होते थे, उनमें दैनिक प्रशासकीय अनुभव नहीं था। इससे सल्तनत के प्रशासन का न तो कोई वैधानिक विकास हो सका, न उसका स्थायी दृढ़ ढाँचा ही बन सका। प्रशासकों में सृजनात्मक प्रवृत्ति का अभाव होने से प्रशासन में न तो कोई दीर्घकालीन व्यापक सुधार ही हो सके और न जन-कल्याण के विस्तृत कार्य ही हो सके। इसके विपरीत शासन में भ्रष्टाचार, अनैतिकता और शिथिलता थी।

प्रशासन में हिन्दुओं को दलित, शोषित और हेय माना जाता था। वे सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित थे। राज्य उनके हित का ध्यान रखना अपना कर्त्तव्य नहीं समझता था, अपितु उन पर सभी प्रकार से अत्याचार करना अपना लक्ष्य मानता था। हिन्दुओं के प्रति धर्मान्धता और असहिष्णुता की प्रथा थी। इसके तीन परिणाम हुए; प्रथम, समाज में हिन्दू और मुस्लिम दो वर्ग बन गए और उनके प्रति राज्य का व्यवहार एक दूसरे के विपरीत बन गया। द्वितीय, हिन्दू मस्तिष्क अपनी महानता को प्राप्त नहीं कर सका, अपनी सृजनशक्ति का समुचित उपयोग न कर सका और न हिन्दुओं की आत्मा अपनी उच्चतम उड़ान ही भर सकी। हिन्दू मस्तिष्क की अनुर्वरता तथा उच्च हिन्दू वर्ग की आत्मिक हीनता सल्तनत शासन के अभिशाप बन गये। तृतीय, सल्तनत धर्मसापेक्ष होने से शासक तथा शासित वर्ग के बीच उस घृणा, विद्वेष और कटुतापूर्ण विरोध का सूत्रपात हुआ जो सल्तनत के विनाश का कारण हुआ।

(९) **स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन**—सुलतान स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासक थे। सुलतान को राजनैतिक और धार्मिक नेता माना जाता था। उसके अधिकार असीमित समझे जाते थे। राज्य की समस्त सत्ता, शक्ति और अधिकार सुलतान में ही केन्द्रीभूत होते थे। सुलतान की इच्छा ही कानून, विधान और व्यवस्था थी। सल्तनत का ऐसा स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन सुलतान की योग्यता पर आधारित होता था। अयोग्य, दुर्बल और निकम्मे सुलतानों के शासन-काल में राज्य शक्तिहीन होकर छिन्न-भिन्न होने लगता था।

(१०) **राजवंशीय परिवर्तनों का बाहुल्य**—सल्तनत काल की यह विशिष्टता है कि थोड़े काल में ही राजवंशों के अधिक परिवर्तन हुए। विभिन्न राजवंशों का उत्थान और पतन हुआ। इस राजवंशीय परिवर्तनों की प्रधानता से सल्तनत में स्थायित्व नहीं आ पाया, अपितु इससे उसके पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

दिल्ली सल्तनत में शीघ्र राजवंशीय परिवर्तन के कारण—

लगभग तीन सौ वर्षों तक दिल्ली सल्तनत का युग रहा और इस युग में पाँच

राजवंशों ने राज्य किया। दास वंश ने जिसमें ऐबक, इल्तुतमिश और बलवन प्रमुख शासक थे, सन् १२०६ से १२९० तक ८४ वर्ष राज्य किया। खिलजी राजवंश ने सन् १२९० से १३२० तक ३० वर्ष राज्य किया और इसमें अलाउद्दीन खिलजी प्रमुख था। तुगलक राजवंश ने सन् १३२० से १४१४ तक राज्य संचालन किया, जिसमें मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक मुख्य थे। इस वंश ने ९२ वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद सन् १४१४ से १४५१ तक अर्थात् ३७ वर्ष तक सैयद राजवंश ने और सन् १४५१ से १५२६ तक लोदी राजवंश ने राज्य किया। यह राजवंश ७५ वर्ष तक रहा। इस राजनैतिक उथल-पुथल और राजवंशों के शीघ्र परिवर्तन के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) **सल्तनत का सैनिक स्वरूप**—सुलतानों का राज्य उनकी सैन्य शक्ति पर आश्रित था। उस युग में वही सुलतान सफल हो सकता था जो सैनिक अभियान करने, सैन्य संचालन और युद्ध करने एवं सेना की शक्ति के आधार पर भय और आतंक से राज्य करने की योग्यता, दक्षता, प्रतिभा और अनुभव रखता हो। विशाल सेना वाला और सैनिक गुणों वाला सुलतान ही सफलतापूर्वक शासन कर सकता था। जब भी अयोग्य, सैनिक प्रतिभाविहीन, निर्बल सुलतान राजसिंहासन पर बैठे तभी राज्य का पतन प्रारंभ हो जाता था। सुलतान की तलवार ही राज्य की निर्णायक शक्ति थी। सुलतान की तलवार और शक्ति क्षीण होने पर अमीर और सरदार उसे सिंहासनाच्युत कर देने का षड़यंत्र कर उसे मौत के घाट उतार देते थे और अपने में से सशक्त कुशल नेता को सुलतान निर्वाचित कर लेते थे। इस प्रकार राजवंश को परिवर्तित किया जाता था।

(२) **जन-समर्थन और सहयोग का अभाव**—सुलतानों की सरकार सत्ता और आतंक पर निर्भर रहती थी। सुलतान लोगों को अपनी अपार सैन्य शक्ति और निर्दयता के कार्यों से जनसाधारण को आतंकित करके राज्य करते थे। जनता के हित, उनके नैतिक उत्थान और बहुमुखी प्रगति व सुख-समृद्धि के विकास की ओर किसी सुलतान ने विशिष्ट रूप से ध्यान नहीं दिया। वे तो अपने साम्राज्य का विस्तार करना, लोगों से राजस्व और अन्य कर वसूल करना तथा अधीनस्थ प्रदेश में शांति-व्यवस्था स्थापित करना ही अपना ध्येय समझते थे। फलतः सुलतान लोकप्रिय नहीं बन सके। इससे सल्तनत जनसाधारण के सहयोग, समर्थन, निष्ठा और सद्भावना से वंचित रह गयी और उसे स्थायित्व प्राप्त नहीं हो सका।

(३) **निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन**—दिल्ली के सुलतानों का साम्राज्य विशाल था और उस पर वे निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक थे। उनकी शक्ति और अधिकार अनियंत्रित और असीमित थे। ऐसे निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन और विशाल साम्राज्य की सुरक्षा और व्यवस्था के लिये सुलतान का कुशल, दक्ष, योग्य और प्रतिभा सम्पन्न होना आवश्यक था। सुलतान का चरित्र और व्यक्तित्व ही उनकी विशिष्ट शासन प्रणाली का आधार था। निरंकुश राजतंत्र की सफलता सुलतान के व्यक्तित्व पर निर्भर थी। अयोग्य और निकम्मे सुलतानों के समय राजतंत्र अस्त व्यस्त हो जाता था और सुलतान की शक्ति तथा अधिकार सशक्त मलिकों और अमीरों के हाथों में चले जाते थे। वे

इसका दुरुपयोग करके अपने दल के किसी अन्य व्यक्ति को राज सिंहासन पर बिठाकर नवीन राजवंश का प्रारम्भ कर देते थे।

(४) **दुर्बल और प्रतिभाहीन उत्तराधिकारी**—सुलतान विद्रोह के भय से अपने पुत्रों को प्रशासन करने की समुचित शिक्षा नहीं देते थे। वे उन्हें राजनैतिक और प्रशाकीय प्रशिक्षण से वंचित रखते थे। उनका लालन-पालन राजप्रासादों के विलासपूर्ण तथा दूषित वातावरण में होता था। इससे प्राय: उत्तराधिकारी दुर्बल और अयोग्य होते थे। जैसे ही ऐसे अयोग्य और दुर्बल उत्तराधिकारी सुलतान बन जाते थे, तब असन्तुष्ट अमीर और मलिक षड़यंत्र करके उसे सिंहासन से पृथक कर देते थे और उस नवीन व्यक्ति को सुलतान बना देते थे जो उनके हाथों में कठपुतली बना रहे। अनेक उत्तराधिकारी निर्बल निकले, जैसे बलवन, अलाउद्दीन, फिरोज आदि के शक्तिहीन अयोग्य उत्तराधिकारी। ये दुर्बल प्रतिभाहीन उत्तराधिकारी राज्य को सुरक्षित बनाये रखने में असमर्थ थे। एक राजवंश के दुर्बल उत्तराधिकारी को, दूसरे वंश का शक्तिशाली व्यक्ति षड़यंत्र, छल या बल से परास्त कर देता या विष देकर मरवा डालता था या उसकी हत्या कर देता था। इस प्रकार नवीन राजवंश की नींव पड़ती थी।

(५) **दूषित दुर्बल नीति**—सुलतानों का शासन प्रजा-कल्याण की नीति पर आश्रित नहीं था। वे प्राचीन हिन्दू नरेशों की भांति जनहित के कार्य नहीं करते थे। राज्य और प्रजा की आर्थिक समृद्धि की, व्यापार और व्यवसाय की प्रगति की उन्होंने कोई ठोस योजनाएं व नीति कार्यान्वित नहीं की। यदि जन-कल्याण के कोई कार्य हुए भी तो वे मुस्लिम वर्ग के हित साधनों के लिये होते थे। बहुसंख्यक गैर मुस्लिम प्रजा की निरंतर उपेक्षा की जाती थी। कई सुलतानों में प्रशासकीय प्रतिभा और सृजनात्मक प्रवृत्ति का अभाव तथा प्रशासकीय अनुभव एवं प्रशिक्षण की कमी होने से सरकारी नीति दुर्बल और प्रशासन शिथिल होता था। अनेक बार सुलतान का शासन केवल सैन्य शक्ति, आतंक, अत्याचार और जासूसी नीति के कारण उसके जीवन तक ही सीमित रहता था। कुछ विशेष सुलतानों को छोड़कर लगभग समस्त सुलतान राज-कार्य के प्रति उदासीन रहते थे। प्रशासन वस्तुत: राजदरबारियों पर छोड़ दिया जाता था। इनमें शासन को संगठित और व्यवस्थित करने की शक्ति व प्रतिभा भी नहीं होती थी। वे शासन में मनमानी करते थे। इससे सल्तनत असहिष्णुता, अनुदारता, कट्टरता की दुर्बल नीति पर खड़ी थी। इसलिये सल्तनत के राजवंशों का इतिहास एक व्यक्ति के उत्कर्ष और उसके निर्बल वंशजों के पतन का इतिहास है।

(६) **धर्मसापेक्ष राज्य**—दिल्ली सल्तनत इस्लाम धर्म पर आश्रित थी। विधर्मियों को इस्लाम ग्रहण करने पर बाध्य किया जाता था और राज्य के समस्त साधनों का उपयोग इस्लाम के प्रचार और प्रसार में होता था। कुरान के नियमों और उल्माओं के परामर्श से राज्य का संचालन होता था। इससे सरकार ने हिन्दू विरोधी नीति अपनाई। अधिकांश सुलतानों ने अपनी हिन्दू प्रजा पर विविध प्रकार के अत्याचार किये, उनके कलापूर्ण सम्पन्न मन्दिरों व मूर्तियों को विध्वंस कर दिया और उनके भग्नावशेषों पर मस्जिदों का निर्माण किया, हिन्दुओं से बलपूर्वक जजिया कर वसूल किया तथा उन पर नाना प्रकार के नियंत्रण लाद दिये। फलत: हिन्दू सल्तनत के

विरोधी हो गये और उन्होंने मुसलमानों के विदेशी जूड़े को उतार फेंकने के निरन्तर प्रयास किये। दो आब में, पंजाब और राजस्थान में हिन्दुओं, राजपूत नरेशों और सामन्तों ने शक्तिशाली विद्रोह किये। बलवन, अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक जैसे शक्तिशाली सुलतानों को भी इन विद्रोहों का प्रबल सामना करना पड़ा।

(७) **उल्माओं की प्रधानता**—सल्तनत प्रशासन में उल्माओं को विशेष अधिकार, आदर, सम्मान और महत्व प्राप्त था। अनेक पदों पर विशेषकर धर्म और न्याय विभाग में इसी वर्ग के व्यक्ति होते थे। सुलतान को भी संकीर्ण परामर्श देकर हिन्दू विरोधी नीति अपनाते थे। राजनीति व प्रशासन में वे निरन्तर हस्तक्षेप करते थे और अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। बहुधा सुलतान इनके हाथों में खेलते थे। इनका विरोध करने वाले सुलतान को इनके षड़यंत्रों और कुचक्रों का सामना करना पड़ता था। अपनी शक्ति और अधिकार के मद में अंधे होकर उल्माओं ने अपने धार्मिक कर्तव्यों की अवहेलना की तथा दुर्बल व धर्मांध सुलतानों पर हावी हो गये। वे राजनीतिक उथल-पुथल और षड़यंत्रों में सक्रिय भाग लेकर सुलतानों को सिंहासन से अलग करवा देते थे और इस प्रकार राजवंश के पतन का कारण बन गये।

(८) **सुलतानों की विलासिता और दुश्चरित्रता**—सल्तनत के सभी राजवंशों में ऐसे सुलतान हुए जो अत्यधिक विलासी, लिप्साप्रिय, शराबी और दुश्चरित्र थे। उनका नैतिक पतन हो गया था। सुरा और सुन्दरियों पर वे सब कुछ लुटा देते थे। विलासी, कामुक और मूर्ख सुलतान राजवंश की मर्यादा बनाये रखने और प्रशासन को संचालन करने में सर्वथा असमर्थ थे। सुलतानों की अनैतिकता से सामन्तों और दरबारियों का भी चारित्रिक पतन हो गया। इससे राजवंशों के परिवर्तन में खूब योग मिला।

उत्तराधिकार के दृढ़ नियमों का अभाव—सल्तनत में उत्तराधिकार के निश्चित और दृढ़ नियम नहीं थे। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ होती थी। योग्य, शक्तिसम्पन्न, महत्वाकांक्षी अमीर या प्रभावशाली व्यक्ति सिंहासन को हस्तगत करना चाहता था, चाहे राजवंश से उसका संबंध हो या न हो। सुलतान की मृत्यु के बाद आन्तरिक विद्रोह और षड़यंत्र होते थे। इसमें शक्तिशाली सामन्त या प्रांतीय सूबेदार अपनी राजसत्ता स्थापित कर सुलतान बन जाते थे। इल्तुतमिश, जलालुद्दीन खिलजी, गयासुद्दीन तुगलक, खिज्रखां सैयद, बहलोल लोदी आदि इसी प्रकार सुलतान बने।

(१०) **अमीरों, मलिकों और सामन्तों की स्वतन्त्रता और दलबन्दियां**—राज्य में तुर्क, अफगान, ईरानी और भारतीय मुसलमानों के वर्ग के अमीर और सरदार होते थे। इनके पास विशाल जागीरें होने से तथा इनमें कई प्रांतीय शासक और पदाधिकारी होने से ये अत्यधिक शक्तिशाली हो गये थे। इनके पास अपनी विशाल सेनाएँ भी होती थीं। सुलतान अपनी स्थायी दृढ़ सेना के अभाव में इनकी सेना, और सक्रिय सहायता पर निर्भर रहता था। अनेक सुलतान अपनी प्रतिभाहीनता, अयोग्यता और शक्तिहीनता के कारण अमीरों व सरदारों पर नियंत्रण रखने में सर्वथा असमर्थ थे। अधिकांश सामन्त षड़यंत्रों और कुचक्रों में संलग्न रहते थे, उनमें पारस्परिक दलबन्दियां और

उससे उत्पन्न वैमनस्य और ईर्ष्या थी। इनमें जो अधिक शक्तिशाली, सुयोग्य और प्रतिभासम्पन्न होता था वह बहुधा सुलतान की हत्या करवाकर राज्य हस्तगत कर लेता था। अनेक बार तो प्रांतों का स्वतंत्र सैनिक शासक बनने का पद राजसिंहासन को प्राप्त करने का साधन बन जाता था।

(११) **आन्तरिक षड्यंत्र और विद्रोह**—राजसभा और राजमहल में कुचक्र, षड्यंत्र और विद्रोह होते रहते थे और इनका प्रसार प्रांतीय राजधानियों में होता था। इससे उत्तराधिकारी राजकुमारों की हत्याएँ, सुलतानों व उसके सम्बन्धियों का वध जैसे कुत्तिस और घृणित कार्य होते थे। राजप्रासादों के इन षड्यंत्रों से जनसाधारण पदाधिकारियों और मलिकों को भी विद्रोह करके उन्नति करने की प्रेरणा प्राप्त होती थी। उत्तराधिकार के निश्चित नियम के अभाव से शासन की कुव्यवस्था औ अराजकता से भी आंतरिक विद्रोहों की वृद्धि होती थी और यह राजवंश के पतन का कारण बन जाता था।

(१२) **दास प्रथा**—सल्तनत काल के प्रारम्भ में दास प्रथा ने उसकी उन्नति और विकास में बड़ा योगदान दिया। दासों ने नवनिर्मित सल्तनत की बड़ी लगन और निष्ठा से सेवाएँ कीं। इन दासों में कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश और बलवन विशेष उल्लेखनीय और प्रशंसनीय हैं। परन्तु इनके बाद दास प्रथा दूषित हो गयी। दासों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गयी, उनमें वैमनस्यता और दलबन्दियां हो गयीं। उनका सैनिक प्रशिक्षण और अनुशासन क्षीण हो गया। राज्य की ओर से उन्हें अत्यधिक सुविधाएँ प्राप्त होने से उनका जीवन विलासी और चरित्र कलुषित हो गया। वे राजकोष पर गहरा भार बन गये जैसे कि फिरोज के शासन काल में हो गया था। खिलजी शासन के समय दासों में स्वार्थपरता अधिक हो गयी थी। मलिक काफूर और खुसरो बाद के काल के प्रमुख दास थे। काफूर ने अपनी महत्त्वाकांक्षा के कारण अलाउद्दीन का वध करने का षड़यंत्र किया और राजकुमारों को अंधा करवा दिया। इसी प्रकार खुसरो ने भी अपने स्वामी सुलतान मुबारकशाह की हत्या करदी और स्वयं सुलतान बन गया। तुगलक शासन-काल में ऐसा कोई योग्य प्रतिभावान दास नहीं था जो तुगलक वंश के पतन को अवरुद्ध करता।

(१३) **दृढ़ सीमांत नीति की उपेक्षा और मंगोलों के आक्रमण**—सल्तनत युग में उत्तरी पश्चिमी सीमाएं जो आजकल पाकिस्तान में हैं, असुरक्षित थीं। प्रायः सुलतानों ने उनके हेतु कोई दृढ़ सीमांत नीति नहीं अपनायी। योग्य प्रशिक्षित सेनाओं और अधिकारियों का वहां अभाव-सा रहा। सीमांत क्षेत्र के शासक दिल्ली से दूर होने से प्रायः स्वतन्त्र हो जाते थे। दुर्बल सुलतानों के शासन-काल में सीमांत नीति की घोर अवहेलना की गयी। इससे मंगोलों के सीमांत क्षेत्र से निरंतर आक्रमण हुए। सन् १२४० से प्रारम्भ होकर दीर्घकाल तक होने वाले इन मंगोल आक्रमणों ने सल्तनत के भाग्य और नीति पर गहन प्रभाव डाला। उन्होंने दिल्ली के राजवंशों और उनके साम्राज्य पर कुठाराघात किया। सेनाओं द्वारा निरंतर मंगोलों के आक्रमणों का सामना करते रहने से उनका मनोबल क्षीण हो गया और सैनिक प्रवृत्ति दुर्बल हो गयी और यह राजवंशों के लिये घातक हुआ। फलतः सीमांत क्षेत्र से हुए तैमूर के आक्रमण ने तो तुगलक वंश को विध्वंस ही करा दिया।

चूंकि मंगोलों के आक्रमण सल्तनत और विभिन्न राजवंशों में पतन का विशिष्ट कारण था, इसलिये अब अगले पृष्ठों में मंगोल आक्रमणों का विवरण होगा।

मंगोलों के आक्रमण

मंगोलों का उद्भव—"मंगोल" शब्द की उत्पत्ति "मांग" शब्द से हुई है जिसका अर्थ है वीर, साहसी और दुर्दान्त। प्रारम्भ में मंगोल एक बर्बर प्रजाति थी जो प्राचीन काल में चीन में गोबी के निर्जन और वन्य प्रदेश में रह रही थी। धीरे-धीरे ये मध्य एशिया की ओर अग्रसर हो गये और एक विशाल समूह के रूप में ये वहां विचरण करने लगे। ये पशु और घोड़े पालते थे। सभ्यता में वे अत्यन्त ही निम्न स्तर पर थे। उनका शरीर स्पात-सा था। उनके अवयवों की विशेषता थी—पीली चमड़ी, ऊंची कपाल अस्थि, चौड़ा समतल चेहरा, छोटी ग्रीवा, पशु चर्म के समान झुर्रियों वाले कपोल, चमकते, वक्र तीक्ष्ण नेत्र, छोटी ठोड़ी, चौड़े मांसल ओठ, चौड़े बालदार नथने, बड़े कान, गोल खोपड़ी, खड़े काले बाल और खुरदरी खाल। वे गंदे रहते थे। उनके शरीर से भयंकर दुर्गंध आती थी, क्योंकि पुरुष शायद ही स्नान करते थे और स्त्रियां तो कभी भी स्नान नहीं करती थीं। इसलिये उनमें खुजली अत्यन्त सामान्य रोग था। वे सब प्रकार का मांस खाते थे। मानव मांस खाने में वे हिचकते नहीं थे। मंगोल महान् भक्षक होते थे, परन्तु बिना भोजन के वे कई दिन तक जीवित रह सकते थे। उनमें परिश्रम करने की अपार क्षमता और सहनशीलता थी। एक बार में वे चालीस घंटों तक घोड़े की पीठ पर सवारी करके चलते रहते थे। मंगोलों में स्त्रियों का अपहरण साधारण बात थी। उनका मुख्य व्यवसाय विभिन्न खेलकूद, सैनिक व्यायाम और व्यावहारिक युद्ध था। मंगोल मानव जीवन की उपेक्षा करते थे। वे विश्वसनीय नहीं थे और प्रतिज्ञा का उल्लंघन विचारहीन ढंग से करते थे। वे उत्तेजित तथा अनुत्तेजित अवस्था में भयानक तथा नृशंस कार्य करते थे। मंगोल जन्मजात योद्धा होते थे।

बारहवीं सदी से मध्य एशिया में मंगोलों का खूब उत्कर्ष हुआ। दो शताब्दियों में ही मंगोलों के इतने अधिक निरंतर आक्रमण होने लगे और वे इतने दुर्दमनीय और अजेय हो गये कि उनका नाम ही पूर्व तथा पश्चिम दोनों में भयंकर आतंक उत्पन्न कर देता था। मध्य एशिया में वे अपने पर्वतीय निवास स्थानों से विकराल बाढ़ के समान निकलकर रूस, तुर्की, ईरान, अफगानिस्तान और भारत की ओर फैल गये। ये भयंकर आक्रमण करते और लूटते थे। इन्होंने बड़े साम्राज्यों और छोटे राज्यों को राख में परिणित कर दिया। मध्य एशिया में ख्वारिज्म के शाह के राज्य को और अरब में अब्बासिद खलीफाओं के शक्तिशाली व सुसंस्कृत राज्य को भी इन्होंने नष्ट कर दिया। शायद ही किसी अन्य खूंखार जाति के आक्रमण अपनी भयावहता और सुदूरगामी परिणामों में मंगोलों के आक्रमणों के सामने तुलना में ठहर सके।

चंगेजखां—मंगोलों के उत्कर्ष का प्रारम्भिक इतिहास मध्य एशिया के अन्य कबीलों के इतिहास के समान धुंधला और अस्पष्ट है। परन्तु मंगोलों के एक प्रसिद्ध नेता चंगेज़खां ने मंगोलों को एक विशाल सैन्य शक्ति में, एक युद्धरत राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया था। उसने मंगोलों को विश्व के अत्यन्त श्रेष्ठ योद्धाओं में परिणित कर दिया।

चंगेजखां का जन्म मंगोलिया के रेगिस्तान में सन् ११५५ में हुआ था। इसका नाम तिमूजिन था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में अपने पिता की मृत्यु के कारण उसे अनेकानेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा। इससे उसमें साहस, धैर्य, आत्मनिर्भरता आदि गुणों का विकास हुआ, तथा उसे अनेक अनुभव भी हुए। उसने अपने अनुयायी मंगोलों को संगठित करके चीन को जीत लिया और फिर ट्रांस आक्सियाना में ख्वारिज्म के शाह महमूद को परास्त कर उसके शक्तिशाली राज्य को नष्ट कर दिया। महमूद की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र जलालुद्दीन मैंगबर्नी ने चंगेजखां से युद्ध जारी रखा। यद्यपि उसे अपना राज्य प्राप्त कर लेने में सफलता मिली थी, पर चंगेजखां ने उसे पुनः खदेड़ दिया। अब जलालुद्दीन ने सहायता के लिये भारत में प्रवेश किया। इस समय दिल्ली में दास सुलतान इल्तुतमिश शासन कर रहा था। वह नहीं चाहता था कि जलालुद्दीन दिल्ली आ जावे, और दिल्ली का राज्य उससे छिन जाय तथा दिल्ली राज्य पर चंगेजखां का भयंकर आक्रमण हो। इसलिये इल्तुतमिश ने विनम्रतापूर्वक जलालुद्दीन की सहायता की याचना को ठुकरा दिया और उसे दिल्ली न आने का परामर्श दिया। फलतः सिंध में जलालुद्दीन ने चगेजखां का युद्ध में सामना किया। उसे परास्त करने के बाद चंगेजखां ने सिंध में मुलतान पर अपना अधिकार कर लिया। पर उसे तथा अन्य मंगोलों को भारत की असह्य गरमी सहन न हो सकी थी, इसलिये चंगेजखां अपने अनुयायियों सहित भारत से लौट गया। इस प्रकार भारत मंगोलों के बर्बर आक्रमण की भयंकर विपत्ति से बच गया। चंगेजखां के आक्रमण से इल्तुतमिश के दो प्रबल प्रतिद्वंद्वी कुबेचा और यल्दूज की शक्ति क्षीण हो गयी थी। इससे इल्तुतमिश उनका शीघ्र ही अंत कर सका और अपनी स्थिति दृढ़ करली।

चंगेजखां के उत्तराधिकारी—सन् १२२६ में चंगेजखां की मृत्यु हो गयी थी। वह एक महान विजेता था। उसने मंगोलों के लिये अनेक विधि-विधान भी बनाये तथा उन्हें युद्ध और शासन करने में प्रवीण कर दिया। उसने मंगोलों को एक विस्तृत-साम्राज्य, व सुअनुशासित तथा युद्ध-कला में प्रवीण विशाल सेनाएँ दीं। चंगेजखां की मृत्यु के पश्चात् उसका विशाल साम्राज्य उसके पुत्र-पौत्रों में विभाजित हो गया। उसके एक पुत्र ओकताई को चीन तथा जुन्गेरिया के प्रदेश मिले। उसके अन्य पुत्र जूजी के वंशज को किपचाक का प्रदेश प्राप्त हुआ तथा अन्य पुत्र तूली को मंगोलिस्तान मिला। उसके प्रसिद्ध पुत्र चगताई को ट्रांस आक्सियाना उपलब्ध हुआ। तूली के पुत्र और चंगेजखां के पौत्र हलागूखां और मंगूखां ने भी अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिये। फारस में हलागूखां ने मंगोल राज्य स्थापित किया। चंगेजखां के उत्तराधिकारियों में उसका स्थान सर्वोपरि है। उसका प्रभाव बगदाद से लेकर गजनी तक था। चगताई के उत्तराधिकारियों ने ट्रांस आक्सियाना में मंगोल राज्य की शक्ति दृढ़ करली। भारत में मंगोल आक्रमण ट्रांस आक्सियाना और फारस के मंगोल शासकों के नेतृत्व में ही हुए। जब से चंगेजखां सन् १२२१ में सिंध नदी के तट पर आया था, मंगोलों के आक्रमण भारत के राजनैतिक क्षितिज पर मंडराते रहे। इन आक्रमणों में अफगानों ने, जिन्हें भारत में सैनिक कार्य करने से आर्थिक लाभ होता था, पंजाब के खोखरों ने जो दिल्ली की तुर्क सल्तनत के परम्परागत शत्रु थे, तथा दिल्ली के असन्तुष्ट सामन्तों ने मंगोलों

की सहायता की थी।

मंगोल सेना और उसके आक्रमण—चंगेजखां और उसके उत्तराधिकारियों ने १३ वीं और १४ वीं सदी में काले सागर से लेकर चीन सागर तक तथा साइबेरिया से सिंधु और सीस्तान तक अपनी शक्ति और राज्य स्थापित कर लिये थे। चींटियों और टिड्डियों के समूहों की भांति वे सैनिक अभियानों, आक्रमणों और विजयों के लिये निकल पड़ते थे। इस समय इनकी सेनाएँ भी विशाल और दृढ़ होती थीं। गतिशीलता मंगोल सेना की महान विशेषता थी। अपने आक्रमण और पलायन दोनों में वे अपने शत्रुओं को अपनी सामरिक शक्ति की अपेक्षा अपनी हलचल और गतिशीलता से किंकर्तव्य विमूढ़ कर देते थे। उनका पीछा करना खतरनाक होता था, क्योंकि पलायन करते समय वे अपने सिर के ऊपर से पीछे तीर चलाते थे और अपना पीछा करने वालों को अनेक कष्ट पहुँचाते थे। वे कृत्रिम पलायन की, घेरने और सहसा आक्रमण करने की कला भली-भांति जानते थे। विविध युद्धकलाओं का प्रयोग करने वाले देशों से उन्होंने अनेक युद्ध किये थे, इसलिये उन्हें सामरिक कलाओं का अत्यधिक अनुभव था। इससे वे अजेय हो गये थे। मंगोल सेना मुख्यतः अश्वारोही सेना थी और अश्व मंगोलों की महान संपत्ति होते थे। मंगोल योद्धा के शस्त्रों में एक भाला, शत्रु को उसके अश्व से नीचे खींचने हेतु एक कांकड़ा, धनुष और बाण तथा एक तलवार प्रमुख रूप से होते थे। सैनिक अभियान और विजय के बाद वे भयंकर लूट करते थे, उनके लालच की कोई सीमा नहीं रहती थी। वे ग्रामों व नगरों को नृशंसतापूर्वक लूटते और विध्वंस कर देते थे तथा उन्हें मरुभूमि में परिवर्तित कर देते थे। अपनी नृशंसता, हत्याकांड और बर्बरता से वे भयंकर आतंक और भय फैला देते थे। रीढ़ की अस्थि को तोड़कर किसी को मार डालना मंगोलों में सामान्य प्रथा थी। अत्यधिक कठोर श्रम के लिये वे स्वस्थ व्यक्तियों को बंदी बना लेते थे और स्त्रियों को पुरस्कार के स्वरूप ले लेते थे। बोखारा, समरकंद और बल्ख की लूट में उन्होंने ऐसे भयंकर नृशंस कुकृत्य किये थे कि जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती। यूरोप के देशों में तो उनके हमलो और बर्बरता से इतना अधिक आतंक फैल गया था कि पूर्वी यूरोप के कतिपय गिरजाघरों में प्रार्थना में यह भी कहा जाने लगा था कि "तारतारों (मंगोलों) के कोप से ईश्वर हमें मुक्ति दे।" तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दि में मंगोलों ने अपने सफल अभियानों और विजय से पूर्व में काले सागर से पश्चिम में चीन सागर तक और उत्तर में साइबेरिया से लेकर दक्षिण में सिंधु और सीस्तान तक विस्तृत साम्राज्य और शक्ति स्थापित करली थी। धीरे-धीरे वे भारत की ओर बढ़ने लगे और विजय तथा लूट के लिये निरंतर आक्रमण करने लगे। सन् १२२१ से जब से चंगेजखां सिंध नदी के तट पर आया था, मंगोल आक्रमण भारत के राजनैतिक क्षितिज पर मंडराने लगे और मंगोलों ने इल्तुतमिश के शासन काल से लेकर मुहम्मद तुगलक के शासन काल तक लगातार आक्रमण किये। मध्य एशिया में ट्रांस आक्सियाना के मंगोल नरेश चगताई के वंशजों ने और फारस में मंगोल नरेश इलखां के वंशजों ने, अपने पारस्परिक भ्रातृ-युद्धों से अवकाश मिलने पर, भारत पर आक्रमण किये। प्रायः इन दोनों वंशजों के मंगलों में से जिसका अधिकार अफगानिस्तान पर होता था, वही भारत पर शीघ्रता से आक्रमण

करता था। फलतः दिल्ली के तत्कालीन सुलतानों को मंगोलों से मोर्चा लेने और उन्हें भारत से खदेड़ देने के लिये अपनी समस्त शक्ति केन्द्रीभूत करना पड़ी थी। इन आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

इल्तुतमिश के समय मंगोलों का आक्रमण—इल्तुतमिश के शासन काल में चंगेजखां ने अपने भागते हुए शत्रु ख्वारिज्म के जलालुद्दीन मैंगबर्नी का पीछा करते हुए भारत की सीमा पर आक्रमण किया था। ऐसे समय में जलालुद्दीन ने इल्तुतमिश से दिल्ली में रहने और चंगेजखां के विरुद्ध सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए याचना की थी। पर इल्तुतमिश ने उसके दूत को मरवा दिया और कहला भेजा कि दिल्ली की जलवायु उसके अनुकूल नहीं है। फलतः जलालुद्दीन को चंगेजखां का सामना करना पड़ा और उसने पराजय के समय सिंधु नदी में कूदकर प्राण रक्षा करने का प्रयास किया। इसका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। इस समय चंगेजखां भारत की सीमा से लौट गया, क्योंकि सिंधु नदी के पश्चिम प्रदेश की ओर उसका आकर्षण अधिक था और वह इस समय तटस्थ सल्तनत की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहता था। इसके अतिरिक्त मंगोलों को भारत की गरम जलवायु भी असहनीय थी। इस प्रकार इल्तुतमिश ने अपनी दूरदर्शिता से दिल्ली सल्तनत को मंगोलों द्वारा नष्ट होने से बचा लिया।

धीरे-धीरे मंगोलों ने अफगानिस्तान को अपने सैनिक आक्रमणों की कार्यवाहियों का अड्डा बना लिया। फलतः इल्तुतमिश के शासन काल में ही सन् १२२८ में दिल्ली सल्तनत की सीमाएँ मंगोल राज्य की सीमा से टकराने लगीं। सन् १२२९ में मंगोलों ने खुराशान और अफगानिस्तान को अपने राज्य में मिला लिया। सन् १२३५ में उन्होंने पश्चिमी अफगानिस्तान पर पूर्णरूपेण अधिकार कर लिया और सिंधु नदी के उत्तरी प्रदेश में वे प्रवेश कर गये। इससे बनियान में हसन कालूंग की स्थिति डाँवाडोल हो गई और उसने अपनी सुरक्षा के लिए दिल्ली सुलतान से मंगोलों के विरुद्ध एक संधि करने का प्रयास किया। पर वह असफल रहा।

रजिया के शासन काल में मंगोलों का भय—सुलतान इल्तुतमिश के देहावसान के बाद मंगोल नेताओं ने दिल्ली सामन्तों के पारस्परिक षड़यंत्रों, सुलतान की शक्तिक्षीणता तथा पश्चिमोत्तर सीमा की ओर से सुलतान की उपेक्षावाद की नीति का लाभ उठाकर भारत पर आक्रमण किये। उनके आक्रमणों का भय रजिया के शासनकाल में व्याप्त हो गया था। रजिया ने हसन कालूंग से मंगोलों के विरुद्ध समझौता करना उचित नहीं समझा, क्योंकि वह मंगोलों से शत्रुता मोल लेना नहीं चाहती थी।

सुलतान बहरामशाह (सन् १२४०–४२) और अलाउद्दीन मसूद (१२४२-४६) के शासन-काल में मंगोल आक्रमण—सन् १२४० में रजिया के पतन के पश्चात् ही मंगोल आक्रमण पुनः प्रारंभ हो गये। सन् १२४०–४१ में मंगोलों ने बहादुर ताहर के नेतृत्व में सिंध नदी पार करके लाहौर का घेरा डाला। वहां का तत्कालीन शासक मलिक इख्तयारुद्दीन मंगोलों को रोक न सका और भाग गया। लेकिन सेना व जनता ने मंगोलों का वीरतापूर्वक सामना किया, परन्तु वे परास्त हुए। मंगोलों

ने अनेक मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया और नगर तथा दुर्ग को अधिक हानि पहुँचाई। उनके लौट जाने के बाद लाहौर का एक अंश ही दिल्ली सुलतान के अधिकार में आ सका। लाहौर के शेष भाग पर मंगोलों का अधिकार हो गया। अब रावी नदी तक मंगोलों का साम्राज्य बढ़ गया। सुलतान मसूद के शासन-काल में सन् १२४५–४६ में मंगोलों ने सीमांत क्षेत्र पर आक्रमण किये और लाहौर को पूर्ण-रूपेण अपने अधिकार में कर लिया।

नासिरुद्दीन के शासन-काल में मंगोलों का आक्रमण और विजय—सुलतान नासिरुद्दीन महमूद के शासन काल में पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त की सुरक्षा और मंगोलों के आक्रमणों को रोकने की बड़ी प्रमुख समस्या थी। इस समय मंगोलों का प्रमुख नेता मंगूखां था। सन् १२४५–४६ में मंगूखां के नेतृत्व में मंगोलों ने सिंध में उच्च पर आक्रमण किया तथा अलीबहादुर के नेतृत्व में मुलतान को घेर लिया। बलबन के सफल सैनिक प्रयासों से मंगोल पीछे ढकेल दिये गये। पर यह अस्थाई सफलता थी। मुलतान और सिंध दोनों ही मंगोलों के अधिकार में चले गये। मंगोलों ने पुनः आक्रमण किये। इससे उन्हें सफलता मिली और पंजाब में व्यास नदी तक के क्षेत्र को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। मंगोलों की आक्रमणकारी नीति के कारण पश्चिमी पंजाब उनके अधिकार में चला गया और नासिरुद्दीन के शासनकाल में उनका यह अधिकार दीर्घ काल तक रहा।

मंगोलों के आक्रमणों का सामना करने के लिए और उन्हें सीमान्त क्षेत्र से खदेड़ देने के लिए नासिरुद्दीन को बलवन का अत्यधिक सहयोग और नेतृत्व प्राप्त हुआ। बलवन ने मंगोल समस्या को हल करने के लिये पश्चिमोत्तर प्रदेश की सुरक्षा की और अपनी राजनैतिक और सैनिक शक्ति दृढ़ करने की योजना बनाई। वे विद्रोही और असन्तुष्ट सामन्त जो मंगोलों को सहायता व सहयोग दे रहे थे, बलबन द्वारा अलग कर दिये गये। बलबन ने उनके स्थानों व पदों पर अपने संबंधियों को नियुक्त किया। उसने अपने संबंधी शेरखां सुनकर और कुतलुग ख्वाजा को सीमान्त क्षेत्रों में मुलतान, उच्च, तबर, हिन्द एवं समाना की सुरक्षा हेतु सेनाध्यक्ष नियुक्त किये। अपने संबंधी अधिकारियों पर नियंत्रण रखने के लिये बलबन ने अन्य वर्ग व श्रेणी के अधि-कारी भी नियुक्त किये, जैसे उसने इसुद्दीन किचलूखां को नागोर का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। परन्तु इसी बीच बलबन की बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव से ईर्ष्यालु सामन्तों ने उसके विरुद्ध सुलतान नासिरुद्दीन के कान भर दिये और सुलतान ने बलबन को पदच्युत कर रिहान को उसके स्थान पर पदोन्नत किया। पर इससे परिस्थिति संभलने और सुधरने की अपेक्षा अधिक बिगड़ गई और सीमान्त क्षेत्र का सेनाध्यक्ष शेरखां मंगोलों से जा मिला। यही नहीं नासिरुद्दीन का संबंधी जलालुद्दीन भी दिल्ली का सुलतान बनने की इच्छा से मंगोलों से जा मिला और मंगूखां को प्रोत्साहित किया कि वह पंजाब पर आक्रमण करके उसे संपूर्णतया अपने अधिकार में कर ले। सुलतान की दुर्बलता और सीमान्त क्षेत्र की असुरक्षा के कारण तथा मंगोलों के बढ़ते हुए प्रभाव से सन् १२५४ तक सुलतान के दरबार के अनेक सामन्त मंगोलों के साथ हो गये थे। इससे दिल्ली पर मंगोल आक्रमण की संभावना अधिक बढ़ गई और रिहान स्थिति

को संभालने में असफल रहा। फलतः सुलतान नासिरुद्दीन ने रिहान को पदच्युत कर बलवन को पुनः अपना नायक नियुक्त कर लिया। बलवन ने सत्ता संभालने पर शीघ्र ही मंगोलों का सामना करने का प्रयास किया। इससे शेरखां भी मंगोलों से हटकर सुलतान के पक्ष में आ गया, पर अन्य पदाधिकारी मुलतान और उच्च का शासक किशलूखां मंगोलों से जा मिला और वह मंगोल नेता हलाकूखां के पक्ष में हो गया। सुलतान नासिरुद्दीन का भाई जलालुद्दीन भी मंगोलों से जा मिला था और उनकी सहायता से वह दिल्ली का सुलतान बन जाने का स्वप्न देख रहा था। इससे मंगोलों की शक्ति बढ़ गई और दिल्ली में उनका बड़ा आतंक फैल गया।

ऐसी दशा में बलबन ने बड़ी कूटनीति से काम लिया। उसने मंगोलों के एक शक्तिशाली राज्यपाल नासिरुद्दीन करलुग को अपनी ओर मिला लिया। नासिरुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह बलबन के पुत्र के साथ कर दिया। इससे बलबन ने उसका बड़ा सम्मान किया। अब नासिरुद्दीन ने मंगोल नेता हलाकूखाँ को यह परामर्श दिया कि दिल्ली सल्तनत की सेनाएँ सशक्त और संगठित हैं और वह मंगोलों का सामना करने को तत्पर है। इस पर सन् १२५७ में हलाकूखां ने अपने आक्रमण का बढ़ाव रोक दिया। नासिरुद्दीन करलुग दिल्ली सुलतान और मंगोल नेता हलाकूखाँ के मध्य मैत्री-संबंध स्थापित करना चाहता था। इसके परिणामस्वरूप बलबन ने हलाकूखां से सीधा संपर्क स्थापित किया और सन् १२५८ में हलाकूखां ने अपना राजदूत दिल्ली भेजा, जहां बलबन ने उसका भव्य स्वागत किया और उसे अपनी विशाल सैन्य-शक्ति से प्रभावित किया। अपने इस दूत के द्वारा जब हलाकूखां को सुलतान की सैनिक शक्ति की विशालता और दृढ़ता की सूचना मिली तब उसने भारत पर आक्रमण करने का विचार त्याग दिया। बलबन की इस कूटनीति के परिणामस्वरूप अगले नौ वर्षों तक मंगोल आक्रमण नहीं हुए और पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र में शांति बनी रही। पर इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दिल्ली दरबार ने सिंध, मुलतान तथा व्यास के उस पार के पंजाब के प्रदेश पर मंगोलों का आधिपत्य मान लिया।

बलबन के शासन-काल में मंगोल आक्रमण—सन् १२६६ में नासिरुद्दीन के देहावसान के बाद बलबन सुलतान बन गया। बलबन के शासन-काल में हलाकूखां के नेतृत्व में मंगोलों ने बगदाद के खलीफा की हत्या कर अरब राज्य को अपने अधिकार में कर लिया था और अफगानिस्तान में गजनी को भी अपने आधिपत्य में ले लिया था। इसलिए अब उनके आक्रमणों का दबाव भारत की सीमा पर बराबर बढ़ रहा था और वे प्रतिवर्ष आक्रमण करके सिंध व पंजाब की जनता को अपनी नृशंसता से कष्ट पहुँचा रहे थे। इसलिए उसने अपनी समस्त शक्ति इन आक्रमणों को रोकने के लिए केन्द्रीभूत कर दी। उसने पूर्णरूपेण सीमान्त सुरक्षा में अपनी शक्ति लगा दी। वह किसी अन्य प्रदेश को विजय न कर सका और सुलतान अलाउद्दीन की भांति वह साम्राज्य विस्तारक न बन सका। मंगोल आक्रमण के विस्तार को रोकने के लिए उसने निम्नलिखित प्रयास किये।

(i) उसने पश्चिमोत्तर सीमा सुरक्षा का भार शेरखां को सौंपा। उसके पास सर्वाधिक योग्य सैनिक रखे और पर्याप्त मात्रा में युद्ध सामग्री रखी। शेरखां ने

मंगोलों को महायता देने वाले खोखरों का दमन किया। उसने अपनी दृढ़ सैनिक नीति से मंगोलों को भयभीत कर दिया। परन्तु सन् १२७० में उसकी मृत्यु हो जाने से एक सुयोग्य सीमान्त रक्षक उठ गया।

(ii) शेरखां की मृत्यु के बाद बलबन ने संपूर्ण सीमान्त क्षेत्र को दो भागों में विभाजित कर लिया। प्रथम, सुनम तथा समाना का प्रांत और इसकी सुरक्षा का भार उसने अपने छोटे पुत्र बुगराखां को वहां का शासक नियुक्त कर सौंप दिया। दूसरा, मुलतान, सिंध तथा लाहौर को सम्मिलित प्रदेश बनाकर वहां अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मदखां को शासक नियुक्त किया।

(iii) बलबन ने लगभग अठारह सहस्र सैनिक मंगोलों के विरुद्ध सीमान्त सुरक्षा के लिये नियुक्त किये। इसके अतिरिक्त राजधानी में भी उसने एक विशेष सेना मंगोल आक्रमणों के मुकाबले के लिये तैयार रखी।

(iv) लाहोर दुर्ग की तथा सीमांत क्षेत्र के अन्य दुर्गों की मरम्मत की गयी तथा सीमा पर दुर्गों की एक शृंखला बना दी और वहां प्रशिक्षित अनुभवी सैनिक और यथेष्ट युद्ध सामग्री रखी गयी।

(v) सीमांत क्षेत्र में मंगोलों ने कई छुटपुट आक्रमण किये पर बलबन की सुरक्षात्मक नीति से उन्हें कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। पर सन् १२७९ में मंगोलों ने भयंकर आक्रमण किया और उन्होंने सुनम तक के प्रदेश को रौंद डाला। किंतु राजकुमार मुहम्मद ने बुगराखां और दिल्ली की सेनाओं की सहायता से मंगोलों को परास्त कर उन्हें पश्चिमी पंजाब के बाहर खदेड़ दिया।

(vi) सन् १२८५ में मंगोलों ने तैमूरखां के नेतृत्व में पुनः भयानक आक्रमण किया। राजकुमार मुहम्मद ने उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया पर उनका पीछा करते समय वह मारा गया। राजकुमार की मृत्यु से बलबन को इतना अधिक सदमा लगा कि उसकी मृत्यु हो गयी।

सुलतान कैकुबाद के समय मंगोल आक्रमण—कैकुबाद के शासन-काल में मंगोलों ने मुलतान तथा निचले पंजाब में दो आक्रमण किये। द्वितीय आक्रमण में उन्होंने मुलतान से लाहौर तक के प्रदेशों को रौंद डाला। परन्तु शाही सेना ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। इस आक्रमण में मंगोलों को खूब क्षति उठाना पड़ी।

दिल्ली सुलतान के सुरक्षात्मक प्रयासों और सैनिक तत्परता के कारण मंगोल कभी भी दिल्ली पर आक्रमण नहीं कर सके।

खिलजी वंश के शासन काल में मंगोल आक्रमण

खिलजी सुलतानों के शासन-काल में भी मंगोलों ने भारत पर निरन्तर आक्रमण किये। परन्तु इस काल में मंगोलों ने अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया। दास वंश के समय मंगोलों का उद्देश्य लूटमार करना और अधिक से अधिक मुलतान, सिंध एवं पंजाब पर विजय प्राप्त करना था, परन्तु अब उनका लक्ष्य दिल्ली को विजय करना हो गया था।

जलालुद्दीन के शासन-काल में मंगोलों के आक्रमण—जलालुद्दीन खिलजी के सुलतान बनने के बाद दो वर्ष में सन् १२९२ में हलाकूखां के पौत्र अब्दुल्लाखां ने

डेढ़ लाख सैनिकों को लेकर भारत पर आक्रमण किया और वह सुनम तक आ पहुँचा। इस पर सुलतान जलालुद्दीन स्वयं तीस सहस्र सैनिक लेकर मंगोलों का सामना करने के लिये सिंध नदी के पूर्वी तट की ओर बढ़ा। मंगोलों की सेना और सुलतान की सेना दोनों में भयंकर युद्ध हुआ और मंगोल परास्त हुए। परन्तु विजयी सुलतान ने मंगोलों के साथ उदारता का व्यवहार किया और उसने मंगोलों से मैत्री-संधि करली तथा अपनी एक पुत्री का विवाह चंगेजखां के पौत्र उलूगखां से कर लिया। मंगोलों का नेता अब्दुल्ला भारत से लौट गया परन्तु उलूगखां अनेक मंगोलों के साथ भारत में ही रह गया। थोड़े समय बाद उसके अनेक मंगोल साथी भारतीय जलवायु प्रतिकूल होने के कारण स्वदेश लौट गये। शेष मंगोल जो भारत में रह गये थे उन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया और समाज में वे नवीन मुसलमान कहे जाने लगे। इन मंगोलों ने मुगलपुरा नामक नवीन नगर का निर्माण किया और भारतीय मुसलमानों से उन्होंने अपने सम्बन्ध बढ़ा लिये। जलालुद्दीन खिलजी के वैवाहिक सम्बन्ध और मैत्री से भारत पर मंगोलों के आक्रमण कुछ समय के लिये रुक गये। परन्तु राजनैतिक दृष्टि से मंगोलों की यह मैत्री घातक प्रमाणित हुई। मंगोलों को दिल्ली सल्तनत की सीमा में स्थायी निवास मिल जाने से उन्होंने सल्तनत की राजनीति में हस्तक्षेप करना व सुलतन के विरुद्ध षड़यंत्र करना प्रारंभ किया।

सुलतान अलाउद्दीन के शासन-काल में मंगोल आक्रमण

सुलतान अलाउद्दीन के शासन-काल में भी मंगोलों ने आक्रमण किये। इतिहास कार बर्नी और निजामुद्दीन आठ मंगोल आक्रमणों का, फरिश्ता सात और बदांउनी पांच आक्रमणों का वर्णन करता है। इनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है:—

(१) **दाऊद का आक्रमण सन्—१२९७-९८** अलाउद्दीन के सुलतान बनने के एक ही वर्ष बाद ट्रांस आक्सियाना के मंगोल शासन दाऊद ने एक लाख मंगोल सैनिकों के साथ भारत पर आक्रमण किया। उसने सिंध, मुलतान और पंजाब पर अधिकार कर लिया। इस पर अलाउद्दीन ने जफरखां और उलूगखां के नेतृत्व में सेना भेजी। उन्होंने जालंधर के समीप युद्ध में मंगोलों को परास्त कर खदेड़ दिया।

(२) **सालदी का आक्रमण सन्—१२९८—९९** मंगोलों ने सालदी के नेतृत्व में दूसरा आक्रमण किया और उसने सेहबान पर अधिकार कर लिया। सुलतान के सेनापति जफरखां ने उन्हें दुर्ग में घेर लिया और परास्त कर, सालदीखां और उसके दो सहस्र साथियों को बन्दी बना लिया गया।

(३) **कुतलुग ख्वाजा का आक्रमण सन्—१२९९** दाऊद के पुत्र कुतलुग ख्वाजा ने दो लाख मंगोल सैनिकों के साथ भयानक आक्रमण किया। अलाउद्दीन के शासन-काल में होने वाले मंगोल आक्रमणों में यह सबसे भीषण था। मंगोल सेना इतनी तीव्रता से आगे बढ़ी कि सीमांत क्षेत्र की सेना उसे रोकने में असमर्थ रही और मंगोल दिल्ली के समीप पहुँच गये। परन्तु सुलतान अलाउद्दीन ने सुरक्षात्मक नीति की अपेक्षा आक्रमणकारी नीति को अपनाया। उसने अपने सेनापति जफरखां और उलूगखां की सहायता से भीषण युद्ध में मंगोलों को परास्त कर दिया और उन्हें खदेड़ दिया। परन्तु इस युद्ध में वीर और योग्य सेनानायक जफरखां मारा गया।

(४) **तुर्गी का आक्रमण (सन् १३०३)**—इस भीषण पराजय के बाद भी मंगोलों ने तुर्गी के नेतृत्व में आक्रमण किया और वे दिल्ली के समीप पहुंच गये। पर शेख निजामुद्दीन औलिया की कृपा से मंगोल बिना युद्ध किये वापिस लौट गये।

(५) **ख्वाजा तास और अलीबेग के आक्रमण (सन् १३०४)**—तुर्गी के बाद ख्वाजा तास और अलीबेग ने मंगोल सेनाओं से आक्रमण किया और वे अमरोहा तक आगे बढ़ गये। परन्तु सीमान्त क्षेत्र के सेनानायक गाजी मलिक ने उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया। गाजी मलिक ने मंगोलों को महान क्षति पहुँचाई थी।

(६) **इकबाल मंदा और कुबाक के आक्रमण (सन् १३०७)**—इस समय मंगोल इकबाल मंदा और कुबाक के नेतृत्व में आये। गाजी मलिक ने कुबाक का सामना रावी नदी के तट पर पंजाब में किया और उसे परास्त करके बंदी बना लिया। इसके बाद इकबाल मंदा से युद्ध हुआ, वह परास्त हुआ और भाग गया। इन युद्धों में अनेक मगोल सैनिक पकड़ कर हाथियों के पैरों के नीचे कुचल दिये गये। इससे मंगोल इतने भयभीत हुए कि आगामी बीस वर्षों तक उन्होंने भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। अलाउद्दीन की सेनाओं से भयभीत और क्षतिग्रस्त मंगोल भारत की ओर आक्रमण करने से डरते थे।

भारत में बसे मंगोलों की हत्या—दासवंश और जलालुद्दीन खिलजी के शासन-काल में अनेक मंगोल इस्लाम ग्रहण करके भारत में बस गये और ये नये मुसलमान कहलाये तथा ये सुलतान की सेना में सैनिक बन गये। सुलतान अलाउद्दीन द्वारा इनके साथ कठोरता का व्यवहार होने से ये सुलतान से अत्यंत ही रुष्ट, प्रतिक्रियावादी और षड़यंत्रकारी हो गये। उन्होंने गुजरात आक्रमण के समय लूट के माल पर विवाद खड़ा करके विद्रोह कर दिया और सेनानायक नसरतखाँ के भाई और अलाउद्दीन के एक भतीजे की हत्या कर दी तथा सुलतान का भी वध करने की योजना बनाई। इस पर अलाउद्दीन ने निर्ममता से इन नवीन मुसलमानों की हत्या करवा दी और उनकी संपत्ति छीन ली।

तुगलक राज्य-काल में मंगोलों के आक्रमण

गयासुद्दीन तुगलक और मंगोल—तुगलक शासन-काल में मंगोल समस्या कोई विकट नहीं थी, क्योंकि गाजी मलिक ने सीमांत क्षेत्र में मंगोलों को निरन्तर परास्त कर अत्यधिक रूप से क्षतिग्रस्त कर दिया था। जब गाजी मलिक गयासुद्दीन तुगलक के नाम से सुलतान हुआ, तब उसके शासनकाल में मंगोलों ने केवल एक आक्रमण किया और उन्हें समाना के शासक बहाउद्दीन ने परास्त कर खदेड़ दिया।

मुहम्मद तुगलक और मंगोल— मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में मंगोल-शक्ति क्षीण हो चुकी थी। फिर भी मंगोल सरदार तरिमाशिरीन ने वीर, महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी होने से, मुहम्मद तुगलक के समय व्याप्त अराजकता का लाभ उठाकर, भारत पर आक्रमण कर दिया और दिल्ली तक बढ़ आया। यहिया के अनुसार मुहम्मद तुगलक ने अपनी सेना से मंगोलों को कालानूर तक पीछा करते हुए खदेड़ दिया, पर बदायूंनी के अनुसार मंगोल दिल्ली को छोड़ बदायूँ की ओर लूट के लिये बढ़ गये, मुहम्मद ने उन्हें परास्त कर खदेड़ दिया। फरिश्ता

का यह कथन असत्य है कि मुहम्मद तुगलक ने मंगोल आक्रमणकारी तरिमाशिरीन को अपनी सेना के अभाव मे घूस देकर लौट जाने की प्रार्थना की और उससे मैत्री-संधि कर ली। सत्य कुछ भी हो, यह निश्चय है कि मुहम्मद तुगलक ने मंगोल आक्रमणकारी को परास्त किया और उसके आक्रमण का प्रभाव नगण्य रहा।

फिरोज तुगलक और मंगोल—फिरोज तुगलक के शासन-काल में कोई भी मंगोल आक्रमण नहीं हुए और अब मंगोलों का भय भी नहीं था, क्योंकि चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मध्य एशिया के मंगोलों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, उनकी शक्ति क्षीण हो गई थी और उनका राज्य सीमित रह गया था तथा तैमूर का शक्तिशाली राज्य मध्य एशिया में स्थापित हो गया था।

मंगोल आक्रमणों का प्रभाव—तेरहवीं और चौदहवीं सदी में मंगोल आक्रमण एक ज्वलंत समस्या थी। उनके आक्रमणों का व्यापक प्रभाव दिल्ली सल्तनत पर पड़ा, दिल्ली सल्तनत की बाह्य और आंतरिक नीतियाँ प्रभावित हुईं।

(१) **सीमान्त क्षेत्रों में सुदृढ़ दुर्ग और चौकियाँ**—पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र, पंजाब और सिंध में मंगोलों के आक्रमणों का अधिक दबाव था। इसलिए सीमान्त क्षेत्र में और मंगोलों के आक्रमणों के मार्ग में पड़ने वाले दुर्गों का जीर्णोद्धार किया गया, दृढ़ नवीन दुर्गों की एक श्रृंखला बना दी और वहां अनुभवी सेनानायकों के नेतृत्व में सशक्त सेनाएं रखीं। समाना और दीपालपुर में सैनिक छावनियां स्थापित की गयीं। यहां के सैनिक मंगोल आक्रमणों का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

(२) **सैन्य वृद्धि**—मंगोल आक्रमणों को रोकने और उनसे सल्तनत की रक्षा करने के लिए सुलतानों के लिए एक विशाल सेना रखना अनिवार्य हो गया। उन्होंने अपनी सैन्य शक्ति में वृद्धि की। इससे सुलतान को अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आन्तरिक स्थिति दृढ़ बनाने मे सहायता मिली, सुलतान इस बढ़ी हुई सेना से विद्रोहों का दमन करके आन्तरिक शांति, सुरक्षा और व्यवस्था स्थापित कर सके। सुलतानों को आन्तरिक विद्रोहों को रोकने के लिये प्रयत्नशील रहना पड़ता था जिससे मंगोल विद्रोहों द्वारा उत्पन्न अराजकता व अव्यवस्था का लाभ नहीं उठा सके।

(३) **साम्राज्य विस्तार में व्यवधान**—निरन्तर मंगोल आक्रमणों ने दिल्ली सल्तनत के विस्तार को रोक दिया। मंगोल आक्रमणों के भय से सुलतान सदा राजधानी में या उसके समीप ही बने रहते थे। उन्होंने दूरस्थ प्रदेशों की विजय की नीति को परित्याग कर दिया। उन्होंने सुरक्षा और शासन प्रबंध इस प्रकार किया जिससे मंगोल आक्रमणकारियों का सफल प्रतिरोध किया जा सके। इसका परिणाम यह हुआ कि सुलतान अन्य दिशाओं की ओर न तो कोई प्रगति कर पाये और न अन्य क्षेत्रों में कोई सुधार या परिवर्तन ही कर पाये। उनके लिये स्वतंत्र हिन्दू राज्यों को जीतना असंभव हो गया और गुजरात, बंगाल तथा दक्षिण के प्रदेशों पर उनका नियंत्रण शिथिल हो गया।

(४) **भारत में नये मुसलमान**—मंगोलों के आक्रमणों के कारण मध्य एशिया के इस्लाम के अन्य अनुयायी भारत में आ गये। उनके आने का मार्ग प्रशस्त हो

गया। कई मंगोल भी दिल्ली के पार्श्ववर्ती क्षेत्र में बस गये। ये नवीन मुसलमान कहलाये। इससे मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि हुई। ये नवीन मुसलमान सल्तनत की राजनीति और कुचक्रों में सक्रिय भाग लेने लगे। कालान्तर में भारतीय मुसलमानों और इन नवीन मुसलमानों में मैत्री-संबंध हो गये।

(५) **प्रयाणाध्यक्ष** (Warden of the Marches) **का महत्व**– मंगोलों के आक्रमणों को रोकने के लिये सीमान्त क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ सेनानायक रखा जाता था और उसे प्रयाणाध्यक्ष कहते थे। मंगोलों को निरन्तर परास्त कर खदेड़ने से और उसके पास विशाल सेना होने से प्रयाणाध्यक्ष का महत्व अत्यधिक बढ़ गया था। दिल्ली की राजनीति और षड्यत्रों में वह सक्रिय भाग लेता था और यह लगभग एक वैधानिक परम्परा-सी बन गई थी कि प्रयाणाध्यक्ष या तो सुलतान बना दिया जाय अथवा पारस्परिक ईर्ष्या और वैमनस्य के कारण उसका वध कर दिया जाता था। सीमान्त क्षेत्र के प्रयाणाध्यक्ष शेरखां और जफरखां ईर्ष्या के ही शिकार हुए, परन्तु बलबन, जलालुद्दीन और गाजी मलिक दिल्ली के सुलतान हो गये।

(६) **तैमूर और बाबर के आक्रमण**—मंगोलों के आक्रमणों ने भारत में तैमूर और बाबर के हमलों का मार्ग प्रशस्त किया। अराजकता, अव्यवस्था, तीव्र असंतोष और विद्रोहात्मक वातावरण का लाभ उठा कर तैमूर और बाबर ने भारत पर आक्रमण किया जिससे मुगल राजवंश स्थापित हो गया।

दिल्ली सुलतानों की पश्चिमोत्तर सीमा-नीति

दिल्ली सल्तनत के पश्चिमोत्तर सीमाक्षेत्र में सिंध, मुलतान और पंजाब के क्षेत्र थे। इसी में बोलन और खैबर के पर्वतीय दर्रे हैं जहां से विदेशी भारत में प्रवेश कर विशाल सेनाओं से दिल्ली सल्तनत पर आक्रमण करते थे। आक्रमणकारी बढ़ते हुए राजधानी दिल्ली तक चले आते थे। दिल्ली सुलतानों के समय में मंगोलों ने सन् १२२१ से १३२६ तक निरन्तर आक्रमण किये। इन आक्रमणों का विस्तृत उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इन आक्रमणों के बाद इसी पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र से तैमूर का और बाद में बाबर का आक्रमण हुआ। इन दोनों आक्रमणों का वर्णन भी पिछले पृष्ठों में है। इन आक्रमणों को रोकने और आक्रमणकारियों को परास्त कर खदेड़ने के लिये दिल्ली के सुलतानों ने विशिष्ट नीति अपनायी। बलबन और अलाउद्दीन ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने आक्रमणकारियों के मार्ग मे पड़ने वाले प्राचीन दुर्गों का जीर्णोद्धार किया, नवीन दुर्गों की शृंखला-सी निर्मित की और वहां प्रशिक्षित सैनिक रखे, सैनिक छावनियाँ स्थापित कीं और सर्वश्रेष्ठ अनुभवी सेनानायकों को सुरक्षा के लिए और आक्रमणकारियों का सामना करने के लिये वहां नियुक्त किये। इनका प्रमुख अधिकारी प्रयाणाध्यक्ष कहा जाता था। कुछ सुलतानों ने दिल्ली में भी आक्रमणकारियों से युद्ध करने के लिये एक विशाल स्थायी सेना भी रखी।

पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र में हुए आक्रमणों ने और सीमान्त नीति ने दिल्ली सल्तनत को अत्यधिक प्रभावित किया। विदेशियों के इन आक्रमणों, लूट, विध्वंस और भीषण नर संहार से ग्रामीण क्षेत्र अत्यधिक ग्रस्त हुए। नगर उजड़ गये, कृषि और

व्यापार अस्त-व्यस्त हो गये। लोगों की आर्थिक दशा दयनीय हो गयी। दिल्ली की राजनीति में भयंकर उथल-पुथल हुए और राजवंशों का भी परिवर्तन हो गया। साम्राज्य विस्तार में व्यवधान उत्पन्न हुआ। सुलतानों ने आक्रमणकारियों का सामना करने के कारण दूरस्थ प्रदेशों को विजय करने की नीति त्याग दी। आक्रमणकारियों के प्रति कुछ सुलतान इतने अधिक व्यस्त रहे कि वे आन्तरिक प्रशासकीय सुधारों और परिवर्तनों की ओर किंचित भी ध्यान नहीं दे सके। जब कभी दिल्ली सुलतानों ने सीमा क्षेत्र की सुरक्षा की अवहेलना की, तभी आक्रमणकारी सरलता से दिल्ली तक पहुँच गये और सुलतान के लिये समस्या बन गये। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक को ऐसी विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा।

पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र की अवहेलना करने पर वहां का प्रयाणाध्यक्ष अधिक शक्तिशाली होने से वह सुलतान पर हावी हो जाता था। सुलतान के दुर्बल होने पर वह उसे पदच्युत कर अपनी सीमा प्रदेश की सेवाओं के कारण स्वयं सुलतान हो जाता था। सीमांत क्षेत्र की सुरक्षा के कारण सुलतानों के हाथों में लौह शक्ति आ गयी थी। उनकी विशाल सेना ने उन्हें सर्वाधिक शक्तिशाली बना दिया था। जब सुलतान निर्बल, अयोग्य और निकम्मे होते थे, तब सेना और सशक्त सामन्त विद्रोह कर उठते और अपने नेता को नवीन सुलतान बना देते थे। इस प्रकार सीमान्त क्षेत्र के आक्रमणों और नीति ने दिल्ली सल्तनत को अत्यधिक प्रभावित किया।

दिल्ली सुलतानों के राजत्व का सिद्धान्त
(Theory of kingship of the Delhi Sultans)

राजत्व का अर्थ—राजत्व से उन सिद्धान्तों, नीतियों व कार्यों से तात्पर्य है जो कोई नरेश या सुलतान अपनी प्रभुसत्ता, अधिकार एवं शक्ति को स्पष्ट करने के लिये अपनाता है। दिल्ली सल्तनत का सर्वोच्च शासक सुलतान था। सुलतान अल्लाह का प्रतिनिधि और पृथ्वी पर उसका प्रतीक माना जाता था। सुल्तान के हाथों में ही राज्य की समस्त शक्ति और अधिकार केन्द्रीभूत थे। वह उनका प्रमुख स्रोत था। इससे राजतंत्र प्रतिष्ठित हुआ। सुलतान के निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक होने से यह राजतंत्र असीमित और अनियंत्रित हो गया था। अपने अधिकारों व शक्तियों का प्रयोग करने के लिये कोई सुलतान पारस्परिक सहयोग और दमन नीति का अनुकरण करते थे, तो कोई रक्त और लौह की नीति अपनाते थे।

दास सुलतान और राजत्व का सिद्धान्त

दिल्ली सल्तनत का संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक अपने अल्पकालीन शासन के कारण राजत्व का सिद्धान्त स्पष्ट और समुचित रूप से प्रतिपादित नहीं कर सका। पर सुलतान इल्तुतमिश ने तुर्की साम्राज्य को स्थापित और संगठित किया और राजत्व के सिद्धान्त को अपनाने का प्रयास किया। यद्यपि वह अपने को राज्य का सर्वोच्च अधिपति मानता था, पर उसने सामन्तों, उच्च पदाधिकारियों और सेनानायकों को रुष्ट करने की अपेक्षा, उसने उनका सहयोग और समर्थन प्राप्त किया। अपने राजतंत्र की दृढ़ता के लिये उसने सेना को आधार बनाया। राजत्व की शक्ति को प्रदर्शित करने के

लिये उसने नवीन मुद्राएँ प्रसारित कीं और उनमें अरबी भाषा में अपने नाम के साथ-साथ खलीफा का नाम भी अंकित करवाया । अपने मुस्लिम राज़ को वैधानिक और कानूनी स्वरूप देने के लिये इल्तुतमिश ने तत्कालीन मुस्लिम जगत के राजनैतिक और धार्मिक नेता बगदाद के खलीफा की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली थी । खलीफा ने उसके राज्य को स्वीकार करते हुऐ उसे सम्मान सूचक राजकीय वेशभूषा प्रदान की थी । इल्तुतमिश ने अपनी राजत्व शक्ति को दृढ़ करने के लिये, अपने विरोधियों का एकता से सामना करने के लिये नवीन राजसभा स्थापित की और उसमें अपने ही समर्थक और सहयोगी सामन्त रखे और प्रशासन में इनको ऊँचे पदों पर नियुक्त किया । इन सामन्तों को "चरागान" या चालीस दासों का दल कहा गया है ।

इल्तुतमिश के पश्चात् रजिया ने राजत्व के सिद्धान्त को दृढ़ करने का प्रयत्न किया और स्वयं अपने अधिकारों व शक्तियों का उपयोग किया । उसने प्रशासन में अधिक रुचि ली । वह स्वयं राजसभा में उपस्थित होती थी, न्याय करती थी और प्रशासकीय कार्यों को देखती थी । अश्व पर सवार होकर बाहर आती जाती थी और युद्ध काल में सैन्य संचालन भी करती थी । वह अधिक स्वतंत्रता और दृढ़ता से राजत्व को अपना रही थी । इससे तथा उसकी स्त्री सुलभ दुर्बलता और दुर्गुणों के कारण अमीर, मलिक और उल्मा वर्ग के लोग उसके विरुद्ध हो गये और उसे पदच्युत कर दिया ।

रजिया के बाद राजत्व के सिद्धान्त का नवीन ढंग से प्रतिपादन करने वाला सुलतान बलबन था । नासिरुद्दीन के शासनकाल में ही वह वास्तविक सुलतान बन चुका था । वह सुलतान के राजवंश को अत्यंत ही श्रेष्ठ और कुलीन मानता था । इस-लिये उसने अपनी दासता के कलंक के निवारणार्थ अपने आपको एक तुर्की वीर अफरे-सियाब वंश से सम्बन्धित बतलाया । अब उसने यह प्रतिपादित किया कि विश्व में सुलतान ही सर्वश्रेष्ठ है, उसके समान कोई भी अन्य मानव नहीं है । उसमें देवत्व है । सुलतान का हृदय ईश्वर का एक विशिष्ट भंडार गृह है । दूसरे शब्दों में वह राजत्व के दैवी अधिकारों में विश्वास करता था । प्रजा को सुलतान के आदेशों का पालन ईश्वर की आज्ञा के समान करना चाहिये । लोगों को सुलतान के विरुद्ध विद्रोह नहीं करना चाहिये और करते हैं तो उसका निर्दयता से दमन करना चाहिये । बलबन ने तुगरिल बेग के विद्रोह को नृशंसता से कुचल दिया ।

राजत्व के दैवी अधिकारों में विश्वास करने के कारण बलबन निरंकुश स्वेच्छा-चारी राजतंत्र में भी विश्वास करता था । वह निरंकुश स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित सुलतान था । उसके विचार में सुलतान के अधिकार असीमित थे । निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता की अभिवृद्धि के लिये बलबन ने अमीरों, मलिकों और विरोधियों का दमन किया । उसने विरोधी चालीस अमीरों को शक्तिहीन कर दिया ।

राज्य में सुलतान सर्वोच्च और सर्वेसर्वा है, इसलिये सुलतान को अपने चरित्र में भी श्रेष्ठता, शुचिता और दृढ़ता रखना चाहिये । उसे मानवीय दुर्बलताओं व राजकीय दुर्गुणों से मुक्त होना चाहिये । यही कारण था कि बलबन ने अपनी चारित्रिक पवित्रता को बनाये रखा । सुलतान और शासक के रूप में उसने अपनी मानवीय भावनाओं और

दुर्बलताओं को नृशंसता से दबा दिया। वह मद्यपान, अत्यधिक विलासी और लिप्सा प्रिय जीवन से दूर रहा।

वह सुलतान के पद की प्रतिष्ठा व गौरव को, उसकी कुलीनता को बनाये रखता था। वह प्रशासन में उच्च कुलोत्पन्न योग्य व्यक्तियों को ही पदों पर नियुक्त करता था। वह साधारण जनता या किसी मामूली व्यक्ति से भेंट करना या वार्ता करना अनुचित समझता था। वह अपने व्यक्तिगत सेवकों और अंगरक्षकों के संमुख भी सुलतान की गौरवमयी कठोरता से व्यवहार करता था। सुलतान के पद के गौरव यश और प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि के लिये उसने ठोस कदम उठाये राजसभा में अनुशासन और नियंत्रण के कठोर नियम बनाये। राजसभा में मद्यपान करना, या हंसना दंडनीय अपराध माना जाता था।

बलवन की धारणा थी कि सुलतान सर्वोच्च व सर्व शक्तिमान होने से, न्यायदान में भी निष्पक्ष होना चाहिये। अपराधी और अन्यायी को दंड देना और समुचित न्याय करना, वह सुलतान का एक प्रमुख कर्तव्य समझता था। इसलिये उसने अवध और बदायूं के प्रांतपतियों को अपराध के लिये कठोरता से दंडित किया। यद्यपि बलबन ने अपनी मुद्राओं में अपना और खलीफा का नाम अंकित किया था, पर वह अपने को खलीफा के अधीन नहीं मानता था।

खिलजी सुलतान और राजत्व का सिद्धान्त

बलबन के दुर्बल उत्तराधिकारियों के समय राजत्व के प्रमुख सिद्धान्तों के दृढ़ प्रतिपादन का ह्रास हुआ और सुलतान की शक्ति और अधिकार क्षीण हो गये। पर उसके बाद भी खिलजी साम्राज्य के संस्थापक सुलतान जलालुद्दीन खिलजी के शासन काल में राजत्व के सिद्धान्तों में परिवर्तन हुआ। अमीरों व मलिकों के असन्तोष के निवारणार्थ, प्रजाहित के लिये तथा प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के बाहुल्य के कारण जलालुद्दीन ने बलवन की स्वेच्छाचारिता और कठोरता की, लौह और रक्त की नीति त्याग दी और उदारता, दयालुता, सहिष्णुता और क्षमाशीलता की नीति अपनायी। फलतः उसकी स्वयं की हत्या करके अलाउद्दीन सुलतान बन गया।

सुलतान अलाउद्दीन भी अपने को साम्राज्य का सर्वेसर्वा और सर्वोच्च मानता था। वह भी बलबन की भांति निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता में विश्वास करता था। वह अनियंत्रित सत्ता के साथ एक निरंकुश शासक की भांति शासन करता था। वह अपनी सत्ता सर्वोच्च और असीमित मानता था और अपने कार्यों में किसी का भी हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता था। उसकी इच्छा ही कानून और विधान थी। इससे उसने बलवन की लौह और रक्त की नीति का अनुकरण किया और कठोर दमन नीति को अपनाया। उसके राजत्व के सिद्धान्त का परिचय काजी मुगीसुद्दीन को दिये गये उत्तर से स्पष्ट होता है। सुलतान अलाउद्दीन ने कहा था कि, "विद्रोहों को रोकने के लिये, जिनमें सहस्रों व्यक्तियों के प्राण चले जाते हैं, मैं ऐसी आज्ञाएँ देता हूँ जो मैं राज्य तथा प्रजा के लिये हितकर समझता हूँ। लोग असावधान और अशिष्ट हो गये हैं तथा मेरी आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं। अतएव विवश होकर उन्हें आज्ञा पालक बनाने के लिये मुझे कठोरता का व्यवहार करना पड़ता है। मैं यह नहीं जानता कि

क्या न्याय संगत है और क्या न्याय असंगत । जो कुछ में राज्य के लिये हितकर समझता हूँ. उसी की मैं आज्ञा देता हूँ, न्याय के दिन परमात्मा के यहाँ मेरा क्या होगा, इसे मैं नहीं जानता ।" इससे स्पष्ट हैं कि वह अपने राजत्व के सिद्धान्त मे इतना दृढ़ था कि प्रशासन में जिस समस्या का वह निराकरण करना चाहता था, उसके लिये उसे चाहे जितने कठोर उपायों का अवलंबन करना पड़ता, वह लेश मात्र भी हिचकता नहीं था।

सुलतान अलाउद्दीन ने प्रशासन में अनेक सुधार और परिवर्तन किये तथा इन के लिये विविध कानून व नियम भी बनाये एवं कठोरतापूर्वक इनका पालन भी करवाया । राजस्व और बाजार नियंत्रण सम्बन्धी सुधार और नियम इसके उदाहरण हैं। उसके द्वारा संस्थापित आन्तरिक प्रशासन का प्रत्येक अग उसकी नीति मे अनुप्राणि था, एवं उसमें उसके व्यक्तित्व, और निरंकुशता के चिन्ह स्पष्ट झलकते थे ।

आन्तरिक विद्रोहों का दमन और शांति-व्यवस्था प्रतिष्ठित करने के लिये तथा अपने स्वेच्छाचारी शासन के लिये उसने अमीरों, मलिकों और सरदारों की शक्ति और अधिकार कम कर दिये एवं उन पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये । सामन्तों को उसने अपने पूर्ण नियंत्रण में कर लिया था। वह अपने राजत्व के सिद्धान्तों और प्रशासन में न तो सामन्तों का और न उल्माओं का हस्तक्षेप ही सहन कर सकता था। उसने राजनीति और प्रशासन को उल्माओं के प्रभाव से मुक्त रखा। वह प्रथम सुलतान था जिसने दृढ़ता और कठोरता से ऐसा किया तथा अपराधी होने पर उल्मा वर्ग के लोगों को दंडित भी किया ।

तुगलक सुल्तान और राजत्व का सिद्धान्त

खिलजी शासन के पतन के बाद गयासुद्दीन तुगलक सुलतान बना । वह भी निरंकुश राजतंत्र में विश्वास करता था। परन्तु उसने उदारता, दायलुता और सान्त्वना की नीति का अनुकरण किया। उसने स्वेच्छाचारिता के साथ-साथ प्रजाहित के सिद्धान्त को भी माना । उसने इस तथ्य का प्रतिपादन किया कि राज्य का हित कृषकों के हित में निहित है । फलत: उसने प्रशासन में सुधार और परिवर्तन किये । इससे सुलतान की लोकप्रियता और सिंहासन की प्रतिष्ठा बढ़ गयी । गयासुद्दीन तुगलक का उत्तराधिकारी मुहम्मद तुगलक था । मुहम्मद तुगलक भी अपने पूर्व सुलतानों के अनुसार निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन मे विश्वास करता था। असीमित अधिकारों और अनियंत्रित राजसत्ता मे दृढ़ धारणा रखने के बावजूद भी मुहम्मद तुगलक एक आदर्शवादी सुलतान था । उसने प्रजाहित की ओर विशेष ध्यान दिया और महत्वाकांक्षी सुधार और परिवर्तन करने के प्रयास किये। परन्तु कुछ स्वयं की दुर्बलताओं के कारण, कुछ अधिकारियों व प्रजा के असहयोग से वह असफल रहा। वह अपने युग से आगे था । इतना होने पर भी उसने केन्द्रीय सत्ता की सर्वोच्च प्रभुता बनाये रखी । यद्यपि उसकी योजनाओं से उसकी शक्ति का ह्रास हुआ और विद्रोहों से साम्राज्य का विघटन हो गया, परन्तु उसने प्रशासन और राजनीत मे उल्माओं का हस्तक्षेप सहन नहीं किया। उसने प्रशासन और राजनीति को धर्म से प्रथक रखा। यद्यपि वह उल्माओं और विद्वानों का आदर करता था, परन्तु उनका प्रभुत्व उसने

धार्मिक कार्यों तक ही सीमित रखा। शासन कार्यों में उसने धर्म के प्रति उदासीनता और तटस्थता की नीति अपनायी।

मुहम्मद तुगलक का उत्तराधिकारी सुलतान फिरोजशाह था। इसके शासन काल में राजत्व के सिद्धान्त में परिवर्तन हुआ। यद्यपि वह निरंकुश शासक था, पर राज्य की अपेक्षा धर्म को सर्वोच्च स्थान प्रदान करता था। उसने उल्माओं के परामर्श और आदेशों के अनुमार राज्य किया। इससे उल्मा वर्ग का प्राधान्य हो गया और राज्य धर्म सापेक्ष हो गया। विधर्मियों पर विविध प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। धर्मांध और असहिष्णु होने पर भी फिरोज जन कल्याण की ओर झुका ओर जनहित के कार्य किये। इससे मुसलमानों का अधिक कल्याण होता था, उसकी बहु-संख्यक हिन्दू प्रजा का नहीं। वह कृषकों का हितचिंतक था। उसके विलासी और निर्बल उत्तराधिकारियों के शासन काल में केन्द्रीय प्रभुता और सर्वोच्च सत्ता क्षीण हो गयी थी। सुलतान दुर्बल और अयोग्य होने से शक्तिशाली अमीरों व सरदारों के हाथों में कठपुतली हो गये और प्रांतीय सूबेदारों ने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये।

सैयद सुलतान और राजत्व का सिद्धान्त

तुगलक सुलतानों के बाद जो सुलतान हुए वे अफगान थे। इन अफगान सुल-तानों के प्रादुर्भाव से दिल्ली सुलतानों के राजत्व के सिद्धान्त में परिवर्तन हुआ। अफ-गान सुलतान योग्य, अनुभवी, प्रतिभाशाली और प्रजावत्सल शासक नहीं थे। वे दृढ़ और कठोर भी नहीं थे। उन्होंने अफगान अमीरों व सरदारों को व्यापक रूप से विस्तृत जागीरें दी थीं। इससे अफगान लोग सुलतान को चाहते तो थे, पर वे स्वामी से घृणा करते थे। वे नहीं चाहते थे कि उनका सुलतान उन पर स्वामी के समान शासन करे और उन्हें अपने नियंत्रण में रखे। इसका कारण अफगानों के चरित्र की विशेषता है। अफगान स्वतंत्रता और युद्ध-प्रिय व्यक्ति होते थे। उन्हें अपनी आजादी, जाति और वंश का बड़ा गर्व होता था। इससे वे किसी की प्रभुता स्वीकार नहीं कर सकते थे। वे अपने पर किसी का अंकुश या नियंत्रण पसन्द नहीं करते थे। वे शांति व्यवस्था और प्रशासन के लिये सुलतान को चाहते थे, परन्तु वे यह नहीं सहन कर सकते थे कि उनका सुलतान उनकी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करे और बाधक बने। वे अपने सुलतान या शासक को अपना स्वामी नहीं, अपितु अपना सहयोगी या अपने बराबर के व्यक्तियों में सर्वप्रथम मानते थे। क्योंकि उनमें से ही कोई शक्तिशाली अमीर या प्रांतीय शासक परिस्थिति का लाभ उठाकर सुलतान बन जाता था। इसके अतिरिक्त अफगान मलिक और अमीर यह भी सोचते थे कि उनके पास जो अधीनस्थ प्रदेश या जागीरें हैं, वे उन्हें सुलतान की अनुकम्पा से नहीं, अपितु उनके स्वयं के बाहुबल और विजय से प्राप्त हुई हैं। वे उस क्षेत्र के स्वतंत्र शासक हैं और सुलतान को उनके आंतरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। अफगान मलिक और अमीर सुलतान को निर्धारित कर और सेना देते थे, इसलिए उनकी यह धारणा थी कि सल्तनत का अस्तित्व और स्थायित्व उनकी शक्ति और सहयोग पर निर्भर है और ऐसी दशा में यदि सुलतान इन अमीरों और सरदारों की उपेक्षा करते, तो अमीरों व सर-

दारों में तीव्र असन्तोष उत्पन्न होता और सुलतान के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया होती थी। अतएव ऐसे स्वतंत्र, अवज्ञ और शक्ति सम्पन्न सरदारों को दबाना और नियंत्रण में रखना सुव्यवस्थित शासन-संचालन के लिये अत्यन्त ही अनिवार्य था। जब सुलतानों ने ऐसे सशक्त उद्दंड सरदारों को नियंत्रित करने का प्रयास किया, तभी उन्होंने सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिये और सामन्तों व सुलतान में गहरी खाई उत्पन्न हो जाती थी।

लोदी सुलतान और राजत्व का सिद्धान्त

सैयद सुलतानों ने अनेक विकट समस्याओं के कारण राजत्व के सिद्धान्तों में कोई नवीन देन नहीं दी। वे स्वयं कुशल सुलतान और सफल शासक नहीं होने से अफगान सामन्तों के सहयोग और सहायता से राज्य संचालन करते थे। परन्तु उनके उत्तराधिकारी लोदी सुलतानों के समय राजत्व में परिवर्तन हुए। सुलतान बहलोल लोदी ने यह अनुभव कर लिया था कि अफगान अमीर और सरदार, सदा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उपभोग करने के कारण, तुर्की प्रभुत्व सिद्धान्त को पुनः सहन नहीं कर सकेंगे। वे सुलतान के प्रभुत्व और दृढ़ हस्तक्षेप का विरोध करेंगे। इसलिये अमीरों की प्रतिक्रिया और उनका विरोध उसकी सल्तनत और शक्ति के लिये विनाशकारी हो सकता था। इसलिए उसने सार्वजनिक सभा में यह घोषणा कर दी थी कि वह अफगान अमीरों और सरदारों में से ही एक है एवं वह अपने को केवल अमीरों का अमीर समझता है। उसने कभी भी सुलतान होने का वैभव और शान-शौकत प्रदर्शित नहीं की, उसने निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक होने का दावा नहीं किया; यहाँ तक कि वह न तो राजसिंहासन पर सुलतान के रूप में ही बैठा और न अमीरों को राजसभा में खड़े रहने को बाध्य ही किया। वह कभी भी अमीरों को अप्रसन्न या रुष्ट नहीं करना चाहता था। वह उन्हें अपना सहयोगी और सहायक समझकर उनके साथ कालीन पर बैठकर विचार विनिमय करता था। यदि कोई शक्तिशाली और उच्च श्रेणी का अमीर या सरदार उससे रुष्ट हो जाता था, तो वह उससे उसके निवास स्थान पर जा कर, पारस्परिक कटुता और मनोमालिन्य को दूर कर उसे अपने पक्ष में कर लेता था। विषम परिस्थिति को देखकर वह कभी-कभी रुष्ट अमीर के सम्मुख अपनी तलवार खोलकर रख देता था और अपनी पगड़ी उठा कर कहता था कि यदि आप मुझे अयोग्य और निकम्मा समझते हैं तो किसी अन्य को सुलतान बना लीजिये। इस विनयशीलता और समर्पण की नीति से अफगान अमीर उससे प्रसन्न हो जाते थे। बहलोल ने समर्पण की यह नीति इसलिये अपनायी कि अफगान अमीरों ने उसे सामूहिक रूप से सुलतान बनने के लिये निर्वाचित नहीं किया था, अपितु उसके चाचा ने उसे अफगानों का नेता नियुक्त किया था। फलतः वह अफगान अमीरों से दबता था।

इन बातों से स्पष्ट है कि बहलोल लोदी का राजत्व का सिद्धान्त बलबन या खिलजी या तुगलक सुलतानों की अपेक्षा अधिक संकीर्ण था। सुलतान का प्रभुत्व और पद की प्रतिष्ठा क्षीण हो गयी। इस नीति का कुप्रभाव यह हुआ कि (i) अमीरों और सरदारों की प्रतिष्ठा, गौरव, प्रभाव, सत्ता और शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। (ii) अमीरों और सरदारों में दुर्बल सुलतान के होने पर राजसिंहासन प्राप्त करने की

महत्वाकांक्षा जागृत हो गयी। (iii) ताज की प्रतिष्ठा कम हो गयी और राजत्व अमीरों तक ही सीमित रह गया। (iv) शासन की एकरूपता नष्ट हो गयी। एक स्वेच्छाचारी सुलतान के स्थान पर अनेकानेक अमीर अपने क्षेत्रों में मनमाना शासन करने लगे और प्रशासन में कोई प्रजाहित के सुधार या परिवर्तन नहीं हो सके। शासन अमीरों की इच्छा पर निर्भर हो गया। (v) सुलतान की शक्ति और प्रभुत्व इतना क्षीण हो गया था कि वह केवल एक श्रेष्ठ उच्च अफगान अमीर ही रह गया था, प्रजा का सर्वोच्च शासक और सार्वभौमसत्ता वाला सुलतान नहीं था। राज्य का एकतंत्रात्मक व राजतंत्रात्मक स्वरूप समाप्त हो गया। परन्तु इस नीति का लाभ यह हुआ कि बहलोललोदी अफगान अमीरों व सरदारों के सहयोग से दीर्घकाल तक शासन कर सका। अफगान अमीरों और अनुयायियों ने बहलोल का साथ दिया और उसका समर्थन किया।

बहलोल के उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी ने राजत्व की इस उपरोक्त नीति में परिवर्तन कर दिया। उसने अफगान अमीरों और सरदारों की खुशामद और उदारता की नीति त्याग दी। उसने उन्हें नियन्त्रित किया और उनकी शक्ति कम कर दी तथा उनकी व्यक्तिवादी स्वतंत्र प्रवृत्तियों का दमन किया। उन पर नियंत्रण रखने के लिये तथा उनकी गतिविधियों और कार्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिये उसने गुप्तचर नियुक्त किये। वह स्वयं राजसभा में सुलतान के समान सिंहासन पर बैठता था, और अमीरों व सरदारों को राजसभा में उपस्थित करवाता था और उन्हें सुलतान के आदेश और आज्ञाओं का पालन करने के लिये बाध्य करता था। इस कठोर नीति से वह सल्तनत के पुराने राजत्व के सिद्धान्त को पुनः कार्यान्वित कर सका और सुलतान के पद की लुप्त प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर सका। परन्तु स्वतंत्रता प्रिय अफगान राजत्व के इस नवीन परिवर्तन को स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे। वे धीरे-धीरे रुष्ट होने लगे।

सिकन्दर लोदी के उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी ने तुर्की सुलतानों के राजत्व के सिद्धान्तों को अपनाया। वह उनके समान सुलतान की सर्वोच्च शक्ति, सार्वभौमिकता और निष्पक्षता में विश्वास करता था। वह उनके समान ही निरंकुश व स्वेच्छाचारिता में और केन्द्रीय राजतन्त्र में विश्वास करता था। इसलिये उसने यह घोषणा करदी कि राज्य का कोई संबंधी नहीं होता। सभी लोग राजा या सुलतान के अधीन सामन्त और प्रजा होते हैं। इस सिद्धान्त से उसने अमीरों, मलिकों और सामन्तों की स्वतन्त्रता और अधिकार कम कर दिये। वह अपने आपको सर्वश्रेष्ठ और शक्ति सम्पन्न समझकर रत्नजटित सिंहासन पर राजसभा में बैठता था और समस्त अमीरों व सरदारों को राजसभा में अपने सम्मुख खड़ा रखता था। जब तक वह राजसिंहासन पर बैठा रहता था, कोई भी राजसभा मे बैठ नहीं सकता था। इब्राहीम लोदी ने अफगानी परम्परा को त्यागकर सामन्तों को राजसभा में अपने हाथों को अपने वक्षस्थल पर कैंची के समान रखकर विनयशीलता, नम्रता और समर्पण के भाव से खड़े रहने के लिये बाध्य किया। वह इन सामन्तों के साथ एक कालीन पर बैठना हीनता समझता था। अफगान अमीर और सरदार जो सुलतान को अपने में से ही एक समझने के अभ्यस्त थे, इस अपमान को सहन नहीं कर सके। इब्राहीम सामन्तों के प्रति व्यवहार करने में हठी,

अहंकारी और अविश्वासी भी था। उसने कठोरतापूर्वक नियंत्रण की नीति अपनायी। इससे स्वार्थ लोलुप स्वतन्त्रता प्रिय अफगान अमीर व सरदार इब्राहीम से अधिक असन्तुष्ट हो गये और वे विरोध तथा प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित हो गये। उन्होंने आजम हुमायूं, इस्माइलखां, बहादुरखां आदि के नेतृत्व में सुलतान के विरुद्ध शस्त्र उठा लिये। उनमें और सुलतान में भयंकर युद्ध हुआ। इस विरोध व प्रतिहिंसा का परिणाम यह हुआ कि अमीरों के नेताओं ने इब्राहीम के विरुद्ध बाबर को निमंत्रण दिया। पानीपत के युद्ध में बाबर ने उसे परास्त कर दिया। यदि अपने राजत्व के सिद्धान्त को कार्यान्वित करने में इब्राहीम बुद्धिमत्ता, संयम, सावधानी, सहृदयता, नम्रता और उदारता से काम लेता तो उसे सफलता प्राप्त होती। वह अफगानों के चरित्र और भावनाओं को समझ नहीं सका।

दिल्ली सल्तनत की शासन-व्यवस्था

दिल्ली सुलतानों की शासन-व्यवस्था के विभिन्न अगों का वर्णन निम्नलिखित है:—

खलीफा का नाम मात्र का आधिपत्य—मुस्लिम जगत का धार्मिक और राजनैतिक नेता खलीफा माना जाता था। वह विश्व के सभी मुसलमानों का शासक समझा जाता था। वह पैगम्बर का प्रतिनिधि माना जाता था और इस्लाम धर्म तथा मुसलमानी साम्राज्य का रक्षक समझा जाता था। उसका राज्य पश्चिमी एशिया में फैला हुआ था। सातवीं और आठवीं सदी में खलीफाओं की शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी हुई थी। उन्होंने अपने साम्राज्य को जिसे खिलाफत कहा जाता था विभिन्न प्रांतों में विभक्त करके वहाँ अपने सूबेदार नियुक्त किये थे। ये मुस्लिम सूबेदार और अन्य स्वतन्त्र मुस्लिम शासक अपने आपको खलीफा के अधीन मानते थे। यद्यपि तुर्कों ने और बाद में मंगोलों ने खिलाफत को नष्ट कर दिया था, परन्तु बाह्य रूप मे खलीफा का प्रभुत्व माना जाता रहा। मुस्लिम शासक नाममात्र के लिये खलीफा का नियंत्रण मानते थे और उसे अपना नेता मानते थे। दिल्ली के सुलतानों ने इस परम्परा के आधार पर अपनी शक्ति और सत्ता को दृढ़ करने के लिये खलीफा के नाम की शरण ली। दिल्ली के कई सुलतानों ने अपने पद को न्याय संगत बनाने के लिये, मुस्लिम जगत में अपना प्रभाव बढ़ाने तथा धर्म के क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा की वृद्धि करने के लिये खलीफा की स्वीकृति प्राप्त की। इल्तुतमिश, मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक ने खलीफा से मानपत्र और खिलाफत (राजसी वेशभूषा) प्राप्त की। सुलतानों ने अपने पद की मान्यता देने के लिये खलीफा से प्रमाणपत्र प्राप्त किये। खलीफा के नाम में कुछ सुलतानों ने खुतबा भी पढ़वाया और अपने सिक्कों पर अपने नाम के साथ-साथ खलीफा का नाम भी अंकित करवाया। परन्तु यह प्रभुत्व बाह्य रूप से ही था। राज्य का वास्तविक अधिकार सुलतान को ही प्राप्त था। खलीफा का नाम केवल परम्परा तथा औचित्य की दृष्टि से अंकित किया जाता था। उसके प्रभुत्व का आधार उसका नैतिक बल था। अनेक सुलतानों ने खलीफा की कोई चिंता ही नहीं की। खलीफा की आधीनता की परम्परा को तोड़ने वाला प्रथम सुलतान अलाउद्दीन खिलजी था। उसके पुत्र मुबारक ने भी इस परम्परा को नहीं माना। इसलिये उसने स्वयं खलीफा की उपाधि धारण कर ली।

परन्तु दिल्ली के सुलतान नाममात्र के लिये ही खलीफा का आधिपत्य स्वीकार करते थे।

सुलतान—इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर सल्तनत के मुस्लिम राज्य का शासक माना जाता था और सुलतान उसका प्रतिनिधि होता था।

(i) **सुलतान के गुण और उसका निर्वाचन**—इस्लाम के अनुसार सुलतान बनने वाले व्यक्ति में कुछ विशिष्ट गुण होना चाहिये, जैसे—वयस्कता, धर्मनिष्ठा, नेतृत्व करने की क्षमता, न्यायशीलता, शरीर की स्वस्थता, आदि। वह व्यक्ति पुरुष हो, स्त्री नहीं, स्वतंत्र हो और विकलांग नहीं हो। दिल्ली के सुलतानों में इन सभी गुणों का समावेश नहीं था। दास सुलतान स्वतंत्र नहीं थे, कैकुबाद विकलांग था, उसे लकुवा हो गया था, रजिया स्त्री थी, मुहम्मद तुगलक सुलतान बनते समय अवयस्क था और अनेक सुलतानों में नेतृत्व की योग्यता व दक्षता नहीं थी। उत्तराधिकार के नियम के अभाव में साधारणतया अमीर और सरदार अपने समूह व श्रेणी में से ही किसी को सुलतान निर्वाचित कर लेते थे। यह निर्वाचन जनता की इच्छा से नहीं होता था। कभी-कभी शक्तिशाली अमीर अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिये अयोग्य और निकम्मे व्यक्तियों को सुलतान निर्वाचित करते थे और अपनी मनमानी करते थे। यद्यपि कभी-कभी मरने वाला सुलतान अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर जाता था, परन्तु अमीर और सरदार इसकी परवाह नहीं करते थे। यदि वह मनोनीत व्यक्ति दृढ़ और शक्तिशाली हुआ तो वह सुलतान बन जाता था और सामन्त उसकी अधीनता मान लेते थे। कभी-कभी योग्य, शक्ति सम्पन्न अमीर या सूबेदार अपनी तलवार और शक्ति से उत्तराधिकार के समय गृहयुद्ध में विजय प्राप्त करके, अमीरों द्वारा निर्वाचित होकर सुलतान बन जाते थे। सुलतान बनने के लिये कोई वंशानुगत निश्चित अधिकार नहीं था। वंशानुगत उत्तराधिकार के सिद्धांत की मान्यता नहीं हो पायी थी।

(ii) **सुलतान की श्रेष्ठता और अधिकार**—राज्य में सुलतान सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति था। केन्द्रीय सत्ता का वह सर्वोपरि था। वह राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी अधिकार व शक्तियों का स्रोत था। राज्य की सार्वभौमिकता उसी में केन्द्रित होती थी। वह मुस्लिम जनता का धार्मिक गुरू भी समझा जाता था जिससे उसमें सीजर और पोप की राजनैतिक और धार्मिक दोनों प्रकार की शक्तियां और अधिकार सम्मिलित थे। वह ईश्वर का प्रतिनिधि और देवत्व का भंडार समझा जाने से सब के लिये उसकी आज्ञाओं और आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। उसकी अवज्ञा व अवहेलना करने वाला दंडित होता था।

सुलतान के अधिकार और शक्ति असीमित और अनियंत्रित थे। वह राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश और सेना का प्रधान होता था। युद्ध का संचालन, संधि और शांति का निर्णय भी सुलतान करता था। कानून, सेना और न्याय सम्बन्धी सर्वोच्च अधिकार सुलतान को प्राप्त थे। राज्य की कार्यपालिका के समस्त अधिकार उसमें निहित थे। वह स्वयं ही कानून बनाता था। उसकी इच्छा ही विधान और कानून होती थी। सुलतान ही राज्य के शासकों, सूबेदारों व पदाधिकारियों को नियुक्त करता और रुष्ट होने पर उन्हें पदच्युत भी कर देता था। वह बड़े से बड़े शक्तिशाली अमीर को पदच्युत

कर देता था। सुयोग्य सशक्त सुलतानों के शासन-काल में तो अमीरों और सूबेदारों की शक्ति क्षीण हो जाती थी।

(iii) **सुलतान की स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता**—सुलतान की शक्ति और अधिकारों का आधार धार्मिक और सैनिक था। सैनिक शक्ति पर सुलतान और साम्राज्य निर्भर था। सैनिक शक्ति शिथिल होते ही सुलतान की शक्ति व सत्ता दुर्बल हो जाती थी। सुलतान की सत्ता और अधिकारों पर कोई नियंत्रण नहीं था। इससे सुलतान स्वेच्छाचारी, निरंकुश और अनियंत्रित थे। यद्यपि परामर्श व सहयोग के लिये सुलतान के पास विश्वासपात्र अधिकारियों, अमीरों और मित्रों की एक परिषद् भी होती थी, पर उसकी सम्मति लेने और उसके परामर्श के अनुसार कार्य करने के लिये सुलतान बाध्य नहीं था। सुलतान के लिये कोई परम्परा या ऐसा कानून नहीं था जो उसे नियंत्रित कर सके। परन्तु ऐसा माना जाता है कि सुलतान की निरंकुशता पर व्यक्तिगत नियमों का प्रभावशाली और योग्य मंत्रियों का, सेना का, उल्माओं और इस्लाम धर्म का नियंत्रण था। सुलतान अमीरों और सरदारों की इच्छा के विरुद्ध और कुरान के नियमों के विरुद्ध, इस्लाम के कानून के विरुद्ध मनमानी नहीं करते थे। परन्तु ये नियंत्रण प्रत्येक समय और प्रत्येक निरंकुश सुलतान के शासन-काल में नहीं रह सके। इन नियंत्रणों के बावजूद भी सशक्त सुलतान, परिस्थितियों व अवसरों का लाभ उठाकर मनमानी कर लेते थे। योग्य और दृढ़ सुलतान अपने अधिकार असीमित कर लेता था, पर दुर्बल और अयोग्य सुलतान अपने दरबारियों के हाथों की कठपुतली बन जाते थे।

(iv) **सुलतान के कर्त्तव्य और नीति**—मुस्लिम न्यायायिकों के अनुसार सुलतान के अधोलिखित कर्त्तव्य माने गये थे जैसे, (१) धर्म की रक्षा करना, (२) प्रजा में लोगों के पारस्परिक झगड़ों का अन्त करना या उन्हें सुलझाना, (३) इस्लाम राज्य की सुरक्षा करना, (४) सड़कों का निर्माण, व्यवस्था और सुरक्षा करना, (५) दंड-विधान की व्यवस्था करना, (६) शत्रुओं से मुस्लिम राज्य की रक्षा करना, (७) विधर्मियों या इस्लाम के विरोधियों के साथ युद्ध करना, (८) कर वसूल करना, (९) राजकोष पर जिनका अधिकार है उनमें धन का वितरण करना (१०) राज्य संचालन में सहयोग व सहायता के लिये अधिकारियों को नियुक्त करना, (११) जनकल्याण के कार्यों और लोगों की दशा से अपने को अवगत रखना।

सुलतानों की नीति असहिष्णु, अनुदार और पक्षपात पूर्ण थी। उल्माओं के प्रभाव से सुलतानों की नीति धर्म प्रभावित हो गयी थी। हिन्दुओं के प्रति उनका व्यवहार अत्याचार पूर्ण था। उन पर अनेक सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक प्रतिबंध लगा दिये गये थे। सुलतानों का ध्येय भारत में इस्लाम का प्रसार करना था।

(v) **सुलतानों के शासन का स्वरूप**—सुलतानों का शासन धर्मसापेक्ष था। वह कुरान और इस्लाम के नियमों पर आधारित था। निरंकुश और स्वेच्छाचारी राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली प्रचलित हो गयी थी और यह परिस्थितियों की उपज थी। यद्यपि इस्लामी शासन होने से सिद्धान्त में उसका स्वरूप लोकतंत्रात्मक माना गया था, परन्तु व्यवहार में परिस्थितियों वश सरकार का स्वरूप केन्द्रीय राजतंत्र हो गया। यद्यपि सुलतान अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक ने उल्माओं के परामर्श की अवहेलना

की, खलीफा के औचित्य और अधीनता की उपेक्षा की, परन्तु उनके शासन के निरंकुश केन्द्रीय राजतंत्र के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि अधिकांश सुलतानो में शासक के गुणों, प्रतिभा, अनुभव और सृजनात्मक प्रवृत्ति का अभाव था। बलबन, अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक को छोड़कर अन्य सुलतानों ने शासन में सुधार या परिवर्तन करने का प्रयास नहीं किया। फलतः हिन्दूकालीन शासन व्यवस्था को थोड़े परिवर्तन करके अपना लिया गया।

मंत्री परिषद्—यद्यपि सुलतान शासनयंत्र की प्रधानधुरी था, परन्तु प्रशासन के संचालन में सहायता, सहयोग और परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् का आयोजन था। इसमें चार मंत्री होते थे–(i) वजीर, (ii) आरिज-ए-मुमालिक (iii) दीवान-ए-इशा और (iv) दीवान-ए-मुमालिक।

इन मंत्रियों की नियुक्ति स्वयं सुलतान करता था और वह उन्हें पदच्युत भी कर सकता था। सभी मंत्री सुलतान के प्रति उत्तरदायी थे और वे उसके सेवक के रूप में होते थे। ये मंत्री सुलतान की इच्छा और विश्वास रहने तक ही अपने पदों पर रह सकते थे। प्रायः सुलतान महत्वपूर्ण प्रश्नों और समस्याओं में मंत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करता था, परन्तु उनके परामर्श को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिये वह स्वतंत्र था।

वजीर—सुलतान का प्रधान मंत्री वजीर कहलाता था। बाद में उसे ख्वाजा-जहां कहा जाता था। वह सुलतान का प्रतिनिधि माना जाता था। केन्द्रीय सम्पूर्ण शासन उसके हाथों में होता था। सुलतान की अनुपस्थिति में वह राज्य की देखभाल करता था। सुलतान के बीमार या अल्पवयस्क होने पर भी वजीर सुलतान के रूप में कार्य करता था। उसकी शक्ति और अधिकार समय के अनुसार बदलते रहते थे। निर्बल सुलतानों के शासनकाल में शासन की सत्ता वजीर के हाथों में केन्द्रित होती थी और शक्तिहीन सुलतान उसके हाथ में कठपुतली बन जाता था। परन्तु शक्तिशाली और योग्य सुलतानों के समय उसके अधिकार सीमित हो जाते थे और वह केवल परामर्श का ही कार्य करता था, और उसके परामर्श को मानना या न मानना सुलतान की इच्छा पर निर्भर था। वित्त-विभाग का प्रमुख वजीर होता था। भूमि का बन्दोबस्त करना और भूमि कर के नियम बनाना, करों की दर निर्दिष्ट करना तथा राज के व्यय का हिसाब रखना, उसका निरीक्षण करना उसके प्रमुख कार्य थे। सैनिक व्यवस्था पर भी उसका नियंत्रण था, क्योंकि उसी के अधीनस्थ कर्मचारी सैनिकों को वेतन वितरित करते थे। वजीर समस्त विभागों का सामान्य निरीक्षण भी करता था और सुलतान को अवश्यक सूचनाएं भी देता था। इन कार्यों की महत्ता को देखते हुए वजीर पद सबसे योग्य, विश्वासपात्र, स्वामिभक्त और सद्‌गुण सम्पन्न अमीर को ही दिया जाता था। वजीर का विभाग व कार्यालय "दीवान-ए-विजारत" कहा जाता था। वजीर की सहायता और सहयोग के लिये एक नायब वजीर होता था जिस पर विभाग के कार्यालय का भार था। नायब वजीर के नीचे "मुसरिफ-ए-मुमालिक" या महा-लेखाकार होता था और उसके नीचे मुस्तोफी-ए-मुमालिक या महालेखक परीक्षक होता था। मुसरिफ-ए-मुमालिक अधिकारी प्रांतों और अन्य विभागों से होने वाली आय

का हिसाब रखता था और मुस्तोफी-ए-मुमालिक इसकी जांच और निरीक्षण करता था। बाद में फिरोजशाह तुगलक ने यह परिवर्तन किया कि महालेखाकार आय का और महालेखा परीक्षक व्यय का हिसाब रखे।

दीवान-ए-आरिज—यह दूसरा महत्वशाली मंत्री होता था। इसे आरिज-ए-मुमालिक भी कहते हैं। यह सैन्य विभाग का प्रधान होता था। सेना के दो प्रमुख अंग होते थे, एक सुलतान के अंगरक्षक और दूसरे केन्द्र की सेना। इनमें सैनिकों की भरती करना, सेना की पूर्ति करना, सैनिकों व अश्वों की हुलिया रखना, सैनिकों के प्रशिक्षण और वेतन आदि की व्यवस्था करना, सेनाओं का निरीक्षण करना, आदि कार्य दीवान-ए-आरिज करता था। वह सामन्तों से प्राप्त निर्धारित सेना का निरीक्षण भी करता था तथा सेना के भोजन, मरहम पट्टी तथा आवागमन व लाने ले जाने की व्यवस्था भी करता था। सेना का प्रधान सुलतान था, इसलिये वह शाही सेना का नेतृत्व नहीं करता था पर युद्ध के समय उसे कभी-कभी सेना के किसी भाग का नेतृत्व दे दिया जाता था।

दीवान-ए-इंशा—यह तीसरा मंत्री होता था। इसके अधीन स्थानीय शासन और लेखा विभाग था। प्रांतीय सूबेदारों तथा अन्य कर्मचारियों व अधिकारियों के साथ और अन्य राज्यों के साथ जो पत्र व्यवहार होता था उसका भार इस विभाग पर था। राजवंश में होने वाले विवाहों के पत्र व्यवहार भी यह विभाग करता था। दीवान-ए-इंशा की सहायता के लिये अनेक दबीर होते थे। दीवान-ए-इंशा को वजीर के साथ सदा संपर्क बनाये रखकर शाही आज्ञाओं और आदेशों को प्राप्त करना पड़ता था।

दीवान-ए-रसालत—डा. कुरेशी के मतानुसार इस मंत्री का सम्बन्ध धार्मिक विषयों से था और धार्मिक दान व अनुदान का भार इस पर था। डाक्टर हबीबुल्ला का मत है कि यह वैदेशिक मंत्री था।

सद्र-उल-सद्दूर—यह दीवान-ए-रसालत विभाग का भी प्रधान था। इस मंत्री का मुख्य कार्य धार्मिक विषयों, धार्मिक संस्थाओं तथा धार्मिक महापुरुषों की जो उलमा वर्ग से सम्बन्धित होते थे, छात्र वृत्तियां, दान, अनुदान आदि की समुचित व्यवस्था करना था। यह मंत्री इस्लामी सिद्धान्तों को भी कार्यान्वित करता था।

काजी-उल-कुजात—यह मंत्री न्याय विभाग का भी प्रमुख था। वह केन्द्र में रहकर मुकदमों का निर्णय करता था और काजियों या न्यायाधिशों पर नियंत्रण रखता था। इस विभाग को काजी-ए-मुमालिक भी कहते थे।

दीवान-ए-बन्दगान—सुलतान फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में गुलामों की संख्या लगभग दो लाख हो जाने से एक अन्य विभाग की स्थापना की गयी और उसके प्रमुख को दीवान-ए-बन्दगान कहा गया।

मजालिस-ए-खलवत—यह सुलतान के परामर्शदाताओं की एक बड़ी समिति थी जिसमें सुलतान के निजी मंत्री, विश्वासपात्र उच्चाधिकारी और प्रमुख उलमा होते थे। इनके परामर्श को मानना या न मानना उसकी स्वेच्छा पर निर्भर था।

शाही प्रबन्धक—यह सुलतान के गृह-विभाग का प्रबन्धक था। इससे शासन पर उसका खूब प्रभाव था। शाही अंगरक्षकों के विभाग का प्रधान सर-ए-जांदार और दासों के विभाग का अध्यक्ष दीवान-ए-बन्दगान शाही प्रबन्धक के अधीन माने जाते थे।

अन्य विभाग और अधिकारी—प्रशासन में केन्द्र राजधानी में **कोतवाल** पद भी बड़े प्रभाव और महत्व का था। यह विश्वासपात्र, कर्त्तव्यनिष्ठ और उत्तरदायित्व को पूर्णरूप से निबाहने वाले व्यक्ति को ही दिया जाता था। उपरोक्त वर्णित विभागों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण विभाग भी थे, जैसे **दीवान-ए-अमीर-ए-कोदी**—यह कृषि की व्यवस्था, बाजार पर नियंत्रण व व्यापार के निरीक्षण के लिये होता था। यह व्यापारियों को लायसेंस या अनुमतिपत्र प्रदान करता था, चुंगी वसूल करता था तथा अकाल पड़ने पर कृषकों व जन-साधारण की सहायता करता था। यह विभाग मुहम्मद तुगलक ने स्थापित किया था। **बरीद-ए-मुमालिक**—यह डाक तथा गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष होता था। **दीवान-ए-मुस्तरवाज**—जिसको सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने स्थापित किया था और इसका कार्य कृषकों तथा राजस्व के अधिकारियों से बकाया कर वसूल करना था। **दीवान-ए-खैरात**—(दान विभाग) और **दीवान-ए-इस्तिहकाक**—(पेंशन विभाग) भी प्रमुख थे और इन्हें फिरोजशाह तुगलक ने स्थापित किये थे। प्रायः इन विभागों के अध्यक्ष अमीरों और मलिकों में से नियुक्त किये जाते थे। इन अध्यक्षों के अधीनस्थ अनेक कर्मचारीगण भी थे। सल्तनतकाल के अधिकांश कर्मचारी निर्दयी, अत्याचारी, बेइमान और भ्रष्ट थे। वे घूस, रिश्वत लेते थे और पक्षपात करते थे तथा समय आने पर सरकारी धन का भी गबन करते थे।

साम्राज्य की आय के साधन और व्यवस्था—सल्तनत की आय के प्रमुख साधन विभिन्न कर थे। ये निम्नलिखित हैं।

(i) **खिराज या भूमिकर**—यह राज्य की आय का प्रधान साधन था। भूमि दो भागों में विभक्त की गयी थी, प्रथम उभी या उश्री जो मुसलमानों के अधिकार में थी और खराजी जो हिन्दुओं के अधिकार में थी। सामन्तों व जागीरदारों की भूमि भी दो प्रकार की होती थी, प्रथम इक्ता भूमि जो जागीरदारों को कुछ वर्षों के लिये दी जाती थी और द्वितीय मुक्ता भूमि जो जागीरदारों को जीवन भर के लिये प्रदान की जाती थी। भूमि कर को **खिराज** कहा जाता था। इस्लाम के नियमों के अनुसार खिराज मुसलमानों को उपज का $\frac{1}{10}$ भाग और हिन्दुओं को $\frac{1}{5}$ भाग देना पड़ता था। पर सुलतान इससे भी अधिक भूमिकर वसूल करते थे। कभी-कभी उपज का आधा भाग भूमि कर के रूप में ले लिया जाता था, जैसे अलाउद्दीन के शासनकाल में था। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक के राज्य काल में दोआब के कृषकों को अत्यधिक भूमिकर देना पड़ता था। भूमिकर अनाज या नगद के रूप में दिया जा सकता था। कृषकों को सिंचाई कर भी देना पड़ता था। भूमि बन्दोबस्त के अभाव में कृषकों की दशा सोचनीय थी। अलाउद्दीन ने भूमि बन्दोबस्त की व्यवस्था की थी।

(ii) **जकात**—यह कर व्यापारियों से चुंगी के रूप में वसूल किया जाता था और यह २$\frac{1}{2}$ प्रतिशत होता था। कुछ विद्वानों का मत है कि यह कर केवल मुसलमानों से वसूल किया जाता था और उनकी निश्चित मूल्य से अधिक की सम्पत्ति पर लगाया जाता था। इस कर से प्राप्त धन को मुसलमानों के हितों पर व्यय किया जाता था।

(iii) **खम्स**—युद्ध के समय लूट में से राज्य को जो धन प्राप्त होता था, उसे खम्स कहते थे। सैनिक आक्रमण व युद्ध के समय लूट में जो धन प्राप्त होता था उसे

"गनीमह" कहा जाता था। कुरान के अनुसार इस धन का $\frac{1}{5}$ भाग राज्य को जो खम्स कहलाता था, $\frac{1}{5}$ भाग खलीफा को और शेष $\frac{3}{5}$ भाग सैनिकों को प्राप्त होना चाहिये। प्रारम्भ में सुलतान इस धन का $\frac{1}{5}$ भाग राजकोष के लिये और शेष $\frac{4}{5}$ भाग सैनिकों में वितरित करता था, क्योंकि खलीफा भारत से बहुत दूर होने के कारण $\frac{1}{5}$ भाग उसे नहीं भेजा जा सकता था। परन्तु बाद में सुलतानों ने इसका उल्टा कर दिया और $\frac{4}{5}$ भाग राजकोष में भेज देते थे और शेष $\frac{1}{5}$ सैनिकों में बांट देते थे।

(iv) **जजिया**—भूमिकर से द्वितीय श्रेणी का कर जजिया था। राजकीय आय का प्रथम प्रमुख साधन भूमिकर और द्वितीय जजिया था। डाक्टर कुरेशी का मत है कि यह कर हिन्दुओं से सैनिक सेवाओं के रूप में लिया जाता था। हिन्दुओं को सेना में पद प्राप्त नहीं होते थे और वे सुलतान की ओर से युद्ध नहीं करते थे, इसलिये उन्हें जजिया कर देना पड़ता था। ब्राह्मणों, साधुओं, स्त्रियों और अपंगों पर जजिया कर नहीं लगाया जाता था, क्योंकि राज्य उनसे सैनिक सेवा की आशा नहीं करता था। परन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। पदाति सेना में हिन्दू होते थे और वे युद्ध करते थे। फिरोज ने तो ब्राह्मणों पर भी जजिया लगाया था। अनेक मुस्लिम इतिहासकारों ने यह उल्लेख किया है कि विधर्मी हिन्दुओं को जजिया कर देना पड़ता था। इसके बदले में उन्हें राज्य की ओर से जीवन-रक्षा का आश्वासन प्राप्त होता था और इस्लाम ग्रहण कर लेने पर उन्हें इस कर से मुक्ति मिल जाती थी। इसके अतिरिक्त उन राजाओं व सामन्तों को भी जजिया कर देना पड़ता था जो सैनिक सेवा करते थे। इससे स्पष्ट है कि यह धार्मिक कर था। जजिया कर तीन भागों का था, ४८ दिरहम जजिया कर, २४ दिरहम का और १२ दिरहम का।

(v) **खानों पर कर**—विभिन्न प्रकार की खदानों पर लगाये गये करों से भी राज्य की आय होती थी। खानों की आय का $\frac{1}{5}$ भाग राज्य को और शेष $\frac{4}{5}$ भाग खान की भूमि के स्वामी को दिया जाता था।

(vi) **आयातकर**—यह कर बाहर से आनेवाली व्यापारिक वस्तुओं पर लगाया जाता था। व्यापार की वस्तुओं पर यह कर २$\frac{1}{2}$ प्रतिशत था और घोड़ों के लिये उसके मूल्य के ५ प्रतिशत के हिसाब से था। हिन्दू व्यापारियों को इस आयात कर की दर से दूनी रकम देना पड़ती थी, पर मुस्लिम व्यापारियों को नहीं।

(vii) **लावारिश जायदाद**—यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती और उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं होता, तो उसकी संपूर्ण जायदाद और संपत्ति राजकोष में जमा कर ली जाती थी।

(viii) **अन्य कर**—लोगों पर निवास गृह-कर, पशु-कर, चरागाह-कर, जल-कर तथा अन्य साधारण कर भी लगाये जाते थे और इनसे राज्य को आमदनी होती थी।

सैनिक व्यवस्था

दिल्ली सल्तनत का मूल आधार सेना थी। राज्य की सुरक्षा सेना पर ही निर्भर रहती थी।

(i) **सेना की अनिवार्यता**—सुलतानों को एक विशाल सेना रखना अनिवार्य हो गया था, क्योंकि—

(i) साम्राज्यवादी और विस्तारवादी होने के कारण सुलतानों को सैनिक-अभियान, आक्रमण और युद्ध करना पड़ते थे। (ii) साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ उन्हें इस्लाम धर्म का प्रचार और प्रसार भी बलपूर्वक करना पड़ता था। (iii) विरोधी और विद्रोही हिन्दुओं का दमन करना पड़ता था, क्योंकि वे विधर्मी थे और मुस्लिम-दासता से मुक्ति पाकर स्वतंत्र होना चाहते थे। (iv) प्रतिक्रियावादी मुस्लिम सामंतों का, उनके कुचक्रों और षड़यंत्रों का तथा विरोधी मुस्लिम प्रजा का सुलतानों को सामना करना पड़ता था। (v) सुलतानों को मंगोल आक्रमणों को रोकना पड़ता था, उन्हें मंगोलों की सैनिक बर्बरता एवं नृशंस कार्यों का विरोध करना पड़ता था। संक्षेप में, आन्तरिक शांति व्यवस्था और बाह्य सुरक्षा के लिए सेना राज्य के लिये अनिवार्य थी।

(ii) **सेना का स्वरूप**—सेना का स्वरूप सामन्तवादी था। अर्थात सेना के दो भाग थे, एक सुलतान की निजी सेना, जो केन्द्र राजधानी में रहती थी व जिसमें प्राय: उसके अंगरक्षक होते थे और द्वितीय सुलतान के स्वामिभक्त सामन्तों और प्रांतपतियों की सेना जो सुलतान को युद्ध के समय भेजी जाती थी। सुलतान की सेना प्रशिक्षित और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहती थी और उसे "हश्मेकल्ब" कहते थे और प्रांतपतियों की सेना को "हश्मे अतराफ" कहा जाता था।

(iii) **सैन्य विभाग**—केन्द्रीय, प्रांतीय और सामन्तों की सेना की व्यवस्था व संगठन के लिए एक प्रथक विभाग था जो **दीवान-ए-अर्ज** कहलाता था और उसका प्रधान **आरिज-ए-मुमालिक** कहा जाता था। सैनिकों की भरती, उनके वेतन की व्यवस्था, प्रत्येक सैनिक के हुलिये और उसका विवरण रखने का प्रबंध करना दीवान-ए-अर्ज का कार्य था। प्रारम्भ में सैनिकों और सेनानायकों को वेतन जागीर के रूप में दिया जाता था। जागीरें स्वामिभक्ति और युद्ध में विजय के पुरस्कार स्वरूप भी प्रदान की जाती थीं। अलाउद्दीन ने इस प्रथा का अन्त कर दिया था, परन्तु फिरोजशाह तुगलक ने इसे पुन: प्रचलित कर दिया था। सेना विभिन्न भागों में आवश्यकतानुसार रखी जाती थी। राजधानी में केन्द्रीय सेना रहती थी और प्रांतों में प्रांतीय सूबेदारों की सेनाएँ। उत्तर-पश्चिमी सीमाँत प्रदेश में राजकुमारों तथा सुयोग्य अनुभवी सेनापतियों की अध्यक्षता में दुर्गों में सेना रखी जाती थी जिससे वे बाह्य आक्रमणों से राज्य की रक्षा कर सकें।

(iv) **सेना का संगठन**—सेना में चार प्रकार के सैनिक होते थे। प्रथम, वे सैनिक जो स्थायी रूप से सुलतान की सेना में भरती होते थे। द्वितीय, जो प्रांतों और सूबेदारों की सेना में भरती होते थे। तृतीय, जो युद्ध-काल में भरती होते थे और चतुर्थ, वे मुसलमान जो जेहाद या धर्म-युद्ध के लिए भरती होते थे। इन सैनिकों को लूट का एक भाग मिलता था।

प्रारम्भ में सुलतान की सेना थोड़ी होती थी और युद्ध-काल में वह प्रांत-पतियों से निर्धारित सेना प्राप्त कर लेता था। पर अलाउद्दीन ने सैनिकों की सीधी भरती

करके एक विशाल स्थायी सेना राजधानी में निर्मित कर ली थी। उसकी इस स्थाई सेना में बहुसंख्यक पदाति और ४,७५,००० अश्वारोही सैनिक थे। मुहम्मद तुगलक के समय भी इतनी ही विशाल स्थायी सेना रही। पर फिरोज ने उसे सामन्ती ढंग पर परिवर्तित कर दिया था। लोदी सुलतानों की सेना सामन्तवाद और जातीयवाद पर गठित हो गयी। उनकी सेना कबीलों के आधार पर गठित की गई। उनमें सूर अफगान, तुर्क आदि कबीलों के सैनिक थे। इस प्रकार सल्तनत की सेना राष्ट्रीय नहीं थी। उसमें तुर्क ईरानी, मगोल, अफगान और भारतीय सैनिक होते थे। इस सेना के निम्नलिखित अंग होते थे।

(१) **पदाति या पैदल सेना**—इसे "पायक" कहते थे। पैदल सेना में भारतीय मुसलमान, दास और हिन्दू होते थे। पैदल सैनिकों की संख्या सबसे अधिक होती थी। ये अधिकतर हिन्दू होते थे। पैदल सैनिकों के पास तलवार, भाले, धनुष और वाण रहते थे।

(२) **अश्वारोही सेना**—अश्वारोहियों का सेना में सबसे प्रमुख स्थान था। अश्वारोहियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था—(अ) दो अश्वों वाला सैनिक, (ब) एक अश्व वाला सैनिक, (स) फालतू अश्व वाला सैनिक। अश्वारोहियों के लिये सुलतान अरब के अच्छी नस्ल के घोड़े मंगवाते थे और भारत में भी श्रेष्ठ घोड़े उत्पन्न करने के प्रयास किये जाते थे।

(३) **हाथी**—सेना में हाथी भी होते थे। इन्हें युद्ध करना सिखाया जाता था। मुहम्मद तुगलक की सेना में तीन सहस्र हाथी थे। हाथियों की सेना का प्रधान "शाहना-ए-फील" कहा जाता था।

(४) **तोपखाना**—इस युग में सेना में आधुनिक ढंग का तोपखाना नहीं था परन्तु बारूद की सहायता से गोले फेंकने की मशीने या यंत्र थे। ये "मंगनीक" तथा "अर्रादा" नामक यंत्र थे। इनके द्वारा आग के गोले, आग लगाने वाले तीर, बर्छी तथा लोहे के गोले फेंके जाते थे।

(v) **साहिब-ए-बरीद-ए-लश्कर**—युद्ध के समय सेना के साथ एक विशिष्ट विभाग होता था जिसे साहिब-ए-बरीद-ए-लश्कर कहा जाता था। इसका कार्य घटनाओं की सूचना राजधानी मे भेजना था।

(vi) **अन्य अंग**—युद्ध के समय घायल सैनिकों की सुश्रूपा और चिकित्सा के लिए एक चिकित्सालय का भी प्रबंध होता था। "तले अह" और "दज्की" युद्ध काल में गुप्तचरों का काम करते थे और विपक्षी सेना की गतिविधियों की सूचना देते थे। सैनिकों की रसद का भी समुचित प्रबंध होता था और सेना की रसद लाने ले जाने का कार्य बनजारे करते थे। सेना के उपयोग में आने वाले विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के लिये कुशल शिल्पी नियुक्त किये गये थे।

(vii) **सैनिक अधिकारी**—दशमलव पद्धति के सिद्धान्त पर सेना संगटित की गई थी। दस अश्वारोही सैनिकों की एक टुकड़ी को "सर-ए-खैल" कहते थे। दस सर-ए-खैल के ऊपर एक "सिपहसालार" होता था और दस सिपहसालारों पर एक "अमीर" होता था, दस अमीरों पर एक "मलिक" और दस मलिकों पर एक "खान"

होता था। सैनिक संगठन में "अमीरान-ए-पंजह", "अमीरान-ए-सदह" और "अमीरान-ए-हजारह" का उल्लेख मिलता है।

(viii) **अलाउद्दीन के सैन्य सुधार**—सैन्य संगठन के दोषों के निवारणार्थ सुलतान अलाउद्दीन ने कुछ सैनिक सुधार किये थे, जैसे अलाउद्दीन ने सैनिकों की सीधी भर्ती प्रारंभ की और इस भरती के लिए दक्ष अधिकारी की नियुक्ति की। इससे पूर्व सामन्त और प्रांतपति स्वयं ही सैनिकों को भरती करके उन्हें सुलतान की सहायता के लिये भेज देते थे। ये सैनिक अपने स्वामी सामन्त व प्रांतपति के प्रति निष्ठावान और स्वामिभक्त होते थे, सुलतान के प्रति नहीं। अलाउद्दीन ने सैनिकों को जागीर देने की अपेक्षा नगद वेतन देना प्रारंभ किया और सैनिकों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। उसने अश्वों को चिह्नित करवाना प्रारम्भ किया, जिससे कि निरीक्षण के समय सैनिक एक ही अश्व को दो बार प्रस्तुत न कर सकें और उसका अधिक वेतन न ले सकें। प्रत्येक सैनिक की हुलिया लिखी गई जिससे कि वह युद्ध के समय किसी दूसरे को न भेज सके।

(ix) **वेतन**—प्रारम्भ में सैनिकों व अधिकारियों को उनकी सैनिक सेवाओं के लिए जागीरें दी जाती थीं, पर बाद में नगद वेतन दिया जाने लगा। सैनिकों का वेतन, पद के अनुसार भिन्न-भिन्न शासकों के समय भिन्न रहा। अलाउद्दीन के शासन काल में एक सैनिक का प्रति-वर्ष का वेतन २३३ टंक था, परन्तु तुगलक काल में यह ५०० टंक हो गया था। खान को एक लाख टंक वार्षिक वेतन प्राप्त होता था और मलिक को ५० से ६० सहस्र टंक प्रति-वर्ष वेतन मिलता था। छोटे अधिकारियों का वेतन एक हजार से दस हजार टंक प्रतिवर्ष था।

न्याय-व्यवस्था—सुलतान न्यायप्रिय माने जाते थे और सल्तनत में वह राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था। वह न्याय का स्रोत माना जाता था। वह सप्ताह में दो बार दरबार करता था और तब मुकदमों की सुनवाई करता था और उन पर न्याय-संगत निर्णय देता था। विद्रोहियों के झगड़ों को सुनना और उन पर निर्णय देने का अधिकार सुलतान को ही था। धार्मिक मुकदमों का निर्णय करते समय वह सद्र-ए-सदूर होता था तथा धर्म-निरपेक्ष मुकदमों के निर्णय के समय काजी से परामर्श और सहायता लेता था। राजद्रोह के अपराध का दंड सुलतान अमीर-ए-दाद के परामर्श से करता था। प्राण-दंड देने का अधिकार केवल सुलतान को ही था, प्रांतीय सूबेदारों को नहीं। सुलतान की अनुपस्थिति में राजद्रोह के मुकदमों की सुनवाई और निर्णय अमीर-ए-दाद करता था। सुलतान को न्यायिक और कानूनी परामर्श व सहायता के लिए काजी-ए-मुमालिक उसके समीप बैठता था।

साम्राज्य का एक न्याय विभाग था जिसका प्रमुख सद्र-ए-सदूर था। यह प्रधान न्यायाधीश का कार्य करता था। इसे काजी-ए-मुमालिक भी कहते थे। न्याय के लिए प्रांतों में काजियों को नियुक्त करने और उन्हें पदच्युत करने का अधिकार काजी-ए-मुमालिक को था। बड़े-बड़े नगरों में न्याय का कार्य काजी करता था। काजी मुकदमों का निर्णय करते थे और मुफ्ती द्वारा दी गई कानूनी सलाह के आधार पर काजी दंड देते थे और मुकदमों का निर्णय देते थे। न्यायदान के लिए दो प्रकार

के न्यायालय होते थे, प्रथम दीवान-ए-कजा और द्वितीय दीवान-ए-मजालिम। मुहम्मद तुगलक ने विद्रोहियों को सजा देने के लिए "दीवान-ए-सियासत" नामक न्यायालय स्थापित किया था। इन न्यायालयों में दो प्रकार के अधिकारी होते थे– प्रथम मुफ्ती और द्वितीय मुफतही। मुफ्ती कानूनी परामर्श देता था और मुफतही तथ्यों की खोज करता था। आजकल के पेशकार की भांति हजीब होते थे जिनके पास सर्वप्रथम मुकदमा पेश होता था। न्याय विभाग में अमीर-ए-दाद नामक अधिकारी भी होते थे जो अपराधियों को गिरफ्तार कर काजियों के सम्मुख प्रस्तुत करते थे, काजी के निर्णयों को सुनाते थे और उसे कार्यान्वित करते थे। काजी अधिकतर भ्रष्ट होते थे तथा वे रिश्वत लेते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम-पंचायतें मुकदमे सुनतीं और निर्णय देती थीं। हिन्दुओं के झगड़े पंचायतों द्वारा निर्णय किए जाते थे किन्तु हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगड़ों के लिए काजी ही निर्णय करता था। कुरान के आधार पर न्याय और निर्णय होता था; इसलिए हिन्दुओं के साथ अवश्य अन्याय होता रहा होगा। कुरान व इस्लाम के नियमों के अनुसार न्याय होता था तथा धार्मिक पक्षपात न्याय में होता था।

दंड विधान कठोर था। अंग-भंग का दंड और मृत्यु दंड देने की प्रथा प्रचलित थी। छोटे-छोटे अपराधों के लिये अंग-भंग का दंड था। विद्रोहियों को बड़ी यातनापूर्ण सजाएँ दी जाती थीं, अपराध स्वीकार कराने के लिये अभियुक्त को यातनाएँ दी जाती थीं। जीवित खाल खिंचवालेना, जीवित जला देना, हाथ पैरों में लोहे की कीलें गड़वादेना, आँखें निकलवा लेना आदि भयानक दंड थे। इससे जनता में शासक का आतंक छा जाता था और सुलतान व सरकार के विरुद्ध कोई भी सिर उठाने का साहस नहीं करता था। समुचित ढंग से बने हुए व्यवस्थित कारागार नहीं थे। प्राचीन दुर्गों को ही कारागृह का रूप दे दिया जाता था। इस युग में न्याय अविकसित था और कानूनों का कोई लिखित संग्रह नहीं था।

पुलिस तथा गुप्तचर विभाग—शांति, सुरक्षा और व्यवस्था बनाये रखने के लिये पुलिस विभाग था जिसका प्रमुख कोतवाल होता था। केन्द्र राजधानी में भी कोतवाल होता था। यह पद विश्वासपात्र और उत्तरदायी व्यक्ति को दिया जाता था। प्रत्येक नगर में भी कोतवाल होता था। नगर सम्बन्धी प्रत्येक सूचना कोतवाल को प्राप्त होती थी। नगर में आने-जाने वाले व्यक्तियों की सूचनाएँ भी उसे प्राप्त होती थीं। वह एक रजिस्टर रखता था जिसमें नगर के समस्त निवासियों के नाम होते थे। नगर की सुरक्षा, शांति, कानून और व्यवस्था का भार कोतवाल पर होता था। उसके सैनिक रात्रि में नगर में गश्त लगाते थे जिससे जनता को चोरों का भय नहीं रहे। मुसलमान और हिन्दू दोनों ही के जान-माल की सुरक्षा की व्यवस्था की जाती थी।

पुलिस विभाग के अधीन गुप्तचर विभाग होता था। सुल्तान बलबन और अलाउद्दीन ने गुप्तचर व्यवस्था को सुसंगठित किया था। सुयोग्य, चुस्त और विश्वासपात्र गुप्तचरों का राज्य में जाल सा बिछा दिया गया था। इन गुप्तचरों के द्वारा राज्य

की सूचनाएं, षड़यंत्रों व विशिष्ट घटनाओं की खबरें सुलतानों को प्राप्त होती रहती थीं जिससे वे सुरक्षा और नियंत्रण की समुचित व्यवस्था कर लेते थे।

डाक-विभाग—सूचनाएँ, संदेश, आदेश आदि के लाने ले जाने, तथा परस्पर सम्पर्क बनाये रखने के लिये राज्य में डाक-विभाग होता था। विभिन्न क्षेत्रों में डाक-चौकियां स्थापित की गयी थीं जहाँ डाक लाने ले जाने वाले हरकारे आकर मिलते थे। प्रत्येक कोस पर तेज दौड़ने वाले डाक के हरकारे रखे जाते थे। वे पत्रों व संदेशों का एक थैला हाथ में रखते थे और दूसरे हाथ में लगभग दो मीटर लंबी लाठी जिसमें बड़े-बड़े घुँघरु या छोटी-छोटी घंटियां बंधी होती थी। कभी-कभी उनके सिरों की पगड़ी से भी छोटी घंटियां या घुँघरु बंधे होते थे। वे डाक को लेकर दूसरे कोस पर तैयार हरकारे को डाक देने और लाने के लिये तीव्र गति से दौड़ते थे और उनके इस प्रकार दौड़ने से जो घुंघरु बजते थे उनकी मधुर आवाज से लोग जान लेते थे कि डाक आ जा रही है। इन डाक हरकारों के साथ में कभी-कभी शीघ्र दंड दिये जाने वाले अपराधियों को और सुलतान या अधिकारी के लिये विशिष्ट खाद्य पदार्थ और फल भी भेजे जाते थे। कभी-कभी डाक घोड़ों पर भी जाती थीं। इसके लिये विशेष अश्वारोही नियुक्त होते थे। डाक चौकियों पर ऐसे अश्वारोही और हरकारे होते थे। डाक चौकियों पर जो जनमार्ग पर बनी होती थीं, यात्रियों और जन साधारण के लिये भी विश्राम स्थल होते थे। उनकी सुविधा के लिये वहां पानी की बावड़ियां और कुए, आवास की व्यवस्था, दैनिक वस्तुओं के क्रय विक्रय के लिये दूकानें आदि होती थीं।

राजपरिवार—सुलतानों के परिवार अत्यंत ही विशाल होते थे। उनमें प्रचलित बहु विवाह की प्रथा के कारण, उनके राज परिवार में अनेक रमणियां, पुरुष और बच्चे होते थे। सुलतान की सब से बड़ी विवाहित स्त्री या पटरानी को "मलिक-ए जहाँ" कहा जाता था और सुलतान की स्वयं की माता को "खुदाबन्द-ए-जहां" तथा "मखदूम-ए-जहां" कहा जाता था। इन महिलाओ का सुलतान पर प्रभाव होने से, राजनीति और प्रशासन भी इनसे प्रभावित होता था और ये उसमें हस्तक्षेप करती थीं। सुलतान के मामा और उनके परिवार के सदस्य भी राजप्रासाद में रहते थे। रनवास में सहस्त्रों स्त्रियां, दास और बच्चे होते थे। इस विशाल राज परिवार की व्यवस्था के लिये एक प्रथक विभाग होता था जिसका प्रमुख वकील ए दर होता था। यह पद सम्मानित, विश्वस्त, उत्तरदायी और सुयोग्य व्यक्ति को प्रदान किया जाता था। वकील-ए-दर के अधीन राजप्रासाद के अस्तबल, पाकशाला, मधुशाला, पाठशाला, समस्त सेवकगण आदि होते थे। वह सेवकों के वेतन वितरण और बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करता था। वकील-ए-दर की सहायता व सहयोग के लिये विभिन्न अधीनस्थ अधिकारी होते थे, जैसे अमीर हाजिब या बारबक (उत्सवों का प्रबधक) नकीब-उल-नुकबा (सुलतान की आज्ञाओं की घोषणा करने वाला), जांदार (अंगरक्षकों का प्रधान जो सदैव सुलतान के साथ रहता था), चश्नीगीर, खासहदार, किताबदार, अगीची, दबीर-ए-सरा, खजीन, हदार, आदि होते थे। इस विशाल राजपरिवार की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक प्रथक 'रसद' विभाग भी था। इसके उप-विभाग कारखाना कहे जाते थे। इन कारखानों में से जो भोजन आदि की व्यवस्था करते थे,

उन्हें "रातिबी" और जो वस्त्रों और आभूषणों का प्रबन्ध करते थे उन्हें "गैर रातिबी" कहा जाता था। ये कारखाने विश्वसनीय मलिक या खान के अधीन होते थे।

प्रांतीय प्रशासन

प्रांतपति या सूबेदार—प्रशासन की समुचित व्यवस्था के लिये विशाल सल्तनत प्रांतों अथवा सूबों में विभक्त किया गया था जिसका प्रमुख प्रांतपति या सूबेदार होता था इन सूत्रों की संख्या बीस से पच्चीस होती थी। तेरहवीं सदी में सुलतानों ने सल्तनत को सैनिक क्षेत्रों में विभक्त किया था और प्रत्येक क्षेत्र "इक्ता" कहा जाता था। वह एक शक्तिशाली सैनिक अधिकारी के आधीन था जिसे "मुक्ती" कहा जाता था। दक्षिण में साम्राज्य का विस्तार हो जाने पर वहां के विजित प्रदेशों को विशाल प्रांतों में विभक्त किया गया। बड़े प्रांतों को "अकलीम" और छोटे प्रांतों को "इक्त" कहा जाता था। प्रांतीय सूबेदारों की नियुक्ति स्वयं सुलतान योग्यता व अनुभव और सैनिक सेवाओं के आधार पर करता था। अधिकांश में शक्तिशाली अमीर, सेना नायक या राजवंश के व्यक्ति इन सूबेदारों के पदों पर नियुक्त होते थे। उन्हें उनके अधीनस्थ प्रांत को या उसके कुछ विशिष्ट क्षेत्र को जागीर के रूप में दे दिया जाता था। ये प्रांतीय सूबेदार प्रांतों में सुलतान के प्रतिनिधि होने से कभी-कभी नायब सुलतान भी कहे जाते थे। सूबेदार अपने कार्यों के लिये सुलतान के प्रति उत्तरदायी था। युद्ध व संकटकाल में वह सुलतान को निर्धारित सेना सहायता के लिये भेजता था। ये प्रांतपति सेना नायक और महत्वाकांक्षी व्यक्ति होते थे। उनके अधिकार भी व्यापक और असीमित होते थे। इससे दुर्बल सुलतानों के समय या विशिष्ट अराजकता की परिस्थितियों मे वे बहुधा स्वतंत्र शासक होने के लिये विद्रोह करते थे। फलतः सुलतानों को अपने-अपने शासनकाल में ऐसे अनेकों विद्रोहों का सामना करना पड़ा। दक्षिण भारत, बंगाल और गुजरात के सूबेदार प्रायः विद्रोह ही करते थे और स्वतंत्र हो जाते थे।

प्रांतों का प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन से मिलता जुलता था। प्रांतपति या सूबेदार प्रायः व्यवहारिक रूप में निरंकुश शासक होते थे। उनपर केन्द्र का नियंत्रण नाम-मात्र का ही होता था। वे अपने प्रदेश में सुलतान के समान ही स्वेच्छाचारिता से शासन करते थे। शासन, न्याय और सेना सम्बन्धी मामलों में वे स्वतंत्र थे। उनकी अपनी निजी सेनाएं होती थीं। उनका प्रमुख कर्तव्य यह था कि वे अपने प्रदेश में आन्तरिक शांति और सुरक्षा बनाये रखें, अपने क्षेत्र में विभिन्न करों को वसूल करके उसकी निर्धारित धन राशि प्रति वर्ष राजकोष में जमा कर दें और अपनी प्रांतीय सीमाओं की सुरक्षा करें तथा सुलतान को आवश्यकता पड़ने पर निर्धारित सेना भेजें। प्रांत में न्याय की व्यवस्था, इस्लामी कानूनों तथा उलमाओं की रक्षा करना भी इनका कार्य होता था। विद्रोही जागीरदारों को प्रांतीय सूबेदार दंड भी देते थे। उन्हें अपनी आय-व्यय का हिसाब केन्द्रीय शासन को देना पड़ता था। प्रशासन संचालन के लिये सूबेदार अनेक कर्मचारियों की नियुक्ति करता था जो उसके प्रति उत्तरदायी होते थे। सुलतान प्रांतीय प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करता था।

स्थानीय शासन—तेरहवीं सदी में प्रांतीय सूत्रों या इक्तों का प्रशासन के लिये कोई विभाजन नहीं था, परन्तु चौदहवीं सदी में सल्तनत के विस्तार के कारण प्रशा-

सकीय सुविधा के लिये इक्तों को शिकों में विभाजित किया गया; प्रत्येक प्रांत में ऐसा नहीं हुआ। मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण के सूबों को चार तथा दोआब के प्रांत को दो शिकों में विभक्त किया। कुछ समय बाद प्रत्येक "शिक" को "परगनों" में विभक्त किया गया और 'परगनो' को ग्रामों में। ग्राम प्रशासन की न्यूनतम इकाई थी। इब्नबतूता "सादी" या सौ ग्रामों के समूह की प्रशासकीय इकाई का उल्लेख करता है। इससे विदित होता है प्रत्येक परगने में लगभग सौ ग्राम होते थे। "शिक" का प्रमुख अधिकारी "शिकदार" कहाता था। वह सैनिक अधिकारी होता था और अपने क्षेत्र में कानून, शांति और व्यवस्था बनाये रखता था।

प्रांतों में भूमिकर तथा अन्य करों के वसूल करने के लिये अनेक कर्मचारी होते थे। इनमें "नाजीर" तथा "वाकिफ" मुख्य होते थे। इसके अतिरिक्त करों की वसूली का समुचित हिसाब तथा आय-व्यय के विवरण रखने और उसे केन्द्रीय सरकार को भेजेने के लिये "साहिब-ए-दीवाना" या "ख्वाजा" नामक उच्च अधिकारी था। परगनों में मुशरिक, गुमाश्ता, मुहस्सिल, सरहग, आदि अधिकारी होते थे मुशरिक फसलों का निरीक्षण करता और भूमिकर वसूल करता था; गुमाश्ता शासकीय मध्यस्तता का कार्य करता था, और मुहस्सिल खाजिन कोषाध्यक्ष था। इन सब कर्मचारियों की सहायता व सहयोग से चौधरी परगने का शासन करता था। गांवों के शासन के लिये मुकद्दम अथवा मुखिया होते थे। पटवारी भूमि का सारा विवरण रखता था, और कारकून लेखक था जो ग्राम शासन का हिसाब रखता था।

सामन्तशाही—सल्तनत के प्रशासन को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिये सुलतान को अमीरों, मलिकों, सरदारों से सहायता, सहयोग और समर्थन प्राप्त होता था। जब भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई, तब सुलतानों ने अपने सैनिक अधिकारियों को जागीरें प्रदान करदीं। ये जागीरदार अपने क्षेत्र में कर वसूल करते थे, शांति-व्यवस्था बनाये रखते थे और युद्ध के समय स्वयं अपनी सेना सहित उपस्थित होकर सुलतान की सैनिक सहायता करते थे। राजसभा में और प्रशासन में भी सुलतान ने ऐसे जागीरदारों को रखा था। ये ऊंचे पदों पर नियुक्त किये गये थे। धीरे-धीरे ये अमीर, सरदार और सामन्त शक्तिशाली हो गये। सर्व प्रथम तुर्क सामन्त ही थे। बाद में इनमें ईरानी, अफगानी, अबीसीनियन और भारतीय मुसलमान अमीर भी सम्मिलित हो गये। शांति, सुरक्षा और व्यवस्था बनाये रखने के लिये तथा सैनिक सहायता देने के लिये इन अमीरों और सरदारों को सुलतान की ओर से कुछ विशेष अधिकार दिये गये थे। प्रारंभ में यह सल्तनत के हित में था। पर ज्यों-ज्यों सल्तनत की शक्ति बढ़ती गयी, राज्य का विस्तार होता गया, अमीर और सरदार राज्य के आधार माने जाने लगे इन्हें "सतून-ए-सल्तनत" राज्य के स्तंभ कहा जाने लगा और वे प्रांतपति नियुक्त किये जाने लगे। साम्राज्य सामन्तों, अमीरों और सरदारों में विभाजित होने लगा। इससे उनके अधिकारों सुविधाओं और शक्ति में अधिक अभिवृद्धि हुई, वे अधिक महत्वाकांक्षी भी हो गये तथा सुलतान बनने का प्रयत्न करने लगे। सुलतानों की व्यक्तिगत दुर्बलता, निकम्मेपन और विलासिता से सरदार और अमीर अधिकाधिक शक्तिशाली होने लगे। वे सुलतान के विरुद्ध कुचक्र और षड़यंत्र करते और उसका

विरोध करके विद्रोह करते थे, तथा स्वतंत्र शासक बनने का प्रयास करते थे । इससे सुलतान के लिये वे निरतंर भय का कारण बन गये। बलबन और अलाउद्दीन ने सामन्तों की इस शक्ति को, तथा उनके अधिकारों को कम करने के लिये एवं उन्हें अपने नियंत्रण में रखने के लिये कई ठोस कदम उठाये, उन पर कई प्रतिबंध लगाये, उनपर नियंत्रण रखने के लिये विभिन्न पदों पर परस्पर विरोधी सामन्तों को नियुक्त किया और विषम परिस्थिति में सामन्तों को दंडित भी किया । सुलतान के सामने एक ओर सामन्तों का परस्पर शक्ति संतुलन और दूसरी ओर सामन्तों और सुलतान में शक्तिसंतुलन बनाये रखने की समस्या थी । एक की शक्ति बढ़ने पर दूसरे की शक्ति कम हो जाती थी । बलबन, अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक ने यह शक्ति संतुलन बनाये रखा ।

अमीरों, सरदारों और सामन्तों में विभिन्न जाति के मुसलमान थे, जैसे तुर्क, अरब, ईरानी, अफगान, अबीसीनियन, भारतीय आदि । इसलिये इनमें पारस्परिक द्वेष, इर्ष्या और वैमनस्य था, एकता व संगठन का अभाव था । सामन्तों की शक्ति और संख्या तो बढ़ती चली गयी, पर दूसरी ओर उनकी सामूहिक एकता धीरे-धीरे लुप्त होती गई । वे अपने स्वार्थ-साधना के लिए राज्य और सुलतान के हित की चिंता नहीं करते थे । उनमें एकता, व्यवस्था और संगठन होने से वे सुलतान की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता को कम नहीं कर सके । धन की प्रचुरता और अधिकारों की असीमता से वे विलासी हो गये । वे अपने पूर्वजों के गुणों, वीरता और साहस को खो बैठे और आवश्यकता पड़ने पर न तो वे स्वयं अपनी रक्षा कर सकते थे और न सुलतान की सहायता और रक्षा करने में समर्थ थे । जातीयवाद और विविधता होने से उनमें राष्ट्रीयता की भावनाएँ जागृत नहीं हो सकीं ।

सल्तनत के प्रशासन की समीक्षा—सल्तनत युग की प्रशासकीय व्यवस्था श्रेष्ठ और उचित नहीं थी । सुलतानों में प्रशासकीय अनुभव, योग्यता और सृजनात्मक शक्ति की कमी तथा समय की मांग के अनुसार सुधार और परिवर्तन करने की दक्षता का अभाव था। भूमि और राजस्व की व्यवस्था, राजकीय आय का समुचित विभाजन प्रजा की बहुमुखी उन्नति और जन-कल्याण के विविध कार्यों का उत्तरदायित्व राज्य नहीं संभाल सका था । सेना और शक्ति पर आधारित सल्तनत का प्रशासन जिसमें जनमत और प्रजा के सहयोग की अवहेलना की गयी हो, दीर्घकाल तक नहीं रह सका । यदि एक ओर निश्चित और सुसंगठित शासन व्यवस्था का नितांत अभाव था, तो दूसरी ओर शासक और शासितों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति, सद्भावना, निष्ठा आदि का सर्वथा अभाव था ।

दीवान-ए-विजारत

वजीर—सल्तनतकाल में सुलतान के प्रधानमंत्री "वजीर" का विशेष महत्व था । वजीर का स्थाई निवास स्थान राजधानी दिल्ली में था और वह केन्द्र के संपूर्ण शासन के लिए उत्तरदायी था । दिल्ली से सुलतान के बाहर रहने के समय तक वह संपूर्ण राज्य प्रशासन की देखरेख करता था । केन्द्रीय राजस्व विभाग का वह प्रमुख होता था और अन्य विभागो का भी वह निरीक्षण करता था। उसका राजस्व का

विभाग "दीवान-ए-विजारत" कहा जाता थां। वजीर बहुमुखी प्रतिभावाला, सुयोग्य अनुभवी और विश्वासपात्र अमीर होता था। वह सुलतान को प्रशासन में पूर्ण सहयोग सहायता और परामर्श देता था। यदि सुलतान को उसके कार्य या स्वामिभक्ति पर संदेह हो जाता तो वह उसे पदच्युत कर देता था। यदि सुलतान शक्तिहीन, अयोग्य और निकम्मा हुआ तो वजीर के हाथों में समस्त शक्तियां केन्द्रीभूत हो जाती थीं। सुलतान के बाद वजीर ही सबसे अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण अधिकारी होता था। यदि कोई "नायब सुलतान" होता था, तो वह वजीर उसके अधीन रहता था।

दीवान-ए-विजारत—वजीर के विभाग का नाम दीवान-ए-विजारत होता था। इस विभाग में विभिन्न सुलतानों के समय परिवर्तन और सुधार होते रहे हैं। दीवान-ए-विजारत का कार्य यह था कि वह राजस्व की वसूली करे, प्रांतों तथा अन्य विभागों से होने वाली आय का हिसाब रखे और राजकीय आय-व्यय की जांच करे, व्यय का ठीक हिसाब रखे और व्यय पर नियंत्रण रखे।

दास सुलतानों के शासनकाल में दीवान-ए-विजारत

प्रथम दास सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक का शासन व्यवस्थित नहीं हो पाया था। इसलिए दीवान-ए-विजारत का स्वरूप स्पष्ट नहीं था। सुलतान इल्तुतमिश ने अपने दो वजीर नियुक्त किये थे, प्रथम निजाम उलमुल्क जो सैनिक अभियानों में सक्रिय भाग लेता था और द्वितीय, इमामी। इस समय वजीर सैनिक और असैनिक दोनों प्रकार के कार्य करता था। वह युद्ध में सैन्य संचालन का काम भी करता था और राज्य की आय व्यय का हिसाब भी रखता था। साम्राज्य का विस्तार होने पर इल्तुतमिश ने यह अनुभव कर लिया था कि दीवान-ए-विजारत का कार्यभार अधिक है और उसके कुशल सचालन के लिये अन्य पदाधिकारियों की आवश्यकता है। इसलिए वजीर के अधीनस्थ नायब वजीर, मुस्तफी, मुसरिफी, मुसरिफ-ए-मुमालिक (महालेखाकार), खाजिन्दार और मेल्लादार अधिकारियों को नियुक्त किया गया। इल्तुतमिश के निर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारियों के समय वजीर की शक्ति, अधिकार और महत्व अधिक बढ़ गये तथा शासन पर उसका पूर्ण प्रभाव हो गया। दुर्बल सुलतान बहरामशाह के शासनकाल में उसका वजीर इख्तियारुद्दीन अधिक शक्तिशाली हो गया था। बहरामशाह, अमीर और उलमा इस वजीर इख्तियारुद्दीन से मुक्ति पाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने उसकी हत्या करने की योजना बनायी, पर वजीर भाग निकला। वह अमीरों और उलमाओं के विरोध का दमन नहीं कर सका, क्योंकि इसके हेतु उसके पास पर्याप्त सेना नहीं थी। सुलतान की शक्ति क्षीण होने से, प्रशासन के लिये सेनानायकों की शक्ति पर अधिकाधिक निर्भर होने की प्रवृत्ति बलवती होती जा रही थी। इससे वजीर का पद और उसका विभाग उन व्यक्तियों के हाथों में चला गया जो सबसे अधिक शक्तिशाली सेनानायक होते थे।

सुलतान नासिरुद्दीन के शासनकाल में बलबन उसका दृढ़ और शक्तिशाली वजीर था। उसने अधिकार और सत्ता अपने हाथों में ले लिये थे। सुलतान बनने के पूर्व जब बलबन वजीर था और उसके पास अलग जागीर थी, तब उसने यह अनुभव कर लिया था कि वजीर प्रभावशील पदाधिकारी है और उसका विभाग दीवान-ए-

विजारत महत्वपूर्ण और शक्तिशाली विभाग है। इसलिए जब वह सुलतान बना तब उसने यह निश्चय कर लिया था कि वह वजीर का पद किसी महत्वाकांक्षी, शक्तिशाली व चालाक सैनिक अधिकारी को नहीं देगा और न उस पर कोई निम्न वर्ग या श्रेणी का व्यक्ति ही नियुक्त करेगा। वह उच्चकुलोत्पन्न ऐसा वजीर चाहता था जो सभी बातों में उसके अधीन रहे। इसलिये उसने ख्वाजा हसन को अपना वजीर नियुक्त किया। यह शक्तिहीन होने से नाम-मात्र का ही वजीर रहा। आर्थिक व राजस्व के कार्यों में भी वह पूर्ण अनभिज्ञ था। सारी सत्ता और समस्त अधिकार सुलतान बलबन के हाथों में ही थे। दीवान-ए-विजारत के कार्यों पर बलबन का ही पूर्ण नियंत्रण रहता था। बलबन ने अपने शासनकाल में प्रशासकीय सुविधा के लिये दीवान-ए-विजारत में परिवर्तन किये। इस समय सेनाविभाग और सामान्य लेखा विभाग (General Account) प्रथक-प्रथक कर दिये गये। इससे वजीर के निरीक्षण का भार कम हो गया। बलबन के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में उनकी दुर्बलता से दीवान-ए-विजारत में कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुए। इस समय वजीर का नाम कम सुनाई पड़ता है। इसलिए डाक्टर त्रिपाठी का मत है कि बलबन और उसके उत्तराधिकारियों का दुर्बल शासनकाल विजारत के विकास के लिए लाभप्रद नहीं था।

खिलजी सुलतान और दीवान-ए-विजारत

सुलतान जलालुद्दीन के शासनकाल में विजारत का कार्य भार और अधिक बढ़ गया था। उसने अपने शासनकाल में दीवान-ए-विजारत विभाग में मुसरिफ मुमालिक पदाधिकारी के अधीन दो अन्य पदाधिकारी कर दिये, प्रथम "नाजीर" और द्वितीय "वकूफ"। नाजिर पहिले से ही था और वकूफ बढ़ा दिया गया और उसके लिये विजारत-विभाग के अन्तर्गत ही एक अन्य विभाग "दीवान-ए-वकूफ" स्थापित किया गया। नाजिर का कार्य था आय का ठीक ठीक हिसाब रखना, वकूफ का कार्य व्यय के मदों पर नियंत्रण रखना और उसका ठीक-ठीक हिसाब रखना। वकूफ नामक नवीन पदाधिकारी और उसके विभाग के स्थापित हो जाने से दो लाभ हुए, प्रथम, राज्य की आय और व्यय का हिसाब प्रथक-प्रथक हो गया; द्वितीय व्यय पर नियंत्रण हो गया और व्यय में कमी की गई, सुलतान जलालुद्दीन ने विजारत का कार्य एक असैनिक पदाधिकारी को दिया। इसका नाम ख्वाजा खत्री था। वह अपने कार्य में दक्ष और चतुर था।

सुलतान अलाउद्दीन ने असैनिक व्यक्तियों को अपना वजीर बनाना उचित नहीं समझा। वह अपने सैनिक अभियानों और विजयों मे अधिक संलग्न था। इसलिये वह सैनिक अनुभव वाले व्यक्तिको विजारत का प्रमुख नियुक्त करना उचित समझता था। उसने मलिक काफूर को अपना वजीर बनाया था और वह दीवान-ए-विजारत का प्रधान बन गया। अलाउद्दीन को बढ़ती हुई सेना के व्यय के लिये, वैभव और राजसभा के लिये तथा दुर्गों व प्रासादों के निर्माण के लिये अधिक धन की आवश्यकता अनुभव हुई। उसने इस धन की पूर्ति लोगों से पिछले बकाया करों को वसूल करके करना चाहा। इसके लिये उसने दीवान-ए-विजारत के अन्तर्गत "दीवान-ए-मुस्तखराज"

नामक एक नवीन विभाग स्थापित किया। इसका कार्य था, भूस्वामियों और कृषकों पर बकाया भूमिकर की राशि की जानकारी लेना और उसे पूर्ण रूप से वसूल करना। अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में दीवान-ए-विजारत पूर्ववत ही चलता रहा और विभाग का प्रमुख सैनिक नेता ही रहा। पर जब खुसरोखां ने दीवान-ए-विजारत का प्रमुख वहीउद्दीन कुरैशी को बनाया, तब इस विभाग की बदनामी हुई थी।

तुगलक शासनकाल में विजारत

तुगलक शासनकाल में विजारत विभाग दृढ़ हो गया, उसका प्रभाव भी बढ़ गया और विभाग के प्रमुख वजीर का महत्व, उसकी शक्ति और अधिकार भी बढ़कर अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये थे। जब गयासुद्दीन तुगलक सुलतान बना, तब उसने पहिले के तीनों वजीरों ख्वाजा खातिर, ख्वाजा मुहज्जब, और जुनैदी को आमंत्रित कर, उनसे महत्वपूर्ण विषयों पर मंत्रणा की। सुलतान ने इन वजीरों के परामर्श को स्वीकार किया। इससे वजीर का महत्व बढ़ गया। अब गयासुद्दीन ने अपने दामाद मलिक शादी को दीवान-ए-विजारत का कार्य भार सौंपा।

सुलतान मुहम्मद तुगलक ने विजारत की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने ख्वाजा जहाँ को दीवान-ए-विजारत का प्रमुख नियुक्त किया। ख्वाजाजहां ने सच्चाई, ईमानदारी, कर्तव्य-निष्ठा, राजभक्ति और तत्परता से अपने कर्तव्यों का पालन किया। इससे दीवान-ए-विजारत विभाग अधिक प्रसिद्ध हो गया। सुलतान मुहम्मद तुगलक ने भूमिकर व कृषि सम्बन्धी अपने नवीन प्रयोगों को कार्यान्वित करने तथा सुधारों का निरीक्षण करने के लिये दीवान-ए–विजारत के अन्तर्गत एक नवीन विभाग स्थापित किया जिसके प्रमुख को 'दीवान-ए-अमीर कोही" कहा जाता था। साथ ही "अमरफ" विभाग का विस्तार भी हुआ और एक वकूफ की नियुक्ती भी हुई। यह मुसरिफ (आय) और मुस्तफी (व्यय) के पारस्परिक झगड़ों को सुनकर उन्हें सुलझाता था। मुहम्मद तुगलक ने व्यय पर भी नियंत्रण रखा। व्यय के अधिकारी की शक्ति सीमित कर दी। इब्नबतूता के अनुसार जब सुलतान भुगतान का आदेश देता था, तब आदेश पर पहिले "हाजिब" की सही होती थी, इसके बाद "खाने आजम", "खरितदार" और "शाही मुनीम" के हस्ताक्षर होते थे और तब वह भुगतान का आदेश वजीर के पास भेज दिया जाता था। वजीर इस पर भुगतान का आदेश देकर अपनी सही करके कोषाध्यक्ष को यह भुगतान का आदेश भेजता था। कोषाध्यक्ष इस आदेश को प्रतिदिन के अन्य आदेशों के साथ सुलतान के सम्मुख प्रस्तुत करता था। यदि इस पर भुगतान के लिये सुलतान के आदेश हो जाते तो ही भुगतान होता था, अन्यथा नहीं होता था या विलंब से होता था।

फिरोज तुगलक के शासनकाल में दीवान-ए-विजारत के प्रमुख ख्वाजाजहाँ का देहावसान हो जाने से, उसका पुत्र मलिक मकबूल विजारत का प्रमुख अधिकारी और सुलतान का वजीर बन गया। वजीर मकबूल कर्तव्य निष्ठ, परिश्रमी और स्वामिभक्त था। इसलिये फिरोज उससे अत्यधिक प्रभावित हुआ और उस पर खूब विश्वास करने लगा। फलतः वजीर मकबूल बड़े वैभव, शान-शौकत से रहता था। उसके पास अनेक

दास और रनवास में सहस्त्रों रमणियां थी। वह अपने पद और प्रतिष्ठा का प्रदर्शन भी करता था। पर चरित्र में वह भ्रष्ट था। वह राज्य के धन का कुछ अंश स्वयं भी लेकर तथा घूस लेकर अत्यधिक धनी हो गया। मकबूल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र वजीर बना। उसने भी अपने पिता के समान कर्तव्य निष्ठा से और उत्तरदायी भावनाओं से कार्य किया। वह उसके पिता से अधिक ईमानदार था। उसने सुलतान को सदा सहयोग दिया। इससे फिरोज उससे भी प्रभावित हुआ। फलत: वजीर की शक्ति में अभिवृद्धि हो गयी। वह राजसभा में सुलतान के समीप बैठने लगा और राजकार्य में उसे अधिक परामर्श देने लगा। वही ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति था जो राजसभा में सुलतान को संबोधित कर भाषण दे सकता था। दरबारी भी उससे प्रभावित थे। दिल्ली से सुलतान की अनुपस्थिति में वजीर समस्त प्रशासन का संचालन करता था। फिरोज स्वयं विलासी था और प्रशासन में सृजनात्मक वृत्ति नहीं थी। वह प्रशासकीय कार्य अपने उच्च पदाधिकारियों पर छोड़ता था। इससे वजीर को अपनी शक्ति, अधिकार और महत्व बढ़ाने का और भी अवसर मिला। वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसने फिरोज से राजकुमार मुहम्मदखां की गिरफ्तारी और गुजरात के राज्यपाल के पुत्र की गिरफ्तारी के आदेश प्राप्त कर लिये थे, क्योंकि उन्होंने सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र रचा था। राजसभा में भी वजीर के आसपास उसके विभाग के सदस्य बैठते थे। वजीर के दायीं ओर मुस्तफी (व्यय विभाग का अधिकारी) और बायीं ओर मुसरफी (आय विभाग का अधिकारी) बैठता था। मुसरफी के पीछे नायब वजीर बैठता था और नायब वजीर के पीछे नाजीर, वकूफ तथा अन्य पदाधिकारी खड़े रहते थे। ये सभी विजारत विभाग के ऊंचे अधिकारी थे। पर शासन में बेईमानी, अनैतिकता, घूस और भ्रष्टाचार का वातावरण होने से, ये इन दुर्गुणों से मुक्त नहीं थे। इससे प्रशासन में दक्षता, चुस्ती नहीं आपाई थी। प्रशासन में और विजरात में अधिक विभाग होने पर भी फिरोज प्रशासन को श्रेष्ठ, दृढ़, निष्पक्ष, सक्षम नहीं कर सका। पर बलबन और अलाउद्दीन विजारत के कम विकास होने पर भी अच्छा शासन कर सके।

फिरोज के शासनकाल में दीवान-ए-विजारत में परिवर्तन और विकास हुआ। फिरोज दासों से विशेष अभिरुचि रखता था। इससे उसके शासनकाल में दासों की संख्या बढ़कर एक लाख अस्सी हजार हो गयी थी। इनके पालन-पोषण और जीवन निर्वाह का भार राज्य पर था। इन पर अत्यधिक व्यय होने लगा। इसलिये इनकी देखरेख, वेतन, व्यय आदि के लिये फिरोजशाह ने दीवान-ए-विजारत विभाग के अधीन दीवान-ए-[illegible] विभाग स्थापित किया। इसमें एक खजांची और कुछ अन्य अधिकारी भी नियुक्त किये गये। सुलतान की भूमि (Crown land) के प्रबंध के लिये भी परिवर्तन किया गया। अब ऐसा एक नवीन अधिकारी नियुक्त किया गया जो सुलतान की भूमि या खालसा भूमि से प्राप्त कर के हिसाब अन्य करों से प्रथक रखता था। इस भूमि की उपज की वृद्धि करने के लिये प्रयत्न किये गये और कृषकों को अच्छे बीज इस विभाग की ओर से दिये जाने लगे।

विजारत में आय-व्यय के हिसाब रखने और उसके निरीक्षण हेतु भी फिरोज ने कुछ परिवर्तन किया था। फिरोज के शासन प्रारम्भ होने तक प्रांतीय और क्षेत्रीय राजस्व अधिकारी अपने आय-व्यय की तीन प्रतिलिपियां बनाकर, उन्हें क्रमशः वजीर मुसरिफ (आय अधिकारी) और मुस्तफी (व्यय अधिकारी) को भेजते थे। मुसरिफ और मुस्तफी दोनों अधिकारी आय-व्यय के इन विवरणों को संग्रह कर इन्हें ठीक-ठीक रूप से लिखकर उसकी जांच करते थे। वजीर ख्वाजाजहां का आदेश था कि मुसरिफ का कार्य आय के हिसाब की जाँच करना है और मुस्तफी का कार्य व्यय के हिसाब की जांच करना और उस पर नियंत्रण रखना है। फिरोज ने इसमें परिवर्तन किया। उसने यह आदेश दिया कि मुसरिफ को राज्य की आय का विस्तृत विवरण एवं व्यय का संक्षेप विवरण तैयार करके उसकी जांच करता है तथा मुस्तफी को राज्य के व्यय का विस्तृत विवरण और आय का संक्षेप विवरण तैयार करना और व्यय पर नियंत्रण रखना है।

इस प्रकार दीवान-ए-विजारत विभाग में परिवर्तन हुए और इसके साथ-साथ ही वजीर की शक्ति, अधिकार में भी अभिवृद्धि हुई फिरोज के दुर्बल-विलासी अयोग्य उत्तराधिकारियों के शासनकाल में तो राजसभा और प्रशासन में उसका प्रभाव और महत्व अधिक बढ़ गया। अब वजीर किसी भी उच्चपदाधिकारी को नियुक्त एवं पदच्युत कर सकता था। वह राजधानी के प्रशासन और सैनिक कार्यों का प्रधान बन गया। सुलतान भी वजीर से प्रभावित होता था। तुगलक शासनकाल में दीवान-ए-विजारत अपने विकास और शक्ति के शिखर पर था। डाक्टर त्रिपाठी ने भी लिखा है कि 'The Tughlaq period was thus the heyday of the Wizarat in Muslim India.

सैयद और लोदी सुलतान तथा दीवान-ए-विजारत

सैयद सुलतानों के समय प्रशासन की सम्पूर्ण शक्ति वजीर के हाथों में थी। सैनिक शक्ति भी उसके पास थी। सैयद सुलतान खिज्रखां और मुबारकशाह के शासनकाल में शक्ति और अधिकार वजीर के हाथों में केन्द्रीभूत हो गये। सुलतान मुबारकशाह के शासनकाल में वजीर सरवर उलमुल्क इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसने अन्य अमीरों व सरदारों की सहायता से सुलतान का वध करवा दिया। मुबारकशाह के उत्तराधिकारी सुलतान मुहम्मद बिन फरीद के शासनकाल में भी सुलतान और वजीर में मतभेद हो गया, रुष्टता उत्पन्न हो गयी और वजीर सरवर उलमुल्क ने सुलतान का वध करना चाहा पर वह बन्दी बना लिया गया और उसका वध करा दिया गया। इसके बाद कमाल-उल-मुल्क वजीर बना। पर वह दीर्घकाल तक इस पद पर नहीं रह सका क्योंकि वह सर हिंद के शासक बहलोल लोदी के पक्ष में था। फरीद के बाद जब अलाउद्दीन आलमशाह सुलतान बना; तब हमीदखां वजीर बना। फरीद और आलमशाह का शासनकाल विद्रोहों और संघर्षों का युग था। आलमशाह प्रशासन के प्रति सदा उदासीन रहता था। अतः उसके शासन का समस्त कार्य हमीदखां करता था। समस्त शक्ति और अधिकार उसके हाथों में निहित हो गये। इसलिये सुलतान ने उसका

वध करना चाहा। हमीदखां ने बहलोल लोदी से सहायता की याचना की और बहलोल के आक्रमण से उसकी रक्षा हो सकी।

लोदी सुलतानों के काल में प्रशासन में परिवर्तन हुआ। बहलोल लोदी ने तुर्की एकतंत्र शासन को समाप्त करके अफगान अमीरों के प्रभुत्व वाला प्रशासन स्थापित किया। उसने अफगान सरदारों में साम्राज्य विभाजित कर दिया और प्रत्येक सरदार अपने प्रदेश में स्वतंत्र शासक था। इससे वजीर की शक्ति कम हो गयी। उसका महत्व क्षीण हो गया। सिकन्दर लोदी ने निरंकुश शासन को पुनर्जीवित किया और शेख सैयद फर्मूली को अपना वजीर नियुक्त किया। उसने विजारत विभाग की अधिक दक्षता पर बल दिया। सिकन्दर लोदी के बाद इब्राहीम के शासनकाल में वजीर के पद का महत्व बढ़ गया। इस समय मियांमुआ वजीर था। वह अनुभवी और दक्ष था तथा व्यय पर पूर्ण नियंत्रण रखता था। वह व्यर्थ में अनुचित बातों पर व्यय नहीं करता था। वह इतना प्रभावशाली था कि राजकोष को भी उसने अपने अधिकार में कर लिया था। एक बार जब सुलतान इब्राहीम लोदी ने वजीर को यह आदेश दिया कि वह राजा मान के पुत्र को एक लाख रुपया दे दे, तब वजीर ने इसे अनुचित समझा और धन देने से इन्कार कर दिया। इब्राहीम ने अप्रसन्न होकर उसे पदच्युत कर उसके पुत्र को वजीर बना दिया। परन्तु इसके बाद वजीर का पद शक्तिशाली नहीं हो पाया।

सल्तनत के एकतंत्रात्मक शासन में वजीर के पद का अपना विशिष्ट स्थान और महत्व है। शक्तिशाली तथा प्रभावशाली वजीर के होने से सुलतान की शक्ति और अधिकार अनियंत्रित नहीं हो पाते थे। वजीर सुलतान के व्यय को नियंत्रित करता था। इसके अतिरिक्त प्रशासन और राजनीति में वजीर, प्रजा और सुलतान में मध्यस्थ का कार्य करता था। इसी प्रकार वह अमीरों और सरदारों के तथा सुलतान के बीच भी एक प्रमुख कड़ी थी। वजीर की शक्ति कम हो जाने से अमीर और सरदार भी शक्तिशाली हो जाते थे। इससे सुलतान की शक्ति अप्रत्यक्ष रूप से दुर्बल हो जाती थी। सुलतान के लिये वास्तविक समस्या यह थी कि वजीर की महत्वाकांक्षा, शक्ति और अधिकारों को इस प्रकार नियंत्रित करे कि सल्तनत के लिये वजीर और दीवान-ए-विजारत शक्ति का स्रोत हो जाय। पर ऐसा न हो सका।

दिल्ली सल्तनत धर्मसापेक्ष उल्मा प्रधान राज्य

धर्मसापेक्षता का अर्थ—जबकि किसी राज्य का आधार एक धर्म विशिष्ट होता है और उसी धर्म के कानूनों पर शासन संचालित होता है तब वह धर्मसापेक्ष राज्य कहा जाता है। उसमें उस धर्म विशेष के अनुयायियों को छोड़कर अन्य धर्मावलम्बियों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता और अधिकार नहीं होते हैं।

सल्तनत धर्मसापेक्ष राज्य—दिल्ली सल्तनत धर्मनिरपेक्ष नहीं अपितु धर्मसापेक्ष राज्य था। इससे अभिप्राय यह है कि दिल्ली के सुलतान उनका राजपरिवार और उनके प्रशासन का सम्बन्ध एक विशिष्ट धर्म, इस्लाम से था। वे इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे और उन्होंने इस्लाम को राज धर्म बना लिया। उनका राज्य और प्रशासन का आधार कुरान, इस्लाम धर्म और उसके नियम व उपनियम थे। राज्य के प्रत्येक

कार्य में इस्लाम धर्म की प्रधानता थी। सल्तनत के सभी साधन इस्लाम की सुरक्षा, उसके प्रचार और प्रसार के लिये थे। इस्लाम के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म को मान्यता नहीं थी। हिन्दू धर्म या जैन धर्म को राज्य नहीं मानता था। शासन कार्यों में उलमाओं का हस्तक्षेप होता था और वे ही शासन विधान के निर्माता थे। वे सदा कुरान के कानूनों को कार्यान्वित करने तथा मूर्ति पूजा और इस्लाम द्रोह के मूलोच्छेदन करने पर अधिक बल देते थे।

डाक्टर आइ. एच. कुरेशी ने अपने ग्रंथ Administration of Delhi Sultanate में यह बताने का प्रयास किया है कि दिल्ली सल्तनत धर्मसापेक्ष राज्य नहीं था उनका कथन है कि दिल्ली सल्तनत धर्म पर केन्द्रित अवश्य थी, परन्तु वह पूर्णतया धर्म पर अवलंबित नहीं थी, क्योंकि धर्मावलम्बित राज्य की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें निर्दिष्ट पुरोहित वर्ग का शासन होना चाहिये। डाक्टर कुरेशी का यह मत वास्तविकता की उपेक्षा करता है और सत्य से परे है। यह निर्विवाद है कि सल्तनत का आधार इस्लाम धर्म था, उसमें इस्लाम के धार्मिक कानून ही सर्वोपरि होते थे। शेख, सैयद, मुल्ला, मोलवी जो धार्मिक पुरोहितों के समान ही धर्मांध होते थे सल्तनत की नीतियों के कर्णाधार होते थे। शासन में उल्मा वर्ग के इन लोगों की ही प्रधानता थी। अतएव दिल्ली सल्तनत एक साम्प्रदायिक राज्य था।

खलीफा की स्वीकृति और प्रमाण पत्र—इस्लामी जगत का धार्मिक और राजनैतिक नेता खलीफा माना गया था। समस्त सुलतानों का वही एक सर्वोच्च शासक माना गया था। अन्य मुस्लिम शासक उसके अधीन माने गये थे। खलीफा द्वारा नियुक्त सूबेदार और शासक विभिन्न प्रांतों में उसके अधीनस्थ बनकर शासन करते थे। यदि किसी साहसिक मुस्लिम नेता या सूबेदार ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया तो वह अपने राज्य और पद को इस्लामी मान्यता देने के लिये खलीफा से प्रमाण पत्र प्राप्त करता था। दिल्ली के सुलतानों ने भी इसी नीति का अनुकरण किया। दिल्ली सुलतान अपने को खलीफा का नायब या प्रतिनिधि कहते थे। इल्तुतमिश, मुहम्मद तुगलक आदि शक्तिशाली सुलतानों ने इस्लामी जगत में अपने पद व राज्य की प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि के लिये खलीफा से स्वीकृति और प्रमाण पत्र प्राप्त किये थे। सुलतानों ने अपनी मुद्राओं में अरबी भाषा में अपने नायक के साथ-साथ खलीफा का नाम भी अंकित करवाया था तथा खुतबा में भी खलीफा का नाम पढ़वाया था। खलीफा से प्राप्त राजसी वेश-भूषा भी उन्होंने स्वीकार की थी। कुछ सुलतानों ने खलीफा को राजदूत भी भेजे थे। वे सब सल्तनत की इस्लामी धर्म की विशिष्टता और धर्मसापेक्षता के द्योतक हैं।

सुलतान की इस्लामी निष्ठा और उसके कार्य—दिल्ली के सुलतान और उनके राजपरिवार इस्लाम धर्म के अनुयायी थे। उनका दैनिक जीवन और आचरण कुरान के नियमों द्वारा नियंत्रित होता था। सुलतान इस्लाम के प्रति निष्ठावान होता था और इस्लामी परम्पराओं व कानूनों को विधिवत् मानता था। सभी सुलतान नियमित रूप से नमाज पढ़ते थे, रोजा रखते थे। कुछ सुलतानों ने तो नमाज न पढ़ने वालों को दंडित भी किया था। किसी भी सुलतान के राज्यारोहण के समय, उसके शासन प्रारंभ के पूर्व ही उसे इस्लाम के धार्मिक प्रमुख इमाम के प्रति धर्मनिष्ठा और भक्ति की शपथ

लेना पड़ती थी और इस नवीन सुलतान के नाम का मुख्य मस्जिद में खुतबा पढ़ा जाता था। प्रायः सुलतान कुरान और इस्लाम के अन्य धार्मिक ग्रंथों के प्रति श्रद्धा रखते थे। उनके विद्वानों का राजसभा में आदर सम्मान करते थे। सुलतान "मशत बरदार" नामक पद पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति करता था जो कुरान और इस्लाम धर्म के अन्य ग्रंथों को लाता ले जाता था। स्वयं सुलतान प्रति शुक्रवार को प्रमुख मस्जिद में आकर अन्य सभी मुसलमानों के साथ नमाज पढ़ता था और वर्ष में ईदगाह पर भी सबके साथ नमाज पड़ता था तथा वह इस अवसर पर आयोजित उत्सवों और समारोहों में भी भाग लेता था। राजप्रासाद में राजपरिवार के बच्चों के लिये कुरान के अध्ययन की विशेष व्यवस्था की जाती थी। बच्चों की शिक्षा ही धार्मिक आधार पर होती थी। धार्मिक अवसरों और उत्सवों पर सुलतान मुसलमानों को दान देता था। सुलतान के ये कार्य उसकी धर्मसापेक्षता के परिचायक हैं।

सल्तनत का धर्मसापेक्ष शासन—सल्तनत के शासन का सर्वोच्च अधिकारी सुलतान था और वह अल्लाह का प्रतिनिधि माना जाता था। इसलिये सुलतान और उसके प्रशासन का प्रमुख कार्य इस्लाम का प्रचार और प्रसार था। उसका आदर्श गैर मुसलमानों का धर्म परिवर्तन तथा समस्त प्रजा को इस्लाम के शरण में लाना था। इसके लिये वे राज्य के सभी साधनों का उपयोग न्यायसंगत मानते थे। नागरिक कानूनों (Civil Laws) को धार्मिक अधिनियमों के अन्तर्गत मान लिया गया। कुफ़ (विधर्मीपन) का दंड मृत्यु मान लिया गया और धार्मिक सहिष्णुता का अर्थ पाप के साथ समझौता माना जाने लगा। प्रशासन में धार्मिक सहिष्णुता अपवादात्मक और कुरान के नियमों के विरुद्ध मानी जाती थी। इस्लाम धर्म के प्रचार में शिथिलता लाने को या विधर्मियों के राज्यों, नगरों व निवासगृहों पर आक्रमणों में शिथिलता लाने में राजकीय कर्त्तव्य की दुष्टतापूर्ण उपेक्षा मानी जाती थी। हिन्दुओं के राज्यों पर आक्रमण करना, उनकी संपत्ति लूटना और उनकी प्रजा को बलपूर्वक मुसलमान बनाना मुस्लिम सैनिकों व सेनानायकों का कर्त्तव्य समझा जाता था। सुलतानों द्वारा मुस्लिम विद्वानों और उल्माओं को उनकी धार्मिक सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप अनुदान और जागीरें दी जाती थीं। उन्हें सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की पूर्ण सुविधाएँ दी जाती थीं।

हिन्दू विरोधी नीति—दिल्ली सुलतानों ने हिन्दू विरोधी नीति अपनायी। अनेकानेक हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया और अनेकों को प्रलोभन देकर इस्लाम ग्रहण कराया गया। युद्ध-बन्दी हिन्दू पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को निर्दयता से मौत के घाट उतार दिया जाता था, कभी-कभी दासों के रूप में बेच दिया जाता था और कभी-कभी आतंक और तलवार के बल पर मुसलमान बना लिया जाता था। आक्रमण के समय उनकी धन-संपत्ति लूट ली जाती थी, उनके नगरों, ग्रामों व निवासगृहों में आग लगा कर उन्हें विध्वंस कर दिया जाता था। हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया जाता था और उसे कठोरता से वसूल किया जाता था। इस्लाम ग्रहण कर लेने से इस कर से मुक्ति मिल जाती थी। जजिया के अतिरिक्त उन पर इतने अधिक कर लगाए जाते थे और उन्हें इतनी निर्ममता से वसूल किया जाता था कि हिन्दुओं की आर्थिक दशा अत्यंत ही सोचनीय हो गई थी। उनकी स्त्रियां मुसलिम परिवारों

में सेविकाओं का कार्य कर या श्रमिक का कार्य कर अपने परिवार का भरण-पोषण करतीं थीं। हिन्दुओं को राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। वे प्रशासन में किसी पद पर नियुक्त नहीं किए जा सकते थे। समाज में वे घोड़े, हाथी या पालकी की सवारी नहीं कर सकते थे, उत्सवों में वे सुन्दर बहु-मूल्य वस्त्राभरण धारण नहीं कर सकते थे। अपनी सुरक्षा के लिए कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं रख सकते थे। वे अपनी इच्छानुसार अपने धर्म का पालन नहीं कर सकते थे, अपने देवी-देवताओं का पूजन-अर्चन नहीं कर सकते थे। उनके धार्मिक उत्सवों व जुलूसों पर प्रतिबंध लगा दिए गए थे। उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता नहीं थी। किसी नवीन मंदिर के निर्माण करने अथवा प्राचीन मंदिर के जीर्णोद्धार की आज्ञा नहीं थी। यही नहीं उनके अनेकानेक मंदिरों को विध्वंस करके उनके स्थानों पर उनकी ही सामग्री से भव्य मसजिदों का निर्माण किया जाता था। हिन्दुओं की धन और संपत्ति इस्लाम और राज्य के अधीन मानी जाती थी। हिन्दुओं को उनकी भूमि के लिए पचास प्रति-शत भूमि-कर देना पड़ता था और हिन्दू व्यापारियों को भी मुस्लिम व्यापारियों की तुलना में दूने व्यापारिक-कर और चुंगी देना पड़ती थी। उल्माओं के परामर्श व प्रभाव से सुलतानों ने हिन्दू काफिरों के विरुद्ध जेहाद करने की नीति अपनाई और धर्मांधता के कारण अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा पर अनेक धार्मिक अत्याचार किये। राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी उनके साथ घृणित व्यवहार किए। तुर्क सुलतान और उनके प्रमुख अधिकारी और सहयोगी समृद्ध उच्च कुलीन हिन्दू परिवारों से पत्नियाँ प्राप्त करने के लिए विविध प्रकार के षड़यंत्र रचते और भीषण नरसंहार करते थे। कतिपय विद्वानों की धारणा है कि विश्व इतिहास के किसी युग और देश में मानव जीवन का इतनी निर्ममता और नृशंसता से विनाश नहीं हुआ जितना कि दिल्ली सुलतानों के शासनकाल में उनकी हिन्दू विरोधी नीति से हुआ। ये सब तथ्य पूर्णरूपेण स्पष्ट करते हैं कि सल्तनत धर्मसापेक्ष राज्य था।

दिल्ली सल्तनत में उल्मा वर्ग

अरब देश में पैगम्बर मुहम्मद के सिद्धान्तों का प्रचार करने और उनका अर्थ समझाने और स्पष्ट करने के लिए विद्वानों का एक विशिष्ट समूह संगठित किया गया था। इस समूह को "अलसुनत-वल-जमायत" कहा जाता था। बाद में इस समूह के विद्वानों को उल्मा नाम दे दिया गया। ये विद्वान मुल्ला और मौलवी होते थे। अरब में खलीफा के दरबार में उल्माओं का खूब सम्मान होता था। वहां उनका कार्य था धार्मिक नियमों का प्रतिपादन। जब दिल्ली में तुर्की सुलतानों का शासन प्रारंभ हुआ तो उन्होंने खलीफा की राजसभा की नीति व कार्यों का अनुकरण किया और अपनी राजसभा में उल्माओं को भी रखा और उन्हें धार्मिक व सामाजिक कार्य दिए। बाद में उन्हें न्याय करने के भी अधिकार दिए गए। उल्मा वर्ग के लोग सुलतान की सहायता करते थे, उसकी नीति और कार्यों का समर्थन करते थे। जब सुलतान युद्ध से वापिस दिल्ली लौटता, तब उसका स्वागत करने वाले लोगों में उल्माओं का भी प्रमुख स्थान होता था। उल्मा शिक्षित और सुसंस्कृत होने से, धर्मशास्त्रों व धार्मिक कानूनों का उन्हें पूर्ण ज्ञान होने से सुलतान की राजसभा और मुस्लिम समाज

में उलमाओं का बड़ा महत्वपूर्ण और प्रभावशाली स्थान था। प्रायः इस्लाम के अनुयायी पदाधिकारी व सुलतान उलमाओं के परामर्श से ही कार्य करते थे। न्याय और धर्म के मामलों में उलमाओं का स्थान बहुत ऊंचा हो गया था। प्रशासकीय, धार्मिक और न्याय के ऊचे पदों पर उलमाओं को नियुक्त किया गया। इससे वे शासन के स्तंभ बन गये। सुलतानों पर उनका प्रभाव भी अत्यधिक बढ़ गया। उन्होंने यह घोषणा की थी कि "जो सुलतान की आज्ञा का पालन करता है, वही दयालु परमपिता (ईश्वर) का पालन करता है। सुलतान के होने से निर्बल मनुष्य विश्व में जीवित रह सकते हैं।" उनके इस कथन ने जन-साधारण में सुलतान के पद को बहुत ऊंचा उठा दिया। धीरे-धीरे उलमा वर्ग के लोग इतने प्रभावशाली हो गये कि वे दिल्ली सल्तनत के प्रशासन और राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे। दिल्ली सुलतानों और उलमाओं के पारस्परिक संबंधों का विवरण निम्नलिखित है।

दास वंश के सुलतान और उलमा

दास वश के प्रारम्भिक सुलतान इस्लाम के आदर्शों एवं विचारधाराओं को अपनाते थे और खलीफा की नीति का अनुकरण करते थे। इसलिए सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक और सुलतान इल्तुतमिश ने उलमाओं को अपनी राजसभा में स्थान दिया। उन्हें अनेक सुविधाएँ दी गयीं और राजनैतिक क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण स्थान बन गया। सुलतान बलबन ने भी उलमाओं को विशेष सुविधायें दीं और उनका सम्मान किया। परन्तु उन्हें राजनीति और प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करने दिया। उलमाओं ने दास सुलतानों का समर्थन किया और उनके प्रभुत्व को बढ़ा दिया। इससे जनता में सुलतानों के प्रति अपूर्व श्रद्धा एवं निष्ठा के भाव उत्पन्न हो गए। दास वंश के शासकों के समय उलमा सल्तनत के स्तंभ के सदृश थे।

खिलजी सुल्तान और उलमा

इस समय तक उलमा लोग अवसरवादी बन गए थे। वे आलसी, सुस्त एवं भ्रष्ट हो चुके थे। उनके ज्ञान और विद्वत्ता से अनुचित लाभ उठाया जा रहा था। सुलतान जलालुद्दीन के शासनकाल में उनकी शक्ति बढ़ गई थी। वे षड़यंत्र भी करते थे। सीदी मौला का विद्रोह और उसका दंड इसका उदाहरण है। सुलतान जलालुद्दीन "अला-मुजाहिद" की उपाधि उलमा की अनुमति बिना धारण नहीं कर सका। सुलतान अलाउद्दीन ने उलमाओं के इस बढ़ते हुए प्रभाव और शक्ति को कम कर दिया। राजनीति और प्रशासन में वह उलमाओं का प्रभाव और हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता था। उसने उलमाओं को राजनीति से प्रथक रखने का प्रयास किया। वह निरंकुश और स्वतंत्र शासक होने से उलमाओं के धार्मिक नियत्रणों से मुक्त रहना चाहता था और एक दृढ़ शक्तिशाली शासन को गठित करना चाहता था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अलाउद्दीन उलमाओं का घोर विरोधी था या उनसे घृणा करता था। वह शेख, मुल्ला और मौलवियों का बड़ा सम्मान करता था। वह समकालीन शेख निजामुद्दीन औलिया को बड़ी श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखता था। एक दूसरे शेख हमीदुद्दीन का भी सम्मान करता था। विद्वान पर धर्मांध काजी गयासुद्दीन से तो वह विभिन्न विषयों पर परामर्श लेता था और उसे पुरस्कृत करता था। सत्य तो

यह है कि सुलतान अलाउद्दीन की इच्छा पर निर्भर था कि वह उल्माओं का परामर्श माने या न माने। उसके पूर्वगामी सुलतान उनके परामर्श के अनुसार कार्य करते थे। जब कभी उल्माओं के परामर्श से या धार्मिक हस्तक्षेप से राजनीति में अलाउद्दीन का अहित होता था, तो वह धार्मिक सिद्धान्तों को त्याग देता था और अपनी नीति व योजना को कार्यान्वित करता था। राजनीतिक दृष्टिकोण से वह धर्म को अधिक महत्व नहीं देता था। इसलिये कहा जाता है कि उसने राजनीति से राज धर्म को प्रथक रखा। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें धार्मिक सहिष्णुता और उदारता थी। उसने गैर मुसलमानों पर उतनी ही निर्ममता से अत्याचार किये जितने किसी अन्य धर्मांध सुलतान ने।

अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसके निर्बल उत्तराधिकारियों ने अपनी सत्ता बनाये रखने के लिये उल्माओं को अपनी ओर मिला लिया और उनका समर्थन व सहयोग प्राप्त करने के लिये उन्हें राज कोष से अत्यधिक धन दिया। इससे उल्माओं की शक्ति पुनः बढ़ गयी और वे प्रभावशाली और महत्वपूर्ण हो गये।

तुगलक सुलतान और उलमा

सुलतान गयासुद्दीन तुगलक उल्माओं के प्रभाव और शक्ति को क्षीण करना चाहता था। उसके पूर्व जो अपार धनराशि उल्माओं में वितरित की गयी थी और राजकोष रिक्त हो गया था, गयासुद्दीन ने उस धन को उल्माओं से लेने का निश्चय किया और उन्हें आदेश भी दिये कि वे धन राजकोष में लौटा दें। परन्तु उल्माओं ने ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रगट की। इन उल्माओं में प्रसिद्ध संत और विद्वान निजामुद्दीन औलिया भी थे। इससे चिढ़कर गयासुद्दीन ने औलिया को उल्माओं के न्यायालय में प्रस्तुत होने के आदेश दिये। इन घटनाओं से विदित होता है कि गयासुद्दीन ने उल्माओं के अधिकार कम करने का प्रयास किया और उसमें तथा उल्माओं मे अच्छे सम्बन्ध नहीं थे।

गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी सुलतान मुहम्मद तुगलक ने भी उल्मा विरोधी नीति अपनायी। उसने उन्हें राजनीति और प्रशासन से अलग रखा। उन्हें धार्मिक कार्यों और उत्सवों तक ही सीमित रखा। न्याय की दृष्टि से उसने साधारण व्यक्तियों की भांति उल्माओं को भी अपराध करने पर दंडित किया। इब्नबतूता के अनुसार उसने १५ उल्माओं को भयानक दंड दिये। उसने उल्माओं से विभिन्न कर भी वसूल किये। इससे अनेक उल्माओं ने जिनमें जियाउद्दीन बर्नी भी था मुहम्मद तुगलक की कटु आलोचना और तीव्र निंदा की है। पर मुहम्मद तुगलक की उल्मा विरोधी नीति का यह अर्थ नहीं है कि वह अधार्मिक था। वह इस्लाम में विश्वास करने वाला बड़ा धर्मनिष्ठ सुलतान था। वह इस्लाम के नियमों का पालन करता था और धार्मिक विद्वानों का सम्मान भी करता था। उसने खलीफा के दूत का बड़ी शान से अभिनन्दन किया था और अपने वस्त्रों पर खलीफा का नाम छपवा दिया।

मुहम्मद तुगलक के उत्तराधिकारी सुलतान फिरोजशाह ने समझ लिया था कि मुहम्मद तुगलक की असफलता का एक कारण उसका उल्माओं से संघर्ष था। उसकी यह धारणा हो गयी थी कि धार्मिक नेताओं की अवहेलना के कारण मुहम्मद तुगलक

असफल हो गया था। इसलिये उसने उल्माओं का परामर्श व समर्थन अधिकाधिक प्राप्त किया। सिंघ में मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद उल्माओं के कारण ही फिरोज सिंहासन प्राप्त कर सका था। इसलिये फिरोज ने अपना शासन शरीयत के अनुसार प्रारंभ किया। उसने उल्माओं को सभी अधिकार पुन: दे दिये और उनकी मान्यताओं को फिर से स्वीकार कर लिया। वह राजनीति और प्रशासन के मामलों में तत्संबन्धी समस्याओं को हल करने में उल्माओं का परामर्श और सुझाव मान लेता था और उनके अनुसार निर्णय देता था या नवीन नियमों की रचना करता था। उल्माओं के सुझाव और दबाव से ही फिरोज ने प्रथक दान विभाग और दीवान-ए-विजारत में कृषि विभाग स्थापित किया। फिरोज उल्माओं के इशारों पर शासन संचालन करने लगा। वह उनके हाथों में कठपुतली बन गया। फलत: राज्य के कार्यों व नीति में उल्माओं के प्रभाव, शक्ति और अधिकारों की अत्यधिक अभिवृद्धि हो गयी। फिरोज के उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य होने से उन्होंने भी उल्माओं का समर्थन प्राप्त किया और उल्माओं की शक्ति दृढ़ होती रही।

सैयद और लोदी सुलतान तथा उल्मा

सैयद और लोदी सुलतान अपनी शक्ति संगठित करने में और विरोधियों का दमन करने में ही अधिक संलग्न रहे। गृहयुद्ध, षड़यंत्रों और संघर्षों में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत हुआ। इस अव्यवस्था के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत रूप से उल्मा शक्तिशाली नहीं थे, पर उनका सामूहिक प्रभाव, प्रशासन और प्रजा पर खूब था।

उल्माओं के हस्तक्षेप और प्रभाव के परिणाम

उल्मावर्ग के लोग इतने अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली हो गये थे कि, कोई भी दृढ़ सुलतान उनकी सत्ता को चुनौती नहीं दे सका। अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने उनके प्रभाव व हस्तक्षेप को क्षीण करने का प्रयास किया। फलत: मुहम्मद तुगलक और उल्माओं में दीर्घकालीन संघर्ष हो गया और उन्होंने मुहम्मद की, उसके कार्यों व नीति की कटु आलोचना और भर्त्सना की।

राजनीति और प्रशासन संबंधी मामलों में उल्माओं का परामर्श और हस्तक्षेप हानिकारक सिद्ध हुआ। विभिन्न समस्याओं को उल्मा धार्मिक और संकीर्ण दृष्टिकोण से देखते थे। ऐसे ही दृष्टिकोण से दिये गये परामर्श के अनुसार जब सुलतान कार्य करते थे, तब वे विभिन्न कठिनाइयों और समस्याओं में उलझ जाते थे। उल्माओं की नीति, उपदेश और सलाह के कारण सुलतानों ने धर्मांध होकर हिन्दू विरोधी नीति अपनाई और उन्होंने अपनी प्रजा के बहुसंख्यक हिन्दुओं के विरुद्ध जेहाद छेड़ दिया। उन पर असीमित धार्मिक अत्याचार और अनाचार किये। इससे हिन्दू राज्य के घोर विरोधी हो गये। उन्होंने अपने विद्रोहों से राज्य की जड़ों को खोखला कर दिया।

सारांश

सल्तनतकाल की प्रमुख विशेषताएं—सन् १२०६ से १५२६ तक दिल्ली में पांच राजवंशों के सुलतानों ने शासन किया। तीन सदियों के इस शासनकाल की कुछ विशेषताएं रहीं हैं—(१) इस काल में भारत में मुस्लिम शासन, सत्ता और संस्कृति

की नींव पड़ गयी और धीरे-धीरे उसने भारतीय जीवन को प्रभावित किया। (२) इस युग में सुलतानों के युद्धों व विजयों का इतिहास है, राष्ट्रीय विकास का अभाव रहा है। (३) सल्तनत धर्म तंत्र इस्लामी राज्य था। राज्य के संपूर्ण साधन व शक्ति इस्लाम के प्रचारार्थ प्रयुक्त की जाती थी और विधर्मी हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार किये जाते थे उन्हें राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित किया गया था। उनकी सम्पत्ति को लूटा गया, उनके मंदिरों को विध्वंस कर उन पर मस्जिदों का निर्माण किया गया तथा उनसे जजिया और अन्य कर निर्ममता से वसूल किये जाते थे। (४) राज्य में उल्माओं की प्रधानता थी। न्याय विभाग में व प्रशासन के ऊंचे पदों पर वे होते थे। उनके परामर्श से हिन्दू विरोधी नीति अपनायी जाती थी। (५) राज्य सेना और शक्ति पर आधारित था, प्रजा के सहयोग, समर्थन और श्रद्धा पर नहीं था। (६) राज्य का स्वरूप सामन्तवादी था। अमीरों, सरदारों और पदाधिकारियों को विस्तृत जागीरें दी गयी थीं। (७) प्रशासन में मुस्लिम वर्ग को अधिक सुविधाएँ व अधिकार मिलने से, कालान्तर में वे विलासप्रिय, वैभवशाली, अकर्मण्य, अनैतिक और दुराचारी हो गये। (८) प्रशासकों में सृजनात्मक प्रवृत्ति का अभाव था। इसलिये सुधार और जन-कल्याण के कार्य होने की अपेक्षा शासन में भ्रष्टता, अनैतिकता और शिथिलता व्याप्त थी। (९) सुलतान स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासक थे। उनकी सत्ता और अधिकार असीमित थे। (१०) अल्पकाल में ही राजवंशों के अधिक परिवर्तन हुए। इससे सल्तनत में स्थायित्व का अभाव हो गया।

सल्तनत में शीघ्र राजवंशीय परिवर्तन के कारण

दिल्ली सल्तनत में तीन सौ वर्षों के काल में दासवंश, खिल्जीवंश, तुगलक सैयद व लोदीवंश के सुलतानों ने राज्य किया। थोड़े थोड़े वर्षों में इन राजवंशों का परिवर्तन होता गया। इसके कारण हैं:-(१) सल्तनत का आधार सेना, भय और आतंक था। ऐसी दशा में विशाल सेना वाला और सैनिक गुणों वाला सुलतान ही सफलता से शासन कर सकता था। निकम्मे, अयोग्य और दुर्बल सुलतानों को पदच्युत कर दिया गया था। (२) सुलतानों ने जन-कल्याण के कार्य नहीं किये, इससे उन्हें जनता का समर्थन और सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। (३) सुलतान निरंकुश और स्वेच्छाचारी होते थे, पर जब अयोग्य और निकम्मे सुलतान दृढ़ निरंकुश शासक नहीं हो सके तब अमीरों व सरदारों की शक्ति बढ़ गयी और उन्होंने नवीन वंश के व्यक्ति को सुलतान बना दिया। (४) राजकुमारों को प्रशासकीय और राजनैतिक प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी। इससे जब वे दुर्बल, प्रतिभाहीन और अयोग्य उत्तराधिकारी होते, तो षड़यंत्रों और हत्याओं से उन्हें प्रथक कर दूसरे वंश का राज्य स्थापित कर दिया जाता था। (५) प्रायः सुलतान राजकार्यों व सुधारों के प्रति उदासीन थे। इससे सरकारी नीति दुर्बल और प्रशासन शिथिल हो गया था। जिससे निर्बल वंश का पतन शीघ्र हो गया। (६) सल्तनत धर्मसापेक्ष राज्य होने से हिन्दू विरोधी नीति अपनायी गयी और हिन्दुओं के विरोध और विद्रोहों ने राज्य की जड़ों को हिला दिया। (७) उल्माओं की प्रधानता थी उनके अधिकार व सत्ता अधिक बढ़े हुए थे। इसलिये वे विरोधी वंश को उसके विरुद्ध षड़यंत्रों में भाग लेकर उसे पतित कर देते थे। (८) प्रायः सुलतान विलासी,

कामुक, अयोग्य, दुश्चरित्र और मूर्ख होने से परिवर्तन सरलता से हो सके। (९) उत्तराधिकार के दृढ़ नियमों के अभाव में विद्रोह, गृहयुद्ध और वंश परिवर्तन होते थे। (१०) अमीरों, मलिकों और सामन्तों की स्वतंत्रता और दलबन्दियों के कारण कुचक्र, षड़यंत्र होते थे और सुलतानों का परिवर्तन सरलता से होता था। (११) आन्तरिक षड़यंत्रों और विद्रोहों से राजवंश का पतन होता था। (१२) योग्य, प्रतिभावान दासों के अभाव में राजवंशों का पतन शीघ्र हो गया। (१३) सुलतानों ने दृढ़ सीमांत नीति नहीं अपनायी, इससे मंगोलों के व तैमूर के आक्रमण हुए, जिससे राजवंश नष्ट हो गये।

मंगोलों के आक्रमण

मंगोल बर्बर और युद्धप्रिय थे। बारहवीं सदी में मध्य एशिया में उनका उत्कर्ष हुआ। उन्होंने अपने पर्वतीय स्थानों से निकलकर रूस तुर्की ईरान, अफगानिस्तान और भारत पर निरंतर आक्रमण किये। उन्होंने मध्य एशिया में ख्वारिज्म के शाह के राज्य और अरब में खलिफाओं के राज्य को नष्ट कर दिया। चंगेजखां मंगोलों का नेता था। उसने मंगोलों को एक युद्धरत राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया। मध्य एशिया के ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ चंगेजखां भारत की सीमा तक आ पहुँचा था। परन्तु इल्तुतमिश की दूरदर्शिता से भारत चंगेजखां के भयंकर आक्रमण से बच गया। चंगेजखां की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने ट्रांस आक्सियाना और फारस में अपने शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिये थे। यहीं से मंगोलों ने भारत पर आक्रमण किये। विभिन्न देशों से युद्ध करने के कारण उन्हें सामरिक कलाओं का अच्छा अनुभव था। वे अपने भयानक आक्रमण पलायन, गतिशीलता, विजय के बाद लूट, विध्वंस, बर्बर नरसंहार और नृशंसता के कार्यों के लिये विशेष प्रसिद्ध थे। इनके आक्रमणों का वर्णन निम्नलिखित है:—

सुलतान इल्तुतमिश और रजिया के समय मंगोल आक्रमण— इल्तुतमिश के शासनकाल में चंगेजखां जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ भारत की सीमा तक आ गया था। प॰ इल्तुतमिश ने जलालुद्दीन को सहायता व शरण नहीं दी। इसलिये चंगेजखाँ भारत के भीतरी क्षेत्र तक नहीं आया। सन् १२३५ तक मंगोलों ने सिंध के उत्तरी प्रदेश तक का क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया। रजिया के शासनकाल में मंगोल आक्रमणों का भय फैल गया था।

सुलतान बहरामशाह, अलाउद्दीन मसूद और नसिरुद्दीन के शासनकाल में मंगोल आक्रमण—सन् १२४० में बहरामशाह के शासनकाल में मंगोलों ने बहादुर ताहर के नेतृत्व में आक्रमण किया और लाहौर को अपने अधिकार में कर लिया। अलाउद्दीन मसूद के शासनकाल में सन् १२४५-४६ में मंगोलों ने सीमान्त क्षेत्र पर पुनः आक्रमण किये। सुलतान नासिरुद्दीन का शासन प्रारम्भ होते ही मंगोलों ने मगूखां और अलीबहादुर के नेतृत्व में सिंध और मुलतान व पंजाब पर आक्रमण किये और पश्चिमी पंजाब तक का क्षेत्र उनके अधिकार में चला गया। नासिरुद्दीन की दुर्बल स्थिति के कारण अनेक सामन्त और कुछ सेनानायक अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये मंगोलों से जा मिले। मंगोलों को आगे बढ़ने से रोकने के लिये नासिरुद्दीन के वजीर बलबन

ने मंगोलों के प्रशासक से अपने वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिये और मंगोल नेता हलाकूखां से मैत्री व कूटनीति सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

सुलतान बलवन और कैकूबाद के समय मंगोल आक्रमण—बलबन के शासनकाल के प्रारम्भ में हलाकूखां के नेतृत्व में मंगोलों ने लगभग प्रतिवर्ष भारत के सीमा क्षेत्र में आक्रमण किये और सिंध व पंजाब की जनता को नृशंसता के कष्ट पहुंचाने लगे। इन्हें रोकने के लिये बलबन ने सीमा सुरक्षा की दृढ़ नीति अपनायी। उसने सीमांत क्षेत्र में अनुभवी सेनानायक शेरखां को तथा अपने पुत्र बुगराखां और मुहम्मदखां को मंगोलों का सामना करने के लिये नियुक्त किया। वहां के प्राचीन दुर्गों की मरम्मत करवाई और नवीन दुर्ग निर्मित किये, और वहां अठारह सहस्र सैनिक और यथेष्ट युद्ध सामग्री रखी। इससे जब सन् १२७९ और १२८५ में मंगोलों ने भयंकर आक्रमण किये तब उन्हें परास्त कर पीछे खदेड़ दिया गया। इस युद्ध में बलबन का पुत्र मुहम्मदखां मारा गया था। कैकूबाद के शासनकाल में भी मंगोलों ने दो बार आक्रमण किये।

खिलजी शासन में मंगोल आक्रमण

अब तक मंगोल आक्रमणों का उद्देश्य लूटपाट करना था, पर अब दिल्ली को विजय करना हो गया। सन् १२९२ में जलालुद्दीन के शासनकाल में अब्दुल्लाखां के नेतृत्व में डेढ़ लाख मंगोलों ने भारत पर आक्रमण किया। पर सुलतान ने उन्हें सिंध नदी के तट पर युद्ध में परास्त कर दिया। जलालुद्दीन ने मंगोलों से मैत्री संबंध स्थापित कर लिये जिससे अनेक मंगोल भारत में बस गये और इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। सुलतान अलाउद्दीन के शासन काल में सन् १२९७-९८ में मंगोलों ने दाऊद के नेतृत्व में आक्रमण किया, पर वे जालंधर के समीप परास्त कर दिये गए। सन् १२९८-९९ में उन्होंने सालदी के नेतृत्व में आक्रमण किया। सालदी परास्त हुआ और बन्दी बना लिया गया। सन् १२९९ में मंगोलों ने कुतलुगख्वाजा के नेतृत्व में भयंकर आक्रमण किया और वे दिल्ली के समीप आगये। परन्तु अलाउद्दीन ने उन्हें परास्त कर भगा दिया। इसके बाद सन् १३०३ में तुर्गी के नेतृत्व में, सन् १३०४ में ख्वाजातास और अलीबेग के नेतृत्व में और सन् १३०७ में इकबाल मंदा और कुबा के नेतृत्व में मंगोलों ने भीषण आक्रमण किये। पर अलाउद्दीन के सेनानायकों ने उन्हें परास्त कर भगा दिया। मंगोलों को खदेड़ने में गाजी मलिक का बहुत हाथ था। अंतिम युद्ध में अनेक मंगोल पकड़ कर मार डाले गये। इसके बाद जो मंगोल भारत में बस गये थे, उन्हें अलाउद्दीन ने मरवा दिया क्योंकि वे सुलतान के विरुद्ध षड़यंत्र और विद्रोह कर रहे थे।

तुगलक शासन में मंगोलों के आक्रमण

सुलतान ग्यासुद्दीन के शासन में मंगोलों ने केवल एक ही आक्रमण किया और वे हार गये। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में मंगोलों के नेता तरिमाशिरीन ने आक्रमण किया। पर सुलतान ने उसे परास्त कर दूर तक पीछा करते हुए भगा दिया। फिरोज तुगलक के काल में मंगोलों का कोई आक्रमण नहीं हुआ। अब

मंगोलों का राज्य सीमित हो जाने से और उनकी शक्ति क्षीण हो जाने से उनके आक्रमणों का भय नहीं रहा था।

मंगोल आक्रमणों का प्रभाव—इन मंगोल आक्रमणों को रोकने के लिये सीमान्त क्षेत्रों में सुदृढ़ दुर्ग और चौकियां स्थापित की गयीं और वहाँ अनुभवी सेनानायकों के नेतृत्व में सशक्त सेना रखी गयी। राजधानी दिल्ली में स्थायी सेना की वृद्धि की गयी, आन्तरिक विद्रोहों और अराजकता को दबाने का प्रयास किया गया जिससे कि मंगोल आक्रमणकारी उनका लाभ नहीं उठा सकें। मंगोल आक्रमणों ने दिल्ली साम्राज्य का विस्तार रोक दिया क्योंकि सुलतानों का ध्यान और शक्ति इन आक्रमणों को विफल बनाने में लग गयी। कई मंगोल भारत में बस गये और मुसलमान हो गये। इससे मुस्लिम जनसंख्या में वृद्धि हुई। मंगोलों के आक्रमणों ने तैमूर और बाबर के आक्रमणों का मार्ग प्रशस्त कर दिया जिससे मुगलवंश स्थापित हो गया।

दिल्ली सुलतानों के राजत्व का सिद्धांत

दिल्ली सल्तनत का सर्वोच्च शासक निरंकुश और स्वेच्छाचारी सुलतान था। इसलिये वहाँ असीमित और अनियंत्रित राजतंत्र स्थापित हो गया।

दास सुलतान और राजत्व का सिद्धांत—सुलतान कुतुबुद्दीन को समय व अवसर नहीं मिल सका जिससे वह अपना राजत्व का सिद्धांत स्पष्ट न कर सका। पर इल्तुतमिश ने राजतंत्र को दृढ़ बनाया। राजत्व प्रदर्शन के लिये नवीन मुद्राएँ प्रसारित कीं और राज्य को वैधानिक स्वरूप देने के लिये खलीफा से स्वीकृति और प्रमाणपत्र प्राप्त किये। उसने नवीन राजसभा संगठित कर अपने समर्थक चालीस सामन्तों का दल निर्मित किया। राजत्व के सिद्धांत को दृढ़ करने के लिये सुलताना रजिया ने स्वयं प्रशासन संभाला, और युद्ध का संचालन किया। इसके बाद बलबन ने राजत्व के सिद्धांत को नवीन ढंग से प्रतिपादित किया। उसने सुलतान में देवत्व का अंश मानकर राजत्व के दैवी सिद्धांत और अधिकार में अपना विश्वास प्रगट किया। इसके अनुसार यह माना जाने लगा कि प्रजा को सुलतान के आदेशों का पालन ईश्वर की आज्ञा के समान करना चाहिये और सुलतान के विरुद्ध विद्रोह नहीं करना चाहिये। इस सिद्धांत से बलबन अधिक निरंकुश स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित सुलतान बन गया। पर उसने अपने चरित्र में श्रेष्ठता, पवित्रता और दृढ़ता रखी, दुर्गुणों से वह मुक्त रहा। उसने सुलतान के पद के गौरव, प्रतिष्ठा और यश की अभिवृद्धि की और न्यायदान में निष्पक्ष हो गया।

खिलजी सुलतान और राजत्व का सिद्धांत—बलबन के दुर्बल उत्तराधिकारियों के समय राजत्व के सिद्धांत क्षीण हो गये थे परन्तु जलालुद्दीन खिलजी ने राजत्व में कठोरता और स्वेच्छाचारिता की नीति त्याग करके उदारता, दयालुता, सहिष्णुता और क्षमाशीलता की नीति अपनायी। उसके उत्तराधिकारी सुलतान अलाउद्दीन ने अनियंत्रित सत्ता और निरंकुश शासन में विश्वास किया। उसकी इच्छा ही कानून व विधान थी। उसने लौह और रक्त की कठोर दमन नीति को अपनाया। वह इतना दृढ़ था कि प्रशासन में जिस समस्या का वह निराकरण करना

चाहता था, उसके लिये उसे चाहे कितने ही कठोर उपायों का अवलंबन करना पड़ता वह किंचित भी हिचकता नहीं था। उसने प्रश सन में कई सुधार व परिवर्तन किये और उनके लिये कठोर कानून बनवाये। अमीरों व सरदारों की शक्ति कम करने के लिये उन पर अनेक प्रतिबंध लगाये। उसने प्रशासन में उलमाओं व सामन्तों को हस्तक्षेप नहीं करने दिया।

तुगलक सुलतान और राजत्व का सिद्धांत

सुलतान गयासुद्दीन तुगलक ने स्वेच्छाचारिता के साथ-साथ प्रजाहित के सिद्धांत को अपनाया। उ के उत्तराधिकारी सुलतान मुहम्मद तुगलक ने भी निरंकुशता, स्वेछाचारिता और असीमित अधिकारों में विश्वास रखने के बाद भी प्रजाहित की ओर विशेष ध्यान दिया और शासन में सुधार व परिवर्तन किये। उसने प्रशासन और राजनीति को धर्म से प्रथक रखा। मुहम्मद के बाद फिरोजशाह ने राज्य की अपेक्षा धर्म को सर्वोच्च स्थान दिया। उसने उलमाओं के परामर्श तथा आदेशों के अनुसार शासन किया तथा जनहित के कार्य किये। उसके दुर्बल और विलासी उत्तराधिकारियों के शासन में केन्द्रीय प्रभुता और सर्वोच्च सत्ता क्षीण हो गयी।

सैयद सुलतान और राजत्व का सिद्धांत—सैयद सुलतान अफगान थे और उन्होंने अपने अनेक अफगान सरदारों में जागीरें बांट दी थीं। ये सुलतान प्रजा-वत्सल और दृढ़ नहीं थे। इससे अफगान लोग सुलतान को तो चाहते थे, पर वे स्वामी से घृणा करते थे। अफगान स्वतंत्रता और युद्ध प्रिय होने से अपने पर सुलतान का स्वामी के रूप में कोई नियंत्रण या अंकुश नहीं चाहते थे। वे सुलतान को अपने सहयोगियों और बराबर वालों में सर्वप्रथम मानते थे। उनकी धारणा थी कि सल्तनत का अस्तित्व और स्थायित्व उनकी शक्ति और सहयोग पर निर्भर है। सैयद सुलतान ऐसे स्वतंत्र अवज्ञ और सशक्त अमीरों व सरदारों को नियंत्रण में रखने में असमर्थ थे।

लोदी सुलतान और राजत्व का सिद्धांत—अफगान अमीरों और सरदारों के विरोध की प्रतिक्रिया से बचने के लिये सुलतान बहलोल लोदी ने घोषणा की कि वह अफगान अमीरों में से ही एक है। उसने उनके समर्थन व सहयोग से कार्य किया और निरंकुश शासक होने का दावा नहीं किया। इस विनयशीलता और समर्पण की नीति से सुलतान के प्रभुत्व और पद की प्रतिष्ठा क्षीण हो गयी। अमीरों की शक्ति और अधिकारों में वृद्धि हो गयी। प्रजाहित के सुधार नहीं हुए। शासन अमीरों की इच्छा पर निर्भर हो गया। राज्य का एकतंत्रात्मक और राजतंत्रात्मक रूप समाप्त हो गया। बहलोल के उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी ने इस नीति में परिवर्तन कर दिया। उसने अफगान अमीरों व सरदारों की शक्ति पर नियंत्रण रखे और उन्हें सुलतान के आदेशों को मानने के लिये बाध्य किया और सुलतान के पद की लुप्त प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। सिकन्दर के उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी ने इस नीति को और आगे बढ़ाया और घोषणा की कि राज्य का कोई सम्बन्धी नहीं होता है। सभी लोग सुलतान के अधीन सामन्त और प्रजा होते हैं। इस सिद्धांत के आधार पर वह निरंकुश शासक हो गया,

सामन्तों के अधिकारों को कम कर दिया, राजसभा में उन्हें समर्पण के भाव से खड़े रखा उनके साथ दुर्व्यवहार भी किया। इससे वे विद्रोही हो गये और उन्होंने इब्राहीम लोदी के विरुद्ध बाबर को आमंत्रित कर दिया। इब्राहीम लोदी पानीपत के युद्ध में परास्त हुआ और मारा गया।

दिल्ली सल्तनत की शासन व्यवस्था

खलीफा का नाममात्र का आधिपत्य—खलीफा मुस्लिम जगत का राजनैतिक और धार्मिक नेता तथा मुसलमानी साम्राज्य का रक्षक माना जाता था। मुस्लिम शासक अपने को खलीफा के अधीन मानते थे। दिल्ली के सुलतानों ने अपनी सत्ता को दृढ़ करने के लिये, धार्मिक क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये, अपने पद व राज्य के लिये खलीफा की मान्यता और प्रमाणपत्र प्राप्त किये। पर दिल्ली के सुलतान नाममात्र के लिये ही खलीफा के अधीन थे। अनेक सुलतानों ने तो खलीफा की कोई चिंता ही नहीं की।

सुलतान—राज्य का सर्वोच्च अधिकारी और प्रमुख सुलतान था। सुलतान बनने के लिये कोई वंशानुगत निश्चित अधिकार या नियम नहीं थे। अनेक बार अमीर और सुलतान अपने में से ही किसी व्यक्ति को सुलतान निर्वाचित कर लेते थे। सुलतान ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था और उसके आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। सुलतान के अधिकार और शक्ति अनियंत्रित और असीमित थे। इससे सुलतान स्वेच्छाचारी, निरंकुश और अनियंत्रित था। वह राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश और सेना का प्रधान होता था और उच्च अधिकारियों को नियुक्त और पदच्युत भी करता था। इस्लाम धर्म व राज्य की रक्षा करना, विधर्मियों व विरोधियों से युद्ध करना, सड़कों का निर्माण, व्यवस्था और सुरक्षा करना, कर वसूल करना जन कल्याण के कार्य करना, आदि सुलतान के प्रमुख कर्तव्य माने जाते थे।

शासन का स्वरूप—शासन धर्म सापेक्ष था और कुरान व इस्लाम के नियमों पर आधारित था। राज्य का स्वरूप केन्द्रीय राजतंत्र था। अधिकांश सुलतानों में शासकीय प्रतिभा, अनुभव और सृजनात्मक वृत्ति का अभाव होने से हिन्दूकालीन शासन व्यवस्था को थोड़े परिवर्तन करके अपनालिया गया था।

मंत्रिपरिषद्—शासन संचालन में सुलतान की सहायता और परामर्श के लिये एक मंत्रि परिषद होती थी जिसमें वजीर, आरिज-ए-मुमालिक, दीवान-ए-इंशा और दीवान-ए-मुमालिक नामक चार मंत्री होते थे। ये उसके सेवक के रूप में होते थे और उनके परामर्श को मानने के लिये सुलतान बाध्य नहीं था।

वजीर—यह सुलतान का प्रधान मंत्री था। केन्द्र का सम्पूर्ण शासन उसके हाथों में था। राजधानी में सुलतान की अनुपस्थिति में वह राज्य और प्रशासन की देखभाल करता था। वित्त विभाग का प्रमुख वजीर होता था। भूमि का बंदोबस्त करना, भूमिकर के नियम बनाना, करों की दर निर्दिष्ट करना राज्य के व्यय का हिसाब रखना और उसका निरीक्षण करना, सैनिक व्यवस्था पर नियंत्रण रखना,

सैनिकों को वेतन वितरित करना तथा अन्य विभागों का सामान्य निरीक्षण करना वजीर के प्रमुख कार्य थे। वजीर का विभाग दीवान-ए-विजारत कहा जाता था। उसकी सहायता और सहयोग के लिये नायब वजीर, मुसरिफ-ए-मुमालिक (महालेखाकार), मुस्तफा-ए-मुमालिक (महालेखक परीक्षक), आदि पदाधिकारी होते थे।

दीवान-ए-आरिज या आरिज-ए-मुमालिक—यह सैनिक विभाग का प्रधान था। सैनिकों की भरती, उनके प्रशिक्षण वेतन, अश्वों, रसद आदि की व्यवस्था, और सेना का निरीक्षण करना उसका कार्य था।

दीवान-ए-इंशा इसके अधीन स्थानीय शासन और लेखाविभाग था। सूबेदारों पदाधिकारियों व राज्यों के साथ पत्र-व्यवहार करने का भार इस मंत्री पर था। उसकी सहायता के लिये अनेक दबीर होते थे।

दीवान-ए-रसालत—धार्मिक विषयों से इसका संबंध था, परन्तु कुछ का मत है कि यह विदेशी संबंधों का था।

सद्र-उल-सदूर—धार्मिक विषयों, उलमा वर्ग के कार्यों से इसका संबंध था। यह इस्लामी सिद्धांतों को भी कार्यान्वित करता था।

काजी-उल-कुजात—यह मंत्री न्याय विभाग का प्रमुख था और काजियों पर नियंत्रण रखता था।

इनके अतिरिक्त **दीवान-ए-बन्दगान** (दासों के विभाग का प्रमुख), **शाही प्रबंधक** (गृह विभाग का प्रमुख), **दीवान-ए-अमीर-ए-कोदी** (कृषि, व्यापार, बाजार आदि से संबंधित), **बरीद-ए-मुमालिक** (डाक तथा गुप्तचर विभाग का प्रमुख), **दीवान-ए-खैरात** (दान विभाग), **दीवान-ए-इस्तिहकाक** (पेंशन-विभाग), आदि थे। शासन में भ्रष्टता व घूस का बाहुल्य था।

साम्राज्य की आय के साधन व कर-व्यवस्था

खिराज या भूमिकर—यह राज्य की आय का प्रमुख साधन था। इसे खिराज कहते थे। यह मुसलमानों को $\frac{१}{१०}$ भाग और हिन्दूओं को $\frac{१}{५}$ भाग देना पड़ता था. दोआब में हिन्दुओं को अपनी उपज का आधा भाग भूमिकर में देना पड़ता था। सिंचाई कर भी था। **जकात**—यह मुसलमानों की संपत्ति पर २$\frac{१}{२}$ प्रतिशत की दर से लगाया जाता था और इनके हितों में ही यह धन व्यय होता था। **खम्स**—यह लूट से प्राप्त धन था। इस धन का $\frac{४}{५}$ भाग राजकोष में और $\frac{१}{५}$ भाग सैनिकों में वितरित किया जाता था। **जजिया**—हिन्दुओं पर यह कर था। इस्लाम ग्रहण करने पर उन्हें इस कर से मुक्ति मिल जाती थी। **खानों पर कर**—खानों की आय का $\frac{१}{५}$ भाग राज्य को कर के रूप में और शेष $\frac{४}{५}$ भाग खान की भूमि के स्वामी को दिया जाता था। **आयात कर**—यह आयात कर बाहर से आने वाली वस्तुओं पर २$\frac{१}{२}$ प्रतिशत था। हिन्दू व्यापारियों को इसका दूना देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त लोगों पर अन्य कर जैसे निवासगृह कर, पशुकर, चरागाहकर, जल कर आदि थे। इनसे राज्य की आमदनी होती थी।

सैनिक व्यवस्था—सेना राज्य का मूल आधार थी। सुलतान को सैनिक अभियानों, युद्धों और साम्राज्य विस्तार के लिये, विद्रोहों के दमन के लिए तथा आंतरिक शांति-व्यवस्था व बाह्य सुरक्षा के लिये सेना रखना अनिवार्य था। सेना के दो स्वरूप थे, एक सुलतान की सेना जो राजधानी में रहती थी और दूसरी सामन्तों द्वारा युद्ध के समय भेजी जाने वाली सेना। सेना का विभाग दीवान-ए-अर्ज कहा जाता था। इसका प्रधान आरिज-ए-मुमालिक था। सुलतान की सेना राष्ट्रीय नहीं थी, उसमें तुर्क, ईरानी, मंगोल, अफगान और भारतीय सैनिक होते थे। सेना में पैदल सिपाही, अश्वारोही, हाथी और तोपखाना होता था। इसमें बारूद की सहायता से गोले फेंकने के "मंगनीक" और "अर्रादं" यंत्र थे। अश्वारोहियों का सेना में प्रमुख स्थान था। युद्ध के समय घायल सैनिकों की सुश्रूषा और चिकित्सा की भी व्यवस्था थी। सेना की रसद लाने ले जाने का कार्य बनजारे करते थे। कभी सैनिकों को नगद वेतन और कभी जागीर दी जाती थी। अलाउद्दीन ने कुछ सैनिक सुधार किये थे, जैसे सैनिकों की हुलिया रखने, घोड़ों को दागने की प्रथा और नगद वेतन देने की परम्परा। अलाउद्दीन के शासनकाल में एक सैनिक का वेतन २३३ टंक प्रतिवर्ष था जो तुगलक काल में ५०० टंक हो गया था।

न्याय-व्यवस्था—सुलतान राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। वह राजसभा में मुकदमों को सुनता था और निर्णय देता था। सुलतान को न्यायिक और कानूनी परामर्श व सहायता के लिये काजी-ए-मुमालिक होता था। प्राणदंड देने का अधिकार केवल सुलतान को था। दो प्रकार के न्यायालय होते थे, प्रथम दीवान-ए-कजा और द्वितीय, दीवान-ए-मजालिम। प्रांतों व नगरों में काजी मुकदमे सुनते थे, और मुफ्ती द्वारा दी गयी कानूनी सलाह से निर्णय करते और दंड देते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम पंचायतें मुकदमे सुनती और निर्णय देती थीं। कुरान व इस्लाम के नियमों के अनुसार न्याय होता था। दंड-विधान कठोर था। अंगभंग और मृत्यु-दंड प्रचलित था।

पुलिस व गुप्तचर विभाग—पुलिस का प्रमुख कोतवाल था। प्रत्येक नगर में शांति-व्यवस्था, कानून और सुरक्षा के लिये कोतवाल रहते थे। पुलिस विभाग के अधीन गुप्तचर विभाग था। गुप्तचरों का जाल सा बिछा था।

डाक-विभाग—डाक लाने ले जाने के लिये डाक हरकारे थे जो प्रत्येक कोस की दूरी पर नियुक्त होते थे। कभी-कभी डाक घोड़ों पर भी जाती थी। डाक-चौकियां भी होती थीं जहाँ अश्वारोही व हरकारे होते थे। यात्रियों के विश्राम और पानी को भी वहाँ व्यवस्था होती थी।

राज परिवार—बहु विवाह के कारण सुलतान की अनेक पत्नियां और बच्चे होते थे। उसके रनवास में सैकड़ों स्त्रियां रहती थीं। इस विशाल राजपरिवार की व्यवस्था के लिये एक अलग विभाग था जिसका प्रमुख वकील-ए-दर होता था। उसके अधीन अनेक कर्मचारी भी होते थे, जैसे अमीर हाजी या बारबक, जांदार, चश्नीगीर, खासहदार, अंगीचो आदि। वकील-ए-दर के अधीन राजप्रासाद के अस्त-बल, पाकशाला, मधुशाला, पाठशाला, के समस्त सेवक आदि होते थे।

प्रांतीय शासन

प्रांतीय सूबेदार—प्रशासन की समुचित व्यवस्था के लिये सल्तनत को प्रांतों में विभक्त किया गया था। बड़े प्रांतों को "अकलीय" और छोटे प्रांतों को "इक्ता" कहा जाता था। शक्तिशाली अमीर, सेनानायक और राजवंश के व्यक्ति ही प्रांतीय सूबेदार होते थे। प्रांतपति के अधिकार व्यापक और असीमित होते थे। व्यवहारिक रूप में वे निरंकुश शासक होते थे। अपने प्रदेश में आन्तरिक शांति और सुरक्षा बनाये रखना, करों को वसूल कर उनकी निर्धारित धनराशि केन्द्रीय राजकोष में जमा करना, आवश्यकता पड़ने पर सुलतान को निर्धारित सेना भेजना, आदि प्रांतीय सूबेदार के कर्तव्य थे।

स्थानीय शासन—प्रशासन की सुविधा के लिये इक्तों को शिकों में विभाजित किया गया और प्रत्येक शिक को परगनों में विभक्त किया और परगना ग्रामों में। शिक का प्रमुख अधिकारी शिकदार कहा जाता था। चौधरी परगने का शासन करता था और मुकद्दम या मुखिया गांवों का। प्रांत में करों की वसूली और आय-व्यय के हिसाब के लिये साहिब-ए-दीवान, मुशरिफ, गुमास्ता, मुहस्सिल आदि अन्य अधिकारी होते थे।

सामन्तशाही—जब भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना हो गयी, तब सुलतानों ने अपने समर्थकों और सेनानायकों को राज्य में व्यापक जागीरें प्रदान की थीं और उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त किया था। संकट व युद्धकाल में वे सेना भेजकर सुलतान की सहायता करते थे। इन जागीरदारों और अमीरों में तुर्की, ईरानी, अफगानी, अबीसीनियन, और भारतीय मुसलमान थे। इन्हें विशेष अधिकार और सुविधाएँ थीं। शक्तिशाली होने पर ये सुलतान के विरुद्ध विद्रोह और षड़यंत्र करते थे। इसलिये बलबन और अलाउद्दीन ने इन पर कई प्रतिबंध लगा दिये थे और इनकी शक्ति कम कर दी थी। परन्तु कालान्तर में वे स्वार्थी, विलासी और दुर्बल हो गये थे। इससे वे न तो स्वयं अपनी रक्षा कर सकते थे और न सुलतान की सहायता ही।

समीक्षा—सुलतानों में सुधार और परिवर्तन करने की क्षमता नहीं थी। राज्य प्रजा की बहुमुखी उन्नति और जनकल्याण के विविध कार्य नहीं करता था। जनमत और प्रजा के सहयोग की अवहेलना की गयी थी। शासक और शासितों में गहरी खाई थी।

दीवान-ए-विजारत

वजीर—यह सुलतान का प्रधानमंत्री होता था। वह राजस्व विभाग का प्रमुख होता था और अन्य विभागों का निरीक्षण करता था। सुलतान के बाद भी प्रशासन में वजीर ही सबसे अधिक प्रभावशाली और महत्वशाली अधिकारी होता था। उसका विभाग **दीवान-ए-विजारत** कहलाता था।

दीवान-ए-विजारत—राजस्व की वसूली करना, राज्य की आय-व्यय का हिसाब रखना, जांच करना, आदि कार्य इस विभाग का था। दास मुसलमानों के शासनकाल में इल्तुतमिश ने इस विभाग के अधिक कार्य को देखकर वजीर की सहायता के लिये नायब वजीर, मुस्तफी, मुसरिफी, खाजिन्दर, भेल्लादार आदि अधिकारी नियुक्त किये थे। दुर्बल दास सुलतानों के समय वजीर की शक्ति अधिक बढ़ गयी थी। बलबन ने दीवाने-विजारत विभाग पर पूर्ण नियंत्रण रखा। इस विभाग के कार्यभार को कम करने के लिये सुलतान जलालुद्दीन ने नाजीर और वकूफ नामक दो अन्य पदाधिकारी और बढ़ा दिये। नाजीर का कार्य आय का ठीक-ठीक हिसाब रखना था और वकूफ का कार्य व्यय के मदों पर नियंत्रण रखना और उसका ठीक हिसाब रखना। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने करों की अवशेष राशि को वसूल करने के लिये दीवान-ए-विजारत विभाग के अन्तर्गत "दीवान-ए मुस्तखराज" विभाग खोला। अब दीवान-ए-विजारत का प्रमुख एक सेनानायक होने लगा।

तुगलक शासनकाल में दीवान-ए-विजारत और वजीर का महत्व बढ़ गया और उसका खूब विकास हुआ। अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने और प्रशासन में सुधार करने के लिये मुहम्मद तुगलक ने इस विभाग के अधीन "दीवान-ए-अमीर कोही" नामक एक अलग विभाग खोला तथा सत्यनिष्ठ, ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को वजीर नियुक्त किया। फिरोज तुगलक के शासनकाल में वजीर मकबूल और उसके पुत्र ने जो वजीर बनाया गया था दीवान-ए-विजारत को सुसंगठित किया तथा दासों की बढ़ती हुई संख्या के प्रशासन के लिये इसी विभाग के अधीन "दीवान-ए-आरिज" विभाग स्थापित किया गया।

फिरोज तुगलक के शासनकाल में अनेक परिवर्तनों और सुधारों के कारण वजीर और दीवान-ए-विजारत का प्रभाव और महत्व बहुत बढ़ गया। सैयद और लोदी सुलतानों के शासन काल में, अमीरों और सरदारों की शक्ति में वृद्धि होने से विद्रोहों और संघर्षों का युग होने से, दीवान-ए-विजारत जीर्ण हो गया था। फिर भी वजीर, सुलतान, अमीरों व प्रजा के मध्यस्थ का कार्य करता था, उनके बीच की एक प्रमुख कड़ी था।

दिल्ली सल्तनत धर्म सापेक्ष उल्मा प्रधान राज्य—दिल्ली सुलतान और उनका राज्य इस्लामी था। इस्लाम के प्रचार व प्रसार के लिये राज्य के सभी साधनों का उपयोग होता था। इस्लामी जगत में अपने राज्य व पद की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये सुलतान खलीफा से प्रमाणपत्र और उसकी स्वीकृति प्राप्त कर लेते थे। वे नाममात्र के लिये खलीफा के अधीन रहते थे। सुलतान इस्लाम धर्म के नियमों को मानता था और उसके अनुसार धर्मनिष्ठ रहकर कार्य करता था। प्रशासन में नागरिक कानून, कुरान और इस्लामी कानूनों के अधीन थे। इससे सुलतानों ने हिन्दू विरोधी नीति अपनायी। उन्होंने हिन्दुओं के राज्यों पर आक्रमण किये, उनकी सम्पत्ति को लूटा, उनके मन्दिरों व मूर्तियों को तोड़ा-फोड़ा और उनके स्थानों पर मसजिदें बनवायीं। अनेकानेक हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता

था। उन्हें विभिन्न अधिकारों से वंचित कर उन पर जजिया कर लगाया जाता था। प्रशासन में भी उल्मावर्ग के लोग न्याय विभाग में व अन्य पदों पर आसीन रहते थे। अनेक सुलतान उनके परामर्श व सहयोग को मानते थे और उसके अनुसार कार्य करते थे। इसलिये धर्म, प्रशासन और राजनीति में उल्माओं का अत्यधिक प्रभाव था और कभी-कभी वे सुलतान की सत्ता को भी चुनौती देते थे। उनके परामर्श और हस्तक्षेप से सुलतानों की नीति कट्टर धार्मिक असहिष्णुता की हो गई थी और उनका राज्य धर्मसापेक्ष बन गया था।

———

अध्याय २५

सल्तनत-काल में जन-जीवन

सांस्कृतिक समन्वय – मुसलमानों से पूर्व भारत में अनेक विदेशियों ने आक्रमण किये, जैसे यूनानी, शक, हूण, सीथीयिन आदि। इन बाह्य आक्रमणकारियों ने देश की तत्कालीन राजनैतिक दशा को अस्त-व्यस्त और भस्मसात तो किया, पर यहाँ की संस्कृतियों को न तो विध्वंस ही कर सके और न मूलरूप से परिवर्तित ही; अपितु भारतीय जन-जीवन, सभ्यता और संस्कृति ने उन्हें अपने में आत्मसात कर लिया। कालान्तर में ये विदेशी हिन्दू समाज में घुल-मिल गए। परन्तु अरब, तुर्क, अफगान आदि आक्रमणकारियों के साथ ऐसा न हो सका। इसके कुछ विशिष्ट कारण हैं। प्रथम, ये विदेशी अपना प्रथक सामाजिक और राजनैतिक संगठन और दृढ़ धार्मिक विश्वास रखते थे। उनकी अपनी इस्लामी संस्कृति थी। उनका अपना निजी स्पष्ट और निश्चित धर्म इस्लाम था। इस धर्म के प्रति उनकी अत्यधिक निष्ठा थी और इसका प्रचार करने के लिये वे भारत में प्रविष्ट हुए थे। वे विजित देश भारत के विधर्मियों के बहुदेववाद और मूर्तिपूजा से अपने इस्लाम को श्रेष्ठ समझते थे और इसके प्रचार व प्रसार को अपना कर्त्तव्य समझते थे। अतः हिन्दू समाज और संस्कृति द्वारा उनका समन्वय करना नितांत असंभव था। द्वितीय, सुलतानों की धर्मान्धता, हिन्दू विरोधी नीति और धार्मिक अत्याचारों से भी हिन्दुओं के हृदय में इन विदेशी आक्रमणकारियों के प्रति घृणा, शत्रुता और वैमनस्य के भाव भर दिये गये। मुसलमानों को विजयोपहार के बदले में हिन्दुओं की घोर शत्रुता प्राप्त हुई। इसीलिये प्रो. हबीब ने कहा है कि इस्लाम के सबसे बड़े शत्रु उसके धर्मान्ध भक्त ही थे। दृष्टि वैभिन्य और शत्रुता के कारण हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक समन्वय दुष्कर हो गया। तृतीय, इस समय तक हिन्दू संस्कृति और समाज ने भी अपनी पूर्ण विशाल-हृदयता और आत्मसात करने की प्रवृत्ति को खो दिया था। उसमें विषाक्त कुरीतियां, रूढ़ियां और दुरूह जटिलता उत्पन्न हो गई थी। चतुर्थ, हिन्दुओं का बहुदेववाद और मूर्ति पूजा, इस्लाम के कट्टर एकेश्वरवाद तथा निराकार निर्गुण अल्लाह से किसी भी प्रकार से मिलता नहीं था। हिन्दुओं की जाति-प्रथा और सामाजिक विषमता व असमानता, मुसलमानों की एकता व इस्लाम के भ्रातृत्व के सिद्धांत के विपरीत थी। हिन्दू धर्म की अपेक्षा इस्लाम अधिक सादा और जनवादी था। पांचवां, मुसलमान समाज में शासक वर्ग की दृढ़ भावना थी और हिन्दू समाज शासित होने के कारण हीन भावना से दबा हुआ था। विदेशी शासक और विधर्मी शासितों में परस्पर भेद-भावों की एक गहरी खाई थी। दो विरोधी संस्कृतियों और धर्मों का संघर्ष हो गया था। उनका सम्मिश्रण व समन्वय असंभव सा प्रतीत होता था। पर यह परिस्थिति दीर्घकाल तक नहीं रह सकी।

सांस्कृतिक समन्वय के कारण

हिन्दू और इस्लामी संस्कृतियों का धीरे-धीरे समन्वय हुआ और एक मिले-जुले सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का अभ्युदय हुआ। दोनों वर्गों और उनके जीवन में सहिष्णुता, सहमिलन, सहयोग, सम्मिश्रण और सामंजस्य की भावना उत्पन्न हो गई। उसके कुछ निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

(१) हिन्दू राजनीति और प्रशासन में अरबों, तुर्कों, अफगानों आदि की अपेक्षा अधिक अनुभवी और निपुण थे। इन विदेशी शासकों मे शासन में नवीन संस्थाओं के निर्माण, सुधार और परिवर्तन करने की प्रतिभा और योग्यता का अभाव था, उनमें सृजनात्मक प्रवृत्ति नहीं थी। अतः अनिवार्यतः ये विदेशी हिन्दू शासन प्रणाली के पोषक बने। शासन के मूलभूत सिद्धांत हिन्दू ही रहे। ग्रामों में पंचायत प्रथा प्रचलित रही। राजस्व के कर्मचारी हिन्दू ही रहे और हिन्दू प्रशासकीय संस्थाएं सर्वत्र मान्य रहीं। नवीन मुस्लिम शासकों और उनकी राजनीति ने हिन्दू राजनीति प्रशासन और विभागों व पदाधिकारियों के पारिभाषिक शब्दों व नामों को अपनी सुविधानुसार परिवर्तित कर दिया।

(२) विदेशी अरब, तुर्क, अफगान आदि सीमित संख्या में ही भारत में आये थे। अतः यहां के शासक बन जाने पर समस्त शासकीय कर्मचारियों और पदाधिकारियों के स्थान पर ये नहीं रह सकते थे। प्रशासन की समुचित व्यवस्था के लिए अनिवार्यतः विवश होकर इन्हें बहुसंख्यक हिन्दुओं के अनुभवी व्यक्तियों को कालान्तर में प्रशासन में नियुक्त करना पड़ा। इसका स्वस्थ प्रभाव विदेशी शासकों पर पड़ा। परस्पर अविश्वास और घृणा की प्रवृत्ति नष्ट हो गई।

(३) यद्यपि शासक वर्ग मुस्लिम धर्म और संस्कृति का था, परन्तु कृषि, व्यापार, उद्योग, व्यवसायों में हिन्दुओं की ही प्रधानता रही। हिन्दू श्रमिक, शिल्पी और महाजन समाज में पूर्ववत् ही बने रहे और इन्होंने विदेशियों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर से प्रभावित किया और उनमें समन्वय और सम्मिश्रण के भाव उत्पन्न किये।

(४) अनेकानेक विदेशी तुर्कों और अफगानों ने भारतीय स्त्रियों से विवाह कर लिए। उनके रनवासों में भारतीय स्त्रियों का बाहुल्य हो गया। इन भारतीय स्त्रियों ने विदेशी मुस्लिम परिवारों के आचरण, चरित्र और भावनाओं को प्रभावित किया। भारतीय माता की परम्परागत कोमलता, वात्सल्यता और सहृदयता ने तुर्कों, अफगानों और मंगोलों के हृदयों की निर्ममता और नृशंसता को कम कर दिया। उन्हें कोमल कर दिया और उन्हें हिन्दू संस्कृति और जन-जीवन की ओर अधिक आकर्षित किया। इनकी संतानों के स्वभाव और चरित्र में भी तुर्कीपन कम और भारतीयता की भावना का प्राधान्य हो गया।

(५) मुस्लिम शासन में जहां कहीं भी हिन्दुओं को राज्याश्रय और सहानुभूति प्राप्त हुई, उन्होंने विरोधी मुस्लिमों के हृदय में अपने व्यवहार और चरित्र से सहिष्णुता और सहमिलन की उदात्त भावनाएं जागृत कर दीं। दोनों में एक दूसरे के प्रति समन्वय और सौहार्द के भाव उत्पन्न हो गए। मुस्लिम वर्ग सोचने लगा कि हिन्दुओं को पूर्णरूपेण कुचलना असंभव है और हिन्दुओं ने सोचा कि अब मुस्लिम लोग भारत

में स्थाई रूप से बस गए हैं और वे शासक भी हैं, इसलिए उनका विरोध करना, उनसे लड़ना अहितकर होगा। दोनों वर्गों में पारस्परिक आदान-प्रदान और समन्वय की भावनाएं बलवती होती गयीं।

(६) नागरिक क्षेत्रों में समन्वय और सम्मिश्रण की भावनाए उतनी तीव्र व बलवती नहीं थीं जितनी कि ग्रामीण क्षेत्रों में। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में वहां की हिन्दू जनता ने विवशतावश हिन्दू धर्म त्याग कर इस्लाम अपनाया था। रहन-सहन, आचार-विचार व व्यवहार में वे हिन्दुओं से मिलते-जुलते ही थे। उन्होंने अपना कोई प्रथक समाज, संस्कृति व धर्म स्थापित नहीं किया था। इसलिए वे मुस्लिम वर्ग को अधिक प्रभावित कर सके और वे समन्वय की ओर झुके।

(७) इस युग के भक्ति आन्दोलन और उसके प्रचारक संतों ने हिन्दू-मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने में बड़ा योग दिया। सूफी संतों ने, कबीर, चैतन्य, नानक आदि सन्तों ने धार्मिक सहिष्णुता, सम्मिश्रण, समन्वय और एकीकरण की भावनाओं का मार्ग और भी प्रशस्त किया।

समन्वय और सम्मिश्रण, सहानुभूति और सहयोग तथा पारस्परिक आदान-प्रदान का प्रवृत्तियां धीरे-धीरे दृष्टिगोचर होने लगीं। समाज, धर्म, साहित्य, कला, आर्थिक जीवन आदि में पंद्रहवीं सदी से एक नवीन युग का अभ्युदय हुआ तथा हिन्दू और इस्लामी दोनों संस्कृतियां एक दूसरे से प्रभावित हुईं।

समन्वय के क्षेत्र

धार्मिक क्षेत्र—हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक दूसरे के संतों और धार्मिक ग्रंथों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। पीरों की मजारों और सूफी संतों के सत्संग में दोनों धर्मों के लोग सम्मिलित होने लगे। धार्मिक सहिष्णुता बंगाल में सत्य पीर की सामूहिक पूजा में और कबीर तथा नानक के हिन्दू मुसलमान शिष्यों व भक्तों में मिलती है। समन्वय की भावना से प्रेरित होकर काश्मीर के राजा जैनुलआब्दीन ने और बंगाल के सुलतान हुसैनशाह ने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया।

भाषा—हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का श्रेष्ठ उदाहरण उर्दू भाषा का उद्भव और विकास है। उर्दू भाषा अरबी, फारसी और हिन्दी भाषा से बनी है। इसके व्याकरण पर हिन्दी की गहरी छाप है। विदेशी मुसलमानों के सैनिक शिविरों में प्रारंभ होने वाली यह भाषा हिन्दू-मुस्लिम समाज की साधारण भाषा बन गयी। इन दोनों वर्गों के सुशिक्षित और सुसंस्कृत लोगों ने इसे अपनाया। हिन्दुओं ने फारसी का अध्ययन प्रारंभ किया और उसमें निपुणता प्राप्त करने का प्रयास किया। बहमनी सुलतानों ने मराठी को और बंगाल के सुलतानों ने बंगला को प्रोत्साहित किया। इन मुस्लिम शासकों ने देशी भाषा के विद्वानों का आदर भी किया। हिन्दू-मुस्लिम लेखकों और कवियों ने भी एक दूसरे के विभिन्न विषयों पर लिखना प्रारंभ किया।

स्थापत्य कला—हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के श्रेष्ठ उदाहरण भवन निर्माण कला में दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दुओं की कला शैली और अलंकरण की प्रवृत्ति ने मुस्लिम निर्माण कला को प्रभावित किया। दिल्ली में अलाई दरवाजा और जौनपुर की अटाला

मस्जिद इसके उदाहरण हैं। मुस्लिम मस्जिदों के गुंबदों पर स्वर्ण कलश और मेहराबों व स्तंभों में नक्काशी और बेलबूटे हिन्दू कला के प्रभाव के प्रतीक हैं।

संगीत—नृत्य और संगीत में हिन्दू-मुसलमान संगीतज्ञों ने एक दूसरे की शैली अपनायी और उससे नवीन पद्धति का निर्माण किया। वाद्ययंत्रों और विभिन्न रागों में इसके उदाहरण हैं। तबला और सारंगी वाद्ययंत्र इस समन्वय के उदाहरण हैं।

वेशभूषा और आहार—भोजन और उसके व्यंजनों में मिष्ठान्न में तथा वेश-भूषा, और आभूषणों में भी हिन्दू-मुस्लिम एकीकरण झलकता है। अचकन शेरवानी, गरारा; चूड़ीदार पजामा, कान व नाक के आभूषण, गुलाब जामुन, पुलाव, आदि में समन्वय की भावना दृष्टिगोचर होती है।

हिन्दुओं पर इस्लाम का प्रभाव

विदेशियों के प्रभाव से अपनी संस्कृति और सभ्यता को सुरक्षित रखने के लिये तथा अपने धर्म का अस्तित्व बनाये रखने के लिये हिन्दुओं ने अपने सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का क्षेत्र बहुत संकुचित कर लिया था। फलतः उनके सामाजिक जीवन में संकीर्णता और कुरीतियां उत्पन्न हो गयीं। हिन्दुओं में विधवा विवाह की प्रथा समाप्त हो गयी। जीवन और धर्म की सुरक्षा के लिये शिशु हत्या, बाल विवाह, सती प्रथा आदि कुप्रथाओं ने समाज में घर कर लिया। मुसलमानों के संपर्क से पर्दे की प्रथा अधिक जोर पकड़ गयी। स्त्रियों की दशा और भी अधिक सोचनीय हो गयी, उनकी शिक्षा लगभग बंद सी हो गयी। मुसलमानों की विलासिता के प्रभाव में हिन्दू समाज में बहुविवाह बढ़ गये। सतीत्व और धर्म की रक्षा करने के लिये सती प्रथा में अधिक तीव्रता आ गयी। मुसलमानों के प्रभाव और संसर्ग से गुलामों की प्रथा हिन्दुओं में प्रारंभ हो गयी। दासों का शौक और प्रचार इतना बढ़ा कि कुलीन और उच्च वंश के तथा सम्पन्न परिवार के हिन्दू गृह कार्यों के लिये दास-दासियों को रखने लगे। प्रारंभ में दासों के साथ उचित व्यवहार किया जाता था और सुलतान तथा अमीर उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त करते थे। परन्तु अब समाज में दास प्रथा के दोष स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। राजपूत नरेशों, सामन्तों और धनसंपन्न व्यक्तियों में कन्याओं के विवाह के अवसर पर दहेज में दास-दासियां देने की प्रथा प्रारंभ हुई जो दीर्घकाल तक राजस्थान, मालवा तथा अन्य प्रदेशों में प्रचलित रही। हिन्दुओं ने मुस्लिम वेशभूषा और शिष्टाचार का अनुकरण कर लिया। हिन्दू नरेशों और सामन्तों ने मुस्लिम राजसभा का वैभव, परम्पराएँ, प्रथाएँ तथा शिष्टाचार अपना लिये। स्त्रियों ने गरारा और पुरुषों ने अचकन और शेरवानी पहिनना प्रारंभ कर दिया। खान-पान में भी मुस्लिम प्रभाव पड़ा। तमाखू, पान, और हुक्के का प्रचलन अधिक हो गया। निम्न-स्तर के लोगों में अज्ञान और अंधविश्वास का व्यापक प्रसार हो गया। मुस्लिम संतों और पीरों की ओर हिन्दू झुके, उनकी मानता और मिन्नतें करने लगे। इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू धर्म में एकेश्वरवाद के सिद्धान्तों का पुनः प्रतिपादन होने लगा। हिन्दू धर्म की जटिलता और कर्मकांड के आडम्बर की तथा जाति प्रथा की विषमता की हिन्दू संत और सुधारक

तीव्र आलोचना करने लगे। वे हिन्दू समाज और धर्म को सादा और जनवादी बताने लगे।

मुसलमानों पर हिन्दु धर्म का प्रभाव—मुस्लिम समाज और धर्म भी हिन्दुओं से प्रभावित हुए बिना रह नहीं सका। हिन्दुओं की जाति प्रथा का उन पर प्रभाव पड़ा और इस्लाम धर्म भी जाति प्रथा का व्यवहारिक पोषक बन गया। हिन्दुओं की जाति प्रथा के कारण मुस्लिम समाज में वर्गभेद, जातियां और सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये। मुसलमानों में भी जुलाहा, रंगरेज, पिंजारा, कमाई, शेख, गोरी, पठान, सैयद आदि जातियां और वर्ग बन गये। मुस्लिम समाज में हिन्दू धर्म परिवर्तित कर इस्लाम ग्रहण करने वालों के साथ अछूतों के समान व्यवहार किया जाने लगा। हिन्दुओं के अनेक उत्सवों, त्यौहारों तथा समारोहों को उन्होंने अपनाना प्रारंभ कर दिया। हिन्दुओं के त्यौहारों के जुलूसों का अनुकरण मुहर्रम में किया जाने लगा। दीवाली और होली के त्यौहारों मे वे सम्मिलित होने लगे। हिन्दुओं के अंधविश्वास जैसे "नजर लग जाना", "उतारा" और "आरती" को भी मुसलमानों ने अपना लिया। साधु-संतों और महात्माओं के प्रति हिन्दुओं की जो निष्ठा थी, उससे भी मुसलमान प्रभावित हुए। शेखों, पीरों, सूफियों के प्रति वे भी ऐसी ही निष्ठा और भक्ति रखने लगे। मूर्ति पूजा का प्रभाव मकबरों की पूजा के रूप में प्रगट हुआ। मकबरों की पूजा भारत के मुसलमानों में ही पायी जाती है विदेशों में नहीं। इसी प्रकार मुसलमानों की 'पीर-पूजा' भी हिन्दुओं की गुरु पूजा का ही प्रतिबिंब है। मुस्लिम स्थापत्य कला और उनके भवनों में भी हिन्दू-कला शैली का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। जिस समय बाबर भारत में आया तो यहां के मुसलमानों के रहन-सहन तथा आचार-विचारों में उसे एक अद्‌भुत भारतीयपन का अनुभव हुआ, जिसका उल्लेख उसने अपनी आत्मकथा में किया है। इस्लाम ने हिन्दू समाज और धर्म पर जितना प्रभाव डाला है, उससे कहीं अधिक गम्भीर परिवर्तन हिन्दुत्व के कारण इस्लाम और मुस्लिम समाज में हुए हैं। हिन्दुत्व आज भी अनूठे आत्मविश्वास, दृढ़ता और सन्तुष्टि से निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर होता जा रहा है।

सल्तनत काल में सामाजिक जीवन

सल्तनत युग में भारत में समाज का मोटा आधार धर्म बन गया था। इससे समाज में दो वर्ग हो गये थे एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान। मुसलमान शासक वर्ग के रूप में थे और हिन्दू शासित वर्ग के रूप में। इन दोनों में गहरी खाई थी। दोनों वर्गों की सामाजिक दशा का वर्णन निम्नलिखित है—

मुस्लिम समाज—(i) **भारतीय मुसलमान**—सल्तनत युग के प्रारंभ में बाहर से आये इस्लाम के अनुयायियों की संख्या कम थी और जिन हिन्दुओं ने विवशता से इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, उनकी संख्या भी कम ही थी। परन्तु ज्यों-ज्यों तुर्कों का शासन दृढ़ और व्यापक होता गया और इस्लाम का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता गया, धर्म परिवर्तित मुसलमानों की संख्या में भी अत्यधिक अभिवृद्धि होने लगी थी। जिन्होंने भय, शक्ति, आतंक व धमकी से इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, वे भारतीय मुसलमान कहलाये परन्तु इन भारतीय मुसलमानों को विजेता मुसलमानों की

श्रेणी में सम्मिलित नहीं किया गया। अन्य विदेशी मुसलमानों के समान उन्हें विशेष अधिकार और सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं थे। भारतीय मुसलमान राजसभा और शासन में ऊंचे पदों पर नियुक्त नहीं थे। नासिरुद्दीन के शासनकाल में इमाद-उल मुल्क रैहन और अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में मलिक काफूर तथा फिरोज तुगलक के शासनकाल में ख्वाजाजहां, जो ब्राह्मण से मुसलमान हुआ था,–ये तीन ही भारतीय मुसलमान ऊंचों पदों पर नियुक्त किये गये थे। साधारणतया विदेशी मुसलमान, अमीर और सरदार भारतीय मुसलमानों के साथ अछूतों-सा व्यवहार करते थे। उन्हें विजित समझकर उनका तिरस्कार किया जाता था। उनकी आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं थी।

(ii) **विदेशी मुसलमान**– इन भारतीय मुसलमानों से ऊपर मुसलमानों का वह श्रेष्ठ वर्ग था जिसमें तुर्क, ईरानी, अरब, अफगान, हब्शी, मिश्री, आदि विदेशी मुसलमान थे। शासक वर्ग इन विदेशी मुसलमानों में से ही था। इन विदेशी मुसलमानों की स्थिति अत्यंत सम्मानजनक, महत्वशाली और प्रभावपूर्ण थी। इन्होंने गैर विदेशियों को चाहे वे मुसलमान हों अथवा हिन्दू, सदैव पक्षपात और भेदभाव की दृष्टि से ही देखा। उन्हें शासन में ऊंचे पदों से वंचित रखा गया। शासन सत्ता के लिये इन विदेशी मुसलमानों और भारतीय मुसलमानों में सदैव तीव्र संघर्ष चलता रहा। परन्तु कालान्तर में तुगलक शासनकाल में भारतीय मुसलमानों को प्रशासन में अधिक पद प्राप्त होने लगे। विदेशी मुसलमानों में विभिन्न जातियां व वर्ग होने से पारस्परिक सद्भावना, सहयोग व एकता का अभाव रहा।

(iii) **अन्य वर्ग**—इन विदेशी मुसलमानों में अधिकांश सैनिक और सेनानायक थे। खान, मलिक और सिपहसालार और सेनानायक के पद पर ये नियुक्त होते थे। इन सैनिक अधिकारियों के अतिरिक्त मुस्लिम समाज में दूसरा वर्ग जागीरदारों, अमीरों व मलिकों का था। इसके बाद शासकीय कर्मचारियों और पदाधिकारियों का वर्ग था। सामन्त और जागीरदार वर्ग में से ही उच्च पदाधिकारी होते थे। इनका लोगों मे खूब प्रभाव था।

(iv) **उलमा**—परन्तु मुस्लिम समाज, राजनीति, प्रशासन और धार्मिक क्षेत्र में उलमाओं का महत्वपूर्ण स्थान था। वे मुसलमानों के पादरी थे। इस्लाम धर्म और कुरान के अनुसार वे कानूनों और नियमों की व्याख्या करते थे। वे न्याय विभाग में भी उच्च पदों पर आसीन होते थे। धर्म विभाग पर तो उनका ही हक था। सुलतान को वे प्रशासन में परामर्श देते थे। सल्तनत इस्लाम धर्म पर आधारित होने से इन उलमाओं का समाज, और राजनीति में खूब प्रभाव था। शासकों को इनके विरुद्ध जाने का साहस नहीं होता था। क्योंकि ये शासकों पर भी इस्लामी शरा के विरुद्ध कार्य करने का अपराध लगाकर उन्हें दंडित करवा सकते थे। जन साधारण में भी वे चाहे जिस व्यक्ति के विरुद्ध मृत्यु दंड या अन्य कठोर दंड दिलवा सकते थे। इससे शासकों से लेकर साधारण जनता तक उलमा वर्ग का आतंक था। इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाय कि संपूर्ण मुस्लिम समाज और धार्मिक क्षेत्र में उलमाओं का स्थान

सर्वोच्च था। उल्माओं का वर्ग अवसरवादी था। वे सुलतान का विरोध व उसकी आलोचना तथा निंदा भी करते थे और अवसर आने पर उसकी प्रशंसा और खुशामद करते थे।

(v) दासों का वर्ग—मुस्लिम समाज में दास दासियों का भी एक विशिष्ट वर्ग था इनमें विभिन्न प्रदेश के स्त्री-पुरुष थे। समाज में इनकी दशा हिंदुओं से अच्छी थी।

मुसलमानों को अधिक सुविधाएँ व अधिकार—यद्यपि मोटे रूप से समस्त मुस्लिम समाज को देखा जाय, तो मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा राज्य को अधिक प्रिय थे। राज्य हिन्दुओं की तुलना में उनके प्रति अधिक पक्षपात करता था। उन्हें राज्य की ओरसेअधिक सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त थे। राज्य के समस्त द्वार उनके लिये खुले हुए थे और वे राज्य के उच्चतम पद पर आसीन हो सकते थे। मुसलमानों से कर नाममात्र के लिये वसूल किये जाते थे। अध्यापन कार्य प्रमुख रूप से मौलवियों के हाथ में था। समाज में उनका सम्मान था। उन्हें शासन की ओर से अनुदान व वृत्तियां प्राप्त होते थे।

विलासिता व दुर्गुण—प्रारंभ में मुसलमानों का जीवन, और विशेष करके विदेशी मध्य एशियाई मुसलमानों का जीवन, अत्यंत परिश्रमी, संयमी, साहसी और उत्साही था क्योंकि उन्हें यहाँ संघर्ष कर अपनी सत्ता प्रतिष्ठित करना थी। परन्तु कालान्तर में उनका जीवन वैभवशाली और विलासी हो गया और उनमें विभिन्न दुर्गुण उत्पन्न हो गये। मध्यएशिया और अरब के निर्धन मुसलमानों को जब भारत जैसे समृद्ध और संपन्न देश की सत्ता और प्रशासन हाथ लगे और उन्हें लूट का अधिक माल हाथ लगा, तब वे अपना संयम, कर्त्तव्यनिष्ठा, वीरता, साहस, आदि सद्गुणों को विस्मरण कर विलासप्रिय बन गये। सुरा, सुन्दरी और द्यूत क्रीड़ा उनके प्रमुख शौक हो गये। उनमें मद्यपान, विलास, रागरंग और आमोद-प्रमोद प्रथा-सी हो गयी और वे अपना अधिकांश समय इनमें व्यतीत करने लगे। धन की बाहुल्यता से मुस्लिम उच्च वर्ग अनैतिकता के गर्त में पड़ गया। इससे मुसलमानों की शक्ति व सद्गुणसम्पन्नता नष्ट हो गयी।

स्त्रियों की दशा—मुस्लिम समाज में स्त्रियों का आदर सम्मान साधारण था। उच्च कुलों, सामन्तों के परिवारों और सुलतान के रनवास में वे भोग विलास की सामग्री समझी जाती थीं। अमीरों, सरदारों व धन संपन्न व्यक्तियों के परिवारों में सैकड़ों स्त्रियां रहती थीं और सुलतान के रनवास में तो इनकी संख्या सहस्त्रों थीं। विभिन्न देशों व प्रदेशों से सुन्दर लावण्यमयी रमणियों का रनवासों में संग्रह करना एक रिवाज सा था। अमीरों के पास अनेक स्त्रियां रखैल होती थीं। मुस्लिम उच्च वर्गों में अधिक स्त्रियां रखना सम्मान की बात समझी जाती थी। बहुविवाह, पर्दा प्रथा व रखैल प्रथा ने स्त्रियों की दशा हीन करदी थी। परिवार में दासी के साथ पति का अनुचित संबंध होने से पत्नी एवं दासी में कोई विशेष अंतर नहीं रहता था। मुस्लिम समाज में स्त्रियों और पुरुषों को तलाक देने का अधिकार था। तलाक प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में दास-प्रथा बड़ी लोक प्रिय थी। गुलाम या दास रखना समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा का चिन्ह समझा जाता था।

स्त्रियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध थे। फिरोज तुगलक ने तो स्त्रियों की स्वतंत्रता पर यहां तक प्रतिबंध लगा दिया था कि वे संतों की कब्रों पर भी न जायँ, क्योंकि वहां उनको पथ भ्रष्ट करने के लिये कई चरित्रहीन पुरुष आते-जाते थे।

दास प्रथा—मुस्लिम समाज में दास प्रथा बड़ी लोक प्रिय थी। गुलाम या दास रखना समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा का कार्य माना जाता था। दास दासियां रखना सभ्यता का चिन्ह समझा जाता था। किसी मुस्लिम परिवार की श्रेष्ठता, और प्रतिष्ठा उसमें नियुक्त दासों की संख्या से आंकी जाती थी। दासविहीन मुस्लिम परिवार समाज में श्रेष्ठ सम्मान प्राप्त करने के योग्य नहीं माने जाते थे। सुलतानों और अमीरों के पास सहस्त्रों दास होते थे। अलाउद्दीन के पास पचास सहस्त्र और फिरोजशाह के पास एक लाख अस्सी हजार दास रहते थे। समाज में दासों का क्रय-विक्रय होता था। पर यह एकअवांछनीय निन्दनीय-प्रथा थी जो कालान्तर में एक सामाजिक अभिशाप बन गयी।

धर्मनिष्ठा, दानशीलता अंधविश्वास—मुसलमानों का धार्मिक जीवन भी विशेष स्तुत्य नहीं था। यद्यपि नमाज पढ़ना रोजा रखना, आदि धार्मिक नियम पाले जाते थे, पर पूर्ववर्ती मुसलमानों की धार्मिक निष्ठा लुप्त हो गयी थी। फकीरों और शेखों का समाज में बड़ा सम्मान था। समाज में दान देने की प्रथा थी। सुलतान, अमीर और सरदार अपार धन दान में देते थे। धीरे-धीरे समाज में अनेक अंध-विश्वास घर कर गये थे। जादू-टोने, तावीज जंतर-मंतर, उतारा आदि में लोग विश्वास करने लगे थे। शिक्षा का प्रचार भी कम होता जा रहा था। अधिकांश मुसलमान शिक्षा की अवहेलना करते थे। इससे वे हिन्दुओं की तुलना में अधिक अंधविश्वासी, अज्ञानी और अशिक्षित रह गये।

हिन्दू समाज—हिन्दू देश की बहुसंख्यक प्रजा थे।

(i) **जाति प्रथा की जटिलता**—हिन्दुओं के समाज का प्रमुख आधार जाति प्रथा था। मुस्लिम शासन और अत्याचारों ने जाति प्रथा को अधिक संकीर्ण और कट्टर बन जाने के लिये बाध्य किया। मुस्लिम संस्कृति का हिन्दुओं पर प्रभाव नगण्य हो गया और हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन को रोकने के लिये, जाति प्रथा के बंधन और नियंत्रण पहिले की अपेक्षा अब अधिक कठोर कर दिये गये। विवाह, भोजन, रहन-सहन आदि में अधिक प्रतिबंध और जटिलता आ गयी। वंश परम्परा के अनुसार समाज में मनुष्य का व्यवसाय स्थायी हो गया। इस स्थायी व्यवसाय से जाति भी स्थायी हो गई। अब समाज में मनुष्य की जाति कर्म और व्यवसाय से नहीं अपितु जन्म से निर्दिष्ट होने लगी। खान-पान, धार्मिक मत-भेद और विश्वास, विविध प्रकार के संस्कार और विवाह प्रणाली, विभिन्न व्यवसाय तथा सामाजिक नियंत्रणों के कारण अनेक जातियाँ और उपजातियां बन गयीं। वर्णसंकरों की भी जातियाँ बन गयीं। इस्लाम धर्म अपनाने वाले हिन्दुओं को पुनः हिन्दू समाज और धर्म में आने की अनुमति नहीं दी जाती थी। इससे हिन्दू समाज को हानि ही हुई। जातियों की जटिलता होने पर भी समाज में ब्राह्मणों का सम्मान अधिक था।

(ii) **हिंदुओं का दमन, उन पर करों का बोझ और निर्धनता**—राज्य की बहु-संख्यक प्रजा होने पर भी, हिन्दुओं को राज्य के ऊंचे पदों पर आसीन नहीं किया

जाता था। राजसत्ता का विरोध करने पर उनका निर्दयतापूर्वक दमन किया जाता था। हिन्दुओं का सभी प्रकार से दमन करना शासक अपना कर्तव्य समझते थे। सुलतानों ने उनकी सभ्यता तथा संस्कृति का विनाश करने के भरसक प्रयत्न किये। आये-दिन विजित मुसलमानों की सहस्त्रों तलवारें हिन्दुओ के मस्तकों पर चल पड़ती थीं और उन्हें अपने प्राणों की रक्षा करना दुर्लभ हो गया था। अनेकानेक पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया जाता था और उनके घरों को जला कर उनकी संपति लूट ली जाती थी। प्राय: अनेक बार स्त्रियों व बच्चों को पकड़ कर बंदी बनाकर दासों के समान मुसलमानों में बेच भी दिया जाता था। हिन्दुओं का पूर्ण रूप से मूलोच्छेदन किया जाता था। भारत में न तो प्राचीन युग में ही और न ब्रिटिश शासनकाल में ही, जन जीवन और संपत्ति का इतना नृशंसतापूर्ण विनाश किया गया जितना कि सल्तनत काल के तीन सौ वर्षों में हुआ।

जीवन के हर क्षेत्र में हिन्दुओं के साथ पक्षपात और घृणा का व्यवहार किया जाता था। केवल हिन्दू होने के अभिशाप के फलस्वरूप उन्हें मुसलमानों का अत्यधिक आदर करना पड़ता था और जजिया जैसा घृणित कर उन्हें देना पड़ता था जिसके देने पर ही उन्हें जीवन दान दिया जाता था। भूमिकर एवं व्यापारिक वस्तुओं का चुँगी कर भी उन्हें मुसलमानों की अपेक्षा दूना देना पड़ता था। उन्हें अपनी उपज का आधा-भाग भूमि कर के रूप में देना पड़ता था। हिन्दुओं का अधिकांश भाग कृषक था और वह करों के बोझ से कराह रहा था। सल्तनत-राज्य की आय का अधिकतम भाग हिन्दुओं से ही वसूल किया जाता था। हिन्दू व्यापारियों को भी व्यापारिक सुविधाओं और अधिकारों से वंचित रखा गया था। उन पर दूने कर लाद दिये गये थे। समाज में हिन्दू न तो बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण ही पहिन सकते थे, न वे घोड़े, हाथी, पालकी की सवारी ही कर सकते थे और न अपनी सुरक्षा के लिये अस्त्र-शस्त्र ही रख सकते थे। हिन्दुओं को अपना सिर उठाकर चलने का अधिकार नहीं था। शासन वर्ग की निरन्तर दमनकारी नीति के कारण हिन्दू नित्य प्रति दरिद्र हो रहे थे। वे निर्धनता की दशा में पिस रहे थे। बर्नी के अनुसार "हिन्दुओं की दशा इतनी दयनीय हो गयी थी कि उनकी स्त्रियों को अपने परिवारों के जीवन निर्वाह के लिये मुसलमानों के घरों में सेविकाओं का काम करना पड़ता था।" समकालीन मुसलमान इतिहासकारों ने हिन्दुओं की इस दुर्दशा पर हर्ष प्रगट किया है।

(iii) **धार्मिक अत्याचार**—हिन्दुओं को धार्मिक स्वतंत्रता और अधिकार नहीं थे। किसी भी धार्मिक रीति-रिवाज और परम्पराओं का पालन करना हिन्दुओं का अपराध माना जाता था और इसके लिये उन्हें कठोर दंड दिये जाते थे। उनके द्वारा नवीन मन्दिरों का निर्माण करना पाप समझा जाता था। उन्हें नवीन मन्दिरों के निर्माण की तथा प्राचीन मदिरों के जीर्णोद्धार की अनुमति नहीं थी। वे अपनी धार्मिक धारणाओं और विश्वास के अनुसार पूजन-अर्चन, मनन, तीर्थस्नान, धार्मिक-कृत्य आदि नहीं कर सकते थे। उन्हें धार्मिक त्यौहारों को मनाने व जुलूस निकालने की अनुमति नहीं थी। ऐसा करने वालों को निर्ममता से दंड दिया जाता था; कभी-कभी उन्हें मृत्यु दंड देकर जीवित भी जला दिया जाता था। उनकी मूर्तियों और

मन्दिरों को नष्टकर उनके स्थान पर नवीन मसजिदों का उनकी सामग्री से ही निर्माण किया जाता था।

(iv) **सामाजिक कुप्रथाएँ और स्त्रियों की दशा**—इस युग में मुस्लिम अमीरों, सरदारों और शासकों को हिन्दुओं की लावण्यसौष्ठव युक्त सुन्दर युवतियों से विवाह करने का शौक लग गया था। मुस्लिम आक्रांता ऐसी हिन्दू कन्याओं का विवाह के लिए अपहरण न कर सकें, इसलिए बाल्यकाल में ही कन्याओं के विवाह करने की कुप्रथा प्रारंभ हो गई। इसी प्रकार हिन्दू स्त्रियां मुसलमानों से अपने सतीत्व और धर्म की रक्षार्थ अपने पति की मृत्यु के बाद उसकी चिता पर जीवित जल कर सती होना श्रेयस्कर समझती थी। यदि श्मशान में स्त्री चिता में जलने से डरती तो उसके संबंधी उसे बलात आग में ढकेल देते थे और उस पर लकड़ियां डाल देते थे। उस समय यह धारणा हो चली थी कि सती होना स्त्री का कर्त्तव्य है। हिन्दू विधवाओं को पुनः विवाह करने का अधिकार नहीं था। उन्हें वैरागी, तपस्विनियों-सा जीवन, भयानक यातनाओं और अपमान से व्यतीत करना पड़ता था। मुस्लिम प्रभाव से स्त्रियों को इंद्रिय-सुखों का साधन समझ कर बहुविवाह प्रथा प्रचलित हो गई थी। मुसलमानों के कारण हिन्दू समाज में पर्दा-प्रथा भी प्रारम्भ हो गई थी। इस प्रथा से उन्होंने अपनी स्त्रियों की इज्जत-आबरू बचाने का प्रयास किया। राजपूतों में जौहर-प्रथा खूब प्रचलित थी। उच्च वर्गों और सामन्त परिवारों में कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी, पर साधारणतया स्त्री-शिक्षा कम थी। इस युग में प्रायः स्त्रियों का अपने निवास गृह से बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं समझा जाता था, इसलिए स्त्रियों की स्वतंत्रता और अधिकार कम कर दिये गये थे। समाज में अब उनका पूर्ववत सम्माननीय पद नहीं रहा था। स्त्रियों में भी स्वाभिमान की भावना समाप्त हो गई थी। सुरक्षा के कारण उनका कार्य-क्षेत्र घर की चहारदीवारी तक ही समाप्त हो गया था। उनकी शिक्षा की ओर भी समुचित ध्यान नहीं दिया जाता था। मुस्लिम प्रभाव के कारण हिन्दू समाज में भी स्त्रियां विलास की सामग्री मात्र रह गई थीं।

(v) **भाग्यवादिता, अकर्मण्यता और दानशीलता** इन कुप्रथाओं के साथ-साथ समाज में जादू-टोने, तंत्र-मंत्र के प्रति अधिक विश्वास बढ़ने लगा था। बीमारियों के उपचार में झाड़-फूक व तावीजों का उपयोग होता था। दयनीय सामाजिक दुर्दशा होने के कारण हिन्दू श्रेष्ठ, उदात्त आदर्शों का प्रतिपादन नहीं कर सके। हिन्दुओं में बुद्धि क्षीणता, भाग्यवादिता तथा उच्चवर्ग के हिन्दुओं में नीच प्रवृत्तियां मुस्लिम शासन के महान अभिशाप रहे। मुस्लिम शासकों के निरंतर आतंक और दमन के कारण हिन्दू भाग्यवादी और अकर्मण्य तथा भीरु हो गये थे। वे भगवान के भरोसे बैठे रहने के अभ्यस्त हो गये। उन्होंने विधि-विधान और भाग्य को ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली। अपमान, अमानुषिक व्यवहार और अत्याचारों द्वारा हिन्दुओं को इतना पतित व निराश बना दिया था कि वे उठने में असमर्थ थे। इस दयनीय दशा कुप्रथाओं और अवगुणों के होने पर भी हिन्दुओं में सत्य-निष्ठा विद्यमान थी। दान-धर्म और पुण्य की भावनाएं भी थीं। अतिथि-सत्कार को परम धर्म समझा जाता था। अपने द्वार आये किसी भी व्यक्ति को निराश या खाली हाथ जाने देना वे महापाप समझते

थे। सम्पन्न दान-शील व्यक्ति मुक्तहस्त से दान देते थे। वचन और प्रतिज्ञा का पालन करना सम्मान समझा जाता था। ऋण चुका देना आवश्यक माना जाता था। यदि बिना ऋण चुकाये किसी का देहावसान हो जाता तो उसके उत्तराधिकारी ऋण का भुगतान करते थे। अपने पूर्वजों को ऋण मुक्त करना पुण्य समझा जाता था।

(vi) **भोजन**—यद्यपि इस्लाम का बाहुल्य था और हिंसा साधारण बात थी, पर जैन और वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण हिन्दुओं में प्रायः निरामिष भोजन ही प्रचलित था। हिंसा और जीव हत्या को घृणित समझा जाता था। परन्तु क्षत्रियों में भोजन में मांस का उपयोग होता था। मछली खाने की प्रथा भी थी। भोजन में गेहूँ, चावल, जौ, दूध, घी, मक्खन, फल आदि का उपयोग होता था। उत्सवों, त्यौहारों और पर्वों के अवसर पर विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाये जाते थे। भोजन की शुद्धता और पवित्रता पर विशिष्ट ध्यान दिया जाता था। छुआछूत मानी जाती थी। मुस्लिम विलासिता और अनैतिकता के कारण समाज में मद्य-पान, विविध मादक द्रव्यों का सेवन और जुआ का प्रचार बढ़ चला था।

(vii) **वस्त्राभरण**—पुरुष और स्त्री दोनों ही आभूषण प्रिय थे। स्वर्ण और चांदी के विविध प्रकार के रत्नजड़ित आभूषण बनाये और पहिने जाते थे। शरीर के प्रायः सभी अंगों पर आकर्षक और सुन्दर आभूषण धारण किये जाते थे। शरीर का शायद ही कोई ऐसा अंग अवशिष्ट रहा हो जिसके लिए कोई उपयुक्त आभूषण न बनाया गया हो। नाक, कान, गले और हाथों के आभूषणों की विविधता विशेष थी। ऊनी, सूती, रेशमी आदि विभिन्न प्रकार की वेषभूषा होती थी। विभिन्न आकर्षक रंग वाले वस्त्रों का उपयोग किया जाता था। वेशभूषा पर सुनहले तारों से सजावट का और बेल-बूटों का काम किया जाता था। साधारण लोगों की वेशभूषा में भी स्थिति के अनुसार आकर्षक और सजावट होती थी।

(viii) **मनोरजन**—आमोद-प्रमोद के विभिन्न साधन उपलब्ध थे। होली, दीवाली और वसन्तोत्सव बड़े आनन्द और उल्लास से मनाये जाते थे। संगीत, नृत्य और नाटक से भी मनोरंजन किया जाता था। साधारण जनता में कुश्ती, मल्लयुद्ध तथा नटों के प्रदर्शन भी होते थे। निम्न वर्ग के लोग मद्यपान और लोक नृत्य से अपना मनोरंजन करते थे। अमीरों और सरदारों के आखेट, मद्यपान और द्यूत क्रीड़ा मनोरंजन के प्रिय साधन थे।

आर्थिक दशा

गिरती हुई आर्थिक दशा—पूर्व मध्यकालीन युग के प्रारंभ में भारत अपनी अपार धन-संपत्ति और वैभवशाली आर्थिक दशा के लिये प्रसिद्ध था। इसी सम्पन्नता और वैभव से आकर्षित होकर महमूद ने गजनी से सत्रह बार भारत पर आक्रमण किये और उसके बाद मुहम्मद गोरी ने। इन दोनों ने ही भारत की अपार सम्पत्ति लूटी। महमूद गजनवी असीम धन भारत से गजनी ले गया। इन आक्रमणों, लूट और विध्वंस तथा राजनीतिक उथल पुथल से तत्कालीन युग में भारत के कृषि, व्यापार और उद्योगों को गहरा आघात लगा तथा आर्थिक जीवन ग्रस्त व्यस्त हो गया।

खिलजी और तुगलक सुलतानों के अपव्यय से भी आर्थिक दशा पर कुप्रभाव पड़ा। अलाउद्दीन की सैनिक नीति और अनवरत युद्धों से लोगों की आर्थिक दशा उन्नत नहीं हो पाई। यद्यपि सुलतान अलाउद्दीन ने खाद्य वस्तुओं तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओं की उपलब्धि और उनके क्रय-विक्रय में भावों को नियंत्रित कर दिया था और इससे दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुएं सस्ती और प्रचुर हो गयी थीं, परन्तु इससे भी कोई विशिष्ट स्थाई आर्थिक प्रगति नहीं हुई, क्योंकि जन-साधारण के पास धन का अभाव था। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार उनकी महत्वाकांक्षा के परिणाम थे, सुनियोजित दीर्घकालीन आर्थिक योजना नहीं थी। उस समय की बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू थी जो शासन द्वारा करों और अत्याचारों से इतनी अधिक शोषित की जा रही थी कि हर समय दरिद्रता और धनाभाव उनके सामने मुँह चौड़ा किये खड़े रहते थे। मुहम्मद तुगलक की विभिन्न योजनाओं ने जनता पर अधिक आर्थिक भार बढ़ा दिया और राज-कोष रिक्त हो गया। उसके शासन-काल के अंतिम चरण में विद्रोहों, दुर्भिक्ष से लोगों की आर्थिक दशा पहिले की अपेक्षा और भी अधिक खराब हो गयी। फिरोज ने करों का भार हल्का किया और कृषि व सिचाई के लिये कुछ प्रयास अवश्य किये। पर यह अल्पकालीन आर्थिक उन्नति थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त तैमूर के भयानक आक्र-मण, लूट और विध्वंस ने तथा सैयद और लोदी सुलतानों की आर्थिक उन्नति के प्रति उपेक्षा की नीति से भारत की आर्थिक दशा और भी गिर गई।

दृढ़, स्थाई आर्थिक नीति का अभाव—दिल्ली के सुलतानों को विधर्मियों के राज्यों पर आक्रमण व युद्ध में हिन्दुओं की लूट और विधर्मियों के विद्रोहों में अत्यधिक व्यस्त रहना पड़ा। इससे उन्हें आर्थिक जीवन को सुव्यवस्थित करने तथा श्रेष्ठ आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने के अवसर नहीं मिले। इसके अतिरिक्त अधिकांश सुलतानों में आर्थिक तथ्यों और योजनाओं को समझने और उन्हें कार्यान्वित करने की प्रतिभा तथा क्षमता नहीं थी। उन्होंने कोई ऐसी दृढ़ स्थाई आर्थिक नीति नहीं अपनाई, कोई ऐसे ठोस आर्थिक सुधार नहीं किये। जिससे कृषि व व्यापार बढ़े, राज्य अधिक समृद्ध हो और जनता की धन सम्पन्नता में वृद्धि हो। सुलतानों ने अपने राजकोष की पूर्ति के लिए जनता से खूब धन वसूल किया। परन्तु इस धन को उन्होंने प्रजा की आर्थिक प्रगति और सुधारों के लिए व्यय नहीं किया, अपितु अपनी सेना, वैभव और जीवन की असीम विलासिता पर इसका दुरुपयोग किया।

आन्तरिक धनशीलता— विदेशियों द्वारा लूट और विध्वंस लीला करने पर भी, सुलतानों की दृढ़ आर्थिक नीति के अभाव में भी, विभिन्न व्यवधान आने पर भी भार-तीयों के कृषि, उद्योग और व्यापार व्यक्तिगत रूप में अबाध गति से चलते रहे। विदेशी अमीरों और सरदारों ने भी धन का अपव्यय भारत में किया। उन्होंने धन को देश के बाहर नहीं भेजा। जागीरदारों, अमीरों और सरदारों के घरों में विभिन्न स्रोतों और साधनों से सोना, चांदी, रत्न आदि एकत्रित होते रहे। भारतीय बड़े पैमाने पर बाह्य तथा आन्तरिक व्यापार करते रहे। इससे देश की आन्तरिक धनशीलता बनी रही।

हिन्दुओं का प्राधान्य—यद्यपि मुसलमान शासक थे और राजनीति, शक्ति और सेना में उनका प्रभुत्व था, परन्तु आर्थिक क्षेत्र में हिन्दुओं का प्राधान्य था। प्राचीन

हिन्दू कालीन आर्थिक व्यवस्था प्रचलित रही। सल्तनत काल में व्यापार, उद्योग और व्यवसाय हिन्दुओं के हाथों में ही रहे। अधिकांश कृषक भी हिन्दू ही थे। व्यापार और कृषि में, हिन्दुओं की ही प्रधानता थी।

धनविभाजन की विषमता—सुलतान, अमीर, सरदार और पदाधिकारियों के पास प्रचुर धन था। सामन्तों के पास सोने चाँदी का अभाव नहीं था। शासन के शोषण और अत्याचारों के कारण धन सामन्तों, पदाधिकारियों और उच्च वर्ग के व्यक्तियों तथा व्यापारियों के पास ही संगृहीत हो गया था। वे विलासी जीवन व्यतीत कर धन का दुरुपयोग कर रहे थे। साधारण जनता के पास धन का गहरा अभाव था। निम्न वर्ग के मनुष्यों की आर्थिक दशा अत्यंत ही दयनीय थी। धन का वितरण विषम था। धनी और निर्धन वर्ग में खूब अन्तर था। जन साधारण और सुलतान, सामन्त व शासक वर्ग के जीवन स्तर में बड़ा अन्तर था। अमीर खुसरो ने लिखा है कि "शासकों के मुकुट का हर मोती कृषकों के रक्त-बिन्दु से बना है।" इसका अभिप्राय यह है कि जन साधारण की परिश्रम की गाढ़ी कमाई का धन अमीरों और सुलतान के विलासी जीवन पर व्यय होता था। लोगों के दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ भी बड़ी कठिनाई से पूरी हो पाती थीं। एक ओर अत्यधिक अमीर थे जो शाही ठाठ बाट से विलासमय जीवन व्यतीत करते थे और साधारण वर्ग खाती-पीती दशा में था, तो दूसरी ओर दरिद्र लोग भी थे। शासन की आर्थिक अव्यवस्था से, युद्ध भेरियों के निरन्तर बजते रहने से, दैवी प्रकोपों और दुर्भिक्षों के पड़ने से, लोगों की आर्थिक कठिनाइयों में वृद्धि हो जाती थी और शासन उसकी रक्षा करने में असमर्थ होता था, जीवनोपयोगी वस्तुएँ अत्यधिक महँगी हो जाती थीं और उनका अभाव भी हो जाता था। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में दुर्भिक्ष के संकट में एक सेर अन्न का भाव १६–१७ जीतल हो गया था। सिंध में फिरोजशाह के आक्रमण के समय अन्न का मूल्य बढ़कर १८–१९ जीतल प्रति सेर हो गया था।

दरिद्रता—धन विभाजन की विषमता से अधिकांश जनता की दशा अच्छी नहीं थी। दिन रात परिश्रम करके भी दरिद्रों को भर पेट भोजन नहीं प्राप्त होता था। बाबर ने अपनी आत्म-कथा में भारत के इन दरिद्रों का वर्णन करते हुए लिखा है कि "दरिद्रों के पास कोई सामान नहीं होता था। उनके झोपड़े घास-फूस के बने होते थे जिनमें वर्ष में दो तीन बार आग लग जाती थी। पर इससे उनकी कोई विशेष क्षति नहीं होती थी, क्योंकि मिट्टी के थोड़े से वर्तनों के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई वस्तुएं नहीं होती थीं।" अकाल के समय इनकी दशा अवर्णनीय हो जाती थी। असंख्य व्यक्ति भूख के कारण मृत्यु की गोद में सो जाते थे।

कृषि—जनता का मुख्य व्यवसाय कृषि था और राज्य की आय का प्रमुख साधन भी कृषि था। अधिकांश कृषक हिन्दू थे। इसलिए उन्हें अपनी उपज का पचास प्रतिशत भूमि-कर देना पड़ता था। अलाउद्दीन ने तो इन पर और भी अधिक करों का बोझ लाद दिया था, जैसे पशुकर, चरागाह कर, जजिया आदि। इससे कृषकों की दशा सोचनीय हो गयी। आये दिन कृषकों को दैवीप्रकोप और दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ता था। जिससे उनकी आर्थिक दशा अधिक खराब हो जाती थी। यद्यपि

सुलतान कृषकों और प्रजा की सहायता के लिए सतर्क रहते थे और उन्हें राहत भी देते थे, परन्तु उनकी सहायता केवल सहायता ही होती थी, भविष्य में अकाल से सुरक्षा के लिए दीर्घकालीन सुधार या योजना नहीं थी। मुसल्मान शासकों ने गांवों और कृषि-सुधार की उपेक्षा की। अतः भारतीय ग्राम्य जीवन का आर्थिक स्तर भी निम्न-स्तर का ही बना रहा तथा उनका दृष्टिकोण भी संकुचित बना रहा। इससे ग्रामों और कृषकों की आर्थिक उन्नति संभव नहीं हो सकी।

ग्रामीण क्षेत्र—गांवों में जनता की आवश्यकताएं सीमित थीं और ग्रामीण क्षेत्र के निवासी संतुष्ट और सुखी थे। गांवों में प्रचुर मात्रा में अनाज उत्पन्न होता था। रूई, अनाज, गन्ना, तिलहन, अफीम, फल आदि फसलें बड़े पैमाने पर उत्पन्न की जाती थीं। गांवों में कपड़ा भी बुना जाता था। ग्राम पूर्ण स्वावलम्बी थे। ग्रामवासियों को अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। ग्राम अपने में पूर्ण थे।

खाद्यान्न की बाहुल्यता और भाव—सुलतान अलाउद्दीन के कृषि और राजस्व संबंधी सुधारों से तथा फीरोज तुगलक की सिंचाई योजनाओं व नहरों से, कृषकों को सुविधायें देने से, राज्य में आवश्यकता से अधिक अन्न उत्पन्न होने लगा। खाद्यान्न का उत्पादन इतना अधिक होता था कि सारे देश के निवासियों का भरण-पोषण हो जाने के बाद भी बहुत-सा खाद्यान्न, अन्न-भंडारों में बच जाता था। परन्तु अधिक उत्पादन के बावजूद भी खाद्यान्न के भाव एक समान नहीं रहे। विभिन्न सुलतानों के शासनकाल में ये चढ़ते-उतरते रहे। अलाउद्दीन के शासनकाल में भावों के नियंत्रण और बाजार के कठोर नियमों के कारण खाद्यान्न के भाव अधिक सस्ते हो गये। एक मन गेहूँ का भाव सात जीतल था। इब्नबतूता के अनुसार बंगाल में खाद्यान्न सबसे अधिक सस्ता था। परन्तु अपनी दरिद्रता और धन के अभाव में लोग इतना सस्ता अनाज भी नहीं खरीद सकते थे। फीरोज तुगलक के शासनकाल में एक मन गेहूँ का भाव २ जीतल था। उसके शासन में खाद्यान्नों की प्रचुरता थी और भाव भी मंदे थे। इब्राहीम लोदी के काल में भी ऐसा ही रहा, पर मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल में खाद्यान्न सबसे महँगा था।

उद्योग—यद्यपि देश कृषि प्रधान था, पर अनेक प्रकार के उद्योग-व्यापार प्रचलित थे। वस्त्र उद्योग, विभिन्न धातुओं से वस्तुएँ बनाने के उद्योग, चमड़े का उद्योग, सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों की रंगाई-छपाई का उद्योग, गुड़-व शक्कर उद्योग, पच्चीकारी, इत्र, शराब बनाने का उद्योग, लकड़ी व पत्थर की वस्तुएँ बनाने का उद्योग कलई करने का काम, शस्त्र-निर्माण उद्योग आदि विभिन्न प्रकार के छोटे-मोटे धंधे थे। रेशमी, सूती तथा ऊनी वस्त्र भारत में बहुतायत से निर्मित होता होता था। बंगाल तथा गुजरात विशेष रूप से वस्त्र बनाने के लिये प्रसिद्ध थे। सामान्य जनता के लिये जुलाहे अपने-अपने घरों में ही वस्त्र बुनते थे। दिल्ली सुलतानों के अनेक कारखाने थे जिनमें सुलतानों, राजपरिवार के सदस्यों तथा अमीरों व सरदारों के लिये सहस्त्रों जुलाहे रेशमी, सूती और ऊनी कपड़ा बुनते थे। इन वस्त्रों पर अन्य शिल्पी सोने-चांदी के तारों से सुन्दर आकर्षक नक्काशी और बेलबूटे बनाते थे। इस प्रकार वस्त्र उद्योग को राज्य ने प्रोत्साहन दिया था। इन कारखानों में चार सहस्त्र जुलाहे काम करते थे।

वे विशाल अन्तःपुर की आवश्यकताओं, सामन्तों की आवश्यकताओं तथा सुलतान द्वारा दरबारियों को खिलअत प्रदान करने की आवश्यकता के लिये विभिन्न प्रकार के वस्त्र बनाते थे। सरकारी कारखानों में धनुष, बाण, तलवार, भाले, बरछी तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र भी बनाये जाते थे। विभिन्न प्रकार के गृह-उद्योग भी प्रचलित थे। कारीगर या तो अपना तैयार माल व्यापारियों को बेच देते थे, अथवा मेले में स्वयं बेचते थे। कुछ विशिष्ट उद्योग धंधों के अपने संघ होते थे। वे अपने उद्योग धंधे का संचालन करते थे। सोलहवीं सदी के प्रारंभ मे आने वाले बर्थिमा (Barthema) और बारबोसा (Barbosa) ने भारत में प्रचलित तत्कालीन विभिन्न उद्योगों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

व्यापार—यद्यपि सैनिक आक्रमणों, युद्धों, विद्रोहों और प्रशासकीय शिथिलता से व्यापार को अधिक क्षति पहुँची थी, फिर भी व्यापार उन्नत दशा में था। विभिन्न प्रांतों के बीच व्यापार होता था। आवागमन के समुचित साधनों के अभाव में, लूटे जाने के भय से अन्तरप्रान्तीय व्यापार में बड़ी कठिनाई थी। इससे विभिन्न प्रांतों और क्षेत्रों में वस्तुओं के अलग-अलग भाव थे। साधारण शांति के समय वस्तुओं के मूल्य कम होते थे। परन्तु दुर्भिक्ष, युद्ध तथा असाधारण परिस्थितियों में उनके भाव बहुत बढ़ जाते थे। थल मार्गों से तथा नदियों में नावों के द्वारा व्यापार होता था। परन्तु भारत का विदेशी व्यापार अधिक प्रसिद्ध था। यूरोप के विभिन्न देशों से अफगानिस्तान, ईरान, चीन, मलाया तथा प्रशांत महासागर के विभिन्न द्वीपों से भारत का विदेशी व्यापार होता था। जलमार्ग तथा थलमार्ग दोनों से विदेशी व्यापार होता था। अरब के व्यापारी भारत के माल को भू-मध्यसागर के देशों में ले जाते थे और विदेशी माल लाते थे। मुलतान और काश्मीर होकर एशियायी देशों से थलमार्ग द्वारा व्यापार होता था। थलमार्गों से ही भारत के व्यापारी मध्य-एशिया के देशों अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत, नेपाल और भूटान को व्यापारिक वस्तुएँ भेजते थे। समुद्री व्यापार के लिये कालीकट, भड़ौंच जैसे प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। भारत के व्यापारियों की और विशेषकर गुजरात के व्यापारियों की ईमानदारी और सचाई की प्रशंसा मार्कोपोलो जैसे विदेशी यात्री ने भी की है। एक अन्य विदेशी यात्री बर्थिमा के अनुसार बंगाल, खाद्यान्न, कपास, मांस तथा मिष्ठान्न के लिये सबसे अधिक धन सम्पन्न प्रांत माना जाता था। वास्तव में इस युग में गुजरात और बंगाल अच्छे व्यापारिक प्रांत थे। भारत से विदेशों को भेजी जाने वाली कई प्रकार की वस्तुओं में सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्र, अफीम, नील, जस्ता, खाद्यान्न, इत्र, धूप, चंदन, हाथी दांत की वस्तुएँ आदि होती थीं। भारत के भेजे हुए खाद्यान्न पर कई देशों के लोग निर्भर थे। फारस की खाड़ी के निवासी तो भारतीय अनाज पर पूर्णतया निर्भर थे। भारत में बाहर से आने वाली वस्तुओं में स्वर्ण तथा अरबी घोड़े अधिक थे। देश का निर्यात उसके आयात की अपेक्षा अत्यधिक था। इससे आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि होती थी। परन्तु व्यापारियों पर इतने अधिक कर लगाये जाते थे कि उनकी दशा उन्नत नहीं थी। सामान्य रूप से देश की आर्थिक दशा ठीक थी, पर वह श्रेष्ठ और सन्तोषप्रद नहीं थी।

धार्मिक दशा

विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय—इस युग में इस्लाम, हिन्दू-धर्म, जैन-धर्म प्रमुख रूप से भारत में थे। हिन्दू-धर्म में शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय भी सम्मिलित थे। हिन्दू और जैन धर्म प्रमुख रूप से हिन्दू राज्यों में प्रचलित थे। राजस्थान, गुजरात और मध्य-भारत के क्षेत्र में जैन धर्म विशेष लोकप्रिय था। दक्षिण के हिन्दू राज्यों में और राजपूत राज्यों में शैवमत लोकप्रिय था। शिव और उसके विभिन्न रूपों की पूजा होती थी। साधारण जनता विविध देवी-देवताओं की पूजा करती थी। बहुदेववाद और मूर्ति पूजा प्रचलित थे। पर इस्लाम के प्रभाव से एकेश्वरवाद की भावना हिन्दुओं में पुनः जीवित हो गयी थी। अंधविश्वास, जंत्र-मंत्र, झाड़-फूंक, जादू-टोना भी अधिक था। तीर्थयात्रा और दानशीलता की भावनाएँ बलवती थीं। ब्राह्मणों, पंडों, पुजारियों निस्सहायों को दान दिया जाता था, वस्त्र और भोजन वितरित किया जाता था। समाज में साधु, संतों, फकीरों आदि का सम्मान किया जाता था। जनता उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखती थी। हिन्दुओं और इस्लाम में समन्वय की प्रवृत्ति के कारण बिहार व बंगाल मे "सत्य पीर" नामक एक नवीन सम्प्रदाय प्रचलित हो गया था। इसमें सत्य और एकेश्वरवाद के प्रति लोगों की निष्ठा थी।

इस्लाम का प्रसार और धार्मिक अत्याचार—भारत में सर्वप्रथम अरब व्यापारी दक्षिण के समुद्र तट पर इस्लाम अपने साथ लाये। इनके मुल्ला और मौलवियों ने दक्षिण के तटीय प्रदेशों में शांति-पूर्ण ढंग से इस्लाम का प्रचार किया और मसजिदें निर्मित कीं। उत्तरी भारत में जब इस्लाम के अनुयायी सुलतानों का राज्य प्रारंभ हो गया, तब इस्लाम राज धर्म होने से खूब प्रसारित हुआ। शक्ति, आतंक, बलप्रयोग और अनेक प्रलोभनों से अनेकानेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। इस समय हिन्दुओं में प्रचलित अद्वैतवाद से जो कोरे बुद्धिवाद पर आधारित था और जिससे साधारण जनता की रागात्मक वृत्ति संतुष्ट नहीं थी, ब्राह्मणों के आडंबर, धार्मिक जटिल अनुष्ठानों और निरर्थक कार्मकांडों से भी साधारण लोग असन्तुष्ट थे। निम्न वर्ग के अछत लोग भी अपने हिन्दूधर्म के प्रति अश्रद्धालु थे और इस्लाम की ओर उसकी जनवादिता और सादगीसे अधिक आकृष्ट होने लगे थे। इससे भी इस्लाम के प्रसार में सहायता मिली। ऐसे अनेक अछूतों और निम्न वर्ग के लोगों ने भी परिस्थिति वश इस्लाम अपना लिया।

राज्य की ओर से अमुसलमानों पर अनेक धार्मिक अत्याचार किये जाते थे। उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता व अधिकार नहीं थे। उन्हें अपने धर्म के अनुसार पूजा करने, धार्मिक समारोहों और उत्सवों को मनाने की स्वतंत्रता नहीं थी। उनके मंदिरों को तोड़कर उन भग्न अवशेषों से ही अनेक नवीन मसजिदें बनाई गयी थीं। नवीन मंदिरों का निर्माण या प्राचीन मंदिरों के मरम्मत की अनुमति नहीं थी। गैर मुसलमानों से जजिया नामक धार्मिक कर तथा अन्य विभिन्न कर वसूल किये जाते थे। इतने अत्याचारों और आतंक के बाद भी देश की बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू धर्म और विभिन्न मतों को मानती रही।

धार्मिक एकीकरण और समन्वय—हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान, सौहार्द्र की प्रवृत्ति, सहिष्णुता और सहयोग की भावनाओं ने धार्मिक एकीकरण और समन्वय की धारा को जन्म दिया। इस्लाम धर्म के कई फकीरों और संतों ने जैसे फरीदुद्दीन, शेख निजामुद्दीन, निजामुद्दीन औलिया, ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, बाबा फरीद, गेसूदराज (ख्वाजा बन्देनवाज) आदि ने इस्लाम की धार्मिक कट्टरता, धर्मान्धता, आडम्बर और धार्मिक अत्याचारों का घोर विरोध किया और धार्मिक सहिष्णुता और भ्रातृत्व पर बल दिया। इसी प्रकार हिन्दुओं के सन्त रामानन्द, रामानुज, कबीर चैतन्य, नानक, ज्ञानदेव, तुकाराम आदि ने भी अपने धार्मिक उपदेशों, पदों और दोहों से जाति प्रथा, बहुदेववाद (अनेक ईश्वरवाद) धार्मिक जटिलता, और आडम्बर का घोर विरोध किया। उन्होने सत्य, प्रेम, सहानुभूति, एकेश्वरवाद, विश्व-बंधुत्व और भ्रातृत्व की भावना, धर्म की सादगी और पवित्रता, तथा धार्मिक निष्पक्षता का प्रचार किया। उन्होंने मनुष्य की आत्म शुद्धि, पवित्रता और उच्च आदर्शों पर बल दिया। इन संतों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को निर्गुण ब्रह्म की ओर एक ही पथ के यात्री बतलाया। उन्होंने एकेश्वरवाद तथा सभी धर्मों की आधारभूत समानता पर बल दिया। इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनके शिष्य हो गये। हिन्दू और मुसलमानों के बीच की खाई को उन्होंने पाटने का कार्य किया। इससे देश में धार्मिक एकीकरण और समन्वय की वृद्धि हुई और भक्ति आंदोलन पुनर्जीवित हो गया।

भक्ति आन्दोलन

सल्तनत युग की धार्मिक दशा की विशिष्टता है विभिन्न संतों व सुधारकों का प्रादुर्भाव और भक्ति आन्दोलन का व्यापक प्रसार। धार्मिक क्षेत्र में भक्तिमार्ग अवलंबन इस युग की विशेषता है। इस भक्ति से अभिप्राय है कि भक्त अपने इष्टदेव के प्रति अनन्य भक्ति, श्रद्धा और निष्ठा रखता है और उसकी आराधना तथा पूजन से, भक्ति भाव से संसार से मुक्ति पाना चाहता है। भक्ति द्वारा भक्त मोक्ष प्राप्त करने की लालसा रखता है। पूर्वमध्यकालीन युग में अनेक संतों, महात्माओं और विद्वानों ने इस भक्ति का प्रचार किया। इससे एक नवीन धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन प्रारंभ हुआ जो भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध रहा है। इस भक्ति मार्ग के सूत्रपात और व्यापक प्रसार के निम्नलिखित कारण हैं—

भक्ति आंदोलन के कारण—(१) मुसलमानों के निरंकुश शासन से कुंठित, धार्मिक अत्याचारों से त्रस्त और हतप्रभ, दुःखी हिन्दुओं ने, असहाय होकर ईश्वर को पुकारना प्रारंभ किया जो दुःखों से उनकी रक्षा करें। हिन्दुओं में उनके मंदिरों और मूर्तियों के विध्वंस से उनमें धर्म की ग्लानि हो रही थी। परिस्थितियों से विवश हो उन्होंने व्याकुलता से ईश्वर को पुकारा और वे भगवद्भजन की ओर झुके जिससे भक्ति आन्दोलन का प्रारंभ हुआ।

(२) हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सामाजिक संपर्क और सांस्कृतिक आदान-प्रदान से, दोनों में सौहार्द्र, सहानुभूति की भावना से, दोनों धर्मों में समानता व एकीकरण की भावना से भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ।

(३) सूफी संतों की उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, भय, पूजा व एकेश्वरवाद ने उनमें धर्मान्धता का विरोध और विशुद्ध सत्य धर्म के प्रचार ने हिन्दुओं को प्रभावित किया और वे इस्लाम के अधिक संपर्क में आये।

(४) हिन्दुओं ने भी बहुदेववाद को त्यागने और अपने धर्म को इस्लाम के समान अधिक जनवादी व सुधारवादी बनाने का प्रयास किया। वे इस्लाम के बंधुत्व व एकेश्वरवाद से प्रभावित हुए और इसके लिये सुधारवादी धार्मिक आन्दोलन प्रारंभ किया जिसने भक्ति आन्दोलन का रूप लिया।

इस्लाम के प्रभाव का परिणाम था कि धर्म सुधारकों व भक्तों ने एकेश्वरवाद, भ्रातृत्व की भावना, जाति प्रथा का बहिष्कार, कर्मकांड और बाह्य आडम्बर का त्याग तथा धर्म की सादगी और पवित्रता पर अधिक बल दिया।

इस प्रकार भक्ति आन्दोलन परिस्थितियों की उपज था, इस्लाम के प्रभाव का परिणाम था जिसमें संतों, सुधारकों और उपदेशकों ने धार्मिक अत्याचारों का विरोध किया, राम और रहीम की एकता व धार्मिक समानता का प्रतिपादन किया तथा सरल पवित्र धर्म का उपदेश दिया।

परन्तु भक्ति आन्दोलन के प्रादुर्भाव के उपरोक्त कारण सर्वथा पूर्ण रूप से सत्य नहीं हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान से सौहार्द्र की प्रक्रिया से, इस्लाम के एकेश्वरवाद ने, सूफियों की प्रेम और रहस्यमयी साधना से, धार्मिक अत्याचारों से क्षुब्ध और व्याकुल हिन्दुओं की विवशता से ही भक्ति आन्दोलन पूर्णरूपेण प्रारंभ नहीं हुआ। वास्तव में भक्तिवाद भारतीय आध्यात्मवाद और संतों के दार्शनिक चिंतन-मनन की सहज और स्वाभाविक परिणति है जिसमें किसी भी बाह्य विदेशी प्रभाव की प्रतिक्रिया या आतंक की छाया नहीं है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भक्तिवाद कोई नवीन मार्ग नहीं था। वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा विभिन्न धर्म शास्त्रों में भक्तिवाद का विशद विवरण प्राप्त होता है। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में भक्तिभाव का उल्लेख है। गीता तथा भागवत ग्रंथों में भक्ति मार्ग का विस्तृत वर्णन है। इन ग्रंथों में मुक्ति या मोक्ष के लिये ज्ञान, कर्म, उपासना व भक्ति को मुख्य साधन बतलाया है। विविध ऋषियों और धर्माचार्यों ने इन पर विशद प्रकाश डाला है। कुछ संतों ने साधारण जनता के लिये ज्ञान और कर्ममार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग को अधिक सुबोध और सरल बताया है और उस पर अधिक बल दिया है।

भक्तिवाद का प्रारंभ दक्षिण भारत में जोरों से हुआ। दक्षिण में आलवार भक्तों ने तन्मय वैष्णवी भक्ति का सूत्रपात दसवीं सदी से पूर्व ही कर दिया था। मध्यकालीन भक्ति मार्ग का सूत्रपात जिन वैष्णव आचार्यों ने किया, उनकी परम्परा दक्षिण भारत में रामानुज से बारहवीं सदी में प्रारंभ होकर उत्तरभारत में आयी और उस काल तक दक्षिण में सामाजिक जीवन और धार्मिक सिद्धान्तों पर मुसलमानों का और उसके पूर्व अरबों का प्रभाव नगण्य था।

सत्य तो यह है कि मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों और धर्मांधता के परिणामस्वरूप लोक जीवन की ऊपरी सतह पर कुछ अशांति, व्याकुलता, विवशता और विक्षोभ अवश्य था, परन्तु जन-जीवन के नीचे की तहों में गूढ़तर सांस्कृतिक और

धार्मिक प्रेरणाओं की तथा आध्यात्मवाद की अक्षुण शक्ति स्वाभाविक दिशा में ही क्रियमाण रही और भक्ति आन्दोलन इन्हीं गूढ़तर प्रेरणाओं की मूर्त अभिव्यंजना है। साधारण जनता का ध्यान हिन्दू धर्म की ओर अधिक आकृष्ट करने, अद्वैतवाद से ऊबी हुई जनता में अधिक धार्मिक चेतना देने के लिये, उनके जीवन में सक्रियता और स्फूर्ति लाने के उद्देश्य से मध्ययुग के संतों, सुधारकों और विचारकों ने ज्ञान, कर्म और भक्ति के तीनों मार्गों में से भक्ति को अधिक महत्व दिया। मुस्लिम धर्म के प्रचारकों द्वारा किये गये बहुदेववाद और मूर्ति पूजा के खंडन से, संत भक्तों और सूफियों की उदारता व एकीकरण की भावना ने भक्ति आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया।

भक्ति आंदोलन के उद्देश्य—बारहवीं सदी में हिन्दू समाज में धार्मिक क्रांति की एक व्यापक लहर आई जिसका सूत्रपात कई सदियों पूर्व हो चुका था; किंतु पूर्व मध्ययुग में उसका बहुत ही गूढ़ और सर्व व्यापक स्वरूप सामने आया और इसे भक्ति आन्दोलन कहा गया। यह जन साधारण का आन्दोलन था जिससे समस्त देश में नवीन चेतना एवं जागृति उत्पन्न हो गयी। इस भक्ति आन्दोलन के मुख्यतया दो उद्देश्य थे– प्रथम, हिन्दू-धर्म और समाज में सुधार करना, जिससे आक्रांता इस्लाम से उसकी रक्षा हो सके और द्वितीय, इस्लाम और हिन्दू-धर्म में समन्वय, एकीकरण, सौहार्द्र स्थापित करना, हिन्दू मुस्लिम एकता और संगठन स्थापित करना। भक्ति आन्दोलन को अपने प्रथम उद्देश्य में सफलता प्राप्त हो गयी। धर्म में बाह्य आडंबर, कर्मकांड और पुरोहितों का प्रभुत्व क्षीण हो गया, पूजा-पाठ में सरलता आ गयी, जाति प्रथा अजटिल और उदार हो गयी। लोगों में यह विश्वास हो गया कि ऊंची और नीची श्रेणी सभी के लोग ईश्वर की दृष्टि में सभी समान हैं और सभी जातियों को मोक्ष प्राप्ति के अधिकार हैं। ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा नहीं है। परन्तु भक्ति आन्दोलन का द्वितीय उद्देश्य हिन्दू मुस्लिम एकता सफल नहीं हो पाया। मुसलमान जनता और शासकों ने प्रेममय भक्ति का अनुकरण नहीं किया, उन्होंने इस सिद्धान्त को नहीं माना कि राम और रहीम कृष्ण और करीम, ईश्वर और अल्लाह एक ही निर्गुण ब्रह्म के विभिन्न नाम और स्वरूप हैं।

भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक संत

पूर्व मध्ययुग में भक्तिवाद को दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित करने का श्रेय वैष्णव आचार्यों को है। उन्होंने भक्तिवाद की मान्यता को सैद्धान्तिक भूमिका प्रदान की। इन वैष्णव आचार्यों की एक परम्परा चल गयी। ये आचार्य तथा अन्य संत भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक थे। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:—

(१) **विष्णु स्वामी**—दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन के पूर्व प्रवर्तकों में विष्णु स्वामी प्रमुख हैं किन्तु उनका काल अभी तक निर्दिष्ट नहीं किया जा सका। उनका सम्प्रदाय अब लुप्तप्रायः सा हो गया है।

(२) **रामानुजाचार्य**—इनका जन्म दक्षिण भारत में १०१६ में हुआ था। कांची में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी और कुछ समय तक वहां रहे। परन्तु इन्होंने चोलराजा के अत्याचार के कारण कांची को त्याग कर यादव राज्य में निवास किया। इन्होंने त्रिचनापल्ली के समीप श्री रंगम को अपना केन्द्रस्थल बनाया और अपने वैष्णव धर्म का प्रचार किया।

रामानुज वैष्णव थे। उन्होंने विष्णु की पूजा का उपदेश दिया। उन्होंने विष्णु की साकार उपासना का उपदेश दिया। वे राम को विष्णु का अवतार मानते थे। उनके अनुसार विष्णु सर्वेश्वर है और वह पृथ्वी पर मनुष्य रूप में अवतार लेता है। उन्होंने निर्गुण ईश्वर की उपासना का खंडन कर सगुण ईश्वर की उपासना की शिक्षा दी। उनका कहना था कि मोक्ष पूजा, उपासना तथा भक्ति से प्राप्त होता है। भक्ति के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को भगवत् प्राप्ति होती है, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। वे आत्मा को परमात्मा का अंग नहीं मानते थे। उनका कथन था कि जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियां उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार जीवों की उत्पत्ति भी ब्रह्मा से होती है। आत्मा का समुदय परमात्मा से होता है। इनके इस दार्शनिक मत को विशिष्ट अद्वैतवाद कहते हैं। उन्होंने अपने मत के प्रचार के लिये सात सौ मठों की स्थापना की। इनके मत के अनुयायियों का श्री सम्प्रदाय है। रामानुज को मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन के जन्म दाता और प्रवर्तक कहा जाता है।

(३) **निम्बार्क** – निम्बर्काचार्य का जन्म मद्रास के वेलोरी जिले में हुआ था। ये रामानुजाचार्य के समसामयिक थे तथा शंकराचार्य के मत के विरोधी थे। वे कृष्ण की भक्ति में विश्वास करते थे और सगुणवादी थे। उन्होंने कृष्ण भक्ति को मोक्ष का साधन बतलाया। इनके दार्शनिक मत को द्वैता-द्वैतवाद कहते हैं। उनके अनुयायियों का सनक सम्प्रदाय है।

(४) **माध्वाचार्य**—माध्वाचार्य का जन्म सन् १२०० में दक्षिण में शृंगेरी से लगभग ६० किलोमीटर दूर पश्चिम में उदीपी जिले में हुआ था। वे ज्ञान से भक्ति और भक्ति से मोक्ष की प्राप्ति में विश्वास करते थे। उनका मत था कि अनन्य भक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है। इनके प्रचार का केन्द्र दक्षिण और गुजरात रहा है। इनके दार्शनिक मत का नाम द्वैतवाद है और इनके अनुयायियों का ब्राह्म-सम्प्रदाय है।

(५) **रामानन्द** –रामानन्द का जन्म दक्षिण भारत में चौदहवीं सदी में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। रामानन्द वैष्णव थे और राम के अनन्य भक्त थे। उन्होंने विष्णु की राम रूप में उपासना की।

उन्होंने राम और सीता की भक्ति का उपदेश दिया। उन्होंने जाति व्यवस्था का खंडन किया जिससे निम्नवर्ग व जातियों के लोगों ने इनके उपदेशों को बहुत माना। उन्होंने अपने विचारों और उपदेशों का प्रचार भारत के विभिन्न भागों में भ्रमण करके किया पर बाद में वे स्थायी रूप से काशी में निवास करने लगे और वहीं से राम भक्ति का उपदेश देते थे। रामानन्द के विचार अधिक क्रांतिकारी थे। उनके मत, भक्तिवाद तथा उपदेशों का प्रचार बहुत बढ़ा, इसके कारण थे—(१) उन्होंने स्पष्ट कहा कि मोक्ष का अधिकार सब को है। उसके लिये किसी धर्म या जाति का बंधन नहीं है। उन्होंने भक्ति मार्ग में जाति बंधन को मिथ्या ठहराया इससे उनके शिष्यों में सभी जाति के व्यक्ति थे जिनमें एक नाई (सैना), एक चमार (रैदास) और एक जुलाहा (कबीर) सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। (२) धर्म में ब्राह्मणों की सर्वज्ञता का विरोध करके उन्होंने सीधे-सादे सरल सुबोध धर्म की शिक्षा दी। (३) रामानन्द प्रथम सुधारक और संत थे जिन्होंने उत्तरी भारत की प्रधान भाषा हिन्दी में अपने उपदेशों

का प्रचार किया। इससे इसके सिद्धान्तों को साधारण लोग भी सरलता से समझ सके तथा उत्तरी भारत में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई।

(६) **श्री वल्लभाचार्य**—इनका जन्म दक्षिण भारत में सन् १४७९ में तैलगू ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे प्रारंभ से ही बड़े प्रतिभाशाली और प्रभावशाली थे, उनमें साहित्य के प्रति विशेष रुचि थी। वे कृष्ण भक्ति में विश्वास करते थे। अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद वे तीर्थ यात्रा के लिये चल पड़े और विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए वे विजयनगर पहुँचे। वहां उन्होंने राजा कृष्णदेवराय की राजसभा में शैव-धर्म के प्रधान आचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया। इससे वे अधिक प्रसिद्ध हो गये। भ्रमण करते-करते वे उत्तर में काशी पहुँचे और बाद में वहीं निवास करने लगे। ये बड़े विद्वान थे और संस्कृत में इन्होंने १७ ग्रंथों की रचना की। इन्होंने कृष्ण को उपास्य माना और उन्हें ईश्वर का अवतार बतलाया। उन्होंने भक्ति मार्ग को श्रेष्ठ कहा। उनके अनुसार मनुष्य भक्ति द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्त कर सकता है। इनका कथन था कि मनुष्य को सांसारिक जीवन में लिप्त नहीं होना चाहिये अपितु भक्ति द्वारा अपना कल्याण करना चाहिये। इनकी भक्ति का सिद्धान्त यह था कि ईश्वर के अनुग्रह या कृपा से ही भक्ति उत्पन्न होती है और यह अनुग्रह पुष्टि कहलाता है। इसी से वल्लभाचार्य का भक्तिवाद पुष्टि मार्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके अनुयायियों का रुद्र वल्लभ संप्रदाय है। इनके दार्शनिक मत को शुद्ध अद्वैतवाद कहा जाता है। उत्तर-प्रदेश की ब्रज भूमि में इन्होंने अपने कृष्ण भक्ति के सिद्धान्तों का प्रचार किया। इन्होंने यह उपदेश दिया कि कृष्ण भक्त अपना सर्वस्व कृष्ण की सेवा में अर्पण कर दें। इनकी मृत्यु के बाद इनके अनुयायियों ने इनके आध्यात्मिक धर्म को विकृत बना दिया और भोग-विलास तथा मायायुक्त जीवन व्यतीत किया। इससे धर्म की पवित्रता व सरलता नष्ट हो गयी तथा पुष्टि मार्ग इन्द्रियसुख और भोग विलास में संलग्न रहने वाले विषयासक्त मनुष्यों का धर्म बन गया।

(७) **चैतन्य**—बंगाल में भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक महाप्रभु चैतन्य थे। इनका जन्म ब्राह्मण परिवार में, बंगाल में, नदिया में सन् १४८५ में हुआ था। ये संत वल्लभाचार्य के समकालीन थे। बाल्यकाल से ही उनमें उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा थी। पच्चीस वर्ष की आयु में इन्होंने संन्यास ले लिया और अपना शेष जीवन प्रेम तथा कृष्ण भक्ति के उपदेश देने में व्यतीत किया। उन्होने उत्तर और दक्षिण भारत के विभिन्न प्रदेशों का भ्रमण किया और अधिक समय वृन्दावन में व्यतीत किया। इसके बाद वे जगन्नाथपुरी गये और अपना शेष जीवन उन्होने वहीं व्यतीत किया। चैतन्य ने कृष्ण भक्ति पर अधिक बल दिया। कृष्ण की अनन्य भक्ति होने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। उन्होंने कृष्ण की प्रेममय भक्ति और रस कीर्तन का उपदेश दिया। कृष्ण प्रेम ही इनके जीवन का आधार था, प्रेम तथा लीलाएं उनके मन की विशेषताएं थीं। कृष्ण की भक्ति मे तल्लीन रहना ही जीवात्मा का लक्ष्य होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को कृष्ण प्रभु तथा जगत की सेवा में तत्पर रहना चाहिये। उसे अपनी प्रत्येक वस्तु को कृष्ण को समर्पित कर देना चाहिये। चैतन्य के सिद्धांतों में राधाकृष्ण की प्रेम लक्षणा भक्ति और उनकी लीलाओं का प्राधान्य है। चैतन्य का

मत था कि जीव (मनुष्य) ही राधा-स्वरूप है। उसे राधा की ही भांति कृष्ण के अनन्य प्रेम में मग्न रहना चाहिये। चैतन्य का विश्वास था कि प्रेम तथा भक्ति से, नृत्य और संगीत से, लीला और कीर्तन से अलौकिक आनन्द की वह अवस्था प्राप्त होती है जिसमें सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। संकीर्तन प्रथा को उन्होंने जन्म दिया तथा गोसाईं संघ की स्थापना की। उन्होंने प्रेम, करुणा तथा भ्रातृत्व को धर्म का आधार बनाया। चैतन्य ने मानव भ्रातृत्व का प्रचार किया, जातिप्रथा, कर्मकांड पशु-बलि, मांसाहार, मद्यपान, पुरोहितों के प्रभुत्व का घोर विरोध किया तथा आचरण की शुद्धि और पवित्रता पर बल दिया। गुरु की सेवा पर भी महत्व दिया। ऊंच-नीच, छुआ-छूत जाति के भेद-भाव आदि कुरीतियों में वे विश्वास नहीं करते थे। बंगाल और बिहार में उनके असंख्य अनुयायी हो गये और वे उन्हें विष्णु या ब्रह्मा का अवतार ही मानते हैं। बंगाल में वैष्णव सम्प्रदाय के विकास का श्रेय चैतन्य को ही है। सन् १५३३ में उनका स्वर्गवास हो गया।

(८) **कबीर**—भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों में महात्मा कबीर अग्रणी हैं। इनका जन्म पंद्रहवीं सदी में हुआ था। संभवत: वे हिन्दू की संतान थे और मुस्लिम जुलाहे दंपत्ति ने इन्हें पालापोसा था। इस प्रकार वे हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के साक्षात सम्मिश्रण थे और इन दोनों धर्मों के बीच की गहरी खाई को पाटने में उन्होंने बड़ा महत्वशाली योगदान दिया। कबीर का प्रारम्भिक जीवन रहस्यमय रहा है। यद्यपि वे अशिक्षित थे, पर महापुरुषों और संतों की संगति में रहकर उन्होंने अपने ज्ञान-कोष में बड़ी वृद्धि करली थी। ये बहुश्रुत थे और सत्संग द्वारा उन्होंने बहुत कुछ जान लिया था। जीवन के प्रारंभ से ही कबीर बड़े चिंतनशील और धार्मिक प्रवृत्ति के थे। हिन्दुओं के उच्च धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों का उन्हें ज्ञान था और उनके पद इनसे ओत-प्रोत हैं। तत्कालीन सूफी संतों के विचारों और सिद्धान्तों का भी उन पर प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया और अपने व्यावहारिक जीवन के कार्यों को सम्पन्न करते हुए भी वे उच्चकोटि के संत और भक्त बन गये। वे जाति-प्रथा, धार्मिक कर्मकांड और बाह्य आडम्बर, मूर्ति-पूजा, कंठी, माला, जप-तप, अवतार-वाद आदि के घोर विरोधी थे। वे एक ईश्वर में विश्वास करते थे और निराकार निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनका विश्वास था कि ईश्वर प्राप्ति के लिये विशुद्ध प्रेम, पवित्रता और निर्मल हृदय की आवश्यकता है। प्रेम तथा भक्ति से मोक्ष प्राप्त हो सकता है। केवल ब्राह्मणों को ही ईश्वर प्राप्ति का अधिकार नहीं है, सभी लोग जिनके हृदय में भक्ति और सत्यनिष्ठा है, उसे प्राप्त कर सकते हैं।

कबीर की विशेषता यह है कि उनके उपदेशों व रचनाओं में हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक आडम्बरों के लिये फटकार और व्यग्य की प्रधानता है। ये व्यंग्य बहुत ही तीव्र और प्रभावशाली होते हैं। उन्होंने हिन्दू और इस्लाम धर्म के आडम्बरों और पाखंडों का व्यंग्यात्मक ढंग से जोरदार शब्दों में खंडन किया। उन्होंने कहा—मूर्ति पूजा, गंगा स्नान और तीर्थ यात्रा कपटी हृदय से करना व्यर्थ है, मक्का और काबा की यात्रा अपवित्र हृदय से करना मूर्खता है। यदि उन्होंने कट्टर हिन्दुओं की आलोचना की है तो मुसलमानों की धर्मान्धता की भी भर्त्सना की है। "कांकर पाथर जोरिके मस्जिद

लयी चुनाय, ताचढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।" तथा "घरकी चकिया कोई न पूजे, जिसका पीसा खाय" ऐसी व्यंग्यात्मक उक्तियों के द्वारा उन्होंने अपने उपदेश दिये। उनका कहना था कि अपने मन को काबा, शरीर को मस्जिद, और ज्ञान को गुरु बनाओ, क्रोध, शंका एवं कपट का त्याग करो और धैर्य को पांच बार की नमाज़ बनाओ।

कबीर एक महान सुधारक थे। वे हिन्दू और मुसलमानों में कोई भेद नहीं मानते थे। वे दोनों में समन्वय चाहते थे। वे दोनों को एक ही पिता की संतानें समझते थे। उनका कहना था कि दोनों विभिन्न मार्गों द्वारा एक ही लक्ष्य की पूर्ति में संलग्न हैं। सबका ईश्वर एक ही है चाहे उसे परमात्मा कहो या खुदा। दोनों धर्मों में प्रचलित बाह्य आडम्बरों, रूढ़ियों और कुरीतियों का खंडन करके उन्होंने राम और रहीम की एकता का उपदेश दिया। विभिन्न धर्मों की सारभूत एकता निर्गुण ब्रह्म की निराकारता और मनुष्य की समानता उनके उपदेशों के आधार थे। कबीर ने भारत में सांस्कृतिक एकीकरण और समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार की। उनके अनुयायी कबीर पंथी कहलाये।

(९) **नामदेव**—महाराष्ट्र में भी भक्ति आन्दोलन की तीव्र लहर फैल गई। वहां इसके आन्दोलन के प्रारंभिक प्रवर्तक संत नामदेव थे। इनका जन्म निम्न जाति में हुआ था। उन्होंने चिंतन और मनन के बाद भक्ति को मुक्ति का साधन बतलाया। इन्होंने भी मूर्तिपूजा का विरोध किया, धार्मिक आडम्बरों की निंदा की और निर्गुण एकेश्वरवाद का प्रचार किया। इनकी रचनाएं मराठी में हैं जिनमें भक्तिवाद की प्रधानता है।

(१०) **नानक**—इनका जन्म सन् १४६९ में लाहोर के निकट तलबंदी ग्राम में खत्री परिवार में हुआ था। आजकल यह पाकिस्तान में है और नानकाना कहा जाता है। शैशव काल से ही इनकी प्रवृत्ति धर्म और संन्यास की ओर थी। एक बार पिता ने इन्हें व्यापार करने हेतु कुछ धन दिया था, पर उन्होंने वह धन निर्धनों में वितरित कर दिया। सांसारिक जीवन और बाहरी आडम्बरों से उदासीन होकर पारिवारिक बन्धनों से मुक्त होकर इन्होंने देश-विदेश का भ्रमण किया और अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा की। ये मक्का और मदीना भी गये थे। इन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के तीर्थ स्थानों तथा महापुरुषों व सन्तों के दर्शन किये। जीवन के अंतिम दिनों में वे गुरुदासपुर जिले के करतारपुर ग्राम में निवास करते थे और वहीं उनका देहावसान हो गया। एक बार बाबर ने इन्हें बन्दी बना लिया था, पर उनके व्यक्तित्व और भक्ति से प्रभावित होकर इन्हें मुक्त कर दिया। उन्होंने जाति-पांति के भेद-भाव, धार्मिक आडम्बरों, मूर्तिपूजा, अंधविश्वासों तथा सामाजिक ऊंच-नीच का घोर खंडन किया तथा बहुदेववाद का विरोध किया। उन्होंने एकेश्वर मत का और भक्तिवाद का प्रचार किया। इन्होंने लोगों को छल, कपट, असत्य और सांसारिकता का परित्याग कर सत्कर्म में लगने, सरल, सात्विक और त्यागमय जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। इन्होंने ईश्वर भक्ति और सच्चरित्रता पर बल दिया। उनके मत में दया, करुणा, ईमानदारी, सचाई, सत्यनिष्ठा, मद्यनिषेध आदि के पालन से भक्ति की भावना जागृत होती है। भगवान की भक्ति और ईश्वर प्राप्ति के लिये संसार का परित्याग करना और सन्यास

लेना इनकी दृष्टि मे अनुचित था। साधारण गृहस्थ भी उनके सिद्धांतों का पालन कर सकता है। उनका विश्वास था कि शुद्ध गृहस्थ जीवन से भी मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। इन्होंने मुल्लाओं और पुरोहितों के आडम्बरों की भर्त्सना की और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया। उन्होंने हिन्दू धर्म और इस्लाम की शिक्षाओं के निचोड़ का अपने उपदेशो और सिद्धांतों म प्रचार किया। उनके उपदेशों को, भक्ति से ओत-प्रोत वचनों और सिद्धांनों को "गुरुग्रंथसाहब" नामक पुस्तक में संग्रहीत कर लिया गया है। इस ग्रन्थ को सिक्ख लोग बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। गुरु नानक बड़े सुधारक और सिक्ख धर्म के प्रवर्तक माने जाते हैं।

(११) **सूरदास**—ये कृष्ण भक्ति के समर्थक सन्त वल्लभाचार्य की शिष्य परंपरा में थे। ये वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलदास के प्रसिद्ध आठ शिष्यों में से थे। इन्हें अष्ट छाप भी कहा जाता है। ये पुष्टि मार्ग के अनुयायी थे और कृष्ण भक्ति पर इन्होंने अधिक बल दिया। वे कृष्ण के अनन्य उपासक थे और उनकी भक्ति प्रधानतया सख्य और वात्सल्य श्रेणी की है। कृष्ण भक्ति को वे मुक्ति का साधन मानते थे। इनके मधुर तन्मयकारी भक्तिभावों से ओत-प्रोत गीतों का संकलन 'सूरसागर" नामक ग्रंथ में है।

(१२) **तुलसीदास**—ये रामभक्त रामानन्द की शिष्य परम्परा में हैं। ये राम के अनन्य उपासक थे और अपने उपदेशों में तथा काव्य-ग्रंथों में इन्होंने रामभक्ति पर विशेष बल दिया। उनका विश्वास था कि रामभक्ति से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। रामभक्ति के सन्तों में तुलसीदास अग्रणी हैं। उन्होंने सरल, पवित्र, त्यागमय जीवन व्यतीत करने और सत्कर्म में संलग्न रहने का उपदेश दिया। उनकी रचनाएं, काव्यग्रंथ और उनका महाकाव्य "रामचरितमानस" हिन्दी भाषा की अक्षय निधि है। अपने उपदेशों और राम भक्ति से उन्होंने जन-जीवन को अधिक प्रभावित किया हैं।

(१३) **मीराबाई**—ये राजस्थान में जोधपुर क्षेत्र के मेड़तिया के राठौर रत्न सिंह की पुत्री थीं और इनका जन्म सन् १५१६ मे हुआ था। ये राजस्थान में ही मेवाड़ के सिसोदिया राजवंश में ब्याही गई थीं। ये बाल्यकाल से ही कृष्णभक्ति में तल्लीन रहा करती थीं। विधवा होने के पश्चात् उनकी कृष्ण भक्ति और भी बढ़ गई। ये प्राय: मंदिरो मे जाकर संतों और भक्तों के बीच कृष्ण की मूर्ति के समक्ष आनन्द-विभोर हो गान और नृत्य करने लगती थीं। मीरा राधाभाव से कृष्ण की मधुर भक्ति करती थी। अनेक व्यवधानों का साहस से सामना करके उन्होंने कृष्णभक्ति बनाये रखी और अंत में कृष्ण मंदिर में ही भक्ति करते-करते मीरा ने संसार त्याग दिया और अपना जीवन कृष्णार्पण कर दिया।

(१४) **दादूदयाल**—इनका जन्म सन् १५४४ में अहमदाबाद में हुआ था। इन्होंने भी अन्य संतों के समान बाह्य आडम्बरों, जाति के बन्धनों, मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत और अवतारवाद का घोर विरोध किया तथा एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया। कबीर की भांति ये भी निर्गुण भक्ति के सरल साधु प्रचारक थे। इनका मत था कि जो व्यक्ति स्वयं को पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित कर देता है, उसे ईश्वर का साक्षात्कार होता है। सन् १६०३ में दादूदयाल का अन्त हो गया। इनके अनुयायियों ने

इनके सिद्धांतों का "दादू पंथ" चलाया। दादू के प्रसिद्ध शिष्य गरीबदास और माधव दास ने अजमेर तथा राजस्थान के अन्य विभिन्न क्षेत्रों में दादूपंथ का प्रचार किया।

दादू के समान ही रायदास या रैदास भी जो जाति से चमार थे, निर्गुण उपासक और भक्ति मार्ग के प्रमुख प्रवर्तक संत थे।

(१५) **तुकाराम**—महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संतों और भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों में तुकाराम का नाम भी अग्रणी है। इन्होंने भी बाहरी आडम्बरों और कर्मकांड का विरोध किया और ईश्वर की अनन्य भक्ति पर बल दिया। उनकी धारणा थी कि मनुष्य सांसारिक सुखों का उपभोग करता हुआ मोक्ष प्राप्त करने में सफल हो सकता है। उसका जीवन सरल, सादा, सात्विक और त्यागमय होना चाहिये। उनकी भक्ति से ओतप्रोत रचनाएं और गीत जो अभंग कहे जाते हैं, मराठी साहित्य की अमर निधि है।

भक्ति आन्दोलन के संतों की देन और उनका प्रभाव

भक्ति आन्दोलन किसी प्रदेश विशेष तक सीमित नहीं रहा। उसका प्रभाव देशव्यापी हो गया। पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, दक्षिण भारत आदि प्रदेशों में भक्ति आन्दोलन और उसके संतों के उपदेशों की लहर फैल गई। इससे भारतीय जीवन, संस्कृति और साहित्य प्रभावित हुआ।

(१) **धार्मिक पुनर्जागरण और सुधार**—सभी संतों ने मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, बाहरी धार्मिक पाखंड, आडम्बर, कर्मकाण्ड, जाति प्रथा की ऊंच नीच की भावना व बंधन, पुरोहित वर्ग की धर्म और समाज में प्रभुता, धर्मान्धता, धार्मिक पक्षपात आदि का घोर विरोध किया। उन्होंने सात्विक, सदाचारपूर्ण सादे और सरल जीवन और अनुकरणीय धर्म पर बल दिया। इससे समाज में सुधारों की लहर दौड़ गई और धार्मिक कुप्रथाओं का विरोध होने लगा। सभी धर्मों की समानता, एकेश्वरवाद का सिद्धांत और भक्तिभाव का प्रसार होने लगा। ईश्वर एक ही है तथा राम, कृष्ण, शिव, विष्णु आदि उसके विभिन्न रूप और नाम हैं। इनमें से किसी की भी भक्ति व उपासना की जा सकती है। धार्मिक पुनर्जागरण इन संतों की देन रही है।

(२) **हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द्र और प्रतीति**—प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति, सहिष्णुता और उदारता के आदर्शों को जीवन में कार्यान्वित करने वाले कबीर, नानक तथा अन्य सूफी संतों ने अपने उपदेशों और सिद्धान्तों से हिन्दू-मुस्लिम पारस्परिक विद्वेष और मनोमालिन्य को दूर कर दिया। दोनों सम्प्रदायों के लोगों के हृदय में संकीर्णता का अंत होकर व्यापकता का अंकुर जमने लगा और दोनों धर्म परस्पर समीप आ गये। इन संतों ने समाज में धार्मिक समानता, सद्भावना, सहिष्णुता और प्रतीति प्रतिष्ठित की। उन्होंने हिन्दू मुसलमानों में सहयोग और सहिष्णुता, समन्वय और एकीकरण का वातावरण निर्मित किया जिसमें मुगलवंश की स्थापना हुई और इस श्रेष्ठ वातावरण और भावनाओं का विकास अकबर के शासनकाल में हुआ।

(३) **जनजीवन में नैतिक जागृति और दृढ़ आत्मविश्वास**—पूर्व मध्यकाल में हिन्दू समाज एक विचित्र अस्तव्यस्तता, निराशा, उदासीनता, क्षुब्धता और ग्लानि

में डूब गया था। मुस्लिम आतंक, भय और अत्याचारों से वह कुंठित भाग्यवादी और घोर निराशावादी हो गया था। परन्तु भक्ति आन्दोलन और संतों ने ऐसे हीन और नैराश्य समाज में नवस्फूर्ति और नवजागृति फूंक दी, नवीन प्राण फूंक दिये जिससे दृढ़ आत्मशक्ति, आत्मविश्वास, अपूर्व नैतिक बल और स्वावलंबन की भावनाएं जागृत हो गयीं। इससे उस धार्मिक अत्याचार व दमन के युग में हिन्दू जीवन और धर्म संस्कृति सुरक्षित रह सके।

(४) **दीन-हीन निम्न वर्ग में बल और आत्मविश्वास**—भक्ति आन्दोलन के कुछ सन्त निम्न जातियों के थे और उन्हीं के बीच पले थे। इसलिए वे जाति प्रथा के विरोधी थे। अन्य संतों ने भी जाति प्रथा की निस्सारता को समझकर उसकी जटिलता, और ऊंच-नीच की भावनाओं का घोरतम विरोध किया। उनके मत में जाति मोक्ष प्राप्ति में बाधक नहीं है। यदि कोई भी व्यक्ति सद्‌भावना, प्रेम और अनन्यता से ईश्वर के किसी भी रूप की उपासना करता है तो वह मोक्ष का अधिकारी होता है। ब्राह्मण, वैश्य और अछूत समान रूप से मोक्ष और स्वर्ग के अधिकारी हैं, यदि भगवान में उनकी अनन्य भक्ति और निष्ठा है। इन सिद्धांतों और उपदेशों से दलित निम्न वर्ग में दमन और जातीय कुण्ठा के स्थान पर क्रांतिकारी तृप्ति और आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया, उनमें हीनता की भावनाएं कम हो गयीं और वे भी अपने को सभ्य सम्पन्न समाज के अंग और हिन्दू धर्म के अनुयायी मानने लगे। इन संतों ने निम्न वर्ग और स्त्रियों के लिए धर्म और मोक्ष के द्वार खोल दिये जिन पर अभी तक समाज के उच्च वर्गों का ही अधिकार था। इससे सामाजिक समानता स्थापित हो गयी।

(५) **सिक्खों और मराठों का उदय**—भक्ति आन्दोलन ने धार्मिक और नैतिक जागृति का ही सूत्रपात नहीं किया, अपितु राजनैतिक पुनर्जागरण के बीज भी बो दिये। हिन्दुओं में हिन्दू धर्म, संस्कृति और समाज की सुरक्षा के भाव जागृत हुए, राष्ट्रीय जागृति हुई। पंजाब में सिक्खों का अभ्युदय और महाराष्ट्र में मराठों का उदय इसी जागृति का सुफल है। इन जातियों ने स्वतंत्रता व सुरक्षा के लिए सैनिक रूप धारण किया।

(६) **साहित्यिक प्रगति**—भक्तों और सन्तों ने भव्य आध्यात्मिक प्रेरणा और भक्तिभाव की उदात्त भावनाएं लेकर शिखरस्पर्शी काव्य वाङ्‌मय की सृष्टि की। उन्होंने जनता को उनकी भाषाओं में ही अपने उपदेश दिये और पद व भजनों की रचना की। उन्होंने विभिन्न काव्य ग्रन्थ रचे। इससे प्रांतीय भाषाओं की प्रगति हुई और देशज भाषाओं हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि का साहित्य भी समृद्ध हुआ।

सूफीसंत और सूफीवाद

सूफीवाद का प्रादुर्भाव—जिस प्रकार मध्ययुग में हिन्दुओं में भक्ति आन्दोलन प्रारभ हुआ और अनेक संतों ने भक्तिवाद का प्रसार किया, उसी प्रकार इस युग में कुछ मुसलमान महात्माओं व संतों ने भी भक्ति और प्रेम का उपदेश दिया। उन्होंने कुछ आध्यात्मिक सिद्धांत अपनालिये जो सूफीवाद के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन सिद्धांतों

में इस्लाम के तत्व निरूपों को माना गया है और उसके सार को स्वीकार किया गया। इन मुस्लिम संतों का रहन-सहन और पहिनावा साधुओं के समान था और ये श्वेत वस्त्र धारण करते थे। सर्वप्रथम इन महात्माओं और संतों का अभ्युदय ईरान या फारस देश में हुआ था और फारसी में श्वेत वस्त्र को सूफी कहा गया है। इसलिए इन मुस्लिम संतों को भी सूफी कहा जाता है। धीरे-धीरे सभी देशों में जनसाधारण ऐसे संतों को सूफी कहने लगे। इनके सिद्धांतों, मतों और उपदेशों को सूफीमत कहा गया।

सूफीवाद के सिद्धांत—सूफीवाद में उत्कृष्ट निर्मल अगाध प्रेम द्वारा ईश्वर की प्राप्ति मानी गयी है। इसमें ईश्वर (अल्लाह) की प्रियतम के रूप में आराधना और उपासना की गयी है। सूफीवाद के अनुसार ईश्वर के दो स्वरूप हैं, प्रथम जाति (निर्गुण) और द्वितीय सिफत (सगुण)। जाति (निर्गुण निराकार) से सिफत (सगुण साकार) उत्पन्न होकर वह पुनः जाति (निर्गुण) में, विलीन हो जाता है। परन्तु मनुष्य अपने अज्ञान के कारण जाति और सिफत में भेद मानता है; वह निर्गुण और सगुण ईश्वर में भिन्नता देखता है। जाति की शक्ति को "नजूल" और सिफत की शक्ति को "उरुज" कहा गया है तथा सत्य को "हक" के नाम से पुकारा गया है। इस "हक" (सत्य) की समीक्षा विविध प्रकार से होने के कारण विश्व में अनेक धर्म, सम्प्रदाय और मतों का प्रादुर्भाव हुआ।

सूफीवाद के अनुसार "अहद" ईश्वर का प्रतीक है और "बहदत" उसका गुण है। अहद बहदत से प्रसन्न और सन्तुष्ट न होने के कारण अहद को दूसरा रूप धारण कर प्रेम करना पड़ता है। वह अल्लाह का प्रेमी बन जाता है। अपने प्रियतम अल्लाह के लिए प्रेमी सूफी की तड़पन ही सूफी दर्शन का सार है। सूफी साहित्य और सिद्धांतों में इस "प्रेम की पीर" का बड़ा महत्व है। इसके द्वारा सूफी अल्लाह में फना हो जाता है और यह उसके अगाध प्रेम का पर्यवसान है। सूफी के लिये यही असीम उल्हास और चरम हर्ष की स्थिति होती है। सूफियों का यह प्रेमवाद एक श्रेष्ठ ऊँचे स्तर का रहस्यवाद है। जिस प्रकार कुछ हिन्दू संतों ने ईश्वर और भक्त का सम्बंध प्रेमी और प्रेयसी के रूप में माना है, इसी प्रकार सूफी मत में भी ईश्वर को प्रेममय माना है। अंतिम आनद और ईश्वर से साक्षात्कार की स्थिति प्राप्त करने के लिए चार कठिन मंजिलें पार करना पड़ती हैं, ये हैं– शरीयत, तरीकत, हकीकत और मार्फत। चौथी मंजिल पर आने वाला संत पुरुष "नबी" कहलाता है। सूफी इन मंजिलों को पार करते-करते ईश्वर के सानिध्य में पहुँच जाता है।

इस प्रकार सूफी संत अल्लाह की खोज में सदैव आनंदमग्न रहते हैं और वे जीवन की छोटी-छोटी वस्तुओं में भी अल्लाह के जल्वे देखते हैं। उन्हें समस्त विश्व ईश्वरमय प्रतीत होता है। प्रारम्भ में फारस में इस सूफीमत का खूब प्रचार बढ़ा और सूफी संतों ने कंबल ओढ़ कर श्वेत वस्त्र धारण कर, घूम-घूम कर विभिन्न प्रांतों और देशों में अपने मतों का प्रचार किया। ये सूफी संत भौतिकता के व भोग विलास के विरोधी थे और सरल, सादे, संयमपूर्ण जीवन में विश्वास करते थे। वे धार्मिक आड-म्बरों और पाखण्डों से मुक्त रहकर साधारण और नियमित जीवन व्यतीत करने के

समर्थक थे। कर्म की शुद्धता, जीवन की पवित्रता और संयम तथा ईश्वर का दर्शन इनका उद्देश्य था। वे मानव सेवा और प्रेम, ईश्वर प्राप्ति का साधन कर सदैव ईश्वरानुभूति में तन्मय और आनंदित रहते थे।

सूफीवाद का महत्व – सूफी अपने मत का प्रचार बड़े शांतिपूर्ण ढंग से करते थे। सूफी संतों और उनके सिद्धांतों पर हिन्दू वेदान्त का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उनके सिद्धांत हिन्दुओं के उपनिषदों की आध्यात्मिकता और रहस्यवादिता से अधिक साम्य रखते हैं। सूफियो की प्रेममयी-वाणी, सात्विक उपदेशों एवं शुद्ध पवित्र विचारधाराओं ने उदार हिन्दुओं और मुसलमानों को उनकी ओर आकर्षित कर दिया। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पारस्परिक प्रति और सौहार्द्र की स्थापना करने का श्रेय उदारमना, सरल, शांत सूफी संतों को है। उन्होंने दो धर्मों के समन्वय में महत्वपूर्ण योग दिया। हिन्दू-मुस्लिम एकीकरण की भावना जागृत करके सूफी संतों ने ईश्वर प्राप्ति का सरल, सुबोध और सुगम मार्ग प्रशस्त किया। भारत में बारहवीं सदी के पश्चात् मुस्लिम समाज, साहित्य और दर्शन पर सूफीमत का अधिक प्रभाव पड़ा।

सूफीमत के संत

प्रारम्भ में ईरान में अत्तार शादी दलालुद्दीन सूफी तथा हाफिज ने सूफी सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया। भारत में भी विदेशों से कुछ सूफीसंत आये और उन्होंने सूफीमत का प्रसार किया। इन संतों और प्रवर्तकों में निम्नलिखित प्रमुख थे—

(१) **ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती** —सूती संतों में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती अधिक प्रसिद्ध हैं। सन् ११४२ में इनका जन्म मध्य एशिया में हुआ था। बाल्यकाल से ही ये ईश्वर की अनन्य भक्ति और अनुराग की ओर आकर्षित हो गये। उन्होंने संसार त्याग कर सूफीमत को अपना लिया और संत जीवन में रहकर इन्होंने सूफीमत के तत्कालीन प्रमुख केन्द्रों, समरकंद, बगदाद, मक्का, जिल्लन आदि में भ्रमण किया। इन्होंने सूफियों के चिश्ती सम्प्रदाय के संस्थापक शेख अब्दुल कदीर को अपना गुरु बनाया और स्थान-स्थान में भ्रमण कर चिश्ती सम्प्रदाय का प्रचार किया। अपनी विद्वत्ता, योग्यता और प्रतिभा के कारण ये चिश्ती सम्प्रदाय के अध्यक्ष बन गए। भ्रमण करते और सूफीमत का प्रचार करते हुए ये सन् ११६६ में भारत आये और राजस्थान में अजमेर में स्थायी रूप से निवास करने लगे तथा यहीं से अपने सिद्धांतों का प्रचार करने लगे। उनका उपदेश था कि विश्व के समस्त धर्मों का मूल स्रोत एक है। ईश्वर एक है और विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय उसकी प्राप्ति के केवल साधन मात्र हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों पर ही इनके सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा। सन् १२३६ में इनकी मृत्यु हो गई। ये उच्च कोटि के संत थे और अजमेर में इनकी समाधि पर प्रतिवर्ष लाखों हिन्दू और मुसलमान जाते रहते हैं।

(२) **शेख निजामुद्दीन औलिया**—ये दिल्ली में स्थायी रूप से निवास करते थे। ये सुलतान गयासुद्दीन तुगलक और मुहम्मद तुगलक के समकालीन थे। मुहम्मद तुगलक इनका प्रिय शिष्य था। ये अपनी विद्वत्ता, जीवन की सात्विकता के लिए

प्रसिद्ध थे। ये हिन्दू मुसलमानों के भेदभाव को नहीं मानते थे। ये दोनों को ही अपने उपदेश देते थे और दोनों ही इन्हें आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। दिल्ली में इनका देहावसान हो जाने के बाद वहीं इनकी समाधि बना दी गई जो आज भी प्रसिद्ध है। उनके मकबरे का क्षेत्र उनके नाम से ही प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष यहां उनके मकबरे में मेला लगता है जिसे उर्स कहते हैं। इसमें हिन्दू मुसलमान दोनों ही सम्मिलित होते हैं।

(३) **बाबा फरीद**—चिश्ती सम्प्रदाय के अन्य प्रसिद्ध सूफीसंत बाबा फरीदुद्दीन थे। इनका जन्म अफगानिस्तान में काबुल में राजवंश में सन् ११७३ में हुआ था। कुछ विशेष कारणवश इनके पितामह ने काबुल त्याग दिया और भारत में आकर मुलतान में निवास करने लगे। फरीदुद्दीन यहीं सूफीमत की ओर आकर्षित हुए। इन्होंने वैराग्य गृहण कर लिया और बगदाद के सूफी संतों से धर्म की शिक्षा ग्रहण की। विभिन्न स्थानों का इन्होंने भ्रमण किया और अंत में सतलज नदी के तट पर फरीद कुटी बना कर वहीं स्थायी रूप से निवास करने लग। सन् १२६५ में इनकी मृत्यु हो गयी। इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को अपने उपदेश दिये। इन्होंने समस्त मानव जाति से प्रेम करने की शिक्षा दी। इन्होंने शांति पूर्ण ढंग से सूफीमत का प्रचार किया।

(४) **गेसूदराज**—ख्वाजा बन्दे नवाज या गेसूदराज का जन्म दिल्ली में सन् १३२१ में हुआ था। जब सुलतान मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी परिवर्तित की तब ये पांच वर्ष की आयु में दिल्ली से दौलताबाद अपने पिता के साथ गए थे। युवा होने पर इन्होंने सूफीमत ग्रहण कर लिया और सर्वप्रथम इन्होंने दिल्ली में अपने धर्म का उपदेश दिया। धार्मिक प्रचार और समाज सेवा दोनों में ही इनकी अभिरुचि थी। दिल्ली में महामारी के संक्रामक रोग के समय इन्होंने घूम-घूम कर पीड़ितों की सहायता की। इससे ये अधिक प्रसिद्ध हो गये। इन्होंने भारत में तीर्थाटन करते हुए अपने सूफी सिद्धांतों का प्रचार किया। इनकी प्रसिद्धि से प्रभावित होकर दक्षिण भारत के बहमनी सुलतान ने इन्हें अपने यहां बुला लिया था। तब से इनका कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत रहा। वहीं सन् १४२२ में इनकी मृत्यु हो गयी। इनकी समाधि पर आज भी मेला लगता है जहां सहस्त्रों हिन्दू और मुसलमान जाते हैं। ये बड़े उच्च कोटि के विद्वान संत थे। इन्होंने लगभग सौ ग्रंथों की रचना की।

इन सूफी संतों ने अपने हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में धार्मिक कट्टरता और धर्मांधता को दूर कर, प्रेम, सहिष्णुता और समानता के भाव जागृत किये। उन्होंने इन दोनों धर्मों के अनुयायियों में धार्मिक भेदभाव की खाई को भरने का प्रयास किया। उन्होंने मुस्लिम शासक और हिन्दू शासितों के गहरे भेदभाव को भी दूर करने का भरसक प्रयत्न किया।

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा—दिल्ली सुलतानों के शासनकाल में शासन शिक्षा की व्यवस्था करना अपना कर्तव्य नहीं मानता था। इस समय राजकीय शालाओं का अभाव था। परन्तु

दिल्ली के सुलतान मुसलमानों के प्रति पक्षपात की नीति अपनाते थे। वे उनके अधिक प्रिय थे। इसलिये सुलतानों ने अपनी मुस्लिम प्रजा की शिक्षा के लिये शालाएं और उच्च विद्यालय स्थापित किये। उन्होंने मसजिदों में प्राथमिक शालाएं बनवायीं। इनमें मुस्लिम बालकों को कुरान के साथ-साथ अरबी और फारसी की प्रारंभिक शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक मसजिद में एक मकतब (पाठशाला) होता था और यहीं प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। कुछ विशिष्ट स्थानों और प्रमुख नगरों में मदरसे या उच्च शिक्षा के महाविद्यालय भी स्थापित किये गये थे। सुलतान इल्तुतमिश ने दिल्ली मे ऐसे ही एक उच्च विद्यालय की स्थापना की थी और अपने ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन के नाम पर इसका नामकरण किया था। सिंध में मुलतान मे भी ऐसा ही महाविद्यालय फिरोजी मदरसा के नाम से स्थापित किया गया था। मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक के शासनकाल में अनेक मदरसे महत्वपूर्ण नगरों में स्थापित किये गये। तुगलक शासनकाल में अकेले दिल्ली में ही एक सहस्र मदरसे थे। प्रांतीय राजवंशों की राजधानियों में भी मदरसे स्थापित किये गये और शिक्षा का प्रचार किया गया। शर्की शासकों ने जौनपुर को इस्लामी शिक्षा और साहित्य का केन्द्र बना दिया था। दक्षिण भारत में बीदर में भी महमूदगवां ने एक विशाल महाविद्यालय और पुस्तकालय स्थापित किया था। प्रमुख शिक्षा केन्द्रों पर अच्छे पुस्तकालय भी थे। इनमें हस्तलिखित ग्रंथों का श्रेष्ठ संग्रह रहता था। दिल्ली में भी एक ऐसा अच्छा शाही पुस्तकालय था। सुलतान जलालुद्दीन खिलजी ने प्रसिद्ध कवि और लेखक अमीर खुसरो को इस पुस्तकालय का अध्यक्ष नियुक्त किया था। इन मदरसों में उच्च साहित्य, काव्यशास्त्र, धर्म, दर्शन तथा अन्य विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। छात्रों और मौलवियों को वृत्तियाँ और अनुदान दिये जाते थे। अध्यापन कार्य प्रायः मौलवी करते थे। मंगोल आक्रमणों से व्यथित और दुखी होकर मध्य एशिया के अनेक प्रदेशों और राज्यों से कई विद्वान, लेखक, कवि, दार्शनिक, इतिहासकार आदि अपनी सुरक्षा के लिये भारत में आकर दिल्ली में निवास करने लगे। इससे दिल्ली में शिक्षा और साहित्य की खूब प्रगति हुई एवं दिल्ली इस्लामी शिक्षा, विद्या और साहित्य का केन्द्र बन गया।

सुलतानों और शासकों ने संस्कृत भाषा और संस्कृत के विद्वानों को राज्याश्रय नहीं दिया। उन्होंने संस्कृत के अध्ययन और अध्यापन के प्रति उपेक्षा की नीति अपनायी। यदि कुछ सुलतानों ने संस्कृत के कुछ प्रमुख ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने संस्कृत साहित्य और उसके विद्वानों, कवियों और लेखकों को विशेष प्रेरणा दी हो, विशिष्ट राज्याश्रय दिया हो। किसी भी सुलतान ने देशी भाषा या संस्कृत के किसी भी विद्वान को अपने दरबार में राज्य संरक्षण नहीं दिया।

साहित्य की प्रगति

कुछ पुराने इतिहासकारों का मत है कि दिल्ली सल्तनत का युग साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से अंधकारपूर्ण था। संस्कृति एवं साहित्य के विकास के लिये यह

युग पूर्णतया असफल रहा। इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने दिल्ली सल्तनत को साहित्य और संस्कृति सम्पन्न राज्य कहा है।

क्या दिल्ली सल्तनत संस्कृति सम्पन्न राज्य था ?

एक आधुनिक इतिहासकार का मत है कि दिल्ली सल्तनत एक संस्कृति संपन्न राज्य था। दिल्ली के सुलतान साहित्य, संस्कृति और कला के उदार संरक्षक थे। उपरोक्त दोनों ही मत सत्य से दूर हैं। दोनों ही अतिशयोक्तिपूर्ण हैं।

दिल्ली राज्य धर्मसापेक्ष था, इस्लाम उसका आधार था। उसके सामन्त और पदाधिकारी विदेशी थे। उन्होंने स्थानीय भाषा, और संस्कृति की उपेक्षा की। यहाँ की बहुसंख्यक हिन्दू-प्रजा को हेय समझकर उसका दमन किया। उन्हें समूल नष्ट करने के प्रयत्न किये गये। इस मुस्लिम राज्य ने बर्बरतापूर्वक भारतीयता का दमन करने में कोई उपाय उठा नहीं रखा। ऐसे राज्य से यह आशा करना कि उसने भारत के साहित्य और संस्कृति को उदार राज्याश्रय दिया होगा, उसका विकास किया होगा, भ्रममूलक है। सल्तनतकालीन शासन विदेशी होने से उसमें भारतीय भाषाओं की अपेक्षा, फारसी भाषा के साहित्य को अधिक प्रोत्साहन मिला। फलतः सल्तनत काल पूर्ण संस्कृति सम्पन्न उदार राज्याश्रय वाला राज्य नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार यह भी नहीं कह सकते कि यह युग अंधकारपूर्ण था। यह सोचना भूल होगी कि दिल्ली के सुलतान अर्द्ध सभ्य सैनिक थे। अतः उन्हें साहित्य, काव्य, संस्कृति तथा ललित कलाओं में रुचि नहीं थी। तुर्क अफगान शासक मूलतः लड़ाकू और सैनिक थे, फिर भी वे इस्लामी शिक्षा, साहित्य और कला के संरक्षक थे। वे इस्लामी कलाओं और विद्याओं को राज्याश्रय एवं प्रोत्साहन देते थे। सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर अंतिम सुलतान इब्राहीम लोदी के शासन काल तक, सुलतानों की राजसभा में मध्य एशिया के विभिन्न प्रदेशों के तथा भारत के अनेक विद्वान, लेखक, कवि, दार्शनिक, तार्किक, तत्वज्ञानी, विधिविज्ञ, इतिहासकार आदि विद्यमान थे। इनमें अधिकांश फारसी के विद्वान थे। इन सुलतानों ने विदेशी इस्लामी संस्कृति और धर्म के अभ्युत्थान के लिये तथा विदेशी फारसी भाषा के साहित्य के विकास के लिये अनेक प्रयत्न किये। भवन निर्माण कला को भी ये प्रोत्साहन और संरक्षण देते रहे। इन्होंने अनेक मसजिदें, मकबरे, राजप्रासाद आदि निर्माण किये। कुतुबमीनार, अलाई दरवाजा तथा दिल्ली और प्रांतीय राजधानियों में निर्मित मसजिदें इसके उदाहरण हैं।

इसलिये दिल्ली सल्तनत अंधकारपूर्ण युग नहीं था और न दिल्ली के सुलतान बर्बर संस्कृति विहीन थे और न उनका राज्य असभ्य था परन्तु उन्होंने भारतीय संस्कृति और सभ्यता का समूल उच्छेद करने के प्रयास किये। उन्होंने केवल विदेशी इस्लामी संस्कृति, साहित्य व कला का अभ्युत्थान किया। इस युग के इतिहासकारों और लेखकों ने भारतीय विषयों, भारतीय शब्दों, अलंकारों का उपयोग नहीं किया। अर्थात् बहिष्कार किया। उन्होंने भारत के स्थानों, पर्वतों, नदियों तथा जन जीवन का वर्णन नहीं किया। उन्होंने अरब और ईरान से प्रेरणा ली। उन्होंने राजसभा, सुलतान और अमीरों तक ही अपने को सहमत रखा, साधारण जन से वे दूर रहे।

सुलतानों ने भी अपने साहित्यिक कार्य राजसभा तक ही सीमित रखे। इससे वे पूर्ण संस्कृति संपन्न भी नहीं कहे जा सके। उनके युग की साहित्यिक प्रगति और कला की उन्नति का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है:—

फारसी साहित्य और इतिहास ग्रंथ

जैसा ऊपर उल्लेख है दिल्ली के सुलतान विद्वानों तथा साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। फारसी साहित्य को प्रोत्साहन देने और ऐतिहासिक ग्रंथों के रचने में सुलतानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनकी राजसभा में देश-विदेश के साहित्यकार आश्रय पाते थे। मंगोलों की बर्बरता तथा नृशंसता से पीड़ित होकर सुरक्षा एवं जीविकोपार्जन के हेतु पश्चिमी और मध्य एशिया के अनेक साहित्यकार, विद्वान और लेखक भारत में आ गये थे और उन्हें सुलतानों ने शरण दी। इसलिये दिल्ली दरबार इस्लामी संस्कृति, विद्या, साहित्य का प्रमुख केन्द्र बन गया। सुलतानों के उदार संरक्षण के कारण इस काल में अनेक साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई। सल्तनत काल की महत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धि फारसी भाषा में ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना है। दरबारी इतिहासकारों ने अपने आश्रय दाता सुलतानों के शासनकाल की घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन किया है। उन्होंने सुलतानों, राजसभाओं और युद्धों व विजयों का विशद वर्णन किया है और वह वर्णन भी अतिशयोक्ति पूर्ण हो गया है। इसके अतिरिक्त इन ग्रंथों में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक जनजीवन का वर्णन नहीं है। इस युग के प्रमुख इतिहासकार और उनके ग्रंथ निम्नलिखित हैं:—

मिनसाहा-ए-सिराज की तबकात-ए-नासिरी, हसन निजामी का **ताजुल असीर,** शम्सेसिराज अफीफ का **तरीख-ए-फिरोजशाही,** यहियाबिन अहमद का **तारीख-ए-मुबारकशाही** का इस्लामी का **फतूह-उस-सलातीन,** खुसरो का **तारीख-ए-अल्फी** तथा जियाउद्दीन बर्नी का **तारीख-ए-फिरोजशाही ग्रंथ** विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी इतिहासकारों की शैली प्रशंसात्मक थी। अफीफ की शैली सरल और उसमें वाकपटुता का आभास मिलता है। इन इतिहासकारों के अतिरिक्त अन्य विद्वान भी थे जिनमें अमीर खुसरो और आइन उल-मुल्क मुल्तानी विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। अमीर खुसरो केवल इतिहासकार ही नहीं, अपितु उच्च कोटि का लेखक, विचारक, कवि, गद्य, लेखक, गायक और योद्धा था। खुसरो का वास्तविक नाम मुहम्मद हसन था। और इसका जन्म सन् १२५३ में पटियाला (पंजाब) में हुआ था। इसके पिता एक तुर्की शरणार्थी थे। प्रतिभाशाली कवि और लेखक होने से इसे उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत के तत्कालीन शासक, बलबन के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मदखां की राज सभा में नौकरी प्राप्त हो गयी थी। इसके बाद वह दिल्ली आ गया और यहां बलबन, अलाउद्दीन और गयासुद्दीन तुगलक की राजसभा में रहा। अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने सन्यास ले लिया और सूफी संत निजामुद्दीन औलिया का शिष्य हो गया। यह फारसी में लिखने वाले भारतीयों में सर्वश्रेष्ठ था। साथ ही वह प्रथम मुसलमान लेखक था जिसने अपनी रचनाओं में हिन्दी शब्दों, भारतीय अलंकारों तथा विषय वस्तुओं का वर्णन किया है। उसकी वर्णन शैली अनोखे ढंग की थी। गद्य लिखने में भी वह दक्ष था। परन्तु उसमें स्पष्टता और सरलता का अभाव था उसके प्रमुख गंथ हैं—किरानु

स्सेदिन, मिफ्ता-उल-फुतुह, नूरसिपेहर, खाजान-उल-फुतह व तुगलकनामा । उसके ऐतिहासिक ग्रंथ सन् १२८५ से १३२५ तक की घटनाओं का वर्णन करते हैं। खाजां-उल-फुतह में अलाउद्दीन के शासन के १५ वर्षों का वर्णन है और तुगलकनामा में खुसरो खां के अभ्युदय व पतन का वर्णन है।

अमीर खुसरो के अतिरिक्त मीरहसन देहलवी और बदरुद्दीन भी विशिष्ट लेखक और विद्वान थे। हसन देहलवी खुसरो का समकालीन था । हसन देहलवी भी लाहौर में बलबन के पुत्र मुहम्मद की राजसभा में नौकर था और बाद में दिल्ली आकर मुहम्मद तुगलक की राजसभा में रहा। उसने अपने गुरु निजामुद्दीन औलिया का जीवन वृत्तांत "दीवान" नामक ग्रंथ में लिखा है। देहलवी की रचनाओं में संगीत का पुट अधिक है। मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन होने से वह दौलताबाद चला गया वहीं उसका स्वर्गवास हो गया । बदरुद्दीन (बदर-ए-चच) ताशकंद का निवासी था और उसने मुहम्मद तुगलक के राज्याश्रय में रहकर उसकी प्रशंसा में गीत लिखे। इसकी कविताओं को समझना कठिन है। उसमें कल्पना का बाहुल्य है। आइन-उल-मुल्क मुलतानी का नाम भी उल्लेखनीय है। वह अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक और फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में विद्यमान था और ऊंचे पदों पर-रहा। वह उच्चकोटि का साहित्यकार, विद्वान तथा चतुर व प्रतिभा संपन्न व्यक्ति था। आइन-उल-मुल्की उसका प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक दशाओं का वर्णन है । उसके दूसरे ग्रंथ "इंशा-ए-महरु" में शासकीय कार्यों के पत्रों के नमूने हैं। इस युग के कवियों में हसन संजरी का नाम भी उल्लेखनीय है।

सुलतानों की राजसभा के विद्वान—बलबन की राजसभा में विद्वान लेखकों के अतिरिक्त वैद्य एवं ज्योतिषी भी थे। हकीमों में बदरुद्दीन दमश्की और हसमुद्दीन मारिक विशेष प्रसिद्ध थे। हमीबुद्दीन मुतरिज कलाकार, गणितज्ञ और ज्योतिषी था। मुहम्मद तुगलक की राजसभा में भी अनेक विद्वान, लेखक, साहित्यकार, कवि, तार्किक, दार्शनिक आदि थे। इनमें हसैनी, तलरखीस, और मौलाना मुईनुद्दीन उमरानी विशेष उल्लेखनीय हैं। फिरोज तुगलक की राजसभा के विद्वानों और साहित्यकारों में मौलाना ख्वाजमी, अहमद थाने शरी और काजी अब्दुल मुल्ताबीर शाहनी विशेष प्रसिद्ध थे। अन्तिम विद्वान फारसी और अरबी में कविताएं करता था।

बाद के युग के विद्वानों में जहीर देहलवी जिसे सिकन्दर लोदी ने जहीर की उपाधि प्रदान की थी, "हबीस", "खफीयां", "इर्शाद" और वद-उल-बयान के लेखक काजी शिहाबुद्दीन दौलताबादी, मौलाना हसननसखी, मौलाना अलीअहमद निशान और नूरुलहक विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रांतीय राजधानियों में भी साहित्यकारों और कवियों को राज्याश्रय दिया जाता था। जौनपुर के सुलतान इब्राहीम शर्की का राज्याश्रय प्रसिद्ध रहा है । इससे जौनपुर में मौलवी, विद्वान और साहित्यकार आकृष्ट हुए और वह स्थान इस्लामी विद्या और साहित्य का केन्द्र हो गया।

यद्यपि सुलतानों के फारसी प्रिय विद्वानों को संस्कृत और देशी भाषाओं में कोई अभिरुचि नहीं थी, परन्तु कुछ संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद इस युग में हुआ। अलबरुनी ने जो महमूद गजनवी के समय भारत आया था, संस्कृत का अध्ययन किया और उसने संस्कृत के कुछ ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया। जब फिरोज तुगलक ने नगरकोट पर आक्रमण किया व उसे लूटा तब उसे वहां एक प्रसिद्ध पुस्तकालय प्राप्त हुआ। उसमें ज्योतिष, दर्शन पर एक अनूठा ग्रंथ मिला। फिरोज ने मौलाना इजुद्दीन खालिद खानी के द्वारा इस ग्रंथ का फारसी में अनुवाद करवाया और इसका नाम "दयामल-ए-फिरोजशाही" रखा। सुलतान सिकन्दर लोदी के समय भी संस्कृत में रचे एक चिकित्सा ग्रंथ का फारसी में अनुवाद किया गया था।

संस्कृत साहित्य—यह मानना भ्रममूलक होगा कि मुसलमानों की विजय और शासन से तथा हिन्दुओं के पराभव से हिन्दुओं का मस्तिष्क निष्क्रिय हो गया था, उनमें साहित्यिक प्रतिभा लुप्त हो गयी थी। इसके विपरीत संस्कृत तथा देशज भाषाओं में श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण हुआ। जिन प्रदेशों में मुसलमानों के आक्रमण और इस्लाम धर्म तथा संस्कृति का प्रवेश नहीं हुआ था, वहाँ संस्कृत भाषा का अच्छा विकास हुआ। कुछ राजपूत नरेशों ने संस्कृत के विद्वानों को राज्याश्रय प्रदान किया। धर्म, कर्म, मीमांसा, तथा न्याय दर्शन पर इस युग में कुछ ग्रंथों की रचना हुई। इनमें सायण का वेदों पर भाष्य स्वामी, रामानुज का ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य, जिसमें भक्ति के सिद्धांतों का विवेचन है, पारस सारथी मिश्र का कर्म व मीमांसा पर "शास्त्र दीपिका" ग्रंथ, देवसूरी के तर्कशास्त्र पर ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं। बंगाल में न्याय दर्शन और स्मृतियों पर टीकाएं लिखी गयीं। इस युग में अनेक नाटकों की भी रचना हुई। इनमें जयसिंह का "हम्मीर मद-मर्दन", रवी वर्मन का "प्रद्युम्न अभ्युदय" विद्यानाथ का "प्रताप रुद्र कल्याण" वामन भट्ट का "पार्वती परिणय", गंगाधर का "गंगादास प्रताप विलास" रूपगोस्वामी का "विदग्ध माधव", नैयायिक जयदेव का "प्रसन्न राघव नाटक" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। रूपगोस्वामी ने तो संस्कृत में लगभग पच्चीस ग्रंथों की रचना की है। इस युग का बाहरवीं सदी में लिखा गया "गीत गोविन्द" नामक गीत काव्य भी प्रशंसनीय है। इसका लेखक जयदेव था। इस ग्रंथ में कृष्ण और राधा के प्रेम, विरह और मिलन का तथा बृजगोपियों और कृष्ण की मधुर लीलाओं का सुन्दर वर्णन मधुर और सरल गीतों में है। तेरहवीं से पंन्द्रहवीं सदी तक मिथिला प्रदेश में स्मृति और व्याकरण पर ग्रंथ लिखे गये। मैथिल भाषा का भी खूब विकास हुआ। विद्यापति ठाकुर ने चौदहवीं सदी के अन्त से पंद्रहवीं सदी के प्रारंभ तक संस्कृत, हिन्दी तथा मैथिली भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना की। बारहवीं सदी में खगोलशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान भास्कराचार्य हुए थे। जैन विद्वानों ने भी धार्मिक और लौकिक विषयों पर संस्कृत में ग्रंथ लिखे। दक्षिण भारत में विजयनगर के सम्राटों की राजसभाओं के विद्वानों ने संस्कृत में अनेक ग्रंथ लिखे। राजस्थान में मेवाड़ के विद्यानुरागी राणा कुंभा ने भी संस्कृत के विद्वानों को राज्याश्रय दिया था।

हिन्दी साहित्य—भक्ति आन्दोलन के संतों ने तथा राजपूत नरेशों के राज्याश्रय में रहे विद्वानों ने हिन्दी साहित्य की उन्नति की और उसमें अपने पदों और ग्रंथों की रचना की। यह काल हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक युग था और इसमें वीरता के ग्रंथ लिखे गये। इनमें चन्दबरदाई का "पृथ्वीराजरासो" जगनिक का 'आल्हाखंड' और सारंगधर का "हम्मीररासो" और "हमीर काव्य" तथा अन्य लेखक के "विजय पाल रासो" व 'विसलदेवरासो' विशेष उल्लेखनीय हैं। ये वीररसपूर्ण साहित्यिक ग्रंथ हैं।

वीररस के ग्रंथों के अतिरिक्त इस काल में भक्ति रस के ग्रंथ भी लिखे गये। इनमें कबीर, नानक और मीरा के पदों वाले ग्रंथ प्रंशसनीय हैं। भक्त संतों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य की खूब वृद्धि की। कबीर ने हिन्दी में लगभग बीस-सहस्र पदों की रचना की है। इसके द्वारा कबीर ने हिन्दी को अधिक लोकप्रिय और व्यापक बनाया। हिन्दी का तत्कालीन धार्मिक साहित्य कबीर का ऋणी है। मीरा ने भी कृष्ण भक्ति से ओत-प्रोत अनेक पदों की रचना की। नामदेव, रामानंद, नानक, मलूकदास, दादू आदि अन्य संतों ने भी अपनी पद-रचनाओं से हिन्दी साहित्य के भंडार को अपनी बहुमूल्य भेंट प्रदान की। राधाकृष्ण सम्प्रदाय के आचार्यों ने भी अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्धि शाली बनाया है। सूफी संतों ने भी अपने पदों व ग्रंथों से हिन्दी की श्री वृद्धि की। इनमें जायसी की "पद्मावत" कुतुबन की 'मृगावती', मंझन की "मधुमालती" और मुल्लादाऊद का "चन्दावत" विशेष उल्लेखनीय हैं। तत्कालीन फारसी विद्वान और कवि अमीर खुसरो ने भी हिन्दी में पहेलियों, तथा मुकरियों की रचना की। उसने खालिक बारी नामक एक फारसी हिन्दी कोष भी लिखा है।

बंगला साहित्य—बंगाल प्रदेश में बंगला साहित्य का विकास हुआ। इस युग में बंगला साहित्य में चंडीदास तथा विद्यापति विशेष प्रसिद्ध हैं। राधाकृष्ण के श्रेष्ठ प्रेम में आनन्द विभोर होकर इन्होंने जिन पदों की रचना की है वे बंगला साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। भक्त संत महाप्रभु चैतन्य ने अपने गीतों और भजनों द्वारा तथा उनके अनुयायियों ने भी अपने गीतों, भजनों और अनुवादों द्वारा बंगला साहित्य को अधिक विकसित किया। संस्कृत ग्रंथों का भी बंगला में अनुवाद हुआ। कृत्तिवास ने संस्कृत रामायण का बंगला में अनुवाद किया। यह बहुत ही लोकप्रिय रहा। इसी प्रकार गजाधर बसु ने संस्कृत के भागवत का अनुवाद बंगला में किया। बंगाल के सुलतानों ने भी बंगला साहित्य की अभिवृद्धि में अपना योग दिया। गौड़ के सुलतान नसरतशाह ने रामायण और महाभारत का बंगला में अनुवाद करवाया। सुलतान हुसेनशाह के शासन काल में महाभारत का बंगला में कवीन्द्र परमेश्वर ने अनुवाद किया।

गुजराती साहित्य—गुजरात में भी संतों और भक्तों ने गुजराती भाषा में अपने पदों की रचना की। मीराबाई और नरसिंह मेहता के भक्ति से ओत-प्रोत गुजराती में रचे गये पद विशेष उल्लेखनीय हैं। नरसिंह मेहता ने गुजराती में लगभग सवा लाख पदों की रचना की। वीररस के ग्रंथ भी इस समय गुजराती में लिखे गये। इनमें वीरों के अनूठे कार्यों का और राजपूत नरेशों की कीर्ति का गान है। इन ग्रंथों को 'रास'

कहा गया है। जैन मुनियों ने भी अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये जनसाधारण की भाषा गुजराती में रास लिखे हैं। इनमें जयानन्द सूरी का "क्षोभ प्रकाश" गुणरत्न सूरी का "भारत बाहुबली रास" और विजयभद्र का हंसराज बछराज और शील रास विशेष प्रसिद्ध हैं।

मराठी साहित्य—अन्य प्रांतीय भाषाओं के समान संतों के पदों से मराठी भाषा भी इस युग में समृद्ध हुई। उसमें भी भक्ति वाङ्मय की रचना हुई। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त संत ज्ञानेश्वर ने अपने ग्रंथ ज्ञानेश्वरी से तथा संस्कृत के ग्रंथों का मराठी में अनुवाद कर के मराठी साहित्य का विकास किया। इसी प्रकार एकनाथ, नामदेव तुकाराम आदि संतों ने अपनी रचनाओं से मराठी साहित्य को संपन्न किया। एकनाथ ने संस्कृत ग्रंथों का मराठी में अनुवाद किया। दासोपंत ने "गीतार्णव" और 'पदार्णव' नामक मौलिक ग्रंथ लिखे। मुकन्दराय ने वेदान्त पर ग्रंथ लिखे। तुकाराम ने अपने भक्ति के सिद्धांत अभंग छन्दों में गाये। महाराष्ट्र के घर-घर में गाये जाने वाले ये अभंग मराठी की अमर निधि हैं।

दक्षिण में साहित्यिक प्रगति—दक्षिण भारत मे हिन्दू नरेशों ने संस्कृत भाषा और उनकी प्रांतीय भाषाओं को प्रोत्साहन दिया। इससे दक्षिण भारत में तैलगू, तामिल और कन्नड़ भाषाएं विकसित हुईं। मुसलमानों के आतंक और अत्याचारों से दक्षिण के राज्य दूर होने से वहां साहित्यिक सृजन और विकास को खूब प्रोत्साहन और राज्याश्रय मिला। विजयनगर राज्य साहिस्यिक गतिविधियों का केन्द्र था। वहां के नरेश साहित्यानुरागी और विद्या के उदार संरक्षक थे। विजयनगर के राजा हरिहर की राजसभा में प्रसिद्ध विद्वान सायण रहता था जिसने वेदों पर टीकाएं लिखी हैं। विजयनगर के एक अन्य नरेश तथा उसके मंत्री ने "शिवागमस्त्रोत्र" की रचना की। विजयनगर नरेश कृष्णदेवराय ने स्वयं विद्वान होने से "अमुक्त माल्यद" काव्य ग्रंथ की रचना की। उसने तैलगू व संस्कृत को प्रोत्साहन दिया। उसके राज कवि अल्लसनी पेद्दन ने "स्वारोचिस मनु चरित्र" ग्रंथ लिखा जो मार्कण्डेय पुराण की एक कथा पर आधारित है। जैन मुनियों ने कन्नड़ भाषा में अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ ग्रंथों की रचना की। उन्होंने धार्मिक और लौकिक साहित्य का सृजन किया।

उर्दू का प्रादुर्भाव—दिल्ली सुलतानों का युग उर्दू भाषा के प्रादुर्भाव और विकास का काल माना जाता है। विदेशी तुर्कों, सैनिकों तथा मध्यएशिया के विभिन्न देशों से आये विद्वानों व साहित्यकारों तथा हिन्दुओं के समागम से सल्तनत युग में एक नवीन भाषा का प्रारंभ हुआ जिसे "जबान-ए-हिन्दी" कहा जाने लगा। इस्लाम के अनुयायी विदेशी शासक, सैनिक और सामन्तों तथा यहां के निवासियों के पारस्परिक संपर्क के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता थी जिसे ये सब लोग समझ सकें; जिसे शासक और शासित वर्ग के लोग संपर्क भाषा मान सकें। फलतः "जबान-ए-हिन्दी" का प्रादुर्भाव हुआ। यह पश्चिमी हिन्दी का ही एक रूप था जो सदियों से दक्षिण-पंजाब, मेरठ और दिल्ली के क्षेत्र में बोली जाती थी। कालान्तर में इसे "उर्दू" कहा

जाने लगा। उर्दू से अभिप्राय है लश्कर या सेना। जिस प्रकार सेना में विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों का समूह और संगठन होता है, उसी प्रकार उर्दू में भी अरबी, फारसी और हिन्दी के शब्दों का सम्मिश्रण हुआ है। यद्यपि उर्दू की लिपि विदेशी रही है, परन्तु उसके व्याकरण का ढांचा हिन्दी का ही रहा है। विदेशियों के प्रभाव से उसकी लिपि विदेशी रही, पर भाषा में वह हिन्दी से मिलती-जुलती रही। धीरे-धीरे अनेकानेक विदेशी शब्दों का भारतीयकरण होता गया और वे उर्दू भाषा में आत्मसात कर लिये गये। हिन्दू मुस्लिम संपर्क और समन्वय का प्रतीक उर्दू भाषा और उसका विकास है। अमीर खुसरो प्रथम विद्वान था जिसने इस भाषा में अपने विचार व्यक्त किये। इससे उसे उर्दू का प्रथम कवि भी माना गया है। दिल्ली के शासकों, प्रांतीय सूबेदारों तथा दक्षिण भारत के मुस्लिम राज्यों में उर्दू को राज्याश्रय मिलने के कारण तथा जनसाधारण की संपर्क भाषा हो जाने से उर्दू का महत्व बढ़ गया। इससे बाद में उसमें साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई। दिल्ली के तुर्की सुलतान फारसी प्रिय होने से उन्होंने उर्दू को विशिष्ट राजकीय संरक्षण और प्रोत्साहन नहीं दिया। परन्तु कुछ साहित्यकारों ने जैसे खुसरो, हसन देहलवी, जायसी आदि ने उर्दू को अपनाया था।

इस काल की समस्त साहित्यिक गतिविधियों और रचनाओं का सर्वेक्षण करने पर विदित होता है कि इस युग में उच्चकोटि के साहित्यकारों व विद्वानों का अभाव रहा। यह युग तो साहित्यिक प्रस्तावना का काल रहा जिसका बहुमुखी विकास मुगल काल में हुआ।

कला

सल्तनत काल में कला का सीमित विकास हुआ। केवल प्रमुख रूप से भवन-निर्माण कला को ही राज्याश्रय प्राप्त हुआ। सल्तनत काल में कला के विकास के दो स्वरूप हैं। प्रथम, अन्य क्षेत्रों के समान कला में भी एकीकरण और समन्वय की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई और धीरे-धीरे इसका विकास हुआ। हिन्दू स्थापत्य कला शैली और मुस्लिम शासकों द्वारा भारत में लाई गयी विदेशी शैली का समन्वय हुआ जिसमें हिन्दू कला शैली के प्रभाव का बाहुल्य रहा। द्वितीय, इस नवीन शैली के अन्तर्गत दिल्ली सुलतानों और प्रांतीय शासकों ने भवन, राजप्रासाद और मसजिदें निर्मित कीं। प्रांतों और उनकी राजधानियों में स्थानीय हिन्दू कला का प्रभाव अधिक रहा। इससे नवीन प्रांतीय स्थापत्य कला शैलियों का सूत्रपात और विकास हुआ।

हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैलियों की विशेषताएँ—अरब, तुर्क, अफगान और पठान शासक मध्यएशिया और पाश्चिमी एशिया से आये थे। वहां भवनों का निर्माण हुआ और विशिष्ट शैली का विकास हुआ था। इस स्थापत्य शैली को ये विदेशी शासक अपने साथ भारत में ले आये थे। इन विदेशी शासकों के देशों में शुष्क रेगिस्तान थे जहां हरे-भरे लहलहाते खेतों का अभाव था। वहां पेड़ों, पौधों और वनस्पति की रंगीनता और विविधता नहीं थी। जीवन भी कठोर, परिश्रमी और सादा था। इसलिये यहां के प्राकृतिक वातावरण और इस्लाम के अनुरूप भवनों का निर्माण हुआ।

इस्लाम धर्म और उसकी व्यावहारिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भवन निर्माण किये गये। फलतः यहाँ के भवनों की विशेषताएँ थीं—सुरक्षा की दृष्टि से विशाल भवन, भीतर खुले आंगन और चतुर्दिक बरामदे, ऊंटों और पशुओं के आने जाने के लिये ऊंचे दरवाजे, अजान के लिये ऊंची मीनारें, गोल चपटे गुंबद और सादी दीवारें। इस्लाम की एकेश्वरवादी कट्टरता की अभिव्यंजना मीनारों की ऊंचाई और पतलेपन में, चपटे गोलगुंबदों की सरलता में, इस्लाम की सादगी का प्रतिबिम्ब विशाल भवन और उसकी दीवारों की सादगी में हुआ। वहाँ आकर्षक अलंकरण, नक्काशी का अभाव था इसके विपरीत भारत में विस्तृत हरे-भरे मैदान, विशाल पर्वत श्रेणियां, उपत्यकाएं, सरिता, सरोवर, वन, विविध वनस्पति, पशु-पक्षी आदि रहे हैं। प्रकृति की विविधता और बहुरंगीनता रही है। भारतीय स्थापत्य कला का ऐसे सुन्दर वातावरण में विकास हुआ।

इसलिये भारतीय भवनों में भव्यता, विशालता, विविधता, शिखरों की ऊंचाई, महराबों, दीवारों और स्तम्भों की नक्काशी और खुदाई विशेष उल्लेखनीय है। देश के विविध पेड़ों, लताओं और पुष्पों से प्रभावित होकर कलाकारों ने भवनों को अलंकृत किया। सजावट और अलंकरण भवनों की विशेषता हो गयी। बहुदेववाद को मानव और देव प्रतिमाओं में उनके रूपों और सजावट की विभिन्नता में अभिव्यक्त किया गया। इस प्रकार मुस्लिम स्थापत्यकला सरल और सादगीपूर्ण थी। उसमें गोल-गुंबदों, धनुषाकार महराबों, ऊंचे स्तभों, और दरवाजों व मीनारों की बाहुल्यता थी। हिन्दू कला में शिखरों, नक्शी युद्ध स्तभों की पंक्तियों, पाटों, और अलंकरण की प्रधानता थी। प्रसाधन और अलंकरण भारतीय शिल्प के रोम-रोम में समाये हुए थे।

हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला शैलियों का समन्वय—भारत में राजपूत युग में अनेक दुर्गों, राजप्रासादों और मंदिरों का निर्माण हुआ। विविध प्रकार की देव प्रतिमाएं भी बनायी गयी थीं। जब सुलतान महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किये तब वह यहां के भव्य मंदिरों, विशाल भवनों और कलात्मक प्रतिमाओं को देखकर आश्चर्यचकित रह गया था। भारतीय कला स्थापत्य कला की सौन्दंयता, अलंकरण, और विशालता से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ था। तेरहवीं सदी के प्रारंभ में जब दिल्ली में मुस्लिम राज्य स्थायी रूप से स्थापित हो गया, तब सुलतानों ने भवन-निर्माण की ओर ध्यान दिया। परन्तु इसमें उनकी तीन समस्याएं थीं। प्रथम वे निरन्तर विद्रोहों के दमन और युद्धों में इतने अधिक संलग्न रहे कि उन्हें इतना अवसर नहीं मिल पाया कि वे उच्चकोटि की श्रेष्ठ कला कृतियों का निर्माण करते। द्वितीय, दिल्ली के शासक सैनिक विजेताओं के रूप में भारत में आये थे। उनके सहयोगियों और सैनिकों में श्रेष्ठ कलाकारों और शिल्पियों का नितांत अभाव था। उच्च कलात्मक आदर्शों और प्रवृत्तियों वाले शिल्पी उनके पास नहीं थे। अतएव विवश हो उन्हें भारतीय शिल्पियों का आश्रय लेना पड़ा और उनकी सहायता व सहयोग से निर्माणकार्य किये। तृतीय, उनके पास विशाल भवनों के निर्माण के लिये प्रचुर यथेष्ठ भवन सामग्री का अभाव था। चतुर्थ, वे नमाज और धार्मिक कार्यों के लिये सर्व प्रथम मसजिदों का निर्माण करना चाहते थे। क्योंकि उस समय मसजिदों का अभाव था।

इस प्रकार परिस्थिति के कारण दिल्ली सुलतानों ने मसजिदों, मकबरों और दुर्गों को जो बाह्य आक्रमणकारियों से राज्य की सुरक्षा के लिये आवश्यक थे, निर्माण किया। प्रचुर संख्या में शीघ्र मसजिदों के निर्माण के लिये उन्होंने हिन्दुओं के मंदिरो और देवालयों के शिखरों को तोड़कर उनके स्थान पर गोलगुंबद उनकी सामग्री से ही बना दिये। मूर्तियों को तोड़-फोड़, कर हटाकर नमाज के लिये बीच में विस्तृत आँगन बनाकर शीघ्र ही मंदिरों को मसजिदों में परिवर्तित कर दिया गया। कुछ मंदिरों का अलंकरण और बाह्य दीवारें वैसी ही रहीं। कुछ विशाल प्रसिद्ध मंदिरों को भूमिसात कर उनके ही भग्नावशषों पर उनकी ही सामग्री से, हिन्दू शिल्पियों की सहायता से मसजिदें निर्मित कीं। कुछ स्थानों पर नवीन मसजिदें बनायी गयीं और नवीन राजप्रासाद बनाये गये। इनमें कुशल, अनुभवी हिन्दू शिल्पियों की सेवाएं प्राप्त की गयीं। इन शिल्पियों ने अपने नवीन मुस्लिम शासकों और स्वामियों की धार्मिक रुचि के अनुकूल मसजिदों, राजप्रासादों और भवनों का निर्माण किया। इसलिये सल्तनत काल के प्रारंभिक भवनों और मसजिदों की कला में कठोर अनुशासनपूर्ण, धार्मिक विचारों के सादृश्य रखने वाली सरलता आ गयी। इन भवनों में विशालता तो थी, पर अलंकरण और सजावट का अभाव था। परन्तु धीरे-धीरे समन्वय, एकीकरण और सहानुभूति की विचारधाराओं के विकास के परिणामस्वरूप इन मुस्लिम भवनों और मसजिदों की कला शैली में परिवर्तन होता गया। हिन्दू शिल्पियों और कलाकारों में समय एवं परिस्थिति के अनुकूल आवश्यक परिवर्तन करने की क्षमता थी। इसलिये, उन्होंने अपने नवीन मुस्लिम स्वामियों की धार्मिक रुचि व आवश्यकताओं तथा राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल परिस्थिति वश, भवन और मसजिदें बनायीं। उन्होंने विदेशी विचारों व कला के कुछ तत्वों को अपनाते हुए इन निर्माण कार्यों में अपनी कला के अनुसार ही सृजन कार्य किये। विचार विदेशी थे, कला भारतीय थी। इस प्रकार से सल्तनत काल में एक नवीन स्थापत्य कला शैली विकसित हुई। इसका प्रादुर्भाव परिस्थितियों की देन स्वरूप हुआ था। इसे "इंडो सरासीनिक" (Indo-Saracenic) कला या हिन्दू-मुस्लिम कला कहते हैं। इस कला के अंगों और उस पर हुए हिन्दू कला के प्रभाव को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद हो गया। फरग्युसन इस कला को "पठान कला" कहते हैं। वह इस कला में मुस्लिम कला की प्रधानता मानता है। इसके विपरीत हैवल का मत है कि इस युग की स्थापत्य कला पूर्णतया भारतीय रही जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्गों की कला का सुन्दर सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। मुसलमानों की कला पर हिन्दू कला शैली का गहरा प्रभाव पड़ा। हैवल के अनुसार हिन्दू शिल्पियों ने विदेशी कला के विचारों को नहीं अपनाया। फलतः इस युग की कला के मूलभूत विचार और शैली विदेशी न होकर विशुद्ध भारतीय है। हिन्दू कला ने विदेशी मुस्लिम कला को आत्मसात कर लिया। सर जान मारशल का मत है कि हिन्दू कलाकारों और शिल्पियों ने मुस्लिम आक्रांताओं और उनकी कला को प्रभावित किया। हिन्दू कला मे बौद्ध, जैन और हिन्दू कलातत्व सम्मिलित थे और इस सम्मिलित कला शैली ने मुसलमानों द्वारा भारत में लायी गयी मध्यएशिया, अरब और उत्तरी अफ्रिका की कला शैलियों

से समन्वय किया । इन सबका सम्मिश्रण सल्तनत काल की स्थापत्य कला में हुआ और नवीन भवनों का निर्माण हुआ ।

सत्य तो यह है कि इस युग में हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला शैलियों का समन्वय हुआ जिसमें हिन्दू कला का प्रभाव गहरा था । भारतीय कला के सम्मुख विदेशी कला ने स्वेच्छा से अपना मस्तक झुका लिया । उसने कट्टर इस्लामी विचारधाराओं के होने पर भी हिन्दुओं के उच्च कलात्मक आदर्शों को अपना लिया । मुस्लिम सुलतानों ने प्राय: हिन्दू मंदिरों और भवनों की विध्वंस सामग्री का उपयोग करके हिन्दू शिल्पियों से ही मस्जिदें, भवन और राजप्रासाद बनवाये । इससे हिन्दू कला का प्रभाव उनकी कलाकृतियों पर पड़े बिना नहीं रह सका । मुस्लिम शासक और निर्माणकर्ता उन हिन्दू कला परम्पराओं के प्रभाव से नहीं बच सके जो उनके चारों ओर प्रचलित थी । उनके भवनों में हिन्दू कलात्मक अलंकरण आ गया । मुस्लिम कला में अलंकारिक प्रवृत्तियों का एवं विविधतामय शैली का समावेश हो गया । मुस्लिम भवनों में विविध रंग के पाषाणों का श्वेत, संगमरमर का उपयोग होने लगा । मुस्लिम गोल-गुंबद की सरल कर्कशता को हिन्दू कलश ने दूर कर दिया । गुँबदों पर फूल पत्तियों युक्त पाषाण के या स्वर्ण के कलश लगने लगे । महराबों की नक्काशी में हिन्दू अलंकरण की शैली अपनायी गयी, दरवाजों और स्तंभों पर अलंकरण नक्काशी के रूप में होने लगा । मुसलमानों ने हिन्दुओं से भवनों तथा उसके विविध भागों को उचित अनुपात से बनाने की कला अपना ली जिससे मुस्लिम भवनों में सुन्दरता, सुडौलपन (Symmetry) आ गया । यदि हिन्दू कला शैली के प्रभाव के ये उदाहरण हैं तो मुसलमानों ने भी हिन्दू कला में गुंबद, मीनार और मेहराब जोड़ दिये । कभी-कभी मुस्लिम भवनों में मेहराबों और विशाल दरवाजों पर कुरान की आयतों को अथवा ऐतिहासिक लेखों को अंकित किया गया । प्रांतों में मुस्लिम भवन निर्माण में हिन्दू शिल्पियों ने अपनी ही शैली का अनुकरण किया और उनके मुस्लिम स्वामियों ने उनके कार्यों में कोई बाधा नहीं डाली । इससे जौनपुर, बंगाल, गुजरात, मालवा, दक्षिण भारत में वहां की प्रांतीय कला शैलियों का विकास हुआ जिसमें स्थानीय कला का अधिक प्रभाव था ।

दास सुलतानों के समय के भवन

सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक कला प्रेमी था और कलात्मक विकास के लिए जागरूक था । कुतुबुद्दीन की प्रसिद्ध इमारत और सल्तनत युग की सबसे प्राचीन कलाकृति कुतुबमीनार है । यह ७४½ मीटर ऊंची है और अरब में बगदाद के समीप वाले स्थान के कुतुबुद्दीन संत की स्मृति में निर्मित की गयी । इसका प्रारंभ कुतुबुद्दीन के शासनकाल में हुआ तथा इल्तुतमिश ने इसे पूर्ण कराया । इस मीनार के समीप ही तत्कालीन विशाल विष्णु मदिर को ध्वंस कर उसके भग्नावशेषों पर कुव्वत-उल-इस्लाम नामक मस्जिद भी बनायी गयी । इस मीनार और मस्जिद में विध्वंस हुए, हिन्दू भवनों और मंदिर की सामग्री का उपयोग हिन्दू शिल्पियों से मुस्लिम शासकों द्वारा कराया गया । इससे इन पर हिन्दू प्रभाव स्पष्ट है । इनका अलंकरण भी हिन्दू शैली का है । फिरोज तुगलक के शासनकाल में बिजली गिरने से इसकी चौथी मंजिल टूट गयी । पर फिरोज

ने इसके स्थान पर दो छोटी-छोटी मंजिलें बनवा दीं। इसके बाद फिर सन् १५०३ में मीनार के ऊपरी भाग की मरमम्त करवायी गयी। इस मीनार में देवनागरी लिपि के कुछ अभिलेखों, हिन्दू अलंकरण तथा अन्य तत्वों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे राजपूत नरेश द्वारा निर्मित हिन्दू मीनार बतलाया है। सन् १२०० में कुतुबुद्दीन ने अजमेर में ढाई दिन में एक मंदिर व संस्कृत विद्यालय को विध्वंस कर उसके भग्नावशेषों पर एक मस्जिद बनायी जिसे "अढ़ाई दिन का झोपड़ा" कहा जाता है।

कुतुबुद्दीन के बाद सुलतान इल्तुतमिश ने बदायूं में एक मस्जिद बनायी। उसकी अन्य इमारतों में हिन्दू शैली का सुलतान गढ़ी नामक मकबरा, शम्सी ईदगाह और हौजे शम्सी विशेष प्रसिद्ध हैं। उसने कुबतुल-इस्लाम मस्जिद में कला पूर्ण अनूठा पाषाण का पर्दा लगवाया। कुतुबमीनार के समीप ही इल्तुतमिश का मकबरा भी है जो भारत में लाल पाषाण का अपने ढंग का मकबरा है। रजिया तथा बलबन के मकबरे दास वंश के अन्य भवन हैं। बलबन का मकबरा दिल्ली में किलाराय पिथौरा के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यह बहुत साधारण भवन है। निरन्तर मंगोल आक्रमणों का सामना करने से तथा विद्रोहों का दमन करते रहने से बलबन को नवीन भवन बनाने के अवसर ही नहीं मिले। फिर भी दिल्ली में उसने लाल महल बनवाया। सीमांत क्षेत्र में सुरक्षा के हेतु उसने कुछ दुर्ग अवश्य निर्मित किये थे परन्तु इनका कलात्मक महत्व नहीं है।

दास वंश के समय की स्थापत्य कला सरल तथा धार्मिक भावनाओं से पूर्ण थी। इसमें इस्लाम धर्म की प्रधानता और सरलता का सौन्दर्य तथा मुस्लिम कलाशैली के तत्वों का बाहुल्य है। दासवंश की इमारतें सादी, सुडौल और चित्ताकर्षक हैं पर उनमें अलंकरण का अभाव है।

खिलजी सुलतानों के भवन

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने अनेक दुर्ग, महल, भवन और तालाब बनवाये। सन् १३०३ में अलाउद्दीन ने राय पिथौरा दुर्ग से लगभग तीन किलोमीटर दूर सीरीगांव में "सीरीदुर्ग" बनवाया। चूने और पाषाण से इसकी दीवारें दृढ़ बनायी गयी थीं और किलेबंदी की गयी थी। बर्नी के अनुसार इस दुर्ग की नींवों व दीवार में और इसके हजार सितून महल में सहस्रों मंगोलों के मस्तक काट कर चुन दिये गये थे। इसी दुर्ग में उसने एक हजार स्तंभों वाला राजभवन निर्माण किया था। जिसे "हजार सितून" कहा जाता है। पर अलाउद्दीन की सर्वोत्कृष्ट कृति "अलाई दरवाजा" है जो कुतुबमीनार के समीप बना है। इसमें हिन्दू अलंकरण शैली का अनुकरण कर पाषाण में अधिक नक्काशी की गई है जिससे दरवाजा मनोरम और आकर्षक बन गया है। इसी से इसे इस्लामी स्थापत्य का सर्वश्रेष्ठ सुरक्षित रत्न भी कहा गया है। अलाउद्दीन की अन्य कलाकृतियां "हौज अलाई" और "हौज खास" हैं। ये तालाब थे। निजामुद्दीन औलिया के मकबरे के समीप उसकी बनायी हुई जमैयतखाना मसजिद भी है।

खिलजी शासनकाल तक सुलतानों के भवनों में अत्यधिक अलंकरण का अभाव है। इसमें सौन्दर्य का स्थान सरलता ने ले लिया। इसके बाद कला में परिवर्तन

होता है। इसलिए खिलजी शासन काल तक इस्लामी स्थापत्य कला का प्रथम चरण समाप्त हो जाता है।

तुगलक सुलतानों के भवन

तुगलक सुलतानों के शासनकाल में मुस्लिम स्थापत्य कला का द्वितीय चरण प्रारंभ होता है। इस युग में और विशेषकर फिरोजशाह के शासनकाल में भवन-निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। सुलतान मुहम्मद तुगलक अपने काल के विद्रोहों और योजनाओं में उलझा होने के कारण स्थापत्य कला की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। फिर भी उसने आदिलाबाद दुर्ग, हजार सितून महल व सैनिक छावनियां निर्मित कीं और "जहांपनाह" नामक नगर की नींव डाली। मुहम्मद तुगलक का उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक कला प्रेमी और महान निर्माता था। उसे भवन निर्माण कला में अत्यधिक अभिरुचि थी। उसने अपने नगरों, भवनों, मस्जिदों, जलाशयों, उद्यानों, नहरों आदि का निर्माण करवाया। उसने भवन-निर्माण कार्य को व्यवस्थित रूप दिया। सर्वप्रथम "दीवान-ए-विजारत" विभाग में भवन-निर्माण की योजनाएँ प्रस्तुत की जाती थीं। वहां उन पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार-विनिमय करके उन्हें कार्यान्वित करने की स्वीकृति दी जाती थी। इसके अतिरिक्त तकनीकी सहयोग व परामर्श के लिए, निर्माण कार्यों को यथाविधि संपन्न करने के लिए फिरोज तुगलक ने मलिक गाजी और अब्दुल हक नामक दो प्रधान शिल्पियों को नियुक्त किया था। फिरोजशाह ने जौनपुर, फिरोजाबाद, फतहाबाद, हिसार आदि नगरों का निर्माण किया। उसने अनेक तालाब बनवाये और पुराने भवनों तथा जलाशयों का जीर्णोद्धार करवाया। उसने हौजखास, खांजहां का मकबरा और काली मस्जिद निर्माण की। कबीरुद्दीन औलिया की समाधि जो लालगुंबद के नाम से प्रख्यात है, इसी काल की कलाकृति है। गयासुद्दीन तुगलक द्वारा निर्मित तुगलकाबाद का नगर और उसमें तुगलकशाह का मकबरा भी इसी तुगलक काल की रचनायें हैं। यह नगर अपनी सुदृढ़ता और विशालता के लिये प्रसिद्ध है और यह मकबरा तुगलक काल की शैली का सर्वश्रेष्ठ नमूना भी है। सुलतान फीरोजशाह के दुर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारियों के शासनकाल में स्थापत्यकला का विकास नहीं हुआ और न कोई भवन विशिष्ट हा निर्मित हुए।

फिरोज तुगलक कट्टर धर्म निष्ठ और सादगीप्रिय सुलतान था। इसलिये तुगलक काल की स्थापत्य कला शैली में सरलता, सादगी, कर्कशता और निराशा का आभास है। उस समय इमारतों के अलंकरण व सजावट की ओर ध्यान नहीं दिया गया। तैमूर के आक्रमण से स्थापत्य कला को गहरा आघात पहुंचा। तत्कालीन दिल्ली के भव्य भवनों की कला से वह आश्चर्यचकित हो गया और लौटते समय वह दिल्ली से बहु संख्यक चतुर और अनुभवी भारतीय शिल्पी अपने साथ समरकन्द ले गया जहां उसने उन शिल्पियों से प्रसिद्ध "जाम-ए-मसजिद" निर्मित करवायी। तैमूर के आक्रमण से कई शिल्पी बिदेश चले गये और धन संपत्ति इतनी अधिक लूटी और नष्ट की गयी कि भवनों के निर्माण पर व्यय करने को धन का अभाव आ गया था।

सैयद और लोदी सुलतानों के भवन

अव्यवस्था और धन के अभाव में सैयद और लोदी सुलतान स्थापत्य कला को प्रोत्साहित नहीं कर सके। भवन और मसजिदें प्रचुर संख्या में निर्माण नहीं कर सके। फिर भी कुछ मसजिदें और मकबरे निर्मित किये गये। इस निर्माण में सामन्तों का सहयोग अधिक था। इस युग के भवनों में विशेष उल्लेखनीय हैं। सिकन्दर लोधी द्वारा निर्मित मोती मसजिद, बड़े खां और छोटे खां की समाधियाँ, बड़ा गुम्बद, शहाबुद्दीन-ताजखां की समाधि, दादी का गुम्बद और पोली का गुंबद। ये सब समाधियां और छोटे मकबरे हैं। मसजिदों में मोठ की मसजिद वर्णनीय है। पर इस युग की सर्वश्रेष्ठ कला-कृति सिकन्दर लोदी का मकबरा है जिसे सुलतान इब्राहीम लोदी ने निर्मित करवाया था। इस मकबरे के गुंबद के भीतरी भाग के अलंकरण तथा प्रवेश द्वार पर हिन्दू कला का गहरा प्रभाव है। इसी मकबरे में रंगबिरंगे खपरेलों का उपयोग किया गया है। पाषण में नक्काशी और अलंकरण की, रंगबिरंगे खपरेलों और पाषाण की जो कला इस युग में प्रारंभ हुई, उसका समुचित विकास मुगल युग में हुआ।

विभिन्न प्रांतों में स्थापत्य कला शैली का विकास—जैसा ऊपर वर्णित है, विभिन्न प्रादेशिक शासकों के प्रोत्साहन से प्रांतीय स्थापत्य कला शैलियों का विकास हुआ और उसके अन्तर्गत कई भवन निर्मित किये गये। स्थानीय कलात्मक प्रवृत्तियों में भिन्नता होने से प्रत्येक प्रांत की अपनी विशिष्ट कला शैली हो गयी। इन प्रांतीय शैलियों और उनके भवनों का वर्णन अधोलिखित है—

मुलतान—इस प्रांत में मुसलमानों का आधिपत्य अन्य प्रांतों की अपेक्षा पहिले हुआ और यह प्रांत सदियों तक मुसलमानों के अधीन रहा। इसलिये वहां विदेशी मुस्लिम कला शैली के अनुसार निर्मित मसजिदें और मकबरे हैं। यहां की सबसे प्राचीन इमारतें हैं, दो मसजिदें, प्रथम मसजिद मुहम्मदबिन कासिम ने बनवायी थी और द्वितीय आदित्य (सूर्य) के मंदिर के भग्नावशेषों पर बनवायी गयी थी। इसके बाद कुछ मकबरे विशेष उल्लेखनीय हैं. जैसे सन् ११५२ में निर्मित शाह यूसुफ उल-गर्दजी का मकबरा, बहोलक का मकबरा और सन् १२७४ में निर्मित शम्स-उद्दीन (शम्से तब्रीज) का मकबरा, और सन् १३२०से१३२४ की अवधि में गयासुद्दीन तुगलक द्वारा नर्मित रुकनेआलम का मकबरा।

काश्मीर—यहां पाषाण और लकड़ी के भवन और मंदिर बनाने की हिन्दू शैली प्रचलित थी। यहां के सुलतानों ने इस शैली को अपनाकर उसमें मुस्लिम कला के कुछ विषयों और स्वरूप को सम्मिलित कर लिया और मसजिदें व भवन बनाये। इनमें हिन्दू मुस्लिम कला का समन्वय हुआ। श्रीनगर में मन्दिनी का मकबरा, जाम-ए-मसजिद जिसे काश्मीर के शासक सिकन्दर बुतशिकन ने बनवाया था, और बाद में जैनुल अबीदीन ने परिवर्द्धित करवाया था और श्रीनगर में काष्ठ की बनी हुई शाह हमदान मसजिद काश्मीर शैली के नमूने हैं।

बंगाल—बंगाल के मुस्लिम शासकों ने भवन और मसजिदें निर्माण कीं। इन इमारतों की चार प्रमुख विशेषताएं हैं—(१) छोटे स्तम्भों पर नुकीली मेहराबें, (२) हिन्दू मन्दिरों की शैली से वक्र रेखाओं द्वारा सुन्दर अलंकरण, (३) अलंकरण

और सजावट के लिये कमल आदि सांकेतिक हिन्दू आकृतियां, (४) ये इमारतें प्रमुखतया ईंटों की बनी हुई हैं, पाषाण का उपयोग नगण्य है। बंगाल की इस कला शैली की विशेष उल्लेखनीय इमारतें हैं—जफरखां गाजी का मकबरा और मसजिद, सिकन्दरशाह द्वारा निर्मित पाण्डुआ की अदीना मसजिद, जलालुद्दीन का मकबरा, लोटन मसजिद, बड़ा सोना मसजिद, छोटा सोना मसजिद और नसरतशाह द्वारा निर्मित कदम रसूल मसजिद। ईंटों की सुन्दर कलापूर्ण इमारतों में गौड नगर का दक्षिण दरवाजा और महल हैं। अलंकरण की दृष्टि से ये इमारतें श्रेष्ठ कलाकृतियां नहीं हैं।

जौनपुर—यहां के शर्की शासकों के राज्याश्रय में स्थापत्य कला को खूब प्रोत्साहन मिला। इससे यहां कई भवन निर्मित हुए। उसमें हिन्दू-मुस्लिम कला-शैलियों का सुन्दर समन्वय हुआ। जौनपुर स्थापत्य शैली की विशेषता है– भारी ढालू दीवारें, वर्गाकार स्तंभ, छोटे गलियारे, सरल कलापूर्ण मेहराबें, प्रवेश द्वारों और दीवारों पर बने आले (Nitches) आदि। इससे जौनपुर शैली कोमल, विशाल और प्रभावोत्पादक हो गयी। इसकी प्रसिद्ध कलाकृतियां हैं– इब्राहीम शाह शर्की द्वारा निर्मित अताला मसजिद, हुसेनशाह द्वारा निर्मित जाम-ए-मसजिद, लाल दरवाजा मसजिद जहांगीरी मसजिद आदि। अताला मसजिद हिन्दू-मुस्लिम कला-शैली के सम्मिश्रण का श्रेष्ठ नमूना है। जौनपुर शैली में हिन्दू कला-शैली का अधिक प्रभाव है।

मालवा—मालवा की प्राचीन राजधानी धार में राजाभोज के सरस्वती मंदिर को विध्वंस कर उसमें बनाई मसजिद, और परमार राजपूत नरेश के सूर्य महल के भग्नावशेषों पर निर्मित लाट मसजिद कलापूर्ण है। इनमें हिन्दू शैली के अत्यधिक कलापूर्ण स्तभों की प्रधानता है। धार में ही सूफी सन्त कमालुद्दीन का मकबरा भी है। इसमें भी हिन्दू शैली है। परन्तु धार के समीप लगभग ३४ किलो मीटर दूर मांडू में विशुद्ध मुस्लिम स्थापत्य शैली के कलापूर्ण भवन हैं। इन भवनों में जामा मसजिद, हुसैनशाह का मकबरा, हिंडोला महल, जहाज महल, अशरफी महल, बाजबहादुर का महल विशेष प्रसिद्ध हैं। हिंडोला महल और अशरफी महल प्राचीन राजपूत राजमहलों के अवशेषों पर निर्मित हुए हैं।

गुजरात—मुस्लिम शासन के पूर्व ही यहां हिन्दू और जैन स्थापत्य कला पूर्ण विकसित रूप में प्रचलित थी। गुजरात के मुस्लिम शासकों ने इस जैन हिन्दू भवन निर्माण कला को अपनाया और उसे अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। इसमें मुस्लिम शैली के कुछ भाग मिला लिये गये। इस शैली की विशेषता है—काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी, पाषाण में काटी गयी जालियां, पाषाण के सुन्दर झरोखे और प्रचुर अलंकरण व सजावट। गुजरात शैली हिन्दू मुस्लिम कला शैलीयों के पारस्परिक समन्वय का सुन्दर उदाहरण है। इस शैली की प्रमुख कलाकृतियाँ हैं— सन् १४११ में अहमदशाह द्वारा निर्मित अहमदाबाद की जामा मसजिद, इसमें पन्द्रह गुंबज हैं जो दो सौ स्तंभों पर आधारित हैं, अहमदशाह का सुन्दर मकबरा, मुहफिजखां की मसजिद,

दक्षिण में बहमनी सुलतानों के भवन—उत्तरी भारत की भांति दक्षिण चांपानेर में महमूद बेगड़ा की मसजिद, तथा अहमदाबाद, खंभात, और चांपानेर की अन्य मसजिदें और मकबरे इन इमारतों में हिन्दू कला का सौन्दर्य, पूर्णता और ओज है। भारत में भी बहमनी सुलतानों ने अनेक मसजिदों, मकबरों, भवनों, जलाशयों, राजप्रासादों आदि का निर्माण किया। वहां के सुलतान भी कलाप्रिय थे। उन्होंने स्थापत्य कला की एक विशिष्ट शैली प्रारंभ की जिसमें हिन्दू, तुर्की, मिश्री और ईरानी कला तत्वों का सम्मिश्रण था। गुलबर्गा तथा बीदर की मसजिदें इसके उदा-हरण हैं। गुलबर्गा के फिरोजशाह के मकबरे में हिन्दू कला प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार बीजापुर में भी दक्षिणी स्थापत्य कला के सुन्दर श्रेष्ठतम नमूने पाये जाते हैं। बीजापुर में मुहम्मद आदिलशाह का मकबरा जो गोल गुंबद के नाम से प्रसिद्ध है एक विशिष्ट शैली का उदाहरण है और उसमें तुर्की स्थापत्य शैली के तत्वों की प्रधानता है। बीदर में बने भवनों में इस शैली का अनुकरण किया गया है। बहमनी सुलतानों की अधिकांश इमारतें विध्वंस्त हिन्दू मन्दिरों और भवनों की सामग्री से बनायी गयी हैं इसलिये वे हिन्दू कला शैली के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकीं।

बहमनी सुलतानों की प्रशंसनीय कलाकृतियों में उल्लेख्य हैं—दौलताबाद का चांदमीनार, गुलबर्गा की जामा मसजिद, मुजाहिदशाह, दाऊदशाह, फिरोजशाह आदि सुलतानों के मकबरे, बीदर की सोला मसजिद और अहमद शाह वली का मकबरा, बीजापुर का गोलगुंदब (मकबरा), बीदर में मूहमदगवाँ द्वारा निर्मित फारसी शैली का विद्यालय भवन, आदि हैं। बहमनी सुलतानों ने सुरक्षा के हेतु अनेक दुर्ग भी बनवाये थे जिनमें ग्वालीगढ़, नरनाला, पोरन्दा माहुर पनहाला, एवं नालदुर्ग के किले प्रसिद्ध हैं।

हिन्दू नरेशों के भवन

मुस्लिम विजेताओं के शासन के होने पर भी प्रांतीय हिन्दू राज्यों में हिन्दुओं की सृजनशील चित्तवृत्ति गतिशील रही और अनेक प्रादेशिक नरेशों ने सुन्दर, आकर्षक, भव्य भवन बनवाये। राजस्थान में मेवाड़ के कलाप्रिय राणाओं ने अनेक दुर्ग, राजमहल और भवन बनवाये। राणाकुम्भा ने जो स्थापत्य कला का अनुरागी था, कुंभलगढ़ दुर्ग बनवाया तथा चितौड़ दुर्ग में विशाल जयस्तंभ निर्मित किया। इसमें हिन्दू अलंकरण शैली का अत्यधिक प्राधान्य है। प्रत्येक स्थान पर पाषाण में नक्शी से, बेलबूटों से सजावट की गई है। अनेकानेक हिन्दू देवी-देवताओं और गंधर्वों की प्रतिमाएं पाषाण में उत्कीर्ण की गई हैं, यह तात्कालीन हिन्दू स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इसी स्तंभ के पास में एक जैन स्तंभ भी है जिसमें भी बाह्य अलंकरण का बाहुल्य है।

दक्षिण भारत में विजयनगर के नरेश भी उदार कलानुरागी थे। वे भी महान कला प्रेमी थे। उन्होंने भी अनेक मन्दिरों, राजमहलों, सभागृहों और सार्वजनिक भवनों का निर्माण करवाया। हिन्दू स्थापत्य कला के विकास में विजयनगर राज्य का विशेष उल्लेखनीय योगदान है। उनके द्वारा निर्मित भवनों को बहमनी सुल्तानों ने भस्मीभूत कर दिया। विदेशी पर्यटक अब्दुर्रजाक ने इन भवनों को देखा और उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। विजय नगरों के भवनों में कृष्णदेवराय द्वारा निर्मित विट्ठल मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह दक्षिण भारत की हिन्दू स्थापत्य कला का सुन्दरतम श्रेष्ठ नमूना रहा है। यह मन्दिर द्रविड़ शैली के आधार पर निर्मित हुआ। इस काल की हिन्दू स्थापत्य कला की विशेषताएँ हैं– कमल और कलश के प्रतीकों की प्रचुरता, अलंकृत स्तंभ, कलापूर्ण शिखर, भीतर और बाहर आलों में विभिन्न देव प्रतिमाएं; दृढ़ और सुन्दर भवन, शक्ति, सौन्दर्य और सौम्यता का सुन्दर समन्वय।

समीक्षा—सल्तनत काल के भवनों और उनकी कला का निरीक्षण करने पर निम्न तत्व स्पष्ट होते हैं–

(i) दिल्ली सुलतानों को मुगल बादशाहों की भांति भवन निर्माण कला से अगाध अनुराग नहीं था। उनके पास मुगल सम्राटों की भांति धन की प्रचुरता तथा समय और अवसरों की बाहुल्यता नहीं थी।

(ii) परिस्थितियों की अनिवार्यता से उन्होंने भवन निर्माण किये और ये भी हिन्दू मंदिरों और भवनों को नष्ट कर उनकी ही सामग्री से बनाये गये। उन्होंने मौलिक नवीन इमारतें निर्मित नहीं कीं।

(iii) सल्तनत काल के भवनों में स्थान का आधिक्य है। कोष्ठों से घिरा बरामदा या आंगन विशेषता है। उनकी कलात्मकता साधारण है। सरलता और सादगी उनकी विशेषताएँ हैं। स्थान की प्रचुरता से ये इमारतें प्रकाश और वायुयुक्त हैं। कुछ मसजिदों में जुलूस का मार्ग है और कुछ में भव्य सिंहद्वार है।

(iv) सुलतानों द्वारा निर्मित भवन सौन्दर्य, सुडौलता, अलंकरण और कला की दृष्टि से मुगलकालीन कलाकृतियों या हिन्दू कलाकृतियों से निम्न स्तर के हो गये। उनके अधिकांश भवन उच्चकोटि की कलाकृतियां नहीं हो सकीं।

अन्य ललित कलाओं का अभाव—दिल्ली के सुलतानों ने स्थापत्यकला को प्रोत्साहन दिया और उन्होंने अनेक इमारतें निर्मित कीं। परन्तु अन्य ललित कलाओं में उन्हें अभिरुचि नहीं होने से उन कलाओं के प्रति उनका राज्याश्रय नगण्य रहा। चित्रकला इस्लाम के नियमों के विरोध में मानी जाती थी। इसलिए सुलतानों ने चित्रकला को नितांत हेय दृष्टि से देखा और सल्तनत में उसका पतन हुआ। परन्तु राजस्थान और मालवा के हिन्दू क्षेत्रों में चित्रकला जीवित रही। वहाँ धार्मिक और जन-जीवन के चित्र चित्रित होते रहे जिससे वहां धीरे-धीरे मालवा और राजस्थानी चित्रकला शैलियों का विकास हुआ। इसी प्रकार संगीत और नृत्य भी इस्लामी सिद्धांतों से निषिद्ध होने से संगीत और अभिनय कला को सुलतानों का राजकीय संरक्षण नहीं प्राप्त हो सका। परन्तु सुलतान, अमीर और सरदारगण सुरा और सुन्दरी प्रिय होने से संगीत और नृत्य वैश्यावृत्ति से संबंधित हो गया। धीरे-धीरे संगीत और

नृत्य वैश्याओं का व्यवसाय हो गया और इससे जन-साधारण की दृष्टि में वह निन्दनीय और हेय हो गया। परन्तु हिन्दू और सूफीसंतों के भजन, गीत, पद अधिक प्रचलित रहे। इससे धार्मिक क्षेत्र में संगीत और कीर्तन, गीतों और भजनों का प्रचार अधिक बढ़ा। हिन्दुओं में जन-साधारण और राजसभाएँ संगीत प्रिय रहे। उस युग में लिखे गए नाटकों से हिन्दुओं की संगीत और अभिनय कला का आभास मिलता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि सितार और तबला वाद्ययंत्रों का निर्माण और उपयोग इसी युग में हुआ।